Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

KALYAN FEB DEC 1962

GKU

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110313

110313

# कल्याण

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन २०१८, फरवरी १९६२ | संख्या २ | पूर्ण संख्या ४२३

## शिव-गौरी

कालीसे गौरी हुई तजकर काली-चाम ।
त्वक्‌से प्रगटी कौशिकी शक्ति-शौर्य-बल-धाम ॥
आ पहुँची देवी तुरत गौरी शिवके पास ।
छायी परम प्रसन्नता शिव-मन परमोल्लास ॥
गौरीका शिवने किया निज कर शुचि श्रृङ्गार ।
लगा रहे अब भालपर विन्दी भव भर्तार ॥

( शिवपुराण वायवीयसंहिता पूर्व० अ० २५–२७ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद रक्खो—एकमात्र भगवान् ही 'रस' है। इसी रसका जगत्में सर्वत्र विस्तार है, पर प्रकृतिके संयोगसे मूल तत्त्वके रूपमें नित्य एक-रस रहते हुए ही सृजन-पालन-संहार लीलाके लिये इसके नौ रस हो जाते हैं—शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त।

याद रक्खो—इन्हीं नौ रसोंमें सृजन-पालन-संहारके सारे कार्य चलते रहते हैं। जो समष्टिमें है, वही व्यष्टिमें—इस दृष्टिसे प्रत्येक मानवका जीवन भी इन्हीं नौ रसोंसे ओतप्रोत है।

याद रक्खो—इस विश्वमें नित्य निरन्तर रसमय भगवान्की रसमयी लीला हो रही है। भगवान् ही नटवर नटराजके रूपमें यहाँ लीलानृत्य कर रहे हैं। इस लीलानृत्यके दो प्रधान भेद हैं—लास्य और ताण्डव। नौ रसोंमें पहले चार लास्य नृत्यके रस हैं और दूसरे चार ताण्डवके। जहाँ इन दोनों नृत्योंका समरस ग्रहण है वहाँ शान्त-रस है। यह शान्त-रस रसमय भगवान्की ओर ले जानेवाला है।

याद रक्खो—शान्त-रसके दो भेद हैं—साधन-शान्तरस और साध्य-शान्तरस। इस साधन-शान्त-रससे ही भगवद्भक्तिके रसोंका—रतिका प्रारम्भ होता है। ये पाँच रस या रति हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। दास्यसे लेकर मधुरतक चारों रसोंमें शान्त-रसकी भूमिका अत्यावश्यक और अनिवार्य है। शान्त-रसमें साधक इन्द्रियदमन, मनकी शान्ति, विषय-वैराग्य, स्व-सुख-वासनाजनित विषयासक्ति तथा विषयकामना-से रहित त्याग-भाव एवं भगवान्के अनुकूल सदाचार-सद्विचार-सद्भाव आदिको न्यूनाधिक रूपसे प्राप्त कर लेता है। इस साधन-शान्तरसकी वेदान्त-साधनके साधन-चतुष्टयकी तीसरी स्थिति—षट्सम्पत्ति ( शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधानरूपा छः सम्पत्ति, वैराग्य तो इनके पहले ही हो जाता है ) से तुलना की जा सकती है।

याद रक्खो—जबतक मनुष्य अपनी अलग किसी प्रकारके सुखकी स्थितिकी कल्पना करके उसको चाहता रहता है, तबतक वह भगवान्के 'अनन्य दासत्व' में अपनेको नियुक्त नहीं कर सकता। भक्तराज श्रीहनुमान्-जीकी भाँति अपनेको भूल जानेपर ही यथार्थ 'सेवक'-भावका प्रकाश होता है। जबतक सेवक एकमात्र अपने स्वामीकी अनन्य सेवा-सुखके अतिरिक्त अन्य कहीं किसी प्राणी-पदार्थमें सुखकी कल्पना करता है, तबतक वह सच्चा सेवक—'दास्य-रति' वाला दास नहीं बन सकता।

याद रक्खो—जब दास्य-रति उत्तरोत्तर प्रगति करती हुई मधुर-रतिमें परिणत हो जाती है या भगवत्कृपासे बिना ही क्रमोन्नतिके—मधुर-रतिका विकास हो जाता है, तब उसमें एक महान् मधुरतम दिव्य उच्छलन आता है, जो परम प्रियतम भगवान्के सुखके लिये जीवनके कण-कणको—अणु-अणुको नचा देता है। इसका परिणाम होता है—महाभाव, जिससे एक दिव्य अनिर्वचनीय—अचिन्त्य मधुरतम शान्त-रसका प्रादुर्भाव होता है, जो प्रेमी-प्रेमास्पदका भेद मिटाकर परस्पर परम और चरम एकत्व, सुखैकत्व तथा स्वरूपैकत्वरूपमें प्रकट होता है और नित्य-निरन्तर परस्पर-सुखसम्पादनमें निरत मधुरतम प्रेमानन्दमय लीलातरङ्गमय होनेपर भी परम विलक्षण अपूर्व शान्त-स्वरूपमें परिणत हो जाता है। यही है—साध्य-शान्तरस। यही प्रियतम भगवान्का दिव्य सेवालाभ है। यही भक्तका परम ज्ञान है। यही साक्षात्कार है। यही ज्ञानोत्तर कालमें प्राप्त प्रेम है और यही दिव्यातिदिव्य भगवत्सेवा-सुख है।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भगवन्नाम-स्मरणकी महिमा

## [ महामना मालवीयजीका उपदेश ]

( कई वर्षों पहले, गीतावाटिका, गोरखपुरमें एक वर्षके लिये अखण्ड कीर्तन हुआ था, उसमें महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय महाराज पधारे थे। उस समय भगवन्नामके सम्बन्धमें आपने यह उपदेश दिया था—सम्पादक )

आजकल नाम-जपपर बहुत जोर दिया जाता है। आप सब लोग भी भगवन्नामके जप और कीर्तनमें ही लगे हुए हैं। किंतु आप यह तो बतलाइये कि नाम-जप क्यों करना चाहिये ? इससे क्या लाभ है ? लोग कहते हैं, भगवान्‌का नाम लेनेसे पाप कटते हैं; परंतु इसमें युक्ति क्या है ? आपमेंसे कोई भी इसका उत्तर दें। बात यह है कि हम जिस समय किसी वस्तुका नाम लेते हैं तो तत्काल हमें उसकी आकृति और गुण आदिका भी स्मरण हो जाता है। जब हम 'कसाई' शब्दका उच्चारण करते हैं तो हमारे मानसिक नेत्रोंके सामने एक ऐसे व्यक्तिका चित्र अङ्कित हो जाता है जिसकी लाल-लाल आँखें हैं, काला शरीर है, हाथमें छुरा है और बड़ा क्रूर स्वभाव है। 'वेश्या' कहते ही हमारे हृदय-पटलपर वेश्याकी मूर्ति अङ्कित हो जाती है। इसी प्रकार जब हम भगवान्‌का नाम लेते हैं तो सहसा हमारे चित्तमें भगवान्‌के दिव्य रूप और गुणोंकी स्मृति जाग्रत् हो जाती है। भगवन्नाम-स्मरणसे चित्त अनायास ही भगवदाकार हो जाता है। भगवदाकार चित्तमें भला पाप-तापके लिये गुंजाइश ही कहाँ है ? इसीलिये नामस्मरण पापनाशकी अमोघ ओषधि है।

बिना जाने भगवान्‌का नाम लेनेसे भी किस प्रकार पाप नष्ट हो जाते हैं, इसके विषयमें श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें एक बड़ी अद्भुत कथा है। अजामिल नामका एक बड़ा ही दुराचारी और दुष्ट प्रकृतिका ब्राह्मण था। उसके सबसे छोटे पुत्रका नाम 'नारायण' था। जब अजामिलका अन्तकाल उपस्थित हुआ, तब उसे लेनेके लिये यमदूत आये। उनके भयंकर स्वरूपको देखकर अजामिल डर गया और उसने 'नारायण' कहकर अपने छोटे पुत्रको पुकारा। उसके मुखसे 'नारायण' शब्द निकलते ही वहाँ विष्णु भगवान्‌के पार्षद उपस्थित हो गये। उन्होंने तुरंत ही उसे यमदूतोंके पाशसे छुड़ा लिया। जब यमदूतोंने उसके पापमय जीवनका वर्णन करते हुए यमदण्डका पात्र बतलाया, तब भगवान्‌के पार्षदोंने उनके कथनका विरोध करते हुए कहा—

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः॥
एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥

( श्रीमद्भा० ६।२।६; ८; १० )

'इसने तो अपने करोड़ों जन्मोंके पापोंका प्रायश्चित्त कर दिया; क्योंकि इस समय इसने विवश होकर भगवान्‌का मङ्गलमय नाम उच्चारण किया है। इसने जो 'नारायण' यह चार अक्षरोंका नाम उच्चारण किया है, इतनेसे ही इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। समस्त पापियोंके लिये भगवान् विष्णुका नाम लेना ही सबसे अच्छा प्रायश्चित्त है; क्योंकि ऐसा करनेसे भगवद्विषयक बुद्धि होती है।'

विष्णुदूतोंके इस प्रकार समझानेपर यमराजके सेवक यमलोकको चले गये और वहाँ ये सब बातें धर्मराजको सुनाकर उन्होंने उनसे पूछा—'महाराज ! इस लोकमें धर्माधर्मका शासन करनेवाले कितने अधिकारी हैं और हमें किसकी आज्ञामें रहना चाहिये ? भला, ये दिव्य पुरुष कौन थे और उस महापापीको हमारे पाशसे छुड़ाकर क्यों ले गये ?' तब यमराजने कहा—'परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम्' इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् मेरे भी ऊपर एक और स्वामी है जो समस्त स्थावर-जंगमका शासक है और जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है। उन सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीहरिके दूत, जो उन्हींके समान रूप और गुणवाले हैं, लोकमें विचरते रहते हैं और श्रीहरिके भक्तोंको, उनके शत्रु और मृत्यु आदि सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचाते रहते हैं। संसारमें मनुष्यका सबसे बड़ा धर्म यही है कि वह नाम-जपादिके द्वारा भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति करे। देखो, यह भगवन्नामोच्चारणका ही माहात्म्य है कि अजामिल-जैसा पापी भी मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया।'

महाभारत शान्तिपर्वकी कथा है कि जिस समय शरशय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्मसे महाराज युधिष्ठिरने पूछा—

**को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः।**
**किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥**
( विष्णुसहस्र० ३ )

'सम्पूर्ण धर्मोंमें आपके विचारसे कौन-सा धर्म सर्वश्रेष्ठ है ? और मनुष्य किसका जप करनेसे जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त हो जाता है ?' तब पितामहने कहा—

**जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।**
**स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥**
**तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।**
**ध्यायंस्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च॥**
**अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।**
**लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥**
**ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्।**
**लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम्॥**
**एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।**
**यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥**
**परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।**
**परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥**
**पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।**
**दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥**
( विष्णुसहस्र० ४–१० )

'जो सम्पूर्ण संसारके स्वामी, देवोंके देव, अनन्त एवं पुरुषोत्तम हैं उन आदि-अन्तसे रहित, सम्पूर्ण लोकोंके महान् ईश्वर और सबके साक्षी भगवान् अच्युतकी नित्यप्रति उठकर हजार नामोंसे स्तुति करनेसे तथा उन अविनाशी पुरुषोत्तमका ही भक्तिपूर्वक पूजन, ध्यान, स्तवन और वन्दन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण दुःखोंसे पार हो जाता है। वे श्रीविष्णु ब्राह्मणोंके हितकारी, समस्त धर्मोंके ज्ञाता, लोकोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले, लोकोंके स्वामी, महद्भूत और सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्तिस्थान हैं। मेरे विचारसे मनुष्यके सम्पूर्ण धर्मोंमें सबसे बड़ा धर्म यही है कि जो अत्युत्कृष्ट तेज, अति महान् तप, परमोत्कृष्ट ब्रह्म और बड़े-से-बड़े आश्रय हैं तथा जो पवित्रोंमें पवित्र, मङ्गलोंमें मङ्गल, देवोंमें महान् देव और समस्त भूतोंके अविनाशी पिता हैं, उन कमलनयन भगवान्‌का मनुष्य सर्वदा भक्तिपूर्वक स्तवन करे।'

इस प्रकार भीष्मजीने भगवान्‌को ही सबसे अधिक पूजनीय देव और भगवन्नाम-स्मरणको ही सबसे बड़ा धर्म और तप बतलाया है। भगवन्नामकी महिमा ऐसी ही विचित्र है। इसके उच्चारणमात्रसे ग्रह, नक्षत्र एवं दिक्शूलादिके दोष निवृत्त हो जाते हैं। मैंने अपनी मातासे यह वर माँगा था कि मुझे प्रायः नित्य ही बाहर आना-जाना होता है, इसलिये ऐसा आशीर्वाद दो जिससे ग्रहदोषजनित विघ्न उपस्थित न हों। तो मेरी माताने मुझसे कहा, "तू यात्रा आरम्भ करनेसे पूर्व 'नारायण' इस नामका उच्चारण कर लिया कर, फिर कोई विघ्न नहीं होगा।" माताजीके इस आशीर्वादसे मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव है, मैं जिस समय 'नारायण' इस प्रकार उच्चारण करके यात्रा आरम्भ करता हूँ तो सारे विघ्न दूर खड़े रहते हैं।

यही बात श्रीमद्भागवतके 'नारायणकवच' नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध स्तोत्रमें भी बतलायी गयी है। यह स्तोत्र भी भागवतके छठे स्कन्धमें ही है। वहाँ कहा है—

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योऽहोभ्य एव वा॥
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात्।
प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः॥
(६।८।२७-२८)

'ग्रह, नक्षत्र, मनुष्य, सरीसृप, हिंस्र जीव अथवा पापोंसे हमें जो भय प्राप्त हो सकते हैं तथा हमारे श्रेयोमार्गके जो-जो प्रतिबन्ध हैं वे इस भगवन्नामरूप अस्त्र (कवच) का कीर्तन करनेसे क्षीण हो जायँ।'

भगवन्नाम लेनेसे मनुष्यके सारे पाप उसी प्रकार कट जाते हैं जैसे दूध डालनेसे चीनीका मैल कट जाता है। नामका प्रभाव हमारे चित्तको सर्वथा व्याप्त कर लेता है। जिस प्रकार जलमें तेलकी एक बूँद डालनेपर भी वह सारे जलके ऊपर फैलकर उसे ढक लेती है, उसी प्रकार अर्थानुसंधानपूर्वक किया हुआ थोड़ा-सा भी नाम-जप मनुष्यके सारे पापोंको नष्ट कर देता है। अतः भगवन्नाम-जपसे तथा स्मरणसे समस्त पापोंका नाश होकर दिव्य शान्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

## सफल जीवन

पाता है जो जीवनमें सर्वत्र सदा प्रभुका संस्पर्श।
नहीं फूलता जग-सुखमें, होता न दुःखमें जिसे अमर्ष॥
प्रभु-प्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिमें ही जिसको होता हर्ष।
वही सफल जीवन है, जिसने प्राप्त किया ऐसा उत्कर्ष॥

जड-चेतनमें सदा देख पाता जो प्रभुको ही अभिराम।
तन-मन-धनसे यथाशक्ति जो सेवा करता है अविराम॥
प्रभुकी सेवाके निमित्त ही होते जिसके सारे काम।
वही सफल जीवन है सुखमय सत्य उसी[illegible]न्म ललाम॥

सर्वकाल जो चिन्तन करता प्रभुका रखकर भाव अनन्य।
कर मन-बुद्धि समर्पित प्रभुको, नहीं देखता कुछ भी अन्य॥
जिसके कभी न आती मनमें राजस-तामस वृत्ति-जघन्य।
वही सफल जीवन है शोभन परम उसीका जीवन धन्य॥

प्रभुके पावन पद-पंकजमें ही जिसका रहता अनुराग।
ममता एकमात्र प्रभुमें ही हुआ अन्य-ममताका त्याग॥
निर्मल परम प्रीति प्रभुमें ही विषय-जगत्से सहज विराग।
वही सफल जीवन है जगमें पुण्यश्लोक वही बड़भाग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

( मूल अंग्रेजी लेखक—ब्र० जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारती कृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी )

[ अनुवादक—पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि ]

[ वर्ष ३५ पृष्ठ १२८१ से आगे ]

## शाश्वत सत्ता ( Eternal Existence )

हमारे शास्त्रोंके अनुसार आत्माका पहला गुण है, सत् अथवा 'त्रिकालाबाध्यमस्तित्वम्' अर्थात् तीनों कालोंमें भी उसकी सत्ताका बाध नहीं होता। इस गुणपर अनेक दृष्टियोंसे विचार किया जा सकता है, जैसे—

**१. मनोवैज्ञानिक दृष्टि** (Psychological standpoint)—हम प्रायः मृत्युके बारेमें बात करते हैं और कहते हैं कि अमुक आदमी मर गया। पर 'मृत्यु' शब्दसे हमारा वास्तविक तात्पर्य क्या है? हमने पूर्व पृष्ठोंमें इस बातका प्रतिपादन कर दिया है कि आत्मा वह है, जिसको हम 'मैं' शब्दद्वारा अभिव्यक्त करते हैं। अब हमें यहाँ यह देखना है कि क्या 'मैं' शब्दके साथ 'मरना' शब्दके सम्बन्धकी जरा भी सम्भावना है, अथवा इन दोनोंमें क्या उद्देश्य और विधेयका सम्बन्ध स्थापित हो सकता है? कभी नहीं !! डॉक्टर नाड़ियोंकी गतिका अध्ययन करता है और कहता है कि 'यह आदमी मर गया' अथवा मरणासन्न व्यक्ति भी डरता है कि वह शीघ्र ही मर जायगा। पर मरनेका वास्तविक मनोवैज्ञानिक अनुभव उसे कभी नहीं मिलता। यह नितान्त असम्भव है। 'मैं' और 'मरना' इन दोनों शब्दोंका प्रयोग एक साथ हो ही नहीं सकता। जब मनुष्य कहता है कि 'मैं मर रहा हूँ' और वाक्यमें वर्त्तमानकालका प्रयोग करता है, तब वहाँ उसका तात्पर्य भविष्यत्कालसे ही होता है, न कि वर्तमान या भूतकालसे।

इस प्रसङ्गमें नींदका भी, जिसे 'लघु मृत्यु' भी कहा गया है, उल्लेख किया जा सकता है। वास्तवमें मृत्युको कई जगह 'दीर्घनिद्रा' भी कहा गया है। उदाहरणार्थ—रघुवंश सर्ग १२ में निद्रा-प्रिय कुम्भकर्णके श्रीरामद्वारा मार दिये जानेपर कवि कालिदास लिखते हैं—

**अकाले बोधितो भ्राता प्रियस्वप्नो वृथा भवान्।**
**रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां प्रवेशितः॥**

'अर्थात् हे निद्राप्रिय! तुम अपने भाईद्वारा असमयमें और अनावश्यक रूपसे जगा दिये गये थे, इसलिये श्रीरामके बाणोंने तुमको ( कुम्भकर्णको ) दीर्घ-निद्रामें भेज दिया।'

यहाँ मजेकी बात यह है कि नींदके बारेमें मैं यह कह सकता हूँ कि 'मैं सो रहा था' 'मैं सोने जा रहा हूँ' 'मुझे बहुत नींद आ रही है' इत्यादि, पर मैं यह कभी नहीं कह सकता कि 'मैं सो रहा हूँ' यदि मैं ऐसा कहता हूँ तो स्पष्ट है कि मैं सो नहीं रहा हूँ। इस प्रकार 'सोना' शब्द भी 'मैं' के साथ वर्तमानकालमें प्रयुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'मैं' और 'मरना' ये दोनों शब्द भी वर्तमानकालमें एक साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते। इससे यह अनुमान सहजहीमें निकाला जा सकता है कि 'मरना' आत्माका विधेय कभी भी नहीं बन सकता।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मैं स्वप्नमें देखता हूँ कि मैं मर गया हूँ और आदमी मेरे लिये रो रहे हैं, पर आश्चर्यकी बात यह है कि उस कल्पनात्मक मृत्युकी अवस्थामें भी मैं लोगोंको रोते हुए सुनता और देखता हूँ। ये सभी उदाहरण इस बातकी सिद्धि करते हैं कि अमरता आत्माका स्वाभाविक गुण है।

**२. उद्देश्यात्मक दृष्टि** ( Teleological standpoint )—यदि जीना और मरना दोनों आत्माके स्वाभाविक गुण होते ( अर्थात् यदि मरना भी स्वाभाविक गुण होता ) तो हम मृत्युसे बचनेकी कोशिश क्यों करते? क्योंकि जो हमारा स्वाभाविक गुण है उससे हम बचनेका प्रयत्न कभी नहीं करते। उदाहरणके लिये मैं दफ्तर जानेके लिये एक विशेष प्रकारकी पोशाक पहनता हूँ, पर मैं उस पोशाकसे ऊब जाता हूँ और घरपर आकर उसे झटपट उतार फेंकता हूँ। क्यों? क्योंकि वह पोशाक मेरे लिये स्वाभाविक नहीं है, अपितु मुझे जबर्दस्ती पहननी पड़ी, लिहाज़ा वह मुझे बहुत जल्दी थका देती है। अतः जो मेरे लिये स्वाभाविक नहीं है, वह मुझे जल्दी ऊबा देनेवाली होती है। पर मैं जीनेसे कभी नहीं ऊबता, चाहे मेरा शरीर कमजोर हो जाय, इन्द्रियाँ काम न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर पायें, मैं बूढ़ा हो जाऊँ; फिर भी जीनेकी चाह मुझमें बनी ही रहती है। यह क्यों ? इसीलिये कि जीवन स्वाभाविक है और मरना अस्वाभाविक।

इसी प्रकार हम स्वास्थ्यको पसंद करते हैं, रोगको नहीं। यह भी इसीलिये कि स्वस्थता हमारे लिये स्वाभाविक है, रुग्णता नहीं। हम यहाँ पहले कहे हुए 'क्यों' शब्दद्वारा भी इस बातकी सत्यताका निर्णय कर सकते हैं। जब कोई बीमार होता है, तब हम पूछते हैं कि यह बीमार क्यों है ? पर जब एक आदमी स्वस्थ रहता है तो कोई उससे यह नहीं पूछता कि वह स्वस्थ क्यों है ? पूछनेवालेको रोगका कारण बतानेकी जरूरत है, पर स्वस्थताका नहीं। यह भी इस बातका द्योतक है कि स्वस्थता हमारा स्वाभाविक गुण है, अस्वस्थता नहीं। यही बात ठीक जीवन और मृत्युके बारेमें भी है। इस प्रकार हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि आत्मा नित्य और शाश्वत है।

**३. वैज्ञानिक दृष्टि**—प्रो० रास्कोके रसायन शास्त्र (Chemistry) के प्रथम भागमें विद्यार्थी पढ़ता है कि मोमबत्तीके जलनेमें कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। पर जब विद्यार्थी यह देखता है कि मोमबत्ती जलते-जलते पूरी गायब हो जाती है, तब वह प्रोफेसरके इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता। पर प्रोफेसर इस बातकी व्याख्या करता है कि जब मोमबत्ती जलती है, तब हाइड्रोजन और कार्बन, जो मोमबत्ती-के जलनेमें सहायक होते हैं, ऊपर चले जाते हैं और वहाँ ऑक्सीजनके साथ मिलकर जलीय भाप और कार्बन डाइ ऑक्साइड बन जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें, मोमबत्तीके जलनेमें किसी वस्तुका नाश नहीं होता, केवल स्थान, रूप और नामों-का परिवर्तन होता है। इसी प्रकार जब एक बढ़ई एक कुर्सी या बेंच बनाता है तो वह किसी नयी वस्तुका निर्माण नहीं करता, अपितु परमात्म-निर्मित लकड़ीको कहींसे लाता है तथा उसके यथायोग्य टुकड़े करके उन्हें यथायोग्य स्थानपर जोड़ देता है और इस प्रकार उनको अपने इच्छानुसार आकृतिमें ढाल देता है। न उसमें किसी चीजका नाश होता है, न कोई नयी वस्तु उत्पन्न ही होती है। केवल स्थान और आकृतिका परिवर्तन होता है। फलतः नाम भी बदल जाता है। इसी सिद्धान्तको भौतिक-शास्त्र (Physics) में 'तत्त्वका अविनाशित्व' 'तत्त्वका अनुत्पत्तित्व' और 'शक्तिका परिवर्तन' के रूपमें बताया है। इसी सिद्धान्तको भगवान् श्रीकृष्णने गीताके आधे श्लोकमें ही इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

'जो नहीं था, वह कभी पैदा नहीं हो सकता और जो है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता।'

अब हम अपने आत्माकी अमरतावाले प्रश्नको रसायन-शास्त्र और भौतिकशास्त्रके उपर्युक्त सिद्धान्तोंकी कसौटीपर कसते हैं। जब कोई मुझसे पूछता है कि जन्म होनेसे पूर्व मैं था या नहीं और मृत्युके बाद मेरी सत्ता रहेगी या नहीं ? तो मैं उससे कहता हूँ कि इस प्रश्नके उत्तर-से पहले मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि 'इस समय तुम्हारी सत्ता है या नहीं ?' इसके उत्तरमें कोई भी यह नहीं कह सकता कि इस समय उसकी सत्ता नहीं है। अब मेरा भी उत्तर यही होता है कि यदि अब तुम्हारा अस्तित्व है तो इससे पूर्व भी अवश्य ही रहा होगा; क्योंकि जो पहले नहीं होता उसका अस्तित्वमें आना असम्भव है। उसी प्रकार यदि अब तुम हो तो तुम भविष्यमें भी रहोगे; क्योंकि अस्तित्ववान्का विनाश कभी नहीं होता। निस्संदेह रूप, नाम और स्थानका परिवर्तन हो सकता है, परंतु वस्तु-का नाश नहीं हो सकता। इस प्रकारके मननसे जिज्ञासुओंकी शान्ति हो सकती है, अतः उन्हें दर्शनशास्त्र या भौतिक-शास्त्रके पचड़ेमें पड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं।

**४. भाषासम्बन्धी प्रमाण** (Linguistic evidence)—केवल संस्कृत भाषाके शब्दोंको जाननेवाला भी इस सत्यतापर पहुँच सकता है। हमारे विचारमें केवल संस्कृत ही एक पूर्ण भाषा है। हम इसे ईश्वरीय वाणीकी दृष्टिसे देखते हैं; क्योंकि इसमें एक शब्द भी तो ऐसा नहीं है, जिसे हम यह कह सकें कि यह तो आकस्मिक रूपसे इ[illegible] आ घुसा है। इसके विपरीत इसका एक ही शब्द हमारे मस्तिष्कमें उस शाश्वत सत्यके विषयमें इतने विचार प्रस्तुत कर देता है जितना कि हम यदि ज़िंदगी भर दर्शनशास्त्रोंमें लगे रहें तो भी नहीं पा सकते। इसलिये हम प्रायः यह कह दिया करते हैं कि यदि ईश्वर संस्कृतको छोड़कर और किसी अन्य भाषाको अपने लिये चुनता तो उसे भी लज्जित होना पड़ता। अब हम यह देखते हैं कि संस्कृत भाषा इस आत्माके बारेमें क्या कहती है।

हम जन्म और मृत्युके बारेमें बहुत बात करते हैं, पर इन दोनों शब्दोंका वास्तविक तात्पर्य क्या है ? अंग्रेजी भाषा-के अनुसार तो ये केवल मात्र दो विशेष घटनाएँ हैं, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार-बार घटित होती हैं। पर इन घटनाओंके घटित होनेका कारण क्या है, इस विषयमें चुप्पी लग जाती है। विश्वकी किसी भी भाषामें, केवल संस्कृतको छोड़कर, जन्म और मृत्युका दार्शनिक और वैज्ञानिक विवेचन नहीं मिलता।

पर संस्कृतमें 'जन्म' शब्दको ही ले लीजिये। 'जनी प्रादुर्भावे' धातुसे 'जन्म' शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है 'प्रकट होना' अर्थात् जो चीज पहले गुप्त थी, उसीका आँखोंके सामने आकर देखने योग्य हो जाना। संस्कृतमें 'जन्म' शब्दके लिये दूसरा शब्द है 'उत्पत्ति' (अंग्रेजीमें इसे 'ऑरिजिन' (Origin) शब्दसे व्यक्त किया है); यह शब्द 'उद्' (ऊपर) 'पद्' (जाना, चलना) शब्दोंसे मिलकर बना है। इसका भी अर्थ है, 'ऊपर आकर प्रकट होना'। दूसरे शब्दोंमें छिपी हुई वस्तुका ऊपर या बाहर आना। संस्कृतमें इसीके लिये तीसरा शब्द है 'सृष्टि' (इसके लिये इंगलिश शब्द क्रिएशन (Creation) है और यह 'सृज् विसर्गे' धातुसे बना है। इसका भी अर्थ बाहर प्रकट होना ही है। इन तीनों शब्दोंके पीछे जो मनोविज्ञान छिपा हुआ है, वह यह है कि—

हमारी इन्द्रियोंका निर्माण कुछ इस प्रकार हुआ है कि उनकी वृत्ति अंदरसे शुरू होकर बाहरके पदार्थोंमें फँस जाती है, अंदरको उनका झुकाव कम होता है। जैसे कि कठोपनिषद्में कहा है—

**परां च खानि व्यतृणत् स्वयंभूः।**

इन्द्रियोंकी इस वृत्तिके कारण हम केवल बाह्य-पदार्थोंको ही देखते हैं। हम अपनी आँखोंको नहीं देख सकते और जब हम दर्पणमें देखते भी हैं, तब वे हमारी वास्तविक आँखें नहीं होतीं, अपितु प्रतिबिम्ब मात्र होती हैं। अतः जब वे स्वयंको ही नहीं देख सकतीं तो इन्द्रियातीत पदार्थको देखना तो नितान्त असम्भव है। इसलिये हमारी कठिनाई यही है कि हम छिपी हुई चीजोंको नहीं देख पाते और जब ये गुप्त चीजें प्रकट हो जाती हैं या दृश्य हो जाती हैं तब हम कहते हैं कि अमुक चीजकी उत्पत्ति, जन्म अथवा सृष्टि हो गयी। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि जो पहले नहीं थी वह अब पैदा हो गयी, अपितु यही तात्पर्य है कि जो पहले अप्रकट रूपमें थी, वही अब प्रकट रूपमें सामने आ गयी।

इसी प्रकार 'मृत्यु' शब्द है। मृत्युके लिये संस्कृतमें 'नाश' शब्द है जो 'नश् अदर्शने' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है, देखने योग्य न रहना। ये चारों शब्द यह बताते हैं कि जन्म और मृत्युका अर्थ नये जीवनका पैदा होना या समाप्त होना नहीं है। इस प्रकार संस्कृतका शब्दकोश भी यही बताता है कि आत्मा अमर है। (क्रमशः)

---

**एक कदम तो मैं बढ़ पाऊँ।**

तेरे भक्तोंके पदचिह्नोंपर कुछ तो चल पाऊँ॥
मेरे जीवनका कोई क्षण, बिना क्रोधके बीते।
कभी किसी [illegible] तो मेरा मन इच्छाओंको जीते॥
एक बार तो अपराधीको क्षमादान दे पाऊँ।
थोड़ी-सी सेवा कर थोड़ा-सा तो पुण्य कमाऊँ॥
थोड़ा भी इस पथ पर चलना मंगलमय होता है।
जो चल देता है उसका पथदर्शक तू होता है॥
तेरे इस आश्वासनको मैं थोड़ा तो सुन पाऊँ।
तेरा नाम हृदयमें अपने एक बार ले पाऊँ॥
इस अनन्त पथमें मैं केवल एक बार बढ़ पाऊँ।
तेरे भक्तोंके पथमें मैं एक कदम चल पाऊँ॥

—मधुसूदन वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ईश्वर और महापुरुषोंका प्रभाव

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

सम्पूर्ण बल, ऐश्वर्य, तेज, शक्ति और सामर्थ्यसे सम्पन्न, असम्भवको भी सम्भव कर सकनेवाले परमेश्वर-का प्रभाव अपरिमित है। वस्तुतः ईश्वरके स्वरूप और प्रभावका वर्णन वाणीद्वारा नहीं किया जा सकता। जिस मनुष्यको ईश्वरका यथार्थ अनुभव हो जाता है वही उन्हें जानता है। वाणीसे तो वह भी नहीं कह सकता। इस सम्बन्धमें एक दृष्टान्त है। मान लीजिये, मर्त्यलोकका एक मनुष्य पृथ्वीके अंदर ऐसे नीचेके लोकमें गया। जहाँ सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रोंका कभी दर्शन नहीं होता। इस कारण वहाँ घोर अन्धकार-ही-अन्धकार रहता है। वहाँ जानेपर जब बहुत समय बीत गया तो उसने वहाँके लोगोंसे पूछा—'क्या यहाँ दिन नहीं होता ?' उन लोगोंने कहा—'दिन क्या ?' उसने कहा—'सूर्यका उदय होनेसे जो महान् प्रकाश होता है, उसे दिन कहते हैं।' उन्होंने पूछा—'सूर्य क्या है ?' उसने कहा—'आकाशमें प्रकाशका महान् पुञ्जरूप एक गोलाकार पिण्ड-सा उदित होता है वह सूर्य है।' तब वहाँके निवासियोंने बिजलीका हजारों पावरका एक बल्ब आकाशमें स्थित किया और उसे जलाकर पूछा—'सूर्य ऐसा ही होता है ?' वह मनुष्य बोला—'यह सूर्यके मुकाबिलेमें कुछ नहीं है।' वहाँके निवासियोंने कहा—'इससे बढ़कर प्रकाश हो ही नहीं सकता।' वह बोला—'आप अपने एक व्यक्तिको मेरे साथ पृथ्वीपर भेजें तो मैं उसे प्रत्यक्ष दिखला सकता हूँ।' इसपर उन्होंने वहाँके एक व्यक्तिको उसके साथ भेज दिया। वह मनुष्य उस लोकके व्यक्तिके साथ मनुष्यलोकमें आया, उस समय अमावस्याकी अर्धरात्रिका घोर अन्धकार व्याप्त था, तब भी यहाँ उस लोककी अपेक्षा प्रकाश था। उसे देखकर उस व्यक्तिने पूछा—'यही दिन है ?' उस मनुष्यने उत्तर दिया—'यह तो घोर रात्रि है।' तब जो आकाशमें तारे चमक रहे थे, उनके बारेमें उस पातालव्यक्तिने पूछा—'यह क्या है ?' उस मनुष्यने कहा—'ये तारे हैं।' जब अरुणोदय होनेपर तारोंकी चमक क्षीण हो गयी और व्यापक प्रकाश-सा प्रतीत होने लगा, तब उसने पूछा—'यह दिन है ?' उस मनुष्यने उत्तर दिया—'नहीं, यह तो प्रभात है, अरुणोदय है। जब दो घड़ी बाद सूर्योदय होगा तब दिन माना जायगा।' उस व्यक्तिने पूछा—'आकाशमें जो तारे चमकते थे उनकी रोशनी कम कैसे पड़ गयी ?' मनुष्यने उत्तरमें कहा—'सूर्यका आभास यहाँ आनेसे तारोंकी ज्योति क्षीण हो गयी। जब सूर्योदय हो जायगा तब उनके तीव्र प्रकाशमें ये तारे आकाशमें ज्यों-के-त्यों रहते हुए भी नहीं दीखेंगे।' तत्पश्चात् जब सूर्योदय होनेका समय निकट आ गया तब शुक्र और बृहस्पतिके सिवा सारे तारे छिप गये एवं जब सूर्योदय हो गया तब तो शुक्र और बृहस्पति भी दीखने बंद हो गये। जो व्यक्ति नीचेके लोकसे आया था वह सूर्यको देख नहीं सका। तब जैसे अभ्रक ( अबरक)पर दीपकके काजलकी कालिमा लगाकर सूर्यग्रहणके समय सूर्यको देखा जाता है, उसी प्रकार उसने देखा। सूर्य, दिन और रातको उसने अच्छी तरह समझ लिया फिर वह मनुष्य उस व्यक्तिको लेकर उस लोकको गया। वहाँके निवासी लोगोंने उस व्यक्तिसे पूछा—'तुमने सूर्यका स्वरूप प्रत्यक्ष देखा ? दिन और रातको प्रत्यक्ष देखा ?' वह व्यक्ति बोला—'हाँ, मैंने प्रत्यक्ष देखा है।' उन्होंने कहा—'अब तुम हमको अपनी भाषामें ठीक-ठीक समझा दो।' उसने उत्तर दिया—'यह मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्यके बाहरकी बात है । मैं किसी प्रकार भी नहीं समझा सकता । आपलोगोंको समझना हो तो वहाँ जाकर समझिये; और दूसरा कोई उपाय नहीं है ।'

अब हमें इस दृष्टान्तपर विचार करना चाहिये । जब प्रत्यक्षमें देखनेवाला व्यक्ति भी, जिस देशमें सूर्य या दिन नहीं है, उस देशमें सूर्य या दिनको वाणीद्वारा नहीं समझा सकता, तब फिर परमात्माके स्वरूप और प्रभावको मनुष्य वाणीद्वारा कैसे समझा सकता है ? परमात्माकी प्राप्ति होनेपर ही मनुष्य परमात्माके स्वरूप और प्रभावको ठीक-ठीक समझ सकता है । किंतु वह भी फिर दूसरोंको समझा नहीं सकता । फिर भी जो शास्त्र और महात्मा पुरुषोंद्वारा यत्किञ्चित् समझाया जाता है वह उस परमात्माका आभासमात्र है । भगवान्ने गीतामें अपना प्रभाव जगह-जगह व्याख्या करके समझाया है किंतु गीताके अर्थको समझकर भी भगवान्का स्वरूप और प्रभाव ठीक-ठीक समझमें नहीं आता है ।

भगवान् गीतामें कहते हैं—

**यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।**
**तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥**

( १० । ४१ )

'जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान ।'

इससे यह समझना चाहिये कि संसारमें जो भी विभूति, कान्ति, बल और प्रभावसे युक्त पदार्थ हैं, वे सब मिलकर भी भगवान्के प्रभावके एक अंशका ही प्राकट्य है ।

अतः भगवान्का प्रभाव अपरिमित, अपार, असीम और अनिर्वचनीय है । भगवान्के सगुण-साकार स्वरूपका श्रद्धापूर्वक दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन करनेसे पापी-से-पापी मनुष्यका भी शीघ्र कल्याण हो जाता है ।

हम भगवान्का स्मरण करें तो भी हमको परम लाभ है और भगवान् हमारा स्मरण करें तो भी हमको परम लाभ है । हम भगवान्को याद करें तो हमारा हृदय परम पवित्र होकर हमारा उद्धार हो सकता है और भगवान् हमको याद करें तो हम उन गुणसागर भगवान्के हृदयमें प्रवेश करनेसे परम पवित्र होकर हमारा उद्धार हो सकता है । इसीलिये अङ्गदने हनुमान्‌जीसे यह कहा था कि आप समय-समयपर भगवान् श्रीरामको मेरी स्मृति कराते रहें—

कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि ।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि ॥

( राम० उत्तर० १९ क )

इसलिये हमलोगोंको हर समय भगवान्के स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये; क्योंकि भगवान्का यह नियम है कि जो भगवान्को याद करता है उसे भगवान् भी याद करते हैं—

**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।**

( गीता ४ । ११ का पूर्वार्ध )

'जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ ।'

इसी प्रकार भगवान् हमपर दृष्टिपात करें तो हम परम पवित्र हो जाते हैं और हम भगवान्का दर्शन करें तो हम परम पवित्र हो जाते हैं और हमारा उद्धार हो सकता है । यों सभी प्रकार हमारा परम लाभ है । फिर भगवान्के वार्तालाप और चरण-स्पर्शसे उद्धार हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है !

किंतु बिना श्रद्धाके ऐसा नहीं होता; जैसे भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर भी दुर्योधनका उद्धार नहीं हुआ । बिना श्रद्धाके तो साक्षात् भगवान्के वचनरूप गीतोपदेशको पढ़-समझकर भी उद्धार नहीं हो सकता ।

**अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।**
**अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥**

( गीता ९ । ३ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परंतप ! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं ।'

परंतु जो भगवान्‌में श्रद्धा रखता है, भगवान्‌के दिव्य जन्म और कर्मके तत्त्व-रहस्यको जान जाता है उसका उद्धार हो जाता है—

**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।**
**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥**
( गीता ४ । ९ )

'अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है ।'

भगवान् अर्जुन-जैसे श्रद्धालु पात्रको ही अपने जन्म ( अवतार )का रहस्य बतलाते हैं—

**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।**
**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥**
( गीता ४ । ६ )

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ ।'

किंतु राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिवाले मूढ़ मनुष्य श्रद्धारहित और अपात्र होनेके कारण भगवान्‌के तत्त्वको नहीं जानते, इसलिये वे भगवान्‌का तिरस्कार करते हैं ( देखिये गीता ९ । ११-१२ ) । वे अश्रद्धालु मनुष्य भगवान्‌के प्रभावसे अनभिज्ञ रहते हैं, अतः भगवान् उनके सामने प्रकट नहीं होते; अपने ऊपर योगमायाका पर्दा डाले रहते हैं । भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

**नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।**
**मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥**
( गीता ७ । २५ )

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वरको नहीं जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है ।'

अर्जुन भगवान्‌के श्रद्धालु और प्रेमी भक्त थे, इसलिये भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये और उनको उन्होंने परिचय दे दिया कि मैं ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हूँ ( गीता ४ । ६ ) तू मेरे शरण होकर मेरी ही भक्ति कर, इससे तू मुझको प्राप्त हो जायगा ( गीता ९ । ३४ ) । अठारहवें अध्यायके अन्तिम उपदेशमें भी कहते हैं—

**सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।**
**इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥**
**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।**
**मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥**
( गीता १८ । ६४-६५ )

'सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्य-युक्त वचनको तू फिर भी सुन । तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा । अर्जुन ! मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर । ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है ।'

[illegible]वान्‌ने अपने स्वरूपका वर्णन भी जगह-जगह किया है । निर्गुण-निराकार स्वरूपका १२ वें अध्यायके तीसरे श्लोकमें, सगुण-निराकार स्वरूपका ८ वें अ० के ९वेंमें तथा ९वें अ० के ४, ५, ६, १८वेंमें और सगुण-साकार विश्व-स्वरूपका ११वें अ०के ५, ६, ७ वेंमें वर्णन किया है । अर्जुनने भगवान्‌से सगुण-साकार चतुर्भुज स्वरूपका दर्शन देनेके लिये प्रार्थना की ( गीता ११ । ४६ ), तब भगवान्‌ने अपना चतुर्भुज स्वरूप अर्जुनको दिखला दिया—इसका ११वें अ० के ५० श्लोकमें वर्णन है । इसलिये सगुण-निर्गुण साकार-निराकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। इसके तत्त्व, रहस्य और प्रभावको जो मनुष्य जानता है उसका निश्चय ही उद्धार हो जाता है।

इसी प्रकार, संसारके कल्याणके लिये भगवान् अपना अधिकार देकर जिस भक्तको भेजते हैं अथवा यहीं जो महापुरुष हैं, उनमेंसे किसीको अपना अधिकार दे देते हैं, उन पुरुषोंके भी श्रद्धापूर्वक दर्शन, चरण-स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन करनेसे मनुष्य परम पवित्र हो जाता है जिससे उसका उद्धार हो सकता है; क्योंकि ईश्वर और ईश्वरका अधिकार पाये हुए पुरुषोंद्वारा जो कुछ देखा जाता है, स्पर्श किया जाता है, मनन किया जाता है, वह सब परम पवित्र हो जाता है। उन महापुरुषोंका प्रभाव बड़ा ही विलक्षण, दिव्य अलौकिक और अपरिमित है। किंतु ऐसे महात्मा करोड़ों मनुष्योंमें ही कोई एक होते हैं। भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—

**मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।**
**यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥**
(७। ३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थ-रूपसे जानता है।'

अतः प्रथम तो परमात्माकी प्राप्तिवाले पुरुष ही संसारमें बहुत कम हैं। उनमें भी अधिकार पाये हुए पुरुष तो और भी दुर्लभ हैं। उन महात्मा पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होना बड़ा ही कठिन है; यदि सङ्ग प्राप्त हो जाय तो उनको पहचानना बहुत मुश्किल है; क्योंकि उनको कोई आवश्यकता नहीं रहती जो कि वे अपनेको बतावें और साधारण मनुष्योंमें उनको पहचाननेकी योग्यता नहीं होती। यदि कहें कि गीताके द्वितीय अ० के ५५वेंसे ५८वें तक, १२वें अ० के १३वेंसे १९वें तक और १४वें अ० के २२वेंसे २५वें श्लोकतक—आदि-आदि श्लोकोंमें जो लक्षण बतलाये गये हैं उन लक्षणोंके अनुसार हम उनको पहचान सकते हैं तो यह कठिन है; क्योंकि ये सब लक्षण स्वसंवेद्य हैं, पर-संवेद्य नहीं। यदि कहें कि तब फिर उनको कैसे पहचानें तो इसका उत्तर यह है कि जिसके दर्शन, भाषणसे अपनेमें महापुरुषोंके उपर्युक्त लक्षणोंका प्रादुर्भाव हो, वही हमारे लिये महात्मा है।

यदि महात्मा पुरुषोंकी श्रद्धापूर्वक सेवा, वार्तालाप और नमस्कार किया जाय तो एक महात्मासे कई महात्मा बन सकते हैं, जैसे यदि दीपकोंमें तेल और बत्ती हो तो एक दीपकसे कई दीपक जलाये जा सकते हैं। यहाँ श्रद्धा-विश्वास ही तेल-बत्ती है। महापुरुषोंकी आज्ञाके अनुसार चलना श्रद्धा है और उनके संकेतके अनुकूल चलना विशेष श्रद्धा है। उससे भी अधिक श्रद्धा वह है कि उनके सिद्धान्तको समझकर उनके मनके अनुकूल चलना अर्थात् उनकी इच्छाके अनुकूल कठ-पुतलीकी भाँति चेष्टा करना। कोई बात उनसे पूछनेकी इच्छा हो तो उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके जिज्ञासु भावसे सरलता, श्रद्धा, विनय और प्रेमपूर्वक पूछ सकते हैं। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

**तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।**
**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥**
(गीता ४। ३४)

'उस परमात्माके यथार्थ ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलता-पूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जानने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।'

भगवान्‌ने यह जिज्ञासुके लिये कर्तव्य बताया है किंतु महात्मासे इन सबको स्वीकार करनेके लिये नहीं कहा है। जिज्ञासुके द्वारा इस प्रकार करनेपर भी महात्मा स्वीकार नहीं करता; क्योंकि उसके शरीरमें कोई धर्मी है ही नहीं, तब कौन स्वीकार करे। किंतु इस प्रकार सेवादि करनेवाला कोई जिज्ञासु श्रद्धालु पात्र हो तो वह उसका विशेष विरोध भी नहीं करता। उपराम रहना तो उनका स्वभाव ही है; क्योंकि विवेक, वैराग्य, उपरति आदि गुण तो उनमें साधन कालमें ही स्वभावसिद्ध हो गये थे।

जो उच्चकोटिके महापुरुष होते हैं वे व्यक्ति बनकर अपनेको नहीं पुजवाते; क्योंकि उनका देहमें किञ्चिन्मात्र भी ममता और अभिमान नहीं रहता। जो कोई अपनेको महात्मा समझता है, अपने पूजन, आदर, सत्कार, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठासे दूसरोंका उद्धार समझता है, वह महात्मा नहीं है; क्योंकि अपनेको श्रेष्ठ और दूसरोंको तुच्छ समझना, अपनेको महात्मा और दूसरोंको अज्ञानी समझना तो बहुत नीचे दर्जेकी बात है। महात्माके न तो देहमें अहंता-ममता ही रहती है और न देहमें कोई धर्मी ही रहता है फिर मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा-आदर आदिकी इच्छा कौन करे। जो मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा-आदर आदिकी इच्छा रखते हैं वे तो उच्च श्रेणीके साधक भी नहीं हैं, वरं वे तो मान-बड़ाई-प्रतिष्ठादिके दास हैं!

ऊपर यह बताया गया है कि ईश्वर अश्रद्धालु मनुष्यों-के सम्मुख अपने ऊपर योगमायाका पर्दा डाले रहते हैं, इसी प्रकार इस रहस्यको जाननेवाले, भगवान्‌के सच्चे अनुयायी महात्मा पुरुष भी अपने ऊपर मायाका पद डाले हुए साधारण मनुष्यकी भाँति रहते हैं। किंतु जो वास्तवमें जिज्ञासु श्रद्धालु और पात्र है, उसके सामने वे कहीं हाव-भावसे भगवत्प्राप्तिरूप अपनी स्थितिका निरभिमान भावसे परिचय दे भी दें तो कोई दोष नहीं है। वे वस्तुतः महात्मा होकर भी लोक-संग्रहके उद्देश्यसे जिज्ञासु और साधककी भाँति साधारणतया विचरण करें तो इससे उनकी परमात्म-प्राप्तिरूप स्थिति नष्ट नहीं होती। किंतु साधारण मनुष्य महात्मा बनकर पूजा करावे तो उसके लिये भार है; क्योंकि महात्मा पुरुष, सकामभावसे शास्त्रविहित कर्म करनेवाले अज्ञानी पुरुषके कर्मोंका निष्काम और अनासक्त भावसे लोकसंग्रहके लिये अनुकरण करते हैं ( देखिये गीता ३। २५ )। यदि कहें कि सकामी अज्ञानी पुरुषके शास्त्रविहित कर्मोंका अनुकरण ज्ञानी पुरुष क्यों करते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि सकामी मनुष्य, यह सोचकर कि कहीं कर्मोंमें कमी रह जायगी तो हम फलसे वञ्चित रह जायँगे, फलकी इच्छाके लोभसे शास्त्रकी आज्ञाका पालन अच्छी प्रकार करते हैं; इसलिये उन कर्मोंमें विगुणता या कमी आनेकी गुंजाइश नहीं रहती। इसीलिये महापुरुष निष्काम, अनासक्त और अभिमानरहित हुए ही लोकसंग्रह यानी संसारके कल्याणके लिये उन सकामी अज्ञानी मनुष्योंके शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुकरण करते हैं।

ईश्वर और महापुरुषोंके स्वरूप और प्रभावका यथार्थ ज्ञान उनकी कृपासे ही होता है। अतः उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये श्रद्धाभक्तिपूर्वक निष्काम भावसे गीता ९। ३४; ४। ३४ के अनुसार सब प्रकारसे उनके शरण हो जाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# प्रमुख भारतीय दर्शन

( लेखक—पं० श्रीधर्मराजजी अधिकारी शास्त्री )

भारतीय दर्शनका विकास विक्रम संवत्के लगभग पंद्रह शताब्दितक बड़े जोरोंके साथ हुआ था, जिसको भाष्यकाल कहते हैं।

भारतीय दर्शनके मुख्यतः दो भेद हैं—( १ ) नास्तिक, ( २ ) आस्तिक। वेदके सिद्धान्तको न माननेवालेको नास्तिक, वेदके सिद्धान्त माननेवालेको आस्तिक कहा जाता है। नास्तिक दर्शनके मुख्य तीन भेद बताये जाते हैं—

( १ ) चार्वाक, ( २ ) जैन, ( ३ ) बौद्ध।

( १ )

## चार्वाकदर्शन

इस दर्शनके रचयिता आचार्य 'बृहस्पति' हैं। इसका सिद्धान्त भौतिक जीवनको सुखमय बनाना है।

**यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।**
**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥**

ये इस सिद्धान्तके परिचायक शब्द हैं। इस दर्शनमें प्रत्यक्ष प्रमाणमात्र माना जाता है। चार्वाकके मतानुसार पृथिवी, जल, तेज, वायुके सम्मिश्रणसे शरीर बनता है तथा मरण ही मोक्ष है। स्वभावसे ही जगत् उत्पन्न [illegible] नष्ट होता है, कोई ईश्वर नहीं है, लोकानुसार चलनेसे इसको 'लोकायतिक' भी कहा जाता है।

( २ )

## जैनदर्शन

जैन विद्वानोंके मतानुसार आद्यधर्मप्रचारक आचार्य 'ऋषभदेव' हैं। ये लोग चौबीस तीर्थंकर मानते हैं। जैनदर्शनमें मोक्षके तीन साधन माने गये हैं—( १ ) सम्यग्दर्शन, ( २ ) सम्यग्ज्ञान ( जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष—इन सात पदार्थोंका ज्ञान ), ( ३ ) सम्यक्चरित्र। चरित्रसिद्धिके लिये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—इन पाँचों व्रतोंका पालन करना नितान्त आवश्यक समझते हैं। पुनः पाँच अस्तिकाय जैनदर्शनमें माने गये हैं। जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय। स्याद्वाद् सप्तभंगीन्याय जैनदर्शनमें प्रसिद्ध है। ये आत्माको मानते हैं।

( ३ )

## बौद्धदर्शन

भगवान् बुद्धद्वारा प्रतिष्ठित धर्म 'बौद्धधर्म' है। इस दर्शनके अनुयायियोंका मूल ग्रन्थ 'त्रिपिटक' है। इस ग्रन्थके प्रधान चार सम्प्रदाय हैं—( १ ) वैभाषिक, ( २ ) सौत्रान्तिक, ( ३ ) योगाचार और ( ४ ) माध्यमिक। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

**मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगद्**
**योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिलः।**
**अर्थोऽस्ति क्षणिकस्त्वसावनुमितो बुद्ध्येति सौत्रान्तिकः**
**प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरं च सकलं वैभाषिको भाषते॥**

वैभाषिकके मतानुसार—प्रत्यक्षद्वारा अंदर अथवा बाहर जगत्के सम्बन्ध रखनेवाले समस्त पदार्थोंको सत्य माना जाता है। इसका दूसरा नाम 'सर्वास्तिवाद' भी है। सौत्रान्तिकके मतानुसार—बाहरी पदार्थ अनुमानद्वारा सत्य माना गया है। योगाचारके मतानुसार विज्ञान तथा चित्तको ही सत्य माना गया है। इसको 'विज्ञानवाद' भी कहते हैं। माध्यमिकके मतानुसार जगत्में सभी पदार्थ शून्यरूप हैं।

## आस्तिकदर्शन

आस्तिकदर्शनके मुख्य छः भेद हैं—( १ ) न्याय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

( २ ) वैशेषिक, ( ३ ) सांख्य, ( ४ ) योग, ( ५ ) मीमांसा और ( ६ ) वेदान्त।

( १ )

## न्यायदर्शन

न्यायसूत्रके रचयिता 'गौतम महर्षि' हैं। यह दर्शन दो धाराओंमें विभक्त है—पदार्थ-मीमांसात्मक, प्रमाण-मीमांसात्मक। पदार्थमीमांसामें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि षोडश पदार्थोंका विवेचन है जो कि 'प्राचीन न्याय' के नामसे प्रसिद्ध है। प्रमाण-मीमांसामें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द—इन प्रमाणोंका सूक्ष्म विवेचन है, जिसको कि 'नव्य न्याय' कहा जाता है। न्यायदर्शनका मत है—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि षोडश पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानद्वारा मानव-जीवनका लक्ष्य प्राप्त होता है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती। इस दर्शनके मतानुसार परमाणु, आत्मा, ईश्वर इत्यादि नित्य पदार्थद्वारा जगत्‌की सत्ता है। इन्द्रियद्वारा लक्षित जगत् वस्तुतः सत्य है। परमाणु, समवायीकारण, ईश्वर निमित्तकारण तथा अनुमानगम्य है। ईश्वरके इच्छानुसार एक परमाणु दूसरे परमाणुसे मिलकर द्व्यणुक तथा द्व्यणुकके सम्मिश्रणसे 'त्रसरेणु' एवंरूपेण पञ्च-महाभूतकी समुत्पत्ति होती है। मिथ्याज्ञानसे ही पुनर्जन्मादि दुःख होता है। अतः आत्माका साक्षात्कार अत्यन्त आवश्यक है।

( २ )

## वैशेषिकदर्शन

इस दर्शनके मूलसूत्रके प्रणेता 'कणाद' हैं। वैशेषिकोंका मुख्य तात्पर्य बाह्य जगत्‌की विस्तृत समीक्षा है। वैशेषिकदर्शनमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव—ये सात पदार्थ माने गये हैं। इस दर्शनके मतानुसार जबतक आत्मासे भिन्न पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तबतक आत्माको यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मा तथा आत्मासे भिन्न पदार्थका साधर्म्य-वैधर्म्य जाननेपर ही तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन—ये नौ द्रव्य हैं। वैशेषिक दर्शनमें तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति करानेसे तथा मोक्षका कारण होनेसे निष्काम कर्मका सम्पादन भी अतीव आवश्यक माना गया है।

( ३ )

## सांख्यदर्शन

सांख्यदर्शनके प्रतिपादक 'कपिल मुनि' हैं। यह दर्शन द्वैतमतका प्रतिपादक है। प्रकृति-पुरुष दो मूल तत्त्व हैं। प्रकृति जब चेतन पुरुषसे मिलती है, तब जगत्‌की उत्पत्ति होती है। प्रकृति जड और एक है। पुरुष चेतन और अनेक हैं। सांख्य सत्कार्यवादका समर्थक है। सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंकी समान अवस्थाको ही प्रकृति कहा गया है। किन्हीं तीन गुणोंमें वैषम्य होनेपर ही सृष्टिका उदय होता है। कुल पचीस तत्त्व पृथक्-पृथक् सांख्यदर्शनमें प्रसिद्ध हैं। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व ( बुद्धि ), अहंकार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च-कर्मेन्द्रिय, पञ्च-तन्मात्राएँ और पञ्च-महाभूत इत्यादि। सांख्यका दार्शनिक दृष्टिकोण यथार्थवादकी ओर है।

( ४ )

## योगदर्शन

योगदर्शनके प्रधानाचार्य 'पतञ्जलि मुनि' हैं। योग-दर्शनमें नाना प्रकारकी सिद्धियोंका विस्तारसे वर्णन है। योगके आठ अङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इन आठ अङ्गों-के अभ्याससे चित्तवृत्ति निरुद्ध हो जाती है। वह पहले एकाग्र होती है। जहाँ चित्त ध्येय वस्तुके आकार-को ग्रहण करती है, वहाँ समाधिका समुदय होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांख्यदर्शनमें माने गये २५ तत्त्व योगशास्त्रमें भी माने गये हैं। योगदर्शनमें एक अधिक 'ईश्वर' माना गया है। अतएव इसको 'सेश्वर सांख्य' भी कहते हैं। योगमें क्लेश, कर्म, विपाक ( कर्मफल ), आशय ( कर्मफल-अनुरूप संस्कार ) इनके सम्पर्कसे रहित पुरुषविशेषको ईश्वर माना है। ईश्वर सदैव मुक्त है। ऐश्वर्य और ज्ञानकी पराकाष्ठा ही ईश्वर है।

( ५ )

## मीमांसादर्शन

मीमांसादर्शनके प्रमुख आचार्य 'जैमिनि' हैं। इस दर्शनका प्रधान उद्देश्य वैदिक कर्मकाण्डके विधानमें दीख पड़नेवाले विरोधका परिहार करके एकवाक्यता उत्पन्न करना है। मीमांसाका विषय 'धर्मविवेचन' है। 'धर्माख्यं विषयं वस्तु मीमांसायाः प्रयोजनम्'। वेद-द्वारा कथित इष्ट-साधन 'धर्म' है और अनिष्टसाधन अधर्म है। वेद स्वयं नित्यसिद्ध तथा अपौरुषेय है। कर्म ही सर्वप्रधान वस्तु हैं। कर्मके द्वारा अपूर्व और अपूर्वके द्वारा फल प्राप्त होता है, परंतु अपूर्वके द्वारा समुत्पन्न फल ( स्वर्गादि ) कालान्तरमें ही प्राप्त हो सकता है। यह उनका कहना है।

( ६ )

## वेदान्त

वेदान्तसूत्रके निर्माता 'बादरायण' हैं। आचार्य बादरायणप्रणीत इस वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' अर्थात् ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है; जीव ही ब्रह्म है और ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। 'शंकराचार्य'ने अद्वैतमतकी पूर्ण पुष्टि की है। यह जगत् मायाद्वारा रचित है, अतएव यह सब अनिर्वचनीय है। अथवा यह ऐसा है—इस तरहका निश्चय नहीं हो सकता। मिथ्या कहनेसे वन्ध्या स्त्रीका पुत्र-जैसा नहीं, अपितु परमार्थ-तत्त्वज्ञान होनेपर जगत्को जगत् न देखकर साधकको सर्वत्र ब्रह्मस्वरूपकी ही उपलब्धि होती है।

ब्रह्मके दो गुण अर्थात् दो स्वरूप हैं—एक सगुण, दूसरा निर्गुण। मायाविशिष्ट ब्रह्म सगुण माना जाता है और इसीको ईश्वर भी कहा है। सगुण ब्रह्म जगत्का कर्ता-धर्ता है। निर्गुण मायारहित, सत्यरूप, अखण्ड, व्यापक, सच्चिदानन्दस्वरूप है, यह अद्वैतदर्शनमें माना गया है। वेदान्तमें तीन सत्ता मानी गयी है—पारमार्थिक, प्राति-भासिक, व्यावहारिक। इस दर्शनके अनुयायी लोग ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद्को 'प्रस्थानत्रयी' कहते हैं। इसमें ज्ञानकी प्राप्ति ही मोक्ष है। ब्रह्मका स्वरूप साक्षात्कार अनुभवद्वारा होता है। जिसको जाननेकी इच्छा है, उसके लिये स्वयं अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः ब्रह्म-जिज्ञासुओंको तदनुसार अनुष्ठान-साधनादि करना नितान्त आवश्यक है। वेदान्तदर्शनमें यह स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है। वेदान्तमें श्रुति ( वेद ) ही प्रमाण है। तर्क भी वही मान्य है जो वेदानुकूल हो।

## एकमात्र दयामय प्रभुका ही बड़ा भरोसा है

जानता हूँ पाप है, पर पाप-रत रहता सदा।
पापसे मैं पृथक् अपनेको, न कर पाता कदा॥
दीन मैं असमर्थ, अब तो शरण प्रभुकी आ पड़ा।
अब दयामय एक प्रभुका ही भरोसा है बड़ा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110313

# मधुर

एक दिन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी ही अनन्यभिन्न-मूर्ति प्रेममयी श्रीराधाजीने अपनी एक अन्तरङ्ग सखीको श्यामसुन्दरके प्रति अपने समर्पण, सम्बन्ध, परस्परके लीलाभाव तथा नित्य एकत्वका वर्णन करते हुए संकेत-रूपमें बड़ा रहस्य बतलाया। श्रीराधामाधवकी सारी लीलामें यही रहस्य भरा है और वह अनन्त है। साधनकी अति उच्च स्थितिमें, भगवत्समर्पण सम्पन्न हो जानेपर, भगवान्‌के द्वारा स्वीकार कर लिये जानेपर कैसा स्वरूप बन जाता है, जगत्‌से कैसा क्या सम्पर्क रह जाता है, इत्यादिका पूर्ण संकेत इसमें है। श्रीराधाजी बोलीं—

> मिले रहते मुझसे दिन रात।
> कराते करते मनकी बात॥
> न करने देते कुछ भी और।
> लगे रहते पीछे सब ठौर॥
> स्वप्नमें भी न छोड़ते साथ।
> वहाँ भी पकड़े रहते हाथ॥
> तुड़ाकर जगके सब सम्बन्ध।
> बाँधकर निज ममताके बन्ध॥
> दान कर अपना रसमय प्यार।
> नचाते निज इच्छा अनुसार॥

वे (भगवान् प्रियतम श्यामसुन्दर) मुझसे दिन-रात (चौबीसों घंटे लगातार) मिले ही रहते हैं। वे स्वयं अपने मनकी करते और मुझसे भी अपने मनकी ही कराते रहते हैं। (मैं उनके बिना—कभी पृथक् रह ही नहीं गयी, यहाँतक कि पृथक् सोचनेवाला मन ही नहीं रह गया।) वे मुझको और कुछ भी नहीं करने देते। (सदा अपना ही काम करवाते रहते हैं। मैं जो कुछ करती हूँ, सब उन्हींका कार्य करती हूँ;) वे सदा-सर्वदा सब जगह मेरे पीछे ही लगे रहते हैं। (कहीं भी) किसी समय भी मेरा साथ नहीं छोड़ते—स्वप्नमें भी नहीं छोड़ते। वहाँ भी मेरा हाथ पकड़े रहते हैं (स्वप्नमें भी अन्यत्र नहीं जाने देते—अन्य किसी विषयका स्वप्न भी नहीं आता)। जगत्‌के सारे सम्बन्धोंको तुड़वाकर उन्होंने एकमात्र अपनी ही ममताके पाशमें मुझे बाँध लिया है। (अर्थात् भगवान् श्यामसुन्दरके सिवा कोई भी प्राणी-पदार्थ 'मेरा' नहीं रह गया है—मेरी सारी ममता उन्हींमें आकर केन्द्रित हो गयी है।) वे मुझे निरन्तर अपना दिव्य रसपूर्ण प्रेम देकर अपने इच्छानुसार नचाते रहते हैं। (मैं सदा उनके प्रेमसमुद्रमें ही डूबी रहती हूँ। उनके इच्छानुसार नाचनेके अतिरिक्त मेरी संसारमें कुछ भी पाने-करनेकी इच्छा ही नहीं रह गयी है।)

> प्राप्तकर मैं अपूर्व आनन्द।
> अतीन्द्रिय निर्मलतम स्वच्छन्द॥
> न कुछ भी भाता मुझको अन्य।
> अनुग मैं रहती नित्य अनन्य॥

इससे मुझे जो इन्द्रियातीत निर्मलतम स्वच्छन्द आनन्द (इन्द्रियोंके विषय-सम्बन्धसे मिलनेवाले बड़े-से-बड़े आनन्दसे सर्वथा परे दिव्य भगवदानन्द, जिसमें किसी भी कामना, वासना, निज-सुखेच्छाका मल बिल्कुल ही नहीं है, ऐसा पवित्रतम एवं किसी हेतुसे मिलनेवाला नहीं, स्वच्छन्दतासे मिलनेवाला आनन्द) प्राप्त कर लेनेपर अब मुझे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, दूसरा कुछ भाता ही नहीं (दूसरा कुछ रह ही नहीं गया)। इसीलिये मैं भी सदा-सर्वदा अनन्य भावसे सहज ही उनके अनुगत रहती हूँ। (वे जिस प्रकार अपने इच्छानुसार नचाते हैं, ठीक वैसे ही कठपुतलीकी भाँति नाचती हूँ। कहीं किसी अहंकार-अभिमानकी कल्पना ही नहीं रह गयी है।)

> स्वयं भी रहते नहीं स्वतन्त्र।
> बने नित मेरे ही परतन्त्र॥
> दुःख-सुख रहे न पृथक् नितान्त।
> हो गया भेद-भाव सब शान्त॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीसे मेरे सुखके हेतु ।
उड़ाते दिव्य प्रेमका केतु ॥
स्वयं बन मेरे मनकी मूर्ति ।
प्रकट कर मधुर नित्य नव स्फूर्ति ॥
विलक्षण देते नित रस-दान ।
स्वयं भी करते शुचि रस-पान ॥

( इस प्रेमकी मधुरतम, दिव्यतम लीलामें सर्वथा सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र रहते हुए ही ) भगवान् स्वयं भी स्वतन्त्र नहीं रहते। वे सदा-सर्वदा मेरे ही ( प्रेम-परवशताके दिव्य भावसे ) परतन्त्र बने रहते हैं। हम दोनोंके दुःख-सुख अब बिल्कुल ही अलग नहीं रह गये हैं; ( 'मैं'—'तू'का, अपने-परायेका ) सारा भेद-भाव शान्त हो गया है। इसीसे वे मेरे सुखके लिये—( उसीको अपना परम सुख अनुभव करते हुए ) निरन्तर दिव्य ( स्व-सुख-वाञ्छारहित तथा प्रेमास्पद-सुख-स्वरूप ) प्रेमकी विजय-ध्वजा उड़ाते रहते हैं। वे स्वयं मेरे ही मनकी मूर्ति बन रहे हैं और ( मुझे सुखी करनेके लिये ) नित्य नयी-नयी स्फूर्तियाँ प्रकट करके मुझे विलक्षण—अलौकिक रस-दान देते रहते हैं और स्वयं भी पवित्र रसका पान करते रहते हैं।

अनोखी उनकी लीला सर्व ।
दूर कर सारे मिथ्या गर्व ॥
खींचती नित अपनी ही ओर ।
सदा रखती आनन्द विभोर ॥
एक ही बने नित्य दो रूप ।
कर रहे लीला मधुर अनूप ॥

( सखी ! ) श्यामसुन्दरकी सभी लीलाएँ बड़ी विलक्षण हैं, उनकी लीला-माधुरी सारे ( देवता, ऋषि, ज्ञानी, योगी, तपस्वी आदिके समस्त स्वरूपगत ) मिथ्या गर्वको ( अभिमानको ) दूर करके नित्य निरन्तर अपनी ही ओर खींचती रहती है और सदा ही दिव्य आनन्द-निमग्न बनाये रखती है। ( वास्तवमें ) हम दोनों नित्य एक ही हैं। पर नित्य ही दो रूप बने हुए मधुर अनुपम लीला कर रहे हैं।'

साधक, सिद्ध, भक्त, प्रेमी, ज्ञानी सभीके लिये अपने-अपने भावानुसार सीखनेकी चीज है।

# प्रयास-हीन

कल और परसोंके दिन तुम्हारे पर्वोंके दिन थे ।

पर्वोंका उपहार लेनेके लिये मैंने कल और परसों अपनी भावनाओंको अपनी ओरसे आर्द्र करनेका प्रयत्न नहीं किया ।

अपना बल लगाकर, अपने भावोंकी स्वर-साधना करके मैंने कल-परसों तुम्हारा उपहार लेनेका प्रयत्न नहीं किया ।

कल-परसों तो मैंने सहज भावसे ही उपहारोंकी प्रतीक्षा की और अपनी रीती अञ्जलियाँ कल-परसों मुझे रीती ही वापस समेटनी पड़ीं ।

कल-परसों तुम्हारे पर्वोंके दिन मुझे अपनी थककर नीरस हो उठनेवाली भावुकताकी वास्तविकताका पता चल गया है और मैंने तुम्हारे ही दिये हुए उपहारोंके ग्रहणका निश्चय कर लिया है ।

तुम्हारे ऐसे पर्वोंकी अपने 'एक-व्यक्ति-रूप'के लिये विशेषता न माननेकी ओर मैं कल-परसोंसे कुछ और भी प्रवृत्त हो गया हूँ और मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारे उपहारोंके लिये अपने द्वार खोले हुए अपनी इस ओरकी साधनाओंका भी ध्यान रक्खूँ ।

( एक तरुण साधककी डायरीसे ९—७—४० )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुण्यश्लोक मालवीयजी महाराज

( लेखक--डा० माधवजी एम्० ए०, पी-एच० डी० )

सारे देशमें २५ दिसम्बरसे प्रातःस्मरण्य, पूज्यचरण महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी महाराजकी जन्मशती-महोत्सव मनाया जा रहा है। पूज्य मालवीयजी महाराजका चरित इतना महान् और इतना पवित्र था कि उनके स्मरणमात्रसे जीवनमें महत्ता और पवित्रताका संचार हो जाता है। धर्म अपने प्रकृत रूपमें कितना उदार, कितना सहिष्णु, कितना निर्मल, कितना व्यापक, कितना ऊँचा और कितना आकर्षक हो सकता है, इसका जीवन्त एवं जाज्वल्यमान उदाहरण पूज्य मालवीयजी महाराजका जीवन ही है। जैसा शुभ्र उनका वेश वैसा ही शुभ्र उनका चरित्र। इनके सफेद कपड़ोंपर कभी किसीने नन्हा-सा दाग भी नहीं देखा। उनका चरित्र भी वैसा ही निष्कलुष एवं मनोज्ञ था। और कहा जा सकता है कि पूज्य मालवीयजी महाराजने साँईसे जैसी चादर पायी थी, बड़े जतनसे उसे ओढ़ी और उसे ज्यों-की-त्यों मालिकके चरणोंमें धर दी। मालवीयजी धर्मकी साक्षात् मूर्ति ही थे।

सेवाके क्षेत्र भी उनके कितने विविध थे और सभी क्षेत्रोंमें उनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। १८६१ के २५ दिसम्बरको उनका जन्म हुआ और १९४६ के १२ नवम्बरको निधन। उन्होंने निरन्तर साठ वर्षोंतक विविध क्षेत्रोंमें देशकी सेवा की--वह ऐसी पावन निष्ठाकी सेवा, जो देशके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जाने योग्य है और जो शताब्दियोंतक आगे जानेवाली पीढ़ियोंको प्रेरित और उत्साहित करती रहेगी।

हम वह दिन भूलते नहीं, जब कालाकांकरसे निकलनेवाले 'हिन्दुस्तानसमाचार' का सम्पादन मालवीयजीने केवल इसलिये छोड़ दिया कि उनकी शर्तोंके प्रतिकूल कालाकांकर-नरेशने उन्हें उस समय बुलाया, जब वे नशेमें थे। मालवीयजी उदार थे। करुणा और दयासे उनका हृदय लबालब भरा रहता था, परंतु अपने सिद्धान्तपर वे अतिशय दृढ़ थे। ऐसी लोकोत्तर विभूतियोंके बारेमें ही **'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'** कहा गया है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके आरम्भसे ही पूज्य मालवीयजी महाराजका राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके साथ अतिशय घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। उन्होंने चार बार १९०९, १९१८, १९३२ और १९३३में कांग्रेसके सभापतित्वका भार सँभाला। भय-जैसी वस्तु तो वे जानते ही नहीं थे। राष्ट्रकी मुक्तिके लिये अनेक बार उन्होंने कारावासके कष्ट सहे और देशवासियोंको देशकी बलिवेदीपर सर्वस्व होम करनेके लिये प्रेरित किया। गांधीजीके २१ दिनके उपवासकालमें मालवीयजी महाराजने उनको जो श्रीमद्भागवतकी अमृत कथा सुनायी, उसका प्रभाव गांधीजीके जीवनपर अन्ततक बना रहा।

वह दृश्य भूलता नहीं, जब हिन्दूविश्वविद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर पधारे हुए राजा-महाराजाओंके बीच गांधीजीका क्रान्तिकारी भाषण हुआ। सभी महाराजा, सरकारी पदाधिकारी, यहाँतक कि डा० एनि बिसेंट तक सभा छोड़कर चल पड़ीं, परंतु मालवीयजी महाराजकी गांधीजीमें इतनी अटूट आस्था थी कि वे क्षणभरके लिये भी विचलित नहीं हुए। काशीविश्वविद्यालयकी रजत-जयन्तीके अवसरपर शुभ्र वस्त्रोंमें पुनः मालवीयजी और गांधीजीके एक साथ मंचपर दर्शन हुए। वह दृश्य आँखोंसे बिछुड़ता नहीं। कैसी विलक्षण थी वह जोड़ी!

स्वामी श्रद्धानन्दजीकी हत्याके कुछ ही दिन पश्चात् लार्ड इरविन हिन्दूविश्वविद्यालयके गायकवाड़ पुस्तकालयका शिलान्यास करने पधारे थे और उसके दूसरे दिन गांधीजी पधारे। उसी मण्डपमें, उसी मंचपरसे गांधीजीका भाषण हुआ। जनताका हृदय स्वामी श्रद्धानन्दकी हत्यासे बहुत दुखी था। गांधीजी हरिजन-उद्धारके लिये कोष-संग्रहके निमित्त आये थे। सभामें मालवीयजीने गलेमें लिपटी अपनी चादर फैलाते हुए कहा, विश्वविद्यालयके अध्यापको, छात्रो, छात्राओ! जो कुछ भी तुम्हारे पास हो भीखकी इस झोलीमें डाल दो। फिर क्या था, बहिनोंने सोनेकी चूड़ियाँ, अंगूठियाँ, गलेका हार, कानकी बालियाँ, छात्रों और अध्यापकोंने जो कुछ जिसके पास था, सब-का-सब चुपचाप सौंप दिया और कुछ ही समयमें हरिजन-उद्धार फण्डमें विश्वविद्यालयसे गांधीजीको कई हजार रुपये और आभूषणादि मिल गये।

मालवीयजीका जीवन भारतकी प्राचीन संस्कृति, आदर्शों और परम्पराओंकी उदात्त भावनाओंसे ओतप्रोत था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे जीवनभर इन परम्पराओं और आदर्शोंसे राष्ट्रको अनुप्राणित करते रहे। शिक्षाके क्षेत्रमें उनकी दृष्टि सर्वथा इन्हीं आदर्शोंसे आलोकित थी। काशी-हिन्दूविश्वविद्यालयकी स्थापनाके समय जब उन्होंने अपने संकल्पकी चर्चा की तो देशके अधिकांश व्यक्तियोंने उन्हें एक 'पागल ब्राह्मण' समझा। परंतु जब मालवीयजीका आदर्श विश्वविद्यालयके रूपमें मूर्तिमान् होकर सामने आया तो सबने उसके सामने श्रद्धा और भक्तिसे सिर झुका लिया। हिन्दूविश्वविद्यालय ही भारतवर्षमें एक ऐसा विश्वविद्यालय है जो 'विश्वविद्यालय' नामको अक्षरशः सार्थक करता है और तक्षशिला, नालन्दा और विक्रमशिला-जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयोंकी याद दिलाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृतिकी आध्यात्मिक-परम्परा और आधुनिक युगकी अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियोंका जैसा मङ्गलमय सामंजस्य हिन्दूविश्वविद्यालयमें देखनेको मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ क्या असम्भव ही है। हिन्दूविश्वविद्यालय मालवीयजीकी अमर-अजर कीर्ति है। मालवीयजी महाराजके व्यक्तित्वका चमत्कार ही था कि देशके एक-से-एक मूर्धन्य विद्वान् हिन्दू-विश्वविद्यालयमें नाममात्रका वेतन लेकर सेवा करनेमें अपना परम सौभाग्य एवं गौरव मानते थे। प्रायः सभी विभागोंमें देश-विदेशके चूडान्त मनीषियोंको देखकर किसका हृदय गर्वसे भर नहीं उठता था। मालवीयजीने अपने जीवनकालमें ही डा० राधाकृष्णनको हिन्दूविश्वविद्यालयका उपकुलपति बनाया था। सेंट्रल हिन्दूकालेजके प्रिंसिपल-पदपर आचार्य श्रीआनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव गांधीजीके भेजे हुए थे। ध्रुवजी ज्ञानके विश्वकोष ही थे। ऐसे प्रिंसिपल अब कहाँ मिलते हैं? कहाँ मिलेंगे?

और कितनी मसृण, मधुर वाणी पायी थी मालवीयजीने, धाराप्रवाह वे चार-चार घंटे बोलते—क्या अंग्रेजी और क्या हिन्दी—बोलते क्या मधुकी धारा बहाते और हजारों-हजारोंकी संख्यामें श्रोता मन्त्रमुग्ध हो, उनकी अमृतवाणीका रसास्वादन करते। उस समय सभामण्डपमें इतनी शान्ति विराजती होती कि यदि सूई भी गिरे तो उसकी आवाज सुनी जाय। बोलनेके पहले उनके मङ्गलाचरणके प्रिय श्लोक थे—

> कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
> नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥

> कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
> प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

छात्रोंमें बोलते समय प्रायः उपनिषद्के दो मन्त्रोंपर विशेष बल देते—'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'—'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः'—स्वाध्यायमें प्रमाद न करना और प्रजातन्तुका व्यवच्छेदन न करना। विश्वविद्यालयके प्रत्येक छात्रको वे सेवाका मन्त्र देते हुए कहते—'बेटा! कभी ऐसा कोई काम न करना, जिससे माँके आँचलमें कालिख लगे।' यह काफी गम्भीर अर्थका बोधक और प्रेरक वाक्य था। जब कभी भी विश्वविद्यालयके पुरातन छात्र मिलते तो वे उनसे तीन प्रश्न करते—(१) संध्या करते हो कि नहीं? (२) दूध कितना पीते हो? और (३) कितनी संतान है? इन तीनों प्रश्नोंके भीतर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक कुशल-क्षेम निहित था। मालवीयजी महाराजके आग्रहपर ही विश्वविद्यालयके 'धर्मशिक्षा-विभाग'में लोकमान्य तिलकके सहपाठी प्रोफेसर पाटणकर आये थे। लगभग अस्सी वर्षकी अवस्था, चिरप्रसन्न मुद्रा, सिरपर मराठी रेशमी पगड़ी, पैरोंमें मराठी चप्पल और हाथमें छड़ी। जब कभी क्लासमें आते, समाधि लग जाती, घंटों पढ़ाते रहते आत्म-विभोर होकर। स्वयं मालवीयजी महाराज भी जन्माष्टमी, रामनवमी, देवोत्थानी एकादशी, गुरुपूर्णिमा तथा अन्य पर्वोंपर जब काशीमें होते विश्वविद्यालयमें अमृतमयी कथा बाँचते। उन कथाओंका अमृतपान जिन्होंने किया है, वे अपना भाग्य सराहते हैं और अबतक भी उन कथाओंका रस हमारे जीवनमें ओतप्रोत है। कथाके लिये मालवीयजी रेशमी धोती, रेशमी चादर और पैरोंमें खड़ाऊँ पहने आते थे और व्यासासनसे उपस्थित छात्र-समुदायको जब 'बेटे और बेटियो!' सम्बोधित करते तो हमलोगोंकी छाती गर्वसे भर जाती। शरीर तो उनका तपाये हुए सोनेके रंगका था। पगड़ी, अंगरखा, गलेमें सलीकेसे तहाया हुआ लिपटा और घुटनोंको छूता दुपट्टा, धोती या चौड़ी मोहरीका पैजामा, सफेद मोजे, पैरोंमें केनवसका सफेद जूता—सबका सब श्वेत, शुभ्र, दिव्य। उनके मस्तकका मलय चन्दन कभी मलिन न हुआ, किसीने कभी भी उनके ललाटको चन्दन-विहीन नहीं देखा। मालवीयजीने शायद कभी रंगीन कपड़ा पहना ही नहीं। जाड़ेके दिनोंमें उनका अंगरखा, पैजामा काश्मीरी ऊनका होता जो मलय चन्दनके रंगका होता। मुखाकृति पूर्णतः आर्य और चिरप्रसन्न। मालवीयजीकी मुसकानें कितनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहक थीं। बोलते तो मानो मधु घोलते। हँसते तो प्यारकी फुलझड़ियाँ छोड़ते। उनकी मुसकान और उनका अट्टहास दोनों ही संक्रामक थे। भोजन भी मालवीयजीका बहुत सादा था। फुलके और हरी तरकारियाँ, गायका दूध और ताजा मक्खन और शहद उन्हें विशेष प्रिय था। धारोष्ण गोदुग्धपर वे विशेष आग्रह रखते।

'सनातन-धर्म' अखिल भारतीय सनातन-धर्म महासभाका साप्ताहिक मुखपत्र था और उसके अध्यक्ष पूज्य श्रीमालवीयजी महाराज थे। पत्रका सम्पादक होनेके नाते मालवीयजी महाराजके निकटतम सम्पर्कमें आनेका परम सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। 'सनातन-धर्म' ज्ञानमण्डलप्रेसमें छपता था और विश्वविद्यालयसे प्रकाशित होता था। उसमें प्रायः देशके मूर्धन्य लेखकों और विचारकोंके लेख छपते थे। पूज्य मालवीयजी महाराजके नाम और यशका प्रताप था कि उसमें अपने-अपने लेख प्रकाशित करनेके लिये देशके मूर्धन्य विद्वान् भी उत्सुक रहा करते थे। भाई परमानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, गोस्वामी गणेशदत्त, लाला लाजपतराय, श्रीमाधव श्रीहरि अणे मालवीयजीके अन्तरङ्ग सहकर्मी थे। मालवीयजीको 'आर्य' शब्द बड़ा प्यारा था और संसारकी सर्वश्रेष्ठ नैतिकता, सदाचार, उदारता, प्रेम, सहिष्णुता, परदुःख-कातरता आदि उनके विशिष्ट उपादान थे। धर्म तो मालवीयजीका प्राण ही था—'धर्मो रक्षति रक्षितः' 'जो हठ राखे धर्मको तेहि राखे करतार'—इन्हें बड़ा ही प्यारा लगता था। लन्दनमें गोलमेज कांफ्रेंसके समय या देशभरमें अपनी अतिव्यस्त यात्राओंमें भी मालवीयजीने धर्मकी टेक न छोड़ी—यह उनके धर्मप्रेमका ज्वलन्त उदाहरण है। इस सम्बन्धमें वे गुरु गोविन्दसिंहके दो बच्चोंका उदाहरण बराबर देते थे। महाभारतकी कथामें द्रौपदीकी लाजरक्षाके तथा श्रीमद्भागवतके गजेन्द्र-उद्धारके कथा-प्रसङ्ग उन्हें विशेष प्रिय थे। महाभारत उनका परम प्रिय ग्रन्थ था, जिसे वे नियमित रूपसे पढ़ते। श्रीकृष्णके चरित्रकी उदात्तता मालवीयजीके जीवनमें ओतप्रोत थी। वे श्रीकृष्णकी ऐतिहासिकतापर विशेष बल देते और उनके आदर्श चरित्रके अनुकरणकी प्रेरणा देते थे।

मालवीयजीको धर्मके विषयमें लिखना बहुत भाता था, परंतु लिखनेमें उनके साथ एक कठिनाई थी कि एक ही वाक्यको बार-बार काटते, सुधारते, फिर लिखते, फिर सुधारते। जैसे अपने भावोंको व्यक्त करनेयोग्य सशक्त उपयुक्त भाषा ही उन्हें नहीं मिल रही हो। जब तार देना होता तो भी कभी-कभी देखा गया कि मजमून काफी लम्बा हो जाया करता और काफी काट-कूट होता और कभी-कभी तो तारघरसे आदमी बुलाकर फिर तारका मजमून सुधरवाया जाता। अक्षर वे बहुत पुष्ट सुन्दर लिखते। देशी फाउंटेन पेन और देशी स्याही ही उपयोगमें लाते। हर बातमें, छोटी-से-छोटी बातमें भी स्वदेशीका ध्यान रखते। १९०६ से जबसे अपने देशमें स्वदेशी आन्दोलन चला, मालवीयजीने भरसक कोई विदेशी वस्तुका शायद ही उपयोग किया हो।

विद्वानोंका आदर करना तो कोई उनसे सीखे। वे कहा करते थे कि 'विद्वान् रहते नहीं, रक्खे जाते हैं। जैसे बड़े नाजसे बुलबुल पाली जाती है, वैसे ही मनस्वी विद्वान् भी रक्खे जाते हैं।' मालवीयजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने संस्कृतके पण्डितोंको भी वही वेतन, मान एवं प्रतिष्ठा दी जो अंग्रेजीके विभिन्न विषयोंके विद्वानोंको मिलती थी। मालवीयजीके उठ जाने बाद वे विद्वान् निराधार हो गये। मालवीयजीके कुलपतित्वमें हिंदू-विश्वविद्यालयमें भारत क्या विश्वके एक-से-एक विद्वान् अत्यन्त अल्प पारिश्रमिक लेकर हिंदू-विश्वविद्यालयकी सेवा करनेके लिये जुट गये। विदेशोंसे आनेवालोंमें प्रिंसिपल किंग, प्रोफेसर कोलन, प्रो० निक्सन, प्रो० पूल आदिके नाम सदा स्मरण आते रहेंगे। मालवीयजीका त्याग और सेवा-भावनाके प्रतिफलित रूप थे आचार्य श्यामाचरण दे, जिन्हें पहले हमलोग 'डे साहब' और बादमें 'डे बाबा' कहने लगे थे। वे एक साथ विश्वविद्यालयमें गणित विभागके अध्यक्ष, सभी छात्रावासोंके मुख्य वार्डेन और विश्वविद्यालयके रजिष्ट्रार थे और यदि वे वेतन लेते तो कम-से-कम ढाई हजार रुपये मासिक होता, परंतु आजीवन कुल एक रुपया मासिक वेतन लेकर विश्वविद्यालयके सेवक-पदको गौरवान्वित करते रहे।

मालवीयजी सच्चे अर्थमें ब्राह्मण थे। गीतामें ब्राह्मणके स्वभावज जिन धर्मोंकी चर्चा है, मालवीयजीमें वे पूर्णतः परिव्याप्त थे—शम, दम, तपश्चर्या, पवित्रता, क्षमा, आर्जव, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

श्रीमती सरोजनी नायडूने एक जगह लिखा है कि 'अपने समयके सबसे महान् हिंदू और युगों-युगोंके समस्त महान् हिंदुओंमें अतिमहान् मालवीयजीका जीवन हिंदू-धर्मके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् सार्वभौमिक आदर्शोंका प्रतिबिम्ब है, जिनमें जाति और वर्गकी असमानता नहीं स्वीकार की जाती। प्रेम और करुणासे वे इतने भरे थे कि लगता कि वे सिरसे पैरतक हृदय-ही-हृदय थे। मालवीयजी महाराजके निधनपर गांधीजीने हरिजनके अग्रलेखमें लिखा था मालवीयजी नहीं रहे, मालवीयजी अमर हो—Malaviyaji is died, Long Live Malaviyaji. उन्हें बराबर गांधीजी 'भारत-भूषण' लिखते थे और अपनेको मालवीयजी-का पुजारी कहते थे। दोनोंका भ्रातृभाव संसारमें अमर है।

शिक्षाके क्षेत्रमें, देशके स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके क्षेत्रमें, राष्ट्रभाषा हिंदीके विकासक्षेत्रमें एवं राष्ट्रीयताको दृढ करनेके क्षेत्रमें मालवीयजीने अपने पावन चरित्र एवं देवोपम ब्रह्मप्रज्ञाद्वारा वह आदर्श उपस्थित किया है और अपने पीछे एक ऐसी स्मृति छोड़ गये हैं जो आनेवाले युगोंतक देश-वासियोंके हृदयमें चिरकालतक जीवित रहेगी। जबतक सनातन हिंदूधर्म है, हिंदुस्तान है, हिंदू-विश्वविद्यालय है, जबतक चन्द्रमा और सूर्य हैं, गङ्गा और यमुना हैं, तबतक पूज्य मालवीयजीकी अमल-धवल कीर्ति संसारमें अमर है। ऐसे सुकृती महापुरुषोंके यशःशरीरका कभी अन्त नहीं होता—वे संसारको सही मार्गपर चलानेके लिये ही आते हैं।

# द्वीपान्तर और भारतमें सांस्कृतिक सम्बन्ध

## [ शैवधर्मका प्रतिपादक बृहस्पतितत्त्व ]

( लेखिका—डॉ० सुदर्शना देवी सिंघल, डी० लिट्० )

द्वीपान्तर और भारतमें शताब्दियोंसे सम्पर्क रहा है। धर्म और संस्कृतिका सौख्यमय, आदरपूर्ण, भ्रातृत्व साहित्यमें प्रचुर मात्रामें विस्फुटित हुआ है। उच्च विचारोंकी अभिव्यक्ति, धर्म, नित्यप्रतिके विविध अनुष्ठान, पूजा सभी कुछ जावामें संस्कृतसे ओतप्रोत हैं। राजेन्द्र मूलवर्मा द्वारा किये जानेवाले राजसूय यज्ञके लिये निर्मित यूपपर पाँचवीं शताब्दिके पूर्वार्धमें लिखा गया यह शिलालेख द्वीपान्तरमें संस्कृतके स्थानका गौरवमय निदर्शन है—

**श्रीमतः श्रीनरेन्द्रस्य कुण्डङ्गस्य महात्मनः।**
**पुत्रोऽश्ववर्मा विख्यातो वंशकर्ता यथांशुमान्॥**
**तस्य पुत्रा महात्मानस्त्रयस्त्रय इवाग्नयः।**
**तेषां त्रयाणां प्रवरस्तपोबलदमान्वितः॥**
**श्रीमूलवर्मा राजेन्द्रो यष्ट्वा बहुसुवर्णकम्।**
**तस्य यज्ञस्य यूपोऽयं द्विजेन्द्रैस्संप्रकल्पितः॥**

६८२ शकसंवत् अर्थात् ७६० ई०में लिखित एक अन्य शिलालेख द्वीपान्तरमें ऋत्विग् और वेदविज्ञोंके कुशल हाथोंसे बनी मूर्तिकी प्रतिष्ठापनामें आज भी मानो पूजा और प्राण भर रहा है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ई-त्सिङ् द्वीपान्तरके श्रीविजयके राज्यमें ( ६७१ ई० ) ६ मासतक संस्कृत व्याकरणका अध्ययन करनेके पश्चात् १० वर्षतक विश्वविख्यात नालन्दा विश्वविद्यालयमें अध्ययन करते रहे। वहाँसे स्वदेश लौटते समय जावामें उन्होंने सात वर्षतक बौद्धदर्शनके मूल ग्रन्थोंका चीनीमें अनुवाद किया। यहींपर भारतीय बौद्धधर्म तथा अपनी यात्राका वर्णन लिखा। इसके अनुसार एक अन्य चीनी यात्री हुई निङ्ने विद्वान् पण्डित गुरु ज्ञानभद्रसे जावामें ३ वर्षतक शिक्षा पायी। बौद्धधर्ममें हीनयानकी मूलसर्वास्तिवादिन् शाखाके अध्ययन-अध्यापनका जावा मुख्य केन्द्र रह चुका है।

भाषाके लिये व्याकरण अत्यावश्यक है। व्याकरण साहित्यके षडङ्गोंमेंसे है। जावामें भी संस्कृत भाषाको सीखनेके लिये अनेक व्याकरण-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी गयीं। 'स्वर-व्यञ्जन' शीर्षकके व्याकरणके अन्तर्गत स्वरोंका एकमात्र, द्विमात्र अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतका वर्गीकरण, मूर्धन्य, तालव्य, दन्त्य, अल्पप्राण, घोष आदिका वर्णन करते हुए स्वरसन्धि, व्यञ्जनसन्धि और विसर्गसन्धियोंको उदाहरणोंद्वारा स्पष्ट किया गया है। कविभाषामें भी इन सन्धियोंका यत्र-तत्र प्रयोग दिखायी देता है। 'कारकसंग्रह' नामक ग्रन्थका प्रारम्भ पाठकोंके लिये रुचिकर होगा—'यत् कृतं कर्म तत्प्रोक्तं स कर्ता यः करोति वा।' एक अन्य व्याकरण-ग्रन्थ 'कृतभाषा' संस्कृतभाषाका अपभ्रंश है। इसमें सूचियाँ दी हुई हैं। पशुओंके नाम, देवोंके विभिन्न नाम ( उदाहरणार्थ इन्द्रके ५९ नाम, अग्निके ३१ नाम, चन्द्रमाके ४८ नाम ),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् पण्डितोंके ५९ नाम आदि-आदि। अन्तमें धातुओंके रूप चलाये गये हैं। 'तिष्ठति तिष्ठतः तिष्ठन्ति' ···।' 'चण्डकिरण' नामक हस्तलेख भारतीय कोष-परम्पराका अनुसरण करता है। विभिन्न समानार्थ शब्दोंका यह श्लोकोंमें कोष है। संस्कृत श्लोकोंकी जावीमें व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण किया गया है। इसका आरम्भ देव शब्दके पर्यायोंसे होता है। देवताके लिये 'सुधाशिन्' का प्रयोग उल्लेखनीय है। ततः शिव अर्थात् भटार गुरुके विविध नामोंकी गणना कर, भटार ब्रह्माके नाम दिये गये । तत्पश्चात् सामान्य विषय यथा—पशु, पक्षी, शरीराङ्ग, गृह आदि शब्दोंके विविध पर्याय हैं।

'वृत्तसंचय' छन्दोंपर प्रसिद्ध ग्रन्थ है। संस्कृतके प्रसिद्ध छन्दोंमें कविभाषाके अनेक काव्योंके सुमधुर ललित पदोंकी रचना की गयी है। द्वीपान्तरके लोकप्रिय काव्य 'अर्जुनविवाह' में शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, शिखरिणी, स्रग्धरा आदि छन्दोंका निर्बाध सुचारु प्रयोग है। छन्दशास्त्रपर 'वृत्तसंचय'के अतिरिक्त 'वृत्तायन', 'वृषभगतिविलसित', 'मणिगुणनिकर' आदि अनेकों ग्रन्थ हैं, जिनका अभीतक समुचित सम्पादन नहीं हुआ है।

द्वीपान्तरमें नित्यप्रतिके जीवनमें प्रयुक्त स्तव विष्णु, शिव, सूर्य, श्रीदेवी, सरस्वती, वायु, यम, उमा, गङ्गा आदिकी स्तुतियोंसे अनुप्राणित हैं। 'पञ्चदशरसस्तुति' १५ वज्रदेवताओंको सम्बोधित बौद्ध तान्त्रिक मन्त्र है। 'बुद्धवेद' शीर्षकका ग्रन्थ नेपालके अति प्रसिद्ध पञ्चबुद्धस्तव और महाभयस्तवसे मिलता-जुलता है। 'सध्यपूजा' प्रतिदिनके पूजा-स्तवका नाम है। ओं क्षमस्व··से प्रारम्भ होनेवाली यह पूजा बालि द्वीपके पण्डितोंमें बहुत प्रिय और प्रचलित है—

ओं क्षमस्व मां महादेव सर्वप्राणिहितंकर।
मां मोचय सर्वपापेभ्यः पालयस्व सदाशिव॥
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां सर्वपापेभ्यः केनचिन्मम रक्षतु॥
क्षन्तव्याः कायिका दोषाः क्षन्तव्या वाचिका मम।
क्षन्तव्या मानसा दोषास्तत्प्रमादं क्षमस्व माम्॥
हीनाक्षरं हीनपादं हीनमन्त्रं तथैव च।
हीनभक्तिं हीनविधिं सदाशिव नमोऽस्तु ते॥
ओं मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं महेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

मन्त्रोंमें बीजोंका प्रयोग बहुत अधिक है। नवशक्तिपूजा 'र' बीजपर आधृत है। कूटमन्त्र, गर्भमन्त्र, अष्टग्रह, सर्वोकार आदिमें शीर्षकोंसे ही उनमें बीजोंके प्रयोगका पाठक अनुमान लगा सकते हैं। केवल पूजास्तव और तान्त्रिक-मन्त्र ही नहीं, गायत्रीन्यासमें गायत्रीमन्त्र पाठकोंके लिये रुचिकर होगा—

तत्सवितुर् ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः।
वरेण्यं विष्ण्वात्मने शिरसे स्वाहा।
भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै वषट्।
धीमहि परमात्मने कवचाय हुं।
धियो यो नः ज्ञानात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।
प्रचोदयात् सत्यात्मनेऽस्त्राय फट्।

रामायण, महाभारत, पुराण (यथा ब्रह्माण्डपुराण) द्वीपान्तरके जीवनके अङ्ग हैं। उनके रात्रिभर होनेवाले रामायण, महाभारतपर आधृत छायानाटक वायाङ् केवल मनोरञ्जन ही नहीं, शिक्षा और अध्यात्मके स्रोत भी हैं। रामायण और महाभारतका प्रत्येक पात्र किसी विशेष आदर्श-का प्रतीक है। जीवनके उभय—अच्छे और बुरे पक्ष और अन्तमें अच्छे पक्षकी विजय, सत्की असत्पर विजय, दर्शकके हृदय और मनको सत्कर्मकी ओर प्रवृत्त करती है।

दर्शनशास्त्र विचारका सर्वोच्च अङ्ग है। द्वीपान्तरमें मुख्यतया बौद्ध और शैव धर्म और दर्शन दोनों ही रूपोंमें प्रमुख रहे हैं। अनेक बौद्ध और शैव ग्रन्थोंके जावी संस्करणोंद्वारा इन धर्मोंका प्रचार और पोषण शताब्दियों तक होता रहा है। बौद्ध विचारधाराका प्रमुख ग्रन्थ 'सं ह्यंकमहायानिकन्' कहलाता है। शैवधर्मपर ११ अध्यायोंमें बृहद् ग्रन्थ 'भुवनकोष' है। 'भुवन संक्षेप'में भुवनके ज्ञानका अर्थात् सृष्टिका संक्षिप्त ज्ञान है। 'तत्त्व सं ह्यं महाज्ञान' शैवज्ञानके तत्त्वोंकी विशद व्याख्या करनेवाला ग्रन्थ है। इनमें आरम्भमें संस्कृत श्लोक और तत्पश्चात् उसकी व्याख्या कविभाषामें करते हुए दर्शनको जनजीवन तक पहुँचानेका प्रयत्न किया गया है।

शैवधर्म और दर्शनके अनेकों हस्तलेख उपलब्ध हैं। अभी इनका सम्पादन शेष है। सम्पादित ग्रन्थ 'बृहस्पति-तत्त्व' शैवदर्शनका प्रतिनिधि ग्रन्थ है। 'बृहस्पतितत्त्व'में भटार ईश्वर देवगुरु बृहस्पतिको उपदेशके रूपमें विभिन्न तत्त्वों, सृष्टिक्रम, मोक्षके विभिन्न उपायों, योग, अष्टैश्वर्य आदि विषयोंपर क्रमबद्ध चर्चा की गयी है। इसके सात हस्तलेख हैं। एक आचार्य श्रीरघुवीरजीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था 'सरस्वती विहार'में है। उपसंहारके अनुसार १८७५ शकवर्षमें कृष्णपक्षकी तृतीयाको इसका लिखना समाप्त हुआ। १९ लम्बे ताडपत्रपर बलि लिपिमें लिखा गया ४४ पत्रोंका यह ग्रन्थ है। प्रत्येक पृष्ठपर चार पंक्तियाँ हैं। दूसरा हस्तलेख १६७० शकवर्ष, आषाढ़मास, नवमी कृष्ण-पक्षको बलिद्वीपस्थित कडिसाम्लदेशमें लिखा गया है। तीसरा ७० पत्रोंका सुस्पष्ट, १७६६ शकवर्षका हस्तलेख है। यह हॉलैण्डके लाइडन् विश्वविद्यालयमें सुरक्षित है। चौथा और पाँचवाँ इंडोनेशियाके कीर्त्या विश्वविद्यालयमें है। इनमें उपसंहार नहीं है। छठा हस्तलेख लाइडन् विश्वविद्यालयमें है। इसकी तिथि चन्द्रसंकालमें दी हुई १७५५ शक है। इसका उपसंहार संस्कृत श्लोक और उसकी विस्तृत जावी टीकासे किया गया है। इसका अन्त सहसा हो जाता है। सातवाँ हस्तलेख १०१ पृष्ठोंका सुन्दररूपेण लिखित पत्र-हस्तलेख है। यह तीसरे हस्तलेखकी ही प्रति है। परंतु फिर भी अनेक स्थानोंपर पाठभेद हैं।

अन्य दार्शनिक ग्रन्थोंके समान ही प्रारम्भमें संस्कृत श्लोक और तत्पश्चात् कवि टीकामें लम्बा स्पष्टीकरण है। कहीं टीका केवल श्लोकका अर्थमात्र देती है—यथा सातसे लेकर १० तकके श्लोक और ५३ से ५९ तक षडङ्गयोगके श्लोक। प्रायः टीका विस्तृत है—केवल अर्थकी दृष्टिसे ही नहीं, विषयकी दृष्टिसे भी। श्लोक ३३ विशेष उल्लेखनीय है। श्लोकमें केवल अष्टसिद्धियाँ गिनायी गयी हैं। परंतु टीका एक कण्डिकामें उनका वर्णन कर मुख्यतः सृष्टिकी उत्पत्ति और क्रमका वर्णन करती है। श्लोक ४७में पञ्चपदों—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य, तुर्यातीतका वर्णन है, किंतु टीकामें इनकी दार्शनिक विस्तृत विवेचना भी है। ८०वें श्लोकमें शिवद्वारा की गयी बृहस्पतिकी प्रशंसा है—जब कि जावी टीकामें उस प्रशंसाका निर्देश किये बिना ही बृहस्पतिके चेतनाचेतन-सम्बन्धी संदेहोंका शिवद्वारा निराकरण है।

ग्रन्थके अधिक प्रयोग होनेसे यद्यपि श्लोकोंकी संस्कृत विकृत हो चुकी है। परंतु फिर भी संस्कृतके विशाल दार्शनिक साहित्यसे कुछ उद्धरण इकट्ठे कर उन्हें यथा-शक्ति शुद्ध करनेका प्रयत्न किया है। कई बार टीका सहायक होती है और कई बार नहीं। ग्रन्थकी शैलीमें कहीं-कहीं संस्कृत टीकाओंकी शैलीकी झलक दिखायी देती है। बृहस्पतिका प्रश्न करना और शिवका उत्तर देना, यह संस्कृत परम्परानुगत ही है। प्रायः यह शैवागमोंकी परम्परा है। जहाँ पार्वती प्रश्न करती हैं और भटार शिव ज्ञानमय उपदेश देते हैं। अथवा गण, ऋषि आदि प्रश्न करते हैं। द्वीपान्तरके एक अन्य शैवतान्त्रिक ग्रन्थ 'गणपतितत्त्व'की भी यही शैली है। प्रश्नकर्ता यहाँ गणपति हैं। ॐ प्रणवज्ञान ही महाज्ञान है। इसीमें उत्पत्ति, स्थिति और प्रलीन है। जन्म और भुवनका रहस्य मूलतः एकाक्षर ( अकार ) में संनिहित है। ओंकारसे उद्धृत स्वर-व्यञ्जनोंमें मानवके शरीराङ्गोंका रहस्य छिपा है। 'नमः शिवाय'का पञ्चाक्षरमन्त्र जप्य मन्त्र है।

बृहस्पतितत्त्वके प्रारम्भमें तीन भिन्न शैवमतोंका उल्लेख है—शैव, पाशुपत और अलेपक। बृहस्पतितत्त्वमें शैवमतका प्रतिपादन किया गया है। चौथे हस्तलेखमें बृहस्पतितत्त्वका दूसरा नाम 'शिवतत्त्व' भी दिया गया है। शैव और पाशुपत सर्वदर्शनसंग्रहमें उद्धृत हैं। पर 'अलेपक' शब्द तक किसी संस्कृतके कोषमें नहीं मिला। अलेपकका अर्थ है—निर्लेप। काश्मीर शैव-दर्शनके प्रसिद्ध ग्रन्थ तन्त्रालोकके १३वें पटल-के ३०५वें श्लोकमें भैरवोंके अन्तर्गत 'वैमल' शैव है। समानार्थताके आधारपर सम्भवतः यह कहना अनुपयुक्त न हो कि हमारे 'अपेलक'का तात्पर्य वैमलोंसे हो सकता है।

ग्रन्थके दर्शनका आरम्भ इस प्रकार है—

भिन्न प्रकारके शास्त्र हैं। उनमें भिन्न प्रकारके मोक्ष-मार्गोंका उल्लेख है। इसका क्या कारण है। इसका कारण मनुष्यकी विभिन्न योनियाँ हैं। पुनर्जन्मका कारण वासनाएँ हैं—जो अच्छे-बुरे कर्मोंको करनेके लिये प्रेरित करती हैं। इन कर्मवासनाओंसे रञ्जित आत्मा विभिन्न योनियोंके चक्करमें फँसी रहती है। पिछले जन्ममें किये गये कर्म वासनाओंके कारण हैं और वासना कर्मका। ये कर्म मनुष्य सतत करता चला जाता है। यदि उसके इस संसारमें किये गये कर्म अच्छे हैं तो वह स्वर्गमें जन्म लेकर सुख भोगता है और यदि उसके कर्म बुरे हैं तो वह नरकके दुःखोंका भागी बनता है। संस्कृतमें यह सामान्य विचार है—

> कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमिरतः परा।
> इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते॥

कर्मफल समाप्त होनेपर वह पशु बन जाता है और सत्कर्मी कर्मफल समाप्त होनेपर राजा अथवा अत्यन्त धनी। उसे उच्चतम ज्ञानका आभास होता है। वह 'वस्तु'को देखता है। उसमें संवेग उत्पन्न होता है। वह ईश्वरभक्ति चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्में उसकी भक्ति होनेके कारण और उसपर भगवत्कृपा होनेके कारण वह जन्मावस्था, पुनर्जन्म, सुख-दुःखको देखता है। वह शान्ति चाहता है और उपदेश पानेके लिये विद्वान् ज्ञानीके पास जाता है। परंतु तत्त्व ज्ञान बहुत गुह्य और विशेष है। अतः उसकी विभिन्न प्रकारसे व्याख्याएँ की गयी हैं। यही शास्त्रोंकी विविधताका कारण है।

सभी शास्त्र शिवद्वारा उत्कृष्टरूपेण उपदिष्ट हैं। केवल भ्रान्त ज्ञानके कारण ही मनुष्य उनमें भेद किया करते हैं। बृहस्पतिका भ्रान्त ज्ञान क्या है? पूछनेपर संस्कृत साहित्यमें, अन्धगजन्याय नामसे कथित 'हाथी और अन्धों'की कथाके दृष्टान्तसे भ्रान्त ज्ञानका स्पष्टीकरण शिवजी करते हैं। जिस प्रकार अन्धे लोग हाथीके वास्तविक आकारका अपने अल्प ज्ञानके अनुसार पृथक्-पृथक् वर्णन करते हैं और साथ ही उसे ही सत्य समझनेकी भूल करते हैं, उसी प्रकार व्यामोहमें पड़ा मानव भी वास्तविक तत्त्वको नहीं समझ पाता है। हाथीके पावँ, पूँछ, पेट, कान आदि अंग शास्त्र हैं। यद्यपि इन सबमें विशेष ( हाथीका अंगी ) लक्षण विद्यमान है, पर ये बहुत हैं। यही भ्रान्त-ज्ञानका कारण है। वास्तविक ज्ञान ( विशेषज्ञान ) को पानेके लिये विभिन्न मतों और शास्त्रोंका परिशीलन अत्यन्त आवश्यक है। हाथी और अन्धोंकी यह कथा भारतीय दर्शन शास्त्रोंमें, जैन-दर्शन और बौद्ध-दर्शनमें भी मिलती है। पालिकी उदानकी कथासे 'बृहस्पतितत्त्व'की कथाका पर्याप्त सामञ्जस्य है। यह रोचक दृष्टान्त भोट ( तिब्बत ) चीन और जापानमें उपलब्ध है।

इस छोटी-सी भूमिकामें ज्ञानके कारणका उल्लेखकर छठे श्लोकसे शैवदर्शनका प्रारम्भ होता है। सर्वतत्त्वोंमें सूक्ष्म दो परम तत्त्व हैं—चेतन और अचेतन।

द्विविधं तत्त्वं परमं चेतनमचेतनं च।
व्याप्नोति सर्वतत्त्वेषु सूक्ष्ममुन्नेयं यत्नतः॥
( बृहस्पति० श्लोक ६ )

चेतनके तीन प्रकार हैं—शिवतत्त्व, सदाशिवतत्त्व और परमशिवतत्त्व। अचेतनतत्त्व माया-तत्त्व है। इन दोनोंके संयोगसे सर्वतत्त्वोंकी उत्पत्तिका क्रम है। शिवतत्त्व, सदाशिवतत्त्व और परमशिवतत्त्वके सर्वज्ञत्व, विभुत्व, उत्पादक, नाशक, पालक आदि गुणों और विशेषणोंका उल्लेख करते हुए परमेश्वर शिवसे जगत्की ओतप्रोतताका वर्णन है। जिस प्रकार एक सूत्रमें मणियाँ पिरोयी हुई हैं, उसी प्रकार विश्वकी विभिन्न वस्तुएँ उसी एक ईश्वरमें प्रोत हैं। वह शिव मन्त्रात्मा हैं। दूरश्रवण, दूरसर्वज्ञ और दूरदर्शन उसके गुण हैं। अणिमा, लघिमा आदि अष्टैश्वर्य हैं। इस सदाशिवतत्त्वके नीचे मायाशिरस्तत्त्व है, जिसका स्थान अष्टविद्यासन अर्थात्, अनन्त, सूक्ष्म, शिवतम, एकरुद्र, एकनेत्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी है। संस्कृतमें ये अष्टविद्यासन 'अष्टविद्येश्वर' कहलाते हैं। मायाशिरस्तत्त्वके नीचे मायातत्त्व है। यह जड, अचेतन और शून्य है। शिवतत्त्वसे ओतप्रोत होनेपर यह चेतन ( अर्थात् सक्रिय ) हो जाता है और शिवतत्त्व इसके संयोगसे सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्वमय आदि स्वतःके गुणोंको भूल जाता है।

इस अवस्थामें शिवतत्त्व आत्मा कहलाता है। आत्मा-तत्त्व असंख्य हैं ( क्योंकि आत्माएँ अनेक हैं ) मायातत्त्वकी उपमा मधुमक्खियोंके छत्तेसे दी गयी है। आत्मा मधुमक्खियोंके बच्चे हैं, जो 'अधोमुख' हैं, इसलिये वे उन तत्त्वोंको नहीं देख पाते जो उनसे ऊपर हैं। शिवकी शक्तिसे मायातत्त्व सक्रिय हो उठता है और प्रधानतत्त्व उत्पन्न होता है। अचेतन प्रधानतत्त्वके प्रभावसे आत्मातत्त्व भी अचेतन हो जाता है। ईश्वरकी क्रियाशक्तिसे प्रेरित प्रधानतत्त्व त्रिगुणतत्त्वको उत्पन्न करता है। सत्त्व, रजः, तमः—ये त्रिगुण हैं।

बृहस्पतितत्त्वमें त्रिगुणोंका विशिष्ट वर्गीकरण मिलता है। इनकी सांख्यके समान ही सामान्य और प्रचलित व्याख्या करनेके पश्चात् सात्त्विक चित्त, अत्यन्त सात्त्विक चित्त, ( उसके लक्षण और फल ) तत्पश्चात् सात्त्विक और राजस एवं [illegible]विक, राजस और तामस चित्तका वर्गीकरण है। रजःमें राजस चित्त, अत्यन्त राजस और तममें तामस और अत्यन्त तामस चित्त हैं। सत्त्वका यह शुद्ध और मिश्र वर्गीकरण वेदान्तकारिकावलि १००१-२ से स्पष्ट हो जाता है—

शुद्धसत्त्वं मिश्रसत्त्वमिति सत्त्वं द्विधा मतम्॥ १॥
रजस्तमोभ्यामस्पृष्टमद्रव्यं पूर्वमुच्यते।
रजस्तमोविमिश्रं तु मिश्रसत्त्वं प्रकीर्तितम्॥ २॥

अत्यन्त सात्त्विक चित्तसे मोक्ष अवश्यंभावी है। श्रीमद्भगवद्गीता ( १४।१४ ) का यह श्लोक पुष्टिके लिये पर्याप्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥

इन तीन गुणोंसे बुद्धि उत्पन्न होती है । बुद्धिके चार धर्म हैं । धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और चार इनके विपरीत धर्म अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य हैं । 'बृहस्पतितत्त्व' में श्लोक २५ से ३२ तक इनकी व्याख्या और चर्चा की गयी है । धर्मकी व्याख्या काश्मीरके शैवग्रन्थ स्वच्छन्दतन्त्र और सांख्यकारिकापर माठराचार्यकी टीकासे बहुत भिन्न हैं । ज्ञानसे तात्पर्य सांख्यके प्रसिद्ध तीन प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमसे है—

प्रत्यक्षमनुमानं च कृतान्ताद्वचनागमः ।
प्रमाणं त्रिविधं प्रोक्तं तत्सम्यग्ज्ञानमुत्तमम् ॥
( बृहस्पति० २६ )

वैराग्यकी व्याख्या योगसूत्र ( १।१५ ) के बहुत समीप है—

'दृष्टानुश्राविते भोगे सुखे देहे विरागिता'
( बृहस्पति० २७ )

योगसूत्रमें 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्' ऐश्वर्यकी व्याख्या 'स्वच्छन्दतन्त्र' के बहुत समीप है। सांख्य सर्वथा भिन्न है । माठराचार्यकी वृत्तिके अनुसार ऐश्वर्यका अर्थ अष्ट सिद्धियाँ हैं जब कि हमारा तात्पर्य भोग, उपभोग और परिभोगसे वैरस्य है । ( शेष आगे )

---

# तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

## [ कहानी ]

( लेखक—श्री'चक्र' )

'मुझे खेद है कि मैं आपका मुकद्दमा नहीं ले सकता !' बड़ी शान्तिसे एडवोकेट मिश्रने कहा और सामने मेजपर रक्खी फाइलको रखनेवालेकी ओर खिसका दिया ।

'आप एक बार कागज देख लें !' अनुनय की गयी और साथ ही जेबसे नोट निकाले गये—'आपकी फीस मैं अभी दे दूँगा । मुझे आपपर विश्वास है, इसलिये मैं सीधा आपके पास आया और आप मेरे पुराने वकील हैं ।'

'आपकी बात ठीक है । मैं आपको पत्र दे देता हूँ । आप ठक्करके यहाँ चले जाइये । वे अच्छे वकील हैं और मेरे मित्र हैं । आपसे उचित पारिश्रमिक ही लेंगे ।' मिश्रजीने कलम उठायी—'आप जानते ही हैं कि मैं अपनी आवश्यकता पूरी हो, महीनेमें उतने ही मुकद्दमे लेता हूँ । इस महीनेके पहिले सप्ताहमें ही वह पूरी हो गयी ।'

अद्भुत व्यक्ति हैं ये मिश्रजी भी । संसारमें सभी प्रकारके मनुष्य हैं । उन्हींमें इनकी भी एक अलग खोपड़ी है । नहीं तो, कोई वकील घर आयी फीस लौटाता है ? किंतु मिश्र हैं कि एक सीमा अपने उपार्जनकी इन्होंने बना ली है । उतना मिल गया तो फिर उस महीने नया मुकद्दमा हाथमें नहीं लेंगे । पुरानोंमें भी चाहेंगे कि कम दौड़-धूप करनी पड़े । वैसे भी झूठे पक्षका समर्थन करने खड़े नहीं होंगे । चलते मुकद्दमेको कई बार बीचमें छोड़ दिया; क्योंकि पता लगा कि उन्हें जो कुछ बताया गया, वह ठीक नहीं था ।

मिश्र प्रतिभाशाली हैं और सच्चाईका पक्ष लेते हैं । फीस अनेक बार नहीं भी लेते, यदि व्यक्ति अधिक संकटमें हुआ और धनहीन हुआ । फलतः न्यायालयमें उनका सम्मान है । न्यायाधीश उनकी बातको महत्त्व देते हैं । लोग उत्सुक रहते हैं कि मिश्रजी उनका मुकद्दमा देखें ।

'आप न्यायालय प्रतिदिन आते ही हैं । बिना फीसवाले मुकद्दमे भी देखते हैं । फिर रुपये क्या काटते हैं आपको ? जो आपको ही मुकद्दमा देना चाहते हैं, उन्हें आप क्यों निराश करते हैं, जब कि आपके पास समय होता है ।' उस दिन शामको ठक्करने ही पूछा था । मिश्रजीके वे मित्र हैं और मिश्रजी प्रायः उनके पास मुकद्दमे भेज दिया करते हैं ।

'न्यायालय तो मैं जाता हूँ सीखने !' मिश्रजीकी यह बात आपको स्वीकार करनी होगी। 'वकीलके लिये आवश्यक है कि वह अध्ययन करता रहे तथा जटिल मुकद्दमोंकी पैरवी-बहस देखता रहे । पेटके लिये तो परिश्रम करना ही पड़ता है । जो असमर्थ हैं, उनकी थोड़ी सहायता अवकाशके क्षणोंमें कर देना कोई बुराई तो है नहीं । किंतु मैं मानता हूँ कि आवश्यकतासे अधिक धनोपार्जन सचमुच काट लेता है ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'धन काट लेता है?' ठक्कर गम्भीर हो गये—'यह आपकी बात समझमें नहीं आयी।'

रुपये भी किसीको काटते होंगे, मिश्रजीकी यह बात आपकी समझमें आती है क्या? मैं इसीसे उन्हें अद्भुत खोपड़ी कहता हूँ।

'वे शरीरको कुत्तेकी भाँति या चाकूके समान तो नहीं काटते; किंतु'—मिश्रजी गम्भीर ही बने रहे—'वे स्वास्थ्य, आचरण, समय, संयम अथवा नम्रताको अवश्य काट लेते हैं और मैं इनकी क्षति शारीरिक क्षतिसे अधिक मानता हूँ।'

'अब आप पहेली मत समझाइये।' ठक्करने हँसते हुए कहा। लेकिन बात समझने योग्य है, यह उन्हें प्रतीत हो गया था। इसलिये अपनी कुर्सीपर वे अधिक स्थिर होकर बैठ गये।

'उपयोगसे अधिक धन होगा तो उपभोग अधिक करनेकी सूझेगी।' मिश्रजीने बताया—'विलासिता बढ़ेगी। आलस्य बढ़ेगा। कहीं मन सावधान न रहा तो संयम, सदाचारपर विपत्ति आयेगी। यह न भी हो तो भी प्रमादमें समय जायगा और भोगमें रोग तो रक्खे ही रहते हैं।'

'कुछ संतानके लिये संग्रह करो और शेष लोकोपकारमें लगा दो। दान भी तो धर्म ही है।' ठक्करने साधारण स्वरमें ही कहा; क्योंकि मिश्रजीने यह बात सोची ही नहीं होगी, यह आशा कोई कैसे कर सकता है?

'संतानें अपना प्रारब्ध लेकर आती हैं और उन्हें वह अपना प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है। पैतृक सम्पत्ति पाकर कितने युवक सुपथपर रह पाते हैं, यह आप जानते हैं।' मिश्रजीने कहा—'समर्थ होनेतक मैं संततिका पालन-रक्षण और शिक्षण कर्तव्य मानता हूँ; किंतु उनके लिये धन-संचय मोहके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'

'लोकोपकार—दान?' ठक्करने जिज्ञासा की।

'अधर्मसे धर्म नहीं होता और लोभ अधर्म है।' मिश्रजी कह रहे थे—'जितना उपलब्ध है, उसीकी सीमामें धर्म करना तो मनुष्यका कर्तव्य है; किंतु अधिक संग्रह करके दान—लोकोपकार केवल अभिमान है। यशेच्छा अथवा अहंकारकी यह प्रेरणा है। अन्यथा लोकोंका जिन्होंने निर्माण किया, उन विश्वम्भरके रहते मनुष्य क्या लोकोपकार करेगा? उन सर्वेश्वरको किसीकी दया अथवा सहायताकी क्या अपेक्षा है?'

× × ×

'भाई ठक्कर! सुना कि तुम्हारे यहाँ चोरी हो गयी रातको!' मिश्रजीने न्यायालयके पुस्तकालयमें ठक्करके समीप बैठते हुए पूछा—'मैं यदि कुछ सहायता कर सकूँ, संकोच मत करो सूचित करनेमें।'

'कोई बड़ी हानि नहीं हुई है'—ठक्करने हँसकर परिस्थितिके क्लेशदायक वातावरणको हल्का किया—'किंतु सुनते हैं कि ईमानदारीकी कमाई नष्ट नहीं होती और मैंने कोई बेईमानी की हो, स्मरण नहीं आता।'

'सो तो मैं स्मरण दिला सकता हूँ।' मिश्रजी भी मुस्कराये—'हमारे उपार्जनमें धर्मका भी भाग है और उसे तुम पूरा न सही, बहुत कुछ पचा लेते हो।'

'बात चल ही पड़ी है तो आज अपने व्ययका आदर्श तो बता दो।' ठक्करने पूछा—'सम्भव है, वह मेरे भी कुछ काम आ जाये।'

'सबके लिये कोई सामान्य आदर्श बना देना कठिन है। अपनी परिस्थितिके अनुसार सबको अपना बजट बनाना पड़ता है; किंतु आय कर देकर जो बचे उसका दस प्रतिशत धर्मका है, यह मैं मानता हूँ। उसे दान कर देना चाहिये।' मिश्रजीने बताया।

'उससे तीर्थाटन, यज्ञ, श्राद्धादि कर दिया जा सकता है?' ठक्करने स्पष्टीकरण चाहा।

'तीर्थाटन, यज्ञ, श्राद्ध आदि कर्तव्य हैं अथवा पारलौकिक उपार्जन!' मिश्रजीने कहा—'वे अपने भागसे सम्पन्न होने चाहिये। धर्मके सत्त्वको तो परोपकारमें ही लगाना ठीक है।'

'अपना पूरा बजट तो बताओ!' ठक्कर और मिश्रजीमें इतनी आत्मीयता है कि वे एक दूसरेको 'आप' सम्बोधित करना आवश्यक नहीं मानते।

'४० प्रतिशत भोजन व्यय, ५ प्रतिशत वस्त्रोंके लिये और ५ प्रतिशत स्वच्छताके लिये।' मिश्रजीने अपना बजट सुनाया—'१० प्रतिशत सेवकको, स्वयंकी शिक्षा तथा मनोरंजनपर ५ प्रतिशत, इतना ही पत्नीको निजी प्रसाधनादिके लिये तथा इतना ही चिकित्साके लिये, बच्चोंकी शिक्षापर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साढ़े सात प्रतिशत, ढाई प्रतिशत उनको मनोरंजनार्थ । शेष ५ प्रतिशत आकस्मिक विपत्तिमें काम आनेको सुरक्षित करता जाता हूँ । इसीमेंसे जो बच रहेंगे, उसे संतानोंके लिये छोड़ जाना मैं पर्याप्त मानता हूँ ।'

× × ×

धनकी तीन गति है—दान, भोग और नाश । ठक्कर फिर सायंकाल मिश्रजीके समीप आ बैठे थे । दोपहरमें वे न्यायालयके पुस्तकालयसे उठ गये थे एक मुकदमा देखने; किंतु उसी समय शामको मिश्रजीसे मिलनेका कार्यक्रम बन गया था । अब आते ही उन्होंने वही चर्चा उठायी—'नाश किसीको पसंद नहीं; किंतु लोभवश संग्रह सभी करते हैं । यह लोभ ही नाशको निमन्त्रित करता है, इतना मैं जानता हूँ ।'

'भोग या तो धर्मानुकूल होगा अथवा अधर्म । और अधर्म हुआ तो वह महानाश है । लोकमें धन, स्वास्थ्य, कीर्तिका नाश और परलोककी बात आप जानते ही हैं ।' मिश्रजीने कहा—'अतः धनके भोगका अर्थ है—'धर्मसम्मत भोग ।' सीमित आवश्यक जीवन-निर्वाह । इसे आप मान लेंगे ।'

'मान लेना ही चाहिये मुझे ।' ठक्करने पर्याप्त गम्भीर होकर कहा—'और तब दानके अतिरिक्त उपार्जनकी मेरी अपनी सनकका उपयोग नहीं है ।'

'हिंदूके लिये जो दिनचर्या आह्निक सूत्रोंने दी है, उसमें दिन-रातमें केवल एक प्रहर उपार्जनके लिये रक्खा गया है । आजके वातावरणमें—वर्तमान सामाजिक स्थितिमें यह शक्य नहीं है; किंतु उपार्जनकी सनकका उपयोग कुछ नहीं है । वह केवल लोभ है ।' मिश्रजीने बात पूरी की ।

ठक्कर बोले नहीं । दानके सम्बन्धमें उनके मनमें निष्ठा है । अपनी आयका अधिकांश वे सामाजिक कार्योंमें व्यय कर देते हैं । कलियुगमें धर्मका एक ही चरण तो बचा है—दान । उनके मनपर दृढ़ संस्कार है—'येन-केन बिधि दीन्हें, दान करइ कल्यान ।'

'दान यदि अहंकारका पोषण न करे, उसमें यशेच्छा न हो और मैं दाता—दूसरे गृहीता दरिद्र, मैं दयालु, दूसरे दयाके पात्र—यह भावना न आवे, तो दान परम धर्म है ।' मिश्रजी नहीं चाहते ठक्करको हताश करना । 'लेकिन 'त्यागपूर्वक भोग' ऋषियोंने आदर्श माना है । उपार्जनका उद्देश्य भोग है और भोग तब पवित्र होता है, जब उपार्जन पवित्र हो तथा उसका आवश्यक अंश त्याग-दानमें लग चुका हो । भोग भी त्यागके लिये—संयमके लिये हो । त्यागके लिये उपार्जनकी बात तो तब बने, जब कर्तृत्वका अहंकार अभीष्ट न हो । लोक परमात्माका । हमारे किये लोकोपकार होता कहाँ है । हम जो त्याग-दान करते हैं, अपनी शुद्धिके लिये । प्रभुकी कृपा कि हमें वे ऐसा अवसर देते हैं ।'

'अहंकार न आवे, यह प्रयत्न करता हूँ ।' ठक्करने शान्त भावसे कहा ।

'सो मैं जानता हूँ ।' मिश्रजी बोले—'धनमें गौरव-बुद्धि है, उपार्जनमें महत्ता लगती है और उसके बिना अपनेमें हीनत्वकी भावना आती है, तबतक आपका ही मार्ग ठीक है । जो आवे उसे सेवामें लगा दिया जाय । धर्म पुष्ट होता रहेगा तो चित्तशुद्धि होगी ।'

'और चित्त-शुद्धि होगी तो ?' ठक्करको लगा कि बात यहीं समाप्त हुई तो वह अपूर्ण रह जायगी ।

'परम पुरुषार्थ धर्म नहीं है, मोक्ष है और वह निवृत्ति-साध्य है ।' लगभग सूत्र सुना दिया मिश्रजीने—'इसीलिये त्यागपूर्वक भोग—त्यागके लिये भी प्रवृत्ति इष्ट नहीं है मन्त्र-द्रष्टा ऋषिको ।'

---

## सहायताको सीधे भगवान्से आने दो

**दूसरोंकी सहायता करनेकी कामनाके चक्करमें मत पड़ो—तुम स्वयं आन्तरिक साम्यावस्थामें रहते हुए वही करो अथवा बोलो जो उचित हो और सहायताको सीधे भगवान्से ही उनके पास आने दो। एकमात्र भगवत्कृपाको छोड़कर दूसरा कोई वास्तवमें मदद नहीं कर सकता ।**

—श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शिक्षा-प्राप्तिके बाधक और साधक कारण

( लेखक—श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा )

मानवके निर्माणमें शिक्षाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जन्मसे ही कोई प्राणी संसार-व्यवहारकी कलामें निपुण नहीं होता, एवं जीवनकी सार्थकता एवं निरर्थकताको ही वह नहीं जानता है, पर क्रमशः दूसरोंके द्वारा उसे ज्ञात या अज्ञातरूपमें शिक्षा या उपदेश मिलता रहता है, जिससे वह अपने जीवनको सुसंस्कृत बना लेता है एवं संसार-व्यवहारमें कुशल बन जाता है। सबसे पहले वह दूसरोंका अनुकरण करता है; क्योंकि वह दूसरोंकी भाषा तो समझ नहीं सकता, इसलिये आसपासके व्यक्ति—उसके माता-पिता आदि जो कुछ भी व्यवहार करते हैं, उसे वह आँखोंसे देखता है; और उसमें तदनुकूल प्रवृत्तिके संस्कार बढ़ते चले जाते हैं। दूसरोंकी बातोंको सुनते-सुनते वह शब्दोंकी ध्वनिको ग्रहण करने लगता है और कुछ बड़ा होकर अपने भावोंको व्यक्त करने और दूसरोंके भावोंको समझनेकी योग्यता भी प्राप्त कर लेता है। फिर तो उसे विधि और निषेधरूप शिक्षाएँ समय-समयपर मिलती रहती हैं और उनके द्वारा वह निश्चय करने लगता है कि कौन-सा काम करनेसे मुझे हानि उठानी पड़ेगी और किन कामोंसे मुझे लाभ होगा। मेरे हितैषी और बड़े-बूढ़े अनुभवी व्यक्ति जिन कामोंको करनेका निषेध करते हैं एवं जिन कामोंको करनेकी आज्ञा देते हैं, उनकी आज्ञा मुझे स्वीकार करनी चाहिये, इसीमें मेरा हित है। पर तबतक उसके सामने दो समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं। जब वह यह देखता है कि मेरे लिये जो विधि-निषेध किया जा रहा है, उसका पालन विधि-निषेध करनेवाले स्वयं भी नहीं करते। तब वह सोचनेको बाध्य होता है कि जब ये जिन बुरे कामोंको बुरे बतलाते हैं और करते भी हैं, और जो काम अच्छे बतलाते हुए भी नहीं करते हैं, तब ये शिक्षाएँ क्या मेरे लिये या दूसरोंके लिये ही हैं, उनके स्वयंके लिये नहीं। वे निषिद्ध कामोंको क्यों करते हैं, और अच्छे कामोंको क्यों नहीं करते ? वे मुझे सत्य बोलनेकी शिक्षा देते हैं, पर स्वयं झूठ बोलते हैं। और कई बार तो मुझसे भी झूठ बुलवाते हैं। जैसे स्वयं घरमें होते हुए भी कोई व्यक्ति उनको बाहरसे पुकारता है तो मुझे उसे यह जवाब देनेके लिये बाध्य करते हैं कि जाकर उनसे कह दे कि वे अभी घरमें नहीं हैं।

दूसरी समस्या उनके सामने तब उपस्थित होती है, जब कि वह दो व्यक्तियोंको विरोधी बातें कहते हुए देखता है। दोनों उसके हितैषी हैं या हितैषी होनेका दिखावा करते हैं। उनमेंसे एक व्यक्ति कहता है कि यह करना ठीक है, दूसरा व्यक्ति यह कहता है कि यह नहीं करना चाहिये। एक उसकी हानियाँ बतलाता है, दूसरा उसके लाभ। अब वह किसकी बात माने और कैसा आचरण करे ? इसका वास्तविक निर्णय या तो वह बुद्धिके परिपक्व होनेपर या उस कामके करनेपर हानि या लाभ स्वयं उठाकर अनुभव करनेपर कर सकता है।

बालककी शिक्षा पहले घरसे प्रारम्भ होती है। फिर उसे विशेष शिक्षित करनेके लिये शिक्षालयोंमें भेजा जाता है, जिससे गुरुजनोंके पास वह अपना बौद्धिक विकास करता हुआ इस योग्य बन जाय कि अपने भले-बुरेका निर्णय स्वयं कर सके। बुद्धि, विचार और विवेकमें गतिशील आन्तरिक शक्तियोंका विकास होकर वह जीवन-क्षेत्रमें सफल बन सके, यही शिक्षाका उद्देश्य है। पहले वह पुस्तकों और गुरुजनोंके मुखसे शिक्षा प्राप्त करता है और पुस्तकोंको समझनेके लिये अक्षर-ज्ञानसे उसकी शिक्षा प्रारम्भ होती है। फिर उसकी बुद्धिके अनुसार उसे विविध विषयोंका ज्ञान कराया जाता है। स्वयं सोचने और समझनेकी योग्यता प्राप्त हो जानेपर विद्यालयोंकी शिक्षाकी पूर्णाहुति होती है। उसके बाद वह जीवनमें अनुभवोंके द्वारा आगे बढ़ता है। दूसरोंके अनुभवोंसे लाभ उठाता है और स्वयंके अनुभवोंसे भी शिक्षा ग्रहण करता है। इसीलिये शास्त्रीय या मौखिक ज्ञानसे अनुभव-ज्ञानका महत्त्व अधिक बतलाया गया है।

वैसे तो मनुष्यको सारे जीवनमें ही शिक्षा ग्रहण करते रहना चाहिये; क्योंकि ज्ञानका कोई अन्त नहीं है। उसका विकास जितना भी किया जाय, वह स्वयं उसके लिये एवं समाज तथा देशके लिये लाभप्रद है ही; पर जीवन-संघर्षमें मनुष्य सफलतापूर्वक आगे बढ़ता जाय, इतनी शिक्षा प्राप्त करना तो प्रत्येकके लिये परमावश्यक है। बौद्धिक-विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभालाभका स्वयं निर्णयके उपयुक्त हो जाय तो वह जिस काममें भी प्रगति करेगा, उसमें सफलता प्राप्त होती रहेगी। आगेका मार्ग वह स्वयं खोज निकालेगा और जो विघ्न-बाधाएँ आयेंगी, उनको भी वह दूर कर सकेगा।

शिक्षा-प्राप्तिके लिये बाधक और साधक कारणोंको भी जान लेना प्रत्येक शिक्षार्थीके लिये आवश्यक है। बाधक कारणोंको भलीभाँति जानकर उनसे दूर रहना या उनको हटाना जरूरी है और साधक कारणोंको अपनाना भी आवश्यक है, जिससे शिक्षा-प्राप्ति सुगम हो जाय और वह आवश्यक परिमाणमें प्राप्त होकर आगे भी उसका विकास होता रहे।

भगवान् महावीर भारतके एक महान् धर्मप्रवर्तक तीर्थंकर—महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने स्वयं साधनाके द्वारा अपने जीवनको परमोच्च पदतक पहुँचाया अर्थात् परमात्म-स्वरूप बन गये और दूसरोंके जीवनको भी उस स्थितितक पहुँचानेके लिये सद्-धर्म सद्-उपदेश यानी सत्-शिक्षाका प्रचार किया। उनकी अन्तिम समयकी वाणी 'उत्तराध्ययन सूत्र' में संकलित की गयी है। उसके ११ वें अध्ययनमें शिक्षा-प्राप्तिके पाँच बाधक कारण बतलाये गये हैं—

( १ ) अभिमान, ( २ ) क्रोध, ( ३ ) प्रमाद, ( ४ ) रोग, ( ५ ) आलस्य—ये पाँच बातें जिस व्यक्तिमें हों, उसे शिक्षा उचित रूपमें प्राप्त नहीं हो सकती। अतः शिक्षार्थीको इनका परित्याग करना चाहिये। अब इनमेंसे एक-एक कारणपर संक्षेपमें विचार किया जाता है—

**( १ ) अभिमान**—जब व्यक्ति अपनेमें कोई भी विशेषता देखता है—चाहे वह जाति, कुल, बुद्धि, सम्पत्ति, शक्ति किसी भी बातकी हो, तब उसमें अभिमान जाग्रत् होता है कि मैं अमुक बातमें दूसरोंकी अपेक्षा अधिक योग्य हूँ या आगे बढ़ा हुआ हूँ। दूसरे मेरे सामने तुच्छ हैं, हीन हैं। ऐसा अहंभाव आते ही उसका विकास रुक जाता है। गुरुजनोंके या गुणी पुरुषोंके प्रति विनय या आदरभाव हुए बिना हम उनकी प्रसन्नता या कृपाको प्राप्त नहीं कर सकते और जब उनका हृदय हमारे लिये खुलता नहीं, तब कोई भी रहस्यकी बात यानी विद्याका मर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल पैसेके बलपर—उन्हें अपनी आजीविकाके लिये पढ़ाना पड़ता है, अतः अक्षर और विषयका ज्ञान भले ही उनसे प्राप्त हो जाय, पर रहस्य यानी मर्म प्राप्त नहीं होता। इसीलिये कहा गया है कि विनयके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। और विद्या प्राप्त होनेपर भी यदि उसमें विनय नहीं है तथा अहंकार आ गया है तो सच्चे ज्ञानका विकास नहीं होगा। विनय लघुतासे प्राप्त होती है। व्यक्ति अपने सामने जब अधिक गुणवान् व्यक्तिको देखे तो उसका सिर तत्काल उसके चरणोंमें झुक जाना चाहिये। विनम्रता विद्यार्थीके लिये ही नहीं, शिक्षकके लिये भी उतनी ही आवश्यक है; क्योंकि आखिर सम्पूर्ण ज्ञान तो किसीके पास है ही नहीं। संसारमें एक-से-एक बढ़कर व्यक्ति बैठे हैं। अतः उनके प्रति आदर-भाव होना अत्यन्त आवश्यक है। जहाँ अभिमान बढ़ा कि विकास रुका।

**( २ ) क्रोध**—क्रोधमें व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। उसे क्या बोलना चाहिये तथा क्या करना चाहिये, इसका वह भान भूल जाता है। क्रोधी व्यक्तिको दी हुई शिक्षाएँ प्रायः व्यर्थ जाती हैं; क्योंकि क्रोधके समय उसमें शिक्षा ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रह पाती। बहुत बार तो उस समय दी हुई शिक्षाका विपरीत परिणाम भी होता है। उस समय उसके हितकी कही हुई बातोंको भी वह उलटी समझकर उपेक्षा कर देता है। क्रोध शान्त हो जानेपर उसे धीरज और शान्तिसे मीठे वचनोंद्वारा जो भी शिक्षा दी जायगी उसपर वह विचार करेगा, उसका असर अच्छा होगा। क्रोधके समय विचार करनेकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है। क्रोध तो एक प्रकारकी आग है। उसमें अच्छी और बुरी जो भी चीज पड़े, जलकर स्वाहा हो जाती है। इसीलिये क्रोधी व्यक्ति शिक्षाके लिये अपात्र है। शिक्षार्थीको सदा क्रोधको दबाये रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिन प्रसङ्गोंसे क्रोध उत्पन्न हो, वैसे प्रसङ्गोंसे दूर या हटे रहनेका प्रयत्न किया जाय। क्रोधके उपशान्त होनेपर मनमें बहुत पश्चात्ताप होना चाहिये। तब शान्त चित्तसे विचार करना चाहिये कि मुझे क्रोध आया क्यों? और भविष्यमें वह न आये, इसके लिये मनोबल बढ़ाना चाहिये। क्रोधसे प्रीतिका नाश होता है और विचार एवं विवेक-शक्ति कुण्ठित हो जाती है।

**( ३ ) प्रमाद**—असावधानी जीवनको बर्बाद करती है। थोड़ी-सी भी गलतीसे बहुत बुरा परिणाम भोगना पड़ता है। अजाग्रत् दशा यानी असावधानी ही प्रमाद है। वैसे प्रमादके पाँच या आठ प्रकार जैन-आगमोंमें बतलाये हैं, जिनसे मनुष्य अपना भान भूलता है। अपनी शक्ति, साधन और समयका सदुपयोग नहीं कर पाता, अपितु दुरुपयोग करके बर्बाद करता है। पाँच प्रमाद इस प्रकार हैं—( १ ) मद्य, ( २ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय, ( ३ ) कषाय, ( ४ ) निद्रा, ( ५ ) विकथा। इनमें ( १ ) शराब या किसी भी प्रकारका व्यसन, जिससे व्यक्तिमें उन्माद या नशा छा जाय, अपने आपको भूल जाय, उसे 'मद्य' कहते हैं। ( २ ) पाँच इन्द्रियोंके तैंतीस विषयोंकी आसक्तिको 'विषय' कहा जाता है। खाने-पीनेमें चटोरापना जिह्वा-इन्द्रियकी आसक्ति है, अतः विद्यार्थियोंके लिये तो सादा भोजन ही लाभदायक है। कुत्सित दृश्योंको देखने, स्त्रियों आदिके रूपकी आसक्ति भी मनुष्यमें विकार जाग्रत् करती है और विद्यार्थियोंके लिये तो विकारभाव एक महान् विष है। इसी तरह गंदी बातें कहना, गंदे गाने सुनना, अश्लील साहित्य पढ़ना, शरीर-वस्त्राभूषणमें फैशनेबल रहना, खूब इत्र-फुलेल लगाना—ये सब पाँच इन्द्रियोंके विषय हैं। इनमें आसक्त रहनेसे शिक्षामें ध्यान नहीं रहता। चित्त इधर-उधर भटकता रहता है। विषय-सुखोंमें मग्न हो जानेसे अधिकांश समय व्यर्थ चला जाता है, पढ़नेमें ध्यान—चित्त नहीं लगता। ( ३ ) कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ—कषायके चार भेद हैं। इनमें क्रोध और अभिमानका कुछ विवरण ऊपर आ चुका है। माया अर्थात् कपट—बाहर कुछ, भीतर कुछ; दिखावा अधिक, भीतर शून्य—इस तरहकी धूर्तता या कपट शिक्षामें बाधक है ही। शिक्षार्थीको सरल होना चाहिये, कुटिल कदापि नहीं। लोभ तो सब अनर्थोंका मूल है। लोभी व्यक्ति अपना स्वार्थ साधनेमें तल्लीन रहता है। वह हित-शिक्षाको ग्रहण नहीं करता। शिक्षार्थीको तो शिक्षा-का ही लोभ होना चाहिये। उसे वह अधिकाधिक ग्रहण करता जाय। अन्य वस्तुओंका लोभ उसके लिये गौण हो, शिक्षा ही प्रधान है। तभी वह आगे बढ़ सकता है। ( ४ ) निद्रा—शिक्षार्थीको अधिक सोना भी बाधक है। दिनमें तो सोना ही नहीं चाहिये। रातमें भी छः या सात घंटे, जितना भी शरीरको स्वस्थ बनानेके लिये आवश्यक हो, गहरी नींद ले लेना पर्याप्त है। प्रातःकाल जल्दी उठनेकी आदत डाली जाय; क्योंकि उस समयकी पढ़ाई और चिन्तन अधिक लाभप्रद है। रातको अधिक देरतक जागना भी ठीक नहीं; क्योंकि रातको देरतक जागनेवाला प्रातःकाल जल्दी नहीं उठ सकता। उठता है तो नींदकी कमी रहनेसे शरीरमें स्फूर्ति नहीं रहती, उत्साह नहीं रहता। ( ५ ) विकथा—व्यर्थकी बातें करना विकथा है। आवश्यकतासे अधिक बोलना वाक्शक्तिका दुरुपयोग है। गप्पें मारना, दूसरोंकी निन्दा करना। राजकथा, देशकथा, भोजनकथा और स्त्री-कथाको विकथा कहा गया है। शिक्षार्थी इनसे बचे। अधिक बोलनेवाला—वाचाल कभी गहरा चिन्तन नहीं कर सकता। उसका अमूल्य समय व्यर्थ ही चला जाता है।

( ४ ) रोग—शरीर एक विशिष्ट साधन है, उसे सँभालकर रखना आवश्यक है। मनके साथ स्वास्थ्यका गहरा सम्बन्ध है। रोगी व्यक्तिका चित्त शान्त और व्यवस्थित नहीं रहता, इसलिये वह शिक्षा भलीभाँति प्राप्त नहीं कर सकता। रोगी समयपर विद्यालयमें नहीं पहुँच पाता और पहुँच भी जाय तो उसका मन व्यग्र रहता है। शारीरिक पीड़ासे शिक्षामें बाधा आती है, यह प्रत्यक्ष ही है एवं सभी-का अनुभव भी है। इसलिये जहाँतक हो रोग उत्पन्न ही न हों, शरीर स्वस्थ रहे, इसका शिक्षार्थी पूरा लक्ष्य रक्खे और शरीरमें रोग हो तो उसके निवारणका तत्काल उपाय करे। व्यायाम आदि करता रहे। मनको भी शान्त एवं स्वस्थ बनाये रक्खे।

( ५ ) आलस्य—आलस्य और कर्मका वैर प्रसिद्ध ही है। आलसी व्यक्ति 'पीछे करूँगा, फिर कर लूँगा' सोचता रहता है। और काम करनेका समय निकल जाता है या वह काम कर ही नहीं पाता। शिक्षार्थीको अपना समय बिल्कुल नहीं खोना चाहिये और आलस्यको तो पास ही न फटकने देना चाहिये। आजका काम कलपर और अभीका काम पीछेके लिये नहीं छोड़ा जाय। जिस समय जो काम करना हो, पूरे मनोयोगसे किया जाय। आलस्य हमारा महान् शत्रु है। शिक्षार्थीको तो तनिक भी आलस्य नहीं करना चाहिये।

अब शिक्षार्थीके आठ गुणोंको, जिनका 'उत्तराध्ययन सूत्र'के उसी अध्ययनमें विवरण मिलता है, नीचे दिया जा रहा है। शिक्षामें सहायक समझकर इन गुणोंको धारण करना आवश्यक है।

( १ ) शान्ति—वह व्यक्ति हास्य-क्रीड़ा न करे। सदा शान्त चित्तसे आदेश ग्रहण करे। गम्भीर रहे। अधीर न हो।

( २ ) इन्द्रियदमन—जो मनुष्य इन्द्रियोंके विषयोंमें लगा रहता है वह शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिये शिक्षार्थी-को इन्द्रियोंका दमन करना चाहिये।

( ३ ) स्वदोष-दृष्टि—वह व्यक्ति सदा अपने दोषोंको दूर करनेमें प्रयत्न करे। दूसरेके दोषोंकी तरफ ध्यान न देकर गुण ही ग्रहण करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

( ४ ) सदाचार—अच्छे चाल-चलनवाला होना चाहिये।

( ५ ) ब्रह्मचर्य—वह व्यक्ति पूर्ण या मर्यादित ब्रह्मचर्य-का पालन करे। अनाचारका सेवन न करे।

( ६ ) अनासक्ति—विषयोंमें अनासक्त होना चाहिये; इन्द्रिय-लोलुप नहीं होना चाहिये।

( ७ ) सत्याग्रह—हमेशा सत्य बातको स्वीकार करनेके लिये तैयार रहना चाहिये। जहाँ भी अपनी भूल हो तो तत्काल स्वीकार कर ले और उसे दूर कर दे।

( ८ ) सहिष्णुता—सहनशील और धैर्यवान् होना चाहिये। क्रोधी नहीं होना चाहिये।

वास्तवमें बाधक कारणोंको दूर करना ही साधनाके समीप पहुँचना है। उपर्युक्त आठ गुण जिन्हें साधक कारण कह सकते हैं, उनमेंसे पाँच तो बाधक कारणोंको निवृत्ति-रूपसे हैं जैसे—क्रोधकी निवृत्तिसे शान्त भाव पैदा होता है। इन्द्रिय-दमन ही विषय-निवृत्ति है। ब्रह्मचर्य स्वास्थ्यके लिये बहुत आवश्यक है। अभिमानी व्यक्ति अपने दोषोंको नहीं देखता और दूसरोंके गुणोंको सम्मान नहीं देता। प्रमादी व्यक्ति अनासक्त नहीं होता। आलस्य भी एक तरहका प्रमाद ही है। फिर भी शिक्षार्थीके लिये जो आठ गुण ऊपर बतलाये हैं वे बड़े महत्त्वके हैं। अपने दोषोंके प्रति सजग रहना, सदाचारका पालन, ब्रह्मचर्यका पालन एवं सत्यको स्वीकार करनेके लिये हर समय तैयार रहना, सहिष्णुता और शान्ति धारण करना शिक्षार्थीके लिये बहुत ही आवश्यक है। धैर्य, गाम्भीर्यका भी शान्ति और सहिष्णुतामें समावेश हो जाता है। विद्यार्थीका जीवन नियमित एवं संयमित हो। वह लक्ष्यकी पूर्तिमें निरन्तर प्रगतिशील रहे। इन्द्रियों और मनको इधर-उधर भटकने न दे। जिज्ञासा-वृत्ति प्रबल हो। प्रयत्नमें शिथिलता न आने दे। असफलताओंमें भी घबराये नहीं, धीरज रक्खे और अपना प्रयत्न चालू रक्खे। निरन्तर अभ्यास-से कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं, यह सदा ध्यानमें रक्खे। दुर्व्यसनों तथा कुसंगतिसे सदा बचता रहे। सत्-संगतिका अवसर न चूके। मैत्री भाव बढ़ाता जाय, विवेक न खोये। दूसरोंके गुणोंको लें, परंतु दोषोंको न अपनाये। सभी स्त्रियोंमें माता या बहनका भाव रक्खे, उनका आदर करे और विषय-वासनाओंमें न फँसे। गुणीजनों तथा गुरुजनोंका आदर—उनसे विनयपूर्ण व्यवहार करे। सब समय विद्यार्थी ही बना रहे। स्वाध्याय परम तप है अतः उसे नियमित करता रहे। आलस्य न करे। सब काम नियत समयपर नियमित करता रहे। सेवा परमधर्म है। उसका जब भी मौका मिले, हाथसे न जाने दे। शिक्षाका उद्देश्य है—संस्कारित जीवन-कलाको जानना, पर केवल जान लेनेसे ही काम नहीं चलेगा, तदनुसार आचरण भी आवश्यक है। ज्ञान दूसरोंसे पाते हैं तो उसका वितरण भी करते हैं, तभी वह बढ़ेगा। व्यावहारिक एवं धार्मिक शिक्षण अवश्य प्राप्त करें और विद्याका गर्व न करें।

---

## कामना

**नैव दिव्यसुखभोगमप्रिये नापवर्गमपि नाथ कामये।**
**यान्तु कर्णविवरं दिने दिने कृष्णकेलिचरितामृतानि मे॥**
**अहो अहोभिर्न कलेर्विदूयते सुधासुधारामधुरं पदे पदे।**
**दिने दिने चन्दनचन्द्रशीतलं यशो यशोदातनयस्य गीयते॥**

हे नाथ! मैं न तो देवताओंका सुख चाहता हूँ, न मोक्ष ही चाहता हूँ। मेरी तो यही प्रार्थना है कि श्रीकृष्ण-लीला-चरित-सुधा ही मेरे कानोंके अंदर निरन्तर प्रवेश करती रहे।

अहो! जो पुरुष पद-पदपर सुधाकी सुन्दर धारासे भी मधुर एवं चन्दन तथा चन्द्रमासे भी शीतल श्रीयशोदानन्दनके यशका प्रतिदिन गान करता है, वह कलियुगके क्लेशोंसे कभी पीड़ित नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मुख्य है कर्ताके हृदयकी भावना

( लेखक--पं० श्रीविश्वनाथजी मिश्र, साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न )

इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य जैसा सोचता, समझता और विचार करता है, प्रायः वैसा ही बन जाता है। आजतक संसारमें जितने भी महापुरुष हो गये हैं, उन सबोंने अपने और दूसरोंके विषयमें हमेशा अच्छा ही सोचा है तथा उनके विपरीत अनिष्ट सोचनेवाले सदा दुखी, जीवनसे उदासीन एवं पतनोन्मुखी बने रहे हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्यके भीतर जिस तरहकी भी भावना होती है, उसीके अनुरूप उसके जीवनके सारे कार्य-कलाप होते रहते हैं। देखने-सुनने, पारस्परिक व्यवहार करने, चलने-फिरने आदि सभी क्रियाओंमें भावनाका संयोग रहता है। धर्म-शास्त्र भी इस बातका समर्थन करते हैं कि मनुष्य मरते समय जिस तरहका भाव अपने हृदयमें रखता है, उसीके अनुसार उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति होती है। गीतामें लिखा है—

**यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।**
**तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥**

अर्थात् हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भावको स्मरण करता हुआ शरीर-त्याग करता है, वह उस-उस भावको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहता है।

मनुष्यकी भावनाओंका प्रभाव बाह्य शरीरपर भी लक्षित हुए बिना नहीं रहता। पापी, कुकर्मी और आततायियोंकी बाह्याकृति ही बतला देती है कि यह ऐसा आदमी है। यहाँपर मुझे एक छोटी-सी कथा याद आ रही है। एक रानीको एक दूसरा प्रबल राजा जबर्दस्ती अपनी राजधानीमें ले गया। रानीने अपनी इज्जत बचानेके लिये उससे यह कहा कि मैं छः महीनेतक एकान्तमें रहकर व्रत करूँगी। राजाने उसके मनोऽनुकूल सारी व्यवस्था करवा दी। वह बराबर यह सोचने लगी—'मैं कुरूपा हूँ। मेरे शरीरमें बड़े-बड़े घाव हो गये हैं। लहू और पीबसे दुर्गन्ध निकल रही है और घावोंपर मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं।' छः महीने व्यतीत होते-होते उसका शरीर ठीक वैसा ही कुरूप हो गया। कामातुर राजा जब उसके पास गया और उसने उसकी यह हालत देखी तो वह भयसे काँप गया। उसने तुरंत ही उसे उसके पतिके पास वापस भेज दिया। पतिके यहाँ जाकर उसने उसे आश्वासन दिया कि सतीत्वकी रक्षाके लिये ही मैंने ऐसा किया है और छः महीनेमें फिर पूर्ववत् आपकी सेवायोग्य हो जाऊँगी। उस दिनसे वह फिर एकान्तमें रहकर सोचने लगी—'मैं चंगी हूँ। सारे व्रण दूर हो गये हैं। शरीर सुन्दर हो गया है। रूप-लावण्य छा गया है। सुगन्धकी लपटें निकलने लगी हैं।' कहते हैं कि छः महीने समाप्त होते-होते उसमें इच्छित परिवर्तन आ गया और वह अपने पतिके साथ सानन्द जीवन-यापन करने लगी। मेरा प्रयोगात्मक अनुभव है। मैं प्रतिदिन प्रातःकाल टहलने जाया करता था। एक दिन एक तरुण, जो अत्यन्त दुर्बल था, मुझे मिला। डाक्टरने शायद उसे हवाखोरी करनेकी सलाह दी थी। उसकी मुखाकृति देखनेसे यह साफ मालूम पड़ता था कि यह व्यक्ति जीवनसे पूर्णतः निराश है। मैंने उससे बातें कीं। सचमुच संसारका वह बहुत बड़ा दुखी प्राणी था। मैंने उससे कहा—'आपकी बीमारी अवश्य अच्छी हो जायगी; आप इसी प्रकार प्रतिदिन टहलनेका क्रम बनाये रखिये।' मेरी बात सुनकर उसके मुख-मण्डलपर प्रसन्नताकी एक हल्की-सी रेखा दौड़ गयी। दूसरे दिन भी वह मुझे मिला। मैंने हँसते हुए कहा—'आज तो आप बहुत प्रसन्न दीख पड़ रहे हैं। मालूम होता है आपकी बीमारी दूर होती जा रही है!' मेरी बात सुनकर उसने साश्चर्य पूछा—'क्या आप सच कह रहे हैं? सचमुच आज मुझे पहलेकी अपेक्षा प्रसन्नताका अधिक बोध [illegible] रहा है!' उस दिनसे जब वह मुझसे मिलता मैं बराबर उससे स्वस्थ होनेकी बात कहता और वह सोल्लास उसका अनुमोदन भी करता। उसकी भावनाएँ बदल गयीं और वह कुछ ही दिनोंमें पूर्णतया स्वस्थ हो गया।

हमारी भावनाका प्रभाव दूसरेके ऊपर भी पड़े बिना नहीं रहता। जिसके सम्बन्धमें हम सदैव बुरी भावना रखते हैं, वह कभी भी हमारे प्रति अच्छी भावना नहीं रख सकता। हम अपनी बाह्य चेष्टाओंद्वारा भले ही दिखलानेकी कोशिश करें कि अमुकके प्रति हमारे भीतर कोई अनिष्टकर बातें नहीं हैं, पर ऐसा करनेका कोई अच्छा [illegible] नहीं रहता। यहाँपर उस कृत्रिम आवरणका सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्य खुल जाता है और वास्तविक भावना सम्मुख आकर नाचने लगती है।

भावनाका जादू दृश्य-पदार्थोंपर भी चलता है। हम जिस भावनासे उद्वेलित होकर किसी पदार्थका अवलोकन करते हैं, वह पदार्थ हमें तदनुकूल दिखलायी पड़ता है। इस बातका प्रमाण और कहीं न ढूँढ़कर गोस्वामीजीकी प्रसिद्ध रचना रामचरितमानसमें ही ढूँढ़ा जाय। श्रीरामचन्द्रजी जनकपुरकी रंगभूमिमें विराजमान हैं। सभी लोग उन्हें एकटक देख रहे हैं। यद्यपि देखनेका कार्य सभी-के-सभी एक ही भाँति कर रहे हैं, पर पृथक्-पृथक् भावनाओं-के कारण श्रीरामका स्वरूप तदनुसार ही दीख पड़ रहा है। दूर-दूरसे आनेवाले महत्त्वाकाङ्क्षी नृपतिगण उन्हें भयंकर मुद्रामें देख रहे हैं, जनक और उनकी रानी सुनयनाको वात्सल्यभावके कारण परम सुकुमार बालक-सरीखे लक्षित होते हैं, सखियाँ और उनकी हृदयेश्वरी जानकी एक साँवले-सलोने, लोकातीत लावण्यमण्डित दूल्हेके रूपमें निहार-कर आनन्दातिरेकमें सुध-बुध खो रही हैं तथा इसी प्रकार अन्यान्य नर-नारी उन्हें नाना रूपोंमें अपने भावनानुसार देख रहे हैं। गोस्वामीजीने अधिक न लिखकर सबके सार-रूपमें यह व्यक्त कर दिया है कि—

'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥'

हमने बहुतसे बोदे और कमजोर छात्रोंको यह विश्वास दिलाकर कि, 'तुम पढ़ने-लिखनेमें बहुत अच्छे हो' तेज और अध्ययनशील बना दिया है। उनके जीवनका विश्लेषण करके देखा है कि लोगोंके द्वारा हीनताकी भावना भरे जाने-की वजहसे ही उनकी स्थिति वैसी दयनीय हो [illegible] थी। अपढ़ और नासमझोंके मुँहसे कभी-कभी यह बात सुननेको मिलती है कि सराहनेसे लड़के बिगड़ जाते हैं किंतु उनकी यह धारणा भ्रान्त है। सभ्य, सुशिक्षित और मनोविज्ञानसे थोड़ा भी सम्बन्ध रखनेवाला व्यक्ति अपनी संतानके सामने भूलकर भी कोई ऐसी बात नहीं करता जिसके कारण उसके मस्तिष्कमें हीनताकी ग्रन्थि पड़ सकती है। इतिहास और साहित्य इस बातके प्रमाण हैं कि कवियोंने भूरि-भूरि प्रशंसाओं-द्वारा ही अपने आश्रयदाता राजाओंको अन्य बलिष्ठ राजाओं और बादशाहोंके साथ भिड़ाकर उन्हें वाञ्छित विजयश्रीकी उपलब्धि करायी है। यहाँपर हम भूषण, चन्द प्रभृति चारणोंके नाम लेनेका लोभ संवरण नहीं कर सकते। आधुनिक कवियोंकी रचनाओंने हमारे देशके अगणित नवयुवकोंकी धमनियोंमें देशभक्तिकी धारा बहाकर उन्हें खुशी-खुशी आत्मोत्सर्ग कर डालनेको उद्यत कर दिया। कहाँतक गिनाया जाय, इसके अनेकानेक उदाहरण स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित हैं। देहातोंमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'सराहे भीम दूना।' अर्थात् सराहना करते ही भीमकी शक्ति दूनी हो जाती थी। हनुमान्‌जीके साथ भी शायद यही बात थी। कहनेका मतलब यह है कि सराहनाका प्रभाव प्रत्येक व्यक्तिके ऊपर हितकारी होता है।

लोगोंकी ऐसी धारणा है कि भारतवर्षमें अधिकांश व्यक्ति अल्पायु होते हैं। इसका भी प्रधान कारण कुभावना है। तीस वर्षोंके बाद प्रायः लोग सोचने लग जाते हैं कि 'अब क्या, अब तो हम बूढ़े हो चले।' सचमुच उसी समयसे उनमें वार्द्धक्यके सारे लक्षण नजर आने लगते हैं। पहलेकी 'सट्ठा तब पट्ठा' वाली बात अब न रह गयी। अब तो विरले ही व्यक्ति ऐसे मिलते हैं जो अपने जीवनके सौ वसन्तोत्सव मना पाते हैं। आज भी किसी साठ-सत्तर वर्षके यूरोपियनको यदि वृद्ध कह दीजिये तो वह आपकी बातपर हँसे बिना न रहेगा। परिणामस्वरूप उनकी आयु भी शताब्दी पार कर जाती है।

वैज्ञानिकोंने भी यह सिद्ध किया है कि जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है, उसमें उतनी ही शक्ति विद्यमान रहती है। भावना अणुओं और परमाणुओंसे भी सूक्ष्मतम है, एतदर्थ उसकी शक्तिकी कोई इयत्ता नहीं।

भावना एक कल्पवृक्ष है। जिस प्रकार कल्पवृक्षके निकट जाते ही मनोऽभिलषित फलकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार भावनानुसार फल मिलनेमें संदेह नहीं करना चाहिये। सभी प्रकारकी उन्नतियोंका मूल भावना ही है। अतएव अपने स्वर्णिम-जीवनके लिये सद्भावनाएँ अत्यन्त अपेक्षित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

[ गतवर्ष पृष्ठ १३७४ से आगे ]

बदरीनाथ-मार्गपर चलनेके उपरान्त हमने पीपलकोटीसे ९ मील आगे अपने द्वितीय पड़ाव गुलाबचट्टीतक इस मार्गकी जो वन-सम्पदा, प्राकृतिक दृश्य आदि देखे, उसका संक्षेपमें उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। अब हम पीपलकोटीसे पाण्डुकेश्वरतककी २७ मीलकी यात्रा कर चुके थे और पाण्डुकेश्वरसे ६ मील आगे हनुमानचट्टीके अपने अल्पकालीन पड़ावकी यात्रापर थे। हनुमानचट्टीसे बदरीनाथ केवल ५ मील रह जाते हैं; अतः हमने बदरीनाथ आज ही पहुँचनेका संकल्प कर लिया था। पीपलकोटीसे २७ मीलकी इस यात्रामें तथा पाण्डुकेश्वरसे प्रस्थानके साथ ही हमने जो देखा और देख रहे थे; जो अनुभव किया और अनुभव कर रहे थे, उसका यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किये बिना आत्मतृप्ति न होगी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है इस मार्गकी शिखरावली यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी और केदारनाथकी शिखरावलीसे सर्वथा भिन्न है। इस मार्गकी सारी शिखरावली वृक्षों, पौधों और लताओंसे प्रायः रहित है। यही नहीं, मीलोंतक सर्वथा नग्न तृणविहीन। परंतु इतनेपर भी इस पार्वत्य प्रदेशमें अत्यन्त उत्तुङ्ग पाँच-पाँच हजारसे आठ-आठ हजार फुट ऊँची शिखरावलीका जैसा सौन्दर्य है, वैसा अन्यत्र देखा-सुना भी नहीं गया। इन शिखरोंमें अनेक स्थलोंपर विविध रंगके पाषाणोंका मिश्रण हुआ है। इनमें श्वेत, श्याम, रतनार, केशरी, पीले, स्लेट रंगके, ऊदे, हरे और न जाने कितने रंग मिल गये हैं। यह प्राकृतिक पच्चीकारी अथवा मीना देखते ही बनता है। अनेक शिलाखण्डोंमें अभ्रककी आभा-सी एक विचित्र प्रकारकी चमक आ गयी है। रंग-बिरंगे शिलाखण्डोंमें इस चमकके कारण जान पड़ता है मानो मीनाकारीमें रत्न जड़ दिये गये हों। ये शिखर वर्षाऋतुके कारण अगणित जलप्रपातोंसे व्याप्त थे। कहा जाता है, वर्षाऋतुमें बम्बई और पूनेके बीचका सेहाद्रि शिखरोंका दृश्य बड़ा सुन्दर है। हमने उसे कई बार देखा है और वह सुन्दर है, इसमें संदेह नहीं। परंतु हिमालयके शिखरोंके इन दृश्योंके सम्मुख वह खिलौना जान पड़ता है। वर्षाके कारण अनेक स्थलोंपर हरी घास उग आयी थी, फिर मार्गके निकट तथा कुछ शिखरोंकी तलीमें सीढ़ियोंके सदृश जो खेत थे, उनमें धान लहलहा रहा था। यह प्राकृतिक और मनुष्यकृत सौन्दर्य स्पर्द्धा-सी कर रहा था। परंतु, उन उत्तुङ्ग और विशालकाय शिखरोंकी काया पावस-प्रभावसे सर्वथा रहित थी। तरु-लताओं और झाड़ियोंकी तो कहे कौन, सूखा या हरित घास-पात तथा तृण भी हमें इन शिखरोंपर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। शिखरोंके इस रूपके सम्बन्धमें हमारे एक साथीने गोस्वामी तुलसीदास-जीके इस कथनकी याद दिलायी—

ऊसर बरसइ तृन नहिं जामा। संत हृदयँ जिमि उपज न कामा॥

गोविन्ददासने इनके इस समभावका तुलसीदासजीकी इस चौपाईसे मिलान किया—

संभु सरासन डिगइ न कैसें। कामी बचन सतीं मन जैसें॥

जैसा ऊपर कहा गया है सारा मार्ग अलकनन्दाके किनारे-किनारे गया था। परंतु केदारनाथके मार्गकी मन्दाकिनीके सदृश अलकनन्दाका बहाव मन्द-मन्द और शान्त न होकर भागीरथीके प्रवाहसे मिलता-जुलता था। वैसी ही आन-बान-शान। अवरोधमें वैसा ही तूफान और तूफानमें वैसा ही गान। अलकनन्दा भागीरथीकी अनुजा जान पड़ती थीं।

जोशीमठसे पाण्डुकेश्वरतक तथा अब आगेका मार्ग हमें हरियालीसे परिपूर्ण मिला। अलकनन्दाका तेज प्रवाह। फिर शीतल मन्द पवनके झोंके वातावरणमें स्निग्धता बनाये हुए थे। पीपलकोटीके बाद मार्गमें प्रायः वर्षा भी होती रही थी। बीच-बीचमें जब यह वर्षा रुक जाती तो पवनके मस्त झोंके चलते, फिर मैदानोंकी अपेक्षा पहाड़ोंपर और विशेषकर पावसमें वायुके इन झोंकोंमें एक प्रकारकी जो मस्ती रहती है, उसका अनुभव अपूर्व था। पाण्डुकेश्वरसे ही कुछ शीत बढ़ गयी थी, फिर इस वर्षाके कारण तो और; किंतु पदयात्राके कारण इस शीतका प्रभाव शरीरपर प्रतिकूल पड़ रहा था, यह श्रमहारी हो गयी थी और मगके चढ़ाव-उतारसे थकित अङ्गोंपर जब ये सघन बूँदें पड़तीं और ऊपरसे तनको सहलातीं, कपोलोंका चुम्बन-सा लेतीं, मस्त बयार चलती तो न केवल मग-श्रमका निवारण होता, अपितु, एक दिव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखानुभूतिसे पूरित हृदय और भाव-भंगिमामें यात्री झूम उठता। वर्षाके कारण हमारे कार्यक्रममें कोई गड़बड़ी नहीं आयी, वरं इसके विपरीत वर्षाके कारण और बीच-बीचमें वर्षाके रुक जानेके कारण पल-पल परिवर्तित प्राकृतिक दृश्य अत्यधिक मनोहारीरूपमें हमारे सामने आते, जिससे द्विगुणित उत्साहसे हमारी यात्रा चलती। ऊपर मेघोंकी घटासे निर्झर होती वर्षा और उत्तुङ्ग शैल-शिखरोंसे श्वेत दुग्ध-धाराके सदृश झरते प्रपात अमृतवृष्टि-सी करते। फिर उठते-बैठते ये मेघदल और सघन हरियालीके बीच विकलभावसे बहती अलकनन्दा अपनी अपूर्व छटा छिटका रही थी। ऐसे वातावरणमें हमलोग एक अपूर्व सुख और अव्यक्त भावनाओंमें डूबते-उतराते इस दुर्गम मगमें चल नहीं, सहज बह रहे थे। दृष्टिसे दूर श्याम शिखरोंपर शुभ्र हिम शोभायमान था, तो पथके निकट अलकनन्दाके प्रवाहकी सतहसे जमा बर्फ यत्र-तत्र अपनी दिव्य छटा बिखेर रहा था। दृश्यसे ऐसा मालूम पड़ता मानो हिमवान् अपनी पुत्री अलकनन्दाको अपने गेहसे विदा करने नीचे आये हों। आगे हमने एक जगह देखा अलकनन्दाके प्रवाहके ऊपर बर्फका एक पुल है, पुलके नीचे बड़े वेगसे फेन-युक्त अपने श्वेत प्रवाहमें अलकनन्दा शानसे बह रही थी। अगणित नदियोंपर हमने अगणित ही पुल आजतक देखे थे और पार किये थे किंतु आज अलकनन्दापर प्रकृतिनिर्मित जो हिम-पुल हम देख रहे थे, उसकी शोभा ही कुछ और थी। जैसा ऊपर कहा गया है, इस ओरकी पर्वतमालाएँ पूर्वापेक्षा सर्वथा भिन्न थीं। दीर्घाकार दूर-दूरतक योजनों फैले हुए, फिर ऊँचाई ऐसी जिसे दृष्टि न बेध सके, ऐसे उत्तुङ्ग शिखरोंवाली पर्वत-मालाओंको देखकर हम आश्चर्यचकित थे। जिस हिमालयके हमने बचपनमें पाठ पढ़े थे, जिसका स्तुतिगान किया था, आज हम उसके आँचलमें थे और हैरान थे उसके इस अलौकिक रूपसे। इन नग्न पहाड़ोंके सम्मुख आज हम कितने नंगे थे, कितने कङ्गाल। हिमालय-की यात्रापर नर-कंकालसे लेकर कितने धनी-मानी, राजे-महाराजे, नरपति, अधिपति और महीपति आये हैं और आते हैं, कितने बड़े-बड़े योगी-यति, विरागी, वीतरागी, साधु-संन्यासी यहाँ रहे, अभी भी रह रहे हैं; इसी गोदमें देवगण और सुरबालाएँ केलि-क्रीड़ा करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं और नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर—सभी भोग-विलास-रत हो आमोद-प्रमोद करते हैं, कितने कलकल करते निर्झर झरने, शीतल सरिताओं और अनन्त जल-प्रपातोंका यह स्थान है। इसके आँचलमें पक्षीगण कलरव करते, मृग चौकड़ी भरते, सिंह नाद करते, हाथी चिग्घाड़ते और वाराह स्वच्छन्द विचरते हैं। यह जग-जननीका पितृगेह है, भगवान् शिवकी साधना-भूमि और महापथके महान् पथिक पाण्डवोंकी महा यात्रा-भूमि। यह खनिज रत्नोंका आगार है। इसकी कथा अनन्त है। इसने रंकोंको नृपति होते देखा है और चक्रवर्ती सम्राटोंको रंक होते। अगणित साधनालीन साधकोंको भगवत्साक्षात्कार करते और अगणित ही तपस्यारत तपस्वियोंको पतित होते इसने देखा है। कौन कह सकता है इसकी कहानी? कौन पाया है इसके वैभवका बड़प्पन! इसकी स्तुतिसे वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और भगवद्गीता आदि ग्रन्थ भरे पड़े हैं। आदि कवियोंने और गायकोंने इसके गीत गाये हैं, यह आज भी अपने आदिरूपमें उन्नत भाल किये एक सनातन सत्य रूपसे सृष्टिके सम्मुख खड़ा है। धन्य है वह धरा जिसने इसे पाया, भारत-महिमाका बखान करते हुए किसी कविने ठीक ही कहा है—

'लोट रहा चरणोंमें सागर, सिरपर मुकुट हिमालय।'

यह मुकुटमणि हिमालय, जिसने भारतको पूर्णता प्रदान की, आज हमारे सामने था; हम उसकी गोदमें उसके इस महान् रूपको अपने क्षुद्र चर्मचक्षुओंसे कहाँतक देख सकेंगे? फिर इस प्रकारकी विशालता और बहुत दूरतक घास-पात, तरु और तिनकोंसे रहित इसकी कायामें हमने जो कान्ति देखी, कभी उदित अरुणिम रवि-रश्मियोंमें, कभी चमचमाती प्रखर किरणोंमें, कभी आँखमिचौनी करती धूमिल संध्यामें और रात्रिके गहन अंधकारमें चमकनेवाली वनस्पतियोंके प्रकाशमें। उससे महाकवि कालिदासका हिमालय-वर्णन हमें याद आ गया। उन्होंने इसकी उपयोगिता और समस्त पृथ्वीको धारण करनेकी क्षमता रखनेका अधिकारी बताकर इसे ठीक ही पर्वतोंका अधिपति बताया है—

**यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य**
**सारं धरित्रीधरणक्षमं च।**
**प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं**
**शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्॥**

और यही वजह है कि अनन्त रत्नोंकी खान होनेके कारण हिमसे इसकी शोभा इस प्रकार कम नहीं, जैसे गुणोंके समूहमें शशिका एक दोष उसकी शीतल किरणोंके प्रकाशमें छिपा रहता है। कालिदास लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

ऐसा हिमालय सूर्य-किरणोंसे दीप्त अपने हिममण्डित श्वेत शिखरोंपर कभी स्वर्णकलशसे धारण किये दृष्टिगोचर होता, कभी अपने रंग-बिरंगे खनिज पदार्थोंवाले शिखरोंके कारण मेघोंके टुकड़ोंपर अपने-जैसे ही चित्र-विचित्र रंगोंकी छाया डालकर अगणित आकृतियाँ बनाता। यही नहीं, अपनी आकृतियोंकी इन असंख्य आवृत्तियोंके आवरणसे अनेक बार असमयमें ही संध्या-भ्रम उत्पन्न करके विहंगोंको बसेराके लिये, पथिकोंको पड़ावपर पहुँचनेके लिये, अप्सराओंको शृङ्गारके लिये, वियोगियोंको संयोगके लिये, वनवासियोंको केलि-क्रीडाके लिये और गुफा-गुह्यवासी योगी-विरागियोंको साधनाके लिये प्रेरित करता हुआ शोभायमान होता। महाकवि कालिदासने हिमालयके इस रूपका चित्र निम्नलिखित शब्दोंमें चित्रित किया है—

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां
सम्पादयित्री शिखरै बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागा-
मकालसंध्यामिव धातुमत्ताम्॥

सघन अन्धकारका अनुच्छेद करने जब सूर्य पृथ्वीपर उतरता है तो यही हिमालय भयग्रस्त आश्रय-याचनासे पीड़ित अन्धकारको अपनी दीर्घ, गहरी गुफाओंमें, खाइयों और खंदकोंमें शरण देकर उसकी सूर्यसे इस तरह रक्षा करता है, जैसे शरण आये हुए छोटे व्यक्तियोंकी समता और ममतासे निष्पाप सहृदय महान् व्यक्ति करते हैं। इस सम्बन्धमें भी कालिदासका हिमालयकी गरिमाका बखान स्तुत्य है। वे कहते हैं—

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु
लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने
ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव॥

हिमालयके इस अवलोकनमें हमने अबतक इसके अनन्त रूप देखे थे, पर बदरीनाथके इस मार्गमें अब हमें इसके इन अनन्त रूपोंसे युक्त एक और भिन्न रूप दिखा, वह था इसका विराट् रूप। हमें अखिल ब्रह्माण्डमें वर्णित उस विराट् रूपका आज बरबस स्मरण हो आया, जो उन्होंने मोहग्रस्त धनंजयको कुरुक्षेत्रके मैदानमें दिखाया था। भयभीत अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने विराट् रूप-दर्शनके लिये दिव्य-दृष्टि भी दी थी, वह यद्यपि आज हमारे पास नहीं थी, फिर भी हम यहाँ अपनी अन्तर्दृष्टिसे बहुत-कुछ देख पा रहे थे। संसारके मोहजालमें फँसा, कर्त्तव्याकर्त्तव्य-भ्रमित मानव भी तो अर्जुनकी भाँति अपनी मुक्तिकी चाहमें जाने कितने समयसे उस अनन्तसुख भगवच्चरणोंकी खोजमें इन दुर्गम यात्राओंको करता आया है, जिसपर आज हम निकले हैं। पर कहना कठिन है किसको यह सुख, किसे वे भगवच्चरण प्राप्त हुए। भगवान् श्रीकृष्णके उस विराट् रूपने धनंजयके बुद्धि-भ्रमको दूर किया था और कुरुक्षेत्रके मैदानमें अपने कर्तव्यके प्रति सचेष्ट। उसी ब्रह्माण्डधारी भगवान् विष्णुकी पुरी, बदरीनाथके मार्गके विशाल पर्वत, इनके ऊँचे-ऊँचे शैल-शिखर ये तरु, झुरमुट, झाड़ियाँ, पुष्पित पौधे और लताएँ, ये फेनिल झरते शीतल झरने, और अमृत घट-सा उड़ेलते जलप्रपात, ये कलरव करते पक्षीगण और शीतल-मन्द-सुगन्ध-युक्त बहती पवन तथा कलकल करती पावनसलिला अलकनन्दाकी प्रत्येक बूँद आज हमें वही दिव्य और अमर संदेश सुना रही थी—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

हम अपनी अन्तर्दृष्टिसे इस भव्य-विशाल और महान् वन-प्रदेशमें भगवान् श्रीकृष्णके उस विराट् रूपको आज साक्षात् देख रहे थे। कहाँ यह प्रकृति-पुरुषका विराट् रूप और कहाँ हम निर्बल, दुर्बल, क्षुद्र और अल्पज्ञ, असहाय मानव। पर हमारे निर्बल तनोंके प्राण सबल हो उठे थे। दुर्बल विचारों, दुर्बल भावनाओं और दुर्बल कायाधारी व्यक्ति किसी महान् अवलोकनसे कैसा सामर्थ्यवान् हो जाता है, इसका हमें पग-पगपर पल-पलपर आज यहाँ अनुभव हो रहा था। बदरीनाथके मार्गमें बदरीविशालके इस विराट् रूपका दर्शनकर हमें अपनी क्षुद्रताका तो अनुभव हुआ ही, किंतु इसके साथ ही हमारी सामर्थ्य भी जगी। मनुष्य-जीवनकी मुक्तिके लिये, उसकी सार्थकताके लिये जो संदेश यहाँ मिला, उसकी अनुभूति अपूर्व थी। काम-क्रोध-लोभ-मोहमें व्याप्त 'पुरुष-प्रयत्नैश्च असाध्यं नास्ति' की क्षमतावाला मानव संसारके मोह-जालमें फँसा कैसे-कैसे क्षुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्वार्थ-प्रेरित आचरण कर अपने सुर-दुर्लभ अस्तित्वको ही सदाके लिये समाप्त कर देता है । मानवकी इस क्षुद्र वृत्तिका परिचय और उसके जीवन-उत्कर्षके तत्त्वोंका ज्ञान तथा उसकी प्रेरणा ऐसे ही स्थलोंपर मिलती है । यहीं उसे वास्तविक मुक्तिका भान होता है, उसकी पहचान होती है उस मुक्तिका, जिसका कुरुक्षेत्रमें अर्जुनको हुआ था । एक जीवित मुक्तिका, मृत्युके बादकी मुक्तिका नहीं । जीवन अपने-आपमें स्वयं एक बड़ी उपलब्धि है और इसी उपलब्धिमें ही मुक्ति है । इसके बाद मृत्यु तो निवृत्ति है, न कि मुक्ति । यदि मानव-जीवनके इन तत्त्वोंको पहचान सके तो वह ऐसी मुक्तिका सुखोपभोग कर सकता है । यह पहचान हमें होती है भगवान् श्रीकृष्णके भगवद्गीतामें उद्घोषित अनासक्ति-योगसे । मानव-जीवन दो केन्द्र-विन्दुओंकी धुरीपर चलता है—एक मानवकी अज्ञानता तथा उसे अपनी नश्वरताका भान, दूसरा उसका अस्तित्व और इस अस्तित्वकी अमरताका ध्यान । बस इन्हीं दो बातोंपर उसके जीवन-चक्र चलते हैं । समान गतिसे समान दृष्टिसे जो अपने जीवनके इन चाकोंको चला पाता है, वह इस छोटी यात्रामें महान् कार्य कर जाता है । अपने जीवनके साथ जुड़े इस अभिशापको वरदानमें और जीवनकी महान् असफलताको पूर्ण सफलतामें परिणत कर देता है । ऐसा ही मानव अपना जीवन अल्पज्ञताके, नश्वरताके बिन्दुसे प्रारम्भ कर अपने अस्तित्वकी ओर निरन्तर अग्रसर रहकर जीवनकी महान् उपलब्धि अमरताको प्राप्त करता है । यही मानवकी मुक्ति है, यही है उसकी भगवत्प्राप्ति । पर कितनी कठिन है इस पथकी, जीवनके इस सत्यकी, जीवन और मृत्युके तथ्यकी पहिचान । कितने कर पाते हैं इसे । किसीने सच ही कहा है अपने-आपको पहचानना शायद सबसे कठिन बात है ।

भय, निराशा, आलस्य और प्रमादको भगानेवाले दिव्य-दृष्टि देनेवाले स्वत्वकी पहचान करा मानवको मानव बनानेवाले इस विराट् रूपको हृदयमें उतारते विराट् भगवान् बदरीविशालकी पुरीकी ओर अब हम अधिक तेजीसे बढ़ रहे थे ।

पाण्डुकेश्वरसे छः मीलकी यात्रा कर अपराह्नमें हम हनुमानचट्टी पहुँचे, यहाँ हमारे एकादशी-व्रतका पारण होना था । स्नानादिसे यद्यपि पाण्डुकेश्वरमें ही निवृत्त होकर चले थे किंतु चट्टीके समीप बहते शीतल स्वच्छ गहरे झरनेमें हम सबने फिर स्नान किये और व्रतपारण किया ।

अनदेखे और अँधियारे मार्गमें जुगनूका टिमटिमाता प्रकाश भी आदमीके लिये एक बड़ा आसरा सिद्ध होता है । इसी तरह अपनी अभीष्ट और अनदेखी वस्तुके प्रति भी उसका सहज आकर्षण होता है । ये दोनों बातें हमारे लिये इस यात्रामें लागू थीं । ऋषिकेशसे चलते ही सारा दृश्य, हमारे लिये सर्वथा नया था; ऋषिकेशके ऊपर हम अभी गये नहीं थे अतः हम सबोंके मनमें एक विचित्र और बड़ा आकर्षण यहाँके हर दृश्य और वस्तुके प्रति रहता । पर इसके साथ ही नये स्थानोंके प्रति जो एक अव्यक्त आशंकाओंकी भावना यात्रियोंके मनमें रहती है, वह भी हमारे मनमें विद्यमान थी । और जब यात्राकालमें, हमारा मन प्राकृतिक दृश्यों और आध्यात्मिक भावनाओंके आनन्दसे अभिभूत रहता तो यदा-कदाचित् कतिपय दुर्घटनाओंकी आशङ्काओंसे आसन्न भी हो जाता । हर समय बड़ा जागरूक रहना पड़ता । रात्रिमें जब अपने मुकामपर पड़ते तो यात्राकी थकानके मारे यद्यपि ऐसी निद्रा आ घेरती कि दीन-दुनियाकी कुछ खबर ही न रहती, पर इस बेखबरीमें, बेहोशी न हो जाय, इसका ध्यान प्रायः सदा सभीको बना रहता । अतः इस ध्यानके कारण हम नींद भर सोते तो, पर जागते-से । श्रम और विश्रामके संयम-संतुलनके अधिकारी हम नहीं थे, इसका श्रेय हमारी खुदकी अपेक्षा प्रधानतया यहाँके जलवायु और वातावरणको ही था । गङ्गोत्तरीमें श्रीव्यासदेवजीसे कुछ चर्चा हुई थी, बातचीतके दौरानमें उन्होंने बताया था कि समूचे उत्तराखण्डमें पवित्रताकी दृष्टिसे केवल मात्र गङ्गोत्तरी एक ऐसा स्थान है, जहाँ किसी अविचार और अनाचारकी गंध नहीं मिलती; पर बदरीनाथ पुरीमें जहाँ एक ओर उसका विकास हुआ है, बिजली आयी है, आधुनिक ढंगके नये और अच्छे मकान बने हैं, बाजार बढ़ा है, तार-टेलीफोनकी व्यवस्था हुई है और यातायातकी साधन-सुविधा बढ़ी है, वहाँ दूसरी ओर बुरी बातें भी आ गयी हैं । इन बुरी बातोंमें मदिरा-सेवन और व्यभिचारतक होने लगा है । हमारे अन्य तीर्थस्थानोंमें प्रयाग, वाराणसी, मथुरा, वृन्दावन आदिको ही लीजिये, इन स्थानोंके यात्रियोंको मालूम है कि जहाँ ये दो बातें पहुँच जाती हैं वहाँ सब कुछ होने लगता है, जो न होने लायक है वह भी । पर उत्तराखण्डके इन धामोंकी और उत्तर-प्रदेशके इन तीर्थोंकी स्थितिमें काफी अन्तर भी है । प्रयाग, वाराणसी, मथुरा, वृन्दावन आदिमें, जहाँ एक ओर अनाचारके अड्डे हैं, गुण्डे हैं, वहाँ यात्रियोंकी हिफाजत और सुरक्षाके भी पूरे-पूरे साधन रहते हैं । जाने-आने और निवास आदिके, फिर पुलिस आदिकी नागरिक जीवन होनेके कारण पर्याप्त व्यवस्था रहती है । किंतु यहाँ तो मार्गमें ही यात्री लुट-पिट जाय और उसका पता तक न लगे । ऐसे स्थानोंपर, जहाँ एक बार ये बातें होनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू हुई, उनको बढ़ावा ही मिलेगा और आगे चलकर यात्रियोंके मनमें अरक्षाकी भावना पैदा हो जायगी। पीपल-कोटीसे जब हम इस मार्गपर रवाना हुए तो केदारनाथके मार्गकी भाँति हमें चट्टियोंके मकानोंपर, पाषाण-शिलाओंपर कुछ सूचनाएँ और संकेत-वाक्य अङ्कित दृष्टिगोचर हुए। कुछ सूचनाओंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानकी दूरी तथा केदारनाथ मार्गके सदृश ही स्वास्थ्य-सम्बन्धी सूचनाएँ थीं। किंतु इनमेंसे अधिकांश सर्वथा नयी थीं। जैसा कि ऊपर लिखा है। अभीष्ट पथ और अनदेखी वस्तुके प्रति आदमीका आकर्षण अधिक होता है। अपने इसी आकर्षणके कारण इस ओरकी सारी बातें, सारे समाचार और सारे दृश्य एकबारगी जान लेनेकी जिज्ञासा हमारे मनमें सदा बनी रहती थी। बड़े चावसे इन सूचनाओंको हम पढ़ते। इनमेंसे दो थीं—'अपने सामान व साथियोंकी सावधानीसे रखवाली कीजिये।' 'खानेकी वस्तुओंमें मिलावट हो तो उसकी शिकायत स्वास्थ्य-विभागके अधिकारियोंको कीजिये।' कुछ और थीं, पर इन दो हिदायतोंमें ही सारी बातें आ जाती हैं। 'समझदारको इशारा काफी है' की उक्तिके अनुसार अपने सामान और साथियोंकी रखवाली-वाली तथा खाद्य-पदार्थोंमें मिलावटवाली ये दोनों बातें आदमीको चौंका देनेके लिये पर्याप्त हैं। उन्हीं दो चेतावनियोंको पढ़ हमें व्यासदेवजीका बदरीनाथ-सम्बन्धी कथन याद आया। हमारे मनमें सहसा यह बात पैदा हो गयी कि यहाँका चरित्र वैसा पवित्र नहीं, जैसा अबतक हम उत्तराखण्डके तीन धामोंमें देखते आये थे। दुविधाभरे मनसे हम हर समय चौकन्ने रह इस ओर बढ़ रहे थे। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीके यात्राकालमें मार्ग-विषयक, निवासविषयक और खाद्य पदार्थोंके अभावकी स्थितिमें कितनी असुविधाएँ उठायी थीं, ये कुछ कम हुईं केदारनाथकी यात्रामें। बदरीनाथकी यात्रामें अब हमें उक्त सभी असुविधाओंका सामना न करना पड़ रहा था; मार्ग चौड़ा था, उतार-चढ़ाववाला था, पर समतल; निवासके लिये भी सुन्दर हवादार मकान मिल रहे थे, खाद्य-सामग्री भी प्रचुर मात्रामें उपलब्ध थी। यातायातके साधन भी बढ़े थे। अब तो जोशीमठतक मोटर-मार्ग बन गया है, यानी केवल २८ मील ही पदयात्रा शेष रह गयी है। किंतु इन सब सुख-सुविधाओंके मिलते उक्त हिदायतोंसे हमारे मनमें एक जो दुविधा उत्पन्न हो गयी, वह भयावह थी। हमारे हितकी दृष्टिसे ही नहीं, बदरीनाथ धामकी पवित्रताकी दृष्टिसे भी। ऐसे स्थलोंपर इन संसारी बातों, इन बुराइयों और बुरी प्रवृत्तियोंका आभास भी यात्रियोंके तीर्थ-सुखको क्षीण कर देता है। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीमें अगणित असुविधाओंको उठाते, इन सब बातोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण हम जिस आन्तरिक सुखका अनुभव करते उस सुखमें यहाँ भी आकण्ठ डूबे रहनेपर भी यहाँ इन थोड़ी-सी सुविधाको देख और इन सुविधाओंकी जनक अगणित आपदाओं भरी आशंकाओंका मनमें उदय होते ही वह सुख न्यून होने लगता। सुविधाप्रेमी मानव ही तो दुविधाओंका सृजन करता है। इसीलिये कभी-कभी हमारा यह मत हो बैठता है कि भारतीय अध्यात्मके अधिष्ठान उत्तराखण्डके इन चारों प्रतिष्ठानोंकी पवित्रता-प्रतिष्ठा और आकर्षणको अक्षुण्ण रखनेके लिये सरकारको कुछ कड़े कदम उठाने चाहिये और इन्हें आज जो नगरोंका स्वरूप दिया जा रहा है, यहाँ जो नागरिक जीवन बढ़ रहा है, उसे रोकना चाहिये। ये तो केवल हमारे अध्यात्मकी आराधनाके अधिष्ठानमात्र रहें; किंतु वर्तमान समयमें हर क्षेत्रमें प्रगतिका जो चक्र चल रहा है उसे देखते हुए हमारी इस बातमें अब कोई तुक नजर नहीं आता और इन पवित्र देवस्थानोंके भविष्य-रूपका पूर्वाभास हमें आज दिखायी देने लगा है जो निस्संदेह निकट-भविष्यमें ही हमारे अन्य तीर्थोंके अनुरूप हो जायगा।*

( क्रमशः )

* तीर्थ तभीतक पवित्र रह सकते हैं, जबतक उनमें श्रद्धा-भक्तिसम्पन्न सदाचारी तीर्थयात्री ही जायँ और वहाँ सदा निवास करनेवालोंको बाहरी सुख-सुविधा न मिलकर तपस्वीका-सा जीवन बिताना पड़े। जहाँ यातायातकी सुविधा बहुत हो जाय, सैर-सपाटेके लिये या धनोपार्जनके लिये लोग जाने लगें—वहाँ तीर्थबुद्धि कायम नहीं रह सकती। तीर्थबुद्धि गयी कि फिर कोई कुछ भी कर सकता है। कुछ समय पहले ऋषिकेश बड़ा पुण्यस्थल था। वहाँ झाड़ियोंमें तपस्वी-महात्मा रहते थे। जबसे बड़े-बड़े मकान बने, सुख-सुविधा बढ़ी, बेचारे सच्चे महात्माओंको वहाँसे खिसकना पड़ा। अब तो वहाँ करोड़ों रुपयोंके कारखाने बननेकी बात है। वे बन जायँगे, तब तो रही-सही पुण्यमयता भी नष्ट हो ही जायगी। यही हाल आपके लिखनेके अनुसार श्रीबदरीनाथका हो रहा है। ज्यों-ज्यों मनचले लोग सैर-सपाटेके लिये तथा एकान्त शीतप्रदेशको विलासभूमि मानकर विलासकी भावनासे वहाँ अधिक जायँगे, बसेंगे, त्यों-त्यों उनकी माँग पूरी करनेके लिये, धनोपार्जनकी कामनावाले भी वहाँ बढ़ जायँगे, फिर सब जगह जैसे अनर्थ होते हैं, वैसे ही वहाँ भी होंगे। पर इस समय प्रगति तथा विकासके नामपर जो कुछ हो रहा है, कारखानोंको ही तीर्थस्थल माननेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है और अर्थोपार्जन तथा भोगको ही उन्नतिका स्वरूप माना जा रहा है, उसे देखते तो कामोपभोग-परायणताकी वृद्धि और उसके फलस्वरूप नैतिक पतन ही होता दीखता है। भगवान् मङ्गल करें।—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# महामना मालवीयजीके कुछ संस्मरण

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय सन् १९०६ के लगभगसे है। उस समय मैं कलकत्तेमें रहता था। वे जब-जब पधारते, तब-तब मैं उनके दर्शन करता। उस समय वे कभी स्वर्गीय पण्डित सुन्दरलालजीके मकान हरीसन रोडमें ठहरते। कभी बड़तल्लामें श्रीशीतलप्रसादजी खडगप्रसादजीकी गद्दीमें। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनकी परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उनके साथ एक कुटुम्बका-सा सम्बन्ध हो गया। वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मैं उन्हें परम आदरणीय पितासे भी बढ़कर मानता। इस नाते मैं उन्हें पण्डितजी न कहकर सदा बाबूजी ही कहता। घरकी सारी बातें वे मुझसे कहते-करते। कुछ समय तो मैं उनके बहुत ही निकट सम्पर्कमें रहा, इसलिये मुझको उन्हें बहुत समीपसे देखने-समझनेका अवसर मिला। उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी और उनका कार्यक्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था। वे परम धार्मिक होनेके साथ ही बहुत सुलझे हुए राजनैतिक थे। शिक्षा-विस्तार—प्राचीन सनातन धर्मकी रक्षा करते हुए जनतामें सत् शिक्षाका प्रसार तो उनके जीवनका प्रधान कार्य था। वे सुधारक होनेपर भी प्राचीन वर्णाश्रम-पद्धतिके संरक्षक थे; उदार होते हुए ही भोजनकी शुद्धिमें बड़े कट्टर थे; अर्वाचीन संस्कृतिसे लाभ उठानेवाले होकर भी प्राचीन संस्कृतिके प्रतीक थे। आततायी-वधका स्पष्ट उपदेश करनेवाले कठोरहृदय होते हुए भी वे एक क्षुद्रतम जीवकी हिंसासे डरते थे। नरम दलके माने जानेपर भी गरमीके अवसरपर सबसे अधिक गरम थे; सबको प्रसन्न रखनेकी मधुर कलाके आकर होनेपर भी स्पष्टवादी थे; वाइसरायों, गवर्नरों तथा नरेशमण्डलसे समादृत तथा उनके प्रति प्रेम रखते हुए एवं उनसे मिलते रहनेवाले होनेपर उस समयके सरकारविरोधी गाँधीजीसे खुला स्नेह करते और उनका समादर करते थे। यहाँतक क्रान्तिकारी युवक भी उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे; स्त्री-शिक्षाके प्रसारक होनेपर भी वे स्त्रियोंकी प्राचीन मर्यादामें श्रद्धा रखनेवाले थे और वर्तमान युगके साहित्यका अध्ययन करनेवाले होकर भी प्राचीन महाभारत-भागवतादिका नित्य श्रद्धाभक्तिपूर्वक पारायण करते थे। हिन्दूविश्वविद्यालय अपने ढंगकी एक ही शिक्षा-संस्था है जो अपना जोड़ नहीं रखती और उनके धर्मप्रेमकी विजयध्वजा सदा फहराती रहेगी। विश्वविद्यालयमें विश्वनाथका मन्दिर उनके साहस, धर्मप्रेम तथा आस्तिकताका ज्वलन्त प्रमाण है। यहाँ उनके पवित्र जीवनके दो-चार संस्मरण संक्षेपमें लिखकर मैं अपनेको पवित्र करता हूँ।

(१) वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले—"भैया! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी। पर है महान् 'वरदान-रूप'।" इस प्रकार प्रायः आध घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—'बाबूजी! जल्दी दीजिये, कोई आ जायँगे।'

तब वे बोले—'लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ—सफलता प्राप्त करूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रक्खा और कहा—'बच्चा ! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ । तुम जब कहीं भी जाओ तो जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो । तुम सदा सफल होओगे ।' मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया । हनुमानप्रसाद ! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ । नहीं तो, मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली । आज यह महामन्त्र—परम दुर्लभ वस्तु मेरी माताकी दी हुई तुम्हें दे रहा हूँ । तुम इससे लाभ उठाना ।" यों कहकर महामना गद्‌गद हो गये ।

मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया । अब तो ऐसा हो गया है कि घरभरमें सभी इसे सीख गये हैं, जब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी 'नारायण-नारायण' उच्चारण करने लगते हैं । इस प्रकार रोज ही—किसी दिन तो कई बार 'नारायण' की और साथ ही पूज्य मालवीयजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है ।

( २ ) इसी यात्रामें वे आजमगढ़से मोटरमें आये थे । मैं राप्ती नदीके उस पार उन्हें लाने गया था । उनकी मोटरको नावसे पार उतरना था । मैं उस पार जाकर ठहर गया और श्रीमालवीयजीके आनेपर उनके चरण छूकर मैंने प्रणाम किया । उनके चेहरेपर उदासी छायी थी । सदा हँसमुख रहनेवाले महामनाके मुखपर गम्भीरता तथा उदासी देखकर मैंने कारण पूछा, तब आपने बताया कि 'मुझे इस बातसे बड़ा विषाद हो रहा है कि थोड़ी ही दूरपर इस मोटरसे दबकर एक गिलहरी मर गयी । मैं जबतक प्रायश्चित्त न कर लूँगा, मुझे शान्ति नहीं होगी ।' मैं क्या कहता । उन्होंने गोरखपुर पहुँचनेके बाद शिवके षडक्षर 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका जप करके प्रायश्चित्त किया और गिलहरीकी सद्गतिके लिये भगवान् महेश्वरसे प्रार्थना की । जीवदया और ब्राह्मणके सदय हृदयका कैसा उदाहरण है ।

( ३ ) महामनाके एक पुत्र बड़े अर्थसंकटमें थे । उनको महामनाने तारमें लिखा—'तुम आर्त होकर विश्वाससे गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो, इससे तुम्हारा संकट दूर हो जायगा ।' फिर एक पत्रमें उनको लिखा—'भगवान्‌पर विश्वास रक्खो, धैर्य मत छोड़ो और गजेन्द्र-स्तुतिका आर्तभावसे विश्वासपूर्वक पाठ करो ।* मैं एक बार नाकतक ऋणमें डूब गया था, गजेन्द्रस्तुतिके पाठसे मैं ऋणमुक्त हो गया था, तुम भी इसका आश्रय लो ।' अपने कष्टमें पड़े पुत्रको बिना पूर्ण विश्वासके कौन पिता ऐसा लिख सकता है ?

( ४ ) बम्बईमें महामना मालवीयजी पधारे थे । श्रीरामेश्वरदासजी बिड़लाके सैंडहर्स्ट रोडके भवनमें ठहरे थे । रात्रिका समय था । बम्बईके एक प्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० रमापतिजी मिश्रसे उनकी बातचीत हो रही थी । श्रीमिश्रजीने कहा—'मालवीयजी ! आप मुझे सौ गाली देकर देख लीजिये, मुझे क्रोध नहीं आयेगा ।' इसपर हँसकर मालवीयजी बोले—'महाराज ! आपके क्रोधकी परीक्षा तो सौ गालियोंके पश्चात् होगी, परंतु मेरा मुँह तो पहली ही गालीमें गंदा हो जायगा ।' मालवीयजीके इस उत्तरको सुनकर मिश्रजी महाराज चकित दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए नतमस्तक हो गये ।

महामनाका अन्तिम लेख नोवाखालीमें होनेवाले हिंदुओंपर भयानक अत्याचारसे पीड़ित हृदयका आर्तनाद तथा सबके लिये महान् उपदेशप्रद एवं पथप्रदर्शक था । वह लेख 'कल्याण' के लिये ही लिखा गया था । मेरे सम्मान्य मित्र—महामनाके भक्त डा० श्रीभुवनेश्वर-

* श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धका तीसरा अध्याय यह स्तुति है । गीताप्रेससे अलग भी प्रकाशित हो चुका है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथजी मिश्र उसको लिखवाकर लाये थे। उसे पढ़ना चाहिये।

महामनाकी शतीजयन्ती मनायी जा रही है। यह बहुत अच्छी बात है। उनकी असली जयन्ती तो उनके मार्गका अनुसरण करनेपर ही मनायी जा सकती है। उनके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाये हुए देशभरमें फैले हुए हजारों विद्वान् तथा महामनाके उपकारोंके ऋणसे दबी हुई भारतकी जनता उनके मार्गका अनुसरण कर अपनी सच्ची श्रद्धाका परिचय दे—यह सबसे मेरी विनीत प्रार्थना है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

# विश्वशान्तिका प्रधान उपाय वाणी-वशीकरण

( लेखक—पं० श्रीभगवानदेवजी शर्मा गुरुकुलीय सिद्धान्तशास्त्री )

**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।**

( यजुः २६ । २ )

वेदके इस मन्त्रमें कहा है कि—'कल्याणकारी वाणी बोलनी चाहिये।' बहुतसे लोग एक विशेष समुदायके साथ ही मधुरताका व्यवहार करते हैं। जब कि वेद भगवान् संकेत करते हैं कि सबके साथ मीठी कल्याणकारी वाणी बोलनी चाहिये। सृष्टिरचनासे लेकर आजतक जितने भी महापुरुष ऋषि-मुनि हुए हैं, उन्होंने पुकार-पुकारकर यही कहा है कि—ऐ संसारके लोगो! यदि तुमलोग सुख और शान्ति चाहते हो तो वाणीमें संयम और मिठास लाओ! वेदमें एक स्थानपर कहा है—

**मधुमती स्थ मधुमती वाचमुदेयम्।**

( अथर्व० १६ । २ । २ )

हे प्रजाओ! तुम मधुयुक्त होओ, मैं मधुर वाणी बोलूँ। अर्थात् जो चाहता है कि लोग उसके साथ मीठा व्यवहार करें, उसे दूसरोंके साथ मीठा व्यवहार करना चाहिये। परमात्माने उपदेश किया है सृष्टिके सारे पदार्थ मधुरताका व्यवहार कर रहे हैं, तू भी मधुरताका व्यवहार कर।

देखिये, कितने मधुमान्=मधुर मन्त्र हैं—

**मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।**
**माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥** ( ऋ० १ । ९० । ६ )

अर्थात्—सृष्टि नियमकी अनुकूलतासे चलनेवालेके लिये वायु मिठास लाती है, नदियाँ मिठास बहती हैं, ओषधियाँ हमारे लिये मीठी हैं।

**मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः।**
**मधु द्यौरस्तु नः पिता॥** ( ऋ० १ । ९० । ७ )

अर्थात्—रातें मीठी हैं, प्रभात मीठे हैं, पृथिवीकी धूलि या पृथ्वीलोक भी मीठा है, पिता द्यौ भी हमारे लिये मधुर हो।

**मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमान् अस्तु सूर्यः।**
**माध्वीर्गावो भवन्तु नः।** ( ऋ० १ । ९० । ८ )

अर्थात्—वनस्पति हमारे लिये मधुमान्=मीठी हैं, सूर्य भी हमारे लिये मधुमान् हो। हमारी गौएँ माध्वी=मिठासवाली हों।

यह सब मिठास ऋतानुसारके लिये हैं। ऋत कहते हैं—सरल सीधे, सृष्टि नियमानुकूलको।

प्रकृत मन्त्रमें वाणीको मधुमतीके साथ 'सुमेधाः' भी कहा है। मीठा बोलो, किंतु बुद्धिके साथ बोलो, बुद्धि-रहित मधुर भाषा किस कामकी। मधुर वचनको बुद्धि-युक्त कहनेका प्रयोजन है—यदि वक्तामें बुद्धि हो तो वह अप्रिय सत्यको भी प्रिय बना लेगा।

स्मृतिकार मनुने भी कहा है—

**सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्मा ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।**

अर्थात्—सच बोलो, मीठा बोलो, किंतु अप्रिय सत्य न बोलो। अप्रिय सत्य कहनेके लिये भी स्मृतिकार रोकते हैं। कारण, वह वाणी नहीं, जो अन्योंको अप्रिय लगे। वाणीसे ही मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति हो सकती है। वाणीसे ही वह नरकका अधिकारी होता है। जिसने वाणीकी उपासना नहीं की, वह चाहे कितना भी प्रयत्न करे, परंतु वह साधारण मनुष्य ही रहता है और दुखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन व्यतीत करता है। कारण यह है कि वह न कहने योग्य बातें कह जाता है। इसीलिये तो कविने कहा है—

ऐसी वाणी बोलिये, मनका आपा खोय।
औरोंको शीतल करे, आपहि शीतल होय॥

मधुमती वाणी और सत्य मानवको देवता बना देता है। संयम-रहित वाणी अनर्थकारिणी होती है। ऐसी वाणीके कारण अनेक वंश, जातियाँ और देशोंका सर्वनाश होता रहता है और होता रहेगा। तलवारका घाव तो भर जाता है, परंतु वाणीका घाव नहीं भरता। वाणीके घावने ही महाभारतका युद्ध कराया। वह भी वाणी ही थी जो मन्थराने कैकेयीके कानमें फूँकी थी। शूर्पणखाकी वाणीके कारण ही राम-रावण युद्ध हुआ। कड़वी और असत्य वाणीने हमें बहुत-सी हानि पहुँचायी है। अब भी संसारमें होनेवाले ८० प्रतिशत पारिवारिक, जाति और राजनीतिके झगड़े, मुकदमे आदि केवल हमारी संयमरहित वाणीके कारण हैं। कितने शोक और दुःखकी बात है कि हमें यह भी मालूम नहीं कि कब कहाँ कैसे बोलना चाहिये।

आजकलके विद्यार्थी बी०ए० और एम्०ए० तो हो जाते हैं; लेकिन उन्हें वाणीका प्रयोग करना ही नहीं आता। जब ऐसे डिग्री-प्राप्त पढ़े-लिखे लोगोंके मुखसे खराब और बेमौकेके शब्द सुननेमें आते हैं तब बड़ा दुःख होता है। ऐसे संयमरहित वाणी बोलनेवालोंको नीचेके दोहेपर खास विचार करना चाहिये। निम्न दोहेमें कविने कितनी अच्छी लोकप्रिय बात लिखी है—

मीठी बानी बोलिये, सुख उपजत चँहु ओर।
बसीकरन यह मंत्र है तज दे बचन कठोर॥

संसारके सभ्य लोगो! यदि आप संसारमेंसे अशान्तिको दूर करके सुख और शान्ति लाना चाहते हैं तो वाणीके संयमपर ध्यान दें। यही एक प्रधान उपाय है, जिससे विश्वमें शान्ति हो सकती है।

## मैं तो प्रियतमकी वस्तु हूँ

आओ सब मिल, कर दो हमला, सबसे मैं कह रहा पुकार।
खुलकर खूब चला लो मुझपर सब अपने-अपने हथियार॥
किंतु न लग पायेगी मुझको इन हथियारोंकी कुछ चोट।
छूते ही मुझसे, सब होकर नष्ट, जायँगे भू पर लोट॥
क्योंकि, नहीं अब कहीं रह गया, जगसे मेरा कुछ सम्बन्ध।
प्रकृति-राज्यके गिरे टूट सब, चिरकालीन अविद्या-बन्ध॥
रहे शरीर, जाय या अब ही, आवे धन या जाय तमाम।
मिले मान या कीर्ति, भले अपमान अकीर्ति मिले बेकाम॥
नहीं स्पर्श कर सकते मुझको चिन्ता-भय-विषाद-मद-मान।
निज-स्वरूपसे बसे एक बस, बाहर-भीतर हैं भगवान॥
घुलेमिले प्रभुसे मुझको, अब नहीं सकेगा कोई मार।
कर दें भले रुद्र प्रलयंकर सकल विश्वका अब संहार॥
जबतक था प्रकृतिस्थ, लगे थे लगातार सब पीछे चोर।
प्रभु-पदस्थ होते ही वे सब भगे, प्राण ले चारों ओर॥
नाम-रूपके परिवर्तनसे मेरा कुछ न लाभ-नुकसान।
मैं तो हूँ बस, प्रियतम प्रभुकी निज-स्वरूपगत वस्तु महान्॥
प्रियतमका आनन्द दिव्य है मेरा सहज नित्य आनन्द।
परम शान्ति प्रियतम की है बस, मेरी सहज शान्ति स्वच्छन्द॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बदरिकाश्रम-श्राद्ध और गया-श्राद्धपर शास्त्रीय विचार

( लेखक—स्वर्गीय महामहोपाध्याय सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र पण्डित श्रीविद्याधरजी गौड, अग्निहोत्री )

**शिरःकपालं यत्रैतत्पपात ब्रह्मणः पुरा ।**
**तत्रैव बदरीक्षेत्रे पिण्डं दातुं प्रभुः पुमान् ॥**
**मोहाद् गयायां दद्याद् यः स पितॄन् पातयेत् स्वकान् ।**
**लभते च ततः शापं नारदैतन्मयोदितम् ॥**

( सनत्कुमारसंहिता )

'प्राचीनकालमें जहाँ यह ब्रह्माजीके सिरकी खोपड़ी गिरी थी, वहीं बदरी-क्षेत्रमें मनुष्यको पिण्डदान करना चाहिये । जो पुरुष बदरी-क्षेत्रमें पिण्डदानकर अज्ञानवश गयामें पिण्डदान करता है वह अपने पितरोंकी अधोगति कराता है और उसे पितरोंसे शाप प्राप्त होता है । हे नारद ! यह मैंने तुमसे कहा ।'

यद्यपि 'सनत्कुमार-संहिता'के इस वचनसे जो बदरिकाश्रममें श्राद्ध कर चुका, उसका गयामें श्राद्ध करना निषिद्ध-सा प्रतीत होता है तथापि वास्तवमें यह वचन निषेधक नहीं है, क्योंकि—

**गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्तो नाभिगच्छति ।**
**शोचन्ति पितरस्तस्य वृथा तस्य परिश्रमः ॥**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः ।**
**प्रदद्याद् विधिवत्पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः ॥**

'जो पुरुष गया जानेकी शक्ति रहते पितरोंके श्राद्धके लिये गया क्षेत्रकी यात्रा नहीं करता, उसके पितर शोक व्यक्त करते हैं और उस पुरुषका जीवन-पर्यन्तका धर्मार्थ सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है । इसलिये द्विजातिमात्रको प्रयत्नपूर्वक गया-क्षेत्रमें जाकर एकाग्र मनसे विधिवत् पिण्ड-प्रदान करना चाहिये । ब्राह्मणका तो विशेषरूपसे यह कर्तव्य है ।'

उपर्युक्त वचनोंसे गयाश्राद्ध पितरोंके ऋणसे मुक्ति प्रदान करनेके कारण 'नित्य' कहा गया है तथा उसके अकरणमें 'प्रत्यवाय' ( पाप ) सुना जाता है । इसलिये जीवन और सामर्थ्य रहते गया-श्राद्ध मानवका अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य प्रतीत होता है एवं निबन्धकारोंमें भी किसीने बदरिकाश्रममें श्राद्ध करनेके अनन्तर गयामें श्राद्ध न करनेका उल्लेख नहीं किया है । इसलिये उक्त दोनों श्लोकोंमें 'मोहात्' ( मोहवश ) और 'शापम्' ( पितरोंसे शाप प्राप्त होता है ) इत्यादि वाक्योंका तात्पर्य बदरिकाश्रममें श्राद्ध करनेके अनन्तर गया-श्राद्धके निषेधमें नहीं है, अपितु—

**'न हि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते किंतु विधेयं स्तोतुम्'**

( निन्दाका निन्दनीयकी निन्दामें तात्पर्य नहीं है, किंतु विधेय ( प्रस्तुत ) की प्रशंसामें तात्पर्य है ) इस न्यायसे वे बदरिकाश्रम-श्राद्धकी प्रशंसाके बोधक हैं । अथवा जैसे—

**'अपशवो वा अन्ये गोऽश्वेभ्यः पशवो गोऽश्वाः'**

इससे गौ और अश्वके विधानके लिये अन्य पशुओंमें अपशुत्वका बोधन किया जाता है वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिये । 'बकरी' आदिमें पशुत्व प्रत्यक्ष सिद्ध है, उसका अपलाप कथमपि नहीं किया जा सकता । अतएव गौ और अश्वकी प्रशंसाके लिये ही उनसे अतिरिक्त बकरी आदिकी निन्दा है । उस निन्दाका जैसे गौ और अश्वकी स्तुतिमें ही पर्यवसान है, वैसे ही प्रकृतमें भी बदरिकाश्रम-श्राद्धकी स्तुतिके लिये गया-श्राद्धकी निन्दा की गयी है, गया-श्राद्धकी निवृत्तिमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त वाक्योंका तात्पर्य नहीं है। यही व्यवस्था वार्षिक महालयादि श्राद्ध आदिके विषयमें भी समझनी चाहिये। क्योंकि—

**'म्रियमाणनिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना।'**

(मनु० ३। २७९)

'मनुष्यको पितृकर्म जीवनपर्यन्त कुश हाथमें लेकर विधिवत् करना चाहिये।'

**'मृताहं समतिक्रम्य चण्डालः कोटिजन्मसु।'**

'यदि कोई पिता-माताकी मरणतिथिमें श्राद्ध न करे तो वह करोड़ों जन्मोंतक चाण्डाल होता है।'

उपर्युक्त वचनोंके अनुसार जीवित पुरुषको जीवन-पर्यन्त अवश्य श्राद्ध करना चाहिये, ऐसा बोधित होता है और श्राद्ध न करनेपर प्रत्यवाय (पाप) सुना जाता है। अतः सिद्ध हुआ कि बदरिकाश्रममें श्राद्ध करनेपर भी गया-श्राद्ध और वार्षिक महालयादि श्राद्ध अवश्य करने चाहिये।

# अष्टग्रही

अष्टग्रही योगके सम्बन्धमें पत्रोंकी भरमार है। व्यर्थ ही लोग अति भयभीत हो रहे हैं। इसके विषयमें 'कल्याण' में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। भगवान्‌का प्रत्येक विधान ही मङ्गलमय होता है। अतः इससे भी परिणाममें मङ्गल ही होगा। भारतके लिये तो सबसे बड़ा मङ्गल यही हो गया है कि देशभरमें इस निमित्तको लेकर सर्वत्र भगवान्‌की पूजा, आराधना, यज्ञ, पाठ और कीर्तन हो रहे हैं। अष्टग्रहीयोगका भय न होता तो इस प्रकार तन-मन-धनसे ईश्वर तथा देवताकी आराधनामें लोग नहीं लगते। फिर, इन मङ्गलमय कार्योंका फल भी मङ्गलदायी होगा ही। अष्टग्रहीका ही परिणाम माना जाय तो गोवापर भारतकी विजय—पुर्तगालोंके लिये अशुभ तथा भारतके लिये शुभ घटना हुई। सैकड़ों वर्षोंका उनका राज्य गया, मान-प्रतिष्ठा गयी। इधर भारतका एक भूखण्ड स्वतन्त्र हो गया और भारतको मान-प्रतिष्ठा मिली। इसी प्रकार अष्टग्रहीका फल अशुभ ही होगा, शुभ होगा ही नहीं; ऐसी बात नहीं समझनी चाहिये। किसीके लिये परम शुभ भी हो सकता है। प्रारब्धानुसार ही फल मिला करता है।

हम ज्योतिष-शास्त्रका ज्ञान नहीं रखते इससे हमें भविष्यका पता तो नहीं है; तथापि ऐसा अनुमान है कि जितनी भयपूर्ण भविष्यवाणियाँ हुई हैं, उतना अशुभ नहीं होना चाहिये। विश्वशान्तिके लिये होनेवाले अनुष्ठानोंका फल भी होगा ही। पर ये आराधन-अनुष्ठान तथा सदाचारका सेवन तो सदा ही चालू रखना चाहिये। फिर अभी तो अष्टग्रहीका परिणाम भी अगले दो-तीन वर्षोंतक प्रकट होता रहेगा, ऐसा कहा जाता है। और अगले वर्ष क्षय-मास आदि भी अनिष्टकारक ही बताये गये हैं। अतः हमारी जनसाधारणसे प्रार्थना है कि भगवदाराधनमें सब लगे ही रहें। पर बड़े-बड़े यज्ञ तो बहुत व्ययसाध्य हैं तथा उनमें विधि-निषेध भी है। सब लोगोंके लिये तो सीधा परम शुभदायक कार्य है—अखण्ड नाम-कीर्तन, श्रीरामचरितमानसका एकाह या नवाह-पारायण, भगवन्नाम-जप, 'हरिः शरणम्' या 'नमः शिवाय' मन्त्रका जप तथा दीनोंकी सेवा। ये सब कार्य सबको करते रहना चाहिये। तथा भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपापर विश्वास रखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दो वार्ताएँ

( लेखिका—श्रीमाताजी, श्रीअरविन्द-आश्रम )

## नियमित परिवर्तन

भूतकालीन अनुभवोंसे कभी आबद्ध नहीं होना चाहिये, जो ज्ञान या अनुमति प्राप्त हो चुकी है, वह यदि विशेषरूपसे बहुमूल्य या अपूर्व प्रतीत हो, तो भी, उसे फिर पाने और उससे चिपके रहनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये । यही है वह आदर्श-वाक्य ( Motto ), जिसे तुम्हें सदा अपने मनके सामने रखना चाहिये । जो चीज तुम एक बार कह चुके, कर चुके या अनुभव कर चुके हो, उसे ही जब दुहरानेका प्रयास करते रहो तब बहुत शीघ्र और निश्चित रूपमें तुम देखते हो कि वह चीज अधिकाधिक निर्जीव, यान्त्रिक, नित्य-नैमित्तिक और इस कारण पूर्णतः निरुपयोगी-सी बनती जा रही है । उसकी आत्मा तो विलीन हो गयी है और केवल ऊपरी ढाचा बना हुआ है । जिस शब्दको तुम मुँहसे निकालते हो, उसे मुँहसे निकालते समय तुम्हें उसे अपने जीवनमें भी क्रियाशील बनाना चाहिये, जो अनुभव तुम पुनः वापस लाना या अभिव्यक्त करना चाहते हो उसे तुम्हें अपने जीवनकी एक वस्तु बना लेना चाहिये । बस, इसी तरीकेसे सत्य सजीव बनता, अपनी शक्ति और ज्योतिको अधिकृत करता तथा अपना पूरा मूल्य प्राप्त करता है ।

परंतु यदि वास्तविक रूपमें देखा जाय तो कोई दो आगे-पीछे आनेवाले मुहूर्त्त, चाहे वे तुम्हारी चेतनाके अंदर हों या जागतिक व्यापारके अंदर, ठीक एक समान नहीं होते । यदि तुम गम्भीरतापूर्वक और सचाईके साथ प्रयत्न करो तो भी तुम प्राचीनकालकी किसी चीजको, जैसी वह उस समय थी अथवा जैसी कि वह तुम्हारे सामने उपस्थित हुई थी, वैसी ही फिरसे कभी भी नहीं पकड़ सकते, ठीक-ठीक उसी ढंगसे नहीं पकड़ सकते; क्योंकि अब न तो तुम ही ठीक वैसे व्यक्ति हो और न संसार ही वैसा है । संसार एक सतत प्रवाह है, ऐसा बहुत बार घोषित किया जा चुका है; पर यह एक सतत पुनरावर्तन या पुनः घटन, केवल एक आवर्तनशील क्रमव्यवस्था नहीं है । फिर दूसरी ओर, सतत नव-नव रूप धारण करना ही परिवर्तनका विशेष लक्षण है । प्रत्येक मुहूर्त्त ही कोई-न-कोई नयी चीज रंगमंचपर उतरती है । कोई ऐसी चीज उतरती है जो पहले तरङ्गायित नहीं हुई थी । प्रकृतिसे पग-पगपर कोई-न-कोई चीज बाहर निकल रही है, जो छिपी हुई थी या उसकी गुप्त गहराईमें अन्तर्निहित थी । कोई चीज ऊपरसे उसकी सामान्य क्रियाके अंदर फेंक दी जाती है, ऐसी चीज फेंक दी जाती है जो अदृष्टपूर्व और अप्रत्याशित थी । कालकी अग्रगतिका अर्थ ही है क्रमविकास, अर्थात् वर्तमान अवयवोंमें एक नये अवयवका जुट जाना, किसी ऐसी चीजको अभिव्यक्त करना जो अनभिव्यक्त थी—'मृतं कञ्चन बोधयन्ती' जैसा कि वैदिक ऋषि कहते हैं । यद्यपि बाह्यदृष्टिको प्रत्येक चीज़ जैसी-की-तैसी प्रतीत होती है, फिर भी यथार्थमें बात वैसी नहीं होती; सर्वदा ही वर्तमान परिस्थितियोंके बीच कोई नया उपादान ऊपरसे गिरता रहता है, निरन्तर कोई नवीन स्फुलिङ्ग या प्रभाव शक्तियोंकी वर्तमान क्रीड़ामें प्रवेश करता रहता है । इस प्रकार, सच पूछा जाय तो, समस्त परिवर्तनीय वस्तुओंका एकत्र दबाव ही वह वस्तु है जो पृथ्वीपर और मनुष्यजातिके अंदर उन महान् परिवर्तनोंको उत्पन्न करती है जिन्हें 'क्रमविकास' शब्दके द्वारा संक्षिप्त रूपमें व्यक्त किया जाता है और जो सृष्टिविज्ञान और मनोविज्ञान दोनोंसे सम्बन्धित होते हैं ।

तुम्हें परिवर्तनके इस तथ्यको स्वीकार करना होगा और फिर आगे बढ़ना होगा—विश्वात्माके साथ एक होना होगा—कभी चुप खड़ा नहीं होना होगा और न पीछे वापस लौटना होगा, बल्कि आगेकी ओर ताकना होगा और आगे-ही-आगे बढ़ते जाना होगा । रुक जानेका अर्थ है मर जाना और पत्थर बन जाना । अब, यदि वस्तुएँ निरन्तर बदलती रहती हैं तो इसका अर्थ है कि वस्तुएँ बदल सकती हैं और अवश्य बदलनी ही चाहिये । बस, मनुष्यको देखना यह चाहिये कि किस दिशामें परिवर्तन घटित हो रहा है । आखिरकार परिवर्तन अच्छेके लिये हो सकता है या बुरेके लिये और यदि तुम्हें समुचित चेतना प्राप्त हो तो, तुममें वह शक्ति होगी, जो परिवर्तनको नियन्त्रित कर सके और यहाँ-तक कि समुचित प्रकारका परिवर्तन उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सके । क्या तुमने कभी पर्वतपर आरोहण किया है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतपर कई रास्ते, पथ, पगडंडियाँ होती हैं जो शिखरतक ले जाती हैं। कोई-कोई रास्ते तो थोड़े-बहुत सीधे होते हैं, कोई-कोई टेढ़े-मेढ़े; फिर दूसरे बहुत चक्करदार या बहुत लंबा चक्कर काटकर ले जानेवाले। परंतु तुम यदि ऊपरकी ओर ताकते रहो, शिखरकी ओर ले जानेवाली दिशाको जानो तो इससे कुछ आता-जाता नहीं, तब तुम ऊपर अवश्य पहुँच जाओगे। अन्यथा, यदि तुम्हारा मुँह नीचेकी ओर मुड़ा हो या तुम नीचेकी ओर ताको तो तुम शिखरसे दूर नीचेकी ओर ही चले जाओगे। उसी तरह जो परिवर्तन घटित होंगे, वे उसी दिशाकी ओर जायँगे, जिस दिशामें तुम्हारी दृष्टि होगी। और बस, एक ही दिशा है जिधर तुम्हें अपनी दृष्टि फेरनी चाहिये; वह है शिखरकी ओर, उच्चतम लक्ष्यकी ओर ले जानेवाली दिशा। इसका अभिप्राय है सचेतन होना, अधिकाधिक सचेतन होते जाना—अपने विषयमें सचेतन होना, विश्वके विषयमें सचेतन होना और फिर उन भगवान्‌के विषयमें सचेतन होना जो तुम्हारे अंदर विराजमान हैं तथा संसारभरमें परिव्याप्त हैं और उसके बाद अपने भौतिक जीवनमें तथा जगत्‌के भौतिक जीवनमें भगवान्‌को अभिव्यक्त करना।

## साकार और निराकार

जब तुम्हारी चेतना धीरे-धीरे वस्तुओंके मूलकी ओर उठती है, तब तुम अन्तमें वस्तुओंके अन्तमें पहुँच जाते हो; जिन नाम-रूपोंसे यह विश्व गठित हुआ है, उन सबके परे चले जाते हो और यहाँतक कि अन्तिम शिखरपर जो सूक्ष्म नाम-रूप हैं; उनसे भी परे चले जाते हो। तुम एक ऐसी चीजके पास पहुँच जाते हो जो निराकार, नैर्व्यक्तिक, अचिन्त्य, अद्वितीय, अनन्त और शाश्वत होती है। वह अधिक-से-अधिक विशाल शक्ति या चेतनाकी एक स्थिति होती है। जब तुम उसके संस्पर्शमें आते हो तब तुम अपना व्यक्तिगत रूप, अपना पृथक् व्यक्तित्व खो देते हो और श्रेष्ठतम स्थिति और वस्तुओंका मूल मानते हो। परंतु वास्तवमें देखा जाय तो यह वस्तुओंका अन्त नहीं है और न परात्पर स्थिति ही है। तुम उससे भी परे जा सकते हो। उस समय तुम्हारी चेतना निराकार और नैर्व्यक्तिक स्थितिमें प्रवेश करती और उसमें अपनी पृथक् सत्ताको विलीन कर देती है और उसके बाद फिर उससे बाहर निकल आती है; वह एक ऐसी सद्वस्तुके सम्मुखीन होती है जो आकारहीन नहीं होती, बल्कि साकार होती है; वह अ-व्यक्तिक नहीं होती; बल्कि एक दिव्य व्यक्ति होती है, जिसके साथ तुम एक व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर सकते हो और वह अ-व्यक्तिकके साथ स्थापित सम्बन्ध या सम्बन्धहीनताके जैसा नहीं होगा। परंतु आकारहीनके परेका यह आकार निम्नतर चेतनाके आकारोंके जैसा नहीं होता; वह तो आकारोंका आकार होता है, और वह किसी मनुष्यके जैसा या किसी दिव्य पुरुष या देवताके जैसा भी कोई पुरुष नहीं होता, बल्कि एक सारभूत व्यक्तित्व होता है, पुरुषोंका पुरुष होता है। इसमें अहंबद्ध व्यक्तित्व ( देवतातक भी अहं-बुद्ध होते हैं ) की सीमा या पृथक्ता नहीं होती। इसमें एक प्रकारकी तरल बद्धता या सीमारेखा तो होती है जो एक सुनिश्चित व्यक्तिकी बद्धता या सीमारेखाकी तरह पहचानी जाती है, पर उसमें निम्नतर आकारोंकी दृढ़ता या कठोरता नहीं होती।

और फिर भी इस परात्पर व्यक्तितक पहुँचनेके लिये, उसके संस्पर्शमें आनेके लिये आकारहीन नैर्व्यक्तिक अनन्तताके अनुभवको पाना और उसमेंसे गुजरना आवश्यक है; क्योंकि उस अनुभवसे निम्नतर साँचे, संकीर्ण अहंजन्य रचनाएँ, जो सच्चे व्यक्तिके केवल विकृत आकार या धूमिल प्रतिमूर्त्तियाँ हैं, भंग हो जाती हैं।

लगभग उसी धारामें प्राणको भी स्वयं रूपान्तरित होनेके लिये अग्रसर होना पड़ता है। उसे भी अपने अज्ञानपूर्ण और उग्र आवेगोंसे, अपनी अन्धकारपूर्ण रचनाओंसे अवश्य मुक्त हो जाना चाहिये; उसे पूर्णतः स्वच्छ और शुद्ध बन जाना चाहिये। इसके लिये उसे अचञ्चल और नीरव होना—पूर्णरूपसे स्थिर और निष्क्रिय बन जाना सीखना चाहिये; और उस अचञ्चल निष्क्रियताके अंदर उसे भागवत-उपस्थितिका अनुभव करना, उसके विषयमें सचेतन होना तथा उसमें एकदम सराबोर हो जाना सीखना चाहिये। एक बार जब वह ऐसा कर लेता है तब उसे बाहर निकल आने और सक्रिय जीवनमें भाग लेनेके लिये पुकारा जाता है। परंतु सामान्यरूपमें, जब मनुष्य कर्मविरत हो जाता है और अन्तर्मुखी अचञ्चल जीवन यापन कर चुकता है, तब बाहरी जीवनमें फिर वापस आनेपर उसकी प्रवृत्ति पुनः पुराने अभ्यस्त तौर-तरीकों और प्रतिक्रियाओंकी ओर मुड़नेकी होती है; मनुष्य चेतनाकी उसी पुरानी खाईमें फिरसे जा गिरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उस समय प्राण-मनुष्यको भागवत-उपस्थितिके अनुभव और उपलब्धिको इस प्रकार सक्रिय और सशक्त बनाना चाहिये जिससे कि वह एक सजीव सत्य बन जाय; प्राणको केवल अन्तर्मुखी स्थितिमें ही नहीं वरं सभी क्रियाओंके बीच भी उसके विषयमें सचेतन बने रहना चाहिये। प्राणकी सारी शक्ति एक पूर्ण और पूर्णताप्राप्त जीवनमें नियोजित हो जानी चाहिये, पर उसे पुराने साँचोंमें ही नहीं दौड़ाना चाहिये और अभ्यासगत पद्धतियोंको ही नहीं अपनाना चाहिये। भगवान्‌का, भगवान्‌की चेतनाके चिरस्थायी सत्य और सौन्दर्यका सतत बोध बने रहनेपर प्राण एक नवीन जीवनको अधिकृत कर लेगा और एक नये प्रकारके जीवनकी सृष्टि कर लेगा।

---

# रामचरितमानसका मङ्गलाचरण

( लेखक—पं० श्रीसुनहरीलालजी शर्मा, साहित्यरत्न )

रामचरितमानस कविकुलतिलक प्रातःस्मरणीय गोस्वामीजीकी वह दिव्यवाणी है जो मरणधर्मा मानवोंको श्रीरामचरित्रकी पवित्र स्वादु-सुधा पिलाकर अमरत्व प्रदान करनेके लिये धरा-धाममें अवतीर्ण हुई है। युग-युगान्तरोंसे असंख्य नर-नारी मानस-कथाकी पावन मन्दाकिनीमें स्नान करके पाप-तापसे रहित हो अनन्त-शान्ति-सुधाका लाभ करते आ रहे हैं। मानसमें शस्त्र धारण करनेमें सर्वश्रेष्ठ मर्यादा-पुरुषोत्तम, ऋषिजन-प्रिय, भगवान् श्रीरामकी ललित लीलाका वर्णन है। आजसे करीब लाखों वर्ष पूर्व धर्म, न्याय और नीतिके लिये संग्राम करनेवाले एक अलौकिक महापुरुषका भारतवर्षमें अवतरण हुआ। कालका पुरुषार्थ प्रत्येक वस्तुसे रस खींच लेनेमें समर्थ है। प्रत्येक वस्तुको काल नीरस बना देता है; क्योंकि वह इसमें पटु है। **कालः पिबति तद्रसम्।**

आजकी किसी महत्त्वपूर्ण घटनाको कोई पुनः याद नहीं करता। किंतु यह एक ऐसे अनुपम अलौकिक परम पुरुषका चरित्र है, जिसे लाखों वर्ष व्यतीत होनेपर भी काल नीरस नहीं बना सका। कालके पुरुषार्थको जहाँ पराभव मिला, काल जिसके रसका पान नहीं कर सकता, लाखों वर्षोंतक जिसके व्यक्तित्वकी छाप बनी रहे, ऐसा कोई व्यक्ति संसारके इतिहासमें देखनेको नहीं मिलता। परंतु ऐसे उदात्त परम पुरुषका मानसमें चरित्रचित्रण है। आज उसके मङ्गलाचरणके विषयमें यत्किंचित् विचार किया जाता है।

अवश्य ही अति शुभ मुहूर्तमें गोस्वामीजीने मानसकी रचना प्रारम्भ की थी। जान पड़ता है कि हंसवाहिनी वीणापाणि माँ सरस्वतीको पूर्णावकाश था। माँ निश्चिन्त थी। प्रफुल्लित थी। कविता-कलापकी तरंगें उसके हृदयमें लहलहा रही थीं। अपने परम भक्तका काव्य-रचनाकी ओर झुकाव देख लीलामय भक्तवत्सल भगवान्‌की आज्ञा हुई। फिर क्या था, गोस्वामीजीके उर-अजिरमें माँ सरस्वती स्वतन्त्र-स्वच्छन्द गाने लगीं। फिर क्या था—क्रम चला। सचमुच सुमेरुकी सृष्टि हो गयी। असंख्य रत्नोंकी खानि उनकी रचनाके भीतर भर गयीं, जिन्हें मर्मी सज्जन सुमतिरूपी कुदालीद्वारा खोज रहे हैं और फिर भी जिनका अन्त नहीं है।

श्रीरामचरितमानसका निर्माण अत्यन्त अलौकिक रीतिसे हुआ है। दिव्य शक्तियोंकी विशिष्ट आयोजनासे उसका महान् प्रणयन हुआ है। दिव्य रचनामें सर्वप्रज्ञात्मिका समष्टि-वाक्-शक्तिकी अवतारणा होती है, उसकी धारा अबाध और अभङ्ग होती है। अन्तःकरणकी इन्द्रियाँ अथवा मानसिक शक्तियाँ स्वतः अन्तरात्मा अन्तर्यामीकी प्रेरणासे रचनाकार्यमें प्रवृत्त होती हैं। जो जिस कोटिकी आत्मा होती है उसके चरित्र भी वैसे ही होते हैं, यथा—

> होनेवाला कोई होता है एक जो कारे।
> ग़ैब से होते हैं शामां आशकार॥

कविका अन्तःकरण विश्वका अन्तःकरण होता है। उसकी वाणी विश्वकी वाणी होती है। इसमें समस्त विश्व समाया हुआ होता है। अस्तु।

गोस्वामीजीके मङ्गलाचरणपर विचार करनेसे उनका आशय बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है। प्रारम्भिक मङ्गलाचरण संस्कृत भाषामें है, जिसके अवलोकनसे पता चलता है कि देव-वाणीके विद्वान् श्रीगोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव थे। स्मार्त शब्दका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है जो स्मृतियोंके विधानके अनुकूल अपना जीवन-यापन करता हो। स्मार्तोंकी रीतिके अनुसार ही उन्होंने पहले गणेश और सरस्वतीकी वन्दना की है। फिर शंकर-पार्वती इत्यादिकी। रामचरितमानसका प्रथम श्लोक है—

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥

वाणी और विनायककी एक साथ वन्दना करनेका प्रयोजन यह है कि दोनों मङ्गल आदिके कर्ता हैं। वाणीसे गुणोंकी उत्पत्ति करके गणेशजीको उनका रक्षक साथ-ही-साथ कर दिया है। वाणी और भक्ति नारीवर्ग तथा विनायक और ज्ञान पुरुषवर्ग हैं। वाणीको प्रथम रखकर बताया है कि इस ग्रन्थमें भक्तिकी प्रधानता होगी। वाणीका अर्थ इसकी अधिष्ठात्री शक्ति और विनायकका अर्थ बुद्धिका अधिष्ठातृ देवता है। बुद्धि और वाक्शक्ति अथवा विचार और उच्चारके बिना साहित्य सम्भव नहीं होता। यदि इन दोनोंका सामञ्जस्य न रहा तो साहित्यका स्थान अनर्गल प्रलाप ले लेगा। यद्यपि आध्यात्मिक संसारमें वाणी ब्रह्म-परिवारकी पुत्री और विनायक शिव-परिवारके देव माने गये हैं, परंतु काव्य जगत्में इन दोनों शक्तियोंका ध्यान सम्मिलित रूपमें किया जाता है। सरस्वतीका वास कवियोंके अन्तःकरणमें होता है तथा विनायक सुमतिके प्रेरक हैं। श्रीरामजीकी प्रेरणासे वैसे ही शब्द उनके मुखारविन्दसे निकलते हैं।

अन्तःकरणकी कोई स्थिति ऐसी होती है जिसमें वाक्-शक्तिका विकास होता है। जब वह शक्ति रसाकार होती है, तब उसे काव्य कहते हैं और जब वह शक्ति ज्ञानाकार होती है तब दर्शन और नीतिका रूप ले लेती है। जिनके हृदयमें पूर्व संस्कारसे रसका संचार होता है, उनकी वाणीका विकास रसाकार होता है, उसे हम काव्य कहते हैं। दिव्य विचार और तदनुकूल दिव्य उच्चारसे संयुक्त हों तो काव्यके क्षेत्रमें उनकी शक्ति पाँच रूपोंमें प्रकट होती है जिसका उल्लेख सूत्ररूपसे इस श्लोक ( वर्णानाम्''विनायकौ ) में किया गया है। वे ये हैं ( १ ) पहला अङ्ग है 'वर्ण' ( २ ) दूसरा है 'अर्थसङ्घ' ( ३ ) तीसरा है 'रस' (४) चौथा है 'छन्द' अथवा संगीतात्मकता और ( ५ ) पाँचवा है मङ्गल यानी साहित्यका हितत्व।

पूर्वाचार्योंने काव्यमें शब्दों और अर्थोंकी महत्ताका प्रतिपादन किया है। गोस्वामीजीके कथनानुसार—

कबिहिं अरथ आखर बलु साँचा।

हमारे गोस्वामीजीने काव्यमें अर्थका नहीं किंतु अर्थसङ्घका महत्त्व बताया है। शास्त्रका उद्देश्य है—ज्ञानवर्धन, अतः उसके द्वारा एक ही अर्थ द्योतित होना चाहिये। काव्यका उद्देश्य है—भाववर्धन तथा आनन्दवर्धन। अतः उसके द्वारा ऐसे अनेक अर्थोंकी उपलब्धि होनी चाहिये, जिनके द्वारा अनेक प्रकारसे आनन्दका वर्धन हो सके। काव्यके शब्दोंकी खूबी इसीमें है कि उनसे बुध और अबुध—विद्वान् और सर्वसाधारण सभीको अपनी रुचिके अनुकूल आनन्द प्राप्त हो। इसीलिये गोस्वामीजीने लिखा है—

बुध बिश्राम सकल जनरंजिनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजिनि॥

अर्थात् काव्य वही मनोहर है जो सकल जनका रञ्जन तो करे ही; परंतु विद्वानोंको भी इतने उपादेय सामग्री दे कि उनकी भाव-पिपासा और ज्ञान-पिपासा सब वहीं तन्मय होकर रह जाय।

गोस्वामीजीके मानसमें काव्य तथा शास्त्रका एक ऐसा ही अपूर्व सम्मिश्रण हुआ है।

काव्यके तीसरे अङ्ग रसके विषयमें केवल इतना ही कहना है कि गोस्वामीजीने अपनेको नौ रसोंमें ही नहीं बाँधा है। परंतु उन्होंने 'सानी सरल रस' तथा 'मगन ध्यान रस दंड जुग' इत्यादि नये-नये रसोंकी उद्भूति की है। जिस सरोवरसे असली रस निकलता है, उसे कहते हैं—रामचरित-सर। काव्यके नवों रसोंको इसी सरोवरतक पहुँचानेके लिये मानसमें उनका उल्लेख हुआ है। इन रसोंका आनन्द इतना विश्वव्यापी और आनन्ददायी हो जाता है कि—

सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान।

गोस्वामीजीके काव्यमें वही शक्ति थी। काव्यके पञ्चाङ्गका चौथा तत्त्व है—'छन्द।'

छन्दका सार है संगीतात्मकता अथवा नाद-सौन्दर्य। भावानुकूल ही शब्दध्वनि और उस ध्वनिकी गति-यति भी ठीक हो तो आनन्दका उद्रेक विशेष रूपसे हो उठता है। संगीत-तत्त्व इस छन्द-तत्त्वके अंदर समाविष्ट होता है। इसलिये गोस्वामीजीने गेयताको बड़ी प्रधानता दी है। उन्होंने राम-कथाको गानेकी ( पढ़नेकी नहीं ) बात कही है।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'छन्दसां' के बाद 'अपि' शब्द काव्यके लिये छन्दोंकी व्यञ्जनाके साथ उसकी गेयात्मकताकी भी आवश्यकता व्यञ्जित कर रहा है।

काव्यके पद्याङ्गका पाँचवाँ तत्त्व है—'मङ्गल'। इस शब्द-के साथ 'च' और 'कर्त्तारौ' दोनों शब्दोंका प्रयोग किया है। पहले 'च' का अभिप्राय समझ लेना चाहिये। 'मङ्गल'के साथ 'च' का प्रयोग करके यह व्यञ्जित किया गया है कि 'मङ्गल' ( साहित्यका हितत्व ) तो दोनों प्रकारके ( गद्य और पद्य ) काव्यों, सभी शास्त्रोंके साथ जुड़ा होना चाहिये। यथा—

'मंगल करनि कलिमल हरनि…' इत्यादि।

सज्जन लोग काव्यमें इस मङ्गल-तत्त्वकी खोज किया करते हैं। गोस्वामीजी तो डंकेकी चोट कहते हैं—

कीरति भनिति भूति भल सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥

यही वह वस्त्र है जो काव्यरूपी नायिकाको शालीनता देता है।

अब रहा 'कर्त्तारौ' शब्द। 'कर्त्तारौ' का अर्थ है—रचनेवाले। असली बात यह है कि गोस्वामीजी कविकर्मको बड़ा दुष्कर मानते थे। सच्चे साधककी भाँति इसे भी वे एक ईश्वरीय प्रेरणा समझते थे। तभी तो उन्होंने कहा है—

जापर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

कवि-प्रतिमारूपी कठपुतलीका संचालक तो वही हृदयस्थ ईश्वर है जिसके दर्शनके लिये श्रद्धा और विश्वासकी आँखें चाहिये। इसीसे मङ्गलाचरणका दूसरा श्लोक लिखा जाकर उसे इस श्लोकका पार्श्ववर्ती बनाया गया है।

गोस्वामीजी लोकोत्तर कवि थे। इतना होते हुए भी वे लिखते हैं—

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू॥

तथा—

कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ॥

गोस्वामीजी अपनी कृतिको अपनी न मानकर अपने प्रेरणादायक प्रभुके प्रतिनिधिकी मानते हैं। वही वस्तु भगवदर्पण होनेसे सुन्दर बन जाती है और कविकी उसपर छाप लग जाती है। यथा—

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥

ईशावास्योपनिषद्में लिखा है—

**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्, व्यद-धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥**

जिन दिव्यरस और भावके प्रतिक्षण भाव्यमान प्रेमा-लिङ्गनसे जिनके जीवन और आनन्दके मधुर मिलनसे सौन्दर्य और माधुर्यकी अनन्त लोल लहरियाँ छलकती हैं और उछलती चतुर्दश भुवनोंको आप्लावित करती हुई असंख्य हृदय-कमलोंको खिलाती रहती हैं। प्रकृतिकी नाना छटाओंमें जो पुरुषोत्तम, सुन्दर और क्रीडाशील राम रमण कर रहा है। अपनी अनेक भाव-भङ्गियोंसे जो प्रकृति उस नित्य नव्य नायकको रिझा रही है—सृष्टिके अन्तरमें रस और भाव-तत्त्वके जो खेल हो रहे हैं, उनकी लीलामयी जो व्याप्ति है, उसे जो अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखता है, उसीको 'कवि' कहते हैं। जो उसके तत्त्व-महत्त्वको जानता है उसे 'मनीषी' कहते हैं। जो उसमें प्रवेश कर उसका एक अङ्ग बन जाता है, उसे 'परिभू' कहते हैं और जब अङ्गीके साथ मिलकर उसकी सम्पूर्ण लीलाओंमें अपनी व्याप्तिका अनुभव करने लगता है तब वह 'स्वयम्भू' पदको प्राप्त होता है। इन्हीं 'स्वयम्भू'के तृतीय अवतरण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी थे। लिखा है—

**वाल्मीकिस्तुलसीदासो भविष्यति कलौ युगे।**
**शिवेनात्र कृते ग्रन्थे पार्वतीं प्रतिबोधितुम्॥**
**रामभक्तिप्रवाहार्थं भाषाकाव्यं करिष्यति।**
**रामायणं मानसाख्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्॥**

हमारा परम सौभाग्य है कि यह महान् ग्रन्थ हमारे पास है। आजके इस जडवादी युगमें मानससे हम क्या सीख सकते हैं, इस प्रकारके विवेचन कम सुनने और अध्ययन करनेको मिलते हैं। इसीसे यह लेख लिखा है। मङ्गलाचरणके द्वितीय श्लोक ( भवानीशंकरौ…इत्यादि ) भावार्थ फिर कभी प्रस्तुत किया जा सकता है।

जय जय सियाराम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमहंस अनन्त श्रीस्वामी नारायणदासजीका एक संस्मरण

( लेखक—पं० श्रीमदनगोपालदत्तजी )

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥
( गीता २ । २८ )

मनुष्यकी स्थितिके विषयमें गीताका यह उपदेश-वाक्य संसारकी व्यथासे पीड़ित प्राणियोंके लिये शान्तिका अनुपम संदेश है । मानव सनातन आत्माका अङ्ग है, क्षणभरके लिये व्यक्त हुआ तथा देहान्तर-प्राप्तिके बाद फिर सनातनका अंश हो गया । शरीरधारीके रूपमें प्राणीका संसारमें आना एक विलक्षण घटना है । उसकी मध्यकी व्यक्त स्थिति वास्तविक स्थिति नहीं कही जा सकती । संसारके नश्वर प्राणियोंकी सारी प्रक्रिया ही इसी मिथ्या मध्यावस्थापर आश्रित है । धर्मग्रन्थों तथा महात्माओंने बार-बार इस तथ्यका प्रतिपादन किया है, किंतु मायामें पड़े हुए संसारी जीवोंको यहाँकी यह सत्ता ही सत्य भासती है । उसके परेवाली सत्ता सत्य नहीं दीखती ।

परमहंस श्रीस्वामी नारायणदासजीके सहसा आकस्मिक दिवंगत हो जानेसे हम शतशः भक्तजनोंको बड़ी ही पीड़ा हुई; क्योंकि जिन प्राणियोंके मानसपर संतप्रवरने अधिकार कर लिया था, वे यह जानते हुए कि यह निस्सार है तथा संत-महिमा इसका उच्छेदकर निर्बाध तथा निर्बन्ध ही रहती है, अपनी श्रद्धाके पुष्प बिखेरनेके लिये विवश हैं । पार्थिव शरीरकी नश्वरताके विषयमें संतप्रवरके अनेकशः निर्वचन श्रवण करके भी, जैसे वे इस पीड़ाको छिपानेमें विफल हैं । श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ संसारकी यात्रामें अन्धेकी भाँति टटोलने-वाले प्राणियोंके लिये प्रकाश-स्तम्भका कार्य करती है; किंतु ऐसे प्रकाशके उपयोगके लिये भी निर्मल चक्षु होने चाहिये । ये संतगण ही हमें वह निर्मल चक्षु प्रदान करते हैं, जिससे हम श्रुति-स्मृति-धर्मग्रन्थ-प्रतिपादित मार्गका अनुसरण करनेमें समर्थ होते हैं ।

मेरा निजका अनुभव है कि सत्यद्रष्टा मनीषियोंकी वाणीसे निःसृत धर्मवचनोंका एक बार भाष्य श्रवण कर लेनेसे जो तत्त्वबोधकी दृष्टि प्राप्त होती है, वह अनेकों पारायणोंसे नहीं होती । गीता तथा उपनिषद्-जैसे ग्रन्थका तात्पर्य भी जैसे हम समझकर नहीं समझते । संतोंकी वाणीसे निकली हुई व्याख्या जैसे उनका नव संस्कार कर देती है और वे उपलब्धियाँ हमारे अन्तर्मनमें बैठ जाती हैं ।

धर्म तथा अधर्मका वाचिक ज्ञान असाध्य नहीं, असाध्य है उसकी व्यावहारिक प्रक्रिया । हम सामान्य जीव उससे विरक्त तथा सन्मार्गमें रत नहीं हो पाते । मेरे जीवनमें सन् १९५६ ऐसा मोड़ है जिसकी स्पष्ट स्मृति मेरे मानसपर अङ्कित हो गयी है । यह वही पुनीत समय है जब परमहंसने अपने शुभागमनसे उत्तर प्रदेशके गाजीपुर जनपद—इस गाजीपुर नगरीको पवित्र किया था । सचमुच ही 'महार्था-स्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः' तीर्थकी भाँति ही सज्जनों-के सानिध्यमें कोई तत्त्व निहित है जो बलात् हमारे मनको खींच लेता है । मेरा मन भी श्रीस्वामीजीकी ओर खिंचा । मुझे ऐसा लगा जैसे स्वयं तपस्या ही शरीर धारण करके चली आयी हो । ज्यों-ज्यों मुझे श्रीस्वामीजीके निकट आनेका अवसर आया, मैंने देखा कि इन मुट्ठी-भर हड्डियोंमें कोई अनन्त ज्योति प्रज्वलित है । जिसका वास्तविक परिचय प्राप्त करना उन प्राणियोंके लिये नितान्त कठिन है जो क्षणभरके लिये एकाग्र साधनमें असफल हैं ।

मेरे आवाससे कुछ ही दूरीपर श्रीस्वामीजी उस तपोभूमिमें भी गये, जहाँ कुछ काल पूर्व संतप्रवर श्रीपवहारीजीकी कुटिया तथा उनका साधनास्थल था । श्रीपरमहंसजीने एक कुटी, जिसकी छत जीर्ण होकर नष्ट हो गयी थी, जीर्णोद्धार-की इच्छा व्यक्त की तथा जबतक वह कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, तबतकके लिये मेरे बड़े अनुरोधसे मेरे आवास, आयना-कोठी, जो गङ्गातटके समीप ही स्थित है, उसमें लगभग एक सप्ताह रहे । श्रीस्वामीजीके सत्संगकी कीमत मैं अब लगाता हूँ । आज जब उनका पार्थिव शरीर ओझल हो गया है तथा मेरे चर्मचक्षुओंसे कभी भी दिखायी नहीं पड़ सकता, मैं कुछ अनुमान कर पाता हूँ कि उन्हें खोकर उन सहस्रों नर-नारियोंने कौन-सा महान् प्रकाश खो दिया है !

संतप्रवर परमहंस श्रीनारायणदासजीके प्रथम दर्शनमें ही मैंने समझ लिया था कि ये कोई अद्वितीय पुरुष हैं । ये सच्चे अर्थोंमें स्थितप्रज्ञ हैं । संसारके चाकचिक्यमें इनका अमर ज्ञान तथा बोध तिरोहित नहीं हो सकता । गीतामें भगवान्ने इसी स्थितिके लिये तो सम्भवतः कहा है ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥
( २ । ७२ )

श्रीस्वामीजीने संयमका रहस्य बताते हुए कहा था कि संयमका प्रथम सोपान जिह्वा ही है । क्रमशः जिह्वाके संयमसे समस्त इन्द्रियोंके संयमकी प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तथा संयम साधनमें केवल इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंके विषयोंके परित्यागसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयम सध नहीं सकता; क्योंकि गीतामें भगवान्ने कहा है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥
( २ । ५९ )

मुझे श्रीस्वामीजीकी कृपासे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि विषयोंसे मनका निग्रह-मार्ग तबतक नहीं सध सकता, जबतक कि स्वयं मनको भगवदर्पण नहीं किया जाता । इसीलिये तो वे निरन्तर जपमें लीन रहते थे और उनके जीवनकी सिद्धि ही इसी 'ॐ नारायण' मन्त्रके जपसे प्राप्त हुई थी, जिसका आनन्द-गद्गद होकर वे कथन करते थे।

श्रीस्वामीजी महाराजका जन्म, चैत्र सुदी पूर्णिमा संवत् १९३७ ( २० अप्रैल सन् १८८० ) को कायस्थ माथुरकुलके धनाढ्य और संभ्रान्त वंशमें उत्तरप्रदेशके मुरादाबाद जनपदमें हुआ था । ईश-कृपासे उन्हें नर्मदा-किनारे गुजरातके चान्दोद नामक स्थानमें 'नारायण प्रभु' के दर्शन भी हुए । यह वृत्त उन्हींके द्वारा लिखी 'एक संतका अनुभव' नामक पुस्तकसे प्राप्त होता है । यह पुस्तक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, कल्याण-सम्पादकके अनुरोध करनेपर श्रीस्वामीजीने चैत्र कृष्ण १०, संवत् १९८६ को स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें लिखी थी । पुनः नर्मदासे लौटकर संत बदरिकाश्रममें आये । समय-समयपर उन्होंने भक्तोंके अनुरोधसे भ्रमण भी अधिक किया और उस यात्रामें मेरे-जैसे कितने अकिञ्चन तथा अज्ञानान्धकारमें डूबे प्राणियोंके लिये जीवन-मार्ग आलोकित किया । उनकी आत्मा अन्तसमयमें बदरिकाश्रममें ही निवास करती रही और २३ जून सन १९६१ शुक्रवारको साढ़े ६ बजे संध्या, भीमसेनी एकादशी लगनेपर उन्होंने अपना पार्थिव शरीर भी वहीं छोड़ा । समाधि लेते समय श्रीस्वामीजीकी आयु ८१ वर्ष थी—

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी, संबत युगल हजार ।
अष्टादश उत्तर भये, नारायण भव पार ॥

श्रीस्वामी नारायणदासजीकी स्मृतिको चिरस्थायी रखनेके लिये बदरिकाश्रमके संतों तथा सज्जनोंने कुछ सुझाव पेश किये हैं । ये सुझाव संतकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं रखते; क्योंकि उनका तो सारा जीवन लोक-संग्रहकी भावनासे ओत-प्रोत था ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
( गीता ३ । २० )

किंतु संसारके प्राणियोंको निर्गुणकी अपेक्षा सगुण तथा सूक्ष्मकी अपेक्षा स्थूल ही वस्तु इन्द्रियगोचर होती है । लोगोंकी इस स्मृतिसे भी अज्ञानमें डूबे हुए हमारे-जैसे प्राणियोंको प्रकाश या चेतना प्राप्त हो सकती है । श्रीस्वामीजीकी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिये—

(१) बदरिकाश्रममें मन्दिरके सामने श्रीस्वामीजीकी समाधि तथा उनकी संगमरमरकी मूर्तिकी स्थापना ।

( २ ) वर्षमें संतप्रवरके शिष्यों तथा भक्तोंका सम्मेलन हो । एक बार आंकिन कानपुर तथा उनके दिव्यधाम-गमन पर्वपर भीमसेनी एकादशीको बदरिकाश्रममें हो ।

( ३ ) समाधि मन्दिर या कानपुरमें ही एक संग्रहालय स्थापित किया जाय जिनमें वे सारी वस्तुएँ संगृहीत हों जो महात्माके जीवनसे किसी-न-किसी प्रकार सम्बद्ध हैं ।

( ४ ) श्रीस्वामीजीके नामपर एक अखिल भारतीय स्तरपर ट्रस्टकी स्थापना हो । इसकी स्थानीय समितियाँ भी बनें तथा एकत्र धनराशिको अपने-अपने क्षेत्रोंमें भजन, कीर्तन, प्रार्थना, प्रवचन आदि धर्मप्रचारके पुनीत कार्योंमें व्यय किया जाय ।

श्रीस्वामीजीकी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके जो भी सुझाव बदरिकाश्रमके सज्जनों तथा भक्तजनोंने दिये हैं वे श्रद्धाके विषय हैं; किंतु परम सजीका उससे भी विशाल संग्रहालय उन असंख्य प्राणियोंका हृदय है जिनमें श्रीस्वामीजीके वचन तथा उपदेश संगृहीत हैं । श्रीस्वामीजीकी सच्ची भक्तिका स्फुरण तो तभी माना जायगा, जब हम भक्तजन उन शिक्षाओंको अल्पशः भी जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करेंगे । जिनकी परीक्षामें उनका पार्थिव शरीर हविष्य हो गया ।

उनके निर्वाणकी सूचनासे अन्तस्तलको एक धक्का अवश्य लगा, किंतु शीघ्र ही प्रकृतिस्थ होनेपर ऐसा लगा, जैसे श्रीस्वामीजी महाराज व्यष्टिभूत अज्ञान तथा तदुपहित चैतन्यसे जीवन-मुक्त होकर शुद्ध चैतन्य हो गये हैं । अब वे शरीरकी सीमा छोड़कर अपने कोटि-कोटि भक्तजनोंकी चेतनाके अविभाज्य अङ्ग बन गये हैं । आज उनकी दूरी हमसे अधिक नहीं हुई है, किंतु कम हो गयी है । मायासे घिरे इस संसारमें पद्मपत्रकी भाँति रहनेवाले श्रीगुरुदेव महाराज स्वामीजी अपने भक्तोंके लिये संबल तथा प्राणिमात्रके लिये प्रकाश थे । उनका जीवन उन संतोंका जीवन था जो संसारकी धाराके प्रतिकूल ही अपना अस्तित्व प्रमाणित करते हैं तथा संसारके क्षुद्र प्राणियोंकी चिन्ता तथा व्यग्रताकी निस्सारता सिद्ध करते हैं ।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥
( गीता २ । ६९ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

# जीवनमें उतारनेकी बातें

देखो दुःखी-दीन-आर्त-रोगीमें छिपे सदा भगवान।
सादर सेवा करो यथोचित: तन-मन-धनसे सह-सम्मान॥ १॥
दुखी जनोंपर हँसो नहीं, मत करो उपेक्षा रख अभिमान।
कभी दिखाओ मत वैभव-पद-जाति-शक्तिकी झूठी शान॥ २॥
प्यार करो, सुख दो सबहीको यथायोग्य, आत्मा-सम मान।
दुखमें दुखी बनो दुखियोंके, करो न कभी तनिक अपमान॥ ३॥
जो कुछ तुम्हें मिला, वह सब है प्रभुका, तन-धन-प्राणि-पदार्थ।
सविनय प्रभु-सेवामें कर अर्पण साधो निज असली स्वार्थ॥ ४॥
अपने प्रति अन्योंसे तुम जो स्वयं चाहते हो व्यवहार।
सबके प्रति तुम करो नित्य तन-मनसे सदा वही आचार॥ ५॥
जिसको तुम प्रतिकूल मानते अपने प्रति, ऐसा वर्ताव।
करो कभी मत अन्य किसीसे भी वह वर्त्तन, रख सद्भाव॥ ६॥
सेवा करो पिता-माता-गुरुजनकी नित रख मनमें चाव।
प्राप्त करो आशिष अमोघ तुम रक्खो मनमें श्रद्धा-भाव॥ ७॥
बोलो कभी न वचन झूठ, कटु, व्यर्थ, अहितकर हो बेभान।
करो सत्य, शुचि, सार्थक, हितकर, मधुर वचनका सुखकर दान॥ ८॥
सभी इन्द्रियोंके विषयोंमें, नित्य बस रहे राग-द्वेष।
उन्हें जान तुम शत्रु-लुटेरे, कभी न वशमें होओ लेश॥ ९॥
ममता रख अनन्य प्रभु-पदमें, विषयोंमें नित रहो समान।
करो न अकर्तव्य तन-मनसे इन्द्रिय-भोगोंमें सुख जान॥ १०॥
ईश्वरको भजना-पाना ही मानवका कर्तव्य महान्।
प्रतिपल जो रहता इस साधनमें संलग्न, वही मतिमान॥ ११॥

दोहा

सत्य-धर्मसे अल्प भी निर्मल अर्जित अर्थ।
सुख देता सब कालमें, उपजाता न अनर्थ॥ १॥
धर्मरहित अन्याययुत अर्थ बढ़ाता पाप।
बन जाता फल अशुभका कारण, वह अभिशाप॥ २॥
तन-मनसे हिंसा सभी, प्राणि-मात्रकी त्याग।
सबके सुख-हितके लिये जीओ, बन बड़भाग॥ ३॥
मनमें भी आने न दो, किंचित् पाप-विचार।
अन्तर्यामीसे न कुछ छिपा गुप्त व्यापार॥ ४॥
प्रभुके सन्मुख तुम रहो निर्मल नित्य विशुद्ध।
लोग सभी मानें तुम्हें भ्रमवश भले अशुद्ध॥ ५॥
प्रभु-सन्मुख जो शुद्ध है, वही सत्य शुचि-प्राण।
शुद्ध कहाने मात्रसे, कभी न हो कल्याण॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा करो सबपर सदा, मत चाहो प्रतिशोध ।
पृथ्वीकी, प्रभुकी क्षमा देख, करो मन बोध ॥ ७ ॥
रहो संयमी तुम, करो उचित भोग, रख त्याग ।
कर्म करो प्रभु-प्रीति-हित रख प्रभु-पद अनुराग ॥ ८ ॥
भय न करो कुछ कहीं भी, देखो प्रभुको संग ।
प्रभु-प्रतिकूलाचरणसे डरो सदा सब अंग ॥ ९ ॥
मनसा-वाचा-कर्मणा रखो सत्यकी टेक ।
अन्याश्रय सब त्यागकर भजो सदा प्रभु एक ॥ १० ॥
स्मरण करो मनसे सदा, कभी न भूलो भूल ।
सेवौ प्रभु-पद-पंकरुह मधुप-सदृश सुखमूल ॥ ११ ॥

# रोग तथा उनका निवारण

( लेखक—डॉ० श्रीशिवनन्दनप्रसादजी )

इधर जबसे मुझे होश हुआ है, मैं तरह-तरहकी बीमारियोंके नाम सुनता आ रहा हूँ और उनके रोगी भी प्रायः दिन-प्रति-दिन बढ़ते जा रहे हैं । शारीरिक विशेषज्ञ बराबर इस अनुसंधानमें लगे हैं, और नयी-नयी ओषधियोंका आविष्कार तेजीसे कर रहे हैं पर वही पुरानी कहावत यहाँ चरितार्थ होती है कि 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की,' अभी विशेषज्ञ अपने पहले अनुसंधानपर पूरी खुशी मना भी नहीं सके कि दूसरे रोगकी भयंकरता उनके सामने प्रकट हो गयी और फिर वे अनुसंधानमें लग जाते हैं । कहनेका तात्पर्य यह है कि विशेषज्ञ रोग-निवारणार्थ तरह-तरहकी ओषधियोंका आविष्कार एवं रोग-उत्पत्तिके कारण ढूँढ़ रहे हैं, पर मनुष्यको नीरोग बनानेमें वे प्रायः असफल हो ही रहे हैं । वे बराबर इस बातका ढिंढोरा पीटते हैं कि संसारमें तरह-तरहके विषाक्त कीटाणुओंकी उत्पत्ति ही इसके प्रधान कारण हैं और वे उन कीटाणुओंको मारनेमें ही संलग्न हैं, पर वे असली कीटाणुओंको ढूँढ़ने एवं उनपर अधिकार पानेकी बात सोचते ही नहीं और परिणाम यह हो रहा है कि हम दिनोंदिन विभिन्न नये रोगोंके शिकार होते जा रहे हैं । अतः यदि हम नीरोग होना चाहते हैं और आनेवाली संततिको भी प्रतिभाशाली एवं सुखी बनाना चाहते हैं तो हमें आन्तरिक कीटाणुओंका विनाश करनेकी अटल प्रतिज्ञा करनी होगी, अब आप कहेंगे कि 'आन्तरिक कीटाणु क्या है और उन्हें कैसे मारा जा सकता है ?'

आजके वैज्ञानिक इस बातपर विश्वास रखते हैं कि रोगोत्पत्ति बाह्य कीटाणुओं, असंयम, दूषित खान-पान एवं मिश्रित खाद्य-पदार्थोंके द्वारा होती है, पर यह उनका निरा भ्रम है । रोगोंकी उत्पत्तिके सहायक ये भले ही हो सकते हैं, पर मूल कारण ये नहीं हैं । रोग-उत्पत्तिके मूल कारण हैं—अन्तःकरणके कलुषित विचार एवं असत्य आचार-व्यवहार । यदि हम अपनी भावनाओंको पवित्र बनाये रक्खे तो रोग हमसे कोसों दूर रह सकता है । पर इतना कह देनेसे आजके लोग यह माननेके लिये कदापि तैयार नहीं हैं कि ये विचार सत्य ही हैं । आजका युग भौतिक विज्ञानके पीछे दीवाना है और हर चीजको वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखता है तथा जबतक उसमें वैज्ञानिक तौरपर सत्यता नहीं पाता, वह हमारे विचारोंसे सहमत नहीं हो सकता ।

यह तो सभी जानते हैं कि हमारे पूर्वज काफी दूरदर्शी एवं विद्वान् थे और वे अपनी स्थिति पूर्णतः समझते थे । हमारे पूर्वज शरीरकी बनावट एवं उसके स्नायु-संचालनसे पूर्ण परिचित थे । आजका विज्ञान कितना भी आगे बढ़ जाय, पर वे शारीरिक ज्ञान, आजके वैज्ञानिकोंको प्राप्त नहीं हो सकते, चूँकि ये भौतिकवादी हैं । आजके प्रमुख शरीर-विज्ञानवेत्ता यह बतानेसे पूर्ण असमर्थ हैं कि कौन-सी स्नायुमें विकार आनेसे कौन-कौन-सा रोग उत्पन्न हो सकता है । पर आज भी कुछ इने-गिने आयुर्वेदाचार्य तथा हकीम हैं, जो नाड़ी देखकर ही शरीर-विकारके कारण एवं उपचार बता सकते हैं, किंतु हजार डिग्री-प्राप्त आधुनिक डाक्टर पूर्ण शरीरकी जाँच करनेके पश्चात् भी पूर्णरूपसे रोग और उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्तिके कारण नहीं बता सकते हैं। अतः कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे पूर्वज शारीरिक विकारोंकी उत्पत्तिके कारण एवं उसके उपचारका पूरा अनुभव रखते थे।

हमलोगोंके यहाँ कहावत प्रचलित है—

सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥

यह पुरानी कहावत सभी जानते हैं, पर इसकी उपयोगितापर गौर नहीं करते। सत्य हमारे शरीर एवं परिवारके रक्षार्थ एक अमोघ यन्त्र है। यदि हम इसे मन, वचन एवं कर्मसे पालन करें तो हम दैहिक, भौतिक एवं दैविक प्रकोपोंसे बच सकते हैं एवं दूसरोंको भी बचा सकते हैं। सत्य वह कवच है, जिसे धारण करनेसे दुनियाकी सारी आपदाओं एवं विपत्तियोंसे मुक्ति मिल सकती है या यों कहें कि वे आपके पास आनेतकसे डरेंगी।

यदि हम सत्यके विपरीत आचरण करते हैं, अर्थात् असत्यका पालन करते हैं तो सारी विपत्तियोंका आवाहन करते हैं। असत्यका पालन करनेसे क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा, हिंसा आदि विकार उत्पन्न करनेवाले भाव मनमें उत्पन्न होंगे, जिससे हम दुःख भोगेंगे।

यह तो आप आये दिन देखते हैं कि बड़े लोग यानी धनी-मानी व्यक्ति सुखसे रहते हैं, पर उनका शरीर सुखी नहीं रहता। उन्हें तरह-तरहके रोग घेरे रहते हैं। शायद ही कोई ऐसा धनी व्यक्ति है, जिसके घरमें कोई-न-कोई बड़ी बीमारी न हो और डाक्टरोंके यहाँ अत्यधिक धन अपव्यय नहीं होता हो। गरीबोंके घर भी बीमारियाँ आती हैं, पर कम, और आती भी हैं तो थोड़े समयके पश्चात् ही चली भी जाती हैं। यों तो बीमारी हमारे स्वभाव तथा कर्मके अनुसार ही उत्पन्न होती है। अमीरोंके घर बेईमानी तथा इसी तरहकी अनेक स्वार्थपरताके उदाहरण मिलते हैं, पर गरीबोंके यहाँ उतनी बेईमानी न होकर अधिकांशतः सचाई और ईमानदारी अधिक होती है। गरीब अपने गाढ़े पसीनेकी कमाई खाता है और अमीर अपनी विलासिताका जीवन व्यतीत करता है। अब आप कहेंगे कि इससे रोग और उसकी उत्पत्तिका क्या सम्बन्ध है? सम्बन्ध है, विशेषतः महात्मा बुद्ध आदि हमारे पूर्वजोंने जो नियम अपने समाजके बनाये हैं उनसे सिद्ध होता है कि झूठ, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध तथा असत्य आदि जितने भी मानस-विकार हैं— इनके सेवनसे ही शरीर, मन एवं बुद्धिमें विकार उत्पन्न होते हैं और उससे बीमारियोंकी उत्पत्ति होती है। यदि आप कहेंगे कि नहीं; इससे कोई बीमारी होनेका कोई कारण नहीं तो मैं थोड़ेमें इसका प्रमाण दे रहा हूँ।

मैं होमियोपैथका एक ज्ञाता हूँ और उसकी उत्पत्ति एवं उपचारके साधन भी न्यारे हैं। आप देखेंगे कि उसकी दवाओंका प्रयोग स्वस्थ शरीरपर होता है और स्वस्थ शरीरमें उस दवाके खानेके बाद जो-जो लक्षण पैदा होते हैं, यदि उसी लक्षणके अनुसार कोई रोगी आये तो उसकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ-शरीरपर दी गयी थी। यदि कोई रोगी अधिक झूठ बोलता है, क्रोध करता है, जिद्दी है, कामी है, अस्वाभाविक जीवन-निर्वाह करता है और व्यसनी है तो उसीके अनुसार ही दवा दी जायगी और उससे रोगीको स्वास्थ्य-लाभ होगा।

अब इससे सिद्ध होता है कि उपर्युक्त दुर्व्यसनोंके कारण उत्पन्न रोगकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरमें दी गयी थी तथा लक्षण दिखायी दिये थे।

यदि आप यह सोचें कि इस प्रकारके दुर्व्यसनोंसे उत्पन्न दुःख केवल हमें ही भोगना पड़ेगा, तो ऐसी बात भी नहीं है। आपके बाद आनेवाली संततिको भी दुःख भोगना पड़ेगा। सो कैसे?

गर्भमें संतान होनेके समय यदि उसकी माँ जिद्दी एवं क्रोधी हुई तो बच्चेको अवश्य पेटकी बीमारी होगी और इसी तरह अन्य व्यसनोंके द्वारा अलग-अलग रोग होते हैं। इन सबका उदाहरण देनेसे एक लंबी कहानी बन जायगी। कभी-कभी आप देखते होंगे कि यदि कोई माँ क्रोधावस्थामें बच्चेको अपना दूध पिला देती है तो बच्चा तत्काल बीमार हो जाता है। इससे स्पष्ट दीखता है कि हमारे स्वभाव एवं विचार ही रोगोत्पत्तिके प्रधान कारण हैं। यदि हम वास्तवमें सुखी एवं नीरोग रहना चाहते हैं तो अपने विचारों, भावों एवं मनःप्रवृत्तियोंमें विशुद्धि, सत्यता एवं कोमलता लाना सीखें। इसीके द्वारा हम सुखी एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

बहुत लोगोंका यह विश्वास है कि सुखका साधन केवल धन ही है और इसीलिये सब तरहसे धन-उपार्जन करनेमें ही मनुष्य अपना भला समझते हैं। फलस्वरूप उन्हें सुख तो मिलता नहीं, अपितु तरह-तरहके झमेले बढ़ जाते हैं और जीवन अशान्तिमय हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मनुष्य किसी असाध्य रोगका शिकार हो गया है या नये-पुराने रोगोंसे पीड़ित है तो वह दवा आदिका प्रबन्ध तो करे ही, साथ-ही-साथ सत्य-सदाचारके पालन एवं असत्य-असदाचारके परित्याग करनेका व्रत ले। आहार-व्यवहार एवं रहन-सहनमें सात्त्विकता लावे। यदि यह भी होना कठिन है तो केवल सत्य-पालन और शुद्ध मनसे ईश्वरका निरन्तर भजन और मनन ही करे। रोग कितना भी असाध्य हो, यदि वह सत्यरूपसे ऐसा करेगा तो उसके मनमें शान्ति आयेगी और धीरे-धीरे उसे रोगसे भी मुक्ति मिलेगी। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अटल विश्वास और भक्तिपूर्वक की हुई थोड़ी-सी प्रार्थनासे ही कठिन रोगसे मुक्ति हुई है और करायी गयी है। यदि माँ-बाप या कोई सम्बन्धी किसी रोगके निवारणार्थ प्रार्थना करता है और यदि वह सत्यरूपसे की जाती है, तो वह प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है तथा वह व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

दूसरोंके लिये प्रार्थना करनेकी रिवाज हर धर्मावलम्बियोंमें है। हमलोगोंके यहाँ महामृत्युञ्जय, चण्डीपाठ और ग्रह-दोष-निवारणार्थ जाप-पाठ कराये जाते हैं, जिससे लाखोंकी संख्यामें लोग लाभ उठाते हैं। लोगोंका विश्वास मन्त्रपरसे उठता जा रहा है, इसका विशेष कारण है कि जिनके द्वारा यह जाप-पाठ कराया जाता है, वे ही वास्तवमें अश्रद्धालु, दम्भी और असत्यवादी होते जा रहे हैं। अतः मन्त्रका प्रभाव ही नहीं हो पाता, यदि मनुष्य स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिये प्रार्थना करे तो उससे चिरस्थायी लाभ अवश्य होगा।

बहुधा लोग यह कहते हैं कि 'ईश्वर अन्यायी है या अमुक व्यक्तिकी प्रार्थना नहीं सुनता, अमुकके परिवारको असमयमें ही उठा लिया यद्यपि उसने लाखों मिन्नतें की थीं।' पर वास्तवमें उसने मिन्नतें की थीं या नहीं, उसकी प्रार्थना सत्य, सात्त्विक एवं मर्मस्पर्शी थी या नहीं, यह कोई नहीं बताता। मैं यह दावेके साथ कहता हूँ कि यदि कोई सत्य आचरण करनेवाला शुद्ध हृदयसे किसीके लिये प्रार्थना करे तो प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है। प्रार्थनाका असर प्रार्थना करनेवालेपर ही निर्भर करता है। उसे स्वयं ज्ञात हो जाता है कि उसकी प्रार्थना सुनी गयी या नहीं—'बाबर और हुमायूँकी बीमारी और स्वास्थ्य-लाभकी बात' तो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

एक बार मेरी छः वर्षकी बच्ची टायफायडसे पीड़ित हुई और दो-चार दिनोंमें ही उसके मुँहसे तथा पाखानेके साथ खून आना शुरू हो गया। टायफायडका यह बहुत बड़ा चिन्ताजनक लक्षण है। मैं निरन्तर उसके लिये प्रार्थना करता रहा था; पर हृदयमें भय बना रहता था। एक दिन खून नहीं आया था, किंतु फिर भी मेरे मनमें काफी भय बना हुआ था। प्रार्थना करने बैठा तो मन बहुत अशान्त था। मैंने मनमें धैर्य धरकर ईश्वरकी एकाग्रचित्तसे प्रार्थना की और प्रार्थनासे उठा तो मनमें शान्ति एवं साहसका अनुभव हुआ। कुछ देर बाद बच्चीने काफी मात्रामें खूनका वमन किया। घरके लोग काफी घबरा गये और पुनः डाक्टरको बुलानेको कहा; यद्यपि कि एक घंटे पूर्व ही डाक्टर महोदय उसे देखकर गये थे। मैंने उन्हें बुलाया नहीं और शान्त तथा साहसभरे चित्तसे घरके लोगोंको भी सान्त्वना दी कि ईश्वर सब भला करेंगे। ईश्वरकी कृपा, उस रातके बाद बच्चीको खून आना बंद हो गया और दो-चार दिनोंमें ही वह स्वस्थ हो गयी।

इससे विश्वास होता है कि प्रार्थनाका अवश्य प्रभाव पड़ता है, बशर्ते कि उसमें विश्वास तथा एकाग्रता हो। संदेह, अविश्वास और परीक्षाके लिये की गयी प्रार्थना तो प्रार्थना ही नहीं होती। मेरा तो व्यक्तिगत यही विचार है कि हर व्यक्तिको ईश्वर-प्रार्थनासे किसी भी समय शान्ति प्राप्त हो सकती है।

हमारे पूर्वज हजारों वर्षोंतक स्वस्थ-जीवन व्यतीत करते थे, जब कि हम सौ वर्ष भी नहीं जी पाते। ऐसा क्यों? इसीलिये कि हमारे और उनके रहन-सहन एवं आचार-विचारमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। हम सात्त्विकतासे काफी नीचे उतरकर तामसिक भूमिमें आ गये हैं। यदि आज भी हम पूर्ववत् आचरण करने लगें तो हम पुनः उतना जीनेका दावा कर सकते हैं।

अन्तमें हमारी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वे हमें सत्यता एवं सात्त्विकताका जीवन प्रदान करें। साथ ही सभी पाठक बन्धुओंसे भी मेरा निवेदन है कि हम सब सत्यता एवं शुद्धताका पालन करें तथा ईश्वर-भजनको अपने दैनिक जीवनमें स्थान दें, जिससे केवल हम ही नहीं, हमारी आनेवाली संतति भी नीरोग और सुखी जीवन व्यतीत करनेवाली हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मालवीय-जयन्ती-शतीके अवसरपर मालवीय-वन्दना

प्रादुर्बभूव पुलिने दुहितू रवेर्य आनन्दकाननतटे प्रततान कीर्तिम् ।
गीतां जगौ सदसि भागवतीं च गाथां तं श्रीधरं मदनमोहनमानतोऽस्मि ॥ १ ॥
यस्यामलाविचलकीर्तिरिवाद्य विश्वविद्यालयो लसति सन्ततमेव काश्याम् ।
नेता स्वदेशसुहृदः स महामना मे वन्द्योऽनिशं मदनमोहनमालवीयः ॥ २ ॥

## मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है

मालवीय वे, जो महर्षि थे, मेधावी थे, ज्ञानी थे,
मालवीय वे, जो स्वदेशके गौरव थे, अभिमानी थे ।
मालवीय वे, जो न कहीं भी रखते अपना सानी थे,
स्वतन्त्रताकी समरभूमिके धीर वीर सेनानी थे ॥
कीर्ति-कथा उन मान्य मदनमोहनकी गायी जाती है ।
मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है ॥ १ ॥

जो युगके प्रवाहमें बह कर मुँह न धर्मसे मोड़ सके,
जो न सनातन वर्णाश्रमको कभी कहीं भी छोड़ सके ।
रहे सुधारक, पर न शास्त्रकी मर्यादाको तोड़ सके,
जो प्राचीन और नूतनको एक सूत्रमें जोड़ सके ॥
जन-जनमें उन महामनाकी याद जगायी जाती है,
मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है ॥ २ ॥

मालवीय सच्चे स्वदेशके संरक्षक थे, संगी थे,
आजादीकी जंग छेड़नेको जोशीले जंगी थे ।
उनकी वाणीमें जादू था, भाव भरे रणरंगी थे,
हिली हुकूमत अंग्रेजोंकी घरको फिरे फिरंगी थे ॥
उनकी महिमाकी न महीमें समता पायी जाती है,
मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है ॥ ३ ॥

मालवीयसे हम सदैव परहित साधन करना सीखें,
अपना सब कुछ लुटा अकिञ्चनता सिरपर धरना सीखें ।
अन्यायोंसे लड़ें, सिंह-सा कभी नहीं डरना सीखें,
जियें देशके लिये, देशके लिये सदा मरना सीखें ॥
मानवको उन महापुरुषकी नीति बतायी जाती है,
मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है ॥ ४ ॥

हुआ देशकी संस्कृतिका संस्कृतका जिनसे अभ्युत्थान,
भूल सके जो नहीं कभी भी हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।
भारतको ही नहीं, जिन्होंने दिया विश्वको विद्या दान,
काशी-बीच विश्वविद्यालय जिनका कीर्तिस्तम्भ महान् ॥
श्रद्धाञ्जलि उनके चरणोंमें यहाँ चढ़ायी जाती है,
मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है ॥ ५ ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## पत्नीने पतिका ऋण चुकाया

श्रीरामप्रतापजी मेरे पतिके सहपाठी थे और मित्र थे। कभी-कभी हमारे घरपर आया करते थे। मेरे स्वामीका भी उनके प्रति काफी स्नेह था। वे एक पाठशालामें शिक्षकका काम करते थे। गरीब थे। कुछ ही दिनों पहले उनका देहान्त हो गया। मैं उनकी विधवा पत्नी गुलाबबाईके पास जानेवाली थी, पर कार्यवश नहीं जा सकी। एक दिन रात्रिको गुलाबबाई स्वयं ही मेरे पास आयीं। उन्हें देखकर मैं सकुचा गयी। सोचा, गुलाबबाईने समझा होगा 'यह धनी घरकी स्त्री मेरे पास क्यों आने लगी।' मैंने उठकर आदरसे उनको बैठाया और श्रीरामप्रतापजीकी मृत्युपर दुःख तथा सहानुभूति प्रकट करते हुए क्षमा माँगी। मैंने कहा—'मैं आ ही रही थी, पर अमुक कामसे नहीं आ सकी। क्षमा करना—पर आप आज कैसे आयी हैं—बताइये।'

गुलाबबाईने आँसू पोंछकर कहा—'बहिनजी, आपकी तो मेरे प्रति सदा ही प्रीति है। आप काम-काजमें नहीं आ सकीं, इससे क्या प्रीति कम थोड़े ही हो गयी? वह तो मेरे भाग्यमें जो बदा था सो हो गया। आपका किशोर इंजिनियरिंगमें है। आपलोगोंके आशीर्वादसे वह साल-दो-सालमें कमाने लगेगा। फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं रहेगी।' इतना कहकर उन्होंने बारह सौके नोट मेरे सामने रखकर कहा—'बहिनजी! आज तो मैं एक कामसे आयी हूँ। आप जानती हैं—आपके स्वामी श्रीगोपालबाबूकी उनपर बड़ी प्रीति थी। गोपालबाबूका हार्टफेल होकर देहान्त हो गया, तभीसे वे बीमार थे। इसीसे यह काम अबतक हो नहीं पाया। जिस दिन उनका शरीर छूटनेको था, उस दिन उन्होंने मुझसे कहा—'भाई गोपालजीके मुझको बारह सौ रुपये देने हैं, उनका देहान्त हो गया है। उनकी पत्नीको इन रुपयोंका पता नहीं है। रुपये मैंने समय-समयपर किशोरकी पढ़ाईके कामसे लिये थे। पर मैं उन्हें अभी वापस दे नहीं सका। ये रुपये अवश्य चुकाने हैं। तुम्हारे पास कुछ गहना है, उससे अपना काम चलाना। किशोर कमाने लगेगा, तबतक तुम्हारा काम गहनेसे चल जायगा। मेरे प्रोविडेंट फण्डके शायद चौदह सौ रुपये आवेंगे। मैंने लिख दिया है, वे तुमको मिल जायँगे। मिलते ही उसी दिन तुम भाई गोपालजीकी पत्नीको रुपये दे आना। वे न लेना चाहें तो उन्हें मेरी शपथ दिलाकर कहना कि उनकी आत्माकी शान्तिके लिये ही आप ले लें। तदनुसार मैं ये रुपये लेकर आयी हूँ। रुपये आज ही मिले हैं। आप दया करके रुपये लेकर हमें ऋणमुक्त करें।' मैं तो दंग रह गयी उनकी बात सुनकर। हाथमें तंगी होनेपर भी ऋण चुकानेमें इतनी त्वरा! मैंने बहुत समझाया। रुपये लेनेसे इनकार किया, मुझे पता भी नहीं था। पर वे मानीं नहीं। इस प्रकार आर्त होकर रोने लगीं कि मुझे उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी। धन्य!

इस घटनाको लगभग बारह साल हो गये हैं। उनका लड़का अब अच्छी कमाई कर रहा है। उसकी शादी भी हो गयी है। मजेमें है। पर मेरे हृदयपर उनकी जो छाप पड़ी, वह सदा अमिट रहेगी।

—रामप्यारी देवी

( २ )

## छात्रका कर्तव्यपालन

मैं 'राजा प्यारीमोहन कालेज, उत्तरपाड़ा'की एक छात्रा हूँ। आज मैं एक ऐसे छात्रके विषयमें लिख रही हूँ जिसकी सत्यवादितापर कालेजके प्रधानाचार्यको पर्याप्त हर्ष एवं गौरव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना इस प्रकार है । ता० ३०-९-६१, शनिवारको मेरी रिस्टवाच, जो ३५० ) की थी, न जाने कहाँ कालेज-प्राङ्गणमें गिर गयी । घड़ी एकदम नयी थी । भय एवं शोकके साथ मैंने अपने बड़े भाईसे सारी बात बतायी। वे तथा उनके मित्र सभी घड़ी खोजने लगे । प्रिंसिपलके द्वारा सूचना-बोर्डपर सूचना दे दी गयी; पर घड़ी न मिली । प्रायः एक घंटेके बाद एक छात्र अपने हाथोंमें घड़ी लिये मेरे भाईके पास आये । घड़ी देखकर सबके सामने मेरे भाईने उसे लेना चाहा; पर उन्होंने प्रिंसिपलके सामने देनेको कहा और वे भाईके साथ आफिसमें गये । घड़ी पाकर प्रिंसिपल बहुत प्रसन्न हुए । प्रिंसिपल महोदयने उनको उनकी सत्यवादितापर कालेज कैंटिनमें खिलाना चाहा; पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया, इन शब्दोंके साथ कि 'धन्यवाद, खिलानेकी कोई आवश्यकता नहीं । यह तो मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है । मुझे आशीर्वाद दें कि मैं सदा इसी तरह सत्य एवं ईमानदारीपर चलता रहूँ ।'

प्रिंसिपल काफी प्रसन्न हुए । प्रायः ५०० विद्यार्थियोंके बीच उनसे हाथ मिलाते हुए आफिससे बाहर आये और पीठ ठोंकते हुए बोले—'हमें आज ऐसे ही विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है ।' इनका नाम है—श्रीराममूर्त्तिसिंह बी-एस० सी०

—नीलिमा, बी० ए०

( ३ )

## ईश्वरीय लीलाका चमत्कार

प्रसंग बहुत पुराना नहीं है, इसी साल और इसी नवम्बर महीनेकी बात है । मेरे मित्र श्रीकिशोरीलाल फौजदार, जो 'जिला-राजनैतिक-पीड़ित-समिति' आगराके उपमन्त्री हैं । पिछले चार माहसे फोड़ोंसे पीड़ित थे । उनके दाहिने पूरे पैरमें छोटी-छोटी फुंसियाँ हो गयी थीं, जिनसे पानी झरता था । फुंसियाँ आगे बढ़कर कमरतक आ गयी थीं । डाक्टरोंकी दवा की तथा इंजेक्शन भी लगवाये, किंतु कोई लाभ न हुआ, मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की । बादमें गाँवके कुछ अताइयोंसे भी उपचार कराया, लेकिन कोई लाभ न हुआ और रोग बढ़ता ही गया । आखिरको इस रोगसे तंग आकर उन्होंने सफेद कनेरके पत्तोंको कड़ुए तेलमें जलाकर फुंसियोंपर मालिश कर दी, जिससे उन्हें बड़ी तकलीफ़ और बड़ी बेचैनी हुई । रातको वे बहुत ही दुखी हुए और भगवान्से प्रार्थना करने लगे कि 'हे भगवन् ! ऐसा मेरा क्या अपराध है जिसके लिये मुझे इतना कष्ट दिया जा रहा है । आप तो कृपानिधान हैं और हैं भक्त-वत्सल, मुझे क्षमा करो और मेरा इस रोगसे छुटकारा कराओ ।' थोड़ी देर बाद उनको नींदकी झपकी लगी तो क्या देखते हैं कि एक दाढ़ीवाले साधु-महात्मा सामने खड़े हैं और कह रहे हैं कि 'वत्स ! कलसे लाभ होगा और दो दिनोंमें ठीक हो जाओगे ।' जब आँख खुली तो वहाँ न साधु थे, न और कोई । श्रीफौजदार सोचने लगे कि ऐसे रोगसे इतनी जल्दी कैसे लाभ होगा । भगवान्की लीला अपार है, जैसे ही प्रातः श्रीकिशोरीलाल उठे तो उन्हें आशातीत लाभ प्रतीत हुआ और साधु-महात्माद्वारा कहे अनुसार दो दिनमें तो रोग बिल्कुल ही चला गया । अब श्रीफौजदार बिल्कुल ही ठीक हो गये हैं । यह भगवान्में अटल विश्वासका ही अद्भुत चमत्कार है ।

—उत्तमचंद जैन ( बी-एस्० सी, एल्-एल्० बी० ) वकील

( ४ )

## सहृदयता

बात उस समयकी है जब स्वर्गीय श्रीसुजानसिंहजी साहेब जोधपुर स्टेटकी फौजके कर्नल थे एवं तीन गाँवोंके जागीरदार भी थे । उनके अधिकारमें हमारा गाँव भैसाणा ( सोजन परगनेमें है ) भी था । अतएव आप सालमें एक-दो बार हमारे गाँवमें आकर अपने बंगले ( रावले ) में ठहरा करते थे । हमारे दादाजी साहब श्रीछगनीरामजीकी उनसे अच्छी पटती भी थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव एक दिन मेरे दादाजी मुझे उठाकर वहाँ ले गये; क्योंकि मेरे पैरमें इतने अधिक फोड़े हो रहे थे कि मुझसे चला नहीं जाता था। हमारे रावराजाजी ( जागीरदार ) साहेब डाक्टरीका भी अच्छा ज्ञान रखते थे। उनके पास दवाइयाँ भी काफी रहती थीं। अपने बंगलेपर आये लोगोंको कुछ दवाइयाँ आप मुफ्त वितरण किया करते थे। मैं और दादाजी वहाँ पहुँचे, आप बैठे अखबार देख रहे थे। हमें आया देख दादाजीसे कुशल पूछते हुए उठकर खड़े हो गये और हमें आसन दिया। हमारे बोलनेके पूर्व ही आपने मेरे पैरका दर्द देखकर उसके बारेमें पूछते हुए एक आदमीसे दवाईकी पेटी एवं कुछ गरम पानी लानेको कहा। पानी आनेके बाद एक प्लेटमें मेरा पाँव रखकर आप स्वयं धोने लग गये। दादाजीने, मैंने एवं और लोगोंने बहुत आग्रह किया कि 'हम धो देंगे आप छोड़ दें' मगर आपने व्यंगपूर्वक मेरी तरफ देखकर कहा कि 'क्या तुम्हें मेरी सेवा स्वीकार नहीं है?' आपके मुँहसे सहसा यह वचन सुनकर सब चुप हो गये। परंतु मेरी आँखें बरबस भर आयीं। एक इतने बड़े जागीरदारका एक गरीबके साथ इतना अच्छा व्यवहार, जिसका कोई मूल्य ही दुनियामें नहीं, मेरी आँखोंमें पानी आना स्वाभाविक था।

अपने हाथोंसे घाव धोकर मवाद तथा गंदा खून निकालकर दवाई लगाकर पट्टी बाँध दी और अधिकारके साथ यह कहा कि 'तुम्हें रोज आकर मेरी सेवा स्वीकार करनी होगी।' मैं क्या कहता। कहनेके लिये मेरे पास क्या था? उनके स्नेहभरे अधिकारपूर्ण आदेशके सामने सिर हिलानेके सिवा और क्या जवाब हो सकता था।

—मीठालाल जोशी, पोन्नेरि

( ५ )

## तक्षकदेव

### ( अद्भुत, किंतु सत्य दर्शन )

आज दैवी-शक्तियोंके प्रति हमारी आस्था लुप्तप्राय है। आजके सभ्य एवं प्रगतिशील कहे जानेवाले लोग तो दैवी शक्तियोंको केवल कपोलकल्पित सिद्ध करनेमें ही संलग्न हैं। पाश्चात्त्य सभ्यताके इस कुप्रभावने हमें क्या-से-क्या बना दिया और अभी क्या कर दिखायेगा, कहना असम्भव है। कोई विश्वास करे या न करे किंतु यहाँ मैं एक ऐसी दैवी शक्तिका परिचय देना चाहता हूँ, जिसमें केवल आस्था ही की जा सकती है।

उत्तर प्रदेशके गाजीपुर जिलेमें विश्वम्भरपुर नामका एक छोटा-सा ग्राम है। यह ग्राम उत्तरपूर्वीय रेलवे स्टेशन करीमुद्दीनपुर तथा ताजपुर डेहमाके मध्य स्थित है। इस ग्राममें एक दैवीशक्ति—जिन्हें यहाँके लोग 'तछबीर बाबा' नामसे पुकारते हैं—प्रत्यक्ष कार्य करती है। शुद्धरूपमें ये तक्षकदेव हैं। महाभारत एवं प्राचीन पुस्तकोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सज्जन तक्षकदेवके नामसे अवश्य ही परिचित होंगे। खाण्डव वनके जलाते समय तक्षककी सहायताके लिये इन्द्र भगवान्ने सक्रिय भाग लिया था। राजा परीक्षित्को तक्षकने ही काटा था। जनमेजयका सर्पयज्ञ भी इनसे ही सम्बन्धित था।

इस युगमें तक्षकदेवकी महिमा स्थानीय लोगोंके लिये वरदान सिद्ध हुई है। तक्षकदेवकी शक्तिका आभास सर्पके काटनेपर तत्काल दृष्टिगोचर होता है। इन पंक्तियोंके लेखकने विषैले सर्पद्वारा काटे गये मूर्च्छित व्यक्तियोंको तक्षकदेवकी कृपासे पूर्ण स्वस्थ होते हुए सैकड़ों बार प्रत्यक्ष देखा है और परोपकारकी भावनासे ही इस रहस्यका उद्घाटन भी यहाँ किया जाता है जिससे अधिक-से-अधिक लोग लाभान्वित हो सकें।

विषैले सर्पके काटनेपर अचेत स्थितिमें चारपाईपर लोग यहाँ लाये जाते हैं और व्यक्तिविशेषके दरवाजेपर लाकर लिटा दिये जाते हैं। लगभग पाँच-दस मिनटके बाद ही दरवाजेवाले व्यक्तिके घरका कोई भी पुरुष कूएँसे पानी लाकर मुँहपर छींटे देता है। पानीके छींटे पड़ते ही विषका प्रभाव जाता रहता है। अब वह व्यक्ति पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचेत होकर पैदल स्वतः ही अपने स्थानको जाता है। यह तक्षकदेवकी महिमा है। इतना ही नहीं, विशेषता तो यह है कि चाहे कहीं भी किसीको सर्प काटे, तक्षक-देवका स्मरण करनेपर ही चंगा हो जानेकी सम्भावना है किंतु पीछे इस स्थानतक आकर प्रणाम करना अनिवार्य है। समीपके लोग तो बेहोशीकी दशामें ही लाये जाते हैं किंतु सुदूरके लोग स्मरणमात्रसे स्वस्थ होकर इस स्थानतक आकर प्रणाम कर जाते हैं। न आनेपर वर्षोंतक विषका प्रभाव देखा गया है किंतु आ जानेपर पुनः विषका प्रभाव नहीं रह जाता है। इस गाँवमें तक्षकदेवका यह चरित्र बहुत वर्षोंसे प्रत्यक्ष है। इस घोर अनास्थाके युगमें ऐसी दैवीशक्तिके कार्यको देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। यद्यपि मृत्युका कोई उपचार नहीं है तथापि सर्प-दंशरोगकी यह संजीवनी अवश्य ही दुर्लभ है।

इस विश्वम्भरपुर ग्राममें छः-सात घर दोनवार-वंशीय भूमिहार ब्राह्मण-परिवार है। इस परिवारभरके तक्षकदेव कुल-देवकी भाँति समझे जाते हैं। तक्षकदेवकी न तो कोई मूर्ति है और न तो उनके लिये कोई मन्दिर आदि ही है। केवल बाबू बगेसर रायके दरवाजेपर जाकर प्रणाममात्र ( साष्टाङ्ग ) किया जाता है। किसी प्रकार-की न कोई कभी पूजा करता है और न तो कभी कुछ भी शुल्क या दान ही लिया जाता है। केवल यहाँ नत-मस्तक हो जाना ही आवश्यक है। ज्ञातव्य है कि ग्रामकी सीमामें प्रवेश करते ही रोगीका विष जाग्रत् हो जाता है।

ऐसी दैवीशक्तियोंका हम कोटिशः अभिनन्दन करते हैं और सभी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आस्था रखना ही श्रेयस्कर होगा।

—श्रीसुधाकर तिवारी एम्०ए०, बी०एड्०, साहित्यरत्न, बसंतकालेज, राजघाट वाराणसी

( ६ )

## बाँसुरी नयी पर स्वर फटी

विजयादशमीका दिवस था। नगरके मध्यस्थित घंटा-घरके पाससे मैं गुजर रहा था। लोगोंकी भीड़ देखकर एवं किसी व्यक्तिका करुणासे परिपूर्ण आर्त स्वर सुनकर मैं ठिठक गया। देखा तो दाँतोंतले अंगुली दबाकर रह जाना पड़ा।

घटना यह थी कि एक रिक्शेवाला जिसके पैरोंमें भारत माँके चरणोंका रज-पुंज था, घुटनेतक मैली-फटी धोती थी और जिसके बदनपर एक मात्र गंजी, जिसे आप केवल गंजी कह सकते हैं, शायद उसी गंजीसे वह अपना रिक्शा भी धूलसे साफ कर लेता रहा होगा—ऐसी थी गंजीकी दशा, सड़कपर लंबा लेटा हुआ आर्त स्वरमें कराह रहा था। वह किसीसे अपनी सहायताके लिये या बचानेके लिये याचना नहीं कर रहा था; वरं अत्याचारका, अनाचारका विरोध केवल आर्त स्वर एवं बेंतोंके मार-द्वारा कर रहा था, वह किसी प्रकारके अपने बलप्रयोगसे विरोध नहीं कर रहा था। उसीके पास 'यमदूत'-सा भारतमाताका ही एक दूसरा पुत्र—रिक्शेवालेका ही एक भाई, (भारतमाँके तो दोनों ही पुत्र थे न—) एक पुलिस दारोगाका गर्जन-स्वर गुंजित हो रहा था—'साले, तूने कैसे कहा कि हमें नहीं ले चलेगा ? बोल, चलेगा कि नहीं ! देख रहा है न यह बेंत ?'

'मार लो बाबू, मार लो, चाहे जितना बेंत मार लो। यदि बाल-बच्चेवाले होगे तो समझ लो। हम आपको इस अपने रिक्शेपर नहीं ले चल सकते। जानते हो बाबू ! यह रिक्शा मेरे अपने लड़केके समान है। लड़केकी पीठपर उसके लायक ही बैठ सकता है।'

'क्या कहा ? नहीं ले जायगा। तो ले मार खा, हरामजादे !' और सड़ासड़ दो बेंत माँके एक पुत्रने दूसरे पुत्रपर—अपने भाईपर ही चला दी। 'अभी होश आया कि नहीं रे।'

'और मारो ! चाहो तो और मारो। प्राण निकल जायगा लेकिन अपने रिक्शेपर आपको नहीं बैठाऊँगा।'

'फिर नहीं कहा बैठानेके लिये। ले, चाहता है तो फिर एक बेंत ले।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ओफ ! और मार लो और मार लो । हम जानते हैं कि पुलिसवाले क्या हैं ।' फिर कहता है—'नहीं ले जायेंगे, नहीं ले जायेंगे ।'

आँखोंसे देखा नहीं गया । भीड़में एक-से-एक भद्र कहानेवालेसे लेकर निम्न वर्गके लोग भी थे, किसीमें इतना साहस न था कि राष्ट्रके, समाजके प्रहरी एवं सहायक तथा सचेतक कहानेवाले खाकी वर्दीधारी शरीरमें वास करनेवाले उस सुरारीसे कुछ कहे, विरोध करे इस अनाचारका कि यह कैसा अत्याचार हो रहा है ? इतनेमें फिर एक बेंत जमाते हुए दारोगाका स्वर फूट पड़ा—'अबे बदतमीज ! देशको स्वतन्त्रता क्या मिली कि तेरे ऐसे नीचकी भी जबान बड़ी लंबी हो गयी है । मेरा वश चलता तो तुम सब सालोंको भूनकर रख देता ।'

'भून दो साहब, भून दो न । लेकिन इस रिक्शेपर पुलिसके आदमीको नहीं बैठाऊँगा ।'

तभी भीड़से एक स्वर आया—'अरे रिक्शेवाले, क्या कह रहा है तू ? इतनी मार खानेपर तो गदहा भी चलने लगता है । इतनी मार खा चुका तब भी दारोगा साहबको नहीं ले जाता ।'

ऐसी बात कहनेवाले उस 'भलेमानुष'की ओर गरीबीके पुंज, पर अत्याचारका अपने सामर्थ्यसे विरोध करनेवाले रिक्शेवालेकी आग्नेय दृष्टि घूम पड़ी—'आप ही ले जाइये न, क्यों हमसे कहते हैं । हम जब जिंदा रहेंगे बेंत खा लेंगे, पर इस वर्दीवालेको कभी नहीं ले जायेंगे ।'

और उसके इस बड़े बोलका पुरस्कार बेंतके मारके रूपमें उसी क्षण फिर मिला । इसी समय, भीड़मेंसे निकलकर एक लंबा-तगड़ा जवान दारोगाके पास आया—

'कहिये, आपको कहाँ जाना है ? दूसरोंकी पीठपर चलनेवाले बाबू ! आइये, मेरी पीठपर बैठ जाइये, जहाँ कहें वहाँतक पहुँचा दूँ ।'

दारोगाका मुँह तो देखने ही लायक था, फिर भी खिसियानी बिल्ली खंभा नोचने लगी—'जाइये, अपना काम कीजिये, आपसे हमसे क्या मतलब है ? पीठपर ले जानेवाले और ही कोई होते हैं ।'

और 'देखिये' से 'देखो' पर उतर आया वह आगन्तुक युवक । एवं दारोगा महोदयको उसने कुछ दिखाया । दारोगाकी सिट्टी-पिट्टी गुम । भीड़ने देखा कि दारोगा उस युवकको देखकर—'सैलुट' कर रहा था । सभी हक्का-बक्का । यह क्या-से-क्या हो गया ?

रिक्शेवालेको उठाते हुए उस सज्जनने कहा कि 'भाई रिक्शेवाले ! अगर दो सवारी एस॰पी॰के बँगलेतक ले चलो तो दो रुपये दूँगा ।' और दो रुपये पर्ससे निकालकर दे दिये ।

रिक्शेवाला इस देवताके कर्तव्यको देखकर आनन्दातिरेकसे बोला—'साहब ! हमारी पीठपर पड़ी सारी मारका दर्द भूल गया । आप देवता हैं, चलिये ।'

और रिक्शेवालेके पुत्रसमान रिक्शेकी पीठपर नहीं-नहीं छातीपर दारोगा और वे व्यक्ति चल पड़े । कोई बोला—'जरूर कोई बड़ा अफसर रहा होगा । देखा न, कितना न्यायी था । अपनी पीठपर दारोगाको ले जानेके लिये कह रहा था । पुलिसके ही प्रत्यक्ष दो रूप—देवता और असुर !

देशको स्वतन्त्रता मिली है । बाँसुरीका कलेवर बदला जा रहा है, पर उसमेंसे निकलनेवाले स्वर अभी मधुर, सामयिक एवं कर्णप्रिय नहीं हैं । —गोविन्द

( ७ )

## सद्व्यवहारसे अपराधी भी बदल सकते हैं

हम जिनको 'दादाजी' के रूपमें पहचानते हैं, ऐसे एक सज्जनके साथ मुझे पंढरपुर जाना पड़ा । उनके हमेशाके ठहरनेके स्थानपर हम ठहरे थे । दूसरे दिन हम नदीपर स्नान करने गये और भीगे कपड़ेसे विठोबाके दर्शनकर अपने निवास-स्थानपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस लौट आये। कपड़े बदलते समय दादाजीको पता चला कि उनकी कीमती घड़ी और 'पार्कर' पेन कहीं गुम हो गयी। दादाजीने वहाँके निवास-स्थानके व्यवस्थापकको इस घटनाकी जानकारी देनेके अलावा और कुछ नहीं किया। जैसे कुछ भी न हुआ हो, ऐसे स्वस्थ-चित्तसे दादाजीने अपना काम पूरा किया और हम बंबई लौटनेके लिये स्टेशनपर आये।

हम सब स्टेशनपर वेटिंग रूममें बैठे थे, कि प्लेटफार्मपर घूमनेवाले एक गृहस्थकी ओर दादाजीका ध्यान गया। उनकी जेबमें अपने पार्कर पेन-जैसी पेन देखकर दादाजी लिखनेके बहाने अपनी डायरी खोलकर संदेह मिटानेके लिये उस गृहस्थके पास पहुँचे और लिखनेके लिये उन्होंने विनयपूर्वक पेनकी माँग की। दादाजीका संदेह सही निकला। उस पेन-पर उनका नाम लिखा हुआ था। उन्होंने सभ्यतापूर्वक उस गृहस्थको बताया कि पेन उनकी है, और पूछा कि 'यह पेन आपके पास कैसे पहुँची?' उस गृहस्थने कहा—'पेन आपकी है तो आप ले लीजिये।'

दादाजीने पेन अपनी होनेका सबूत दिया। उस गृहस्थने बताया कि यह पेन उन्होंने सुबह एक लड़केसे पंद्रह रुपयेमें खरीदी थी। दादाजीने तुरंत उनको पंद्रह रुपये गिनकर दे दिये। पेन वापस मिली, अब तो शायद घड़ी भी मिल जायगी; ऐसा सोचकर और उन गृहस्थको भी हमारी गाड़ीमें ही जाना था तो उनको भी अपने साथ वहाँके निवास-स्थानपर आनेके लिये विनती की। वहाँ पहुँचकर व्यवस्थापकको सब बातें बतायी गयीं। उन्होंने सब नौकरोंको बुलाया। हमारे साथ आये हुए गृहस्थने उन सबमेंसे एक लड़केको पहचानकर कहा कि 'इसीने सुबह पेन बेची थी।'

लड़केसे पूछताछ करनेपर उसने कबूल किया और घड़ी किसको बेची थी, यह भी बताया। थोड़ी कठिनाईसे घड़ी भी मिल गयी। खरीददारद्वारा लड़केको दी हुई रकम दादाजीने उसको चुकताकर घड़ी वापस ली। अठारह वर्षके इस छोकरेसे चोरी करनेका कारण पूछा तो करुणाभरी आवाजमें रोते-रोते उसने बताया कि 'उसकी बूढ़ी माँ बहुत बीमार है और डाक्टर तथा दूधवालेकी रकम समयपर न चुका सकनेपर उसकी माँका इलाज रुक जायगा, इस डरसे उसने घड़ी और पेनकी चोरी की!'

लड़केकी बातकी सचाई जाननेके लिये हम उसके घर गये। रास्तेमें लड़केने दादाजीसे प्रार्थना की कि इस घटनाके बारेमें उसकी माताजीसे कृपया कुछ न कहें; क्योंकि इसे सुनकर उसके मनको धक्का पहुँचेगा और इसके कारण शायद उसकी मृत्यु भी हो जाय! हम उसके घर पहुँचे तो देखा कि सचमुच ही उसकी जीर्णकाय बूढ़ी माँ बहुत बीमार थी।

दादाजीने सब तरहसे पूछताछ करके उस लड़केको पचीस रुपये देकर उसकी माँका इलाज चालू रखनेके लिये कहा। उन्होंने पंढरपुरमें रहनेवाले अपने एक मित्रसे उस लड़केका परिचय करा दिया ताकि यदि कोई तात्कालिक सहायताकी आवश्यकता हो तो मिलती रहे। अन्तमें दादाजीने अपना बंबईका पता उसको देकर कहा—'तुम्हारी माताजी ठीक होनेपर बंबई आकर मुझसे मिलना।'

कुछ दिनोंमें उस लड़केकी माँकी मृत्यु होनेपर वह बंबई आकर दादाजीसे मिला। दादाजीने उसे अपने पास नौकरी दी। इतना ही नहीं, आगे चलकर उसकी शादी भी करा दी। आजकल वह दादाजीके पास खास विश्वासपात्र—आत्मीयके रूपमें काम करते हुए पत्नी और बच्चोंके साथ आनन्दपूर्वक जीवन बिता रहा है। (अखण्ड आनन्द) —स्वामी कृष्णानन्द

( ८ )

## अंगुलबेडा Whitlow की चमत्कारी दवा

अंगुलबेडा (अंगुल हाड़ा) जिसे अंग्रेजीमें Whitlow

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण भाषामें गर्धवी ( गधइया ) या विषकटीके नामसे पुकारते हैं। जो प्रायः नख खूब छोटा कटाने, चोट लगने या जल जाने किंवा विषैली वस्तुके रक्तमें प्रवेश करनेसे हो जाता है। इससे अंगुलीके आगे बड़ी जलन, दर्द और सूजन हो जाती है।

जलन और कष्टके कारण रोगीकी व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। यह बड़ी ही कठिनतासे दूर होता है।

इस रोगपर नर्मदा प्रान्तके सघन वनमें रहनेवाले एक अनुभवी गोंडसे प्राप्त एक प्रयोग है। वह यह है कि आकके दूधको अंगुलवेडापर लगाकर सर्पकी केंचुली चिपका देनेसे जलन और कड़क उसी समय शान्त हो जाती है। दिनमें दो बार, दो दिन लगानेसे आशातीत लाभ होता है।

प्राप्त योगको कई रोगियोंपर आजमाया गया। भगवान्‌की कृपासे जिन्हें डाक्टरोंने ऑपरेशनकी राय दी थी, वे भी शीघ्र स्वस्थ हो गये।

—श्यामाचरण पाण्डेय, वैद्यशास्त्री

## क्यों तुम्हारी याद करता ?

अर्चनाके पुष्प अपने अर्चनामें रख सकूँगा,
यदि यही होता भरोसा, क्यों तुम्हारी याद करता ?
साधनाके दीर्घ पथपर अनवरत चलता रहूँगा।
स्वयं चलकर पा सकूँगा, साध पूरी कर सकूँगा॥
यदि यही विश्वास होता, 'स्वयं आवो' यह न कहता॥ १॥
एक पथपर एक गतिसे मैं कभी भी चल न पाया।
जब जरा आया कठिन पथ, सर्वदा ही लड़खड़ाया॥
सबल यदि ये चरण होते, 'दो सहारा' यह न कहता॥ २॥
भय-प्रलोभन तनिक आते, सहजहीमें फिसल जाता।
हूँ सदासे चपल, अस्थिर, संयमन मैं कर न पाता॥
संयमित यदि प्रकृति होती, 'लाज रख लो' यह न कहता॥ ३॥
हृदयमें अनुराग-दीपक यत्नसे जब जब जलाया।
सर्वदा ही वासनाकी वात-वर्षाने बुझाया॥
दीप यदि निष्कम्प जलता, 'आ बचाओ' यह न कहता॥ ४॥
जगत्में रहकर जगत्से तनिक भी उपराम होता।
यदि सरोवरके कमल-सा तनिक भी निर्लिप्त होता॥
सत्य कहता हूँ कभी भी, 'शरणमें लो' यह न कहता॥ ५॥
सत्यसे अति दूर सारे, स्वप्न मेरे आज भी हैं।
अर्चनाके स्वप्न मेरे, आज भी वे स्वप्न ही हैं॥
स्वप्न यदि साकार होते, 'अब दया कर' यह न कहता॥ ६॥
हूँ विवश अपने कियेपर, क्या करूँ? चंचल हृदय हूँ।
अर्चना कैसे करूँ जब, स्वयंको अभिशाप मैं हूँ॥
शेष तेरा ही भरोसा, इसलिये मैं याद करता॥ ७॥

—एक साधक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

# कल्याणके नियम

पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

## नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ७ रुपये ५० नये पैसे और भारत-वर्षसे बाहरके लिये १० रुपये (१५ शिलिंग) नियत है। **बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।**

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

**(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

(८) .४५ नये पैसे एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है। ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो .४५ नये पैसे बाद दिये जा सकते हैं।

## आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण' की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

**(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये।** वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

**(१३) प्रेस-विभाग तथा कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये।** 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १.०० से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

**(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें) पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।**

(१६) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम नहीं लिया जाता।

व्यवस्थापक—**'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप गया ! प्रकाशित हो गया !

# विक्रम-संवत् २०१९ ( सन् १९६२–६३ ) का गीता-पञ्चाङ्ग

सम्पादक—ज्यौतिषाचार्य ज्यौतिषतीर्थ पं० श्रीसीतारामजी झा, वाराणसी

आकार २२×३० आठपेजी, ग्लेज सफेद २६ पौंडका कागज, पृष्ठ-संख्या ७२, आर्टपेपरका सुन्दर मुखपृष्ठ
मूल्य .५० ( पचास नये पैसे ) डाकव्यय रजिस्ट्रीखर्चसहित .७०, कुल १.२०

इस बार ज्योतिर्विद् पं० श्रीविद्याधरजी शुक्लद्वारा तैयार की हुई दृष्टफलार्थ—काशीराश्युदयसिद्ध दैनिक लग्नसारिणी ८ पृष्ठ और अधिक दिये गये हैं। अन्य सब उपयोगी बातें सदाकी तरह हैं ही।

वि० २०१८ के गीता-पञ्चाङ्गकी ४०,००० प्रतियाँ छापी गयी थीं; परंतु सब ग्राहकोंकी पूर्ति न हो सकी। जगह-जगहसे लोग माँगते ही रहे, पर उन्हें अन्ततः निराश ही होना पड़ा। इस बार भी ४०,००० प्रतियाँ ही छापी जा सकी हैं जिनमें अधिकांश बिक चुकी हैं। थोड़ी प्रतियाँ शेष हैं। अतः जिन्हें लेना हो, शीघ्रता करनेकी कृपा करेंगे।

**विक्रेताओंके लिये १,००० प्रतियाँ एक साथ लेनेपर मूल्य ४५०.०० ( चार सौ पचास रुपये ) है। कमीशन, विशेष कमीशन तथा सवारी गाड़ीका फ्री रेलभाड़ा आदि नियमानुसार मिलता ही है।**

# मानस-पीयूषके प्राप्य खण्ड

**खण्ड १**—बालकाण्ड ( प्रारम्भसे दोहा ४३ तक ) पृष्ठ ६८८ ... ... ... ७.५०
**खण्ड २**—बालकाण्ड ( ४३ दोहेसे दोहा १८८ के ६ चौपाईतक ) पृष्ठ ८६८ ... ... ९.५०
**खण्ड ४**—अयोध्याकाण्ड सम्पूर्ण, पृष्ठ ११९६ ... ... ... ११.००
**खण्ड ५**—अरण्यकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड पूरा, पृष्ठ ६४२ ... ... ... ७.००
**खण्ड ६**—सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड पूरा, पृष्ठ १०५२ ... ... ... ११.००
**खण्ड ७**—उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण, पृष्ठ ७८४ ... ... ... ८.५०
**खण्ड ३**—( बालकाण्ड दोहा १८८ की चौपाई ७ से सम्पूर्ण ) छप रहा है, जिसके १-१॥ मासमें तैयार हो जानेकी आशा है।

# प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें भेजिये

( १ ) प्राचीन ग्रन्थोंकी सुरक्षाकी दृष्टिसे प्राचीन ग्रन्थोंका गीताप्रेसमें संग्रह किया जा रहा है। जिनके पास संस्कृत या हिन्दी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ या चित्र हों और जो देना चाहें, वे कृपया भेज दें। रेल या डाकखर्च गीताप्रेसकी ओरसे दिया जायगा।

( २ ) किन्हीं सज्जनके पास विक्रम संवत् १७०० से पूर्वकी या १७०० के कुछ ही वर्षों बादकी लिखी गो० श्रीतुलसीदासजीरचित श्रीरामचरितमानसकी पूरी ( सातों काण्ड ) या अधूरी ( कुछ काण्ड ) प्रति हो तो वे कृपया हमें प्रदान करें। डाकखर्च यहाँसे दिया जायगा और हम बड़े कृतज्ञ होंगे।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

# आवश्यक प्रार्थना

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पत्रव्यवहार बहुत ही कम कर पाते हैं तथा सार्वजनिक सभाओं, उत्सवों-समारोहोंमें भी सम्मिलित होनेमें और लोगोंसे मिलने-जुलनेमें भी उन्हें बड़ी असुविधा है। अतएव सबसे प्रार्थना है कि बहुत आवश्यक होनेपर ही उनको व्यक्तिगत पत्र लिखें, पत्रका उत्तर देरसे पहुँचे या न पहुँचे तो क्षमा करें; सार्वजनिक सभाओं, उत्सव-समारोहोंमें बुलानेका कृपया आग्रह न करें और यहाँ मिलनेके लिये, पहलेसे स्वीकृति प्राप्त किये बिना पधारनेका कष्ट भी कृपापूर्वक न करें। कोई सज्जन आ जायँ और उनसे मिलना न हो तो व्यर्थ कष्ट होगा, इसीसे यह प्रार्थना की गयी है।

पोद्दारजीके नाम आये हुए ऐसे सैकड़ों पत्र—जिनका उत्तर उन्हें स्वयं ही लिखना या लिखवाना था;—बिना उत्तरके ही पड़े रह गये हैं। इसके लिये वे पत्र-लेखक महोदयोंसे करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )**

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

वर्ष ३६
अङ्क ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण—[illegible] ( एक लाख [illegible] हजार )

# विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र २०१८, मार्च १९६२



## चित्र-सूची




वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
( १५ शिलिंग )


जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥


साधारण प्रति
भारतमें .४[illegible]
विदेशमें .५[illegible]
( १० पैंस )


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar


सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ } गोरखपुर, सौर चैत्र २०१८, मार्च १९६२ { संख्या ३ पूर्ण संख्या ४२४

## श्रीगौरी-शंकर

हिमगिरि छाय रहे श्रीसंकर ॥
गौरी सहित, गौर-तनु उज्ज्वल, आभूषन भूषित भुजंगवर ।
पंचबदन, सुभ नयन पंचदस, जटामुकुट सिर, ससि-सुरधुनि-धर ॥
परसु त्रिसूल ग्यान-बर-मुद्रा सोभित, चारु चार भुज सुंदर ।
भालुचर्म कटि, कंठ कलित अहि अच्छमाल-अहि, मुंडमाल उर ॥
अलंकार मुकुता-मनि मंडित, गौरी महिमामयी बरद कर ।
धवल बरन, वाहन सुबिराजित धरम स्वयं सुचि बरद-रूप धर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद रक्खो—भगवान् एक हैं। परंतु उनतक पहुँचनेके मार्ग अनेक हैं। साध्य—लक्ष्य एक है, परंतु उसे प्राप्त करनेके साधन अनन्त हैं। साध्य एक होनेपर भी साधनोंमें अनेकता अनिवार्य है। जैसे काशी एक है पर काशी पहुँचनेके पथ विभिन्न हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—सभी दिशाओंके मनुष्य काशीको लक्ष्य बनाकर चलेंगे तो काशी पहुँच जायँगे, परंतु वे चलेंगे अपनी-अपनी दिशासे तथा अपने-अपने मार्गसे ही। मार्गोंके अनुभव भी उनके पृथक्-पृथक् होंगे। कोई यह चाहे कि पूर्वसे आनेवाला पश्चिमसे आनेवालेके पथसे ही आये तथा उत्तरसे आनेवाला दक्षिणके पथसे ही आये तो जैसे यह चाहना भ्रममूलक है, वैसे ही भगवान्तक—अपने परम लक्ष्यतक पहुँचनेका साधन एक ही हो—यह मानना भी भ्रम है। रुचि, समझ, अन्तःकरणके स्वरूप, त्रिगुणोंकी न्यूनाधिकता, पूर्व-संस्कार, वातावरण आदिके अनुसार ही विभिन्न साधन होंगे। अतएव किसी भी भगवत्प्राप्तिके साधनकी न निन्दा करो, न किसीको देखकर लुभाओ। लक्ष्यपर नित्य दृष्टि रखकर अपने पथसे चलते रहो। भगवान् ही जीवनके परम साध्य हैं, इसको क्षणभरके लिये भी न भूलकर नित्य-निरन्तर अपने साधनमें लगे रहो। दूसरे क्या करते हैं, क्या कहते हैं, इसकी ओर न देखकर निरन्तर अपने मार्गपर सावधानीसे आगे बढ़ते रहो।

याद रक्खो—यदि तुम्हारे जीवनमें दैवी सम्पत्ति बढ़ रही है, मन विषयोंसे हट रहा है, भगवान्के प्रति आकर्षण अधिक हो रहा है, मनमें शान्ति तथा आनन्द-की वृद्धि हो रही है और ये धीमी या तेज जिस चालसे बढ़ रहे हैं तो समझ लो कि तुम उसी मात्रामें उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहे हो; और यदि तुम्हारे जीवनमें आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है, मन विषयोंकी ओर खिंच रहा है, भगवान्के स्मरणसे हट रहा है, मनमें अशान्ति तथा चिन्ताकी वृद्धि हो रही है और ये मन्द या तीव्र जिस गतिसे बढ़ रहे हैं तो उसी गतिसे तुम पीछे हट रहे हो, तुम्हारा पतन हो रहा है। अतएव सावधानीके साथ अपने जीवनकी भीतरी स्थितिको देखते रहो। तुम्हारा असली वही स्वरूप है, जैसी तुम्हारी भीतरी स्थिति है।

याद रक्खो—सबसे आवश्यक और सबसे प्रथम करने योग्य कार्य है—लक्ष्यका निश्चय। 'भगवान् ही जीवनके परम लक्ष्य हैं'—यह निश्चय करना। और फिर इसी लक्ष्यको सामने रखकर जीवनमें प्रत्येक भीतरी-बाहरी क्रिया करना। जीवनका निश्चित लक्ष्य भगवान् होंगे तो तुम्हारा मुख भगवान्की ओर होगा और तुम धीमी या तेज चालसे भगवान्की ओर ही बढ़ते रहोगे, क्योंकि जीवमात्र सब चल ही रहे हैं, कालचक्रमें पड़े हुए नित्य-निरन्तर चलते रहना ही संसारमें जीवका कार्य है। फिर वह चाहे भगवान्के सामने मुख करके उनकी ओर चलें या विषयोंको सामने रखकर उनकी ओर!

याद रक्खो—हिमालयकी तपोभूमिकी ओर जानेवालेको जैसे आगे-से-आगे शीतलता ( ठंडक ), एकान्त भूमि, त्यागी साधु महात्मा तथा शान्ति-सुख आदि मिलेंगे, और इसके विपरीत गरम देशमें भोगमय बड़े-बड़े नगरोंकी ओर जानेवालेको उत्तरोत्तर गरमी, भीड़भाड़, भोगी-विषयी लोग—चोर-ठग-डाकू, अशान्ति, चिन्ता आदिकी प्राप्ति होगी, ठीक वैसे ही भगवान्की ओर जानेवालेको आगे-से-आगे दैवी सम्पत्ति, सत्संगति, विषय-वैराग्य, शान्ति, आत्मानन्द, पवित्र आचार-विचार आदि मिलते रहेंगे और भोगोंकी ओर जानेवालेको आसुरी सम्पदा, कुसंगति, विषयासक्ति, अशान्ति, भोगोंमें आनन्दका भ्रम, अपवित्र पाप-कर्मादि, दिन-रातकी जलन आदि प्राप्त होंगे। अतएव अपने आपको इन लक्षणोंके अनुसार देख-जाँचकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय कर लो कि तुम किस ओर जा रहे हो और यदि दुःखमय अनित्य भोगोंकी ओर जा रहे हो तो तुम्हारे लिये दुःख तथा पतन निश्चित है, फिर भले ही तुम बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, साधु, भक्त, महात्मा, नेता, अधिकारी, ऐश्वर्यवान् सुखी क्यों न समझे-कहे जाते हो या मानते हो। अतः तुरंत विषयोंकी ओर पीठ करके भगवान्‌के सामने मुख कर लो।

याद रक्खो—तुम मनुष्यके रूपमें इस संसारमें इसलिये नहीं भेजे गये हो कि दिन-रात भोगलिप्सामें लगे रहकर पापजीवन बिताओ और पापकर्मोंका संचय बढ़ाकर रोते-कलपते मर जाओ। तुम्हें तो मानवरूप दिया गया है भगवान्‌की प्राप्तिके साधनमें लगकर पुण्य-जीवन बिताते हुए भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये, मृत्युको मारकर दिव्य नित्य भागवत-जीवनकी प्राप्तिके लिये। इस बातको याद रक्खो और अपनी योग्यता तथा रुचिके अनुसार निर्दोष परमार्थ-साधनको अपनाकर इधर-उधर न ताकते हुए चलते रहो और जीवनके नित्य परम साध्य भगवान्‌को प्राप्त करके सफलजीवन बन जाओ।

'शिव'

# दीन-प्रार्थना

**नामानि प्रणयेन ते सुकृतिनां तन्वन्ति तुण्डोत्सवं धामानि प्रथयन्ति हन्त जलदश्यामानि नेत्राञ्जनम्।**
**सामानि श्रुतिशष्कुलीं मुरलिकाजातान्यलंकुर्वते कामानिर्वृतचेतसामिह विभो! नाशापि नः शोभते॥**
**संसाराम्भसि सम्भृतभ्रमभरे गम्भीरतापत्रयग्राहेणाभिगृहीतमुग्रगतिना क्रोशान्तमन्तर्भयात्।**
**दीप्रेणाद्य सुदर्शनेन विबुधक्लान्तिच्छिदाकारिणा चिन्तासंततिरुद्धमुद्धर हरे मच्चित्तदन्तीश्वरम्॥**
**विवृतविविधबाधे भ्रान्तिवेगाविगाधे बलवति भवपूरे मज्जतो मे विदूरे।**
**अशरणगणबन्धो! हा कृपाकौमुदीन्दो! सकृदकृतविलम्बं देहि हस्तावलम्बम्॥**

(श्रीरूपगोस्वामी)

हे विभो! आपके परम मङ्गलमय सब नाम प्रेमके कारण पुण्य कर्म करनेवाले पुरुषोंके मुखका महोत्सव बढ़ाते हैं। आपके श्रीविग्रहकी नव-नील-नीरद-श्याम कान्ति उनके नेत्रोंका अञ्जन विस्तार करती है। आपकी मनोहारिणी मुरलीसे उत्पन्न मधुर सामगीत उनके कानोंको अलंकृत करते हैं। विषयकामनाओंसे क्लिष्ट चित्तवाले मेरे लिये तो यह आशा भी अच्छी नहीं है, अतः उन भक्तोंकी स्थिति तो मुझे प्राप्त ही कैसे हो सकती है (आप अपनी अहैतुकी कृपासे ही मेरा उद्धार कर दीजिये)।

हरे! अनेक भँवरोंसे भरे संसार-सागरके जलमें उग्र गतिवाले तापत्रयरूपी ग्राहने मेरे चित्तरूपी गजराजको ग्रस लिया है। मेरा वह चित्त भयभीत होकर उच्चस्वरसे रोता-कराहता हुआ आपको पुकार रहा है। हे प्रभो! आप देव-दुःखोंका उच्छेद करनेवाले अपने देदीप्यमान सुदर्शनचक्रद्वारा चिन्तासमूहोंसे अवरुद्ध मेरे चित्तका उद्धार कर दीजिये।

विविध बाधाओंसे भरे, भ्रान्तिके वेगसे अगाध बलवान् ऐसे संसार-सागरमें डूबता हुआ मैं बहुत दूर आ गया हूँ। अतः हे अशरणगणोंके बन्धु! हे कृपारूप ज्योत्स्नाका विस्तार करनेवाले चन्द्रमा! आप तुरंत ही एक बार अपने हाथका सहारा देकर मुझे उबार लीजिये।
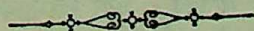
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

( मूल अंग्रेजी लेखक–ब्र०जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी )

[ अनुवादक––पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि ]

[ गताङ्कसे आगे ]

## ज्ञान

अगला गुण, जिसपर हमारे शास्त्र विचार करते हैं, प्रकृति और आत्माका सम्बन्ध है, जिसे चित् अथवा ज्ञान कहा गया है। अपने दैनिक जीवनमें होनेवाले अज्ञानता-मूलक दोषोंके बार-बार अथवा लगातार होनेके कारण हम यह कठिनतासे ही मानेंगे कि ज्ञान जीवात्माका स्वाभाविक गुण है, पर थोड़ा-सा मनन इस बातको प्रमाणित कर देगा कि शास्त्रोंका यह कथन नितान्त सत्य है। किंतु इस दिशामें हमें धीरे-धीरे ही बढ़ना चाहिये, एकदम जल्दी नहीं। सबसे पहले हमें यह देखना चाहिये कि क्या आत्माको ज्ञानसे पृथक् किया जा सकता है? इस प्रश्नपर विचार करनेपर हमें पता चलेगा कि किसी-न-किसी रूप और परिमाणमें ज्ञान जीवात्माके साथ हरदम रहता ही है। यहाँ उस ज्ञानके सदोष, निर्दोष और पूर्णता,अपूर्णताका प्रश्न नहीं है, उसका तो विचार हम बादमें करेंगे। यहाँ तो हम केवल इसी बातपर विचार करना चाहते हैं कि किसी-न-किसी प्रकारका ज्ञान जीवात्मामें अवश्य रहता है। यह प्रसंग हमें एक लघु-कथाका स्मरण दिलाता है, जिसमें एक स्त्री अपने पतिसे कहती है कि 'इस पृथ्वीपर एक भी ऐसी चीज नहीं है, जिसपर हम दोनों कभी सहमत हुए हों।' पति उत्तर देता है कि 'नहीं, तुम्हारा कहना गलत है, एक बातपर हम-तुम दोनों सहमत हैं और वह बात यह है कि इस पृथ्वीपर एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसपर हम दोनों सहमत हो सकें।' इसी प्रकार जब कोई यह कहता है कि वह कुछ नहीं जानता, तब भी वह इस बातका ज्ञान तो अवश्य रखता ही है कि वह कुछ नहीं जानता। यह तर्क इस बातको सिद्ध करता है कि ज्ञान दूसरा गुण है, जिसे जीवात्मासे पृथक् नहीं किया जा सकता।

यह ज्ञान केवल जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें ही नहीं अपितु सुषुप्तिमें भी रहता है; क्योंकि सुषुप्तिमें भी चैतन्यता रहती है, केवल अन्तर यही है कि सुषुप्तिमें चैतन्यता ऊपरकी सतहपर नहीं आती। पर हम इस बातको मानें कैसे? इस बातकी सिद्धिके लिये एक छोटा-सा अनुभव ही पर्याप्त है, कल्पना करो कि तुम गाढ़ निद्रामें हो और एक मच्छर तुम्हारे पैर में काटता है, यद्यपि तुम तब भी गाढ़ निद्रामें हो, पर तुम्हारी चैतन्यताका प्रवाह निष्क्रिय नहीं रहेगा। शरीर-विज्ञान-शास्त्र (Physiology) में दो प्रकारकी नाडियोंका वर्णन है—एक ज्ञानवाही (Sensitive Nerves) और दूसरी कर्मवाही (Active Nerves), जिनमें प्रथमकी क्रिया बाहरसे प्राप्त हुए ज्ञानको मस्तिष्कतक पहुँचाना है तथा दूसरी नाड़ियोंका काम मस्तिष्ककी आज्ञाओंको इन्द्रियों तक पहुँचाना है। वे नाडियाँ हरदम अपने कामोंपर तैनात रहती हैं, पर तुम्हें इस बातका ज्ञान नहीं होता। अस्तु, मच्छरके काटनेपर भी तुम्हारी नींदमें किसी प्रकारका विघ्न नहीं पड़ता, पर पैरमें मच्छरके काटनेकी संवेदना (Sensation) ज्ञानवाही नाडियोंद्वारा मस्तिष्कतक पहुँच जाती है और तब भी तुम्हें नींदसे उठाये बिना ही तुम्हारा मस्तिष्क उस काटे हुए स्थानको रगड़कर दर्द मिटा देनेके लिये तुम्हारे हाथको आज्ञा देता है और तुम्हारा हाथ मस्तिष्ककी आज्ञाका पालन करता है। जब जागनेपर उस स्थानपर खून निकला हुआ देखते हो, तब सहज ही यह अनुमान कर लेते हो कि मच्छर या किसी कीड़ेने काट लिया होगा और तुमने उस स्थानको नाखूनोंसे खुजा दिया होगा। शरीर-शास्त्रज्ञ (Physiologists) इस क्रियाको 'संवेदनात्मक प्रतिक्रिया' (Reflex Action) कहते है। खैर, वे इस क्रियाको कुछ भी नाम दें, पर इस तथ्यसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि गाढ़ी नींदमें भी बाहरकी सूचनाएँ मस्तिष्कको मिलती रहती हैं और मस्तिष्क उन सूचनाओंके अनुसार क्रियाएँ भी करता और करवाता है। यह अनुभव इस बातका निदर्शक है कि सुषुप्तिमें भी ज्ञान किसी-न-किसी रूपमें रहता अवश्य है। दूसरे शब्दोंमें, ज्ञान एक दूसरा लक्षण है जो जीवात्माके साथ अविभाज्य, अपृथक् और स्वाभाविक गुणके रूपमें निरन्तर रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम कुछ और गहराईमें उतरकर इस बातपर विचार करना चाहते हैं कि जीवात्माका यह लक्षण 'ज्ञान' खण्ड है या अखण्ड, परिच्छिन्न है या अपरिच्छिन्न । हम कहते हैं कि हमने अमुक गलती कर डाली, पर वेदान्त-शास्त्र हमें यह बताता है कि आत्मा सदा चित्स्वरूप है। और कुछ विश्लेषण करनेपर हमें स्वयं भी यह पता चल जायगा कि हमारे अंदरका ज्ञान सीमित नहीं है । अपितु असीमित और पूर्ण है। उदाहरणस्वरूप यदि तुम अपने कमरेके सब खिड़की और किवाड़ोंको बंद करके केवल एक छोटी-सी दरार मात्र रक्खो, जिसमेंसे सूर्यकी थोड़ी-सी किरणें मुश्किलसे अंदर आ सकें; उसको देखकर यदि तुम कहो कि दरारमेंसे जितना सूर्यका प्रकाश आ रहा है केवल उतना ही प्रकाश संसारभरमें भी है तो क्या यह तुम्हारा कथन युक्तिसंगत होगा ? जब कि तथ्य यह है कि सूर्यका प्रकाश अपार है, पर वह प्रकाश उस सीमित दरारमेंसे आनेके कारण सूर्यके वास्तविक प्रकाशको उस दरारसे नहीं नापा या देखा जा सकता । इसी प्रकार एक कमरा प्रकाशसे भरपूर हो, पर बाहरके मनुष्यको उसकी केवल एक ही किरण दिखायी दे रही हो, तो उसे अंदरके महान् प्रकाशकी कल्पना नहीं हो सकती । इसी बातको भगवान् आद्यशंकराचार्यने इस प्रकार कहा है—

**नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरम् ।**

( अनेक छिद्रोंसे युक्त घड़ेमें रक्खे हुए महान् दीपकके समान यह प्रकाशमान है । )

अथवा साधारण बिजलीके बल्बोंका ही उदाहरण लेलीजिये। यद्यपि विद्युत्-गृह ( Power-house ) में बिजली बहुत बड़ी तादादमें पैदा की जाती है, पर उसमेंसे प्रकाशको प्राप्त करना हमारे बल्बोंकी शक्तिपर निर्भर है, इसके अलावा रंगीन बल्बोंके द्वारा रंगरहित प्रकाशका रंग भी बदला जा सकता है । इसी तरह वेदान्त कहता है कि सभी प्रकारका ज्ञान हमारे अंदर है, पर अज्ञानद्वारा वह ढका रहता है, हमारा कार्य केवल उस अज्ञानके पर्देको हटाना ही है । गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

**अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।**

( ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ होता है और उससे प्राणी मोहको प्राप्त होते हैं । )

इस उपदेशकी सचाईकी परख हम अग्नि, विद्युत्, मूर्त्ति और शिक्षापर अपने अनुभवोंको केन्द्रित करके कर सकते हैं । हम अग्निको पैदा कैसे करते हैं ? वस्तुतः हम अग्निकी नयी उत्पत्ति नहीं करते, वह तो अप्रकटरूपमें पहलेसे ही अंदर विद्यमान है । हम तो केवल दो लकड़ियों ( अरणियों ), या दो पत्थरों अथवा तीलीको दियासलाईपर घिसते हैं और अप्रकट अग्निको प्रकट कर देते हैं । यही बात विद्युत्के विषयमें भी है । हम बिजलीको उत्पन्न नहीं करते, हम केवल अप्रकटित बिजलीको प्रकट करनेवाले साधनोंका उपयोग करते हैं और बिजली स्वयं प्रकट हो जाती है । इसी प्रकार जब एक मूर्त्तिकार संगमरमरकी एक मूर्ति बनाता है; तब वह वास्तवमें करता क्या है ? वह उस पत्थरमें किसीकी मूर्तिको बाहरसे लाकर नहीं रख देता । संसारकी सभी कल्पनीय आकृतियाँ उस पत्थरमें पहलेसे ही मौजूद हैं और मूर्तिकार छेनी और हथौड़ेकी सहायतासे अपने इच्छानुसार किसी एक मूर्त्तिको गढ़ लेता है । इस प्रकार उसकी इच्छित मूर्ति कहीं बाहरसे उस संगमरमरमें नहीं आयी, अपितु उसमें पहलेसे ही विद्यमान थी पर अप्रकट रूपमें ।

यही प्रकार शिक्षाका भी है । शिक्षा शब्दका अर्थ ही 'बाहर प्रकट करना' है । एक अध्यापक शिक्षाके-द्वारा शिष्यकी छिपी हुई योग्यताको प्रकाशमें लाता है ।

यदि दुर्जनतोष न्यायसे यह मान भी लिया जाय कि जीवात्मामें ज्ञान बाहरसे ही आता है, तो भी यह बात सिद्ध या प्रमाणित कैसे की जा सकती है ? गरम पानीके दृष्टान्तमें जैसे कहा था कि पानीकी सारी उष्णता थोड़ी देर बाद समाप्त हो जाती है; क्योंकि उष्णता पानीका लक्षण न होकर एक उपलक्षण मात्र है । इसी प्रकार ज्ञान भी यदि जीवात्माका लक्षण न होकर उपलक्षणमात्र हो तो वह हमारे लिये किसी उपयोगका नहीं हो सकता । हमारे लिये तो वही ज्ञान उपयोगी हो सकता है जो हमारे अंदर प्रकट या अप्रकटरूपमें पहलेसे ही मौजूद हो, अन्यथा तो वह ज्ञान पानीकी उष्णताकी तरह थोड़ी देरके बाद ही समाप्त हो जायगा । अतः यह तर्क इस बातका साधक है कि ज्ञान जीवात्मामें पूर्वसे ही विद्यमान रहता है । एक योग्य और सच्चा अध्यापक वह है, जो यथायोग्य साधनोंका सहारा लेकर शिष्यकी छिपी हुई प्रतिभाको भरपूर तौरपर विकसित या प्रकटित करता है । अन्य दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो 'अध्यापक'के वेशमें 'धोखेबाज' हैं, इसी कारण भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।

जब सूर्यको ढककर हमारी दृष्टिसे ओझल कर देनेवाले बादल हवाद्वारा हटा दिये जाते हैं, तब यहाँ हवा एक नये सूर्यको उत्पन्न नहीं करती, अपितु बादलोंको हटाकर उसी पुराने सूर्यको प्रकट करती है। दूसरे शब्दोंमें शिक्षा और संस्कृति किसी नये ज्ञानका निर्माण नहीं करती, अपितु अंदर छिपे हुए ज्ञानको ही बाहर लाकर हमारे देखनेयोग्य बना देती है। इन सबके कहनेका तात्पर्य यह है कि आत्मा अखण्ड ज्ञानयुक्त है।

## फ्रेंच लड़कीका उदाहरण

इस प्रसंगमें एक आश्चर्यजनक घटना याद आती है जो कुछ वर्ष पूर्व एक समाचार-पत्रमें छपी थी। एक फ्रेंच-लड़की, जो केवल अपनी मातृभाषा फ्रेंच ही जानती थी, बहुत खतरनाक रूपसे बीमार पड़ गयी और एक सप्ताहतक बेहोश रही। पर वह किसी प्रकार बच गयी और जब इसकी बेहोशी दूर हुई, तब लोगोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह अपनी मातृभाषा फ्रेंच बिल्कुल भूल चुकी है और एक दर्जन अन्यभाषाओंको, जिनको उसने पहले कभी सुना भी नहीं था, अच्छी तरह पढ़ने, बोलने और लिखने लग गयी है। इस समाचारको सुनकर अनेक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक उसके पास दौड़े गये और जब उन्होंने इस विषयमें खोज की तो पाया कि इस समाचारमें कुछ भी धोखा नहीं है, सब सत्य है। अन्तमें उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि मस्तिष्कमें सभी बातोंका सम्पूर्ण ज्ञान रहता है पर उसके प्रकाशनके दरवाजे बंद रहते हैं, जिन्हें खोलनेके लिये विशेष चाबियोंकी आवश्यकता होती है। सहायता, वातावरण और प्रशिक्षण ( Training ) के ज़रिये हम कुछ ही दरवाजोंको खोल पाते हैं और अज्ञानतावश और उपयुक्त चाबियोंका प्रयोग न करनेके कारण दूसरे दरवाजोंको खोलनेमें असमर्थ रहते हैं। इस फ्रेंच लड़कीके विषयमें भी कुछ ऐसा ही हुआ कि फ्रेंच भाषाका दरवाजा स्वतः बंद हो गया और अन्य अज्ञात भाषाओंके दरवाजे खुल गये। यहाँ हमें वेदान्तके इस सिद्धान्तके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है कि आत्मा अनन्त और पूर्ण ज्ञानका भण्डार है।

उद्देश्यात्मक प्रणालीसे भी हम देखते हैं कि जिस प्रकार जीनेके लिये हमारा प्रयत्न करना यह सिद्ध करता है कि अमरता हमारा स्वभाव है, उसी प्रकार सभी चीजोंको जाननेकी हमारी लालसा इस बातका प्रमाण है कि आत्माका स्वाभाविक गुण ज्ञान है, अज्ञान नहीं।

## शाश्वत आनन्द ( Eternal Bliss )

आत्माके दो लक्षण अमरता और अनन्त ज्ञानपर विचार करनेके बाद अब हम तीसरे गुणपर विचार करते हैं। उपनिषदोंके अनुसार सत् और चित्के बाद आनन्द आत्माका गुण है। दुःखोंका अनुभव करनेवाला व्यक्ति इस बातको कठिनतासे ही स्वीकार करेगा कि आनन्द आत्माका गुण है। पर थोड़ा-सा विचार इस बातको भी प्रमाणित कर देगा कि यहाँ भी वेदान्तका कथन नितान्त सत्य है। वस्तुतः यह मायाकी ही अपार शक्ति है, जो हमारी बुद्धिपर छा जाती है और हम सत्यको जान या पहिचान नहीं पाते। यदि कोई मनुष्य रो रहा हो तो लोग उसके पास जाकर उसके रोनेका कारण पूछते हैं। अतः इससे यह ज्ञात होता है कि दुःख हमारे लिये स्वाभाविक नहीं है अपितु बाह्य कारणसे उसकी उत्पत्ति हुई है, अर्थात् दुःख आत्माका लक्षण न होकर उपलक्षण मात्र है। एक मनुष्य अपनी स्त्री या किसी घनिष्ठ सम्बन्धीके मर जानेपर यह अनुभव करने लगता है कि अब संसारमें उसका अपना कोई नहीं रहा या उसके लिये संसार समाप्त हो गया। पर थोड़े दिनों बाद उसका शोक या दुःख धीरे-धीरे कम होकर अन्तमें बिल्कुल समाप्त हो जाता है और अन्तमें वह मनुष्य भी अपनी मृत स्त्री या सम्बन्धीको बिल्कुल भूल जाता है। यह दुःख या शोक भी उसी गरम पानीकी तरह है जो गरम होनेके लिये तो बाह्य उपकरणोंकी आवश्यकता रखता है, पर ठण्डा होनेके लिये नहीं। यदि ऐसा ही है तो क्या दुःख भी जलकी उष्णताकी तरह आत्माका उपलक्षण नहीं है। अतः यह भी इसी बातको बताता है कि दुःख हमारे लिये स्वाभाविक नहीं है। सुख ही स्वाभाविक है, जो दुःखके द्वारा थोड़े समयके लिये दबा दिये जानेपर भी दुःखके समाप्त हो जानेपर फिर उभर आता है।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार हम जीवित रहने और ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न निरन्तर करते हैं, उसी प्रकार सुखकी प्राप्तिके लिये भी हम सदा प्रयत्नशील रहते हैं, अतः मानना पड़ेगा कि सुख ही हमारा स्वभाव है। जिस प्रकार पानीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर पड़ी हुई एक मछली पानीमें जानेके लिये तड़पती और जी-जानसे कोशिश करती है उसी प्रकार हम सुखसे बाहर आ जानेपर सुखमें दुबारा जानेके लिये जी-जानसे प्रयत्न करते हैं। इसी दिशामें एक कदम और आगे बढ़कर जब विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि हम उस सुखकी कामना नहीं करते जो समय और स्थानसे सीमित या परिमित हो, अपितु उस सुखको चाहते हैं, जो निस्सीम, अनन्त और शाश्वत हो। इसलिये अनन्त, शाश्वत और दुःखसे अमिश्रित आनन्द ही आत्माका स्वाभाविक गुण है।

## स्वतन्त्रता

अब कल्पना करो कि हमने अमरता, अनन्त ज्ञान और शाश्वत आनन्द प्राप्त कर भी लिया तो भी क्या हमारी संतुष्टि हो सकेगी ? नहीं; क्योंकि हम भले ही ये सब प्राप्त कर लें पर हमारी यह प्राप्ति दूसरोंकी दयापर आधारित है, तो हमारा यह दूसरोंपर आश्रित रहना हमारे लिये दुःखदायी ही होगा। यद्यपि दोष हमारा ही होता है पर हम अपने बन्धनोंको न तोड़ सकनेकी अपनी असमर्थताके लिये समयको दोषी ठहराते हैं। अतः यदि सम्भव हो सके तो हम किसी भी पदार्थ या व्यक्तिपर आश्रित न रहकर पूर्णतया स्वतन्त्र रहना चाहेंगे। यह स्वतन्त्रताकी इच्छा केवल विचारशील कहे जानेवाले मनुष्यकी ही नहीं होती अपितु सभी जीवधारियोंकी होती है। इसी स्वतन्त्रताकी इच्छाको वेदान्तमें 'मुमुक्षा'के नामसे कहा गया है। अतएव मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह स्वतन्त्रता या मुक्तिके लिये सदा प्रयत्नशील रहे। स्वतन्त्रता-के लिये मनुष्यकी यह उत्कट भूख इस बातकी निदर्शक है कि दुःखोंसे मुक्ति पाना ही हमारा स्वभाव है। यह दुःखोंसे मुक्ति पानेकी इच्छा या 'मुमुक्षा' आत्माका चौथा लक्षण है।

## ईशन ( अधिकार )

यह मुमुक्षाकी चौथी सीढ़ी भी अन्तिम नहीं है। यदि हम अपने मनोभावों, अभिलाषाओं और कार्योंका विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि सत्, चित्, आनन्द और मोक्षकी प्राप्ति भी पर्याप्त नहीं है, उसके आगे भी एक और वस्तु है जिसे पानेकी हम कोशिश करते हैं। यह बड़ी विलक्षण वस्तु है जिसकी प्रत्येक कामना करता है। पर यह हमारी विलक्षण अभिलाषा है क्या ? वह है ईशन करनेकी इच्छा। हम यद्यपि एक ओर स्वतन्त्र रहना चाहते हैं और चाहते हैं कि हम किसीके अधिकारमें न रहें, पर दूसरी ओर हमारी यह भी कामना रहती है कि दूसरोंपर हम अपना अधिकार चलायें और वे सब हमारे कहनेके पीछे चलें। यहाँ देखने योग्य बात यह है कि एक बच्चा भी, जिसका संसारके विषयमें ज्ञान और अनुभव नहींके बराबर है, चाहता है कि माता-पिता उसकी ( बच्चेकी ) इच्छाके अनुसार चलें। इस नियमके अपवाद कोई भी नहीं हैं। सभी चाहते हैं कि स्वयं स्वतन्त्र रहकर दूसरोंपर शासन करें। इस प्रकार अधिकार या ईशन भी आत्माका पाँचवाँ लक्षण है।

## गुणोंकी पूर्णता

अपने चारों ओरके तथ्यों एवं अपने आन्तरिक मनोभावों-के व्याख्यात्मक विश्लेषणके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचे कि सत्, चित्, आनन्द, मोक्ष और ईशन हमारे लिये स्वाभाविक हैं। जलकी शीतताकी तरह ये हमारे आन्तरिक और जन्मजात गुण हैं। ये सब गुण थोड़ी देरके लिये दबाये जा सकते हैं, पर सदाके लिये इन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। पर हमारा यह अन्तर्दृष्ट्यात्मक विश्लेषण ( Introspectional Analysis ) हमें ले कहाँ आया ? हमने अपना विवेचन प्रारम्भ कहाँ किया था और पहुँच गये कहाँ ? हमने अपना विवेचन परमात्मा या अतिमानव ( Super-man ) से शुरू नहीं किया था अपितु अपनेसे ही किया था। वस्तुतः हमने अबतक ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें मनन जरा-सा भी नहीं किया, हम तो अबतक वैयक्तिक आत्मा ( Individual Soul ) के बारेमें ही कहते रहे। पर हम इसके द्वारा एक आशातीत निष्कर्षपर पहुँच गये। हम चाहे ईश्वरकी सत्ताको मानें न मानें, विचार करें न करें, पर इस बातको अवश्य मानना पड़ेगा कि सत्, चित्, आनन्द, मुक्ति और ईशन, जिन्हें शास्त्रोंने ईश्वरके गुण बताये हैं, हमारी आत्माके भी गुण हैं और हम जाने-अनजाने इन उपर्युक्त गुणोंको जो परमात्मासे सम्बन्धित हैं, अपने अंदर साक्षात् करनेके लिये सर्वात्मना प्रयत्नशील हैं।

( क्रमशः )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भगवत्-तत्त्व

( लेखक—डा० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम्० ए०, पी-एच्० डी० )

विश्वमें जो अद्वैत ज्ञानमय शक्ति है उसे ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहा गया है—

**वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमव्ययम् ।**
**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥**

भगवत्तत्त्व सर्वातिशायी, सर्वव्यापक नित्य रसरूप है। विष्णुपुराणके अनुसार 'भग' शब्दकी निम्नलिखित परिभाषा पायी जाती है।

**ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।**
**ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥**

ऐश्वर्य, वीर्य या कर्मशक्ति, यश, श्री-लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य—इन छः गुणोंकी संज्ञा भग है। ये छहों अपने परिपूर्णरूपमें जिस महाशक्तिसम्पन्न परम पुरुषमें निवास करते हैं, वही भगवान् है। इस प्रकारके भगवत्-तत्त्वकी मनुष्यको पदे पदे आवश्यकता है। भगवान् हमें क्यों चाहिये ? क्या हम उसके बिना भी रह सकते हैं ? ये मार्मिक प्रश्न हैं। जीवनके लिये भगवान्की आवश्यकता कहाँ है, इसे एक बार हम समझ लें तो व्यक्ति और भगवान्के पारस्परिक सम्बन्धका एक स्पष्ट रूप हमें ज्ञात हो जाता है। ऊपर कहे हुए भगवान्के जो छः गुण हैं, वे ही हममेंसे हरेकके जीवनको स्वच्छ करनेके लिये, उसके मल और अंधकारको दूर करनेके लिये और उसे शक्ति एवं आनन्द देनेके लिये आवश्यक हैं। यदि यह हम जान लें कि भगवान्के इन छः गुणोंकी सहायताके बिना हमारा काम नहीं चल सकता तो हम हृदयसे चाहेंगे कि भगवान् हमारे जीवनमें प्रवेश करें और उनके गुणोंका प्रकाश हमें प्राप्त हो। जीवन देवतत्त्व और भूततत्त्वके सम्मिलनका रूप है। देवतत्त्व भगवान्का रूप है और पञ्चभूत आसुरी। देव और असुर ये मिलकर नहीं रहते। अँधेरे और उजालेकी टक्करकी भाँति देवों और असुरोंमें भी संग्राम होता रहता है, असुरोंके साथ भगवान्का संघर्ष अवश्यम्भावी है। असुरोंके परास्त हुए बिना भगवान्के मङ्गलमय स्वरूपकी प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। जिसने अपने जीवनमें असुरोंको युद्ध और संघर्षके द्वारा नहीं हटा पाया, वह भगवान्की उपासनाका अधिकारी नहीं हो सकता। असुरकी पूजा और देवतत्त्व या भगवान्की पूजा एक साथ असम्भव है। ज्योतिको प्राप्त करनेके लिये अंधकारको हटाना ही होगा। हम प्रायः अंधकारको रखते हुए ज्योतिके पास पहुँचना चाहते हैं। जीवनमें एक सौदा या समझौता करते हुए काम-चलाऊ नीति पसंद करते हैं। पर उससे असुर हमें छोड़ते नहीं और भगवान् प्राप्त होते नहीं।

जीवनमें छः प्रकारके असुर या अंधकार हैं। उन्हें ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अहंकार कहते हैं। शान्त चित्तको ये अपने आक्रमणसे अशान्त बना देते हैं। रसको बिगाड़कर कुरसमें बदल देते हैं। आनन्दको छीनकर दुःखका अनुभव कराते हैं। असुरोंका यह आक्रमण हमारे मनपर प्रायः होता ही रहता है। इनके आनेका न कोई देश है न काल। ये तो हर समय और सब जगह प्रकट हो जाते हैं। इनको कैसे जीता जाय, यही मनुष्यकी पुरानी समस्या है जो आज भी उसके साथ है।

भगवान्के जो छः गुण ऊपर कहे गये हैं वे ही इन छः असुरोंको जीतनेमें सफल हो सकते हैं। मनुष्यमें यह सम्भव नहीं। ईश्वरकी कृपासे जब चित्तमें वैराग्यका उदय होता है तभी कामवासना पूरी तरह हटती है। वैराग्य वह असंगभाव है, जिसमें चित्त विषयोंके रहते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होता। कामको राग कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रागका मिटना या वैराग्य ही काम-नाशके लिये औषध है। वीतराग कौन हो सकता है? जो भगवान्‌के वैराग्य-गुणकी आराधना करे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने महारासके समय अन्तर्धान होकर वैराग्यका विलक्षण परिचय दिया। जिस समय राग अपनी पराकाष्ठापर हो, उस समय भी जिसके चित्तमें पूर्ण वैराग्यका समुद्र उमड़ता रहे, वही सच्चा योगी और कामको वशमें रखनेवाला है। काम सृष्टिकी महती शक्ति है। ब्रह्माकी आज्ञासे उसे विश्वमें स्थान मिला है। गीतामें 'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः', कहकर भगवान्‌ने कामको अपना स्वरूप माना है। यह है भी यथार्थ। वेदोंमें कामको सृष्टिका मूल कहा है। प्रजापतिके मनमें सर्वप्रथम जिस कामनाका उदय होता है वही काम है। यह विश्व प्रजापतिका कामप्रयज्ञ है। ज्यों-ज्यों इस विश्वकी रचना होती है, त्यों-त्यों प्रजापतिके कामकी पूर्ति करनेवाला यह यज्ञ नये-नये रूपोंमें हमारे सामने आता है। इस प्रकार जो कामरूप महान् शक्ति है वह एक ओर जीवनके लिये आवश्यक है और प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूसरी ओर, वही जीवनका सबसे बड़ा बन्धन है। उसे वशमें करने या मर्यादामें रखनेके लिये वैराग्य ही एकमात्र सच्चा साधन है। कितना भी प्रयत्न किया जाय, कामका बन्धन वैराग्यके बिना टूटता ही नहीं। परमेश्वरकी सत्ता सर्वत्र अखण्ड होते हुए भी कितनी रागरहित है, इसका स्मरण और अनुभव रखनेसे चित्त वैराग्य-गुणकी ओर उन्मुक्त बनता है। भगवान् श्रीकृष्णने शरद्‌की प्रफुल्लित रात्रियोंमें जो महारासकी लीला की थी, वह किसके जीवनमें नहीं है। किंतु उसे वैराग्य-सम्पन्न बनाना यह ईश्वरकी शक्तिसे ही सम्भव है।

क्रोधरूपी महापापी असुर हम सबका परम वैरी है। यह क्रोध अपने ऊपर तो प्रायः कभी नहीं आता। दूसरोंपर ही क्रोध उत्पन्न होता है। इसके उत्पन्न होनेका कारण यह है कि हम जितनी कौशलकी अपेक्षा दूसरोंसे रखते हैं, वह पूरी नहीं हो पाती तब उसकी प्रतिक्रिया हमारे भीतर क्रोधके रूपमें उत्पन्न होती है। इसके निराकरणका यही सबसे अच्छा उपाय है कि हम भगवान्‌की अनन्त शक्तिका ध्यान करें। सारे विश्वमें भगवान्‌के कर्मोंका कितना अपरिमित विस्तार है? हम सब उन कर्मोंसे लाभ उठा रहे हैं। उसकी तुलनामें मनुष्यका कर्म अत्यन्त सीमित है। हरेक व्यक्ति अपनी सीमा और मर्यादामें कर्म करता है। किंतु भगवान्‌का जो अनन्त वीर्य या पराक्रम है, उसकी तुलनामें मनुष्यके निजी कर्म या पौरुषकी कोई गिनती नहीं। यह समझकर हमें दूसरोंके कर्मके प्रति सहिष्णु बनना चाहिये। यदि इस स्वभावको एक बार ग्रहण कर लिया जाय तो क्रोधका कारण मिट जाता है।

मनुष्यका तीसरा वैरी लोभ है। सबके मनमें यह अपना उपद्रव उत्पन्न करता है। जिसके कारण संसारमें हमारा व्यवहार कुछ दूसरे प्रकारका हो जाता है। जहाँ त्याग, उदारता और धनका उत्सर्ग चाहिये, वहाँ हम धन या लक्ष्मीको केवल अपने ही लिये रोक-कर रखना चाहते हैं। लोभकी वृत्ति कितनी कठिन है। इसका अनुभव हरेकको अपने मनकी छान-बीन करनेसे प्राप्त हो सकता है। जब काम भी यौवन बीतनेपर मिट जाता है, तब भी लोभकी वृत्ति क्षीण नहीं होती। लोभको वशमें करनेका एकमात्र उपाय भगवान्‌की शक्ति लक्ष्मी या श्रीका ध्यान करना है। मनुष्य थोड़े-से सोने-चाँदीके टुकड़ोंके लिये लालयित रहता है, किंतु ईश्वरकी उस लक्ष्मीकी तुलनामें वह क्या है, जिसकी सत्तासे यह समस्त पृथिवी वसुन्धरा कहलाती है।

मनुष्यका चौथा वैरी मोह है। मोह हमारे आध्यात्मिक व्यक्तित्वकी सबसे कठिन समस्या है। मोह बुद्धिपर छाया हुआ अँधेरेका परदा है। गोसाईंजीने रामचरितमानसमें रावणको मोहका रूप कहा है। गुरुके वाक्यको मोहरूपी अन्धकारके हटानेका साधन कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**'महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर ।'**

—हृदयमें जब मोह भर जाता है, तब सत्यका दर्शन नहीं होता । मोहके कारण ही मनुष्य विषयोंको अपने लिये हितकारी मानने लगता है । मोहको हटानेका एकमात्र उपाय ज्ञान या विवेक है । संस्कृतमें इस विषयको लेकर 'मोहराज-पराजय' आदि कई नाटक लिखे गये । उनमें मोह और विवेकके संघर्षका वर्णन है और अन्तमें विवेककी विजय दिखायी गयी है । ज्ञान सूर्य है । उसके उदय होनेपर ही मोहका अन्धकार हटता है ।

मनुष्यका पाँचवाँ वैरी मद है । मद एक नशा है, जो मस्तिष्कमें छा जाता है और फिर मनुष्य अपने समान किसीको नहीं समझता । सर्वत्र मेरा ही गुण-गान हो, मेरी ही कीर्ति हो, मुझे ही लोग सबसे अधिक मानें, इस प्रकारकी जो वृत्ति है वही मद है । मदको हटानेवाला भगवान्का गुण यश है । ईश्वरका यश सृष्टिके आदिसे सृष्टिके अन्ततक सारे विश्वमें व्याप्त है । उसकी तुलनामें मनुष्यका यश नगण्य है । इस अनुभवसे व्यक्ति अपने मदके नशेसे छुटकारा पा सकता है । जब कभी अपने भीतर मदका संचार हो, भगवान्के यशका ध्यान करना चाहिये । ईश्वरके यशकी महिमा अनादि-अनन्त है और वह सर्वत्र विद्यमान है । मनुष्यका यश तो सीमित और कहीं-कहीं घटने-बढ़नेवाला है; किंतु भगवान्का यश असीम, नित्य और एकरस है ।

मनुष्यका अन्तिम वैरी अहंकार है । मैं ही सब कुछ हूँ । मेरे समान अन्य कुछ नहीं । यह वृत्ति अहंकार या अभिमान कहलाती है । इसीका एक स्वरूप मत्सर है । जब मनुष्य दूसरेको अपने साथ स्पर्धा करते हुए देखता है तो उसकी अहंकार वृत्तिको चोट लगती है और वह स्पर्धा करनेवालेसे मात्सर्य या ईर्ष्या करने लगता है । अहंकार एक ऐसा शत्रु है जो किसी मर्यादामें नहीं रहना चाहता । अहंकारके वशमें होकर मनुष्य संसारपर छा जाना चाहता है । मनकी इस कठिन स्थितिसे बचनेके लिये भगवान्के उस गुणका ध्यान करना चाहिये जो उसका ऐश्वर्य है । ऐश्वर्य ही ईश्वरता है । जितने व्यक्तियोंके अहं हैं, उन सबका आदि और अन्तिम आधार ईश्वर है । वह ईश्वर ही सब भूतोंके हृदयमें रहकर उनके अलग-अलग अहंका निर्माण करता है । यदि ईश्वरके ऐश्वर्य या प्रभुत्वका सच्चा अनुभव हम कर सकें तो अपना अहंकार तुरंत गल जायगा । भगवान्के सर्वव्यापी प्रभुत्वमें अपनी क्षुद्र शक्तिको लीन कर लेनेके समान और सुख-शान्ति नहीं है । इसी प्रकार हमें सच्ची भक्ति प्राप्त हो सकती है । ईश्वरका जो स्वरूप है, उसके जो गुण हैं, उन्हींके एक अंशकी प्राप्ति भक्ति है । भक्तिका अर्थ है—भागधेय प्राप्त करना या हिस्सा बँटाना । जीव ईश्वरके क्षेत्रमें अपना भागधेय प्राप्त कर सके, यही परम सौभाग्य है । जीवका जो चित्त टुकड़े-टुकड़े होकर विषयोंमें भटकता है, वह एकत्र सिमिटकर या एकाग्र होकर अपने केन्द्रमें आ सके तो वही भक्तिका लक्षण है; क्योंकि हरेकके केन्द्र या हृदयमें भगवान्की सत्ता है । इस प्रकार जीवनके समुद्धारके लिये भगवान्की अनिवार्य आवश्यकता है । भगवत्-तत्त्व हमारी समस्त व्याधियोंकी परमौषध है ।

## सबमें प्रभुको देखो

**सबका नित आदर करो सबको दो शुचि प्यार ।**
**सबके लिये सदा रखो खुला हृदयका द्वार ॥**
**सबसे सत्य वचन कहो करो शुद्ध व्यवहार ।**
**सबकी शुभ सेवा करो बनकर परम उदार ॥**
**सबमें निज प्रभुको लखो, सबको दो सम्मान ।**
**सबके हितमें रत रहो त्याग सभी अभिमान ॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वेदोंमें शरणागति-महिमा

( लेखक—स्वामीजी श्रीओंकारानन्दजी सरस्वती )

साधनाके मार्गमें शरणागतिका सबसे ऊँचा स्थान है। किसी भी मार्गका साधक क्यों न हो, उसे बिना प्रभुके निकट आत्मनिवेदन किये प्रभुप्रसाद प्राप्त ही नहीं हो सकता। साधकको आत्मसमर्पणसे दूर रखनेवाली वस्तु 'अहंकार' है। यही अहंकार साधकका परम शत्रु है। यह अहंकार प्रभुका भोजन है। प्रेमदर्शनमें यह बात स्पष्टरूपसे बतलायी गयी है—

**ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च।**

अर्थात् ईश्वरको अभिमान अप्रिय है और दैन्य—नम्रभाव ही प्रिय है। गोस्वामीजीने भी यही भाव—

जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे, द्रवउ सो श्रीभगवाना।

—द्वारा प्रकट किया है। असावधान साधकमें ज्ञान, कर्म, साधना और सिद्धियाँ भी कभी-कभी अहंकार उत्पन्न कर देते हैं। यह चोर अहंकार साधकके हृदय-मन्दिरमें इस प्रकार चुपचाप प्रवेश कर जाता है कि उसे भान भी नहीं होता। यह कपटी चोर मित्रका रूप धारण कर जबतक आत्माका सब धन चुरा नहीं लेता, तबतक दम भी नहीं छोड़ता। यह तो आत्माका सर्वनाश करके भी हटना नहीं चाहता। साधनाके आरम्भ, मध्य और अन्तमें, कहीं, किसी प्रकार भी यह दुष्ट अहंकार अपना पैर न जमाने पाये, इसीमें साधककी सावधानी और विजय है। छोटा-सा अहंकार भी आत्माको परमात्मासे पृथक् ही रक्खेगा। प्रभुकी शरण जाना, कायरता नहीं अपितु बुद्धिमानी और वीरता है। महान् ही नम्र हुआ करते हैं। महिकी महानता उसकी नम्रतामें ही है। ईश्वरप्रणिधान साधकका परम हितैषी बनकर उसे अहंकार-जैसे भयंकर शत्रुसे बचा लेता है। प्रभु-शरण ही अन्तिम लक्ष्यतक पहुँचानेका एकमात्र सच्चा साधन है। इसीलिये तो नारदजीने भक्त साधकोंको अभय ... 'अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्'' इन शब्दोंद्वारा चेतावनी दी है और अहंकारको त्याज्य बतलाया है।

परमात्मप्रदत्त ज्ञानके भण्डार वेदोंमें शरणागतिका क्या स्थान है? इस विषयपर विचार किया जायगा। चारों वेदोंमें जहाँ ज्ञान, कर्म और उपासनाका वर्णन है वहीं प्रभुकी शरण जानेका भी आदेश है। बिना प्रभुकी शरणके मरण है। वेदप्रतिपादित शरणागति ऋग्वेद (मं० १०। १४२। १) के निम्नाङ्कित मन्त्रमें देखिये—

**ओ३म्। अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्यन्यदस्त्याप्यम्। भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि॥**

हे (अग्ने) प्रकाशक (अयं) यह (जरिता) भक्त-साधक (त्वे-अपि) तेरे ही सहारे (अभूत) रहता है। (सहसः+सूनो) सबसे बली (अन्यत्) दूसरा कोई (आप्यम्+न+अस्ति) प्राप्तव्य नहीं है। (हिंसानाम्) हिंसकोंका (दिद्युम) वज्र हमसे (आरे+अप+आ+कृधि) बहुत दूर कर दे। (हि) निश्चय (ते) तेरी शरण ही (भद्रम्) कल्याणकारी और (त्रिवरूथम्) तीनोंमें श्रेष्ठ है।

*भावार्थ*—हे प्रकाशस्वरूप प्रभु! इस स्तोताको हिंसक काम-क्रोधादिके वज्रसे बचा, ये वज्र कहीं चोट न कर दें। भक्त तेरी शरण आ गया है। तू ही सबसे बली है। तेरी शरण सचमुच तीनोंमें भद्र अथवा कल्याणकारी है।

मनुष्य इस संसारमें जहाँ कहीं भी नाते जोड़ता है, वे अन्तमें सब टूट ही जाते हैं। जहाँ संयोग है, वहीं वियोग भी है। कोई सम्बन्ध स्थायी दिखायी नहीं देता। मनुष्यकी भाग्य-नैयाको कोई योग्य नाविक भवसागरसे पार लगैया दृष्टिगोचर नहीं होता। दुखी मानव एक सच्चे मित्र और सहायककी खोजमें है। वह एक स्थायी ... चाहता है। वह आश्रयार्थी बनकर सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिशालियोंका द्वार खटखटा आया परंतु किसीने शरण न दी। कहीं थोड़ी देरके लिये शरण मिली भी, वह अबाध नहीं रही। उस क्षणिक आश्रयमें कुछ ही समय पश्चात् दोष दिखायी दिया। परंतु जिज्ञासुको एक निर्दोष आश्रयकी आवश्यकता है। उसने भाई, बहन, पिता, माता, मित्र, सभीका आश्रय ग्रहण करके अनुभव किया कि इनमेंसे कोई स्थायी और सुखदायी नहीं है। ये सारे सम्बन्ध झूठे सिद्ध हुए। तब उसके मुखसे सहसा यही वेदवाणी निकली, 'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता' ( यजु० ३२। १० )—अरे पागल ! वही प्रभु ही तेरा सच्चा बन्धु, माता, पिता और विधाता है। अब आश्रय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे अन्तमें मिल ही गया। यही प्रभुका चरण ही सर्वाश्रय और सर्वाधार है। इतनी कठिनाइयोंके पश्चात् प्राप्त हुए इस आश्रयको भक्त किसी दशामें छोड़ना नहीं चाहता। वह अपने प्रभुको पुकार-पुकारकर कहने लगा—

**अयं अग्ने जरिता त्वे अभूत्।**

**यह दास अब हर प्रकारसे तेरे ही सहारे रहता है। इसका अब इस संसारमें कोई दूसरा सहारा ही नहीं रहा। भला अथवा बुरा, यह तेरा दास जैसा भी हो, परंतु है तो तेरा ही। तेरे द्वारका एक भिखारी ही। प्रभु ! इसे अपना ले। इसे शरण दे। इस शरणागत** भक्तकी दशा महात्मा तुलसीदासके शब्दोंमें—

**'एक भरोसो एक बल, एक आस बिसवास।'**

—जैसी हो गयी है। अब भक्त प्रभुका है और **प्रभु भक्तका।**

उपर्युक्त ऋग्वेदके मन्त्रमें भी शरणागतिके रहस्यको खोलनेवाली कुंजी—

**भद्रं हि शर्म्म त्रिवरूथमस्ति ते।**

मन्त्रके इतने शब्दोंमें ही निहित है। यहाँ यह बतलाया गया है कि तीनों शरणोंमें प्रभुकी शरण ही सचमुच सर्वश्रेष्ठ है। प्रश्न है—वे कौन-कौन-से तीन प्रकारके शरण हैं, जिनका आश्रय आत्मा ले सकता है? उत्तर—( १ ) प्रकृति, ( २ ) जीवात्मा, ( ३ ) परमात्मा। ये ही तीन प्रकारकी सत्ताएँ हैं, जहाँ जीव सहारा खोजा करता है। जिज्ञासु साधकने प्रकृतिसे सम्बन्ध जोड़कर यह निश्चय कर लिया कि यह स्वयं जड है। यह चेतन-की क्या सहायता कर सकती है ? यह तो मायास्वरूप है। यह तो मरु-मरीचिकाके समान दूरसे प्यासेको बुलाकर प्यासा ही छोड़ देती है। यह धोखेबाज़ है। साधक बहुत परिश्रम और गुरुज्ञानद्वारा इसके चंगुलसे निकल भागा है। तब उसने इसका नाम, 'माया-ठगनी' रक्खा है। जीव स्वामी है, प्रकृति 'स्व' है। जीव चेतन है, प्रकृति अचेतन है। उस जडप्रकृतिमें क्रिया, चेष्टा और गतिका आघात यह चेतन जीव ही करता है। अतः दासीके शरण स्वामी क्यों जाय ? तब क्या जीवात्मा, दूसरे जीवात्माकी शरण जाय ? नहीं। यह भी नहीं ! इससे क्या लाभ ? शरण अपनेसे महान्के जाया जाता है। जीवात्मा तो स्वयं अल्पज्ञ और ससीम है। रोग, भोग-में पड़ा हुआ जीवात्मा दूसरेको क्या परम सुख देगा ! अविद्या और अन्धकारमें पड़ा हुआ जीवात्मा दूसरे जीवात्मा-को कहाँतक विद्या और प्रकाश दे सकेगा, यह विचार करना चाहिये। जीवात्माको तो उस असीम, ज्ञानके भण्डार, प्रकाशस्वरूप प्रभुकी खोज है। जबतक उसे वह महासत्ता नहीं मिल जाती, तबतक उसे चैन नहीं। इस व्यग्रता तथा श्रद्धापूर्ण खोजने अन्तमें जीवात्माको परमात्माके द्वारतक पहुँचा दिया। तब उसे पता चला कि यह सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही सबसे बड़ी और प्रकृति तथा जीवका अधिष्ठाता है। तभी वह अति प्रसन्न होकर आवेशमें बोल उठा, 'प्रभु ! तेरी ही शरण तीनों-में श्रेष्ठ है।' अब भक्तकी एकमात्र भक्ति प्रभुचरणोंसे ही हो गयी। उसीकी शरणमें उसे सुख-शान्तिका अनुभव हुआ। भक्ति, बिना प्रेम नहीं। प्रेम बिना सब कुछ फीका ही है। रस तो प्रेममें ही है। परंतु यह विचित्र रस प्रभु उन्हींको देनेकी कृपा करता है जो उसके हो रहे हैं। माताकी गोदमें पड़े हुए शिशुके समान जिसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनेको प्रभुके चरणोंमें डाल दिया है, उसीको प्रभु माताके समान प्यार भी करता है। इस प्रकारकी भक्ति विना शरणागतिके कहाँ मिल सकती है। भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है। इस सत्यको भक्तराज नारदजीने भी—

**त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी।**

—इन शब्दोंद्वारा स्वीकार किया है। सूत्रकारका कथन है कि तीनों सत्योंमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ भक्तिका साधन शरणागति है।

अब साधकको पता तो चल गया कि परम भक्ति शरणागतिद्वारा प्राप्त हो जाती है। परंतु उसे साधनाके पथमें नाना प्रकारके विघ्न और बाधाएँ मिल रही हैं। इस भौतिक जगत्‌में रहकर साधकको उस अभौतिक सत्ताको प्राप्त करना है। लोकमें विषमता-ही-विषमता दीख पड़ रही है। विषम अवस्थामें प्रभु-प्रेम मिल ही नहीं सकता। ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मत्सर, क्रोधके कारण मनुष्य एक दूसरेका शत्रु हो रहा है। धोखा, व्यभिचार, अशुचिता, असंतोष, विलास, असत्य, प्रलाप और नास्तिकता आदि नाना प्रकारकी पाप-भावनाओंका साम्राज्य है, और इन्हीं परिस्थितियोंमें साधकको साधना करनी है। वह पापके प्रचण्ड पावकके लपलपाती हुई लपटोंसे जला-भुना-सा जा रहा है। उसे एक शीतल छायाकी आवश्यकता है। झुलसते हुए संसारमें वह 'शीतल छाया' कहाँ मिलनेको? मानसिक चिन्ता और उद्वेगकी इस दशामें उसे वेद-वाणी सुननेको मिली—**'यस्यच्छायामृतं'**=रे जीव! तू, जिसकी छाया अमृत-के समान है, उसीकी छायामें जा। बस, इतना संकेत मिलते ही वह श्रद्धालु भक्त ऋग्वेद (२।२७।६) के शब्दोंमें ही बोल उठा, **'यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म्म'** प्रभो! हमें अपनी अबाध शरण दे। तेरी शरणके विना मरण है। अपनी अमृतस्वरूप छत्रछाया हमारे ऊपर फैला दे। अपने ही अमरपथका पथिक बना दे। प्रभो! तूने स्वयं ही अपनी वेद-वाणीद्वारा बतलाया है, **'सुगो हि वे······पन्था साधुरस्ति'** अर्थात् भक्तिद्वारा तेरा पथ सुगम और उत्तम रूपसे प्राप्य है। जीवन-मरण काल-चक्रके ऊपर चढ़ा हुआ जीव अनन्त दुःखोंक भोग रहा है। उसे सच्चे सुखका पता ही नहीं है उसीकी खोजमें वह महात्माओं और संतोंके पास दौ रहा है। गुरुजनोंके मुखसे उसने ऋग्वेद (१।१५४ ५)का यह वचन सुना, **'विष्णोः पदे परमे मध्व उत्स'** अर्थात् विष्णुके परमपदमें ही, मधु—अमृतका कूप है बस, अब साधकको विष्णुके चरणोंतक पहुँचनेक आवश्यकता है। उन चरणोंका चरणामृत ही उसे सद के लिये दुःखोंसे छुटकारा दिला सकता है। विष्णुधा ही सुखधाम है। प्रभुका चरण ही सर्वश्रेष्ठ शरणाल है। गोसाईंजीके शब्दोंमें वह साधक उस 'व्यापक अविगत, गोतीत, पुनीत, मायारहित, सच्चिदानन्द प्रभुक शरणकी याचना करता हुआ बार-बार प्रभुके द्वारप नतमस्तक होते हुए कह रहा है—

**भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुख पुंजा।**
**मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥**

अब उसे पाप-तापहारी, शरणागतिरूप साधनका ज्ञान पूर्णरूपसे हो गया है। उसने प्रभुको ही हर प्रकार पूर्ण पाकर उसीकी शरण लेनेका निश्चय किया है। उसकी श्रद्धा और भक्ति अटल है। वह जान चुका है कि शरणागति ही परम पुरुषार्थ है। उस कृपालु प्रभुका यह स्वभाव है कि वह अपने शरणापन्नका कभी त्याग नहीं करता। शरणागत भक्तको हृदयसे लगा लेता है। उसे अजर कर देता है। अमर कर देता है। शान्त कर देता है। अन्तमें उसी अबाध शरणकी याचना प्रभुसे ऋग्वेद (१।१८।७)के शब्दोंमें—

**यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति॥'**

**कृपासिन्धुकी कृपा बिना कब यज्ञ मनोरथ होते सिद्ध।**
**दे प्रेरणा शरण-आगतको, भक्तियोगमें हे परिवृद्ध॥**

—करता हुआ, उसीकी प्रेरणा और कृपाकी आशा-में टकटकी लगाये बैठा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सत्प्रेम—एक दृष्टिकोण

( लेखक—श्रीशिवप्रसादजी शर्मा )

सत्पुरुष ही सत्प्रेम कर सकता है। वह तो केवल कामुक अथवा स्त्रैण ही होगा, जो प्रेमको वासनामय समझता है। प्रेमका सम्बन्ध सीधे आत्मासे है, प्रकृतिसे नहीं। प्रकृतिका सम्पर्क ही वासनाका उद्रेक कराता है। बात-पर-बात आयी तो बृहदारण्यक-उपनिषद्की बात स्मरण हो आयी—'हे प्रिये ! स्त्री पतिके लिये पतिको प्यार नहीं करती है। वह पतिके अन्तरस्थ आत्मासे प्रेम करती है। और हे प्रिये ! पत्नीके लिये पत्नीको कोई नहीं प्यार करता। पत्नीके अन्तर-स्थित आत्मासे ही पुरुष प्रेमाचार करता है।' साधारणतः कोई भी प्राणी ( स्त्री या पुरुष ) अपने प्रियके प्रति अपने सद्भाव अथवा सत्प्रेमका वास्तविक परिचय प्राप्त नहीं कर पाता है, किंतु यह नग्न सत्य है कि उसका प्रेम-पुष्प प्रियकी आत्माके सांनिध्यमें ही पल्लवित एवं प्रस्फुटित होता है।

जलाशयमें नमककी सूक्ष्म डली विलीन होकर अस्तित्वहीन हो जाती है। यदि मानव-मन हरि-प्रेम-सागरमें गोते लगाकर अपने अस्तित्वको खो दे तो आश्चर्याभास नहीं होना चाहिये। प्रेम-ज्योति प्रखर शक्तिदायिनी है, जिससे मानस-तम तो विनष्ट हो ही जाता है, साथ ही आत्मा इससे प्रकाशित होकर चिदानन्दको प्राप्त करती है। प्रेमके सोपानसे ही ईश्वरका सामीप्य प्राप्त होता है। आत्माका परमात्मासे सम्मिलन होते ही चिदानन्दानुभूति होती है। इस अवस्थामें, जब कि भौतिक लिप्सा शून्य हो जाती है, यदि कोई उद्बुद्ध रहता है, तो वह है प्राणिमात्रका विवेक। विवेक सदैव प्रहरी बनकर ज्ञानेन्द्रियको सचेष्ट करानेके लिये प्रयत्नशील रहता है; किंतु विवेकहीन मानव सदा इन्द्रिय-लोभ-हेतु अपने ज्ञान-कोषका द्वार लोलुपताके छक्के-पंजेमें आकर बंद कर लेता है और नैसर्गिक आत्मसुख या संतुष्टिसे वञ्चित रह जाता है। न केवल वञ्चक है अविवेक, वरं अभिमान, दम्भ-दर्पादि भी सत्प्रेम-सत्पथगामी मानवके समक्ष सत्राव विरोध प्रकट करते हैं।

मीराँने प्रेम-पीयूषके पानेकी इच्छासे ही गिरिधरके गुणगान करनेमें अपना मान समझा। लीलामय भगवान् श्रीकृष्णके किंचित् दर्शनके लिये गोपियाँ अपने व्याकुल हृदयपर बन्धन लगानेमें अक्षम सिद्ध हुईं। राधाके हृदयका वैकल्य श्रीकृष्णकी क्षणानुपस्थितिमें स्वाभाविक था और फिर प्रेमकी महत्ताका प्रमाण चैतन्य महाप्रभु भी तो दे सकते हैं। श्रवणकुमारका प्रेम माता-पिताके लिये जितना अक्षय, प्रगल्भ सिद्ध होता है, उतना ही शान्त-धीर भगवान् श्रीरामका राजा दशरथके हेतु। भ्रातृ-प्रेमका स्वच्छ रूप जहाँ लक्ष्मण दिखा सकते हैं, वहाँ भरत उनसे एक डग आगे खड़े मिलते हैं। जगज्जननी सीताका पति-प्रेम अक्षुण्ण एवं ग्राह्य है, तो सती सावित्रीकी आत्मिक आस्था भी पतिके प्रति अतुल्य है।

ऐहिक अथवा भौतिक दृष्टिकोणसे प्रेमका मूल्याङ्कन करनेका तात्पर्य केवल स्वार्थ अथवा मनोरञ्जन हो सकता है, अतएव हमें बे-बातकी बातमें उलझकर इच्छा-पूर्तिके साधन ढूँढ़नेके बजाय प्रेमका बीजारोपण करना होगा। प्रेमसे प्रेमका अन्त कभी नहीं होता। जहाँ प्रेमका संचार है, वहाँ घृणाका उदय हो ही नहीं सकता। मानस-क्षेत्रमें प्रेम अङ्कुरित हो, उत्तम है; किंतु पौधेकी अभिवृद्धिके लिये जल-रसकी जितनी आवश्यकता है, उतनी ही प्रकाशकी। कदाचित् आप सोचें कि प्रेमाङ्कुरको कैसे सिञ्चित किया जा सकता है ? सद्विचार-रससे सिक्त प्रेम-वृक्ष श्रद्धाका प्रकाश पा अपना मूल दृढ़ एवं चिरस्थायी बना लेता है। फिर चाहे वह प्रेम ( ईश्वर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निहित ) स्वजनहेतु हो अथवा विश्वजन-हेतु, सबका ध्येय फलद ही होगा। आम्र-वृक्ष आम्र-फल ही देगा, कनैल-फल नहीं।

प्रेम निरङ्कुश एवं सर्वसरल-ग्राह्य है। इसमें आदर-अनादरकी कोई बात ही नहीं छिड़ सकती। भक्त भगवान्से प्रेम करता है और जब भक्तिकी चरम सीमा ( Climax ) पर वह पहुँचता है, तब संसार ( अधिकतर ) उसे पागल कह बैठता है। वैसे स्वामी विवेकानन्दके शब्दोंमें—'यह संसार ही पागलखाना है। कोई धनके पीछे पागल है तो कोई झूठी मान-प्रतिष्ठाके पीछे; कोई स्त्रीके पीछे पागल है तो कोई विद्याके पीछे।' यदि एक भक्त प्रेम-याचनाके पीछे पागल घोषित हो जाता है, तो किसी घृण्य अथवा उपहासास्पद वातावरणका उदय नहीं होना चाहिये।

रही बात आस्था और विश्वासकी। तो इसके लिये प्रेमीजन कभी चिन्तित नहीं होते। आकाशमें थूकनेवालेपर छींटा पड़ ही जाता है। यदि कोई नास्तिकताका कुप्रचार करे ही तो उसका भगवान् भला करें। जो 'सत्य' है, वह 'शिव' भी और जो 'शिव' होगा, वह सुन्दर भी—निस्संदेह, निःशंक। परम पिता परमेश्वरकी अनुकम्पासे, किसका बंजर हृदय है, जो रस-प्लावित नहीं होता और श्रद्धा-आस्थाका पौधा उगानेके अयोग्य रहता है? आत्मबल एवं आत्मसंकल्पके द्वारा आस्थाका आविर्भाव हो सकता है। आस्थारहित प्रेम अवरेण्य है और प्रेमकी संज्ञासे हीन है। पाश्चात्त्य कथन—Love is God ( लव इज गॉड—प्रेम ईश्वर है )—का यहाँ उल्लेख करना असंगतिपूर्ण न होगा।

सौन्दर्यमें आकर्षण-शक्ति होती है, इसीलिये वाटिकाकी नवल सुकोमल अर्द्ध-प्रस्फुटित पुष्प-कलिका बरबस नयनोंको आकृष्ट कर लेती है। ऐसा क्यों होता है? सिर्फ इसलिये कि परमेश्वर स्वयं सुन्दर है—जो आकर्षक है। और 'सुन्दरे किं न सुन्दरम्?' ( दृष्टि-आक्षेप स्त्री-पुरुषके बाह्य सौन्दर्यपर भी होता है, वहाँ भी ईश्वरकी ही महिमा है, किंतु मूर्ख-मन प्रकृति-सम्बद्ध वासनातक ही सीमित रहता है। )

सद्भावनाओंसे सत्प्रेमकी ओर अभिमुख आत्मा परमात्माके संनिकट है। जो प्रेमका सच्चा आराधक है, वह ईश्वरका महान् भक्त है और जिसमें ईश्वरभक्तिका पारावार है, उसका मानस प्रेममय होगा ही। घृणाका जन्म तो अधम प्रकृतिकी क्षुद्रात्माके मनमें ही हो सकता है। सत्पुरुष सदैव सत्प्रेमोपासनामें निर्बाध लिप्त होकर भगवान्के कोमल कमल-पादकी सेवा करता है।

## तुम्हीं अपने सुख-सदनमें रहते हो

तुमने जो कहलाया मुझसे वही कहा मैंने अविकल।
तुमने जो करवाया मुझसे वही किया मैंने निश्छल॥
तुमने जो सिखलाया मुझको सीखा मैंने वही सकल।
तुमने जो दिखलाया मुझको देखा मैंने वही अकल॥
यह जो कुछ भी कहा, किया, सीखा, देखा मैंने प्रियतम।
सो सब तुमने ही अपनेमें अपनी की लीला उत्तम॥
मन-मति कैसे होते मुझमें, जब मैं ही हूँ नहीं स्वयम्।
बना तुम्हारा ही सुख-सदन तुम्हीं इसमें रहते हरदम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वर्तमानमें गीताकी उपादेयता

( लेखक—वैद्य श्रीज्ञाननिधिजी अग्रवाल, आयुर्वेदाचार्य )

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥**

जगन्नियन्ता लीलामय भगवान् अपने विविध विचित्र विमोहित करनेवाले चरित्रोंको प्रदर्शित करनेके लिये जब लीलाभूमिमें प्रकट होते हैं, तब उनके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान उनके कार्य और क्रियाशक्तिको देखकर अनुमानसे विज्ञजन ही कर सकते हैं। भगवान्के चौबीस अवतारों-मेंसे मुख्यतया रामावतार एवं कृष्णावतारका ही चित्र-विचित्र विशिष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। रामावतारमें भगवान् रामने मर्यादा-पुरुषोत्तमकी भूमिकाका अन्ततक सर्वांशेन निर्वाह किया है। पर भगवान् श्रीकृष्णने तो बाल्य, पौगण्ड, कैशोर, युवावस्था आदि सब अवस्थाओंका चरित्रचित्रण विशेष वैशिष्ट्यको लेकर किया है। यहाँतक कि जगह-जगह 'मैं भगवान् हूँ' इस प्रकारका स्पष्ट उद्घोष भी अज्ञजनोंकी मोहनिद्राको भंग करनेके लिये किया है। बाल्यावस्थामें जो नटवरनागर अत्यन्त नटखट थे, वे ही योगेश्वर श्रीकृष्ण परम गम्भीर बनकर गम्भीर परिस्थितिमें, महाभारतके रणाङ्गणमें, मरने-मारनेके लिये तैयार, रणकी साज-सज्जासे संयुक्त, अठारह अक्षौहिणी सेनाके सम्मुख, अठारह दिनतक चलनेवाले महाभारतके विनाशकारी युद्धके समय अठारह अध्यायवाली परम गम्भीर, परम गहन, भाव-अर्थबहुल, योगमयी गीताका उपदेश करते हैं।

प्रायः पाँच हजार वर्ष पूर्व स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्त, सखा अर्जुनको कुरुक्षेत्रके युद्धक्षेत्रमें कर्तव्य, ज्ञान, भक्तिका जो दिव्य उपदेश दिया था वही श्रीमद्भगवद्गीताके रूपमें संकलित है। कर्म, ज्ञान और भक्ति-योगका जितना अनुपम दिग्दर्शन गीतामें है उतना अन्य किसी ग्रन्थमें उपलब्ध नहीं होता। वस्तुतः गीता वैदिक दर्शन एवं संस्कृतिकी बहुमूल्य सम्पत्ति है। गीतापर अद्यावधि करीब १३०० टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, विश्वके कोने-कोनेकी प्रमुख भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है पर तो भी महर्षि व्यासद्वारा ग्रथित इस रहस्यमय ग्रन्थकी भावग्रन्थियोंका उद्ग्रन्थन सम्यक्तया नहीं हो पाया है; क्योंकि गीताके श्लोक दीखनेमें तो बहुत सरल भाषामें हैं, परंतु उनका आशय इतना गूढ़ और गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी अन्त नहीं आता। नित्य नूतन-नूतन भाव जाग्रत् होते रहते हैं। गीतामें एक भी शब्द निरर्थक नहीं है। प्रत्येक शब्द भावमय है।

महाभारतका युद्ध केवल दो पक्षोंका ही युद्ध नहीं था अपितु अधर्म, अन्याय और अनीतिके विरुद्ध धर्म, न्याय और नीतिका युद्ध था। उस समय धर्म संकटमें था। नीति और न्यायकी मर्यादा नष्ट हो गयी थी। यदि अर्जुन अधर्म और अन्यायके विरुद्ध युद्धके लिये प्रस्तुत नहीं होता तो विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती। अर्जुन जब बन्धु-बान्धवों और परिजनोंके मोहसे त्रस्त होकर, कर्तव्य-पथसे विचलित हो रहा था, तब भगवान् श्रीकृष्णने उसे धर्म और कर्तव्य-पथपर लानेके लिये गीताका मार्मिक उपदेश दिया था। इतना ही नहीं, भक्तके कल्याणके लिये अपना विराट् रूप भी दिखलाया था।

गीता ज्ञानका अथाह समुद्र है। रत्नाकर समुद्रमें जिस प्रकार असंख्य अपरिमेय रत्न परिपूर्ण हैं उसी प्रकार गीता भी ज्ञानरत्नोंका अगाध सागर है। जिस प्रकार महोदधिमें गहरा गोता लगानेसे रत्नोंकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार गीताके ज्ञानसागरमें डुबकी लगानेसे जिज्ञासुओंको नित्यनूतन निरन्तर विलक्षण भावरत्नराशि-की उपलब्धि हो सकती है। गीताकी ज्ञानगङ्गामें अवगाहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेसे जन्म-जन्मान्तरोंकी संचित अज्ञताजनित अघराशिका समूलोन्मूलन हो जाता है।

गीता-ग्रन्थकी उपादेयता महाभारतकी रणभूमिमें जितनी थी, उससे कहीं अधिक आज विश्वकी विषम परिस्थितियोंमें, चारों ओर विश्वयुद्धके लिये तैयार खड़ी विनाशकारी विभीषिकाओंको लेकर है। आजका जनमानस आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, स्नायविक एवं चारित्रिक दुर्बलताओंसे जर्जरित हो रहा है। सब लोग शान्तिकी खोजमें इतस्ततः दौड़ रहे हैं, परंतु शान्ति अन्यत्र तो है नहीं। वह तो अपने स्वयंमें ही विद्यमान है। भाव ही तो है। दूसरोंको सुख पहुँचाना ही तो शान्तिका पथ है।

**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥**
(गीता ३ । १३)

कितनी अच्छी बात है। यह याद रहे तो स्वयं तो सुखी रहे ही, दूसरे भी सुखी हो जायँ। संघर्षका नाम ही न रहे।

गीता केवल धर्ममय उपदेश देनेका ग्रन्थ ही नहीं है, कर्मक्षेत्रमें कर्मकी भावना जाग्रत् करनेके लिये दिया हुआ दिव्य उपदेश है। यही कारण है कि राष्ट्रके सर्वमान्य नेता कर्मयोगी लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धीजीने अपने पथप्रदर्शकके लिये गीताको ही अपनाया। इसीसे वे अपने उद्देश्यमें सफल हुए। भारत आजाद हो गया और किसीसे वैर भी नहीं रहा।

आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके सिद्धि और असिद्धिमें समान भाव रखकर कर्म करना ही साधनकी सफलता है और इसे ही 'योगः कर्मसु कौशलम्' कहा है। और भी कहा है—

**ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।**
**लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥**
(गीता ५ । १०)

**यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।**
**तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥**
(गीता १३ । ३०)

**एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने।**
**दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु॥**
**न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान्।**
**प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः॥**
(श्रीमद्भागवत ११ । ११ । ११-१२)

इस प्रकार स्थान-स्थानपर कहा है। जो पुरुष सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जलमें कमलके पत्तेकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता। अर्थात् जब मनुष्यकी कर्तव्य-कर्ममें आसक्ति नहीं होगी और फलकी इच्छा नहीं होगी तो पाप बनेगा ही कैसे? उसकी सब क्रियाएँ स्वतः सम्पन्न होती हैं, उसे उन क्रियाओंका अभिमान नहीं होता।

ज्ञानयोगमें मन, इन्द्रिय, शरीरके द्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर, एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवा अन्य किसीके अस्तित्वका भास न होना इस प्रकारका भाव रहता है।

सीधे शब्दोंमें यह भी कहा जाता है कि—

**धारणापूर्वकोऽकर्तृत्वानुभवो ज्ञानयोगः।**

धारणापूर्वक आत्माके अकर्तृत्वका अनुभव ही ज्ञानयोग है।

इस प्रकार ज्ञानयोग और कर्मयोगमें अहंकार एवं आसक्तिको छोड़नेपर जोर दिया गया है। अहंकार और आसक्तिको छोड़नेसे सब प्रकारके विवादोंका समाधान स्वतः सम्पन्न हो जाता है। आज जो युद्धकी विभीषिकाएँ विश्वके चारों ओर मँडरा रही हैं, वे अहंकार और आसक्तिको लेकर ही हैं। कुछ लोग साम्यवादको श्रेष्ठ मानते हैं और हिंसाके जरिये बलपूर्वक उसका प्रसार करना चाहते हैं। कुछ लोग पूँजीवादका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवादकी आड़ लेकर प्रचार चाहते हैं। इस प्रकार अहंकार और आसक्तिको लेकर आज लोक-मानसका संतुलन अस्त-व्यस्त है।

गीताका साम्यवाद अपने ढंगका अनूठा है। वर्तमानके संघर्ष तो वैयक्तिक सत्ताके लिये हैं। वैयक्तिक स्वार्थोंके सामने सामाजिक हितोंका ध्यान नहीं रहता। मैं और मेरापन हटाकर, व्यष्टिको छोड़कर समष्टिको ध्यानमें रखकर अहंकार और आसक्तिका त्याग करके कर्तव्य-कर्म किया जाय तो विशुद्ध रूपसे समाजकी सेवा हो सकती है। इसीका नाम समाजवाद है। वर्तमानका समाजवाद और साम्यवाद अर्थप्रधान है, इसमें हिंसाका आश्रय भी ले लिया जाता है। पर गीताके साम्यवादमें तो यह है—

**अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।**
**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**
**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥**

आवश्यकतासे अधिक जो अपना मानता है उसे दण्ड देने योग्य कहा गया है। अपनी तरह दूसरोंके सुख-दुःखोंको भी जो समझता है वह साम्यवादी है। 'समत्वं योग उच्यते।' इसमें हिंसा, प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्याको कहीं भी स्थान नहीं।

इस प्रकार गीता-तत्त्वसे प्राप्त विवेक और वैराग्यसे जो काम हो सकता है वह अन्य किसी उपायसे साध्य नहीं। इसीलिये पाश्चात्त्य अर्वाचीन विचारकोंका भी अब भारतीय आध्यात्मिकताकी ओर आकर्षण होने लग गया है। आध्यात्मिकतासे ही अपने अंदर छिपे काम, क्रोध, लोभ——इन तीन शत्रुओंपर विजय पायी जा सकती है। अहंकारको छोड़नेसे प्राप्त विवेकके द्वारा और आसक्तिको छोड़नेसे प्राप्त वैराग्यके द्वारा इन तीन शत्रुओंको जीता जा सकता है। मृत्युके अन्तिम क्षणतक भी इन काम, क्रोध, लोभको पराजित कर दिया जाय तो सर्वांगीण शाश्वती शान्ति प्राप्त हो सकती है। परम शान्तिकी प्राप्ति ही गीताका लक्ष्य है और वही मानव-जीवनकी चरम अनुभूति है। इसके लिये आवश्यकता है गीताके पठन-पाठनके साथ-साथ उसके आधारपर अपना जीवन बनानेकी। यही गीताका ज्ञान-यज्ञ है। इसीसे सर्वभूतहृदयस्थ परमात्मा सहज प्रसन्न हो सकते हैं।

---

# मैं भगवान्‌के आनन्दसागरमें डूबा रहता हूँ

**मेरे मन-बुद्धि भगवान्‌के समर्पित होकर उन्हींके मन-बुद्धिके रूपमें परिणत हो गये हैं। अतएव इनके द्वारा भगवान् ही सोचते हैं, भगवान् ही निश्चय करते हैं तथा भगवान् ही अपनेको अभिव्यक्त करते हैं। ये भगवान्‌की अपनी ही ज्ञानधाराके प्रकाशके यन्त्र बन गये हैं। मैं भी भगवान्‌के समर्पित होकर भगवान्‌की ही खेलनेकी वस्तु बन गया हूँ, मेरे द्वारा वे ही जब जो चाहते हैं, करवाते हैं; जब जो देना-लेना चाहते हैं सो देते-लेते हैं। मुझे न हर्ष होता है, न उद्वेग; न राग होता है, न वैराग्य; न कामना होती है, न नेष्कामना। मैं सदा भगवान्‌के अलौकिक अनन्त आनन्दसागरमें डूबा रहता हूँ। मेरा 'मैं' अब भगवान्‌में डूबकर अपना क्षुद्र सीमित रूप सदाके लिये खो चुका है।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गोस्वामी तुलसीदासजीका 'शकुनविचार'

( लेखक—श्रीबलरामजी शास्त्री एम्०ए०, ज्यौतिषाचार्य, साहित्यरत्न )

शकुनशास्त्र ज्यौतिष फलितका एक विशेष अङ्ग है। गणित ज्यौतिषके अठारह आचार्य माने गये हैं, जिसका उल्लेख ज्यौतिषके अन्यान्य सिद्धान्तादि ग्रन्थोंमें मिलता है। उन आचार्योंमें भगवान् सूर्य और पितामहसे लेकर यवनाचार्य आदि हैं। शकुनशास्त्रके दस आचार्य हैं। शकुनका विवेचन यत्र-तत्र वाल्मीकि-रामायण, महाभारत और अन्यान्य पुराणोंमें अत्यन्त विस्तारके साथ मिलता है। शकुनशास्त्रके आदिम आचार्य तो भगवान् शंकर ही माने गये हैं। आचार्य वसन्त-राजने लिखा है—

**अत्रिगर्गगुरुशुक्रवशिष्ठव्यासकौत्सभृगुगौतममुख्याः ।**
**ज्ञानिनो मुनिवरा हितभावात् संविदं निजगदुः शकुनानाम् ॥**
**वेदाः पुराणानि तथेतिहासाः स्मार्तानि शास्त्राणि तथापराणि ।**
**सत्याधिकं शाकुननामधेयं ज्ञानं समस्तानि समाश्रितानि ॥**
**स्वयं त्रिनेत्रो भगवान् गणानामुपादिशच्छाकुनमुत्तमं यत् ।**
**केन प्रकारेण तदप्रमाणं फलाविसंवादि वदन्ति जिह्माः ॥**
( वसन्तराजशाकुन प्र० स० )

शकुनशास्त्रके अध्ययनसे पता चलता है कि आचार्योंने प्रारम्भमें मानव-जातिके शुभ और अशुभ फल-विचारके लिये 'शकुन' (पक्षियों)के द्वारा फल-विचार प्रारम्भ किया। शकुन पक्षीका पर्यायवाची नाम है। पक्षियोंके उठने, बैठने, पंख फैलाने, चारा भक्षण करने आदि गति-विधियोंके आधारपर शुभ-अशुभ-विचारकी प्रणाली प्रचलित हुई। पक्षियोंमें काक, खंजन, चाष ( नीलकण्ठ ), चील आदि विशेषरूपसे शकुन-ज्ञानके लिये उपयुक्त प्रमाणित हुए। शकुन-विज्ञानकी उस प्रणालीमें विकास होने लगे और शनैः-शनैः पक्षियोंके पश्चात् पशुओंके व्यवहारोंसे और बादमें मानव-जातिके अङ्गस्फुरण आदिसे शकुन-विचार होने लगा। शकुन-विचारकी प्रणाली केवल भारतमें ही नहीं, अपितु समस्त एशिया और यूरोपमें प्रचलित हुई। जिस प्रकार भारतकी सभ्यता अन्यान्य देशोंमें विकसित हुई, उसी प्रकार भारतकी अन्यान्य प्रणालियाँ भी फैलती गयीं। 'शकुन-विचार-प्रणाली'का भी ऐसा ही इतिहास है। भारतके आचार्योंने 'ज्यौतिष-विज्ञान' ( फलित ) के आधारसे अनुसंधानपूर्वक शकुन-शास्त्रपर विचार किया है। भगवान् शंकरकी कृपासे शकुनशास्त्रका ज्ञान अन्यान्य आचार्योंको प्राप्त हुआ। शकुन-शास्त्रका एक मङ्गलमय इतिहास है; पर यहाँपर उस इतिहासपर कुछ लिखना आवश्यक नहीं है; यहाँ तो केवल महाकवि गोस्वामी तुलसीदास-जीद्वारा 'मानस'में प्रयुक्त शकुनके कुछ उद्धरणोंपर ही पाठकों-का ध्यान आकृष्ट करना अभिप्रेत है। मैं 'मानस-मर्मज्ञ' तो नहीं हूँ, किंतु ज्यौतिषका विद्यार्थी रहा हूँ, अतः पाठकोंका ध्यान इधर आकृष्ट करना उचित समझता हूँ। मानसके रचयिताने 'मानस-निर्माणमें **'नानापुराण-निगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि'** लिखा उसी आधारपर महाकविने शकुन आदि अनेकों विषयोंका उल्लेख 'मानस'में कर डाला है। संस्कृत महाकवियों-में सर्वप्रथम आदिकवि महर्षि वाल्मीकिजीने अपने आदि-काव्य वाल्मीकिरामायणमें तथा महर्षि व्यासजीने अपने महाभारत एवं अन्यान्य पुराणोंमें शकुन-वर्णन करके शकुन-विचार-धाराको प्रोत्साहित किया है। हिंदीके महाकवि जायसीने भी 'पद्मावत' महाकाव्यमें शकुनका वर्णन विस्तारके साथ किया है। स्वनामधन्य महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजीसे भी यह मनोरञ्जक और भारतीय परम्पराका प्रतीक शकुन-विचार-प्रकरण अछूता न रहा। 'शुभ शकुन' और 'अशुभ शकुन' दो प्रकारके उत्तम और निकृष्ट फलदायक शकुनोंका विभाजन साधारणतया माना जाता है; परंतु भारतीय आचार्योंने शकुनको तीन खण्डोंमें रक्खा है। अर्थात् शकुन तीन प्रकारके होते हैं—( १ ) क्षेत्रिक, ( २ ) आगन्तुक, ( ३ ) जाङ्घिक। 'क्षेत्रिक' शकुन वह है जो पूर्वयोजनाके अनुसार देखा जाय। ऐसे शकुन राजाओं और महाराजाओं-की यात्राओंमें पूर्वयोजनाके अनुसार उपस्थित किये जाते थे। ( २ ) 'आगन्तुक' शकुन वह है जो यात्राके समय अपने आप उपस्थित हो जाय। ( ३ ) तीसरे प्रकारके शकुनको 'जाङ्घिक' शकुन कहते हैं। जाङ्घिक शकुन वह है जो यात्राके समय अपने-आप वामभागमें या दक्षिणमें उपस्थित हो जाता है। गोस्वामीजीने तीनों प्रकारके शुभ शकुनोंको एक साथ भगवान् श्रीरामकी 'बारात-यात्रा'के समय उपस्थित किया है। ऐसा क्यों न होता। भगवान् श्रीरामके शुभ-विवाह-सम्बन्धी बारातकी शोभायात्रामें यदि शुभ शकुन न उपस्थित होते तो शकुनोंका नाम ही निरर्थक हो जाता। इस प्रसंगमें गोस्वामी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीने एक दोहेके आठ चौपाइयोंके अन्तर्गत तीनों प्रकारके शकुनोंका निर्देश कर दिया है ।

बनइ न बरनत बनी बराता । होहिं सगुन सुंदर सुभदाता ॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई । मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरसु सब काहूँ पावा ॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी । सघट सवाल आव बर नारी ॥
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा । सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा ॥
मृगमाला फिरि दाहिन आई । मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ॥
छेमकरी कह छेम बिसेषी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी ॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥

मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार ।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार ॥

महाकवि गोस्वामीजीने समस्त शुभ शकुनोंको एक साथ भगवान् श्रीरामकी बारातके सम्मुख उपस्थित कर दिया । अब आप देखें कि भारतीय आचार्योंके कथनानुसार गोस्वामीजीके सभी शकुन तीनों प्रकारके शकुनोंमें विधिवत् कैसे उपस्थित हो जाते हैं—

## १—क्षेत्रिक शकुन

'सघट सवाल आव बर नारी ।'
'सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा ॥'
'सनमुख आयउ दधि अरु मीना ।
कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥'

श्रीरामकी बारातयात्रा थी। शुभ शकुन उपस्थित करनेके लिये सुन्दरियाँ अपने-अपने बच्चोंको गोदमें लेकर और जलभरा घड़ा लेकर बारातके सम्मुख खड़ी हो गयीं । ( आज भी हिंदुओंकी बारातयात्रामें यह प्रथा प्रचलित है । जलभरा घड़ा लेकर सुन्दर वस्त्र धारण करके औरतें बारातकी अगवानी करती हैं या द्वारचार—द्वारपूजाके समय द्वारपर उपस्थित रहती हैं । ) गौका सम्मुख बछड़ा पिलाना तथा दधि और मछलीका दर्शन भी अत्यन्त शुभद माना गया है । दो ब्राह्मणोंके हाथमें पुस्तकें हों और उनका दर्शन यात्राके समय हो जाय तो यात्रा अवश्य शुभ फलदायक हो जाती है । कुछ लोग पूर्वयोजनाके अनुसार उपस्थित किये जानेवाले शकुनोंको महत्त्व नहीं देते; परंतु ऐसा देखा गया है कि मन प्रसन्न होनेपर यात्रा करनेसे फलकी सिद्धि निश्चय होती है । शकुन-विचार तो आधुनिक विचारधाराके अनुसार भी मनोविज्ञानसे सम्बन्ध रखता है । मनको प्रसन्न करनेके लिये यात्राके समय 'जाङ्गिक शकुन' उपस्थित कराये जाते थे । भगवान् श्रीरामके बारात-वापसीमें परिछनके समय शुभ शकुनसूचक पदार्थ सजाकर रक्खे गये थे, उनसे मधुर-मधुर सुगन्ध निकल रही थी । ( देखिये, मानस दो० ३४५—४ बालकाण्ड )

सगुन सुगंध न जाहिं बखानी । मंगल सकल सजहिं सब रानी ॥

शकुनसूचक वस्तुओंकी गन्धसे सुगन्धित वायुमण्डलके कारण अपने आप अनेकों शुभ शकुन उपस्थित होने लगे—

होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभी बजाइ ।
बिबुधबधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ ॥
( मानस, बाल० ३४७ )

'क्षेत्रिक शकुन'के समर्थनमें महाकवि जायसीने भी पद्मावतमें लिखा है—

भरे कलस तरुनी जल लाई । दहिऊ लै ग्वालिनि गोहराई ।
मालिनि आव मौर लिए माथे ।' ( पद्मावत )

लोककवि भड्डरीने तो गोस्वामीजीके शकुनका अनुकरण ही कर लिया है—

नारि सुहागिन जल घर लावै ।
दधि मछली जो सनमुख आवै ॥
सनमुख धेनु पिआवै बाछा ।
यही सकुन है सबसे आछा ॥

## २—आगन्तुक शकुन

गोस्वामीजीने 'आगन्तुक शकुन' ( जो अपने-आप अकस्मात् यात्राके समय उपस्थित हो जाता है ) का उल्लेख सुन्दर ढंगसे श्रीरामकी बारातके सामने सबको अवलोकित कराया ।

चारा चाषु बाम दिसि लेई ।
मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥
नकुल दरसु सब काहूँ पावा ।
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा ॥

ये शकुन श्रीरामकी बारात-यात्रामें अपने-आप उपस्थित होकर शुभ और मङ्गलमय लक्षण उपस्थित करते हैं। महाकवि जायसीने भी 'आगन्तुक शकुन' का उल्लेख महाकाव्य पद्मावतमें किया है ।

खंजन बैठ नाग के माथे········ ।
लोआ दरस आइ दिखराई ॥
( पद्मावत )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोककवि भड्डुरीने भी आगन्तुक शकुनपर अपना उल्लेख उपस्थित किया है—

चलत समय नेउरा मिल जाय।
लोआ फिरि फिरि दरस दिखावै॥
भड्डर रिषि यह सगुन बतावै॥

## ३—जाङ्गिक शकुन

जाङ्गिक शकुन यात्रामें, दाहिने या वामभागमें या ग्रामके अन्तमें या नगरके अन्तमें अकस्मात् उपस्थित हो जाता है। गोस्वामीजीने लिखा है—

मृगमाला दाहिन दिसि आई।
मंगलगन जनु दीन्हि देखाई॥
छेमकरी कह छेम बिसेषी।
स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥

महाकवि जायसीने भी जाङ्गिक शकुनका उल्लेख किया है—

दहिनें मिरिग आइ बन धाए। प्रतीहार बोला खर बाँए॥
बिरिख सँवरिया दहिने बोला। बाएँ दिसा चाषु चरि डोला॥
बाएँ अकासी धौरी आई। ...... ...( आकासी=चील )
बाएँ कुररी दहिने कूचा।......... ( कुररी=टिटिहरी )
( कूचा=क्रौंच )

कृषक पण्डित भड्डुरीने भी लिखा है—या अनुकरण किया है—

बाम भाग चारा चषु खाय।...... ।
बाएँसें दहिने मृग आवै।......... ।

गोस्वामीजीने श्रीरामचन्द्रकी बारात-यात्रामें शकुनोंका उल्लेख करके उनके वास्तविक रूपको भी व्यक्त कर दिया है। ब्रह्मा ही सबको शुभ और अशुभ कर्मोंका फल विभिन्न रूपमें देते रहते हैं। वे शुभ और अशुभ कर्मफल ही शकुनके रूपमें उपस्थित होते हैं। इस तथ्यको शकुन-शास्त्रके आचार्योंने भी माना है।

पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति सम्प्रचक्षते।
उद्यमेन तदुपार्जितं तदा दैवमुद्यमवशं न तत्कथम्॥
तान्निरूप्य शकुनेन पूरुषः पूर्वजन्मपरिपाकमायतौ।
संचरेत्सु चिरमात्मनो हितं चिन्तयन् पुरुषकारतत्परः॥
( वसन्तराजशाकुन १। २२-२३ )

शुभ शकुन ब्रह्माके संकेतपर चलनेवाले हैं, यहाँ ब्रह्माके पिताका ही मङ्गलमय कार्य सम्पन्न होने जा रहा था; अतः शुभ शकुन मारे आनन्दके नाचने लगे, अर्थात् अपने-आप प्रत्यक्ष होकर बारात-यात्रामें उपस्थित हो गये।

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे।
अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥

भगवान् श्रीराम लोक-कल्याणके लिये नरचरित कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेककी तैयारी हो रही थी, उधर देवताओंके मनमें कुछ और ही भावना जाग्रत् हो रही थी। क्या होनेवाला था, इसे तो प्रभु स्वयं जानते थे, परंतु लोकदिखावेके लिये शुभ-सूचक शकुन प्रकट होने लगे। गोस्वामीजीने लिखा है—

'सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥
पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥

राम-सीताके अङ्ग-स्फुरणसे शुभ-शकुन प्रकट हो रहे थे। लोगोंने समझा होगा कि राज्याभिषेकके शुभ लक्षण हैं; परंतु श्रीरामने उसे भरत भाईके आगमनकी शुभ सूचना माना था। अङ्गस्फुरणसे शुभ-अशुभ शकुनोंका संकेत मिलता है। भारतीय आचार्योंने इसे विस्तारके साथ लिखा है। गोस्वामीजीको अङ्गस्फुरण-शकुनका निर्देश संक्षिप्तमें करना ही उचित था। माता जानकी और भगवान रामके शुभ-सूचक अङ्ग फरक रहे थे। वहाँ यह भी स्मरण रहे कि स्त्रियोंके वाम अङ्ग और पुरुषोंके दक्षिण अङ्ग-स्फुरणसे शुभ और अशुभ फलका संकेत मिलता है। जगत्-जननी सीताके प्रथम दर्शनसे जगत्पिता श्रीरामके शुभ अङ्ग फरकने लगे थे—

सो सब कारन जान बिधाता।
फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥

उधर माता जानकी भी जब गौरीकी उपासना कर चुकीं तब—

जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जात कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

एक दिन कैकेयीने भी अपने दाहिने अङ्गके स्फुरणकी सूचना दी। हाँ, सीताके वाम अङ्गोंने फरककर शुभ संदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया और कैकेयीके दाहिने नेत्रने फरककर विधवा होनेका संकेत उपस्थित किया—

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥

भगवान् श्रीरामने वनके लिये प्रस्थान कर दिया। अयोध्या-में शोक-समुद्र उमड़ आया। अयोध्याके मानव ही नहीं, पशु और पक्षी शोकसागरमें गोता लगाने लगे, उधर लङ्कामें अशुभ शकुन प्रकट होने लगे—

कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥
(अयोध्या० ८०। २)

अयोध्यामें शोक-सागरका उमड़ना तो स्वाभाविक था; परंतु लङ्कावासियोंके घरमें अशुभ लक्षण क्यों? यही तो शकुनकी महिमा है। शकुन कुछ दिन पूर्व ही विपत्तिके आगमनकी सूचना उपस्थित कर देते हैं। श्रीभरतलालजी कुस्वप्नोंसे अयोध्याके लिये चिन्तित हो उठे थे; परंतु अयोध्यापुरीमें प्रवेश करनेके पूर्व ही उन्हें अपशकुनोंसे अयोध्याकी विपत्तिकी सूचना मिल गयी—

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होहिं भरत मन सूला॥

भरतजीको अशुभ शकुनोंके संकेतसे मनमें भयानक वेदना-का अनुभव होने लगा। गोस्वामीजीने शकुनका जो वर्णन मानस-में उपस्थित किया है, उससे यह प्रतीत होता है कि उन दिनों कोल, किरात आदि भी 'शकुन-विचार' जानते थे। भरतजी जब श्रीरामचन्द्रजीको अयोध्या वापस लानेके लिये मनाने चले, तब उनके साथ सेनाको देखकर श्रीरामचन्द्रके प्रेमी निषादराज-को संदेह हो गया। निषादराजने भरतलालजीसे युद्ध करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया, परंतु उसी अवसरपर सहसा—

एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥
बूढ़ु एक कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीं॥

लीजिये! एक सगुनियेने भविष्यके सत्यको छींकके आधारपर बतला दिया और युद्ध टल गया। श्रीरामके दोनों प्रिय आपसमें युद्ध न कर सके। प्रेमसे मिल गये। छींकसे शुभ-अशुभ विचार आज भी बहुत मान्यताको प्राप्त कर चुका है। ज्यौतिषके एक आचार्यने लिखा है कि छः प्रकारकी छींक शुभद होती हैं—

आसने शयने चैव दाने चैव तु भोजने।
वामाङ्गे पृष्ठतश्चैव षट् छिक्काश्च शुभावहाः॥

बूढ़े निषादने बायेंकी छींकसे फल विचारा था। फल बिल्कुल सत्य घटित हुआ था। भरतजी आगे बढ़े, साथमें निषाद आदि भी थे। भरत ज्यों-ज्यों श्रीरामकी पर्णकुटीके संनिकट पहुँचने लगे, त्यों-त्यों उनके मनमें उथल-पुथल मचने लगी। भरतकी दशा देखकर निषादको भी कष्ट होने लगा; किंतु उस समय ऐसे शकुन दिखलायी पड़े जिससे सबको 'कार्यसिद्धि'का लक्षण प्रतीत हो गया।

लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु॥'

उस समय जो शकुन दीखे उन मङ्गलदायक शकुनोंको देखकर और सुनकर (पशुओं और पक्षियोंकी शकुनसूचक बोलियोंको सुनकर) निषादको भविष्यका आभास हो गया। उन शकुनोंका फल शोकको सद्यः मिटानेवाला था। हर्षको बढ़ानेवाला था। परंतु अन्ततोगत्वा भरतके लिये बहुत हितकर नहीं था। अतः गोस्वामीजीने 'पुनि परिनाम बिषादु' लिखा।

( २ )

सीताहरणके पूर्व शूर्पणखाके आवाहनपर खर-दूषण आदिने श्रीरामचन्द्रके बलको चुनौती दे दी। राक्षसोंकी एक टुकड़ीने श्रीरामचन्द्रको मानव समझकर चढ़ाई कर दी, परंतु उसका परिणाम क्या होनेवाला था, उसे अपशकुनोंने पहले ही व्यक्त कर दिया।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥

महाकवि वाल्मीकिजीने इस प्रसंगमें अशुभ शकुनोंकी एक लंबी सूची उपस्थित कर दी है।

श्यामं रुधिरपर्यन्तं बभूव परिवेषणम्।
अलातचक्रप्रतिमं परिगृह्य दिवाकरम्॥
—इत्यादि

जिस समय खर चला तो गधेके रंगवाले महामेघ उमड़ आये और रक्तकी वर्षा करने लगे। सूर्यमण्डलके चारों ओर श्यामवर्ण और उसके किनारे लाल रंगका मण्डल बन गया। झुंड-के-झुंड सियार आकर मुँहसे आगकी लपटें निकालने लगे। भयानक स्वरमें सियार चीत्कार करने लगे। कङ्क पक्षी तथा गिद्ध भयदायी बोली बोलने लगे। असमयमें सूर्यग्रहण लग गया (या प्रतीत होने लगा)। सूर्यकी प्रभा लुप्त-सी जान पड़ने लगी। लङ्का जलानेके बाद श्रीहनुमान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब श्रीरामजीके पास वापस आ गये और श्रीरामचन्द्र-जीकी सेनाने लङ्काके लिये प्रस्थान कर दिया तो उस समय भी शकुन दीखे। उस समय दो प्रकारके शकुन दीखे! शुभ शकुन तो श्रीरामके आगे प्रकट हुए और अशुभ शकुन लङ्कामें दीख पड़े। माता जानकीको भी शुभ शकुनोंका लक्षण दीख पड़ा था।

हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥
जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥
(सुन्दर दो० ३४। २-३-४)

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई॥

इसी प्रसंगमें आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीने भी लिखा है—लङ्कापर चढ़ाई करते समय श्रीरामचन्द्रजीने शुभ मुहूर्त और शुभ शकुनका ज्ञान करके चढ़ाईका आदेश दिया। शकुनोंको देख श्रीरामचन्द्रजीने कहा—

**निमित्तानि च पश्यामि यानि प्रादुर्भवन्ति च।**
**निहत्य रावणं सीतामानयिष्यामि जानकीम्॥**
(युद्धकाण्ड ४। ७)

शुभ शकुनोंको देखकर लक्ष्मणजीने भी श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—(हे भगवन्!) आकाश और पृथ्वीपर अनेक प्रकारके शुभसूचक शकुन और आपकी सर्वार्थसिद्धिके लक्षण दीख रहे हैं—

**शुभानि तव पश्यामि सर्वाण्येवार्थसिद्धये।**
**अनुवाति शिवो वायुः सेनां मृदुहितः सुखः॥**
(युद्धकाण्ड ४। ४७)

लङ्कापर चढ़ाईके पूर्व श्रीरामचन्द्रजी अपने सलाहकारोंके साथ सायंकाल सुवेल पर्वतपर बैठकर लड़ाईकी योजना बना रहे थे, एकाएक उनकी दृष्टि लङ्काके शिखरपर पड़ी। लङ्काके शिखरपर एक महल था। उस महलपर रावणका अखाड़ा था जहाँसे वह पहलवानोंके मल्लयुद्ध आदिका अभ्यास और प्रदर्शन देखता था। उस समय भी मन्दोदरीके साथ रावण मल्लयुद्धका अवलोकन कर रहा था। प्रसंगानुसार श्रीरामचन्द्रजीने रावणके मुकुटको एक बाणसे पृथ्वीपर गिरा दिया। श्रीरामचन्द्रजीका बाण अपना काम करके तरकसमें आकर यथास्थान हो गया। रावणके गिरते मुकुटको देखकर वहाँके लोगोंने 'अपशकुन' समझा था—

सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥

रावणने उस दृश्यकी उपेक्षा कर दी। रावणको श्रीरामकी बाण-संचालन-कलाका ज्ञान तो हो ही गया था; उसने अपने भावोंको छिपाते हुए कहा—

सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥

रावणने कहा कि सिरका गिरना भी जिसके लिये शुभ-सूचक ही है, उसके लिये मुकुटका पतन अशुभकर क्यों हो सकता है? श्रीराम-रावणका भयानक युद्ध चल रहा था। रावणके सभी प्रमुख योद्धा मारे जा चुके थे। मेघनाद भी लक्ष्मणजीके हाथों मारा गया। रावणकी स्त्रियोंने युद्ध बंद कर देने और सीताको वापस कर देनेकी सलाह दी तथा प्रार्थना की; परंतु रावणने अभिमानवश कुछ भी नहीं सुना। प्रातःकाल समरभूमिमें जानेके पूर्व उसे बहुतसे अपशकुन दिखलायी पड़े।

असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुज बल गर्ब बिसाला॥
अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते॥
गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥
ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोह बस रामबिमुख रति काम॥

श्रीरामभक्त महात्मा तुलसीदासजीने इस शकुनप्रसंगको भी भक्ति और ज्ञानमय बना दिया। आदिकविने इस प्रसंगको विस्तारके साथ लिखा है—

**समुत्पेतु रथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः।**
**रावणस्य विनाशाय राघवस्य जयाय च॥**
**ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि।**
**वाता मण्डलिनस्तीक्ष्णा ह्यपसव्यं प्रचक्रमुः॥**
**महद् गृध्रकुलं चास्य भ्रममाणं नभःस्थले।**
**येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति॥**
(लङ्का० १०८ स० २०–२२)

**गृध्रैरनुगताश्चास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः।**
**प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः॥**
(लङ्का० १०८ स० २७)

युद्धभूमिमें प्रस्थान करते ही रावणको भयानक अशुभ शकुन दीखने लगे। वे शकुन रावणके विनाश और श्रीरामचन्द्रजीकी विजयके सूचक थे। रावणके रथपर रुधिरकी वर्षा होने लगी। उसकी बायीं ओरसे घूमता हुआ वेगवान् वायु चलने लगा। जिस ओर रावणका रथ जाता था उसी ओर पंक्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बद्ध होकर गिद्ध उड़ते थे। रावणके आगे सियारोंका दल दौड़ रहा था और पीछे गिद्धसमूह उड़ रहा था। रावणकी ओर मुख करके सियारिनें चीत्कार करने लगीं।

युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये रावण जब यज्ञ कर रहा था और बंदरोंने उस तामसी यज्ञको विध्वंस कर दिया, तब रावण अकुलाकर क्रोधित होकर युद्धके लिये चल पड़ा। उस समय उसके सिरपर गीध पक्षी उड़-उड़कर बैठ जाते थे। शकुन-विचार-परम्परामें यह अत्यन्त अशुभ माना गया है—

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
(लङ्का दो० ८५। १)

× × ×

आदिकाव्यमें वाल्मीकिजीने विस्तारके साथ शकुनोंका वर्णन किया है, किंतु गोस्वामीजीने संक्षेपमें शकुनोंका संकेत उपस्थित किया है। रावणका युद्ध अन्तिम सीमापर समाप्त होनेवाला था, परंतु उसके सिरों और भुजाओंकी वृद्धिका समाचार सुन सीताको चिन्ता होने लगी थी। त्रिजटाने सीताको रावणकी मृत्युका मुख्य कारण समझाते हुए उन्हें ढाढ़स बँधाया। सीताको कुछ शुभ शकुन दीख पड़े।

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा॥
(लङ्का० दो० ९९। ३)

आदिकाव्यमें वाल्मीकिजीने लिखा है—अशोकवाटिकामें हनुमान्‌जीके पहुँचनेपर सीताको अनेकों शुभ शकुन दीख पड़े—

तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्मराज्यावृतं कृष्णविशालशुक्लम्।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम्॥
(सुन्दर० २९। २)

रावणकी मृत्यु अत्यन्त संनिकट पहुँच गयी। भगवान्‌ने अपने धनुषपर एकतीस बाण चढ़ा लिये थे। उस समय भी रावणकी लङ्कामें भयानक अपशकुन दृष्टिगोचर हुए।

प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥

इस शकुनमें गोस्वामीजीने मूर्तियोंके रोनेकी चर्चा की है। मूर्तियोंके रोने-हँसनेकी बात अन्य आचार्योंने भी लिखी है। हिरण्यकशिपुके वधके समयकी घटनाका उल्लेख अग्निपुराणमें मिलता है।

प्रतिमाः सर्वदेवानां हसन्ति च रुदन्ति च।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति धूमायन्ति ज्वलन्ति च॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें भी ऐसे शकुनका उल्लेख है—

देवताप्रतिमाश्चैव प्रकम्पन्ते हसन्ति च।
वमन्ति रुधिरं चास्यैः स्विद्यन्ते प्रपतन्ति वा॥
(२ अ० २६ श्लो०)

रावणवध हो गया। संसारका कल्याण हो गया। सत्पक्षकी विजय हुई। सीता माता और अन्य लोगोंके साथ श्रीराम अयोध्या चले। मार्गमें शुभ शकुन होने लगे—

सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल सब आसा॥

उधर अयोध्यामें भरतजीके लिये आशाकी एक किरण बाकी थी। भरतजी एक दिन और प्रतीक्षा करनेके बाद जीवनका अन्त कर देते; परंतु शुभ शकुनोंने उन्हें पूर्ण भरोसा दिया—शुभ शकुनोंके दर्शनसे भरतजीको विश्वास हो गया—

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर॥
कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥
भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥

भगवान् श्रीराम अयोध्यामें पधारे। चौदह वर्षके बाद अयोध्याका भाग्य पलटा। सर्वत्र आनन्दका सागर उमड़ आया।

रामराज्यकी तैयारी होने लगी, ऐसे अवसरपर शुभ शकुनोंका दर्शन मङ्गल-विधानकी सूचना ही होते हैं।

होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान॥
(उत्तरका० दो० ९ (ख)

इस प्रकार महाकवि तुलसीदासजीने 'मानस' महाकाव्यमें शकुन-विचार-परम्पराका उल्लेख करके भारतीय परम्पराका दिग्दर्शन कराते हुए 'मानस'की पूर्णतामें 'नानापुराणनिगमागम' ''' कथनकी सत्यताको प्रमाणित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# द्वीपान्तर और भारतमें सांस्कृतिक सम्बन्ध

## [ शैवधर्मका प्रतिपादक बृहस्पतितत्त्व ]

( लेखक—डॉ० सुदर्शना देवी सिंघल, डी० लिट्० )

[ गताङ्कसे आगे ]

बुद्धिके इन गुणों ( धर्मों ) के फलोंके लिये संस्कृतमें समान स्थल मृगेन्द्रतत्त्व १ । १० । २९ पर नारायणकण्ठकी टीकामें उपलब्ध है । इनके अतिरिक्त पञ्चविपर्यय, नवतुष्टियाँ और अष्टसिद्धियाँ भी बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं । पञ्चविपर्यय स्वच्छन्दतन्त्रमें बृहस्पतिके ही समान हैं—

**तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्यो विपर्ययः ।**
**अन्धतामिस्रमित्याहुरेवं पञ्च विपर्ययाः ॥**

सांख्यमें इन्हें 'पञ्चपर्वैषा अविद्या' कहा गया है । इसके पश्चात् अष्टतुष्टियोंका वर्णन है । सांख्यके अनुसार तुष्टियाँ नौ हैं । परंतु बृहस्पतिके अनुसार ये आठ हैं—अर्जन, रक्षण, क्षय, संग, हिंसा, भाग्य, काल और आत्मा । सांख्यमें संग-तुष्टिके स्थानपर तृप्ति-तुष्टि तथा आत्माके स्थानमें प्रकृति और उपादान तुष्टियाँ हैं । अष्टसिद्धियाँ सर्वथा वही हैं जो सांख्यमें हैं । केवल सिद्धियोंका वर्गीकरण—बाह्य सिद्धियों और आध्यात्मिक सिद्धियोंमें सांख्यके लिये नवीन है । वाचस्पति, माठराचार्य आदिकी सांख्यपर प्रथित टीकाओंमें यह नहीं मिलता । सम्भवतः इस वर्गीकरणका कारण तुष्टियोंका वर्गीकरण है । अर्थात् तुष्टियोंके बाह्य और आध्यात्मिकके वर्गीकरणके समान ही अष्टसिद्धियोंका भी वर्गीकरण करना द्वीपान्तरवासियों-ने अधिक उपयुक्त और उचित समझा ।

बुद्धितत्त्वकी विविध वृत्तियोंका सविस्तर उल्लेख करनेके पश्चात् पुनः सृष्टिक्रमकी ओर जाते हैं । बुद्धितत्त्वसे अहंकार-की उत्पत्ति हुई । यह तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजस, तामस । वैकृत, तैजस और भूतादि इन्हींके दूसरे नाम हैं । वैकृत अहंकारसे दशेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । भूतादि अहंकारसे पञ्चतन्मात्राएँ । तैजस अर्थात् राजस अहंकार इन दोनोंको सक्रिय बनानेमें सहायता करता है । इस प्रसङ्गमें बृहस्पतितत्त्व सर्वथा सांख्यमतका प्रतिपादन करता है । भारतीय विभिन्न मतोंमें भी यहाँ सबकी सहमति है । पञ्चतन्मात्राओंसे पञ्च-महाभूत निकलते हैं । इनकी व्याख्या करते-करते बृहस्पति इनसे मनुष्यके शरीरकी रचनापर आ जाता है । षट्कोषके मध्यमें पद्मनाड़ीके स्थानपर शुक्ल और श्वनित ( शोणित ) मिलनेसे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है । 'षट्कोषं वपुः' का बृहस्पतिके अनुकूल स्थल शिवगीता ( लिंगमहापुराणमें उद्धृत ) और मुद्गलोपनिषद्में मिलता है । सामान्यरूपसे उपनिषदोंमें 'पञ्चकोष' आते हैं जो इन षट्कोषोंसे सर्वथा भिन्न हैं । एक डच विद्वान् डॉ० खोरिस्‌ने अपनी पुस्तक Balinese Theology में पञ्चकोषको ही षट्कोष मान लिया है । इस भूलका कारण यह हो सकता है कि षट्कोषकी अपेक्षा पञ्चकोष अधिक प्रचलित हैं । किंतु षट्कोष सर्वथा शारीरिक भौतिक अर्थमें लिये जाते हैं, जब कि पञ्चकोषोंकी व्याख्या आध्यात्मिक शरीरसे सम्बद्ध है । यथा—अन्नरसमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष । षट्कोष इस प्रकार हैं—

**पितृभ्यामशितादन्नात् षट्कोषं जायते वपुः ।**
**स्नायवोऽस्थीनि मज्जा च जायते पितृतस्तथा ॥**
**त्वङ्मांसं शोणितमिति मातृतश्च भवन्ति षट् ।**

( शिवगीता )

दशेन्द्रियोंकी व्याख्या करते समय भटार शिव इन्द्रियों और इन्द्रियोंके आधारभूत स्थानोंके भेदको स्पष्ट करते हैं । कान आधार ( =गोलक ) हैं, कर्णेन्द्रिय उससे भिन्न है । कान होनेपर भी कारणवश व्यक्ति नहीं सुन सकता । आधार तो है अर्थात् कर्ण हैं पर कर्णेन्द्रिय नहीं । आधार और आधेयके इस भेदको इतने स्पष्टरूपमें कहनेकी भारतीय साहित्यमें सम्भवतः कभी आवश्यकता नहीं समझी गयी । केवल **'शब्द-तन्मात्रे शक्तमिन्द्रियं श्रोत्रमुच्यते'** ( वेदान्तकारिकावलि ) कहकर भेद करना न करना पाठकपर छोड़ दिया गया । आधारके लिये जावीमें गोलक शब्द नवीन है । इसे हम संस्कृत शब्द 'गोलक', जिसका सामान्य अर्थ आँखकी पुतली है, का अर्थ-विस्तार मान सकते हैं । वेदान्तकारिकावलिके प्रकृतिनिरूपण अध्यायमें गोलक शब्दका प्रयोग इस प्रकार है । **चक्षुःश्रवसा च नेत्रगोलोकवृत्तिः** । जिस प्रकार संस्कृतका पिण्ड-शब्द, जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल अर्थ गोल था शरीरका अर्थवाची हो गया, उसी प्रकारसे गोल शब्दको शरीरके अर्थका द्योतक मानकर उसे ह्रस्वार्थक लगाकर गोलकका अर्थ शरीरके अङ्ग माना जा सकता है। गोलकका यह रोचक अर्थ-विस्तार हमारे प्रसंगके सर्वथा अनुकूल है। इन इन्द्रियोंसे संयुक्त मानव भोगकी इच्छा करता है। उसकी आत्मा ( पुरुष ) इस संसारचक्रमें फँसी रहती है, शरीर शकटोपम हो जाता है। आत्मा वृषभवत् है। ऊपर ईश्वर चालक हैं। बस, यह जगत् चक्रवत् घूमता रहता है। बृहस्पति-तत्त्वके ३४वें श्लोककी इस उपमासे ग्रन्थकी दृष्टान्तों और उपमाओंद्वारा गुह्य आध्यात्मिक स्थलोंको सरल सुबोध रूपसे पाठक और श्रोताको बुद्धिगम्य करा देनेकी प्रवृत्तिकी झलक दिखायी देती है। बृहस्पतिका प्रत्येक कठिन और दार्शनिक स्थल इस प्रकारके दृष्टान्तोंसे परिपूर्ण है। यह बृहस्पतिकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। गणपतितत्त्वमें भटार शिव गणपतिको केवल तथ्यका निरूपण करते जाते हैं। दृष्टान्तों अथवा उपमाओं-द्वारा समझानेका प्रयास नहीं है। बृहस्पति सम्भवतः प्रचलित और लोकप्रिय दर्शन-ग्रन्थ रहा है। इसीके आधारपर द्वीपान्तर-की आधुनिक भाषा बहासा इण्डोनेसियामें लिखा गया 'अजि सांख्य' इसकी लोकप्रियताका प्रमाण माना जा सकता है। उपमासे विभूषित दार्शनिक तथ्यकी अभिव्यक्ति श्लोकके पदोंमें इस प्रकार प्रस्फुरित हुई है—

> **शकटोपमं प्रधानं तु पुरुषो वृषभोपमः।**
> **ईशसारथिसंयुक्तं जगद् भ्रमितचक्रवत्॥**

इतना ही नहीं, अन्तःकरण और इन्द्रियोंका भी इस मानवमोक्षके प्रतिरोधमें बहुत बड़ा हाथ है—

> **प्रधानं प्रासादेत्युक्तं यन्ता मन्त्री प्रकीर्तितः।**
> **शूद्रमिन्द्रियमाहुर्वै विषया भोगवत्सुखम्॥**

सहज प्रश्न उठता है कि शरीरमें आत्माको जकड़नेवाली शृङ्खलाएँ कौन-सी हैं, जिनसे बन्धनमुक्त होकर मोक्षकी प्राप्ति हो सके? पुनश्च इन शृङ्खलाओंसे मुक्त होनेके मार्ग कौनसे हैं? बृहस्पतिकी इस गहन समस्याको भटार शनैः-शनैः क्रमशः सुलझाते जाते हैं। दस मुख्य नाडियाँ शरीर और आत्माको ( परस्पर ) बाँध देती हैं—ये इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी—प्राणवहा नाड़ियाँ हैं। ये प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय नामक दस प्राणोंको वहन करती हैं। इनके दृढ़ बन्धनमें विश्रान्त हुई आत्मा दूसरे लोकमें जाना चाहती है। वहाँ जानेमें पाँच पद हैं। पाँचवाँ पद मोक्ष है, जहाँ उसे पहले ४ पदोंको पार कर पहुँचना है। पदके स्थानमें संस्कृत साहित्यमें सामान्यतया प्रयोग अवस्था है। किंतु काश्मीरके शैवग्रन्थ तन्त्रालोक ( १०। २२८-२२९ ) में इन्हें बृहस्पतिके समान ही 'पञ्चपद' कहा गया है। ये पञ्चपद इस प्रकार हैं—जाग्रपद, स्वप्नपद, सुषुप्तपद, तुर्यपद और तुर्यातीतपद। जाग्रपद जाग्रत्पद है। तुर्यान्तपदका अभिप्राय तुर्यातीतावस्थासे है। जिसे श्लोकमें निर्वाण कहा गया है। जाग्रपद, स्वप्न और सुषुप्तपद 'आत्मसंसार' है। इन्हींमें मनुष्य घूमता रहता है। तुर्यपद आत्मसिद्धि है। और तुर्यान्तपद जीवन्मुक्ति है। भटार इन पञ्चपदोंकी दार्शनिक व्याख्या करते हैं। बृहस्पतिके मनमें अनेक प्रश्न उठते हैं। यथा मोक्षका कारण अचेतन है; क्योंकि चेतन ( मोक्ष ) अचेतनसे निकलता है। तनका अर्थ है—सुखदुःखमय संसार-की अनुभूति करना। अतः चेतनको विशेष कहना कहाँतक उचित है। अचेतन वास्तवमें विशेष कहलाना चाहिये; क्योंकि वह संसारका, सुख-दुःखका अनुभव नहीं करता। इस तर्कयुक्त प्रश्नका भटारने जो उत्तर दिया उसका सारांश इस प्रकार है—चेतन अचेतनको ढूँढ़ता है। अचेतन उस मिट्टीके समान है जिससे घर बनता है। घरको बनानेवाला भटार चेतन है। अचेतन वह है जिसे वह रूप देता है। पात्रादिका बनना उसकी अर्थात् चेतनकी इच्छापर निर्भर है। इसी कुम्हारके समान भगवान् हैं जो अचेतनको अपने इच्छानुकूल रूप देते हैं। अचेतनका स्वभाव चेतनहीन है। इसलिये उसे परमार्थ अथवा विशेष कहना उपयुक्त नहीं। पर अभी बृहस्पतिका प्रश्न शेष है—अचेतन तो आकाररहित है फिर उसको रूप कैसे दिया जा सकता है अतः असत् जो अचेतन है वही विशेष होना चाहिये। भटार इसका समाधान इस प्रकार करते हैं—यदि असत् विशेष है तो इस सत् संसारकी उत्पत्ति उससे कैसे कही जा सकती है। ऐतरेय ब्राह्मणका प्रसिद्ध वाक्य है—'कथं असतः सज्जायेत।' तथा च सत्, असत् और पुनः सत् बन सकता है। विशेष इसी प्रकारका गुह्य है। परमार्थका स्वरूप इस प्रकार है—

> **सद्भावेन परित्यक्तमसद्भावविवर्जितम्।**
> **सदसद्भावरहितं निष्क्रान्तमलक्षणम्॥**

विशेषकी इस सदसत्-सत्ताका दृष्टान्त इस प्रकार है—जिस प्रकार दूधमें मक्खन, दारुमें अग्नि, मेघोंमें जल, आकाशमें वायु अदृश्य है, उसी प्रकार मन, रज और तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यमें। वे सत् होते हुए भी असत् हैं; क्योंकि वे इस बाह्य जगत्में अदृश्य हैं—

> यद् घृतं पयसि हरिश्च यदारुपु क्षितिः
> जलं नभःस्थितं सर्वगोऽनिलः।
> रजस्तमोऽदृश्यं मनो नरे सन्न सत्तथा
> बाह्ये जगति तन्नोपलभ्यते॥

चेतन, अचेतन, मायातत्त्व और पुरुषके स्वभावों और उनके परस्पर सम्बन्धोंका विवेचन करनेके पश्चात् शरीर और आत्माके बन्धनस्वरूप प्राणोंसे मुक्ति पानेके इच्छुक तथा मोक्ष-जिज्ञासुके लिये तीन मार्गोंका निरूपण किया गया है—ज्ञानाभ्युद्रेक, इन्द्रियोंसे अयोगका मार्ग तथा तृष्णदोषक्षय। ज्ञानीका ज्ञान तीन प्रकारसे बढ़ता है—गुरुतः, शास्त्रतः, स्वतः। योगीश्वर प्रयोगसंधिके परम रहस्यको षडङ्गयोगद्वारा जान लेता है। इन मोक्षमार्गोंसे पूर्व बृहस्पतिके मनमें शंका है कि जीवन सुख-दुःख-भोग करता है, संसार है, बन्धन है। मृत्यु मोक्ष है; क्योंकि मरकर मनुष्यको किसी प्रकारके शारीरिक अथवा मानसिक दुःखका अनुभव नहीं होता। बृहस्पतिके इस संदेहका मूल जो कुछ दिखायी देता है, उसीको सत्य समझ लेनेके कारण है। मनुष्य स्वभावसे अल्पज्ञ और अल्पायुष है। उसकी दृष्टि बहुत दूरतक नहीं जाती। प्रतिदिन उदित होनेवाला सूर्य उसे वही एक दिखायी पड़ता है; पर वास्तवमें ऐसा नहीं है ( सूर्य द्वादश हैं )। मृत्युके समय शरीर पञ्चमहाभूतोंके स्थूल शरीरसे अवश्य मुक्त हो जाता है; परंतु वह पञ्चतन्मात्राओंके सूक्ष्म शरीरमें परिवर्तित हो जाता है। परिणामतः उसका पुनर्जन्म होता है और वह अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। यदि उसने पूर्वजन्ममें बुरे कर्म किये हैं तो वह नरकलोकमें जाता है और पूर्वजन्ममें किये सत्कर्म उसे स्वर्गमें ले जाते हैं। यदि वह इस मनुष्य-जन्ममें योग करेगा तो मृत्युके पश्चात् जब वह पुनर्जन्म लेगा तो 'योगीश्वरत्व'को पा सकेगा। योगीश्वरत्व-का अर्थ है—भिक्षुओंमें विशिष्ट स्थान। वह तीन प्रकारका योगी हो सकता है—कर्मयोगी, ज्ञानयोगी और योगी। कर्मयोगीका अर्थ है—जप, पूजा-पाठ, व्रत आदि कर्म करना। ज्ञानयोगीका अर्थ है—गुरुतः शास्त्रतः स्वतःके उपायोंद्वारा भगवद्ज्ञान बढ़ानेमें रत रहना। योगीका अर्थ है—षडङ्गयोग-द्वारा आत्मसिद्धि ( जीवन्मुक्ति ) पाना। इसके पश्चात् षडङ्गयोगका विस्तृत वर्णन है—

> प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामश्च धारणम्।
> तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥

संस्कृत-साहित्यमें पतञ्जलिके योगदर्शनके समयसे अष्टाङ्ग-योगका प्रचलन रहा है। यम और नियम योगका भाग रहे हैं। तेजोबिन्दूपनिषद्में पञ्चदशाङ्गयोग मिलता है। इसमें यम और नियम दो योगनाम है। अष्टाङ्गयोगसे यम और नियम निकाल देनेपर षडङ्गयोग रह जाता है। संस्कृतमें ध्यान-बिन्दूपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद् और गोरखपन्थियोंका गोरक्षनाथविरचित योगमार्तण्ड इस बातकी पुष्टि करते हैं। इनमें तर्कयोगके स्थानपर आसनयोगका निरूपण है। केवल अमृतनादोपनिषद् ही एक ऐसा उपनिषद् मिला, जिसके योगके षडङ्ग बृहस्पतिके समान ही हैं। काश्मीर शैवग्रन्थोंमें तर्कको योगाङ्ग माना है। तन्त्रालोक १-१३, मृगेन्द्रतन्त्र योगपाद १-१८ में इसे उत्कृष्ट योगाङ्ग कहा है। काश्मीर शैवग्रन्थ मालिनीविजय भी **'तर्को योगाङ्गमुत्तमम्'** द्वारा तर्कके योगत्वकी पुष्टि करता है। इनके अतिरिक्त स्वायम्भुवपुराणमें इसकी महिमाका वर्णन इस प्रकार है—

> **अनेन लक्षयेद्योगी योगसिद्धिप्रवर्तकम्।**
> **निरोधकं च यद्वस्तु बहुधा संव्यवस्थितम्॥**

द्वीपान्तरमें षडङ्गयोग ही प्रचलित है। बौद्धग्रन्थ 'सं ह्यं कमहायानिकन्'में भी षडङ्गयोग है। वहाँ भी श्लोक वैसे ही हैं जैसे बृहस्पतिके हैं। 'गणपतितत्त्व'में भी इधर-उधर किंचित् परिवर्तनोंके साथ ये ही श्लोक हैं। टीकाओंमें थोड़ा-बहुत भेद है पर वह नगण्य है। कविभाषाके अगस्त्यपर्वमें भी पाँच योगोंका इस प्रकार उल्लेख है—इनुंगाय त य रिं ध्यान, धारण, तर्क, प्रत्याहार, समाधि, योग ....। निस्संदेह यहाँ षडङ्गयोगसे अभिप्राय है। प्राणायामको जोड़ देनेसे यह षडङ्गयोग बन जायगा। बृहस्पतितत्त्वमें यम और नियम 'दशशील' के अन्तर्गत हैं। यम और नियमके लिये 'दशशील' शब्दका प्रयोग तो कहीं नहीं मिला। केवल काश्मीर शैवग्रन्थ स्वच्छन्दतन्त्रमें दशशीलके लिये दशविध धर्मका प्रयोग हुआ है।

तिब्बत अर्थात् भोट देशमें भी षडङ्गयोग मिलता है। तञ्जूरके र्ग्युद् अर्थात् तन्त्रभागमें इसपर अनेक ग्रन्थ और टीकाएँ हैं। उनमेंसे उदाहरणार्थ कुछके शीर्षक यहाँ दिये जाते हैं। श्रीकालचक्रोपदेशयोग षडङ्गतन्त्र पञ्जिकानाम, षडङ्गयोगोपदेश, षडङ्गयोगालोकक्रम, षडङ्गयोगनामटीका आदि आदि। केवल त्रिपिटकमें ही नहीं, उससे बाहर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षडङ्गयोगपर अनेकों ग्रन्थ हैं—यथा षडङ्गयोग वज्रगाथा और उसपर टीका, कालचक्रोत्पन्नका षडङ्गयोग आदि जिनके संस्कृत शब्दोंमें शीर्षक है। कहा जा सकता है कि काश्मीरमें प्रचलित षडङ्गयोग एक ओर हिमालय पारकर भोट ( तिब्बत ) पहुँचा और दूसरी ओर समुद्रकी यात्रा कर द्वीपान्तर। केवल षडङ्गयोग ही नहीं, वरं कई अन्य स्थल भी काश्मीरशैवके अधिक समीप हैं, यथा बृहस्पतितत्त्वका श्लोक ७ से १० तकका सदृशस्थल काश्मीरविरचित नेत्रतन्त्रके दूसरे पटलके २० से २९ श्लोकतक है। विचारकी परम्परा ही नहीं, वरं बृहस्पतिका ७ वें श्लोकका पूर्वार्ध नेत्रतन्त्र २-२० का उत्तरार्ध है—'**अप्रमेयमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम्।**' दस नाड़ियोंकी गणना करते समय एक नाड़ीका नाम 'यशा' है। सामान्यरूपसे यशस्विनी प्रचलित हैं। स्वच्छन्दतन्त्र ७। १५-१६ में 'यशा' पाठान्तर है। श्लोक २९ से ३२ तक धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यके फल इस प्रकार हैं—

**स्वर्गं धर्मेण गमनं ज्ञानेन मोक्षपदं समासाद्य,**
**वैराग्यात्प्रकृतौ लीनः ऐश्वर्येणाप्रतिहतः।**

मृगेन्द्रतन्त्र १। १०-२९ पर श्रीनारायणकण्ठकी टीकामें भी इसीको इन शब्दोंमें रक्खा गया है—

**धर्मात्स्वर्गः, ज्ञानान्मुक्तिः, वैराग्यात्प्रकृतिलयः। ऐश्वर्यादविघातः।**

इसी प्रकार ईश्वरके रूप श्रीकण्ठसे ज्ञानकी प्राप्ति क्रमशः मनुष्योंको हुई कि विचारधारा भी स्वच्छन्दतन्त्रमें कुछ अधिक विस्तारसे की गयी है। काश्मीरके प्रसिद्ध दार्शनिक टीकाकार अभिनवगुप्त भी इसकी पुष्टि इस प्रकार करते हैं कि मानवको आध्यात्मिक ज्ञानकी प्राप्ति श्रीकण्ठसे हुई जो एक बार कैलास पर्वतपर घूमते-घूमते शैवागमोंके लोपसे अज्ञानान्धकारमें डूबे मानवकी आध्यात्मिक शून्यताकी दशा देखकर द्रवित हो उठे थे। समाधियोगका वर्णन करते समय 'चतुर्कल्पना' शब्द आता है। इन चतुर्कल्पनाओंका मृगेन्द्रतन्त्र १। २-१३ पर टीका करते हुए श्रीनारायणकण्ठने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—प्रमेय, प्रमिति, प्रमाण और प्रमातृ। इस प्रकारसे अनेक स्थलोंपर काश्मीर शैवग्रन्थोंकी सहायता मिलती है।

योग, यम और नियमोंकी व्याख्या करनेके पश्चात् जाग्रपद और तुर्यपदके मिलनेसे सप्ताङ्ग, सप्ताग्नि और सप्तामृत उत्पन्न होते हैं। सप्ताङ्ग, सप्ताग्नि और सप्तामृत क्रमशः इस प्रकार हैं—

धरणी च अवेत्तोयं तेजस्तथा च मारुतः।
आकाशो बुद्धिका मनः सप्ताङ्गं तु श्रृणूच्यते ॥ ६२॥
घ्राता च रसयिता च द्रष्टा स्प्रष्टा तु श्रोता च।
मन्ता बोद्धा तथा श्रृणु, इति सप्ताग्निः प्रोच्यते ॥ ६३॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धश्च कथ्यते।
संकल्पो बोद्धव्यं तथा सप्तामृतं निगद्यते ॥ ६४॥

ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं—

| सप्ताङ्ग | सप्ताग्नि | सप्तामृत |
|---|---|---|
| धरणी | घ्राता | गन्ध |
| तोय | रसयिता | रस |
| तेज | द्रष्टा | रूप |
| मारुत | स्प्रष्टा | स्पर्श |
| आकाश | श्रोता | शब्द |
| बुद्धि | बोद्धा | बोद्धव्य |
| मन | मन्ता | संकल्प |

यहाँ सप्तामृत सात वस्तुएँ हैं। सप्ताङ्ग उनके आधार हैं और सप्ताग्नि उनका अनुभव करनेवाले। काश्मीर-मालामें प्रकाशित लौगाक्षिगृह्यसूत्र ४६ ( भाग २ पृ० १५० ) पर देवपालके भाष्यमें वैश्वानर अग्निकी सप्तजिह्वाएँ गिनायी गयी हैं—हमारे ग्रन्थमें सप्ताग्नियोंका उल्लेख है अर्थात् भोक्ता हैं जब कि लौगाक्षिमें भोक्ताके साधनों ( करण ) का वर्णन है—

**चक्षुर्नासा च जिह्वा च त्वक् श्रोत्रं चैव पञ्चमम्।**
**मनो बुद्धिश्च सप्तैता जिह्वा वैश्वानरार्चिषः॥**

इसके पश्चात् सप्त समिधाओंका वर्णन है। ये सप्त-समिधाएँ सप्तजिह्वाओंके लिये हैं।

**घ्रेयं पेयं च दृश्यं च स्पृश्यं श्रोतव्यमेव च।**
**मन्तव्यमथ बोद्धव्यं ताः सप्त समिधो मताः॥**

इन सप्तसमिधाओंकी बृहस्पतिके सप्ताङ्गोंसे तुलना की जा सकती है। जिस प्रकार सप्ताङ्ग और सप्ताग्निका उपभुक्त वस्तु और उपभोक्ताका सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध सप्तसमिधाओं और सप्तजिह्वाओंका है। सप्तसमिधाएँ इन्धन हैं जिसका सप्तजिह्वाएँ उपभोग करती हैं अर्थात् सप्तजिह्वाएँ उपभोक्ता हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोपनिषद् ४ । ८ और ४ । ९ में भी इसी प्रकारका स्थल है । परंतु वहाँ संख्याका प्रतिबन्ध नहीं है । सामान्यरूपसे स्थितिका निरूपण है । उनका विशेष वर्गीकरण अथवा नामकरण नहीं किया गया है । संस्कृतमें सप्ताङ्ग शब्द अनेक उपनिषदोंमें मिलता है—यथा नृसिंहोत्तरोपनिषद्, रामोत्तरोपनिषद्, वरदोत्तोतरोपनिषद् आदि । परंतु यहाँ सप्ताङ्ग नहीं गिनाये गये हैं । अड्यारमें प्रकाशित वैष्णवोपनिषद्-संग्रहके नृसिंहतापिन्युपनिषद् ( पृ० १०६ ) के प्रणवपादनिरूपणकी टीकामें सप्ताङ्ग पञ्चज्ञानकर्मेन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण हैं । सप्ताग्नि और सप्तामृत शब्द संस्कृतके कोषोंमें नहीं हैं । उपनिषदोंके कोषमें भी नहीं मिले । कविभाषाके कोषमें सप्ताग्नि सप्तभुवन नामक कवि ग्रन्थसे उद्धृत है परंतु वहाँ भी इन्हें गिनाया नहीं गया । केवल काश्मीरके लौगाक्षिगृह्यसूत्रका स्थल ही अभीतक उपलब्ध समीपतम स्थल है । इस प्रकार बृहस्पतितत्त्वमें काश्मीर शैवग्रन्थोंकी यत्र-तत्र झलक दिखायी पड़ती है । सांख्य और योग काश्मीरशैवमें भी सम्मिलित हैं । परंतु काश्मीर शैवकी विशेषता उसके 'त्रिक'में है । बृहस्पतितत्त्व सामान्यरूपसे मुख्य-मुख्य तत्त्वोंकी व्याख्या करता चला गया है । किसी विशेष शैवसिद्धान्तका निरूपण करना उसका उद्देश्य नहीं था । यत्र-तत्र दर्शनसम्बन्धी शंकाओंपर विचार करते-करते ज्ञानद्वारा शिवपदकी प्राप्ति अथवा योगद्वारा 'योगीश्वरत्व' एवं जीवन्मुक्ति पाना उसका ध्येय एवं लक्ष्य है । योगद्वारा प्राप्त होनेवाले अष्टैश्वर्योंका आठ श्लोकोंमें सविस्तर वर्णन है । इनका इतना विस्तृत वर्णन काश्मीर शैवमें अप्राप्य है । स्वच्छन्दतन्त्रपर टीका करते हुए क्षेमराजने संक्षेपसे इन अष्टैश्वर्योंका अर्थ किया है । पुराणों तथा सांख्यमें भी इनका इतना लम्बा निरूपण करनेकी आवश्यकता नहीं समझी गयी ।

जब चीनी यात्री इत्सिंग जावामें अध्ययन कर सकते हैं, भोट देशके विद्वानोंका पढ़नेके लिये द्वीपान्तरमें जाना भोटके इतिहासोंमें वर्णित है तो आश्चर्य नहीं यदि काश्मीर शैवका द्वीपान्तरके शैवपर कुछ प्रभाव पड़ा हो ।

योगसे उत्पन्न होनेवाले 'उपसर्ग' पतञ्जलिके योगसूत्रोंतक ही सीमित नहीं हैं । चीनमें भी योगोत्पन्न उपसर्गोंपर एक पूरी पुस्तक है । किङ् शिङ्द्वारा लिखित इस पुस्तकका नाम है—'छे छन् निङ् पी याओ' बृहस्पतितत्त्व इन उपसर्गोंका तीन विभागोंमें वर्गीकरण करता है । सत्त्वके कारण, रजके कारण और तमके कारण उत्पन्न उपसर्ग । योगसूत्रमें केवल उपसर्ग गिना दिये गये हैं—व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमाद-आलस्य-अविरतिभ्रान्ति-दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।

लिङ्गपुराणके नवम अध्यायमें दस उपसर्गोंका सविस्तर वर्णन है—

> आलस्यं प्रथमं पश्चाद् व्याधिपीडा प्रजायते ।
> प्रमादः संशयस्थाने चित्तस्येहा नव स्थितिः ॥
> अश्रद्धादर्शनं भ्रान्तिर्दुःखं च त्रिविधं ततः ।
> दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योगता ॥
> दशधाभिप्रजायन्ते मुनेर्योगान्तरायकाः ।
> उपसर्गाः प्रवर्तन्ते सर्वे तेऽसिद्धिसूचकाः ॥

ये उपसर्ग बृहस्पतितत्त्वके उपसर्गोंसे पर्याप्त भिन्न हैं । इन उपसर्गोंसे छुटकारा पानेके उपाय बताकर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है । ज्ञान अथवा योगद्वारा अष्टैश्वर्य और मोक्ष, जीवन्मुक्ति अथवा आत्मसिद्धिके रहस्यको पाना ही उसका लक्ष्य है । चेतन और अचेतनके सम्मिश्रणसे आत्मा अचेतन, जड, मायामय शरीरमें फँसी रहती है । कर्मोंका बन्धन उसे पुनर्जन्मके चक्करमें घुमाता रहता है । योगद्वारा अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके ईश्वरका ध्यान लगाकर भगवत्कृपा और भगवद्भक्तिद्वारा मानव सत्यतत्त्वको पहचानकर जीवनमें ही मुक्ति पा लेता है । उसे शरीरके ज्ञानका अनुभव नहीं होता और मृत्युके पश्चात् भी उसे शरीरका ( अर्थात् पुनर्जन्म ) का अनुभव नहीं करना पड़ता । मोक्षप्राप्तिमें ज्ञानका और उसके पश्चात् योगसाधनाके महत्त्वका बृहस्पति अन्तमें प्रतिपादन करता है ।

बृहस्पतितत्त्व द्वीपान्तरके शैवधर्मके तत्त्वोंका निरूपण करनेके साथ-साथ सामान्य दार्शनिक प्रश्नोंका समाधान रोचकविधिसे दृष्टान्त और उपमाओंद्वारा करता चला जाता है । विचारकी दृष्टिसे भी सुसम्बद्ध और संगठित है । यह कविभाषाकी विचारको सहजरूपमें प्रकट करनेकी क्षमताका सुन्दर निदर्शन है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मधुर

बड़ी विलक्षण बात है। श्रीराधारानीको अपनेमें कोई रूप, गुण, शील, सौन्दर्य तो दीखता ही नहीं, सदा दोष ही दिखायी देते हैं। पर प्रियतम श्यामसुन्दरका प्रेम उनके प्रति इतना अधिक है और वह अनवरत उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है कि इन्हें अपनी ओर देखकर बड़ा संकोच होता है। वे श्यामसुन्दरके प्रेमका तिरस्कार भी नहीं कर सकतीं और अपनेमें दोष देखनेसे भी विरत नहीं होतीं। अतः एक दिन वे प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके चरणोंमें बैठकर कातर-प्रार्थना करती हैं—

**मैं थी पहले मलिना, दीना,**
**हीना अब भी मैं हूँ वैसी।**
**बाहर-भीतर मेरी कुरूपता**
**छायी जैसी की तैसी॥**
**मुझमें सुशीलता, सुन्दरता,**
**सद्‌गुणता, शुचिता कब कैसी।**
**तुम जान रहे हो अन्तरकी,**
**अन्तर्यामी! मैं हूँ जैसी॥**

प्रियतम श्यामसुन्दर! मैं पहले जिस प्रकारकी मलिना (सौन्दर्य-माधुर्यसे हीन), दीना (गुण-शीलसे हीन) और हीना (प्रेम-धनसे हीन) थी, वैसी ही अब भी हूँ। (मुझमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।) मेरी बाहर-भीतरकी कुरूपता मुझपर ज्यों-की-त्यों छायी हुई है। मुझमें कब कैसी सुशीलता थी? मैं कब सुन्दर थी? कब मुझमें कैसे सद्‌गुण थे? मुझमें कब कैसी पवित्रता थी? हे अन्तर्यामी! मैं जैसी जो कुछ हूँ, तुम मेरे अन्तरकी सब जान ही रहे हो।

**मैं यही चाहती रहती हूँ**
**तुमसे न मिलूँ बस, भूल कभी।**
**दुख देनेवाली है मेरी**
**बाह्याभ्यन्तरकी क्रिया सभी॥**
**तुम सुन्दर सहज सुहृद् हो संतत**
**सदय हृदय सब काल अभी।**
**सद्‌गुण पूरित दृग देख रहे**
**सर्वत्र दिव्य गुणराशि सभी॥**

प्रियतम! मैं तो सदा यही चाहती रहती हूँ कि मैं तुमसे कभी भूलकर भी न मिलूँ; क्योंकि मेरी बाहर-भीतरकी सभी क्रियाएँ दुःख देनेवाली ही हुआ करती हैं। तुम तन-मनसे सुन्दर हो, सहज सुहृद् हो, निरन्तर दयापूर्ण हृदय हो, सब कालमें और अभी भी। इसीलिये तुम्हारे सद्‌गुणपूर्ण नेत्र मुझमें सर्वत्र गुणराशि ही देखते रहते हैं।

**तुम सहज प्रेममय हो स्वभाव-**
**वश करते हो बस, प्रेम सदा।**
**तुम मेरी त्रुटियोंको-दोषोंको**
**अतः देख पाते न कदा॥**
**है नहीं दीखता तुम्हें कभी**
**जो है मुझपर अघभार लदा।**
**देते देते थकते न कभी हो**
**दोष दीखते हैं न तदा॥**

तुम सहज ही प्रेमस्वरूप हो, इसलिये बस, स्वभावसे ही सदा प्रेम करते हो (किसी गुणरूपकी अपेक्षासे नहीं)। अतएव तुम मेरी त्रुटियोंको—मेरे दोषोंको कभी देख ही नहीं पाते हो। मुझपर जो (प्रेमहीनताका) पाप लदा है, वह तुम्हें कभी दीखता ही नहीं। तुम (अपना प्यार) देते-देते कभी थकते ही नहीं—अघाते ही नहीं और देते समय तुम्हें दोष दीखते नहीं।

**तुम नहीं मानते हो, मैं हूँ**
**निरुपाय, करूँ क्या मैं अबला?**
**तुम जो चाहो सो करो, तुम्हारी**
**अमित शक्ति-मति है प्रबला॥**
**पर मेरी है विनीत विनती**
**यह एक इसे कर दो सफला।**
**मैं रहूँ सदा गुण-मान-शून्य**
**कोई निजकी जागे न कला॥**

(इतना दोषपूर्ण तथा प्रेमशून्य होनेपर भी) तुम (प्रेम दिये बिना) मानते ही नहीं। तब मैं अबला क्या करूँ, मैं निरुपाय हूँ। (मेरे पास कोई साधन नहीं जिसके द्वारा मैं तुम्हें रोक सकूँ।) अतः तुम जो चाहो सो करो, तुम्हारी अपरिमित बुद्धि है, अपरिमित शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और वे बहुत ही बलवती हैं। परंतु तुमसे मेरी यह एक विनीत विनती है, इसे तुम पूरी कर दो। वह यह है कि मैं सदा गुणोंसे शून्य रहूँ और कभी मेरे अंदर अभिमान न उपजे तथा युद्धमें मेरी अपनी किसी भी 'कला' का कभी कोई उदय ही न हो।

तुम करो कराओ जो चाहो,
मैं बनी रहूँ पुतली करकी।
जीना, मरना, हँसना, रोना,
सब ही हो लीला नटवरकी॥
जागे न कदापि 'अहं' मुझमें
सुधि हो न भयंकर-सुन्दरकी।
मैं रहूँ नाचती इच्छासे
अपने जीवन-धन प्रियवरकी॥

मैं तुम्हारे हाथकी पुतली बनी रहूँ और तुम जो चाहो सो करते-कराते रहो। मेरा जीना-मरना, हँसना-रोना (मेरा न हो) सभी तुम नटवरकी ही लीला हो। मेरे अंदर कभी 'अहं' का उदय न हो और मुझे कभी भयंकर-सुन्दरका स्मरण ही न रहे। मैं तो (बस सदा) तुम अपने जीवनधन प्रियतमके इच्छानुसार नाचती ही रहूँ।

परम प्रेमस्वरूपा महाभावरूपिणी साक्षात् ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजीके ये प्रेमोद्गार इस बातको बतलाते हैं कि प्रेममें कैसा दिव्य तथा सम्पूर्ण समर्पण, कितना विलक्षण दैन्य, कितना त्याग और कितनी विनीत भावना होनी चाहिये।

# 'कल्याण'की परिभाषा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

एक सज्जनने किसी कारणवश कल्याणकी परिभाषा पूछी है। अमरसिंहने स्वः, श्रेय, शिव, कल्याण, मङ्गल, भद्र एवं शुभ शब्दोंको एकार्थवाची—समानार्थक—पर्यायवाची (Synonym) माना है। गीता (२।७) में अर्जुनने इसी 'कल्याण'के उपदेश करनेकी प्रार्थना की और भगवान्‌ने उस निःश्रेयस्कर ज्ञानका उपदेश किया—

**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**
**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।**
(२।७)

**तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।**
(३।२)

गीता सर्वोपनिषद् एवं शास्त्रोंकी सार[1] है, अतः ये प्रश्नोत्तर उपनिषद्, इतिहास, पुराणादिके भी हैं। यहाँ उनपर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है।

कठोपनिषद् (१।२।२) में विवेकीके 'श्रेय' (कल्याण) तथा मूढ पुरुषके 'प्रेय' ग्रहण करनेकी बात आयी है—

**श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते**
**प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।**

वैशेषिक दर्शन (१।४) में तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस कहा है। वैशेषिक दर्शन (१।२)के भाष्यमें प्रशस्तपाद लिखते हैं—

**तत्त्वज्ञानं निःश्रेयसहेतुः, तच्चेश्वरचोदनाभिव्यक्ताद्धर्मादेव।**

इसकी व्याख्यामें उदयनाचार्य कहते हैं—

**ईश्वरचोदना वेदः तत्प्रतिपादिताद्धर्मात् निःश्रेयसम् इति भाष्यार्थम्।**

इसकी व्याख्या करते हुए ढुंढीराज शास्त्री लिखते हैं—

**श्रुतिस्मृतिपुराणोपदिष्टयोगविधिना दीर्घकालादर-नैरन्तर्यसेविताद्धर्मादेव तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते तस्मान्मुक्तिर्भवति।**

अर्थात् वेद-पुराण-धर्मशास्त्रोक्त धर्मके अनुष्ठानसे तत्त्व-ज्ञान और उससे मोक्ष होता है। गीताके—

**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।**
**ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥**
(४।३९)

१. 'सर्वशास्त्रमयी गीता।' 'सर्वोपनिषदो गावो ··· दुग्धं गीतामृतं महत्।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः ................।'

'धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।'

(२।३१)

—आदिका भी यही भाव है। न्यायदर्शनाचार्य गौतमका भी यही कथन है—

तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।

(१।१)

अग्निपुराणके ३८२ वें अध्यायमें सबका सारांश इस प्रकार निरूपित है—

भोगेष्वसक्तिः सततं तथैवात्मावलोकनम्।
श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलोद्गीतमेव हि॥
सर्वत्र समदर्शित्वं निर्ममत्वमसङ्गता।
श्रेयः परं मनुष्याणां गीतं पञ्चशिखेन हि॥
आध्यात्मिकादिदुःखानामाद्यन्तादिप्रतिक्रिया।
श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतमेव हि॥
आगर्भजन्मबाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनम्।
श्रेयः परं मनुष्याणां गङ्गाविष्णुप्रणीतकम्॥
अभिन्नयोर्भेदकरः प्रत्ययो यः परात्मनः।
तच्छान्तिपरमं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहृतम्॥
हानिः सर्वविधित्सानामात्मनः सुखहैतुकी।
श्रेयः परं मनुष्याणां देवतोद्गीतमीरितम्॥
कामत्यागात् तु विज्ञानं सुखं ब्रह्म परं पदम्।
कामिनां न हि विज्ञानं सनकोद्गीतमेव तत्॥

(अग्निपुराण ३८२। ३—१०)

इसमें कपिल, पञ्चशिख, देवल, जनक, ब्रह्मा, विष्णु, सनत्कुमार, गंगा आदिके मतसे भोगोंमें अनासक्ति, कामनात्याग एवं आत्मावलोकन, समदर्शिता, निर्ममत्व, अभेदज्ञान, वैराग्यादिको ही परम श्रेय कहा गया है। यही बात भागवतके भी—

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम्।
सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम्॥

(४।२४।७५)

श्रेयसामिह सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः।
किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः॥

(४।३१।१५)

—आदि श्लोकोंमें भी कही गयी है। महाभारत आदिमें भी इस 'श्रेय'के निरूपक कई अध्याय हैं। शान्तिपर्वके २८७ वें अध्यायमें युधिष्ठिरने भीष्मपितामहसे यही प्रश्न ही किया है कि शास्त्रके तत्त्वको न जाननेवाले व्यक्तिके लिये 'श्रेय' पदार्थका वर्णन कीजिये। इसपर भीष्मके उत्तरके सारभूत श्लोक ये हैं—

गुरुपूजा च सततं वृद्धानां पर्युपासनम्।
श्रवणं चैव शास्त्राणां कूटस्थं श्रेय उच्यते॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्भिश्च समुदाचारः श्रेय एतदसंशयम्॥
मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।
वाक् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम्॥
सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत्सत्यं ब्रवीम्यहम्॥
अहंकारस्य च त्यागः प्रमादस्य च निग्रहः।
संतोषश्चैकचर्या च कूटस्थं श्रेय उच्यते॥
धर्मेण वेदाध्ययनं वेदान्तानां तथैव च।
ज्ञानार्थानां च जिज्ञासा श्रेय एतदसंशयम्॥
नक्तंचर्या दिवास्वप्नमालस्यं मैथुनं मदम्।
अतियोगमयोगं च श्रेयसोऽर्थी परित्यजेत्॥

(महा० शा० प० २८७। २, १७—२४)

तदनुसार गुरुजनोंकी पूजा, वृद्ध पुरुषोंकी परिचर्या, शास्त्रोंका श्रवण, पापकर्मोंसे पराङ्मुखता, सत्संग, सदाचारका पालन, सबसे मधुर एवं सच्चा व्यवहार, मधुर भाषण, परहितरूपी सत्यका कथन, अहंकारका त्याग, प्रमादका संयम एवं वेद-वेदान्तका स्वाध्याय तथा ज्ञानप्राप्तिका प्रयत्न—ये ही श्रेय हैं। इन्हींका नाम 'कल्याण' है। कल्याणकामीको रातमें घूमना, दिनमें सोना, आलस्य, चुगली, अहंकार, अत्यधिक श्रम या एकदम निष्क्रियताका सर्वथा परित्याग करना चाहिये। इसके अगले अध्यायमें 'मोक्ष' एवं उसके साधनोंको 'श्रेय' कहा है। २९० वें अध्यायमें पराशरने जनकके प्रति धर्महीको परम श्रेयस्कर बतलाया है—

धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परस्य च।
तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः॥

(शा० २९०। ६)

'यत्ते रूपं कल्याणतमम्' (ईशावास्य १६, बृहदारण्य० ५। १५। ८) आदि मन्त्रोंके अनुसार तथा 'शिव' वाचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनेसे 'कल्याण' भगवन्नामवाचक भी है। भागवतमें भी कहा है—

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल।
( १० । १० । ३६ )

शंकर, रामानुज, निम्बार्क, रामानन्द आदि भगवान्‌को 'निखिल कल्याण गुणगणमय' कहते हैं—

'स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।'
'कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।'
( देवीभा० ५ । ११ )

'कल्याणी' देवीका नाम आया है।

यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः॥
( वाल्मीकि अयोध्या० २ । ५४ । ३० )

'कल्याण'का अर्थ लोगोंने 'पुण्य' 'शुभ' 'मङ्गल' किया है। स्वामी दयानन्दजीने 'यजुर्वेद' ( २६ । २ ) में 'कल्याणी वाक्'का अर्थ वेद किया है।

इस तरह संक्षेपमें 'कल्याण'की व्याख्या हुई। पाठक इसे विस्तारसे समझकर अपना 'कल्याण'करनेका प्रयत्न करेंगे, ऐसी शुभाशा है।

# मेरी अकृतज्ञता

( लेखक—श्रीशशिशेखरजी नागर, एम्० ए० )

मुझे न जाने क्या हो गया था। सारा शहर जब दीपोंके प्रकाशसे जगमगा रहा था। मैं अँधेरी कोठरीमें बैठा था। जनकोलाहलसे मैं दूर भागता था। लोग समझते थे कि मैं बड़ा एकान्तसेवी साधक हूँ। जब लोग खुशीसे उछल-मचलकर पटाखे चला रहे थे, मैं बैठा आँसू बहा रहा था। न जाने दूसरोंको खुश देखकर मैं क्यों उदास हो जाता था। मुझे ऐसा लगता—मानो वे सब विचारहीन मूर्ख थे और मैं संसारभरका महान् तत्त्ववेत्ता।

मेरी समझमें इसका एक कारण था। एम्० ए० पास करनेपर भी मुझे मेरे योग्य नौकरी नहीं मिली। मैं दो सौ रुपये वेतन पाकर तथा बढ़िया सूट पहनकर भी मनसे किसी दीन चिथड़ोंमें लिपटे भिखमंगेसे अधिक अच्छा अपनेको नहीं समझता था। मेरा भी कोई जीवन है! भगवान्‌में मेरा विश्वास था। उसने मेरे लिये क्या किया। अन्यायी कहींका! एम्० ए० पास कराके भी भाड़ झुकवा रहा है। ऐसे विचारोंने मेरे मनमें संग्राम छेड़ दिया था।

दीवालीकी बात है। पास-पड़ोसवाले सब दीवाली देखने चले गये। कमरा मुझे काटने लगा। अठन्नी जेबमें डालकर घरसे बाहर निकल पड़ा। पटाखे चलाना मैं अविवेकका चिह्न मानता था। इसलिये पाटनकर बाजार न जाकर नई सड़ककी ओर चल पड़ा। दीवालीके दिन भी इस सड़कपर अंधकार मिल जायगा। जब मैं छाया टॉकीजकी ओर बढ़ा, मैंने एक भिखारीको धर्मशालाके पास चबूतरेपर बैठे देखा। मैं भी उसके पास जा खड़ा हुआ। सिर्फ यह देखनेके लिये कि वह आज क्या महसूस कर रहा है।

पाससे देखा वह मुसकरा रहा था। लोगोंकी उछल-कूद तथा शरारतें देखकर वह तन्मय हो रहा था। पटाखोंकी लड़ियाँ जब किसी बंद कनस्तर या घड़ेमें चलती थी, वह तालियाँ बजाने लगता था।

मैंने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए पूछा—

'बाबा! कहाँके रहनेवाले हो?'

'माईसोर'

'इधर कितने दिनसे हो?'

'डेढ़ महीना हुआ इधर'

'अकेले हो?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बीबी उधर अंधी' वह हिंदी बोलनेकी कोशिश कर रहा था ।

'कहाँ ?'

'हैदराबाद ।'

'दीवाली देखी तुमने ?'

'मस्त धड़ाका——बहुत मजा ।'

'रोटी रोज मिलती है ?' मैंने उसके मर्मको छूनेका प्रयत्न किया ।

'कभी भूखा नई'

'दिनभर माँगना पड़ता है ?'

'नई' दो रोटी बस'

'आज खाई ?'

'नई'

वह इसलिये भूखा रहा क्योंकि आज दीवाली है । बड़ी अजीब बात है । सामने हलवाईकी दूकानपर भीड़ लगी थी । मैंने छा——

'मिठाई खाओगे ?'

'जरूर' उसने निःसंकोचभावसे उत्तर दिया । अठन्नी निकालकर मैंने उसके हाथपर रख दी । फिर सोचा कि यह बेचारा भिखारी पैसे देकर भी भीड़में दुतकारा जायगा, मिठाई लाकर मैंने उसके हाथमें दे दी । वह उसपर टूट पड़ा । प्रश्न करते हुए मुझें संकोच तो हो रहा था; लेकिन मैंने पूछ ही लिया——'तुम ईश्वरको मानते हो ?' गुलाबजामुन खाते हुए भरे गलेसे बोला——

'हाँ,——क्यों ?'

'वह तुम्हें रोटीतक नहीं देता और तुम उसे………'

मैंने तर्क उपस्थित किया । बालूशाहीका आधा टूकड़ा उसके हाथमें था । वह जोरसे हँसा ।

'कैसा शक करता अबी ?' मुझे उसकी हँसी बुरी लगी ।

'रोटी क्या बोलना, मिठाई देता अबी तो' आधी बालूशाहीको मुँहमें रखते हुए बोला । मैं निरुत्तर-सा हो गया ।

'मिठाई तो मैंने खिलायी है' तर्क करते हुए मैंने कहा ।

'तुम कूँ कुन भेजा जी इधर ?'

'अपने आप ही आया हूँ'

'आम तो माँगा नई'

'मैं तुम्हें न खिलाता तो'

'कुन किसको खिलाता जी' अपना टाटका बंडल उठाकर चल दिया वह ।

कितना अकृतज्ञ था वह । कितना अकृतज्ञ था मैं ईश्वरके प्रति । मेरी और उसकी अकृतज्ञतामें क्या अन्तर था । विश्वास यदि दीया है तो कृतज्ञता उसका प्रकाश ।

## प्रियतम ! किसी भी रूपमें आओ !

प्रियतम ! बनकर आओ चाहे झपक झपटते झंझावात ।
घोर घोष करते चाहे बन आओ प्रलयंकर पवि-पात ॥
मन्द-सुगन्ध-मलय-मारुत बन आओ चाहे शुचि सुखखान ।
सौम्य सुधा बरसाते चाहे आओ बन सुधांशु भगवान ॥
देख भयंकर-सुन्दर रूप तुम्हारे विविध विश्व-आधार ।
लूँ तुरंत पहचान, न भूलूँ, किसी वेषमें तुम्हें निहार ॥
नित्य नवीन रूप धर नटवर ! लीला तुम करते स्वच्छन्द ।
पाता रहूँ प्रणत-पद-रज मैं नत-सिर पल-पल लीलानन्द ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# 'हारेको हरिनाम'

[ कहानी ]

( लेखक—श्री 'चक्र' )

नदी घड़ियालोंसे भरी थी, आकाश मच्छरोंसे, तटीय प्रदेश लम्बी घासोंसे, जिनमें विषैले सर्पोंकी गणना नहीं और वनमें हाथी, शेर, तेंदुए, चीते। वृक्षोंपर भी निरापद शरण लेना सम्भव नहीं था। वहाँ भी सर्प और तेंदुए स्वच्छन्द छलाँग ले सकते थे।

उसने सोचा भी नहीं था कि वर्माके इस प्रदेशमें उसे रात्रि व्यतीत करनी पड़ेगी। सूर्यास्तके पूर्व ही वे लौट जायँगे, ऐसा उनका विचार था। लेकिन सूर्य पश्चिममें पहुँच चुके और अब भी पता नहीं है कि वह स्वयं कहाँ है। अपने शिविरसे कितनी दूर है।

किसी भी मानचित्रमें इधरकी नदीके मोड़ों एवं उसकी धाराओंका स्पष्ट अङ्कन नहीं है। इस दलदलसे पूर्ण प्रदेशमें आनेका साहस कोई नहीं करता। जब प्रातः-काल वह चला था, सबने रोका था उसे। एक अज्ञात प्रदेशमें केवल अनुमानके भरोसे जाना अच्छा नहीं, यह चेतावनी उसे अनेक बार मिली थी; किंतु वह शिकारी कैसा जो इस प्रकार डर जाय।

केवल एक मल्लाह प्रस्तुत हुआ था साथ चलनेको। वह मल्लाह इस ओर एक बार आ चुका था। आया वह भी था दुर्घटनावश ही; किंतु मार्ग उसने देख लिया था। दूसरे लोगोंमें सब हतोत्साह करनेवाले ही थे।

'नदीकी कई धाराएँ हैं। मुख्य धारासे चलें तो दोपहरतक समुद्रके समीप पहुँच जायँगे और जब समुद्रमें ज्वार आयेगा, नौका अपने आप ऊपर बह निकलेगी। हम दोनों संध्यातक यहीं आ जायँगे!' उस मल्लाहने बताया था।

'शिकारके लिये मगर, शेर और दूसरे जानवर सरलतासे मिलेंगे!' यह बात पक्की थी—'नदीकी इस धाराका मानचित्र ठीक बनाया जा सकेगा!' यही बड़ा प्रलोभन था; क्योंकि वह वन-प्रदेशका अधिकारी भी तो है। देशको ठीक मानचित्र देना उसके कर्तव्यमें आता है।

इस ओर उसका पड़ाव आया था सात दिन पूर्व वनका सर्वेक्षण चल रहा है। साथमें डाक्टर है, क दूसरे कर्मचारी हैं और हेलीकोप्टर यान है। दलदली प्रदेशमें सर्वेक्षणका काम आकाशसे ही करना पड़ता है किंतु इधर वन बहुत सघन है। पानीमें भी सर्वत्र ऊँच घास खड़ी है। आकाशसे नदीकी धाराका पता ही न लगता। इन सब कारणोंसे और शिकारके प्रलोभनसे व इतना हठ नहीं करता। मुख्य प्रलोभन था नदीके माग का अङ्कन करनेवाला वह माना जायगा और जब ए मल्लाह मार्गदर्शक है, साहस क्यों न किया जाय।

एकके स्थानपर दो छोटी नौकाएँ पसन्द कीं उसने दोनों नौकाओंमें पीनेका पानी, दोपहरका भोजन, दूर्व तथा अन्य आवश्यक सामान। लेकिन प्रस्थान करने दो-ढाई घंटे बाद ही दोनोंने समझ लिया कि उनके स अनुमान ठीक नहीं हैं। नदीमें बहुत मोड़ थे—अनुमान बारह मोड़। धूपमें तेजी आयी तो शरीरका चमड़ा झु भस्म होने लगा। दोनों नौकाएँ एकमें बाँध दी ग और उन्होंने बारी-बारीसे खेना प्रारम्भ किया।

मच्छरोंका आक्रमण चल रहा था। उनसे बच कठिन था। घड़ियाल मिले—अच्छे बड़े भी मिले; कि मल्लाहने सलाह दी कि 'अभी कारतूस उपयोगमें न ल जायँ। पता नहीं कब कैसी परिस्थिति आ पड़े।' उसे भी अपने मार्गज्ञानपर भरोसा नहीं रह गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे जो कुछ मार्गके विषयमें स्मरण था, वह बहुत धुँधला एवं अपूर्ण था । नदी आगे चलकर दो धाराओंमें विभक्त हो गयी थी और उसे यह पता नहीं था कि उनमें मुख्य धारा कौन-सी है । वह किस धारासे परिचित है ।

'तुम एक धारासे जाओ और मैं दूसरीसे ।' अन्तमें उन्होंने निर्णय किया—'नदीकी दोनों धाराएँ अवश्य आगे मिल गयी होंगी । प्रत्येक दशामें हम तीसरे प्रहर लौट पड़ेंगे और यहाँ आकर दूसरे साथीकी प्रतीक्षा करेंगे !'

दोनों नौकाएँ पृथक्-पृथक् चल पड़ीं । अब न मच्छरोंको भगानेका अवकाश था और न हाथोंको नौका खेनेसे विश्राम मिलना था । नदीसे घासके सड़नेकी गन्ध आ रही थी । ऊँची घासको चीरते ही नौकाको मार्ग बनाना था । साथका भोजन समाप्त हो गया और पानी भी । दोपहर ढलनेके लगभग हैं । प्रत्येक मोड़पर लगता है कि अब आगे दूसरी धारा आ मिलेगी; किंतु मोड़ बीतते ही दूसरा मोड़ दीखने लगता है ।

संयोगसे तटपर सूखी भूमि दृष्टि पड़ी । कुछ फलके वृक्ष भी थे । पके मधुर फलोंने आकृष्ट किया । नौका तटसे बाँध दी एक घासके झुरमुटमें और कूद पड़े । राइफल भूमिमें पटक दी वृक्षपर चढ़ते समय । बड़े स्वादिष्ट फल—भरपेट जमकर खाया । शाखापर बैठकर शरीरको विश्राम दिया; किंतु जब उतरनेकी इच्छा की— हे भगवान् !'

नीचे राइफलकी नालपर सूर्यकी किरणें चमक रही और एक कछारपर शेर उसपर पंजे रखकर गुर्रा रहा । वह राइफलके सर्वेक्षणमें लगा था । वृक्षपर भी ई है, इस ओर उसका ध्यान नहीं था ।

'अब क्या हो ?' वृक्षपर शिकारीका रक्त जमा जा था । उसकी पतलूनकी दोनों जेबोंमें रिवाल्वर हैं; तु रिवाल्वरकी गोली वनराजको क्रुद्ध करनेके अतिरिक्त कर भी क्या सकती है ।

विपत्ति अकेली नहीं आती । तटकी ओर दृष्टि गयी तो नौका नदारद । नदीका पानी अब पूरे वेगसे नीचे बह रहा था । समुद्रमें सम्भवतः भाटा आ चुका था । नदी उतर रही थी । पानीमें प्रवाह आनेके कारण नौका नीचे बह गयी थी । घास उसे रोकनेमें समर्थ नहीं हुई । अपनी असहायताका अनुभव करके उसके मुखसे चीख निकल गयी ।

कभी-कभी अनचाही बात भी सहायक हो जाती है । शेर गुर्राया चीख सुनकर । उसने सिर उठाकर ऊपर देखा और उठ खड़ा हुआ । पता नहीं क्या सोचा उसने, किंतु धीर पदोंसे वनमें चला गया । शिकारीकी जान-में-जान आयी । वह उतरा वृक्षसे । नदीके किनारे-किनारे नौका ढूँढ़ने चलनेके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था उसके पास । एक आशा थी—'कदाचित् कहीं घासमें या मोड़पर वह अटक-उलझ जाय ।'

कितनी दूर गया वह, स्वयं उसे पता नहीं । दिन छिपनेको आ गया । नौकाका पता न मिलना था, न मिला । अब अन्धकार होनेसे पहिले उसे कोई ठीक स्थान रात्रि व्यतीत करनेको ढूँढ़ लेना चाहिये । समुद्रमें ज्वार आयेगा तब नौका स्वतः ऊपर लौट आयेगी—यही आशा थी ।

उसने लकड़ियाँ इकट्ठी कीं । अन्धकार होनेसे पूर्व अग्नि जला ली । अब अग्निके सहारे रात्रि-व्यतीत कर सकता है वह । लेकिन सूर्यास्तके साथ बादल छा गये । अन्धकार ऐसा कि अपना हाथ भी दिखायी न दे । अग्निमें बार-बार लकड़ियाँ डालता रहा । यही एक आश्रय था प्राणरक्षाका । उसे लगा कि लकड़ियाँ थोड़ी हैं । आधी-रात भी अग्नि जल नहीं सकेगी । अग्निके प्रकाशमें इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी तो नदीके समीप एक बड़ा काला कुन्दा दीख पड़ा । वह गया और घसीटते हुए कुन्देको ले ही आता—पर कुन्दा उसके समीप पहुँचते ही पानीमें सरक गया । 'घड़ियाल !' काँप गया उसका शरीर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि स्वतः बुझनेवाली थी, वर्षा ऊपरसे प्रारम्भ हो गयी। राइफलका सहारा लिये वह वृक्षके तनेके समीप खड़ा हो गया। अब अन्धकारमें राइफल भी व्यर्थ थी। दूसरी ओर नदीका पानी बढ़ रहा था। वह जहाँ खड़ा था, वह भूमि धीरे-धीरे जलके भीतर होने लगी।

वृक्षपर कोई कूदा—कोई भारी बनपशु और नदीमें भारी ध्वनि हुई। तेंदुआ और घड़ियाल—मृत्युने अब झपट्टा मार दिया था उसके ऊपर। एक कड़ा झटका पीठपर लगा और राइफल हाथसे छूटकर पानीमें छपाक करती गिरी।

'हे भगवान्!' प्राण जाते समय प्राणीके कण्ठसे जो आर्तनाद फूटता है—बिना अनुभवके कोई उस स्वर-को समझ नहीं सकता। कोई आशा, कोई युक्ति, कोई बल जब नहीं रह जाता और मृत्युका कराल खुला जबड़ा सम्मुख दिखायी पड़ता है—अहोभाग्य उसका जो उस समय भी उस परम सहायकको पुकार सके! उस सर्व-समर्थको पुकारकर तो कोई कभी निराश नहीं हुआ है!

सहसा आकाशकी घटामेंसे चन्द्रमाकी किरणें निकल पड़ीं। उसने उस ज्योत्स्नाधौत जलमें जो कुछ देखा—अद्भुत, रोमाञ्चकारी और चकित कर देनेवाला दृश्य था वह। उसके ठीक पीछे तेंदुआ कूदा था और अब उससे घड़ियालका युद्ध चल रहा था। सम्भवतः घड़ियालने जब स्वयं उसका पैर पकड़ना चाहा, तेंदुआ वृक्षपरसे कूदा। घड़ियालके मुखमें तेंदुएका पैर आ गया था। घड़ियाल उसे खींच रहा था और एक पैर किसी जलमें डूबी वृक्षकी जड़में अड़ाये तेंदुआ दूसरे पैरके पंजे घड़ियाल-पर फटकारे जा रहा था। घड़ियाल पूँछ फटकार रहा था, जिससे तेंदुआ उसे मुखपर न मार सके और इस युद्धमें उछलते छींटे समीप खड़े मनुष्यको भिगा रहे थे।

उसने झुककर पानीमेंसे अपनी राइफल उठायी। कण्ठसे फिर निकला—'दयामय प्रभु! और सिर उठाता है तो देखता है कि कोई काली लम्बी वस्तु नीचेसे ऊपर नदीमें ज्वारके वेगमें बहती चली आ रही है। दो क्षणमें स्पष्ट हो गया कि वह उसकी नौका है।

× × ×

'मैं सायंकाल यहाँ पहुँचा था!' मल्लाह ठीक वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था, जहाँसे वे पृथक् हुए थे। 'नदीकी मुख्य धारा वह है, जिससे आप गये थे। किंतु यह शाखा छोटी है। ज्वारने जब मुझे यहाँ पहुँचाया—अँधेरा घिर आया था। किसी प्रकार मैं रस्सी वृक्षमें उलझाकर यहाँ रात्रिमें टिका रहा।'

'मैं सर्वथा असहाय हो चुका था!' अरुणोदयके समय वे मल्लाहसे मिले थे और नावमें साथ चलते हुए बता रहे थे—'नदीके मार्गकी शोध और मेरी रक्षा उसने की जो सदासे असहायकी रक्षा करता आया है। जब मेरा बल थक गया, शस्त्र गिर गया, वह दयाधाम मेरी रक्षा करने आ पहुँचा था!'

## उपदेशके दोहे

कबिरा यह तन जात है, सकै तो राख बहोरि।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोरि॥
आसपास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल।
मंझ महल सौं लै चला, ऐसा काल कराल॥
तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोइ।
पिंड प्रान सौं बँधि रह्यौ, सो अपनो नहिं होइ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

[ गताङ्कसे आगे ]

पीपलकोटीके बाद बदरीनाथ-मार्गकी अपनी तीन दिनोंकी पदयात्रामें हमने केवल दो जगह रात्रि-मुकाम किया। पहला पीपलकोटीसे १९ मीलपर जोशीमठमें तथा दूसरा ८ मीलपर पांडुकेश्वरमें। इन दोनों स्थानोंपर बदरीनाथ-मन्दिर कमेटीके अतिथि-आलयोंमें हमारे ठहरनेकी व्यवस्था की गयी थी और उनके सुव्यवस्थित और सुविधापूर्ण होनेके कारण दो रात्रि हम सुखकी नींद सोये थे। अल्पकालके लिये मार्गमें गुलाबचट्टी और आज हनुमानचट्टीमें भी ठहरनेपर इन चट्टियोंकी वही दुर्दशा थी, जो यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरी मार्गकी चट्टियोंकी। किंतु अब तो हम अपने पड़ावके संनिकट थे और कुछ ही घंटोंमें अपने मनोरथके धाम बदरीनाथकी पावनपुरीमें प्रवेश करनेवाले थे। भोजनोपरान्त लगभग आधा-पौन घंटा विश्राम किया और हनुमानचट्टीसे बद्रीविशालकी जय बोलकर आगे बढ़े। अब हम समुद्र-सतहसे आठ हजार फुट ऊँचाईपर चल रहे थे। अतः शीत पर्याप्त बढ़ गयी थी, फिर बूँदा-बाँदी शुरू हुई। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते गये, वर्षा भी बढ़ी और वर्षाके साथ तथा ऊँचाईके कारण शीत भी। परंतु इस हिमवत् शीतका हमारे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ रहा था। इसका कारण था—ऊपरसे हम गरम वस्त्रों और अपने छाते-बरसातीसे सुसज्जित थे तो भीतर भक्तिभाव भरे उत्साहसे। अतः हमें मौसमकी यह कुछ प्रतिकूलता भी बड़ी भली मालूम पड़ती। बदरीनाथ पुरी समुद्र-सतहसे १०,२४४ फुटकी ऊँचाईपर स्थित है। हमें अपनी इस पाँच मीलकी मंजिलमें २,२४४ फुट ऊपर चढ़ना था। जो यद्यपि ४००० फुटपर स्थित पीपलकोटीसे जब हम एक ही दिनमें १९ मीलकी यात्राकर ६१५० फुटपर स्थित जोशीमठ पहुँचे थे, उससे कुछ ही अधिक थी तथापि समयके लिहाजसे पीपलकोटीके बाद इस मार्गकी यह चढ़ाई अत्यधिक थी। पीपलकोटीसे जोशीमठकी २१५० फुटकी चढ़ाई हमने लगभग ग्यारह घंटेमें १९ मीलका मार्ग चलकर और अपने पास शेष बचे कुछ ही समयमें तय करनी थी अतः कुछ हिम्मत तो बढ़ानी ही थी। हमारे साथ दो महिलाएँ काफी वृद्ध थीं और जोशीमठकी १९ मीलकी मंजिलमें वे काफी जर्जर भी हो चुकी थीं। अतः इन्हें हमने दो घोड़ोंपर सवार कर आगे बढ़ाया। किरायेपर रुपया-सवा रुपया मीलपर केदारनाथकी तरह इस ओर भी अच्छे घोड़े मिल जाते हैं। हम सब लोग भी जिसके पास जो वाहन था, कोई कंडीपर—कोई डंडीपर सवार हुए और कोई अपने चिर साथी पाँवोंसे अपनी लाठीके सहारे लादे बढ़े जा रहे थे। मार्गमें जाते-जाते काफी यात्री हमें मिल रहे थे—इन यात्रियोंमें प्रायः देशके विभिन्न प्रदेशोंसे आये हुए। दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, बंगाल, बंबई, मध्यप्रदेश, पंजाब, दक्षिणके मद्रास, आन्ध्र और मैसूर—प्रायः सभी प्रदेशोंके यात्री हमें मिले। मार्ग-श्रमके कारण अनेक बार ये यात्री क्षणभर विश्रामके लिये रुकते और एक दूसरेसे 'बदरीविशालकी जय' बोल परिचय लेते। हमलोग उत्कण्ठासे लौटते यात्रियोंसे बदरीनाथकी दूरी पूछते। बड़े कृपाभावसे ये हमें कहते—तीन मील होंगे, धीरे धीरे चलिये। चढ़ाईपर अनेक बार अधिकांश यात्रियोंको दूसरोंको धीरे-धीरे चलिये, यह उपदेश देते देखा गया है। कैसा ममत्व देखा मानवका मानवके प्रति हमने यहाँ। यह इस पुण्यक्षेत्रका ही प्रभाव था। अब हमें बदरीनाथके चारों ओरकी हिमानी शिखरावली भी दिखने लगी थी।

हनुमानचट्टीसे बदरीनाथपुरीके पाँच मीलके मार्गमें लगभग साढ़े तीन मीलकी चढ़ाई है। पुरीसे लगभग सवा मील पूर्व देवदर्शनी नामक स्थान है। यहाँसे पुरीके दर्शन होते हैं। लगातार चढ़ाई चढ़नेके उपरान्त देवदर्शनी पहुँचकर पुरीके दर्शन, पुरीमें स्थित बदरीविशालके मन्दिर-शिखरके दर्शनकर थके-माँदे यात्रीको जो सान्त्वना मिलती है, उसका वर्णन करना कठिन है। देवदर्शिनी एक ऐसा स्थान है जहाँ चढ़ाई समाप्त हो जाती है और चढ़ाई समाप्त होते ही अनजाना यात्री विश्रामके लिये यहाँ एक क्षण रुकना चाहता है। किंतु, ज्यों ही उसकी दृष्टि पुरीपर पड़ती है, उसके पग बरबस आगे बढ़ पड़ते हैं। हृदय प्रफुल्लित हो उठता भगवद्दर्शनोंकी लालसामें। फिर, हम लोगोंको तो बताया गया था देवदर्शनीसे पावनपुरीके दर्शन होते हैं। हम आस्तिकभाव और आकुल मनसे देवदर्शनीकी प्रतीक्षामें थे। यहाँ पहुँचते ही हमने भव्य पुरी और भगवान् बदरीनाथके मन्दिरको...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर प्रणाम किया और भगवच्चरणोंका ध्यान कर उल्लासभरे मनसे भगवान् 'बदरीविशालकी जय' बोल तत्क्षण पुरीकी ओर चल पड़े। २ जुलाईके ५ बजे पुण्यसलिला अलकनन्दाको पुलसे पारकर पुनः-पुनः भगवान् बदरीविशालका जयघोष करते उस पुरीमें प्रवेश किया; जिसकी रटना हमारा मन इस जीवनमें युगोंसे लगाये था, पूर्वजन्मकी राम जानें।

बदरीनाथ पुरी हिमालयकी अगणित शिखरोंवाली शिखरावलीसे घिरी हुई है। उत्तुङ्ग शिखरोंपर हिम छिटका हुआ-सा फैला है। पुरीके निकट नीलकण्ठ पर्वतको छोड़, जिसपर हिम बृहत् राशिमें जमा है, शेष शिखरावलीपर केदारनाथके सदृश विपुल परिमाणमें हिम दृष्टिगोचर नहीं होता। परंतु, इस छिटके और फैले हुए हिमकी भी अनुपम शोभा थी। जिन शिखरोंपर यह हिमराशि फैली हुई है, उन ऊँचे शृङ्गोंको छोड़ शेष शिखरावली उसी प्रकार दिगम्बर है, जैसी केदारनाथकी शिखरावली। परंतु, केदारनाथकी पर्वतश्रेणियाँ तो केदारनाथसे एक-डेढ़ मीलसे ही दिगम्बर हुई हैं। बदरीनाथकी शिखरावली तो योजनोंसे तरुरहित नंग-धडंग है। फिर बदरीनाथकी इन गिरिश्रेणियोंमें छोटे-बड़े शिखरोंकी जितनी पंक्तियाँ हैं, उतनी इसके पूर्व हमने इस यात्रामें कहीं नहीं देखी थीं। पुरीके चारों ओरके ये शिखर केदारनाथके गिरिशृङ्गोंके सदृश अपना सर्वस्व बदरीनारायणके चरणोंमें समर्पणकर दिगम्बर हो एक शैल-समाज अथवा शिखर-सम्मेलनके रूपमें आराधना-लीन दृष्टिगोचर होते। दूर-दूरतक इनकी चोटियोंपर पड़े हिमकी छवि छटा निहारते बनती। स्वर्णिम संध्या थी। पद-चुम्बनके अभिलाषी मेघ अन्तरिक्षसे उतरकर इन शृङ्गोंका स्पर्श करते, फिर ऊपर उठते, जान पड़ता ये इनका पूजन कर रहे है और इस प्रभु-पूजासे परम प्रसन्न हो आकाशसे देवगण इनपर हिमरूपी श्वेत पुष्प बरसा रहे हैं। ऐसी पर्वतश्रेणियोंके बीचमें विशेषकर दो प्रहरी नर और नारायण पर्वतोंके संरक्षणमें बसी यह पुरी, जिसके मध्यमें भगवान् बदरीनाथका मन्दिर और निकट ही पहाड़ोंकी तलहटीमें शानसे बहती अलकनन्दा युग-युगोंसे मानवकी धार्मिक चेतनाका उसकी आध्यात्मिक आस्तिकताका स्रोत लिये उमड़ रही है।

स्नानादिसे तो हम आज पाण्डुकेश्वर और फिर हनुमानचट्टीमें निवृत्त हो आये थे। अतः शारीरिक दृष्टिसे तो पवित्र थे ही; साथ ही आत्मिक दृष्टिसे भी सर्वथा निष्पाप थे। पुलकितहृदय अलकनन्दाका पुल पारकर हम लोगोंने पावन पुरीमें प्रवेश किया और पलक मारते ही हम मन्दिरमें पहुँच गये। हमारी चित्तदृष्टिमें अब हमें समयका कोई भान नहीं था। एकाग्र और मूकभावसे भगवान् बदरीविशालकी मूर्तिके सम्मुख खड़े अपना पूर्वपरिचय पा रहे थे। हमें ऐसा लगा कुछ हमारे भीतरसे जा रहा है, कुछ भीतर आ रहा है। 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी' की अनुभूतिसे आज हम आत्मविभोर थे। भगवान् बदरीविशालको एकटक निहारते, नेत्रोन्मीलन करते, कभी बंद कर लेते और फिर टकटकी लगा लेते। समाधिके सदृश तन्मय अवस्थामें हमने अनन्त रूपोंमें अनन्त भावोंसे भगवत्साक्षात्कार किया। प्रभु-प्राप्तिकी लालसासे भरा अथाह समुद्र; जो सांसारी मायाजालकी; काम; क्रोध; लोभ-मोहकी मिट्टीके घेरेमें भव-भावनाओंमें जाने कबसे उफन रहा था, उछल रहा था, अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे बाहर बह निकला। मोहकी मिट्टीका बाँध आज उसे नहीं बाँध पा रहा था। अपने भक्तिभावकी सरिता; जो भीतर उमड़ रही थी, अलकनन्दाकी तरह विकल भावसे बह निकली। वह वियोग, जो कालकी कलुषिमाके कारण उद्वेग बन गया था, इस संयोगके होते ही क्षणमात्रमें नेत्रद्वारसे चौधारे आँसुओंमें पानी बनकर बहने लगा। भक्तिके प्रवाहमें इस भगवत्साक्षात्कारमें हमने साधकोंके सुखकी; संन्यासियोंके संयमकी; योगियोंकी समाधिकी, विरागियोंके बड़प्पनकी और तपस्वियोंके त्यागकी सारी सम्पदा सहज ही समेट ली।

भगवद्दर्शनके बाद हम अपने मुकामपर पहुँचे और कुछ जलपान किया। सामान आदिको व्यवस्थित कर अपना बदरीनाथका कार्यक्रम निश्चित किया। अभीतक हमारी सम्पूर्ण यात्रा पूर्ण रीतिसे धार्मिक विधि-विधानसे चली थी और हमारी इच्छा थी कि बदरीनाथजीमें भी हम यहाँके सभी धार्मिक संस्कार विधिवत् करें। शास्त्रीय विधानके अनुसार बदरीनाथजीमें तीर्थयात्रीको तीन रात्रि मुकाम करना चाहिये। इस नियमके अनुसार हमारा भी यहाँ तीन रात्रि मुकाम था और इस हिसाबसे हमें ५ जुलाईको प्रस्थान करना था। अपने इस तीन रात्रिके मुकाममें हमारे पास जो दो दिनका समय था, उसमें हमें यहाँके सभी धार्मिक कृत्य विधिवत् करने थे और बदरीनाथ पुरी और उसके चतुर्दिक् छाये सौन्दर्यकी घटा-छटा भी देखनी थी। यहाँके प्रमुख देवस्थानों और तीर्थस्थलोंका निरीक्षण करना था। हमने अपने पंडा, जिनकी संख्या सात थी, की सहायतासे सर्वप्रथम भगवान् बदरीविशालके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनका कार्यक्रम निश्चित किया और यहाँके नियमानुसार यात्री भगवत्पूजाके जिन संस्कारोंको करना चाहता है, उनके लिये अपनी भेंट-स्वरूप उसे एक दिन पूर्व बदरीनाथ मन्दिर कमेटीके कार्यालयमें रुपया जमाकर पूजाकी व्यवस्था करा लेनी पड़ती है। यह हमने सर्वप्रथम की। श्रीबदरीविशालके पूजा-संस्कारोंकी एक छपी सूची यहाँ मिलती है, जिसमें पूजन-नियमका समूचा ब्योरा रहता है। इस छपी सूचीमेंसे हम-लोगोंने रुचि और श्रद्धानुकूल भगवत्-भेंट निश्चित की और अपनी यह भेंट मन्दिरके कार्यालयमें जमा करने पहुँचे। यात्रियोंकी खासी भीड़ थी; सभी अपने मनोरथोंकी भेंट लिये प्रस्तुत थे। कार्यालयके व्यवस्थापक बड़े विज्ञ और शिष्ट पुरुष थे। उन्होंने गोविन्ददासका सारा कार्यक्रम बनाया और भीड़-भाड़से मुक्त ४ जुलाईका समय पूजनके लिये दिया। व्यवस्थापकने गोविन्ददाससे कहा—आप बड़े भाग्यवान् पुरुष हैं, ४ तारीखको केवल आपका ही कार्यक्रम है, ऐसा अवसर इस यात्राकालमें क्वचित् ही आता है। आप शान्ति-पूर्वक भगवत्पूजनकर भगवद्भक्तिका आनन्द लूट सकेंगे। हमारे कलके कार्यक्रममें एक प्रधान कार्य था ब्रह्मकपालपर गोविन्द-दासद्वारा पितरोंका श्राद्ध।

दूसरे दिन तीन तारीखके प्रातःकाल अलकनन्दाके तटपर नारदशिलाके तप्तकुण्डोंमें हमने विधिपूर्वक संकल्पकर स्नान किये और दान इत्यादि भी। इन कुण्डोंके इतिहास-माहात्म्यकी चर्चा हम आगे करेंगे। फिर मध्याह्नमें गोविन्ददास सपत्नीक ब्रह्मकपालपर पितरोंका श्राद्ध करने गये। ब्रह्मकपालके श्राद्धका सनातनधर्ममें सर्वोपरि स्थान है। यहाँका श्राद्ध यथार्थमें हरिद्वारसे आरम्भ होता है। हरिद्वारमें पहला श्राद्ध होता है, उसके पश्चात् देवप्रयागमें दूसरा श्राद्ध और अन्तमें ब्रह्म-कपालमें तीसरा और अन्तिम श्राद्ध। ब्रह्मकपालमें पिण्डदान देनेके पश्चात् फिर पिण्डदान नहीं होता, यह पिण्डदान भगवान् बदरीनाथके प्रसादी भातका होता है। गोविन्ददासने इस यात्रामें अन्य धार्मिक कृत्योंके साथ ही श्राद्धका कार्यक्रम भी प्रमुख रूपसे रक्खा था। उन्होंने पहला श्राद्ध विधिपूर्वक हरिद्वारमें किया, दूसरा देवप्रयागमें और तीसरा तथा अन्तिम ब्रह्मकपालमें। इस श्राद्धसे उन्हें जो सन्तोष हुआ, ब्रह्म-कपालके श्राद्धके समय तथा उसके उपरान्त भी हमें उनकी इस अवसरकी भावपूर्ण मुद्रासे ज्ञात हुआ। उन्होंने कहा भी कि वे अपनेको अनेक दृष्टियोंसे बड़ा सौभाग्यशाली मानते हैं, देशकी स्वाधीनताके युद्धके आरम्भसे अन्ततक उनका भी छोटा-सा भाग रहा, साहित्य-रचना और हिंदीको राजभाषाके पदपर प्रतिष्ठित करनेके प्रयत्नमें भी वे एक छोटा-सा साधन बन सके और ब्रह्मकपालमें उनके कुटुम्बका कोई भी व्यक्ति, जो पितृऋणसे उऋण नहीं हो सका, उस ऋणसे भी उऋण होनेका उन्हें सौभाग्य प्राप्त हो सका। इस श्राद्धमें एक और विशेष बात हुई। जब श्राद्ध करानेवाले पण्डितने उनसे पूछा कि गुरुओंके रूपमें आप किसे पिण्डदान देना चाहते हैं तो उन्होंने बल्लभसम्प्रदायमें उन्हें दीक्षित करनेवाले गुरुके अतिरिक्त महात्मा गाँधीका नाम भी बताया जो उनके जीवनको प्रेरणा देनेवाले उनके प्रधान गुरु थे। श्रीमती कस्तूरबासहित महात्मा गाँधीको भी उन्होंने पिण्डदान किया। यह पितर-श्राद्ध गोविन्ददासके अतिरिक्त हमारे एक-दो साथियोंने भी किया था, उन्हें छोड़ शेष अपने मुकामपर थे, केवल गोविन्दप्रसाद एक दर्शकके रूपमें गोविन्ददासके साथ थे। इस श्राद्धके महत्त्व, माहात्म्य, विधि-विधान और दृश्यका वर्णन करते हुए जो उन्होंने वहाँ देखा-सुना था कुछ कामकी बातें सुनायीं। उन्होंने कहा—

'ब्रह्मकपाल क्या था भारतकी सभ्यताका, उसकी संस्कृतिका, उसकी गहरी धार्मिक आस्तिकताका एक सजीव चित्र। अपने पितरोंकी मुक्तिकी चाहमें यहाँ एक-दो नहीं—सैकड़ों ही व्यक्ति एकत्र थे। सभी समुदायों, वर्गों और अवस्थाओंके विभिन्न भाषा-भाषी, विभिन्न प्रदेशीय। इनमें कोई तो नितान्त समृद्ध दिखायी देता तो कोई सर्वथा दीन-दरिद्र। कोई वस्त्र-परिधानोंसे सर्वथा सुसज्जित था तो कोई फटे चिथड़ोंसे तन ढाके था। कोई युवक था, कोई समवयस्क तो कोई वृद्ध जर्जर। पाठशालाके सदृश कतारोंमें ये सभी अपने दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें कुशा थामे मूकभावसे बैठे थे। सामने पण्डित जोर-जोरसे मन्त्रोच्चारण करता कतारके एक छोरसे दूसरे छोरतक जाता और फिर लौटता है, बीच-बीचमें इन यात्रियोंसे मन्त्रोंके कुछ वाक्योंको और पितृमुक्ति-चाहसे भरे कुछ शब्दोंको बोलनेके लिये कहता है। सब-के-सब सहपाठ-सा करते पण्डितोंके उन कथनोंका। ऐसी विचित्र श्रद्धा—अटूट आस्था और उदार हृदयसे होता यह श्राद्ध। सब-के-सब दक्षिणा देते श्राद्ध करानेवाले पण्डितको और भक्तिभावसे पद-स्पर्श करते। श्राद्धकी इस सारी प्रक्रियामें धनी-निर्धनोंके, छोटे-बड़ोंके, विभिन्न जातियोंके, भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके और विभिन्न भाषा-भाषियोंके मानवोंके इस समूहमें आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे कहीं कोई पृथक् छोटा या बड़ा अमीर या गरीब, मद्रासी या बङ्गाली, गुजराती या केरलवासी नहीं दिखा। यहाँ सब-के-सब थे भारतवासी—एक माताकी, भारतमाताकी संतान, एक पिता भारत राष्ट्रके पुत्र और इसी दृष्टिसे मैं तो गद्गद हो गया । जब-कबके साहब ( गोविन्ददास ) ने गाँधीजीका श्राद्ध किया। बापू यथार्थमें किसी सम्प्रदायविशेषके, किसी वर्ग-विशेषके किसी जाति-विशेष अथवा किसी प्रान्तविशेष या भाषाविशेषके व्यक्ति नहीं थे—इन सबसे परे वे भारत राष्ट्रके वरद पुत्र थे, मानवताके पुजारी थे, विश्ववन्द्य थे और इस नाते वे हर भारतवासीके प्रत्येक नर-नारीकी श्रेष्ठ श्रद्धाके श्राद्धके अधिकारी हैं ।

आज हमने मध्याह्नके बाद भोजनोपरान्तका अपना समय पुरीके पर्यटन, यहाँके पुण्यस्थलोंके निरीक्षण तथा मन्दिरमें भगवद्दर्शनोंमें बिताया ।

एक गढ़के सदृश अरण्यखण्डोंसे आवृत पुण्यसलिला अलकनन्दाके दाहिने तटपर अवस्थित बदरीनाथ पुरी न छोटी, न बड़ी एक सुन्दर उपनगरी-सी दिखती है। बिजली भी लग गयी है। जिससे इसकी शोभा दूर-दूरतक फैली छोटी-छोटी किंतु समृद्ध-सी दूकानों, तंग सकरी गलियों और अलकनन्दाके तटपर स्नान-पूजन करते तथा पुरीमें यत्र-तत्र विचरण करते भगवद्भक्तोंके समूहोंसे द्विगुणित हो गयी है । दूरतक फैले छोटे-बड़े पक्के मकानोंसे सुसज्जित अनुपम शोभायुक्त यह पुरी अपने श्यामतनपर श्वेत हिमके शिखर धारण किये शोभायमान थी। रात्रिमें बिजलीके प्रकाशसे इसके नये बने कुछ श्वेत मकान अपनी छवि-छटा छिटका रहे थे, जो हमें दूरसे हिमखण्डों-से दृष्टिगोचर होते। बस्ती सर्वथा स्वच्छ तो नहीं है, परंतु बहुत गंदी भी नहीं। डाकघर, तारघर, चिकित्सालय, डाकबँगला और कुछ अच्छी सुन्दर धर्मशालाएँ हैं। जहाँ बदरीविशाल विराजमान हैं उस स्थलपर उसी स्थापत्यकलाका शिखर है, जिस प्रकारकी स्थापत्य-कलाके शिखर केदारनाथ और इस ओरके अन्य प्राचीन देवालयोंके हैं जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। परंतु, बदरीनाथके इस मन्दिरका शिखर केदारनाथके तथा इस ओरके अन्य मन्दिरोंसे भी छोटा है। शिखरपर स्वर्णका कलश है। कलशके नीचेका शिखर स्वर्ण-वेष्टित है। शिखरपर यह स्वर्णपत्र होल्कर राज्यकी प्रसिद्ध धर्मप्रिय महारानी अहिल्या-बाईके द्वारा लगवाया गया है । इस शिखरके आगे एक गुम्बज और है, जिसे कुछ वर्ष पूर्व ही श्रीवंशीलाल अबीरचंद डागाके परिवारवालोंने बनवाया था। उस समय स्थापत्य-कलाकी विभिन्नताओं तथा उनके वर्गीकरणपर उस प्रकारका वैज्ञानिक विवेचन नहीं हुआ था जैसा अब हुआ है। इस लिये दुर्भाग्यसे यह गुंबज मस्जिदोंकी गुंबजोंकी आकृतिके सदृश हो गयी है और इसके पीछे मन्दिरके पुराने शिखरसे कोई मेल नहीं होता। इस गुंबजके आगे मन्दिरमें प्रवेश करनेका सिंह-द्वार है। प्रवेश करनेके स्थलपर इसका जो पटाव है और इस पटावके दोनों ओर जो टोलियाँ हैं तथा इस द्वारपर जो छोटा-सा कलशोंवाला शिखर है उसकी स्थापत्य-कला दूषित नहीं। मन्दिरके सभी भाग पत्थरके हैं। मन्दिरके चारों ओर कुछ छोटी-छोटी इमारतें भी हैं, इन इमारतोंमें जिस स्थानमें मन्दिरकी गद्दी और भण्डार है वह इमारत हैदराबादके प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीशिवलाल मोतीलालके कुटुम्बियोंकी बनवायी हुई है। बदरीनाथका मन्दिर तीन भागोंमें विभक्त है । भीतर छोटा-सा गर्भगृह है, जिसके अन्तिम छोरपर भगवान् बदरीविशालकी तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। यहीं बायीं ओर रावल और उनके सहायक बैठते हैं । गर्भगृहके बाहर एक सभामण्डप है जिससे लगा हुआ एक और मण्डप है । यात्री-प्रवेशद्वार इसी तीसरे मण्डपमें है, मध्य मण्डपमें यात्री खड़े होकर भगवद्दर्शन करते हैं। किंतु स्थान इतना कम और भीड़ इतनी अधिक रहती है कि लोगोंको दर्शनोंमें काफी कठिनाई होती है।

स्थापत्यकला और विशालताकी दृष्टिसे बदरीनाथके मन्दिर-में कोई विशेषता नहीं है। विशेषता है, उत्तराखण्डके इस प्रसिद्ध धाममें और श्रीबदरीविशालकी इस प्रतिमामें । बदरीनाथ-की यह प्रतिमा लगभग डेढ़ फुट ऊँची है। मूर्ति श्याम वर्णके पाषाणकी है। मूर्तिके पीछे प्रस्तरकी ही पीठक है, मूर्ति और पीठक दोनों एक ही पाषाणखण्डकी हैं। प्रतिमा-दर्शनसे ही ज्ञात हो जाता है कि यह प्रतिमा मानवद्वारा निर्मित न होकर अन्य कुछ प्रतिमाओंके सदृश अनगढ़ है।

प्रातःकाल मन्दिरमें जब अभिषेकके दर्शन होते हैं, तब प्रतिमाके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब स्पष्टरूपसे आरती द्वारा दिखाये जाते हैं और उस समयके दर्शनोंके सम्बन्धमें कहा जाता है—

'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥'

—हम अपने अनुभवके आधारपर भी कह सकते हैं कि यह कथन सर्वथा सत्य है। बदरीविशाल इस मूर्तिके माध्यम-से पद्मासन लगाये हुए तपस्यामें निमग्न हैं। उनकी दो भुजाएँ एक हस्तपर दूसरा हस्त रक्खे हुए उनकी दोनों


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानुओंपर स्थित हैं। अतः कुछ बौद्धोंका कथन है कि यह मूर्ति बौद्धमूर्ति है, कुछ जैनी इसे पारसनाथ या ऋषभदेवकी बताते हैं। किंतु उपर्युक्त कथनके अनुसार सत्य यह है कि जिसकी जैसी भावना होती है, उसे प्रभु उसकी भावनाके अनुसार दृष्टिगोचर होते हैं। जो उनका विष्णुरूपसे दर्शन करना चाहते हैं उन्हें इन दो भुजाओंके अतिरिक्त पीठक-में ऊपरकी ओर दो भुजाएँ और दिखती हैं, साथ ही वक्षःस्थल-पर भृगुलता और श्रीवत्सके चिह्न। इस प्रकार वे चतुर्भुज विष्णु हो जाते हैं। जो उनके शिवरूपमें दर्शन करना चाहें उन्हें मुखारविन्दके नीचे वक्षःस्थलसे कटिभागतकका भाग शिवलिङ्गके रूपमें दर्शन देता है। यही भाग गणेशभक्तोंको गणेशकी सुण्डके सदृश दिखता है। यदि बौद्ध बुद्धरूपमें और जैन अपने तीर्थंकरके रूपमें दर्शन करना चाहें तो उन्हें वे उसी रूपमें दर्शन देंगे। एक ही मूर्तिके इस प्रकारके विभिन्न अवलोकन इस मूर्तिकी सबसे बड़ी विशेषता है। हमारे मतमें बदरीनाथकी मूर्ति भारतीय देवत्वके नानामुख-स्वरूपोंका एक विलक्षण संगम तीर्थ है। जहाँ सभीको अपनी भावनाके भगवान्; वैष्णवको विष्णुके, शैवको शिवके, जैनको तीर्थंकरके और बौद्धको बुद्धके दर्शन हो जाते हैं। तीर्थकी इस विशेषता-के कारण वैष्णव, शैव, बौद्ध और जैनियोंका यदि सम्मिलन हो जाय तो इससे अधिक हर्षकी और क्या बात हो सकती है। परंतु चित्रके इस प्रकाशयुक्त उजले पक्षका एक दूसरा पहलू भी है, वह है दुराग्रहपूर्ण यह विवाद कि यह मूर्ति विष्णु-की मूर्ति न होकर बुद्धकी या जैन तीर्थंकरकी मूर्ति है। हमारे धर्मकी उदारता, सहिष्णुता, सारगर्भिता और समन्वय-वृत्ति तो सर्वविदित ही है। वह देश-काल, जाति और समाजविशेषसे सदा ही निरपेक्ष रहा है। हमारा अध्यात्म हमारा दर्शन सबमें अपना और अपनेमें सबका दर्शन करता है। भारतीय दर्शनका निचोड़ श्रीमद्भगवद्गीता कहती है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

अपनी इसी भावनाके कारण हमारी संस्कृतिका मूलमन्त्र सहिष्णुता बना और हमने अपने इसी दृष्टिकोणके कारण सदा सबमें अपनेको और अपनेमें सबको देखा। और इसीलिये हमारी विष्णु, शिव, बुद्ध, जैन तीर्थंकर सभीपर समान श्रद्धा है। और हमारी ही क्या वैदिक धर्मावलम्बियोंने तो गौतमको अवतार ही माना है तथा संकल्पमें यह काल बौद्धावतारका काल मानकर 'बौद्धावतारी' कहा जाता है। यही क्यों, हमारे यहाँ तो अल्लोपनिषत् तक बना। मुसल्मानोंके पीरोंके मकबरे बने, हमने मन्दिरोंके सदृश उनकी पूजा की। आज भी लोग करते हैं। हमने विचारों और भावनाओंकी इस एकतामें बाह्य भिन्नताको भुलाकर सदा ही उस द्वैतकी इस दुरभि-संधिपर अद्वैतका परदा डालकर उसे पाटा और अनाचारकी जगह सदाचार, अधैर्यकी जगह संयम तथा प्रतिशोधकी जगह सहिष्णुताकी प्रतिष्ठा की। हमारा आचार-विचार वेदान्तके इन कुछ सूत्रोंमें··'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्'में स्पष्टरूपसे परिलक्षित है। सृष्टिके सभी धर्मोंको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हुआ हमारा धर्म·· 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति' के मतपर चलता है। अतः इस दृष्टिसे भगवान् बदरीविशालकी यह मूर्ति हमारे वैदिक धर्मकी, भारतीय दर्शनकी, जिससे हमारे अध्यात्मकी अलकनन्दा निकली, एक तेजोमय प्रतीक बनी हुई है। काश! हम भारतकी भावनाएँ, धर्मकी धारणाएँ और समयकी मान्यताएँ इस मूर्तिके माध्यमसे यहाँ देख पायें। यदि हमें वह दृष्टि मिल जाय तो यमुना, गङ्गा और सरस्वतीके पुण्य प्रयागकी भाँति भारतका मानस यहाँ लहराने लगे और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सरितामें सराबोर हो गति, मति और भगतिसे युक्त अपनी भावनाओंके स्वर्गका सुख सहज लूट ले। (क्रमशः)

## अभिलाषा

रहै न रंचक राग-रति, माया-ममता-मोह।
हो निमग्न मन सुधानिधि-पदानन्द-संदोह॥
मन मिलिन्द रह पान-रत पद-पङ्कज-मकरन्द।
नित्य निरङ्कुश निशिदिवस निरवधि निति निर्द्वन्द॥
रहै न मन ही मन बन्यौ, बनै तुम्हारौ यन्त्र।
तुम यन्त्री फूँकौ सदा निज मनमाने मन्त्र॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वैज्ञानिक विडम्बना

( लेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा )

विगत पच्चीस वर्षोंके अन्तर्गत विज्ञानने मानव-शरीरके रहस्यों, रोग-निदान, ओषधि-निर्माण एवं प्रयोगोंमें जो उन्नति की है, उससे दुनियाकी बीमारियोंको तुरंत दूर करने और मानवकी आयु बढ़ानेके दावे किये गये हैं; परंतु उनके साथ ही मानवमें नये-नये रहस्यमय रोग उत्पन्न होने लगे हैं, जिनके निदान और चिकित्सामें वैज्ञानिकोंको भ्रम और शिरःशूल होने लगा है। इन विषयोंके समाचार यूरोप-अमेरिकाके डॉक्टरी अखबारोंमें अक्सर प्रकाशित हुआ करते हैं। मानवी रोगोंके निदान, चिकित्साके प्रयोग, नयी चमत्कारिक ओषधियोंके निर्माण और कालान्तरसे उनकी प्रतिक्रिया औद्योगिक और सरकारी नीतिमें क्या रहस्य और कैसी विडम्बना है, यह जनसाधारणको नहीं मालूम होता।

मानवके दुःख-दर्द दूर करने, उसे यान्त्रिक उपायोंसे कम परिश्रम लेने और अधिक आराम देने, खेतीको अधिक सहज और उत्पादक बनाने, अन्न-साग-फलोंकी फसलोंको रासायनिक प्रयोगोंसे सुरक्षित करने, अधिक कालतक कायम रखने, अन्य पशुओंसे अधिक खाद्य मांस और मानवोपकारी रसायन औषध प्राप्त करने आदिविषयक पाश्चात्त्य वैज्ञानिक समाचारोंके सार तत्त्व मेरी लेखनीसे 'कल्पवृक्ष' आध्यात्मिक मासिक पत्र, उज्जैनके जुलाई १९५७से अप्रैल १९५९ तक तथा '* कल्याण' मासिक ( गोरखपुर, उ० प्र० ) में विगत कई अंकोंमें प्रकाशित हो चुके हैं तथा अन्य पत्रोंद्वारा उद्धृत भी हुए हैं। उन विषयोंको न दुहराकर मैं आगे बढ़ता हूँ।

संसारकी तीव्रगतिसे बढ़ती आबादीका पेट भरनेके लिये तथा रोगोंसे मरनेवालोंको मौतसे बचाकर जिंदा रखनेके लिये ही ये सब उपाय होते हैं और इनकी विषमतासे पुनः भोजन और स्थानकी कमीसे उत्पन्न आर्थिक समस्या राजनीतिक उलझनें उत्पन्न करती हैं तो उन्हें सुलझानेके लिये प्रलयकारी अस्त्र भी बन चुके हैं, अतएव पृथ्वी छोड़ आसमान ढूँढ़कर अन्य ग्रहोंमें जा बसनेकी भी योजना हो रही है। रूस, अमेरिकाद्वारा उपग्रह छोड़े जानेके समाचार गाँव-गाँवके गँवारोंतक पहुँच चुके हैं।

* नवम्बर १९५८, मार्च—अप्रैल १९५९—१९६०—१९६१ और आगे।

जहाँ अन्न-साग-दूध-फल कम प्राप्य हैं अथवा इनके प्रति अरुचि या इनका कम प्रयोग होता है, अथवा इनसे मानव-पेटकी पूर्ति नहीं होती, उन देशोंमें मांस-मछलीका उत्पादन बढ़ानेके वैज्ञानिक प्रयोग उद्योग होते हैं। मांसके लिये पाले गये पशुओंके शरीरमें अन्य मादा-पशुके यौन-हारमोन*के प्रयोग करनेसे वे अधिक मोटे तगड़े होते हैं। एक जानवरके ६० रुपये अधिक मिलते हैं, इससे मांसकी खेती बढ़ती है। ऐसे मांसका आहार करनेसे पेट तो भरता है; परंतु कालान्तरसे शरीरपर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह उस समय नहीं मालूम होता और न प्रचारकों, प्रयोगी वैज्ञानिकोंको इसकी कल्पना होती है। विगत ९ सितम्बर १९५८ को रायो डि जेनीरो ( दक्षिण अमेरिका ) से भेजा गया 'रायटर'†के संवाददाताका समाचार कनाडाके किचनर‡ वाटरलू रिकार्डमें छपा था, जिसमें बताया गया था कि ब्राजील देशके लोगोंको ऐसा मांस खानेसे घृणा हो गयी है; क्योंकि इससे उनका पौरुष घटता अनुभव होता है। इस समाचारसे वहाँके मांस-विक्रयमें ८० प्रतिशत कमी हो गयी। सरकारी अधिकारियोंद्वारा जाँचकी रिपोर्टमें ऐसे गोमांस ( beef ) से नपुंसकता ही नहीं, वरं मनुष्योंमें लैंगिक परिवर्तन होना भी बताया गया। "The contaminated beef was said to cause not only impotence but even to produce a change of sex in men." ये प्रयोग मुर्गियोंपर§भी किये गये, उनकी गतिमें भी ऐसा ही असर हुआ। एक सप्ताह पश्चात् कुछ ऐसा ह

* Female sex hormone † Reuter

‡ Kitchener Waterloo Record

§ It is now several years since a group o[f] mink farmers in the States ( U. S. ) discovere[d] their animals becoming sterile. The cause wa[s] eventually found to be presence of a hormone i[n] chicken offal which was being fed to the mink. The hormone was a residue from pellets introduce[d] into the chickens' flesh some weeks earlier wit[h] the intention of de-sexing the birds and s[o] ensuring a quiet and un-argumentative temperament. A chicken which neither fights nor run[s] about vigorously converts more of its feed int[o] saleable flesh.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार लन्दनके 'डेली एक्सप्रेस'में १६ सितम्बरके अंकमें छपा था कि 'गृहिणियोंने ऐसे औषध-प्रयुक्त मांस खरीदना बंद कर दिया है ।' इस घृणित विषयकी चर्चा हम इस सात्त्विक भारतीय श्रेष्ठ पत्रमें आगे नहीं करना चाहते। यद्यपि इन दूरकी विदेशी चर्चाओंको आप भारतसे सम्बन्धित न जानकर भले ही महत्त्व न दें; परंतु वस्तुतः वैज्ञानिक क्षेत्रमें इस युगमें सभी देश परस्परके अनुयायी हैं, एक हैं, पृथक् नहीं तथा भारत तो ऐसी बातोंकी नकल करनेमें शीघ्र कदम बढ़ाता है। खेतोंकी ट्रैक्टरोंद्वारा गहरी जुताई, भूमिमें रासायनिक खादका मिश्रण, फसलोंकी कीटाणुओं, चूहों, चिड़ियों आदिसे रक्षाके लिये रासायनिक छिड़काव आदि अनेक उपाय भारतमें पश्चिमसे ही तो आये हैं; अतः ये सब हमारे जानने, सीखने और इनसे अपनी रक्षाका उपाय करने योग्य है । विष तो विष ही है, चाहे जितनी अधिक या सूक्ष्म मात्रामें हो। वह जब दूसरे जन्तुओंका नाश करता है तो मानवपर उसका अभी सूक्ष्म, और क्रमशः संचित होते हुए कालान्तरसे इन प्रयोगोंका अधिक प्रभाव प्रकट अवश्य होगा । मनुष्य जो कुछ खाता है उसीसे उसका शरीर बनता या बिगड़ता है।

वैज्ञानिक दृष्टिसे पीनेका पानी निर्गन्ध* और स्वादरहित होना चाहिये । गाँव-गाँवके कुओंके पानीमें भूतत्त्वोंकी भिन्नताके कारण कुछ हल्का या भारीपन होता है, नदियोंका पानी बहकर प्रायः समान होता है, परंतु आधुनिक शहरी जल-प्रदायोंद्वारा मिलनेवाले पानियोंमें स्वाद गन्धकी भिन्नता पायी जाती है। पानीमें शहद, शक्कर, गुड़ घोल देनेपर वह पानी न होकर शरबत कहा जाता है और घुलनशील तत्त्वोंकी न्यूनाधिकतासे उसमें स्वाद गुण होता है। अनेक शहरोंके पानियोंके विषयमें रासायनिक तत्त्वोंके घोलके कारण फीके या अधिक मीठे शरबत-जैसी बात यहाँ बन जाती है। बम्बईके पानीमें गन्ध स्वादकी विशेषता है और वहाँके लगभग पंद्रह [illegible] व्यक्तियोंका इलाज करके मैंने वहाँके पानीके साथ जिह्वा और पेटसे उनके स्वास्थ्यका इतिहास जाना। सब कहते हैं— यहाँका पानी खराब है। वैज्ञानिक विधिसे रासायनिक तत्त्वोंसे शुद्ध (!) पानीमें यह स्वाद और गन्धकी कैसी विडम्बना है! पानी नहीं, यह विषघोल है। वैज्ञानिक प्रयोगोंसे उत्पन्न अन्न [illegible]-फलोंके स्वाद-गुण-गन्ध आदिमें स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न [illegible], फल, अन्नकी अपेक्षा बहुत अन्तर पाया गया है, ऐसा समाचार लन्दन 'डेली एक्सप्रेस'के २१ नवम्बर १९५८ अंकमें छप चुका है कि फसलमें स्वाद नहीं पाया गया और छिड़काव होनेके बाद हजारों मक्खी, तितली और पक्षी मरनेके अतिरिक्त १८ पशु उस खेतमें चरने घुसे, वे मर गये तो खानेवाले मनुष्य कबतक जियेंगे ?

अब चिकित्साके विषयको लीजिये । बीमारियोंकी रोक-थामके लिये अनेक प्रकारके इंजेक्शन ईजाद और प्रयुक्त हो रहे हैं । नित्य नयी चमत्कारी दवाकी गोलियों और इंजेक्शनोंके जादुई प्रभावका प्रचार हो रहा है । मधुमेह, हृदयरोग, दमा, कैंसर, लकवा आदि जो रोग पहले बूढ़ोंको होते थे, अब बच्चोंको होने लगे हैं। बालपक्षाघात आजकल प्रमुख है। इससे बचनेके लिये बच्चोंको 'रक्षक इन्जेक्शन' लगानेके लिये प्रचार किया जाता है। अमेरिकाके बहुतसे अखबारोंमें इसके लिये बालपक्षाघात रक्षक राष्ट्रीय संस्था† द्वारा विज्ञापन प्रचारित किये गये थे। 'पोलियो'से रक्षित करनेके लिये जिन बच्चोंको यह इंजेक्शन लगाया जाता है, वे तो रक्षित बताये जाते हैं; परंतु उनसे दूसरोंको पोलियो होनेका भय रहता है। ऐसा एक समाचार लन्दनके 'न्यूज क्रानिकल' १४ नवम्बर ५८ के अंकमें छपा था और उसी दिनके प्रकाशित ब्रिटिश मेडिकल जर्नल‡में छपा था कि जिनको पोलियोंसे रक्षा मिल चुकी है, दूसरोंपर यह रोग उनसे फैलनेका भय रहता है—

People vaccinated against Polio may infect others, although they are safe themselves.

पोलियो-रक्षक टीकेका निर्माण अमेरिकाके डॉक्टर जोनास साल्कने बन्दरके शरीरसे किया है। इस टीकेके निर्माणसे उनका उद्योग इतना बढ़ा है कि भारतसे लन्दन होकर १९५३ में २२ हजार बन्दर अमेरिका भेजे गये, १९५४में इससे तिगुने ६६ हजार, १९५५में ९३ हजार और १९५६ में एक लाख बीस हजार बन्दर भारतसे अमेरिका गये। जो बन्दर यहाँ दो रुपयेमें पकड़े जाते हैं, अमेरिका पहुँचकर उनकी कीमत तीन सौ रुपयेसे अधिक हो जाती है। फिर उस बन्दरके ग्रन्थि-रस, रक्त, मांस, मवाद आदिसे बने इंजेक्शनका मूल्य भारत आकर कितना होगा ? टीका बनानेवाले 'बढ़िया

* Tasteless and odourless.

† National Foundation for Infantile Paralysis ( Polio ).

‡ British Medical Journal.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनाफेके युग' की कल्पनामें मस्त हो रहे हैं—ऐसा उन्हींकी बातोंसे मालूम हुआ। पंद्रह हजार बन्दरोंकी हत्या करके इस चमत्कारी ईजादसे डॉ० जोनास साल्क दुनियामें विख्यात और धनाढ्य बन गये तथा मानवोपकारी अवतार बनकर पूज्य हो रहे हैं। १९५७ में इंग्लैंडमें जिन ३२ बच्चोंको यह रक्षक टीका लगा था, आधेको पक्षाघात हो गया। १९५६ में अमेरिकामें ८९० बच्चोंको यह टीका लगाया गया था, महीनेभरके अंदर आधेसे अधिकोंको पक्षाघात हो गया। १९९७में ब्रिटिश मेडिकल रिसर्च कौंसिलने 'भेड़िया धसान'* रीतिसे सबको यह टीका लगानेके विरुद्ध सुझाव दिया था कि हानिकारक होनेके साथ इसमें डाक्टरोंका समय और धन व्यर्थ जाता है। इस टीकेमें स्ट्रेप्टोमाइसिन-जैसी एण्टिबायोटिक मशहूर दवाइयोंका भी मिश्रण किया जाता है जिससे मस्तिष्क† क्षय होनेकी सम्भावना बतायी जाती है। १९५० में इंग्लैंडमें 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा‡'के संस्थापक, स्वास्थ्यमन्त्री श्री एन्यूरिन बीवनने इसकी जाँच करायी थी और अधिकारी डॉक्टर तथा विश्वमान्य डाक्टरी अखबार 'लांसेट§' ने समाचार प्रकाशित किये थे कि दुनियाभरमें, जहाँ डिप्थीरियाके टीके लगाये गये थे, लोगोंको पोलियो महीनेभरके अंदर होना पाया गया।

कोई भी वस्तु हमारे शरीरमें खाद्य, पेय अथवा औषधके रूपमें मुख, नासिका अथवा रक्त-चर्म मार्गसे डाली या दी जाय, उसका प्रभाव तीन प्रकारसे शरीरपर होता है। शरीर उसे पचाकर आत्मसात् कर लेगा या प्रतिकूल होनेपर उसे वमन या विरेचनद्वारा निकाल देगा अथवा शरीरकी प्रणालीमें किसी एक स्थानपर जमा कर दे या सारे शरीरमें विस्तृत करके संचित कर दे। पाचन-प्रणालीकी सफाईके लिये जो जुलाब लिया जाता है वह शरीरके अनुकूल न होकर, उग्र प्रतिक्रिया-स्वरूप शरीर उसे निकाल देता है, लोग इसे दवाका लाभ मानते हैं। ऐसी ही एक वस्तु है पाराफीन तेल×। यह जैसा-का-तैसा निकल जाता है, लोग इसे शरीरके लिये हानिकारक नहीं मानते। परंतु इसका तात्कालिक प्रभाव कुछ न होनेसे, दीर्घ कालान्तरसे होनेवाली हानिके प्रति हमें सजग रहना चाहिये। 'ब्रिटिश मेडिकल जर्नल'के

* Mass Vaccination.
† Tuberculous Meningitis.
‡ National Health Service.
§ 'Lancet'.
× Liquid Paraffin.

२७ दिसम्बर ५८ के अङ्कमें एक लेखमें, फेफड़ेमें यह तेल पहुँच जानेसे, निदान होनेपर 'निमोनिया' होना बताया गया है। कोई भी ऐसे अन्तरङ्ग शोधक पदार्थ अनायास किंचित् मात्रामें किन्हीं अङ्गोंमें पहुँचकर हानि पहुँचा सकते हैं।

रोग क्यों और कैसे बढ़ते हैं? चिकित्सा-विज्ञानी कीटाणुओंसे रोग होना और बढ़ना सिद्ध करते हैं और विषाक्त दवाएँ गोली, घोल अथवा इंजेक्शन प्रयुक्त कर रोग नष्ट करना मानते हैं और इसीका व्यवसाय करते हैं। परंतु कतिपय प्रौढ़ अनुभवी चिकित्सा-विज्ञानियोंने ईमानदारीसे अपने शोध प्रकाशित किये हैं। हृदयरोगीको डॉक्टर लोग अक्सर लेटे रहनेकी सलाह दिया करते हैं, अतएव इसे 'जीवनभर लेटे रहनेकी बीमारी' भी कहा जाता है। अपनी पुस्तक 'मानवीय रक्त-प्रवाहकी गंदगी*' में डॉ० एल्फ्रेड पुल्फर्ड, एम० डी०ने अपने अनुभवसे लिखा है कि 'गत पचास वर्षोंमें शालाके विद्यार्थी बच्चोंमें २५ प्रतिशत हृदयरोग और बालपक्षाघात, तथा ४० प्रतिशत मानसिक विकार इंजेक्शनोंद्वारा रक्त-प्रवाहको दूषित करनेसे हुए हैं।' रोगी मर जाता है तो लोग समझते हैं कि रोगने बाहरसे आक्रमण किया था। डॉक्टरने विषाक्त ओषधिद्वारा उससे लड़कर उसका इलाज किया। लेकिन इस विषाक्त युद्धसे शरीरके रक्तपर कैसा घातक प्रभाव पड़ा, इसकी कल्पना या प्रश्न कोई नहीं करता। ऐसे रोग विषम और जीर्ण बन जाते हैं, 'डॉक्टरोंद्वारा बनाया गया' यह रोग† कहा जाता है। आजकल लोग पेटेण्ट दवाइयोंके प्रचारित गुण जानकर, अपनी बीमारीकी दशामें अमुक पेटेण्ट दवाको अनुकूल समझकर खाने-पीने और इंजेक्शन लेने लगे हैं, यह आत्म-चिकित्साकी पेटेण्ट पद्धति चलकर आत्मघाती सिद्ध हुई है। कब्ज होनेपर जुलाब ले लेनेकी अथवा एनिमा लेनेकी प्रथा चली आ रही है। किंतु ये दोनों प्रथाएँ आदत बनकर घातक होती हैं। पीयर्स साइक्लोपीडिया‡—विविध विषयक कोशमें—मेडिकल विभागके संग्राहक डॉक्टरने कब्जको कोई रोग नहीं माना, चाहे कई सप्ताहतक किसीको शौच न हो, वे कहते हैं—कोई चिन्ता न करनी चाहिये।

जुलाब लेनेपर लगातार दस्त होनेसे उसे बंद

* Pollution of Human Blood Stream—Alfred Pulford M. D.
† IATROGENIC disease.
‡ Pears Encyclopaedia.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करनेके लिये शामक दवा लेनेपर आँतोंकी गति बिल्कुल मृतप्राय हो गयी; जिससे आँतोंमें एक स्थानपर शुष्कता हो गयी और भूख-प्यास बंद हो गयी और कई महीनेतक कुछ भी खानेसे दस्त न होता था, केवल पेशाब होती थी; स्वयं चिकित्साद्वारा बनाये गये, 'आँतोंमें कैंसर'की कल्पना न करके अनुमान निदानसे सर्जनने उसकी अन्त्रपुच्छ* काट दी, जिससे उसका दर्द सौ गुना बढ़ गया तथा बुखार आनेपर वैद्यजीने स्वयं कुनैनका इंजेक्शन लगा लिया और दूसरे दिन अस्पताल जाकर परलोक चले गये, ऐसे अनुमानित निदानसे उपचार घातक हुए हैं। डॉक्टरोंद्वारा ऐसे अनुमानित निदान और उपचारसे तंग आकर निराश होकर लोग आत्महत्या भी कर डालते हैं। जनवरी १९५९के ब्रिटिश मेडिकल जर्नलमें डॉ० विलियम ईवान्सने डॉक्टरोंके इस 'धोखाधड़ीके निदान' † विषयमें लिखा है कि उनके पास अन्य डॉक्टरोंद्वारा ऐसे अनुमानित गलत निदान और इलाजके एक हजार व्यक्तियोंके इतिहास मौजूद हैं जिनकी छातीमें जरा दर्द उठनेपर डाक्टरोंने उन्हें 'कोरोनरी थ्रोम्बोसिस' कह दिया था। ऐसे एक ४७ वर्षीय मोटरचालकका निदान कर उसे लेटे रहनेकी आज्ञा दी। कुछ दिनों पश्चात् एक दूसरे डॉक्टरने यान्त्रिक‡ जाँच करके उसे 'एन्जाइना पेक्टोरिस' बताया। जिसमें थोड़ा-सा भी परिश्रम करनेपर रक्त-संचारकी कमीसे हृदयपर दबाव—दर्द जोरसे उठता है। डेढ़ महीने बाद डॉक्टरने उसे कामपर जानेकी आज्ञा दी। मोटर-कम्पनी-मालिकने इस 'लँगड़े हृदय' § वालेको कामपर लेनेसे इन्कार कर दिया, किसी दूसरी संस्थाने भी उसे नौकरी नहीं दी। लोग डरते थे, उसका 'हेल्थ कार्ड' देखकर, कि इसकी बीमारीसे कहीं अचानक इसकी मृत्यु हो जाय इसमें कितना नुकसान हो सकता है। अन्तमें निराश होकर, उसे झुककर चलते हुए नदी किनारे किसीने देखा। उसने आत्महत्या कर ली। निकालकर उसके हृदयकी मरणोत्तर चीरफाड़द्वारा जाँच की गयी तो हृदय सम्पूर्ण ठीक पाया गया, हृदयमें कोई वैसी बीमारी न थी, जैसा कि दो डॉक्टरोंने निदान और इलाज किया था।

अपने दुःखदर्दसे मुक्ति पानेके लिये, दवा नामकी प्रचारित दुर्गन्धित घृणित दुनियाकी किसी भी गंदी चीजको अमृतके नामपर लोग कैसे नाक दबाकर खा-पी जाते हैं अथवा रक्तमें घोल लेते हैं—अन्य जन्तुओंका रक्त, रस, मवाद, वे नहीं पहचानते, इसीपरसे ओलिवर वेण्डल होम्सने कहा था कि 'दवाके नामपर पृथ्वी या पातालमें, कोई भी वस्तु गंदी नहीं है।' मल-मूत्र और आर्तव तथा शूकर आदिसे भी वे दवाएँ बनती हैं। उनके नाम होते हैं—टाक्साइड, वेक्सीन (टीका), एण्टि टाक्सिन, और सैकड़ों नामवाले इंजेक्शन। इनके नाम हमारी समझमें नहीं आते। हम अन्य रोगी मानवों और पशुओंको बिना पहिचाने, वैज्ञानिक रसायनके सूक्ष्मरूपमें अपनी जीवन-रक्षाके निमित्त, अपने जाने-अनजाने किये पापों को धोनेके लिये—खा-पी जाते हैं। जिन्हें हम मुखद्वारा या सुईद्वारा अपने रक्तमें खाते-घोलते हैं—यदि वे मानव या जन्तु हमारे सामने उस दशामें, हमारे भोजनके रूपमें आवें तो हम सम्भवतः पागल हो जायँगे, परंतु वैज्ञानिक रूपान्तर देख, बिना पहिचाने उन्हें खा-पीकर हम पागल नहीं होते और अहिंसक, धार्मिक, हिंदू-मुसल्मान-जैन-पारसी-ईसाई आदि निष्ठा पूर्वक बने, पूजापाठ ध्यान-धारणा करते प्रतिष्ठित बने रहते हैं। इस युगके जीवनमें यह कैसी धार्मिक विडम्बना है!

दवाइयोंके चमत्कारका विज्ञापन अखबारों और रेडियो द्वारा रोज धड़ाधड़ होता है। ब्रिटिश मेडिकल जर्नलको इन विज्ञापनोंसे वार्षिक साढ़े छः लाख रुपयेकी आमदनी है और उन अखबारमें जिन दवाओंके विज्ञापन छपते हैं, उन्हीं दवाओंके विरुद्ध, होनेवाली हानियोंसे डॉक्टरों और जनताको सजग करनेके लिये ईमानदार सम्पादक और वैज्ञानिक लेखक कभी-कभी अपने अनुभवरूप लेख लिख दिया करते हैं। परंतु ये बातें जनता तक नहीं पहुँचतीं और निदान-उपचारमें सहस्रों डॉक्टर उन लेखोंको पढ़े बिना, दवा-उद्योगपतियोंके विज्ञापनोंसे प्रभावित होकर उन दवाइयोंका प्रयोग अपने अगणित रोगियोंपर करते हैं। ज्यों-ज्यों दवा दी जाती है, मर्ज बढ़ता जाता है।

रोग वस्तुतः इन दवाइयोंसे दूर होता है या शरीरकी प्राकृतिक रोगनिरोधक शक्तिसे ? इस विषयमें इंग्लैंडके विश्वमान्य डॉक्टरी अखबार 'लांसेट' के ३ जनवरी १९५९ के अङ्कमें एक मेडिकल प्रोफेसरका लेख छपा है—'डॉक्टरोंने समाजका कौन-सा भला किया है ? लोग समझते हैं कि डॉक्टर हमें स्वस्थ रख सकते हैं, रोग दूर कर सकते हैं, मौत रोक सकते हैं, डॉक्टर भी हमारे समान ऐसा विश्वास रखते हैं परंतु वास्तवमें लोग नहीं जानते कि उनकी स्वाभाविक शारी

* Appendix.
† Diagnostic unreliability.
‡ Electro cardiogram.
§ Cripple-hearted.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगनिरोधक शक्तिसे वे चंगे होते हैं; वे डॉक्टरोंका उपकार मानते हैं। बस, डॉक्टरोंपर विश्वास करके दुनियामें परम्परा चल रही है।'

अब दवाओंके मूल्य तथा डॉक्टरी व्यवहार-नीतिकी बातपर विचार कीजिये कि बहुत इलाज करनेपर भी रोग क्यों बढ़ रहे हैं। कई वर्ष हुए ब्रिटेनकी मेडिकल रिसर्च कौंसिलने दवाओंके बढ़ते मूल्यकी जाँच की तो पता लगा कि एक आनेकी दवापर तीन आनेकी शीशी, लेबल, पैकिंग आदि तथा बारह आने विज्ञापन—इस अनुपातसे खर्च होता है, और देशसे विदेशी बाजारोंमें पहुँचनेतक रेल-जहाज आदिका भाड़ा, बीचकी दलाली, दूकान, बिजली, नौकर आदिका सब खर्च, इन सबके अलावा उसपर लगाकर जनताको दवाएँ बेची जाती हैं। अब सोचिये आपने कितने रुपये खर्च करके दरअसल कितने पैसेकी दवा खायी ? और डॉक्टर यदि किसी बड़े घरमें, धनाढ्य, अधिकारी अथवा 'बड़े' लोगोंका घरपर इलाज करने जाय तो बड़के लिहाजसे रोगीकी आदतको—भोजन-व्यसनको कायम रखा जाता है। परहेजकी बात नहीं की जाती। ब्रिटेनके बादशाह छठवें जार्जके हृदयमें कोरोनरी थ्रोम्बोसिस और फेफड़ोंमें कैंसर हुआ था, सर क्लीमेंट प्राइस टामसने बादशाहका इलाज किया था, दो बार आपरेशन हुआ था, परंतु किसीने* बादशाहको सिगरेट पीनेसे नहीं मना किया। बादशाह ऊँचे दर्जेकी 'सुगन्धित' सिगरेट पीते थे। सिगरेट प्रायः उनके मुँहसे लगी रहती थी। इतना होकर भी ब्रिटेनके विख्यात डॉक्टरोंका कथन है कि कैंसरका खास कारण तमाखू नहीं है, यद्यपि इस विषयमें डॉ० डॉल और ब्रेड फर्डहिलने सन् १९५१ में शोध करनेके लिये ब्रिटेनके ४० हजार डॉक्टरोंको प्रश्नपत्र भेजा था जिसमें तमाखूसेवी डॉक्टरोंकी मृत्युके कारणकी जाँच की थी, मालूम हुआ कि तमाखू पीनेवाले ७८९ मरनेवाले डॉक्टरोंमेंसे ३६ की कैंसरसे मृत्यु हुई थी जब कि सात्त्विक लोगोंकी मृत्यु-संख्या शून्य थी। फिर भी अन्वेषक कहते हैं—चिन्ता मत करो, शोध होनेतक मनमानी पीते रहो।

खाद्य और पेय पदार्थोंको रंगीन आकर्षक स्वादिष्ट और सुगन्धित बनानेके तथा टिकाऊ बनानेके लिये 'कोलतार' से बने हुए अनेक प्रकारके रंगीन सुगन्धित विषोंका मिश्रण करनेकी प्रथा यूरोप-अमेरिकामें गत सौ वर्षोंसे चली आ रही है। औद्योगिक व्यवसायियोंकी इस स्वार्थनीतिसे जनताको बचानेके लिये एक व्यक्ति कितना हाथ-पाँव-सिर पटके ? और उसका नतीजा देखिये। चाहे वह सरकारी अधिकारी कितना भी ईमानदार हो, स्वार्थी व्यवसायियोंके मकड़जालमें वह घर-दबोचा जायगा। सत्यकी हत्या स्वार्थद्वारा यहाँ दिन-दहाड़े हो जाती है और कानून पुस्तकोंमें मौन रहते हैं। अमेरिकाके खाद्य और औषध प्रशासन*के प्रथम अध्यक्ष डा० हारवे विली थे। उन्होंने ईमानदारीसे अपना कर्तव्य निभानेके लिये इन विषाक्त व्यवसायियोंके विरुद्ध कलम और कदम उठाया। लगभग ५० वर्ष पहलेकी बात है। उनकी ऐसी नीतिके फल-स्वरूप उन्हें उस पदसे उतार दिया गया, लगातार और भी नीचेके पद दिये गये। उन्होंने अपनी एक पुस्तक† लिखकर सब विज्ञान और विकासके नामपर होनेवाली बुराइयोंका भंडाफोड़ किया, परंतु उन्हें बीस सालतक उस पुस्तकका कोई प्रकाशक नहीं मिला। पुस्तक छपी तो कुछ समय बाद सरकारद्वारा उसकी बिक्री रोक दी गयी, सब पुस्तक-विक्रेताओं-की दूकानोंसे वह पुस्तक निकालकर जला दी गयी और वह सुधारक लेखक इन अनुभवोंसे धक्का खाकर बीमार पड़ा और दुनिया छोड़ चला।

हृदयरोगी अथवा अनुमानित भ्रान्त हृदयरोगियोंको सहारा समाधान देनेके लिये एडिनबर्ग—स्कॉटलैंडके प्रसिद्ध प्राकृतिक उपचारक जेम्स थाम्सनने भी एक पुस्तक‡ लिखी है जिसके अबतक दस संस्करण छप चुके हैं और जिसे पढ़कर अनुकूल आहार-आचरण करनेपर भ्रान्त अनुमानित हृदय रोगियोंको लाभ हुआ है और बहुतोंने लिखित साक्षी और डॉक्टरी सब प्रकारकी जाँचद्वारा स्वयंको, पूर्व निदानोंके प्रति सर्वथा स्वस्थ सिद्ध किया है, इतना होनेपर भी उक्त पुस्तकको प्रचलित डॉक्टरी सिद्धान्तोंके अनुकूल न पाकर, उसमें दवा आदिकी सिफारिश न पाकर, अमेरिकन हृदयरोगविशेषज्ञ अधिकारी डॉ० क्लेटन ईथरिजने बिल्कुल रद्द कर दिया है, अमेरिकामें उक्त पुस्तकका आयात निषिद्ध कर दिया है; क्योंकि जब केवल पुस्तक पढ़कर लोग आत्मचिकित्सा करने लग जायँगे तब अज्ञानी आत्मापराधी हृदयरोगी दुनियाको घबरा देनेवाले इन डॉक्टरोंका कौन विश्वास करेगा ? अमेरिकामें इस पुस्तकका नाम, लेखकके नामसहित, तेरह शब्दोंके विज्ञापनपर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है। अमेरिका सब प्रकारसे

* "You do not say the kind of thing to a king."

* U. S. Food and Drug Administration.

† A History of a Crime against the Pure Food Law.

‡ The Heart.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्र देश माना जाता है, इंग्लैंडमें वाणी एवं विचार-प्रकाशनका सबको अधिकार है । व्यक्तिगत चिकित्सा एवं जीवन-प्रणाली-यापनके विषयमें प्रेसिडेंट आइसनहावरका मत है कि 'बीमारीकी दशामें मनुष्य अपनी इष्ट चिकित्सा-पद्धतिमें स्वतन्त्र है ।'

अमेरिकन स्वतन्त्रता-घोषणामें हस्ताक्षर करनेवाले डॉ० बेंजामिन रश तथा भूतपूर्व एटर्नी जनरल हर्बर्ट ब्राउनेल, विख्यात मेडिकल प्रोफेसर डॉ० रिचार्ड केबाट 'विज्डम ऑफ ह्यूमन बॉडी'के लेखक, तथा वैज्ञानिक डॉ० एलेक्सिस केरल—'मैन द अन्नोन' ( Man the Unknown ) के लेखकके भी इस पक्षमें मत हैं कि प्रचलित चिकित्सा-पद्धतिको त्यागकर हमें स्वेच्छासे प्रकृतिके शरणागत होना चाहिये । किंतु इन बातोंको और स्वतन्त्रता-घोषणाको मानता कौन है ?

अमेरिकन उच्चाधिकारीकी ऐसी हिटलरशाहीसे अमेरिका-की स्वतन्त्रता-घोषणापर बड़ा लाञ्छन लगता है ।

हम भारतीय लोग तो गाँवोंमें अभी स्वाभाविक शुद्ध अन्न साग-फल-दूध अपने परिश्रमसे उपार्जित कर सकते हैं, परंतु आपको मालूम होना चाहिये कि पश्चिमी वैज्ञानिक लोग अपने देशवासियोंको वैज्ञानिक प्रयोगोंसे कैसा भोजन-पानी देते हैं—हमारे पास उत्तरी इंग्लैंडसे एक अंग्रेज बहिनका व्यक्तिगत पत्र आया है, जिसमें उनने लिखा है—आपने भारतीय मिठाई, मेवोंकी बढ़िया पारसल भेजी, वह मिली, किंतु हम इन्हें कैसे बनावें-खावें, नहीं मालूम । भला हम भी यदि आपको यहाँकी कोई वस्तु भेजें तो वह आपके लिये रद्दी चीज होगी । यद्यपि उत्तम भोजनके नामपर वह इस देशमें और अमेरिकामें चलती है, उन सबपर हर दशामें रासायनिक प्रयोग—मिश्रण होता है । पहले तो जमीनमें रासायनिक खाद डालते हैं, उगती है तो तरल रसायन उनपर कीटाणुसे रक्षाके लिये छिड़का जाता है—स्वचालित हवाईजहाजों और हेलिकॉप्टरोंसे; फसल कटनेपर पुनः उनपर जहरीले छिड़काव तथा यन्त्रोंमें छिलका निकालने, छीलने, पीसने, भूननेकी क्रिया होती है । आटामें भी ऐसी चीजें मिलायी जाती हैं, रोटी तो बेस्वाद नीरस होती है, मानो ब्लाटिंग पेपर खा रहे हों, मिठाइयोंमें रंग और सुगंध मिलाकर उन्हें आकर्षित, मीठी और स्वादिष्ठ बनाया जाता है—इन सबमें पोषण कुछ भी मूल्य नहीं रखता । हमारी आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता, खेती, भोजन, व्यसन, दवा, डॉक्टरी व्यवहार, कानून-कायदे—यह सब कैसी विडम्बना है ! आगे हमारा और हमारी पीढ़ियोंका क्या हाल होगा ! किंचित् कल्पना कीजिये ।

अमेरिकामें दक्षिणी मेडिकल संघके प्रेसिडेंट डॉक्टर मार-शल टेलरने लिखा है—'गर्भावस्थामें माताओंको गर्भपात अथवा शीघ्र प्रसव करानेके लिये जो 'कुनैन' दिया जाता है उससे जन्मी हुई संतानका रक्त इतना विषाक्त हो जाता है कि वह बहरी, अपंग, विकृतमस्तिष्क और अनेक प्रकारसे क्षीण हो जाती है । हम ऐसे सभ्य संसारका निर्माण कर रहे हैं जिसमें कुछ वर्षोंमें बहरे, लंगड़े, अंधे, अपंग, विकृतांग और पागल लोग होंगे ।'

आजकल एक्स-रे परीक्षाद्वारा रोगियोंके अन्तरंग रोगका निदान करनेकी प्रथा विश्वसनीय बन गयी है और किसी रोगीका निदान कठिन जान पड़नेपर एक्स-रेद्वारा निदान करनेकी 'भेड़ियाधसान' सलाह डॉक्टरोंद्वारा दी जाती है । इससे कतिपय अनावश्यक अवस्थाओंमें एक्स-रेसे निदान करनेका कालान्तरसे क्या हानि होती है—इस विषयमें इंग्लैंडसे प्रकाशित ४ जनवरी ५९ के 'संडे पिक्टोरियल'में एक माता-पिताका पत्र छपा है जिनकी लड़की 'जीर्ण* पाण्डु'से मर रही थी, बताया गया था कि उसके जन्मके पहले, गर्भावस्थामें उसकी माँकी एक्स-रे परीक्षा की गयी थी, उसी कारण लड़कीको यह रोग जन्मके बाद प्रकट हुआ । गर्भावस्थामें एक्स-रे परीक्षा हानि-कारक—घातक सिद्ध हुई है । इस विषयमें कोलम्बिया विश्व-विद्यालयके रेडियो डॉक्टर राबर्ट्स, डॉ० रफ तथा डॉ० ईरिका ग्रुपने सालभर पहले 'अमेरिकन एसोसिएशन फॉर एडवान्समेण्ड ऑफ साइन्स'के समक्ष अपनी रिपोर्टमें बता दिया है कि गर्भवती महिलाओंकी एक्स-रेद्वारा परीक्षा न की जानी चाहिये । चाहे कितने दिनका भी गर्भ हो ।

---

* Leukemia.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देवाराधन, भगवदाराधन और भगवन्नामका चमत्कार

## ( विश्वसंकट एक बार टल गया )

अष्टग्रहयोग आया और चला गया। यूरोपमें हल्के भूकम्प, स्थान-स्थानपर बरफीले तूफान, बरफके पहाड़ टूटनेसे दो-चार हजार मनुष्योंकी मृत्यु; कहीं-कहीं मोटर-रेल-विमान-दुर्घटनाएँ; अल्जीरिया, नेपाल, पाकिस्तान तथा अन्य कुछ देशोंमें—न्यूनाधिक अशान्ति, बहुत-से देशोंमें शीतलहरी आदिके अतिरिक्त कोई खास विनाशकारी दुर्घटना नहीं हुई। सबकी भविष्यवाणियाँ झूठी हो गयीं। कहीं कोई संहारकार्य नहीं हुआ। इससे कुछ लोगोंके मनोंमें कई तरहके विचार आ रहे हैं, जिनमें कुछ ये हैं——

( १ ) आकाशके ग्रह-नक्षत्रोंका कोई फल मानना मूर्खता है और उनके कुफलसे बचनेके लिये 'हरे राम' आदि नाम ले-लेकर चिल्लाना तथा घी-अन्न आदि उपयोगी चीजोंको आगमें फूँककर नष्ट कर देना इससे भी बड़ी मूर्खता है।

( २ ) करोड़ों रुपये इन कार्योंमें व्यय हो गये। देशभरमें हो-हल्ला मच गया। तमाम लोगोंने अपने धन तथा समयको मूर्खतापूर्ण वहमके कारण मिथ्या धारणावश कल्पित देवताओंकी पूजा-आराधनामें लगाया। इस प्रकार धन और समयकी व्यर्थ बरबादी हुई।

( ३ ) ब्राह्मणोंने स्वार्थवश अपने लाभके लिये झूठी भविष्यवाणियाँ लिख-लिखकर आतङ्क फैलाया, लोगोंको भयभीत किया और यज्ञ-पाठ आदिके नामपर अपना स्वार्थ-साधन किया।

यह एक श्रेणीके विरोधी विचारवाले महानुभावोंके उद्गारोंका सार है। दूसरी श्रेणीके विश्वास रखकर देवाराधन करने-करानेवालोंमेंसे भी कुछ थोड़ेसे सज्जन कहते हैं——

( १ ) इतनी भविष्यवाणियाँ हुईं, कहीं कुछ भी नहीं हुआ। इससे लोगोंमें अविश्वास बढ़ गया। कहीं तो कुछ होना ही चाहिये था, जिससे विश्वास बढ़ता।

( २ ) हमने जो इतना पैसा तथा समय खर्च किया-कराया, इसपर लोग हँसते हैं और बहुत-से नेता तथा सुधारक लोग तो हमें मूर्ख बतलाते हैं।

उपर्युक्त शंका करनेवालोंकी पहली श्रेणीमें तो आधुनिकताके प्रवाहमें बहनेवाले वे सज्जन हैं, जिनका न तो शास्त्रमें विश्वास है, न शास्त्रीय यज्ञादि अनुष्ठानोंमें, न धर्ममें, न भगवन्नाममें और न प्राचीन भारतीय संस्कृति-सदाचारकी श्रेष्ठतामें ही। ये तो इन सभी कार्योंको मूर्खता या ढोंग बतलाते हैं।

दूसरी श्रेणीके सज्जन विश्वासी तो हैं, पर वे अपने विश्वासका दूसरोंमें समर्थन चाहते हैं, उपहास होनेपर जिनका उत्साह कुछ शिथिल हो जाता है और इसलिये खिन्न हो जाते हैं। अतः इन शंकाओंके सम्बन्धमें कुछ विचार करना प्रयोजनीय है। इसलिये नहीं कि जिनका विश्वास नहीं है, वे मान लें। उन्हें न तो मनवानेकी आवश्यकता है और न वे अभी मानेंगे ही। यह विचार तो इसलिये किया जाता है कि जिससे सत्यपर आवरण न आ सके और विश्वासी लोगोंके विश्वासमें शिथिलता न आने पाये।

शंकाओंके उत्तर——

( १ ) ज्यौतिषशास्त्र सत्य है, ग्रह-नक्षत्रोंका फल होता है। ग्रहोंकी गतिको ठीक-ठीक जानने तथा उनका फल निर्देश करनेमें भूल हो सकती है, पर फल तो अवश्य होता है। यह चिरकालसे अनुभूत सिद्धान्त है, अतः यह मूर्खता नहीं है और ग्रहोंके कुफलसे बचनेके लिये की जानेवाली देवाराधनाका तथा भगवदाराधनाका फल अवश्य होता है। देवाराधना यदि ठीक-ठीक एवं प्रचुर मात्रामें हो तो उसके द्वारा व्यक्ति और समष्टिके नवीन शुभ प्रारब्धका निर्माण होता है और फलदानोन्मुख प्रारब्धको रोककर बीचमें उसका फल प्रकट हो जाता है। इस सात्त्विक कार्यमें लगना मूर्खता नहीं, वरं बड़ी बुद्धिमत्ता है। देवाराधना एवं यज्ञादिके सम्बन्धमें गीतामें भगवान्ने कहा है——

> सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
> अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
> देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
> परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
> इष्टान् भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
> तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥
>
> ( ३। १०—१२ )

'सृष्टिके आदिमें प्रजापतिने यज्ञसहित प्रजाकी रचना करके कहा कि इस यज्ञके द्वारा तुमलोग वृद्धि प्राप्त करो और यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ तुम्हारी इच्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाला हो। तुम-लोग ( मानव ) इस यज्ञके द्वारा देवताओंकी उन्नति ( पुष्टि ) करो और वे देवता तुम्हारी उन्नति करें। इस प्रकार परस्पर एक दूसरेकी उन्नति करते हुए तुम परम कल्याणको प्राप्त करोगे। यज्ञके द्वारा संतुष्ट देवता तुम्हारे बिना माँगे ही तुम्हें इच्छित भोग प्रदान करेंगे। उन देवताओंके द्वारा दिये हुए भोगोंको जो उन्हें समर्पण किये बिना ही भोगता है, वह निश्चय ही चोर है ( और परिणाममें उसे दण्ड भोगना होगा। भोग छिन जायँगे और दुर्गति होगी )।'

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥(४।१२ )

'जो लोग इस मनुष्यलोकमें कर्मफलकी आकाङ्क्षा करके देवपूजन करते हैं, उनके कर्मोंसे उत्पन्न सिद्धि उन्हें बहुत शीघ्र प्राप्त होती है।'

अतएव देवाराधन व्यर्थ तो है ही नहीं; परम कर्तव्य है और सुख-समृद्धि-सम्पत्तिकी प्राप्ति तथा दुःख-अशान्ति-विपत्तिके नाशका अमोघ साधन है। बल्कि न करनेवालोंको इस चोरीका दण्ड परिणाममें भोगना पड़ेगा, देर भले ही हो। अतः वैदिक यज्ञादि करने-करानेवाले सभी सज्जनोंने विश्वप्राणियों-के कल्याणार्थ बड़ा ही मङ्गलमय कार्य किया है। अग्निमें आहुति दी जानेवाली वस्तुओंका नष्ट होना मानने-कहनेवाले वैसे ही यज्ञके रहस्यसे अनभिज्ञ अविश्वासी लोग हैं, जैसे खेतीके रहस्यको न जाननेवाले कोई बच्चे धरतीमें बीज बोनेको अन्नका नष्ट करना समझें। त्रिकालज्ञ ऋषि-महर्षियोंने अपने अनुभवोंसे यज्ञादिकी उपादेयता तथा नवीन प्रारब्धके निर्माणद्वारा शीघ्र शुभफलदान करनेकी शक्तिमत्ता बतलायी है और वह सर्वथा सत्य है। देवताओंकी तुष्टिसे ही मानवकी पुष्टि होती है।

इसी प्रकार भगवन्नाम परम मङ्गलमय तथा सम्पूर्ण बड़े-से-बड़े उपद्रवोंको—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक व्याधियोंको मिटाकर सब प्रकारसे परम कल्याण करनेवाला है। भगवन्नाम-कौमुदीकार भगवन्नामकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

अंहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य।
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥

'जैसे भगवान् सूर्य उदय होनेमात्रसे ही समस्त अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही श्रीहरिका नाम एक बार उच्चारण करनेमात्रसे ही जीवमात्रके सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है, अतः समस्त जगत्का मङ्गल करनेवाले श्रीहरिनामकी जय हो।'

भगवन्नामकी अनन्त महिमा है। वह केवल लोक-परलोक तथा भोग-मोक्षका ही परम साधन नहीं है, दुर्लभ भगवत्प्रेम-की प्राप्तिमें भी परम सहायक होता है। सभी ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओंने नामकी महिमा गायी है। वेदोंसे लेकर आधुनिक संतोंकी तमाम वाणियाँ भगवन्नामकी महिमासे भरी हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु, गोस्वामी तुलसीदासजी आदिने तो केवल नामपर ही भरोसा करनेकी बात कही है। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव कहते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

'भगवान् श्रीकृष्णका नाम-संकीर्तन चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जित करनेवाला है, ( दुःखमय ) संसाररूपी महान् दावानलको बुझा देनेवाला है, कल्याणरूपी कुमुदिनीके विकासके लिये चन्द्रिकाका विस्तार करनेवाला है, पराविद्यारूपी वधूका जीवनरूप है, आनन्द-समुद्रका बढ़ानेवाला है, पद-पदपर पूर्ण अमृतका आस्वादन करानेवाला है और सब प्रकारसे बाहर-भीतर स्नान करानेवाला है—समस्त मलोंको—सारे पाप-तापोंको धोकर सम्पूर्ण आत्माको आनन्दसे सराबोर कर देनेवाला है। इन सात लक्षणोंवाला श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन ही सर्वत्र विजयको प्राप्त होता है।'

'हे भगवन्! जीवोंकी विभिन्न रुचियोंको देखकर ही आपने अपने राम, कृष्ण, मुकुन्द, गोविन्द, गोपाल, दामोदर आदि नाम प्रकट किये हैं और प्रत्येक नाममें अपनी समस्त शक्ति भी निहित कर दी है। साथ ही नामस्मरणके लिये किसी देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रक्खा, अर्थात् कहीं भी, किसी समय भी, कोई भी नाम-स्मरण कर सकता है। प्रभो! आपकी जीवोंपर इतनी अहैतुकी अनुकम्पा होनेपर भी मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि आपके नाममें अनुराग नहीं हुआ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-कौमुदीकार श्रीलक्ष्मीधर नामनिष्ठाके लिये प्रार्थना करते हैं—

श्रीरामेति जनार्दनेति जगतां नाथेति नारायणे-
त्यानन्देति दयापरेति कमलाकान्तेति कृष्णेति च ।
श्रीमन्नाममहामृताब्धिलहरीकल्लोलमग्नं मुहु-
र्मुह्यन्तं गलदश्रुनेत्रमवशं मां नाथ नित्यं कुरु ॥
श्रीकान्त कृष्ण करुणामय कञ्जनाभ
कैवल्य-वल्लभ मुकुन्द मुरान्तकेति ।
नामावलीं विमलमौक्तिकहारलक्ष्मी-
लावण्यवञ्चनकरीं करवाणि कण्ठे ॥

'हे श्रीराम, हे जनार्दन, हे जगन्नाथ, हे नारायण, हे आनन्दस्वरूप, हे दयापरायण, हे कमलाकान्त, हे श्रीकृष्ण, हे नाथ ! ऐसे आपके जो सम्बोधन नामरूपी महान् सुधा-समुद्र हैं, उनकी प्रेमरूपी लहरियोंमें मुझे निमग्न कर दीजिये । विषयी लोगोंका जैसा मोह संसारके प्राणीपदार्थोंमें होता है, आपके नाममें मेरा वैसा ही मोह उत्पन्न कर दीजिये । नामकीर्तन करते समय मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी अजस्र धारा बहती रहे और मैं कीर्तनानन्दमें विवश बना रहूँ । प्रभो ! आप नित्य-निरन्तर मेरी यही स्थिति कर दीजिये ।'

'श्रीकान्त, कृष्ण, करुणामय, कमलनाभ, कैवल्यवल्लभ, मुकुन्द, मुरारे—आपकी यह निर्मल मुक्ताहारकी शोभा-सुषमाको तिरस्कृत कर देनेवाली विमल नामावली हम सदा-सर्वदा अपने कण्ठमें धारण किये रहें—ऐसी कृपा कीजिये ।'

श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

'श्रीकृष्ण ! आपका नाम लेते ही मेरी आँखोंसे अश्रुओंकी अजस्र धारा बहने लगे, वदन गद्गद हो जाय, वाणी रुक जाय और शरीर रोमाञ्चित हो जाय—ऐसा कब होगा ?' गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोरे तो रामको नाम कलपतरु कलि-कल्यान फरो ॥
× × ×
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम नामहि तें तुलसिहि समुझि परो ॥

जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका । भए नाम जपि जीव बिसोका ॥
नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु ।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदासु ॥

महात्मा गाँधीजीकी दैनिक प्रार्थनामें नाम-संकीर्तनका मुख्य स्थान था । ( यद्यपि उनके अनुयायी कहलानेवाले आज गाँधीजीकी राम-धुनको छोड़ चुके हैं । ) अतः नाम-संकीर्तनको 'चिल्लाना' बतलाना सर्वथा अज्ञताका ही सूचक है ।

इसी प्रकार वेदके सर्वश्रेष्ठ मन्त्र 'गायत्री'के पुरश्चरण रुद्राभिषेक, श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायण, श्रीवाल्मीकिरामायण के नवाह्न-पारायण, श्रीरामचरितमानसके पारायण—ये महा[न] अनुष्ठान सब प्रकारके अकल्याण, उपद्रव, अशान्ति, त्रिवि[ध] ताप, अज्ञान आदिके निश्चित नाशक तथा समस्त कल्याण शान्ति, सुख, ज्ञान, प्रेमके अमोघ साधन हैं ।

बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि भगवान्‌की अहैतुक कृपासे भारतवासियोंके हृदयमें ऐसे सद्विचारोंका उदय हु[आ] और ( इस भय तथा विपत्तिसे बचनेके लिये ही सही ) भारतके प्रत्येक प्रान्तमें गाँव-गाँव और घर-घरमें देवाराध[न] भगवदाराधन, नामकीर्तन आदि होने लगे । इस अशुभसे इ[स] प्रकार परम शुभकी उत्पत्ति हुई । करोड़ों-करोड़ों कण्ठोंसे लगात[ार] परम मङ्गलमय भगवन्नामकी ध्वनि हुई, हजारों-लाखों स्थानों[में] यज्ञ, रुद्राभिषेक, गायत्रीपुरश्चरण, भगवान्‌के विविध रूपो[ंका] अर्चन, श्रीमद्भागवत, वाल्मीकि रामायण, मानस आदि[के] पारायण हुए । इसमें धन और समयकी बरबादी नहीं हु[ई,] वरं यथार्थ रूपमें सद्व्यय तथा सदुपयोग हुआ और यही हो[ना] चाहिये । मानव-जीवनका प्रधान कर्तव्य ही है भगवदाराधन[।] यह मूर्खतापूर्ण वहम या मिथ्या धारणा नहीं है, ब[ल्कि] शास्त्रसम्मत ऋषि-मुनि-सेवित सत्य सिद्धान्त है । इसमें [तो] सर्वत्र मङ्गल-ही-मङ्गल है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिसि दस[हू] ॥

कल्याण-कार्य किसी भी निमित्तसे हो, उसका परि[णाम] परम कल्याणमय ही होगा । सच्ची बात यही है कि भार[तके] इस देवाराधना तथा भगवदाराधनाने विश्वको घोर विप[त्तिसे] बचा लिया । ज्यौतिषियोंकी भविष्यवाणियाँ प्रायः सत्य थीं[;] विश्वकल्याण, विश्वशान्तिके संकल्पसे होनेवाले इन म[हान्] आराधन-अनुष्ठानोंने नवीन प्रारब्धका निर्माण करके स[मस्त] विश्वका कल्याण किया । एक महान् संकट एक बार तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गया, यद्यपि उसके भविष्य परिणामका पूर्ण रूपसे टल जाना तो इन आराधना—अनुष्ठानोंके विश्वकल्याण तथा विश्वशान्तिके संकल्पसे दीर्घकालतक सर्वत्र चालू रहनेपर ही निर्भर करता है।

इस प्रकारके सत्कार्योंमें श्रद्धा, रुचि, प्रवृत्ति आदि सब भगवत्कृपासे ही होती है। कितना महान् मङ्गलमय कार्य हुआ। घर-घरमें पवित्र मङ्गलमयी भगवन्नाम-ध्वनि, मुहल्ले-मुहल्लेमें पवित्र देवाराधना-भगवदाराधना और यह सब केवल अपने लिये ही नहीं, समस्त विश्वके कल्याणके उदार संकल्पसे। इसीसे यह विश्वकल्याण हुआ है।

धन, समय, शील, सदाचार, अहिंसा और प्रेमकी महान् बरबादी तो आजकल जनतन्त्रके नामपर होनेवाले इस चुनाव-कार्यमें हो रही है। जहाँ अच्छे-से-अच्छे विद्वान्, सुशील तथा सदाचारी पुरुष अत्यन्त निम्न-स्तरपर उतर आते हैं। अपने मुँहसे अपनी मिथ्या प्रशंसा और प्रतिपक्षीकी आक्षेपमयी गंदी मिथ्या निन्दासे इस चुनावरूपी तामस यज्ञका आरम्भ होता है। गाली-गलौज, हिंसा-प्रतिहिंसा, द्वेष-दम्भ, मारपीट, खून-खराबी आदि इसके प्रधान साधन बन जाते हैं। वर्तमानमें पिस्तौलका भय दिखाकर तथा भविष्यमें कई प्रकारके लाभोंका प्रलोभन देकर वोट माँगे जाते हैं। वोटोंके लिये शराब तथा रुपये बाँटे जाते हैं। वैमनस्य बढ़ानेवाले गंदे कार्य किये जाते हैं। जीवनभरके लिये वैरभावना उत्पन्न होती है। निन्दा-दोषपूर्ण कार्योंमें समयका दुरुपयोग होता है और सब मिलाकर करोड़ों-अरबों रुपये खर्च हो जाते हैं। हो-हल्ला तो इतना होता है कि प्रजाका काम ही रुक जाता है। पर यह दुर्दैव ही है कि इसको जागृति और उन्नतिका स्वरूप माना जाता है और यज्ञोंकी, भगवन्नामकी, सदनुष्ठानोंकी अनर्गल निन्दा करनेवाले विद्वान्, बुद्धिमान्, देश तथा समाजका कल्याण करने तथा चाहनेवाले ईमानदार लोग बड़े ही उत्साह तथा चावसे इस मिथ्याश्रयी तामसी कार्यमें प्रवृत्त हो रहे हैं!

सिनेमा जगत्—जो जनताके धन, सदाचार, धर्म तथा शीलका प्रत्यक्ष नाशक है—उन्नति तथा उच्चस्तरका प्रतीक बताया जाता है और उसमें समय तथा धनका बुरी तरहसे दुरुपयोग हो रहा है। ऐसे ही उन्नति, विकास तथा कल्याणके नामपर होनेवाले समय-सम्पत्तिके नाशक अनेकों कार्य बड़े उत्साहसे चलाये जा रहे हैं। यही बुद्धिका विपर्यय है। तमसाच्छन्न बुद्धि इसी प्रकार विपरीत निर्णय किया करती है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

> अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।
> सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

'अर्जुन! तमोगुणसे छायी हुई जो बुद्धि अधर्मको धर्म मानती है तथा अन्य सब अर्थोंमें भी ( पुण्यको पाप, पापको पुण्य; भलेको बुरा, बुरेको भला; न्यायको अन्याय, अन्यायको न्याय; समय-सम्पत्तिके सदुपयोगको दुरुपयोग, दुरुपयोगको सदुपयोग—आदि इस प्रकार ) विपरीत ही निर्णय करती है, वही तामसी बुद्धि है और तमोऽभिभूत मनुष्योंका परिणाममें अधःपात निश्चित है—

> 'अधो गच्छन्ति तामसाः।'

'ब्राह्मणोंने स्वार्थवश भविष्यवाणी की'—इसका उत्तर यह है कि अष्टग्रहीका फल बतलानेवाले केवल ब्राह्मण ही नहीं थे, अन्य वर्णोंके लोग भी थे! भारतमें प्रलयकी बात किसीने नहीं कही वरं भारतकी अपेक्षा भी भयानक भविष्यवाणी तो इंगलैंडके विद्वानोंने की थी, जिन्होंने ७५ प्रतिशत जनताके विनाशकी बात कही थी और स्वयं पहाड़ोंपर जाकर प्रार्थना की थी। भारतके प्रायः सभी विद्वानोंने अनिष्टमय भविष्य बतलानेके साथ ही देवाराधना, भगवदाराधना, नामकीर्तन आदिके द्वारा अनिष्टके टलनेकी भी बात कही थी। जैसे उनकी अनिष्ट होनेकी बात सत्य थी, वैसे ही आराधनासे अनिष्टनाशकी बात भी सत्य थी। तथा भारतीय जनसमूहने सर्वत्र विपुल आराधना की और उसीके फलस्वरूप घोर अनिष्ट एक बार टल गया। यह व्यर्थता नहीं, वरं आराधनाका चमत्कार है।

सच कहा जाय तो यह भी कहा जा सकता है कि इन आराधन-अनुष्ठानोंको मूर्खता बतलानेवाले लोगोंका होनेवाला अनिष्ट भी उनके मूक हितैषी सज्जनोंकी आराधनासे ही वैसे ही टला है, जैसे किसी ऋणग्रस्तका ऋण उसका कोई हितैषी मित्र उसको बिना ही जनाये अपने पाससे चुका दे और वह ऋणदाताके द्वारा की जानेवाली नालिश तथा जब्ती-जेल आदिसे बच जाय।

जो महानुभाव यह कहते हैं कि 'कहीं कुछ तो होना चाहिये था, जिससे अविश्वास न होकर विश्वास बढ़ता।' उनका यह मानना-कहना सुन्दर है। वे बहुत अच्छी नीयतसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही ऐसा कहते हैं, पर उन्हें समझना चाहिये कि किसीके मानने-न-माननेसे सत्यमें अन्तर नहीं पड़ता। सत्य सदा सत्य ही है। कोई आराधनाके फलको चाहे न माने, पर जब उसका फल हुआ है तो वह सत्य ही है। अविश्वासी लोग तो—इतने आराधन-अनुष्ठानोंके होनेपर यदि कहीं विनाश हो जाता तो यह कहते कि 'आराधन-अनुष्ठानोंसे क्या होता है? यह सब तो निरा ढोंग है। इनसे कुछ हो सकता तो क्या यह विपत्ति नहीं टलती।' वे लोग तो जैसे अब 'कुछ विशेष न होनेपर' इसको धन तथा समयकी मूर्खतापूर्ण बरबादी कहते हैं, वैसे ही 'कुछ हो जाने' पर भी कहते ही। अतएव उनके समर्थनकी अपेक्षा न रखकर अपने विश्वासके अनुसार सत्यपर अटलरूपसे स्थित रहना चाहिये। अपने विश्वासपर अकेले रहनेमें भी आपत्ति नहीं है। जिन महानुभावोंने श्रद्धा-विश्वासपूर्वक बड़े-बड़े यज्ञादि अनुष्ठान किये-कराये, वे यह तो चाहते ही नहीं थे कि इन यज्ञोंका फल न हो और भविष्यवाणियाँ सत्य हो जायँ। अथवा विश्वकल्याण तथा विश्वशान्तिका संकल्प करनेपर भी केवल हम बच जायँ और विश्वके शेष अंशमें संहार हो। अतः कहीं कुछ नहीं हुआ, इससे दुखी या लज्जित न होकर उन्हें अपने प्रयत्नको गौरवके साथ सफल मानना चाहिये और जरा भी शंका न करके यह निश्चित समझना चाहिये कि इस आराधनासे ही एक बार संकट टल गया है। पर अभी अष्टग्रहीका फल आगे भी हो सकता है और हो भी रहा है। हैम्बर्ग आदिमें भीषण बाढ़से जननाश, अपार धननाश हुआ। एक जगह बरफका पहाड़ टूटनेसे एक हजार मनुष्य मर गये। कई जगह भयानक बरफीले तूफान आये, भीषण हिमपात हुआ, टर्कीमें विद्रोह हुआ और अल्जीरियामें कलह-नरहत्याएँ हुईं। अतएव विश्वासपूर्वक जनताको भगवान्‌की आराधनामें लगे ही रहना चाहिये। इसमें कल्याण-ही-कल्याण है। और हर्षका विषय है कि लोगोंमें इस शुभ प्रवृत्तिका अभ्यास-सा हो जानेके कारण नाम-संकीर्तनादि, पारायण तथा यज्ञादि अभी चल ही रहे हैं। इनका परिणाम कल्याणमय ही होगा। शुभ बीजका शुभ फल भी फलेगा ही।

वास्तवमें भगवान्‌की आराधना और विशुद्ध धर्मका सेवन छूट जाने तथा केवल भौतिक उन्नतिकी साधनामें लग जानेके कारण ही आज विश्वपर महान् संकट छाया है। विज्ञानके नामपर विनाशकी योजना इसीका परिणाम है। भगवानका—अध्यात्मका आश्रय न लेकर जहाँ केवल भौतिक भोगोंका आश्रय होता है, वहाँ द्वेष, कलह, हिंसा, अशान्ति, उपद्रव, महामारी, दैवीप्रकोप आदि अवश्यम्भावी हैं; क्योंकि मनुष्य कामोपभोग-परायण स्वेच्छाचारी होकर दुष्कर्मोंमें—पापोंमें संलग्न हो जाते हैं और पापका फल ताप निश्चित है। जहाँ चन्द्रगुप्तके युगमें चावल तीन पैसे मन था, साईस्ता खाँके जमानेमें दो आने मन था, अभी बीस-बाईस वर्ष पहले ढाई रुपये मन था और अब पैंतीस चालीस रुपये मन है। जनतामें बीमारी भी उत्तरोत्तर बढ़ रही है। सभी बातोंमें प्रशंसा-प्राप्त अमेरिकामें कितना रोग फैल रहा है, इसका अनुमान इसी अङ्कमें प्रकाशित, 'रोगी देश अमेरिका' शीर्षक लेख पढ़नेसे लग जायगा। धन बढ़ा, विज्ञान बढ़ा, व्यापार बढ़ा, कारखाने बढ़े, अधिकार बढ़े और विनाशी शस्त्रास्त्र बढ़े—पर त्याग घटा, शान्ति घटी, सुख घटा, प्रेम घटा, कर्तव्य घटा। परिणाम सामने है।

अष्टग्रही हो या और कुछ—मनुष्य अपने ही किये हुए कर्मोंका फल भोगता है। महाविनाशके प्रसंगमें भी मनुष्य बच जाता है!

फिर, अष्टग्रही हो या न हो भगवान्‌का भजन, दैवी-सम्पत्तिका सेवन तो सदा ही मनुष्यका परम कर्तव्य है।

अतएव सदाचार, सेवा, दीनसेवा, सद्व्यवहार, दया, प्रेम, अहिंसा, दान, भगवन्नाम-जप-कीर्तन, यज्ञ, देवाराधन तथा भगवदाराधनमें सदा ही रुचि रखनी चाहिये और इनका सेवन करते ही रहना चाहिये। इसीमें परम कल्याण है।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

'विश्वका कल्याण हो, दुष्टलोग निष्ठुरताका त्याग करके प्रसन्न हों, समस्त प्राणी कल्याणका चिन्तन करें, उनके मन कल्याणमय भावोंको धारण करें तथा उनकी और हमारी सबकी बुद्धि अहैतुकरूपसे अधोक्षज श्रीभगवान्‌में प्रवेश कर जाय।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# रोगी देश अमेरिका

अमेरिकामें आज आधीसे अधिक जन-संख्या, जिसमें बच्चे भी गिन लिये गये हैं, किसी-न-किसी जीर्ण रोगसे ग्रस्त बतायी जाती है। दिनोंदिन बढ़नेवाली और विनाशकारिणी व्याधियोंकी यह आँधी जन-धनकी कितनी क्षति कर रही है उसकी गिनती मस्तिष्कको चकरा देनेवाली है। × × × न्यूयार्कके जेरिआट्रिओज क्लिनिक मेट्रोपालिटन अस्पतालके प्रधान डा० डब्ल्यू कोडा मार्टिनके अनुसार आज जीर्ण रोगियोंकी रजिस्टरपर चढ़ी हुई संख्या ८८,९५,५३४ है।

## कैंसर

सालभरमें कैंसरसे ही २,५०,०००से अधिक लोग मर जाते हैं और ऐसा अनुमान किया जाता है कि अमेरिकामें प्रत्येक तीन व्यक्तिके पीछे एकको उसके जीवनकालमें कैंसर अवश्य धर दबाता है। कालके गालमें ले जानेवाले सर्वाधिक व्याप्त कारणोंमें कैंसरका दूसरा स्थान है। सन् १९५४में प्रेसिडेंट आइजनहोवरने अमेरिकाकी राष्ट्रसभामें कहा था कि यदि इस समय कैंसरसे होनेवाली मृत्यु-संख्याको घटाया नहीं गया तो जीवित अमेरिकावासियोंमेंसे २,५०,००,००० कैंसरकी गोदमें ही अपनी इहलीला समाप्त करेंगे।

## हृदयके रोग

हृदयके रोगोंसे सालमें ८,१७,००० से अधिक लोग मरते हैं और राष्ट्रकी मृत्युसंख्याके आधे भागका उत्तरदायित्व इन्हींपर है। बढ़ती हुई मृत्युसंख्या वास्तवमें हृदय-धमनियोंकी रोगवृद्धिकी ओर निर्देश कर रही है और यह भी बता रही है कि पहलेकी अपेक्षा युवक लोग अब इसके शिकार अधिक हो रहे हैं। अमेरिकावासियोंमें हृदयरोगोंका प्रकोप महायुगके ब्लैक प्लेगके समान बताया गया है।

डा० पाल ह्वाइट ( Paul White ), जिन्होंने प्रेसिडेंट आइजनहोवरकी उनको हृदयका दौरा होनेपर चिकित्सा की थी तथा डा० जालिफने ( Jollife ) सन् १९५५ में अमेरिकाकी राष्ट्रसभामें कहा था कि जहाँतक हृदयरोगोंसे सम्बन्ध है, अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रकी गणना संसारके सर्वाधिक अस्वस्थ देशोंमें है। डा० ह्वाइटने हृदयरोगोंको अमेरिकाका आधुनिक बहुव्यापक रोग बताया है।

## अन्य व्याधियाँ

अमेरिकाके दस व्यक्तियोंमेंसे एक अपने जीवनका कुछ भाग किसी मानसिक चिकित्सालयमें बिताता है और समूचे राष्ट्रके अस्पतालोंके ७०,००,००० रोगीशय्याओं ( Beds )मेंसे आधेसे अधिक मानसिक रोगियोंके काममें आती हैं। वास्तवमें २,५०,००० और भी रोगी-शय्याओंकी आवश्यकता पड़ती है, जिनपर बचे हुए मानसिक रोगियोंको स्थान मिलता है।

७०,००,००० से अधिक अमेरिकानिवासी संधिप्रदाह एवं अन्य प्रकारके वातरोगोंसे ग्रस्त रहते हैं।

जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोगोंके विषयमें यह अनुमान किया गया था कि सन् १९४४में प्रत्येक वर्ष २३१ व्यक्तियोंमेंसे एकको उपदंश और ३ या ४ को प्रमेह होता है। ऐसा अनुमान उस समय नये रोगियोंके विषयमें किया गया था। उस समय उस देशमें १० लाख उपदंशके रोगी थे अर्थात् प्रत्येक १२ व्यक्तियोंमेंसे एकको कभी-न-कभी उपदंश हुआ था। इधर दस-पंद्रह वर्षोंके बाद अनुमानकी यह संख्या इतनी अधिक बढ़ गयी है कि विश्वास करना कठिन है।

अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रमें प्रमुख रोगोंकी शिकार-संख्या इस प्रकार है—

प्रतिकूल संवेदना ( Allergy ) सम्बन्धी उपद्रवोंसे ग्रस्त २,००,००,००० व्यक्ति; नाड़ी-संस्थानके ( Nervous system ) रोगोंसे ग्रस्त १,५०,००,००० व्यक्ति; मस्तिष्क-प्रदाह एवं मस्तिष्क तथा नाड़ी-प्रदाह ( Psychosis and Psycho-neurosis ) से ग्रस्त १,६०,००,००० व्यक्ति; धमनी रोग तथा हृदय-ध्वंसक रोगों Arterios clerosis and degenerative heart diseases ) से ग्रस्त १,००,००,००० व्यक्ति; पंगु मस्तिष्क Mentally retarded वाले बच्चोंकी संख्या ३० से ५,००,००,०० ( प्रत्येक १५ मिनटपर एक पंगु मस्तिष्कवाला बच्चा पैदा होता है ); उदर और अँतड़ियोंके घावसे ( Stomach and duodenum ) ग्रस्त ८५,००,००० व्यक्ति; कैंसरसे ७,००,००० व्यक्ति; मांसपेशियोंकी बीमारी ( Muscular dystrophy ) से ग्रस्त १,००,००० व्यक्ति; क्षयग्रस्त ( टी. बी. ) ४,००,००० व्यक्ति ( प्रत्येक वर्ष १,००,००० नये रोगी दर्ज होते हैं )।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Multiple seleronis से ग्रस्त २,५०,००० तथा मस्तिष्कके पक्षाघात Cerebral Palsy से ग्रस्त १,५०,००० व्यक्ति।

सारे अमेरिकावासियोंमेंसे ६० प्रतिशतकी आँखें इतनी खराब होती हैं कि उन्हें चश्मा धारण करना पड़ता है। १,००,००,००० व्यक्ति विविध कोटिकी बधिरतासे पीड़ित हैं। सन् १९५५ में ३,३४,००० अन्धे थे। अमेरिकामें १० प्रतिशत विवाह संतानोत्पत्तिमें असमर्थ होते हैं; इसका अर्थ हुआ अनुमानतः १,५०,००,००० व्यक्ति संतानहीन रहते हैं।

इसके अतिरिक्त ३,२०,००,००० अमेरिकावासी बहुत स्थूल हैं और ४०,००,००० बहुत अधिक पीनेवाले हैं। ये दोनों बातें रोग और मृत्युको जल्दी बुलानेमें बड़ा लम्बा हाथ रखती हैं। अपराधवृत्तिवाले बालकोंकी संख्या २०,००,००० है। इस वृत्तिको अब अधिकाधिक लोग एक प्रकारका रोग ही मानने लगे हैं।

सन् १९५७ में श्वाससंस्थानसम्बन्धी ( Respiratory aliments ) रोगोंसे कुल मिलाकर १,९०,००,००० दिन खाटपर पड़े हुए अक्षमताकी अवस्थामें बीते। एक समय ६०,००,००० व्यक्ति नित्य अक्षम हो जाते थे।

दाँतोंकी बीमारी इतनी व्यापक है कि ९५ प्रतिशत व्यक्ति इसके शिकार हैं।

प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ २० लाख ऑपरेशन होते हैं और प्रतिवर्ष जन-संख्याके लगभग ७१ प्रतिशत लोगोंका कोई-न-कोई ऑपरेशन होता है।

सन् १९५५ में एक करोड़ ५० लाख पाउण्ड एस्पिरिन-गोलियाँ खायी गयीं। यह संख्या सन् १९५४ में खायी गयी गोलियोंसे २० प्रतिशत अधिक है। प्रतिवर्ष १०,००,००,००० डालर अधिक निद्रा लानेवाली ओषधियोंपर व्यय होते हैं। अमेरिकावासी प्रतिवर्ष निद्रा लानेवाली तीन अरब गोलियाँ खा जाते हैं।

उपर्युक्त आँकड़े हमें यह स्मरण दिलाते हैं कि स्वास्थ्य-की उत्पत्ति अस्पतालोंमें नहीं होती है। अस्पताल वह स्थान है जहाँपर स्वास्थ्य भग्न हो जानेपर मनुष्य जाता है और अब तो डाक्टर स्वास्थ्य नहीं वरं रोगके प्रतीक बन गये हैं।

नये-नये औषध-विज्ञानकी उन्नति तथा चिकित्सा-सम्बन्धी सब प्रकारकी सुविधाओंके सुलभ होते हुए भी अमेरिका आज एक रोगी देश है। क्या इससे यह नहीं प्रकट होता है कि कहींपर कोई वस्तु अपेक्षित है। और वह वस्तु है जीवन धारण करनेकी सही पद्धति ( नैसर्गिक प्रणाली ), जिससे आजका जगत् दूर हट गया है। ( भारतवर्ष भी आज यूरोप तथा अमेरिकाकी नकल करके अस्पतालों तथा औषध-निर्माणके कारखानोंको बढ़ा रहा है। यह उन्नति रोगवृद्धिमें कारण होगी या स्वास्थ्य-वृद्धिमें, यह विचारणीय है। )

('होमियोपैथिक संदेश' में प्रकाशित डॉ० वेदप्रकाशजी खन्नाके लेखका कुछ अंश )

---

# सबसे विकट मानस रोग हैं और वे ही शारीरिक रोगोंके कारण हैं

सबसे विकट रोग हैं—मानसरोग। शरीरके रोग मनुष्यके मरनेके साथ मर जाते हैं, परंतु मनके रोग मरनेके बाद भी संस्काररूपसे साथ जाते हैं। इसीसे देखा जाता है—कोई बच्चा जन्मसे ही शान्तप्रकृति होता है, कोई बड़ा क्रोधी। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, मत्सर, अभिमान, वैर, हिंसा आदि मानस-रोग हैं। शारीरिक रोगोंकी उत्पत्तिके भी ये ही प्रधान कारण हैं। कुपथ्य, अनाचार, असंयम, यथेच्छाचार, असदाचार, खान-पानकी खराबी, अनियमित जीवन, इन्द्रियनिग्रहका अभाव आदि रोगोंके जितने हेतु हैं, उन सबमें उपर्युक्त मानसरोग ही प्रधान कारण होते हैं। बाहरी दवाओंसे रोग नहीं मिटते, वरं बढ़ते हैं। बड़े-बड़े औषध-निर्माणके कारखाने और औषधविस्तारके विज्ञापन रोग बढ़ाते हैं, घटाते नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दकिशोर !

## ( गोपीकी सेवा-भावना )

( गताङ्क वर्ष ३५, अंक १२, पृष्ठ १३८६ से आगे )

साध यही, कब प्रात कुञ्जसे निर्गत तुम्हें समोद-निहार,
बलिहारी जाऊँ सँवार कर अस्त-व्यस्त सारे शृङ्गार।
स्वागत हित युग जीवन-धनको पहनाकर शुचि सुन्दर हार,
दृग-अभिराम श्याम-श्यामाकी बोल उठूँ जय, जय-जयकार।
गाऊँ प्रमुदित नाच-नाचकर बनमें मचा-मचाकर शोर।
श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दकिशोर ! ॥

प्राणेश्वरि ! निज चरण-किङ्करीके डाल गलेमें बाँह,
मन्थर गतिसे स्नान-सदनकी ओर चलोगी सहित उछाह ?
बिठा स्वर्ण-सिंहासनपर कब सादर तुम्हें निहार-निहार,
स्नान और पूजनके सत्वर संचित कर सारे संभार।
श्रवण-सुखद पद तुम्हें सुनाऊँगी अतिशय आनन्दविभोर,
श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दकिशोर ! ॥

पद-समीप रख स्वर्णपीठिकाके ऊपर कंचनका थाल,
धोऊँगी कब चरण तुम्हारे कालिन्दीजलसे तत्काल।
निज अलकावलिसे अञ्चलसे पोंछ पुनः वे चरणसरोज,
स्वर्णपात्रमें रख उनका शृङ्गार करूँगी मैं हर रोज।
नृत्य करेगा कब गा-गाकर प्रति-क्षण मतवाला मन मोर,
श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दकिशोर ! ॥

मंजु महावरसे रच-रचकर विविध लता-बेलोंके चित्र,
लाऊँगी कब उन चरणोंमें नित नूतन सौन्दर्य विचित्र।
पहना कर मणिमय नूपुर मंजीर आदि फिर विविध प्रकार,
प्रेमसहित पूजूँगी अर्पित कर अनेक अनुपम उपचार।
उर-वीणाके तारोंपर बस यही गूँजता हो सब ओर,
श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दकिशोर ! ॥

उद्वर्तित, सुस्नात, विभूषित तनमें धृत नूतन परिधान,
कर-किसलय, कोमल कपोलमें रम्य रुचिर रचना अम्लान।
चारु चन्द्रिका कुसुम-मालयुत केशपाश कमनीय सँवार,
रूपराशि, लावण्यजलधि तुम परमानन्द-पयोधि अपार।
कब सखियोंके संग चलोगी प्रिय-दर्शन हित वनकी ओर,
श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दकिशोर ! ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मंगलभवन अमंगलहारी

(लेखक—प्रो० डा० राजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, बी० एस्-सी०, साहित्यरत्न )

गोस्वामी तुलसीदासविरचित रामचरितमानसके अन्तर्गत 'मंगल-भवन अमंगलहारी' वाक्य दो बार आते हैं। यथा—

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी॥

तथा—

मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

प्रश्न स्वाभाविक है कि दशरथ-अजिर-विहारी राम और उमा एवं पुरारिद्वारा आराधित राम भिन्न हैं अथवा अभिन्न। दशरथका अजिर देश-कालकी सीमाओंमें आबद्ध है तथा त्रिपुरारि एवं उनकी शक्ति उमाका लोक देश-कालकी सीमाओंके परे है। देश-कालकी सीमाएँ सापेक्ष हैं। इसी कारण निर्गुण और सगुण भी सापेक्ष हैं—

ग्यान कहै अग्यान बिनु तम बिनु कहै प्रकास।
निर्गुन कहै सगुन गुन, सो गुरु तुलसीदास॥

क्योंकि—

एक दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्मबिबेकू॥

अतएव स्पष्ट है कि सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मरूप रामका संस्पर्श इन्द्रियोंवाले मन-मानसको तभी प्राप्त होता है, जब दशरथ-कौसल्याके सदृश साधक निःस्वार्थभावसे उसके साक्षात्कारके लिये अनवरत साधनामें लीन होता है—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

त्रिपुरारिकी प्रकृतिरूपा शक्ति उमा है, दशरथकी शक्ति कौसल्या है। ब्रह्म विश्वासरूपी बीज प्रदान करनेवाला पिता या पुरुष है। उस बीजको फलदायक वृक्षरूपमें विकसित करनेका कार्य शक्ति-स्वरूपा माता या नारीके द्वारा सम्पन्न होता है।

आत्माका गुण संश्लेषण है। यही संश्लेषणपरक चेतना आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध-सूत्र है। परब्रह्मरूपिणी एकरसता देशकालमें बद्ध इस दृश्यमान जगत्में रामके रूपमें अवतरित होती है। राम सर्वव्यापी चेतनाके प्रतिरूप हैं तथा विशुद्ध प्रेम सर्वव्यापी चेतनाका व्यवहारपक्ष है। इसी कारण तुलसीके राम 'बिधि-हरि-संभु नचावन हारे' ब्रह्म भी हैं और पृथ्वीका भार उतारनेवाले मानव भी हैं। दोनों ही स्थितियाँ उनके लिये आनन्दप्रद और कल्याणकारिणी हैं—

जौ जगदीस तौ अति भलौ, जौ महीस बड़ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग॥

जगदीश्वर रामका राज्य आदर्श कल्याणकारी राज्य ( Welfare State ) है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

× × × ×

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

और महीश्वर राम—( महेश्वर शिवद्वारा आराधित राम ) की अनुभूति समस्त अज्ञान एवं तज्जन्य दुःखका नाश करनेवाली है—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥

इस प्रक्रियाकी साक्षी उपलब्ध है—

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया॥

जीव संश्लेषणका परित्याग करके विश्लेषणकी सीमाओंमें बद्ध होकर अपने स्वाभाविक एवं जन्मसिद्ध आनन्दसे वञ्चित रहता है। देश-कालमें आबद्ध विश्लेषणका परित्याग कर देनेसे वह आनन्दस्वरूप-परमात्मस्वरूपको प्राप्त करता है। रामद्वारा निर्धारित मार्ग सर्वभूतहित-कामनामें रत रहनेवाला प्रेमका मार्ग है—'जीन्ह कहँ न कतहुँ रिपु ताकें'—वाली मनोदशाकी उपलब्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करानेवाला मार्ग है। उस मार्गपर चलकर जीवको विशुद्ध आत्मचेतनाका संस्पर्श प्राप्त होता है। यही जीवका रामके सम्मुख होना है और यही उसके कोटि जन्मके अघका नाश होना है। यही कारण है कि तुलसीके राम मानव भी हैं और परब्रह्म भी हैं। उनका साक्षात्कार एवं संस्पर्श सदैव सुखकारी और आनन्ददायक है। मानव राम 'सुन्दर, सुजान, कृपानिधान एवं अनाथपर प्रीति करने-वाले' हैं तथा परब्रह्म राम 'अकामहित एवं निर्वाणप्रद' हैं। भरद्वाज मुनिके कथनानुसार उनका सर्वाधिक नित्य प्रिय निवासस्थान सर्वथा कामनारहित सहज प्रेमपरिपूर्ण अन्तःकरण है—

**जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।**
**बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥**

भाई भरतने ऐसा ही अन्तःकरण प्राप्त किया था—

**अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान।**
**जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥**

रामचरित्रकी चर्चा इसी आनन्दविधायक मार्गकी दीपशिखा है।

# आत्मनिरीक्षण

( लेखक—श्रीबालकृष्णजी बलदुवा बी. ए., एल्-एल्. बी. )

तुम्हारे इंगितपर आत्मनिरीक्षण किया, तो लगा—अपने जीवनमें दैन्यकी दुर्गन्ध मैंने नहीं उड़ायी, नहीं उड़ने दी।

हाँ, मनकी उद्विग्नता, कातरता, विह्वलता अवश्य उँडेलता रहा तुम्हारे सामने, बल पानेके लिये, दृढ़ता पानेके लिये।

अपने भीतर-बाहर, वातावरणमें—चतुर्दिक्में जैसा कुछ होना चाहिये, जिस तरह होना चाहिये, जिस गतिसे होना चाहिये, न होनेपर असंतोषकी अनुभूति निश्चय ही जीवनका दैन्य नहीं है, विद्रोह भले ही हो।

पर विद्रोह भी है, तो स्वार्थके लिये नहीं, व्यष्टिके लिये नहीं; समष्टिके लिये, समष्टिकी प्रगतिके लिये, प्रगति-में गतिके लिये—जडताके सहारे नहीं, पाशविकताके सहारे नहीं; आदर्शके सहारे, आस्थाके सहारे, आस्थामें दृढ़ताके सहारे।

परमात्मा—परम आत्मा—सर्वोत्कृष्ट आत्मा—आत्मा-का सर्वोत्कृष्ट या अंश-आत्माओंका समष्टिगत सर्वोत्कृष्ट ही तो है। यही मुझे ज्ञानने दिया, विवेकने दिया; आस्थाने दिया, अनुभूतिने दिया। उसका सांनिध्य कर्म-योगकी पराकाष्ठा और कर्मका योग ( भोग नहीं ) 'अपने लिये' द्वारा सम्भव नहीं है। सम्भव है केवल 'सबके लिये' द्वारा ही। आध्यात्मिक साम्य भौतिक साम्यका ही सर्वोत्कृष्ट रूप तो है। इसकी उलटवासी भी इतनी ही सत्य है। भौतिक साम्य आध्यात्मिक साम्यका ही सर्वोत्कृष्ट रूप तो है। एकके बिना दूसरेका सर्वोदय, सर्वोत्कर्ष सम्भव ही नहीं।

विचार-गगनसे कर्म-भूमिपर इस आदर्शको, इष्ट आराध्यको उतार लानेकी, उतरा देखनेकी आतुरतामें कहीं भी जीवनके दैन्यकी दुर्गन्ध है क्या ?

और भी —

इस आतुरताके न रहनेपर गतिमें द्रुत गति आ सकेगी क्या ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# व्यवहार

( लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि' )

व्यवहार-व्यवहारकी रट लगाये रहते हैं हम । काश ! हमें व्यवहार ही करना आता । हम आदर्श········वास्तविक व्यवहारोन्मुख ही हुए होते ।

मोहान्ध होकर जो ऊटपटाँग व्यवहार किया जाता है, वह तमोगुणी व्यवहार है । किसी दीनका नहीं छोड़ता यह व्यवहार । बस, ले ही डूबता है ।

स्वार्थ-भावनामें भरकर जो तिकड़मी व्यवहार किया जाता है, वह रजोगुणी व्यवहार है । व्यर्थ विक्षिप्त-सा ही बनाये रखता है वह व्यवहार । हाथ उससे भी कुछ नहीं लगता ।

परहितभावनासे प्रेरित होकर जो कुशल अर्थात् सधा हुआ व्यवहार किया जाता है, वह सत्त्वगुणी व्यवहार है । यही वह व्यवहार है जो रजोगुण, तमोगुणकी ठोकरें खाते तथा बाधाएँ झेलते हुए भी आदर्श व्यवहार ········वास्तविक व्यवहारकी ओर अग्रसर होता है ।

आदर्श व्यवहार—वास्तविक व्यवहार वह व्यवहार है जो प्रेमसे प्रेरित हो । स्व-परकी प्रतीतिके बिना जो सहज एवं यथार्थ व्यवहार होता है, वह प्रेम-प्रेरित व्यवहार है । इस व्यवहार और परमार्थमें कोई अन्तर नहीं है । जीवनके चरम लक्ष्य 'परमपद' की प्राप्ति अनजाने ही होकर रहती है इसके सधे-सावे ।

व्यवहार-व्यवहारकी रट लगाये रहते हैं हम । काश ! हमें व्यवहार ही करना आता । हम आदर्श—वास्तविक व्यवहारोन्मुख ही हुए होते !

## साधककी उत्तरोत्तर उन्नत स्थिति

काहू कौ नहिं दास मैं, कोउ न मेरौ दास ।  
नित्य दास मैं राम कौ, एक टेक बिस्वास ॥  
रह्यौ न कबहूँ कतहुँ कछु मेरौ अपनौ काम ।  
प्रभु-सेवामें ही सने तन-मन-बुद्धि तमाम ॥  
सेवाऊ जो कछु बनै वा मैं नहिं कछु मोर ।  
प्रभु मनमानी करन कौं, रहैं हलावत डोर ॥  
फुरना, मति, बल, पुरुषता, करन-करावनहार ।  
सब कछु तिनमें, तिनहि कौ, तिनही सौं व्यवहार ॥  
रह्यौ न रंचक मैं-पनो भयौ एक ही भाव ।  
हर्ष-सोक-भय-मान-मद सबकौ भयौ अभाव ॥  
रही न सत्ता भिन्न कछु एक मात्र भगवान् ।  
लीलामय लीला करैं नित अति मधुर महान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

## ( १ )

### ईमानदारी

लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। श्रीरंगलालजीकी आसामके एक शहरमें दूकान थी। कपड़ा-गल्ला-सोना-चाँदी-किराना सभी चीजें वे बेचते थे। सचाई और ईमानदारी उनके स्वभावमें थी। असली माल देना, पूरा तौलना उनकी प्रतिज्ञा थी। इससे ग्राहकोंके हृदयमें उनपर पूरा विश्वास था और इससे उनका कारोबार छोटा होनेपर भी बड़ी शान्तिसे तथा सुचारुरूपसे चलता था, कोई झंझट नहीं था और गृहस्थका खर्च आसानीसे निकल जाता था। वे बहुत पैसेवाले नहीं थे, पर सहृदय थे। उनकी पत्नी भी वैसी ही थीं। एक छोटा लड़का था। उनकी सचाईपर विश्वासके कारण आसपासके सभी लोग तथा उच्च अंग्रेज अधिकारीतक उनको मानते थे।

एक बार वहाँकी सरकारने पुलिस तथा जेल आदिके राशनके लिये टेंडर माँगे। एक दूसरे बड़े व्यापारी थे, वे ही यह सब काम किया करते थे और अधिकारियोंसे मिलकर ऊँचे भावके टेंडर मंजूर करा लेते तथा राशनकी चीजोंमें भी मिलावट करते थे। इसमें उन्होंने बहुत धन कमाया था। एक बार वे पकड़े गये। ऊपरके अंग्रेज अधिकारियोंको पता लगनेपर उन्होंने इनके टेंडर ही लेने अस्वीकार कर दिये। रंगलालजीकी ईमानदारी तथा सचाईकी बात चारों ओर फैली थी, इससे उच्च अधिकारियोंने उनसे टेंडर माँगे। उनके लिये यह नया काम था। नीचेके अधिकारी उस बड़े व्यापारीको साथ ले जाकर उनसे मिले और उनको बताया—'आप ऊँचे भावके टेंडर दीजिये और मालमें भी मिलावट कीजिये। हमलोगोंका हिस्सा रख दीजिये। इससे चौगुनी आमदनी होगी। आप एक ही वर्षमें मालामाल हो जायँगे।' रंगलालजीको यह बात नहीं जँची, उन्होंने कहा—'न तो मैं ऊँचे भावके टेंडर दूँगा, न मालमें मिलावट ही करूँगा।' उन अधिकारियों और उस व्यापारीने रंगलालजीको 'घर आयी लक्ष्मी'का तिरस्कार करनेकी बेवकूफी न करनेके लिये बहुत समझाया। पर बेईमानी-चोरीकी बात उनकी समझमें ही नहीं आयी। इसपर उन लोगोंने कहा—'अच्छी बात है—आप कुछ भी न कीजिये। आप सिर्फ अपना नाम दे दीजियेगा। सारा सप्लाईका काम ये व्यापारी कर लेंगे और इस नामके एवजमें आप तीन वर्षतक पचीस हजार रुपये सालाना लेते रहिये। वह भी छः-छः महीनेका अग्रिम।' उस समय पचीस हजार रुपये बहुत बड़ी चीज थी, पर रंगलालजी इस लोभमें नहीं पड़े और प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उनकी इस वज्र-मूर्खतापर वे लोग बहुत दुखी हुए। रंगलालजीने उचित भावके टेंडर दिये। उन लोगोंने बहुत प्रयास किया कि इनके टेंडर स्वीकृत न हों, पर रंगलालजीने जाकर संकेतमें बड़े अधिकारीको सब बातें बता दीं। अतः उनका टेंडर मंजूर हो गया। इस सच्चे व्यापारमें उन्हें प्रतिवर्ष केवल आठ हजार रुपये बचते थे। साहेबने उनकी ईमानदारी तथा सचाईपर प्रसन्न होकर ठेकेका तीन वर्षका समय पूरा होनेपर उन्हें दस हजार रुपये इनामके और दिलवाये तथा आगेके लिये भी उन्हींको काम दिया। यों सत्यकी रक्षा तथा विजय हुई।

—रामकुमार अग्रवाल

## ( २ )

### कर्तव्यनिष्ठा

रेलवेके एक अधिकारीकी कर्तव्यनिष्ठाकी लगभग चौदह वर्ष पूर्व बनी हुई बात है। जूनागढ़के नवाबके व्यवहारके कारण गैर-मुस्लिम लोग गाँव छोड़कर चले गये थे। सर्वत्र निस्तब्धता थी। रेलवे क्वार्टरमें रहनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अधिकारीके दरवाजेको आधी रातके समय किसीने खटखटाया । इन्होंने दरवाजा खोला । पाँच बुर्काधारी हाथोंमें रिवाल्वर लिये खड़े थे । उनमेंसे एकने कहा—'घबराना नहीं, हमें आपसे कुछ काम है ।'

अधिकारी आश्चर्यमें डूब गये, साथ ही कुछ घबराये भी । परंतु प्रसंगको समझकर ऊपरसे स्वस्थता धारण करके वे उन लोगोंको अंदर ले गये । स्वयं मुँहमें सिगरेट लेकर उन लोगोंके सामने सिगरेटका डिब्बा रख दिया । उनमेंसे एकने कहा—'साहेब ! हमें सिगरेट देकर आप हमारे मुख देखना चाहते हैं न ?' इसके बाद कुछ क्षण शान्ति रही । यह मौन साहेबको व्याकुल कर रहा था ।

मौन भंग करके अधिकारीने कहा—'कहिये क्या काम है ?'

टोलीका सरदार बोला—'काम बड़ी ही जोखिमका है तथा सावधानीके साथ करनेका है । आपके सिवा दूसरे किसीको इस कामकी जिम्मेवारी सौंप नहीं सकते । आपको यह काम करना ही पड़ेगा ।' एकाध क्षण चुप रहकर और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसने फिर कहा—'खूब सबेरे ही यहाँसे दारूगोला लानेके लिये मिलिटरीके साठ सिपाहियोंको लेकर एक गाड़ी ( रेलवे ट्राली ) वेरावल जायगी । आपको केवल इस गाड़ीको शापुरकी ओर जाते रास्तेमें उलटा देना है जिससे साठों सिपाही, ड्राइवर और गार्ड—सबके चिथड़े-चिथड़े उड़ जायँ ।'

'अच्छी बात है, आपमेंसे एक आदमी समयपर मेरे साथ चलियेगा, आपका काम हो जायगा ।' अधिकारीने उत्तर दिया और उनकी स्वीकृतिसे प्रसन्न होकर बुर्काधारी टोली लौट गयी ।

साहेबने छुटकारेकी साँस ली और वे विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये । रेलवेके एक अधिकारीके नाते उनका कर्तव्य था मुसाफिरोंकी तथा रेलवेकी सम्पत्तिकी रक्षा करना । और कुछ नहीं तो, कम-से-कम मानवताके नाते भावीमें फँसनेवाले उन मनुष्योंकी तथा उनके परिवारवालोंकी तबाहीपर विचार करके भी ऐसा निन्दनीय काम कभी नहीं करना चाहिये । पर उनके जरा भी आनाकानी करनेपर·······परिणामका ध्यान आते ही साहेब तुरंत काँप उठे । परंतु अन्तमें उनकी कर्तव्यनिष्ठाने साथ दिया और उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि जानको जोखिममें डालकर भी वे इस अनुचित कार्यको नहीं करेंगे ।

निश्चित समयपर उस टोलीमेंसे एकने आकर किवाड़ खटखटाये । जरा भी न घबराकर अधिकारी उसे अंदर ले गये ।

उस बुर्काधारीने आते ही उतावली करनी शुरू की—'चलिये, साधनोंको लेकर जल्दी पहुँच जायँ और काम कर डालें ।'

'देखो भाई, यह काम करना तो मेरे लिये बायें हाथका खेल है । परंतु मुझसे ऐसी धोखेबाजीका काम होगा नहीं, जिसका नमक खाता हूँ, उसका अहित मैं कैसे कर सकता हूँ ?'

यह सुनते ही गरम होकर उस बुर्काधारीने अधिकारीको रिवाल्वर दिखाते हुए कहा—'यह तुम्हारा साथ नहीं देगी । बेकाम बातोंको छोड़कर चुपचाप तैयार हो जाओ ।'

'यदि मेरे एकके मरनेसे बासठ मनुष्योंके प्राण बचते हों तो मुझे जीवनका मोह नहीं रखना चाहिये । लो, चलाओ गोली ।' अधिकारी छाती सामने करके कहा ।

पता नहीं, क्यों, उसने रिवाल्वर वापस खींच लिया और जाते-जाते यह कहता गया कि 'साहेब ! यह बात कहीं बाहर न जाय, आपको मेरा इतना ही कहना है ।'

और इस प्रकार एक भयंकर दुर्घटना होते-होते रह गयी । ( अखण्ड आनन्द )

—दत्तात्रेय मोरेश्वर फाटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

( ३ )

## भगवान् शिवका आदेश

मेरी ८ वर्षकी कन्या वीणाको २९ दिसम्बरको भगवान् शंकरने प्रातःकाल स्वप्नमें कहा कि हम कैमोर पर्वतपर हैं, वहाँसे उठाकर लाओ। वह ५ बजे सुबह मेरे पास अश्रुधारा बहाती हुई आयी। पूछनेपर कहा कि 'मुझे भगवान् दिखते हैं। उनके काले-काले नाग लिपटे हैं। वे अपने दोनों हाथोंमें बहुत बड़ी प्रतिमा लेकर खड़े हैं। कह रहे हैं हम कैमोर पहाड़पर एक पेड़के नीचे जलहरीसमेत विराजित हैं।' दो-तीन दिन तो मैंने उसे टालना चाहा, पर वह तो बार-बार रट लगाती ही रही। अन्तमें मैंने उससे कहा कि 'हम उन्हें कहाँ पहाड़पर ढूँढ़ेंगे, रास्ता कहाँ मिलेगा।' मेरे इस प्रकार कहनेका उद्देश्य यही था कि वह बार-बार कहना छोड़ देगी। पर वह ३१ तारीखकी सुबह उठते ही कहने लगी कि 'मुझे तो आज भगवान्ने रास्ता भी बतला दिया है, माँ! चलो।' यह लड़की तीसरी कक्षामें पढ़ती है। उसने रास्तेका नक्शा खींचकर बतलाया और कहा, 'कल सोमवार है, कल जरूर जाना है।' कैमोरमें बसका मार्ग है। मैं उसे लेकर गयी। रास्तेमें बससे ही उसने वह चोटी अँगुलीसे बतायी—'माँ! यही पहाड़ है जो मुझे भगवान्ने बताया है।' दूसरे दिन प्रातःकाल ही हम सब उसके साथ चले, वह आगे-आगे हम पीछे-पीछे। चार-पाँच घंटेतक ढूँढ़नेपर एक पेड़के नीचे हमें जलहरीसमेत भगवान् शिवकी प्राचीन प्रतिमा मिली। उसे हम विधिसहित उठाकर लाये तथा संक्रान्तिके दिन अखण्ड रामायणका पाठ तथा सोमवारको रुद्राभिषेक किया। अब सैकड़ों स्त्री-पुरुष दर्शनार्थी आते हैं। कीर्तन-भजन चलता है। इस पहाड़पर भगवान्ने जंगलमें मङ्गल कर दिया। यह घटना अभीकी है और मेरे ही घरमें घटित हुई है।

—सौ० शशिकुमारी भटनागर

( ४ )

## दानव और देवता

कुछ समय पूर्वकी यह बिल्कुल सत्य घटना है। इसमें पात्रोंके नाम मैंने नहीं लिखे हैं।

धन्य हो तुम। तुम वास्तविक रूपमें मानव हो। तुमने मानवताका मान बढ़ाया। मानवताके माथेपर ल[illegible] समय-समयपर कलंकके धब्बोंको तुम-सरीखे मानवोंने [illegible] धोया है, पोंछा है, आज जब कि भाई भाईके रक्त[illegible] पीनेमें नहीं सकुचाता है, तब तुमने हमें मानवताका के[illegible] सुन्दर पाठ पढ़ाया है, तुम चने-मूँगफलीका ठेला [illegible] खींचते हो, तुम खींचते हो दया, धर्म [illegible] मानवताकी गाड़ी।

बात दरअसल यों हुई—अभी एक सप्ताह पूर्व [illegible] छोटे भाईने एक बड़े भाईसे कुछ रुपयोंकी [illegible] माँगी। छोटा भाई कुछ व्यसनोंका शिकार है, ऐसा जान[illegible] भी बड़े भाईने, जो केवल एक चने-मूँगफलीका [illegible] चलाता है, कई बार उसे पहले सहायता की थी। [illegible] नहीं, वह उसे इन व्यसनोंसे यथासाध्य दूर रखने[illegible] उपदेशामृत भी पिलाया करता था; किंतु व्यसन[illegible] कुप्रभावके कारण छोटा भाई तो चिकना घड़ा बना [illegible] था। वह सुन तो लिया करता था; किंतु उन बातें[illegible] आचरणमें नहीं उतारता था और यही कारण था [illegible] वह जब-तब बड़े भाईके सम्मुख कुछ-न-कुछ रुप[illegible] माँग रखता रहता था और बड़ा भाई भी ऐसा येन[illegible] प्रकारेण उन माँगोंको भरसक पूरा करता रहता था। [illegible] दिन उस बड़े भाईका हाथ तंग था, अतः उसने [illegible] समय उस माँगको पूरा करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट [illegible] १२-१ बजे दिनमें बड़ा भाई तो भोजन आ[illegible] निवृत्त हो अपने दैनन्दिन कार्यक्रमोंमें व्यस्त हो [illegible] और इधर छोटे भाईने ऐसा घोर कर्म कर डाला कि [illegible] मानवता तिलमिला उठी। पहलेके सारे अहस[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकमें रख वह अपने बड़े भाईके चार वर्षीय लड़केकी गर्दन मरोड़ उसे दूरके एक कुएँमें फेंक आया। शामको अपने कलेजेके टुकड़ेको पानीमें मरा देखकर भी बड़े भाईने पुलिसमें रिपोर्ट लिखानेसे एकदम इनकार कर दिया। 'औलाद तो तकदीरमें होगी तो फिर हो जायगी। बेटेके समान भाईको जो मुझसे दस साल छोटा है और मैंने अपने हाथोंसे पाला-पोसा है, जेल भिजवाकर क्या मैं अपना परलोक बिगाड़ लूँ।' अंदरके लावेको भींचते हुए बड़े भाईने कहा। लाश सामने पड़ी है और वह छोटे भाईसे कह रहा है—'चीखू, यह तूने क्या किया पगले! सोच, इस बच्चेने तेरा क्या बिगाड़ा था? अगर सजा ही देनी थी तो मुझे देता और हाँ, दीवानजी! यह हम भाइयोंकी आपसी बातें हैं। आप तो लिखिये मुझे किसीपर शक नहीं, बच्चा अपने आप ही गिर पड़ा होगा।'

धू-धू करके चिता जल उठी और तब बुक्का फाड़कर दोनों भाई रो पड़े। तत्पश्चात् बड़ा भाई बोला—'रो मत चीखू! बच्चेकी मौत भी यदि तुझ गुमराहको सही रास्तेपर ले आये तो मैं समझूँगा सौदा घाटेमें नहीं रहा।'

बड़े भाई! तुम वास्तवमें बड़े हो, तुम्हें शत-शत प्रणाम। दानव और देवताके दो प्रत्यक्ष रूप।

—गोपाल कृष्ण जिंदल

( ५ )

## धन पराव बिष तें बिष भारी

कुछ वर्षों पूर्व राजस्थानके चित्तौड़ जिलेके एक कस्बेमें मेरे पिताजीकी सर्विस थी। जिस कार्यालयमें वे काम करते थे, उसीमें ब्राह्मणजातिके एक अर्जीनवीस थे। वे स्टाम्प—टिकट आदि बेचते थे और आवेदनपत्र आदि लिखते थे। वे शिवजीके बड़े भक्त थे। गाँवके बाहर शिवजीके मन्दिरमें नित्य रामचरितमानसका पाठ करना उनका नियम था। एक दिन हम मन्दिरमें लोभके बुरे परिणामोंपर वार्ता कर रहे थे। 'दूसरोंके धनको विषके समान समझना चाहिये; किंतु आजके युगमें क्या ऐसा हो सकता है?' इस प्रकार इसपर तर्क-वितर्क हो रहे थे। तो उन अर्जीनवीसने, जो अपनी आपबीती सुनायी, वह नैतिकताका आदर्श है।

घटना उस समयकी है जब १९२०-२१ में बंबईमें गोवधके प्रश्नको लेकर भयंकर हिंदू-मुसलिम-दंगे हुए थे। बहुसंख्यक मुस्लिम बस्तीमें हिंदुओंकी दूकानें लुटी गयी थीं और हिंदू-बहुसंख्यक बस्तीमें मुस्लिम दूकानदारोंकी। उन दिनों उपर्युक्त अर्जीनवीस महोदय भी बंबईमें एक सेठके यहाँ मुनीमीका कार्य करते थे। दंगोंके समय एक दिन ये जब बाजारमें कोई वस्तु खरीदने गये तो वहाँ दंगा शुरू हो गया था। दूकानोंका सामान बाहर पड़ा था। सड़क जनशून्य हो रही थी। अर्जीनवीस जब भयभीत होकर वापिस घर लौटने लगे तो उनको एक नालीके किनारे एक कागजका बंडल पड़ा दिखा। वे उसको लेकर जल्दीसे घर आ गये। घर आकर उसको खोला, देखा तो उसमें बीस हजारके नोट थे। पहले तो वे बहुत हर्षित हुए कि आज घरकी सारी दरिद्रता समाप्त हो जायगी और स्वदेश जाकर इन रुपयोंद्वारा आनन्दसे व्यापार आदि करेंगे; किंतु दूसरे ही क्षण उनकी आत्माने उनको धिक्कारा और अन्तर्मनसे आवाज हुई—'हे मूर्ख! जिन रुपयोंके बलपर तू इतने मीठे-मीठे भविष्यके स्वप्न देख रहा है, क्या इनको तूने अपने गाढ़े पसीनेसे कमाया है? उस व्यक्तिपर इस समय क्या बीत रही होगी जिसके ये रुपये होंगे।' आखिर उनको आत्मग्लानि पैदा हुई। उन्होंने विचार किया कि जिसके ये रुपये होंगे, ये उसीको लौटा देने हैं। भाग्यसे उस बंडलपर रुपयेके मालिकका नाम था और दूकानका पूरा पता भी लिखा था। दंगा शान्त हो जानेपर वे उस दूकानदारके पास गये और उसको रुपये सौंपकर सारी घटना सुना दी। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूकानदारको तो स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि उसके रुपये उसे मिल जायँगे। उसने इनको कहा कि आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। उसने इनको कुछ रुपये देने चाहे किंतु इन्होंने नहीं लिये और कहा—'मेरा इन रुपयों-पर कोई अधिकार नहीं था, यह धन तो पराया था, जो मेरे लिये विषके समान है। मैंने रुपये लौटाकर अपने कर्तव्यका पालनमात्र किया है। इसमें विशेषता क्या है? पारितोषिक लेनेपर तो मेरे कर्तव्यपालनकी विक्री होती है और ईश्वरकी दृष्टिमें मैं अपराधी होता हूँ।' यह कहकर वे वापस अपने घर आ गये। इस घटनाको सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुतोंने उनकी तारीफ की और कुछ लोगोंने उनको अकस्मात् मिले हुए इतने रुपये वापस देनेके कारण मूर्ख भी बतलाया। यह निश्चय है कि उनका यह कार्य मूर्खतापूर्ण नहीं था, बल्कि नैतिकता एवं निःस्वार्थताका उत्तम आदर्श था।

—श्याममनोहर व्यास बी० एस्-सी०

( ६ )

## रामायणकी चौपाई

मेरे दोनों पैरोंमें बहुत बड़े-बड़े दाद तीन-चार सालसे थे। मैं बहुत बेचैन था। अनेक ओषधियोंका प्रयोग किया। पर निष्फल रहा। मैंने तुलसीकृत रामचरितमानसकी एक चौपाईका जप प्रारम्भ किया। बुद्धि श्रद्धापूर्ण तथा निश्चयात्मिका थी। पूर्ण सफलता मिली। चौपाई यह है—

**दैहिक दैविक भौतिक तापा।**
**राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥**

एक सालके जपसे दोनों पैरोंके दाद अच्छे हो गये। चार महीनेसे निम्नलिखित एक श्लोकका जप भी साथ चलता रहा—

**श्रीरामं च हनूमन्तं सुग्रीवं च विभीषणम्।**
**अङ्गदं जाम्बवन्तं च स्मृत्वा पापैः प्रमुच्यते॥**

इससे निश्चय ही कर्मजन्य पापफलोंका क्षय होता है। विश्वास चाहिये।

—श्रीहरीदास सबीर, नाभा

( ७ )

## ताँगेवालेकी ईमानदारी

कुछ ही दिनों पहलेकी बात है। हमारे यहाँ कलकत्तेसे कुछ घरके लोग आये थे। गोरखपुर स्टेशन-से वे लोग ताँगेपर घर आये। सामान समेत सब लोग उतर गये और सामानको यथास्थान रखवाकर सब अपने-अपने काममें तथा मिलने-जुलनेमें लग गये। करीब पौन घंटे बाद एक ताँगेवालेने आकर पुकारा—'चश्मेवाले बाबूजीकी एक पेटी मेरे ताँगेमें रह गयी है, वे पहचान कर ले लें।' उन लोगोंसे पूछा गया। सभीने कहा—'सारा सामान ताँगोंसे उतरवा लिया गया था। हमारा कोई सामान नहीं छूटा है।' फिर, जब पेटी देखी तब तो वे सज्जन कहने लगे—'मुझे तो इस पेटीकी याद ही नहीं थी।' यद्यपि उसमें उनका जरूरी सामान था। ताँगेवालेने पूछनेपर अपना नाम 'ढोंढे' बतलाया और कहा कि 'मैं स्टेशन लौट गया था। वहाँ जब दूसरे मुसाफिरोंका सामान रखने लगा, तब नीचे पेटी दिखायी दी, अतः उन मुसाफिरोंको छोड़कर मैं दौड़ा आया हूँ। आप खोलकर देख लें। सब सामान ठीक हैं न?' खोलकर देखनेकी तो कोई बात ही नहीं थी; जो पेटी देने आया, वह सामान थोड़े ही चुराता। पर ताँगेवालेके आग्रहसे पेटी खोलकर देख ली गयी। ताँगेवालेकी ईमानदारी तथा मुसाफिर छोड़कर पेटी लौटानेकी तत्परता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह गरीब है, पर आजकलके अधिकांश अमीरोंकी अपेक्षा उसकी सत्यनिष्ठा तथा ईमानदारी बढ़ी चढ़ी है।

—सूर्यकान्त अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## सं० शिवपुराणाङ्क समाप्त हो गया, दूसरा संस्करण छप रहा है

१,३१,००० प्रतियोंका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया तथा सब पुराने ग्राहकोंको वी० पी० तक नहीं जा सकी। नयी माँग जोरोंसे आ रही है, इसलिये २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण छापा जा रहा है; परंतु उसके तैयार होनेमें लगभग दो मास लग सकते हैं। जिन लोगोंके रुपये मनीआर्डरसे आ रहे हैं, उनका नाम ग्राहकोंमें लिखकर फरवरीसे मासिक अङ्क भेज दिये जाते हैं। विशेषाङ्क तैयार होनेपर जा सकेगा। व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

गीता-पञ्चाङ्ग वि० सं० २०१९ का कुछ बच गया है, अतः विक्रेताओंको १२५ लेनेपर ही १००० की रेट दी जा रही है। जिन्हें लेना हो, शीघ्र मँगवानेकी कृपा करें।

*आठ नयी पुस्तकें !* *प्रकाशित हो गयीं !!*

### ( १ ) मानस-पीयूषके खण्ड ३का चतुर्थ संस्करण

सम्पादक—श्रीअंजनीनन्दनशरणजी

**आकार डबल-क्राउन आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ९५६, मूल्य १०.५० डाकखर्च १.९० कुल १२.४०।**

इस खण्डका पुनर्मुद्रण हो जानेसे गीताप्रेसमें यह बृहत् ग्रन्थ अब पूरा छप गया है। सात जिल्दोंके इस विशाल ग्रन्थकी पूरी पृष्ठ-संख्या ६१८६ है। पूरे ग्रन्थका मूल्य ६५.०० है। कमीशन पंद्रह प्रतिशत तथा रु० १००) का माल एक साथ मँगवानेपर ग्राहकके स्टेशनतकका पूरा पारसल गाड़ीका रेलभाड़ा हमारा। आर्डर देते समय अपने रेलवे स्टेशनका नाम स्पष्ट लिखना चाहिये।

### ( २ ) मनुष्यका परम कर्तव्य

लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

**आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४१२, सुन्दर बहुरंगे चार चित्र, मूल्य १.०० डाकखर्च .९४ कुल १.९४।**

प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीगोयन्दकाजीके कल्याण वर्ष ३३ और ३४ में प्रकाशित मनुष्यमात्रके लिये कल्याणकारी लेखोंका संग्रह है। इसमें गीतोक्त निष्काम कर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, संयम, सत्य, श्रद्धा, समता, भगवत्प्रेम, भगवान्‌की दया आदि अनेक आध्यात्मिक तत्त्वोंका विशद विवेचन है। यह संग्रह कर्मयोगी, भक्तियोगी और ज्ञानयोगी सभी प्रकारके साधकोंके लिये परम उपयोगी है।

### ( ३ ) आदर्श चरितावली ( भाग १ )—[ ऋषि-मुनि-शिक्षा ]

( लेखक—ठा० श्रीसुदर्शनसिंहजी )

**आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ६०, मू० .२५ न० पै०। डाकखर्च .६५ कुल .९०।**

इसमें चुने हुए ऋषि-मुनि-संत-भक्तोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षासहित हैं।

### ( ४ ) आदर्श चरितावली ( भाग २ )—[ आचार्योंके उपदेश ]

**पृष्ठ-संख्या ६०, मू० .२५ न० पै०। डाकखर्च .६५ कुल .९०।**

इसमें चुने हुए विभिन्न आचार्य, मतप्रवर्तक तथा युगनायकोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षासहित दिये गये हैं।

### ( ५ ) आदर्श चरितावली ( भाग ३ )—[ संत-शिक्षा ]

**पृष्ठ-संख्या ६०, मू० .२५ न० पै०। डाकखर्च .६५ कुल .९०।**

इसमें चुने हुए संत-महात्मा-योगी साधकोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षासहित दिये गये हैं।

### ( ६ ) श्रीनारायण-कवच ( श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय ८ से )

**पृष्ठ-संख्या १६, सुन्दर मुख-पृष्ठ, मू० .६ ( छः नये पैसे )।**

### ( ७ ) अमोघ शिवकवच ( श्रीस्कन्दपुराणसे )—पृष्ठ-संख्या १६, मूल्य .६ ( छः नये पैसे )।

### ( ८ ) श्रीशिवचालीसा (श्रीशिवाष्टक और आरतीसहित)—पृष्ठ-संख्या २४, मूल्य .६ ( छः नये पैसे )।

**पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।**

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गीताभवन-ऋषिकेश-सत्सङ्गकी सूचना

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका विचार चैत्र वदी १३ ( २ अप्रैल १९६२ ) के लगभ गीताभवन ( स्वर्गाश्रम ) पहुँचनेका है। सदाकी भाँति आषाढ़तक उनका वहाँ ठहरनेका विचार है।

गीताभवन 'सत्सङ्ग'में जानेवालोंको ऐश-आरामकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही जा चाहिये तथा सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिये।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाना चाहिये। ऋषिकेशमें नौकर-रसोइया मिलना कठि है। स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके साथ अथवा अन्य किसी सम्बन्धीके साथ ही जायँ। अकेली न जा एवं अकेली जानेकी हालतमें यदि स्थान न मिल सके तो दुःख नहीं करना चाहिये। गहने आदि जोखिमव चीजें साथ नहीं रखनी चाहिये। बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ, जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेका प्रबन्ध कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण सत्सङ्गमें विघ्न होता है। खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासा किया जाता है, किंतु दूधका प्रबन्ध होना कठिन है।

छप गया ! बहुत दिनोंसे अप्राप्य ग्रन्थका नया संस्करण छप गया !

# पातञ्जलयोगप्रदीप

ग्रन्थकार—श्रीस्वामी ओमानन्दजी तीर्थ

आकार सुपर रायल आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ६५२, मू० ६.०० डाकखर्च २.२५ कुल ८.२५।

इस ग्रन्थके दो संस्करण अन्य स्थानोंसे प्रकाशित हुए थे। उनका मूल्य भी १२) बहुत अधिक था तथा वे अप्राप्य हो गये थे। अतः ग्रन्थकार महोदयके आग्रह और ग्रन्थकी उपादेयताके कारण तीसरा संस्करण गीताप्रेससे प्रकाशित किया ग और उसका मूल्य भी पहलेसे आधा अर्थात् केवल छः रुपये रक्खा गया। पुस्तककी माँग इतनी अधिक रही कि पाँच हज प्रतियोंका संस्करण बहुत ही शीघ्र समाप्त हो गया। तभीसे चौथे संस्करणके लिये पाठकोंका बहुत आग्रह था पर कई तरहं कठिनाइयोंके कारण अबतक न छप सका।

इस बार सूर्यभेदी व्यायाम ( सूर्य-नमस्कार ) का सविस्तर विवरण और जोड़ा गया है। उसकी प्रक्रियाको प्रदर्शि करनेवाले ९ इकरंगे चित्र आर्टपेपरपर छापकर लगाये गये हैं। कुछ अन्य आसनोंके भी ६ चित्र बढ़े हैं। ग्रन्थकी पृष्ठ-संख्या भी २४ पृष्ठोंकी वृद्धि हो गयी है। फिर भी मूल्य वही छः रुपये है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

# 'कल्याण' नामक हिंदी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

## फार्म चार—नियम-संख्या—आठ

१–प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर

२–प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३–मुद्रकका नाम—मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४–प्रकाशकका नाम—मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५–सम्पादकका नाम—( १ ) हनुमानप्रसाद पोद्दा

( २ ) श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शा

दोनोंका राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

दोनोंका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

६–उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवनकार्यालय, पता–नं० ३०, बाँसतल्ला गली, कलकत्ता ( सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था )

मैं मोतीलाल जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी औ विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

मोतीलाल जाला
प्रकाश

दि० १ मार्च १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

वर्ष ३६
अङ्क ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण—१,४८,००० ( एक लाख अड़तालीस हजार )

# विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख २०१९, अप्रैल १९६२



## चित्र-सूची



वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
( १५ शिलिंग )

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ·४
विदेशमें ·५
( १० पेंस )

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवर्षि नारदपर राधाकी कृपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ } गोरखपुर, सौर वैशाख २०१९, अप्रैल १९६२ { संख्या ४
पूर्ण संख्या ४२५

## देवर्षि नारदपर श्रीराधाकी कृपा

राधाने दे दर्शन सुर-ऋषिको कृपया कर दिया निहाल ।
करने लगे स्तवन गद्गद हो प्रेमपूर्ण-दृग मुनि तत्काल ॥
महायोगमयि मायाधीश्वरि तेजपुञ्ज जननी जय जय ।
माधुर्यामृतवर्षिणि कृष्णाकर्षिणि कृष्णात्मा जय जय ॥
परमेश्वरि रासेश्वरि नित्य निकुञ्जेश्वरि ह्लादिनि जय जय ।
नित्याचिन्त्य अनन्त अनिर्वचनीय रूप-गुण-निधि जय जय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

याद रक्खो—भगवान्‌ने तुम्हें जो कुछ भी दिया है, वह लाभ उठानेके लिये है। अतः प्रत्येक वस्तु तथा परिस्थितिका सदुपयोग करके उससे लाभ उठाओ। सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु है—समय। मृत्यु आनेपर एक क्षणका समय भी माँगे नहीं मिलता। अतएव जीवनके एक-एक क्षणका सदुपयोग करो। एक-एक श्वासका समय कल्याणमय कार्यमें लगाओ। समयका सर्वोत्तम सदुपयोग है—आलस्य-प्रमादको छोड़कर भगवान्‌का मङ्गलमय स्मरण करते हुए प्रत्येक कर्तव्य-कर्मको भगवान्‌की पूजा-सेवाके भावसे करना। अनर्थकारी और व्यर्थ साहित्य, सिनेमा, ताश आदि खेल, व्यर्थ निद्रा, व्यर्थ वार्तालाप आदिमें समय खोना उसका दुरुपयोग है। पापकर्मोंमें समय लगाना तो दुरुपयोग ही नहीं है, समयके साथ शत्रुता करके अपने विनाशको बुलाना है।

याद रक्खो—तुम्हें मन मिला है—भगवच्चिन्तन करने तथा सच्चिन्तनके द्वारा अपना तथा पराया मङ्गल सोचनेके लिये। ऐसा करना ही मनका सदुपयोग है और जीवनकी सफलताका साधन है। परंतु तुम इसे यदि विषाद, भय, चिन्ता, वैर, हिंसा, व्यर्थ-चिन्तन, काम-चिन्तन, विषयचिन्तनमें लगाते हो, पवित्र भावोंके बदले अशुद्ध विचारोंमें संलग्न रखते हो, नियन्त्रणमें न रखकर व्यर्थ-अनर्थके विचारोंमें भटकने देते हो तो तुम इसका दुरुपयोग कर रहे हो।

याद रक्खो—तुम्हें वाणी मिली है—भगवन्नाम-गुण-गानके लिये, स्वाध्यायके लिये, हितपूर्ण-मधुर-सत्य-भाषणके लिये—ऐसे शब्दोंके उच्चारणके लिये, जिनसे अपना तथा दूसरोंका कल्याण हो तथा जो शब्द वायु-मण्डलमें फैलकर चिरकालतक वातावरणमें शुद्ध प्रेरणा देते रहें। ऐसा करना ही वाणीका सदुपयोग है। इसके विपरीत यदि तुम वाणीके द्वारा असत्य, अहितकारी, उद्वेग उत्पन्न करनेवाले कटु तथा अप्रिय शब्दोंका उच्चारण करते हो, परनिन्दा, परचर्चा, परहानिचर्चा, आत्मप्रशंसा, स्वनिन्दा या व्यर्थकी बातोंमें, दुनियाकी आलोचना-प्रत्यालोचनामें, मिथ्या गप-शपमें लगाते हो तो वाणीका दुरुपयोग करते हो।

याद रक्खो—तुम्हें धन-सम्पत्ति मिली है, वस्तुएँ मिली हैं—भगवान्‌की सेवाके लिये। जहाँ अभाव है, वहाँ भगवान् उन अभावग्रस्तोंके रूपमें तुमसे धन-सम्पत्ति तथा उन वस्तुओंको माँगते हैं। तुम उन वस्तुओंको अपनी न मानकर, अपने लिये कम-से-कम लेकर शेष सब यथा-योग्य अभावग्रस्तोंको आदरपूर्वक प्रदान करनेके रूपमें भगवत्-सेवामें लगा देते हो, तब तो उनका सदुपयोग करते हो और तुम्हारी धन-सम्पत्ति तथा प्राप्त वस्तुओंकी सार्थकता होती है। इससे आत्मप्रसादके साथ तुम्हें भगवत्कृपा प्राप्त होती है। परंतु इसके विपरीत यदि तुम उस धन-सम्पत्तिपर अपना स्वामित्व—अपना अधिकार मानकर उसे अपने ही भोगमें लगाते हो, या संग्रह करके ही उसके रक्षणकी चिन्ता करते हुए मर जाते हो तो तुम अपनी बड़ी हानि करते हो; क्योंकि भगवान्‌की वस्तुको अपनी मानकर तुम चोरी करते हो और इस चोरीका दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा। तुम यदि धन-सम्पत्तिको स्वाद-शौकीनी, विलासिता-फैशन आदिमें, शराब-व्यभिचार, अनाचार-अत्याचार, अभक्ष्य-भक्षण-पान या वैर-हिंसामें लगाते हो तो उसका पूरा दुरुपयोग करते हो—आप ही अपने लिये अनन्त यन्त्रणामय नरक-भोगकी योजना बनाते हो। अतः सावधान हो जाओ। पापके कार्योंमें तो धन-सम्पत्ति या किसी भी प्राप्त वस्तुका उपयोग करो ही मत। अपने जीवन-निर्वाहमें भी अत्यन्त सादगीसे उनका कम-से-कम उपयोग करो। बढ़िया बेशकीमती कपड़े न पहनकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम दामके सादे कपड़े पहनो और पैसोंको बचाकर उनसे अभावग्रस्तोंके लिये वस्त्रोंकी व्यवस्था करो। खानपानमें सादगीसे बरतो और शेष पैसोंको अन्नके अभावसे दुखी पीड़ित भगवत्स्वरूपोंकी सेवामें—अन्नदान-के रूपमें लगाओ। यही सदुपयोग है।

याद रक्खो—इसी प्रकार तुम्हें जो कान-नाक-आँख-जीभ-त्वक् इन्द्रियाँ मिली हैं—इनको भी भगवान्‌के साथ जोड़कर तथा इनके द्वारा सेवा करके इनका सदुपयोग करो। दुःख, निन्दा, अपमान, संकट आनेपर उनका भी सदुपयोग यों विचारकर करो कि ये सब हमारे ही किये दुष्कर्मोंके फल हैं। अतएव अब किसी प्रकार भी कोई दुष्कर्म न करके सदा सत्कर्म ही करना है।

'शिव'

# कैवल्य-सम्पादनके पाँच साधन

( लेखक—पूज्यपाद ब्रह्म० श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी शर्मा )

कैवल्य ( माया और मायाके कार्यसे पृथक्ता ) सम्पादन करनेके मुख्य तीन साधन हैं—ब्रह्मानुभव अर्थात् ब्रह्मस्वरूपका यथार्थ अपरोक्षज्ञान, माहात्म्यज्ञान-सहित परमात्माकी अनन्यभक्ति और चित्तनिरोध। वैराग्य और स्वधर्मपालन भी उनके साधनरूप हैं। कैवल्य-सम्पादन करनेके इच्छुक मनुष्यको अधिकारानुसार किसी एक साधनका अच्छी तरह अनुष्ठान करना चाहिये। स्वधर्मपालनके बिना चित्तशुद्धि नहीं होती और चित्तशुद्धिके बिना वैराग्य उत्पन्न नहीं होता।

## ब्रह्मानुभव

'स्थूलशरीर, दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—इन सब स्थूल-सूक्ष्म-समूहसे एवं उनके कारण अज्ञानसे मैं भिन्न और विलक्षण हूँ, मुझमें इन प्रपञ्चोंका अंश भी नहीं है तथा निरतिशय व्यापक चैतन्यसे, जिसको ब्रह्म कहा जाता है, मेरा कोई भेद नहीं।—ऐसे वेदान्तके संस्कारवाली निर्मल बुद्धिमें प्रत्यगभिन्न ब्रह्मका संशय-विपर्ययरहित सुदृढ़ साक्षात्कार होना 'ब्रह्मानुभव' कहलाता है। विवेकादि साधनसम्पन्न अधिकारीको पहले तत्त्ववेत्ता पुरुषके द्वारा वेदान्त श्रवण करना, तत्पश्चात् मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। यह इस 'ब्रह्मानुभव'में हेतुरूप है।

अद्वैतज्ञान-सम्पादन करनेकी जो-जो प्रक्रियाएँ हैं—उनमेंसे जो प्रक्रिया अपनेको अति अनुकूल प्रतीत हो, मुमुक्षुको उसीमें दृढ़ निश्चयपूर्वक संलग्न रहना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्मानुभवद्वारा मनुष्य कृतार्थ हो सकता है।

'मैं प्रत्यगभिन्न ब्रह्म हूँ'—ऐसा दृढ़ निश्चय अपने स्वरूपमें होना चाहिये। कर्ता-भोक्ता आदिके सम्बन्धसे अत्यन्त रहित आत्मा सत्ता-स्फूर्ति प्रदान करनेके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करता। इसलिये उसमें कर्तृत्वका मिथ्या आरोपण करना उचित नहीं। ब्रह्मस्वरूपमें निष्ठा रखनेसे चित्तको सुख-दुःखादिसे रहित परमानन्दका अनुभव होता है और चित्तवृत्ति निर्भय रहती है। ऐसा ज्ञानी मुक्त ही है और उसकी स्थिति ब्रह्मस्वरूपमें ही होती है। इस प्रकार ब्रह्मानुभव मोक्षमें हेतुरूप है।

## माहात्म्य-ज्ञानसहित परमात्माकी अनन्यभक्ति

परमात्मस्वरूप अपने इष्टदेवमें उनके यथार्थ माहात्म्य-ज्ञानसहित, सुदृढ़ श्रद्धायुक्त, अव्यभिचारिणी भक्ति रखना अर्थात् अपने इष्टदेवसे पृथक् तथा अधिक अन्य कोई नहीं है—ऐसी सर्वोत्कृष्ट अनन्यभावना करके इष्टदेवमें अचल परम प्रीति रखना—यही माहात्म्यज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित परमात्माकी अनन्य भक्ति है । यथार्थ माहात्म्य न जाननेके कारण सच्ची श्रद्धा और भक्तिका उदय नहीं होता । अतएव अपने हृदयमें उत्तम प्रकारकी अगाध श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये साधकको महापुरुषोंका सङ्ग एवं सत्-शास्त्रोंका अध्ययन अवश्य करना चाहिये । ऐसा करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर इष्टदेवके यथार्थ माहात्म्यका ज्ञान होता है । जिस प्रकार काष्ठको प्रदीप्त अग्निमें अर्पण करनेपर वह अग्निरूप हो जाता है, उसी प्रकार अपना कर्तव्य समझकर साधक यदि अपने मनको श्रद्धा-भक्तिके साथ ब्रह्ममें अर्पण कर दे तो वह जीव मिटकर ब्रह्मरूप हो जाता है ।

नवधाभक्ति अनन्यभक्तिके सम्पादन करनेमें साधनरूप है । वास्तविक भक्ति सम्पादन करनेके लिये दम्भ और दुराचारसे अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है ।

इष्टदेवमें श्रीमहेश्वर, श्रीविष्णु, श्रीगणपति, श्रीसूर्य और श्रीभगवती—इन पाँच देवोंमेंसे किसी एक स्मार्तदेवका तथा श्रीसद्गुरुका समावेश होता है । इनमेंसे किसी एककी कारणब्रह्मरूप समझकर भक्ति करनी चाहिये । अन्य सभी देव अपने इष्टदेवके महिमारूप किंवा अंशरूप अथवा कार्यब्रह्मरूप हैं यह समझकर उनके प्रति पूज्यभाव रखना चाहिये । किसी देवकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये । इस प्रकार अनन्यभक्तिसे देहाभिमानादिकी आत्यन्तिक निवृत्ति होनेके कारण यह मोक्षमें हेतुरूप है ।

## चित्तनिरोध

चित्तवृत्तिको आत्मस्वरूपमें स्थित रखना चित्त-निरोध है । चित्तनिरोधके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आदिका अभ्यास करना आवश्यक है । चित्तके अन्य परिणामोंको वशमें रखकर और चित्तका आत्माकार परिणाम होनेपर आत्मा ही ब्रह्म है, ज्ञान होता है और तब मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ।

## वैराग्य

इहलोक तथा परलोकके भोगों तथा सुख-दुःख आदि प्रकृति-कार्योंके प्रति सर्वथा तृष्णारहित होना वैराग्य है । श्रीपातञ्जलयोगदर्शनमें वैराग्यके दो प्र बतलाये हैं—एक 'परवैराग्य' और दूसरा 'अपरवैराग्य' ऐहिक विषयोंमें तृष्णारहित उपेक्षाबुद्धिको अपरवै कहा जाता है । ब्रह्मस्वरूपका यथार्थ अपरोक्षज्ञान होने जो प्रकृतिके सुख-दुःख-मोहरूप स्वभावमें सर्वथा तृष्णारहि होना है—वह पर-वैराग्य है । अपरवैराग्यसे परवै श्रेष्ठ है और उसके उत्पन्न होनेपर स्वस्वरूपमें स्थि और मोक्षकी प्राप्ति होती है । यह वैराग्य ज्ञान परिपाकरूप है । अतः वह साधनरूप नहीं, फलरूप है अभ्यासहीन और विचारहीन वैराग्य दीर्घकालतक न टिकता और वह फलदाता भी नहीं होता, कहीं-क अनर्थकारी भी हो जाता है ।

## स्वधर्मपालन

मोक्षकी इच्छासे वर्णाश्रमधर्मका श्रद्धा-भक्तिपूर्व निष्कामभावसे पालन करना—स्वधर्मपालन है । स्व पालनमें ही चोरी, परदारसङ्ग तथा परद्रोहके त्याग समावेश भी हो जाता है । इन सबके अनुष्ठानसे चि शुद्धि होती है और चित्त शुद्ध होनेपर ज्ञान, भक्ति, यो किंवा वैराग्यकी प्राप्तिका अधिकार प्राप्त होता है ।

पूर्वके अत्यन्त पुण्यके प्रभावसे ही मुमुक्षुमें ब्रह्मानु अनन्यभक्ति, चित्तनिरोध, वैराग्य और स्वधर्मपालन— पाँचों साथ रहते हैं ।

जो साधक ब्रह्मानुभव प्राप्त करनेकी इच्छा रखता उसको ज्ञानके प्रधान साधन श्रवणादिका अनुष्ठान करने साथ ही इष्टदेव किंवा सद्गुरुके प्रति भक्ति, चित्त संयम-नियममें रखनेका प्रयत्न, वैराग्यभावको स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत् रखनेकी प्रचेष्टा और स्वधर्मपालन आदिका अनुष्ठान भी अवश्य करना चाहिये । इसके बिना साधकको ब्रह्मानुभवकी प्राप्ति प्रायः नहीं हो सकती; क्योंकि इष्टदेव या सद्गुरुकी भक्तिके बिना चित्तके प्रतिबन्धक संस्कारोंकी निवृत्ति नहीं होती ।

अनन्य भक्तिका सम्पादन करनेकी इच्छा रखनेवाले साधकके लिये 'अपना स्वरूप देहादिसे भिन्न और विलक्षण है' न्यूनाधिकरूपमें इस बातके समझनेकी आवश्यकता है । साथ ही स्वधर्मपालनमें भी आदर रखना चाहिये; क्योंकि स्वधर्मपालनमें अनादर रखनेसे चित्तशुद्धि नहीं होती ।

चित्तनिरोधका सम्पादन करनेके लिये आत्मज्ञान, इष्टदेव किंवा सद्गुरुकी भक्ति, स्वधर्मपालन तथा अनादिकालसे विषयोंमें भ्रमित चित्तको विषयोंमेंसे निवृत्त करना आवश्यक है ।

वैराग्य-सम्पादन करनेके लिये भी न्यूनाधिकरूपमें आत्मज्ञान, इष्टदेव या सद्गुरुकी भक्ति, मनोनिग्रह तथा स्वधर्मपालन आवश्यक है ।

स्वधर्मपालनके परिपाकके लिये साधकको व्यावहारिक स्वार्थका त्याग करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये । इष्टदेव या सद्गुरुकी भक्तिके बिना न तो स्वधर्मपालनका स्वरूप ही समझमें आता है और न उसका यथाविधि निर्वाह करनेके लिये जिस सावधानताकी अपेक्षा है, वही प्राप्त होती है । चित्तका संयम न होनेपर स्वधर्मपालनमें प्रमाद आदि उत्पन्न होते हैं और इससे स्वधर्मका वास्तविक पालन नहीं हो सकता । विषयोंमें वैराग्य न होनेपर उत्तम विषयोंकी प्राप्तिमें स्वधर्मपालन शिथिल हो जाता है और विषयोंमें दोषदर्शनके अभावसे मनमें विशेष विषयासक्तिकी उत्पत्ति हो जाती है ।

इस तरह ये पाँचों प्रकार अपने-अपने परिपाकके लिये परस्पर अपेक्षित हैं ।

इन पाँच प्रकारोंमेंसे किसी एकका सम्पादन करनेके लिये अपने इष्ट प्रकारका अनुष्ठान प्रधानरूपसे तथा अन्य चारों प्रकारोंका अनुष्ठान गौणभावसे करना उचित है । हरिः ॐ

[ अनुवादक—श्रीसुरेश एम्. भट्ट ]

## श्रीराधाकी विरह-व्यथा

( ऊधौ ) इन बतियनि कैसे मन दीजै ।
बिनु देखे वा स्यामसुँदरके, पल पल ही तन छीजै ॥
जो कर आनि हमारैं दीनौ, सो अपने कर लीजै ।
बाँचि सुनावहु लिख्यौ कहा है, हम बाँचत यह भीजै ॥
बड़ौ मतौ है जोग तिहारे, सो हमरैं कह कीजै ।
अच्छर चारिक आनि सुनावहु, तिनहिं आस करि जीजै ॥
उर की सूल तबै भल निकसै, नैन बान जौ कीजै ।
सूरदास प्रभु प्रान तजति हौं, मोहन मिलै तौ जीजै ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पति-पत्नीके परस्पर कर्तव्य

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदिमें स्त्रियोंके लिये सबसे बढ़कर कर्तव्य बतलाया गया है—पातिव्रत्यधर्म। पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे स्त्री किसीको वर या शाप दे सकती है और अपने पतिको भी परमधाममें ले जा सकती है। शुभा नामकी स्त्री पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे अपने पतिके सहित परमधामको गयी, इसकी कथा पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें है। कृकल वैश्यकी पत्नी सुकला बड़ी उच्चकोटिकी पतिव्रता थी। इन्द्र और कामदेव भी उसके भयसे भाग गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश-ने उसके घरपर आकर उसको दर्शन दिये। वह अपने पतिके साथ परमगतिको प्राप्त हुई। यह कथा पद्म-पुराणके भूमिखण्डमें है। अत्रि ऋषिकी धर्मपत्नी पतिव्रता अनुसूयाका प्रसङ्ग श्रीतुलसीकृत रामायणके अरण्यकाण्डमें प्रसिद्ध है ही। उन्होंने सीताको पातिव्रत्यधर्मका बड़ा उत्तम उपदेश दिया है, उसे वहाँ देखना चाहिये। उन्होंने बताया कि स्त्रीके लिये एक ही धर्म, एक ही व्रत और एक ही नियम है—मन, वाणी और शरीरसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना अर्थात् मनसे पतिका चिन्तन करना, वाणीसे उनके प्रति सत्य, प्रिय, हितकर वचन कहना तथा शरीरसे पतिके चरणोंमें नमस्कार, पतिकी सेवा और आज्ञाका पालन करना। इस प्रकार पातिव्रत्यधर्मका पालन छल छोड़कर करनेसे स्त्रीको सहज ही परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है।

**एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पतिपद प्रेमा॥**
**बिनु श्रम नारि परमगति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥**

तथा जो उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता होती है, वह पतिके अतिरिक्त दूसरे पुरुषका कभी चिन्तन नहीं करती। उसके हृदयमें उसका पति ही नित्य निवास करता है। पतिके सिवा अन्य कोई पुरुष है, ऐसा उसे कभी स्वप्नमें भी भान नहीं होता। किंतु जो मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता होती है, वह दूसरे पुरुषोंकी ओर पवित्रभावसे ही देखती है। वह बड़ोंको जन्मदाता पिताके समान, समान अवस्थावालोंको सहोदर भाईके समान तथा बालकोंको औरस पुत्रके समान समझती है—

**उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥**
**मध्यम पर पति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥**

पतिकी धर्मके अनुकूल आज्ञाका पालन करना पत्नीका परम कर्तव्य है; पर यदि पतिके सङ्ग, सेवा और उसे सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे स्वार्थत्यागपूर्वक उसकी आज्ञाके विपरीत भी कहीं आग्रह किया जाय तो दोष नहीं है। जैसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताको वनके बहुत-से क्लेश दिखाकर घरपर ही रहनेका आदेश देते हैं, किंतु सीता उस आदेशको न मानकर उनकी सेवाके लिये वन जाने-का ही आग्रह करती है और कहती है—'कृपानिधान स्वामिन्! आपने वनके बहुत-से भय, विषाद, परिताप-दायक क्लेश दिखलाये; किंतु वे सब मिलकर आपके अल्पमात्र वियोगके क्लेशके समान भी नहीं हैं। आपके वियोगमें मुझे संसारके विषयभोग रोगके समान, आभूषण भाररूप और संसार यमयातनाके समान प्रतीत होता है। आपके वियोगसम्बन्धी कठोर वचन सुनकर भी मेरा हृदय जो नहीं फटता इससे जान पड़ता है आपके विषम वियोगके भयंकर दुःखको ये मेरे प्राण सहते रहेंगे—प्राण देह त्यागकर निकलेंगे नहीं। आप यदि यह समझते कि सीता मेरे वियोगमें जीती नहीं रहेगी तो आप मुझे ऐसी आज्ञा ही नहीं देते।

**भोग रोगसम भूषन भारू। जमजातना सरिस संसारू॥**
**बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥**
**ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।**
**तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसीताजीने समस्त स्त्रियोंको शिक्षा देनेके लिये स्वयं आचरण करके पातिव्रत्यधर्मका दिग्दर्शन कराया। उन्होंने भोग-सुख, राजमहल, आभूषण, रेशमी वस्त्र, मेवा-मिष्टान्न आदि सम्पूर्ण भोगसामग्रियोंको तुच्छ समझकर उनका परित्याग कर दिया तथा पतिके सुखके लिये ही पतिके साथ वृक्षोंके नीचे पर्णशालामें निवास करना, सर्दी-गर्मी-वर्षा आदि सहन करना और कन्द-मूल-फल खाकर जीवन-निर्वाह करना आदि कठोर व्रतोंका पालन करते हुए स्त्रियोंके परमधर्म पातिव्रत्यका नियमपूर्वक अनुष्ठान करके सबके लिये सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया।

पातिव्रत्यधर्मपरायणा सावित्रीकी कथा महाभारतके वनपर्वमें आती है। जब श्रीनारदजीने उसके खोजे हुए वर सत्यवान्की आयु एक वर्ष ही शेष बतायी, तब उसके पिता राजा अश्वपतिने उससे दूसरा वर खोज लेनेको कहा, इसपर उत्तरमें सावित्री बोली——पिताजी !

**सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।**
**सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥**
(महा० वन० २९४। २६)

"भाई-भाईके हिस्सेका बँटवारा एक बार ही होता है, कन्यादान एक बार ही किया जाता है और 'मैंने दिया' इस तरह संकल्प भी एक बार ही होता है। ये तीन बातें एक-एक बार ही हुआ करती हैं।"

**दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।**
**सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥**
(महा० वन० २९४। २७)

'अब तो जिसे मैंने वरण कर लिया, वह दीर्घायु हो या अल्पायु तथा गुणवान् हो या गुणहीन——वही मेरा पति होगा, किसी अन्य पुरुषको मैं नहीं वर सकती।'

इस प्रकार कहकर सावित्रीने वैभवसम्पन्न राजा-महाराजाओंकी उपेक्षा करके तथा राजमहलके भोग-विलासोंको तुच्छ समझकर वनवासी सत्यवान्को ही पतिरूपमें वरण किया और पतिकी तथा अपने सास-ससुरकी सेवा करनेमें ही अपना जीवन लगाया। पातिव्रत्य-धर्मपालनके प्रभावसे उसने यमराजपर भी विजय प्राप्त कर ली। सास-ससुर आदिके लिये अनेक वरदान प्राप्त करके पतिको भी यमराजके फंदेसे छुड़ा लिया।

पतिव्रता मदालसाने अपने पुत्रोंको उत्तम शिक्षा देकर उन्हें जीवन्मुक्त बना दिया और स्वयं उत्तम गति प्राप्त की (मार्कण्डेयपुराण)।

पतिव्रता दमयन्तीने उसकी ओर बुरी दृष्टिसे देखने-वाले दुराचारी व्याधको अपने पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे भस्म कर दिया। (महा० वन०)

इसी प्रकार और भी अनेक पतिव्रताओंके उदाहरण इतिहास-पुराणादि शास्त्रोंमें पाये जाते हैं।

स्त्रीको उचित है कि पति चाहे बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, अंधा, बहिरा, क्रोधी, धनहीन, दीन या मलीन हो, तो भी उसका कभी अपमान न करे। जो नारी पतिका अपमान करती है, उसे यमलोकमें जाकर नाना प्रकारके क्लेशों-को सहना पड़ता है। पतिके मनके विपरीत् तो कभी किंचिन्मात्र भी आचरण न करे; क्योंकि विपरीत आचरण करनेवाली नारी मरनेपर दूसरे जन्ममें युवावस्थामें ही विधवा हो जाती है और जो नारी पतिको धोखा देकर दूसरे पुरुषोंके साथ भोग-विलास करती है, उसे तो रौरवादि नरकोंमें कल्पोंतक निवास करना पड़ता है। इसलिये कल्याण चाहनेवाली स्त्रियोंको पतिके अनुकूल ही चलना चाहिये। पतिके प्रतिकूल आचरण तो कभी किसी हालतमें भी नहीं करना चाहिये।

**बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥**
**ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥**
**पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥**
**पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥**

श्रीमनुजीने तो यहाँतक कहा है——

**विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।**
**उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥**
(मनु० ५। १५४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शीलहीन, स्वेच्छाचारी अथवा गुणोंसे रहित होनेपर भी पति साध्वी स्त्रीके लिये सदा देवताकी तरह पूजनीय है।'

**पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।**
**पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किंचिदप्रियम्॥**
(मनु० ५। १५६)

'परम कल्याणमय पतिलोककी इच्छा रखनेवाली स्त्री पाणिग्रहण करनेवाले पतिके जीवित रहते अथवा मरनेपर भी कभी कोई ऐसा आचरण न करे, जो उसे अप्रिय हो।'

**व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।**
**शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥**
(मनु० ५। १६४)

'पतिके विपरीत आचरण—व्यभिचार करनेसे स्त्री इस लोकमें निन्दाका पात्र बनती है, दूसरे जन्ममें उसे सियारकी योनिमें जाना पड़ता है तथा पापजनित रोगोंसे वह पीड़ित रहती है।'

इसी कारण स्त्रियोंके लिये स्वतन्त्र रहनेका निषेध किया जाता है। आजकल विदेशोंमें जो स्त्रियोंको स्वतन्त्रता दे रखी है, उसके फलस्वरूप पति-पत्नियोंमें परस्पर झगड़ा और मुकदमेबाजी ही होते रहते हैं। अतएव हमें उनका अनुसरण न करके भारतीय ऋषि-मुनियोंके सिद्धान्तका ही पालन करना चाहिये। भारतीय ऋषि-मुनिगण दीर्घदर्शी और त्रिकालज्ञ थे। उनके अनुभवोंसे हमलोगोंको लाभ उठाना चाहिये। वे स्त्रियोंको सदा पुरुषोंके अधीन होकर ही रहनेकी आज्ञा देते हैं; क्योंकि उनका स्वतन्त्र विचरण करना बहुत खतरेका काम है। श्रीमनुजीने बतलाया है—

**बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।**
**न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित् कार्यं गृहेष्वपि॥**
(मनु० ५। १४७)

'स्त्री बालिका हो या युवती हो अथवा बूढ़ी हो, उसे अपने घरमें भी कोई कार्य स्वतन्त्रतासे कभी नहीं करना चाहिये।'

**बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।**
**पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्॥**
(मनु० ५। १४८)

'बाल्यावस्थामें वह पिताके अधीन रहे, युवती अवस्थामें पतिके वशमें रहे और यदि पतिकी मृत्यु हो जाय तो पुत्रोंके अधीन रहे। तात्पर्य यह है कि स्त्री कभी स्वच्छन्दताका आश्रय न ले।'

**पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद् विरहमात्मनः।**
**एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले॥**
(मनु० ५। १४९)

'वह पिता, पति या पुत्रोंसे अपनेको अलग रखनेकी कभी इच्छा न करे; क्योंकि उनसे अलग रहनेसे पितृकुल और पतिकुल दोनोंके ही कलङ्कित होनेकी सम्भावना है।' कहा भी है—

**पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।**
**स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्॥**
(मनु० ९। १३)

'मद्यपान, दुष्टोंका सङ्ग, पतिसे अलग रहना, अकेली घूमना, अधिक सोना तथा दूसरेके घरमें निवास करना—ये छः कार्य स्त्रियोंके लिये महान् दोष हैं (इनसे स्त्रियोंका पतन हो जाता है)।'

आजकल जो शास्त्रविधिसे विवाह न करके रजिस्ट्रीमात्रसे ही विवाह हो जानेकी प्रथाका समर्थन किया जा रहा है, वह बहुत ही बुरा है। इससे विवाहकी पवित्रता तो नष्ट होती ही है, प्रेमका बन्धन भी नहीं रह पाता, जिससे बात-बातमें तलाककी नौबत आती है। पाश्चात्य देशोंमें आज यही हो रहा है। अतः हमारे भारतवर्षमें शास्त्रीय पद्धतिसे विवाह करनेकी जो प्रथा प्रचलित है वह बहुत ही उत्तम है। उसका पति-पत्नीके जीवनपर बड़ा अच्छा असर पड़ता है, उसमें पति-पत्नीका प्रेम-सम्बन्ध आजीवन बना रहता है।

विवाह होनेके पश्चात् स्त्रीका सबसे बढ़कर मुख्य कर्तव्य यह हो जाता है कि वह पतिको ही सर्वस्व मानकर पतिकी आज्ञाके अनुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये ही सारे आचरण करे। क्योंकि—

**भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च।**
**तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥**
(स्कन्द० काशी० पू० ४। ४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्त्रीके लिये पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है। इसलिये स्त्री सबको छोड़कर केवल पतिकी सेवा पूजा करे।'

श्रीवाल्मीकीय रामायणका प्रसङ्ग है। लोकापवादके कारण श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे जब सीताको वनमें छोड़कर लक्ष्मण लौटने लगे, तब सीताने उनसे कहा—

**पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥**
**प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः।**
(वा० रा० उत्तर० ४८। १७-१८)

'स्त्रीके लिये पति ही देवता, पति ही बन्धु और पति ही गुरु है; इसलिये उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये।'

श्रीमनुजीने भी बताया है—

**वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।**
**पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥**
(मनु० २। ६७)

'स्त्रियोंके लिये वैवाहिक विधिका पालन ही वेदोक्त उपनयन-संस्कार माना गया है तथा ससुरालमें रहकर पतिकी सेवा करना ही गुरुकुलका निवास है और भोजन बनाना आदि गृहकार्य ही दोनों समयका अग्निहोत्र है।' इसलिये—

**यस्मै दद्यात् पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः।**
**तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥**
(मनु० ५। १५१)

'पिता अथवा पिताकी अनुमति लेकर बड़े भाई भी कन्याको जिसके साथ ब्याह दें, उसी पतिकी वह जीवन-भर सेवा-शुश्रूषा करे तथा उसकी मृत्यु होनेपर भी वह उसका उल्लङ्घन न करे।'

**नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।**
**पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥**
(मनु० ५। १५५)

'स्त्रियोंके लिये पतिसे अलग कोई यज्ञ, व्रत और उपवास करनेका विधान नहीं है। जिस पातिव्रत्य-धर्मका आश्रय लेकर वह पतिकी सेवा-शुश्रूषा करती है, उसीसे वह स्वर्गलोकमें महिमाको प्राप्त होती है।'

**पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।**
**सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥**
(मनु० ५। १६५)

'जो नारी मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर कभी पतिके विपरीत आचरण नहीं करती, वह पतिधामको प्राप्त होती है और सत्पुरुषोंके द्वारा 'साध्वी' कही जाती है।'

**अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता।**
**इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च॥**
(मनु० ५। १६६)

'मन, वाणी और शरीरको संयममें रखनेवाली नारी इस बर्तावसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें पतिधामको प्राप्त करती है।'

जैसे एकनिष्ठ भगवद्भक्तके लिये भगवान्‌का दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन—सभी रसमय, अमृतमय, प्रेममय और आनन्दमय होता है, उसी प्रकार पतिमें एकनिष्ठा रखनेवाली स्त्रीके लिये पतिका दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन—सभी रसमय, अमृतमय, प्रेममय और आनन्दमय समझना चाहिये। कभी अपनी और पतिकी—दोनोंकी ही इच्छाएँ न्याययुक्त हों, तो भी अपनी इच्छाका त्याग करके बड़े उत्साहसे पतिकी इच्छाके अनुकूल ही आचरण करे। पतिके साथ सदा आदर, सत्कार, प्रेम और त्यागसे पूर्ण व्यवहार होना चाहिये। पतिके अधिकारकी कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। पति यदि कोई कार्य अपने मनके विपरीत भी करे, तो भी उसमें कभी दोषबुद्धि न करे। यदि पति कोई धर्मविरुद्ध आचरण करनेको कहे तो पतिके हितके लिये वह कार्य न करके अनुनय, विनय और स्तुति-प्रार्थनाके द्वारा उसको भी अधर्मसे बचाये। किंतु पतिके विचारों-का खण्डन न करके जो कुछ कहना हो, जब वे प्रसन्न हों, तब नम्रतापूर्वक मधुर शब्दोंमें कहे। पतिके सामने सदा हँसमुख और विनययुक्त ही रहे। पतिके सिवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी मनुष्यको अपना गुरु न बनाये। पतिकी सेवाके कार्योंको यथासाध्य स्वयं करे। पतिके लिये ही श्रृङ्गार करे, शौकीनीसे या दूसरोंको दिखानेके लिये नहीं। पतिके मनमें दुःख हो, ऐसा कार्य कभी भूलकर भी न करे। पतिके माता-पिता या अन्य पूजनीय लोगोंका भी आदर-सत्कार, सेवा-पूजा पतिके समान ही पतिकी प्रसन्नताके लिये कर्तव्य समझकर करे। अपने बालक-बालिकाओंके सम्मुख अपने उत्तम आचरणोंका आदर्श रखती हुई उनको अच्छी शिक्षा दे। कुटुम्बके दूसरे बालक-बालिकाओंका भी लालन-पालन बड़े प्रेमसे अपने बालकोंके समान ही करे, बल्कि उनके साथ खानपानादि पदार्थोंके द्वारा अपने बालकोंसे भी अधिक प्रेमका व्यवहार करे। जैसे खाने-पीने, पहननेकी कोई वस्तु हो, वह अपने बालकोंकी अपेक्षा उनको पहले, बढ़िया और अधिक दे। ऐसा करनेपर वे बालक और उनके माता-पिता आदि उस नारीके अनुकूल हो सकते हैं और स्वार्थरहित होकर करनेपर तो इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें परम गति हो सकती है। अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर तथा अपने अधिकारकी वस्तुओंके द्वारा निष्कामभावसे दूसरोंका हित और सेवा ही करती रहे। किंतु दूसरोंसे सेवा कराने और आदर-सत्कार, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी कभी इच्छा न रखे। दूसरोंके पदार्थोंके लेनेकी भी कभी इच्छा न करे। यदि लेना पड़े तो उनके संतोषके लिये थोड़ा लेना चाहिये, चाहे वे ससुराल या नैहरके व्यक्ति ही क्यों न हों। निःस्वार्थभावसे ऐसा लेना भी उनकी सेवा ही है; किंतु अभिमानपूर्वक, मान-बड़ाई और स्वार्थसिद्धिकी इच्छासे मन, वाणी, शरीर और पदार्थोंके द्वारा दूसरोंकी सेवा—सत्कार करना भी वास्तविक सेवा-सत्कार नहीं है। घरके हरेक कार्य पतिकी इच्छाके अनुकूल बड़ी कुशलतापूर्वक करे और अपने घरकी परिस्थितिको देखकर ही खर्च करे, अनावश्यक खर्च कभी न करे।

**सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।**
**सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥**
(मनु० ५। १५०)

'स्त्रीको सदा ही प्रसन्न रहना और घरके कार्योंमें दक्ष होना चाहिये। वह घरकी प्रत्येक सामग्रीको स्वच्छ रखनेवाली और खुले हाथों खर्च न करनेवाली बने।'

स्त्रीका यह परम कर्तव्य है कि वह जो भी कुछ करे, पतिकी आज्ञाके अनुसार पतिके हितके उद्देश्यसे ही निःस्वार्थभावसे करे, अपने लिये नहीं।

अब पतिके कर्तव्य बतलाये जाते हैं। पति अपनी पत्नीको अपने अङ्गके समान समझे; क्योंकि वह उसकी अर्धाङ्गिनी है। वह बीमार हो जाय या किसी प्रकारकी आपत्तिमें पड़ जाय तो जैसे अपने शरीरकी रक्षा की जाती है, वैसे ही उसकी रक्षा और सेवा करे। स्त्रीके माता-पिताको अपने माता-पिताके समान और उसके भाई-बहन-भौजाईको अपने भाई-बहन-भौजाईके समान समझकर उनका आदर करना चाहिये। स्त्री चाहे मूर्ख हो, अंधी हो, बहरी हो, वृद्धा हो, तो भी उसकी निन्दा, अपमान, अनादर-तिरस्कार न करे। कभी उसे क्रोध भी आ जाय, तो भी प्रेमसे समझा दे। उसको या उसके माता-पिताको गाली तो कभी दे ही नहीं। जो पुरुष अपनी पत्नीको गाली देता है या मारता-पीटता है, वह नरकगामी होता है। अतः जिस प्रकार पत्नीका इहलोक और परलोकमें हित हो, वैसा ही प्रयत्न सदा निष्काम-भावसे करते रहना चाहिये; क्योंकि—

श्रीमनुजीने भी कहा है—

**प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।**
**स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥**
(मनु० ९। २६)

'परम सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ संतानोत्पादनके लिये हैं। वे सर्वथा सम्मानके योग्य और घरकी शोभा हैं। घरोंमें जो स्त्रियाँ हैं, वे सभी लक्ष्मीके समान हैं; उनमें और लक्ष्मीमें कुछ भी भेद नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥
( मनु० ९। २७ )

'संतान उत्पन्न करना, उत्पन्न हुई संतानका भलीभाँति पालन-पोषण करना और प्रतिदिन भोजन आदि बनाकर लोकयात्राका निर्वाह करना—यह सब प्रत्यक्षरूपसे स्त्रीके अधीन है।'

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह॥
( मनु० ९। २८ )

'संतानकी प्राप्ति, धर्मकार्यका अनुष्ठान, सेवाकार्य, उत्तम ( धर्मयुक्त ) रति, पितरोंकी स्वर्ग-प्राप्ति और अपनी भी उन्नति स्त्रीके अधीन हैं।'

इसलिये स्त्रीको अपने मित्रके समान समझकर उसके साथ सदा सद्व्यवहार करना चाहिये। जब विवाह होता है, उस समय पत्नीके प्रार्थना करनेपर पुरुष उसके साथ यह प्रतिज्ञा करता है—

मदीयचित्तानुगतं च चित्तं
सदा मदाज्ञापरिपालनं च।
पतिव्रता धर्मपरायणा त्वं
कुर्यास्तदा सर्वमिदं प्रयत्नम्॥

'यदि तुम सदा मेरे मनके अनुकूल अपना मन रखोगी, सदा मेरी आज्ञाका पालन करती हुई पतिव्रत-धर्मके परायण रहोगी तो मैं तुम्हारी कही बातोंका पालन करूँगा।'

इस प्रतिज्ञाके अनुसार पुरुषको उचित है कि यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, देवकार्य या पितृकार्य आदि कोई भी धार्मिक कार्य किया जाय, वह पत्नीको साथ लेकर करे। कभी विदेशमें जाय तो पत्नीको साथमें ले जाय, परस्त्री-का कभी सेवन न करे। व्यापार आदि जीविकोपार्जनके कार्यमें उसकी सलाह लेता रहे। जहाँ मतभेद हो, वहाँ पत्नी-की इच्छा न्याययुक्त हो तो अपनी इच्छाका परित्याग करके उसकी इच्छाके अनुसार कार्य करे। उसका जो अधिकार है, उसमें कभी बाधा न पहुँचाकर उसकी रक्षा करे। उसके साथ आदर-सत्कारपूर्वक व्यवहार करे। तिरस्कार तो कभी करे ही नहीं। पत्नी रोगग्रस्त या कुरूप हो अथवा उसके द्वारा कोई अपराध हो जाय या वह अपने मनके विपरीत व्यवहार करे तो भी उसका परित्याग न करे, न मार-पीट करे, न डाँट-डपट करे, न डराये-धमकाये ही; बल्कि उसके अपराधको क्षमा करके उसे प्रेमसे इस प्रकार समझाये कि वह भविष्यमें वैसी भूल न करे।

तथा अपनी शक्तिके अनुसार उसका वस्त्र और आभूषणादिके द्वारा उचित सत्कार करे। श्रीमनुजीने कहा है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
( मनु० ३। ५६ )

'जहाँ स्त्रियोंका आदर-सत्कार किया जाता है, वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ इनका अनादर-तिरस्कार होता है, वहाँ सब कार्य निष्फल होते हैं।'

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥
( मनु० ३। ५९ )

'इसलिये उन्नति चाहनेवाले मनुष्योंको चाहिये कि आदरके अवसरोंपर तथा उत्सवोंमें वस्त्र, अलंकार और भोजन आदिसे स्त्रियोंका सदा आदर-सत्कार करें।'

यदि पत्नीकी इच्छा धर्मविरुद्ध न हो तो उसकी इच्छाके अनुसार दान, धर्म, सेवा, तीर्थ, व्रत आदिमें खर्च करनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार उसे धनादि पदार्थ दे और उसके खाने-पीने, पहननेकी न्याययुक्त आवश्यकताको पूरी करते हुए अपने प्रेमपूर्ण व्यवहारसे सदा उसे प्रसन्न रखे एवं उसके ही हितके लिये निःस्वार्थभावसे उसकी सदा-सर्वदा रक्षा करे।

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः॥
( मनु० ९। ५ )

'कुसङ्ग अथवा आसक्ति सूक्ष्म-से-सूक्ष्म क्यों न हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे भी स्त्रियोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि रक्षित न होनेपर वे पति और पिता दोनोंके ही कुलको शोकमें डाल देती हैं।'

रक्षाका उपाय भी मनुजीने बतला दिया है—

**अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।**
**शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे॥**

(मनु० ९।११)

'स्त्रीको धनके संग्रहमें और उसको खर्च करनेके कार्यमें लगाये, घरको स्वच्छ रखने, दान-पूजन आदि धर्मकार्य करने, रसोई बनाने तथा घरके सामानकी देख-भाल करनेके कार्यमें भी उसे नियुक्त करे।'

**एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्॥**

(मनु० ९।१०)

'इन उपायोंको काममें लानेसे उसकी रक्षा की जा सकती है।'

इस प्रकार पति-पत्नी दोनों एक दूसरेके कर्तव्य-पालनकी ओर न देखकर स्वयं अपने कर्तव्यका निष्कामभावसे पालन करते हुए एक दूसरेसे सदा संतुष्ट रहें तो उससे उन दोनोंका ही कल्याण हो जाता है। श्रीमनुजी कहते हैं—

**संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।**
**यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥**

(मनु० ३।६०)

'जिस कुलमें स्त्रीसे पति नित्य प्रसन्न रहता है और उसी प्रकार पतिसे स्त्री प्रसन्न रहती है, वहाँ निश्चय ही अचल कल्याण होता है।'

# योगीश्वर गोरक्षनाथका दार्शनिक सिद्धान्त

(लेखक—आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय एम्० ए०)

मध्ययुगसे पूर्वकालीन भारतमें योगीश्वर गोरक्षनाथ अति प्राचीन योगधर्मके एक अनन्यसाधारण प्रभावशाली प्रचारक थे। वे भारतके सब प्रदेशोंमें सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंमें योगकी भावधारा प्रवाहित कर गये हैं। उनके द्वारा प्रवर्तित योगिसम्प्रदाय नाथयोगी, सिद्धयोगी, अवधूतयोगी, दर्शनीयोगी, कनफटायोगी इत्यादि नामोंसे भारतमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। सम्पूर्ण भारतवर्षमें ऐसा कोई प्रदेश नहीं है, जहाँ गोरक्षनाथके नामपर मठ, मन्दिर, अखाड़ा आदि आज भी विद्यमान न हो। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि उन्होंने योगका आदर्श लेकर समग्र देशमें धर्मके एक विराट् आन्दोलनका सृजन किया था। उन्होंने महायोगीश्वरेश्वर शिवको केवल ब्रह्मस्वरूपमें अथवा सृष्टि-स्थिति-प्रलयविधाता परमेश्वरके रूपमें ही नहीं, बल्कि उसके साथ-ही-साथ समस्त ज्ञानी, योगी और भक्तोंके आदि गुरु एवं जीवनके चिरंतन आदर्शके रूपमें सर्वसाधारणके समक्ष समुपस्थित किया था। उन्होंने अपने द्वारा प्रचारित योगधर्मके आदिप्रवर्तकके रूपमें शिवका ही उल्लेख किया है। इस बातकी प्रसिद्धि है कि उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथको साक्षात् आदिनाथ शिवजीसे ही महाज्ञान और महायोगकी दीक्षा और उपदेश प्राप्त हुआ था। योगियोंका ऐसा विश्वास है कि स्वयं गोरक्षनाथकी साक्षात् शिवके अवताररूपमें ही योगी और भक्त-समाजमें सर्वत्र पूजा होती थी और हो रही है एवं यह कि वे अपने पार्थिव देहमें ही कालके प्रभावका अतिक्रम करके अमर होकर आज भी विद्यमान हैं और लोकचक्षुके अगोचर जीव-कल्याण कर रहे हैं। वे किस शताब्दीमें किस प्रदेशमें पहले-पहल आविर्भूत हुए थे, इसका निर्णय करनेमें ऐतिहासिकगण आज भी असमर्थ हैं।

हमलोग साधारणतः 'दार्शनिक' या 'दर्शनाचार्य' शब्दसे जो कुछ समझते हैं, उस अर्थमें महायोगी गोरक्षनाथ 'दार्शनिक' या 'दर्शनाचार्य' की संज्ञा पानेके योग्य थे या नहीं, इस सम्बन्धमें संदेह हो सकता है। साधारण दृष्टिसे जो लोग किसी एक विशेष तात्त्विक मतवादका पोषण और प्रचार करते हैं, युक्तितर्कबहुल ग्रन्थोंकी रचना करके अपने उस विशेष मतवादका प्रतिपादन करते हैं और उसके सम्पर्कमें सम्भावित सभी प्रकारकी आपत्तियोंके निरसन करनेकी चेष्टा करते हैं, एवं युक्तितर्कके प्रखर अस्त्रशस्त्रोंके प्रयोगद्वारा उसके प्रतिद्वन्द्वी सभी मतवादोंके विरुद्ध युद्ध करते हैं, उन्हीं मनीषियोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दार्शनिक पण्डित' या 'दर्शनाचार्य' की संज्ञा प्राप्त होती है। कपिल, बादरायण, शंकर, रामानुज आदि आचार्यगण इसी प्रकारके महान् दार्शनिक थे । किंतु इस अर्थमें नारद, शुकदेव, गोरक्षनाथ, कबीर, नानक, श्रीरामकृष्ण आदि महापुरुषोंको असाधारण प्रभावसम्पन्न धर्मोपदेष्टा और सम्प्रदायप्रवर्तक होनेपर भी—'दार्शनिक' आख्या देना कदाचित् बहुतोंके मतमें समीचीन न होगा । इन सब महापुरुषोंमें किसी प्रकारके दार्शनिक तर्कयुद्धमें उतरनेकी प्रवृत्ति ही नहीं देखी जाती, तथापि इन्होंने साधनोपदेशके साथ-साथ तत्त्वोपदेश भी दिये हैं। साध्यनिर्णयके बिना साधनका निरूपण सम्भव नहीं। साध्यका निर्णय तत्त्वज्ञानके ऊपर ही निर्भर रहता है। ये सब महापुरुष अपनी आन्तर अनुभूतिके दिव्य आलोकमें तत्त्वका उपदेश देते हैं एवं साधनका पथनिर्देश करते हैं, तर्कयुद्धमें प्रवृत्त नहीं होते ।

योगीश्वर गोरक्षनाथके नामसे अनेक संस्कृतके ग्रन्थ प्रचलित हैं। उनमेंसे कितने तो अभी मुद्रित ही नहीं हुए हैं। ये सभी ग्रन्थ उस महायोगीकी निज रचना हैं या नहीं, इसमें संदेहके कारण हैं। बहुत-से ग्रन्थोंका तो उनके उपदेशोंको ही भित्ति बनाकर उनके परवर्ती भक्तों और योगियोंद्वारा रचित होना असम्भव नहीं है। किंतु इन सभी ग्रन्थोंमें प्रायः योग-साधनाका ही उपदेश है, तत्त्वोपदेश तो उसका अङ्गीभूत है। ठीक-ठीक दार्शनिक ग्रन्थ बहुत ही कम हैं। 'सिद्धसिद्धान्त-पद्धतिः' नामका एक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थकी यही विशेषता है कि यह मुख्यतः दार्शनिक अर्थात् तत्त्वनिरूपक ग्रन्थ है। किंतु इस ग्रन्थमें भी युक्तितर्ककी अवतारणा एवं स्वमत-स्थापन और परमत-खण्डनकी दार्शनिक प्रणाली नहीं है । हिंदी भाषामें भी गोरक्षनाथके नामसे अनेक ग्रन्थ हैं, एवं वे ही हिंदीका प्राथमिक साहित्य हैं। ऐसे जिन-जिन ग्रन्थोंका पता लगा है, वे सभी एक साथ 'गोरक्षवाणी' नामसे मुद्रित और प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि बंगलाभाषामें गोरक्षनाथके द्वारा रचित किसी भी ग्रन्थका पता नहीं लगा है, तथापि बंगालका प्राचीनतम साहित्य वह नाथसाहित्य है—जो गोरक्षनाथ, उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ एवं उनके अनुवर्तियोंके चरित्र और उपदेशोंके आधारपर ही रचा गया है। भारतकी अन्य प्रादेशिक भाषाओंके प्राचीन साहित्यपर भी गोरक्षनाथ और उनके सम्प्रदायका प्रभाव दिखायी देता है। इस प्रकार विभिन्न भाषाओंमें गोरक्षनाथ-सम्प्रदायका एक विशाल साहित्य विद्यमान होनेपर भी हम 'दार्शनिक ग्रन्थ' के नामसे जो कुछ समझते हैं, उस प्रकारके ग्रन्थोंका प्रायः अभाव ही देखा जाता है।

इससे यही समझमें आता है कि बुद्धके समान योगीश्वर गोरक्षनाथ दार्शनिक युक्तियोंका जाल फैलाना पसंद नहीं करते थे। बौद्ध-सम्प्रदायमें दार्शनिक कूटतर्कोंका जाल अवश्य ही बहुत विस्तारको प्राप्त हुआ, एवं इसी कारण उनका सम्प्रदाय अनेक उपसम्प्रदायोंमें विभक्त भी हो गया। किंतु गोरक्षनाथके सम्प्रदायमें परवर्ती कालमें भी इस तर्कजालका वैसा प्रसार नहीं हुआ। परवर्ती कालमें भी उनके सम्प्रदायमें अनेकों महान् तत्त्वज्ञानी और योगैश्वर्य-सम्पन्न सिद्धयोगियोंका आविर्भाव होनेपर भी उनमें महान् दार्शनिक पण्डित या आचार्यका आविर्भाव प्रायः नहीं देखा जाता।

गोरक्षनाथके समयमें भी सम्भवतः द्वैतभाव और अद्वैतभावका विवाद तीव्ररूपमें ही था। इसीसे वे तथा उनके अनुवर्ती अवधूत योगियोंने कहा है—

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविलक्षणम् ॥
यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः।
अहो मायामहामोहो द्वैताद्वैतविकल्पना ॥

( अवधूतगीता )

कोई अद्वैतवादके चाहनेवाले होते हैं, तो कोई द्वैतवादके। ( इस प्रकार विभिन्न पक्षोंमें विभक्त होकर दार्शनिक विचारक प्रायः वादविवादमें ही लगे रहते हैं एवं परिणाममें तत्त्वतः समदर्शित्व न प्राप्त करके प्रायः विभिन्न मतवादोंके कारण वैषम्यदर्शी ही रह जाते हैं। ) वे किसी भी समतत्त्वको नहीं जान पाते, समतत्त्वमें प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर पाते। जीव-जगत्का जो मूलभूत परमतत्त्व है, वह द्वैताद्वैतविलक्षण समतत्त्व है। उस चरम तथा परम समतत्त्वका निरूपण न तो द्वैतका निषेध करके अद्वैतके प्रतिपादनसे होता है और न तत्त्वका—अद्वैतका निषेध करके द्वैतका प्रतिपादन करनेसे ही। जब यह उपलब्धि हो जाती है कि एक स्वप्रकाश परमदेव नित्यपूर्ण, नित्यस्थिर और सर्व-भेदरहित है एवं वही सर्वगत तथा अनन्त विचित्र रूपोंमें लीलायमान है, तब द्वैताद्वैतकी सारी कल्पनाएँ नितान्त निरर्थक हो जाती हैं। इस प्रकारकी कल्पना ही माया है, यही महामोहका निदर्शन है।

इस द्वैताद्वैतविलक्षण समतत्त्वके सम्बन्धमें गोरक्षनाथ कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**भावाभावविनिर्मुक्तं नाशोत्पत्तिविवर्जितम् ।**
**सर्वसंकल्पनातीतं परब्रह्म तदुच्यते ॥**
**हेतुदृष्टान्तनिर्मुक्तं मनोबुद्ध्याद्यगोचरम् ।**
**व्योमविज्ञानमानन्दं तत्त्वं तत्त्वविदो विदुः ॥**

( विवेकमार्तण्ड )

उस परम और चरम तत्त्वको ही परब्रह्म कहा जाता है। उस परब्रह्मकी उपलब्धि जिन महायोगियोंको होती है, वे इस बातका अनुभव करते हैं कि वह परमतत्त्व भाव और अभावके द्वन्द्वसे मुक्त है ( अस्ति-नास्तिके बहिर्भूत है ), नाश और उत्पत्ति—( एवं सर्वविध विकार ) से रहित है, एवं सब प्रकारकी कल्पना—विकल्प और वितर्कसे अतीत है। वह 'ऐसा है' अथवा 'ऐसा नहीं है' इस बातका प्रतिपादन करना किसी प्रकारके हेतु या दृष्टान्तकी सहायतासे सम्भव नहीं; ( उसके विषयमें कोई व्याप्तिज्ञान होना सम्भव नहीं, उसके निर्धारणके लिये कोई समीचीन अन्वयी या व्यतिरेकी दृष्टान्त भी हमारी अभिज्ञताकी सीमामें नहीं मिलता; क्योंकि उसकी सजातीय या विजातीय कोई भी वस्तु न तो है और न रह ही सकती है। ) वह मन-बुद्धि आदिके अगोचर है, ( क्योंकि मन-बुद्धि आदिका विहार और विलास द्वन्द्वके राज्यमें ही होता है। जिस तत्त्वमें सब द्वन्द्वोंका, सब भेदोंका, सारी 'हाँ' और 'ना' का सम्यक् पर्यवसान हो जाता है, जिस तत्त्वमें कोई विषय-विषयीका भेद नहीं रह जाता, उस तत्त्वकी कल्पना या विचार मन और बुद्धि किस प्रकार कर सकेंगे ? ) किंतु समाधिमें उस तत्त्वकी उपलब्धि होती है—निर्मल निश्चल निरवच्छिन्न आकाशवत् स्वयं सत्‌रूपमें, विज्ञान अर्थात् विषय-विषयिभेदवर्जित ज्ञातृ-ज्ञेय-ज्ञान-भेदवर्जित स्वप्रकाश चैतन्यरूपमें एवं आनन्द अर्थात् स्वयंपूर्णताके आस्वादनरूपमें। चरम समाधिमें जिस चरम तत्त्वका अनुभव होता है, वह मनके प्रत्यक्ष या कल्पनाका विषय भी नहीं होता, बुद्धिके नैयायिक युक्ति विचार-अनुमानादिका विषय भी नहीं होता, किसी प्रकारकी भाषामें व्यक्त करनेका भी विषय नहीं होता; तथापि है वही परम सत्य। तत्त्ववेत्तागण उसीको तत्त्व कहते हैं। चरम समाधिमें चरम सत्यकी चरम अनुभूतिमें मन और बुद्धि उस सत्यके स्वरूपमें ही विलीन होकर सत्यानुभूति प्राप्त करते हैं, सत्यको विषय बनाकर अनुभूति नहीं प्राप्त करते। सुतरां भेदराज्य-बिहारी विषयविलासी मन-बुद्धि इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि उस अनुभूतिका स्वरूप कैसा है ? तथापि उस 'निरुत्थान' अवस्थासे 'व्युत्थान' अवस्थामें लौटकर म[न] बुद्धिकी यह सुदृढ़ धारणा बनी रहती है कि समाधिकी उ[स] विलीन अवस्था या एकीभूत अवस्थामें जिस समतत्त्वमें, ि[जस] अनिर्वचनीय व्योमविज्ञान-आनन्दस्वरूपमें स्थिति प्राप्त हु[ई] थी, वही वस्तुतः परम सत्य, परम तत्त्व है।

इस भावाभावविनिर्मुक्त द्वैताद्वैतविलक्षण मनोबुद्ध्य[ा]गोचर परम-तत्त्वको योगिगुरु गोरक्षनाथने निर्विकल्प समाधि[के] विषय-विषयिभेदरहित अपरोक्ष ज्ञानमें अनुभव करके 'अनाम[ा]' संज्ञा दी है। वे कहते हैं—

**यथा नास्ति स्वयं कर्ता कारणं न कुलाकुलम् ।**
**अव्यक्तं च परं ब्रह्म अनामा विद्यते तदा ॥**

( सिद्धसिद्धान्तपद्धति )

जब स्वयं ( अहंबोध ) नहीं रहता, कर्ता ( कर्तृत्वबोध ) नहीं रहता, कारण ( कार्यकारणभाव ) नहीं रहता, कुल औ[र] अकुलका भेद नहीं रहता और जब परम ब्र[ह्म] सर्वतोभावेन अव्यक्त होता है ( किसी प्रकारकी उपाधि[के] भीतर उसकी अभिव्यक्ति नहीं होती ), तब 'अनामा' विद्यमा[न] रहता है। ( अर्थात् तब जो रहता है, उसका कोई नाम न[हीं] होता; क्योंकि बिना उपाधिके कोई नाम होता नहीं, न[ाम] उपाधिका ही नामान्तर है। ) यह अनामा ही 'स्वयमनादिसिद्ध[म्] एकमेव अनादिनिधनम्' ( सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति ) सर्वतत्त्वातीत तत्त्व है। सर्वोच्च स्तरकी समाधिमें इस स्वप्रका[श] नित्यसत्य तत्त्वातीत तत्त्वकी ही अनुभूति होती है।

उपदेशकालमें उपदेशप्रदानके प्रयोजनसे योगिगुरुने इ[स] अवाङ्‌मनसगोचर अपरोक्षानुभवसिद्ध तत्त्वातीत तत्त्वका ब्र[ह्म], परब्रह्म, शिव, परशिव, आत्मा, परमात्मा, संविद्, परासंवि[द्], पद, परमपद, निरञ्जन, शून्य, परमशून्य, शून्याशून्य-विलक्षण, परमाकाश, चिदाकाश, सच्चिदानन्द इत्यादि विभि[न्न] नामोंसे उपदेश किया है। प्रत्येक सार्थक नाम ही उ[स] निरुपाधिक तत्त्वको किसी-न-किसी प्रकारके सोपाधिकरू[पमें] मन-बुद्धिके सम्मुख उपस्थित करता है। तथापि नामके बि[ना] उसकी धारणा भी सम्भव नहीं होती, उपदेश ही असम्भ[व] होता है। नामका अवलम्बन करके ही नामातीतका चिन्त[न] करना होगा, उपाधिके द्वारा ही निरुपाधिकको धारणामें ल[ाना] पड़ेगा एवं चरम अनुभूति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे साधना[में] निमग्न होना पड़ेगा।

उपासनाकी दृष्टिसे गोरक्षनाथ शैवरूपमें प्रसिद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैवधर्मके एक अनन्यसाधारण प्रचारक थे। स्वयं उन्होंने तथा उनके अनुयायियोंने भारतवर्षके सभी स्थानोंमें, गाँवोंमें, नगरोंमें, श्मशानोंमें, वनोंमें, पर्वतशिखरोंपर असंख्य शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित किये हैं—यह प्रसिद्ध है। शिवको उन्होंने हिमालयके शिखरसे नीचे लाकर घर-घरमें लोगोंके हृदयदेवताके रूपमें उपस्थित किया। शिवका एक ओर तो उन्होंने नामरूपातीत चरमतत्त्वके रूपमें उपदेश किया और दूसरी ओर नित्यसिद्ध क्लेशकर्मविपाकादिरहित महायोगीश्वरके रूपमें प्रचार किया। साथ ही उनको अशेषकरुणानिधान सर्वलोकगुरु वाञ्छा-कल्पतरु वर्णाश्रमभेदनिरपेक्ष सर्वजीवप्रेमी आशुतोष रूप-में भी सब नर-नारियोंके हृदयोंमें प्रतिष्ठित किया। शिव जिस प्रकार योगी ज्ञानी त्यागी तपस्वियोंके परमाराध्य हैं, उसी प्रकार असुर-राक्षस-चण्डाल-व्याध-किरात आदि सब जातिके सब श्रेणियोंके नर-नारियोंके परम उपास्य हैं। उनकी पूजामें अधिकारभेद नहीं, पुरोहित-की आवश्यकता नहीं; पूजोपकरणका बाहुल्य नहीं; सभी लोग अपने हृदयके भक्ति-अर्घ्यसे बिना मन्त्रके, बिना आडम्बरके साक्षात्रूपसे उनकी अर्चना कर सकते हैं। वे सगुण-निर्गुणकी ऐक्यभूमि हैं, सोपाधिक और निरुपाधिककी ऐक्यभूमि हैं, सर्वातीत और सर्वमय एवं सबके अपने निज जन हैं। वे जैसे अवधूत योगियोंके परम आदर्श है, वैसे ही समाजके सबसे नीचेके स्तरके वेदाचारबहिर्भूत अवज्ञात उपेक्षित नर-नारियोंमें भी उनकी अबाध गति है। योगिगुरु गोरक्षनाथ योगियोंके ईश्वरको मनुष्य-समाजके निम्नतम स्तरतक उतार लाये। यह उनके सर्वभूतानुकम्पी योगिहृदयका एक निदर्शन है। इतनेपर भी अपने उपदेशोंमें वे तत्त्वके विषयमें सर्वदा सचेत रहते थे। शुद्ध शैव किसको कहते हैं, इस विषयमें उनकी उक्ति है—

> शुद्धं शान्तं निराकारं परानन्दं सदोदितम्।
> तं शिवं यो विजानाति शुद्धशैवो भवेत्तु सः॥
>
> ( विवेकमार्तण्ड )

'जो शुद्ध ( मलविक्षेपावरणरहित ) शान्त ( सदात्म-समाहित ) निराकार ( रूपोपाधिवर्जित ) परमानन्दघन नित्य-स्वप्रकाश शिवको जान लेता है और आराधना करता है, वही शुद्ध शैव होता है।'

गोरक्षानुवर्ती स्वात्माराम योगीन्द्र 'हठयोगप्रदीपिका'में 'शाम्भवी मुद्रा'के प्रसङ्गमें शिवतत्त्व या शम्भुतत्त्वका लक्षण इस प्रकार बतलाते हैं—

> शून्याशून्यविलक्षणं स्फुरति तत् तत्त्वं परं शाम्भवम्।

—श्रीगुरुकी कृपासे शाम्भवी मुद्रामें सिद्धि प्राप्त होनेपर 'शून्याशून्यविलक्षण' परम शम्भुतत्त्व या शिवतत्त्व अन्तरमें स्फुरित होता है।

इसके ठीक अगले श्लोकमें ही वे कहते हैं—

> भवेच्चित्तालयानन्दः शून्ये चित्सुखरूपिणि।

चित्सुखरूप 'शून्य'में चित्तलयका परमानन्द अनुभूत होता है।

गोरक्षनाथने सत्यके स्वरूपका इस प्रकार निर्देश किया है।

> सत्यमेकमजं नित्यमनन्तं चाक्षरं ध्रुवम्।
> ज्ञात्वा यस्तु वदेद् धीरः सत्यवादी स उच्यते॥
>
> ( विवेकमार्तण्ड )

'सत्य एक, अज ( उत्पत्तिरहित ), नित्य ( विनाशरहित ), अनन्त ( सीमारहित ), अक्षय ( विकाररहित ) और ध्रुव ( संशयातीत वास्तवतत्त्व ) है। इस सत्यका ज्ञान प्राप्त करके जो धीर व्यक्ति केवल इस विशुद्ध सत्यकी ही बात कहता है, वही वस्तुतः सत्यवादी है।'

गोरक्षनाथ नानाप्रकारसे इस परम सत्यकी बात ही शान्ति-पिपासुओंके लिये कहते हैं और उस सत्यकी ओर ही सबके चित्तका आकर्षण करते हैं। जीवनको परम सत्यमय बना लेना ही परमपुरुषार्थ है एवं इसी उद्देश्यसे उन्होंने सबके लिये योगका उपदेश किया है। योगका उन्होंने साधन और साध्य, उपाय और उपेय दोनों रूपोंमें निर्देश किया है। उन्होंने योग-का लक्षण बताया है—

> संयोगं योग इत्याहुः क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः।
>
> ( विवेकमार्तण्ड )

'क्षेत्रज्ञ ( अर्थात् व्यष्टि आत्मा ) एवं परमात्मा ( अर्थात् विश्वात्मा ) का संयोग ( अर्थात् अभेदानुभव ) योग नामसे आख्यात है।' योगियोंका साक्षात्कार होनेपर वे 'आदेश, आदेश' कहकर एक दूसरेका अभिवादन करते हैं। इस रीतिका सम्भवतः गोरक्षनाथने ही प्रवर्तन किया है। आदेशके तात्पर्य-की उन्होंने इस प्रकार व्याख्या की है—

> आत्मेति परमात्मेति जीवात्मेति विचारणे।
> त्रयाणामैक्यसम्भूतिरादेशः परिकीर्तितः॥
> आदेश इति सद्वाणीं सर्वद्वन्द्वक्षयावहाम्।
> योगिनं प्रतिवदेत स वेत्यात्मानमीश्वरम्॥
>
> ( सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आत्मा, परमात्मा और जीवात्मा—उपाधिविचारसे एक आत्मा या ब्रह्म या शिवकी ही त्रिविध संज्ञाएँ हैं। इन तीनोंकी जो सम्यक् ऐक्यानुभूति है, वही आदेश शब्दका तात्पर्य है। 'आदेश'-सद्वाणी सब प्रकारके द्वन्द्व या द्वैतभावके क्षयका निर्देश करती है। इस तात्पर्यको हृदयमें रखते हुए प्रत्येक योगीको दूसरे प्रत्येक योगीके प्रति इस वाणीका प्रयोग करना चाहिये। इससे प्रत्येकके अंदर आत्मा या ईश्वरकी अनुभूति उद्दीपित होती है।"

एक ही सच्चिदानन्दमय ब्रह्म या शिव या ईश्वर ही समष्टि-ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी आत्मारूपमें परमात्मा, व्यष्टि पिण्डके अभिमानी आत्मारूपमें जीवात्मा एवं व्यष्टि और समष्टि सबके अवभासकरूपमें आत्मानामसे कहे जाते हैं। गोरक्षनाथने विश्वप्रपञ्चको शिव या ब्रह्मका 'महासाकार-पिण्ड' या 'समष्टिपिण्ड' बतलाया है, एवं जीवदेहको 'क्षुद्र-साकार पिण्ड' या 'व्यष्टिपिण्ड' कहा है। सब देहोंमें एक शिव या ब्रह्म ही देही है, वही सब देहोंमें विराजमान है।

**अलुप्तशक्तिमान् नित्यं सर्वाकारतया स्फुरन्।**
**पुनः स्वेनैव रूपेण एक एवावशिष्यते ॥**

( सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः )

'अलुप्तशक्तिमान् शिव या ब्रह्म देश-कालमें नित्य ही विचित्र देह परिग्रह करके विचित्र आकारोंमें स्फुरित होते हैं और देशकालातीत स्वस्वरूपमें वे ही नित्य एक अविक्रिय चैतन्यानन्द सत्तामें विराजित रहते हैं।' वे नित्य ही एकस्वरूप हैं, नित्य ही बहुरूप हैं, नित्य ही देशकालातीत हैं, नित्य ही देशकालमें विलसित हैं, नित्य ही निष्क्रिय निर्विकार हैं, नित्य ही अनन्तक्रिय अनन्तविकाराधार हैं और नित्य ही आत्मसमाहित तथा नित्य ही संसारविलासी हैं।

**एकाकारोऽनन्तशक्तिमान् निजानन्दतया अवस्थितोऽपि नानाकारत्वेन विलसन् स्वप्रतिष्ठां स्वयमेव भजति इति व्यवहारः।**

( सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः )

विभिन्न जीवदेहोंमें वे ही विचित्र उपाधियाँ ग्रहण करके विचित्र भावोंमें अपने अनन्तत्वका असंख्यस्तरविभक्त अगणित सान्तरूपोंमें आस्वादन करते हैं। विश्वप्रपञ्चमें उनके ही चिदानन्दका विलास है, प्रत्येक जीवदेहमें भी उन्हींके चिदानन्दका विलास है।

उपनिषद् और वेदान्तके अद्वय-ब्रह्मवादके साथ योगीश्वर गोरक्षनाथके द्वैताद्वैतविलक्षण शिववादका कोई विशेष वैलक्षण्य नहीं देखा जाता। उपनिषद्के ब्रह्मतत्त्व अथवा शिवतत्त्व ही उन्होंने सम्पूर्णरूपसे ग्रहण—स्वीकार किया है। यह परम समाधिस्थ प्रज्ञाके ऊपर ही प्रतिष्ठित है। किंतु अद्वय ब्रह्मतत्त्वके चरम और परम सत्यत्व स्वीकार करनेके लिये जीवजगत्के मिथ्यात्वका प्रतिपादन करना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा। सुप्राचीन सिद्धयोगिसम्प्रदायने ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मध्यान, ब्रह्मानन्द-रस-पानमें निमग्न रहकर भी विश्वप्रपञ्चको कभी मिथ्या न बतलाया। पतञ्जलिका 'योगदर्शन' दार्शनिक विचारसे सांख्यमत के ऊपर प्रतिष्ठित है, यद्यपि साधनमार्गके उपदेशमें उन्होंने प्राचीन सिद्धयोगियोंके मार्गकी ही अतिसुन्दररूपसे व्याख्या की है। गोरक्षनाथने कपिल या पतञ्जलिके तत्त्वविचारको स्वीकार नहीं किया है, यद्यपि वे उनके ही साधनमार्गके अनुयायी थे। तत्त्वविचारमें वे उपनिषदोंके ऋषियोंके साथ एकमत थे। वही प्राचीनतम आगमशास्त्रका मत है। वे विश्व सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म या शिवको विश्वजगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण स्वीकार करते थे एवं उनकी दृष्टि यह कारणत्व केवल प्रातीतिक या आध्यासिक नहीं था, बल्कि तात्त्विक या वास्तविक था। ब्रह्म मिथ्या जगत्का मिथ्या कारण नहीं है, बल्कि देशकालप्रसारित सुनियत परिणामशील अनादि-अनन्त सत्य जगत्-प्रवाहका सत्य कारण है। इससे ब्रह्मके अद्वयत्वकी हानि नहीं होती। इस जगत्का उन्होंने 'चित्-विवर्त' न कहकर 'चित्-विलास'के रूपमें वर्णन किया है। इस विषयमें प्राचीन तन्त्रशास्त्रके साथ वे एकमत हैं।

ब्रह्म या शिव नित्यदेशकालातीत, निर्गुण, निष्क्रिय, निर्विकार सच्चिदानन्दस्वरूपमें विराजमान रहते हुए ही अपनी स्वरूपभूता परमाशक्तिके द्वारा अपनेको अनादि अनन्तकाल अनन्त वैचित्र्यसमाकुल जीवजगत्के रूपमें लीलायमान करते हैं। दोनों ही रूप सत्य हैं। समाधिमें उनके देशकालातीत द्वैतविहीन चैतन्यस्वरूपका साक्षात्कार होता है एवं समाधि-प्रज्ञालोकित विशुद्ध जाग्रद्बुद्धिके सम्मुख उनके विचित्र द्वन्द्वमय परिणामशील विलासरूपका परिचय प्राप्त होता है। स्वरूपतः एक रहकर भी शक्तिके प्रकाशमें बहुत हो जाते हैं। स्वरूपतः निर्विकार रहकर भी अपनी शक्तिप्रसूत बहुविध विकारोंके आधार और आश्रय रहते हैं। यह विश्वजगत् उनका लीलाविलासरूप है।

**ब्रह्म या शिवकी आत्मभूता इस महाशक्तिको गोरक्षनाथने** मिथ्या या अनिर्वचनीया माया नाम न देकर सच्चिदानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशक्ति, महामाया, योगमाया आदि रूपोंमें उसका प्रेम एवं श्रद्धा-भक्तिके साथ वर्णन किया है। ब्रह्मकी स्वरूपभूता महाशक्ति ही विश्वप्रपञ्चरूपमें प्रकट है, यह विश्वप्रपञ्च ब्रह्ममयी महाशक्तिकी ही देशकालव्यापी अनन्त वैचित्र्योज्ज्वल प्रकट मूर्ति है। वस्तुतः ब्रह्म या शिवके साथ उनकी शक्तिका कोई पार्थक्य नहीं है। शिव ही शक्ति है, शक्ति ही शिव है। विश्वातीत स्वरूपमें वे शिव या ब्रह्म हैं, विश्वमें लीलायमान रूपमें वे ही शक्ति हैं। गोरक्षनाथ कहते हैं—

**शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।**
**अन्तरं नैव जानीयाचन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥**

( सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः )

'शिवके भीतर शक्ति है; शक्तिके भीतर शिव हैं; शिव और शक्तिमें कोई भेदबुद्धि नहीं रखनी चाहिये। जिस प्रकार चन्द्र और चन्द्रिकामें कोई भेद नहीं, उसी प्रकार शिव और शक्तिमें कोई भेद नहीं।' वे और भी कहते हैं—

**'सैव शक्तिर्यदा सहजेन स्वस्मिन् उन्मीलिन्यां निरुत्थानदशायां वर्तते, तदा शिवः स एव भवति।'**

—जो शक्ति विश्वप्रपञ्चका उद्भव, धारण और विलय करनेवाली है, जो 'निजाशक्ति', 'आधार-शक्ति', 'पराशक्ति' इत्यादि नामोंसे कथित है, वही शक्ति जब सहजभावसे अपने भीतर अपनेको विलीन करके निरुत्थानदशामें स्वस्वरूपमें विराजमान होती है, तब वही 'शिव' नामको प्राप्त होती है।

गोरक्षनाथके दर्शनमें परमतत्त्वकी आत्मभूता परमाशक्तिकी नित्य ही द्विविधरूपमें अभिव्यक्ति है। इन दोनों रूपोंका उन्होंने 'प्रकाश' और 'विमर्श' नामसे कथन किया है प्रकाशशक्तिकी अभिव्यक्तिमें परमतत्त्व नित्य ही विशुद्ध चिदानन्दस्वरूपमें प्रकाशमान रहता है और विमर्शशक्तिकी अभिव्यक्तिमें वही परमतत्त्व अपने अद्वय चिदानन्द-स्वरूपको आवृत करके अपनेको आप ही विचित्र नामोंमें, विचित्र रूपोंमें, विचित्र उपाधियोंसे अलंकृत करके, देश और कालमें लीलायित होकर, विचित्र भावोंमें आस्वादन करता है। विमर्श शक्ति शिव या ब्रह्मको आवरण और विक्षेपके माध्यमसे प्रकाशित करती है। विमर्श शक्ति ही ब्रह्मकी आवरण-विक्षेपात्मिका त्रिगुणमयी शक्ति है। विश्वप्रपञ्च उनकी विमर्शशक्तिका ही विलास है। विमर्शशक्ति-विलसित ब्रह्म या शिव ही विश्वरूप है। वे विश्वप्रपञ्चरूपमें अपनी ही उपलब्धि और सम्भोग करते हैं। फिर, प्रकाशशक्तिकी सहायतासे वे अपनेको नित्य ही विश्वातीत स्वरूपमें आस्वादन करते हैं। शक्तिके ये दोनों ही रूप ब्रह्म या शिवके आत्मभूत, स्वरूपभूत तथा उनके पारमार्थिक स्वरूपसे अभिन्न हैं। गोरक्षनाथ ब्रह्मके विश्वातीत स्वरूप और विश्वमय स्वरूप दोनोंको ही मानते हैं। अपने स्वरूपके उभयविध आस्वादनको लेकर ही ब्रह्म या शिव अद्वय परम तत्त्व हैं। उन्होंने व्यावहारिक विश्वात्मक स्वरूपको युक्ति-तर्कके द्वारा मिथ्या प्रतिपादन करके परमार्थिक विश्वातीत स्वरूपको ही एकमात्र सत्य नहीं बतलाया है।

न तो जीवात्माके जीवत्वको उन्होंने मिथ्या बतलाया और न जीवात्माको ही स्वरूपतः 'बहु' या 'असंख्य' ही कहा है। जीवात्मा अणुपरिमाण है, विभु-परिमाण है, अथवा मध्यमपरिमाण है—इस बातको लेकर भी वे विवादमें नहीं पड़े हैं। जीवात्मा ब्रह्मका अंश है या ब्रह्मसे स्वरूपतः पृथक् होकर भी ब्रह्मके अधीन और आश्रित है, इन सब तर्कोंको भी उन्होंने आवश्यक नहीं समझा है। चैतन्यस्वरूपमें परिमाणका प्रश्न ही नहीं उठता, अंश-अंशी-भेद एवं आश्रय-आश्रित-भेद भी औपाधिक हैं। गोरक्षनाथके उपदेशके अनुसार—शिव या ब्रह्म ही अपने शक्तिपरिमाणका अवलम्बन करके असंख्य देहपिण्डोंमें असंख्य जीवात्मा-रूपमें असंख्य स्तरोंके आवरण-विक्षेप-प्रकाशके द्वारा अपनेको और अपने विश्वरूपको अपने-आप ही विचित्र भावमें आस्वादन करते हैं। अविद्याके अन्धकारमें आप ही अपनेको खोजनेमें व्यस्त होना, नाना प्रकारकी दुःख-ज्वाला-यन्त्रणामें छटपटाना, भाँति-भाँतिकी वासना-कामनाओंके द्वारा जर्जरित होना—यह सब अपनी ही विमर्शशक्तिके द्वारा किया जानेवाला उनका अपना ही लीला-विलास है। इन सबमें आंशिकरूपसे उनका अपनेमें अपनेद्वारा ही अपना आस्वादन है। सम्पूर्ण जीवात्माओंमें साक्षीरूपसे भी वे नित्य विराजमान हैं। वे ही जीवात्मारूपमें अपनेको आप ही देहाभिमानी और बद्ध बोध करते हैं। वे ही मुक्तिकी इच्छासे स्वयं अपने पारमार्थिक स्वरूपका अन्वेषण करते हैं। फिर, प्रत्येक जीवात्माकी मुक्ति-साधनाके द्वारा वे ही अपने पारमार्थिक स्वरूपमें पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त करके मुक्तिका आस्वादन करते हैं।

जो ज्ञानमयी इच्छास्वरूपिणी स्वतन्त्र महाशक्ति विश्वकी अभिव्यक्तिके अन्तरालमें अद्वय परमपुरुष ब्रह्म या शिवके विशुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूपमें लीन होकर अभिन्नभावसे स्थित रहती है, वही शिवानी महशक्ति ही परा-अपरा सूक्ष्मा कुण्डलिनी शक्तिरूपमें क्रमशः आत्मविकास करके शिवके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महासाकारपिण्ड या ब्रह्माण्ड-देहकी रचना करती है; और फिर वह महाशक्ति ही विभिन्न स्तरोंमें विचित्र व्यष्टिपिण्ड या जीवदेहरूपमें अपनेको लीलायित करके शिवको असंख्य छोटे-बड़े देहधारी जीवरूपमें विचित्र द्वन्द्वमय संसारके विचित्र रसोंका आस्वादन कराती है । शिवात्मभूता अचिन्त्य महाशक्तिके अनन्त लीलाविलास हैं । आत्मविकास और आत्मसंकोच—उसका चिरंतन स्वभाव है । सब प्रकारके विकास-संकोचमय लीलाविलासके द्वारा ही शिव उसकी आत्मा, उसके स्वामी और उसके लीलास्वादक रहते हैं । समष्टिजगत्‌में और व्यष्टि-जगत्‌में शिवसे अभिन्न और शिवकी सेवामें संलग्न महाशक्तिके अनन्त लीलाविलासमें असंख्य स्तरोंमें, असंख्य भावोंके संकोच-विकासमें, नित्य स्वरूपानन्द-समाहित शिवके ही विचित्र उपाधि, विचित्र नाम-रूप, विचित्र भाव और रसोंका आस्वादन होता है ।

**निजा परापरा सूक्ष्मा कुण्डलिन्यासु पञ्चधा ।**
**शक्तिचक्रक्रमेणोत्थो जातः पिण्डः परः शिवः ॥**

( सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः )

जो शिवमयी महाशक्ति अनन्तवैचित्र्यसमन्वित विश्वप्रपञ्च-की रचयित्री, निखिल-ब्रह्माण्ड-जननी है, वह महाशक्ति ही अपनेको खण्ड-खण्ड रूपोंमें सीमित करके, कुण्डलीकृतरूपमें प्रकट करके, प्रत्येक जीवदेहमें कुलकुण्डलिनी शक्तिरूपमें विराजित है । यह कुलकुण्डलिनी शक्ति ही जीवके विचित्र देहेन्द्रिय मनः प्राणबुद्धिकी संगठनकारिणी है । वही सब जीवोंकी आध्यात्मिक प्रेरणाका आधार और मूल निर्भर है, उसकी अलक्षित प्रेरणासे ही सब जीव क्रमशः आत्मोत्कर्षके लिये उत्सुक और प्रयत्नशील होते हैं, उसीकी अनुप्राणनासे जीवके अन्तरमें सीमाके भीतर भी असीमके साथ मिलित होनेकी आकांक्षा जाग्रत् होती है, जीवत्वके भीतर भी शिवत्वके आस्वादनके लिये आध्यात्मिक लालसा उत्पन्न होती है । मानवदेहमें कुलकुण्डलिनी शक्तिकी यह अन्तःप्रेरणा विशेष-रूपसे प्रकट होती है । तथापि अधिकांश मनुष्योंके स्वभावमें यह आध्यात्मिक अनुप्रेरणा प्रायः प्रसुप्त अवस्थामें रहती है, उनकी अन्तश्चेतनामें इस प्रेरणाकी क्रियाके होते रहनेपर भी स्फुटचेतनामें इसका अनुभव नहीं होता । ऐसे ही मनुष्योंको 'बद्धजीव' की संज्ञा दी जाती है । उनके प्राणेन्द्रियमनोबुद्धि-युक्त देहके मूल ( मूलाधार ) में कुलकुण्डलिनी शक्ति निद्रितावस्थामें ब्रह्मद्वार ( सुषुम्णामार्ग ) को आच्छादन करके विद्यमान रहती है; वह मानो एक निद्रित सर्पकी भाँति—कुण्डलाकारमें स्थित होकर ब्रह्मद्वारपर मुख रखकर शयन करती हो, ऐसा ही योगीजन वर्णन करते हैं । तथापि उसीकी अन्तःप्रेरणासे उसीका परिचय करानेके लिये मन-बुद्धिमें उत्सुकता उत्पन्न होती है । गुरुनिर्दिष्ट योगसाधनका अवलम्बन करके विचारशील बुद्धि, प्राण, मन एवं इन्द्रियसमूहको सुनियन्त्रित और संशोधित करके निद्रित कुलकुण्डलिनीको ( अर्थात् अविकसित आध्यात्मिक चेतनाको ) जाग्रत् करनेमें सचेष्ट होती है । कुलकुण्डलिनीके जाग्रत् होनेपर ब्रह्मद्वार खुल जाता है । सुषुम्णामार्गका अवलम्बन करके यह प्रबुद्ध कुलकुण्डलिनी शक्ति सहस्रारस्थित शिव-सुन्दरके साथ पूर्णमिलनके लिये ऊर्ध्वसे ऊर्ध्वतर स्तरोंपर उठती जाती है । अर्थात् आध्यात्मिक चेतनाके क्रमविकासमें जीव क्रमशः अपने शिवत्वकी उपलब्धि के मार्गमें उत्तरोत्तर अग्रसर होता जाता है और अन्तमें तत्त्वालोकित समाधिमें सच्चिदानन्दघन शिवस्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है ।

गोरक्षनाथ आदि महायोगियोंने इस व्यष्टिदेहके अंदर ही चराचर विश्वप्रपञ्चकी उपलब्धि की थी । गोरक्षनाथ कहते हैं—
**पिण्डमध्ये चराचरं यो जानाति स योगी पिण्डसंवित्तिर्भवति ।**

—इस देहमें ही स्थावरजंगमात्मक विश्वप्रपञ्चको जो उपलब्ध कर लेता है, वही योगी देहका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करता है, उसीको अपने देहका सम्यक् परिचय प्राप्त होता है । व्यष्टिपिण्ड और ब्रह्माण्डका सामरस्य-साधन, व्यष्टि और समष्टि पिण्डके साथ परमानन्द या शिवस्वरूपका सामरस्य-साधन, जीवत्व और ब्रह्मत्वका सामरस्य-साधन, लीलाविलासिनी शक्तिके साथ देशकालातीत ब्रह्म या शिवका सामरस्य साधन—इस प्रकार सर्वाङ्गीण सामरस्य-साधन हो जानेपर ही सम-तत्त्वका सम्यक् ज्ञान होता है एवं योगमें सिद्धि प्राप्त होती है । इस प्रकार सामरस्य साधित होनेपर यह स्थूल देह भी जड़ पार्थिव देह नहीं रह जाता, यह चिन्मय हो जाता है, इसी देहमें पूर्णमुक्ति और अमरत्व प्राप्त हो जाता है ।

जिन सब स्तरोंका भेद करके कुण्डलिनी शक्ति निद्रित या अविद्याच्छन्नरूपसे उद्‌बुद्ध होकर सम्यक् पूर्णतम प्रबुद्ध अवस्थामें पहुँचती है एवं शिवके साथ पूर्णरूपसे एकीभूत हो जाती है, एवं जीवचेतना शिवचेतनामें पूर्णतम प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती है, गोरक्षनाथ तथा अन्य सिद्ध योगियोंने उन सब स्तरोंका चक्ररूपमें या पद्मरूपमें वर्णन किया है । इन चक्रोंका भेद कर लेनेपर विश्वप्रपञ्चके भी सभी चक्रोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतरना हो जाता है। अविद्याच्छन्न अवस्थामें इस देह और प्रपञ्चको बीचमें रखकर मानो जीव और शिवको पृथक् करके दो प्रान्तोंमें रक्खा गया है। देह और विश्वप्रपञ्चके चिन्मयत्व प्राप्त कर लेनेपर, फिर जीव और शिवमें कोई व्यवधान नहीं रह जाता; तब सम्पूर्ण शक्तिविलासमें भीतर और बाहर जीव इस एक अद्वितीय शिव या ब्रह्मकी ही उपलब्धि करता है। युक्तिके द्वारा द्वैतका निरसन करके अद्वैतकी प्रतिष्ठा नहीं होती, बल्कि समस्त द्वैतोंमें एक अद्वैतका ही जाज्वल्यमान साक्षात्कार किया जाता है। यही योगका लक्ष्य है।

( अनुवादक—श्रीरघुनाथप्रसादजी शुक्ल )

# भगवान्में श्रद्धा-विश्वास दृढ़ कीजिये

( लेखक—श्रीजयकान्तजी 'झा' )

आज हमें इस बातकी सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम आस्तिक बनकर प्रभुके प्रति श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न करें और इस बातका प्रयत्न करें कि हमारा यह विश्वास नित्य निरन्तर बढ़ता रहे; क्योंकि यही विश्वास हमें कल्याण-मार्गपर अग्रसर करेगा। जबतक हमारा मन विषय-वासनाओंसे ओत-प्रोत है, तबतक हम केवल कहनेभरको आस्तिक हैं; वास्तवमें तो हम विषयोंके दास बने हुए नाना प्रकारकी कामनाओंसे व्याकुल हैं। तनिक-सी बातमें हममें क्रोध उत्पन्न हो उठता है, संतोष एवं शान्तिके दर्शनतक नहीं होते और झूठी अकड़में धन, बल एवं प्रभुत्वका अभिमान करते हुए मोह-निशामें उचित-अनुचितका ध्यान किये बिना हम ईर्ष्या-द्वेषकी आगमें जलते रहते हैं और दूसरोंपर दोषारोपण करनेमें तनिक भी नहीं चूकते। ऐसी आस्तिकता हमें केवल पतनकी ओर ही अग्रसर करती है और इससे हमारा कभी भी कल्याण नहीं हो सकता। हमें सच्चा आस्तिक बनना पड़ेगा और तभी हम सदाके लिये अशुभसे बच सकेंगे।

हम सदा अपना कल्याण चाहते हैं और यह तभी सम्भव है, जब हम सदा शुभ कर्म करते हुए प्राणीमात्रका कल्याण हृदयसे चाहें। हमारी प्रत्येक क्रिया शुभ हो और हमारा मन सदा-सर्वदा शुभसे ही ओतप्रोत हो। हमें इस बातसे सावधान रहना होगा कि हमारे जितने भी शुभ संस्कार हैं, वे अधिकाधिक क्रियामें परिणत होते रहें और अपने अशुभ संस्कारोंको हम कभी व्यक्त न होने दें। हमारे छोटे-से-छोटे शुभ या अशुभ संस्कार अगणित शुभ या अशुभ कर्मोंके बीज उत्पन्न कर देते हैं और यदि इन शुभ-अशुभ संस्कारोंको हम क्रियात्मक रूप न दें तो वे धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं। इसी बातको ध्यानमें रखते हुए हमें अपनी दिनचर्या बनानी चाहिये और अपनी शुभ-अशुभ क्रियाओंका विचार करते हुए सदैव जीवनकी गति-विधिका निरीक्षण करते रहना चाहिये।

सच्चा आस्तिक बननेके लिये हमें सर्वप्रथम प्रभुमें अपना विश्वास दृढ़ करना होगा और यह तभी होगा, जब हममें जो भी थोड़ा-बहुत प्रभुका विश्वास है, उसका हम क्रियात्मक प्रयोग करें। हमें निम्नलिखित बातोंपर पूर्ण विश्वास होना ही चाहिये—

## ( १ ) प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं

असम्भव-से-असम्भव कार्य भी क्षणमात्रमें प्रभुकी कृपासे सम्भव हो सकता है। उनकी शक्ति असीम है। 'नात्येति कश्चन'—किसीकी सामर्थ्य उनके शासनके विरुद्ध जानेकी नहीं है।

**तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।**

—वे ईश्वरोंके भी परम महान् ईश्वर हैं; स्थूल एवं सूक्ष्म जगत्के जितने शासक हैं, उन सबके शासक वे हैं; उनमें अद्भुत सामर्थ्य है। सर्वथा विरोधी गुण उनमें एक साथ एक समयमें वर्तमान रहते हैं। **'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके'**—एक साथ वे एक समयमें चलते भी हैं और नहीं भी चलते, वे दूर भी हैं और समीपमें भी हैं।

**आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।**

—वे बैठे हुए ही दूर चले जाते हैं, सोते हुए ही सर्वत्र पहुँच जाते हैं। **'अनेजदेकं मनसो जवीयः'**—वे चलनरहित होते हुए मनसे भी अधिक वेगवाले हैं। **'तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्'**—वे बैठे रहकर भी दौड़नेवालोंसे आगे निकल जाते हैं। ऐसे ही वे असंख्य विचित्र शक्तियोंसे पूर्ण हैं। वे 'कर्तु-मकर्तुमन्यथा कर्तुं' समर्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभुके सर्वसमर्थता-सम्बन्धी विश्वासको हमें क्रियात्मक रूप देना होगा। प्रत्येक कार्य करनेसे पहले हमें प्रभुसे प्रार्थना करके शक्तिकी याचना करनी होगी; क्योंकि शक्तिके केन्द्र तो प्रभु ही हैं—उनकी शक्तिसे ही हमारे सभी कार्य सम्पादित होते हैं। पर हमारा अहं इस सत्यको हमारे सम्मुख व्यक्त नहीं होने देता और फलस्वरूप प्रभुकी शक्तिको पूर्णरूपेण संचारित होनेका मार्ग नहीं मिलता। यदि हम प्रत्येक कार्य करनेसे पहले प्रभुसे शक्तिकी याचना कर लें तो निश्चय ही हमारे कठिन-से-कठिन कार्य भी सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जायँ। यदि इस बातका पूर्ण अभ्यास हो जाय तो प्रतिक्षण हमें प्रभुकी सर्वसमर्थताका आभास होने लगेगा और हम देखेंगे कि कोई भी शुभ कार्य यदि प्रभुकी प्रार्थना करके आरम्भ किया जाय तो उसमें आश्चर्यजनक प्रगति तथा सफलता होती है। साथ ही हम जितनी बार प्रार्थना करेंगे, उतनी बार प्रभुमें हमारी श्रद्धा पुष्ट होती जायगी और अन्तमें हमारे जीवनका यह स्वभाव हो जायगा—प्रत्येक कार्यके लिये प्रभुकी शक्तिपर निर्भर रहना। हम एक स्वरसे स्वीकार करेंगे कि प्रभुकी कृपासे क्या नहीं हो सकता और हमारी यह श्रद्धा सदैव जागरूक रहने लगेगी।

## ( २ ) हमारे प्रभु सर्वत्र हैं—

**'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्'** के अनुसार क्षुद्र-से-क्षुद्र एवं महान्-से-महान् सभी प्राणियों एवं पदार्थोंमें वे नित्य समभावसे स्थित हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वे न हों। हमारे सम्पर्कमें आनेवाली समस्त वस्तुओंमें वे स्थित हैं। आकाश, वायु, जल, अग्नि, पेड़-पौधे, मनुष्य, पशु-पक्षी, तितली, भौंरे अथवा जड़ दीखनेवाले सभी पदार्थोंमें यथा—टेबुल, कुर्सी, खाट, किवाड़, घड़ी, कलम-दावात आदि सभी वस्तुओंमें वे पूर्ण हो रहे हैं—जगत्के अणु-अणुमें वे व्याप्त हैं—सूक्ष्मभूतोंमें वे समाये हुए हैं—महत्तत्त्वमें, सत्त्व-रज-तम तीनों गुणोंमें वे व्याप्त हैं। और तो और, यह नश्वर शरीर जिससे हम अत्यधिक प्रेम करते हैं और जिसे हम क्षणमात्रके लिये भी नहीं भूलते, उसमें भी वे नखसे शिखतक परिपूर्ण हो रहे हैं।

'प्रभु सर्वत्र हैं' इस विश्वासको दृढ़ करनेके लिये हमें दिनमें दस, बीस, पचीस—जितनी बार और जितनी देरके लिये सम्भव हो, उतनी बार उतनी देरके लिये हम मनमें यह भावना करें कि प्रभु सर्वत्र हैं। इस भावनाके समय हमें इस बातका ध्यान रखना होगा कि जिस किसी भी व्यक्तिसे हम जो कुछ भी व्यवहार करें, उसमें ठीक-ठीक उतना ही सम्मान, अपनत्व, आत्मीयता एवं प्रेम भरा हो, जितना स्वयं प्रभुके साथ व्यवहार करनेपर होता। इस भावनाके समय हम जिस वस्तुको देखें, सुनें अथवा स्पर्श करें, उसमें प्रभुकी सत्ताकी इतनी जीवन्त धारणा हो कि उसका यथायोग्य व्यवहार करते समय हमें उसी आनन्दकी अनुभूति हो, जितनी प्रभुके सम्पर्कमें आनेपर होती। उदाहरणार्थ—यदि कोई याचक ( भिखारी ) आपके सम्मुख आ गया, उस समय हमें ठीक-ठीक यह अनुभव हृदयसे होना चाहिये कि जब हमारे प्रभु सर्वत्र हैं तो इस भिखारीमें भी वे अवश्यमेव हैं। अतः भिखारी-वेशमें प्रभु ही पधारे हैं। उस भिखारीके प्रति हमारे हृदयमें ठीक वैसे ही प्रेम, आत्मीयता, अपनत्व आदि प्रकट हों, जैसे स्वयं प्रभुको देखकर होते। उस समय भले ही लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे छोटे पदका स्वाँग होनेके कारण हम आसनसे न उठें किंतु हमारा अन्तस्तल भिखारी-वेशधारी प्रभुके चरणोंमें समर्पित हो जाना चाहिये। उसे भोजन कराते समय उस भोजनके अणु-अणुमें हमें प्रभुकी सत्ताका भान होना चाहिये और भिखारीके दर्शनसे हमारे रोम-रोम पुलकायमान हो जायँ। ऐसी भावना प्रतिदिन बार-बार करनेपर हमारी आस्था प्रभुकी सर्वव्यापकतामें दृढ़ हो जायगी और साथ ही उनमें अटल श्रद्धा उत्पन्न होगी।

## ( ३ ) प्रभु सर्वज्ञ हैं—

**'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्'**—अखिल ब्रह्माण्डके गुप्त-से-गुप्त एवं सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कोनेतकमें अनादिकालसे अबतक क्या-क्या हो चुका है, वर्तमानमें क्या हो रहा है एवं अनन्त कालतक क्या होता रहेगा—यह सब कुछ वे निरन्तर जानते-देखते रहते हैं और उन्हें इन सबका अनुभव होता रहता है। उत्तम-से-उत्तम अथवा निम्न-से-निम्न कोई भी ऐसा कार्य अथवा स्थान नहीं, जो उनकी दृष्टिसे परे हो।

प्रभुकी सर्वज्ञताके विश्वासको भी हमें क्रियात्मक रूप देना होगा। जब हम अशुभ प्रवृत्तियोंसे घिर जाते हैं और अपने मनपर नियन्त्रण न होनेके कारण हम निर्लज्जतापूर्वक अशुभ कर्म करने लगते हैं, उस समय इस विश्वासकी परम आवश्यकता है। ऐसे समय हमें प्रभुकी प्यारभरी वाणी तनिक भी सुनायी नहीं देती और यथासम्भव छिपकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम दुष्कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। हमारे दुष्कर्मोंका कहीं भंड़ाफोड़ न हो जाय, ऐसी शङ्का होनेपर कई बार दुष्कर्मोंसे हमारा बचाव भी हो जाता है। अतः यदि प्रभुकी सर्वज्ञतापर विश्वास करके हम अपनी अशुभ प्रवृत्तियोंका दमन करने लगें तो प्रभुमें श्रद्धा बढ़ने लगे और साथ-ही-साथ हमारे दुष्कर्मोंका अन्त भी हो जाय। इसके लिये हमें यह अभ्यास करना होगा कि जब कभी भी हम कोई कर्म करें, उस समय दृढ़तासे यह स्मरण करें—'प्रभु इसे जान रहे हैं, देख रहे हैं।' ऐसा स्मरण आते ही हमें उतनी ही लज्जा होगी, जितनी हमारे दुष्कर्म किसी अन्य व्यक्तिद्वारा जान लिये जानेपर होती है। बार-बार ऐसा करनेपर (प्रारम्भमें चाहे वह हठपूर्वक ही हो) हमारी श्रद्धा प्रभुकी सर्वज्ञतामें दृढ़ हो जायगी और हमारी अशुभ प्रवृत्तियोंका भी सदाके लिये अन्त हो जायगा।

## (४) प्रभु हमारे सुहृद् हैं—

**'सुहृदं सर्वभूतानाम्'** के अनुसार प्रभुसे बढ़कर हमारा कल्याण चाहनेवाला दूसरा कोई नहीं। उनकी अहैतुकी कृपा सभी जीवोंपर सदा समानभावसे बरसती रहती है। पतित-से-पतित प्राणी भी एक बार यदि हृदयसे स्वीकार कर ले कि भगवान् हमारे सुहृद् हैं तो उसे सच्ची शान्ति प्राप्त हो जाती है। भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा है कि 'दुराचारी-से-दुराचारी व्यक्ति भी ज्यों ही उनके सम्मुख होता है अर्थात् उनकी शरणमें जाता है, उसी क्षण उसके अनन्तकोटि जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।' केवल विश्वास करने भरकी देर है, भगवान् तो हमें अपनानेके लिये सदैव सब प्रकारसे प्रस्तुत हैं।

भगवान्‌के साथ सौहार्द बढ़ानेके लिये हमें अपने जीवनको उनसे जोड़ देना होगा। इसके लिये हमें कुतर्क छोड़कर प्रभुके स्नेहमय दानको, प्रतिक्षण पद-पदपर हमारी सुख-सुविधाके लिये उनके द्वारा की हुई व्यवस्थाको स्मरण रखते हुए गद्‌गद होना पड़ेगा। हृदयसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रभुके अनन्त, असीम उपकारोंकी गणना नहीं हो सकती; ऐसी अहैतुकी कृपा करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अपनी अधमता एवं प्रभुकी कृपाकी याद करके हमारी आँखें भर आयेंगी और हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि हे नाथ! हमारे-जैसे नीचको नरकाग्निमें ढकेलकर भस्म कर दो, हमारे-जैसे पातकीके अपराधोंकी ओर बिना देखे हुए तुमने विवेक देकर हमें आदरका पात्र बनाया। हम तो इतने नीच हैं कि अन्तर्यामी प्रभुसे भी कपट करनेमें न चूके और तुम हो कि नाथ! तुमने हमें न छोड़ा। प्रभु! हमारा मन तो विषयोंका दास है, किंतु ऐसे वञ्चकपर भी तुम्हारी अनवरत कृपा बनी रही। नाथ! तुम्हारा स्वभाव ही है—अपनी ओर देखना, दूसरोंकी ओर नहीं। अनन्त उपकारोंसे हमें ओतप्रोत कर देनेपर भी तुम्हारे स्नेहमय दानका कभी विराम नहीं हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्वासोंको हम केवल सैद्धान्तिक रूपमें ही सीमित न रखें बल्कि उन्हें क्रियात्मक-जीवनका अंश बना लें। प्रभुकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता और सौहार्दकी ओर सक्रिय दृष्टि डालते ही हमारी श्रद्धाके बीज प्रस्फुटित हो उठेंगे और हम अपने सम्पर्कमें आनेवाले सभी व्यक्तियोंको भगवद्विश्वासके बीज दान कर सकेंगे। हम आप्तकाम हो जायँगे और हमारे अहंका सर्वथा विनाश होकर निरन्तर भगवद्भावोंका विस्तार होता रहेगा।

---

## रामकी कृपालुता

बालि-सो बीरु बिदारि सुकंठु थप्यो, हरषे सुर, बाजने बाजे।<br>
पलमें दल्यो दासरथीं दसकंधरु, लंक बिभीषनु राज बिराजे॥<br>
राम-सुभाउ सुन 'तुलसी' हुलसै अलसी हम-से गलगाजे।<br>
कायर कूर कपूतनकी हद, तेऊ गरीबनेवाज नेवाजे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मधुर

बहुत दिन बीत गये। राधाको श्रीश्यामसुन्दरके दर्शन नहीं हुए। सँदेसा भिजवानेपर भी उन्होंने कुछ संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया। उपेक्षा-सी ही दिखलायी। श्रीराधाकी मुखाकृति उदास रहने लगी। उनके नेत्रोंसे सदा अश्रुधारा बहती रहती, वे नित्य व्याकुल रहतीं। सखियोंने समझा 'श्यामसुन्दरका उपेक्षापूर्ण निष्ठुर व्यवहार ही राधाके इस विषादका कारण है। अतः वे एक दिन एकान्तमें श्रीराधाको समझाने लगीं। एक अतिप्रिय सखीने राधासे कहा—

उस कैतवके लिये कर रही
क्यों तुम सखी! विलाप?
माया-ममता रहित, गूढतम
जिसके कार्य-कलाप॥
निराकाङ्क्ष, निर्भय, निज-निर्भर,
निरवधि भाव-निमग्न।
परम स्वतन्त्र सदा जो सस्मित
मुख मुरली-संलग्न॥
नहीं किसीके मरने जीने-
की जिसको परवाह।
अपने मनकी ही करनेमें
जिसको परमोत्साह॥
काला, कुटिल-भ्रकुटि, कपटी अति,
कुलिस-हृदय, निर्मोह।
मोहितकर, हर मन-धन सत्वर,
देता विषम विछोह॥
पुष्प-पुष्पपर मधुकर जो
मँडराता नव-रस हेतु।
भूल, भरोसा करना उसका
रक्खेगा श्रुति-सेतु॥
परम राग-रति-रहित रमग,
उसका करके विश्वास।
ठगी गयी सरला तुम, रसवति,
रोती अब भय-त्रास॥
प्रेमरहित वह निष्ठुर निरुपम,
नहीं भरोसे जोग।
भूलो! उसे छोड़ सब आशा,
क्यों करती दुख भोग?॥

प्यारी सखी राधा! उस छलियाके लिये तुम क्यों विलाप कर रही हो? जिसके न माया है न ममता है, जिसके सभी कार्य अत्यन्त गुप्त (रहस्य-भरे) होते हैं (पता नहीं, वह कब क्या क्यों करता है), जिसे न कोई आकाङ्क्षा दीखती है न वह किसीसे डरता है, अपने-आपपर ही निर्भर रहता है (किसीसे आशा नहीं करता), जो सीमारहित अपने भावोंमें ही डूबा रहता है। जो सदा परम स्वतन्त्र है। जिसको न किसीके जीनेकी परवा है न मरनेकी। जो अपने मधुर मुसकराते मुखपर सदा मुरली लगाये रहता है और जो अपनी मनमानी करनेमें ही परम उत्साहसे भरा रहता है। जो काला है, जिसकी टेढ़ी भौंहें (मनको हर लेती) हैं, जो अत्यन्त कपटी और वज्रहृदय है। जिसमें मोह है ही नहीं; पर जो दूसरोंको मोहित करके तुरंत ही उनके मनरूपी धनका हरण कर लेता है और फिर अपना भयंकर वियोग प्रदान करता है (मन हरण करनेके बाद फिर मिलता ही नहीं)। जो भ्रमरकी भाँति पुष्प-पुष्पपर नया-नया रस चखनेके लिये मँडराता रहता है, उसपर यह भरोसा करना कि यह वेद-मर्यादाकी रक्षा करेगा (अर्थात् प्रेम करनेवालेसे बदलेमें प्रेम करेगा) सर्वथा भूल है। जिसमें न कहीं आसक्ति है न प्रीति, ऐसे उस वल्लभका विश्वास करके तुम सरलहृदया रसमयी (बुरी तरह) ठगी गयी हो, इसीसे अब भय-त्रासके मारे रो रही हो। सखी! वह बड़ा ही निष्ठुर है, प्रेमरहित है, उसकी कहीं उपमा ही नहीं—ऐसा वह विश्वास-भरोसेके योग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है, तुम उसकी सारी आशाओंको छोड़कर उसे भूल जाओ। क्यों व्यर्थ दुःख-भोग करती हो ?

सखीके इन ममता-प्रीतिपूर्ण परंतु निष्ठुर वचनोंको सुनकर राधाको बड़ी मर्मवेदना हुई और वे रो-रोकर कहने लगीं—

सखि ! सुखदान करो कह मोहन
मनहरकी मधु बात।
प्रियतमकी निन्दा कर तुम मत
करो हृदयपर घात॥
मेरे प्राणनाथ वे गुण-निधि,
रस-निधि, परम उदार।
परम प्रेम-रस सुधा अमितके
पावन पारावार॥
मेरे प्रति अति प्रीति विलक्षण
चिर दिन नित्य नवीन।
रस-रहस्यमयि अन्तर्निहिता
अनुपम अवधि विहीन॥
उन मेरे प्रिय प्रियतमके
प्राणाभ्यन्तर रस-धार।
मधुर सुधामयि अन्तःसलिला-
सी बह रही अपार॥
मैं उस परम पावनी अन्त-
र्मधुरा धारा बीच।
रहती नित्य निमग्न न छू
पाता मुझको तट-कीच॥

प्रिय सखी ! तुम मेरे मनहरणकारी मोहनकी मीठी बातें सुनाकर मुझे सुखदान करो, मेरे प्रियतमकी इस प्रकार निन्दा करके मेरे हृदयपर चोट मत करो। मेरे वे प्राणनाथ सद्गुणोंके समुद्र हैं, रस (प्रेम तथा आनन्द) के सागर हैं, वे परम उदार हैं। परम श्रेष्ठ अपरिमित प्रेम-सुधा-रसके सबको पवित्र करनेवाले महासागर हैं। मेरे प्रति उनकी सदासे ही अत्यन्त विलक्षण प्रीति है, जो सदासे ही नित्य नया रूप धारण करती रहती है; वह प्रीति गूढ़तम रसमयी है, अन्तर्निवासिनी है, उपमा तथा सीमासे रहित है। उन मेरे प्रिय प्रियतमके प्राणोंके अंदर अन्तःसलिला फल्गुकी भाँति मधुर सुधामयी रसकी धारा अपाररूपमें बह रही है। सखी ! मैं उस परम पवित्रकारिणी अन्तर्मधुरा रस-धारामें सदा ही डूबी रहती हूँ। मुझे नदीके बाहरके किनारेका कीचड़ छू ही नहीं पाता। अर्थात् बाहर दीखनेवाला प्रेम तो नकली (देहेन्द्रिय-सुखमें ही सीमित) कीचड़के समान होता है, जो मनरूपी कपड़ेको मलिन ही करता है।

अन्तर्दृष्टिरहित तुम, उनका
देख न पायी भाव।
कर बैठी संदेह, परम शुचि
रसका समझ अभाव॥
समझ लिया तुमने वे
करते मुझको दुःख-प्रदान।
दोष-छिद्र इससे ला-लाकर
करने लगी बखान॥
सखि ! मैं कैसे तुम्हें बताऊँ,
मैं ही सदा सदोष।
प्रियमें बस, यह एक दोष है—
वे नितान्त निर्दोष॥
सहते मेरे लिये नित्य वे
विविध भाँति संताप—
कटु कुवाच्य, कुत्सा; तथापि वे
क्षुब्ध न होते आप॥
देते मुझे नित्य सुख अतुलित,
बाहर रहते मौन।
सदा उपेक्षा-सी दिखलाते,
मनकी जाने कौन ?॥
रोती मैं न दुःखसे किंचित्,
नहीं मुझे भय-त्रास।
मेरे नयन-सलिलका प्रियतम
मर्म समझते खास॥
सत्य प्रीतिवश ही तुम
करती प्रियके अवगुण-गान।
चुभते किंतु हृदयमें आकर
अति विष-बाण समान॥
एक तरफ दुस्सह प्रिय निन्दा,
एक ओर तव प्यार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखी ! क्षमा करना, न समझना
इसे कहीं दुत्कार ॥
पर जिनको तुम बता रही हो
निन्द्य दोषमय काम।
ऋषि-मुनि-वाञ्छित वे सद्गुण हैं
श्लाघ्य विशुद्ध ललाम ॥

सखी ! तुमको अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं है ( तुम केवल बाहरकी चीज ही देख पाती हो ), इसीसे तुम उनके ( उन मेरे प्राणनाथके भीतरके असली ) भावोंको नहीं देख पायी; इसीसे तुम यह संदेह कर बैठी कि उनमें परम पवित्र रस ( प्रेम ) का अभाव है । इसीसे तुमने समझ लिया कि वे मुझको ( राधाको ) दुःख दिया करते हैं और इसीसे तुम उनके दोषोंको—छिद्रोंको ( ढूँढ़-ढूँढ़कर ) ला-लाकर मेरे सामने उनकी व्याख्या करने लगीं । सखी ! मैं तुम्हें कैसे बतलाऊँ कि ( वास्तवमें ) सदा-सर्वदा दोषोंसे भरी तो मैं ही हूँ । मेरे प्रियतममें तो बस, यही एक दोष है कि वे नितान्त निर्दोष हैं । ( किसीमें सर्वथा दोष न होना भी एक दोष ही है—यही दोष श्यामसुन्दरमें है । ) वे मेरे लिये सदा ही भाँति-भाँतिके संताप सहन करते रहते हैं—कितने कठोर वचन, कितनी कुत्सित वाणी और कितनी निन्दा उन्हें सुननी पड़ती है; इतनेपर भी वे स्वयं कभी क्षुब्ध नहीं होते । वे नित्य निरन्तर मुझको अतुलनीय सुख देते रहते हैं, परंतु बाहरसे मौन रहते हैं । सदा उपेक्षा-सी दिखलाते हैं; परंतु मनकी कौ जानता है । ( वे कभी यह प्रकट नहीं करते कि मुझसे इतना प्रेम करते हैं और मुझे सुख देते-देते थके ही नहीं; वरं यह दिखलाते हैं कि मानो प्रेम है ही नहीं । और यही प्रेमका स्वरूप भी है । प्रेम दिखला नहीं जाता, वह तो सहज स्वाभाविक होता है और पर मूल्यवान् धनकी भाँति हृदय-कोषमें ही सुरक्षित रहता है। सखी ! मैं न तो किंचित् भी दुःखसे रोती हूँ, न मुझे कहीं कोई भय-त्रास ही है; मेरे इन नेत्रोंसे बहनेवाली जलधारा खास रहस्यको एक मेरे प्रियतम ही समझते हैं । सखी ! यह सत्य है कि तुम्हारी मुझमें प्रीति है, इसी ( मुझे सुखी बनानेके लिये ही ) तुम उन मेरे प्रियतमके अवगुणोंका गान करती हो; परंतु तुम्हारे वे वचन मेरे हृदयमें आकर उसमें विष-बाणोंके समान चुभ जाते हैं। सखी ! एक तरफ तो प्रियतमकी निन्दा मेरे लिये असह्य है; दूसरी ओर मेरे प्रति तुम्हारा जो सच्चा प्रेम है, उसका संकोच है । तुम मुझे क्षमा करना । ( मैं तो इतनी कह गयी, इससे ) यह कभी मत समझना कि मैं तुम्हें दुत्कार रही हूँ ( तुम्हारे प्रेमका तिरस्कार कर रही हूँ । ) परंतु ( यह समझ लो कि ) तुम उनके जिन कामोंको निन्दाके योग्य तथा दोषमय बतला रही हो, ( वे दोष नहीं हैं किंतु ) ऋषि-मुनियोंके द्वारा वाञ्छित विशुद्ध परम सुन्दर प्रशंसाके योग्य सद्गुण हैं ।

## मैं अपनौ मन हरि सौं जोरचौ

मैं अपनौ मन हरि सौं जोरयौ । हरि सौं जोरि सबनि सौं तोरयौ ॥
नाच कछयौ तब घूँघट छोरयौ । लोक-लाज सब फटकि पछोरयौ ॥
आगैं पाछैं नीकैं हेरयौ । माँझ बाट मटुकी सिर फोरयौ ॥
कहि कहि कासौं करति निहोरयौ । कहा भयौ कोऊ मुख मोरयौ ॥
सूरदास-प्रभु सौं चित जोरयौ । लोक-वेद तिनुका सौं तोरयौ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अतीत और भारत

( लेखक—श्रीआचार्य सर्वे )

'बीती ताहि बिसार दे आगेकी सुधि लेय !'

—यह एक लोकोक्ति है ! लोक-मानससे उठी है। असत्य नहीं है। इसका आशय आत्मनिरीक्षणके विपरीत कोई बात कहनेसे नहीं है। निराशावादिताको छोड़कर, विगत दुर्घटनाओंको भूलकर प्रगतिशील बने रहनेका संकेत कदाचित् उक्त कहावतमें निहित है।

भारतका अतीत महान् रहा है। वैदिक-कालसे पौराणिक-कालतकका भारतवर्ष अद्वितीय था। आजतक वैसी समुन्नत स्थिति किसी भी देशकी नहीं रही। उन्नतिकी—अभ्युदय और निःश्रेयस—दोनों ही दिशाओंमें भारतने उच्चताकी सीमाएँ छू ली थीं। मातृ-पितृभक्ति, स्वदेश-भक्ति एवं ईश्वर-भक्तिके साथ ही सम्पन्नता, सौन्दर्य, शक्ति और स्वास्थ्यके स्रोत यहाँ बहते थे। पवित्रता, दान, त्याग और आध्यात्मिक ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण था यह देश। सम्पूर्ण विश्वमें इसीकी संस्कृति, शक्ति, ज्ञान एवं ख्यातिका साम्राज्य था। बृहद्-आर्यावर्त्तका—यह प्रदेश 'भरत-खण्ड' कहलाने लगा, तभीसे इसकी पृथक् सत्ताका सूत्रपात हुआ। फिर भी इसका हृदय तथा मस्तिष्क सहस्राब्दियोंतक विश्वपर छाया करता रहा।

विश्वको भारतीय ज्ञान, भक्ति एवं कर्मकी मशालोंने प्रकाश दिखाया। यहाँके पवित्र आश्रम विश्वके गहन अन्धकार-समुद्रमें प्रकाशस्तम्भका कार्य करते रहे।

जिन आश्रमोंसे प्रेममय शालीन प्रकाशकी धाराएँ सात्त्विकी श्रद्धाकी कृषि हेतु समस्त जगत्-क्षेत्रको सींचती रहीं। कुमार कार्तिकेय-जैसे भू-विजेता एवं गणेश-जैसे सम्पूर्ण देवोंद्वारा सर्वाध्यक्षरूपमें सुपूजित प्रज्ञावान् सुपुत्र यहाँके वायुमण्डलको अपने अतुल पराक्रम एवं चरित्रके प्रकाशसे आपूरित करते रहे।

तीनों कालोंको, दिशा एवं कालके भेदसे ऊपर उठकर एवं सकल ब्रह्माण्डको अर्जा एवं अणु ( शिव-शक्ति ) के भेदसे उपरत हो संतुष्ति तथा समन्वित वैष्णवीशक्तिके अधिष्ठाता होकर जाननेवाले जन-साधारण यहाँ थे—ऋषियों, मुनियों, देवों और योगिराजोंका तो कहना ही क्या !

शक्ति तथा पुण्यको भली प्रकार हृदयंगम कर दृढ़तासे धारण करनेवाले धर्मवीर, दयावीर, युद्धवीर, दानवीर और विज्ञानवीर स्त्री-पुरुषोंका यहाँ अभाव न था। सुवर्ण, रत्न, मणि, धन-धान्य आदिकी तो गणना ही क्या ?

देवेन्द्र स्वतः भूतल और स्वर्गका शासनतन्त्र सँभाले हुए थे। आम, कटहल, कदम्ब, अनार, इमली, बड़, पीपल आदि फल-पत्र-पुष्पाच्छादित वृक्षों तथा केतकी, गुलाब, चमेली, मोतिया, जुही, चमेली, मालती आदि सुमन-विटपोंका अभाव न था।

नदियों, निर्झरों एवं स्रोतोंका बाहुल्य था। पशु पक्षियोंको मनुष्यसे कम संरक्षण एवं विकास प्राप्त नहीं था।

दूध-दहीकी नदियाँ बहती थीं। यह सब इसीलिये होता था, क्योंकि……वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि सभी ऋतुएँ अपने-अपने समयपर भरपूर कृपा-वरदान ले प्रस्तुत होती थीं; क्योंकि—

ब्रह्मचर्यका ऐसा प्रताप था कि प्रजा नीरोग एवं इच्छाजीवी थी।

श्रद्धाकी ऐसी महिमा थी कि जब चाहे प्रभु प्रकट हो अभीष्टोंसे झोली भरते थे।

अहिंसाकी इतनी गरिमा थी कि सिंह एवं मृग एक स्थानपर निवास करते थे।

दानका इतना सौम्य प्रसार था कि अतिथि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रमस्थ वृक्षके नीचे पहुँचते ही फलदार वृक्ष अपने फल छोड़ देते थे ।

प्रेमका ऐसा साम्राज्य था कि विश्वके सभी प्राणी एक-दूसरेके जीवन, प्रफुल्लता तथा आयुष्यके प्रवर्त्तक हो गये थे ।

गो-सेवाकी ऐसी व्यवस्था थी कि कोई भी देशवासी अभाव, विषमता एवं रोगसे ग्रस्त नहीं था ।

आज तो विज्ञानने अनेक साधन सुलभ कर दिये हैं । लोगोंका बहुत-सा श्रम तथा समय बचा दिया है । तो फिर आज उपर्युक्त सब चीजें कहाँ चली गयीं ? कहाँ गयीं वे पतिव्रता नारियाँ, जो अपने विवेकपूर्ण मधुर प्रेममय व्यवहारसे आजीवन गृहस्थीको स्वस्थ, प्रफुल्ल तथा सम्पन्न बनाये रखती थीं और पतिको यमराजके चंगुलसे छुड़ाकर वापस खींच लाती थीं ? इसी प्रकार आदर्श पतियोंका भारत, ऋषि-मुनियोंकी जन्म-भूमि भारत आज कहाँ चला गया ?

इसका कारण कहीं उपर्युक्त गुणोंका ह्रास करनेवाले 'विज्ञानासुर' के हृदयमें तो नहीं छिपा है! —आइये विचारें !

# यज्ञ

( लेखक—श्रीजगन्नाथजी पाठक )

**'अयज्ञियो हतवर्चा भवति'**

अर्थात् 'यज्ञहीनका तेज नष्ट हो जाता है।' इस समय भारतके कोने-कोनेमें यज्ञ-कार्य चल रहा है । यह एक अच्छी बात है । किंतु देशकी अधिकांश जनता यह नहीं जानती कि यज्ञसे क्या लाभ है तथा यह है क्या विषय। यही लक्ष्य कर इसके सम्बन्धमें विवरण प्रस्तुत करता हूँ।

साधारण अर्थमें यज्ञसे मतलब हवन-पूजनसे है, जो हो रहा है । यह सब यज्ञका एक प्रकार है; सम्पूर्ण अर्थका इस एक ही कार्यमें अन्तर्भाव नहीं हो जाता । किसी प्रकारका भी मानसिक या भौतिक कार्य, जिससे आधिदैविक सम्बन्ध स्थापित होता हो, यज्ञ है ।

## मानसिक यज्ञ

मनके सुन्दर भावोंका कथन वाणीका यज्ञ कहा जा सकता है । यह कीर्तनसे भी सम्भव है; क्योंकि उससे भगवदीय गुणोंका विकास होकर जीवन यज्ञमय हो जायगा । वाणी स्वर-प्रधान है—स्वरकी सहायतासे बोला जाता है । यह स्वर ही जगत्का कारण है; क्योंकि—

**स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम्।**
**स्वरे च सर्वत्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम्॥**
( शि० स्व० १६)

अर्थात् वेद, शास्त्र, गानविद्या और तीनों लोक—ये सब स्वरमें स्थित हैं और स्वर ही आत्माका रूप है ।

विचार किया जाय तो स्वर ज्ञान तथा वाणीका माध्यम है और ज्ञान भी यज्ञमय है । गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

**अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।**
**ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।**
( १८ । ७० )

अतः विशुद्ध ज्ञानकी संज्ञा 'यज्ञ'के अंदर है। प्राणायाम ( प्राणस्य आयामः ) का महत्त्व आधिदैविक कहा गया है । इसके तीन स्तर हैं—पूरक, कुम्भक और रेचक । इससे उच्चारण स्पष्ट हो जाता है । शिवजीने तन्त्र-शास्त्रमें इस प्रकार कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**पूरकः कुरुते वृद्धिं धातुसाम्यं तथैव च।**
**कुम्भकः स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम् ॥३७७॥**

'पूरकसे शरीर-वृद्धि एवं धातुसाम्य होता है, कुम्भकसे उनका स्तम्भन होता है और [ रेचकसे ] जीवरक्षा होती है।' यह इसलिये कहा गया कि कीर्तन एक तरहसे वाग्यज्ञका रूप है। इससे भी समाजकी भलाई होगी। अब भौतिक यज्ञपर विचार करता हूँ—

सर्वप्रथम इस सृष्टिकी उत्पत्ति ही यज्ञसे है। ब्रह्माने जीवोंको यज्ञके साथ उत्पन्न किया है। किंबहुना, सारी सृष्टिकी स्थिति यज्ञमय है। उपनिषद्की श्रुतिने कहा है—

**असद्वा इदमग्र आसीत् ततो वै सदजायत।**

अब यह देखें—कैसे शरीर तथा सृष्टिका सम्बन्ध यज्ञसे है—

मानवशरीरका विकास भोजनसे होता है। इसके लिये पेटमें नित्य यज्ञ-क्रिया लगी हुई है। इसकी पूर्तिके हेतु हाथ, मुँह, दाँत आदि अपना-अपना कार्य करते चले जाते हैं। अर्थात् यज्ञकी पूर्ति कर्ममें है, तभी तो श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—

**नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।**

हमारे शरीरकी भाँति प्रकृतिका नियम भी यज्ञकी ओर संकेत करता है।

कहा है, सूर्य पृथ्वीका प्राण है। क्यों? इसीलिये कि सूर्यकी गरमीसे हमारे प्राण बचे हैं। गरमीसे ही पानी बादल होकर पुनः बरसता है। इससे अन्न पैदा होता है और हमलोग इसी भोजनसे जीवित हैं। इसी तरह पृथ्वीमें आकर्षण-शक्ति कम होती तो यह वायु शून्यमें विस्तृत हो गयी होती; फिर तो जीवनकी इस रूपमें कल्पना ही असम्भव रही होती। आशय यह कि यज्ञ-क्रियाकी गत्यवस्थामें ही जीवन बचा हुआ है।

## भौतिक यज्ञ

सम्पूर्ण समाजके कल्याणकी दृष्टिसे भौतिक यज्ञ महत्त्वपूर्ण है। इसके अंदर तीन कर्मोंका समावेश है—

देवपूजा, सभा, ब्राह्म दान।

देवपूजासंगतिकरणदानेषु (निरुक्त)

अर्थात् भौतिक पदार्थोंसे किये हुए कार्योंको यज्ञरूप बनानेके लिये आवश्यक हैं—देवपूजा, संगतिकरण और दान। इसे वेदमें यजन कहा है। अर्थात्

**त्र्यम्बकं यजामहे।**

दैविक यज्ञके अन्तमें हवि देनेका विधान है और इस सम्बन्धमें यजुर्वेदमें यह प्रश्न बार-बार आया है—

**कस्मै देवाय हविषा विधेम।**

इसका समाधान कर्म-फलके अनुरूप रखते हुए कहा गया है कि सभी देवोंके प्रति अर्पित होम ब्रह्मरूप है। अर्थात् विभिन्न फलोंकी पूर्तिके लिये परमात्माके विभिन्न रूप ध्येय हैं।

इस समय समाजमें 'देवयज्ञ' हो रहा है। इस कार्यरूप यज्ञका फल आधिदैविक होगा, जिसका वाहन है हवन। इसीसे तादात्म्य रूपमें पूजन-कार्य यज्ञ हो जाता है। इसी कारण अष्टग्रहीका भयंकर दुष्परिणाम भगवत्कृपावश बहुत कम हो गया।

**हरे दयालो भव मे शरण्य**
**धर्मस्य वृद्धिं जगतः कुरुष्व।**
**खलस्य नाशं सुविपर्ययं च**
**सत्तां प्रवृद्धिं सदनुग्रहस्त्वम् ॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

[ गताङ्कसे आगे ]

मूर्तिके इतिहासके सम्बन्धमें हमें बताया गया कि यह वही प्राचीन मूर्ति है जिसे पौराणिक कालमें नारद पूजते थे। बौद्धकालमें इस मूर्तिको बौद्धोंने नारदकुण्डमें डाल दिया। सातवीं या आठवीं शताब्दीमें आदिगुरु शंकराचार्य जब यहाँ आये, तब इस मूर्तिको नारदकुण्डसे निकालकर तप्तकुण्डके पास गरुड़कोटी नामक गुफामें स्थापित किया। बादमें गढ़वालके किसी राजाने वर्तमान मन्दिर बनवाकर इसकी यहाँ प्रतिष्ठा करायी। मन्दिर १८ वीं सदीके उत्तरार्द्धका निर्मित बताते हैं। कुछके मतानुसार यह विक्रमीय पंद्रहवीं शताब्दीमें निर्मित हुआ है।

बदरीविशालकी यह मूर्ति सिंहासनके मध्यमें स्थित है। मूर्तिकी बायीं ओर नर और नारायणकी दो श्याम पाषाणकी मूर्तियाँ हैं। दाहिनी ओर कुबेरकी धातु-प्रतिमा है। बदरीनाथ-की मूर्तिके सम्मुख बायीं ओर विष्णुकी धातुकी उत्सव-मूर्ति है, जो दीपावलीको मन्दिरके पट बंद होनेपर जोशीमठ लायी जाती है। कहते हैं—विष्णुकी यह मूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको दी थी। इस मूर्तिके समीप नारदकी मूर्ति है। इसकी दाहिनी ओर गरुड़की प्रतिमा है। परिक्रमामें लक्ष्मीजीका मन्दिर अलग है, जहाँ लक्ष्मीजीकी भी श्याम-पाषाणकी मूर्ति है। गणेशजी, हनुमान्जी एवं घण्टाकर्णकी भी मूर्तियाँ हैं।

तीसरे दिन अर्थात् ४ जुलाईके प्रातःकालसे रात्रि-पर्यन्तका हमारा सारा कार्यक्रम श्रीबदरीनाथके पूजनका था। बड़े तड़के ही नित्यकर्मोंसे निबटकर तप्तकुण्डमें स्नानकर हम ठीक सात बजे मन्दिरमें पहुँच गये और अपूर्व आशा तथा उमड़ते उत्साहसे भगवान् बदरीविशालकी सेवा, उपासना और आराधनामें संलग्न हो गये।

श्रीबदरीनाथकी पूजाकी एक विशेष विधि है। यह पूजा शास्त्रमें वर्णित प्रचलित मन्त्रोपचार अथवा षोडशोपचार पूजा-से सर्वथा भिन्न है तथा शास्त्रोंके विरुद्ध न होते हुए भी बदरीनाथकी अपनी निजकी प्रणालीके अनुसार सम्पन्न होती है। इसका शनैः-शनैः विकास हुआ जान पड़ता है और अब इसकी एक निश्चित विधि बन गयी है। प्रातःकाल सात बजेसे यह पूजाका आरम्भ होता है जो लगभग एक बजे दिन तक चलती है। फिर संध्याको चार बजे यह प्रारम्भ होती है और रात्रिको नौ बजे तक चलती है। पूजामें अनेक भोग लगते हैं और अनेक आरतियाँ होती हैं।

सात बजे प्रातःकाल पट खुलते हैं। इस समयके दर्शनको 'सौड़ि दर्शन' कहा जाता है, जिसमें भगवान् रात्रिके शयनके पश्चात् जगाये जाते हैं। सौड़ि-दर्शनके बाद 'निर्वाण दर्शन' खुलता है। निर्वाण दर्शनका अर्थ ( निरावरण ) वस्त्ररहित दर्शन है। इस दर्शनमें अभिषेक होता है। इस प्रकारका अभिषेक शायद अन्य किसी देवालयमें नहीं होता। इस अभिषेकमें भगवान्का पहले जलसे स्नान होता है। इसके पश्चात् पञ्चामृतसे और फिर केशरसे। केशर-स्नानके बाद फुलेल अर्पित होकर पुनः जलसे स्नान कराया जाता है। इस स्नानके पश्चात् इत्र समर्पित होता है और उसके बाद सारे श्रीअङ्गमें केशर लगायी जाती है। फिर वस्त्रधारण कराये जाते हैं। तदुपरान्त आभूषण पहनाये जाते हैं। आभूषणोंमें स्वर्णके हार और सिरपर रत्न-जटित मुकुट रहता है। मुकुट बहुत सुन्दर और कलापूर्ण है, जिसकी कीमत लगभग एक लाखसे भी अधिक है। मुकुट-निर्माणका कार्य मद्रासके प्रसिद्ध सूरजमल फर्मके मार्फत सन् १९५२ में प्रारम्भ हुआ जो तैयार होकर १६ जुलाई १९५५ को बदरीनाथ पहुँचा। सूरजमल फर्म उत्तराखण्डमें अपनी दानशीलताके लिये प्रसिद्ध है। इस मुकुटके निर्माण-व्ययमें लगभग १५ हजार रुपये इस फर्मने अपनी ओरसे भेंट किये। मुकुटमें जड़े बहुमूल्य हीरे-जवाहिरात तथा सोनेकी प्राप्ति भी विशिष्ट व्यक्तियोंद्वारा दिये गये दानसे हुई है। मुकुटके ऊपर मूर्तिपर स्वर्णका छत्र रहता है। आभूषणोंके इस श्रृङ्गारके बाद पुष्पों तथा इस क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाली एक विशेष प्रकारकी तुलसीकी, जिसे यहाँ 'गङ्गा-तुलसी' कहा जाता है, मालाएँ अर्पित की जाती हैं। पुष्प और तुलसी-मालाका श्रृङ्गारमें बाहुल्य रहता है। हमारा मत है, इस तपोभूमिमें जब बदरीविशालकी प्रतिमा भी तपमें तल्लीन है, तब रत्नजटित आभूषणों आदिसे श्रृङ्गार न होकर केवल पुष्प-मालाओं और इन तुलसीकी मालाओंसे ही होना चाहिये। किंतु कदाचित् अधिकारियोंकी यह श्रृङ्गार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना मूर्तिको अत्यधिक आकर्षक बनानेके लिये ही है तथा अपनी इसी धारणाके कारण ही उन्होंने दिगम्बर भस्म-त्रिपुण्ड्र और बाघम्बरधारी भगवान् शंकर तकको केदारनाथमें इन्हीं रत्नजटित आभूषणों, स्वर्णहारों एवं रेशमी वस्त्र-परिधानों-से सुसज्जित और अलंकृत कर दिया है। हमारे मतसे कोई भी व्यक्ति भगवत्साक्षात्कार तबतक नहीं कर सकता, जबतक वह इन भौतिक व्याधियोंसे—रत्नजटिल स्वर्ण आभूषणोंसे—मुक्त होकर ऊपर नहीं उठता। हमारे संतों और भक्तोंने इसीलिये भोग-विलासके साधन इस भौतिक सम्पत्तिको तिलाञ्जलि दे अपरिग्रह अपनाया और जब वे अपरिग्रही बने तभी उन्हें भगवान्के असली रूपकी पहचान हुई तथा उस अमोल सुखकी उपलब्धि भी हुई, जिसके लिये हम यहाँ आये हैं। सदाचार, संयम और निःस्पृहता ही **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** का दूसरा रूप है। जो इसे जीवनमें धारण करता है वह भक्त-हृदय भगवन्मय हो जाता है। ऐसी दृष्टि रखनेवाला भक्त भगवान्के इस भौतिक शृङ्गारका रसिक नहीं होगा।

श्रीबदरीनाथकी मूर्तिका यह अभिषेक और शृङ्गार खुले दर्शनोंमें दर्शनार्थियोंके दर्शन करते-करते होता है, जैसा कदाचित् अन्यत्र कहीं नहीं है। अभिषेकके समय तीन विप्रोंद्वारा शुक्ल यजुर्वेदके एक अध्यायका स्वरसहित पाठ होता है और वेद-पाठके अनन्तर विष्णुसहस्रनामका पाठ। इन पाठोंमें ब्राह्मणोंका उच्चारण अत्यन्त शुद्ध रहता है। अभिषेक और शृङ्गारके पश्चात् स्वर्ण और रजतकी दो आरतियाँ होती हैं और इन दो आरतियोंके बाद कपूरकी आरती। फिर पट बंद होता है और मधुपर्कका भोग लगता है। मधुपर्कके भोगमें पञ्चमेवा, नारियल और शक्कर सात पदार्थ रहते हैं। इस भोगके बाद फिर पट खुलते हैं और एक आरती होती है। आरतीके उपरान्त पट बंद होकर खीरका बाल-भोग लगता है। बालभोगके बाद फिर पट खुलते हैं और फिर आरती होकर पट बंद होनेपर बद्रीश राजभोग आरोगते हैं। इस भोगमें केशरी भात, सादा भात और दाल—ये तीन प्रकारके पदार्थ रहते हैं। राजभोगके उपरान्त फिर पट खुलते हैं और तबतक खुले रहते हैं जबतक समस्त यात्री दर्शन नहीं पा जाते। अन्तमें लगभग एक बजे राजभोगकी आरती होकर पट बंद हो अनोसर हो जाता है। सायंकाल ४ बजे दर्शन खुलते हैं। दर्शन खुलते ही आरती होती है और फिर 'अर्चना'। इस अर्चनामें भगवान्के चरणारविन्दोंमें तुलसी समर्पित की जाती है। यह तुलसीदल-समर्पण यात्रियोंकी ओरसे होता है जो मन्दिरके रावल करते हैं। तुलसीदल-समर्पणमें तीन मन्त्रोंका प्रयोग होता है—'अष्टोत्तरी, सहस्रनाम-पाठ और विष्णु-सहस्रनाम। उपर्युक्त तीन प्रकारके मन्त्रोंमें कौन यात्री कौन मन्त्रसे तुलसीदल समर्पित करना चाहता है—यह यात्रीपर निर्भर रहता है। तुलसीदल-समर्पण हजारोंकी संख्यामें होता है। लगभग आठ बजे इस अर्चनाके पश्चात् आरती होती है और पट बंद होकर सायंकालका भोग आता है। सायंकाल केवल एक भोग आता है, जिसमें भातका ही प्राधान्य रहता है। भोगके बाद पट खुलकर फिर आरती होती है और खुले दर्शनोंमें ही शृङ्गार उतारकर रजाईसे मूर्तियोंके मुखारविन्द खुले रखकर शेष श्रीअङ्ग ढाँक दिये जाते हैं। इसके पश्चात् स्वस्तिवाचन होकर पुष्पाञ्जलि अर्पित होती है और फिर पट बंद हो जाते हैं। प्रातःकालसे लेकर रात्रितकके पूजनोंमें जो वेद-पाठ, स्तोत्र-पाठ, अर्चना, स्वस्तिवाचन, पुष्पाञ्जलि आदिमें मन्त्रोच्चार होता है, वह अत्यन्त शुद्ध रहता है तथा श्रुतिमधुर स्वरसहित उच्च कण्ठसे होता है। यात्रियोंकी ओरसे प्रातःकालकी पूजामें अभिषेक, बालभोग, अटका और राजभोग हो सकता है तथा सायंकालकी पूजामें अर्चनाके समय तुलसीदल-समर्पण। रात्रिको शयनके समय गीतगोविन्द और गोपीगीतका गान भी कराया जा सकता है। सभी यात्री अपनी रुचि और श्रद्धानुकूल ये सब कृत्य कराते हैं।

यह समस्त पूजा, जो पुजारी कराता है, उसे 'रावल' कहा जाता है। केदारनाथ और बदरीनाथके ये पुजारी ( रावल ) दक्षिणसे आते हैं। ये रावल केदारनाथमें कर्नाटकसे शैव-सम्प्रदायके तथा बदरीनाथमें केरलके नम्बूदरी ब्राह्मण-कुलसे ही आते हैं। उत्तरके इन देवालयोंमें पूजाके लिये दक्षिणसे लोगोंको लिये जानेका जो पूजा-नियम है वह शंकराचार्यके कालमें बना और तभीसे इस नियमका बिना किसी अपवादके आज-तक अनुगमन होता आ रहा है। यहाँ भी हमें जगद्गुरु शंकराचार्यकी भावनाका सात्त्विक परिचय मिल जाता है। कदाचित् उन्होंने उत्तर और दक्षिणके सम्मिलनके लिये ही यह प्रणाली प्रचलित की थी, जिसके लाभदायक परिणाम प्रत्यक्ष हमें यहाँ देखनेको मिलते हैं। रावलका चुनाव त्रावन-कोरके राजा करते थे। अभी भी वे ही करते हैं और इस चुनावके पश्चात् रावलकी नियुक्ति टेहरीके राजाद्वारा एक आयोजन करके की जाती है। अभी भी यही परम्परा [illegible] है। इस समयके रावल श्रीकेशवन नम्बूदरीनामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तरुण युवक हैं। श्रीकेशवन नम्बूदरीका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। गौरवर्ण, सिरपर लंबे केश, अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढले हुए-से। इनका स्वरूप प्रेमवर्णीजीसे बहुत कुछ मिलता है। जिनकी चर्चा गङ्गोत्तरी अध्यायमें हमने की है। ये संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओंके विद्वान् हैं। पूजाके समय रावलजी ऊपरके अङ्गपर पिण्डलियोंतक एक लंबी बगलबंदी पहनते हैं और नीचेके अङ्गमें धोती। बगलबंदीपर कमरमें एक चौड़ा रेशमी कमरपट्टा रहता है। दोनों हाथोंमें सोनेके कड़े। रावलजीकी यह पोशाक नियमसे निर्धारित है। बदरीनाथजीके पूजनके अन्य नियमोंमें एक नियम यह भी है कि गृहस्थ व्यक्ति मन्दिरके रावल नहीं हो सकते। वे या तो ब्रह्मचारी हों अथवा संन्यासी। सुना कि पहले इस प्रकारका नियम नहीं था, यह नियम बादमें आया।

हम अत्यन्त सौभाग्यशाली थे कि भगवान् बदरीविशालका आद्योपान्त पूजन आज हमारी ओरसे ही रहा। ऐसा अवसर बहुत कम यात्रियोंको प्राप्त होता है। यद्यपि सारे दिन यात्रियों, दर्शनार्थियोंकी बड़ी भीड़-भाड़ रही, पर हमारे बैठनेकी व्यवस्था ऐसे स्थानपर की गयी थी कि हम निकटसे यह समस्त पूजा और भगवत्-दर्शन कर सके। प्रातःकाल हमारा अभिषेक था। फिर बालभोग, अटका और राजभोग। सायंकाल अष्टोत्तरी, सहस्रनाम-पाठ और विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रद्वारा तुलसी-अर्चना तथा अन्तमें गोपीगीतका गान। उस दिनकी समस्त आरतियाँ भी हमारी ओरसे हुई। इस सारे कार्यक्रममें प्रातःकाल सात बजेसे नौ बजेतक हम सब लोग मन्दिरमें ही उपस्थित रहे। प्रातःकालसे रात्रिपर्यन्त सस्वर वेद-ध्वनि, स्तोत्रपाठ और इस पूजासे हमें जो आनन्द मिला वह वर्णनातीत है। अनेक बार तो इस वायुमण्डलमें हम भाव-विमुग्ध हो अपनेको विस्मृततक कर देते थे। यहाँ एक उल्लेखनीय घटना घटी। भगवान् बदरीनारायणको रावल तुलसीदल समर्पण कर रहे थे और इस तुलसीदल-समर्पणके साथ-साथ विष्णुसहस्रनामका पाठ भी चल रहा था। विष्णुसहस्रनामका यह पाठ रावलके अतिरिक्त हमारे निकट ही दाहिने-बायें दो ऊँचे स्थानोंपर बैठे चार अन्य पण्डित अत्यन्त उच्च स्वरमें कर रहे थे। ये पण्डित भी मन्दिरके कर्मचारी थे, जो भगवत्सेवाके लिये ही नियुक्त हैं। श्रुति-मधुर कण्ठोंसे पाठ चल रहा था, धूप-दीप-नैवेद्य, इत्र फुलेल, कपूर-केसर और चन्दनकी सुरभिसे वातावरण सुरभित था, सभी लोग भगवद्भक्तिमें मस्त थे। गोविन्ददास भी भक्तिके इस प्रवाहमें बह गये और उ[...] कण्ठसे विष्णुसहस्रनामका पाठ करने लगे। गोविन्ददास[...] जब वे पाँच वर्षके थे विष्णुसहस्रनाम कण्ठस्थ कराया गया [...] और जिसका वे नित्यप्रति प्रातःकाल स्नानके अनन्तर [...] किया करते हैं। गोविन्ददास वल्लभ-सम्प्रदायके अनुयायी हैं[...] वल्लभसम्प्रदायमें भगवत्पूजा न होकर भगवत्सेवा होती[...] और इस सेवामें वेदस्तोत्र आदिके पाठ न होकर अष्टछा[...] महाकवि, जिनमें सूरदास प्रमुख हैं, के पदोंका कीर्तन हो[...] है। यह सेवा भी अपने ढंगकी अलौकिक ही है। इस[...] कुछ वर्णन गोविन्ददासने अपने उस लेखमें किया है[...] उन्होंने कुछ वर्ष पूर्व श्रीनाथद्वारेसे लौटकर लिखा था [...] जो दिल्लीके मासिक पत्र 'आजकल'में प्रकाशित हुआ [...] हमें वल्लभसम्प्रदायकी इस भगवत्सेवाका तो अनुभव [...] परंतु, वेदध्वनि और स्तोत्र-पाठोंके बीच इस प्रका[...] भगवत्पूजाका नहीं। यह हमारा एक नवीन अपूर्व अनु[...] था। इस पूजाकी समाप्तिपर भगवान् बदरीनाथकी स्तु[...] रत्नकुमारीने एक गीत रचकर भगवच्चरणोंमें अर्पित किया-

## गीत

उत्तरखण्ड, हिमालय अञ्चल बदरीवन त्रिलोक अभिराम
मूर्ति-पुत्र नर-नारायणके, पर्वत शिखर उभय तप-धाम
नर तप-रत, नारायण निश्चल बैठे, लगी अखण्ड समाधि
मन्दिर नारायण पर्वतपर, दर्शन कर मिटती भव व्याधि
श्यामल, स्निग्ध, तपस्या-तत्पर, अविकारी निर्गुण निष्काम
भक्त भावना अभिव्यक्त तन, विविध रूप दर्शन सुखधाम
जटाजूटसे छूटी वंकिम, अलकावली सुशोभित भा[...]
श्रीमुखकी अरविन्द-माधुरी, मोहित मानो मधुकर बा[...]
रवि शशि ज्योति छिपाये निजमें, अर्धावृत लोचनद्वय नी[...]
प्राणायामें सुनिश्चल भृकुटी, युगनासापुट संयमशी[...]
रंचक सस्मित अधरपुटोंपर, उद्भासित अविचल आनन्[...]
करुणा कोमल शान्ति-सुधा-रस झरता आनँद ले निर्द्वन्[...]
जन-मन पावे करुणा प्रभुकी, त्रिविध ताप हर ले बढ शान्[...]
सत्त्व क्षणोंमें तत्त्व-ज्ञान-मय, सुख लख भागे भवकी भ्रा[...]
दुर्गम दुरारोह पथपर चल, जनने पाया तव पद-प्रा[...]
जय प्रभु बदरीनाथ दयामय! मनकी पीड़ा हरो नित[...]

इसी दिन अर्थात् दिनाङ्क ४ जुलाईके ही तीसरे पह[र] बदरीनाथके अन्य तीर्थस्थलोंके दर्शन और आचमन[...] इत्यादिके लिये गये। कुछ स्थानोंके तो हमने स्वयं दर्शन[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछकी जो कथा सुनी, उसका भी संक्षेपसे हम यहाँ उल्लेख करेंगे। इन स्थानोंमें अलकनन्दाके सिवा सबसे प्रधान तीर्थ नारदशिलापर 'तप्तकुण्ड' है, जिसमें हम कल स्नान कर चुके थे। इस स्थानको यहाँ 'वह्नि तीर्थ' भी कहते हैं। तप्तकुण्ड लगभग १५ हाथ लंबा और १२ हाथ चौड़ा है, यह बदरी-नाथ-मन्दिरके ठीक सामने है, कोई ६५ सीढ़ियाँ उतरकर यहाँ पहुँचना होता है। कुण्ड हर समय गरम जलसे भरा रहता है। तप्तकुण्डके समीप ही पूर्वोत्तर कोनेपर अलकनन्दामें 'नारदकुण्ड' है, यहींपर नारदशिला है जिसके नीचे अलकनन्दाका पानी एक संकीर्ण गुफासे गिरता है। इस स्थान-पर भी यात्री स्नान-मार्जन करते हैं। समीप ही गरम जलके ब्रह्मकुण्ड, गौरीकुण्ड एवं सूर्यकुण्ड हैं। बदरिकाश्रममें 'नारद-शिला', 'वाराहशिला', 'मार्कण्डेयशिला' 'नृसिंहशिला' और 'गरुड़शिला'—ये पाँच शिलाएँ 'पञ्चशिला-तीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'ऋषिगङ्गा', 'कूर्मधारा', 'प्रह्लादधारा', 'तप्त-कुण्ड' और 'नारदकुण्ड' 'पञ्चतीर्थ' नामसे भी प्रख्यात हैं। ऋषिगङ्गा बदरीनाथ-मन्दिरसे लगभग सवा मीलपर है और कुछ ही दूर बहकर निकट ही अलकनन्दा-में मिलती है। इसका जल स्वच्छ है, यात्री स्नानादि करते हैं। कूर्मधारा—बदरीनाथ-मन्दिरसे कुछ दूर दक्षिणकी ओर एक दीवारमें कूर्मका मुख बना है उससे निकलती है। कूर्मधाराके उत्तरकी ओर एक चबूतरेके नीचे एक नलके द्वारा जो पानी गिरता है उसे प्रह्लाद-धारा कहते हैं। यों तो समूचे उत्तराखण्डमें अनन्त पर्वत, सरिताएँ, सरोवर और तीर्थ हैं। वर्णन आया है कि उत्तराखण्डमें सवा लक्ष पर्वत, चौरासी लक्ष तीर्थ तथा एक करोड़ गङ्गा हैं। हमें बताया गया कि बदरीनाथ-क्षेत्रमें कञ्चन-गङ्गा नामक एक सरिता है, जो सुमेरु पर्वतसे निकलकर बदरी-नाथसे दो मीलपर अलकनन्दामें मिलती है। कहते हैं इसमें स्वर्ण मिलता है, लोग अब भी छानते हैं।

बदरीनाथ-मन्दिरसे लगभग ५ मील दूर 'वसुधारा' तीर्थ है। यहाँ लगभग ४०० फुट ऊँचा एक जलप्रपात है। यह स्थान समुद्र-सतहसे लगभग १२,००० फुटकी ऊँचाईपर है। यहाँ अधिक ऊँचाईके कारण वायु क्षीण हो जाती है और यात्रियोंकी साँस फूलने लगती है। जिससे थकावट ज्यादा मालूम पड़ती है। अतः यहाँ आनेवाले अधिकांश यात्री बड़े तड़के ही चल देते हैं और दोपहर होते-होते वापिस लौट भी आते हैं। हमें खेद है कि हम यहाँ नहीं जा सके। इस जल-प्रपातकी बूँदें हवामें उड़कर यात्रियोंपर पड़ती हैं। जिनपर ये बूँदें नहीं पड़ती उन्हें लोग पापी मान बैठते हैं। हवा और पानीके इस प्रतापके कारण जाने कितने अपनेको पापी मान बैठे हों।

वसुधारा जानेके लिये बदरीनाथ-मन्दिरके ठीक उत्तरकी ओर दो मील चलकर अलकनन्दाका पुल पारकर अलकनन्दाके बायें तटपर बसा हुआ माणा (मणिभद्रपुर) गाँव हमें मिलता है। यह स्थान १०,५६० फुटकी ऊँचाईपर है। रास्ता अच्छा है। यहाँ व्यासगुफा और गणेशगुफा हैं। निकट ही सरस्वती नदी बहती है। सरस्वती नदी माणाके पास अलकनन्दासे मिलती है, इस संगम-स्थलको 'केशव प्रयाग' कहते हैं। माणाके लोग तिब्बत जाकर व्यापार करते हैं। यहाँ इनकी मण्डी थोलिंग तथा रामुरा है। यह इस ओर भारतका अन्तिम गाँव है। २६ मील आगे बटियाके रास्ते माणाधुरा १६,४०२ फुटकी ऊँचाईपर है। यहीं भारत-तिब्बत राज्यकी सीमा है। आगे चलकर थोलिंग मठ, कैलास तथा मानसरोवर मिलता है।

इस ओर माता-मूर्तिनामसे एक स्थान काफी प्रसिद्ध है। कहते हैं यहाँ भगवान् बदरीनाथजीकी माताका—मूर्ति, देवीका मन्दिर है। यहाँ जन्माष्टमीसे १५ दिन बाद वामन-द्वादशीको एक बड़ा मेला लगता है और बड़ी सजधजसे उद्धवजीकी मूर्तिको एक जुलूसमें निकाला जाता है। यह मेला माता-मूर्तिके मेलेके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ जानेके लिये बदरीनाथसे माणाके मार्गमें डेढ़ मील जाकर एक रास्ता बायें हाथको मुड़ता है, वहाँसे आधा मील आगे चलकर यह मन्दिर है। अलकनन्दाके दूसरे तटपर माणा गाँव है।

सतोपन्थ नामसे यहाँ एक और अत्यन्त रमणीय प्राकृतिक स्थल इस ओर प्रसिद्ध है। यह स्थान १४,४०० फुटकी ऊँचाईपर है। यहाँ बर्फानी जलका अत्यन्त स्वच्छ एक त्रिकोणाकार निर्मल सरोवर है जिसे सोन (तालाब) सरोवर कहते हैं। यह हर कोणमें लगभग २ फर्लांग लम्बा और १,३०० फुट चौड़ा है। यात्रा-मार्ग जूनके अन्तमें खुलता है और अगस्तके अन्तमें बंद हो जाता है। सतोपन्थ जानेके लिये बदरीनाथसे दो मील मातामूर्ति, मातामूर्तिसे साढ़े तीन मील चमतोली, चमतोली-से दो मीलपर लक्ष्मीवन, लक्ष्मीवनसे ढाई मीलपर सौधारा और सौधारासे तीन मीलपर चक्रतीर्थ आता है। यहाँसे ढाई मील आगे सतोपंथ, जिसे सत्यपथ भी कहते हैं, आरम्भ होता है। सतोपंथसे कुछ मील आगे सोनकुण्ड तथा सवा दो मीलपर [illegible] है। बदरीनाथपुरीसे सतोपन्थ जानेमें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गमें लक्ष्मीवनके समीप ही अलकापुरी है। यहाँ सतोपंथ एवं भागीरथी खड्क ग्लेशियर मिलते हैं। अलकनन्दाका उद्गमस्थान भी यहीं है। सतोपंथ सरोवरके पश्चिममें चौखंभा नामका हिमालय है। उससे पश्चिममें बीस मील लम्बी गंगोत्तरी हिमानी है। यह गंगोत्तरी हिमानी गंगोत्तरीसे अठारह मील आगे गोमुखनामक स्थानपर समाप्त होती है। यही भागीरथीका उद्गमस्थान है। पुराणोंमें भगवान् विष्णु-पद-प्रसूत जिस विष्णुपदी गङ्गाका वर्णन आया है और हमने भी अपने गंगोत्तरी-अध्यायमें भागवतमें आयी गङ्गावतरणकी कथाका जो संक्षेप उल्लेख किया है, उसके अनुसार अलकनन्दा ही आदि-गङ्गा हैं। अलकनन्दा आदि गङ्गा हैं या भागीरथी—इस बातपर विचार करनेके अनन्तर हमारा जो दृष्टिकोण बनता है, वह इस प्रकार है—हमने यमुनोत्तरीकी यमुनाको, गंगोत्तरीकी गङ्गाको, केदारनाथसे निकली मंदाकिनी और अलकापुरीसे निकली अलकनन्दाको भरपूर देखा था। मार्गमें इन सरिताओंमें मिलनेवाले अगणित झरने, जल-प्रपात और नदी-नाले सभी हमारी दृष्टिमें आये थे। संगमोंपर मिलनेवाली नदियोंके पानीके प्रवाह, उसके वेग और परिमाणपर भी हमारा ध्यान रहा। और अपने इस अवलोकनके आधारपर तथा अलकनन्दाके विष्णुपदी गङ्गा होनेके पौराणिक कथनपर जब हम विचारकर अपना मत कायम करते हैं तो यही निष्कर्ष निकलता है कि गंगोत्तरीसे निकली भागीरथी गङ्गा और अलकापुरीसे निकली अलकनन्दा गङ्गा दो रूपोंमें दो शाखाओं और दो धाराओंमें विभक्त होकर जन-कल्याणके लिये साथ-साथ चलती हैं, मार्गमें सेवावृत्तिमें समवेत हुए अगणित झरनों, जलप्रपातों और छोटी-बड़ी सरिताओंकी सेवा स्वीकार करती ये दोनों बहनें पावन देवप्रयागमें अपनी भावमस्तीमें एक दूसरेमें स्वतः समा जाती हैं। यहाँ इनके इस सहमिलनमें हमें यह नहीं दिखायी देता कि अब आगे बहनेवाला प्रवाह अलकनन्दाका है अथवा गंगोत्तरीकी गङ्गाका। द्वैतसे अद्वैत हुई इन दो सरिताओंके इस अपूर्व और उत्कट चाहभरे मिलापमें तथा आगे चलनेवाले वेग-बहावमें हमें ऐसे कोई चिह्न नहीं मिलते जिनसे हम इनके पृथक्त्वको देख सकें। यहाँ इनके उद्गमके बादका शैशव, अपनी मंजिलका यौवन इस संयोगके साथ ही समाप्त हो जाता है और ऊपर छा जाती है वह विचार-प्रौढता, जो समान भाव, सद्-इच्छा और समान गतिसे युक्त प्रवाहमें बहकर गंगासागरतक हमें देखनेको मिलती है। हाँ, हमें यहाँ केवल एक बात अवश्य देखने मिलती है, वह है भागीरथी गङ्गाका नेतृत्व। गंगोत्तरीसे निकली भागीरथीको हम जिस रूपमें देखते आ रहे उसका रूप-रंग आदिसे अन्ततक हमें एक-सा देखनेको मि रहा। अगणित झरने, जल-प्रपात और सरिताएँ मिलीं, पर भागीरथी सदा अविचल भाव और अप्रभा रूपमें ही हमें दिखायी दीं। वह विशाल हृदय लिये अच्छे-बुरे नदी-नालों और साफ-स्वच्छ सरिताओं उदरस्थ करती अपने पूर्व भावमें बहती जाती हैं और इस रूपके कारण इन अगणित झरनों, जलप्रपातों छोटे-बड़े, नदी-नालोंका यह मिलन हमें ऐसा दि देता, जैसे लहराते सागरसे उमगती सरिताएँ मिल रही मिलनकी चाहभरे ये निर्झर झरने पाषाणोंमें बहते ये जल-प्रपात कितनी ऊँचाईसे गिरते हैं और स कितनी दूरसे चलती हैं। पर कितने अपनी इस चाहको कर पाते! बहुतसे अपनी मंजिलके पूर्व मार्गमें ही सुख हैं। एक साध लिये समाप्त हो जाते हैं सदाके लिये। इष्ट-मिलनकी लक्ष्यप्राप्तिकी चाह इन निर्झरों, प्रपातों सरिताओंकी भाँति ही हम मानवोंमें भी होती है। हमारी इस चाहके साधन और इनकी इस चाहके सर्वथा भिन्न होते हैं। कहना चाहिये, हमारे स्वनि इनके प्राकृतिक। निसर्गने मानवको जो बुद्धि दी है दम्भमें, बुद्धिकी विमूढतामें, अनेक बार वह प्राकृतिक प्रभु तकको चुनौती दे देता है और हमने देखा है ज मानवने ऐसा किया है, उसे विनाशकारी परिणाम भोगने हैं। इतना ही नहीं, आज भी हम देखते हैं, प्रबुद्ध व्यक्ति बुद्धिकी इस विषमतासे घिरे रहते हैं। दैनिक जीवनके हर क्षेत्रमें हमें बुद्धिकी इस विषम भरमार दिखायी देती है। गंगोत्तरीमें हमने श्रीप्रेमव जब ज्ञानचर्चा की तो उन्होंने बताया, प्रभु-प्राप्तिके अनन्त हैं। उनके मतके हम कायल हैं और इ निरूपणमें हमारी कुछ मान्यताएँ और हैं। एक प्र तो उस भगवत्साक्षात्कारसे होती है जो पौराणिक क अनुसार अनेक महापुरुषों, तपस्वियों, ज्ञानियों, संतों भक्तोंको हुई और उन्होंने वरदानरूपसे अपने अ प्राप्त किया। प्रभुप्राप्तिके ये प्रयत्न उस कालमें दो उ प्रेरित होते थे—प्रथम मोक्षप्राप्ति, दूसरा जनकल्याण भावना। उस कालमें प्रथम उद्देश्यकी प्रधानता थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्वी, ज्ञानी, संत और भक्तोंके जीवनका प्रधान लक्ष्य उस कालमें जीवन्मुक्त होना, मोक्ष प्राप्त करना ही होता था। आज भी तपस्या आदि प्रभुप्राप्तिके प्रयत्न होते हैं, किंतु कालगतिके अनुसार न केवल इन प्रयत्नोंकी दिशा परिवर्तित हो गयी है, अपितु भगवत्साक्षात्कारके रूपमें भी परिवर्त्तन हुआ है। आजके इस विकसित युगमें व्यक्तिका सुख गौण होकर समाजका, देशका और देशके भी आगे विश्वका सुख सर्वोपरि हो गया है। स्वभावतः इसीमें व्यक्तिका सुख भी समाया हुआ है। इस सुखकी प्राप्तिके लिये आज व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयत्न हो रहे हैं। ईश्वरकी भक्तिका उस कालमें जो मार्ग तपस्या, आराधना, पूजा, योग, विराग और संन्यासके माध्यमपर चलता था, आज वह विभिन्न रूपोंमें हमें दिखायी देता है। कोई ज्ञान-विज्ञानसे, कोई कलासे, कोई साहित्यसे, कोई समाजसेवी सुधारक, कोई धर्मोपदेशी धार्मिक और कोई जनसेवी जननायकके रूपसे प्रभुपूजामें तल्लीन है। इसमें उसे स्वयंकी मुक्तिकी चाह तो है ही, साथ ही जन-कल्याणकी भावनाकी प्रधानता है। उस कालमें भी और आज भी हमारे मनमें तपस्यारत तपस्वीको, साधना-रत संन्यासीको और भक्तिरसलीन भक्तको जब भगवत्-साक्षात्कार होता है तो उसकी मुक्ति (मोक्ष) तो सहज ही उसे मिलती है, उसके इस प्रयत्नसे जनसाधारण भी प्रत्यक्ष या परोक्षमें अवश्य प्रभावित और लाभान्वित होता है। जिस अनन्त लीलापुरुषोत्तम परमात्मा, जिस अनन्त रूपधारी अखिलेश्वरके रूपकी कल्पना हमारे ज्ञानियों, ध्यानियों, संतों और भक्तोंने की है, उसके अनुसार वह सर्वज्ञ है, सर्वत्र है, सर्वान्तर्यामी है। वह सर्वविभूति-सम्पन्न सर्वमङ्गलकारी है, सृष्टिके अणु-अणुमें व्याप्त है। सगुण भी है, निर्गुण भी। ऐसे प्रभुकी खोज, ऐसे परमात्माकी खोजके लिये इस भौतिकवादी युगमें महापुरुषोंने युगानुरूप कुछ विशिष्ट मार्ग अपनाये, जिनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। (क्रमशः)

# मैं तुम्हारा पारखी भी हूँ

मैं तुम्हारी मधुर मुस्कानका प्रेमी ही नहीं, तुम्हारे कोमल और स-ओज स्वरोंका पारखी भी हूँ, प्रिय !

तुम्हारी आँखों और होठोंकी मुस्कानको मैं अभीतक बहुत दूरसे बहुत थोड़ी ही पी पाया था।

तुम्हारे कोमल और स-ओज, दोनों स्वरोंको मैंने अभीतक बहुत कम सुना-परखा था।

पर पिछले दिनों तुम्हारे पुजारियोंकी उस बड़ी महफिलमें तुम्हारे उन कोमल और स-ओज स्वरोंको मैंने कुछ ओर खुले रूपमें सुना-परखा है।

तुम्हारी आँखों और होठोंकी उस मुस्कानको उस महफिलकी राहमें मैंने एक-आध बार और कुछ निकटसे पाया-पियां है।

तुम्हारे कोमल और स-ओज स्वरोंने उस महफिलमें मधुर और शासनशील स्वर-लहरियोंकी रचना कर दी थी। तुम्हारी मुस्कानकी चेष्टाओंने वहाँ अपनी मोहनी डाल दी थी और कितने ही तुम्हारे पुराने पुजारी और नये प्रेमी उनके बंदी बन गये थे।

लेकिन तुम्हारे कोमल और स-ओज स्वरोंसे मेरा परख-पात्र अभीतक कठिनतासे अध-भरा हो पाया है और मेरी आँखें तुम्हारी उस मुस्कानसे अध-पियीसे भी कम तृप्त हो पायी हैं।

मैं तुम्हारी मुस्कानका प्रेमी और तुम्हारे कोमल और स-ओज स्वरोंका पारखी हूँ; क्योंकि मैं तुम्हारा अनन्य प्रतीक्षाशील पुजारी हूँ।

और यह भी मैं जानता हूँ कि तुम्हारी उस मुस्कानका प्रेम और उन स्वरोंकी परख एकमात्र तुम्हारी ही देन हैं।

[ —एक तरुण साधककी डायरीसे ]

ता० १७-१२-३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परम आत्मसाधना

## [ Sublime Self-Expression ]

( लेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा )

### खोज

आत्मा-परमात्माकी खोज सभ्यताके आरम्भसे मानव करता आया है। दुनियाके सब धर्मग्रन्थ और अधिकतर साहित्य इसी चर्चा, दृष्टान्तों और साधनोंसे भरे पड़े हैं। कोई कहते हैं—मरनेके बाद सत्कर्मी, सत्संकल्पी धर्मात्मा लोग स्वर्गमें जाते हैं, वहाँ उनको परमात्मा मिलता है, कुविचारी-कुकर्मी नरकमें यातनाएँ भोगते हैं। कोई इसी जीवनमें आत्म-परमात्म-योग तथा साक्षात्कारकी अनेक सहज या कठिन साधना करते हैं, कठोर कष्टदायक तपस्या करते हैं। कोई मुक्ति अथवा ब्रह्मज्ञानकी वेदान्त-भावना करते हैं। कोई जप-अनुष्ठान, देवदर्शन, तीर्थयात्रा करते हैं। ऋषियोंने वेदोंमें कहा है—

**सर्वं खल्विदं ब्रह्म । सोऽहम् । अयमात्मा ब्रह्म । तत्त्वमसि ।**

अर्थात् सारा विश्व सचमुच ब्रह्मरूप है। मैं ही वह हूँ। अपना आप ही ब्रह्म है। तू ही वह है।

उपनिषद् कहते हैं—'**तद्दूरे च तदन्तिके ।**' वह दूर है और पास भी है। '**अणोरणीयान् महतोमहीयान् ।**' वह सूक्ष्ममें अति सूक्ष्म है, महान्‌में अति महान है। गीताकार कहते हैं—

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।**

—सबके अन्तस्तलमें ईश्वर विराजता है। '**दूरस्थं चान्तिके च तत् ।**' वह दूर भी है, समीप भी है। उसके साक्षात्कारके लिये साधना क्या है?

साक्षात्कार—आँखके सामने स्थूल दर्शन नहीं, वरं उसकी सत्ताको अपने जीवन-व्यवहारमें सिद्ध करना।

**तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-**
**स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥** (वेद)

**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।** (गीता)

एकसे एक बढ़कर सरल व्याख्याएँ और साधन निर्दिष्ट हैं।

ग्रन्थोंमें ईश्वर नहीं, ईश्वरका वर्णन और साधन बत[illegible] गये हैं। अनुभव तो आत्मस्थ होकर व्यवहारमें होगा।

एकने कहा है—

'ब्रह्म या ईश्वरको किसीने चर्मचक्षुओंसे देखा नहीं क्योंकि वह इन्द्रियगम्य नहीं; इन्द्रियातीत है, आत्मगम्य है केवल जो लोग बताते हैं, वे कानसे सुन लेते हैं। सब लो[illegible] जानते हैं और प्रत्यक्ष सिद्ध है कि माता-पिताका वात्स[illegible] ईश्वरके बराबर है, क्योंकि इन साक्षात् पालक-पोषकके लि[illegible] हम किसीको नहीं जानते।

फिर भी इनकी उपेक्षा कर, नियम-व्रत, जप-तप, [illegible] योग साधन, तर्क-वितर्क, वाद-विवाद, सत्संग-शास्त्रार्थ, ती[illegible] यात्रा, मन्दिर-मूर्ति-दर्शन-पूजन सबका क्या प्रयोजन! [illegible] अपनी-अपनी भावना है, धारणा है।

### परमात्माका मनोविज्ञान

कहा जाता है, कहीं भी जाओ, ईश्वर तुम्हारे साथ है तुम कुछ भी करो, वह देखता है तथा तुम्हारे इरादे, संक[illegible] और कर्मानुसार फैसला एवं फल देता है। जहाँ एकान्त सम[illegible] हो, तुम्हारे सिवा अन्य न हो, तुम चोरी, हत्या अथवा को[illegible] अनैतिक अनुचित कर्म करो, वह साक्षी है; परंतु वह देख[illegible] सुननेमें नहीं आता, वह अदृश्य है। यह कथन प्रायः सम[illegible] नहीं आता।

जहाँ कहीं भी मनुष्य जाय वहाँ उसका आत्मतत्त्व 'आ[illegible] तो उसके भीतर 'अनन्य' साक्षीरूप रहता ही है और [illegible] मनुष्य अपने संकल्प-विकल्प तथा कर्मको तो जानता ही [illegible] भले ही वहाँ दूसरा-तीसरा व्यक्ति छिपा या प्रत्यक्ष न हो [illegible] जाने। आत्मद्रष्टा होकर विवेक जागनेपर मनुष्यको अपने दु[illegible] संकल्प और कर्मको जानकर पश्चात्ताप होता है। पश्चात्ता[illegible] फलस्वरूप उन विचारोंका प्रभाव बीजरूपसे शरीरपर [illegible] परिस्थितिपर पड़ता है। आजके मानसिक रोग इसीके प्रभा[illegible] व्यापक हो रहे हैं और कई शारीरिक रोग भी, जिनका [illegible] इलाज नहीं मिलता। मनुष्य सदैव अपने इरादों और कर्म[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानता है, उसे उनका स्मरण रहता है, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता, वे उसकी स्मृतिकोषमें, स्मृतिपटलपर, अलिखित लेख-रूपमें अङ्कित-मुद्रित रहते हैं। इसीलिये कितने ही लोग एकान्तमें अन्य साक्षी न रहते हुए कोई कर्म करके, बादमें अपने मनमें उसकी प्रतिक्रियासे चुपचाप अनमने, भ्रान्त, पागल-से बने पछताया करते हैं और उसे भुलाने, अपना कर्म—पाप धोने-मिटानेके लिये जप-तप-कीर्तन-दान-परोपकारी साधन इत्यादि करके संतोष करते हैं। किसीके शरीरमें वह दूषित भावना असाध्य रोगके रूपमें—सिर-दर्द, स्वप्न आना, दाद, छाजन या अन्य रूपमें प्रकट होती है। उस रोगके स्थूल कारणका निदान नहीं हो पाता, वह बात मनमें गहरी दब जाती है।

कभी-कभी इसकी प्रतिक्रियासे अकस्मात् अनायास अपने-आप ही दण्ड मिल जाता है। किसीने मुझे बताया था कि 'एक पुलिस अधिकारीने एक हत्याके मामलेमें, असली अपराधीसे रिश्वत खाकर, जान-बूझकर एक भोले निरपराधको मुकदमेमें फँसाकर, दाँव-पेंचसे झूठी गवाही दिलवाकर उसे 'फाँसी' तक पहुँचा दिया। फाँसीके दिन निरपराधने अधिकारी पुलिसकी ओर अँगुली उठाकर सबके सामने कहा कि 'तुम्हारे कारण मुझे व्यर्थ फाँसी हो रही है।'

उसको फाँसी लग गयी, वह मर गया, परंतु उसकी उतनी बातसे अधिकारीका आत्मतत्त्व सचेत हो उठा और उसे वह निरपराध व्यक्ति दिन-रात लगातार दृष्टिगोचर होने लगा। मानो कह रहा था, 'तुम्हारे कारण मुझे व्यर्थ फाँसी हो रही है।' वास्तवमें वह बात सुनकर उसका अन्तस्तल इस बातको स्वीकार कर रहा था कि 'उसने एक निरपराधको फाँसी दिलवायी।' इसे दूसरोंकी दृष्टिमें और मनोविश्लेषककी दृष्टिमें यह मानसिक रोग, झूठी कल्पना ( delusion ) कहा जायगा, परंतु वह एक सप्ताह पागल रहकर चल बसा। यह था आत्मस्थ ईश्वरका न्याय। यदि उसने वैसा न किया होता तो उसकी बातोंसे वैसा प्रभाव न होता।

जिस प्रकार परमात्मा या ईश्वरको पूछते खोजते हो, उसी प्रकार अपने 'आप' को ढूँढ़ो। अपना नाम लेकर दूसरोंसे पूछते फिरो, आइनेमें अपनी शक्ल देखकर कहो—यह दूसरे व्यक्तिका प्रतिबिम्ब है, तो इसमें कितनी बुद्धिमानी होगी? जो अपना 'आप' अपने भीतर साक्षी वर्तमान है, उसे बाहर क्या खोजना है?

किंतु आत्मस्थ ईश्वर या आत्मतत्त्वसे लाभ कैसे उठावें? अन्य वनस्पति पशु प्राणियोंमें जो प्रसुप्त है, वह मनुष्यमें चेतन है और नित्य नियमित अभ्याससे उस आत्मतत्त्वको संकल्प-भावनासे जाग्रत् कर लाभ उठाया जा सकता है। संकल्पके अनुरूप ही मनुष्यके शब्द और कर्म होते हैं।

## भावना-चमत्कार

आत्मनिष्ठ सात्त्विक भावनाके सतत अभ्याससे संकल्प सिद्ध होता है। सिद्धिका रहस्य और कुछ नहीं; केवल विचारको एकाग्र कर उग्र करनेमें है, जिस प्रकार 'लेन्स' से प्रकाशकी किरणें केन्द्रित होकर गरमी, आग पैदा करती हैं। लगातार सोते-जागते, सुबह उठते समय, रातको सोते समय, भोजन आरम्भ करते समय, किसीसे भेंट-मुलाकात या कोई काम आरम्भ करते समय शुभ रचनात्मक संकल्प किये जायँ। अमेरिकामें इसके साधन करनेवाले बहुत लोग हैं और वे बहुत लाभ उठाते हैं। वहाँ कई संस्थाएँ हैं जिनसे साहित्य प्रचारित होता है, नियमित प्रार्थना-संकल्पके लिये मण्डली निःस्वार्थभावसे पत्र, तार, टेलीफोनद्वारा दूरसे पीड़ित दुखी लोगोंकी सूचना मिलनेपर, उनके लिये प्रार्थना-भावना करती, लहरें भेजती हैं। संकल्पका प्रभाव पहले अपने शरीरपर होता है, परीक्षा कर लीजिये। एक महिलाका अनुभव है—

'मैंने अपना मकान बदला तो मुझे तीन बड़ी-बड़ी सन्दूकें परिश्रमसे उठानी-धरनी पड़ीं। उससे दाहिनी पसलीमें पीठकी ओर दर्द हुआ। मैंने परवा न की। रातको सोकर दूसरे दिन उठी तो दर्द अधिक मालूम हुआ। फिर भी चिन्ता न की। अगली सुबह दर्द अधिक बढ़ गया, तब चिन्ता कर डॉक्टरके पास गयी। तीन सहयोगी डॉक्टरोंने यान्त्रिक जाँचकर बताया कि विकार एकत्रित हो जम गया है, गाँठ आठ इंचकी गोलाईमें है। चीरफाड़ करनी पड़ेगी। अगले दिन ऑपरेशन निश्चित हुआ। मैं डरी हुई घर लौटी कि ऑपरेशन-के बाद घर लौटूँगी या मर जाऊँगी, मेरे बाल-बच्चोंका क्या होगा? अस्तु, रातकी प्रार्थनामें अपना शरीर, बाल-बच्चोंकी समस्याको आत्मस्थ ईश्वरको बालकवत् श्रद्धासे 'सर्वभावेन' छोड़ निश्चिन्त सोयी, 'संसार मेरा नहीं है। जन्मके पहले मेरा नहीं था, मरनेके बाद भी मेरा नहीं रहेगा, फिर जीतेजी अपना कैसे कहूँ। सब परमात्माका है।' ऐसी भावना रख सो गयी, खूब नींद आयी। सुबह अस्पताल गयी तो ऑपरेशनके पहले डॉक्टरोंने पुनः जाँच की। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, जो गाँठ उन्होंने आठ इंच गोल फैली हुई बतायी थी, वह अब केवल चार इंच रह गयी थी। ऑपरेशन टल गया। अगले सप्ताहतक इसी सहज शरणागतिके आत्मभावसे वह गाँठ लुप्त हो गयी। चाहे प्रकृति

१. कोदकी तरहका एक रोग या अपरस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहो, परमात्मा कहो वा आत्मसंकल्प। डॉक्टरकी छुरी मुझपर न चल पायी।'

## ब्रह्माण्डका अर्थशास्त्र

एक ६४ वर्षका व्यक्ति अपनी पत्नीके साथ मोटरमें कहीं जा रहा था। रास्तेमें एक्सिडेंटसे उसकी मृत्यु हो गयी। मृत शरीरकी शल्यक्रियासे जाँच हुई। पत्नीने बताया कि पति पूर्ण स्वस्थ था, परंतु शल्यक्रियासे उसके यकृतमें कठोरता तथा एक गुर्दा बेकार पाया गया। उसे पूर्वमें फेफड़ेका क्षय हो चुका था और हृदयकी शिराओंमें कठोरता पायी गयी।

उस व्यक्तिको अपनी अन्तरंग व्याधियोंका पता न था, आत्मभावनासे वह स्वस्थ सोत्साह काम करता था। उसके चार अङ्गोंमें घातक रोग होते हुए भी आत्म-अज्ञानसे अपरिचित, स्वस्थ; बलिष्ठ भावनाके बलपर ही वह चैतन्य बलवान् था। और भी अधिक जीता किंतु आकस्मिक दुर्घटनासे मर गया।

एक व्यक्तिकी भावनाका दूसरोंपर भी प्रभाव होता है। एक बच्चेको बातज्वर हुआ, उसके प्रभावसे उसका हृदय पीड़ित हुआ, बादमें हालत खराब हो गयी। हृदयमें सूजन होकर वह बड़ा हो गया। डॉक्टरोंने बीचमें परीक्षा तथा इलाज करते हुए निराश होकर कह दिया; थोड़े दिन बचेगा। बच भी गया तो कठोर संयमसे रहना पड़ेगा, परिश्रम न कर सकेगा।

उस बच्चेकी बड़ी चाची उसे बहुत प्रेम करती थी, भावनाशक्तिको पहचानती थी। उन्होंने प्रार्थनासहित हाथ फेरकर उसका उपचार आरम्भ किया। नौ मासमें धीरे-धीरे सुधरकर बच्चा चंगा हो गया। डॉक्टरी जाँचसे उसके रोगके सब लक्षण गायब पाये गये। १८ वर्षकी अवस्थामें जिन लोगोंको डॉक्टरोंने दो महीने जीना शेष बताया था, वे संयम और आत्मविचारसे आत्मशुद्ध होकर ८० वर्ष जिंदा रहे। जिन लोगोंको वर्षोंसे लकवा था, वे अकस्मात् आत्मप्रेरणासे चलने-फिरने लगे। एक व्यक्ति बरफपर खेलते फिसल पड़ा। कमरकी हड्डी फिसल जानेसे एक पाँव बड़ा, दूसरा छोटा, चार इंचका फर्क हो गया था। हड्डीमें सूजन हो गयी थी। दस वर्षकी आयुसे पचीस वर्षतक, पैंतीसकी आयुतक बिस्तरपर इलाज कराते अपंगवत् पड़ा रहा और डॉक्टरोंने असाध्य कहकर 'हड्डीकी सूजन फूटकर, हड्डी-रस बह निकलेगा, मर जायगा' कह दिया था, वह व्यक्ति आत्मभावनासे चौरासी वर्षमें पूर्ण स्वस्थ हुआ और ९२ वर्षकी अवस्थामें उसने देखते-सुनते-बोलते होशमें देहत्याग किया।

विचार चामत्कारिक जादूका-सा असर करता है, मारता और जिलाता है, रोगी बनाता और स्वस्थ करता है। किसी दुखी भ्रान्त निराश व्यक्तिको सत्प्रेरणा देनेसे वह उसे बिजलीके 'स्विच'के दबानेके समान उसे चैतन्य और कर्मठ बना देती है। जीवनके चढ़ाव-उतारमें संकल्पका उपयोग... जीवनको बरबाद किया अथवा सुधारा जा सकता है। ... क्या है?—ब्रह्माण्डका अर्थशास्त्र! स्वर्ग-राज्यका सोनेका सिक्का।

इन शब्दोंको यथार्थमें समझना जरा कठिन है, ... विचार करके उसे कार्यान्वित होते देखकर समझमें आ जाता है कि इस अर्थशास्त्रसे इन सिक्कोंसे जीवनके सब व्यवहार चलते हैं, लोग वैभवशाली बनते हैं, खोटे सिक्कोंसे लोग दिवालिये हो जाते हैं। सांसारिक अर्थशास्त्रमें सरकार सिक्का बनाकर प्रचलित करती है, किंतु आत्मराज्यमें मनुष्य स्वयं अपने संकल्पोंका सिक्का बनाकर प्रचलित करते हैं। उसीके मूल्यके अनुरूप उनके जीवनका खरा या खोटा सौदा होता है।

करोड़ों वर्ष बीत गये, करोड़ों आगे बीतेंगे। मा... कीटाणुवत् पैदा होते और कुछ कालमें इस अभिनयशाला... गायब हो जाते हैं, परंतु किसने कैसा सिक्का चलाया, उन... इतिहास उनके बाद शेष रहता है। खोटे सिक्केवालोंका कु... महत्त्व नहीं होता। उसे कोई स्वीकार नहीं करता, उससे को... सौदा नहीं होता। आपका सिक्का कैसा है?

## आत्मविस्फोट

काँप उठेंगे धरती अम्बर,
पिघल जायगी पर्वत-माला।
खौल उठेंगे सात समुन्दर,
धधक उठे जो इसकी ज्वाला॥

इन पंक्तियोंमें कितनी भयंकर कल्पना है। अणु बम... भी भयंकर! इनमें आत्मसंकल्पकी महत्ता निहित है। अ... बम पहले नहीं था, संकल्पसे ही वह उत्पन्न हुआ। करोड़ों व्यक्ति पैदा हुए और मर गये, उनकी हड्डियोंका पता न... परंतु उनके अलौकिक संकल्प और कार्य दुनिया... इतिहासमें व्यापक हैं, उनका संकल्प आज बच्चों-बच्चों की जबानपर मौजूद है। यद्यपि उनका शरीर मरकर भस्म हो चुका है, पर संकल्परूपमें वे जीवित हैं।

मान लीजिये, युद्धकाल है, आप मोटरसे यात्रा कर रहे हैं। रास्तेमें कई मन्दगामी भारी वाहनोंको, तीव्र गतिसे आ... पारकर आगे बढ़ते गये, सामने एक 'ट्रक' मिलता है, उसके पीछे पास आनेपर ज्यों ही रास्ता आगे पानेके लिये आप 'हार्न' पर हाथ लगाते हैं, आपकी दृष्टि उस ट्रकके पीछे लगी एक लाल-सफेद रङ्गकी पटरीपर पड़ती है जिसमें लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'खबरदार ! खतरा है । इस ट्रकमें
विस्फोटक पदार्थ भरा है । काफी दूर रहो ।'

बस, आपकी जल्दबाजी तुरंत ठंडी पड़ जाती है। पता नहीं आगे रास्ता कैसा हो, खड्डा या पहाड़ हो, चढ़ाव या उतार हो। जरा भी धक्केसे विस्फोट हो सकता है, सब कुछ आग-धुआँ होकर राखका ढेर हो सकता है और हम-लोगोंमें कोई कहानी कहनेको भी साक्षी नहीं बच सकता। मन्द विस्फोटका प्रभाव दीर्घकालतक रहता है, जलता-सुलगता रहता है, एकदम विस्फोट होनेसे सब कुछ तुरंत नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

मस्तिष्क और हृदयमें भी भावनाओं और आवेगोंका विस्फोट हुआ करता है। अचानक क्रोध, आवेशका प्रभाव तत्काल विनाशक होता है। मनमें भय-चिन्ता-निराशाके विस्फोट मन्द-मन्द शरीरको जलाते हैं।

अपनी संकल्प-शक्तिको समझकर उसका विवेकपूर्वक उपयोग करनेवाले जीवनमें सफल होते हैं। अभ्यासके लिये एक संकल्प लें।

'मैं सब प्राणीमात्रसे प्रेम करता हूँ, 'मुझे किसीसे द्वेष नहीं है। मैं सब परिस्थितियोंमें शान्त, अडिग, निर्भय रहता हूँ। जहाँ मैं हूँ, वहाँ परमात्मा है, जहाँ परमात्मा है, वहाँ मैं हूँ। मेरा जीवन शुभ संकल्पमय है। मेरा भोजन-पानी दिव्य रसायन है और मेरा शरीर स्वस्थ रहता है। मेरा जीवन सत्कर्म, सत्संकल्प करनेके लिये बहुमूल्य अवसर है। मैं जीऊँगा, संसारसे प्रेम करूँगा और कर्म करूँगा। जीवन जीने और सत्कर्म करनेके लिये है।'

अंग्रेजीमें यों बोलिये:—"I place myself and all my affairs lovingly in the hands of my indwelling spirit with a childlike trust, knowing that which is my own and far my highest good, shall come to me. Indwelling Spirit inspires me, guides and provides me with all I need at the right time and places."

# 'सुहृदं सर्वभूतानाम्'

## [ कहानी ]

( लेखक—श्री 'चक्र' )

'सावधान !' हवाई जहाजके लाउडस्पीकरसे आदेशका स्वर आया। यह अन्तिम सूचना थी। वह पहिलेसे ही द्वारके सम्मुख खड़ा था और द्वार खोला जा चुका था। उसकी पीठपर हवाई छतरी बँधी थी। रात्रिके प्रगाढ़ अन्धकारमें नीचे कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। केवल आकाशमें दो-चार तारे कभी-कभी चमक जाते थे। मेघ हल्के थे। वर्षाकी कोई सम्भावना नहीं थी। बादलोंके होनेसे जो अन्धकार बढ़ा था, उसने आश्वासन ही दिया कि शत्रु छतरीसे कूदनेवालेको देख नहीं सकेगा। हवाई जहाज बहुत ऊपर चक्कर लगा रहा था। सहसा वह नीचे चीलकी भाँति उतरा।

'एक हजार दो सौ फीट, एक सौ सत्रह, कूद जाओ !' आदेश सभी अंग्रेजीमें दिये जाते थे। यह आदेश भी अंग्रेजीमें ही था। मैंने अनुवादमात्र किया है। एक काली छाया हवाई जहाजसे तत्काल नीचे गिरी और द्वार बंद हो गया। हवाई जहाज फिर ऊपर उठ गया। वह मुड़ा और पूरी गतिसे जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें लौट गया। शत्रुके प्रदेशसे यथाशीघ्र उसे निकल जाना चाहिये। जिसे नीचे गिराया गया, उसकी खोज-खबर लेना न उसका कर्तव्य था और न ऐसा करना उस समय सम्भव ही था।

'एक, दो, तीन—दस, ग्यारह—सत्तर, इकहत्तर' गिरनेवाला पत्थरके समान ऊपरसे गिर रहा था; किंतु वह अभ्यस्त था। बिना किसी घबराहटके वह गिनता जा रहा था। उसे पता था कि उसे जब गिराया गया, उसका हवाई जहाज पृथ्वीसे एक हजार दो सौ फीट ऊपर था। 'एक सौ पंद्रह, एक सौ सोलह, एक सौ सत्रह !' संख्या जो उसे बतायी गयी थी, पूरी गिनी उसने और तब उसके हाथोंने पीठपर बँधी छतरीकी रस्सी खींच दी। पैराशूट एक झटकेसे खुल गया। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह वायुमें तैरता हुआ धीरे-धीरे नीचे आ रहा था।

सहसा वायुका वेग प्रबल हो गया। पैराशूट एक दिशामें उड़ चला; किंतु वह बहुत दूर नहीं जा सका। उसके सहारे उतरनेवालेके पैरोंको किसी वृक्षकी ऊपरी टहनियोंका स्पर्श हुआ। अगले क्षणोंमें एक शाखामें पैर उलझानेमें वह सफल हो गया। बहुत कड़ा झटका लगा। मुख, हाथ, पीठ शाखाओंपर रगड़ लगी। अच्छी चोट तथा कुछ खरोंचें भी आयीं। शरीरकी नस-नस कड़कड़ा उठीं, लेकिन अन्तमें पैराशूट उलट गया। वह डालपर स्थिर बैठ गया और उसने रस्सियाँ खोलकर पैराशूटको पीठपरसे उतार लिया।

वह कहाँ है, कुछ पता नहीं उसे। चारों ओर घोर वन है। वन्यपशुओंकी चिग्घाड़ें रह-रहकर गूँज रही हैं। जो मान-चित्र उसे दिया गया था, अब वह बड़ी कठिनाईसे काम देगा; क्योंकि हवा उसे अपने लक्ष्यसे कितना हटा लायी है, किस स्थानपर वह आ गया है, यह जाननेका कोई उपाय उसके पास नहीं।

रात्रिके इस अन्धकारमें भूमिपर उतरना आपत्तिको आमन्त्रण देना था। प्रकाश वह थोड़ा भी कर नहीं सकता। इससे शत्रु कहीं समीप हुआ तो वह पता पा जायगा। जबतक झुटपुटा नहीं हुआ, वह चुपचाप उसी डालपर बैठा रहा। मच्छरोंने उसका मुख लाल बना दिया। शीतल वायुके झकोरे यद्यपि शरीरको अकड़ाये दे रहे थे, उसे अच्छे लगे; क्योंकि कुछ क्षणको उनके कारण मच्छरोंसे उसे छुटकारा मिल जाता था। वायुकी दुर्गन्धि बतलाती थी कि समीप ही कहीं दलदल है।

झुटपुटेके प्रारम्भमें ही वह नीचे उतरा। सबसे पहले उसने कमरसे बड़ा चाकू निकालकर भूमिमें गड्ढा बनाया। गीली मिट्टी होनेसे थोड़े ही परिश्रममें गड्ढा इतना बन गया कि उसमें पैराशूट रखकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी उसने। मिट्टीके ऊपर सूखे पत्ते इधर-उधरसे लाकर बिखेर दिये। अब वह निश्चिन्त हुआ कि पैरा[शूट] या ताजे गड्ढेको देखकर शत्रुको कोई संदेह होने[का] भय नहीं रहा।

× × ×

'हम उसे गोली नहीं मार सकते। वह भार[तीय] है। उसे नेताजीको दे देना होगा।' जापानी अधि[कारी] परस्पर विवाद करनेमें लगे थे। एक अंग्रेजोंके जासूस[को] मार देना चाहिये, इस विषयमें दो मत नहीं [थे] उनमें; किंतु नेताजीने बहुत कठोर रुख बना लिया [था] भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारको लेक[र] बात लगभग झगड़ेकी सीमातक पहुँच चुकी थी। नेताजी अड़े थे—'प्रत्येक भारतीय बंदी उन्हें दे [दिया] जाय। उसके साथ क्या हो, यह निर्णय वे करेंगे।'

'यह हमारे सैनिक अधिकारोंमें हस्तक्षेप है' जापानी अधिकारियोंको ऐसा प्रतीत होता था औ[र] वे मनमें चिढ़ते थे; किंतु प्रत्यक्ष विरोध कर[ना] उनके लिये सम्भव नहीं था। उन्हें टोकियोसे आदे[श] मिला था—'सुभाषचन्द्रवसुका सम्मान सम्राट[के] प्रतिनिधिकी भाँति किया जाना चाहिये।'

कल रात्रिमें कोई अंग्रेजी सेनाका विमान [आया] जासूस उतार गया। यह पता नहीं है कि जासू[स] अकेला ही आया है या उसके कुछ और साथी हैं [।] विमानका पीछा नहीं किया जा सका; किंतु व[न] खोज करनेवाले सैनिक एक भारतीयको पकड़कर [ले] आये। वह पैराशूट मिल गया भूमिमें गड़ा हु[आ] जिससे वह उतरा था। अब बिना कठोर व्यवहार[के] जासूस कुछ बतायेगा नहीं। कुछ सैनिक अधिका[री] उसे गोली मार देनेके पक्षमें हैं; किंतु नेताजीका सं[देश] आ गया है। उन्होंने कहलाया है—'उससे पूछने[का] काम मुझपर छोड़ दो!'

'हम यदि उसे रोकते हैं, बात टोकियोतक पहुँ[चेगी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है ।' प्रधान सैनिक अधिकारीने गम्भीर चेतावनी दी और तब दूसरा उपाय ही इसे छोड़कर नहीं रह गया कि उस भारतीयको चुपचाप नेताजीके समीप भेज दिया जाय ।

× × ×

'जिस वृक्षपर मैं उतरा था, उसकी टहनियाँ और पत्ते टूटे थे । उनको भी हटा देना चाहिये, इधर मेरा ध्यान नहीं गया था ।' वह तरुण बता रहा था—'जापानी वन-निरीक्षकोंका ध्यान उन रातके टूटे पत्तोंपर गया । उन्होंने उस वृक्षके आसपास खोज की और पैराशूटको भूमिमेंसे खोद निकाला । इसके बाद उनके सैनिकोंका एक पूरा समूह वनमें फैल गया । मेरे लिये छिपना सम्भव नहीं रह गया और पिस्तौलका उपयोग करनेसे कोई लाभ नहीं था । विवश होकर मैं उनके सामने आ गया ।'

'जीवनमें शिक्षाकालसे तबतक मैंने कभी ईश्वरकी सत्ता स्वीकार नहीं की थी । वैसे मैं पहिले संयम पसंद करता था; किंतु जासूसीमें अनेक बार शराबियों-जुआरियोंके बीचमें रहना पड़ा । धीरे-धीरे मुझमें सब दुर्व्यसन आ गये । नास्तिक था ही, परलोककी चिन्ता पागलपन लगती थी ।' युवक कहते-कहते रो पड़ा था । उसने अपने अनेक अपकर्मोंकी रोते-रोते चर्चा की । यहाँ उनकी चर्चा अनावश्यक ही नहीं, अनुचित भी है ।

'मुझे एक गन्दे कमरेमें हथकड़ी डालकर बंद कर दिया गया था । मच्छरोंको भगानेके लिये हाथ भी खुले नहीं थे । परंतु विपत्ति इतनी ही कहाँ थी । चूहोंका एक झुंड आया । उसने मुझे पहिले दूरसे देखा, सूँघा और फिर वे निकट आ गये । जब उनमेंसे एकने मेरी गर्दनपर मुँह लगाया; मैं चीख पड़ा—'हे भगवान् !' लेकिन मुझे अपनेपर ही क्रोध आया । 'मेरे-जैसे पामर नास्तिककी पुकार भगवान् सुनेगा भी—यदि वह हो !' वह अब हिचकियाँ लेने लगा था ।

'किंतु भगवान् है । उसने मेरे-जैसे पापीकी पुकार भी सुनी । घंटेभर भी वह देर करता तो जापानी सैनिक मारते या छोड़ते, चूहे मुझे नोंच-नोंचकर खा लेते । उन्होंने गर्दन, पैर और कंधेपर केवल तीन घाव किये कि मेरी कोठरीका द्वार खुल गया । मुझे वह जापानी सैनिक भगवान्का दूत ही लगा । वह मुझे गोली भी मार देता तो मैं उसे ऐसा ही मानता; किंतु वह मुझे मोटरमें बैठाकर नेताजीके समीप ले गया ।' उसने अपने अश्रु पोंछ लिये और दो क्षणको चुप हो गया ।

'मुझे आज पता लगा कि भगवान् है और वह मुझ-जैसेकी पुकार भी सुनता है । उसने मुझे बचाया है । अब यह जीवन उसका, उसीके स्मरणमें अब जीना या मरना है ।' वह बता रहा था कि उसने नेताजीसे ये बातें कही थीं—'अब शस्त्र उठाकर किसी ओरसे किसीकी भी हत्या करनेकी इच्छा मेरी नहीं है । भगवान् है, तो पूरी पृथ्वी उसकी है । सब मनुष्य उसके अपने हैं । अतः मैं युद्धमें अब किसी ओरसे नहीं लड़ूँगा ।'

'आपपर प्रभुकी कृपा है । आप सच्चे अर्थोंमें भगवद्भक्त हैं । भले यह भक्ति आपको इसी क्षण मिली हो ।' नेताजीका स्वर भी भर आया था—'हम आपपर कोई प्रतिबन्ध लगानेकी धृष्टता नहीं कर सकते । आप चाहे जहाँ जानेको स्वतन्त्र हैं । हम केवल प्रार्थना करेंगे कि आप मेरा आतिथ्य स्वीकार कर लें आजके दिन ।'

'मुझसे कुछ पूछा नहीं गया । मैंने स्वयं जो कुछ बता दिया, वही नोट कर लिया गया । मेरी हथकड़ियाँ तो नेताजीने पहुँचते ही खुलवा दी थीं । उन्होंने जिस श्रद्धासे मुझे भोजन कराया, उसका स्मरण करता हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मुझे अपने-आपसे घृणा होने लगती है। उन लोकपूज्यकी श्रद्धा मिली मुझे केवल इसलिये कि मैंने भगवान्‌को स्वीकार किया था। मैंने किया ही क्या था, मेरा मृत्युमुखसे उद्धार तो स्वयं उस भगवान्‌ने किया था जो कदाचित् मेरे-जैसोंके पाप देखना जानता ही नहीं! भगवान्! भगवान्!' और वह फूटकर रो पड़ा। उन्मत्तके समान उठा और एक ओर दौड़ता चला गया। पता नहीं कहाँ गया वह।

'पागल है!' एक सज्जनने कहा। फटे वस्त्र, बढ़े केश, चिड़ियाका घोंसला बनी दाढ़ी। उसका वेश देखकर दूसरा अनुमान लगाया भी कैसे जा सकता है।

'वह मौजमें आता है तब कहता है—मित्र भगवान्! मेरे प्यारे मित्र! आप सबके मित्र!' उन ... महोदयने बताया जिनसे अभी वह बातें कर रहा था— 'वह रंगूनसे युद्धकालमें ही वनके मार्गसे पैदल भा... आया। वह कहता है कि वनके भयानक जन्तु ... उनसे भयानक नरभक्षी मानव भी उसके लिये मित्र ... थे। भगवान् सबका मित्र और उस भगवान्‌ने ... मित्र जो बना लिया। अब वह अपनी धुनमें पागल है।'

'सबका सुहृद् वह श्यामसुन्दर! उसे आ... सुहृद्‌रूपमें पानेवाले ये महाभाग धन्य हैं!' पास ... एक साधुने कहा।

---

# अपना निर्माण कीजिये

( लेखक— स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी )

प्रत्येक मानवका परम कर्तव्य है—आत्मनिर्माण। आत्मनिर्माणसे ही समाजका निर्माण भी हो सकता है। आत्मनिर्माणका तात्पर्य है—अपनेको सुन्दर बनाना। बाह्य सौन्दर्यसे कोई सुन्दर नहीं होता है। आजकल देशकी बहुत-सी सम्पत्ति बाह्य शृङ्गार-सामग्रीमें व्यय होती है। क्रीम, पाउडर, साबुन, स्नो, तेल-फुलेल भाँति-भाँतिकी खर्चीली पोशाकें आदि पदार्थोंके प्रयोगसे ही लोग अपनी सुन्दरताकी वृद्धि करना चाहते हैं। पर यह कोरी भूल है। फैशन-विलासिता और शौकसे फिजूलखर्ची, विक्षोभ और शोक ही बढ़ता है—सौन्दर्य नहीं। जो अपना निर्माण करना चाहते हैं अथवा अपने-आपको वास्तवमें सुन्दर बनाना चाहते हैं, उनमें पाँच लक्षण अवश्य होने चाहिये। वे पाँच लक्षण हैं—(१) इन्द्रियोंपर विजय, (२) लोक-सेवा, (३) भगवत्स्मरण, (४) सत्यकी खोज और (५) आत्मनिरीक्षण।

जो अपनी इन्द्रियोंपर विजय नहीं पा सकता है, वह इन्द्रियविषय-लोलुपताके वशमें होकर निरन्... अनित्य दुःखमय और परिवर्तनशील सुख-सौन्दर्यकी ओ... दौड़ते-दौड़ते वस्तु, व्यक्ति तथा परिस्थितिका दा... होकर अनेक प्रकारकी निर्बलताओंका शिकार ब... जाता है। फलतः वह कभी अपना हित नहीं क... सकता।

जो जितेन्द्रिय बनना चाहते हैं वे लोक-सेवा करें। सेवा करनेसे सुखासक्तिका नाश हो जाता है और इसके नाशसे स्वार्थभाव भी पूर्णरूपेण गल जाता है जिससे मनुष्य जितेन्द्रिय बन जाता है। जबतक स्वार्थभाव रहता है, तबतक मनुष्यके हृदयमें वास्तविक जितेन्द्रिय बननेकी लालसातक भी नहीं जाग्रत् होती। सेवाका तात्पर्य होता है—दुखी व्यक्तिको देखकर करुणाका भाव उत्पन्न हो जाना और सुखी व्यक्तिको देखकर मन प्रसन्नतासे खिल जाना। दुखी व्यक्तियोंको देखकर जो करुणार्द्र हो जायगा, वह अवश्य ही अप...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख उनको बाँट देगा । फलतः वह सुखकी दासतासे मुक्त हो जायगा । यही मानवताके विकासका मूलमन्त्र है । सेवाके द्वारा ही आत्मनिर्माण तथा समाजका निर्माण—दोनों सुगम हैं ।

अपना निर्माण करनेके लिये भगवत्स्मरण सर्वोत्तम उपाय है । मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, वैसा ही वह बन जाता है । "महानिति भावयन् महान् भवति"—जो महान्का चिन्तन करता है वह महान् हो जाता है । इसमें जरा भी संदेह नहीं । भगवान्से बढ़कर महान् है ही कौन ? अतः भगवच्चिन्तनका नित्य-निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये । जो भगवच्चिन्तन नहीं करता है—वह भोगोंका चिन्तन तो करेगा ही, जिसका फल होगा सत्यानाश । भगवान्का स्मरण-चिन्तन स्वतः होता रहे—इसके लिये भगवान्के साथ आत्मीयता ( अपनापन ) और उनकी आवश्यकता होनी चाहिये ।

जो सत्यकी खोज करता है उसको सत्यकी प्राप्ति अवश्यमेव होती है । पर इसके लिये जाने हुए असत्यका त्याग तो करना ही पड़ेगा । असत्का सङ्ग कर लेनेसे ही मनुष्यको मृत्युका भय तथा संदेह बना रहता है । जो मनुष्य आत्मनिर्माणकी ओर अग्रसर होना चाहता है, उसको चाहिये कि शीघ्रातिशीघ्र असत्के सङ्गका त्याग कर दे अर्थात् जो कर्म, जो सम्बन्ध तथा जो विश्वास-विवेक-विरोधी हो उससे सम्बन्ध तोड़ ले । ऐसा करनेपर वह सत्यको प्राप्तकर अमर और सर्वथा संदेहरहित हो जायगा । यही मानव-जीवनका फल है ।

साधकको समय-समयपर आत्मनिरीक्षण भी करते रहना चाहिये । ऐसा करनेसे अपने बनाये हुए दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है और प्राप्त बल, योग्यता तथा परिस्थितिका सदुपयोग भी होने लगता है । अपने अंदर जो-जो दोष हों, उनका तुरंत ही त्याग कर देना चाहिये । पर दूसरे व्यक्तिके दोषोंका दर्शन भूलकर भी नहीं करना चाहिये । जो परदोष-दर्शनमें लगे रहते हैं, उनको अपना दोष नहीं सूझता । परदोष-दर्शन तथा परचर्चासे निरन्तर बचते रहना चाहिये । सत्संग, स्वाध्याय तथा श्रवण-मननका जो फल है, वही आत्मनिरीक्षणसे प्राप्त होता है । साधकको चाहिये कि दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा व्यवहार वह दूसरोंसे अपने प्रति चाहता है । अतः आत्मनिरीक्षण आत्मनिर्माणके लिये परमावश्यक है ।

...ान् सबको सद्बुद्धि प्रदान करें ।

---

## गीत

**उमरिया नीकी बीत रही ।**
**याद किसीकी हिये सँजोकर, हारी जीत रही ॥**
**प्रेम गली अति साँकरी, हिये भाव स्थूल ।**
**पार भये पिय पाइहैं, कालिन्दीके कूल ॥**
**पिया मिलनमें ना सहयोगी, फीकी प्रीत रही ॥ उमरिया० ॥**
**आहैं बाकी रह गईं, बिरह बरसते नैन ।**
**हिये हूक है मूक-सी, अटपट निकसैं बैन ॥**
**मोहन मनकी मनमें रह गई, रीती रीत रही ॥ उमरिया० ॥**

—मोहन वार्ष्णेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हमारा वेदराजा और उसकी सेना

( लेखक—आचार्य श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ )

( २ )

हमारे वेद राजाकी कितनी सेना है जानते हैं ? सब नहीं जानते होंगे, इसलिये जरा सेनाका वृत्तान्त बतला दूँ। संक्षेपसे, अतिसंक्षेपसे।

## ज्ञानाकारसे सब वेद एक
## उसके चार भेद

( १ ) ऋक् ( २ ) यजुः ( ३ ) साम ( ४ ) अथर्व।

## किंतु
## विषयभेदसे तीन वेद

( १ ) ज्ञान ( २ ) कर्म ( ३ ) उपासना।

## प्रत्येक वेदकी शाखाएँ

| ऋक् | यजुः | साम | अथर्व |
|---|---|---|---|
| २१ शाखाएँ | १०१ | १००० | ९ |

## प्रत्येक वेदका एक-एक उपवेद

| ऋक् | यजुः | साम | अथर्व |
|---|---|---|---|
| आयुर्वेद | धनुर्वेद | गन्धर्ववेद | अर्थवेद |
| चरक सुश्रुत आदि | | गायनके सहस्र प्रकार | अर्थशास्त्रके सैकड़ों ग्रन्थ। इन्हींसे चले |
| अन्य सैकड़ों ग्रन्थ | (१) शस्त्राङ्ग (२) अस्त्राङ्ग | सप्तस्वर गान विद्या सा-री-ग-म-प-ध-नी-स यहींसे चले। | |

## प्रत्येक वेदके ब्राह्मण

| ऋक् | यजुः | साम | अथर्व |
|---|---|---|---|
| ऐतरेयादि | शतपथादि | पंचविंश ब्राह्मणादि | गोपथादि |

फिर इनकी व्याख्यारूप अनुब्राह्मण

( अब कम मिलते हैं, नहीं[illegible] बराबर )

## फिर प्रत्येक वेदके
## उपनिषद्

| ऋक् | यजुः | साम | अथ[र्व] |
|---|---|---|---|
| ऐतरेयादि अनेक उपनिषदें | ईशादि | तवल्कारादि | मुण्डकोपनिष[द्] आदि |

## मुख्य उपनिषद्

( १ ) ईश ( २ ) केन ( ३ ) कठ ( ४ ) प्र[श्न] ( ५ ) मण्डूक ( ६ ) माण्डूक्य ( ७ ) तैत्तिरी[य] ( ८ ) ऐतरेय ( ९ ) छान्दोग्य ( १० ) बृहदारण्यक

## इन्हींसे भगवान् श्रीकृष्णने

गीतामृत दूहा।

## वेदोंकी शाखा क्या हैं ?

कई विद्वानोंका मत है कि ये शाखारूप ग्र[न्थ] वेदव्याख्यानरूपी ग्रन्थ हैं, वे शाखाएँ ११२७ होती हैं और ४ वेदोंको मिलाकर सब ११३१ होती हैं कितना बड़ा वेद-विषय है, इसकी जरा कल्पना तो कीजिये—फिर सारी शाखाएँ भी तो कहीं नहीं मिलतीं। इनी-गिनी मिलती हैं। ब्राह्मण—अनुब्राह्मण भी पूरे नहीं मिलते हैं। मूल उपनिषदें १० और पिछ[ले] विद्वानोंने अनेक उपनिषदें बना डालीं—अब[त]क उपनिषदोंकी संख्या लगभग दो सौसे ऊपर पहुँच गयी है—पर जितना भी अब वेद-विषय मिलता है, व[ह] क्या थोड़ा है ? इतना महान् विषय है कि इस वेद[-] विषयको शब्दब्रह्म कहा गया है। संसारमें दो [ही] ब्रह्म हैं। एक शब्दब्रह्म वेद है, दूसरा ब्रह्म है—परब्रह्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा है—

शब्दब्रह्मणि निष्णातः
परं ब्रह्माधिगच्छति।

जो शब्दब्रह्मको भलीभाँति जानता है, वही परब्रह्मको जान सकता है।

### इसीलिये कहा है—

**द्वे विद्ये वेदितव्ये, परा च अपरा च।**

दो विद्याएँ ज्ञातव्य हैं, परा और अपरा। अपरा हुई चारों वेद और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त एवं ज्योतिष। इनको जानना चाहिये।

### परा वह है—

**'यया तदक्षरमधिगम्यते'**

जिससे उस अविनाशी सदा एकरस ब्रह्मका ज्ञान होता है। अर्थात् परले पारकी विद्या—वेदान्त।

### इसीलिये

वेदान्तदर्शनका प्रथम सूत्र है—

**'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'**

अब इसके अनन्तर—किसके अनन्तर? वेदाध्ययनके अनन्तर। क्या? ब्रह्मजिज्ञासा ब्रह्म जाननेकी जिज्ञासा करते हैं—

### इसीलिये

वेदादि हुए अपरा—इधरके किनारेकी विद्या। और वेदान्त परा—परले किनारेकी विद्या।

### हमारे दर्शनशास्त्रोंका मूल

वेदोंमें ही मिलता है, जिससे ऋषियोंने षड्दर्शन बनाये। सैकड़ों शास्त्र-उपशास्त्र रचे। वेदराजाकी समस्त सेनाका वर्णन संक्षेपमें भी करना कठिन है, विस्तृत वर्णन तो अनन्त है—कौन करे? किसकी शक्ति है? मुझ-जैसा असमर्थ, अल्पज्ञ, जिसने केवल वेदोंको सूँघा ही है, वह क्या वर्णन कर सकता है?

### इन्हीं वेदोंके उपबृंहण

इतने हैं कि उनके विषयमें भी बहुत अधिक लिखा नहीं जा सकता।

लिखा है—

'उपबृंहण' वेदोंका एक प्रकारसे व्याख्यानरूप लौकिकोंके समझानेके लिये बढ़ाव है, जिससे साधारण पुरुष भी वेदके निखिल तत्त्व समझ सके—

**इतिहासपुराणाभ्यां
वेदं समुपबृंहयेत्**

इतिहास और पुराणोंसे वेद-तत्त्वोंका उपबृंहण करे—विस्ताररूप व्याख्या करे। उदाहरणादि देकर मनोरञ्जक व्याख्या करे।

### जैसे

१८ पुराण—फिर उनके १८ उपपुराण। जिनमें ४ लक्ष श्लोक आते हैं।

### फिर इनकी व्याख्या

इतिहास (संक्षिप्त)

महाभारत—रामायण आदि (इसमें सवा लक्ष श्लोक हैं।)

### फिर

इनके काव्य नाटकादि अनन्तरूप हैं। क्या यह थोड़ी सेना है हमारे वेदराजाकी?

इस तरह यह शब्दशास्त्र अनन्त है। सबको यथा[र्थ] जानना हो तो अनेक जन्म चाहिये। फिर भी कोई जा[न] पायेगा कि नहीं, कौन कह सकता है?

### पञ्चतन्त्रके विष्णु शर्मा

यथार्थ कहते हैं—

**अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं
स्वल्पं तथाऽऽयुर्बहवश्च विघ्नाः।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु
हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥**

(पञ्चतन्त्र कथामुख [illegible])

यह शब्दशास्त्र अनन्तपार है। अर्थात् जि[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारका कुछ पता नहीं। इधर आयु भी स्वल्प है—अत्यल्प है—अधिक-से-अधिक सौ वर्ष—फिर उसमें भी कितने विघ्न हैं—कुछ ठिकाना है आधि-व्याधिका।

### इसलिये

सारको जानकर जन्म कृतार्थ करना चाहिये।

### कैसे ?

जैसे मिले हुए दुग्धजलमेंसे हंस दुग्ध निकाल लेता है।

### [ एक बात और बस ]

वह यह कि शाखाओंके विषयमें एक मत वेदज्ञोंका ऐसा है कि शाखाका अर्थ है गुरु-शिष्य-परम्परा। जैसे मूलवृक्ष होता है और उसकी शाखाएँ होती हैं पचासों।

अर्थात् ऋग्वेदकी गुरुशिष्य-परम्परा मुख्य २१ हैं। यजुर्वेदकी १०१ हैं। सामवेदकी १००१ हैं। अथर्वकी ९ हैं। अर्थात् इतनी गुरुशिष्य-परम्पराओंका पता तबतक लगा, जबतक परम्परावाले अपनी परम्परा लिखते गये। आगे परम्परा लिखना छूट गया। यह मत है—। फेलो-आफ एशियाटिकसोसाइटी बंगालके स्वर्गीय आचार्य श्रीसत्यव्रत सामश्रमीजी महाराजका।

---

# गो० श्रीहरिरायजी 'रसिक'

## [ एक भाव-विश्लेषण ]

( लेखक—श्री क० गोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न )

भक्ति और काव्य—दोनों एक रस-रूप होकर 'रसिक' जनोंके अन्तस्तलको, उनकी रग-रगको—उनकी समग्र बहिः और अन्तश्चेतन-वृत्तिको संदीपित, सम्मोहित करते हैं। दोनों आत्मधर्मी, रसधर्मी हैं। दोनों परस्पर एक दूसरेको अनुप्राणित करते हैं। अन्तःकी बीजरूप रागात्मिका वृत्ति किसी प्रेष्ठमें रम् जानेपर भक्तिका रूप पाती है और कला एवं कल्पनाका उपजीवन—आधार लेकर वही काव्यवाणीके रूपमें भावावेगके साथ भाव-जगत्में प्रस्फुटित होती है। फिर वही कण्ठ-माधुरीका परिधान पाकर संगीतके नामसे अभिहित होती है। भगवल्लीला-रसके गायक, गीति-काव्यके कलित कलेवरमें भगवच्चरित्रके विधायक रसिक महानुभावोंके व्यक्तित्वमें भक्ति और काव्यकी आत्मा इसी रूपमें सम्पुटित होती है। दोनोंके ही मूलमें रस-प्राणता है। उनकी लीला-रसिकता भक्तिको और भक्ति-काव्यको प्राण-स्फूर्ति देती है। इस प्रकार दोनों एकरूप हो जाते हैं। भक्तका कवि और कविका भक्त बन जाना सहज सम्भाव्य हो जाता है। श्रीमैथिलीशरण गुप्तके शब्दोंमें—

> राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
> कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है॥

गो० श्रीहरिरायजी-सरीखे रसके धनी, पुष्टि-पथके आचार्य, इसी कोटिके 'रसिक' महानुभाव हैं, जो हरि-लीलाकाव्यको सहज रूपमें जगत्के समक्ष आविर्भूत कर रहे हैं। यह उनका प्रयास-साध्य काव्य नहीं, अपितु उनके हृदयमें सहज रूपसे अवस्थित लीला-रसका सहज स्फुरण है। नन्दनन्दन श्यामसुन्दरकी अगाध रूप-माधुरीसे जिनका हृदय रँगा-पगा है, उनके अमोघ रूपाकर्षणकी रज्जुमें जिनका मन बँधा-सधा है, वे भला अरसिक, काव्य-वञ्चित रहेंगे ? जिस प्रकार हरिका लीला-रस ही काव्य है, उसी प्रकार उनका जीवन भी तदाकार काव्यमय है। वे तो उसी क्षणसे काव्यमय हैं, जिस क्षणसे उनकी आँखें अपने प्रेष्ठ श्यामसुन्दरकी मदभरी, रसभरी चितवनके जादूसे सम्मोहित हो गयीं। उनके रूपाकर्षण, अङ्ग-अङ्गके सौन्दर्य, मोहिनी मुरलीके माधुर्यसे खिंचकर उनका गोपीभाव-विभावित हृदय उनके पीछे-पीछे जा लगा। देखिये, उनके ही शब्दोंमें किसी व्रजाङ्गनाका हृदय—

> लगाई संग तब तैं जब तैं मो मनु चितयौ इनि नैन।
> मोरमुकुट सिर धरैं बनमाल गरैं हरैं हरैं चलत दै सैन॥
> चितै चितै तिरछे नैननि करि अधर सुधा पूरत मधुर बैन।
> रसिक प्रीतम आधीन करी यों ज्यों मीन तलफत
> निसिदिन परत न क्योंहूँ चैन॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोरमुकुटकी लटक, वनमालाकी बिथुरन, रस-चेष्टाओंके साथ मन्द-मन्द गतियुक्त चितवन तथा बंक-अवलोकनिसे किसका मन मुग्ध-लुब्ध न हो जायगा ? बरबस उसके नेत्र उनकी लावण्यराशि और कान वेणु-निर्गत स्वर-माधुरीसे तादात्म्य पा गये। इस चितवनके जादूसे कौन बच सकता है ? फिर जब-तब नेत्रोंका मिलन ही उसके जीवनका आधार है। उसकी व्याकुलताका अनुमान कीजिये। नेत्र-मिलन और उसकी अवस्थाकी एक झलक—

जहाँ-तहाँ ढरि परत ढरारे प्रीतम तेरे नैन।
जे निरखत तिनके मन बस करि सौंपति है लै मैन॥

छिनु सनमुख चितै होत टेढ़ै एक कबहु अवस्था कबहु है न।
रसिक प्रीतम तातैं बिनु देखैं मो मन नाहिन चैन॥

'ढरारे' ही जो ठहरे! न जाने कब, किसपर, किस ओर ढर जायँ। नटखट, चञ्चल, चितचोर मोहन जिसपर चितवन डालते हैं; वह सदाके लिये उनके वश हो जाता है; फिर मनको अधीन करके वे अपने पास भी तो नहीं रखते। अपने चिर-सहचर मदनदेवको लेकर सौंप देते हैं। 'काम'— रस-मिलनकी उत्कण्ठा मनमें अनुपल जागरूक हो जाती है। फिर बेचैनीका क्या ठिकाना, उनके रूप-दर्शनके बिना चित्त पल-पल चञ्चल हो उठता है। उस रूप-मधुरिमाके आस्वादके लिये उसकी पगली आँखें आकुलित हो उठीं। रति-रससे पगी मीठी चाह एक तीखी टीस पैदा करने लगी। किंतु उसकी दृष्टिकी मर्यादा कुण्ठित हो रही है, चाहते हुए भी देख नहीं पा रही है—

गुरुजन लाज भरी अरी, हौं देखनि न पाऊँ।
जब मोहन चाहत मो तन तब नीची नारि करि जाऊँ॥
मनकी कहि न सकति काहू सों मनहिं माँहि अकुलाऊँ।
बिरह बाफ काढ़नि औरनि सों झूठे ही बतराऊँ॥
आवति है मन मेरी ऐसी सिगरी लाज गवाँऊँ।
रसिक प्रीतम सों प्रीति जोरी सो सखि कहाँ लौं दुराऊँ॥

गुरुजनोंकी लाज कितनी बड़ी बाधा है ? प्रियतमके दृष्टि-पथपर वह आ गयी है, दोनों ओर परस्पर दृष्टि-विनिमयकी आकाङ्क्षा बलवती हो गयी। चितवनोंकी सहज चञ्चलता आकुलित हो उठी। पर, यह क्या पलकें भारी हो रही हैं, उठते-उठते रह गयीं। कौन इन्हें रोक रहा है ? इधर प्रियतम क्षण-क्षण प्रेयसीके नयनोंके सम्मिलनकी उत्कट प्रतीक्षामें हैं। इधर वह भी चाहकर भी नैनजरें कर नहीं पा रही है। गुरुजनोंके प्रति लोक-मर्यादा, उनकी लाजका संकोच उसकी चितवनोंके मृदुतम तारोंपर पड़ रहा है। आँखोंसे उतरकर धीरे-धीरे यह लाजका भार सर्वाङ्गपर पड़ रहा है। वह गड़ी जा रही है, संकोचके मारे सिर नीचा करके रह गयी। कितनी विवशता है ? मनकी किसीसे कह नहीं सकती, भीतर-ही-भीतर अकुलाकर, तिलमिलाकर रह जाती है। अपने मनके मीत, उमड़ते हुए भावावेगको अधिक-से-अधिक गोपन करनेका वह प्रयास करती है। किंतु भीतर घुटते-सिटिते धुएँको किसी प्रकार बाहर तो निकालना ही पड़ेगा। दम घुटकर न रह जाय। अपनेको निर्विकार, निर्लेप-सी बताती हुई वह इसका भी उपाय ढूँढ़ लेती है। औरोंसे झूठमूठ ही बतराकर वह इस गुबारको भी हलका कर लेती है। 'विरह-वाष्प' जो ठहरा! कितनी मनोवैज्ञानिक चातुरी है ? किंतु यह तो अवसर टालनेकी-सी बातें हैं, समस्याका कोई स्थायी हल तो नहीं।

तब वह क्या करे ? सारी लोक-लाजके बन्धनोंसे विद्रोह कर दे ? मनमें तो बहुत कुछ ऐसी ही आ रही है। 'रसिक प्रीतम'की प्रीतिका गोपन भी तो एक विडम्बना है। कहाँतक छिपाये ? कितनी ही चातुरीसे रहे, वह अब इस नैसर्गिक प्रवाहको रोक भी तो नहीं सकती ? फिर उसके रोकनेसे भी क्या ? वह रसराज श्यामसुन्दर जो अनुक्षण पीछे लगा हुआ है।

रूपाकर्षण और अनुरागकी इस भरी-पूरी दशामें, मधुर-मिलनकी पल-पल प्रवर्द्धमान लालसा उसके अन्तरमें रह-रहकर जाग रही है। लोक-मर्यादासे भीत होकर वह जितना संयमका प्रयास करती है, उतनी ही अधीरता उसमें बढ़ती जा रही है। लोक-वेदकी विधियोंमें उसकी आस्था उठती जा रही है, लोक-परम्पराओंके प्रति विद्रोहकी चिनगारियाँ भड़क उठनेके लिये उतावली हो रही हैं। निष्ठा—संस्कारमें सटी हुई निष्ठा क्रम-क्रमसे डगमगा रही है। दर्शनकी उत्कण्ठा कितनी प्रबल है—

जो जैये तो लोकलाज रहिये देखनि न पैए री प्रीतमकों
जो रहिये तौ छिनहु रह्यो न जाइ हियौ मरि-मरि आवै।
यह दुख सहिये री, कैसे करि,
मनमें आवति ऐसी सुत-पति-गृह तजि भजिये री।
प्रीतमकों नचिये री, उघरि
'रसिक' प्रीतम जीवन तब रहै जब मिलै एकरस ह्वै हरि॥

कैसा धर्म-संकट उपस्थित है ? दोनों ओर जीवनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विडम्बना। लोकापवाद भी नहीं सहा जाता और प्रियतमसे 'नैन-सैन' किये बिना भी रहा नहीं जाता। जाती है तो गुरुजनोंके बीच पर-प्रीतिकी लाञ्छनासे जीवनभर तिल-तिलकर घुलेगी। घर रहती है तो एक क्षण भी रहा नहीं जाता। हृदय पीड़ाके आवेगसे उमड़ा आ रहा है। इस आन्तर-उन्मथनसे जीना भी दूभर हो जायगा। इस प्रश्नका सुखद हल 'सुत, पति, गृह तजि भजिए री, प्रीतमको नचिए री उघरि'के रूपमें निकालनेको आज उसका मन हो रहा है। अब वह ऐसे बिन्दुपर पहुँच चुकी है, जहाँ कोई भी आवरण, कैसा भी विवेक और मर्यादाका संतुलन, कैसा भी विचार-सामञ्जस्य उसके लिये अशक्य हो गया है। नेहकी निर्मल धाराके गम्भीर तलमें क्रमशः एकके ऊपर एक ऐसी कोमल-स्निग्ध भावनाओंकी तहें जमती जाती हैं, जो प्रगाढ़से प्रगाढ़तर होती हुई, अटल-अचञ्चल चट्टानोंका-सा रूप धारण कर लेती हैं, जो डिगाये न डिगेंगी, हटाये नहीं हटेंगी। यही उसकी सुदृढ़ आसक्ति है, अपने मनमोहनके प्रति। वह बढ़ती जा रही है, बढ़ती जा रही है। अब तो 'रसिक प्रीतम'से एकरस होनेमें ही उसकी परमावधि, परम कोटि है। उसकी आसक्ति क्रमशः तादात्म्यकी ओर गतिशील है, देखिये तन-मनकी लगनको।

लगन मन लागी हो लागी।
कहा करैंगे गुरुजन मेरै हौं प्रीतम रस पागी॥
जब तैं देखी नैंननि भरि करि चित्त ठौर और सब बिसर्यौ
स्याम किसोर रूप-रस पागी।
कछु न सुहाइ जाइ मन न कहूँ ऐसी बनि आई अनमाँगी।
अब घरियत चित आसपास रहिये कब रसिक प्रीतम सरस पागी॥

'लागी हो लागी' शब्दोंमें मानो वह गम्भीर उद्घोष कर रही है। प्रियतमके रसमें पगकर वह अब गुरुजनोंकी भी चिन्ता नहीं करेगी। उसका चित्त तो अब एक ही बिन्दुपर—रूप-रसमें केन्द्रीभूत हो गया है। एकात्मभाव ही तो प्रेमकी पूर्णतम परिणति है। पूर्ण विलय, अविचल प्रपत्ति ही स्नेहके, प्रीतिके और भक्तिके पोषक प्राण-तत्त्व हैं। इसीलिये 'जब तैं देखी नैननि भरि करि चित्त ठौर और सब विसरयौ' की स्थितिमें वह आ पहुँची है। एक ही 'रसनिधि' में आकर सिमिट गयी है—समाहित हो गयी है। यदि प्रसंगवश किन्हीं क्षणोंमें अन्यत्र चित्त जाता भी है तो सहसा उचटकर लौट आता है। ऐसी अनमाँगी मनकी स्थिति बन पड़ी है। सोते-जागते, अहर्निशि उसकी रूपासक्ति अनुक्षण तरंगित हो रही है। उसकी गति-मतिमें तीव्रता बढ़ती ही जा रही है। रू[illegible] प्यास, मिलनकी आस उसके तन-मनको जैसी कसक[illegible] है, वही जानती है। श्यामसुन्दर प्यारेके मादक रूपकी [illegible] झलक उसके सपनोंमें भी उतरकर उसे मद-विभोर बना[illegible] है—देखिये।

दीनों दरस सुपनेमैं आई।
छिनु एक सुख उपज्यौ मेरे मन गयो कहाँ हरि बिरह बढ़ा[illegible]
हा हा पाई परति हौं तेरैं क्यों हू करि लावै न बु[illegible]
अब न परत मोपै रह्यौ छिनु छिनु भेटें जिय अति अकुला[illegible]
यह दुख कहा कहौं सखि तो बिनु मेरे तू ही एक सह[illegible]
कहा बिलँब मुकरत जैबे कों तासों सहते सखी सौहैं ख[illegible]
वह मूरति गड़ि रही हिएमें निकसत नाहिन और उ[illegible]
उठिए है सुनि बिनती मेरी जसुमतिसुत 'रसिकन'के [illegible]

स्वप्न-दर्शन और उसकी तीखी संवेदनाका कि[illegible] सुन्दर निरूपण है। रूप-रसकी छकी, मादक मोहिनीसे [illegible] गोपाङ्गना अपने हृदयको अपनी अन्तरङ्ग सहेलीके समक्ष [illegible] कर रखे दे रही है। कितनी विलक्षण रसानुभूति है कि [illegible] क्षणका वह सुखद संयोग चिरकालका विरह-संताप दे गय[illegible] कैसे रहा जायगा उससे, उस रस-माधुरीको पाये बिना[illegible] वह सुनहले सपनोंके झीने-झीने आवरणमें पा चुकी है, आल[illegible] ले चुकी है। जी अकुला रहा है, उन्मथित, व्यथित [illegible] लालसाएँ उनके मनको आलोडित-विडोलित कर रही हैं। उस[illegible] प्यारी सखी उसकी मनुहारको मान ले और चली ज[illegible] 'जसुमति-सुतके समीप उसकी पुण्य-विनयको लेकर—यही [illegible] चाह रही है। उसे पूरी निष्ठा है अपने प्यारेमें कि वे उस[illegible] संदेश पाकर, उसकी वियोग-पातीको पढ़कर, तत्क्षण आ[illegible] उसके प्यासे नयनोंको, उसके तपते-झुलसते प्राणोंको शी[illegible] करेंगे। उसकी नस-नसमें व्यापी प्रणय-व्याधिका क्या यह [illegible] उपचार है? इसलिये तो वह हा हा खाकर, पैयाँ पड़क[illegible] 'सौंहैं खा कर' उसे प्रियतमकी ओर प्रेरित कर रही है[illegible] हृदयमें गड़ी हुई श्याम-सलोनेकी मूर्ति कैसे भी आँखोंके [illegible] सजीव नाच उठे, इस समग्र संयोजनका यही अभीष्ट है[illegible] कहती है—

अरी माई देखनि की मोहि चाह पिय के बदन की,
मेरो सलोनौ नाँह।
फरकत आँख बाँई अधरा उफरत,
अरु फरकत बाँई बाँह॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिनहु न बिसरत है आली,
मेरे बसत सदाईं हिय माँह ।
'रसिक' प्रीतम जब देखिहौं नैननि,
तब सुख ह्वैहै री छत्रछाँह ॥

उस 'सलोने' नाँहसे मिलनेके आज कितने मङ्गल शकुन हो रहे हैं ! वाम अङ्गोंका स्फुरण अवश्य ही उसके आगमन—भेंटका सूचक है । तत्तदङ्गोंके रस-विषयोंकी उपलब्धि अवश्यंभावी है । विदित होता है, वे प्यासी अकुलाई, अलसाई आँखें चिर-वाञ्छित रूप-माधुरीके रससे आज आप्यायित होंगी । अधरोंके रस-दानसे युग-युगकी तृषा बुझेगी, हृदयका सारा सुधा-स्रोत इन अधरोंके तटोंपर ही जो उमड़ आनेवाला है, स्नेहका अतल रस-निधि आज इन्हींमें बाँध लिया, साध लिया जायगा । फिर अङ्ग-अङ्गका आश्लेष, सुदृढ़ भुजबन्धनोंमें सदा-सदाके लिये समग्र अङ्ग-सङ्गके साथ आकुञ्चन कितना मादक, मधुर है । कल्पना नहीं होती, तबतक जबतक कि नयनोंके आगे 'वह' अवतरित नहीं हो जाता । यों हृदयमें तो वह अनुक्षण बसा ही है ।

किंतु, एक बारके नेत्र-मिलनके अनन्तर तन-मनकी क्या गति होगी, इसे भी कोई भुक्त-भोगी ही अनुमान कर सकती है । उस रससे वञ्चित हृदयमें कितनी आर्ति, कितनी पीड़ा बिखर रही है; किसी रस-मदनाके शब्दोंमें ही अनुभव कीजिये—

देखि क्यों मन राखि सकै री ।
उह मुसुकनि उह चालि मनोहर अवलोकत दोउ नैन थकै री ॥
जिनको अनुभव कबहूँ नाहीं ते घर बैठी न्याउ बकै री ।
जिनन सुनी मुरली उहि काननि ते पंछी मृग पशु बिथकै री ॥
बिन देखै अब रह्यौ जात नहिं सुंदर बदन कुटिल अलकै री ।
'रसिक' प्रीतम यह भई अवस्था जे हरि रूप निरखि अटकै री ॥

'उनके संदर्भमें मुसकनि, चलनि, अवलोकनिका स्वारस्य कैसे अभिव्यक्त किया जा सकता है । नेत्रोंकी परवशता कहते नहीं बनती । 'स्वसंवेद्य' वस्तु भी क्या वाणीका विषय है। विधि-निषेध, नीति-मर्यादाकी बातें उसके लिये कोरी बकवास है । रूपका जादू जिनपर चल चुका है, वेणु-माधुरीके रसमें जिनका मन बँध गया है, विंध गया है, खग-मृग आदि वनचरोंके मनकी गतिकी तरह जो उसमें विथकित, विजडित हो गये हैं, ऐसे गोपाङ्गनाओंके हृदय भला कैसे धीर, गम्भीर, संयत, स्वगत रह सकते हैं । 'सुन्दर बदन' की 'कुटिल' अलकोंमें वे तो अटक-अटक कर रह जाते हैं । 'रसिक प्रीतम'के मधुर-मिलनसे वञ्चित उन हृदयोंकी वियोग-वेलाके क्षण कितने असह्य हैं, इसे एक पदमें देखिये—

लाल यह बिछुरन सह्यौ न जाइ ।
जानि न पर्‌यौ रहत ढिंग मोकों अब मन अधिक दुखाइ ॥
धीरज रहै नहिं चैन नैननिकों फिरि फिरि चित पछिताइ ।
मिलिबौ कठिन मोहिं सूझत है तन तो डारत विरह जराइ ॥
भूलैं क्यों वे बात रावरी चलत कही मुसकाइ ।
'रसिक प्रीतम' कीजै करुना जो भेंटों अंग लगाइ ॥

वियोगका आवेग बढ़ रहा है । विरहकी ज्वाला उसके अङ्ग-अङ्गको जलाये दे रही है । प्रियतमके नित्य, निरवधि मिलनके क्षणोंमें वियोग कितना तीखा होता है, उसमें कितनी दाहकता है, इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी । आज वह इस पीड़ाको परख सकी । रह-रहकर पछता रही है, यह सब क्या हो गया, क्यों और कैसे हो गया ? रूप-दर्शनके लिये आँखोंकी प्यास, प्रीति-रीतिके लिये हृदयकी आकुलता । सभी प्रकारसे वह अधीर है । अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्यारेके वियोगमें जल-जलकर राख हुआ जा रहा है । सह लेती वह, इस सारे आवेगको, यदि उसकी कोई मर्यादा, उसके पानेकी अवधि होती । पर जब 'मिलिबौ कठिन मोहिं सूझत है,' यह चिन्तन करने लगती है तो वह निराश अन्धकारमें खोई-सी रह जाती है । उसे वह दर्दीली, गम्भीर घड़ी याद आ जाती है, जब कन्हैयाने जाते समय मुस्कानभरी वाणीमें वेगि ही लौट आनेका आश्वासन दिया था । 'रसिक प्रीतम'की करुणापर विश्वास करनेका यही उसके पास एक क्षीण-सा आधार है । 'भेंटों अंग लगाइ' की कामनाका इसीलिये वह आज साहस कर रही है । सर्वाङ्ग आश्लेष ही उसके देह-व्यापी विरहकी तपनके शमनका उपचार है । विरहकी तीव्रता, उसके उपायका एक और संकेत वह स्पष्ट-स्पष्ट रख रही है, जिसमें उसके इस विरह-ज्वरका निरूपण, विश्लेषण है—

बिरह ब्याप्यौ मेरे सब अंग ।
सीतल बृथा उपाय करत क्यों, काट्यौ मैन-भुजंग ॥
जो पाऊँ तौ कहौं उतारै, वह तो सखा अनंग ।
सदा जिआवति ही सो तौं अब रही सुधा हरि संग ॥
मुरली मंत्र सुनायो काननि बेंदुक स्यामा मंग ।
अपनी जानि जाहि हे सजनी जाकी होइ अरधंग ॥
हौं तौ परगुन कौ चलि कैसे सब विध भई अपंग ।
रहे प्रान तो हरिमुख देखौं, 'रसिक' नहीं तो रंग ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कास्यो मैन-भुजंग', अब कहिये, इस सर्प-दंशनकी विष-ज्वालाको नस-नसमें लहर-छहर रहे जहरको कौन उतार सकता है, सिवा उस 'नैन-मीत, साँवरेके ! कारे'की डसनका निरसन 'कारा' ही कर सकता है। श्यामसुन्दरको संयोगवश इन क्षणोंमें पा ले, तो वह इस विषको उतारनेको कहे, अनंग-सखा कृष्ण अपने ही मित्रकी दी हुई पीरका निश्चय ही निवारण कर देंगे। वह अमर संजीवनी तो हरिके साथ गयी, जो अनुपल कोटि-कोटि जीवनदानका सुख प्रदान किया करती थी।

आज तो श्यामसुन्दर उससे इतनी दूर चले गये हैं कि वह संजीवनी, कभी उसे अधिगत हो सकेगी, कौन जाने ·· वही संजीवनी जो उन्होंने अङ्ग-अङ्गसे समेटकर, अनङ्ग-अङ्गके निचोड़रूपमें अपनी वंशीमें—वंशीके एक-एक स्वरमें सँजो रखी है। जिसका एक-एक स्वर विरहिणियोंके कानोंमें संजीवन-मन्त्र बनकर आता है और इसी संजीवन मन्त्रका प्रतिरूप, प्रतीक-भावनासे मानो वृषभानुनन्दिनीके 'बैंदुक' में बंदी है। श्यामा-श्याम दोनों ही उसकी रस-मोहिनीसे परस्पर मुग्ध हैं। 'अर्द्धाङ्गिनी जो ठहरी, उन्हें अपना समग्र रस-तत्त्व उन्होंने सौंप रखा है। एक वह अभागिनी, वञ्चिता है, जो स्वगुण, अपने आराध्य प्रियतमसे विलग होकर अपनी जीवन-गतिमें लड़खड़ा रही है—अपङ्ग और अपरूप होकर निष्प्राण-सी—निश्चेतन-सी विलख रही है।

वियोगकी जितनी अवधि बढ़ रही है तादात्म्य उतना ही प्रगाढ़ होता जा रहा है। उसकी तन्मयताकी पराकाष्ठाका थोड़ा आभास लीजिये—

सालति पियकी बदन निहारि।
सूकि गई ठाड़ी ज्यों अनल लपट सुकुमारि॥
पलक न परै सीस नहिं डोलै चरन चलै न बिचारि।
कहि न सकी, मनकी बतियाँ कछु रही बिरह मन मारि॥
भई दसा ज्यों चित्रपूतरी सकी न बसन सँभारि।
'रसिक' प्रीतम बिछुरत तिय जियकी दीनी प्रीति उघारि॥

कितनी एकरस-एकरूपता है, किसीमें खोयी-सी—अपने आपमें, अपने भीतर समाये हुए, रग-रगमें विलसित 'प्रिय' में भूली-सी।

कितने विलक्षण सात्त्विक भाव हैं। विरहकी ज्वालमें वह सुकुमारी खड़ी-की-खड़ी सूखी जा रही है, जली जा रही है वियोगकी लपटोंमें। उसके सौकुमार्यके साथ उसके नवयौवनकी सहज सुलभ कोमलताकी कल्पना कीजिये, जो किसी सुकु गुलाब-पुष्पकी स्निग्धता और झीनी-झीनी, भीनी-भीनी मह महकके मोहक आवरणोंमें सिमिटा हुआ हो। वह तो किसी तापसे ही कुम्हला सकता है, फिर आगकी लपटोंमें पड़कर भला क्यों न जलेगी ! कराल ज्वाल-मालाएँ वियोगकी अ शिखाएँ, वनमें लगे किसी दावानलकी ही तो तरह हैं, हरी-भरी वन-राजिको देखते-देखते भस्मसात् कर देती है।

इसी तीखे गहरे वियोगकी प्रतिक्रिया है कि उसमें धी धीरे जडता प्रवेश करती जा रही है, उसके अङ्ग-अङ्गमें उसकी प्रत्येक अङ्ग-संचालनकी प्रक्रियामें। 'पलक न परै सीस नहिं डोलै, चरन चलै न विचारि' में उसकी छा गहरी अनुभूति और उसका क्रमिक प्रभाव स्पष्ट है। यही 'चित्रपूतरी' का रूप है, जो अपनी छायासे, किसी कुश कलाकारकी रेखाङ्कित तूलिका छबिसे अपनी व्यथ अपनी विवशता, प्रत्यङ्गमें पली पीडाका आभास भर सकती है, परंतु जिसकी अभिव्यक्तिमें उसकी वाणी कुण्ठि है। किंतु वह अब अपने साहजिक, प्रकृतरूपमें आ गयी है जिससे उसके भाव-गोपनकी क्षमता भी उसमें नहीं रह गई है। भले ही वह आज 'कहि न सकी मनकी बतियाँ कछु और 'रही बिरह मन मारि' की स्थितिमें हो, किंतु 'रसिक प्रीतम बिछुरत तिय-जियकी दीनी प्रीति उघारि'के अवश्यम्भा परिणामको नहीं रोक सकी। चरम वियोगमें आत्मगोपनक कृत्रिम प्रयास नहीं टिक सकता। फिर तो 'चित्रपूतरी' ठहरी उसका अपनेपर कोई संयम नहीं, कोई अनुशासन नहीं

यह सारा दोष वह अपने नेत्रोंके माथे मढ़ रही है। हृद और नेत्रोंमें जो आन्तर संघर्ष छिड़ता है, इस मानवकी नेह नगरीमें, अन्ततः नेत्र ही उसमें विजयी होते हैं। 'प्यारक दुनियाँ' में यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। 'गुप्त प्रीति' नयनों के द्वारा बाहर आ जाती है—

राखति ही पिय प्रीति गुपुत इनि नैननि ही हो दई उघारि।
देखनि लगी बदन छबि इकटक सबहिनमें घूँघट पटो बिसारि।
लुटि गयी सकुचि कुटिल कच देखत सहचरि सिगरी रहीं बिचारि।
'रसिक' प्रीतम तुम हौ मनमोहन फेरि फेरि फिरि हौं रही पचिहारि।

स्पष्ट अभियोग है, खुला आरोप है। 'इनि नैननि ही द उघारि।' क्या उसने चाहा था कि वह उन प्रियतम श्याम सुन्दरकी 'बदन-छबि' को इकटक देखती रहे ? कदापि नहीं, उसके नेत्रोंने उसे विवश किया। गुरुजनोंकी बाँधी हु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घूँघट-पटकी मर्यादाको भी इन्हीं नेत्रोंने एक ओर उठाकर रख दिया। प्रियतमके रूपका आकर्षण, सौन्दर्य, माधुरी ही ऐसी है। अभिन्नताकी परमकोटिमें प्रिय-प्रियतमके बीच कोई व्यवधान रह भी तो नहीं सकता। एक रूप दूसरेमें उतर रहा है, समा रहा है, आँखोंके द्वारा हृदयमें मनमोहनकी कुटिल अलकावलियोंने उसके संकोचकी परिसीमाको, शील और मर्यादाके कठोर कगारोंको ढा दिया, छिन्न-भिन्न कर दिया। लोग देखते हैं, आखिर इसे हो क्या गया है! सहचरियाँ उसके इस दुस्साहसको, शिष्टाचारकी मानी हुई परम्पराओं और सन्नारियोंके आचरणके तथाकथित प्रतिमानोंके प्रति निःसंकोच विद्रोहको देखकर चकित रह जाती हैं।

बस, यही तादात्म्यकी परमावधि है। रूपाकर्षण, अनुराग, आसक्ति आदि और विरहकी विभिन्न क्रम-कोटियोंको पार करता हुआ उसका प्रेम परिपक्वता—पूर्ण परिपाकको पहुँच रहा है, तादात्म्य उसका अन्तिम सोपान है। यहाँ गोपाङ्गनाके हृदयको लेकर उसमें प्रणयकी पूर्ण सिद्धि बतायी है भक्त, कवि आचार्योंने। साधन ही साध्य-फल जहाँ हो जाता है, वही वास्तविक भक्ति है, पुष्टि है।

श्रीहरिरायजीने इसी पुष्टि-भक्तिका आदर्श भावुकोंके समक्ष रक्खा है। वे जहाँ भक्ति-भावनाके विधायक हैं, वहाँ स्वयं एक साधक गोपी-हृदय हैं; जो भक्ति-काव्यके अनुगायन, अनुचिन्तनसे साधनाकी उच्च कोटियोंमें पहुँचकर साध्यके साथ एकात्मभाव पाते हैं। अपनी 'रसिक-प्रीतम'से एकरसता पाकर उनका गोपी-भाव पूर्णतः प्रतिफलित होता है।

# आर्य-संस्कृतिका गौरव

( रचयिता—श्रीशिवकुमारजी सूद बी० ए०, बी० टी० )

१

महाभारतके युद्धके पूर्व,
एक दिन,
ऋषिवर्य वेदव्यासने,
अर्जुनको
बुलाया,
अपनी पर्णकुटीमें।
प्रणतानन हो
अर्जुनने पूछा—
"त्रिकालज्ञ महर्षे!
क्यों बुलाया इस सेवकको,
कहो, क्या आज्ञा?
शिरोधार्यकर,
पालन करूँ उसका।"
त्रिकालद्रष्टा महर्षि
कह उठे—
"वत्स! भावी 'महाभारत'में,
अठारह अक्षौहिणी सेना,
कालका कराल ग्रास
बनेगी।
यदि उसकी विजयश्रीका
श्रेय प्राप्त करना है,
तुम्हीं लोगोंको,
तो मेरे एक आदेशका
पालन करना है।
शक्ति-संचयके लिये,
तपोमय जीवन-यापनके लिये,
संसारकी कोलाहलमयी,
दुराकर्षणोंसे भरी,
नगरीको छोड़कर,
जीवनकी कृत्रिमताओंसे
अलिप्त रहकर,
कामकी
विनाशकारिणी वासनासे
विमुक्त होकर,
प्रकृतिके प्रांगणमें,
किसी सुरम्य वनस्थलीमें,
अकेले तुम्हें
रहना होगा।"
"जो आज्ञा," महर्षे!
ऋषिवर्यका
आशीर्वाद ले,


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथानिर्दिष्ट मार्गपर
चल पड़े अर्जुन ।

२

सुरम्य तपोवन,
फलित-पुष्पित,
पादपोंसे शोभित,
मन्द-मन्द प्रवाहिणी,
पयस्विनीका
मधुर कल-कल कलरव,
प्रकृतिकी इस
अपूर्व रामणीयकतामें,
नदी-तटसे कुछ दूर
पर्णकुटी थी
अर्जुनकी ।
आहार-विहारमें,
स्वप्नावबोधमें,
कर्मोंमें
युक्तताका पालन करते हुए,
अर्जुन अपना
तपोमय जीवन
समोद
करने लगे यापन ।

३

कुछ वर्ष इसी भाँति
गये बीत ।
एक दिन
अरुणोदयकी
अनुपम बेलामें,
अर्जुन कुटियासे
बाहर आये ।
प्राकृतिक छटाका
आनन्द लेते हुए
नदीकी ओर चले ।
इन्द्रप्रेषित,
अर्जुनके
परीक्षणार्थ,
देवलोककी
सुन्दरी उर्वशी,
रूपलावण्यकी जो
साकार प्रतिमा थी,
उधर ही आ गयी ।
देखते ही अर्जुनको
मन्त्र-मुग्ध हुई ।
सुगठित शरीर था
उसका,
मुखपर अमित तेज था,
अप्रतिम कमनीय रूप था,
अपलक नेत्रोंसे
उसके सर्वातिशायिनी
सौन्दर्यकी
माध्वीकताका
रसपान करने लगी,
लता-विटपकी ओट हो
यथापूर्व अर्जुन,
अपनी कुटियामें,
स्नानादि प्रातःकृत्य कर
चले आये ।
ईश्वरके भजनमें,
योगके अनुष्ठानमें,
मग्न हो गये ।

४

निरभ्र आकाश था,
पूर्णिमाका
मन्जुल मादक मयंक
सुरभित समीरका
सर्वतः
सोन्माद संचार था।
निशीथकी उस वेलामें,
सर्वत्र नीरवताका
साम्राज्य था ।
प्रेमकी पुजारिन बन,
अर्चनाके ले सुमन,
सर्वाभरणालंकृता वह,
अलस-पलकसे,
सघन अलकसे,
अमल कमल—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रुत नयन झुकाके,
चहल चरणोंसे
अर्जुनकी
पर्णकुटीतक
आ पहुँची।
कुटियाका
बंद द्वार था।
धीरेसे खटखटाया उसे,
समाधिस्थ अर्जुनकी
समाधि हुई भग्न,
कुछ सशङ्कित हुए पर
कुछ सँभल गये मगर।
पूछा, "कौन ?"
"द्वार खोलो",
मिला उत्तर।
निशीथकी निस्तब्धतामें,
नारीका शब्द सुन
सावधान हुए अर्जुन।
खोला द्वार,
देखते ही
नतमस्तक हो गये,
मन-ही-मन प्रणाम किया।
बोले, "कहो देवि !
इस असमयमें क्यों
आना हुआ ?
कोई विपत्ति आन पड़ी,
अथवा,
किसी निशाचरसे पीड़ित हुई,
आदेश दो मुझे,
क्या अभिलाषा तुम्हारी
पूर्ण करूँ मैं।"
"अपने इस
स्वर्गीय सौन्दर्यको,
यौवनकी
मादकताको
तपोमय कठोर जीवन बिता
क्यों कर रहे नष्ट हो।"
"स्पष्ट बतलाओ, देवि !
चाहती क्या हो ?"
"हृदयमें चिर संचिता,
एक है अभिलाषा।
पूर्ण कर देते,
जीवनभर मधुरस्मृति
तुम्हारी,
बनी रहती।
तुम्हारे जैसे ही
गुण रूप बलमें
पुत्ररत्नकी,
'माँ' बननेकी
थी मेरी अभिलाषा।"
"तो मातेश्वरि, यदि
पुत्रेच्छा बलवती है इतनी,
तो क्यों न पुत्र रूपमें
स्वीकार कर लेती मुझे।
मुझे भी गर्व होगा,
मेरी भी पूजनीया माता,
सौन्दर्यकी
प्रतिमा होगी साकार।"

५

इतना कहना था,
देवोंने गद्गद हो,
अर्जुनपर सुमनोंकी की वर्षा
उर्वशीने आशिष दी,
जबतक तुम जैसे,
आदर्श वीर,
धर्मवीर और कर्मवीर,
इस धरा-धामपर
विद्यमान हैं,
तबतक कर सकता कौन
इसका प्रणाश है।
देवोंसे प्रेषित मैं,
आयी थी
परीक्षणार्थ,
हुए सफल तुम
इस परीक्षामें,
जाओ वीर, अर्जुन
[illegible], नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी माताका,
आशीर्वाद है—
इस भारत युद्धमें
विजयश्रीका
श्रेय तुम्हींको,
तुम्हारे जैसे ही,
आदर्श वीरोंको ।''
अतशः नमन हो
माँ भारतीके
इन वीर सपूतोंको ।

६

पुरातन आर्य-संस्कृतिके,
जितने भी आदर्श मिलें,
ग्रहणीय तत्त्व मिलें,
अनुकरणीय उपदेश मिलें,
ग्रहण कर उन्हें,
जीवनमें हम लें उतार ।
अधुनातन भारतका
तब निश्चय ही,
होगा उद्धार ।
इस आदर्श
आर्य-संस्कृतिको,
नमन हो,
बार-बार ।

# रामायण और राम-कथाकी सार्वभौमिकता

( लेखक—श्रीनर्वदाप्रसादजी वर्मा )

प्रायः रामायणके बारेमें सभी लोग कुछ-न-कुछ जानते हैं और यह सर्वविदित है कि रामायण उसी ग्रन्थको कहते हैं जिसमें राम-कथाका वर्णन हो—जिसमें श्रीरामका यशोगान किया गया हो । इस न्यायसे सभी संस्कृतियोंमें राम-कथा पायी जाती है । सभी धर्म और सम्प्रदाय मानवताके ऊपर ही अवलम्बित हैं तथा कोई भी धर्म या सम्प्रदाय बिना मानवके चल ही नहीं सकता । इस न्यायसे संसारके सभी धर्मोंमें बीजरूपसे मानवता ही निहित है तथा पूर्ण मानवतामें ही पूर्णता निहित है । मानवकी चाह संसारको भी है और ईश्वरको भी । अन्तर केवल इतना ही है कि संसार अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिये मानवकी चाह करता है और ईश्वर मानवके कल्याणके लिये करता है । यथा—

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥**

( गीता १८ । ६६ )

अब प्रश्न यह होता है कि क्या मानव किसी आकृति या जातिविशेषका नाम है ? तो कहना होगा कि मानव किसी आकृति या जातिविशेषका नाम नहीं है । साधनयुक्त जीवन ही मानव-जीवन है । साधनहीन जीवन पशुजीवन है— **'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति'** साधनके [illegible] जीवन दिव्य चिन्मय और पूर्ण जीवन है । दिव्यता चिन्मयता पूर्णता प्रत्येक मानवकी चाह है । यह सबको मान्य है । परंतु प्रत्येक साधककी माँग वस्तुतः एक होते हुए भी साध्यमें भिन्नता प्रतीत होती है और यह भिन्नता तभीतक प्रतीत होगी जबतक कि साधक विवेकपूर्वक अपनी वास्तविक आवश्यकताको नहीं जान लेगा; क्योंकि साधक अपनी अविवेकसिद्ध कामनाओंसे अपनी वास्तविक आवश्यकताको ढके रहता है। यद्यपि वास्तविक आवश्यकताका कभी नाश नहीं होता, परंतु विवेकका अनादर साधकको अवास्तविक कामनाओंमें आबद्ध कर वास्तविक आवश्यकतासे विमुख कर देता है ।

प्राकृतिक नियमानुसार मानवमात्र साधक है, क्योंकि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसमें करने, जानने और माननेकी रुचि न हो । प्रत्येक मानव कुछ-न-कुछ करना चाहता है और उसका किसी-न-किसीमें विश्वास भी है । जो कुछ भी करना चाहता है, वह किसी-न-किसी विधानको अवश्य स्वीकार करता है । विधानके अनुसार की हुई प्रवृत्ति ही कर्तव्य है ।

साध्य वही है जिससे देश-कालकी दूरी न हो अर्थात् जो सर्वत्र और सर्वदा सत्य हो; वही साध्य है । किसी भी साधकका साध्य वह नहीं हो सकता जिसकी प्राप्ति सम्भव न हो और उसको भी साध्य नहीं कह सकते जो उत्पत्ति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाशयुक्त या असत् हो। साध्य वर्तमान जीवनकी वस्तु है, उसके लिये भविष्यकी आशा प्रमाद है। साध्यको पाकर फिर कुछ और पाना शेष नहीं रहता; क्योंकि साध्यकी प्राप्ति समस्त अभावोंका अभाव कर साधकको वास्तविक जीवनसे अभिन्न कर देती है। यद्यपि साधन-तत्त्व एक है परंतु उसमें अभिन्न होनेके लिये व्यक्तिगत साधन अनेक हैं; किंतु इसका अभिप्राय नहीं है कि उन अनेक साधनोंमें एक दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है, सभी साधन किसी-न-किसी रूपमें साध्य-तत्त्वकी ओर गतिशील होते हैं, परंतु परिस्थिति-भेदसे जो साधनमें भिन्नता प्रतीत होती है, वह भिन्नता जब साधकका जीवन 'साधन' हो जाता है तब अपने-आप मिट जाती है और फिर अनेक साधन एक होकर साध्य-तत्त्वसे साधकको अभिन्न कर देते हैं। इस दृष्टिसे साधन अनेक भी हैं और वस्तुतः एक भी। प्रत्येक साधककी आन्तरिक प्रेरणा एक है और उसके बाहरी स्वरूप अनेक हैं। यह रहस्य जानना जरूरी है।

प्रत्येक दर्शन साधनकी भूमि है। दार्शनिक भेदसे भी साधनमें भेद है, किंतु साध्यतत्त्वमें कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्रमें विलीन होकर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार समस्त भेद साध्य-तत्त्वसे अभिन्न होकर एक हो जाते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि जब सबका साध्य एक है, तब विभिन्न मत-सम्प्रदाय क्यों है ? तो कहना होगा कि प्रत्येक सम्प्रदाय, मत और वादकी उत्पत्ति व्यक्तिगत तथा समाजकी भूलोंको मिटानेके लिये होती है। किसी भी अच्छे मत तथा वादका जन्म अपने और दूसरोंके अहितके लिये नहीं है, अपितु व्यक्तियोंका कल्याण तथा सुन्दर समाजका निर्माण ही सभी मतों तथा वादोंका मुख्य उद्देश्य है। प्रत्येक मत तथा वाद साधन-दृष्टिसे [ रुचि, अधिकार, परिस्थितिके अनुसार ]आदरणीय तथा माननीय हैं, किंतु उनकी ममता व्यक्तियोंको पागल बना देती है। जिस प्रकार औषधका सेवन आरोग्यके लिये है, ममताके लिये नहीं, उसी प्रकार मत तथा सम्प्रदाय आदिकी अपेक्षा परिस्थितिके अनुरूप अपनेको सुन्दर बनानेमें है, परस्पर संघर्षके लिये नहीं। यह बात बड़ी विचित्र-सी मालूम होती है कि लोग अपने-अपने मत तथा वादकी प्रशंसा तो करते हैं, किंतु उससे अपनेको सुन्दर नहीं बनाते हैं और इस प्रमादसे न तो वे अपना कल्याण कर पाते हैं और न सुन्दर समाजका निर्माण ही। अतः मत, वाद तथा सम्प्रदायकी आवश्यकता अपनेको सुन्दर बनानेके लिये है, मताग्रहको लेकर प्रचारके लिये नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनेको सुन्दर बनानेके लिये किसी-न-किसी मत और वादको अवश्य अपनायेगा। आंशिक एकता भी किसी-न-किसी रूपमें सभीके साथ रहेगी। जिस प्रकार सभीकी भूख और तृप्ति एक है, किंतु भोजनमें भेद है उसी प्रकार प्रत्येक मत तथा वादकी साधन-प्रणालीमें एकता और भेद दोनों हैं। परंतु जबतक मानव अपने मत, सम्प्रदाय एवं वादके अनुसार अपनेको सुन्दर बनाकर उसकी सीमासे अतीत न हो जायगा, उससे परे फलस्वरूप जीवन न प्राप्त कर लेगा, तबतक उसके जीवनमें यथार्थ रूपसे पूर्णताका प्रादुर्भाव न होगा। इस दृष्टिसे सम्प्रदाय, मत और वादकी आवश्यकता एकमात्र अपनेको सुन्दर बनानेके लिये है, यह निर्विवाद सिद्ध है। व्यक्तिगत रुचि तथा योग्यता और सामर्थ्यका भेद होनेपर भी वास्तविक उद्देश्य मानवमात्रका एक है—पूर्ण, नित्य सत्य स्वरूपानन्दकी प्राप्ति। इसके लिये मानवमें परिपूर्णतम सर्वलोकोपकारी आदर्श चरित्रकी आवश्यकता है। चरित्र-निर्माण मानव-जीवनमें एक महान बल है। उसकी आवश्यकता मानवमात्रको है। उसके बिना मानव मानव नहीं हो सकता। वीतराग होनेमें ही चरित्रनिर्माणकी पराकाष्ठा है और वीतराग होनेमें ही पूर्ण मानवताका विकास सम्भव है। चरित्रनिर्माणमें ही अपना कल्याण तथा समाजका हित है। इस दृष्टिसे चरित्र-निर्माण जीवनका आवश्यक अङ्ग है।

चरित्र-निर्माण वास्तवमें अन्तःप्रेरणा है; क्योंकि किसीको भी चरित्रहीनकी आवश्यकता नहीं है। इस दृष्टिसे समाजको एकमात्र चरित्रवान् व्यक्तिकी ही आवश्यकता है। अपनी सम्पूर्ण निर्बलताओंको मिटानेके लिये सच्चरित्रता ही समर्थ है। किंतु मानवका चरित्र कैसा क्या होना चाहिये, तथा वैसा चरित्र किस प्रकार प्राप्त हो, इसे यथार्थरूपसे जाननेके लिये ही रामचरित्रकी आवश्यकता है; क्योंकि श्रीरामका मानव-चरित्र सबके लिये अनुकरणीय है। वैसे तो दो महान् अवतार मानवावतार हुए हैं। एक राम-अवतार, दूसरा कृष्ण-अवतार, किंतु श्रीकृष्णका अवतार सहज ही समझमें नहीं आता; क्योंकि उनकी सारी लीला ईश्वर-लीला ही रही। श्रीरामकी लीला ईश्वर-लीला होते हुए भी पूर्ण मर्यादित मानवचरित्रमें हुई। इसीसे वह मानव-मात्रके लिये अनुकरणीय हुई और समझनेमें भी बड़ी आसान मालूम पड़ती है। श्रीरामका जीवन मानवमात्रके जीवनसे घुला-मिला होनेके कारण सबको अधिक प्रिय है और आसानीसे समझमें आ जाता है।

रामचरित्र दर्पणके समान है, उसमें मानव अपने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भव्य चारुचित्रको देखता है। ऐसा न होता तो एक ही रामके सम्बन्धमें अनेक मत न होते। एक ही रामका स्वरूप प्रेमियोंको प्रेमास्पद, तत्त्ववेत्ताओंको आत्मस्वरूप, असुरभावापन्न देहाभिमानियोंके लिये मृत्युके रूपमें प्रतीत होता है। यदि कोई कहे कि श्रीरामका रूप क्या है तो उसे कोई क्या कहे ? जैसा देखनेवाला, वैसा ही रूप। अतः राममें सौन्दर्यका दर्शन करनेके लिये अपनेमें सौन्दर्यकी अभिव्यक्तिकी परम आवश्यकता है।

जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

दो०–नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥

अतः राम तो एक ही हैं, परंतु अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें दिखायी देते हैं।

कर्मबन्धनसे छूटनेके बाद शुद्ध मुक्त जीवात्माओंको भगवत्-अनुभवरूप अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। उस आनन्दसे प्रेरित होकर वे यथोचित भगवत्-परिचर्यामें लगते हैं। उससे उनको एक अचिन्त्य विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है। बड़ी तृप्ति होती है। भगवत्-परिचर्या भी कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे भिन्न-भिन्न होती है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्, एतत्साम गायन्नास्ते, येन येन धाता गच्छति तेन सह गच्छति, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

—इत्यादि श्रुतियोंमें भगवान्के सदा दर्शन करनेवाले, स्तवन करनेवाले, सामगान करनेवाले, परमात्माके पीछे-पीछे फिरनेवाले, परमात्माका अनुभव करनेवाले मुक्त जीवोंका उल्लेख है तथा ऐसे ही नित्यमुक्त महापुरुषोंने अपनी-अपनी उपासना

पद्धतिके अनुसार भगवान् श्रीरामका यशोगान किया है। भाव-भेद होनेसे राम-कथामें रूपान्तर है, किंतु कथा वस्तु एक ही रामकी है। यह बात सर्वमान्य है कि केवल गहरी जुताईसे ही सुन्दर खेती उत्पन्न नहीं हो सकती, जबतक कि उसमें तराई न हो। अर्थात् गहराईके साथ तराईकी भी परम आवश्यकता है। तभी उत्तम फलकी उत्पत्ति होनी सम्भव है। यही हाल कर्मका है। कर्म देखनेमें कितना भी सुन्दर क्यों न हो, परंतु यदि भावनामें तरावट नहीं है तो कर्म बेकार जैसा है। 'भाव भेद रस भेद अपारा' के अनुसार सबने अपने-अपने रामका गुण वर्णन किया। जिस प्रकार राम अनादि और अनन्त हैं, उसी प्रकार उनकी कथा भी अनादि और अनन्त है। भक्तोंने अपने-अपने भावोंके अनुसार यशोगान किया है और उनके यशोगानका अधिकार सबको है।

प्रायः काव्यके अर्थ तीन प्रकारके होते हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। आधिभौतिक दृष्टिसे राम मानव हैं, आधिदैविक दृष्टिसे राम ईश्वर हैं और आध्यात्मिक दृष्टिसे राम सबके एकमात्र आत्मा हैं। दर्शनका आरम्भ इन्द्रिय-ज्ञानसे होता है। इन्द्रिय-ज्ञानके आधारपर ही सृष्टिकी स्वीकृति है, किंतु इन्द्रिय-ज्ञानके आधारपर जो सृष्टि सत् प्रतीत होती है, वही बुद्धि-ज्ञानसे सतत परिवर्तनशील प्रतीत होती है। सृष्टिमें सद्भाव भौतिक-दर्शनका पोषक है और सृष्टिकी अनित्यता अध्यात्म-दर्शनको जन्म देती है। अध्यात्म-दर्शनके आधारपर ही संदेहकी वेदनासे साधनका आरम्भ होता है और निःसंदेहतामें साधनकी पूर्णता सिद्ध होती है। आस्तिक दृष्टिसे प्रत्येक वर्तमान कर्तव्य-कर्म अपने प्रियतमकी दृष्टिमें पूजा है और कुछ नहीं। यह नियम है कि जिसकी पूजा की जाती है, पुजारी पूजाके अन्तमें स्वतः उसीका प्रेमी बन जाता है।

यदि इस बातपर विचार किया जाय कि रामायण इतने धर्म और सम्प्रदायोंमें क्यों है, क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता था ? तो मैं कहूँगा कि बहुत अंशमें यह बात ऐसी ही है, क्योंकि जीवनके सिद्धान्त बतानेवाले तो अनेक शास्त्र हैं, किंतु केवल सिद्धान्त जान लेनेसे ही काम नहीं चलता। वह तो केवल हवाई महलके समान है। सिद्धान्त रामायणमें जो सिद्धान्त बतलाये गये हैं, वे अन्यान्य पुराणों, उपनिषदों, धर्मग्रन्थों आदिमें तो पहलेसे ही हैं, किंतु उनको आचरणमें कैसे लाया जाय, इस महान् प्रश्नको हल करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रामायणकी अपूर्व कुशलता है । गीताने भी इस महान् प्रश्नको हल किया है, परंतु वह सर्वसाधारणके लिये सुलभ नहीं है । जीवनके सिद्धान्तको व्यवहारमें लानेकी जो युक्ति या कला है, उसीको 'योग' कहते हैं—"योगः कर्मसु कौशलम्"(गीता) । सिद्धान्तका (शास्त्र और योगका ) अर्थ 'कला' है । संतोंने कहा है तथा इसकी पुष्टि ज्ञानदेवने भी की है । यथा 'योगियाँ साधली जीवन कला' यानी योगियोंने जीवनकला साध ली है । रामायण शास्त्र और कला दोनों है और इन्हीं दोनोंके योगसे जीवनका सौन्दर्य खिलता है । अपनी इस अपूर्व और महान् कुशलताके कारण ही रामायण सार्वभौम ग्रन्थ बना है । इसी कारण सभी देशों, प्रान्तों, भाषाओं तथा सम्प्रदायोंमें किसी-न-किसी रूपमें राम-कथा विद्यमान है; क्योंकि उसके बिना काम नहीं चल सकता । यही रामायण और राम-कथाकी व्यापकता है ।

रामायणका साधारण अर्थ है—राम+अयन अर्थात् 'रामका घर' अपने रामके घरको आप जैसा बनाना चाहें, बना सकते हैं । केवल भावमें ही भेद होगा, राममें नहीं ।

जैन रामायणोंमें वैदिक रामायणोंकी अस्वाभाविक बातोंकी जो आलोचना की गयी है, उसका कारण यह है कि जैन रामायणोंमें रामको केवल मानवरूप दिया गया है और रामायणको केवल इतिहास माना है । उनमें रावणके दस सिर कैसे थे आदि दीखनेवाली असंगतियोंपर भी आलोचनाकी है । जैन रामायणोंके राम मुमुक्षु जितेन्द्रिय हैं और वैराग्य लेनेपर उनका मोक्ष बताया है । जैन सम्प्रदायमें मोक्षको ही सर्वोत्कृष्ट मानते हैं । इसी कारण उसमें अवतारवादका प्रश्न ही नहीं उठता । धर्मसे वैराग्य और वैराग्यसे ज्ञानकी उत्पत्ति होकर मोक्षका प्राप्त होना मान्य है । इसपर गोस्वामीजीने भी अपना मत प्रकट किया है, यथा—

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छ-प्रद बेद बखाना ॥

रामायण केवल वर्तमान धारणानुकूल इतिहास नहीं है । केवल इतिहास होता तो लेखकोंको अपने भावानुसार लिखनेकी छूट न होती । अगर महात्मा गान्धीका चरित्र लिखना हो तो हम यह नहीं कह सकते कि किसीने अपनी भावनाके अनुसार लिखा है; क्योंकि वह केवल ऐतिहासिक चरित्र है, इसलिये वह जैसा बाहरसे बना होता है, वैसा ही लिखना पड़ता है । लेकिन रामके एक बाणसे चौदह इजार राक्षसोंका संहार हुआ, पत्थरकी शिला नारी बन गयी । ऐसी ही अन्यान्य सारी घटनाएँ एक दिव्य सृष्टिकी घटनाएँ हैं । वे भौतिक सृष्टिकी कल्पना नहीं हैं । रावणके दस सिर थे और वानर कुम्भकर्णकी नाकके एक छिद्रमें जाकर दूसरेसे बाहर निकलते थे, तो कभी मुँहमें जाकर नाकसे बाहर निकलते थे । इसपर पहले मुझे भी संदेह होता था, इसलिये इस जानकारीके लिये मैंने संतों और आचार्योंसे समझा और उन्होंने बतलाया कि ये सब अप्राकृतिक घटनाएँ हैं और वैसे देव और असुरोंका युद्ध हमारे हृदयमें सदा चल रहा है । रावण रजोगुण है, कुम्भकर्ण तमोगुण है और विभीषण सत्त्वगुण है । महाकवि तुलसीदासजीने भी इस रूपकको अपने ढंगसे चित्रित किया है । यथा—

मोह दशमौलि तद् भ्रात अहंकार
पाकारिजित काम बिश्रामहारी ।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट
क्रोध पापिष्ठ बिबुधांतकारी ॥

मोह रावण है, अहंकाररूपी उसका भाई कुम्भकर्ण है और शान्ति नष्ट करनेवाला कामरूपी मेघनाद है । यहाँ लोभरूपी अतिकाय, मत्सररूपी दुष्ट महोदर और क्रोधरूपी महापापी देवान्तक है ।

यह जो मोहरूपी रावण हमारे हृदयमें है, इसे भी समझना है । जबतक इस रावणका नाश न हो जायगा, तबतक न तो हृदय शुद्ध हो सकेगा और न हम आत्मदर्शन ही कर सकेंगे । अतः एक रावण तो ऐतिहासिक है और एक हमारे जीवनमें है । इस प्रकार नित्य राम-रावण-युद्ध हो रहा है । मोहरूपी रावणके दस सिर ही होते हैं और इसी मोहमें फँसकर ही मानव अपने जीवनके वास्तविक लक्ष्यको भूल जाता है । इसीसे गोस्वामीजीने इसको केवल घटनाओंको बतलानेवाला इतिहास नहीं, बल्कि भवबन्धनको काट देनेवाला 'परम पुनीत' इतिहास कहा है । यथा—

कहेउ परम पुनीत इतिहासा । सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा ॥

इतिहास तो बहुत-से लिखे गये हैं, परंतु ऐसा परम पुनीत इतिहास किसीने नहीं लिखा है, जैसा कि गोस्वामीजीने लिखा है ।

अनेक विद्वानोंका मत है कि श्रीवाल्मीकिजीने भगवान् श्रीरामको महामानव या मानव ही माना है, परंतु ऐसी बात श्रीवाल्मीकीय रामायण भलीभाँति पढ़नेपर सिद्ध नहीं होती । अवश्य ही हमें प्रसन्नता इस बातकी जरूर होती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखिर रामको कुछ-न-कुछ माना तो है । ईश्वर न सही, महामानव ही सही । ये उन महानुभावोंसे तो अच्छे ही हैं कि जिनकी समझमें कुछ भी नहीं आया तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि यह सारी कपोल-कल्पना है । भाई ! यदि हम कहें कि आप अपनी कल्पनासे ही क्या रामायण लिख सकते हैं तो बिना इन रामायणोंको देखे आप कुछ भी नहीं लिख सकेंगे; क्योंकि राम तो कल्पनातीत हैं ।

अब देखना यह है कि श्रीवाल्मीकिरामायणमें राम कौन हैं । केवल एक-दो उदाहरण ही यहाँ लिखे जाते हैं—यद्यपि रामके साक्षात् ईश्वर होनेके प्रमाण प्रत्येक काण्डमें हैं, परंतु 'थोरे महँ जानिहहिं सयाने'का आधार ही काफी होता है ।

१—बालकाण्ड ( सर्ग १८ ) में—

**प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम् ।**
**कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ १० ॥**

इसीका भाव तुलसीकृत रामायणमें है—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनि-मन-हारी अद्भुत रूप निहारी ॥

इसमें श्रीरामका दिव्य रूपमें प्रकट होना बताया गया है ।

२—किष्किन्धाकाण्ड ( सर्ग २४ ) में ताराने श्रीरामसे विनय की—

**त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ।**
**अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः॥३१॥**

अर्थात् तुम अप्रमेय ( देशकालकी सीमासे रहित ) और दुरासद् ( बड़ी कठिनतासे जाननेमें आने तथा प्राप्त होनेवाले ) हो, जितेन्द्रिय हो—हृषीकेश या इन्द्रियातीत हो और उत्तम धर्मोंवाले हो । तुम्हारी कीर्ति सदा अक्षीण है—कभी नष्ट नहीं होती और तुम विचक्षण—विशेष ज्ञानवान् हो । पृथ्वीके समान क्षमावान् हो तथा सुन्दर अरुण नेत्रोंवाले हो ।

इसमें अप्रमेय तथा दुरासद्से रामको निराकार और जितेन्द्रिय इत्यादि कहकर रामको साकार कहा है ।

३—सुन्दरकाण्ड ( सर्ग १३ ) में—

**नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।**
**नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ५९**

इसमें श्रीरामको शिव आदि देवताओंसे पहले नमस्कार किया गया है ।

४—सुन्दरकाण्ड ( सर्ग ५१ ) में—

**सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।**
**पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥३९॥**

अर्थात् महायशवाले राम चराचर भूतोंसहित सब लोकोंका सम्यक् संहार करके फिरसे उसे सृजनमें समर्थ हैं ।

इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि आदिकवि महर्षि वाल्मीकिजीने रामको ईश्वर ही माना है ।* केवल लीलामें राम मानव हैं । अब पाठक ही निर्णय कर लें ।

अध्यात्मरामायणके राम ब्रह्म हैं । गोस्वामी तुलसीदासजीका तो कहना ही क्या है । उनके राम तो परात्पर ब्रह्म—'बिधि हरि संभु नचावन हारे' हैं । अब केवल एक बात रह जाती है कि वाल्मीकिरामायणमें अन्तमें सीता-परित्यागकी कथा है और तुलसीकृत रामायणमें नहीं, यह भेद क्यों ? इसमें पहिली बात तो यह है कि लेखक सभी बातें लिखे ही, यह आवश्यक नहीं । तुलसीदासजीने यह अप्रिय प्रसंग नहीं लिया । दूसरी बात यह है कि आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी उपासना सीता-तत्त्वकी उपासना है । उपासककी वह उपासना ही क्या, जिसने अपने उपास्यको प्राप्त न कर पाया । विचारने की बात है कि क्या सीताको वनवास देनेके लिये वाल्मीकि आश्रम ही था और कोई जगह न थी ? जरूर होगी परंतु सीतातत्त्वको महर्षि वाल्मीकि जानते थे और उन्होंने अपने काव्यमें सीता-चरित्र ही लिखा है । यथा—

**काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ।**
**पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः ॥ १ । ४ । ७**

रही महाकवि गोस्वामीजीकी बात तो उनके रामकी परीक्षा स्वयं जगन्माता सतीजीने की और यह विचारकर कि—

कबहूँ जोग बियोग न जाकें । देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें ॥

यह बात भी ठीक है कि जब राम ब्रह्म हैं तो ब्रह्मका संयोग-वियोग नहीं होता । क्योंकि वे तो—

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद परधामा ॥

—हैं । फिर, वे वनमें नरकी नाईं विरह-विकल होकर सीताको क्यों ढूँढ़ रहे हैं ? इसपर सतीजीने बहुत वि…

* इस सम्बन्धमें गीताप्रेससे प्रकाशित 'महाभारत' मासिक पत्रके वर्ष ५ अंक १२ में "वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीराम परब्रह्म … अवतार माने गये हैं ।" शीर्षक लेख देखिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया और शिवजीने भी बहुत समझाया, परंतु सतीके हृदयमें संतोष न आया। तब उन्होंने रामकी परीक्षा ली। यथा—

पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नर भूप॥

इस प्रकार जब सती गयीं तो उमाके वेषको देखकर लक्ष्मणजी तो चकित हो गये। परंतु राम अन्तर्यामी सर्वज्ञने सतीको तुरंत पहिचानकर सतीको प्रणाम किया और उनसे केवल एक ही बात पूछी—

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

भगवान् श्रीरामके इस गूढ़ तथा मृदु वचनको सुनकर सती संकोचमें पड़ गयीं और सतीजीको जो संदेह था, वह भगवान्ने दूर कर दिया—

सतीं दीख कौतुक मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥
× × ×
सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता॥

इसलिये प्रारम्भमें ही जब सीता-रामसे नित्य संयोग, उनकी अभिन्नता, व्यापकता और सर्वज्ञता प्रभावित हो चुकी, तब अन्तमें सीताके परित्यागका कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न॥

दोनों ही महाकवियोंके भावोंमें तो देखिये; कितना माधुर्य है। और फिर आप विचार कीजिये। रामका राज्य तो सारे भूमण्डलपर था—

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥

इसीलिये रामकथा भारतके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी पायी जाती है और आज भी सबकी 'रामराज्य'की ही माँग है।

# भक्तगाथा

## श्रीदिगम्बर मौनीजी महाराज

( लेखक—स्वामीजी श्रीजयरामदेवजी )

भारतवर्षमें अनादिकालसे ऐसे प्रतापी महापुरुष होते आये हैं कि जिनके तपोबलसे एवं भक्तिबलसे अनन्त अधमोंका सहजहीमें कल्याण होता रहा है। ऐसे ही महापुरुषोंमें एक प्रसिद्ध महात्मा श्रीदिगम्बर मौनीजी महाराज अभी हालहीमें हुए हैं कि जिनके बनाये गीत प्रेमी-भक्तोंके कण्ठहार हो रहे हैं। उन गीतोंमें अमर आनन्दानुभव मिश्रित है।

आपका जन्म वि० सं० १८१३ में हुसंगाबाद जिलेमें नर्मदातटपर एक ब्राह्मणके गृहमें हुआ था। आपका मन बाल्यकालहीमें ज्ञान-वैराग्यके रंगमें रँग गया। घरके धंधोंमें आपका मन नहीं लगा। पिताने एक सुन्दरी विप्रकन्यासे आपका सम्बन्ध करनेका निश्चय किया, परंतु आपने विचार किया कि विवाह हो जानेपर निश्चय ही मायाके बन्धनमें बँध जाना पड़ेगा। मेरे हृदयमें आजीवन ब्रह्मचर्यसे रहकर तपस्या करनेका संकल्प दृढ़ हो चुका है। अब यदि मैं विवाह करके फिर भागूँगा तो पत्नीको त्यागकर तपस्याके लिये वनमें जाना अपराध होगा। अतः पहले ही भाग जाना उत्तम है। ऐसा निश्चयकर आप अर्धरात्रिहीमें भाग निकले। साधु-वेष बनाकर भिक्षावृत्ति धारण कर हरिद्वार पहुँचे। वहाँसे हिमालयके अनेक स्थलोंपर विचरते हुए बदरिकाश्रममें आये। बदरीनारायणके निकट बर्फीले पहाड़पर रहते हुए आप तप करने लगे। तपस्याके प्रतापसे आपको सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। साक्षात् श्रीबदरीनारायण भगवान्ने कृपा की। वे अन्य रूपोंमें दर्शन दे-देकर भोजनादि पहुँचाते रहे। तप एवं कृपासे आपको ऐसी शक्ति प्राप्त हुई कि भयंकर शीतऋतुमें भी आप बर्फपर हिमालयमें पड़े रहते थे। इस प्रकार बहुत वर्षोंतक उत्तराखण्डमें रहे। बीच-बीचमें अनेक देवताओंके दर्शन आपको हुए।

एक बार भगवान् शंकरजीने आपको आज्ञा दी कि 'अयोध्या जाओ और श्रीराममन्त्र ग्रहण करो। तब भगवान्का साक्षात्कार प्राप्त होगा।' इस आज्ञाको पाकर आप श्रीअयोध्या आये औ श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें दीक्षित होकर श्रीसरयूतटपर एकान्तमें श्रीराममन्त्रका अनुष्ठान करने लगे।

श्रीराममन्त्रका अनुष्ठान करते कई वर्ष जब बीत गये, तब एक दिन आपको प्रभुके विरहमें विशेष व्याकुलताका उदय हुआ। उसी विरह-दशामें आपको दिव्य लीलाओंके दर्शन हुए। उसी दशामें आपको सखी-भावना जाग्रत् हुई। आपको अपने सखी-रूपसे श्रीसाकेतमें नित्य निकुञ्ज-मन्दिर मध्य दिव्य दम्पति श्रीसीतारामजीकी सेवामें अपनेको उपस्थित करनेकी लालसा जाग उठी। प्रभुके विरहमें आपकी वाणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत बनने लगे। एक दिव्य गीतमें प्रियतमसे मिलनेकी प्रार्थना है—अवधी भाषामें वह गीत इस प्रकार है—

पिया प्यारे दरस दिखलाय जाउ हो।
अवध छैल मनहरन लाड़िले,
छिनभरि नयन मिलाय जाउ हो॥
बिरह बिकल निसि दिन न परत कल,
रघुनंदन अब आय जाउ हो।
'मौन' मरन चाहत दरसन बिन
छबि अमृत बरषाय जाउ हो॥

इस पदको अनुरागरंजित हृदयसे जब आपने गाया तो उसी समय उनके सामने सहसा पूर्ण ब्रह्म श्रीकौशल्यानन्दन भगवान् प्रकट हो गये। प्रभुके दिव्य दर्शन कर आपने दण्डवत् प्रणामके पश्चात् प्रार्थना की कि—

प्रियतमके दरसन किये रही न अब कछु चाह।
चाह यहै करियो सदा, प्रीति रीति निर्वाह॥

प्रभुने बारंबार वरदान माँगनेके लिये कहा, किंतु आपने अन्य कुछ न माँगकर यही माँगा कि—'सखीरूपमें मैं सर्वदा आपके चरण-कमलोंकी सेवा करूँ।' एवमस्तु कहकर—श्रृङ्गाररसमयी उपासनाका वरदान देकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

उस समयसे आप प्रेमोन्मत्त दशामें रहने लगे। आप मानसी भावनामें दो-दो दिन मूर्च्छित पड़े रहते थे। उस दशामें आपको लँगोटी-अँचला पहननेतककी सुधि नहीं रहती थी। तबसे आपने वस्त्र पहनना ही छोड़ दिया। दिगम्बर हो गये। सनकादिकोंके समान जीवन्मुक्त हो नंगधड़ंग विचरण करने लगे। साक्षात्कार होनेके पश्चात् ही आपने मौन धारण कर लिया। हाँ, कभी कुछ लिख देते थे। अथवा कभी कोई प्रेम-तरंग आयी तो एकान्तमें भगवान्के प्रेममय गीत अवश्य गा उठते थे। वैसे कुछ नहीं बोलते थे। साक्षात्कार होनेके बाद आपको पुनः मिलनके लिये विकलता होने लगी। उस दशामें वे यह गीत गाया करते थे—

सखी री! मन ले गये अवधकिशोर॥
मृदु मुसकानि मदनमन मोहनि,
अवलोकनि चितचोर।
चितवत मनहुँ मदन सर मारत,
कमल दृगनकी कोर॥
निरखि अनूप रूप मन बँधि गयो,
परम प्रेम की डोर।
बिबस भई तन मन सुधि बिसरी,
चितय रही वहि ओर॥
प्रमुदित चित अनुराग पुलकि तन,
ज्यों शशि ओर चकोर।
तृप्ति न होत मधुर छबि निरखत,
पियत सुधा दृग बोर॥
लोक लाज मरजाद कानिकुल,
निकसि गई तृन तोर।
निसिदिन 'मौन' मुदित मन बिचरत,
अवध नगर की खोर॥

एक बार आप श्रीजनकपुर दर्शनार्थ गये। वहाँपर श्री राघवेन्द्रसरकारने आपको दूल्हारूपसे दर्शन दिया। उस समय आपको यह गीत स्फुरित हुआ—

जनक नगर चलि देखो मेरी आली।
दुलहा अति प्यारो री,
सखी, बनरा अति प्यारो री॥
सुचि सिंगार भूषन मणि झलकैं।
कुंडल श्रवण लसत अलि अलकैं।
तिलक सुभाल बिसाल मौर मणि
मदन सँवारो री॥
बसन सुरंग स्याम तन सोभित,
कर-कंकन त्रिभुवन मन मोहित।
मनहुँ मोहनी जन्त्र मंत्र
मनसिज पढ़ि डारो री॥
भृकुटि कुटिल पंकज दृग पलकैं।
मनहुँ मनोज धरे सर भलकैं।
मृदु मुसुकनि मनहरण हृदय
चितवनि सर मारो री॥
बदन मयंक मदन छबि छलकैं।
रूप बिलोकि नारि नर ललकैं।
'मौन' मुदित मन रसिक रमन अवधेश दुलारो री॥

कहा जाता है—योगबलसे आपको दिव्य दृष्टि भी प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गयी थी। इस सम्बन्धमें अनेकों घटनाएँ आपकी प्रसिद्ध हैं। भक्तोंने अनुभव किया और प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्राप्त हुए।

श्रीमौनीजी प्रायः चार तीर्थोंमें विशेष रहा करते थे। अयोध्या, जनकपुर, चित्रकूट तथा कभी-कभी वृन्दावन। कभी कहीं, कभी कहीं। इसी प्रकार चारों स्थानोंमें आया-जाया करते थे।

श्रीमौनीजीकी आयु अधिक थी, किंतु आप एक-से ही सदा दीखते थे। वृद्ध-से-वृद्ध पुरुष यही कहते मिलते थे कि हमने बचपनसे लेकर अपनी सारी आयुभर इनको सदा ऐसा ही देखा है। इसलिये आपमें सब श्रद्धा करते थे। सौ वर्षसे बहुत अधिक आयु होनेपर भी आप इतनी तेजीसे चलते थे कि साथ चलनेवाले नौजवानोंको आपके साथ दौड़ना पड़ता था। आपकी स्वाभाविक चाल देखकर सबको महान् आश्चर्य हुआ करता था। आपमें सब सिद्धियाँ थीं। परंतु भक्तिरसमें बाधक समझकर आप किसी सिद्धिका उपयोग नहीं करते थे।

एक बार आप अयोध्या आये। वहाँपर एक विचित्र घटना हुई थी। इस चरित्रको अयोध्याके पुराने महात्मा बताया करते हैं कि जिन्होंने आँखोंसे देखा है। यह विक्रमी संवत् १९३५ की बात है।

श्रीमौनीजी अयोध्याके प्रसिद्ध मन्दिर श्रीकनकभवनमें आये। वहाँपर प्रभु श्रीसीतारामजीका दर्शन कर आपको इतना आनन्द उमड़ा कि आपका मन हाथसे बेहाथ हो गया। प्रेमोन्मत्त दशामें आपने प्रभुकी दिव्य झाँकी देखी। श्रीदशरथ-राजकुमारने अपनी तिरछी चितवनका बाण चलाया। आप उस समय ऐसे विह्वल हुए कि मौन त्यागकर उच्चस्वरसे पद बना-बनाकर गाने लगे। पद गान करते-करते ऐसा समा बँध गया कि आप नाचने भी लगे। उस समय सहसा आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उस दिव्य फूलोंकी वर्षाको देखकर उपस्थित दर्शकगण आश्चर्यचकित हो गये। जिस पदके गानेपर पुष्पवर्षा हुई थी, वह पद यह है—

मारे मारे कमल दृग बान हमारे हिय रामा लगे।
अरुनारे प्यारे अनियारे, भृकुटी विकट कमान,
चितवनि चित प्यारे ठगे ॥ मारे॰
कुसुमित कंज मंजु मुख मृदुक्ति, मन मोहन मुसकान,
सुधारस प्यार पगे ॥ मारे॰
बिबस भई रस रूपदिवानी, टूट गई कुलकान,
कर्म अपछारे भगे ॥ मारे॰
'मौन' मुदित अब अवध छैलपर, वारौं तन मन प्रान,
रसिक मम सजन सगे ॥ मारे॰

श्रीमौनीजी महाराजका जीवनचरित्र अपार है। यहाँपर कुछ थोड़ा-सा संकेत मात्र संक्षिप्तरूपमें लिखा गया है। आपके बनाये कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। वे सभी ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। आपने अपने भक्तोंको आदेश दिया था कि हमारे ग्रन्थ न छपाये जायँ। इसीलिये ये प्रकाशमें नहीं आये। आपके ग्रन्थोंमें 'मिथिलाविहार' तथा 'अवधविहार' एवं 'प्रेमरससार' आदि प्रसिद्ध हैं। उन ग्रन्थोंमेंसे कुछ आपके बनाये पद यहाँ-पर उद्धृत किये जाते हैं। इन गीतोंमें मुझे दिव्य अनुभव रस प्रतीत होता है। आपकी चर्यामें तथा पदोंमें त्याग एवं अनुरागका विलक्षण सम्मिश्रण हुआ है।

आपका परमपद वि॰ सं॰ १९७६ में हुआ, पर आप अपने ललित गीतोंद्वारा सदा अनुरागी जनोंमें विद्यमान हैं। आपके ये अवधीभाषाके गीत अयोध्याके मन्दिरोंमें बड़े चावसे गाये जाते हैं।

( १ )

बिन देखे नयनवाँ नहिं मानें ॥
जब सों लखी माधुरी मूरति, रूप रसिक दृग दीवाने।
मुख सरोज मकरंद पान कर, भए मधुकर मानो मस्ताने ॥
जिमि ससि ओर चकोर बिलोकत, रूप सुधारस चसकाने।
अहो सुजान प्राण प्रिय तुम बिनु, कौन 'मौन' मनकी जाने ॥

( २ )

पिया प्यारे प्रिया रस माते अली ॥
कुसुमित मधु मकरंद पान रत,
पिय मधुकर सिय कमल कली !
लोचन चारु चकोर चंद मुख,
रूप सुधा रसके अमली ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंद मंद मुसुकानि बिलोकनि,
प्रीति परस्पर परम भली ।
'मौन' मुदित मन बसी जुगल छवि,
दसरथसुत अरु जनक लली ॥

( ३ )

राम चरन अस नेह, न लाग्यो ॥
जैसे जलमें लीन मीन मन,
कमल पराग मधुप अनुराग्यो ।
त्यों न पियत हरिनाम अमिय रस,
ज्यों चकोर चंदहिं मन पाग्यो ॥
क्यों न करत सतसंग मुदित मन,
भक्तिसहित संकर बर माग्यो ।
अति दुर्लभ नर जन्म पाय जग,
अजहुँ न ह्वै सचेत तू जाग्यो ॥
जिन कीन्हीं सतसंगति सादर,
कपट कुतर्क मान तिन त्याग्यो ।
'मौन' मुदित प्रभु पद सरोज भजु,
जो न भजै सो जानु अभाग्यो ॥

( ४ )

क्यों न लगी मन लगन राम सों ॥
कह्यो न सुन्यो पुलकि हिय हरि जस,
रसन पग्यो मन राम नाम सों ।
हम हम करत भरत निशि वासर,
थिर न भयो चित कबहुँ काम सों ॥
सकल प्रकार सुजान सिरोमनि,
भये कहा बहु धन सुधाम सों ।
कीन्ह न तस सनेह संतन सों,
जस राच्यो मन पुत्र बाम सों ॥
बाहन रथ गज बाजि राज पद,
कहा भयो सतकोटि ग्राम सों ।
जो न 'मौन' परहित परमारथ,
काह भयो फल मनुज चाम सों ॥

( ५ )

मजा नर जन्म लेनेका, भजो मन राम बैदेही
कहें बुध बेद सतसंमत, जगत्में सार है यही।
सदा सतसंग परहित कर, यही सदग्रंथ कहते हैं
बिना सतसंग नर जगमें, पसूसम सोक सहते हैं।
निरख भ्रम नीरकी लहरें, मृगा बन बन भटकते हैं
कि ज्यों ज्यों प्यास हो ज्यादा, दुखी हो सर पटकते हैं।
मुसीबतके सिवा जगमें न, सुख सपनेमें पाते हैं
बिषय इंद्रियके बस होकर, नहीं बैराग लाते हैं।
भ्रमर, गज, मीन, मृग, सलभा, बिषय इक इकमें मरते हैं।
नतीजा क्यों न पायेंगे बिषय पाँचो जो करते हैं।
नियम जग आने जानेका, रहे कोई न रहनेको
बने जो कुछ करो करनी यही रहती है कहनेको।
किया होगा सो अब पाया, करे सो फिर भी पावेगा।
बिना करनी वृथा कथनी, नहीं कुछ हाथ आवेगा।
सिवा नेकी बदी तेरे, न कुछ भी साथ जावेगा।
दया दीनों पे पर हित कर, समयपर काम आवेगा।
दिया ईश्वरने जो कुछ हो, उसीमें से ही कुछ देना।
गया दिन फिर न आनेका, जो करना हो सो कर लेना।
बदीका बद नतीजा है, भलाई कर भला होगा।
लगाया वृक्ष काँटोंका, सिवा काँटोंके क्या होगा।
जहाँतक नेह नाते हैं, सुता सुत बंधु औ दारा।
न आते काम आखिर में, गरज का मीत जग सारा।
किसी का तू न कोई तेरा, अरे मन सोच दिल अपने।
फँसा भ्रम जाल माया का, वृथा सब रैनके सपने।
पलक लगते ढलक जाता, ए तन ज्यों ओसका पानी।
अरे अरमान क्यों करता, दिना दसकी है जिंदगानी।
जो निकला स्वाँस अंदर से, वो फिर आनेकी आशा क्या।
वृथा 'मैं मेरा' कह-कहकर, भटकता सुखका प्यासा क्या।
हमें लेना न कुछ देना, मेरी मानो या मत मानो।
वहाँ जब न्याय होवेगा, जो होवेगी सो तुम जानो।
जमाना देख दुनियाँ में, किसीसे कुछ नहीं कहना।
समझ कर दिल ही दिलमें सब, जगत् में 'मौन' हो रहना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

## ( १ )

## नकली और असली प्रेम

रामविनोद एम्० कॉम० पास करके कानून पढ़ रहा था। बड़ा सुन्दर सुडौल गौर शरीर, मनोहर मुख, विशाल आँखें—सभी चित्तको खींचनेवाले थे। दो वर्ष पहले, एक भले उच्च घरानेकी सुन्दर सुशील कन्या चम्पाके साथ उसका विवाह हो चुका था। वह मैट्रिकतक पढ़ी थी। उसके स्वभावमें शील, आर्यनारीके योग्य लज्जा, सेवा, त्याग, नम्रता, सादगी—सभी एक-से-एक बढ़कर गुण थे। पर स्वाभाविक ही वह चटक-मटक, फैशन, इधर-उधर भटकना, पर-पुरुषोंसे मिलना-जुलना, गंदे हँसी-मजाक, रोज सिनेमामें जाना आदि पसंद नहीं करती थी। रामविनोद पढ़नेमें तेज होनेपर भी आजकलकी उच्छृङ्खलताका शिकार था। उसीके कॉलेजकी एक लड़की मनोरमासे उसका प्रेम हो गया। मनोरमामें रामविनोदकी मनचाही चीजें थीं। रामविनोदके पिता पैसेवाले थे, मनोरमाके पिता गरीब थे और शराबी तथा आवारा थे। मनोरमाने रामविनोदके सौन्दर्य तथा वैभवका लाभ उठानेके लिये उससे रोज-रोज मिलना, प्रतिदिन सिनेमामें जाना, इधर-उधर सैर-सपाटेमें घूमना और चम्पाके प्रति दुर्भाव भरना शुरू किया। चम्पा घरमें रहती, घरका काम करती, यथासाध्य रामविनोदके अनुकूल रहकर सेवा करती, हर तरहसे त्याग स्वीकार करके रहती, पर रामविनोद बात-बातपर उसे डाँटता, अपमान करता, कहता—'मुझे मुँह मत दिखा, तेरी-सरीखी नालायक, असभ्यके साथ मेरा क्या मिलान आदि। वह बेचारी चुपचाप सब सुनती, पर कभी उसके मनमें पतिके प्रति घृणा नहीं हुई। अवश्य ही उसे पतिके आचरणपर दुःख होता, इसलिये कि दुराचार-मय बनकर इनका भविष्य न बिगड़ जाय। वह अपना सुख नहीं चाहती; किंतु पतिके भावी दुःखके चित्रोंको मन-ही-मन देखकर दुखी रहती।

इधर रामविनोदने मनोरमाकी रायके अनुसार यह निश्चय कर लिया कि वह मनोरमाके साथ दो-तीन महीने बाद विवाह कर लेगा। चम्पाके आचरणमें मिथ्या दोष दिखलाकर उसे तलाक कर देगा। सारी योजना बन गयी और पैसेके लोभी किसी एक वकीलकी सलाहसे सब प्रकारके मसाले भी तैयार कर लिये गये। अब तो मनोरमा और रामविनोदका खुला दुराचार चलने लगा। मनोरमाके पिताको शराब आदिके पैसे मिलते, अतः वे भी बहुत खुश थे। रामविनोदके पिता सीधे स्वभावके पुराने ढंगके आदमी थे। वे कुछ बोलते नहीं थे।

एक दिन रामविनोद अपनी नयी कारमें मनोरमासे मिलने एक निश्चित स्थानकी ओर जा रहा था। स्वयं ही कार चला रहा था। शराब पी रक्खी थी। नशेमें दुर्घटना हो गयी। कार एक पेड़से बुरी तरह टकरा गयी। रामविनोदकी एक टाँग टूट गयी। नाक तथा आँखोंमें और मुखपर बड़ी चोट आयी। चेहरा विकृत हो गया। पुलिसने अस्पताल पहुँचाया। घरवालोंको खबर मिली। बेचारे बूढ़े पिता आये, माता आयी और आयी रोती हुई चम्पा। अस्पतालमें इलाज हुआ। प्राण तो बच गये; पर एक टाँगको घुटनेके नीचेसे काटना पड़ा, एक आँख जाती रही, नाक धँस गयी तथा चेहरा भयानक हो गया। रामविनोदने कई बार मनोरमाको याद किया। बार-बार खबर भेजी, पर वह नहीं आयी। 'परीक्षाका समय समीप है, इसलिये आना कठिन है'—एक चिटपर लिखकर भेज दिया। चम्पाने पढ़कर सुना दिया। रामविनोद लंबी साँस खींचकर रह गया। इधर चम्पाने जो सेवा की, वह अकथनीय थी। वह खाना-पीना-सोना भूलकर पतिकी सेवामें जुट गयी। पाखाना-पेशाब कराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फेंकना, मवाद साफ करना आदि सब काम अपने हाथोंसे करती । उसकी सेवापरायणता, परिश्रमशीलता, कार्य-पटुता और बुद्धिमत्ताको देखकर अस्पतालकी प्रशिक्षण विद्यालयों ( ट्रेनिंग स्कूलों ) में शिक्षा पायी हुई नर्सें भी दंग रह गयीं ।

डेढ़-दो महीनेमें रामविनोद कुछ ठीक हो गया । एक दिन मनोरमा आयी । रामविनोदके विकृत चेहरेकी ओर दृष्टि पड़ते ही उसने मुँह मोड़कर एक लिफाफा रामविनोदके हाथमें दिया और 'मुझे अभी बहुत जरूरी काम है, ठहरना सम्भव नहीं, पत्र पढ़ लेना' कहकर बिजलीकी तरह कौंधकर तुरंत चली गयी । रामविनोदने लिफाफेमेंसे पत्र निकालकर पढ़ा, उसमें लिखा था—

'रामविनोद ! मुझे खेद है कि मोटर-दुर्घटनासे तुम्हें चोट आ गयी । पर मैं क्या कर सकती थी । परीक्षाकी तैयारी करनी थी । उधर इन दिनों प्रभातकुमार-का प्रेम मेरे प्रति अत्यन्त बढ़ रहा था । वह कितना अच्छा है, तुम जानते ही हो । उसके साथ मिलने-जुलनेमें उसको तथा मुझको बड़ा सुख मिलता है, अतएव बहुत-सा समय इसमें लग जाता है । इसीसे मैं आ नहीं सकी । फिर, वह अविवाहित है, तुम्हें तो चम्पाको ...क करना पड़ता; उसमें यह झगड़ा भी नहीं है । ...रे, तुम बुरा न मानना—मैं तो सदा ही स्पष्ट कहा करती हूँ । तुम्हारे योग्य भी मैं नहीं हूँ । तुम्हारी इस ...तिसे जितना अधिक चम्पाका मेल खायगा, उतना मेरा ...ख भी नहीं सकता । मुझे भूल जाना । बस, क्षमा ।'

—मनोरमा

इस रूखे, कर्कश, प्रीतिशून्य, स्वार्थपूर्ण, असभ्यताभरे ...को पढ़ते ही रामविनोदपर मानो वज्रपात-सा हुआ; परंतु ...के साथ उसकी चम्पाके प्रति अत्यन्त सद्भावना ...ग उठी । देवी और दानवीके मूर्तिमान् चित्र सामने आ ... । उसने आँखोंसे आँसू बहाते हुए कहा—'चम्पा ! देवी हो । तुमने मेरी जो सेवा की है और तुम जो कर रही हो, इसका कोई बदला नहीं है । मेरे प्रति तुम्हारे जो उपकार हैं, उन्हें मैं कभी भूल नहीं सकता । मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ । मैंने मोहवश तुम्हारे प्रति जो दुर्व्यवहार किया है, इसके लिये क्षमा करना.......'

चम्पाने बीचमें ही रोककर कहा—'यह आप क्या कह रहे हैं ! सेवा और बदला कैसा ! आपका कष्ट तो मेरा ही कष्ट है । अपने-आप अपना काम करना सेवा थोड़े ही है । वह तो स्वाभाविक ही होता है । फिर उपकार तथा ऋणी होनेकी बात कैसी ? क्या अपने कामसे कोई उपकार मानता या ऋणी होता है ? मैं तो सदा ही आपकी अभिन्न अङ्ग हूँ । फिर, मुझे तो शुरूसे ही यह सिखाया गया है कि आप हर हालतमें मेरे परमेश्वर हैं । आप मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार करते हैं, यह देखना ही मेरे लिये पाप है । हाँ, यह चिन्ता अवश्य रहती है कि आप दुखी न हों ।' यह कहती हुई चम्पा गद्गद होकर रामविनोदके चरणोंपर गिर पड़ी । रामविनोदने उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया । ऐसा उसने पहली ही बार किया ।

दोनोंके नेत्र सजल, हृदय सुधा-रसपूरित और सर्वाङ्ग पुलकित थे । धन्य आर्यनारी !

—सदनमोहन शर्मा

( २ )

## आदर्श अफसर

घटना सन् १९६० की है । पहली तारीख थी, इसलिये मन्दसौर ट्रेजरीमें वेतन लेनेवालोंकी भीड़ थी । इसी दिन एकाउंटेंट जनरल ग्वालियरको महीनेभरका हिसाब भी भेजा जाता है । अतः प्रत्येक विभागके सभी कर्मचारी अपने-अपने कार्यमें व्यस्त थे । कोई पत्रक बना रहा था तो कोई बिलोंकी जाँच कर रहा था । चपरासी भी सभी व्यस्त थे । कोई एकाउंटके बंडल बाँध रहा था तो कोई साहबसे रजिस्टरमें तथा बिलों आदिपर हस्ताक्षर करवा रहा था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिन पोस्टमैन भी पोस्टल स्टाम्प तथा स्टेशनरी लेने आया था। मैंने पोस्टल इंडेंटकी जाँच करके स्टाम्प देने चाहे तब देखा कि आल्मारीके बाहर कार्डोंके पैकेट पड़े हुए थे, इससे आलमारी खुल नहीं रही थी। अतः पैकेटोंको हटानेके लिये मैंने दो-तीन बार चपरासियोंको पुकारा, परंतु 'आते हैं, आते हैं' कहकर उन्होंने बहुत समय निकाल दिया। पोस्टमैन बहुत देरसे खोटी हो रहा था। मैंने जाकर साहबसे कहा। साहबने चपरासियोंको बुलाकर पूछा तो उन्होंने इसका कारण कार्यमें व्यस्त होना बताया और कहा कि 'दो पारसल बाँधकर हम पैकेट हटा देते हैं।' साहबने काम करनेको कहकर उनको भेज दिया। फिर वे यह कहकर कि—'देखें पैकेट कहाँ पड़े हैं' उठकर मेरे साथ हो लिये। केश-विभागमें आकर उन्होंने आल्मारीके सामने रक्खे हुए पैकेटोंको अपने हाथोंसे उठा-उठाकर अलग रखना शुरू किया। मैं शर्मके मारे झुक गया। मैंने जल्दीसे उनके हाथोंसे पैकेट ले लिये और नीची निगाह किये हुए कहा—'आप रहने दीजिये, मैं उठा लूँगा।' तब लोकरे साहबने कहा—'आज एकाउंट भी जाना जरूरी है और पोस्टमैनको स्टाम्प देने भी। चपरासी इधर-उधर कार्यव्यस्त हैं, अतः उनकी प्रतीक्षामें दूसरेको खोटी करना ठीक नहीं।' मैं नीची दृष्टि किये पैकेटोंको उठाता रहा।

उस दिन मुझे ऐसी शिक्षा मिली कि अब कोई कार्य नहीं होता है तो उसे मैं स्वयं कर लेता हूँ। जो स्वयं कार्य करके दूसरेको प्रेरणा प्रदान करता है, वही सच्चा अफसर है। यदि सभी अफसर इस प्रकारके कर्तव्यशील बन जाय तो कार्य बहुत अच्छा होने लगे, इसमें कोई संदेह नहीं।

—वि० डी० नागर

( ३ )

## करुणा और कर्तव्यपालन

गत २८ जनवरी १९६२ की बात है, प्रातःकाल साढ़े सात बजे थे। अहमदाबादसे वेरावल जानेवाली सोमनाथ मेल ट्रेन कुंकावाव जंकशनपर आकर रुकी। मैं एक भीड़वाले डिब्बेमें चढ़ गया।

समयपर गाड़ी चली। उसी समय एक टिकट-चेकर साहब हमारे डिब्बेमें चढ़ आये। उन्होंने चेकिंग शुरू की। मेरे सामने एक ग्रामीण वृद्धा स्त्री बैठी थी। उसके साथ एक पाँच सालका छोटा लड़का भी था। चेकर साहबने टिकट माँगे तो उस स्त्रीने एक टिकट दिया और लड़केके टिकटके बारेमें पूछे जानेपर जवाब मिला कि लड़केकी बहुत छोटी उम्रके कारण उसका टिकट लेना अनावश्यक समझा गया। लड़केकी उम्र पूछनेपर वृद्धाने सच-सच पाँच सालकी उम्र बता दी। चेकर साहबने उस वृद्धाको समझाया कि 'तीन सालके बाद बच्चेका आधा टिकट लेना पड़ता है और अब उसकी भूलके कारण उस बच्चेके आधे टिकटका डबल चार्ज चुकाना पड़ेगा।'

डबल चार्ज और वह भी अहमदाबादसे वडाल तकका! चार्जकी रकम सुनकर वृद्धा घबरा गयी, अपनी अज्ञान-जनित भूलके पश्चात्तापको और अपनी विशुद्ध सरलताको शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ होकर वह आँसू बहाने लगी।

डिब्बेके अन्यान्य यात्रियोंने चेकर साहबको सलाह दी कि वे माफ कर दें। परंतु इस बातको मानना उन्हें ठीक नहीं लगा; क्योंकि ऐसा करनेपर प्रकारान्तरसे जान-बूझकर मुफ्तमें मुसाफिरी करनेवालोंकी संख्या घटानेके बजाय उसे बढ़ानेकी एक राष्ट्रीय कुसेवा होती।

इस तरह 'करुणा और कर्तव्यपालन'की दुविधामें चेकर साहब डूबे थे कि उनकी बुद्धिने बीचका मार्ग निकाल दिया। उन्होंने वृद्धापर डबल चार्ज किया और उसकी रसीद भी दे दी, परंतु पैसे उस वृद्धासे आधे टिकटके ही लिये। आधे पैसे चेकर साहबने स्वयं अपने पाससे चुका दिये।

चेकर साहबका यह कर्तव्यपालन देखकर सब दंग रह गये। उस समय उस वृद्धा देवीकी कृतज्ञतापूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि चेकर साहबपर आशीषका मूक अभिषेक कर रही थी।

कर्तव्यको ठुकराकर अथवा सत्ताका दुरुपयोग करके दया दिखलानेका दम्भ भरनेवाले लोग बहुत होते हैं। मगर स्वयं हानि उठाकर कर्तव्यभ्रष्ट न होकर भी मानवतायुक्त व्यवहार करनेवाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। यही सार था यात्रियोंद्वारा की जानेवाली चेकर साहबकी प्रशंसाका।

—जयंतीलाल प्र० पाठक, बी० एस्-सी० ( ऑनर्स )

( ४ )

## आदर्श उपकार

मैं सुन्दरवती महिला कालेजकी छात्रा हूँ। आज मैं एक ऐसे छात्रके विषयमें लिख रही हूँ जिसके कर्तव्य-पालनपर छात्र-समाजको गौरव होना चाहिये। घटना इस प्रकार है। ता० ९। २। ६२ को मैं अपने कालेजसे सरस्वतीकी पूजा करके लौट रही थी। भागलपुरस्थित नवयुग-विद्यालयके पास एक छात्रने मुझसे छेड़खानी शुरू कर दी। उस गुंडे छात्रने मुझे जबरदस्ती एक रिक्सेपर बैठाकर ले जाना चाहा। मैं चिल्लाने लगी। उस समय वहाँ कोई नहीं था। भगवान्‌की कृपासे एक छात्र साइकिलपर उस ओरसे निकला। उसने मुझे चिल्लाते देखकर उस गुंडेको ललकारा। उस गुंडेने चाकूसे इस छात्रपर प्रहार करना चाहा, परंतु इस छात्रने जो उस गुंडेसे अधिक बलवान् था, उसे खूब पीटा और खुद भी चोट खायी। अन्तमें हारकर वह गुंडा रिक्सेपर भाग गया। छात्रने पीछा करना चाहा परंतु मैंने रोक दिया। फिर भी, इसने उसका पीछा साइकिलसे किया। इसके बादका हाल नहीं जान सकी। उस कर्तव्यपरायण छात्रका नाम मुझे उसकी गिरी हुई डायरीसे मिला। उनका शुभ नाम है—'रणजीतकुमार चौधरी'। वे टी०एन० बी० कॉलेज भागलपुरके Pre-'University के EX-Student हैं।

( ५ )

## सर्पका भागवतपारायण-श्रवण

गत २१ दिसम्बर १९६१ ई० की बात है। इलाहाबादसे ४२ मील दूर केसरिया ग्रामके अंदर ... श्रीमद्भागवत-पाठ करा रहे थे। वहाँसे एक फर्लांग ... एक खेतसे एक सर्प निकला और जहाँ भागवत हो ... थी, उधरको बहुत तेजीसे बढ़ा। कुछ लोग उसे मारने लिये चले परंतु भागवत कहनेवाले पण्डितजीने लोगोंको रोक दिया और वे उस सर्पको मारनेमें असमर्थ रहे। थोड़ी देर बाद पण्डितजीने उस सर्पसे कहा 'यदि आपको भागवत-पाठ सुनना है तो आप सभामें बैठ जायँ, दूर क्यों हैं।' सर्प इतना सुनते ही तुरंत उस सभामें आकर एक ओर बैठ गया और ... सात दिनोंतक भागवत सुनता रहा। २८ दिसम्बर सन् १९६१ ई० को जब भागवतसप्ताह समाप्त ... गया और राजा परीक्षित्‌की कथाके बाद जब श्रीकृष्ण भगवान्‌की जय बोली गयी, तब वह सर्प अपना प्राण त्यागकर स्वर्गको चल बसा। लोग सर्पको दिनमें ... के लिये दूध दे देते थे और वह रातमें चौकीके ... आराम करता था।

—फतेहचन्द ...

## स्त्रीके लिये स्वामी

स्त्रियोंको यज्ञ-दान-तप-व्रत कुछ भी नहीं करना पड़ता। केवल 'मेरे पति नारायण' हैं—इस बुद्धिसे पतिसेवा करनेपर सब कुछ कर लिया हो जाता है। प्रातः-सायं स्वामीका पूजन, प्रणाम और उनका पादोदक पान जो स्त्री करती हैं, वे इस लोक और परलोकमें विजयी होती हैं। भगवान्‌का नाम जपते-जपते जो स्वामीकी सेवामें लगी रहती हैं, उन नारियोंके समीप श्रीभगवान् दौड़े आते हैं।

प्रेतिनी, पिशाचिनी, राक्षसी, दानवी, डाकिनी और कोई नहीं हैं—असती नारी ही हैं। उनके लिये कुछ भी अकार्य नहीं है। उनके हृदयमें दिन-रात ज्वालाका श्मशान जलता रहता है। वे निरन्तर तुषानलमें दग्ध होती रहती हैं।

—श्रीसीताराम ओंकारनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# 'कल्याण' और 'Kalyana-Kalpataru' को उड़ीसा-राज्यकी शिक्षा-संस्थाओंके पुस्तकालयोंके लिये मान्यता-प्रदान

समय-समयपर भारतके अनेक राज्योंके शिक्षा-विभागोंने हिंदी मासिक 'कल्याण' तथा अंग्रेजी मासिक 'कल्याण-कल्पतरु' को अपने-अपने राज्यके पुस्तकालयों तथा शिक्षा-संस्थाओंके लिये स्वीकृति दी है। इसी प्रकार उड़ीसा-राज्यके डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन महोदयने भी कटकसे अपने परिपत्र सं० 2 B- 7/F- 61-2780 दि० २५ जनवरी १९६२ के द्वारा सूचित किया है कि उड़ीसा सरकारके माननीय शिक्षा-मन्त्रीने गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा प्रकाशित 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' नामक मासिक-पत्रोंकी राज्यकी शिक्षा-संस्थाओंके पुस्तकालयोंके लिये स्वीकृति प्रदान की है।

शिक्षा-विभागके सम्बन्धित अधिकारियोंसे हमारा अनुरोध है कि वे इन दोनों मासिक-पत्रोंको अधिकाधिक संख्यामें मँगवाकर विद्यार्थियों एवं जनताको लाभान्वित करनेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु', गोरखपुर

## 'कल्याण' के सं० शिवपुराणाङ्कका दूसरा संस्करण छप रहा है

प्रथम बार १,३१,००० प्रतियाँ छपी थीं; परंतु नयी माँग इतनी अच्छी रही कि हजारों पुराने ग्राहकोंको वी० पी० नहीं जा सकी। इसलिये २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण शीघ्रतापूर्वक छापा जा रहा है। जिन लोगोंका वार्षिक मूल्य रु० ७.५० मनीआर्डरसे आ रहा है, उनका नाम नये ग्राहकोंमें लिखकर फरवरीसे निकले हुए मासिक अङ्क भेज दिये जाते हैं। सं०शिवपुराणाङ्क तैयार होनेपर रजिस्ट्रीसे भेज दिया जा सकेगा।

जो वी० पी० से मँगवाना चाहते हों वे उसके लिये आर्डर भेजनेकी कृपा करेंगे। सं० शिवपुराणाङ्कके तैयार हो जानेपर आगेके मासिक अङ्कोंसहित उनकी सेवामें वी० पी० भेजी जा सकेगी।

## 'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क ( डाकखर्च सबमें हमारा है )

२४ वें वर्षका हिंदू-संस्कृति-अङ्क—पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६.५० ( छः रुपये पचास नये पैसे ), साथमें अङ्क २-३ विना मूल्य।

२९ वें वर्षका संतवाणी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, तिरंगे चित्र २२ तथा इकरंगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, मूल्य ७.५० ( सात रुपये पचास नये पैसे )।

३३ वें वर्षका मानवता-अङ्क—जनवरी १९५९ का विशेषाङ्क केवल प्राप्य है, मूल्य ७.५०।

३४ वें वर्षका संक्षिप्त देवीभागवताङ्क—जनवरी १९६० का विशेषाङ्क केवल प्राप्य है, मूल्य ७.५० है।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

## The Kalyana-Kalpataru

Annual subscription Rs. 4.50 ( Rupees four and fifty nP. )

OLD SPECIAL NUMBERS STILL AVAILABLE

1. The Gītā-Tattva Numbers—II and III Unbound............ Price Rs. 5.00 nP.
   ( An exhaustive commentary on the Bhagavadgītā along with the original Sanskrit text from chapter 7 to 18 @ Rs. 2.50 nP. each )
2. The Bhāgavata Numbers—I, II, III, IV, V, VI. ( with Māhātmya ) Rs. 15.62 nP.
   ( An English translation with the original Sanskrit text of the Bhāgavata from Skandhas I to XII @ Rs. 2.50 nP. each )

postage free in all cases.

*Manager*—KALYANA-KALPATARU' P.O. Gita Press ( Gorakhpur )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नयी योजना ! कुछ नयी पुस्तकें

# आदर्श चरितावली

( लेखक—ठा० श्रीसुदर्शनसिंहजी )

देशके सुप्रसिद्ध ऋषि, मुनि, आचार्य, संत, महात्मा, धर्म-प्रचारक एवं प्रमुख महापुरु जीवनियोंके अध्ययनसे चरित्र-निर्माणमें कितनी भारी सहायता मिलती है, इसी दृष्टिकोणको सामने रख 'आदर्श चरितावली' प्रकाशित की जा रही है। इसके छः भाग प्रकाशित करनेका विचार है। जिनमेंसे प्रकाशित हो चुके हैं। चौथा प्रायः तैयार है। पाँचवाँ और छठा भी यथाशीघ्र प्रकाशित करनेका विचार

प्रत्येक भागमें सोलह-सोलह चरित्र और उनके चरितनायकोंकी शिक्षा एवं रेखाचित्र हैं। आर्टपेप दो रंगमें छपे हुए मुख-पृष्ठ हैं। मूल्य प्रत्येक भागका केवल पच्चीस नये पैसे रक्खा गया है। डाकखर्च अ

## आदर्श चरितावली ( भाग १ )—[ *ऋषि-मुनि-शिक्षा* ]

इस भागमें जिन चुने हुए ऋषि-मुनि-संत-भक्तोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षाओंसहित दिये गये उनके नाम हैं—( १ ) सनकादि कुमार, ( २ ) देवर्षि नारद, ( ३ ) महर्षि दधीचि, ( ४ ) महर्षि वशिष्ठ, ( महर्षि विश्वामित्र, ( ६ ) महर्षि मुद्गल, ( ७ ) महर्षि वाल्मीकि, ( ८ ) भगवान् वेदव्यास, ( ९ ) श्रीशुक ( १० ) महर्षि याज्ञवल्क्य, ( ११ ) श्रीयामुनाचार्य, ( १२ ) भक्तश्रेष्ठ नरसी मेहता, ( १३ ) श्रीसूर ( १४ ) गोस्वामी तुलसीदास, ( १५ ) मीराँबाई और ( १६ ) श्रीमद्‌राजचन्द्र।

## आदर्श चरितावली ( भाग २ )—[ *आचार्योंके उपदेश* ]

इस भागमें जिन चुने हुए विभिन्न आचार्य, मतप्रवर्तक तथा युगनायकोंके सोलह चरित्र उ शिक्षाओंसहित दिये गये हैं, उनके नाम हैं—( १ ) भगवान् ऋषभदेव, ( २ ) श्रीमहावीर स्वामी, ( भगवान् बुद्ध, ( ४ ) श्रीशङ्कराचार्य, ( ५ ) श्रीरामानुजाचार्य, ( ६ ) श्रीनिम्बार्काचार्य, ( ७ ) श्रीमध्वाचार्य, ( श्रीवल्लभाचार्य, ( ९ ) श्रीरामानन्दाचार्य, ( १० ) श्रीचैतन्य महाप्रभु, ( ११ ) संत कबीर, ( १२ ) गुरु नानक (१३) महात्मा श्रीचन्द्र, (१४) संत दादूदयाल, (१५) संत सुन्दरदास और (१६) महात्मा रामचरण रामस्ने

## आदर्श चरितावली ( भाग ३ )—[ *संत-शिक्षा* ]

इस भागमें जिन चुने हुए संत-महात्मा-योगी-साधकोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षाओंस दिये गये हैं, उनके नाम हैं—( १ ) श्रीज्ञानेश्वर, ( २ ) श्रीनामदेव, ( ३ ) श्रीएकनाथ, ( ४ ) सम रामदास स्वामी, ( ५ ) श्रीतुकाराम, ( ६ ) श्रीरामकृष्ण परमहंस, ( ७ ) स्वामी विवेकानन्द, ( ८ ) स्वा रामतीर्थ, ( ९ ) स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती, ( १० ) महात्मा तैलंगस्वामी, ( ११ ) स्वामी भास्करानन ( १२ ) गोस्वामी विजयकृष्ण, ( १३ ) प्रभु जगद्‌बन्धु, ( १४ ) रमण महर्षि, ( १५ ) योगिराज अरवि और ( १६ ) स्वामी योगानन्द। तीनों भागोंका एक साथ मूल्य .७५ डाकखर्च .७५ कुल १.५०।

## एक लोटा पानी ( लेखक—श्रीपारसनाथजी सरस्वती )

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-सं० १८४, मूल्य .७५ ( पचहत्तर नये पैसे ) डाकखर्च .

लेखककी समय-समयपर 'कल्याण' में प्रकाशित जीवनको ऊँचा उठानेवाली चौबीस रोचक कहानि का सुन्दर संग्रह है। कहानियोंके शीर्षक हैं—( १ ) एक लोटा पानी, ( २ ) बलिदान, ( ३ ) शत्रुता मारो, शत्रुको नहीं, ( ४ ) मूर्तिमान् परोपकार, ( ५ ) शुभचिन्तनका प्रभाव, ( ६ ) कहानीका असर, ( ७ ७४॥, ( ८ ) महाकाल, ( ९ ) भक्त रानी मैनावती, ( १० ) योगी गोरखनाथजी, ( ११ ) गुरु ही ब्रह्मा, वि और महेश्वर हैं, ( १२ ) गुरु गुड़ ही रहे, चेला चीनी हो गया, (१३) भगत रविदास, ( १४ ) मौजी भग ( १५ ) तबसे बैठा देख रहा हूँ फिर आनेकी राह, ( १६ ) हिंदू राज्य कैसे गया, (१७) प्रभुकी अहैतुकी कृ ( १८ ) सिव चतुरानन देख डेराहीं, ( १९ ) बालक बीरबलकी बुद्धिमानी, ( २० ) अहिंसाकी विज ( २१ ) गोभक्त रामसिंह, ( २२ ) मानवता और जातीयता, ( २३ ) दैवी सी० आई० डी० औ ( २४ ) एक स्वामिभक्त बालक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संस्करण—१,४८,००० ( एक लाख अड़तालीस हजार )

# विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़ २०१९, जून १९६२



## चित्र-सूची



वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
( १५ शिलिंग )

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण
भारतमें
विदेशमें
( १०

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ } गोरखपुर, सौर आषाढ़ २०१९, जून १९६२ { संख्या ६ पूर्ण संख्या ४२७

## बालकरूप राम गुरुकी गोदसे उतर भागे

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे ।
महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु सजल नयन,
तनु पुलक, रोम-रोम जागे ॥
लिये गोद, धाये गोद तें मोद मुनि मन अनुरागे ।
निरखि मातु हरषी हिये आली ओट कहति
मृदु बचन प्रेमके-से पागे ॥
तुम्ह सुरतरु रघुबंसके, देत अभिमत माँगे ।
मेरे बिसेषि गति रावरी, तुलसी प्रसाद,
जाके सकल अमंगल भागे ॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद रक्खो—सबके अंदर समरूपसे सर्वथा निर्दोष भगवान् विराजमान हैं। जितने भी दोष हैं, सब बाहरी हैं; स्वरूपगत नहीं हैं। तुम दोष देखोगे तो तुम्हें दोष दिखायी देंगे और भगवान्को देखोगे तो भगवान्! व्यवहार बाहरी स्वरूपके अनुसार करनेमें आपत्ति नहीं है, पर वह करो केवल व्यवहारके लिये ही, और मन-बुद्धिमें निश्चय रक्खो कि इस रूपमें स्वयं भगवान् ही अभिव्यक्त हैं।

याद रक्खो—यदि किसीमें कोई दोष दिखायी देते भी हैं तो वे दोष वस्तुतः हैं ही, ऐसी निश्चित बात नहीं है। सम्भव है तुम्हारी द्वेषदृष्टि ही उसमें दोषकी कल्पना करती हो। और यदि दोष हैं भी तो यह कभी मत मानो कि वे दोष सदा बने ही रहेंगे। आयी हुई चीज चली भी जायगी ही।

याद रक्खो—यदि तुम किसीमें केवल दोष ही देखते हो और तुमने यह निश्चय कर रक्खा है कि ये दोष तो इनमें सदा रहेंगे ही, तो तुम अपना और उसका दोनोंका अहित कर रहे हो; उसमें दोषका आरोप करके तुम अपनी दृढ़ भावनासे उन्हें यथार्थ दोष बनानेमें सहायता करते हो, अपने दृढ़ निश्चयसे उसमें दोषोंके सदा बने रहनेमें सहायता करते हो और दोष दीखनेके कारण सदा उसके प्रति द्वेषबुद्धि रखकर स्वयं जलते और उसे जलाते रहते हो। तुम्हारी द्वेषबुद्धि उसके मनमें भी तुम्हारे प्रति द्वेष पैदा कर देती है। इस प्रकार तुम द्वेषका एक बड़ा दुरूह जाल बना लेते हो और उसमें फँसकर सदा दुखी रहते हो। या एक विशाल विषवृक्ष लगाकर उससे जर्जरित होते रहते हो।

याद रक्खो—यदि तुम किसीमें दोष न देखकर या गुण देखकर उससे प्रेम करते हो, सदा अपनी मधुर सुधामयी सद्भावना देते हो तो अपना और उसका दोनोंका सहज ही हित करते हो। तुम्हारी प्रेमभरी गुणदृष्टि उसमें गुणोंका निर्माण करती है, उन्हें बढ़ाती है और स्थायी बनाकर उसके जीवनको मधुर सुधापूर्ण सद्गुण बनानेमें सहायता करती है। यों जब तुम उसका हि[त] साधन करते हो तो स्वाभाविक उसके द्वारा तुम्हा[रा] हितचिन्तन और हितसाधन होता है। यह निश्चय मा[नो] कि तुम दूसरेको जो दोगे, वही अनन्तगुना हो[कर] तुम्हारे पास लौट आयेगा। द्वेष दोगे तो द्वेष, दुः[ख] दोगे तो दुःख, प्रेम दोगे तो प्रेम और सुख दो[गे] तो सुख!

याद रक्खो—तुम्हारा वास्तवमें कोई शत्रु नहीं है, तुम्हारे मनमें रहनेवाला शत्रुभाव ही शत्रु है। तुम्हा[रे] प्रति यदि कोई सचमुच ही शत्रुता करता हो, यद्य[पि] बहुत बार तो यदि कोई शत्रुता करता दीखता है, तो व[ह] तुम्हारी अपने मनमें रही शत्रुभावनासे ही दीखता है। यह निश्चित नहीं है कि वह शत्रुता करता ही हो। परंतु तुम स्वयं उसे अपनी ही भूलसे शत्रु मानकर उसमें शत्रुताके अंकुर उत्पन्न करके उसे शत्रु बना लेते हो। और ठीक इसके विपरीत सचमुच शत्रुता करनेवाले शत्रुको भी तुम अपनी प्रेमभरी मैत्रीभावनासे प्रेम-दान करके—सहज ही उसको सुख प्रदान तथा उसका निरहंकार गु[प्त] हित-साधन करके मित्र बना सकते हो। तुम अप[ना] हित चाहते हो, सुख चाहते हो, अपने लिये अमृ[त] चाहते हो तो बस, सभीका सदा प्रेमपूर्वक हित कर[ते] रहो, सभीको सदा प्रेमपूर्वक सुख देते रहो और सभी[को] सदा अमृत वितरण करते रहो।

याद रक्खो—तुम्हारा किसीके सम्बन्धमें भी अशुभ निश्चय—अशुभके निर्माणके हेतु तथा सहायक बनक[र] तुम्हारा और उसका दोनोंका निश्चय ही अहित करेगा और शुभ निश्चय दोनोंका हित करेगा। अतएव सबमें परम मङ्गलमय, परम शुभ-स्वरूप भगवान्को देखो, सबके अंदर सदा विराजित भगवान्को जगाओ, उन्हें पूर्ण और उनका प्रकाश-विकास करके उसको तथा अपनेको धन्य कर दो। तथा ऐसा करके स्वयं भी परम धन्य हो जाओ।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

( मूल अंग्रेजी लेखक——ब्र० जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी )

[ अनुवादक—पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि ]

[ गताङ्क पृष्ठ ९०२ से आगे ]

सृष्टि-रचनाकी कथा और उपनिषद् और बाइबिलके कथनोंपर आधारित अपने अनुमानोंके अलावा भी ईश्वरकी सर्वव्यापकता भी, जिसे सभी आस्तिक और आर्यसमाजी भी, मानते हैं, अद्वैतवादकी निर्दोषताको सिद्ध करनेमें पर्याप्त है। हमने जान-बूझकर इस वादको एक 'निश्चित सिद्धान्त' ( Theorem ) के नामसे पुकारा है; क्योंकि यह वाद भी गणितशास्त्रके 'लोगारिथमिक थ्योरम' ( Logarithmic Theorem ) 'एक्सपोनेन्शियल थ्योरम' ( Exponential Theorem ) और 'डेमॉयर्स थ्योरम' ( Demoivre's Theorem ) अथवा २+२=४ के समान ही एक निश्चित सिद्धान्त है।

जब हम ईश्वरको सर्वव्यापी अथवा सबमें ओतप्रोत कहते हैं, तब हमारा तात्पर्य क्या होता है ? यदि हम प्रतिक्षण और प्रतिदिन अपने मुँहसे बोलनेवाले शब्दोंके ठीक-ठीक अर्थोंका स्मरण करें तो यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे साधारण शब्दोंमें भी अद्वैतवादका दर्शन भरा होता है। अब हम बर्तन, कपड़ा और सोनेके आभूषणोंका उदाहरण लेकर यह देखेंगे कि उनमें कौन-कौन-सी चीज़ ओतप्रोत है। निस्संदेह उनमें कुम्हार, जुलाहा और सुनार ओतप्रोत नहीं हैं; अपितु मिट्टी, धागा और सोना ही इन पदार्थोंकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, ऊँचाई संक्षेपतः सभी आकारोंमें ओतप्रोत है। दूसरे शब्दोंमें निर्माता नहीं, अपितु उपादान ही, जिससे उस पदार्थकी रचना होती है, उस पदार्थमें व्यापक होता है। अतः परमात्माकी सर्वव्यापकता भी इस बातको निर्विवादरूपसे सिद्ध करती है कि सृष्टिकी रचनामें उपादान परमात्मा है।

यह भी निस्संदेह सत्य है कि सृष्टिके पूर्व ब्रह्मको छोड़कर और कोई नहीं था, अतः वही इस जगत्का निर्माता भी हुआ। इसी कारण वेदान्तशास्त्रमें उसे इस विश्वका 'अभिन्ननिमित्तोपादान कारण' बताया है अर्थात् वही इस विश्वका उपादान है और वही निर्माता भी। वह इस विश्वमें अपनी निर्माणशक्तिके कारण व्यापक नहीं है अपितु उपादान-शक्तिके कारण है।

यहाँ हमारा दूसरा प्रश्न यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक कैसे हो सकता है ? गीतामें कहा है—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥

'मैं प्रत्येक शरीरमें जीवात्माके रूपमें रहता हूँ।' और सभी आस्तिक इस बातपर एकमत हैं कि वह सर्वव्यापक है। पर क्या सर्वथा भिन्न गुण-धर्मवाले दो तत्त्व एक स्थानपर रह सकते हैं ? उन दोनोंका एक स्थानपर रहना क्या कभी सम्भव है ? क्योंकि भौतिकशास्त्रके 'विस्तारका सिद्धान्त' ( Principles of Extension ) आदि सिद्धान्तोंके अनुसार सर्वथा भिन्न गुण-धर्मवाले पदार्थ एक ही कमरेमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर तो रह सकते हैं, पर एक ही स्थानपर कभी भी नहीं रह सकते। उदाहरणके लिये एक कमरेके आधे स्थानपर अँधेरा हो और आधेमें उजाला हो, यह तो हो सकता है। पर जिस जगह अँधेरा हो; उसी स्थानपर उजाला अथवा जहाँपर उजाला हो वहींपर अँधेरा भी हो, यह बात बिल्कुल असम्भव है। यदि तुमसे यह कहा जाय कि दो व्यक्ति एक ही स्थानपर हैं तो तुम झट यह अनुमान कर लोगे कि वे दो व्यक्ति न होकर दो नामधारी एक ही व्यक्ति होगा। यदि रामायणका एक श्लोक यह बतलाता है कि रामने रावणको मारा और दूसरा श्लोक बताता है कि सीतापतिने रावणको मारा, तो चाहे तुम रामके नामसे अनभिज्ञ ही क्यों न होओ, इस बातको तत्क्षण समझ जाओगे कि राम और सीतापति एक ही व्यक्तिके नाम हैं। इसी प्रकार जब हम यह पढ़ते हैं कि इस शरीरमें परमात्मा भी है और आत्मा भी, तो हम उन दोनोंकी एकताका अनुमान कर लेते हैं; इसी प्रकार विश्वमें भी।

## माया

यही मायावादका स्रोत है। जब हम कहते हैं **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** ( केवल ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है ) तो इसका तात्पर्य क्या है ? क्या हमारा यहाँ मतलब यह है कि हमारे चारों ओरका संसार मिथ्या है, झूठ है ? 'वास्तविक, अवास्तविक और मिथ्या' ये तीन विकल्प होते हैं, जिन्हें हम अपनी नासमझीके कारण इन्हें ( अवास्तविकता और मिथ्याको ) एक कर देते हैं। इसी अपने सदोष ज्ञानके कारण जॉन्सनके समान विश्वास्तित्ववादी दार्शनिक ( Idealism ) अद्वैतवादको दोषपूर्ण बताकर हमें यह समझानेकी कोशिश करते हैं कि अद्वैतवादमें सृष्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयक साधारण ज्ञानका भी अभाव है। पर संस्कृतका 'मिथ्या' शब्द 'झूठ' का वाचक नहीं है। झूठका अर्थ है कि किसी कामको न करते हुए भी उसको करनेका बहाना-सा करना। पर मिथ्यासे इस बातका द्योतन नहीं होता। कोई भी इस बातसे इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे चारों ओरके संसारका कोई अस्तित्व नहीं है। पर ये पदार्थ वास्तवमें हैं क्या, यह कोई नहीं जान सकता। उदाहरणके लिये, हम किसी चीजको परीक्षण करते हैं और देखते हैं कि किन क्रियाओंद्वारा हम उसका परीक्षण कर सकते हैं। हम देख, सुन, सूँघ, छू और चख सकते हैं और इन बाह्य इन्द्रियोंकी सहायताके बिना भी हम उसका विचार कर सकते हैं। इस प्रकार छः क्रियाएँ सम्भव हैं, पर ये सब कर्तृनिहित ( Subjective ) हैं, अर्थात् व्यक्तिके अंदरसे उत्पन्न होती हैं। कोई भी बाह्य ज्ञान बिना हमारे मस्तिष्कमें गये हमारे लिये सहायक नहीं हो सकता। दूसरे शब्दोंमें, जो कुछ भी हम देखते और अनुभव करते हैं सब प्रपञ्च ( Noumenon ) है और जो इसके पीछे है, जिसे अप्रपञ्च ( Phenomenon ) कहते हैं, उसका कोई एक निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसी कारण सब ज्ञान कर्तामें हैं अर्थात् 'सब्जेक्टिव' है। प्रकाण्ड आचार्य श्री-स्वामी मधुसूदन सरस्वती अपने ग्रन्थ 'अद्वैतसिद्धि'में लिखते हैं—

**मिथ्यात्वं सत्यत्वासत्यत्वाभ्यामनिर्वचनीयत्वम् ।**

( जो न सत्य हो, न असत्य हो अतः अनिर्वचनीय अर्थात् जिसका वर्णन न किया जा सके, उसे मिथ्या कहते हैं। )

## बिम्ब-प्रतिबिम्ब-वाद

इस वादको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ हम एक पदार्थ और उसके प्रतिबिम्बका उदाहरण देते हैं। जब एक लड़का अपने जीवनमें प्रथम बार दर्पण देखता है और उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखता है तो वह यह कल्पना करता है कि उसीकी तरहका एक दूसरा लड़का दर्पणके दूसरी ओर ठीक उतनी ही दूरीपर खड़ा हुआ है। तब वह लड़का दर्पणके चारों ओर यह देखनेके लिये कि वह दूसरा लड़का कौन है, घूमता है, पर उसे कोई दूसरा लड़का नहीं मिलता। यह अनुभव उसे यह निश्चय करा देता है कि दर्पणका प्रतिबिम्ब अवास्तविक है। पर इसे नितान्त असत्य भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उसने इस अपने प्रतिबिम्बके कारण ही विचार किया और दूसरे लड़केकी खोज की, पर उसे अवास्तविक पाया। पर उस स्थितिको बिल्कुल अवास्तविक या असत्य भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जब वह दुबारा दर्पणके सामने जाकर खड़ा होता है तो देखता है कि फिर वही दूसरा लड़का उसकी ओर टकटकी बाँधे देख रहा है। तब सत्य और वास्तविक वस्तुस्थिति क्या है? यह प्रतिबिम्ब इस अर्थमें सत्य है कि यह एक वास्तविक अनुभवका कारण होता है और इस अर्थमें असत्य भी है कि इस प्रतिबिम्बका पदार्थसे पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है। जबतक पदार्थ दर्पणके सामने है तभीतक प्रतिबिम्बका भी अस्तित्व है और पदार्थके हटा लिये जानेपर प्रतिबिम्बका भी नाश हो जाता है। इसी स्थितिको वेदान्तके पारिभाषिक शब्दोंमें 'मिथ्या या अवास्तविक' कहा गया है। दूसरे शब्दोंमें, यदि दो पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि एकके अस्तित्वपर दूसरेका भी अस्तित्व निर्भर हो, ( पर यह आवश्यक नहीं कि दूसरेके अस्तित्वपर पहलेका भी अस्तित्व निर्भर हो। उदाहरणके लिये, दर्पणमें पड़नेवाले प्रतिबिम्बका अस्तित्व पदार्थपर अवलम्बित है। यदि दर्पणके सामने पदार्थ होगा, तभी उसका प्रतिबिम्ब होगा। पर यह आवश्यक नहीं कि प्रतिबिम्बकी सत्तापर पदार्थकी भी सत्ता अवलम्बित हो। प्रतिबिम्ब न हो, पदार्थ तो रहेगा ही; क्योंकि पदार्थकी सत्ता प्रतिबिम्बसे पृथक् है ) तो इसे वेदान्तमें 'बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव' कहा गया है। प्रतिबिम्ब हमेशा पदार्थपर आधारित है। पदार्थके न होनेपर प्रतिबिम्ब भी नहीं रह सकता। पर पदार्थ स्वतन्त्र है, वह प्रतिबिम्बके बिना भी रह सकता है। दूसरी बात—बिम्ब ( पदार्थ ) की हलचल प्रतिबिम्बमें भी हलचल पैदा कर देती है। पर बिम्बमें बिना हलचल पैदा किये ही दर्पणको हिलाकर प्रतिबिम्बमें गति उत्पन्न की जा सकती है।

तीसरा—यदि दो दर्पणोंको आमने-सामने रखकर उन दोनोंके बीचमें एक पदार्थ रख दिया जाय तो उस पदार्थका दर्पणोंका भी प्रतिबिम्ब एक दूसरे दर्पणमें पड़ेगा। इस प्रकार एक ही पदार्थके अनेक प्रतिबिम्ब हो सकते हैं। पर कई विभिन्न पदार्थोंका एक प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। इन्हीं तीन नियमोंको घटाते हुए जब हम कहते हैं कि परमात्मा वास्तविक है और दूसरे सब पदार्थ अवास्तविक हैं, तो हमारा मतलब यहाँ यही है कि ब्रह्मकी स्वयंकी एक नित्य और स्वतन्त्र सत्ता है, जब कि दूसरे पदार्थ उसीसे उत्पन्न हुए हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे प्रतिविम्बका विम्बसे उत्पन्न होना। अतः उन पदार्थोंकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यह मिथ्या शब्दका तात्पर्य है। विम्ब और प्रतिविम्ब (ब्रह्म और जगत्) परस्पर सम्बन्धित है; क्योंकि बिम्बके बिना प्रतिबिम्बकी कोई सत्ता नहीं। पर वे भिन्न भी हैं; क्योंकि विम्ब वास्तविक है और प्रतिविम्ब अवास्तविक।

## परिणामवाद, बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद और विवर्त्तवाद

यहाँपर कोई यह कह सकता है कि यह माननेके बजाय कि ब्रह्मका प्रतिबिम्ब इन पदार्थोंमें पड़ रहा है, हम यही क्यों न मानें कि ब्रह्मके ही ये सब पदार्थ परिणाम हैं और इस तरह 'परिणामवाद' को ही क्यों न स्वीकार करें, जैसे कि वल्लभाचार्यजीने किया भी है। इस प्रश्नका उत्तर चार प्रकारसे दिया जा सकता है--

१–शुक्ल-यजुर्वेदमें एक मन्त्र आया है—

**पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥**

(वह ब्रह्म पूर्ण है, यह संसार भी पूर्ण है, यह पूर्ण उसी पूर्णसे प्रकट हुआ है, उस पूर्णमेंसे इस पूर्णके निकल आनेके बाद जो भी कुछ बचता है वह भी पूर्ण ही है।) अतः इसी प्रकार परिणामवाद भी इसीपर आधारित है कि वस्तुतः मिट्टी, धागा और सोनेके घड़े, कपड़े और आभूषणोंपर केवल प्रतिबिम्ब ही नहीं पड़ता, अपितु उतने समयके लिये मिट्टी घड़ेमें, धागा कपड़ेमें और सोना आभूषणोंमें परिणत हो जाता है। यह कथन ठीक है, पर जब मिट्टीसे घड़ा या धागेसे कपड़ा बन जाता है, तब वह फिर मिट्टी या धागा नहीं रह जाता; अपितु पूर्णतया घड़ा और कपड़ा बन जाता है। पर जैसे कि ऊपरके मन्त्रमें कहा है कि वह पूर्ण ब्रह्मसे जीवात्मा और संसार आदि प्रकट हो जानेपर पूर्ण ब्रह्म बाकी ही रहता है, यह सिद्धान्त परिणामवादमें नितान्त असम्भव है। यहाँ ऊपरके मन्त्रकी कल्पना ऐसी ही है कि जैसे कोई एक संदूक रुपयोंसे भरा हुआ हो और जो उसमेंसे रुपये निकालते रहनेपर खाली न हो और सर्वदा भरा रहे। यह कल्पना या सिद्धान्त विवर्त्तवादमें अथवा प्रतिबिम्बवादमें ही सम्भव है, जो क्रमशः यह कहते हैं कि यह जगत् रस्सीमें साँपके समान भ्रम है अथवा ब्रह्म इस जगत्के रूपमें प्रतिबिम्बित हो रहा है, अतः उस पूर्ण ब्रह्मसे पदार्थोंके प्रकट होनेपर भी उसके अस्तित्वकी कुछ हानि नहीं होती। अतः यह मन्त्र परिणामवादका खण्डन करता है।

२–यदि यह कहा जाय कि परमात्मा या ब्रह्म पदार्थके रूपमें परिवर्तित हो जाता है तो उस पदार्थके विनाशसे ब्रह्मका भी विनाश मानना पड़ेगा। इसपर यदि यह कहा जाय कि दूसरे पदार्थ भी तो सभी विद्यमान हैं अतः ब्रह्मकी भी विद्यमानता है। तो इस दलीलके बावजूद भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि नष्ट हुए पदार्थका जो ब्रह्म है वह भी नष्ट हो गया। इस प्रकार ब्रह्मके एक अंशकी मृत्यु माननी पड़ेगी। पर अद्वैतवाद इन आरोपोंसे मुक्त है; क्योंकि प्रतिबिम्बका विनाश बिम्बके विनाशमें कारण नहीं होता।

३–यदि परिणामवाद सत्य है और ब्रह्म जगत्के रूपमें परिवर्तित हो जाता है तो जगत्को सत्य मानना पड़ेगा और यदि जगत् सत्य है तो वेदान्तमें उसे अज्ञान, भ्रम और मोहयुक्त बताकर उसे छोड़नेके लिये तथा वर्णाश्रम, कर्म, उपासना, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि कठिनतम साधनोंके द्वारा उस ब्रह्मको प्राप्त करनेका आदेश क्यों दिया गया है?

४–श्रीमद्भागवतके 'रासपञ्चक'में श्री'प्रतिबिम्बवाद'का वर्णन निम्न शब्दोंमें हुआ है—

**यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।**

यहाँ ब्रह्म और सृष्टिके सम्बन्धकी तुलना उस बालकके साथ की गयी है जो अपने प्रतिबिम्बसे खेलता है।

अतः जो सनातन धर्मके वैष्णव-मतावलम्बी यह कहते हैं कि शंकराचार्यजीने अपनी ही कल्पनासे मायावाद या विवर्तवादका सृजन किया है और उसके लिये किसी भी प्राचीन शास्त्रका समर्थन प्राप्त नहीं है, उनसे हमें केवल इतना ही कहना है कि उनका यह आरोप नितान्त गलत है; क्योंकि वेद, भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत भी, जिसे वैष्णव बहुत आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, बिल्कुल स्पष्ट शब्दोंमें 'विवर्त्तवाद'का समर्थन करते हैं। यह भी कहना अनुचित न होगा कि इस वादके सृजनमें भगवान् शंकरकी कल्पनाका जरा भी अंश नहीं है, सब कुछ वेदादि शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तोंको ही उन्होंने नये रूपमें प्रस्तुत किया है। यद्यपि अपने पक्षकी पुष्टिके लिये अनेकों प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, पर यहाँ कुछ ही प्रमाणोंको उद्धृत किया जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**१–मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।**

( प्रकृति माया है और ईश्वर उसका स्वामी है। )

**२–अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।**

( ज्ञान अज्ञानके द्वारा ढक दिया गया है, इस कारण सब प्राणी मोहको प्राप्त होते हैं । )

**३–नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।**

( अपनी योगमायासे ढके हुए होनेके कारण मैं सबके लिये दृश्य नहीं हूँ । )

**४–दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥**

( तीन गुणोंसे युक्त इस मेरी मायाको पार करना बड़ा कठिन है । पर जो मुझे पा लेते हैं, वे इसे आसानीसे पार कर जाते हैं । )

**५–मायां ततान जनमोहिनीम् ।**

( मनुष्यको मोहित करनेवाली मायाको उसने फैलाया। )

**६–मन्यमानमिदं सृष्टमात्मानमिह मन्यते ।**

( स्वयंको तथा इस जगत्को बना हुआ समझकर वह मनुष्यको इस जगत्के साथ संयुक्त करता है । )

**७–यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ।**
**नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥**

( जो कुछ भी ज्ञान तुम मन, वाणी, आँख, श्रोत्र आदि इन्द्रियोंसे ग्रहण करते हो, उन्हें तुम पूर्णतया मानसिक, भ्रमयुक्त तथा नश्वर समझो । )

इनसे और अधिक स्पष्ट प्रमाण और कौनसे हो सकते हैं ! फिर भी श्रीमद्भागवतका एक और प्रमाण हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

**रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ।**

( जिस प्रकार साँप रस्सीमें आता है और फिर उससे गायब हो जाता है । )

केवल 'विवर्त्तवाद'को स्वीकार ही नहीं किया है अपितु शंकराचार्य तथा अन्य अद्वैतवादी विद्वानोंने इस वादको अनेक उदाहरणोंसे पुष्ट भी किया है । कई जगह चाक्षुष भ्रमको भी तथ्य मान लिया गया है । आधुनिक ग्रह-विज्ञानके अनुसार सूर्योदय और सूर्यास्त भी चाक्षुष भ्रम ही है ।

## व्याकरण-सम्बन्धी प्रमाण

अन्य भी प्रणालियाँ हैं जो आत्मा-ब्रह्मके एकत्वको सिद्ध करती हैं । यह प्रणाली, जिसे हम यहाँ बताने जा रहे हैं, एक आश्चर्यकारक प्रणाली है, जो प्रत्येक भाषामें रहती है, पर उसपर लोग ध्यान नहीं देते । केवल संस्कृतके ही नहीं, अपितु सभी भाषाओंके व्याकरणमें व्यक्तिवाचक सर्वनामके विषयमें यह आश्चर्यजनकता है । जब एक विद्यार्थी व्यक्तिवाचक सर्वनामके प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरुषके एकवचन और बहुवचनको पढ़ता है, तब उसके पाठमें एक ध्यान देने योग्य बात आती है । तृतीय वचनके 'वह' का बहुवचन क्या होगा ? वहका बहुवचन होता है 'वे'। यह 'वे' 'वह+वह'को मिलानेसे बनता है । इसी प्रकार 'तू' और 'तू' ( तू+तू ) को मिलानेसे 'तुम' बनता है । पर प्रथम पुरुषके बहुवचनके सम्बन्धमें यह बात नहीं ।

वस्तुतः प्रथम पुरुषका बहुवचन भ्रमपूर्ण है। जब तुम कहते हो 'हम' तो तुम्हारा मतलब होता है कि मैं और तुम या 'मैं' और 'वह' अर्थात् 'मैं' और 'तुम' या 'मैं' और 'वह'के मिलानेसे 'हम' बनता है न कि 'मैं' और 'मैं'के मिलानेसे । दूसरे शब्दोंमें, द्वितीय और तृतीय पुरुषमें एक ही प्रकारके सर्वनामोंको मिलानेसे ( वह+वह=वे, तू+तू=तुम ) बहुवचन बन जाता है, पर प्रथम पुरुषके विषयमें ऐसा नहीं है । वस्तुतः 'मैं' का बहुवचन नहीं बनाया जा सकता। 'हम' तो एक धोखा या मिथ्या है अतः यह हमने पूर्व ही बताया है कि 'मैं' शब्दद्वारा 'आत्मा'की अभिव्यक्ति होती है । भगवान् शंकरने भी अपने भाष्यके प्रथम वाक्यमें ही आत्माकी इस परिभाषाको रक्खा है—

**युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः ।**

'तू' शब्दद्वारा संसारकी अभिव्यक्ति तथा 'मैं' शब्द द्वारा आत्माकी अभिव्यक्ति होती है । इसका कारण यह है कि हमें अपने अंदरके तत्त्वका ही, जिसे आत्मा कहते हैं, ज्ञान होता है और दूसरे पदार्थोंका ज्ञान न होकर अनुमान होता है । दूसरे शब्दोंमें, प्रत्यक्ष अथवा साक्षात्कारका विषय हमारी आत्मा ही होती है ( इसको भगवान् शंकरके समान ही कार्डिनल न्यूमेन भी स्वीकार करता है ) अर्थात् प्रथम पुरुषका एकवचन ( मैं ) ही हमारे ज्ञानका विषय होता है और यह प्रथम पुरुषका एकवचन, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, बहुवचन नहीं हो सकता । बहुत-से 'मैं' न हो सकनेके कारण 'मैं' का बहुवचन भी मिथ्या ही है । अतः यह इस बातका निदर्शक है कि आत्मा ( जो 'मैं' द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यक्त होता है ) यद्यपि अनेक दीखता है, पर है एक ही ।

इस प्रकार व्याकरण भी परमात्मा, आत्मा और जगत्की एकताका प्रमाण है तथा अनेकताके पीछे छिपी हुई एकताके साक्षात्कार करनेमें हमारी सहायता करता है ।

## क्रियात्मक सम्बन्ध

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि 'यदि परमात्मा और हम एक हैं तो दोनोंकी क्रियाओंमें इतनी भिन्नता क्यों है ?' यह प्रश्न स्वाभाविक है, पर ध्यान और साक्षात्कारद्वारा इस बातको भी देखा जा सकता है कि वास्तवमें दोनोंकी क्रियाएँ भिन्न नहीं हैं अपितु एक ही हैं । जिस प्रकार कमरेके सब दरवाजे बंद कर देनेपर एक छोटी-सी दरारद्वारा थोड़ी-सी ही सूर्यकी किरण अंदर आ पाती है, उसी प्रकार हमारी स्थिति है । हम भी परमात्माके समान ही कार्य करते हैं, पर ये हमारे कार्य शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिद्वारा सीमित कर दिये जाते हैं । अब यहाँ हम यह देखेंगे कि हम हर समय करते क्या रहते हैं ।

जब सूर्य अस्त होता है तब दिनभरतक प्रकाश देनेवाली उसकी किरणें कहाँ गायब हो जाती हैं ? इसके उत्तरमें तुम यह कह सकते हो कि सूर्य अस्त होते हुए किरणोंको भी अपने साथ ही समेट ले जाता है । ठीक है, पर यह तुम्हारा कथन उन्हीं किरणोंके बारेमें ठीक हो सकता है, जो अभी भी सूर्यके अंदर हैं, पर जिन किरणोंको सूर्य बाहर फेंक चुका है, उनका क्या होता है ? क्या वे सूर्यास्तके बाद भी चमकती रहती हैं ? बिल्कुल नहीं, वह सूर्य उनको भी अपने साथ ही समेटकर ले जाता है । अतः सूर्य भी एक मकड़ीकी तरह ही काम करता है, अर्थात् जिस प्रकार एक मकड़ी अपने अंदरसे ही जालेको निकालती है और फिर बादमें अपने अंदर ही समेट भी लेती है, उसी प्रकार सूर्य भी करता है । इसी प्रकार जब हम सोने जाते हैं तो हम अपने साथ बाहरके तमाम अनुभवोंको अपने साथ ले जाते हैं । जब कभी-कभी हम उन अनुभवोंको परस्पर मिला देते हैं तो हम उस समय 'स्वप्नावस्था'में पहुँच जाते हैं और कभी-कभी जब हम उन्हें अपने ही अंदर किसी सुरक्षित स्थानपर इकट्ठा कर देते हैं तो हम 'सुषुप्ति'में पहुँच जाते हैं, फिर जब हम जागते हैं तो सूर्यके समान हम भी उन सारे अनुभवोंको फिर अपने साथ ले आते हैं । ये हैं हमारे कार्य, जो हम सर्वदा करते रहते हैं । क्या हमारे ये कार्य परमात्माके सदृश नहीं हैं ? क्या हम सोते और जागते नहीं हैं ? क्या हम अपने संसारका सुषुप्त्यवस्थामें; जिस प्रकार परमात्मा प्रलयमें संसारका नाश करता है; उसी प्रकार नाश नहीं करते और फिर जिस प्रकार परमात्मा प्रलयावस्थाके बाद संसारकी पुनः उत्पत्ति करता है; क्या उसी प्रकार हम भी अपने संसारकी पुनः उत्पत्ति नहीं करते ? और क्या हम जाग्रदवस्थामें अपने संसारका पालन नहीं करते ? अतः जब हम परमात्माके समान ही संसारकी उत्पत्ति, पालन और नाशके कार्य करते हैं तो और इससे अधिक समानता क्या हो सकती है ?

इसके अतिरिक्त जाग्रदवस्थामें भी ये तीनों कार्य हो सकते हैं । जब तुम बिजली बुझा देते हो तथा सोनेसे पूर्व अपने कमरेको पूर्ण अन्धकारमय बना देते हो तथा अपनी आँखोंको बंद करके अपना ध्यान अपने किसी मित्र या सम्बन्धीपर केन्द्रित करते हो और उसे देखना चाहते हो तो वह मूर्ति तुम्हारे सामने प्रकट हो जाती है । यदि तुम्हारा संकल्प दृढ़ होता है तो मूर्तियाँ स्वयं प्रकट हो जाती हैं । क्या वह रचना नहीं है ?

दूसरी ओर जाग्रदवस्थामें भी तथा प्रकाशके होनेपर भी अपनी आँखोंको बंद कर लेते हो और कहते हो कि प्रकाश नहीं है । अथवा जब तुम्हारा मन एक जगह लगा हुआ हो, तो यद्यपि तुम्हारी आँखें एवं कान खुले रहते हैं, फिर भी तुम कुछ देखते या सुनते नहीं हो । यदि एक डाकू या चोर आकर तुम्हारी चीजें चुरा ले जाय तो भी तुम्हें उसका ज्ञान नहीं होता ।

'श्रीकृष्णकर्णामृत'में एक बहुत सुन्दर श्लोक है, जो एक तरफ तो श्रीकृष्णकी लीला बताता है और दूसरी तरफ नैतिकता, मनोविज्ञान और तत्त्व-ज्ञानकी शिक्षा भी देता है । श्लोक इस प्रकार है—

**मातः किं यदुनाथ देहि चषकं किं तेन पातुं पयः**
**तन्नास्त्यद्य कदास्ति वा निशि निशा का वान्धकारोदये ।**
**आमील्याक्षियुगं निशाप्युपगता देहीति मातुर्मुहु-**
**र्वक्षोजांशुककर्षणोद्यतकरः कृष्णः स पुष्णातु वः ॥**

'माता यशोदा बालकृष्णको एक निश्चित समयपर दूध दिया करती थीं । एक दिन मनोरञ्जनके लिये बालकृष्णने अपनी माँको बुलाया और दूध माँगा । यशोदाने कहा 'मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय तुम्हें दूध नहीं दूँगी' श्रीकृष्णने पूछा 'तो मुझे कब मिलेगा ?' उसने कहा 'रातको' श्रीकृष्णने फिर पूछा कि 'रात कब होती है।' उसने उत्तर दिया कि 'जब अँधेरा हो जाता है' जैसे ही यशोदाने यह कहा श्रीकृष्णने झट आँखें मूँद लीं और कहा कि 'माँ ! अब अँधेरा हो गया है, लाओ, मुझे दूध दो।'

इस प्रकार यद्यपि तुम्हारे चारों ओर अनेक पदार्थ हैं, पर तुम्हारे लिये उनकी कुछ भी सत्ता नहीं है; क्योंकि तुम्हारा ध्यान उनकी तरफ नहीं है। यह सब क्या बताता है ? यही कि इस मनपर ही सारा संसार तथा सारे पदार्थ आश्रित हैं। जो कुछ भी हम सुनते या देखते हैं सब मनके कारण ही, और यह मन ही उनकी निर्दोषता और दोषताकी सिद्धि करनेवाला है। यही कारण है कि आधुनिक पाश्चात्त्य दार्शनिक क्षेत्रसे बाह्यास्तित्ववाद ( Realism ) सर्वदाके लिये खतम हो गया और उसका स्थान लिया है अन्तः-अस्तित्ववाद ( Idealism ) ने। आयरलैंडका बिशप बर्कले इस वादका समर्थक था, जिसने इस वादको सारे यूरोपमें फैलाया। परिणाम यह हुआ कि कार्लाइल, इमर्सन, काण्ट, हेगेल, थॉमस हिलग्रीन डॉयसन आदि सभी आधुनिक दार्शनिक इस वादके समर्थक हो गये। तथा यूरोपमें नये विचारोंको फैलानेवाले रॉल्फ वाल्डो ट्राइन, सिडनी फ्लोवर, ऐला व्हीलर विलकॉक्स, विलियम वॉकर एट्किन्सन, प्रोफेसर जेम्स, केनी आदि महान् मनोवैज्ञानिकोंने भी इस वादका समर्थन किया। पर जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि कॉण्ट आदि महान् दार्शनिकोंने भी, यद्यपि इस वादको माना, पर इसका खुले रूपमें प्रचार करनेका कभी साहस नहीं किया जैसा कि श्रीशंकराचार्यने किया था। पर फिर भी उन्होंने बाह्यास्तित्ववाद ( Realism ) का जो सदियोंसे चला आ रहा था, डटकर विरोध किया। अब यह निश्चित है कि एक समय वह आयेगा कि जब अमेरिका और यूरोपके दार्शनिक विचार पूर्णरूपसे अद्वैतवादी हो जायँगे और वे सब भगवान् शंकरके विचारोंका प्रसार सर्वत्र करेंगे।

( क्रमशः )

# तुम तो केवल निमित्त बनो

**मन-इन्द्रिय-शरीर सबके हैं स्वामी एकमात्र भगवान।**
**इनसे उनकी ही बस, सेवा करो निरन्तर अव्यवधान॥**
**भवन-विभूति, मान-मर्यादा, पद-ऐश्वर्य अमल आराम।**
**सभी उन्हींकी वस्तु, सभीसे सेवा करो समुद अविराम॥**
**प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति, प्रतिभा-प्रभुता, शुचि प्रशंस्य परिवार।**
**करते रहो समर्पित सब ही, प्रभुको सादर निरहंकार॥**
**सबमें सदा विराजित प्रभु हैं, सब ही हैं प्रभुके आकार।**
**आदर करो, सभीको सुख दो यथायोग्य बूते अनुसार॥**
**विनयी बनो, अहंता छोड़ो, नष्ट करो सब मद-अभिमान।**
**बनो सहिष्णु, संयमी, शुचि-मन, सुहृद्, साधु, शुभ-गति-मतिमान॥**
**दुखद-परुष-कटु-अहित भाव-वचनोंका कर पूरा परिहार।**
**बनकर मधुर, मधुरता बाँटो, करो मधुर हितका विस्तार॥**

**सबको सुख हो, सबका हित हो, पायें सभी शान्ति-कल्याण।**
**अशुभ-अशान्ति, दुःख-दुर्मतिसे पा जायें तुरंत ही त्राण।**
**इसी भावनासे सब सोचो, करो इसीसे सारे कर्म।**
**इस प्रकारकी प्रभु-सेवाको समझो सदा मुख्यतम धर्म।**
**पोषण करो सभीका देकर सुख-सम्पत्ति सदा सानन्द।**
**प्रभुपद-प्रीति करो वितरण, यों सेवाके द्वारा स्वच्छन्द।**
**समझो सदा पूर्ण निश्चयसे तुम तो हो बस, केवल यन्त्र।**
**यन्त्री वही, फूँकते सबके कानोंमें वे ही निज मन्त्र।**
**प्रेरक वही, शक्ति उनकी ही, वस्तु उन्हींकी, वे ही भोग्य।**
**भोक्ता स्वयं एक बस वे ही, तुम केवल 'निमित्त' हो योग्य।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वर्तमान दोषोंके निवारणकी आवश्यकता

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

दोषोंके निवारणके लिये लिखनेका मेरा अधिकार और सामर्थ्य नहीं है; क्योंकि इस विषयमें वही पुरुष लिख सकता है जो सर्वथा निर्दोष एवं प्रभावशाली हो एवं उसीका असर पड़ता है। मैं तो एक साधारण आदमी हूँ, किंतु सबके सुझावके लिये लिखा जाता है।

वर्तमान समयमें हमलोगोंमें बहुत-से दोष आ गये हैं और बढ़ते ही जा रहे हैं। उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार करके उनके निवारणके लिये प्रयत्न करना विशेष आवश्यक है। बहुतसे मनुष्य तो अर्थलोलुप होकर संसारके पतनोन्मुख प्रवाहमें ही बह रहे हैं, कितने ही मनुष्य पदके अभिमान और मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लोभसे मोहित हुए पतनकी ओर जा रहे हैं। बहुतसे मनुष्योंको श्रद्धाकी कमीसे ईश्वर, धर्म, सत्संग और शास्त्रकी बातें अच्छी ही नहीं लगतीं और कोई-कोई तो इन सबको व्यर्थ समझकर उपेक्षा कर देते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थको त्यागकर अपना और संसारका हित और परमार्थसाधनकी ओर दृष्टि बहुत ही कम लोगोंकी है, यह बहुत ही विचारणीय विषय है।

आय-कर, बिक्री-कर, मृत्यु-कर, सम्पत्ति-कर, दान-कर, विवाह-कर, व्यय-कर आदि करोंकी भरमारके कारण लोगोंकी नीयत बुरी होकर उनमें झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, धोखेबाजी, घूसखोरी आदि जोरोंसे बढ़ रही है। इन सब दोषोंके दूर होनेका कोई सरल उपाय समझमें नहीं आया। किसी बड़े व्यापारीसे न्याययुक्त व्यवसाय करनेके लिये कहा जाता है तो उसका यही उत्तर मिलता है कि 'इस युगमें न्याययुक्त व्यवसाय चल ही नहीं सकता, लाख रुपयोंसे अधिक वार्षिक आमदनी होनेपर सरकार ही अनेक प्रकारके करोंद्वारा अधिकांश रुपये ले लेती है। अतः इस जमानेमें न्यायपूर्वक व्यवसाय करके तो कोई लखपति-करोड़पति हो ही नहीं सकता।'

बहुत-से लोग चोरबाजारी करके प्रतिवर्ष लाखों रुपये एकत्र करते और सरकारसे छिपाकर गुप्तरूपसे रखते हैं। वे उनकी रक्षा भी बड़ी कठिनाईसे कर पाते हैं। किसीको न्याययुक्त सरकारी कर देनेके लिये कहा जाता है तो यह उत्तर मिलता है कि 'नाना प्रकारके झूठ-कपट, बेईमानी और इतना परिश्रम करके रुपये हम सरकारके लिये थोड़े ही उपार्जन करते हैं। सरकारका यदि मामूली कर होता तो वह उचित दिया भी जा सकता था, किंतु सरकारने इतने अधिक कर लगा दिये हैं कि यदि सरकारको सचाईसे न्यायपूर्वक सारी आमदनी बता दी जाय तो अधिकांश धन सरकार ही ले लेगी।' कोई स्वार्थत्यागकी बात कहता है तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं। यह अन्यायसे उपार्जित धन परोपकारमें विशेष खर्च नहीं होता; क्योंकि पापके द्रव्यसे प्रायः पाप ही होता है। यदि उस द्रव्यको परमार्थमें या परोपकारमें दिल खोलकर लगा दें तो उस पापका कुछ तो प्रायश्चित्त हो, किंतु उस काममें न लगाकर उस द्रव्यको ऐश-आराम-शौकीनीमें और विवाह-शादीमें ही खर्च करते हैं, जिससे उनका यह लोक भी बिगड़ता है और परलोक भी!

यदि किसीसे यह कहा जाय कि "धन और जीवन तो जितना भाग्यमें लिखा है, उतना ही मिलेगा, जरा भी ज्यादा-कम नहीं हो सकता, अतः ईश्वर और अपने भाग्यपर विश्वास रखकर झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी न करके न्याययुक्त व्यवहार करना चाहिये। यदि मान लें कि झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी करनेसे धन और जीवन अधिक मिलता है तो भी वह किस कामका? क्योंकि सचाईसे उपार्जित थोड़ा भी धन अमृतके समान है। उससे खानेके लिये रूखा-सूखा भी मिले तो वह भी अमृत है और अन्यायसे उपार्जित धनसे प्राप्त मेवा-मिष्टान्न भी विषके समान है। न्यायसे प्राप्त साधारण झोंपड़ी भी अच्छी और अन्यायसे प्राप्त महल भी किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामका ? वह भी विषके तुल्य ही है । न्यायपूर्वक थोड़ा भी जीवन उत्तम है और अन्यायपूर्वक बहुत लम्बा जीवन भी किस कामका ?' तो यह सुनकर वे निरुत्तर तो हो जाते हैं किंतु करते हैं वही जो सदा करते आये हैं । यह नहीं समझते कि मनुष्य-जीवन बहुत ही थोड़ा है और वह बड़े ही भाग्यसे, ईश्वरकी दयासे मिला है । अतः जिससे अपना शीघ्र उद्धार हो, उसी कार्यमें अपना जीवन बिताना चाहिये । इस बातको न सोचना-समझना बहुत ही दुःख, लज्जा और आश्चर्यकी बात है ।

विशिष्ट पदोंके लोभमें आकर बड़े-बड़े लखपति-करोड़-पति व्यक्ति भी मोहके कारण अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट हो जाते हैं । किन्हींको कोई उच्च पद प्राप्त हो जाता है तो वे उस पदके लोभ और अभिमानमें आकर मोहके कारण अपने धर्म, कर्म, न्याय, अन्याय, भूख, प्यास, सुख, दुःखकी कुछ भी परवा न करके उसीके पीछे अपने वास्तविक मानव-कर्तव्यको भूल जाते हैं ।

बहुत-से मनुष्य मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा पानेपर यह नहीं समझते कि यह मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा नाशवान् और क्षणिक है, यह आरम्भमें तो अमृतके समान प्रतीत होती है पर इसका परिणाम विषके समान है । इसीसे वे मोहके कारण अपने वास्तविक कर्तव्यको भूल जाते हैं । इस कारण उनमें दिखाऊपन आ जाता है, जिससे दम्भ-पाखण्ड बढ़ जाते हैं । एवं वे न करने योग्य दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन करने लगते हैं और करने योग्य सद्गुण, सदाचार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यसे वञ्चित रह जाते हैं । इसके फलस्वरूप उनकी इहलोक और परलोकमें दुर्गति होती है ।

बहुत-से मनुष्य नाटक, सिनेमा, क्लब, चौपड़, ताश, शतरंज, खेल-तमाशे आदि प्रमादमें समयको व्यर्थ बिताकर अपने जीवनको बर्बाद करते हैं । वे यह नहीं समझते कि लाखों रुपये खर्च करनेपर भी मनुष्य-जीवनके एक क्षणका समय भी नहीं मिल सकता । मनुष्यजीवनका समय अमूल्य है, उसको निःस्वार्थभा[illegible] भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, परोपकार ( लोकहित ) में लगा[illegible] पर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है ।

इस समय दहेजकी प्रथा भी दिन-पर-दिन उ[illegible] रूप धारण कर रही है । यद्यपि इसको रोकनेके लि[illegible] जनता तथा सरकारकी ओरसे प्रयत्न भी जारी है; कि[illegible] कोई सफलता नहीं मिल रही है । जहाँ पहले चौदह वर्ष[illegible] अवस्थाके और रजस्वला होनेके पूर्व ही कन्याका विवा[illegible] हो जाया करता था, वहाँ वर्तमान समयमें सोलह-सत्र[illegible] वर्षकी रजस्वला लड़कियाँ भी हजारोंकी संख्या[illegible] अविवाहिता ही हैं । इसमें, जो बहुत-से लोग वरपक्षवा[illegible] को उनकी इच्छाके अनुसार दहेजसे संतुष्ट नहीं क[illegible] सकते, यह भी एक प्रधान कारण है । कोई-कोई लड़[illegible] तो धनके अभावके कारण माता-पिताके कष्टको देख[illegible] आत्महत्या कर लेती है और किसी लड़कीके मा[illegible] अथवा पिता धनके अभावमें विवाह न कर सकने[illegible] कारण लड़कीको बड़ी देखकर दुखी हो आत्महत्या क[illegible] लेते हैं । विचारकर देखें तो इन हत्याओंका पाप अनुचि[illegible] दहेज लेनेवालोंको लगता है । प्रायः सभी प्रान्तों औ[illegible] जातियोंमें यह प्रथा व्यापक है । सभी लोगोंको इस[illegible] दूर करनेके लिये लेख, व्याख्यान, पत्र, सभा आ[illegible] उपायोंद्वारा जोरदार प्रयत्न करना चाहिये । जो को[illegible] व्यक्ति अपने कथनको स्वयं आचरणमें लाकर दिखा[illegible] है, वह जनताका बड़ा भारी उपकार करता है; क्योंकि[illegible] उसके आदर्शको देखकर दूसरोंपर भी असर पड़ता है[illegible] जो केवल कहता ही है, स्वयं आचरण नहीं करत[illegible] उसका कोई विशेष असर नहीं होता । आजकल कह[illegible] लिखनेवाले तो बहुत हैं, पर स्वयं आचरण करनेवा[illegible] कोई बिरला ही है ।

आचार-विचार भी दिन-पर-दिन नष्ट-भ्रष्ट होता [illegible] रहा है । खान-पानविषयक शौचाचार तो होटलों [illegible] बाजारू दुकानोंके कारण प्रायः नष्ट हो गया है । [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से होटलोंमें मछली, मांस, अंडा, मदिरा आदि घृणित पदार्थ भी शामिल रहते हैं। जो सर्वथा अपवित्र, शास्त्र-निषिद्ध और हिंसापूर्ण होनेके कारण स्वास्थ्य और धर्मके लिये महान् हानिकर हैं!

स्कूल-कॉलेज आदि शिक्षा-संस्थाओंमें धार्मिक शिक्षा न होनेके कारण बालकोंमें चञ्चलता और उच्छृङ्खलता भी बहुत बढ़ रही है। प्राचीन कालमें छात्रगण अपने आचार्य ऋषि-मुनियोंका बहुत अधिक आदर-सत्कार, सेवा-पूजा किया करते थे; किंतु इस समय विद्यार्थीगण अपने शिक्षकोंका उस प्रकारका आदर-सत्कार-सम्मान नहीं करते हैं। बल्कि कहीं-कहीं तो विद्यार्थी शिक्षकोंका अपमान भी कर बैठते हैं। यह बहुत ही अनुचित है। विद्यार्थियोंको अपनेको शिक्षा देनेवाले अध्यापकोंका सदा श्रद्धापूर्वक आदर-सत्कार-सम्मान करना चाहिये।

आजकल कारखानों, कार्यालयों या दूकानोंके मालिकों और मजदूरों या कर्मचारियोंका पारस्परिक व्यवहार भी पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक कटु हो गया है। अधिकांश मालिक मजदूरों या कर्मचारियोंसे काम तो अधिक लेते हैं और मजदूरी या वेतन कम देते हैं, इसी प्रकार मजदूर या कर्मचारी भी काम कम करके अधिक पारिश्रमिक लेना चाहते हैं। मालिक तो कर्मचारियोंका जैसा आदर-सत्कार और प्रेम करना चाहिये, वैसा नहीं करते तथा कर्मचारी मालिकोंका नहीं करते। इसी कारण उत्तरोत्तर प्रतिद्वन्द्विता, लड़ाई-झगड़े बढ़कर देशकी बहुत हानि हो रही है। पूर्वकालमें कर्मचारी मालिकोंको पिताके समान और मालिक कर्मचारियोंको पुत्रके समान समझते थे, इससे उनमें परस्पर बड़ा ही प्रेम और सुख-शान्ति रहती थी। प्रत्यक्षमें लड़ाई-झगड़ा और गाली-गलौज तो कभी नहीं होता था। अतः सभीको अपने-अपने कर्तव्यका निःस्वार्थभावसे पालन करते हुए इसका सुधार करना चाहिये।

इस समय गोजातिका भी बड़ा ह्रास होता जा रहा है। प्राचीन कालमें एक-एक नगरमें लाखों गौएँ रहा करती थीं। वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डमें कथा आती है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके पास त्रिजट नामक एक ब्राह्मण आये और उनसे धनकी याचना की। श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—'विप्रवर! मेरे पास बहुत-सी गौएँ हैं। आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकेंगे, वहाँतककी सब गौएँ आपको मिल जायँगी।' ब्राह्मणदेवने वैसा ही किया और उनको हजारों गौएँ प्राप्त हो गयीं, जिससे वे बड़े ही प्रसन्न हुए।

विचार कीजिये, जहाँ विनोदके रूपमें एक याचकको इस प्रकार हजारों गौएँ दानमें दी जाती हैं, वहाँ दाताके पास कितनी गौएँ हो सकती हैं? भागवत दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें वर्णन मिलता है कि नन्द-उपनन्द आदि गोपोंके पास लाखों गौएँ रहा करती थीं। श्रीकृष्णके जन्म-महोत्सवपर ही नन्दजीने दो लाख गौओंका दान किया था (अ० ५)। राजा नृगका इतिहास प्रसिद्ध ही है कि वे हजारों गौओंका दान प्रतिदिन किया करते थे (भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्ध अ० ६४)। महाभारतकालमें राजा विराटके पास लगभग लाख गौएँ थीं, जिनका हरण करनेके लिये कौरवोंकी विशाल सेनाने त्रिगर्तराज सुशर्माके साथ दो भागोंमें विभक्त होकर विराट-नगरपर चढ़ाई की थी। (महा० विराट० ३५)।

उस समय गौओंकी संख्या पर्याप्त होनेके कारण दूध, दही, घी, मक्खनकी भरमार रहती थी, पर आज तो औषधसेवनमें अनुपानके लिये भी गौका शुद्ध घी प्राप्त होना कठिन हो रहा है। फिर यज्ञ और दैनिक खानपानके लिये तो प्राप्त होना बहुत ही कठिन है। इस समय लाखों गौएँ तो किसी-किसी जिलेमें भी मिलनी कठिन हैं। यह गोजातिका ह्रास हमलोगोंकी उपेक्षाका ही परिणाम है। हमें समझना चाहिये कि गौ आध्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक—सभी दृष्टियोंसे परम उपयोगी है। गौके दूध, दही, घी आदिसे देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य आदि सभीकी तृप्ति होती है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी गौके दूध, दही, घी—सभी परम उपयोगी पदार्थ हैं। गौके दूध, दही, घी तथा गोबर-गोमूत्रके सेवनसे अनेक प्रकारकी बीमारियाँ दूर होती हैं। गौसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हुए बैलोंसे जैसी खेती होती है, वैसी भैंसे आदि पशुओंसे नहीं हो सकती। गौ और बैलके गोबर-गोमूत्रसे खेतोंमें बड़ी अच्छी खाद होती है, जिसके मुकाबलेमें अन्य खाद इतनी उपयोगी नहीं है। अतः सभी दृष्टियोंसे गौ और बैल हमारे देशके लिये महान् हितकर हैं।

इसीसे प्राचीन कालमें लोगोंकी गौओंके प्रति बड़ी ही महत्त्वबुद्धि, आदर और श्रद्धा-भक्ति थी और वे उनकी रक्षा करना अपना परम कर्तव्य मानते थे एवं उनकी रक्षाके लिये प्राणोंकी भी परवा नहीं करते थे। जिस समय राजा दिलीप नन्दिनी गौकी सेवा कर रहे थे, एक सिंह आया और गौको खानेके लिये उद्यत हो गया। तब राजाने सिंहसे कहा—'तुम इसे छोड़ दो, मुझे खा लो।' इस प्रकार वे गौकी रक्षाके लिये सिंहको अपने प्राण देनेको तैयार हो गये। इससे उनका धर्म भी बच गया और प्राण भी बच गये; क्योंकि वह सिंह नहीं था, गौ ही मायासे सिंह बनकर राजाकी परीक्षा ले रही थी (पद्मपुराण उत्तरखण्ड)।

जिस समय पाण्डव इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे, उन दिनों एक दिन लुटेरे किसी ब्राह्मणकी गौएँ लेकर भाग गये। अर्जुनने जब ब्राह्मणकी करुण पुकार सुनी, तब वे भाइयोंके साथ की हुई शर्तका उल्लङ्घन करके चुपचाप उस कमरेमें जाकर शस्त्र ले आये, जिस कमरेमें द्रौपदीके साथ युधिष्ठिर थे और लुटेरोंका पीछा करके ब्राह्मणकी गौएँ छुड़ा लाये। इस प्रकार अर्जुन गौओंकी रक्षा करके युधिष्ठिरके रोकनेपर भी नियमभङ्गके प्रायश्चित्तरूपमें बारह वर्षके लिये वनमें चले गये (महा० आदि० अ० १३२)।

एक बार राजा नहुष बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये थे। उन्होंने च्यवनऋषिके बदलेमें मल्लाहोंको राज्यतक देना स्वीकार कर लिया, तब भी च्यवनऋषिने कहा कि मेरा मूल्य नहीं आया। इसपर राजाने वहाँ पधारे हुए मुनि गविजके निर्णयानुसार ब्राह्मण और गौको समान समझकर गौसे ऋषिका मूल्य आँक दिया। तब च्यवनऋषि बोले—'अब तुमने यथार्थमें मुझको मोल ले लिया।' इस प्रकार उन्होंने गौका इतना आदर किया कि राज्यसे भी बढ़कर गौका मूल्य ऋषिके बराबर बतलाकर मछली पकड़नेवाले मल्लाहोंको ऋषिके मूल्यमें एक गौ दे दी (महा० अनुशासन० अ० ५१)।

महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनने त्रिगर्तराज सुशर्माके द्वारा बलपूर्वक हरण की हुई गौओंको सुशर्मासे युद्ध करके लौटाया था। इस प्रकार प्रकटमें युद्ध करनेसे पहचाने जानेपर पाण्डवोंको पुनः बारह वर्ष वनवास भोगना पड़ता; पर उसकी भी परवा न करके गौओंकी रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझकर उन्होंने उसके लिये राजा सुशर्माके साथ महान् युद्ध किया (महा० विराट० अ० ३३)।

अतएव हमलोगोंको सभी प्रकारसे गौओंकी भलीभाँति रक्षा करनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये। गौओंकी रक्षाके लिये गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। हरेक भाईको यथाशक्ति अपने घरमें गौ रखकर उसका पालन करना चाहिये। इस समय तो गौओंका ह्रास बहुत अधिक मात्रामें हो गया और हो रहा है। जगह-जगह कसाईखाने खुल गये और खुल रहे हैं। सरकारकी ओरसे १४ वर्षकी गौका वध करनेपर प्रतिबन्ध होनेपर भी कानूनके विरुद्ध छोटे-छोटे बछड़े-बछड़ी और गौओंकी हिंसा हो रही है। इसलिये सभी मनुष्योंको गोरक्षाके लिये तेजीसे जीतोड़ प्रयत्न करना चाहिये, जिससे गोवध कतई बंद हो और गोधनकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो, इसमें सभीका सब प्रकारसे हित है।

इसलिये कल्याणकामी मनुष्योंको मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, पदाभिमान, ऐश-आराम, भोग, स्वार्थ, दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, आलस्य और प्रमाद आदिका त्याग करके निष्कामभावसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार आदिके सेवनके लिये उत्साह और तत्परतापूर्वक प्राणपर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीरामनाम-निष्ठाके आदर्श श्रीप्रह्लादजी

( लेखक—पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज )

श्रीप्रह्लादजीकी कथा नृसिंहपुराण, विष्णुपुराण (अंश १ अध्याय १७ से २० तक) तथा श्रीमद्भागवत (स्कन्ध ७ अध्याय ३—१०) में है। यहाँ श्रीमद्भागवतके अनुसार संक्षेपमें उसे लिखा जाता है—

'पूर्व समयमें दितिके पुत्र हिरण्यकशिपुने घोर तप किया, श्रीब्रह्माजी उसे वर देने आये। हिरण्यकशिपुने स्तुति की और फिर वर माँगा कि 'आपके बनाये हुए किसी भी जीव—मनुष्य, पशु, प्राणी, अप्राणी, देवता, दैत्य एवं नाग आदि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। भीतर-बाहर, दिनमें, रातमें, आपकी सृष्टिके अतिरिक्त किसी जीवसे, अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी एवं आकाशमें कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके। मैं स्वतन्त्र सम्राट् होऊँ। लोकपालोंमें आपकी-सी महिमा मेरी भी हो तथा तपस्वियों और योगियोंके अक्षय ऐश्वर्य (अणिमादि) भी मुझे प्राप्त हों।' ब्रह्माजीने उसे वे सभी वर दे दिये।

(श्रीमद्भा० ७। ३। ४)

दैत्य-बालकोंके पूछनेपर श्रीप्रह्लादजीने स्वयं कहा है—'मेरा पिता तप करने मन्दराचलपर गया था, पीछेसे इन्द्र आदि देवोंने धावा किया। तब दैत्यगण इधर-उधर भाग गये। देवोंने लूट-पाट कर मेरी माता कयाधूको बंदी बना लिया। इन्द्र उसे ले जा रहे थे और वह रोती जाती थी। देवर्षि नारदजी वहाँ आ गये। उन्होंने इन्द्रसे कहा कि 'इस निरपराध सती अबलाको छोड़ दो।' इन्द्रने कहा कि 'इसके उदरमें दैत्यराजका वीर्य है, बालक होनेपर उसे मारकर इसे छोड़ दूँगा।' नारदजीने कहा कि 'यह बालक हरिभक्त, निष्पाप और महात्मा है, इसे तुम नहीं मार सकते।' देवर्षिकी आज्ञा मानकर इन्द्रने मेरी माँको छोड़ दिया। 'इसके गर्भमें हरिभक्त है' ऐसा मानकर इन्द्रने मेरी माँकी प्रदक्षिणा की और वे चले गये। मेरी माँको श्रीनारदजीने अपने आश्रमपर ले जाकर आश्वासित कर वहीं रहनेकी आज्ञा दी और कहा कि पतिके तपस्यासे आनेतक यहीं रहो। मेरी माँ वहाँ आश्रममें मुनिकी शुश्रूषा करती थी। दयालु श्रीनारदजीने भागवतधर्म और विशुद्ध ज्ञानका उपदेश मेरे सुननेके उद्देश्यसे माँके प्रति दिया था। स्त्रीत्व-स्वभावसे मेरी माँको तो स्मृति नहीं रही, पर मुनिकी विशेष कृपासे मुझे स्मृति है।'

(श्रीमद्भा० ७। ७। १—१६)

उधर हिरण्यकशिपु वर पाकर भाईका वैर स्मरण कर विष्णुसे वैर करने लगा। उसने तीनों लोकोंको वशमें कर लिया। लोकपालोंकी शक्ति एवं उनके स्थान भी छीन लिये। देवगण स्वर्ग छोड़कर जहाँ-तहाँ फिरते थे। आकाशवाणीने देवोंको भरोसा दिया कि 'यह पुत्रद्रोह करेगा, तब मारा जायगा।' उसके प्रह्लाद नामका एक पुत्र हुआ, वह गर्भके उपदेशानुसार धर्मात्मा और राम-नाम-जापक हरिभक्त हुआ। इसीसे हिरण्यकशिपु इस पुत्रसे वैर करने लगा। प्रह्लादको मारनेके लिये उसने बहुत-से उपाय किये। अस्त्र-शस्त्रोंसे मारकर, साँपोंसे कटवाकर, हाथियोंसे कुचलवाकर, पहाड़की चोटीसे गिरवाकर, समुद्रमें डलवाकर, पर्वतोंसे दबवाकर तथा अग्निमें जलवाकर हार गया। अन्तमें वह इन्हें सभाके खंभेमें बँधवाकर स्वयं तलवारसे मारनेपर उद्यत हुआ। उसने धमकी देते हुए कहा—'बता, तेरा रक्षक राम कहाँ है? अब मैं स्वयं मारता हूँ।' प्रह्लादजीने कहा—'वह सर्वत्र है, तुममें, मुझमें, खड्गमें और इस खंभमें भी है।' हिरण्यकशिपुने कूदकर उस खंभेपर मुष्टिका मारी, तब बड़े भारी शब्दके साथ उसी खंभेसे भगवान् नृसिंह रूपसे प्रकट हुए। उस दैत्यके समक्ष विकरालरूपसे खड़े हो गये। दैत्य गदा लेकर भगवान्से युद्ध करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा । भगवान्ने कुछ काल रण-क्रीड़ा कर उसे पकड़ लिया और घरकी चौखटपर अपनी जाँघोंपर गिरा नखोंसे उसका कलेजा विदीर्ण कर दिया और उसकी आँतोंकी माला पहन ली ।

ब्रह्मा आदि देव एवं श्रीलक्ष्मीजी आदि कोई भी नृसिंह भगवान्को शान्त न कर सके; तब श्रीप्रह्लादजीकी ही प्रार्थनापर वे शान्त हुए और इन्हें वर माँगनेको कहा । इन्होंने निष्काम भक्ति ही माँगी । फिर अपने पिताके दोषोंको भी क्षमा करनेकी प्रार्थना की । भगवान्ने कहा कि 'तुम-सरीखे भक्तोंके पिताकी कौन कहे, इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं । तुम मेरी आज्ञासे इस मन्वन्तरभर राज्य करो । मेरी भक्तिमें रत रहते हुए अन्तमें मेरे धाम आओगे ।'

( श्रीमद्भा० ७ । ४ । १० )

श्रीप्रह्लादजीको गर्भमें ही श्रीनारदजीसे भागवतधर्म एवं विशुद्ध ज्ञानका उपदेश प्राप्त था, उसकी स्मृति इन्हें जन्मकालसे ही थी, इससे जन्मकालसे ही ये प्रेमपूर्वक श्रीरामनामका जप एवं कीर्तन करते थे । इससे इनपर आनेवाले विघ्न निष्फल होते गये । इनके विरोधी नष्ट हो गये और इन्हें प्रत्यक्ष सिद्धि प्राप्त हुई । अतएव इनकी कथासे लाभ उठानेका संकेत शास्त्रोंमें है; यथा—

**भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ।**
**भवान् मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥**

( श्रीमद्भा० ७ । १० । २१ )

श्रीनृसिंह भगवान्ने श्रीप्रह्लादजीसे कहा है कि 'जगत्में जो पुरुष तुम्हारे अनुयायी होंगे, वे मेरे भक्त हो जायँगे; निश्चय ही तुम मेरे सभी भक्तोंके आदर्श हो' तथा—

**'बेद बिदित प्रह्लाद कथा सुनि**
**को न भगति-पथ पाउँ धरै ?**

( विनय-पत्रिका १३७ )

ऋग्वेदसंहिता म० १, अ० २१, सू० १५४ में सूत्ररूपमें नृसिंह-अवतारकी कथा है, उसीका वि[...] वेदके उपबृंहणरूप श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण आ[दि] इनकी कथा है, उसीका सूक्ष्म रूप ऊपर दि[या] गया है, इसका अनुसरण कर उत्तम भक्ति [...] करनी चाहिये ।

श्रीप्रह्लादजीकी आदर्श भक्ति; यथा—

**'नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रह्लादू ॥**

.......................................................

**राम नाम नरकेसरी, कनक कसिपु कलिकाल ।**
**जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल ॥'**

( रामचरितमानस बाल० २६-[...] )

श्रीरामनामका जप करते हुए प्रभु श्रीराम[ने] प्रसाद ( प्रसन्नता, अनुग्रह एवं निर्मलता प्रदान ) कि[या,] उससे श्रीप्रह्लादजी भक्तशिरोमणि हो गये ।

श्रीरामनाम नृसिंह भगवान्के समान है और जा[पक] लोग श्रीप्रह्लादजीके समान हैं, यह ( सद्गुणरूपी ) दे[वताओं]को दु:ख देनेवाले हिरण्यकशिपुरूपी कलिकालको मा[रकर] ( जापकका ) पालन करेगा ।

विशेष—'नाम जपत प्रभु····'—श्रीप्रह्लादजी [...] पूर्वक रामनाम जपते थे, तब हिरण्यकशिपुने अ[...] अनुकूल गुण ( विद्या ) सिखाकर इनसे वैसे कर्म क[राने] की चेष्टा की । वैसे राम-नाम-जपसे शुद्ध चित्तवाले[को] भी शेष आयुके कालक्षेपमें कालानुसार गुणोंकी विषम[...] कर्म-कामनाएँ आती हैं, परंतु वे प्रभुके प्रसादसे उसे [...] व्याप्त होतीं । यथा—

( क ) हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजीको पहाड़[से] गिरवाया, पर इन्हें चोट नहीं लगी । वैसे ही कलि[...] बहुत लोगोंके कृत्य जापकको प्राप्त विवेकसे प्रति[...] जान पड़ेंगे । वे इसकी ऊँची दशाकी बढ़ा-चढ़ाकर [...] करेंगे, तब नाम-जपसे शुद्धचित्त जापकको विवेकसे [...] लगेगा कि यह बड़ाई कर मुझे पहाड़पर चढ़ाकर ढके[...] है; क्योंकि मेरा स्वरूप तो अणु, भगवदाश्रित एवं अ[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; कारण जीवात्मा भगवान्का शरीर है। अतः इसमें गुण उन्हींके प्रकाशसे हैं और इसके कर्म उन्हींकी दी हुई शक्तिसे हैं। इस विचारके साथ आराधनापर रामनाम-कल्पवृक्षके द्वारा प्रभु-प्रसादसे चोट नहीं व्याप्त होगी—गीता ४। ११ एवं ७। २१-२२ के प्रतिज्ञानुसार इसकी रक्षा होती रहेगी।

( ख ) इसी प्रकार त्वगिन्द्रिय-विषय ( कोमल वस्त्र, शय्या आदि एवं स्त्री-संसर्ग ) की प्राप्ति जगत्के द्वारा होनेपर यह हाथीसे कुचलवानेके समान डरता हुआ ( शरीर-निर्वाहमात्र वस्त्र एवं धर्मपत्नी-संसर्ग रखता हुआ ) रामनामपरायण रह सुरक्षित रहेगा।

( ग ) नेत्र-विषयको जल्लादके समान विचार कर डरेगा; क्योंकि रूपासक्तिपर अन्तिम संकल्पानुसार गीता ८। ६ के अनुसार फिर-फिर जन्म-मरण होंगे। इस विचारसे जापककी उपर्युक्त रीतिसे नामद्वारा रक्षा होगी।

( घ ) जैसे प्रह्लादजीको उनकी माताके द्वारा भोजनके साथ विष दिया गया, पर रामनामके जपके कारण प्रभु-प्रसादसे वे बचे रहे। वैसे ही इस जापकको जगत्से रसनाके सुखद पदार्थ प्राप्त होते हैं, उन्हें यह विषय-प्रवर्द्धक जानकर विषके समान मानकर डरता हुआ शरीर-निर्वाह-मात्र ग्रहण करता है। प्रकृति-परिणाम-शरीरकी ममता-रूपिणी माता खिलाती है, पर सप्रेम नाम-निष्ठापर श्रीराम-प्रसादसे यह सुरक्षित रहता है।

( ङ ) हिरण्यकशिपुने अपनी बहन होलिकाके द्वारा प्रह्लादजीको जलाना चाहा था। होलिकाका यह प्रभाव था कि यह जिसे गोदमें लेकर चितामें बैठे, वह जल जाता था और वह स्वयं ज्यों-की-त्यों रहती थी। वह चितामें प्रह्लादजीको लेकर बैठी; परंतु नाम-निष्ठा-प्रभावसे वही जल गयी, प्रह्लादजीका कुछ नहीं बिगड़ा। इन्होंने कहा भी है—

> रामनाम जपतां कुतो भयं
> सर्वतापशमनैकभेषजम्।
> पश्य तात मम गात्रसंगतः
> पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥
> ( नृसिंहपुराण )

श्रीप्रह्लादजीने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा है कि 'रामनाम जपनेवालेको कहाँ भय है? यह रामनाम सर्व तापों ( आधिदैहिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापों ) को नष्ट करनेकी एकमात्र ओषधि है। हे तात! देखिये, मेरे शरीरके संगसे अग्नि भी इस समय शीतल जल-सी हो रही है।

हिरण्यकशिपु ही दूसरे जन्ममें रावण हुआ है, वह मोहरूप कहा गया है—( विनय-पत्रिका ५८ देखिये ) अतः हिरण्यकशिपुकी बहन होलिका मोहकी बहन अविद्यारूपिणी है। इस अविद्याकी गोदमें बैठा हुआ जीव जगत्को एक भगवान्का शरीर न मानकर नानात्व-दृष्टिसे रागद्वेषकी अग्निमें जला करता है। नानात्व जगत्के विविधरूप काष्ठकी लकड़ियोंकी चिता है। अविद्या-दृष्टिसे जीव इनमें आसक्तिसे तीनों तापोंसे जला करते हैं। ये बार-बार जन्म लेकर जलते और मरते हैं, अविद्या ज्यों-की-त्यों रहती है।

सप्रेम नाम-निष्ठासे जापक जगत्के सम्बन्धोंमें रहता हुआ भी विवेकद्वारा तीनों तापोंसे नहीं जलता; प्रत्युत तापदात्री अविद्या ही जल जाती है; तथा—

> राम, राम, राम, जीय जौलौं तू न जपिहै।
> तौलौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै॥
> ( विनय-पत्रिका ६८ )

> ऐसेऊ कराल कलिकालमें कृपाल तेरे
> नामके प्रताप न त्रिताप तन दाहिये॥
> ( कवितावली उ० ७९ )

> जो मन प्रीति-प्रतीति सों रामनामहि रातो।
> तुलसी राम प्रसाद सो तिहुँ ताप न तातो॥
> ( विनय-पत्रिका १५१ )

यहाँतक जीवनपर्यन्त जापककी रक्षाके लक्ष्य कहे गये। अन्तकालकी रक्षाका लक्ष्य भी श्रीगोस्वामीजीने नाम-वन्दनाके अन्तके दोहेसे दिखाया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राम नाम नरकेसरी ····'—हिरण्यकशिपु अपने सभी उपायोंसे श्रीप्रह्लादजीको अवध्य देखकर अन्तमें स्वयं इन्हें सभाके खंभेमें बाँधकर तलवार लेकर मारनेपर उद्यत हुआ। उसने क्रुद्ध होकर कहा, बता, तेरा रक्षक राम कहाँ है ? इन्होंने सर्वत्र कहते हुए उस खंभेमें भी कहा, तब उसे उस खंभेमें नृसिंहका आकार लक्षित हुआ, उसने उसीपर मुष्टिका मारी। तब भगवान् नृसिंह रूपसे उसी खंभेमेंसे प्रकट हो गये। फिर उन्होंने हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादजीको गोदमें लेकर लाड़-प्यार किया।

जापकके पक्षमें शरीर ही खंभा है। अवशिष्ट प्रारब्धकी आयु रस्सीका बन्धन है। जापक प्रह्लाद है; क्योंकि नामके प्रभावसे उसका आह्लाद अब प्रकर्ष सिद्ध हो गया है। कलिमय जगत्के किसी भी विघ्नसे नष्ट नहीं हुआ। मोह ( देहाभिमान ) हिरण्यकशिपु है, यहाँ कलिमय जगत्का अन्तिम ( मृत्यु समयका ) काल, कलिकाल हिरण्यकशिपु है, जो मोहकी अन्तिम बाधा है।

हिरण्यका अर्थ सोना है और कशिपुका अर्थ यहाँ पश्यक अर्थात् द्रष्टा है। मोह-वशीभूत जीवोंको देह स्वर्णवत् अत्यन्त प्रिय लगता है, इससे मरते समय वे इसे छोड़ना नहीं चाहते। परंतु जापकरूप प्रह्लाद नाम-निष्ठासे प्राप्त विवेकसे इस देहसे असंग रह शरीररूपी खंभेमें अपनेको आयुरूपी रस्सीमें बँधा हुआ मानता है, अतः इससे छूटनेकी प्रतीक्षामें रहता है, इससे मृत्युसे नहीं डरता।

जैसे वहाँ खंभेपर नृसिंहाकृतिपर मुष्टिक-प्रहारसे नृसिंह प्रकट हो गये और उन्हींसे रक्षा हुई, वैसे ही जापकके शरीरपर नामका नृसिंहरूप ( पञ्च संस्कार-रूपमें ) रहता है, उसीके तात्त्विक ज्ञानसे जापककी रक्षा होती है।

नृसिंह भगवान्का आधा शरीर नरका और आधा सिंहका रहता है। वैसे जापकके नर-शरीरपर नामकी पञ्चसंस्कारात्मक पञ्चाननाकृति रहती है। सिंहके एक ही रहता है, चार पञ्जोंसे भी वह मुखकी-सी फाड़ करता है, इसीसे पञ्चानन कहलाता है। मुखके समान रामनामका मन्त्र रूप है। राम नाम मकार स्वरहीन होकर बीज होता है, बीजका ( अर्थ ) ही अवशिष्ट पाँच अक्षर होते हैं। यह ( रामममन्त्र ) कानमें दिया जाता है और वाणीसे जाता है। मुद्रा ( धनुर्बाण ) वायुतत्त्वकी हाथोंपर चिह्नरूपमें दिया जाता है। ऊर्ध्वपुण्ड्ररूपके ललाटपर ( प्रधानतया ) किया जाता है। कण्ठी पहनायी जाती है; क्योंकि रसतत्त्वके रसनागृहीत कण्ठसे होकर भीतर जाते हैं। नाम-संस्कारका लोगोंसे व्यवहारमें सम्बन्ध रहता है।

पाँचों संस्कार अपने तत्त्वार्थोंसे जापकके विषयोंके विकारोंसे रक्षा करते हैं। *

सिंह यदि अजा ( बकरी ) के मुखको मुखसे उसके चारों पाँवोंको अपने चारो पञ्जोंसे पकड़ ले क्षणभरमें मार लेता है, वैसे ही इस नृसिंह रूपसे अजा ( माया ) के पञ्चाङ्गों ( शब्द, स्पर्श, रूप, गंध ) को अपने पञ्चसंस्काराङ्गोंसे उनके तत्त्वार्थद्वारा शीघ्र निर्विकारकी रक्षा करता है। अजाके अर्थमें त्रिगुणात्मिका माया; यथा—

**'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'** ( श्वेता० ४।

इस श्रुतिमें रजोगुण लाल, सत्त्व श्वेत और तमोगुण खाली काली प्रकृति ( माया ) कही गयी है। वैसे बकरी भी लाल, श्वेत एवं विशेषकर काली होती माया भी तमोमयी होती है। बकरी 'में,'में' बोल

* इन पाँचों संस्कारोंके तत्त्वार्थ मेरे ग्रन्थ 'प्रपत्ति-रहस्य' और 'श्रीमन्मानस-नाम-वन्दना' में हैं। 'प्रपत्ति-रहस्य' पता सद्गुरु-कुटी, गोलाघाट, अयोध्या और 'श्रीमन्मानस-नाम-वन्दना' का—'खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर खेतवाड़ी बम्बई' है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानी जाती है। मायाकी पहचान भी ऐसी ही कही गयी है; यथा—

**मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥**

( रामचरितमानस अर० १५ )

इसमें 'मैं' ही मूल है, 'मैं' से 'तैं' तथा 'मोर' होता है और 'मोर' से 'तोर' होता है।

मायाके कार्यरूप पञ्चतत्त्वात्मक जापकके शरीररूप खंभेपर मृत्युकालका प्रहार आते ही नामके उपर्युक्त नृसिंहरूपताके तत्त्वज्ञानसे मोहरूप हिरण्यकशिपुका सर्वथा नाश हो जाता है। प्रह्लादजीका बन्धन छूट गया। वैसे ही जापकका भी संसार-बन्धन सदाके लिये छूट जाता है।

नृसिंह भगवान्ने प्रह्लादजीको गोदमें लेकर प्यार किया है, वैसे ही जापक अपने नित्यरूपसे भगवान्का परिकर हो उनके प्यारका पात्र हो सदाके लिये कृतार्थ हो जाता है। प्रमाण——

**जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥**

( रामचरितमानस अरण्य ३१ )

**अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।**
**यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥**

( गीता ८।५ )

**यस्य नाम महद्यशः न तस्य प्रतिमास्ति।**

( यजुः अ० ३२ मन्त्र ३ )

जिस ( परमात्मा ) के नाम और यश महान् हैं, उसकी बराबरीका कोई नहीं है।

**मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामेति नाम यः स्मरेत्।**
**स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने॥**

( पद्मपुराण, क्रियायोग० व्यासवचन )

इस प्रकार श्रीप्रह्लादचरितसे रामनाम-निष्ठा एवं भक्तिकी परम शिक्षा प्राप्त होती है।

---

# दूसरोंके दुःखोंमें अपना हिस्सा बँटवाओ

**मत देखो किसके अंदर है कहाँ छिपा बैठा शैतान।**
**दीखे तो, सद्भाव-शस्त्रसे करो तुरत उसका बलिदान॥**
**देखो सबके अंदर नित्य विराजित मंगलमय भगवान।**
**पूजो प्रेम-सुमनसे उनको, रखो जगाये नित रख ध्यान॥**
**प्राणिमात्रमें रहे कहीं भी नहीं तुम्हारा किंचित् द्वेष।**
**वितरण करो प्रेम शुचि सबमें करो दुःखमें दया विशेष॥**
**क्षमा करो सबके दोषोंको ममता-अहंकार कर त्याग।**
**सम सुख-दुःख रहो, बँटवाओ, पर-दुःखोंमें अपना भाग॥**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उद्धवजी व्रज पधारे। यशोदा मैया-नन्दबाबासे मिले, गोपी-गोपबालकों तथा श्रीगोपाङ्गनाओंसे मिले। फिर एकान्तमें महामहिमामयी श्रीकृष्णकी नित्य अभिन्नस्वरूपा श्रीराधारानी-से मिले। राधाजी प्रेममें उन्मादिनी हो रही हैं, वे कभी तो ऐसा अनुभव करती हैं कि मैं प्रेमसे सर्वथा शून्य हूँ, केवल प्रेमका दम्भ करती हूँ; कभी प्रेमसरिताके एक विमल वियोग-तटपर अपनेको रोती-बिलखती पाती हैं और कभी श्यामसुन्दरके मिलनका अनुभव कर आनन्दमत्त हो जाती हैं। बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने उद्धवसे कहा—

उद्धव ! मुझमें तनिक नहीं है,
प्रियतमके प्रति सच्चा स्नेह।
इसीलिये ये नहीं निकलते
निष्ठुर प्राण छोड़कर देह॥
रथपर चढ़े जा रहे थे वे
मथुरा जब अक्रूरके संग।
फिर फिर देख रहे थे मेरी
ओर दूरसे विगत उमंग॥
मैं जीवित ही लौटी प्रियतम-
शून्य भवनमें लेकर प्राण।
हुआ न हृदय विदीर्ण उसी क्षण
मेरा पामर वज्र-समान॥
मनमें भरा लोभ जीवनका
तनमें अतिशय ममता-मोह।
इसीलिये ये प्राण अभागे
सहते दारुण व्यथा-बिछोह॥
दम्भपूर्ण यह रोना-धोना
है सब मेरा करुण विलाप।
भोले माधव समझ नहीं
पाते हैं मेरे मनका पाप॥
प्रियतमके वियोगमें भी मैं
चला रही निज योगक्षेम।
उद्धव ! तुम ही समझो मेरा
कहाँ श्यामसुन्दरमें प्रेम॥

'उद्धवजी ! प्रियतम श्यामसुन्दरके प्रति मेरा सच्चा प्रेम तनिक भी नहीं है। इसीलिये तो मेरे ये निष्ठुर प्राण शरीरको त्यागकर निकल नहीं रहे हैं। उस दिन जब श्यामसुन्दर रथपर सवार होकर अक्रूरके साथ मथुराको जा रहे थे, (तब मैंने देखा) वे दूरसे बार-बार पीछेको मुँह फिरा-फिराकर मेरी ओर देख रहे थे। उनकी दृष्टिमें कोई उमंग—उत्फुल्लता नहीं रह गयी थी। वे बड़े उदास थे। इसपर भी मैं जीती-जागती अपने प्राणों-को लेकर प्रियतम श्यामसुन्दरसे शून्य इस भवनमें लौट आयी। उसी क्षण मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो गया। अवश्य ही वह पामर वज्रके समान कठोर है। हृदय विदीर्ण कैसे होता ? मेरे मनमें तो जीवनका लोभ भरा है और शरीरमें मेरी अतिशय ममता तथा मोह है। इसीलिये ये अभागे प्राण दारुण बिछोह-व्यथा सहते हुए रह रहे हैं। (यह मेरी सच्ची व्याकुलता—सच्ची विरह-पीड़ा नहीं है।) मेरे सम्पूर्ण रोने-धोनेमें और करुणापूर्ण विलापमें दम्भ भरा है। मैं दिखावेके लिये ही सब करती हूँ और मेरे माधव बड़े सीधे हैं, वे मेरे मनके इस पापको समझ ही नहीं पाते। (समझते होते तो मुझे सान्त्वना देनेके लिये तुमको क्यों भेजते।) प्रियतमके वियोगमें भी मैं अपने योगक्षेमका वहन कर रही हूँ। (सचमुच वियोगपीड़ा होती तो योगक्षेम किसे सूझता !) इसीसे उद्धव ! तुम समझ लो कि मेरा प्रियतम श्यामसुन्दर-में (सच्चा) प्रेम कहाँ है ? (इतनेमें भाव बदल और वे विरहव्याकुल होकर बोलीं—)

सत्य, हृदय छिदता है, होते
नहीं किंतु उसके दो टूक॥
जिससे विरह-मुक्त हो जाती,
मरकर मन हो जाता मूक॥
विरह-विकल मूर्छा होती है,
पर न चेतना करती त्याग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर सदा जलाती रहती,
भीषण बढ़ती उरमें आग ॥
मेरे प्रियतमके समीपसे,
आये हो उद्धव ! बड़भाग।
कुशल, और संदेश. सुनाओ
यदि भेजा हो कर अनुराग ॥

'सचमुच हृदय तो विदीर्ण होता है, परंतु उसके दो टूक नहीं हो जाते। ( दो टूक हो जाते तो ) मैं विरहसे छूट जाती और मेरा मन भी मरकर चुप हो जाता। ( विलाप-प्रलाप नहीं करता। ) विरहसे व्याकुल होनेपर मुझे मूर्छा तो होती है, परंतु ( भीतरी ) चेतना मुझे त्यागकर नहीं जाती। हृदयमें विरहकी भीषण आग बढ़ती रहती है, जो हृदयको सदा जलाती रहती है। बड़भागी उद्धव ! तुम मेरे प्रियतमके पाससे आये हो। उनका कुशल-समाचार सुनाओ और उन्होंने अनुराग करके कोई संदेश भेजा हो तो उसे भी सुनाओ।'

उद्धवजीने श्रीराधाको उनके प्रियतम श्रीकृष्णका कुशल-संवाद सुनाकर फिर उनका निम्नलिखित मधुर गम्भीर संदेश सुनाया—

राधे ! क्या संदेश सुनाऊँ,
क्या कहलाऊँ मनकी बात।
छिपा नहीं तुमसे कुछ भी जब
घुलामिला रहता दिनरात ॥
नित्य अहैतुक हम दोनोंका,
प्रिये ! प्रेम यह अति पावन।
नित्य निरन्तर बढ़ता रहता,
सहज मधुरतम मनभावन ॥
नहीं घटा सकते इसको
हैं, कैसे भी शत-शत अपराध।
अनुनय-विनय—विषय-सुख मिथ्या
नहीं बढ़ा सकते कर साध ॥
निष्कारण, निरुपाधिक, निर्मल,
नीरव, नित्य, इयत्ताहीन।
अपरिमेय, अनवद्य, अनि-
र्वचनीय अनन्त, अकाम, अदीन ॥

'राधिके ! तुम्हें क्या संदेश सुनाऊँ, मनकी कौन-सी बात तुमको कहलाऊँ ? जब मैं दिन-रात तुमसे घुलामिला ही रहता हूँ, तब मेरा कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है। ( मेरे सभी रहस्योंको तुम जानती हो। ) प्रियतमे ! तुम्हारा और मेरा यह प्रेम नित्य है, अहैतुक है। ( किसी भी हेतुसे बना हुआ घटने-बढ़नेवाला नहीं है। ) यह अत्यन्त पवित्र करनेवाला है। यह मधुरतम मनभावन प्रेम नित्य-निरन्तर सहज ही बढ़ता रहता है। सैकड़ों-सैकड़ों कैसे भी अपराध इसको जरा भी नहीं घटा सकते और न झूठे अनुनय-विनय तथा विषय-सुख ही इच्छा करके भी इसे बढ़ा सकते हैं। यह प्रेम कारणरहित है, उपाधिरहित है, मलरहित है, बाहर बोलनेवाला न होकर मनकी चीज है, नित्य है, सीमारहित है, परिमाणरहित है, दोषरहित है, वाणीमें नहीं आनेवाला है, अन्तरहित है, कामनारहित है और उदार है।

अति शुचि गुरुतर प्रेम दिव्य यह
दुर्लभ सुधाविनिन्दक स्वाद।
वाणीमें ला कैसे कर दूँ,
इसे अशुचि, लघु, मैं अस्वाद ॥
मथुरामें रहकर रहता मैं
प्रिये ! तुम्हारे संतत पास।
इसी प्रेमसे बँधा, न पाता
मैं अन्यत्र कदापि सुपास ॥
पर मैं करता नित्य प्रेममें
अपने अति अभावका बोध।
राधे ! बढ़ते ऋण अपारका
कभी न कर पाऊँगा शोध ॥

'यह दिव्य प्रेम अत्यन्त पवित्र है, गुरुतर है और अमृतको भी निन्दनीय कर देनेवाले दुर्लभ स्वादसे पूर्ण है। इसे वाणीमें लाकर मैं कैसे अपवित्र, लघु और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वादरहित बना दूँ । ( जो प्रेम वाणीमें आ जाता है, वह अशुद्ध क्षुद्र तथा स्वादशून्य हो जाता है । ) प्रिये ! मैं मथुरामें रहकर भी इस पवित्र प्रेममें बँधा हुआ सदा तुम्हारे पास रहता हूँ । मुझे अन्यत्र कहीं भी कभी आराम नहीं मिलता । परंतु राधे ! मैं तुम्हारे प्रति अपने प्रेममें सदा ही अत्यन्त कमीका बोध करता हूँ, तुम्हारा मुझपर अपार ऋण बढ़ा ही जा रहा है । इस ऋणको मैं कभी भी चुका नहीं सकूँगा ।'

प्रियतम श्रीकृष्णका प्रेम-संदेश सुनकर राधा कुछ समयके लिये भावनिमग्न हो गयीं । तदनन्तर उन्हें दिखायी दिया, सचमुच श्रीकृष्ण सदा मेरे पास ही तो रहते हैं । परंतु फिर भावान्तर-सा हो गया । वे उद्धवसे कहने लगीं—

उद्धव ! सत्य सुनाया तुमने,
मुझको प्रियतमका संदेश ।
घुले-मिले रहते मुझमें वे
प्रियतम सर्वं काल, सब देश ॥
पर मैं प्रेमशून्य रसवर्जित
रसमय दिव्य चक्षुसे हीन ।
उन्हें, निरन्तर रहते भी मैं
देख न पाती मलिना दीन ॥
कभी विरह-व्याकुल हो जाती
कर उठती तब करुण पुकार ।
हा प्राणोंके प्राण ! दयित हे
दीनदयार्द्र हृदय सुकुमार ॥
यमुनापुलिन नाचते सुन्दर
नटवर वेश धरे घनश्याम ।
नहीं दिखाओगे क्या दुःखिनि-
को अब वह मुखचन्द्र ललाम ॥

'उद्धवजी ! तुमने प्रियतमका यह सच्चा संदेश ही सुनाया है । सत्य ही, वे प्रियतम सब समय और सर्वत्र मुझमें घुले-मिले ही रहते हैं । पर मैं प्रेमशून्य हूँ, मुझमें प्रेम-रसका सर्वथा अभाव है और मैं प्रेमानन्दमय दिव्य चक्षुओंसे रहित हूँ । अतएव निरन्तर पास रहनेपर भी मैं दीना-मलिना उन्हें देख नहीं पाती । कभी विरह-व्याकुल हो जाती हूँ—तब करुण-स्वरसे पुकारने लगती हूँ 'हा ! मेरे प्राणोंके प्राण ! हे प्रियतम ! हे दीनदयार्द्र कोमलहृदय ! हे घनश्याम ! तुम सुन्दर नटवर वेश धारण करके यमुना-तटपर नाचा करते थे, क्या अब अपना ललित मुखचन्द्र इस दुःखिनीको नहीं दिखाओगे !'

( मेरे दीन होकर ऐसा कहते ही—)

कोटि-कोटि विधु-सुधा मधुर हो
सहसा उदय श्याम रस-सार ।
लगते सतत अमित बरसाने
शीतल परम सुधाकी धार ॥
युगपत् बाह्याभ्यन्तर होता
उनका मधुर मिलन अश्रान्त ।
विरह-यन्त्रणाकी सब ज्वाला
हो जातीं तुरंत ही शान्त ॥
उठतीं प्रेम-सुधा-रस-सागर-
में उत्ताल अनन्त तरंग ।
हो जाते प्रफुल्ल सब अवयव
पाकर प्रिय आलिङ्गन-संग ॥
उठता नाच प्रेमसागर तब
बढ़ जाती रस-राशि अपार ।
विस्मृत हो जाता तब सब कुछ
कौन कहाँ शरीर संसार ॥

'करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमाओंकी मधुर सुधाको रस-सार श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हो जाते और अपरिमित रूपमें अविराम परम शीतल अमृतकी धारा बरसाने लगते हैं । बाहर और भीतर एक ही साथ उन का मधुर मिलन होता है । मैं और वे मिलते-मिलते थकते ही नहीं । मेरी विरह-यन्त्रणाकी सारी ज्वाला तुरंत ही शान्त हो जाती हैं । तब उस प्रेमामृत समुद्रमें अनन्त ऊँची-ऊँची तरङ्गें उठने लगती हैं । सारे अवयव ( आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय ) प्रियतमका मधुर आलिङ्गन तथा सङ्ग प्राप्त करके प्रफुल्लित हो जाते हैं । प्रेम-समुद्र नाच उठता है और उसमें रसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाढ़ आ जाती है । उस समय कौन है, कहाँ है, शरीर है या संसार है, यह सब कुछ विस्मृत हो जाता है। ( रह जाता है केवल रस-ही-रस—'रसो वै सः ।' रसरूप श्यामसुन्दर ) ।

इसी समय सहसा फिर मन-
मोहन हो जाते अन्तर्धान ।
जल उठतीं फिर वही विरहकी
ज्वाला, अति मन होता म्लान ॥
फिर मनमें आती—मैं क्यों हूँ
जलती उनकी करके याद ?
नहीं योग्य मैं उनके किञ्चित्
दोषमयी नित भरी विषाद ॥
रूप-शील-गुणहीन कहाँ मैं,
कहाँ रूप-गुण-शील-निधान ।
कहाँ प्रेमसागर सुविज्ञ वे,
कहाँ प्रेमविरहित अज्ञान ॥
उद्धव ! इसी दुःख-सुख-सागर-
में मैं रहती नित्य निमग्न ।
इतना है संतोष, वृत्ति
अविरत रहती उनमें संलग्न ॥

'इसी समय मनमोहन श्यामसुन्दर सहसा अन्तर्धान हो जाते और विरहकी भारी ज्वालाएँ जल उठतीं । मेरा ( खिला हुआ ) मुख तुरंत अत्यन्त मलिन हो जाता । फिर मनमें आती—मैं उनके योग्य ही नहीं हूँ, ( तब वे मुझसे क्यों मिलते ? ) तब फिर उनकी याद करके मैं क्यों जलती रहती हूँ । मैं तो जरा भी उनके योग्य नहीं हूँ, दोषोंसे भरी हूँ और सदा विषादमें डूबी रहती हूँ । ( जो उनकी हो जाती है, वह तो सदा आनन्दमें ही डूबी रहती है । ) कहाँ मैं रूप, शील तथा गुणोंसे रहित और कहाँ वे रूप, शील, गुणोंके भण्डार ! कहाँ वे प्रेमसमुद्र, महान् ज्ञानी और कहाँ मैं प्रेमसे सर्वथा रहित, गँवार । उद्धवजी ! ( अधिक क्या कहूँ ) मैं इसी प्रकार निरन्तर दुःख-सुख-सागरमें डूबी रहती हूँ । पर इतना संतोष है कि ( चाहे दुःखमें रहूँ, चाहे सुखमें ) मेरी वृत्ति रहती है सदा अविराम उन प्रियतम श्यामसुन्दरसे ही चिपटी हुई ।' ( इतना कहकर राधा प्रेमविह्वल हो गयीं और उधर—)

सुनते ही उद्धवके अन्तर-
में उमड़ा अतिशय अनुराग ।
पड़े मुग्ध हो श्रीराधा-
चरणोंमें तुरत चेतना त्याग ॥

'इतना सुनते ही उद्धवजीके हृदयमें अत्यन्त अनुराग उमड़ा और वे मुग्ध होकर श्रीराधाजीके चरणप्रान्तमें अचेतन होकर गिर पड़े ।'

# बार-बार निश्चय करो—

मुझपर सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की अनन्त कृपा है । वे भगवान् मुझपर अहैतुक प्रेम करते हैं ।
उनकी कृपाशक्तिसे मेरे सारे विघ्न-बाधा नष्ट हो गये और हुए जा रहे हैं ।
उनकी कृपाशक्तिके प्रकाशमें मेरे समीप किसी प्रकारका अन्धकार नहीं आ सकता ।
उनकी कृपाशक्तिसे मेरे सारे दुर्गुण-दुर्विचार नष्ट हो गये हैं ।
उनकी कृपाशक्तिसे मुझमें विश्वास, प्रेम, शान्ति, समता आदि उत्पन्न हो गये हैं ।
उनकी कृपाशक्तिसे मेरी वृत्ति संसारसे हटकर उन्हींमें रमने लगी है ।
उनकी कृपाशक्तिसे मेरा भविष्य परमोज्ज्वल हो गया है । मैं समस्त पाप-तापसे मुक्त होकर उनके चरणकमलोंमें निश्चय ही पहुँच जाऊँगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गोस्वामी तुलसीदासजी प्रतिदिन किस ग्रन्थका पाठ करते थे ?

( लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

आज संसारमें सबसे अधिक पाठ हनुमानचालीसा तथा रामचरितमानसका ही होता है। पर तुलसीदासजीने अन्तिम अवस्थामें इनकी रचना की, अतः उनके द्वारा इन पुस्तकोंके पाठकी सम्भावना ही नहीं होती। फिर यह बात स्वाभाविक है कि उनका दैनिक कार्यक्रम तीर्थमें घूमते-घामते भी सदा कुछ पाठ करते ही जाता था। भागवत, वाल्मीकिरामायण आदिका पाठ वे खूब करते थे, पर उनका प्रतिदिन पूरा पाठ सम्भव नहीं। और उन दिनों इतनी बड़ी पुस्तकें चलते-फिरते सर्वत्र लिये चलना अथवा प्रतिदिन इनका पूरा पाठ भी सम्भव न था और न वैसी विधि ही है। पर इस जिज्ञासाका सुन्दर समाधान उनके ग्रन्थोंसे हो जाता है। उनको एक सहस्रनाम बहुत ही प्रिय था। वे उसका प्रतिदिन पाठ करते थे और चलते-फिरते भी पाठ करते रहते थे। यह इसलिये कि उस सहस्रनामकी पाठविधिमें भी इसका उल्लेख है, यथा--

**मार्गे च गच्छमानास्तु ये पठन्ति द्विजातयः।**
**न दोषा मार्गजास्तेषां भवन्ति किल पार्वति॥**

इस सहस्रनामकी महिमा भी बहुत है और माहात्म्य-वर्णनके ६० श्लोक हैं। माहात्म्य-वर्णनके लिये सहस्र-नामाध्यायके अतिरिक्त एक स्वतन्त्र अध्याय भी है। इसके माहात्म्यमें यहाँतक कहा गया है कि इसका एक बार[1] भी श्रवण, पठन अथवा जप करनेसे साङ्गवेद, पुराण, शास्त्र, स्मृतियों तथा कोटि-कोटि मन्त्रोंके भी श्रवण-मनन तथा पाठका फल प्राप्त हो जाता है। जो इसके एक श्लोक, पाद अथवा एक अक्षरका भी प्रतिदिन पाठ करता है, उसके सभी मनोरथ तत्काल सिद्ध हो जाते हैं, फिर समूचे स्तोत्र-पाठकी तो बात ही क्या—

**सकृदस्याखिला वेदाः साङ्गा मन्त्राश्च कोटिशः।**
**पुराणशास्त्रस्मृतयः श्रुताः स्युः पठितास्तथा।**
**जप्त्वा चैकाक्षरं श्लोकं पादं वा पठति प्रिये।**
**नित्यं सिध्यति सर्वेषामचिरात् किमुताखिलम्।**

पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजी महाराजने इस सहस्रनाम तथा इसकी बातोंका बहुत जगह उल्लेख किया है। दोहावली ( दोहा १८८ ) में वे लिखते हैं—

सहसनाम मुनि भनित सुनि 'तुलसीबल्लभ' नाम।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय धरमधुरंधर राम॥[2]

इस दोहेका प्रायः सभी टीकाकारोंने यही अर्थ किया है कि मुनिके कहे हुए रामसहस्रनाममें 'तुलसीवल्लभ'

---

१-( क ) किसी छोटे स्तोत्रके एक बार पाठका प्रायः ऐसा महत्त्व बहुत कम मिलता है। पर हनुमान्‌जीद्वारा किये गये रामस्तोत्रका पाठ भी ऐसा ही कुछ है। यथा—

अनेकक्षेत्रधान्यानि गाश्च दोग्ध्रीः पयस्विनीः।
आयुर्विद्याश्च पुत्रांश्च भार्यामपि मनोरमाम्।
एतत्स्तोत्रं सकृद्विप्राः पठन्नाप्नोत्यसंशयः॥
( स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड, सेतुमाहात्म्य ४६। ६२ )

( ख ) पद्मपुराण उत्तर० अध्याय १२७ में आये 'योगसारस्तोत्र'का फल भी कुछ इसी प्रकार है—

चतुर्णामपि वेदानां त्रिरावृत्या च यत्फलम्।
तत्फलं लभते स्तोत्रमधीयानः सकृन्नरः॥
( पद्मपु० उत्तर० १२७। २८८, मोर प्राच्य संस्कर[ण]
कलकत्ता, आनन्दाश्रम पूनामें २४९। १४[…] )

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।
सद्यो भवति शुद्धात्मा स्तोत्रस्य पठनात् सकृत्॥
( वही श्लो० २८[…] )

( ग ) ललितासहस्रनामकी महिमा भी देखते ही बनती है। यथा—

यः पठेन्नामसाहस्रं जन्ममध्ये सकृन्नरः।
तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः॥
( फलश्रुति ४२-४[…] )

२–जहाँतक ज्ञात है, अभीतक किसी सज्जनने इस दोहेपर ओर विशेष श्रम करनेका कष्ट नहीं किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम सुनकर रामजी हँसकर सीताजीकी ओर देखते हुए सकुचाते हैं ।' ( श्रीकान्तशरणजी, दीनजी आदि ) यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि तुलसीदासजीने केवल 'सहस्रनाम' शब्द लिखा है, 'रामसहस्रनाम' नहीं । मैंने अबतक चार-पाँच रामसहस्रनाम देखे हैं । एक तो आनन्दरामायणके राज्यकाण्डके पूर्वार्द्धके प्रथम अध्यायमें है, जो गणेशजीद्वारा कहा गया है । दूसरा मन्त्र-महार्णवका है, जो गीताप्रेससे प्रकाशित है । तीसरा रकारादि रामसहस्रनाम है, जिसमें सभी नाम रकारसे ही आरम्भ होते हैं । चौथा 'मकारादि' है, जिसमें सब नाम मकारसे आरम्भ होते हैं, ये काशीसे प्रकाशित हैं । पर इनमेंसे किसीमें भी 'तुलसीवल्लभ' शब्द एक दम नहीं आया । 'महाभारत'[1] के तथा स्कन्द[2] एवं गरुड़पुराणमें[3] प्रोक्त विष्णुसहस्रनामोंमें भी यह शब्द नहीं मिलता । किमधिकं यह शब्द एकको छोड़कर किसी भी सहस्र-नाममें नहीं मिलता, चाहे वह किसी भी देवता या देवीका क्यों न हो ।

## वह सहस्रनाम कौन-सा है

यह 'तुलसी-वल्लभ' नाम केवल एक ही सहस्रनाममें प्राप्त होता है । पूरा श्लोक इस प्रकार है—

**तुलसीवल्लभो वीरो वामाचारोऽखिलेष्टदः ।**
**महाशिवः शिवारूढो भैरवैककपालधृक् ॥'**

यह श्लोक पद्मपुराणोक्त वासुदेव ( श्रीविष्णु ) सहस्र-नामका है ।[4] वेंकटेश्वर प्रेस, बंगवासी प्रेस तथा मोर-प्राच्य संस्थानके संस्करणमें यह वचन ७१वें अध्यायके १९७ वें श्लोकमें आया है तथा आनन्दाश्रम, पूनाके संस्करणमें ७२ वें अध्यायके १९९ वें श्लोकमें आया है । इस स्तोत्रका आरम्भ 'ॐवासुदेवः परं ब्रह्म' से हुआ और 'इत्येतद् वासुदेवस्य' से इसकी समाप्ति सूचित हुई ।

## यह वासुदेव कौन है ?

यह 'वासुदेव' भी एक असाधारण समस्या है । गोस्वामी तुलसीदासजीने मनु-शतरूपाके तपप्रसंगमें लिखा है—

द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग ।
बासुदेव-पद-पंकरुह दंपति मन अति लाग ॥
( बालकाण्ड १४३ )

समस्याकी बात तब ज्ञात होती है, जब यह चौपाई आती है—

बिधि हरि हर तप देखि अपारा । मनु समीप आए बहु बारा ॥
माँगहु बर बहु भाँति लुभाए । परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥

और अन्तमें—

जो स्वरूप बस सिव मन माँही । जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥
जो भुसुंडि मन-मानस हंसा । ......................
देखौं सो सरूप भरि लोचन ॥

की गयी प्रार्थनापर श्रीरामभद्र राघवेन्द्रजी प्रकट हो जाते हैं । इस गुत्थीपर तो मानसपीयूष आदि व्याख्याओंमें बहुत कुछ लिखा गया है; और सदा ही 'मानस-मणि' आदिमें शंकाएँ और समाधान छपते हैं । पर इसका वास्तविक समाधान तो स्कन्दपुराण, चातुर्मास्य-माहात्म्यके २४वें अध्यायमें होता है । वहाँ ॐकार तथा रामनाम-को ही द्वादशकलात्मक सिद्धकर 'वासुदेव'-मन्त्र माना है ।[6] विष्णुपुराण ( अंश १ तथा ६ ) आदिमें भी 'वासुदेव' शब्दका 'परब्रह्म' अर्थ बतलाया है ।

१-अनुशासनपर्व अध्याय १४९ ।

२-अवन्तीखण्ड अध्याय ६३ वें प्रेसका संस्करण नवल-किशोरप्रेस लखनऊके संस्करणमें यह ७४ वाँ अध्याय श्लोक ७४-२०३ है ।

३-गरुड़पुराण, पूर्वखण्ड अध्याय १५ ।

४-इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नाम सहस्रकम् । ( पद्मपु० उत्तर० ७१ । २९५ वेंकटेश्वरप्रेस, बंगवासी तथा मोरप्राच्य संस्करण, पूनामें ७२ । २९७ )

५-'कल्याण'के संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क पृष्ठ ६६९ में भी छप चुका है ।

६-द्रष्टव्य—संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क पृष्ठ ४९९ । स्कन्द-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## रामचरितमानस तथा उपर्युक्त सहस्रनाम

मानसमें इसकी छाया अनेक स्थलोंपर दीख पड़ती है। उदाहरणार्थ उत्तरकाण्डकी कुछ विशिष्ट चौपाइयों-को लिया जाय। गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं—

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पुंज नसावन॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥

( उत्तर० ९१-९२ )

इत्यादि चौपाइयोंका मूल स्रोत उपर्युक्त सहस्रनाम ही है। इसके मूलभूत वचन देखिये—

**सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिदुरासदः।**
**कन्दर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनः[1]॥**
**समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः।**
**ब्रह्मकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः॥**
**कोटीन्दुजगदानन्दी शंभुकोटिमहेश्वरः।**
**कुबेरकोटिलक्ष्मीवान् शक्रकोटिविलासवान्[2]॥**
**हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः।**

( वही १५५-१६१, पूना संस्करण १५१-१५७, वेंकटेश्वर आदि )

यहाँ प्रायः दस श्लोकोंका भाव पूज्यपादने प्रायः उतनी ही चौपाइयों-दोहे आदिमें लिया है। बालकाण्डकी—

सहसनाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

यह चौपाई भी इसी सहस्रनामके—

**नाम्नैकेन तु येन स्यात्तत्फलं ब्रूहि मे प्रभो।** (३३४)
**रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।**
**सहस्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने॥** (३३५)

—इन वचनोंपर निर्मित प्रतीत होती है।

इस सहस्रनामके अगणित विशेषण तथा नाम 'मानस'में व्यवहृत हैं। उनकी रामकथाका बीज भी इसमें संनिहित है। शिव-पार्वती-संवाद-दर्शन भी इसमें है। पाठकोंको ध्यानसे पढ़कर स्वयं लाभ उठाना चाहिये। आश्चर्य नहीं है कि इसीके नियमित पाठसे उन्हें मानसनिर्माणकी विशेष क्षमता तथा 'रामकथा-ज्ञान'की अद्भुत सिद्धि मिली हो।

---

## तुम और मैं

**प्रियतम ! मीठी नित याद तुम्हारी आती। मैं पल भर तुमको कभी बिसार न पाती॥**
**जगनेमें, सपनेमें तुम मेरे प्यारे !। हो होते कभी न मुझसे पल भर न्यारे॥**
**दे दर्शन मुझको सदा परम सुख देते। कर मीठी रसकी बातें दुख हर लेते॥**
**देते रहते दिन-रात स्पर्श-सुख भारी। निज हृदय खोल कह देते मनकी सारी॥**
**यों मिलनेपर भी मिलनेकी अभिलाषा। रहती बढ़ती ही नित्य मिलनकी आशा॥**
**नित मिलनेपर भी पल न दूर स्मृति होती। वह सदा तुम्हींमें प्यारे ! जगती-सोती॥**

---

पुराण, ब्रह्मखण्ड चातुर्मास्य-माहात्म्य अ० २४ श्लोक २० से २५।

इसमें स्पष्ट ही पहले प्रणव तथा रामनामके अक्षरोंमें १२ कलाकी प्रतिष्ठाकी बात है। आगे कुछ भ्रान्ति-सी है, फिर अगले अध्यायमें प्रसिद्ध 'वासुदेव मन्त्र' है। पर पाठमें कुछ पीछेसे गड़बड़ी हुई मालूम पड़ती है।

[1] इसकी छायामें 'दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन'में शब्दसाम्य ध्येय है। यहाँ पूज्यपादने अपनी ओरसे केवल 'अमित' शब्द ही बढ़ाया है।

[2] इसके अनुवाद 'सक्र कोटि सत सरिस बिलासा' में भी सर्वथा शब्दैक्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# 'दूसरो न कोई'

## [ कहानी ]

( लेखक—श्री 'चक्र' )

'वत्स ! यह सम्राट्का यज्ञीय अश्व है—सम्राट् धर्मराज युधिष्ठिरका !' महारानीने अपने कुमारको उत्साह-में भरे आते देखा तो वे चौंक पड़ीं । पुत्रका अभिनन्दन अभीष्ट नहीं था । 'तुम इसे क्यों पकड़ ले आये ?'

'माँ ! मुझे किसीका अश्व नहीं चाहिये; किंतु इसके मस्तकपर जो कुछ स्वर्णपत्रमें लिखा गया है, उसे पढ़कर तो देखो ।' कुमार आवेशमें था । अभी वह बालक है । वह अपने आवेशमें कहता जा रहा है—'सम्राट्का अश्व है तो क्या हो गया । युधिष्ठिरजी सम्राट् हैं, इसीसे तो उन्हें अधिकार नहीं कि वे हमारा अपमान करें । हमको सम्राट्की आवश्यकता नहीं है । हमारे चाचाजी हैं न—हमें उनको छोड़कर और कोई नहीं चाहिये और वे हैं तब सम्राट्से मैं कहाँ डरता हूँ ।'

'चाचाजी तो हैं ?' महारानीका कण्ठ भर आया । 'उनको छोड़कर और अपना है ही कौन; किंतु इस अश्वको तुम पकड़ोगे तो युद्ध होगा । अश्वके पीछे ही उसके रक्षक आते होंगे । सम्भावना यही है कि गाण्डीवधन्वा अर्जुन ही प्रमुख अश्व-रक्षक हों ।'

'मेरे पिताने युद्धमें प्राण दिये हैं ! मैं युद्धसे डर जाऊँ तो तुम मुझे अपना पुत्र कहोगी माँ ? और चाचा-जी ही क्या कहेंगे ?' बालकने कंधेपरसे ज्यासज्जित छोटा-सा धनुष उतारकर हाथमें ले लिया—'अश्वरक्षक अर्जुन ही हैं, मैंने लोगोंसे यह सुन लिया है । किंतु उनके पास गाण्डीव है तो मेरे पास ही धनुषका अभाव कहाँ है ?'

'अर्जुन तुम्हारे चाचाजीके सखा हैं !' महारानी कैसे समझायें अपने इस दसवर्षीय किशोरको, समझ नहीं पाती हैं । उनके पतिदेव महाभारत-युद्धमें धर्मराजकी सहायता करने गये थे पूरी सैन्यशक्तिके साथ । कोई भी तो लौटा नहीं उस युद्धसे । एक भी सैनिक समाचार देने नहीं लौटा । समाचार तो मिला सम्राट्ने अभिषेकके पश्चात् जो चर भेजा, उसके द्वारा । वह महाविनाश और आज उनका एकमात्र आधार यह कुमार फिर धनुष उठाये युद्धका आह्वान कर रहा है ?

महारानी सती नहीं हो सकीं । पतिदेह मिल भी गया होता वे सती नहीं हो सकती थीं । पतिदेवने यह जो अपने वंशधरको उनकी गोदमें दे दिया था—तब यह केवल छः महीनेका शिशु था, जब महाराजने अन्तिम बार इसे गोदमें लेकर स्नेहसे सिर सूँघा इसका और कुरुक्षेत्रको प्रस्थान किया । जाते-जाते वे आदेश दे गये—'इसकी सावधानीपूर्वक रक्षा करना । यही अपने पितरोंको परित्राण देगा ।'

महारानी अपने इस लालका मुख देखकर पतिका वियोग झेल गयीं । अब यह दस वर्षका हुआ और फिर युद्ध ! बड़ा हठी है—बड़ा निष्ठुर है क्षत्रियका धर्म भी । कुमारने अश्वको पकड़कर अधर्म तो किया नहीं है । उसे रोक दिया जाय ? अश्व छोड़ देनेकी आज्ञा दे दी जाय ? हृदय यह भी तो स्वीकार नहीं करता । क्षत्राणी क्या मोहको कर्तव्यके ऊपर विजय पाते देख सकेगी ?

कुमार मान ही जायगा अश्व छोड़नेकी आज्ञा—इसका भी विश्वास कहाँ है । वह कहता है—'अर्जुन होंगे चाचाजीके मित्र; किंतु चाचाजी तो मेरे हैं, मेरे नहीं हैं क्या वे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं क्यों होंगे !' महारानीने दृढ़ स्वरमें कह दिया—'वे तुम्हारे ही हैं ।'

महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था । स्वर्गीय महाराजके साथ महारानी भी गयी थीं उस समय इन्द्रप्रस्थ । राजसूयकी महापरिषद्ने जिसको प्रथम पूज्य माना, वही मयूरमुकुटी, इन्दीवरसुन्दर नगर-प्रवेश करते ही उनका स्वागत करने आया था । उस द्वारिकेश-ने—हृषीकेशने कहिये, अतिथियोंके चरण धुलानेकी सेवा ले रक्खी थी ।

'भाभी !' महाराजको पाद-निवेदन करके वह महारानीके सम्मुख आया और उसका वह नित्य प्रफुल्ल श्रीमुख, उसकी वह त्रिभुवन-मोहन छटा । उसका वह सम्बोधन स्वर—महारानीके प्राणोंमें वह सम्बोधन बस गया । वे आत्मविस्मृत खड़ी रह गयी थीं और आज भी वे विभोर हो जाती हैं उस सम्बोधन-स्वरका स्मरण करके !

'भाभी !' क्या हुआ कि श्रीकृष्णने केवल एक बार ही उन्हें इस प्रकार पुकारा था । क्या हुआ कि राजसूयकी व्यस्ततामें फिर मुकुन्दसे मिलनेका सौभाग्य नहीं मिला । क्या हुआ कि यज्ञान्तमें भी दूरसे ही उस कमललोचनके दर्शन करके विदा लेनी पड़ी । श्रीकृष्णकी वाणी तो असत्यका स्पर्श नहीं करती । उन लोकनाथने एक बार तो पुकारा था भाभी कहकर ।

'माँ, मेरे और कोई नहीं है । अकेली तू है मेरी ।' कुमारने अपने शैशवमें एक दिन कहा था । कितना खिन्न स्वर था उसका । महारानीने उसी दिन कुमारको बताया—'फिर ऐसी बात मत कहना । तुम्हारे चाचा हैं—स्नेहमय, सर्वसमर्थ चाचा । वे तुम्हारे ही हैं ।'

'मेरे चाचा ! कौन हैं वे ? कहाँ रहते हैं ? कैसे हैं ? यहाँ क्यों नहीं आते ?' शिशुने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी थी और महारानीने गद्गद स्वरसे उस अद्भुत देवर-का वर्णन किया था । माता-पुत्रमें यह वर्णन एक दिनका कहाँ रह गया । बार-बार प्रायः पुत्र अपने चाचाके विषय में पूछता और माता बतलाते थकती नहीं ।

'श्रीकृष्ण तुम्हें शीघ्र दर्शन देंगे !' अभी पिछले वर्ष महर्षि दुर्वासा आशीर्वाद दे गये कुमारको और आज यह धर्मराजका यज्ञीय अश्व—तो इस प्रकार पार्थ-सारथिका दर्शन करेगा यह ?

'मैं देख लूँगा अर्जुनको और उनके गाण्डीवको भी !' कुमार अपना नन्हा धनुष लिये अश्वको बाँधने चला गया है अश्वशालामें । वह बचपनसे अदम्य है । उसके आग्रहको महारानी प्रायः टाल नहीं पातीं ।

पिछले वर्ष महर्षि दुर्वासा अकस्मात् आ गये थे । वे आये दिनमें तब, जब भोजनशाला स्वच्छ हो चुकी थी और अर्घ्य स्वीकार करनेसे पूर्व ही आदेश दिया—'मुझे अभी गरम खीर चाहिये ! बहुत क्षुधातप्त हूँ ।'

'आप आसन ग्रहण करें ! अभी प्रस्तुत होता है नैवेद्य !' महारानी और कह भी क्या सकती थीं ।

'मुझे क्षणोंका विलम्ब भी असह्य है !' महर्षिने नेत्र कड़े किये—'दुर्वासाका कोप त्रिभुवनविख्यात है ।'

'आप अकारण रुष्ट हुए जा रहे हैं !' कुमार बालक ही तो है । महर्षि आतङ्कित करना चाहते हैं, यह उसे अच्छा नहीं लगा और बोल उठा—'भय दिखलाकर आप कुछ हमसे नहीं करा सकते !'

'इतना साहस ! इतना अपमान मेरा ?' महर्षिने जल ले लिया कमण्डलुसे हाथमें । महारानी उनके चरणों गिर पड़ीं; किंतु उधर भला वे क्यों ध्यान देते । उनका रोषकम्पित स्वर गूँजा—'किस बलपर तू यह अहङ्कार दिखला रहा है ?'

'चाचाको छोड़कर हमारा और है भी कौन ?' कुमार निर्भय खड़ा रहा । माँने बार-बार कहा है उनके चाचा सर्वलोकमहेश्वर हैं, यज्ञ और तपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोक्ता वही हैं, तब ये महर्षि उसका बिगाड़ क्या सकते हैं ?

'कौन है तेरा चाचा ?' महर्षि दुर्वासा सम्भवतः उसे भी शाप देनेकी बात सोच चुके थे ।

'श्रीकृष्णचन्द्र !' कुमारका स्वर अविचल था ।

'श्रीकृष्णचन्द्र !' महर्षिके नेत्र सीधे हो गये। अञ्जलिका जल धीरेसे उन्होंने अपने कमण्डलुमें ही डाल लिया । उनकी वाणीमें पता नहीं, कैसे रोषके स्थानपर स्नेहकी धारा उमड़ आयी—'तुमने उन हृषीकेशको देखा है वत्स ?'

'यह सौभाग्य मुझे अभीतक नहीं मिला !' कुमार भी विनम्र हो गया । 'लेकिन वे मेरे चाचा हैं । निश्चय वे मेरे हैं ।'

'तुम्हें उनके शीघ्र दर्शन होंगे ।' महर्षिने शापके स्थानपर वरदान दे दिया । 'तुम मुझे क्षमा कर दो ! श्रीकृष्ण निश्चय तुम्हारे हैं और उनके जनोंपर रोष करनेका साहस अब मुझमें कभी नहीं आयेगा !'

महर्षिने सानन्द प्रसाद ग्रहण किया था । वे पुनः शीघ्र श्यामसुन्दरके दर्शनकी बात कह गये थे और आज युद्ध आ गया अपने प्राङ्गणमें । महारानीको पता ही नहीं लगा इस तन्मयतामें कि उनका कुमार अपना नन्हा धनुष लेकर राजसदनसे बाहर भी जा चुका है ।

× × ×

'पार्थ ! एक अनस्त्र बालकपर दिव्यास्त्र उठाते तुम्हें लज्जा नहीं आयी ।' उस मेघ-गम्भीर स्वरको पहचानना नहीं पड़ता । दारुक पूरे वेगमें रथ दौड़ाता आ रहा है । पाण्डव-सेनाने सादर मार्ग छोड़ दिया है । अचानक श्रीकृष्णचन्द्र यहाँ आयँगे, सम्भावना भी किसीको नहीं थी ।

'गाण्डीवधारी कलको प्रद्युम्न अथवा साम्बपर भी इसी प्रकार दिव्यास्त्र उठा सकते हैं ।' स्वरमें झिड़की है, रोष है, व्यंग है और पता नहीं क्या-क्या है । लज्जित अर्जुनने अपना दिव्यास्त्र फिर त्रोणमें पहुँचा दिया है ।

'श्यामसुन्दर !' बड़ा खिन्न, शिथिल स्वर धनंजयका था । वे इस दसवर्षीय बालकसे युद्ध करनेको विवश हुए थे । उन्होंने कितना चाहा था कि युद्ध टल जाय । बालक अद्भुत शूर है । पार्थ हृदयसे उसके प्रशंसक हैं । अकेले बालकने प्रायः पूरी पाण्डव-वाहिनीको त्रस्त कर दिया था । आधे मुहूर्तमें रणभूमि टूटे रथों, मरे गजों एवं अश्वोंसे पट गयी । बालकके शरोंने सैनिकोंके शव बिछा दिये । अन्तमें अर्जुन आगे बढ़े थे । उन्होंने सेनाको रोक दिया था युद्ध करनेसे ।

'कहीं भगवान् पिनाकपाणि ही तो बालकका वेश बनाकर धनुष लिये युद्ध करने नहीं आ गये हैं ।' अर्जुनको सचमुच संदेह हो गया था । बालक उनके शरोंके टुकड़े उड़ाये दे रहा था । उसके छोटे-से धनुषसे छूटे बाण गाण्डीव-धन्वाका कवच फोड़कर सीधे शरीरमें घुस जाते थे । रक्त झरने लगा था पार्थकी देहसे । वे अत्यन्त आहत हो चुके थे । सामान्य शरोंसे काम न चलते देखकर ही उन्होंने गान्धर्वास्त्र उठाया था; किंतु यह मयूरमुकुटी उनका सखा तो रुष्ट हो गया लगता है ।

'श्यामसुन्दर !' अर्जुनने धनुष रख दिया और पुकारा; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रका रथ तो आगे ही बढ़ा जा रहा है । उन्होंने किसीका अभिवादन आज स्वीकार नहीं किया । पार्थकी पुकारपर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया ।

'चाचाजी !' सहसा विजयकी दृष्टि आगे गयी। बालक धनुष फेंककर रथसे कूद पड़ा है । साथ ही कूदे मयूरमुकुटी । दारुकने रथको रोक लिया है और वे दौड़े जा रहे हैं द्वारिकानाथ दोनों भुजाएँ फैलाये ।

वत्स !' बालकको पदोंमें पड़नेका अवकाश न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला। श्यामसुन्दरने उसे हृदयसे लगा लिया है भुजाओंमें भरकर। सम्भवतः उनके कमललोचनोंसे स्नेहके सुधाकण झर रहे हैं। उनका गद्गद स्वर सुनायी पड़ा—'मुझे तनिक विलम्ब हो गया आनेमें बेटा!'

अर्जुन समझ नहीं पाते कि बात क्या है। श्यामसुन्दरकी गति कभी किसीकी समझमें कहाँ आती है। पार्थने रथ आगे बढ़ा दिया है। अपने सखाके समीप उन्हें जानेमें कब हिचक हुई।

'धनंजय!' सहसा पटुकेसे नेत्र पोंछते, बालकका हाथ अपने हाथमें लिये श्रीकृष्णने पीछे मुड़कर देखा—'यह भी मेरा ही राज्य है। द्वारकासे अधिक मेरा है यहाँ। आज धर्मराजके सैनिक राजसदनमें मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।'

बालक गद्गद हो रहा है। एक शब्द उसके कण्ठसे निकल नहीं पाता है। वह जो कुछ कह सकता था, श्यामको वाणीकी अपेक्षा कहाँ है। वे उन अनकहे भावोंको स्वीकृति दे रहे हैं अपने-आप।

'अर्जुन! मैं भाभीके चरणोंमें प्रणाम करने जाता हूँ।' बालकको अपने ही रथपर बैठा लिया उन भुवनेश्वरने—'तुम मेरा आतिथ्य स्वीकार करोगे न?'

इस आतिथ्यको अस्वीकार करे, इतना अज्ञ कौन होगा। यह आमन्त्रण ही था अर्जुनका अहोभाग्य।

---

# संकल्प-शक्तिके चमत्कार

( लेखक—श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम्० ए०, बार-एट्-ला० )

पुरुष अपार शक्तिका भण्डार है। इस शक्तिके प्रकट होनेके अनेक प्रकार हैं; इसीलिये इसके विविध नाम और रूप हैं। यही शक्ति ध्यान या एकाग्रताके रूपमें ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा ज्ञानमें और संकल्पके रूपमें कर्मेन्द्रियोंके द्वारा कर्ममें प्रकट होती है। यदि हमारा ध्यान अन्यत्र हो तो न तो हम कुछ देख सकते हैं और न कुछ सुन सकते हैं। जब जर्मन दार्शनिक हेगल विचारमें मग्न था, तब उसके नगरपर तोपें चल रही थीं, पर वह उनका घोर गर्जन नहीं सुन सका। संसारमें जितने महान् कार्य हुए हैं, उनका कारण संकल्प है। पुर्त्तगालके पाशविक पंजेसे गोवाका विमोचन समस्त भारतके संकल्पका सुखद परिणाम है। संकल्पके सम्बन्धमें मनुका कथन है—

**'संकल्पमूलः कामो वै यज्ञः संकल्पसम्भवः।**
**व्रतनियमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥**

अर्थात् कामनाओंका मूल संकल्प है, यज्ञ संकल्पसे उत्पन्न होता है, प्रतिज्ञा, नियमाचरण और धर्मानुष्ठान—सबकी संकल्पसे उत्पत्ति मानी गयी है। उपनिषदोंने तो संकल्पकी महत्ता बतलाते हुए यहाँ तक कहा है कि—

**संकल्पमयोऽयं पुरुषः**—अर्थात् यह पुरुष संकल्पका ही पुतला है।

संकल्प क्या है—यह भली भाँति जान लेना परमावश्यक है। प्रत्येक संकल्प विचार है, पर प्रत्येक विचार संकल्पकी सीमातक नहीं पहुँचता। जिस प्रकार जलमें लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार मनमें विचार-तरङ्गें क्रीड़ा करती हैं; क्योंकि **संकल्पविकल्पात्मकं मनः**—अर्थात् मन संकल्प-विकल्पवाला है। एक विचार आता है, दूसरा विचार उसके प्रतिकूल उठता है। पुरुष इस द्वन्द्वका साक्षी बना रहता है और कोई निश्चय नहीं कर पाता। ऐसे संकल्प-विकल्प-विप्लवका मार्मिक वर्णन प्रसिद्ध नाटक हैमलेटमें महाकवि शेक्सपीयरने किया है। हैमलेट अपने पिताकी हत्याका बदला लेनेके सोच-विचारमें ही जीवनकी लीला समाप्त कर देता है। उससे कोई दृढ़ निश्चय नहीं बन पड़ता। किसी कार्यके करनेका पक्का निश्चयात्मक विचार ही संकल्प है। हैमलेटका साध्य था पिताका यह आदेश-पालन कि उसकी हत्याका बदला चाचासे लिया जाय। यह साध्य निश्चित था। पर साधनके सम्बन्धमें वह कोई पक्का निश्चय नहीं कर सका। अतएव उसका संकल्प अपूर्ण ही बना रहा।

**संकल्पमें** साध्य, साधन **और** साधकमें **सामञ्जस्य** स्थापित होना अनिवार्य है। इस त्रिपुटीकी एकता ही संकल्पकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य प्रदान करती है। अर्जुन राज्य-प्राप्तिको साध्य और युद्धको साधन मानकर रणक्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ था। स्वजनोंको सामने देखकर उसकी मति पलट गयी और शरीरकी गति विचित्र हो गयी। भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य उपदेशसे ही वह गतसंदेह होकर विजयी हो सका।

साधारण-सा उदाहरण लीजिये। जब आप संकल्प कर लेते हैं कि प्रातःकाल चार बजे उठकर पाँच बजेकी गाड़ी पकड़नी है तो आप अपने-आप ठीक समयपर जाग जाते हैं। शरीर इस साधनामें घड़ीकी तरह काम करता है। यदि आपके इरादेमें जरा भी कचाई हो, आप नियत समयपर जाग नहीं सकेंगे। दृढ़-संकल्पमें पुरुषकी मति स्थिर और शरीर सबल हो जाते हैं। इसी तथ्यको बतलानेके लिये आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकने कहा है—

**'सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।**
**लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥'**

अर्थात् चित्त, आत्मा और शरीर—ये तीनों तीन दण्डोंके समान हैं। उनके संयोगसे संसारकी स्थिति है और उन्हींमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। संकल्प-शक्तिका कारण तीनोंका मेल है। जहाँ एकता है वहाँ शक्तिका निवास है।

प्राचीन और अर्वाचीन कालमें जितने महान् पुरुष हुए हैं, उनमें अनेक व्यक्तिगत विशेषताएँ पायी जाती हैं। पर एक बात सबमें समान है और वह है उनकी विपुल संकल्प-शक्ति। परमात्माके संकल्पसे ही सृष्टिकी रचना होती है। आजन्म ब्रह्मचारी रहनेका कठोर व्रत ग्रहण करनेके कारण राजा शान्तनुके पुत्र देवव्रत भीष्म कहलाये। एल्प्स् पर्वतको पार कर इटलीपर आक्रमण करनेका संकल्प जब नेपोलियनने निज सेनाके समक्ष प्रकट किया तो एक सेनाध्यक्षने उससे निवेदन किया कि यह कार्य असम्भव है। उसने तत्काल उत्तर दिया कि 'असम्भव' शब्दको कोषसे निकाल डालो; संकल्प-शक्तिके सामने कुछ भी असम्भव नहीं है। वह जो दृढ़ विचार कर लेता, उससे पीछे हटना वह नहीं जानता था। उसने 'संकल्पमय पुरुष' होनेकी प्रसिद्धि प्राप्त की।

संकल्पसे मुठभेड़ होनेपर कभी-कभी कराल काल भी चकित हो जाता है। लन्दनके एक अस्पतालमें सन् १९२४ में एक रोगीसे कहा गया कि 'वह दो-चार दिन जीवित रह सकेगा; यदि कोई इच्छा हो तो वह पूरी की जाय।' उसका एकलौता पुत्र हजारों मील दूर देश आस्ट्रेलियामें था। वह उसे देखना चाहता था। तत्काल पुत्रको संदेश भेजा गया और फौरन रवाना होनेका तार उससे प्राप्त हुआ। बीमारके इच्छानुसार आस्ट्रेलियासे लन्दनके मार्गका नक्शा उसके पास लटका दिया गया और जिस बंदरगाहपर उसके पुत्रका जहाज पहुँचता, वह नक्शेमें अंकित कर दिया जाता। इस प्रकार सप्ताह-पर-सप्ताह बीतने लगे और पंजरका पुतला वह पुरुष अपने पौरुषके बलपर मौतके मुकाबलेमें डटा रहा। डाक्टर हैरान थे कि वह कैसे जी रहा है। जिस दिन उसका प्रिय पुत्र लन्दन पहुँचनेवाला था, उस दिन उसके मुखमण्डलपर अलौकिक छटा थी। स्नेहमूर्ति सुतसे मिलकर वह शान्तिपूर्वक सदाके लिये सो गया। भौतिक विज्ञानकी पहुँचसे परे यह आध्यात्मिक चमत्कार इस गूढ़ तत्त्वपर अवलम्बित है कि पिता और पुत्र दोनोंके हृदयोंमें पावन प्रेमका पीयूष प्रवाहित था, अतएव उनका परस्पर मिलनका विचार सत्यसंकल्प हो गया। जहाँ सत्य संकल्प है, वहाँ भगवान्‌का निधान है।

सन् १९५५ में एक दारुण रोगके निवारणमें संकल्पके सामर्थ्यने समस्त संसारको चकित कर दिया। उस वर्षमें प्रधान मन्त्री चर्चिल, जब वे निज कार्यालय नं० १० डाउनिंग स्ट्रीटमें काम कर रहे थे, सहसा पक्षाघातसे आक्रान्त हुए और उनका दाहिना हाथ बेकार हो गया। उनकी वृद्धावस्था देखते हुए उनके आशावादी मित्रोंको भी विश्वास नहीं था कि वे पूर्ववत् स्वस्थ हो सकेंगे और अपना पद सम्हालनेकी क्षमता प्राप्त कर सकेंगे। लोगोंकी धारणा तो यह थी कि वे आजीवन रोगी बने रहेंगे। पर चर्चिल इस कहावतके कायल थे कि 'मनके हारे हार है मनके जीते जीत।' दिन-प्रति-दिन वे सारी शक्ति लगाकर पक्षाघातको पराजित करनेकी कोशिश करने लगे। शनैः-शनैः उनका दाहिना हाथ गतिमान होता गया। एक दिन वह भी आया जब वे उसे उठाकर मुखतक ले आये। धीरे-धीरे वे अपना कार्य-भार थोड़ा-थोड़ा सम्हालने लगे। उनके मन्त्रिमण्डलके सदस्य मिलने आने लगे। और एक दिन वे पुनः अपने कार्यालयमें स्वस्थ होकर आ विराजे। उन्होंने अपनी डायरीमें लिखा है कि 'मेरे पुनः स्वस्थ हो जानेका कारण कोई नवीन औषध नहीं थी। यह तो संकल्प-शक्तिका चमत्कार था और इस शक्तिके मूलमें मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि परमात्मा मुझसे कुछ काम और लेना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिकाके पिछले राष्ट्रपति आइजन हावरका जीवन संकल्पद्वारा रोगोंपर विजय प्राप्त करनेका ज्वलन्त उदाहरण है। सन् १९४९में उन्हें दिलकी सख्त बीमारी हुई। उन दिनों वे प्रतिदिन १५० सिगरेट पी जाते थे और जब किसी बातपर क्रोध आता था तो वे आगबबूला हो उठते थे। डाक्टरोंकी सलाह मानकर उन्होंने एकदम धूम्रपान करना छोड़ दिया और क्रोध न करनेका संकल्प किया। उन्हें आराम ही नहीं हुआ अपितु उनके व्यक्तित्वमें विचित्र परिवर्तन हो गया। इन्द्रियोंके दास न रहकर वे उनके स्वामी बन गये। अतः रोगका आक्रमण उनके लिये वरदान सिद्ध हुआ। सन् १९५७ में मोरक्कोके बादशाहका स्वागत सख्त ठंडकमें करते हुए वे पुनः रुग्ण हो गये, पर आत्म-नियन्त्रण और युक्ताहार-विहारके कारण वे दो तीन सप्ताहमें नीरोग हो गये और पेरिस जाकर 'नाटो' सम्मेलनमें भाग ले सके।

आजकल आइजन हावर आत्मसंयमके आदर्श माने जाते हैं। उनका पूरा नाम है डी० डी० आइजन हावर। पहला डी (discipline) 'अनुशासन' और दूसरा डी (determination) 'संकल्प'के सूचक समझे जाने लगे हैं। वे प्रकृतिके अनुरूप पथ्य-भोजनका सेवन करते हैं। प्रतिदिन सात बजेसे पहले उठ जाते हैं और प्रार्थना करनेके पश्चात् आठ बजे काममें लग जाते हैं और चार घंटे कार्य-व्यस्त रहते हैं। नियमपूर्वक सदा दोपहरमें एक घंटा विश्राम करते हैं। शामके ६ बजेतक कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। फिर प्रार्थना करके दस बजेके लगभग वे सो जाते हैं। विनोदप्रियताके लिये उनकी एक बात प्रसिद्ध है। द्वितीय महायुद्धमें वे संयुक्त सेनाके प्रधान सेनापति थे। एक दिन सैनिकोंको उत्साहित करनेके लिये वे एक स्थलपर पहुँचे। उस समय वर्षाके कारण मंच रपटीला हो गया था। ज्यों ही वे उस मंचपर चढ़ने लगे कि उनका पैर फिसल गया और वे धड़ामसे कीचड़में गिर पड़े। सिपाही हँसी न रोक सके। उनके इस बेहूदेपनपर सेनाध्यक्षने क्षमायाचना की, तो वे मुसकराते हुए बोले कि 'मैं तो इन सिपाहियोंको उत्साह दिलाने आया था, इस रपटनेवाले मंचने मेरा साथ दिया और देखो ये लोग कितने आनन्दित हैं।' ये शब्द सुनकर समस्त सेना उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी। वे अब अमेरिकाके राष्ट्रपति नहीं हैं, पर अपनी गुण-गरिमाके कारण वे सबके श्रद्धाभाजन हैं।

संकल्प-शक्तिके द्वारा श्रीसच्चिदानन्दने विहार प्रदे[श] निर्माण कैसे करा दिया—यह वृत्तान्त परम प्रेरणाप्र[द है।] सन् १९११ से पहले बिहार नामका कोई प्रदेश नहीं [था,] वह विशाल बंगाल प्रान्तके अन्तर्गत था। उन दिनों [आज]कलकी भाँति अनेक भारतीय छात्र इंगलैंडके विद्याल[यों]में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनमें कतिपय छात्र बिहारके [थे।] एक दिन परस्पर परिचय प्रदान करते समय सभी [अपने-]अपने प्रान्तका नाम लेने लगे। जब सच्चिदानन्दकी बारी आ[यी] तो उनके मुखसे सहज ही में निकल पड़ा कि 'मैं बिहार प्रान्तका [हूँ।'] इसपर विवाद छिड़ गया। उन्हें चुनौती दी गयी कि भारतके कि[सी] नक्शेमें या भूगोलकी किसी पुस्तकमें बिहार नामके कि[सी] प्रान्तका उल्लेख नहीं है। वे अपनी हारपर मन मारकर [उस] समय मौन हो गये। बैरिस्टरी पास कर वे भारत लौ[टे।] अनेक प्रान्तोंको पार कर जब उनकी ट्रेनने बिहारमें प्र[वेश] किया तो पहले रेलस्टेशनपर जिस बिहारी कान्सटेबलपर [दृष्टि] पड़ी वह 'बंगाल-पुलिस'के बैजको धारण किये हुए [था।] उनकी सोयी हुई स्मृति जाग उठी और उसी क्षण उन्होंने सं[कल्प] किया कि घर पहुँचकर मेरा पहला कर्त्तव्य होगा बिह[ारको] एक पृथक् प्रान्त बनवाना और तबतक चैनसे न बैठूँगा [जब]तक यह संकल्प साकार न हो जायगा। उस समय उ[नकी] अवस्था २३ वर्षकी थी। उन्होंने जो भगीरथ प्रयत्न कि[या,] उससे वे इतने सर्वप्रिय हुए कि सन् १९०६ में इम्पि[रियल] लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य हो गये और लार्ड लेमिंटो [भी] कभी-कभी सार्वजनिक हितके प्रश्नोंपर उनकी राय लेते [थे।] सन् १९११ में जब सम्राट् जार्ज पंचम भारत पधारे [तब] बिहारके पृथक् प्रान्त बनानेका आन्दोलन बहुत प्रब[ल हो] चुका था। अतः १२ दिसम्बरको दिल्ली दरबारमें सम्रा[ट्ने] घोषणा की कि बिहार एक अलग प्रान्त बनाया जा[येगा।] युवक सच्चिदानन्दने जो दृढ़निश्चय किया, वह सफल [हो] रहा। गीताके द्वादश अध्यायने 'दृढ़निश्चय' को भक्तका [एक] लक्षण बताया है। ऐसा भक्त भगवानको प्रिय होता [है।] भगवत्-प्रेमसे सब कुछ सम्भव है।

'सामूहिक संकल्प' शक्तिका अथाह समुद्र है। [द्वितीय] महायुद्धमें निज देशवासियोंके मनोंमें विजय प्राप्त क[रनेका] संकल्प सामूहिक रूपमें जाग्रत् करनेके लिये प्रधान[मन्त्री] चर्चिलने जय-सूचक संकेत (V) का प्रतिदिन प्रयोग [करने]की जो परिपाटी चलायी, उसका प्रभाव बिजलीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र व्याप्त हो गया। अन्ततोगत्वा उन्होंने जर्मनोंपर विजय प्राप्त की। सन् १९४२में जब महात्मा गांधीने स्वराज्य-प्राप्तिके लिये Do or die 'कार्यं साधयामि वा शरीरं पातयामि' के महामन्त्रका घोष समस्त भारतमें मुखरित किया तो अंग्रेजों-का राज्यसिंहासन डगमगा उठा और इस संकल्पसे जो सुफल मिला वह स्वाधीनताके स्वरूपमें हमारे समक्ष है। **'संहतिः कार्यसाधिका'** और **'संघं शरणं गच्छामि'**के मूलमें सामूहिक-संकल्पका अतुल बल है।

यह तो निर्विवाद है कि संकल्पसे कर्म उत्पन्न होता है। जो मनुष्य चोरी करते हैं, या डाका डालते हैं या किसी प्राणीकी हत्यामें प्रवृत्त होते हैं, वे भी चोरी, डाके या हत्याका संकल्प पहले करते हैं। परोपकारी पुरुष नदीमें डूबते हुएकी प्राण-रक्षाका संकल्प पहले करता है। इन विविध प्रकारके संकल्पोंका मूल्यांकन करनेकी सरल कसौटी है। जिस संकल्पका परिणाम मङ्गलमय होता है वह अच्छा है और जिस संकल्पसे परिणाममें अहित होता है वह बुरा है। सत्संकल्प-में **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** ये तीनों तथ्य निहित हैं। संत तुकाराम कहते हैं 'सत्संकल्पाचा दाता भगवान्'—अर्थात् सत्संकल्पके देनेवाले भगवान् हैं। विषम परिस्थितिमें पड़नेपर अनेक महान् पुरुष सत्संकल्पके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते आये हैं। महामना गाँधी ऐसी प्रार्थना सर्वदा किया करते थे। अच्छे संकल्पसे जो कार्य बन पड़ता है वह स्थायी होता है और बुरे संकल्पका कार्य क्षणिक होता है। परम प्रतापी सम्राटों-के विशाल साम्राज्य अतीतकालके विषय रह गये हैं, पर **'बहुजनहिताय च बहुजनसुखाय च'**—जो महान् कर्म उन्होंने किये, उनकी स्मृति सदा बनी रहेगी। लोकसंग्रहके कारण राम-राज्यका आदर्श भारतके समक्ष सर्वदा स्थिर रहेगा।

संकल्पके सम्बन्धमें यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि कोरे संकल्प करते रहनेसे अर्थात् तदनुसार कार्य न करनेसे आत्मशक्तिका ह्रास हो जाता है। जब कोई काम करनेका संकल्प कर लिया जाय तो वह काम कर ही डालना चाहिये। प्रतिदिनके कार्यक्रममें जो कुछ करनेका संकल्प आपने किया है, उसके करनेमें ही आत्मोन्नतिका रहस्य छिपा हुआ है और ऐसा न करनेसे संकल्प शेखचिल्लीकी कोरी कल्पनाएँ हो जाते हैं। भर्तृहरिकी सूक्ति **'प्रविचलन्ति पदं न धीराः'** में कितना मर्म भरा हुआ है।

अच्छे संकल्प कार्यान्वित करते-करते प्रत्येक पुरुष उन्नति-के उच्च शिखरपर पहुँच सकता है। यह सबल साधन सभीके लिये सुलभ है। रैमजे मैकडानल्ड दीन घरमें पैदा हुए थे। जब वे लन्दनमें थे, सदा सादा और सस्ता भोजन करते और चायके लिये पैसा न होनेके कारण गरम जल पीकर ही काम चला लेते थे। लड़कपनमें नेता बननेका जो संकल्प उन्होंने किया था; उसे सदा ध्यानमें रखकर वे मजदूरोंकी सेवामें समय लगाते रहे। उनके बालकोंको घरपर बुलाकर पढ़ाते। उनके लिये सभा-भवन स्थापित किये और अनेक पुस्तकालय खोले। जब मजदूर-दल बना तो वे उसके नेता हो गये और एक दिन वह भी आया जब चुनावमें उस दलकी जीत हुई और वे प्रधानमंत्रीके आसनपर विराजमान हुए। बेतारके तार ( Wireless Telegraph ) के आविष्कर्ता मार्कोनी-का कथन है कि 'संकल्प-शक्तिकी तुलनामें शब्द-शक्ति तुच्छ प्रतीत होती है। जिस मनुष्यका संकल्प सत्य और **शुद्ध है** वह महान्-से-महान् कार्य कर सकता है।' वैदिक **सूक्तोंमें** मनमें पवित्र संकल्प उत्पन्न होनेके लिये बार-बार प्रार्थना की गयी है। आइये, हम भी भगवानसे बारंबार यह निवेदन करें कि—

**ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।**
**यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥**

'जो मन अनुभव, चिन्तन और धैर्य कराता है, जो इन्द्रियोंमें एक अमर ज्योति है वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।' आज जिस द्रुतवेगसे हमारे देशका नैतिक और आध्यात्मिक पतन हो रहा है, उसे रोकनेके लिये सामूहिक शिव-संकल्प परम आवश्यक है। प्रधानमंत्री श्रीनेहरूका यह कथन सदा स्मरणीय रहेगा। 'We are little men, but when we serve a great cause, something of its greatness falls upon us'. अर्थात् हमलोग छोटे आदमी हैं पर जब हम किसी महान उद्देश्यकी पूर्तिमें लग जाते हैं, तो उसकी कुछ महत्ता हमपर अवतीर्ण होती है। शिव-संकल्पकी साधना ही प्रत्येक पुरुष-का परम पुरुषार्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पर्यटन

( लेखक—श्रीशेषनाराहणजी चंदेले )

गुप्तकालके स्वर्णयुगकी सांध्य किरणें अन्तिम क्षणोंमें मनोहारिणी लग रही थीं। मृत्युके उपक्रमके साथ ही मानो जीवनकी उत्कट अभिलाषाका मनोरम रूप निखर आया था। और बस, सम्पूर्ण क्षितिज गहन अन्धकारमें समा गया।

हाहाकार कर उठे आकाशके देवता। ध्रुव, बृहस्पति तथा मरीच्यादि सप्तर्षिगण अपनी नेत्रज्योतिसे धरतीकी ओर झाँकने लगे। शायद उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ।

भारत माँ विक्षुब्ध हो उठी। उसने दिवाकरकी बाँहें पकड़ लेनेका संकल्प किया। उसने सोचा, 'यदि सूर्यकी रश्मियाँ ग्रहण कर ली जायँ, तो सूर्य रुक सकता है जो किसी नैराश्यकी अतल गहराइयोंमें क्रमशः डूबता चला जा रहा है और फिर उत्थान।' माँके मानस-पटलपर चित्र अङ्कित हो गया; उसने शीघ्रता की। अपने पुत्र और नवजात पुत्रीको साथ लिया और द्रुतगामी वाहनपर आसीन हो गयी।

'आप यन्त्रवाहनके मर्मज्ञ नहीं हैं पूज्य।' प्रज्ञाने हृदयके समक्ष अपना गौरव प्रकट किया।

'और तुम्हारा मस्तिष्क अपने विवेकका कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकता प्रज्ञे!' हृदयने अपनी महत्ता प्रकट की।

माँने यह द्वन्द्व देखा। 'पर्यटनकी भूमिकामें ऐसा द्वन्द्व अशुभका प्रतीक होता है'—माँने समझाया। 'प्रज्ञे! यन्त्र-संचालनका उत्तरदायित्व तुमपर है और ज्येष्ठ! मार्ग-दर्शन-का कार्य तुम्हारा है।'—उन्हें निर्णय मिला।

प्रज्ञा अपनी विजयपर मुस्कुरा उठी, किंतु मार्ग-दर्शनकी बात उसे अपमान-जनक लगी। ऐसा भाव प्रकट किया, मानो इसे उसने अवहेलनाके कानोंसे सुना है। प्रज्ञा यन्त्र-संचालनके लिये उद्यत हुई। हृदयने माँसे कुढ़ते हुए कहा—'जननी! प्रज्ञा बड़ी धृष्ट है।'

माँने कहा—'हाँ वत्स! धृष्टता उसकी तर्कबुद्धिका वैभव है।'

'जिसके अभावने हृदयको ईश्वर-जैसी मिथ्या वस्तुकी मान्यताके लिये विवश कर दिया है। क्यों माँ! है न यही बात?'—प्रज्ञाने व्यङ्ग किया।

'चुप भी रहो प्रज्ञा! चलो विलम्ब न करो। एक क्षणका भी विलम्ब हमें स्पृहणीय नहीं। सूर्यका पतन बड़ी क्षिप्र गतिसे हो रहा है।' माँने विवाद आगे न बढ़ने दिया।

प्रज्ञाने यन्त्र-वाहनके पहिये पश्चिम दिशाकी ओर मोड़ दिये।

'प्रज्ञे! मेरी अन्तरात्मा पश्चिम दिशाके अनुसरणका विरोध कर रही है।'—हृदयने आक्षेप करते हुए कहा।

'आपकी अन्तरात्मा अबोध है। क्या उसने सूर्यको पश्चिम दिशाकी ओर डूबते नहीं देखा?'—और प्रज्ञा मुस्कुरा पड़ी।

यन्त्र-वाहन द्रुत गतिसे भागा जा रहा है। अपने उद्देश्य की प्राप्तिके लिये तीनों उत्कण्ठित थे।

यहाँ दूरीके माप-दंडमें योजनकी इकाई नहीं थी। अकिञ्चित् संज्ञा-प्राप्त सीमाएँ अङ्कित थीं उस मार्गपर।

'भौतिक विश्वास' की परिधि-रेखा हम पार कर गये माँ-प्रज्ञाने भारत माँके प्रति अपनी गर्वोक्ति प्रकट की।

'यह उचित नहीं प्रज्ञे! भौतिक विश्वास हमें ज्योति-प्राप्तिमें संबल नहीं बन सकता। हमें अध्यात्म-मार्गका अवलम्बन ग्रहण करना चाहिये था। हम तमिस्राका वरण करते जा रहे हैं।'—हृदयने आकुलता प्रकट की।

'बन्धु! यह तमिस्रा नहीं अपितु तुम्हारे नेत्रोंकी विशेषता है। अज्ञात, अव्यक्त, अरूप और अदृश्य तुम्हें दृश्यमान होता है तथा प्रत्यक्ष, व्यक्त, साकार और दृश्य संसार तुम्हारी आँखोंका विषय नहीं बन पाता।'

'मैं तुम्हें मार्गच्युत नहीं करना चाहता किंतु यह मार्ग हमें श्रेयस्कर नहीं है, यह कभी समझ पाओगी। विश्व-वस्तुके भोगकी अतृप्त कामनाएँ व्यक्तिकी सात्त्विक चित्त-वृत्तिका विरोध करती है और शक्तिका संबल पाकर व्यक्ति या तो दानव बन जाता है अथवा जीवनको बोझिल समझकर नैराश्यकी गहराईमें निस्पन्द हो जाता है। यह कामनाओंकी अतृप्ति मानव-हृदयमें बिंधा हुआ प्रकृतिका अव्यर्थ बाण है। इन कामनाओंके फलस्वरूप व्यक्तिकी मानसिक स्थितिमें समरसता नहीं आती, जो उसके जीवनका उद्देश्य है। वस्तु-संग्रहका प्रयास हमारे जीवनको खोखला बना डालता है। हमें क्षणभर विश्रामका अवकाश नहीं मिलता। यन्त्रद्वारा प्राप्य सुखकी आशामें हम स्वयं यन्त्र बन जाते हैं, फिर हमारा अपना कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। हम यन्त्रके लिये सोचते हैं, यन्त्रके लिये समस्त चेष्टाएँ होती हैं, यन्त्रके लिये यह जीवन काम आ जाता है। किंतु जीवनके लिये यन्त्रकी कोई सार्थकता सिद्ध नहीं होती। उससे हमें संतोष और आत्मिक शान्ति दुर्लभ ही रहती है। साधनसे साध्यकी पूर्ति नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाती, अपितु जीवन-पर्यन्त साधन ही हमारा साध्य बनकर रह जाता है।' हृदयने प्रतिवाद किया।

'यह नवीनताके प्रति तुम्हारे हृदयकी प्रतिक्रिया मात्र है। यन्त्र मानव-जीवनका आवश्यक और अभिन्न अङ्ग है और मानव-जीवनके उद्देश्यपर चिन्तन करना तुम-जैसे निष्क्रिय व्यक्तिका विषय है।' प्रज्ञाने अपना दृष्टिकोण संक्षेपमें प्रस्तुत किया।

'यदि इसे निष्क्रियता कहती हो, तो तुम्हारे सक्रिय होनेका कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। तुम्हारा व्यस्त जीवन यन्त्र-वाहनका एक ऐसा गतिमान् पहिया है, जो प्रतिबन्धोंसे मुक्त और उद्देश्यहीन है। इस तरहका जीवन पाशविक जीवन है। इस तरहका प्राणी संसारमें पशु कहलाता है।' जबतक हृदय-ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, 'स्वार्थ'की सीमा पार हो गयी। अनिष्टकी आशंकाओंसे हृदय विक्षुब्ध हुआ जा रहा था। उसने भारत माँसे कहा—'माँ! प्रज्ञाकी धृष्टता अब असह्य है। हम 'स्वार्थ'की सीमा भी पार कर गये। यह मार्ग हमें बिल्कुल ही स्पृहणीय नहीं। स्वार्थकी भूमिकामें संघर्षका निर्माण होता है, जो विश्वके विनाशका पर्याय है। हमें अभी लौट जाना समीचीन होगा।'

प्रज्ञा बोल उठी—'चतुर्दिक् स्वार्थके सम्यक् कर्षण-बलपर विश्वका स्थायित्व सुरक्षित है बन्धु! तुम्हारी चिन्तन-शैली सर्वदा त्रुटियोंको प्रश्रय देती है।'

'और तुम्हारी तर्क-बुद्धि धूर्तताका आश्रय ग्रहण करती है। माँ! दिवाकरकी किरणें हमसे दूर होती जा रही हैं। यह लो 'लोभ'की सीमा भी पार हो गयी।'

प्रज्ञाने कहा—'किंतु अनुचित क्या हुआ बन्धु! तुम इसे लोभ कहते हो, मैं इसे महत्त्वाकाङ्क्षा कहती हूँ। जीवनमें उन्नतिके लिये क्या इसकी उपादेयता कुछ भी नहीं? मैं तो समझती हूँ, मानव-जीवनकी सफलताका यही मूल-मन्त्र है। अङ्कुरके अभावमें वृक्षके पल्लवित होनेकी सम्भावना निराधार है।'

'बहिन! तुम्हारे जीवनका लक्ष्य ही निर्धारित नहीं है, वहाँ उसकी सफलताका स्वरूप भी अनिश्चित है। तब अङ्कुर और पल्लवका औचित्य भी सर्वथा विचारणीय हो जाता है।'

अबतक 'क्रोध' और 'संघर्ष'की सीमा पार हो चुकी थी। हृदय अधीर हो उठा। प्रज्ञा मुस्कुरा रही थी। यन्त्र-वाहनकी गति विद्युत्-गतिका अनुसरण कर रही थी। हृदयने यन्त्र-वाहन अवरुद्ध करनेके हेतु अपनी समस्त शक्ति नियोजित कर दी, किंतु प्रज्ञाकी तर्क-बुद्धिकी अधीनतासे यन्त्र-वाहन मुक्त न हो सका।

'हिंसा'की भूमिपर तीनों गतिमान् थे।

'यह द्वेष, उत्पीड़न, अनाचार और रक्तपात उचित नहीं प्रज्ञे!'—हृदयने आकुल होकर कहा।

'ये सब हमारी स्पृहाके परिणाम नहीं हैं बन्धु! ये प्रकृतिके गन्तव्य-पथपर दृष्टिगोचर होनेवाली समयकी माँगें हैं। अपने सुखके लिये मानव-समाजकी हर इकाई प्रयत्नशील है। इसलिये यह कोई अस्वाभाविक नहीं।'—प्रज्ञाने प्रत्युत्तरमें कहा।

'यही तो मानव-समाजकी इकाईका गलत प्रयास है। उसका दृष्टिकोण व्यापक नहीं है। धरतीसे ऊपर वह इतना ही उठ सका है; जहाँसे नेत्रोंकी रश्मियाँ केवल 'स्वार्थ'की क्षितिज-रेखाको स्पर्श कर पाती हैं। उसके विचारोंमें गगनका विस्तार नहीं। उसका चिन्तन स्वार्थमूलक होता है। क्रियाएँ स्वार्थमूलक होती हैं और उपयोग भी स्वार्थमूलक होते हैं। उसकी अव्याप्त मनोवृत्ति उसे मानव-हृदयकी समष्टि-वेदनासे अस्पृष्ट रखती है। औदार्यकी प्रेरणा-जनित आत्मतृप्तिकी मधुर अनुभूतिसे उसका अन्तःकरण वञ्चित रहता है। इससे समाजकी इकाइयाँ बिखरी होती हैं। इसे समाजका कल्याणकारी लक्षण नहीं कहा जा सकता।'—हृदयके मनमें तूफान उठा था।

'हिंसा'की सीमा अपने रक्तिम वर्णमें दृष्टिगोचर होने लगी।

प्रज्ञाको आभास हुआ, मानो वही दिवाकरकी किरणें हैं।

एक मिथ्या प्रतीति। और प्रज्ञा किलक उठी।

हृदय क्रन्दन कर उठा!

'हिंसा' की सीमा पार होते ही भारत माँने देखा कि यन्त्र-वाहनमें अब हृदयका अस्तित्व न था, गतिका दबाव असह्य होनेके कारण वह धराशायी हो चुका था और हिंसाकी क्रोडमें उसकी रक्तरंजित देह तड़प रही थी!

यह 'मानव-हृदय'का वीभत्स दृश्य था!

यन्त्र-वाहनकी गतिमें कोई मन्दता नहीं आयी थी। कहते हैं, यह मार्ग एक विशाल गहन तमोमय गह्वरमें जाकर समाप्त हो जाता है।

सप्तर्षिगण अबतक अयोध्या और व्रजकी अन्धकारपूर्ण गलियोंमें 'राम' और 'कृष्ण'को ढूँढ़नेका प्रयत्न कर रहे थे।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति

( हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक भाषणसे )

**मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।**
**यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥**

मानव-जीवनके सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें व्याप्त अनादिकालीन सनातन परम्परासे प्रचलित नित्य सर्वभूतमयी धर्ममयी सुसंस्कृत 'विचार और आचारप्रणाली' का नाम भारतीय या आर्यसंस्कृति है । यही सर्वाङ्गपूर्ण तथा चिरजीवी आद्य मानव-संस्कृति है । *

इस संस्कृतिके परम कल्याणकारी मुख्य लक्षण हैं—अनन्त विभिन्न विचित्र जगत्‌के समस्त प्राणिपदार्थोंमें एक नित्य सत्य परमात्माको देखना, समस्त विषमताओंमें नित्य सर्वत्र परिपूर्ण सत्यके दर्शन करना, सतत मृत्युके प्रवाहमें बहते हुए विश्वमें नित्य अमर अविनाशी सच्चिदानन्द-तत्त्वकी उपलब्धि करना, व्यावहारिक जगत्‌की व्यवहार-भिन्नताका स्वीकार तथा तदनुरूप विषमं आचरण करते हुए भी समस्त चराचरमें समरूपसे स्थित एक आत्मामें नित्य एकत्वकी अनुभूति करना, सहज ही सबके हितमें रत रहते हुए संयमित जीवनके द्वारा जीवनके चरम और परम लक्ष्य परमात्माकी ओर—पूर्णत्वकी ओर अविराम अग्रसर होते रहना, एवं अपने निर्दोष तथा निष्कामभावसे आचरित सम्पूर्ण कर्मोंके द्वारा भगवान्‌को पूजकर मोक्ष, परम शान्ति अथवा भगवत्साक्षात्कार प्राप्त कर लेना ।

* ऐसा होनेपर भी भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनतामें और उसकी नित्य महत्तामें अनास्था उत्पन्न करनेवाले तीन भ्रम बहुत कुछ कारण बने हैं—१. आर्य लोग बाहरसे आये, २. क्रमविकासवाद या उत्क्रान्तिवादका सिद्धान्त और ३. चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं मिलता । ये तीनों सत्यसे सर्वथा दूर अतएव भ्रममात्र हैं, जो भारतको अपने गौरवसे गिरानेकी दुष्ट अभिसंधिसे या अज्ञानसे प्रचारित किये गये हैं । इन तीन महाभ्रमोंसे सर्वथा बचनेकी आवश्यकता है ।

इसीसे भारतीय संस्कृतिमें त्यागकी महत्ता है, भोगकी नहीं । भारतीय संस्कृतिमें मानव यथायोग्य अधिकारानुसार प्रचुर सुख-समृद्धि, सौभाग्य-सम्पत्ति, अधिकार-ऐश्वर्य, शक्ति-सामर्थ्य, विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, यश-मान आदि भौतिक पदार्थोंका अर्जन करता है, पर वह उनका न तो संग्रह करता है और न अपने व्यक्तिगत भोग-विलासमें ही उनका उपयोग करता है, वरं वह उन समस्त पदार्थोंको प्राणिमात्रमें स्थित परमात्माकी सेवामें देश, जाति, जनमानव या प्राणिमात्रके माध्यमसे समर्पित कर देता है। उसका समस्त अर्जन उत्सर्गमय ही होता है। इसीलिये 'अर्थ' एवं 'काम'की अवहेलना न करके उन्हें धर्मनियन्त्रित रखकर मोक्षकी ओर अग्रसर होते रहनेकी साधन-पद्धति स्वीकार की गयी है । भारतीय संस्कृतिमें अर्थ-धर्म-काम-मोक्षको 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' कहा गया है। धर्मसम्मत 'अर्थ-काम' और लक्ष्य 'मोक्ष' । मनु महाराज कहते हैं कि जो 'अर्थ' और 'काम' धर्मके विरोधी हों, उन अर्थ और कामका त्याग कर देना चाहिये—

**परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।**
( ४ । १७६ )

एवं धर्म वस्तुतः वही है जो मनुष्यकी जीवन-धाराको सुख भोग-जगत्‌से मोड़कर भगवान्‌की ओर कर दे एवं जिससे सतत अविराम अविच्छिन्न गतिसे जीवन-प्रवाह निरन्तर समुद्रकी ओर बहनेवाली गङ्गाजीकी धाराके सदृश उसी ओर—भगवान्‌की ओर ही बहता रहे—

**मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ।**

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप बतानेवाली वेदवाणी है—

**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥**
( यजुर्वेद ४० । १ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
76156

'इस अखिल विश्वमें जो कुछ भी जड-चेतन जगत् ( प्राणी-पदार्थ और गति-विधि ) है, वह सब ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए, त्यागपूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत होओ। किसी अन्यके धनकी इच्छा मत करो।'

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।**
**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥**

( यजुर्वेद ४० । २ )

'इस जगत्में इस प्रकार ईश्वर-प्रीत्यर्थ कर्म करते हुए सौ वर्षोंतक ( पूर्णायु ) जीनेकी इच्छा करो। यों त्यागपूर्वक किये गये कर्म मनुष्यमें लिप्त नहीं होते। इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है।'

**यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।**
**सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥**

( यजुर्वेद ४० । ६ )

'जो सब प्राणियोंको आत्मामें ही देखता है और सब प्राणियोंमें आत्माको देखता है, वह किसीकी निन्दा नहीं करता।'

**यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।**
**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥**

( यजुर्वेद ४० । ७ )

'जिस कालमें सर्व प्राणी आत्मस्वरूप ही जाननेमें आते हैं, वहाँ एकत्व देखनेपर मोह और शोक कहाँ रह सकते हैं!'

भारतीय संस्कृति मनुष्यको धर्महीन, जडवादी, कामोपभोगपरायण, संकुचित स्वार्थपर, देहात्मवादी और नास्तिक नहीं देखना चाहती। भारतीय संस्कृति चाहती है—मनुष्य धर्मपरायण हो, परार्थ त्याग करनेवाला हो। व्यक्तिगत जीवनके स्वार्थ, भोगविलासकी अभिलाषा, किसी भी प्रकारसे यश-मान-प्रतिष्ठाकी चाह, दूसरेके विनाशमें अपना विकास देखना, दूसरेके दुःखको अपना सुख समझना; द्वेष, द्रोह, वैर, घृणा, हिंसा मतान्धता, परापकारप्रियता, असहिष्णुता आदि दोषोंका सर्वथा त्याग करके अद्वेष्टापन, मैत्री, करुणा, अहिंसा, सत्य, सेवा, क्षमा, दया, तितिक्षा, तप, परमत-सहिष्णुता, इन्द्रिय-संयम, चित्तसंशुद्धि आदि सद्गुण तथा सद्विचारोंका सेवन करते हुए समस्त द्वन्द्वोंसे ऊपर उठकर भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करके सबमें सुख वितरणकर भगवान्को प्राप्त करे। मनुष्यमें आसुरीभाव, पाशविक भावका सर्वथा अभाव हो। वह सचमुच मनुष्य बनकर देवत्व और अन्तमें ईश्वरत्वको प्राप्त कर ले। यही भारतीय संस्कृतिका महान् उद्देश्य है।

भारतीय संस्कृतिमें धनकी उपेक्षा नहीं है, पर वह धनको जीवनका उद्देश्य नहीं स्वीकार करती। धनको ही प्रधानता देनेवाला पूँजीवाद, भोगवाद या भोगप्रधान साम्यवाद भारतीय संस्कृतिको स्वीकार नहीं है। उसमें अर्थकी प्रधानता नहीं है, प्रधानता है अध्यात्मकी। इसीसे उसमें धनसंचय और धन-भोगकी अपेक्षा धनके त्यागकी विशेष महत्ता है। अधिक धन उपार्जन करनेकी अपेक्षा यथासाध्य आवश्यकताओंको कम करके सादी सरल पवित्र जीवनपद्धति समाज तथा व्यक्ति सभीके लिये सुखप्रद तथा वाञ्छनीय है। 'जीवनका स्तर उच्च' करनेके नामपर भोगविलासके लिये अर्थकी आवश्यकताको अत्यन्त बढ़ा लेना और चोरी, ठगी, डकैती, विश्वासघात, परस्वापहरण, धोखा, मिलावट, रिश्वत आदिके द्वारा धनोपार्जनका प्रयास करते रहना—भारतीय संस्कृतिको स्वीकार नहीं है।

भारतीय संस्कृति अर्थोपार्जनके लिये कहती है—पर केवल अपने लिये नहीं। गीतामें भगवान्के वाक्य हैं—

**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।**
**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥**

( ३ । १३ )

देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य एवं इतर—पशु-पक्षी, वृक्ष-लता-ओषधि आदि समस्त प्राणियोंका हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपार्जनमें भाग है; इन सभीका हमपर ऋण है; क्योंकि हम इन सभीसे यथायोग्य सहयोग-सहायता प्राप्त करके ही जीवन-यापन और अर्थोपार्जन कर सकते हैं। अतएव इनका भाग इन्हें यथायोग्य दे देना यज्ञ है—पञ्चमहायज्ञ हमारी नित्यकी दिनचर्यामें है । अतः जो मनुष्य इस यज्ञसे अवशिष्ट—इन सबका भाग दे देनेके बाद बचे हुए अन्नको खाता है, वह अमृत खाता है, पर जो कमाईका प्राप्य उचित भाग इन्हें न देकर—इनका ऋण न चुकाकर सब अकेला हड़प जाता है, वह पाप खाता है । श्रीमद्भागवतमें तो अपना पेट जितनेसे भरे, उससे अधिकपर अपना अधिकार माननेवालेको चोर तथा दण्डका पात्र कहा गया है—'स स्तेनो दण्डमर्हति ।' गीतामें भी देवताओंको न देकर स्वयं भोगनेवालेको चोर कहा गया है—'यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।'

भारतीय संस्कृति केवल मनुष्यमें ही अपने आत्माको देखकर—उसकी सेवा-संरक्षण करके संतुष्ट नहीं है । वह प्राणिमात्रमें आत्माको देखकर—भगवान्‌को देखकर सबके प्रति प्रेम करनेकी, सबकी सेवा करनेकी आज्ञा देती है । भगवान् गीतामें कहते हैं—

**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥**
( ६ । २९ )

**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।**
**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥**
( ६ । ३० )

'योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शी पुरुष सबमें—समस्त प्राणियोंमें आत्माको देखता है और समस्त प्राणियोंको आत्मामें देखता है ।'

'जो पुरुष सर्वत्र ( सब प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियोंमें ) मुझ ( भगवान् ) को देखता है और सबको मुझ ( भगवान् ) में देखता है, उसके लिये मैं कभी ओझल नहीं होता और वह मुझसे कभी ओझल नहीं होता ।'

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।**
**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥**
( ६ । ३२ )

'अर्जुन ! आत्माकी उपमासे अर्थात् अपने ही स[मान] सम्पूर्ण प्राणियोंको जो समभावसे देखता है और [सु]ख या दुःखमें भी जो अपने ही समान समभाव र[खता] है, मेरे मतमें वही योगी सर्वश्रेष्ठ है ।' श्रीमद्भाग[वतमें] कहा गया है—

**मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।**
**आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ॥**
( ७ । १४ । ९ )

'हरिन, ऊँट, गधा, बंदर, चूहा, साँप, पक्षी और मक्खी आदिको अपने निज पुत्रके समान समझे । उ[नमें] और पुत्रमें अन्तर ही कितना है ।'

**मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ।**
**ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥**
**ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ।**
**अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ॥**
**नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ।**
**स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥**
**विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ।**
**प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥**
( ११ । २९ । १२, १४, १५, १६ )

'शुद्धहृदय पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके और अ[पने] हृदयमें आकाशके समान बाहर और भीतर परि[पूर्ण] आवरणशून्य मुझ भगवान्‌को ही स्थित देखे । जो पु[रुष] ब्राह्मण, चाण्डाल, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, चिनगारी, कृ[पालु] और निर्दय सबमें समान दृष्टि रखता है, वही वस्[तुतः] पण्डित है । सभी नर-नारियोंमें जब मेरी ( भगवान्‌की ) भावना की जाती है, तब थोड़े ही समयमें मनुष्यके [...] स्पर्धा, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर हो [जाते] हैं । लोकनिन्दा, उपहास आदिकी परवा न करके [...] देहदृष्टि एवं लोकलज्जाको छोड़कर कुत्ते, चाण्[डाल]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौ एवं गधेको भी ( उनमें भगवान् समझकर ) पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे ।'

केवल चेतन प्राणी ही नहीं, जड पदार्थोंमें भी भगवान्‌को ही देखे—

**खं वायुमग्निं सलिलं महीं च**
**ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।**
**सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं**
**यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥** (११ । २ । ४१)

'ऐसा पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी-समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं, यों सबमें भगवान् समझकर अनन्यभावसे सबको प्रणाम करता है ।'

सीय राम मय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

मनु महाराजने मनुष्यमात्रके दस धर्म बतलाये हैं, जो भारतीय मानव-संस्कृतिके स्वरूपको स्पष्ट करते हैं—

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥**
( मनुस्मृति ६ । ९२ )

'धृति, क्षमा, दम, ( मनका संयम ), अस्तेय ( किसीकी भी वस्तु या हकको किसी प्रकार भी लेनेका विचार तथा प्रयत्न न करना ), शौच ( बाहर और भीतरकी शुद्धि ), धी ( बुद्धि ), विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं ।

कहाँ तो भारतीय संस्कृतिके ये पवित्र उदार सर्व-भूतहितमय भाव और कहाँ आजका कलह-हिंसामय जीवन ? आज अपने नीच स्वार्थके लिये एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके, तथा बन्दर, हरिण और अन्यान्य पशु-पक्षियोंके प्राण-हरण करनेमें हिचकता नहीं । इतनी ही बात नहीं है, वह अपने स्वार्थके लिये न मालूम प्राणिहिंसा-के कितने-कितने आयोजन करता है, जिनके द्वारा लाखों-करोड़ों जीवोंकी हत्या होती रहती है और वह इसे अपना कर्त्तव्य तथा इसमें गौरव मानता है !

व्यवहारमें व्यावहारिक जगत्‌के नियमानुसार असमता रखना अनिवार्य है । माता और पत्नी दोनों समान अवयव-वाली स्त्री हैं, परंतु भाव और व्यवहारमें अनिवार्य सहज भेद है । हाथी, गौ, कुत्तेमें एक ही आत्मा है, पर उनके आकार-प्रकार, मूल्य तथा उपयोगमें अनिवार्य भेद है । हाथ, पैर, मस्तक, मुख, गुदा आदि सबमें एक ही आत्मा है तथा सबके सुख-दुःखमें समान अनुभूति है, परंतु व्यवहारमें अनिवार्य भेद है । पर यह सब होनेपर भी उनमें किसीमें न परस्पर द्वेष है, न किसीका अहित करनेकी चेष्टा है । इसी प्रकार समस्त प्राणियोंमें समभावसे आत्मा या भगवान्‌का दर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति विविध साधनोंसे सबकी सेवा—व्यष्टिके द्वारा समष्टि-की सेवा, सबका सहज हित करनेका आदेश देती है ।

संत विनोबा भावे 'हिंदू' शब्दका अर्थ करते हैं—

**यो वर्णाश्रमनिष्ठावान् गोभक्तः श्रुतिमातृकः ।**
**मूर्तिं च नावजानाति सर्वधर्मसमादरः ॥**
**उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म तस्मान्मोक्षणमीहते ।**
**भूतानुकूल्यं भजते स वै हिंदुरिति स्मृतः ॥**
**हिंसया दूयते चित्तं तेन हिंदुरितीरितः ॥**

'जो वर्ण और आश्रमकी व्यवस्थामें निष्ठा रखनेवाला, गौ-सेवक, श्रुतियोंको माताकी भाँति पूज्य माननेवाला तथा सब धर्मोंका आदर करनेवाला है, देवमूर्तिकी जो अवज्ञा नहीं करता, पुनर्जन्मको मानता और उससे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है तथा जो सदा सब जीवोंके अनुकूल बर्तावको अपनाता है, वही हिंदू माना गया है । हिंसासे उसका चित्त दुखी होता है, इसलिये उसे 'हिंदू' कहा गया है ।'

इस हिंदूने जिस जीवन-पद्धतिको—जिस आचार-विचार-पद्धतिको अपना रक्खा है, वही हिंदू-संस्कृति, भारतीय-संस्कृति या मानव-संस्कृति है ।

इस भारतीय संस्कृतिकी अपनी कुछ विशेषताएँ ये हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. सबमें एक आत्मा होनेका विश्वास ।

२. कर्मफलमें विश्वास ।

३. पुनर्जन्ममें विश्वास ।

४. मोक्ष या भगवत्प्राप्तिमें विश्वास ।

५. रागद्वेषरहित जीवन-धारणोपयोगी वर्णधर्म तथा आश्रम-धर्मकी व्यवस्था ।

६. विवाह-संस्कार ।

७. बड़ोंकी सेवा तथा गो-सेवा ।

८. संसारके विभिन्न मत्तवादों तथा उपासना-पद्धतियोंके प्रति उदारता,सहिष्णुता तथा उन्हें अपनेमें समा लेनेकी चेष्टा ।

९. 'अर्थ' तथा 'अधिकार'को प्रधानता न देकर 'त्याग' और 'कर्त्तव्य' को प्रधानता देना।

उपनिषद् कहते है—

**न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥**

'कर्मसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, त्यागसे ही कोई अमृतत्वको प्राप्त होते हैं।'

भारतीय संस्कृतिमें विवाह कोई समझौता या कंट्राक्ट नहीं है । भोग-विलासके लिये एक-दूसरेका स्वीकार नहीं है । नारी पुरुषकी सहधर्मचारिणी सेविका है और पुरुष नारीका स्वामी होनेपर भी उसका सेवक है। दोनों अभिन्नात्मा हैं । एक दूसरेके पूरक हैं । इसीसे उनका प्रथम मिलन—विवाह एक पवित्र 'धार्मिक संस्कार' है । परस्पर आत्मदान है ।

भारतीय संस्कृतिमें देहकी स्वतन्त्रता सर्वथा मान्य है,परंतु उससे भी अधिक आवश्यकता है मस्तिष्कके स्वातन्त्र्यकी ।

आज हमारा देश विदेशी दासतासे मुक्त है, स्वतन्त्र है, पर यह राजनीतिक स्वतन्त्रता आध्यात्मिक स्वतन्त्रताके बिना सर्वथा अपूर्ण है । आध्यात्मिक दासत्वसे हम मुक्त नहीं हुए हैं। इसीसे आज विदेशी वेशभूषा, आचार-विचार, नियम-कानून, विदेशी जीवनचर्याका प्रभाव हमारे जीवनमें सर्वत्र छाया है। हम शरीरसे मुक्त होते हुए ही मस्तिष्कसे गुलाम हैं । अपनी भारतीय संस्कृतिके प्रति अनास्था ही इसका कारण है !

सबसे अधिक गम्भीरताके साथ विचार करने योग्य बात तो यह है कि हमारी भारतीय संस्कृतिपर एक नवीन आधुनिक सर्वथा विपरीत आसुरी-संस्कृतिका आक्रमण हो रहा है और वह देशकी राजनीतिक मुक्ति होनेके बाद तो और भी प्रबल हो गया है। इस आसुरी संस्कृतिका लक्ष्य है—केवल भौतिक सुखोपभोग, घृणा, असहिष्णुता, प्रमाद, हिंसा इसके आधार हैं और इन्हींके परायण हुई यह संस्कृति अपना विस्तार कर रही है—( कामक्रोधपरायणाः ) । अपनी संस्कृतिमें अनास्था उत्पन्न करनेवाली शिक्षा, बाह्य विज्ञानके चमत्कार, हमारे देशकी दरिद्रता, एवं राजनीतिक कारणोंसे उत्पन्न कलह-विद्वेष इस विषवृक्षको सींच रहे हैं ! इसीसे आज देश सर्वत्र दलबंदी, कलह, घृणा, अराजकता और अनैतिकताकी ओर अग्रसर हो रहा है। दैवी सम्पत्तिका विनाश करके आसुरी सम्पत्तिका विकास और फलतः चिरकालीन पवित्र आध्यात्मिक जीवनका सर्वनाश ही इस रूपमें उदित आसुरी संस्कृतिका उद्देश्य है । दुःखकी बात है कि हमारा मस्तिष्क आज इस आसुरी भावनाका आश्रय करके सच्चे कल्याण-पथसे पराङ्मुख हुआ जा रहा है !

ऐसे विकट समयमें यह परमावश्यक हो गया है कि हमारे देशके शीर्षस्थानीय नेताओंका और जनताका ध्यान भारतीय संस्कृतिकी महानता, उपादेयता और कल्याणकारिताकी ओर खींचा जाय ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि एकमात्र अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृतिकी रक्षा, प्रचार और स्वीकार ही सम्पूर्ण विश्व-जगत्को भीषण विध्वंससमूहसे बचाकर, उसके समस्त दुःख-क्लेशोंका निवारण कर, उसे नित्य शाश्वत सुख-शान्ति देनेमें समर्थ हैं। **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'।**

'हरिः ॐ तत्सत्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक——सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

[ गताङ्कसे आगे ]

## बदरीनाथसे विदा

तीन दिनोंके इस सुखद और चिरस्मरणीय पावन तीर्थ-वासके बाद आज वह विदा-वेला भी आ पहुँची थी, जिसमें हम इस पवित्र पुरीसे, उसकी इस पुण्यभूमिसे, अरण्य-खण्डोंसे, उन्नत हिममण्डित श्वेत शिखरोंसे, भगवान् बदरीनाथके भव्य मन्दिर तथा तपोलीन भगवत्-रूप बदरीविशालसे स्वल्प कालमें ही नाता तोड़नेवाले थे। ५ जुलाईका मध्याह्नका समय आतुरतासे अपराह्णकी ओर बढ़ रहा था। आज हमारा लक्ष्य था—पाण्डुकेश्वरमें पड़ाव। सभी अपना सामान समेटनेमें उद्यत थे, भारवाहक भी अनुशासित और नियन्त्रित सैनिकों-से अपने हाथ-पैर मजबूत कर भारसाधनोंको सँभाल बिस्तर कसने लगे तथा कंडी-डंडीवाले अपने वाहनोंको डेरेपर लगा चलनेको प्रस्तुत हो गये। समयकी तीव्रगतिके कारण हमें भी जल्दी थी और हमारे कारण ही इन्हें भी। एक पड़ावसे दूसरे पड़ावपर पहुँचनेके लिये इस समूची यात्रामें हमें सदा ही जल्दी रही है। आज भी थी। किंतु आजकी यह जल्दी कुछ भिन्न थी; कुछ भयानक-सी। यात्रापर जब हम चले, एकके बाद एक पड़ाव पार करते मनमें बड़ा उत्साह रहता और इस उत्साहके कारण अनेक बार हम अपनी यात्रापर प्रस्थान करनेके निश्चित समयके कुछ पूर्व भी आगे बढ़नेको उद्यत हो जाते। भारवाहकोंको बुलाते, इनमें कभी कोई आनेमें कुछ विलम्ब करता तो कितनी झुँझलाहट होती हमें। आगे बढ़नेकी, ऊपर चढ़नेकी, जल्दी जो रहती। आज यह बात न थी। अब हमें न ऊपर चढ़ना था न आगे बढ़ना। हमारे भारवाहकोंको भी, जो दो दिन पूर्वतक हमारे लिये चले थे, हमारे लिये बढ़े थे, हमारे लिये ही दुर्गम घाटियाँ चढ़े थे, अब नहीं चलना था, अब नहीं बढ़ना था, नहीं अब वे दुर्गम घाटियाँ चढ़नी थीं। अब तो उन्हें कुछ ही दूरतक नीचे उतर पीपलकोटीतक हमें पहुँचाकर अपने श्रमका मेहनताना, परिश्रमका मोल और संकल्पकी दक्षिणा लेकर मुक्ति पाना था। पहले हमें लक्ष्यपर, जो हमारा अब पूरा हो चुका था, पहुँच अपने मनोरथकी मुक्तिकी चाह रहती, आज इन्हें अपने मनोरथकी मुक्तिकी चाह थी और इसीलिये आज इन्हें पूर्वापेक्षा जल्दी थी। कैसी दो-भाव और दुविधा भरी जल्दी थी यह। पहले हमें उत्साह रहता, आज हम हताश थे। जो मन सदा उल्लसित रहा, आज अन्यमनस्क था, जाने क्यों ! कदाचित् संयोग और वियोगके भावोंकी ही महिमा थी यह। प्रिय वस्तुओंकी प्राप्ति, अभीष्टकी सिद्धि और आत्मीयजनोंके संयोग-सुखकी हमने जीवनमें अनेक बार अनुभूति की थी। इस यात्रापर उसका उत्कृष्ट रूप भी हमने देखा। इसी तरह प्रिय वस्तुओंके पृथक्त्व और आत्मीयजनोंके विछोहसे भी अनेक बार हम व्याकुल हो चुके थे। फिर जिस संयोग-सुखके लिये हम आकुल मनसे सदा बढ़ रहे थे, उसकी प्राप्तिके साथ ही वियोगका वह भय, जिसे हम इन तीन दिनोंतक यहाँके उस स्वर्गिक दृश्यमें भुला बैठे, भयानक रूपमें आज हमारे सामने आ गया। यह भय क्या एक यथार्थ था, जीवनका एक सत्य। हम कातर दृष्टिसे जीवनके इस सत्यकी ओर देखने लगे। हमारे हाथ-पैर चल रहे थे, हम अपना सामान समेट रहे थे, किंतु हमारे मस्तिष्कमें घूम रहा था—उत्तराखण्ड, उसके पावन तीर्थ और मनोरम दृश्य। इन सबको, जिनको अभी हमने देखा था, देख रहे थे और कुछ कालमें स्वप्निल बनाने जा रहे थे। जहाँ एक ओर हम इस निर्मम और कठोर काल-गतिके कायल थे, वहाँ दूसरी ओर हमें ऐसा लगा कि एक बार पुनः उत्तराखण्डकी वन-श्रीको, प्राकृतिक प्रभुसत्ताको, पावन सरिताओंको, कलकल करते निर्झर झरनोंको, शीतल जल-प्रपातोंको, अरण्य-खण्डोंको, हिम-शिखरोंको, हरी-भरी लता-कुञ्जों और झुरमुट-झाड़ियोंको, पुष्प-पौधों और विशाल तरुओंको, इनपर बैठे कलरव करते पक्षियोंको, भूले-भटके दिखे वनचरोंको, यहाँके सभी देवालयोंको, देवालयोंके देवतुल्य देवसेवियोंको, साधना-रत उन सभी अरण्यवासी ज्ञानियों, ध्यानियों और संतोंको और दारिद्र्य-दुःख होते हुए भी सदाचारसे श्रमलीन तपस्वियोंसे यहाँके गिरिवासियोंको भरजोर, भर-नजर निरख लें। गहरी खाइयों और भयानक खंदकोंको भी, मँडराते, घोर गर्जन करते, कभी गिरिखण्डोंपर बैठते, कभी चलते, कभी चढ़ते, कभी उतरते उन मेघखण्डोंको, जिन्होंने पग-पगपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ हमारा साथ दिया था, आज फिर भरपूर देख लेनेकी चाह उमड़ पड़ी। न हम अब यहाँ रह सकते थे और न फिर उत्तराखण्डके इस वैभवको देख ही सकते थे। जो देख लिया था, वह समय गत था, जो न देखा था वह भावगत। यह स्वल्प समयगत और अल्प भावगत भविष्यत्‌की मंजिलपर स्वप्नगत बनने जा रहा था। मनकी भयावह स्थिति थी। वह चल पड़ा उत्तराखण्डका चक्कर लगाने। कभी मेघ बन ऊँचे-ऊँचे शैल-शिखरोंपर मँडराता, कभी प्यासा पथिक बन निर्झर झरनों, शीतल जलप्रपातों और उमड़ती सरिताओंमें अपनी प्यास बुझाता, तो कभी रसिक मधुक बन पुष्पघाटियोंमें मकरन्द पान करने लगता। कभी भक्त बन किसी देवालय-में देव-आराधना लीन हो जाता तो कभी भक्तिरसमें तल्लीन भक्तोंके समूहमें खो जाता। फिर पलभर ठहरता, फिर मँडराने लगता। कभी किसी पुष्पका पराग पान करता तो कभी किसी पुष्पपर निमिषभर रुकता, छिन-छिन मँडराता, हम उसे संयत करनेका लाख प्रयत्न करते, पर पतंगकी तरह वह तो आज पागल था, दीवाना था अपने इश्कका। मनकी इस अस्थिर अवस्थामें हम धधकते हृदयसे भगवान् बदरी-विशालसे विदा लेने मन्दिरमें पहुँचे। अपने तीन दिनोंके पुरी-प्रवासमें हमने भगवान् बदरीविशालके प्रायः सभी पूजन-दर्शन किये थे। इन दर्शनोंमें दर्शनार्थियोंका जो जमाव होता, उसे भी देखा था। इस समय भी काफी जमाव था, खासी अच्छी भीड़। यात्रियोंकी यह भीड़ अनुपातमें अधिक हमें उत्तराखण्डके चारों धामोंमें ही मिली थी, यहाँ यह सर्वाधिक थी। मार्गमें मिले अगणित लोग और देवस्थानोंकी यह भीड़ स्नान-भजन-पूजन और आराधनाके वे सभी दृश्य, जो हमने अपने उत्तराखण्डकी इस यात्रामें देखे थे, एकबारगी दृष्टिके सामने होकर गुजरने लगे। मन अपनी अपूर्व गतिसे इन दृश्यों-का हमें साक्षात्कार कराने लगा। अब उसे यमुनोत्तरी, गंगोत्तरीके दुर्गम मग और दुरूह घाटियोंको पार तो करना नहीं पड़ता था। अतः पलभरमें तो वह गंगोत्तरी पहुँच जाता, पलमें यमुनोत्तरी, पलमें त्रियुगीनारायण तो पलमें केदारनाथ, न कोई तारतम्य, न कोई सिलसिला था। जहाँ उसकी मर्जी करती अटक जाता, भटक जाता, चला जाता, चला आता। मनके माध्यमसे उत्तराखण्डके इस पावन तीर्थ-संगमकी हम एक बार फिर यात्रापर निकले। इस यात्रामें यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी और केदारनाथ सभी जगह गये। अब बदरीनाथकी भी यात्रा हम कर चुके थे। पैदलवाला मार्ग विकट चढ़ाइयोंवाला फिर एकदम बीहड़ और अत्यन्त संकीर्ण। अधिक-से-अधिक ऊँचाईपर हमलोग चलते और नीचे, कम नीचे नहीं, हजारों फुट नीचे यमुना, गङ्गा, मन्दाकिनी और अलकनन्दाके पावन प्रवाहके निकट भी देवदार और चीड़के घने हरित पल्लवधारी वृक्ष, फलोंसे लदे तरु, लताओंसे आच्छादित विविध पौधे और अनन्त रूप-रंगों-वाली सौरभ बिखेरती पुष्पावली इन दुर्गम घाटियोंमें यत्र-तत्र शोभायमान थी। पावन सरिताओंके संगम, इन संगमोंपर एकत्रित यात्रियोंका समूह, स्नान-ध्यान, पूजन-मनन, चिन्तन, पिण्डदान एवं तर्पणमें निमग्न। कैसा मनोभावन था यह दृश्य, श्रद्धा तथा भावसे कोई करबद्ध प्रार्थना कर रहा है, कोई भगवान् भास्करको अर्घ्य दे रहा है, कोई हाथोंमें पुष्प लिये अपने भक्तिभावसे भीजी श्रद्धाञ्जलि भागीरथीको भेंट कर रहा है तो कोई कुश और जनेऊ थामे विधिवत् अपने पितरों-का श्राद्ध, तर्पण और पिण्डदान। इन संगमोंपर पण्डे और उनके यजमान, यात्रियोंका यह संगम कैसा चित्ताकर्षक, कैसा मनोहारी, कैसा भक्तिभाववर्धक और कैसी असीम आस्तिकता-का द्योतक होता, यह दृश्यके दर्शकके ही समझकी बात होती। मन्दिरोंमें आचार्य, रावल और पुजारी वेदमन्त्रों, यजुर्वेदकी ऋचाओं और भक्ति-गीतोंका मुक्तकण्ठसे सस्वर पाठ करते। यात्रियोंके झुंड-के-झुंड प्रवेश करते और तदनन्तर भगवद्दर्शन करते ही कैसा असीम सुख, एक अव्यक्त शान्ति और एक प्रकारकी तपश्चर्याके बाद जो सिद्धि होती है, उसका अनुभव करते ये भक्तजन।

मन्दिरोंमें भगवद्दर्शनके समय ध्यानमग्न कोई कहीं चित्रलिखे-से दिख रहे थे तो कोई अवनीपर माथा टेके आत्मसमर्पण-सा करते, कोई नेत्र खोले कुछ गुनगुनाते कोई भक्तिगान-सा गाते, तो कोई नेत्र मूँदे अश्रुप्रवाहित कर अपने भावोंकी सरिता बहाते। श्रद्धालु यात्रियोंकी यह भाव-भंगिमा देखते ही बनती थी। भक्तिका अद्भुत प्रभाव और अपने उद्देश्यकी सिद्धि, लक्ष्यकी प्राप्तिपर उन्हें कैसा अपूर्व सुख मिल रहा है, यह इन मन्दिरोंका पवित्र वातावरण बता रहा था। जान पड़ता, जैसे भगवान् और भक्तकी यह भेंट दो विमुक्त साथियोंकी भेंट है। किसी ऐसे बिछुड़े प्रियतमकी, जिसे अनन्तकालसे अनन्त मार्गोंद्वारा भूल-भटककर यह भक्त निरन्तर खोजता आ रहा है और उत्तराखण्डके बीहड़ तथा दुर्गम मार्गोंमें एक लम्बे काल और कठिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद उसे अपना प्रभु मिल गया है। क्यों न हो ? साधारण-से-साधारण इष्टकी प्राप्तिपर संतोष और सुखकी अनुभूति मानवकी प्रवृत्ति है, फिर इस महान् इष्टकी प्राप्तिपर आज उसका रोम-रोम, उसकी पार्थिव देहका कण-कण यदि प्रफुल्लित हो स्पन्दन कर रहा हो, नाच रहा हो, तो यह स्वाभाविक ही था। उसकी कठिन तपस्याका ही तो परिणाम था यह। उसके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरताके निवारण-की, अपनी श्रेष्ठ साधकी, कठिन त्यागकी ही तो फलसिद्धि थी और कठोर कष्टोंका ही तो सुफल था यह। उसे उसके प्रभु मिले। आखिर यह जीव उन्हींका तो अंश है। यथार्थमें जीव और ब्रह्म एक ही तो हैं। एक ही वस्तुके दो नाम। एक ही चित्रके दो दर्शन। एक सूर्यकी अनन्त किरणों और अनन्त प्रतिबिम्बोंकी तरह। सूर्यकिरणें सूर्यसे कितनी देरतक पृथक् रह सकती हैं, उसका भी एक समय रहता है और उसके आते ही सूर्य समेट लेता है अपने इन अनन्त अंशोंको, अनन्त रूपों और अनन्त प्रतिबिम्बोंको। अनन्त कालसे बिछुड़ा यह ईश्वर-अंशधारी जीव सृष्टिकी नाना योनियोंमें भटकता है, नाना प्रकारके कर्म-अकर्म करता है और आवागमनके-चक्रजालमें फँसा रहता है, किंतु जब इसे अपने सत्कर्मोंके कारण मानवकी देह मिलती है तो इस मानवरूपी देहधारी जीवको एक विशेष ईश्वरीय शक्ति और मिल जाती है, वह है एक सद्भाव, जिसमें उसकी मुक्तिके बीज छिपे रहते हैं। इस सद्भावका उदय होते ही वह जीवन्मुक्ति-के इस बीजका आरोपण करता है अपने ही अंदर। सुलभ बुद्धि, विवेक, ज्ञान और शक्तिके द्वारा बुद्धि मिट्टी बनती है, विवेक खाद, ज्ञान पानी और शक्ति वह घेरा ( बाड़ी ) जिसकी सुरक्षामें सद्भावका यह बीज मुक्तिरूपमें अङ्कुरित होता है। कालान्तरमें यही एक विशाल वृक्षका रूप ले मुक्तिफलका जनक होता है। ऐसे पारिभाषिक और प्रयत्नरूपी मुक्तिवृक्षसे मुक्ति-मार्गके अनन्त द्वार उद्घाटित होते हैं, उसकी शाखाओं और टहनियोंमें अनन्त फल फल जाते हैं जो अनन्त जीवोंकी मुक्ति-का कारण बनते हैं। ऐसा मुक्ति-वृक्षरूपी वह बीज ( मानव ) इस वृक्षको जन्म दे स्वयं तो मुक्त होता ही है, दूसरोंकी मुक्ति-का हेतु बनता है। सृष्टिके अनन्त जीवोंमें मनुष्य ही एक ऐसा जीव है, जिसे केवल यह विशिष्ट शक्ति प्राप्त है। उसकी यह विवेकशक्ति एक ऐसा पारदर्शी ऐनक है, जिसके द्वारा उसे उचित-अनुचित, भले-बुरे, हित-अनहित और उत्थान-पतनका बोध होता है। इस प्रकार जब जीव मनुष्ययोनि प्राप्तकर इस विवेकशक्तिके द्वारा अपनेको पहचानता है, अनन्त कालसे अपने-आपपर पड़े अपने ही अपरिचयरूपी आवरणको हटानेमें समर्थ होता है। यथार्थमें अपने वास्तविक रूपको पहचानना ही मानवकी सबसे बड़ी सफलता है और इस पहचानका न होना ही उसकी सबसे बड़ी असफलता भी। जब उसे यह भान हो जाता है कि मैं क्या हूँ ? क्या कर रहा हूँ, तो छटपटाकर अपने पूर्ण रूप अपने पूर्ण आकारकी प्राप्तिकी दिशामें वह तेजीसे अग्रसर हो जाता है और फिर उसे भव-अवरोध उसी तरह नहीं रोक पाते, जैसे गङ्गाके प्रवाहको हिमालय। जब उसके अन्तश्चक्षु खुल जाते हैं तो उसे उसकी ( ज्योति ) भगवान्‌तक पहुँचनेमें सुदृढ गढ़ और उसकी फौलादी दीवालें भी नहीं रोक पातीं। वह पागल पतंगेकी तरह अपनी दिव्यदृष्टिसे अपने इष्ट दीपकसे मिलनेको आतुर मन और प्राणभयसे रहित व्यथित-हृदय लेकर भक्त्याकाशमें मँडराता है। जीवको अपने आत्मतत्त्वका बोध होते ही वह संसारसे विमुख होने लगता है और फिर संसारविमुख होकर यह भक्त भ्रमररूपी मनसे तबतक चक्कर लगाता है उस वाटिकामें जबतक उसे उसका इष्ट, उसका आराध्य और अभीष्ट न मिल जाय। उसे तो केवल भान रहता है अपने इष्टका, अपने प्रियतमका। अपने प्रियतमकी पावन सुरभिमें वह प्रमत्त हो घूमता है, चक्कर काटता है। न उसे कण्टकाकीर्ण मार्गका भान है और न किसी पुष्पकी पंखुड़ियोंमें सदाको सो जानेका भय। ऐसा अबोध, काम-क्रोध-लोभ-मोहसे रहित शुद्ध सात्त्विक निश्छल भावभरा मानव और भावुक भक्तजन अपने देवके सम्मुख होता है तो—

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। कोटि जन्म अघ नासहिं तबहीं॥

—की उक्तिके आधारपर उसके अतीतके दोषोंका अपने-आप शमन हो जाता है और उसे भगवत्-साक्षात्कार सम-जीवनका वह सुख सहज प्राप्त हो जाता है, जो उसका जीवन-इष्ट भी होता है। इस भक्तिरसका, भगवान् और भक्तका यह दृश्य यहाँ उपस्थित था। हम देख रहे थे, मानो मन्दिरकी वह निर्जीव पाषाण-मूर्ति, सजीव देहधारी मानवकी सशक्त सगुणो-पासनाके कारण सजीव हो उठी हो। उस अवलोकनमें, भगवान् और भक्तमें एक विचित्र आभा, एक अलौकिक शोभा उस समय दृष्टिगोचर होती। दोनों मूक थे। न भगवान् कुछ बोलते न भक्त कुछ कहता। दोनों एक दूसरेको देखते, दोनों ही अपनी अपूर्व [illegible] छटा छिटकाते, भावोंसे एक दूसरेमें



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाते, दोसे एक हो रहे थे। इसी समय किसी अज्ञात आवाजमें हमें सुनायी दिया—'तपस्यासे प्रसन्न देव सम्मुख हैं, वर माँग लो।' हम चौंके। क्या अभी भी हमारी कोई आकांक्षा है, कोई अभीष्ट है, कोई मनोरथ है? यदि हो तो यह सुन्दर योगपर जीवनकी हर साध पूरी हो सकती है। हम विचारसरणिमें तैरने लगे। कुछ दूर जाते फिर कूलपर लौट आते। भवसागर उमड़ रहा था, जिसका न कोई आदि था न अन्त। हम उसकी एक कगारपर खड़े थे। इस पार क्या है, यह देख रहे थे, उसे देख चुके थे। भाव-तरङ्गोंसे तरङ्गायित इस भवसिन्धुका हमने अनेक बार अवगाहन करना चाहा, अनेक बार इसके पार क्या है, यह जानना चाहा, इसमें कितने रत्न हैं कितने कंकड़-पत्थर, यह मालूम करना चाहा, पर हम सदा ही असफल हुए। ऐसी स्थितिमें अब हमारी और क्या आकांक्षा और मनोरथ हो सकता था? यात्रापर जब हम चले थे, तब भी हमने कोई मनौती नहीं की थी। एक सहज इच्छा थी जीवनके मुक्तिपथके पहचानकी। उसके निकटतम हम पहुँच चुके थे। अब केवल हमारा लक्ष्य था—अपने शेष जीवनमें मुक्तिपथपर सतत बढ़ते जाना, बिना रुके बिना ठहरे, सरिताके निर्मल प्रवाहकी तरह। इससे अधिक हमारी न कोई चाह थी, न कामना। हमने जीवनको यहाँ देखा था, उसके यथार्थ मुखका साक्षात्कार किया था, अतः जीवनके इस सार्थक पक्षको भुला किसी अदृश्य, अगोचर, स्वर्णिम मुखकी अब हमारी कोई चाह नहीं रह गयी। हमने जिस भूमिपर जगतीका यह द्वन्द्व देखा, जीवनका मर्म पहचाना, अपने-आपको जाना, अपने इष्ट रूपको पहचाना तथा उसके आगे क्या है और उसके पीछे क्या, यह न जान पाया तो ऋषि सुतीक्ष्ण जिनके विषयमें तुलसीदास और कालिदासने कहा है—'नाम सुतीछन रति भगवाना' तथा 'नाम्ना सुतीक्ष्ण श्चरितेन दान्तः' का वह कथन बरबस हमारे मुखसे भगवत्-चरणोंकी वन्दनामें इस भगवत्-साक्षात्कारके समय मुखरित हो उठा—

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा।
समुझि न परइ झूठ का साचा॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई।
सो मोहि देहु दास सुखदाई॥

और जीवनके चरमोत्कर्षकी मंजिलपर पहुँचनेवाले मुखसे अभिभूत हृदयसे भगवान् बदरीविशालके चरणोंमें अपनी अश्रु-अञ्जलि अर्पितकर हम सब फिर लौट पड़े जीवनके पथपर जिस पथसे हमने आज यह भगवत्साक्षात्कार किया।

जिस समय हमने बदरीनाथ छोड़ा, वर्षा हो रही थी। बदरीनाथमें तीन दिनके हमारे प्रवासकालमें बीच-बीचमें वर्षा होती रही थी। हमने अपना पहला मुकाम पाण्डुकेश्वर किया। दूसरे दिन सोमवती अमावस्या थी। सोमवती स्नान हमने जोशीमठमें किये। तीसरे दिन हम पीपलकोटी पहुँचे। पीपलकोटीमें हमने अपने भारवाहकों, कंडी-डंडीवाले का हिसाब भुगतान कर उन्हें छोड़ा। लगभग डेढ़-पौने महीने ये लोग हमारे साथ रहे, एक 'पारिवारिक सम्बन्ध' सा हो गया था, इन्हें छोड़ते हुए हम और हमें छोड़ते हुए ये लोग आज कुछ अव्यक्त अभाव अनुभव कर रहे थे। यों तो जीवनकी मंजिलमें हमलोग नित्य ही कितनोंसे मिलते-बिछुड़ते हैं। यही बात इन लोगोंके साथ भी हुई। किंतु हमारे और इनके मिलने-बिछुड़नेमें प्रधान रूपसे एक बात और थी, जिसके कारण है कदाचित् हमारी और इनकी यह मनोदशा हो गयी। उत्तराखण्डकी यात्रापर हम अब इस जीवनमें फिर आनेवाले नहीं थे और यदि आवें भी तो ये नेपाल-वासी ही हमें अब भारवाहकके रूपमें मिलेंगे, इसकी भी क्या सम्भावना। यह कतई नहीं। इसी तरह बराबर अपना पेशा जारी रखनेसे इन्हें आगे भी अनेक यात्री मिलेंगे, किंतु हम नहीं। उत्तराखण्डकी यात्रामें अनेक अपरिचित ही मिलते हैं, कुछ तो परिचयके साथ ही, कुछ-कुछ काल बाद सदाके लिये बिछुड़ जाते हैं। संसारमें मिलनेवाले बिछुड़कर अनेक बार पुनः मिल जाते हैं। पर उत्तराखण्डके बीहड़ वनों और दुर्गम पथोंमें मिले यात्रियोंसे पुनः भेंटकी आशा क्वचित् ही रहती है। इसका कारण है, देशके हर कोनेके, सुदूर गाँवोंसे लोग यहाँ आते हैं, इनके यहाँसे लौटकर कार्यक्षेत्र और दूरीके कारण फिर मुलाकातकी कतई कोई सम्भावना नहीं रहती। ऐसी मुलाकात और संयोगको गोस्वामी तुलसीदासजीने सुन्दर उपमा दी है—

तुलसी या संसारमें भाँति भाँतिके लोग।
सबसों हिल-मिल चालिये नदी-नाव संजोग॥

गोस्वामी तुलसीदासजीका यह दोहा उत्तराखण्डकी यात्रामें केवल अपरिचितोंके परिचय और उनके संयोगके लिये नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरं हर दृष्टिसे सर्वथा सार्थक है। यहाँ देशके हर प्रदेश, हर भाषा-भाषी, भाँति-भाँतिके विविध वेशभूषाके यात्री मिलते हैं। इनसे मिलकर चलनेमें ही आनन्द और सुख मिल सकता है, अन्यथा गोस्वामी तुलसीदासजीके इस भावको भुलाते ही यात्रा-मुकामोंपर साधन-संकीर्णताके कारण अनेक बार झगड़ा हो जाया करता, यह हमने प्रत्यक्ष देखा भी था।

पीपलकोटीसे हमलोग ऐसी मोटर-बसमें सवार हुए जो पीपलकोटीसे सीधे ऋषिकेश आती थी। हमारी बस पाँच बजे प्रातःकाल पौ फटते-फटते पीपलकोटीसे चली और बीच-बीचमें कुछ ठहरती हुई सायंकाल संध्या होते-होते ऋषिकेश पहुँच गयी। इन चौदह घण्टोंमें हमने मोटरसे एक सौ अड़तालीस मीलकी यात्रा की। पहाड़ी रास्तेके कारण इतनी थोड़ी दूरकी यात्रामें भी हमें चौदह घंटे लग गये। ऋषिकेशके चारों ओरका प्राकृतिक दृश्य आज हमें और भी सुहावना जान पड़ा। इसका कारण कदाचित् हमारी प्रसन्न मानसिक चित्त-दृष्टि थी। जीवनके इतने बड़े कार्यको समाप्त करनेपर हमारे मनका हर्षोत्फुल्ल होना स्वाभाविक था। और ऐसी मनोवैज्ञानिक अवस्थामें इस दृश्यका और भी अधिक आकर्षक और सुन्दर दिखना भी सर्वथा स्वाभाविक। ऋषिकेशसे लगभग बीस मील आगेसे पहाड़ बड़े सघन हो जाते हैं। उनके बीचका यह पहाड़ी आड़ा-टेढ़ा पथ और गङ्गाका लहराता, शान्त प्रवाह इस संध्याकालमें बड़ा ही मनोरम दृष्टिगोचर हो रहा था। फिर हम हर्षोत्फुल्ल थे यात्राके सुखद और सुन्दरतम संस्मरणोंसे।

ऋषिकेश पहुँचते-पहुँचते रत्नकुमारीने एक गीत गुनगुनाया—

**गीत**

हिमगिरि भ्रमण, देवता दर्शन, पावन सरिता-जल अभिषेक।
निमल तन, सुविचार विमल मन, जाग्रति उन्मुख ज्ञान विवेक॥
तीर्थाटन परिणति आनन्दित, यद्यपि लौट चले निज गेह।
मानो, हृदय खींचता पीछे, देवभूमि-सुषमाका नेह॥
सर्पाकृति-संकुल पर्वत-पथ, उतर चला समतलकी ओर।
वाहन चला सवेग त्यागता, वन समूह गिरि अञ्चल छोर॥
सम्मुख ऋषीकेशमें देखा, सुरसरिता प्रवाह अति शान्त।
शैल शिखरसे उतर जाह्नवी, समतलपर लेटीं हो श्रान्त॥
खग कूजन रव झंकृत नूपुर, सन्ध्या अरुण चरणका न्यास।
नभ-प्राङ्गणमें बिछे जलदके, मृदुल पाँवड़ोंका रँग साज॥
सलिल स्तिमित-सा, बना मुकुर सम, प्रतिबिम्बित सन्ध्याका भाल।
नव ताराकी जगमग बेंदी, अरुण माँगयुत तम-कच जाल॥
उन्नत गिरिपर, समतल भूपर, फैला सन्ध्या स्वप्निल कान्ति।
निशि-तम, दिन-प्रकाश, मध्यस्थित, मानो देती श्रमको शान्ति॥
उच्च भूमिसे, समतलपर आ दिव्य धामको किया प्रणाम।
हिम उज्ज्वल प्रकाशसे पावे, जन-जीवन लघु किरण-ललाम॥

(क्रमशः)

---

# मेरे प्यारे भगवान् सदा मेरे साथ रहते हैं

मेरे प्यारे भगवान् प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थानमें, प्रत्येक स्थितिमें नित्य निरन्तर मेरे साथ रहते हैं। एक क्षणके लिये भी वे मुझसे अलग नहीं होते। मेरे सौभाग्यशाली नेत्र रसलुब्ध मधुकर बने नित्य निरन्तर विश्वविमोहन मधुर मुस्कानसे मण्डित उनके मुख-कमल-मकरन्दका पान करते रहते हैं; पर कभी अघाते ही नहीं। इसी प्रकार, वे मेरी आत्माके परमात्मा प्रियतम भगवान् भी सदा अपनी दिव्य सुधामयी दृष्टिसे मुझपर अमृतवर्षा करते रहते हैं। कभी मैं उनके सुकोमल क्रोडमें सो जाता हूँ और वे मेरे सिरपर हाथ रखकर मेरे केशोंको अपनी कोमल कराङ्गुलियोंसे सहलाने लगते हैं। कभी मैं उनके चरणकमलोंसे चिपट जाता हूँ। कभी वे मुझे हृदयसे लगा लेते हैं। पता नहीं क्या-क्या करते हैं, पर रहते हैं सदा मेरे साथ ही!

मैं कभी जरा-सी भी दूसरी बात सोचना चाहता हूँ तो पता नहीं, वे कैसे जान जाते हैं और विश्वभुलावन मनभावन मेरे वे प्यारे तुरंत ही ऐसी जादूभरी हँसी हँस देते हैं कि उसी क्षण मैं सब कुछ भूल जाता हूँ। वे भगवान् क्षणभर भी मुझको तन-मनसे कभी भी अलग नहीं होने देते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सत पंच चौपाई मनोहर

( लेखक—स्वामीजी श्रीप्रेमानन्दजी )

पूज्यचरण भागवतशिरोमणि प्रातःस्मरणीय श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीका यह छन्द—

**सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जे नर उर धरे।**
**दारुन अबिद्या पंचजनित बिकार श्रीरघुबर हरे ॥**

अनेकों बार पढ़नेके बाद मुझे यह प्रेरणात्मक भावना मिली कि मानसके सातों काण्डोंके अन्तर्गत छन्द, सोरठा, दोहा तथा जितनी चौपाइयाँ हैं, उन सभीका सार ( सत ) स्वरूप जो पंच ( पाँच ) मनोहर चौपाइयाँ हैं, उन्हींको हृदयमें धारण करके मनुष्य दारुण अविद्या-ग्रस्त पञ्चजनित विकारको दूर कर सकता है। यही प्रपत्ति-योग है, जिसके सम्बन्धमें आदिकवि वाल्मीकि अपनी रामायणमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्रके शब्दोंमें ही व्यक्त करते हैं—

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥**

श्रीमद्भगवद्गीता ( १८ । ६६ )में भी भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥**

आशय दोनों सद्ग्रन्थोंका एक ही है।

यों तो श्रीरामचरितमानसके मर्मज्ञों, मानस-महारथियों तथा मानस-राजमरालोंकी उक्तियों तथा निजी अनुभवोंके सम्बन्धमें अनेकों लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें मेरी कोई तुलना नहीं, किंतु कल्याणप्रेमी बन्धुओंसे मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि भगवत्प्रेरणाद्वारा मुझे जो रामचरितमानसान्तर्गत 'सत पंच चौपाई मनोहर'का भाव हृदयङ्गम हुआ है, उसपर विचार-वितर्क करके श्रद्धा-पूर्वक धारण कर नित्य प्रातःकाल दोपहर तथा सायंकाल पाठ करें। स्वल्पकालमें ही इसके द्वारा आपके मानसमें शान्ति मिलेगी और भगवच्चरणोंमें अनुराग बढ़ेगा।

सद्का अर्थ 'सत्य' और 'सार तत्त्व' भी होता है। पूज्यपाद गोस्वामीजीने अन्तमें छन्द, सोरठा, दोहा अथवा श्लोकोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा, केवल चौपाइयोंके लिये ही संकेत किया। मानसमराल श्रीविजयानन्दजीका 'सत पंच चौपाई' नामक ग्रन्थ गीताप्रेसद्वारा ही प्रकाशित हो चुका है। किंतु उसकी भी व्याख्या अतीव दुरूह तथा सर्व-बोधगम्य नहीं। अतएव सर्वसाधारणके लिये स्वल्प-कालमें धारण करने योग्य 'प्रपत्तियोग'की निम्नलिखित पञ्च चौपाइयोंको समर्पित करता हूँ।

**मामभिरच्छय रघुकुलनायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक।**
**मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन।**
**मोर सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती।**
**गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।**
**असरन सरन बिरद सँभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।**
**मोरे तुम प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।**
**तुमहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।**
**बालक बुद्धि ग्यान बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।**
**दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।**
**अस प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करउँ दिन राती।**

प्रत्येक चौपाईके एक-एक खण्डमें महामन्त्र 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का सम्पुट लगा दिया जाय तो आकर्षण-मन्त्र हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बीमारी, अभाव और शारीरिक विकारोंसे परेशान न रहें

( लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेसरी )

**इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते।**
**आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः॥**

'यह मानवजीवन, यह मनुष्ययोनि संसारकी सब सम्पदाओंमें मुख्य है। इसको पाकर ही शुभ कर्मोंके द्वारा अपनी आत्माकी रक्षा की जा सकती है।'

**यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः।**
**धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वञ्चयते॥**

'जो व्यक्ति इस विश्वमें दुर्लभ मानव-जीवनको प्राप्त कर धर्मका अपमान करता है और क्षुद्र वासनाओं (अन्धविश्वासों, विषय-सुखों, जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों, या व्यसनों) का दास बना रहता है, वह वास्तवमें मूर्ख है; क्योंकि वह मानवजीवनसे द्वेष करता है और ठगा ही रह जाता है। (महाभारत शान्तिपर्व ३०३, ३२; ३४)

## आपकी परेशानी

शायद आप बीमारीसे परेशान हैं। लम्बी व्याधिने आपको पस्त-हिम्मत कर दिया है। डाक्टरोंकी तरह-तरहकी कड़वी दवाइयों और इंजेक्शनोंसे दुखी हो उठे हैं। खाटपर पड़े-पड़े आप मन-ही-मन मृत्युके दुःखद भयावह स्वप्न देखा करते हैं!

आप किसी अभावसे दुखी हैं। आपका कोई अङ्ग पूरी तरह अपना कार्य नहीं करता। आँखसे पूरा दीखता नहीं। हाथ-पाँव काँपते हैं। आप जन्मसे कोई शारीरिक दोष लेकर पैदा हुए हैं। अंधे, काने, बहरे या पङ्गु हैं। आपका रंग काला है और उसके कारण आप तिरस्कृत होते हैं। कुरूपताके कारण आपको समाजमें पूरा आदर नहीं मिलता। आप दुखी रहते हैं!

हो सकता है आप अपने यहाँ हुई चोरी, व्यापारमें घाटा, विश्वासघात, मृत्यु, विछोह आदिसे उदास रहते हैं। इनके कारण आपकी मनोभूमि दुःखोंसे लड़ने, उन्हें सहन करने तथा संतुलन न बिगड़नेके योग्य नहीं रह गयी है। अर्थात् आपने बीमारी, अभाव, शारीरिक विकार, मृत्यु, विछोह आदिका सामना करनेका अभ्यास नहीं किया है। आप दुःखोंसे लड़ नहीं पाते हैं। दुःखोंके कारण आप कभी-कभी आत्महत्या तककी कुकल्पनाएँ मनमें कर लिया करते हैं। आपके मनमें सदा बेचैनी, द्वन्द्व और असत् कल्पनाएँ ताण्डव मचाये रहती हैं!

लेकिन, सच मानिये, वीर पुरुष वही है, जो जीवनकी कठिनाइयों और परेशानियोंसे विचलित नहीं होते। सच्चा व्यक्ति वही है, जो थोड़ी-बहुत कठिनाईसे मानसिक संतुलन नहीं खोता। मुसीबतोंको धैर्यसे सहता है।

संसारमें अनेक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्हें शारीरिक और मानसिक विरोधों और प्रतिद्वन्द्वोंका सामना करना पड़ा था। उन्होंने अपनी कष्ट-कठिनाइयोंके बावजूद साहस और हिम्मतसे उन परेशानियोंको सहा था और वे दीर्घ-कालतक जीवनकी रोशनी और हवाका आनन्द लेते रहे थे। कुछ उदाहरण देखिये—

## वे बीमार रहे!

आपने अंग्रेजीके निबन्ध-लेखक राबर्ट लुई स्टीवेन्सन-का नाम सुना होगा। वे लेखन-कार्यमें अत्यन्त निपुण थे और कलमके जादूगर कहे जाते थे। किसी डाक्टरने कह दिया कि तुम तपेदिकके बीमार हो। बीमारी अपने फौलादी पंजे तुम्हारी गर्दनमें घुसा रही है। अधिक दिन संसारकी रोशनी और हवाका आनन्द न ले सकोगे।'

स्टीवेन्सनके मनमें उथल-पुथल मच गयी। उनका धैर्य जागा, पौरुष उठा। उन्होंने मनमें कहा—

'तो क्या यह रोग वास्तवमें मुझे भक्षण कर लेगा? मैं तो वीर योद्धा हूँ। मृत्यु, बीमारी और शारीरिक विकारके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये मेरा जन्म हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग मुझे भक्षण नहीं करेगा । मैं अकाल-मृत्युको कदापि प्राप्त नहीं होने दूँगा । जल्दी नहीं मरूँगा । मैं अन्ततक मृत्युसे लड़ूँगा । मैं एक साहसी व्यक्ति हूँ । तपेदिक मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा । मैं मनोबलसे इस मुसीबतको दूर करूँगा । जीवनके युद्धमें एक बुजदिल सिपाहीकी तरह पीठ नहीं दिखाऊँगा । मेरी शारीरिक निर्बलता कदापि मेरी इष्ट-सिद्धिमें बाधा नहीं पहुँचा सकेगी ।'

मनमें यह दृढ़ संकल्प आते ही उनका मनोबल जाग्रत् हो उठा । गुप्त मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ जाग उठीं ।

अब वे एक नये तरीकेसे मनको ढालने लगे । उनके विचारोंका क्रम बदल गया । अनेक बार प्रातः-काल अथवा सोनेसे पूर्व शान्तचित्त हो वे सब ओरसे विचारोंको हटाकर रोगोंसे विरोध और निर्माताकी भावना-को मनमें दृढ़ करने लगे; उन्होंने अनिष्टकी आशङ्काको इस प्रकार सोचकर दूर कर दिया—

'मैं नीरोग हूँ । मैं बलवान् हूँ । मैं जीवनमें पूर्ण अभय हूँ । मेरा जीवन संसारमें कुछ महत्त्वपूर्ण स्थायी कार्य करनेके लिये है । मुझे बहुत दिन जीना है । मेरे शरीरमें कोई रोग नहीं हैं । मेरे साहसके सम्मुख कोई विघ्न-बाधा नहीं ठहर सकेगी । मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ । विकाररहित हूँ । आनन्दमय हूँ । मैं स्वस्थ हूँ । मैं विजय हूँ । मैं सफलता हूँ । मैं सत्-ज्ञान हूँ । मैं निर्विकार शुद्ध आत्मरूप हूँ । मेरे शरीररूपी ईश्वरके मन्दिरमें कोई विकार नहीं ठहर सकता । मैं व्याधिमुक्त सशक्त, पूर्ण स्वस्थ हूँ । दीर्घजीवी हूँ । मैं सर्वशक्ति-सम्पन्न हूँ ।'

वे पूरे विश्वास और अटल आत्मश्रद्धासे इन विचारों-को चुपचाप बोला करते थे । फिर ऐसा महसूस करते थे कि उनके शरीरके रोम-रोम और कण-कणमें स्वास्थ्य और यौवनका अंश समा रहा है । चलते-फिरते, उठते बैठते वे उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घजीवनकी भावनाओंमें रमण किया करते थे । वे मन-ही-मन पूर्ण स्वस्थ और विकसित हँसमुख व्यक्तिका काल्पनिक चित्र तैयार करते रहते थे ।

जब वे 'आरोग्य' शब्दका उच्चारण करते, आरोग्यको बड़े ही व्यापकरूपमें देखते और अपने शरीर को पूर्ण आरोग्यमय अनुभव करते । अपने चारों ओर उन्हें स्वास्थ्य ही दिखायी देता । उनका मन आरोग्यके ही विचार करता । स्वास्थ्यकी इस आत्मप्रेरणामें नित्य एकचित्त होकर एकाग्र करनेसे यह गुण अपने-आप उनमें विकसित हो उठा । स्वास्थ्यके भावने उन्हें प्रत्यक्ष चमत्कारी फल दिया । यौवन, शक्ति, सौन्दर्यके सद्विचारोंसे पुष्ट होकर उनका रक्त शुद्ध विकाररहित हो गया और उन्हें स्वास्थ्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त हुआ ।

मनोविज्ञानके इस अमृतमय नियमका उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि जो मनुष्य मनमें जैसी गुप्त भावना दृढ़ करता है, जिस प्रकारकी मानसिक स्थितिमें अपने मनको देरतक रखता है, प्रतिदिन प्रातःकाल सायंकाल सोनेसे पूर्व शान्तचित्त होकर जो चिन्तन करता है, अन्ततः वैसा ही हो जाता है ।

राबर्ट लुई स्टीवेन्सनने इन संकेतोंसे तपेदिकपर विजय पायी । उन्होंने खूब भ्रमण किया । व्यायाम किया । पौष्टिक अन्न खाया । साहस जुटाकर वे नयी पुस्तकें लिखनेमें लग गये । उनका भ्रमणसम्बन्धी साहित्य, निबन्ध पुस्तकोंका बहुत प्रचार हुआ । प्रशान्त महासागर के जिस द्वीपमें वे रहते थे, वहाँके निवासियोंको उन्होंने ऐसी प्रेरणा दी थी कि वे देवता समझकर उन्हें पूजते थे । एक बार उन्होंने लिखा था—

'मेरा निर्माण जीवनभर संघर्ष करनेके लिये हुआ है, पर ईश्वरने मुझे यह प्रेरणा दी है कि मेरी लड़ाईका मैदान एक मरीजका कमरा और दवाकी शीशी ही रहे । बीमारीको मारकर भगाता रहा । मृत्युको मैंने अन्त...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परास्त किया। मैं पूरे आत्मबलसे कह सकता हूँ कि मैं असफल नहीं रहा। मुझे तूर्यनादवाला स्थान और सिरपर नीली छतरीवाला आकाश ज्यादा पसंद रहा।'

और यह केवल स्टीवेन्सनकी ही समस्या नहीं। आपकी भी हो सकती है। यही है वह लड़ाईका मैदान, जिसमें अनेक मरीज़ लड़ चुके हैं और कुछने शानदार विजय प्राप्त की है। शारीरिक अवस्था या अङ्गहीनतासे पीड़ित रहकर भी उन्होंने अपनी हिम्मत न छोड़ी और धीरजके साथ वे बीमारियोंसे युद्ध करते रहे।

लीजिये एक और ऐसे वीरकी जीवन-झाँकी देखिये—आपने अंग्रेजीके कवि एलेक्जेंडर पोपका नाम सुना होगा। पोप काव्यशक्तिके स्वामी थे और बचपनसे ही मार्मिक कविताएँ लिखने लगे थे, पर शरीरसे दुर्बल और बचपनसे ही रोगी रहते थे।

प्रतिवर्ष यह समझा जाता था कि वे शायद इस वर्ष मृत्युके ग्रास बनेंगे। पर अपने आत्मबलके कारण पोप बीमारीसे डरे नहीं। विचलित नहीं हुए। उन्होंने स्वास्थ्य-के नियमोंका दृढ़तासे पालन करना शुरू किया। बिना नागा एक घंटा प्रातः शुद्धवायुमें टहलना और जहाँ भी जायँ, पैदल चलना प्रारम्भ किया। मनमें सदा आरोग्य-की भावनाको स्थिर किया।

पोप लिखते हैं—'मैंने बीमारी और अपने गिरे हुए स्वास्थ्यको स्वयं अपने मनोबलसे दूर किया है। मैंने यह अनुभव किया है कि जबतक मैं रोगका या गिरे हुए दुर्बल स्वास्थ्यका चिन्तन करता रहूँगा, तबतक मैं कभी नीरोग नहीं रह सकता। हमारे रोग, अभाव, मृत्यु और अनिष्टके विचार ही हमें रोगी और दुर्बल बनाते हैं। अपनी मृत्यु बुढ़ापे या बीमारीकी बात सोच-सोचकर ही हम स्वास्थ्यको गिरा लेते हैं। हमारा हर-एक निराशाजनक और अनिष्ट विचार रोग, अस्वास्थ्य और वृद्धावस्था पैदा करते हैं। मैंने निश्चय किया कि निरन्तर शारीरिक परिश्रम, टहलना, व्यायाम, प्राणायाम और प्रसन्न-भाव रखकर अपने गुप्त मनोबलको जाग्रत् करूँगा। इन्हीं शारीरिक व्यायाम और दृढ़ आरोग्य-भावनाने मुझे जीवन-का बल और आरोग्य दिया।'

रूजवेल्ट अमेरिकाके लोकप्रिय राष्ट्रपति हो गये हैं। दुर्भाग्यसे उनकी जवानीमें ही उन्हें लकवा नामक रोग हो गया था।

उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि वे अपने मनोबलद्वारा लकवेको पराजित करेंगे। उन्होंने गुप्त मनोबल और मालिश, कसरत, प्रसन्न रहकर आरोग्य प्राप्त किया था। वे बहुत बड़ी आयुतक स्वस्थ-जीवन और यौवनका सुख लूटते रहे।

वे प्रायः कहा करते थे कि ऐसे मनुष्य संसारमें बहुत कम हैं, जिनमें दृढ़ आत्मबल है, जिनको अपनी गुप्त शक्तियोंपर पूर्ण विश्वास है, जो बलपूर्वक किसी कार्यको करना जानते हैं, जो जीवनभर कठिनाइयोंका बड़ी वीरतासे सामना करते हैं, जो सदा अपनी शक्तिभर प्रयत्न करते हैं। मैं इस अनुभवपर पहुँचा हूँ कि मनुष्य मानसिक दृष्टिसे आरोग्य प्राप्त करे अर्थात् अपनी शक्ति, अपने जीवनके प्रति उत्तम विचार रक्खे। रोग, विकार, उद्वेग, शोक, दुःख, चिन्ता, अविश्वास और भावुकता आदि दुष्ट मनोविकारोंके वशीभूत होकर रोते रहनेसे कदापि अच्छा स्वास्थ्य नहीं मिल सकता। सारे जीवन-भर रोते रहो, पर तुम्हारे आँसू पोंछनेवाला कोई नहीं मिल सकता। तुम्हारे विचारोंका प्रवाह जिस ओर होगा, उसी ओर तुम बढ़ोगे।

अंग्रेज उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट और लार्ड बायरन जन्मसे लँगड़े थे, पर उनकी इस विकृत अवस्थाने उनकी प्रसिद्धिको कभी नहीं रोका। अपने इस शारीरिक विकारकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया। स्कॉट लँगड़ेपनके बावजूद खेलोंमें हिस्सा लेते थे, घोड़ेकी सवारी करते थे, टहलने जाते थे, जंगलोंमें घूमनेका उन्हें बेहद शौक था। इन उपायोंसे उन्होंने शारीरिक शक्ति बढ़ायी और अंग्रेजी साहित्यकी श्रीवृद्धि की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे लिखते हैं, 'मुझे जिंदगीमें जो सबसे बड़ा अनुभव हुआ, वह यह है कि हमारे बीमारी, अभाव, संताप, पश्चात्ताप एवं कमज़ोरीके विचार ही हमें वास्तवमें रोगी और अल्पायु बनाते हैं। मैंने निश्चय किया था कि चिन्ता और रोगके विचारोंको अपना जीवनरूपी रस नहीं चूसने दूँगा। मैंने कभी अपने अभाव या शारीरिक कमजोरीका कुचिन्तन नहीं किया। मैं कभी व्याकुल या हैरान नहीं हुआ। मैंने रोग और परेशानीके विचारोंको सदा अपने मनसे दूर रक्खा है। प्रसन्नता, उत्साह, आनन्द और स्वास्थ्यके विचारोंने ही सदा मुझे ऊँचा उठाया है।'

यदि आपको कोई रोग हो और आप मनको उसीमें उलझाये रहें, तो निश्चय जानिये इस अशुभ चिन्तनसे आप और भी बीमार पड़ेंगे। यदि कोई अभाव हो, तो उस अभावकी बात सोचकर उस अभावको और भी अधिक बढ़ा लेंगे; यदि कोई मानसिक कष्ट हो, तो उसीके बारेमें सोच-सोचकर आप पागल हो उठेंगे। रोगका विचार ही आपको बीमार करनेवाला है।

रोगके विचारको तुरंत मनसे बाहर निकाल दीजिये। किसी अच्छे विषयपर जैसे—उज्ज्वल भविष्य, बच्चोंकी उन्नति, बढ़िया स्वास्थ्य, सैर, प्रकृतिका सौन्दर्य, संगीत, साहित्य—इत्यादिपर सोचिये। स्वास्थ्य और दीर्घकालीन यौवन आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। आरोग्यकी पवित्र भावनासे ही दिन प्रारम्भ कीजिये और रात्रिमें उसीसे दिन समाप्त कीजिये।

संसारमें सैकड़ों पुरुष हैं जो अज्ञानके कारण अपनेको रोगी कहते हैं। उनका शरीर ठीक है, पर उन्हें जैसे रोगोंका बहम हो गया है। यह बहम ही उनके शरीरको कमजोर कर रहा है। उनका मन रोगोंकी कल्पनाओंसे भर गया है। रोगोंकी चिन्ता, डर, बहमके कारण ही वे बीमार मालूम होते हैं। यदि वे मनको स्वास्थ्य, यौवन, आरोग्यके शुभ विचारोंसे [भर] लें, तो आज ही पूर्ण स्वस्थ और नीरोग हो सकते हैं।

प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल सोनेसे पूर्व मन शान्त कर पूरे आत्मविश्वासके साथ इन शब्दोंका बार-बार उच्चारण कीजिये—

'मैं पूर्ण स्वस्थ पुरुष हूँ। ईश्वरकी कृपासे मेरे [सब] अवयव अच्छी तरह अपना कार्य करते हैं। मैं [सदा] नीरोग रहता हूँ और स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करता हूँ। मुझे ज्ञात हो गया है कि बीमारी और अभावके घृणित विचार ही मेरा सबसे बड़ा शत्रु है।

मैं शुद्ध वायुमें निवास करता हूँ। शुद्ध जलका प्रयोग करता हूँ। दीर्घ श्वास लेकर मैं फेफड़ों [तथा] शरीरमें जीवन-तत्त्व भरता हूँ। उस श्वाससे मुझे जीवन-शक्ति प्राप्त होती है और मेरी समस्त व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। मैं पूर्ण स्वस्थ और आनन्दमय हूँ। मेरी पाचन-शक्ति बढ़ रही है, फेफड़े स्वस्थ हो रहे हैं, [रक्त] शुद्ध होकर उसका प्रवाह ठीक हो रहा है, कोष्ठबद्धता, खाँसी और अजीर्ण दूर हो रहे हैं। शुद्ध वायुसे मुझे दीर्घजीवन, आरोग्य और बल मिलता है।

'मेरा चित्त आरोग्यपर टिका रहता है। वह [सदा] शान्त है। उद्वेगरहित है। मैं उस महान् जीवन-का अंश हूँ जिसकी क्रियामें कोई चूक नहीं होती। [मैं] एक बलवान् आत्मा हूँ। मैं परम पिता परमात्माके [साथ] एक रूप हूँ।

'मुझमें पवित्रता, प्रसन्नता, आरोग्य और सत्य[के] ही विचार आते हैं। उनसे मेरे शरीरमें बल, पौरुष [और] आनन्द आता है। मेरे पवित्र विचारोंसे पवित्र शरीरका विकास हो रहा है।'

शुद्ध विचारोंसे शुद्ध रुधिर बनता है। शुद्ध विचार[ों]का स्रोत शुद्ध मन है। अतः मनमें अपवित्र विचार कभी नहीं रखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मृत्युके बाद—एक शास्त्रीय दृष्टि

(लेखक—साहित्यमहोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज' शास्त्री, एम्०ए०, व्या० सा० न्यायाचार्य, सांख्य-योग-वेदान्ताचार्य)

मृत्यु विश्वजनीन सत्य है—ध्रुव सत्य है और अपरिहार्य है। सृष्टि तथा प्रलयका यह संधि-स्थल है। मृत्यु-काल सहसा उपस्थित होता है। अतः आ जानेपर मनुष्यको घबराना नहीं चाहिये, बल्कि वैराग्यरूप शस्त्रसे शरीर तथा उससे सम्बद्ध अपनी देह-गेहासक्ति अर्थात् अहंता-ममताको काट फेंकना चाहिये। श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके प्रथम अध्यायमें मरणासन्न राजर्षि परीक्षित्को सान्त्वना प्रदान करते हुए श्रीशुकाचार्य कहते हैं कि 'राजन्! अपने कल्याण-साधनकी ओरसे विमुख एवं असावधान पुरुषोंकी वर्षों लंबी आयु भी अनजाने ही व्यर्थ बीत जाती है। इससे उसे क्या लाभ? सावधानीसे ज्ञानपूर्वक बितायी हुई घड़ी-दो-घड़ी भी श्रेष्ठ है। लिखा है—

**किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह।**
**वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः॥**
(२।१।१२)

इसी भारतवर्षमें राजर्षि खट्वाङ्ग अपनी आयुकी समाप्ति जानकर दो घड़ीमें ही सब कुछ त्यागकर श्रीहरिके अभयपदको प्राप्त हो गये और तुम्हारी तो परीक्षित्! जीवन-अवधि अभी सात दिनकी है।

मृत्यु क्या है? कैसी है? क्यों है? कहाँसे प्रकट होती और कहाँ लयको प्राप्त हो जाती है—आदि विश्वजनीन एवं शाश्वत–सनातन समस्या है और इस-पर तबसे आजतक चिन्तन-मनन होता आ रहा है। सनत्सुजातीय-संहितामें ऐसा लिखा है कि अपने सौ पुत्रोंके मृत्युके ग्रास हो जानेपर प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र स्वयं मृत्युभयसे भीत हो उठे। उस समय महात्मा विदुरजीने अपने गुरुदेव सनत्कुमारका स्मरण किया। वे पधारे और धृतराष्ट्रको मृत्युके भयसे भयरहित कर दिया। तदनुसार मृत्युको उन्होंने प्रमाद सिद्ध किया—

**मृत्युर्वै प्रमादः।**

अर्थात् मृत्यु जीवका सबसे बड़ा प्रमाद है। जीवका स्वरूपसे च्युत रहना, दूर होना या दूर रहना ही प्रमाद या अस्वस्थता है। अपने स्वरूपमें स्थित जीव ही स्व-स्थ है और तद्विपरीत अपने स्वरूपसे विच्युत जीव ही अस्वस्थ अथवा मृत्यु-भयसे आक्रान्त है।

श्रीमद्भागवतके ११वें स्कन्धमें श्रीशुक मुनिने राजर्षि परीक्षित्को अन्तिम उपदेशके क्रममें कहा है—

**जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः।**
(२२।३८)

अर्थात् किसी भी कारणसे हो, जीवकी अपने स्वरूपकी अत्यन्त विस्मृति ही मृत्यु है।

देहान्त और देहान्तरधारण बीजाङ्कुर-न्याय है। जिस प्रकार बीजसे अङ्कुर और अङ्कुरसे बीजकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही एक देहसे दूसरीकी और दूसरीसे तीसरीकी उत्पत्ति होती है। राजन्! मैं मर जाऊँगा, यह पशुओं-जैसी अविवेकमूलक धारणा छोड़ दो। जिस प्रकार शरीर पहले नहीं था और अब पैदा हुआ है तथा पुनः नष्ट हो जायगा, उसी प्रकार तुम पहले नहीं थे, अब तुम्हारा जन्म हुआ है और अभी तुम मर जाओगे—ऐसी बात नहीं है। जिस प्रकार अग्नि काष्ठसे सर्वथा भिन्न होती है—लकड़ीकी उत्पत्ति और विनाशसे वह सर्वथा पृथक् वस्तु है, उसी प्रकार तुम भी देहादिसे अलग हो। स्वप्नावस्थामें ऐसी प्रतीति होती है कि मेरा सिर कट गया है और मैं मर गया हूँ। लोग मुझे श्मशान-घाट लिये जा रहे हैं, चितापर सुला दिया गया हूँ और लोग मुझे जला रहे हैं, किंतु ये सारी शरीरकी अवस्थाएँ दीखती हैं, आत्माकी नहीं। आत्मा तो त्रिकालाबाधित द्रष्टा पुरुष है और इन दश्योंसे सर्वथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असङ्ग है। अथ च देखनेवाला जन्म और मृत्युसे रहित, नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परमात्मस्वरूप है। घड़ेके फूट जानेपर आकाश पहलेकी भाँति ही अखण्ड रहता है, परंतु घटाकाश नहीं रहता। ऐसा प्रतीत होता है कि वह महाकाशमें मिल गया है—वास्तवमें तो वह मिला हुआ ही था। उसका मिलना या बिछुड़े रहना तो प्रतीति मात्र ही थी। मन ही आत्माके लिये शरीर, विषय और शुभाशुभ कर्मोंकी कल्पना कर लेता है और उस मनकी सृष्टि माया करती है। दीपकमें तभीतक दीपकपना रहता है, जबतक तेल, तेल रखनेका पात्र, बत्ती और अग्निका संयोग बना रहता है, उसी प्रकार जबतक आत्माका कर्म, मन, शरीर और इनमें रहनेवाले चैतन्याध्यासके साथ सम्बन्ध रहता है, तबतक उसे जन्म-मृत्युके चक्र संसारमें भटकना पड़ता है। जिस प्रकार स्वप्न-द्रष्टा पुरुषको अपना सिर कटना आदि व्यापार न होनेपर भी अज्ञानके कारण सत्यवत् प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार इस जीवको बन्धनादि न होते हुए भी अज्ञानवश भास रहे हैं। यदि ऐसी आशंका की जाय कि फिर ईश्वरमें इनकी प्रतीति क्यों नहीं होती? तो इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार जलमें दृष्टिगोचर चन्द्रमाके प्रतिबिम्बमें न होनेपर भी होनेवाली कम्प आदि क्रियाएँ उसमें भासती हैं, उसी प्रकार देहाभिमानी जीवमें ही देहादिके मिथ्या धर्मोंकी प्रतीति होती है, परमात्मामें नहीं और यह मिथ्या प्रतीति भगवत्कृपासे भक्तियोगके द्वारा धीरे-धीरे निवृत्त हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

**सो माया रघुनाथ की, समुझें मिथ्या सोपि।**
**छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहौं पद रोपि॥**

मृत्यु देहके साथ ही पैदा होती है—

अपनी नव-विवाहिता पत्नी देवकीको कंसकी नंगी तलवारसे बचानेके प्रयासमें वसुदेवजीका उपदेश (भागवत १०।१।३८-४३ में) कितना सारग्राही एवं मननीय है। कहते हैं—

**मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।**
**अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥**
**देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।**
**देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥**
**व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।**
**यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः॥**
**स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं**
**मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः।**
**दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्**
**प्रपद्यते तत् किमपि ह्यपस्मृतिः॥**
**यतो यतो धावति दैवचोदितं**
**मनोविकारात्मकमाप पञ्चसु।**
**गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ**
**प्रपद्यमानः सह तेन जायते॥**
**ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः**
**समीरवेगानुगतं विभाव्यते।**
**एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्**
**गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति॥**

'वीरवर! जो जन्म लेता है उसके शरीरके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज ही अथवा सौ वर्ष बाद—प्राणीकी मृत्यु अवश्य होगी। अपने वर्तमान शरीरका अन्त हो जानेपर जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको ग्रहण कर लेता और पहलेको छोड़ देता है। उसे ऐसा विवश होकर करना पड़ता है। तृण-जलौकान्यायके अनुसार एक शरीरसे शरीरान्तरमें चलते समय मनुष्य एक पैर उठाकर दूसरा पैर उठाता है और घासपर रेंगनेवाली जोंक जैसे किसी अगले तिनकेको पकड़ लेती है, तब पहलेके पकड़े हुए तिनकेको छोड़ती है, उसी प्रकार जीव भी अपने कर्मके अनुसार किसी शरीरको प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है।

जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी जाग्रत्-अवस्थामें राजाके जुलूस, उसकी सवारी तथा उसके ठाटबाट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर और स्वर्गादि लोकोंमें इन्द्रादिके ऐश्वर्यको सुनकर उसकी अभिलाषा करने लगता है तथा इस प्रकारके चिन्तनमें तन्मय होकर उन्हीं बातोंमें घुल-मिलकर एकाकार हो जाता है और स्वप्नमें अपनेको राजा ( जैसे योगवासिष्ठके उत्पत्ति-प्रकरणमें वसिष्ठ नामका दरिद्र ब्राह्मण ) अथवा इन्द्रके रूपमें अनुभव करने लगता तथा उसके साथ ही अपनी दरिद्रावस्थाके शरीरको भूल जाता है, उसी प्रकार जीव कर्मकृत कामना और कृतकर्मके वशीभूत दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है और अपने पूर्वशरीरको भूल जाता है।

जीवका मन विकारात्मक है—अनेक विकारोंका पुञ्ज। मृत्युके समय वह अनेक जन्मोंके संचित और प्रारब्ध कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन होता है।

मायारचित अनेक पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन होता हुआ मान लेता है कि 'यह मैं हूँ' उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है।

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा आदि जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तैलादि तरल स्निग्ध पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होते हैं और वायुके झकोरोंके कारण जल आदि हिलने-डोलनेपर उनमें प्रतिबिम्बित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं, वैसे ही जीव अपने स्वरूपकी विस्मृतिके कारण अज्ञानरचित शरीरमें राग करके उसको अपना-आप मान बैठता है और विमोहवश उसके आने-जानेको अपना आना-जाना मानने लग जाता है। मृत्यु किसकी होती है? देहकी।

**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**
**तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥**
( गीत २।२७ )

जो उत्पन्न होता है, उसीका नाश भी होता है और जो नष्ट होता है, वही फिरसे उत्पन्न भी होता है। जन्म-मृत्यु बीजाङ्कुरवत् अन्योन्य एवं एक दूसरेका पूरक है और दोनों ही सापेक्ष हैं। यह चक्र पानीकी रहटकी तरह बराबर चलता रहता है। जिस प्रकार सूर्यका उदय और अस्त आपसे आप होता रहता है और उसमें कभी बाधा या अन्तर नहीं पड़ सकता, उसी प्रकार जन्म-मृत्यु अनिवार्य है।

जन्मसे पूर्व जो ये सब भूत अमूर्त थे और जन्मके पश्चात् जिन्होंने आकार धारण किया है, वे ही जब लयको प्राप्त हों तो इस बातकी शंका नहीं रह जाती कि वे कोई दूसरी या भिन्न वस्तु हो जायँगे। यही होता है कि वे फिर अपनी पूर्वस्थितिमें पहुँच जाते हैं। जन्म और मरणके बीच जो कुछ दीखता है, वह सोये हुए आदमीके स्वप्नकी भाँति मायाके भावसे सत्स्वरूप भासित होनेवाला आकार है। एकरूप चैतन्य कभी नष्ट नहीं होता और वह सदा अविकृत रहता है। जो सभी स्थानोंपर और सभी शरीरोंमें रहता है और जिसका घात नहीं हो सकता; वह एकरूप चैतन्य ही इस विश्वकी आत्मा है। शरीर एक रहनेपर भी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंके कारण उसमें अनेक भेद उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे—पहले इस शरीरमें बाल्यावस्था दिखायी पड़ती है, फिर जब युवावस्था आती है, तब वह बालपन नष्ट हो जाता है। परंतु न तो बाल्यावस्थाके विनाशके साथ ही शरीरका विनाश होता है और न युवावस्थाके अन्त होनेपर ही उसका अन्त होता है। ठीक इसी प्रकार एक देहका नाश और दूसरीकी प्राप्ति होती है।

कठोपनिषद् ( २।२।७ ) में कहा है—

**योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।**
**स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥**

अर्थात् मृत्युके बाद इन जीवात्माओंमेंसे अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कोई-कोई तो वृक्ष-पाषाण आदि अचल शरीरको ग्रहण कर लेते हैं। गौतम-शाप-कर्शिता पाषाणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहल्याकी कथा प्रसिद्ध है। विश्वामित्रशापिता रम्भाका शिला रूप वाल्मीकीय रामायणमें आया है। कोई-कोई देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जंगम शरीरोंको धारण कर लेते हैं।

महर्षि व्यासरचित ब्रह्मसूत्र पाद ३ में—

**उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्**—(२।३।१९) सूत्रसे एक ही जीवात्माके शरीरसे उत्क्रमण करने, परलोकमें जाने और पुनः लौट आनेका वर्णन आया है। इससे शरीरकी अनित्यता तथा जीवात्माकी नित्यता सिद्ध होती है। उत्क्रान्तिका अर्थ है—शरीरका वियोग। इसमें जीवात्माको गमनागमनशील कहा गया है।

उपनिषदोंमें जीवात्माको शरीरसे सर्वथा भिन्न तथा अणुपरिमाणवाला नित्य कहा गया है। श्वेताश्वतर (५।९) में लिखा है—

**वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।**
**भागो जीवः स विज्ञेयः····,**

अर्थात् बालके अग्रभागके सौ टुकड़े किये जायँ और उनमेंसे एक टुकड़ेके पुनः सौ टुकड़े किये जायँ तो उतना ही माप जीवात्माका समझना चाहिये। श्रुति स्पष्ट शब्दोंमें जीवको अणु कहती है। अन्यथा वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म शरीरमें प्रविष्ट कैसे हो सकता। जीवको अणु मान लेनेपर भी जिस प्रकार किसी एक देशमें लगाया गया या मकानमें किसी एक जगह रक्खा हुआ चन्दन अपने गन्धरूप गुणसे सब जगह फैल जाता है, उसी प्रकार हृदयमें स्थित हुआ जीवात्मा अपने विज्ञानरूप गुणसे समस्त शरीर या अङ्गोंमें होनेवाले सुख-दुःखोंको जान सकता है। जिस प्रकार घरके एक कोनेमें रक्खा दीपक अपने प्रकाश-रूप गुणसे सारे घरको आलोकित कर डालता है, वैसे ही शरीरके एक देशमें स्थित अणुमापवाला जीवात्मा अपने चेतनरूप गुणसे समस्त शरीरको चेतनायुक्त कर देता है। गुण गुणीके साथ रहता है। गन्ध अपने गुणी पुष्पसे अलग होकर स्थानान्तरमें फैल जाती है।

अंगुष्ठमात्र क्यों? जीवात्माको अंगुष्ठमात्र [एक]देशीय अथवा अणु कहा गया है, वह बुद्धि और श[रीरके] गुणोंको लेकर ही है। अंगुष्ठमात्र-कथन स्था[नकी] अपेक्षासे ही है। वास्तवमें वह विभु है। अणुका भा[व यह] कि जीव एक शरीरसे दूसरेमें जाते समय [भी] सूक्ष्म शरीरसे सम्बन्ध बनाये रहता है (प्र० उ० ३।९, १०), परलोकमें भी उसका किसी-न-कि[सी] शरीरसे सम्बन्ध माना गया है तथा स्वप्न और सुषु[प्तिमें] भी देहके साथ उसका सम्बन्ध बताया गया (प्र० उ० ४।२, ५)।

इसी प्रकार प्रलयकालमें कर्म-संस्कारोंके स[हित] कारणशरीरसे जीवका सम्बन्ध बना रहता है। वहाँ भी यह विज्ञानात्मा समस्त इन्द्रियोंके सहित [उस] परब्रह्ममें स्थित होता है।

श्वेताश्वतर (५।८) में लिखा है—

**अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो य[ः]।**
**बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृ[ष्टः]॥**

'जो अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला, सूर्यके सदृश प्रका[श]स्वरूपतक संकल्प और अहंकारसे युक्त है वह बु[द्धिके] गुणोंसे और शरीरके गुणोंसे ही आरेकी नोक[के] सूक्ष्म आकारवाला है। ऐसा परमात्मासे भिन्न जी[वात्मा] भी निस्संदेह ज्ञानियोंद्वारा देखा गया है।'

उपनिषदोंमें—

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।**

यह अङ्गुष्ठमात्र (अणुपरिमाणवाला) जी[वात्मा] शरीरके मध्यमें हृदय-प्रदेशमें स्थित है।

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमः।**

यह अङ्गुष्ठमात्र जीव धूमरहित अग्निशिखाकी [ज्योति]की भाँति है।

महाभारतमें—

**अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तं चकर्ष यमो बलात्।**

अर्थात् सावित्रीने देखा कि सत्यवान्‌की कायासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताने उसके अंगुष्ठमात्र जीवको अपने पाशद्वारा खींचकर बाहर निकाल लिया।

गरुडपुराणमें—

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहाकुर्वन् यमो बलात्।**
**तदेव गृह्यते दूतैर्याम्यैः पश्यन् स्वकं गृहम्॥**

अर्थात् अङ्गुष्ठमात्र पुरुष यमराजद्वारा बरबस खींच लिया जाता है और यमदूतोंसे बन्धन प्राप्त होकर अपने घरको देखता हुआ लिवाया जाता है। निस्संदेह जीवात्माको अंगुष्ठमात्र या अणु कहनेका भाव उसकी सूक्ष्मताका बोधक है। वह मनुष्य-शरीरके हृदयके भावके अनुसार दहर, पद्म या हृत्पुण्डरीकको लक्ष्यमें रखकर ही कहा गया है। उसे छोटे आकारवाला बतलानेका अभिप्राय भी संकीर्ण अन्तः-करणके सम्बन्धसे है, अन्यथा वह विभु है।

गीतामें आत्माको—

**नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।**

—इन विशेषणोंसे विशिष्ट कहा गया है।

सामवेदकी छान्दोग्योपनिषद्में एक कथा अवतरित की गयी है। श्वेतकेतु नामक एक प्रसिद्ध स्नातक ऋषिकुमार एक बार पाञ्चालोंकी राजसभामें पहुँचा। उससे प्रवाहण नामक वेदान्ती राजाने पूछा—'क्या तुम अपने आचार्यसे शिक्षा पा चुके हो?' उसने कहा 'हाँ।' तब राजर्षि प्रवाहणने स्नातक श्वेतकेतुसे पाँच प्रश्न किये। उन्होंने पूछा—(१) यहाँसे मरकर यह जीवात्मा कहाँ जाता है? (२) वहाँसे फिर किस प्रकार लौट आता है? (३) देवयान और पितृयान मार्गका क्या अन्तर है? (४) यहाँसे गये हुए लोगोंसे वहाँका लोक भर क्यों नहीं जाता? (५) इन सब बातोंको और जिस प्रकार पाँचवीं आहुतिमें यह जल पुरुषरूप हो जाता है, इस बातको जानते हो या नहीं? इसपर ऋषिकुमार श्वेतकेतुने कहा—'मैं नहीं जानता।' प्रवाहणने उसे फटकारा और कहा—'जब तुम इन प्रश्नोंके उत्तर नहीं जानते, तब कैसे कहते हो कि मैं शिक्षा पा चुका।'

श्वेतकेतु लज्जित-लाञ्छित होकर पिताके पास अपना-सा मुँह लेकर लौट आया। पीछे उसके पिता उसे साथ लेकर प्रवाहणके पास गये। दानादि स्वीकार नहीं करके उन्होंने कहा 'आपने मेरे पुत्रसे जो पाँच प्रश्न पूछे थे, उनके उत्तर मुझे बतलायें। दोनोंको बहुत दिनोंतक वहाँ ठहरना पड़ा। राजाने पहले उसी पाँचवें प्रश्नका उत्तर दिया कि यह जल पाँचवीं आहुतिमें पुरुषरूप कैसे हो जाता है।

उत्तर—वहाँ द्युलोकरूप अग्निमें श्रद्धाकी पहली आहुति देनेसे राजा सोमकी उत्पत्ति होती है। मेघरूप अग्निमें राजा सोमको हवन कर देना दूसरी आहुति है। उससे वर्षाकी उत्पत्ति होती है। तीसरी आहुति है—पृथ्वीरूप अग्निमें वर्षाका हवन। उससे अन्नोत्पत्ति होती है। चौथी आहुति है—पुरुषरूप अग्निमें अन्नका हवन, उससे वीर्यकी उत्पत्ति होती है। पाँचवीं आहुति स्त्रीरूप अग्निमें वीर्यका हवन है, उससे गर्भकी उत्पत्ति होती है और इस तरह यह जल पाँचवीं आहुतिमें 'पुरुष' संज्ञक होता है।

इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतके ३ स्कन्ध, अध्याय ३१में है। अपनी जननी देवहूतिको उपदेश करते हुए महर्षि कपिल कह रहे हैं—माताजी! जब जीवको मनुष्य-शरीरमें जन्म लेना पड़ता है, तब वह भगवान्की प्रेरणासे अपने पूर्व-कर्मानुसार देह-प्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्य-कणके द्वारा स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है। वहाँ वह एक रातमें स्त्रीके रजमें मिलकर एकरूप कलल बन जाता है। पाँच रात्रियोंमें बुद्बुदरूप हो जाता है। दस दिनोंमें बेरके समान कुछ कठोर हो जाता है और उसके बाद मांस-पेशी अथवा अण्डज प्राणियोंमें अण्डेके रूपमें परिणत हो जाता है। एक मासमें उसके सिर निकल आता है, दो मासमें हाथ-पाँव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि अङ्गोंका विभाग हो जाता है और तीन मासमें नख, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री-पुरुषके चिह्न तथा अन्य छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। चार मासमें उसमें मांसादि सातों धातुएँ पैदा हो जाती हैं, पाँचवें महीनेमें भूख-प्यास लगने लगती है। छठे मासमें झिल्लीसे लिपटकर वह दाहिनी कोखमें ( पुरुष हो तो ) घूमने लगता है। उस समय माताके खाये-पीये अन्न-जलसे उसकी सब धातुएँ पुष्ट होने लगती हैं और वह कृमि आदि जन्तुओंके उत्पत्ति-स्थान उस जघन्य मल-मूत्रके अन्धकूपमें पड़ा रहता है। वह सुकुमार तो होता ही है, इसीलिये जब वहाँके भूखे कीड़े उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गको नोचते हैं, तब अत्यन्त क्लेशके कारण वह क्षण-क्षणमें अचेत हो जाता है। माताके खाये हुए कड़वे, खट्टे, तीखे, गरम, नमकीन, चटपटे और रूखे आदि पदार्थोंका स्पर्श होनेसे उसके सारे शरीरमें पीड़ा होने लगती है। वह जीव माताके गर्भाशयमें झिल्लीसे लिपटा और आँतोंसे घिरा रहता है। उसका सिर पेटकी ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं। वह पिंजड़ेमें बंद पक्षीके समान पराधीन एवं अङ्गोंको हिलाने-डुलानेमें भी असमर्थ रहता है। इसी समय अदृष्टकी प्रेरणासे उसे स्मरणशक्ति प्राप्त होती है और सैकड़ों जन्मोंके पाप-पुण्य कर्म याद आ जाते हैं। तब वह बेचैन हो जाता है और उसका दम घुटने लगता है। पातञ्जल योगदर्शनमें एक सूत्र आया है अर्थात् 'संचित, क्रियमाण तथा प्रारब्ध त्रिविध कर्माशयोंका अनुगामी जीव जबतक उसके कर्म संस्कार निःशेष नहीं हो जाते, जन्म, आयु और भोगोंको पाता रहता है। इस प्रकार स्वर्गसे आनेवाला जीवात्मा भी पहले पुरुषके वीर्यके आश्रित होता है। फिर उस पुरुष-द्वारा गर्भाधानके समय स्त्रीकी योनिमें वीर्यके साथ प्रविष्ट करा दिया जाता है। वहाँ गर्भाशयसे सम्बद्ध होकर उक्त जीव अपने कर्मफलानुसार शरीरको प्राप्त होता है।

स्वप्नावस्थामें यह जीवात्मा इस लोक तथा परलोक दोनोंको देखता है। वहाँ दुःख और सुख दोनोंका उपभोग करता है। इस स्थूल शरीरको स्वयं अचेत करके वासनामय नये शरीरकी रचना करके स्वप्न-जगत्को देखता है। बृहदारण्यक ( ४ । ३ । १० ) में लिखा है—

**न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति। अथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो वा भवन्त्यथानन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते ... वेशान्तान् पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते।**

भावार्थ यह कि स्वप्नावस्थामें सचमुच न होते हुए भी रथ, रथको ले जानेवाले घोड़े या चालक और उसके मार्गकी तथा आनन्द, मोद, प्रमोद, कुण्ड एवं सरोवर और नदियोंकी रचना कर लेता है। प्रश्नोपनिषद्के अनुसार तो वह जाग्रत्-अवस्थामें सुनी हुई, देखी हुई और अनुभव की हुई वस्तुओंको स्वप्नमें देखता है, किंतु विचित्र ढंगसे। चूँकि स्वप्न-सृष्टि भ्रममात्र है, वास्तविक नहीं, अतएव उस अवस्थामें किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके फल जीवात्माको नहीं भोगने पड़ते।

**सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः**—इस ब्रह्मसूत्र (३।२।४)के अनुसार भविष्यमें होनेवाले शुभाशुभ परिणामका भी सूचक स्वप्न होता है। स्वप्न सर्वथा व्यर्थ नहीं है। वह वर्तमानके आगामी परिणामका सूचक भी होता है, पर यह कुछ भी नहीं जानता। इसके शरीरमें जो ७२ हजार हिता नामकी नाड़ियाँ हृदयसे निकल समस्त शरीरमें व्याप्त हो रही हैं, उनमें फैलकर यह समस्त शरीरमें व्याप्त हुआ शयन करता है। सभी नाड़ियोंका मूल तथा इस जीवात्मा तथा परमात्माका निवासस्थान हृदय है। उसी जगह सुषुप्तिमें जीवात्मा शयन करता है। यह सुषुप्ति भी घोर तामसी सुखका उपभोग करानेवाली अज्ञानमयी स्थिति है। प्रश्नोपनिषद्के अनुसार वह मन जब तेजसे उदानवायुसे दब जाता है—उदानवायु सेन्द्रिय मनको हृदयमें ले जाकर मोहित कर देती है, तब इसकी सुषुप्ति अवस्था होती है।

( शेष आगे )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वास्तविक कल्याणके साधन

## ( परस्त्रीसे बचो, अंडे-मांस-मछली-शराब-तम्बाकू आदि छोड़ो, अहर्निश भगवान्का भजन करो )

[ परमपूज्यपाद उदासीन सिद्ध संत बाबासाहेब अनन्तश्रीबुद्धदासजी महाराज ( खिचड़ीवाले बाबा ) के महत्त्वपूर्ण सदुपदेश ]

( प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी )

अभी कुछ दिन हुए पिलखुवा हमारे स्थानपर भारतके सुप्रसिद्ध उदासीन सिद्ध संत १००८ बाबासाहेब श्रीबुद्धदासजी महाराज उपनाम खिचड़ीवाले बाबाजी बहुतसे संतोंके साथ पधारे थे । मैंने आपके कुछ सदुपदेश लिख लिये थे जो यहाँपर दिये जा रहे हैं । आशा है पाठक इन्हें ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे । इसमें जो भी भूल रह गयी हो वह सब मेरी समझनी चाहिये, पूज्यपाद संतजी महाराजकी नहीं ।

## शराब-तम्बाकू आदि दुर्व्यसनोंसे बचो

कभी भूलकर भी शराब, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू नहीं पीना चाहिये । इनके सेवनसे बुद्धि तामसिक हो जाती है । हमारी जमातके साथ कोई भी इनका सेवन करनेवाला साधु कभी नहीं चल सकता । हमने अपना ऐसा नियम बना लिया है । हम अपने स्थानपर भी ऐसे साधुको नहीं रहने देते । जो साधु होकर भी शराब, तम्बाकू, सुल्फा, गाँजा पीता है वह काहेका साधु है ? इसलिये साधु होकर कभी भी शराब, तम्बाकू, सुल्फा, गाँजा, चरस, अफीम आदि मादक द्रव्यका सेवन नहीं करना चाहिये । इनसे सदा बचना चाहिये । गृहस्थी हो या साधु, जो भी इन्हें पीता है वही घोर अधःपतनको प्राप्त होता है । अतः सभीको इनसे बचना चाहिये ।

## दानका दुरुपयोग करना पाप है

बहुतसे गृहस्थी भक्त साधु-संतोंको इसीलिये रुपये आदि दानमें देते हैं कि 'ये संत-महात्मा हैं, हमारे दिये रुपयोंका सदुपयोग करेंगे, बड़े अच्छे काममें लगायेंगे जिससे हमारा कल्याण होगा ।' पर बहुतसे साधु गृहस्थोंसे रुपये लेकर उनका दुरुपयोग करते हैं और उस रुपयेको सुल्फेमें, तम्बाकूमें, चरस-गाँजेमें फूँक डालते हैं । वे यह बड़ा पाप करते हैं । एक बारकी बात है कि हम साधुलोग कुम्भपर गये थे । हमारी उदासी संतोंकी जमात भी गयी थी । हमने अपने कुछ साधु-संतोंको कुम्भपर पहलेसे ही भेज दिया था । उनसे कह दिया था कि तुम जाकर ठहरो, हम बादमें आ जायँगे । हमने जाते समय उन्हें आटेकी बोरी, दो कनस्तर घी तथा ग्यारह सौ रुपये नकद दे दिये थे । कुछ दिनों बाद हम वहाँ पहुँचे और जब उन साधुओंने हमें रुपयोंका हिसाब दिखाया तो पता लगा कि उन्होंने उन रुपयोंमेंसे तीन-चार सौ रुपये केवल सुल्फे-तम्बाकूमें ही फूँक डाले थे । हमें यह देखकर बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ । हमने उनसे कहा कि 'भाई ! उन भक्तोंने हमें ये रुपये इसलिये दिये थे कि हम इन रुपयोंको शुभ कर्ममें खर्च करेंगे, जिससे उन्हें पुण्य होगा । उन बेचारोंने हमें ये रुपये सुल्फे-तम्बाकू पीनेके लिये थोड़े ही दिये थे । अब हम उन्हें क्या जवाब देंगे ? यह पाप किसके जिम्मे पड़ेगा और भगवान्के यहाँ इसका हिसाब कौन देगा ? वहाँ तो पाई-पाईका हिसाब देना पड़ता है । उस प्रभुसे कौन क्या छिपा सकता है ?' तभीसे हमने यह निश्चय कर लिया था कि अब हम अपनी जमातमें कभी भी सुल्फा-तम्बाकू पीनेवाले साधुको नहीं रक्खेंगे ।

## थोड़े क्षणका कुसङ्ग भी पतन कर डालता है । कुसङ्गसे बचो

एक राजपूत—महाराजजी ! मैं आपको अपने साथ अपने गाँवको ले चलनेके लिये आया हूँ । कृपा करके मेरे साथ मेरे गाँवको चलिये ?

बाबासाहेब—भाई ! तुम्हें हमारे नियमका पता है ?

राजपूत—नहीं तो बाबा ।

बाबासाहेब—हमारा एक नियम है ।

राजपूत—बाबासाहेब ! क्या नियम है आपका ?

बाबासाहेब—हमारा यह नियम है कि जो भी कोई शराब-मदिरा पीता है, मांस-मछली खाता है, अंडे खाता है, हम उसके घरका कभी कुछ भी नहीं खाते-पीते । इसलिये पहले तुम हमें यह बताओ कि तुम शराब तो नहीं पीते ? अंडे-मांस-मछली तो नहीं खाते ? सत्य कहना ।

राजपूत—महाराज ! आपके सामने झूठ क्यों बोलूँ, मैं शराब तो पीता हूँ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबासाहेब—तुम शराब क्यों पीते हो ?

राजपूत—हमारे घरपर बहुतसे मेहमान आते रहते हैं, उन्हें शराब पिलानी पड़ती है। इसलिये उनके साथ मुझे भी पीनी पड़ जाती है।

बाबासाहेब—मेहमानोंको खूब छककर गायका दूध पिलाओ, उन्हें खूब रबड़ी खिलाओ, खूब मिठाई खिलाओ। क्या उन्हें शराब पिला-पिलाकर उनका ईमान बिगाड़नेसे, उनका धर्म बिगाड़नेसे, उन्हें महान् पापका भागी बनानेसे ही उनकी मेहमानी होगी ? भला जिससे अपना और दूसरोंका धर्म जाता हो, वह कैसी मेहमानी ? वह कैसा स्वागत-सत्कार ?

राजपूत—बाबासाहेब ! मेरी माँ पचासी वर्षकी है। वह खूब भजन-पूजन करती है और वह चौकेकी रोटी खाती है। मुझे शराब पीनेके कारण अपने चौकेमें भी नहीं घुसने देती, मुझसे बड़ी घृणा करती है।

बाबासाहेब—फिर भी तुम शराब पीते हो ? माताका कहना भी नहीं मानते ?

राजपूत—महाराज ! शराब पीनेपर सब दुःख भूल जाते हैं।

बाबासाहेब—भगवान्‌का भजन करो, भजनका नशा ही सबसे श्रेष्ठ नशा है। भगवान्‌का भजन करनेसे सारे दुःखोंकी जड़ ही कट जायगी। फिर दुःख तुम्हारे पास भी नहीं फटकेंगे।

राजपूत—महाराज ! बहुत दिनोंसे शराब पीता हूँ इसलिये मुझे आदत पड़ गयी है। अब यदि मैं शराब न पीऊँ तो बड़ी व्याकुलता हो जाती है।

बाबासाहेब—हमारा एक राजपूत भक्त था जो एक गाँवमें रहता था। एक बार वह हमसे प्रार्थना करके हमें अपने गाँव ले गया। उसके घरवालोंने हमसे कहा कि 'महाराज! हमारे घरमें एक ऐसा आदमी है कि जो हमसे कहता है कि तुम मांस-अंडे खाना और मदिरा पीना छोड़ दो। नहीं तो, मैं विष आदि खाकर मर जाऊँगा और अपने प्राण त्याग दूँगा।'

वह आदमी मांस-मदिराके हाथ भी नहीं लगाता था और इसे घोर पाप मानता था। पर उसके घरवाले मांस-मदिरा खाते-पीते थे। हमने उस मनुष्यको अपने पासमें बुलवाया और उससे कहा कि 'भाई ! तुम क्यों मरना चाहते हो, क्या कारण है ?' उत्तरमें उसने हमसे कहा—'महाराज ! मैंने कैसे बुरे घरमें जन्म लिया कि जहाँ मांस, मछली, अंडे खाये जाते हैं और शराब पी जाती है ! मांस खाना और शराब पीना मनुष्योंका कार्य थोड़े ही है। यह तो राक्षसोंका काम है। जिस घरमें मांस खाया जाय और शराब पी जाय, उस राक्षसोंके घरमें जीनेसे तो कहीं मर जाना अच्छा है। मुझे इन लोगोंको मांस-शराब खाते-पीते देखकर बड़ा भारी दुःख होता है। मैंने इन्हें बहुत कुछ समझाया-बुझाया कि तुम मांस-मदिरा मत खाओ-पीओ, पर मेरी बात इन्होंने नहीं मानी; इसलिये अब मैंने यह निश्चय कर लिया है कि या तो ये मेरी बात मानकर अबसे मांस-मदिरा खाना-पीना छोड़ देंगे, नहीं तो, मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। अपने जीवित रहते मैं अब अपने घरमें किसीको मांस-मदिरा खाते-पीते और ऐसे राक्षसी काम महापाप होते नहीं देखूँगा।'

वह कोई पूर्वजन्मका महान् संस्कारी जीव था और किसी कारणवश उसने ऐसे लोगोंमें जन्म ले लिया था। हमने उसके सब घरवालोंको अपने पास बुलवाकर समझाया कि 'भाई ! तुमलोग मांस-मदिरा क्यों खाते-पीते हो ? यह तो बड़ा घोर पाप है और यह राक्षसी कृत्य है। तुम इन्हें अबसे छोड़ दो। यह तुम्हारा भाई है, इसके प्राण बच जायँगे ? इसके चित्तको जो दुःख होता है वह भी नहीं होगा और तुम्हारा परलोक भी नहीं बिगड़ेगा।' हमारे समझानेपर उन लोगोंने प्रतिज्ञा की कि 'महाराज ! हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अबसे हम भूलकर भी कभी न तो कभी मांस खायेंगे और न शराब ही पीयेंगे।' फिर उन्होंने उसी समयसे मांस-मदिरा खाना-पीना छोड़ दिया। तब उस बेचारेको शान्ति हुई। अब उस घरमें कोई भी मांस-मदिरा नहीं खाता-पीता। इसलिये अब वह भी सुखसे रहता है और भगवान्‌का भजन करता है।

रावण ब्राह्मण था और बड़ा ही विद्वान् था, पर कुसंगके कारण वह मांस-मदिरा खाने-पीने लगा और वह राक्षस बन गया। इसीसे उसकी बुद्धि घोर तामसिक होकर भ्रष्ट हो गयी और वह यज्ञोंमें विघ्न डालकर ऋषि-मुनियोंको सताने लगा। अन्तमें भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी सीताको हर लाया। रावण जीवोंको मार-काटकर उनका मांस खाता था, निरपराध जीवोंको सताता था, इसीलिये उन जीवोंको मारने-काटनेका बदला स्वयंको मरवा-कटवाकर उसको भोगना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये मांस-मदिरा कभी भूलकर भी नहीं खाना-पीना चाहिये।

एक क्षणभरका कुसंग भी भले मनुष्यका घोर अधःपतन कर डालता है। इस विषयमें हम तुम्हें अपने जीवनकी एक भयंकर दुष्परिणामकी सत्य घटना सुनाते हैं—

एक बारकी बात है कि बहुत दिन हुए एक साधु हमारे पास आया और बोला कि 'महाराज! हमारे गुरुसे हमारा लड़ाई-झगड़ा हो गया और इस कारण हमारी उनसे बोल-चाल भी बंद हो गयी है। आप चलकर उनसे हमारा समझौता करा दीजिये। हम उसके गुरुसे उसका लड़ाई-झगड़ा शान्त करानेकी दृष्टिसे उसके साथ चल दिये और उसके गुरुके पास जा पहुँचे। उसका गुरु बड़ा कुसंगी था। वह सुल्फा, तम्बाकू, शराब आदि सब पीता था। हमें इस बातका पहले बिल्कुल पता नहीं था। हम उसके पास पहुँचे तो उसने हमारे सामने शराब पी और स्वयं शराब पीकर उसने हमसे भी कहा कि लो तुम भी शराब पी लो। हमने पहले तो इन्कार किया। पर उसने जब हमसे शराब पीनेका बहुत आग्रह किया तो हमने 'संतका कहना मानना चाहिये' यह समझकर शराब पी ली। जरा-से कुसंगसे हमारी दुर्बुद्धि हो गयी। जब हम वहाँसे लौटकर अपने गुरुके पास आये तो उन्होंने हमसे पूछा कि तुम आज कहाँ-पर गये थे? हमने अपने गुरुजीको सब बातें बतायीं। हमारे गुरु पहलेसे ही यह भलीभाँति जानते थे कि वह शराब पीता है और बड़ा ही दुर्व्यसनी है। इसलिये हमारे गुरुने हमसे कहा कि 'वह साधु तो शराब पीता है!' हमने कहा कि 'हाँ महाराज! वह शराब पीता है।' गुरुजीने कहा कि 'क्या तूने भी उसके कहनेसे शराब पी ली?' मैंने कहा कि 'महाराज! मैंने भी उस साधुके कहनेसे शराब पी ली।' गुरुजीने कहा—'अरे! तूने शराब क्यों पी ली?' हमने कहा कि 'महाराज! यह समझकर मैंने शराब पी ली थी कि 'संत कहता है' इसलिये पी लो।' इसपर हमारे गुरुदेव बहुत नाराज हुए और उन्होंने हमें जोरोंसे डाँटते हुए कहा—

'अरे पगले! वह तुझसे यह कहता कि तू टट्टी घोलकर पी ले तो क्या तू संतके कहनेसे टट्टी घोलकर पी लेता! जो पाप करनेको कहे वह कैसा संत। और ऐसे संतका कहना मानना कैसी संत-भक्ति! यह तो घोर पाप है। ऐसा क्या संतका कहना मानना हो गया कि जो तू उसके कहनेसे शराब-जैसी घृणित चीज पीनेको तैयार हो गया?' हमने उस दिनसे फिर उस साधुके पास जाना और ऐसे साधुओंके पास-में बैठना भी बिल्कुल बंद कर दिया। याद रक्खो—बुरे आदमीका कुसंग क्षणभरका भी बहुत बुरा होता है। इससे बचनेमें ही कल्याण है।

## ओषधिके रूपमें भी शराब पीना निषेध

हम शुद्ध जंगलकी जड़ी-बूटीद्वारा रोगियोंको ओषधि तैयार करके दिया करते थे। एक रोगके लिये जो ओषधि तैयार करनी पड़ती थी, उसे फूँकनेके लिये शराबका पुट देना पड़ता था। एक बार हमने उस रोगवाले रोगीसे ओषधि तैयार करनेके लिये शराब लानेको कहा। रोगीकी हमारे प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति थी, किंतु उसने हमें उससे शराब मँगाते देखकर अपने मनमें यह सोचा कि महाराज शायद स्वयं शराब पीते होंगे और इसीलिये यह ओषधि बनानेके नामपर शराब मँगाकर पीयेंगे? उसने हमसे कहा कि 'महाराज! मैं शराब अँगूरकी लाऊँ या और किसी प्रकारकी?' हम यह भी नहीं जानते थे कि शराब कितने प्रकारकी होती है। हमने उसकी बातसे समझ लिया कि इसे यह शंका हो गयी है कि महाराज ओषधिके बहाने शराब मँगाकर स्वयं पियेंगे। बस, उस दिनसे हमने ओषधि-को फूँकनेके लिये भी शराब मँगाना बंद कर दिया और यह निश्चय कर लिया कि अबसे हम कभी भी शराबसे ओषधि नहीं फूँकेंगे। उसी दिनसे हमने शराबकी जगह जंगलकी जड़ी-बूटीसे ओषधि फूँकना प्रारम्भ कर दिया और हमें इसमें सफलता भी खूब मिली।

## गोमूत्रका अद्भुत चमत्कार

गोमाता हमारी पूजनीया माता है। इसका गोबर-गोमूत्र बड़ी-से-बड़ी व्याधियोंको दूर करनेमें समर्थ है। एक बारकी बात है कि हमारे पास एक रोगी आया। उसे आतशकका रोग था। हम उसे जो ओषधि देना चाहते थे, उसके साथ कुछ शराब पिलाना अनिवार्य माना जाता था। पर हमने तो अब ओषधिके रूपमें भी शराबका संसर्ग बिल्कुल बंद कर दिया था।

अतः यह प्रश्न सामने आया कि अब क्या करें और रोगी-को शराबकी जगह क्या दें? हमने महाराज (भगवान्)का ध्यान किया और ध्यानमें यह प्रार्थना की कि महाराज अब हम क्या करें? तब ध्यानमें ही हमें यह आदेश प्राप्त हुआ कि तुम अबसे इस ओषधिके साथ शराबके बदले गोमूत्र दिया करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने आदेश पाते ही उस आतशकके रोगीको शराबके बदले गोमूत्र दिया । उसने ओषधिके साथ गोमूत्रका सेवन किया तो उसे पूर्ण लाभ हुआ । तबसे हम बराबर शराबकी जगह सबको गोमूत्रका प्रयोग करना ही बताते हैं और इससे सभीको ही बड़ा लाभ पहुँचता है । गोमूत्रकी अद्भुत महिमा है ।

## मांस-मदिरा घरको बर्बाद कर डालते हैं

शराब पीनेसे, तम्बाकू, गाँजा, चरस, सुल्फा आदि पीनेसे, मांस-मछली-अंडे खानेसे हमारा धर्म तो भ्रष्ट, होता ही है, घर-के-घर बर्बाद हो जाते हैं । आजतक हमारे जितने भी ऋषि-महर्षि हुए हैं, जितने भी हमारे अवतार हुए हैं और जितने भी हमारे सिक्ख गुरु हुए हैं—सभीने मांस-मदिरा खाने-पीनेका निषेध किया है और उसे महापाप बताया है । ऐसे बहुत उदाहरण हैं जिनसे पता लगता है कि मांस-मदिराका सेवन करनेवाले बिल्कुल बर्बाद हो गये ।

## निरपराध जीवोंको सतानेका फल अवश्य भोगना होगा

किसी भी निरपराध जीवको कभी भूलकर भी मत सताओ, नहीं तो, निरपराध जीवको सतानेका फल तुम्हें अवश्य ही भोगना पड़ेगा । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज अवतार थे और वे साक्षात् परमात्मा थे तो भी जब उन्होंने सीता-जीके कहनेसे सोनेके मृगको मारा तो उसका फल श्रीसीताजीको रावणद्वारा हरण करनेके रूपमें उन्हें भोगना पड़ा । उन्होंने अपनी इस लीलासे जगत्को यह बताया कि साक्षात् भगवान् होनेपर भी मारीच मृगका वध करनेपर मुझे उसका फल श्रीसीता-हरणके रूपमें भोगना पड़ा । तुम तो किस गिनतीमें हो । तुम्हें भी इन निरपराध जीवोंको मारनेका, सतानेका, खानेका बुरा फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा । जब मैं ही नहीं बच सका तो तुम कैसे बच सकोगे ! इतना ही नहीं, भगवान् श्रीरामने बालीको छिपकर मारा तो अगले अवतारमें भगवान् जब श्रीकृष्ण-के रूपमें प्रकट हुए तो पूर्वजन्मके बालीने भी व्याधके रूपमें जन्म लिया और उसने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें बाण मारकर अपने पिछले जन्मका बदला लिया ।

इस लीलासे भी भगवान्ने जीवोंको यही शिक्षा दी कि किसी भी निरपराध जीवको मारकर तुम बिना बदला चुकाये किसी प्रकार नहीं बच सकते । उसका फल तुम्हें अवश्य ही भोगना पड़ेगा । इसलिये जो गाय, बकरे, अंडे, मुर्गे, मछली आदि मार-मारकर खाते हैं, अगले जन्ममें उन्हें भी इसी प्रकार मरना पड़ेगा और अपने किये पापोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा । अतएव कभी भूलकर भी किसी भी निरपराध जीवको मत मारो, मत सताओ । इसीमें तुम्हारा कल्याण है ।

## क्या अंडा खाना पाप नहीं है ?

एक बार हमारे पास एक सज्जन आये और उन्होंने हमसे कहा कि 'महाराज ! हम मांस बिल्कुल नहीं खाते, पर हम अंडे खा लेते हैं ।' हमने उससे कहा कि 'तुम अंडे क्यों खाते हो ?' तो उत्तरमें उन्होंने कहा कि 'महाराज ! अंडे खानेमें कोई दोष नहीं है और उसमें कोई हिंसा नहीं है !' हमने उससे कहा 'भाई ! अंडा खाना तो बहुत ही बुरा है । मांस तो एक समय एक ही जीवको मारकर खाया जाता है, पर बहुतसे अंडे एक साथ खाकर तो तुम न जाने कितने जीवोंको खा जाओगे ? और कितने जीवोंको मारनेका पाप मोल ले लोगे ? अंडा खानेमें हिंसा नहीं है, यह मानना सर्वथा गलत है । उसमें घोर हिंसा है । इसलिये कभी भूलकर भी अंडा नहीं खाना चाहिये ।'

## पुण्योंका संचय करो

तुम्हारे पूर्वजन्मोंके शुभ कर्मोंका ही यह फल है कि जो तुम्हारा इस सर्वोत्तम देश भारतवर्षमें जन्म हुआ है और तुम्हें इस दुर्लभ मनुष्य-योनिमें उत्तम कुल प्राप्त हुआ है । अब यदि तुमने उत्तम देश, उत्तम योनि और उत्तम कुलमें जन्म लेकर भी शुभ कर्म नहीं किये, दान-पुण्य नहीं किये और भगवान्के भजन-पूजन नहीं किये, तो सोचो, आगे तुम्हारा क्या होगा ? पिछले जन्मोंके वे पुण्य समाप्त होते ही सब कुछ समाप्त हो जायगा । इसलिये यदि तुम यह चाहते हो कि हम बराबर सुखी बने रहें तो तुम बराबर शुभ कर्म दान-पुण्य-भजन करते रहो, अपने सनातन धर्मानुसार चलते रहो और पापोंसे सदा बचते रहो । यही सुखी होनेका एक मात्र साधन है ।

बोलो सनातन धर्मकी जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## स्वप्नके स्वरूपमें सत्य

वह वृद्ध तो था, उसके बाल भी सफेद थे, पर उसका शरीर न दुबला था, न दुर्बल। जब वह राहपर चलता, बैसाखी टेककर, गर्दन झुकाकर, धीरे-धीरे चलता, जैसे किसी वस्तुको ढूँढ रहा हो। कोई कभी उससे पूछता कि, 'बाबा क्या ढूँढ रहे हो?' तो वह उत्तर देता, 'रास्ता ढूँढ रहा हूँ, बाबा! रास्ता खो गया है।'

'कहाँका रास्ता?'

'यही तो मालूम नहीं।' उसके स्वरमें निराशाकी ध्वनि रहती।

'खूब मजेमें ढूँढते जाओ, बाबा' उत्तर सुनायी देता और उसके साथ खखारकी हँसी।

× × ×

एक चाँदनी रातको जब कि मैं अपने मकानके बाहर बैठा नीलाकाशकी शोभा देख रहा था, उक्त वृद्ध महोदयको अपने मकानकी ओर आते देखा। रात्रिके समय उनका शुभागमन कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। निकट पहुँचते मैंने पूछा,—'क्यों बाबा! इतनी रातको कैसे आये?' उसने उत्तर दिया, 'तुमसे कुछ कहना है।'

'इसी रातको? कल कहते, महाराज!'

'नहीं, कलतक मैं भूल जाऊँगा। कल रातको मैंने एक सपना देखा है, वह तुमको सुनाना है।'

'अच्छा, तो आप सपना सुनाने आये हैं। मैं समझा कोई गहरी बात होगी।'

'पहले सुनो, फिर कहना गहरी है या नहीं।'

'अच्छा, तो सुनाइये।'

तब वृद्धने यों कहा—

मैंने सपनेमें देखा कि मैं रास्ता ढूँढ़ते-ढूँढ़ते, जैसा कि मैं प्रायः ढूँढ़ा करता हूँ, एक दिन एक गाँवमें पहुँच गया हूँ। गाँव छोटा है। उसमें रहनेवाले भी कम हैं। अधिकतर मकान टूटे-फूटे हैं। बहुतोंपर न छत है, न छप्पर; दीवारोंमें कहीं-कहीं दरवाजे लगे हैं। इस गाँवमें बहुत देरतक मैं भटकता फिरा। मुझको देखते ही लोग जान जाते थे कि मैं वहाँका रहनेवाला नहीं हूँ। मुझको संदेहयुक्त दृष्टिसे देखते थे। कभी-कभी कोई पूछता भी था कि 'मैं कहाँ जाना चाहता हूँ, किससे मिलना चाहता हूँ।' मैं शहरकी तरफ जाना चाहता हूँ कहनेपर वह मुझे राह तो बता देता, पर चलते-चलते मैं फिर भटक जाता। ऐसे ही घूमते-घूमते मैं एक नदीके किनारे जा पहुँचा। नदी छोटी थी, बहुत गहरी भी नहीं। मैं उस पार जाना चाहता था, पर बहाव इतना तेज था, कि नदीमें उतरनेका साहस नहीं हुआ। वहाँपर एक आदमी मिला। उसने पूछा, 'आप कहाँ जाना चाहते हैं?'

मैंने कहा, मैं जहाँ जाना चाहता हूँ वहाँका नाम भूल गया हूँ। मुझको युगल-मन्दिरका रास्ता बता देने पर, वहाँ जाकर मेरे जानेका स्थान कहाँ है, पता लगा लूँगा।'

उसने कुछ नहीं कहा; हँसकर वह चुपचाप चला गया। मैं फिर इधर-उधर घूमता-फिरता रहा। घूमते-घूमते ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ केवल दो-एक मकान थे और चारों तरफ खुला हुआ था। वहाँ खड़े-खड़े सोच रहा था कि किधर जाऊँ। इतनेमें एक जीप-गाड़ी आती हुई दिखायी दी। थोड़ी देरमें वह आकर मेरे ही पास खड़ी हो गयी और बिना किसीसे कुछ कहे मैं तत्काल उसपर बैठ गया। तब मैंने गाड़ीपर बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगोंको देखा, तो उनमें एक सज्जने जान-पहिचानके मिले। वे मुस्करा रहे थे। मुझसे पूछा 'कहाँ ?'

मैंने उत्तर दिया, 'युगल-मन्दिर ।'

कहा, 'ठीक है ।'............गाड़ी चल दी।.... आँख खुल गयी। वृद्ध महाराज' थोड़ी देर चुप बैठे रहे, फिर मुझसे पूछा, 'क्या समझे ?'

मैंने कहा—'यह कि आप जैसे जाग्रदवस्थामें पागलकी तरह मारे-मारे इधर-उधर फिरा करते हैं, स्वप्नावस्थामें भी वैसे ही मारे-मारे फिरते रहे ।' उन्होंने कहा, 'नहीं समझे' सुनो। वह टूटे-फूटे मकानोंवाला गाँव इस असार संसारका ही प्रतीक है, जिसमें प्राणी-पदार्थ सब अनित्य हैं, क्षणभङ्गुर है, परंतु इसमें मनुष्य जन्म लेता है, इसके काम-धंधेमें फँसा रहता है, धन-सम्पत्ति उपार्जन करता है, खूब दौड़-धूप करता है और अपनी समझसे सुखमें जीवन व्यतीत करता है। परंतु मनुष्य-जीवनका क्या उद्देश्य है, उसे कहाँ जाना है—सब भूल जाता है। 'मोहितो मोहजालेन पुत्रदार-गृहादिषु ।' इसी तरह उसके दिन कटते जाते हैं। माया-नदीको पारकर कहीं जा नहीं सकता है। पर भगवान्‌की कृपासे एक दिन उसकी आँखें खुलती हैं। वह देखता है—

**सुकृतं न कृतं किञ्चिद् दुष्कृतं च कृतं मया।**

तब वह मन-ही-मन भगवान्‌को स्मरण करने लगता है और किसीकी खोजमें रहता है जो उसे जीवनके सन्मार्गका पता बता दे। सौभाग्यवश एक दिन उसको एक पथ-प्रदर्शक मिल जाता है, जो उसको मनुष्य-जीवन सफल बनानेके राज-पथका निर्देश कर देता है। वह धन्य हो जाता है।

फिर थोड़ी देर चुप रहनेके बाद उन ज्ञानवृद्ध महोदयने पूछा, 'क्या समझे ?'

मैंने उत्तर दिया, 'अबतक मैं आपको जो कुछ समझता था उसके लिये क्षमा कीजिये और आज आपके चरण छूकर प्रणाम करता हूँ, कृपया ग्रहण कीजिये।'

—(आचार्य) श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय, एम० ए०

( २ )

## सच्ची सहानुभूति

हमलोग लाहौर गये थे। उस समय पाकिस्तान नहीं बना था। तीन मित्र तथा उनमेंसे एककी धर्मपत्नी मनोरमा देवी भी हमारे साथ गयी थीं। एक दिन हमलोग अच्छी तरह ऊनी कपड़े पहन-ओढ़कर प्रातःकाल घूमने निकले। जाड़ेकी मौसिम थी, फिर पंजाबका जाड़ा। टहलकर वापस लौट रहे थे कि देखा, सड़कके किनारे एक पेड़के नीचे एक तरुणी स्त्री अपने ३-४ सालके बच्चेको छातीसे चिपकाये बैठी है। बच्चेके बदनपर एक भी कपड़ा नहीं है और वह स्त्री एक फटी-सी मैली साड़ी लपेटे है, उसीसे वह बच्चेको ढकनेकी कोशिश कर रही है। दोनों ठिठुर रहे हैं, उनके बदन काँप रहे हैं। इस दृश्यको देखते ही मनोरमाबाई ठहर गयी और तुरंत उस बाईके पास जा पहुँची। हमलोग भी साथ-साथ गये—यद्यपि हमारे मनमें कोई खास सहानुभूति नहीं थी, वरं हमारे एक साथी मित्रने तो कहा—'क्यों वक्त बर्बाद करते हो, दुनियामें सभी तरहके लोग हैं।' मनोरमा देवीने उसके पास पहुँचकर स्नेहसे पूछा—'बहिन ! तुम्हारा घर कहाँ है, तुम्हारे पास कपड़े नहीं हैं ?' स्नेहभरी आवाज सुनते ही वह फुफकारकर रो पड़ी, बोली—'घर कपड़े होते तो यहाँ पेड़के नीचे जाड़ेमें क्या पड़ी रहती। मेरे पति मैट्रिक पास थे। एक जगह अस्सी रुपये महीनेकी नौकरी करते थे। उन्हें टी० बी० हो गयी। तीन साल बीमार रहकर वे मेरे दुर्भाग्यसे मर गये। उनकी बीमारीमें कपड़े-लत्ते बरतन सब समाप्त हो गये। मैं और बच्चे—जैसे बैठे हैं, वैसे ही बच रहे। किरायेके मकानमें रहते थे। उसने निकाल दिया। छः-सात महीने हुए, इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेड़के नीचे गुजर करती हूँ। दिनमें बच्चेको लिये मजदूरी कुछ कर लेती हूँ, उसीसे पेटमें डालनेको कुछ मिल जाता है। बीचमें बीमार पड़ गयी थी, बच्चा भी बीमार हो गया। अस्पतालमें गयी, पर वहाँ भी कोई दवा-दारू नहीं मिली। भगवान्‌के भरोसे यहाँ आकर पड़ गयी। एक दिन एक दयालु सज्जनने आकर कुछ पथ्य तथा दवाका इन्तजाम कर दिया। दोनोंकी तबीयत तो कुछ ठीक हुई। पर अभीतक कमजोरीके मारे मैं मजदूरीपर नहीं जा पायी। कपड़े कहाँसे लाती।'

हमलोगोंके मनमें तो आयी कपड़ा दें, पर देते कहाँसे। इसी बीच कुछ बूँदाबाँदी शुरू हो गयी थी। हमलोग लाचार थे। पर मनोरमा देवीने अपना कम्बल, जो वे ओढ़े थीं, तुरंत उतारकर उसको ओढ़ा दिया और दूसरी ओर मुँह करके अपना स्वेटर उतारा और उसे देती हुई बोली—'बहिन! इसे पहन लो और इसीमें बच्चेको लेकर छातीसे चिपका लो। ऊपरसे कम्बल ओढ़ लो।' यह सब इतनी जल्दी हो गया कि हमलोग देखते ही रह गये। मनोरमाके पति श्रीकुन्दनलालजीने प्रसन्न होकर कहा—'मेरे भी मनमें तो आयी थी कि कपड़ा दूँ, पर सोचा कहाँसे दूँ। साथ तो लाया नहीं था। कम्बल-स्वेटर तो मेरे शरीरपर भी थे पर मुझे यह बात याद ही नहीं आयी। तुमने बहुत अच्छा किया।' कम्बल-स्वेटर तो हम सभीके पास थे, पर उनकी तरफ ध्यान गया तो केवल मनोरमाजीका ही। हममें किसीके मनमें यह बात नहीं आयी। वह स्त्री तो कृतज्ञतासे दब गयी। इतना ही बोल सकी। फिर तो आँसुओंकी झड़ी लग गयी। 'तुमने बहिन! हमलोगोंकी जिंदगी दी है—भगवान् तुमको सदा अनन्त सुख दें।'

—रोशन लाल कपूर

( ३ )

## अभक्ष्यभक्षण-त्यागसे मृत्युमुखसे बचना

मेरी आयु उस समय लगभग १९ वर्षकी रही होगी। १९३२ ई० की बात है। मेरी दादी श्रीमती चुन्नाकुअरि, जिनकी आयु लगभग ७५ वर्षकी होगी, अधिक बीमार हो गयीं। उनकी चिकित्सा मेरे गुरु आयुर्वेदाचार्य पं०मूलचन्दजी शास्त्री राजवैद्य, निवासी गोलागोकरणनाथजी कर रहे थे। चिकित्सा करते गुरुजीको लगभग सात-आठ दिन हो गये, किंतु लाभकी अपेक्षा हानि होती गयी। हताश होकर गुरुजीने मेरी मातासे और मुझसे कहा कि 'इनका बचना असम्भव है, औषधसे कोई लाभ नहीं पहुँच रहा है, भगवान् ही रक्षक हैं। इसलिये इनका मन जिन-जिनको देखने-मिलनेका हो, उन्हें दिखा दो।'

यह सुनकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। किंतु धैर्य धारण करके मैं शुद्धचित्तसे देवालयमें गया और वहाँ भगवान् श्रीराधाकृष्णके सामने मैंने यह प्रतिज्ञा की कि 'यदि अशुभ चीजोंके त्यागसे आप प्रसन्न होते हैं तो मैं आजसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मेरी दादी स्वस्थ हो जायँ तो आजसे मांस-मछली खाना छोड़ता हूँ और अपने बाजारमें भी मांस-मछली नहीं बिकने दूँगा।'

मैं घर लौट आया और उसी शामसे मेरी दादीका त्रिदोष ज्वर कम होने लगा। एक सप्ताहमें वे एकदम ठीक हो गयीं। गुरुजीने कहा कि 'अब तो बिना ओषधि दिये भी रोगीकी दशा ठीक है।' तबसे मैं इस प्रतिज्ञाका पूर्णरूपसे पालन करता चला आ रहा हूँ। मैंने इतिहासमें पढ़ा था कि राणा साँगापर विजय प्राप्त करनेके हेतु बाबरने नमाज पढ़ते समय खुदासे यह प्रार्थना की कि 'मैं यदि राणा साँगापर विजय प्राप्त कर लूँ तो मैं कभी शराब नहीं पीऊँगा।' और बाबर राणा साँगापर विजयी हुआ। इतिहासकी इसी स्मृतिने मुझे मांस-मछली-त्यागके लिये प्रेरित किया था।

—राजर्षि डा० कुँवर घनश्यामनारायणसिंह 'श्याम'

( ४ )

## जिसकी चीज, उसीको अर्पण

बम्बईमें अनाजके एक थोक व्यापारीके यहाँ उगाहीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

( ६ )

## बच्चोंके चरित्र-निर्माणका नमूना

घटना जनवरी सन् १९६२ की है। मैं एक दिन मेडिकल कालेजसे चारबाग लखनऊ स्टेशनपर बससे जा रहा था। उस समय प्रायः सभी विद्यालयोंमें छुट्टी हो चुकी थी। अतएव सभी छात्र घर जानेकी तैयारीमें थे एवं वे भिन्न-भिन्न साधनोंद्वारा अपने घरोंकी ओर अग्रसर हो रहे थे। रास्तेमें कुछ छात्र अपनी योजनानुसार बसके द्वारा भी जा रहे थे। इतनेमें अन्य छात्रोंके साथ एक लगभग सात वर्षकी बालिका भी बसपर चढ़ी, परंतु वह कंडक्टरसे बिना टिकट लिये ही आगे बढ़कर सीटपर बैठ गयी। प्रायः कंडक्टर इन बच्चोंके स्थानपर जाकर उनको टिकटें देते हैं। परंतु दैवयोगसे ऐसी घटना हुई कि कंडक्टर भी अपने स्थानपर खड़ा रहा और वह भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुई, परंतु वह पूरे रास्ते उसकी ओर देखती रही। सब लोग अपने-अपने स्थानपर बससे उतर रहे थे। जब उस बालिकाके उतरनेका स्थान आया तो वह भी दरवाजेकी तरफ आयी तथा उसने कंडक्टरसे टिकटके लिये आग्रह किया। कंडक्टर यह सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया। कंडक्टरने उससे पूछा कि 'बेटी ! तुमने टिकट क्यों नहीं ली ?' उसने उत्तर दिया कि 'तुम मेरी सीटपर आये ही नहीं, तो मैं क्या करती।' कंडक्टर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा 'जाओ बेटी, इसकी मूँगफली लेकर खा लेना; क्योंकि तुम अपना सफर तय कर चुकी हो।' परंतु उस बालिकाने आग्रह करके कहा कि 'तुम मुझे टिकट दे दो, नहीं तो, इस घटनाके सुनने पर मेरी माताजी मुझे मारेंगी।' अन्तमें उसने टिकट लेकर उसे फाड़ डाला और वह अपनी राहपर चल दी। परंतु उसके ये शब्द 'माताजी मुझे मारेंगी' मेरे हृदयपर एक अमिट छाप छोड़ गये। कितनी वास्तविकता, स्पष्टवादिता, सचाई एवं शिक्षा थी इन शब्दोंमें। एक चावलके देखनेसे ही चावल पके कि नहीं इसका पता लगता है। इसी तरह यह बात छोटी-सी थी पर इससे बच्चीके माता-पिताकी सचाई तथा बच्चोंके चरित्र-निर्माणकी चेष्टाका पता लगता था। मेरी इच्छा हुई कि मैं उतरकर उससे परिचय करूँ एवं उसके माता-पिताके दर्शन करूँ, जो अपनी संतानको इतनी सरलता से सत्य-जीवन बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु बस चल चुकी थी और वह बालिका भी मेरी आँखोंसे ओझल हो चुकी थी।

—भजनसिंह सलूजा एम० बी० बी० एस्० (प्रथम वर्ष)

## फाग

( रचयिता—श्रीरामचरणजी ह्यारण 'मित्र' )

सुधि भूल ही जाय है घाट की बाट की,
बीन बजावै जबै बनमाली।
कहिये कहा कौन सौं बाकी कबौं—
नहिं जातु है, नैन की सैन है खाली॥
'मित्र' जू कापै गुलाल की झोरी सजाय—
बनाय फिरै अरी पाली।
बिन मूठ चलाय चढ़ैगी भटू,
बृषभानुजा पै नँदलाल की लाली॥

सालै सबै ब्रज कौं जो सनेह की,
स्याम सौं तोरी प्रतीत बढ़ी है।
तू तौ कहै भटू ! मौंहि कलंक—
लगायबे कौं यह बात गढ़ी है।
मैं हूँ लखी हर भाँतिन 'मित्र'
रहै तू मनोज के मोद मढ़ी है,
लाली चढ़ी न गुलाल की तो पै,
अली ! नँदलाल की लाली बढ़ी है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*दो नयी पुस्तकें !* *प्रकाशित हो गयीं !!*

# अमृतके घूँट

( लेखक—डा० रामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी० )

आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य १.००, डाकखर्च ८०, कुल १.८० ।

प्रसिद्ध विचारशील श्रीमहेन्द्रजीके इस ग्रन्थमें अमृत-ही-अमृत भरा है । हमारे आजके कलिकलुषित असुर-भावापन्न विषमय जीवनको बदलकर उसे दैवी सम्पदासे युक्त अमृतमय बनानेवाले परम सुन्दर भावोंका इसमें प्रवाह बह रहा है । पाठक इससे लाभ उठायें—इसमें उल्लिखित भावोंको अपने जीवनमें उतारकर पवित्र आदर्श-जीवन बनें, इसी आकाङ्क्षासे यह ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है ।

# आदर्श चरितावली भाग ५

## [ आदर्श राज-शिक्षा ]

( चुने हुए प्रसिद्ध सम्राट्, राजा, शासक, रानी आदिके सोलह चरित्र शिक्षासहित ). पृष्ठ-संख्या ६४, आर्टपेपरका सुन्दर दोरंगा टाइटल, मूल्य .२५ न० पै० । डाकखर्च रजिस्टर्ड डाकसे .६५ कुल .९० न० पै० ।

आदर्श चरितावलीके चार भागोंके प्रकाशित हो जानेकी सूचना पहले दी जा चुकी है । यह पाँचवाँ भाग है । इसमें निम्नलिखित सोलह सज्जनोंके चरित्र उनकी शिक्षाओंसहित दिये गये हैं—

( १ ) सम्राट् अशोक ( २ ) सम्राट् समुद्रगुप्त ( ३ ) सम्राट् हर्षवर्धन ( ४ ) हजरत सुलेमान ( ५ ) साध्वी रानी एलिजाबेथ ( ६ ) बादशाह अकबर ( ७ ) महाराणा प्रताप ( ८ ) छत्रपति शिवाजी ( ९ ) गुरु गोविन्दसिंह ( १० ) नेपोलियन बोनापार्ट ( ११ ) महारानी विक्टोरिया ( १२ ) महाराज रणजीतसिंह ( १३ ) रानी अहल्याबाई ( १४ ) रानी लक्ष्मीबाई ( १५ ) कैसर विलियम और ( १६ ) लेनिन ।

पुस्तक-विक्रेताओंको सभी पुस्तकोंपर नियमानुसार कमीशन दी जाती है । ग्राहकोंसे निवेदन है कि पुस्तकोंका आर्डर देनेसे पहले अपने पुस्तक-विक्रेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें । इससे उनको भारी डाक-खर्चकी बचत होगी ।

# गीताप्रेसकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

( १ ) कलकत्ता—नं० ३०, बाँसतल्ला गली; ( २ ) वाराणसी—नीचीबाग; ( ३ ) पटना—अशोक राजपथ; ( ४ ) स्वर्गाश्रम—गीताभवन; ( ५ ) हरिद्वार—सब्जीमंडी, मोतीबाजार; ( ६ ) कानपुर—बिरहाना रोड ( ७ ) दिल्ली—नई सड़क ।

इन सभी दूकानोंपर मासिक 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के ग्राहक भी बनाये जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं ग्राहक बनिये और मित्रोंको बनाइये

## 'कल्याण'के अबतकके विशेषाङ्कोंमें सबसे अधिक बिकनेवाला चालू वर्षका विशेषाङ्क

# 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क'

'कल्याण'के अबतक कुल पैंतीस विशेषाङ्क निकले हैं, जिनमें २४वें वर्षका 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क' १,२५,००० छपा था, जो उस समयतकके विशेषाङ्कोंमें सबसे अधिक था। उसके बादके विशेषाङ्क कई कारणोंसे कम संख्यामें छपने लगे। फिर ३४ वें वर्षका 'सं० देवीभागवताङ्क' १,२५,००० छपा। उसके बाद गत वर्षका 'सं० योगवाशिष्ठाङ्क' १,३१,००० छापा गया, जो अब अप्राप्य है। चालू वर्षका 'संक्षिप्त शिव-पुराणाङ्क' उसी हिसाबसे १,३१,००० छापा गया; परंतु उसकी माँग इतनी अच्छी रही कि सब प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गयीं और हजारों पुराने ग्राहकोंको भी अङ्क न मिल सके। इसलिये कामकी भारी असुविधा होनेपर भी २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण छापा गया है। इस प्रकार इस अङ्ककी एक लाख इक्यावन हजार प्रतियाँ छप गयीं, जो एक कीर्तिमान् अङ्क है।

यह विशेषाङ्क सुप्रसिद्ध शिवपुराणके साररूपमें सरल हिंदी भाषामें बहुत ही सस्ता है। इसमें भगवान् शिवकी बड़ी ही विचित्र मधुर लीलाओंका, भक्तवत्सलताका और उनके अवतारोंका तथा योग-भक्तिके तत्त्वोंका बड़ा ही विशद और सर्वोपयोगी वर्णन है। कथाएँ बड़ी ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक हैं।

पृष्ठ-संख्या ७०४, चित्र सुन्दर बहुरंगे १७, दोरंगा १, सादे १२ तथा रेखा-चित्र १३८ कुल १६८। जिन्हें लेना हो, वे वार्षिक मूल्य रु० ७.५० ( डाकखर्चसहित ) भेजकर ग्राहक बन जायँ अथवा वी० पी० द्वारा भेजनेकी आज्ञा दें।

## कल्याणके २४वें वर्षका विशेषाङ्क 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क' अब भी प्राप्य है

पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६.५० डाकव्ययसहित। साथ ही इसी वर्षका दूसरा तथा तीसरा अङ्क बिना मूल्य।

इस अङ्कमें महान् हिंदू-संस्कृतिके प्रायः सभी विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें वेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण तथा श्रीमद्भागवतकी सानुवाद सूक्तियोंके साथ-साथ हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप तथा महत्त्व, हिंदूधर्म, वर्णाश्रम, दर्शन-परिचय, हिंदू-संस्कृतिकी व्यापकता, परलोकवाद, श्राद्ध-तत्त्व, हिंदू-संस्कृतिमें त्याग और भोगका समन्वय, समाजरचना, ज्ञान, भक्ति, योग, मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र, यज्ञानुष्ठान, पीठविज्ञान, रामराज्यका स्वरूप, शिष्टाचार और सदाचार, आहार-विवेक, आयुर्वेद, विज्ञान, अङ्कगणित, कर्मविज्ञान, उपासनातत्त्व, तीर्थ-व्रत, पर्व-त्योहार, शिक्षा, विभिन्न सम्प्रदाय, स्थापत्यकला, मन्दिर, मूर्तिकला, शिल्प, चित्रकला, नाट्यकला, चौंसठ कलाएँ, गान्धर्वविद्या, वाद्ययन्त्र, क्रीडा, अस्त्र-शस्त्रादि, वैमानिककला, नौ-निर्माणकला, काल-विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, ज्यौतिष, सामुद्रिक, नक्षत्र-विज्ञान, रत्न-विज्ञान, गोरक्षा, जीवरक्षा आदि विविध विषयोंपर बड़े-बड़े विद्वानों तथा अनुभवी पुरुषोंके लेख हैं।

इसके अतिरिक्त भगवान्के अवतारोंके, देवताओंके, आदर्श ऋषि-महर्षियोंके, परोपकारी भक्त, राजा तथा सत्पुरुषोंके, आचार्य, महात्मा और भक्तोंके एवं आदर्श हिंदू-नारियोंके बहुत-से पवित्र चरित्र हैं। डाकखर्च—सबमें हमारा है।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
संस्करण—१,४८,००० ( एक लाख अड़तालीस हजार )

# विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण २०१९, जुलाई १९६२



## चित्र-सूची



वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
( १५ शिलिंग )

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
( १० पेंस )

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशरथकी गोदमें बालक राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्॥

वर्ष ३६ | गोरखपुर, सौर श्रावण २०१९, जुलाई १९६२ | संख्या ७ पूर्ण संख्या ४२८

## दशरथकी गोदमें बालक राम

सोहत सहज सुहाये नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कबि दैन॥
सुंदर सब अंगनि सिसु-भूषन राजत जनु सोभा आये लैन।
बड़ो लाभ, लालची लोभबस रहि गये लखि सुखमा बहु मैन॥
भोर भूप लिये गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन।
बालक रूप अनूप राम-छबि निवसति तुलसिदास उर-ऐन॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी—गीतावली



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

याद रक्खो—अहंकार ही सारे अनर्थोंका मूल है, अहंकारसे ही ममता तथा रागद्वेष उत्पन्न होते हैं। 'मैं' है तो 'मेरा' है, 'मेरा' है तो मेरा सुरक्षित रहे और बढ़े, जो मेरा है उसमें राग और जो मेरा नहीं उसमें द्वेष। राग-द्वेष ही काम-क्रोध-लोभ-मोहकी उत्पत्तिमें प्रधान हेतु हैं।

याद रक्खो—शरीरमें और नाममें 'अहं'-बुद्धि न हो तो शरीरके रहने या न रहनेमें सुख-दुःख क्यों होगा और निन्दा तथा स्तुतिमें सुख-दुःख होगा। निन्दा 'नाम'की होती है और प्रशंसा भी 'नाम'की। जब मनुष्य निन्दा और प्रशंसामें हानि-लाभ मानता है और दुःख-सुखकी अनुभूति करता है तो मानना चाहिये कि वह अहंकारसे अभिभूत है। अपने आत्मस्वरूपसे वञ्चित है।

याद रक्खो—इस अहंकारके कारण ही बुद्धिमान्—वाणीसे आत्माका तत्त्व निरूपण करनेवाले बुद्धिमान् भी मूर्ख हो जाते हैं और अपने-अपने मत-वादके लिये लड़ने-झगड़ने लगते हैं। इस अहंकारजनित अज्ञानके कारण ही स्थूल शरीरकी पूजा और नामकी प्रशंसा चाहते हैं। लोग मेरा चित्र या मूर्ति रखकर पूजा-सम्मान करें। 'मेरा नाम इतिहासमें अमर रहे'—ऐसी आकांक्षा आत्मामें तो होती ही नहीं। यह सारी अज्ञानकी क्रियाएँ होती हैं अहंकारके कारण ही। बुद्धिमान् मनुष्य भी अपनी प्रशंसात्मक जीवनी लिखना-लिखाना चाहता है, बुद्धिमान् मनुष्य भी गुण-प्रशंसाके हेतुभूत अभिनन्दनादि स्वीकार करता है, बुद्धिमान् मनुष्य भी लोकोपकारके नामपर अपने भावोंका प्रचार करता है और बुद्धिमान् मनुष्य भी धन कमाकर उसके द्वारा परोपकारके बहाने नाम-आरामकी आकांक्षा करता है। यह यथार्थ बुद्धिके लक्षण नहीं हैं। तमसाच्छन्न विपरीतदर्शी बुद्धिका ही यह स्वरूप है। इस बुद्धिवाला मनुष्य वास्तवमें बुद्धिमान् नहीं है। आत्मदर्शनकी दृष्टिसे यह वास्तवमें मूर्खता ही है। यह सब अहंकारका ही अवश्यम्भावी दुष्परिणाम है।

याद रक्खो—इस अहंकारका दमन हुए बिना कभी न तो त्याग होगा, न शक्ति मिलेगी और न मूर्खता ही मिटेगी। अहंकारके नाशके लिये खास तीन उपाय हैं—

(१) अपने तथा जगत्‌के स्वरूपपर विचार करके अपनी दीनता, असमर्थता और असहायताका परिचय प्राप्त करना, उसे स्वीकार करना और सर्वशक्तिमान् सर्वसमर्थ सर्वज्ञ तथा अहैतुक सुहृद् भगवान्‌के शरणापन्न होकर उनसे नित्य संयोग कर लेना। अपना सच्चा दैन्य ही अहंका नाश करनेमें समर्थ है और इसी दैन्यसे समर्थ भगवान्‌की प्रपत्ति प्राप्त होती है।

(२) विवेक-विचारपूर्वक शरीर तथा नाममेंसे अहंकारको निकालकर सबके द्रष्टा आत्मामें उसे स्थिर करना। मैं शरीर नहीं हूँ, नाम नहीं हूँ। इन सबकी सारी क्रियाओंको हर समय—जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिमें देखनेवाला निरपेक्ष द्रष्टा हूँ। शरीर और नामके हानि-लाभसे मेरा कोई हानि-लाभ नहीं होता। और यह द्रष्टा भी एक कल्पना ही है। वास्तवमें एक परमात्मसत्ताके अतिरिक्त और कुछ भी न है, न होता है।

(३) भगवान् ही अपने-आप अपने ही खेलके लिये अपने ही संकल्पसे सृष्टिके तथा सृष्टिके समस्त कार्योंके रूपमें अभिव्यक्त हैं। वही आप नित्य अपने-आप अपनेमें लीला कर रहे हैं। सृजन-संहार, उत्पत्ति-प्रलय सभी उन लीलामयकी लीला है। यहाँ दो ही चीज़ हैं—लीलामय और उनकी लीला। लीलामय और लीलामें अभेद है; क्योंकि लीलामय ही लीला बने हुए हैं, मैं उनकी लीलाका उन्हींका अपनेसे ही बनाया हुआ एक खिलौना हूँ। वास्तवमें वे ही वे हैं।

याद रक्खो—इन तीनोंमेंसे किसी एकको अपनाकर अहंकारका नाश करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अहंकार ही बन्धन है, अहंकारका नाश ही मुक्ति है।

**'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दुःख-सुख

[ एक महात्माका प्रसाद ]

( प्रेषक—श्रीशशिशेखर नागर )

जानते हुए भी हम नहीं कर पाते हैं, यही समस्या है। इसके लिये पहले लक्ष्यसे परिचित होकर अपनी माँगको पहचानना आवश्यक है। माँग वह है जिसकी पूर्ति होती है। दायित्वकी पूर्तिमें ही उसकी पूर्ति निहित है। हम अपने दायित्वको क्यों नहीं पूरा कर पाते ? सुखकी लोलुपतामें मानव जबतक आबद्ध रहता है, तबतक वह दुखी रहता है। सुख-दुःख विधानके अनुसार आते-जाते हैं। अतः सिद्ध होता है कि इनका आना-जाना हमारी इच्छापर निर्भर नहीं है। सुख चाहनेपर भी नहीं मिलता तथा रोकनेपर भी नहीं रुकता। विधानसे किसीका अनिष्ट नहीं होता। आये हुए दुःखका तथा गये हुए सुखका आदर करें।

सुखकी वास्तविकताका ज्ञान होनेपर उसकी आशा समाप्त हो जाती है। संकल्प-पूर्तिको सुख माना जाता है। इसका सदैव रहना असम्भव है। संकल्प-पूर्ति-कालमें पराधीनता रहती है और उसके पश्चात् जीवनमें जडता आ जाती है। सुखकालमें भी सुख हितकर नहीं है। वस्तुतः सुख हमें उदार बनानेके लिये आता है। सभीको अपनाकर हम मिले सुखको सहजभावसे वितरित करें। दुखीको सुखी करें। यदि उदारता नहीं है तो सुखका सदुपयोग नहीं कर सकते। यदि केवल आप ही सुखी होना चाहते हैं तो वहींसे दुःखका आरम्भ हो जाता है। सुख-दुःख अपने आप आते-जाते रहते हैं। इनको साधक साधन-सामग्री मानता है।

ये दोनों अवस्थाएँ हैं, जीवन नहीं। उदारता और प्रेममें जीवनकी समस्याओंका हल है। उदारता तभी जीवनमें आती है जब हम सबको प्यार करें। सुखकी आशा न करें। सुख कर्तव्य-पालन तथा प्रभुके विधानसे मिलेगा। संघर्ष तभी जीवनमें आता है, जब हम सुखकी आशा करते हैं। सुखकी आशा छोड़ देनेसे दुःखका भय भी नहीं रहता। सुखकी अनुभूतिसे पूर्व दुःख ही रहता है। भूखकी व्यथासे ही भोजनका सुख उत्पन्न होता है। दुःखसे ही सुखकी दासताका नाश होता है। सुख-दुःखका बन्धन टूटते ही चिन्मय जीवनसे एकता होती है। प्रेमकी जागृति होती है। चाहरहित जीवनमें प्रेम स्वतः जाग्रत् होता है। जहाँ क्षोभ तथा क्रोध है, वहाँ सहज स्नेह नहीं आ सकता। जीवनका सुनहरा भाग वह है—जब वह होता है जो प्रभु चाहते हैं। इन्द्रियोंकी दासता समाप्त हो जाती है। हमें बिना मनका जीवन चाहिये जिससे योग, बोध तथा प्रेमकी प्राप्ति होती है। हे प्यारे ! तेरी इच्छा पूरी हो। हम दूसरोंके काम आयें, और निष्काम हों, एक ही बात तीन तरहसे विभिन्न दृष्टियोंसे कही जाती है।

क्या हम बेमनके हो सकते हैं ? जब हमारा संकल्प पूरा होता है, इसका परिणाम वही होता है जो उसकी उत्पत्तिसे पहलेकी स्थिति होती है। करनेका आरम्भ बिना देहाभिमानके नहीं होता। इसके रहते हुए अभाव, जडता तथा पराधीनतासे मानव नहीं बच सकता। करनेका अर्थ है कि हम पराधीन न बनें, किंतु यदि करना ही पड़े तो वही करें जिससे कि वह साधन बने। वह है कि दूसरेके हितके लिये करें। अपने लिये कुछ न चाहें। इससे सत्यकी जिज्ञासा जाग्रत् होगी। प्रियका चिन्तन स्वतः उद्बुद्ध होता है। करनेमें और चिन्तनमें भेद है। जो सदैव अपना है उसीका चिन्तन इष्ट है। सही काम करनेसे रागकी निवृत्ति होती है। संयम स्वभावसे ही जीवनमें आ जाता है। वस्तु, योग्यता, सामर्थ्यरूपसे जो प्राप्त है, उससे दूसरोंका हित करें। त्याग–प्रेमसे अपना हित करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा दूसरेके लिये तथा प्रियका चिन्तन अपने लिये ही साधन है। प्रियके चिन्तनसे रसकी अभिव्यक्ति होती है। जीवन वही है जहाँ प्रियकी उत्कट लालसा है। जो सदैव अपना है। उसीका चिन्तन वाञ्छनीय है।

आस्तिकके जीवनमें इन प्रश्नोंका कोई स्थान नहीं है कि वे कैसे हैं; कहाँ हैं, क्या करते हैं। प्रियता रहते नीरसता नहीं आती। आत्मीयताको सजीव बनानेके लिये उनसे कुछ नहीं चाहना, उन्हींका होकर रहना तथा उन्हींकी सेवा करना होगा। राधा-कृष्ण तथा सीता-राममें राधा कृष्णकी प्रियता है तथा सीता रामकी प्रियता है। क्या प्रियता प्रियसे अलग रह सकती है? क्या धूप और सूर्य अलग-अलग हैं? इसलिये दो होते हुए भी एक हैं। यह मार्ग प्रियताको लेकर चलता है। अपनेको जलाकर आगे बढ़ता है।

जो स्थिति परिश्रमसाध्य है वह सहज नहीं हो सकती। मन, इन्द्रियाँ, शरीर जड हैं। लोग कहते हैं हमारा मन दुखी होता है। मन न सुखी होता है और न दुखी, अहंकी प्रतिक्रिया मनके द्वारा होती है। जबतक मन अहंमें लीन नहीं होता, तबतक सुख-दुःखके झोंके बराबर मनको विचलित करते रहेंगे, तबतक चित्त-शुद्धि भी नहीं हो सकती। निस्संगतासे अहं शुद्ध होकर प्रेमके योग्य बनता है। अपनी असमर्थताको स्वीकार करके हम समर्थके साथ नाता जोड़ते हैं। यही है अहंका नाश। ईश्वरके अस्तित्वमें श्रद्धा होते ही अहं झुक जाता है।

संसारका प्रत्येक आस्तिक धर्म तीन बातें मानता है—

( १ ) ईश्वर एक है।

( २ ) वह सर्वसमर्थ है।

( ३ ) वह सदैव सबका है।

इतना मानकर चलनेसे मनुष्य पूर्ण निष्काम होगा। विना निष्काम हुए हम शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते। सत्सङ्ग और विवेकके द्वारा हम निष्काम हो सकते हैं। विवेक राग और आसक्तिसे हमें निवृत्त करेगा। प्रेम हमें उदार बनाकर ईश्वरीय प्रेमके योग्य बनाकर प्रियका प्रेमी बनायेगा। यहीं समस्त सुख-दुःखोंका पर्यवसान होता है।

# मैं मानव हूँ

[ रचयिता—पं० श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी ( डाँगीजी ) ]

मैं मानव हूँ, बस, मानव हूँ।
अच्छा तो अमरोंको जानो,
बुरा पिशाचोंको पहचानो,
मानव को मानव रहने दो, मैं तो देव न दानव हूँ॥
मैं मानव हूँ, बस, मानव हूँ।
कहो न पक्का, कहो न कच्चा,
कहो न लुच्चा, कहो न सच्चा,
मनुका बच्चा त्रिगुणसमन्वित सूरज चंद प्रभा नव हूँ॥
मैं मानव हूँ, बस, मानव हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मनुष्यका कर्तव्य

[ लेखक—ब्र० पूज्यपाद श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी शर्मा ]

( अनुवादक—श्रीसुरेश एम० भट० )

सभी मनुष्योंके अन्तःकरणकी जाग्रत्-अवस्था एक समान नहीं है। चित्तकी जाग्रत्-अवस्थाके हेतुभूत पूर्वसंस्कार तथा वर्तमान पुरुषार्थके आधारपर मनुष्य-स्वभाव सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीनों गुणोंके प्रकारोंसे व्याप्त हैं।

तामस स्वभावयुक्त मनुष्य लोकव्यवहारकी नीति, लौकिक कर्तव्य, सत्शास्त्र, शास्त्रीय कर्तव्य और आत्म-स्वरूप आदिसे अनभिज्ञ रहता है। उसका मनुष्य-जीवन पशु-जीवनसे कुछ विशेषता नहीं रखता। राजस स्वभावयुक्त मनुष्य लौकिक कर्तव्यको और न्यूनाधिक-रूपसे शास्त्र तथा सकाम शास्त्रीय कर्तव्यको भी समझता है, किंतु सत्शास्त्र और आत्मस्वरूपसे वह अनभिज्ञ रहता है। एवं सात्त्विक स्वभावयुक्त मनुष्य लौकिक व्यवहारकी नीति, स्वकर्तव्य और शास्त्र तथा सत्शास्त्र आदिसे अभिज्ञ रहता है। उसको केवल आत्मस्वरूपका ही ज्ञान नहीं होता।

राजस और तामस स्वभावयुक्त मनुष्यकी गणना पामर—विषयी मनुष्योंमें भी की जा सकती है। उनमें सुख प्राप्त करनेकी तो बड़ी इच्छा होती है, किंतु उनका अन्तःकरण अल्पविकसित होनेके कारण वे यथार्थ सुखके स्वरूपको समझ नहीं पाते। इसीलिये वे व्यावहारिक सुख किंवा ऐहिक सुख अथवा सुखाभासको ही विहित-अविहित किसी भी प्रकारसे प्राप्त करनेकी इच्छा और चेष्टा करते हैं। ऐसे अविवेकप्रधान अन्तःकरणवाले मनुष्य जबतक चित्तमें स्थित मलविक्षेपादि दोषोंका निष्काम-कर्म तथा उपासना आदिसे नाश नहीं कर लेते, तबतक वे सात्त्विक भाव किंवा यथार्थ मुमुक्षुभावको प्राप्त करनेमें असमर्थ रहते हैं।

सात्त्विक स्वभावयुक्त मनुष्यके चित्तमें विवेक होनेके कारण वह नित्यानित्य वस्तुके स्वरूपको समझता है। उसका अन्तःकरण तथा इन्द्रियाँ उचित प्रवृत्तिमें लगे रहनेके कारण, वह नित्य सुखस्वरूप आत्मतत्त्वका अनुभव करनेके लिये शुद्ध प्रयत्नका सेवन करनेमें समर्थ होता है और इसीलिये वह पुरुष तत्त्वविद्याका अधिकारी है।

सात्त्विक स्वभावयुक्त मनुष्योंमें भी सभीका चित्त-विकास एक-सा न होकर न्यूनाधिक होता है। आत्म-स्वरूपका अज्ञान होनेके कारण उसके सम्बन्धमें तथा उसके साधनादिरूप अन्यान्य विषयोंमें भी मनुष्यको न्यूनाधिक संशय-विपर्यय रहता है। आत्मस्वरूपमें संशय, विपर्यय और अज्ञान—ये तीन मोक्षप्राप्तिमें प्रतिबन्धक होनेके कारण विघ्नरूप हैं। अतएव इन तीनोंका नाश करनेके लिये साधकको श्रवण, मनन और निदिध्यासनका अनुष्ठान करना चाहिये।

आत्मस्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले उपनिषद् आदि सत्शास्त्रोंका एकाग्रचित्तसे सत्पुरुषोंके द्वारा श्रवण करनेसे आत्मस्वरूपादिका परोक्षज्ञान होता है और सत्शास्त्रोंके मुख्य प्रतिपाद्य विषयका ज्ञान होता है। श्रवण करनेके बाद एकान्तमें श्रवणके अर्थका मनन करना चाहिये। मनन करनेसे आत्मा, ईश्वर, मोक्ष, मोक्षसाधन और ज्ञानसाधनके निर्णयरूप प्रमेयके बारेमें जो संशय रहता है, वह दूर हो जाता है। मनन करनेसे जब समस्त संशयोंका नाश हो जाता है, तभी चित्तवृत्तिको आत्मस्वरूपमें स्थित करनेके लिये निदिध्यासनकी प्रवृत्ति-का आरम्भ होता है।

संशय हलाहल विषरूप है। वह जबतक साधकके चित्तमें प्रकट किंवा अप्रकटरूपसे विद्यमान रहता है, तबतक उससे ठीक ठिकानेसे निदिध्यासन नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। इसीलिये विवेकसम्पन्न साधकको चाहिये कि वह यथायोग्य मननके द्वारा सम्पूर्ण संशयोंका नाश करे।

देह तथा जगत्के प्राणिपदार्थोंके प्रति मनुष्यकी जो ममता रहती है, वही अनन्त अनर्थोंको उत्पन्न करती है। वह ममता साधारण अभ्याससे निवृत्त नहीं हो सकती। दीर्घकालतक नित्य आदरपूर्वक चित्तवृत्तिको आत्माकार करनेका प्रयत्न करनेपर ही ममताकी निवृत्ति होती है। ममताकी निवृत्ति होनेपर चित्त सूक्ष्म तथा निर्मल हो जाता है, इससे साधक सर्वान्तरतम-सूक्ष्मतम-आत्मस्वरूपका अनुभव करके कृतार्थ होता है। तृष्णाका अशेष त्याग होनेपर जब साधकको करामलकवत् तत्त्वानुभव होता है, तब उसके चित्तमें सब प्रकारके दुःखोंका अभाव, ब्रह्मानुभवसे समस्त भोगोंकी युगपत् प्राप्तिका अनुभव तथा कृतार्थता आदिका स्फुरण होता है और शान्ति-तृप्तिका अनुभव होता है।

साधकको जबतक ऐसा अनुभव न हो, तबतक यथाधिकार, दृढ आग्रहसे स्वकर्तव्यका पालन करना चाहिये। सर्वात्मभावरूप प्राप्तव्य स्थितिके स्वरूपको आप्त-पुरुषोंके द्वारा यथार्थ रीतिसे समझकर उसे प्राप्त करनेके लिये सोत्साह दृढ प्रयत्नका आरम्भ करना उचित है। प्रमाद, आलस्य तथा इन्द्रियोंकी निषिद्ध और उन्मत्त प्रवृत्ति—इन अभ्यासके विरोधी सभी दोषोंको निःशेष रूपसे दूर करना चाहिये।

प्रत्येक विवेकी मनुष्यको अपने चित्तमें रहे हुए दोषोंको सावधानीसे दूर करना चाहिये तथा धैर्य रखकर विवेक पुरस्सर अपने चित्तका विकास करके उत्तरोत्तर प्राप्तव्यका सामीप्य-सम्पादन करना चाहिये।

निषिद्ध प्रवृत्तियोंका अवरोध करके पशुसे मनुष्य होना, अन्तिम प्राप्तव्यके स्वरूपको समझकर मनुष्यसे साधक होना, दैवी-सम्पत्तिकी प्राप्ति होनेपर देहाभिमानको शिथिल करके साधकसे देव होना, दैवी-सम्पत्तिकी सुस्थिरताद्वारा अन्तःकरणमें शुद्ध-सात्त्विक द्रव्योंका संचय करके तथा देहाभिमानकी विशेष निवृत्ति करके देवसे ईश्वर होना, तथा देहाभिमानको अतिशिथिल करके, चित्तवृत्तिको सर्वाधिष्ठान परमात्माके अभिमुख करके ईश्वरसे परमात्मरूप-ब्रह्मरूप हो जाना। इस तरह उत्तरोत्तर चित्तविकास करनेसे ही साधक कृतार्थ होता है, अन्यथा नहीं। अतएव प्रत्येक विवेकसम्पन्न साधकको अपने वास्तविक हिताहितका विचार करके, अहितकर प्रवृत्तियोंसे दूर रहकर हितकर प्रवृत्तियोंमें ही संलग्न रहना चाहिये। हरिः ॐ तत्सत्।

## एक ही दो बने लीला कर रहे हैं

कर दिया प्रभुने मुझे निहाल। हटा आवरण, कटा जंजाल ॥
दीखते अनावरण नँदलाल। बजाते मुरली मधुर रसाल ॥
सदा सर्वत्र सभीमें श्याम। विविध लीला करते अभिराम ॥
खेलते अपनेमें अविराम। भरे होठों मुसकान ललाम ॥
बनाकर विविध वेष औ साज। साथ ले तद् अनुकूल समाज ॥
गान गाते ही उठते गाज। रचाते कभी मिटाते राज ॥
नित्य रसरूप रसिक-सिरमौर। एक ही तत्त्व न कोई और ॥
बहाते रसधारा सब ठौर। युगल मनमोहन श्यामल-गौर ॥
सर्वपर सर्व सर्व-अधिराज। एक ही, दो बन, रहे विराज ॥
देख मैं, महाभाव रसराज। हो गया सफल, मिटे सब काज ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पतन या उत्थानमें मनुष्य स्वतन्त्र है

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

मनुष्य सम्पूर्ण सांसारिक दुःखों और दोषोंसे सदाके लिये सर्वथा सम्बन्धरहित होकर परमानन्द और परमशान्ति-स्वरूप नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाय—इसके लिये गीतादि शास्त्रोंमें बहुतसे साधन बताये गये हैं और यह भी कहा गया है कि उस परम पदस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति सुगम होनेके कारण शीघ्र हो सकती है। यह बात विवेक-विचारसे समझमें आती है। किंतु फिर भी कार्यरूपमें न आनेके कारण कठिनता प्रतीत होती है, जिससे निराशा-सी हो जाती है और साधनकी गति तीव्र, संतोषजनक और निरन्तर एक-सी नहीं रहती। इसका कारण क्या है ? और उपाय क्या है ?—इस प्रकार बहुत-से साधक प्रश्न किया करते हैं। इसका उत्तर यह है कि शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंके तत्त्व-रहस्यको वास्तवमें यथार्थ न समझनेके कारण साध्य और साधनपर श्रद्धा-विश्वास पूर्णतया नहीं होता। इस श्रद्धा-विश्वासकी कमीके कारण ही साधनपर रुचि कम हो जाती है। इसीसे निराशा-सी उत्पन्न होकर साधनके लिये निरन्तर तत्परता नहीं होती।

इसके लिये साधकको प्रथम तो साध्य वस्तुके तत्त्व-रहस्यको सत्सङ्ग और सत्-शास्त्रोंके द्वारा विवेकपूर्वक अच्छी तरह समझकर धारण करना चाहिये और दूसरे यह समझना चाहिये कि उस परमात्मासे बढ़कर अन्य कुछ भी साध्य वस्तु नहीं है। उसकी प्राप्ति हुए बिना इस दुःख-सागर संसारसे जीवका छुटकारा नहीं हो सकता और संसारसे छुटकारा हुए बिना जीवको नित्य परमशान्ति मिल ही नहीं सकती। इसलिये उस साध्यस्वरूप परमात्माको लक्ष्य बनाकर शास्त्रनिर्दिष्ट मार्गोंमेंसे किसी एक मार्गके अनुसार सावधानी और तत्परतापूर्वक चलना चाहिये। तभी मनुष्य उस प्रापणीय महान् तत्त्वरूप परमात्माको प्राप्त कर सकता है।

मान लीजिये एक व्यक्ति कलकत्तेसे काशी जाना चाहता है और वहाँतककी सड़क साफ है तथा साधन भी मोटरगाड़ीका उसके पास है। मोटरके अगले भागमें दो बिजलीकी लाइट भी लगी हुई है, जो दो फर्लांगतक बराबर आगे-से-आगे रास्ता दिखाती रहती है। किंतु घोर अन्धकारमयी रात्रिका समय है और सड़कके अगल-बगल दोनों ओर गढ़े और जंगल हैं तथा वह स्वयं ही मोटर-चालक है। अतः वह सावधानीके साथ तत्परतासे मोटरको चलाये तो शीघ्र ही गन्तव्यस्थानपर पहुँच सकता है; किंतु वह मदिरा पीकर प्रमत्त हो असावधानीसे चलाये तो मार्गके अगल-बगलके गढ़ों और जंगलमें गिरकर महान् खतरेमें पड़ जाता है।

यह एक दृष्टान्त है। इसका अभिप्राय यह समझना चाहिये कि यहाँ साधनविषयमें परमात्माका परमधाम ही काशी है। इस संसारसे निकलकर परमात्माको प्राप्त करनेका इच्छुक मनुष्य ही काशी जानेकी इच्छावाला व्यक्ति है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग ही निष्कण्टक, स्वच्छ और सुगम सड़क ( मार्ग ) है। मनुष्य-शरीर ही मोटरगाड़ी है। उसमें आगे-से-आगे बराबर रास्ता दिखलानेवाले विवेक और विचार ही मोटरमें लगी हुई दो लाइट हैं। अज्ञानमयी मोहमाया ही घोर अन्धकारमयी रात्रि है। दुर्गुण और दुराचार ही मार्गके दोनों ओरके गढ़े और जंगल हैं। स्वयं साधक ही मोटरचालक है। सावधानीपूर्वक तेजीके साथ निरन्तर साधन करनेसे शीघ्र परमात्माकी प्राप्तिका होना ही सावधानीके साथ तत्परतासे सड़कपर मोटर चलानेसे शीघ्र गन्तव्यस्थानपर पहुँच जाना है। प्रमादपूर्वक मोहमें पड़ना ही मदिरा पीकर प्रमत्त होना है और तज्जनित असावधानीके कारण दुर्गुण-दुराचारमें पड़ना ही गढ़े और जंगलमें गिरकर महान् खतरेमें पड़ जाना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये साधक सदा सावधान, जागरूक और अपने साधनमें तत्पर रहे; साधनमें शिथिलता कभी भी न आने दे। सर्वप्रथम तो साधकको अपने लिये यह निर्णय करना चाहिये कि गीतादि शास्त्रोंमें निर्दिष्ट कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग—इन तीनोंमेंसे मेरे लिये कौन-सा साधन ( मार्ग ) ठीक है। उस निर्णय करनेका तरीका यह है कि उन तीनों मार्गोंमेंसे जो मार्ग अपनी शक्ति, बुद्धि और समझके अनुकूल हो, जिसमें अपनी श्रद्धा, विश्वास और रुचि हो, उसीको अपने लिये निश्चयपूर्वक चुन लेना चाहिये; क्योंकि वही उसके लिये सबसे बढ़कर सुगम, उत्तम और लाभदायक मार्ग है। जबतक मनुष्य गन्तव्यस्थानका और मार्गका निर्णय नहीं कर लेता, तबतक वह वहाँ जा ही नहीं सकता। मार्गका निर्णय कर लेनेके पश्चात् वह उस मार्गपर चलना शुरू कर दे और मार्गपर चलते समय ऐसी सावधानी रखे कि कहीं मार्गको छोड़कर विपरीत मार्ग यानी कुमार्गरूप गढ़ेमें न चला जाय। असावधानीमें हेतु हैं—संशय, भ्रम, अज्ञान, आसक्ति,प्रमाद और आलस्य। ये ही मनुष्यको सुखका प्रलोभन देकर मोहित करते हुए पतनके गर्तमें डाल देते हैं। इसलिये इन सबका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि इनके त्यागमें मनुष्य स्वतन्त्र है।

मनुष्य जिस कर्मको बुद्धिद्वारा बुरा समझता है, उसे करना भी नहीं चाहता, फिर भी छोड़ नहीं पाता और जिस कार्यको अच्छा समझता है, उसे करना चाहता है फिर भी उसे कर नहीं पाता। इस प्रकार त्यागनेयोग्यको न त्यागना और करने योग्यको न करना—यही प्रमाद है। इस प्रमादमें मनुष्यका अज्ञान ही हेतु है। किंतु मूर्खतावश मनुष्य इसमें अपने प्रारब्धको, दूसरे व्यक्तियों-को, परिस्थितिको ( घटनाको ), अपने पूर्वके कर्मोंको, समयको अथवा कोई-कोई तो ईश्वरको भी कारण मान लेता है; किंतु इन सबमें कोई भी कारण नहीं है। यह सब उसकी बेसमझी है। वस्तुतः वह स्वयं ही अपना कारण है; क्योंकि न करने योग्य काम, क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष आदि दुर्गुण, झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि दुराचार, खेल-तमाशा, नशा आदि दुर्व्यसन और व्यर्थ कर्मके त्यागमें तथा करने योग्य भक्ति, ज्ञान, योग, वैराग्य, सद्‌गुण-सदाचार आदि के सम्पादनमें भी यह सर्वथा स्वतन्त्र है। किंतु अज्ञानसे दूसरोंके मत्थे दोष मँढ़कर अपनी सफाई देता है, यह इसकी बुरी आदत है। कोई-कोई साधक कहता है कि परमात्माकी प्राप्तिविषयक योग, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सद्‌गुण-सदाचार आदि जितने साधन हैं, वे मेरी समझमें भी आते हैं, उनको मैं हितकर भी मानता हूँ, श्रद्धा-विश्वास भी है, रुचि भी है, पर कर नहीं पाता। किंतु भलीभाँति विचार किया जाय तो वास्तवमें उसने साधनको परम हितकर समझा ही नहीं। हितकर न समझनेमें कारण श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही है। उस कमीके कारण ही साधनमें तत्परता और उत्साह नहीं होता। इसलिये गहराईसे विचार करना चाहिये।

जब हम यह समझ लेते हैं कि इस मिठाईमें विष मिला हुआ है, तब भूखों मरनेपर भी उस मिठाईको खाना नहीं चाहते। इसी प्रकार जब हम उस प्रमादको अनर्थकारक मान लेंगे तो फिर नहीं करनेयोग्य कर्मको कभी नहीं करेंगे और करनेयोग्य कर्मको अवश्य करेंगे। भगवान्‌की प्राप्तिको परम हितकर मान लेनेपर और उसके बिना हमारी बड़ी भारी हानि है—यह समझ लेनेपर यदि उसके साधनमें किसी प्रकारकी त्रुटि या बाधा पड़ती है तो उसको हम कैसे सहन कर सकेंगे। उसके लिये हमें घोर पश्चात्ताप और दुःख होगा। प्रापणीय वस्तुके लिये विरहव्याकुलता और छटपटाहट होगी। उसको प्राप्त किये बिना हम रह नहीं सकेंगे। यदि ऐसा नहीं होता है तो इसमें श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही हेतु है। उसीके कारण रुचिकी कमी है और रुचिकी कमीसे साधनमें उत्साह और तत्परता नहीं होती। अतएव साधनकी शिथिलतामें मनुष्य स्वयं ही हेतु है। दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई व्यक्ति प्रारब्ध, परिस्थिति ( घटना ), देश, काल, कर्म या ईश्वर आदि कोई भी नहीं।

ईश्वर, महापुरुष और शास्त्र आदि तो साधककी मदद करनेवाले हैं। उनसे तो मनुष्य चाहे जितनी मदद ले सकता है। उनसे मदद लेनेमें भी मनुष्य स्वतन्त्र है। परंतु मनुष्य अज्ञानसे ईश्वरको पाप करानेवाला मान लेता है और प्रमाणमें यह श्लोक भी कहता है—

**जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-**
**र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।**
**केनापि देवेन हृदि स्थितेन**
**यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥**
( पाण्डवगीता )

'मैं धर्मको जानता हूँ, पर मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्मको भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती; क्योंकि अपने हृदयमें स्थित कोई देव जिस प्रकार मुझे प्रेरित और नियुक्त करता है, वैसे ही मैं करता हूँ।'

किंतु यह सिद्धान्त दुर्योधनका है, जो सर्वथा त्याज्य है। पर सबसे उच्चकोटिका सिद्धान्त गीताका है, जिसमें साक्षात् भगवान्‌के वचन हैं। पाप होनेके विषयमें अर्जुनने भगवान्‌से पूछा था—

**अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।**
**अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥**
( गीता ३। ३६ )

'श्रीकृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है?'

इसके उत्तरमें भगवान्‌ने यह कहा—

**काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।**
**महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥**
( गीता ३। ३७ )

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी नहीं अघानेवाला और बड़ा पापी है; इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।'

भगवान्‌ने कामकी उत्पत्ति रजोगुणसे बतलायी और रजोगुण रागस्वरूप ही है। भगवान् अर्जुनसे पहले भी कह चुके हैं—

**ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।**
**सङ्गात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥**
( गीता २। ६२ )

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।'

यहाँ यह स्पष्ट कर दिया गया कि आसक्तिसे कामकी और कामसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है। सारे अनर्थोंका मूल आसक्ति ही है। इसलिये मनुष्यको स्त्री, पुत्र, धन, मकान, कुटुम्ब, शिष्य, मठ-आश्रम, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, पद, शरीर आदि किसी भी प्राणी, पदार्थ और क्रिया आदिमें भूलकर भी किंचिन्मात्र भी कभी आसक्ति नहीं करनी चाहिये। इस आसक्तिका कारण है अहंता, ममता और अहंता-ममताका कारण है अज्ञान ( अविद्या )। योगदर्शनमें बतलाया गया है—

**अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।**
**अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्।** ( योग० २। ३-४ )

'अविद्या ( अज्ञान ), अस्मिता ( अहंता ), आसक्ति, द्वेष और मरण-भय—ये पाँच क्लेश हैं। इन पाँचों क्लेशोंमें बादवाले चारोंका कारण अविद्या है। अर्थात् अविद्यासे ही अहंता और आसक्ति आदिकी उत्पत्ति होती है।'

अतः सारे क्लेशोंकी जड़ आसक्ति है और आसक्तिकी जड़ है अविद्या ( अज्ञान )। इस अज्ञानसे ही संशय, भ्रम और प्रमादकी उत्पत्ति होती है, अज्ञानका नाश होता है यथार्थ ज्ञानसे और उस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें बहुत-से उपाय बतलाये गये हैं। ईश्वरकी भक्ति करनेसे ईश्वरकी कृपासे ज्ञान होता है। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।**
**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥**
( गीता १० । ९ )

'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही रमण करते हैं ।'

**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।**
**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥**
( गीता १० । १० )

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ।'

**तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।**
**नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥**
( गीता १० । ११ )

उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही 'उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अज्ञानजनित अंधकारको देदीप्यमान तत्त्वज्ञानरूपी दीपके द्वारा नष्ट कर देता हूँ ।'

तथा निष्कामभावपूर्वक कर्तव्यपालनरूप कर्मयोगसे भी शुद्ध हुए अन्तःकरणमें अपने-आप ही यथार्थ ज्ञान प्रकट हो जाता है ।

**नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।**
**तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥**
( गीता ४ । ३८ )

'इस संसारमें यथार्थ ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है । उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है ।'

एवं महापुरुषोंके बतलाये हुए साधनके अनुसार चलनेसे भी इस यथार्थ-ज्ञानकी प्राप्ति उनकी कृपासे हो जाती है—

**तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।**
**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥**
( गीता ४ । ३४ )

'अर्जुन ! उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ; उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्माको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे ।'

**यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।**
**येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥**
( गीता ४ । ३५ )

'पाण्डुपुत्र ! जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा ।'

तथा गीतादि शास्त्रोंके अर्थ और भावको समझकर उनका अध्ययन करनेसे भी यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है । भगवान्‌ने बतलाया है—

**स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥**
( गीता ४ । २८ का उत्तरार्ध )

'कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करते हैं ।'

और गीताका स्वाध्याय करनेवालेके लिये भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञान-यज्ञसे पूजित होऊँगा ( गीता १८ । ७० ) । इससे उसे यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है । इस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिमें प्रधान हेतु है श्रद्धा-विश्वास । भगवान्‌ने कहा है—

**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।**
**ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥**
( गीता ४ । ३९ )

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परमशान्तिको प्राप्त हो जाता है ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु बिना श्रद्धाके किया हुआ सभी कुछ व्यर्थ है—

**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।**
**असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥**

( गीता १७ । २८ )

'अर्जुन ! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह सब असत् है—इस प्रकार कहा जाता है। इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।' अतः सभी शुभकर्म श्रद्धापूर्वक ही करने चाहिये।

श्रद्धाकी प्राप्ति होती है अन्तःकरणकी शुद्धिसे।

**सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।**
**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥**

( गीता १७ । ३ )

'भारत ! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है; वह स्वयं भी वही है।'

अन्तःकरणकी शुद्धि होती है विवेक-वैराग्यपूर्वक भक्ति, ज्ञान और योगके साधनसे। इसलिये मनुष्यको उचित है कि भक्ति, ज्ञान और योगमेंसे जिसमें उसकी रुचि और विश्वास हो, उसीको लक्ष्य बनाकर उसे विवेक-वैराग्यपूर्वक परम उत्साह और तत्परतासे करे।

---

# त्वं ब्रह्मासि

( लेखक—पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र )

मनुष्य स्वयं सूक्ष्मका स्थूल परिणाम है और वह स्थूल पदार्थोंसे ही घिरा हुआ है। उसका सब व्यापार स्थूल पदार्थोंसे है। अतः उसकी दृष्टि सहजमें उस परम सूक्ष्म ब्रह्मकी ओर नहीं जाती।

सूक्ष्मकी ओर ध्यानको ले जाने तथा उसे हृदयंगम करनेके लिये यह आवश्यक है कि पहले अत्यन्त स्थूलपर ध्यान जमाया जाय और तब क्रमसे उत्तरोत्तर सूक्ष्म पदार्थोंकी ओर चला जाय। इसी प्रक्रियासे हम ब्रह्मतक पहुँच सकते हैं।

हमारे ऋषि-मुनियोंके ध्यानमें यह बात थी। उन्होंने स्वयं इसी मार्गसे सिद्धि प्राप्त की थी और इसी मार्गसे उपदेश भी दिया। लोग शङ्का किया करते हैं कि "वेदोंमें एक ओर तो ध्यानगम्य, परमसूक्ष्म, निराकार ब्रह्मका वर्णन है और एक ओर 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' इस मन्त्रमें उसे हजार सिर, आँख और पैरोंवाला बतलाया है। ये तो परस्परविरोधी बातें हैं।" पर वस्तुतः ये विरोधी बातें नहीं हैं। हजारों सिर आदिवाले ब्रह्मका वर्णन जान-बूझकर किया गया है। इसपर ध्यान जमाकर क्रमसे सूक्ष्मताकी ओर साधक जाय और अन्तमें निराकारको समझ ले, इसीलिये ऋषियोंने ऐसा स्थूल वर्णन किया है। यह तो प्रथम स्थान है, जहाँसे ब्रह्मके वास्तविक स्वरूपके ज्ञानके लिये बढ़ना है।

उपनिषदोंमें भी ऋषि इसी प्रकार स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर बढ़े हैं। इस यात्रा और उसकी सफलताकी झाँकियोंको ही हम उपनिषद् कह सकते हैं। भारतीय दर्शनोंमें भी तत्त्व-चिन्तनका यही क्रम है। वहाँ भी ईश्वरतक पहुँचनेके पहले दशेन्द्रियवाद आदि स्थूल लक्ष्य दृष्टिगोचर होते हैं।

उपनिषदोंमें स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेके अनेक विवरण हैं। छान्दोग्योपनिषद्में यह प्रकरण है कि नारदजी सनत्कुमारके पास गये और बोले कि 'मुझे उपदेश दीजिये।' सनत्कुमार बोले कि 'तुम क्या-क्या जानते हो, कहो।' नारदने कहा—'मैं चारों वेद, गणित, तर्कशास्त्र आदि जानता हूँ।' सनत्कुमारने कहा कि ऋग्वेद आदि नाम ही हैं। गणित भी नाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः तुम नामकी उपासना करो। इससे यह होगा कि जहाँतक नामकी गति है, वहाँतक तुम्हारी गति भी हो जायगी। तुम नामको ही ब्रह्म समझो।'

नारदने पूछा कि 'नामसे श्रेष्ठ क्या है ?' उत्तर मिला कि 'वाक्' नामसे श्रेष्ठ है। वाक्से ही वेद विज्ञप्त होते हैं। उसीसे धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, सुन्दर, असुन्दर आदि सब कुछका ज्ञान होता है। अतः नामसे वाक् श्रेष्ठ है।'

नारदके पूछनेपर सनत्कुमार इसी प्रकार उत्तरोत्तर श्रेष्ठको बतलाते चले। उन्होंने कहा कि वाक् या वाणीसे मन श्रेष्ठ है। उससे विचार किये बिना मनुष्य कुछ नहीं करता। और मनसे श्रेष्ठ संकल्प है। संकल्पसे ही मनन और वाणीका प्रेरण होता है। संकल्प ही ब्रह्म है। फिर चित्त संकल्पसे श्रेष्ठ है, उससे ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यानसे श्रेष्ठ विज्ञान है और उससे बल श्रेष्ठ है। बलसे श्रेष्ठ अन्न है; क्योंकि वह बलका मूल है। अन्नसे जल श्रेष्ठ है; क्योंकि उससे ही अन्न उत्पन्न होता है। जलसे तेज श्रेष्ठ है, उससे आकाश श्रेष्ठ है। आकाशसे श्रेष्ठ स्मरण है, उससे श्रेष्ठ आशा। आशासे श्रेष्ठ प्राण और उससे सत्य। सत्यसे श्रेष्ठ विज्ञान है; क्योंकि विशेषका ज्ञान हुए बिना पुरुष सत्य नहीं बोलता। सत्यसे बढ़कर मति है; क्योंकि मननके बिना विज्ञान या विशेष ज्ञान उत्पन्न होता नहीं। श्रद्धा मतिसे श्रेष्ठ है; क्योंकि श्रद्धाके बिना मनन नहीं हो सकता। श्रद्धा निष्ठासे होती है, अतः वह और भी श्रेष्ठ है। कृति निष्ठासे श्रेष्ठ है। करनेसे ही निष्ठा होती है। कृतिसे सुख बड़ा है। सुख पाकर ही कोई कुछ करता है। अतः सुखकी ही विशेष जिज्ञासा करनी चाहिये।

नारदने कहा कि 'मैं सुखकी विशेष जिज्ञासा करता हूँ।'

अन्तमें उन्होंने कहा कि 'भूमा ही सुख है, अल्पमें सुख नहीं। हे नारद! जहाँ साधक और कुछ नहीं देखता, और कुछ नहीं सुनता, और कुछ नहीं जानता, वह भूमा है। जहाँ कुछ देखा, सुना और जाना जाता है, वह अल्प है। भूमा ही अमृत है और अल्प ही मर्त्य है। यह भूमा अपनी ही महिमामें प्रतिष्ठित है। यही परम ब्रह्म है। यही आत्मा है।'

स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेका जो उदाहरण अभी उपस्थित किया गया, उसमें भूमाको—अखण्ड परिपूर्णत्वको ब्रह्म माना गया है। पर यहाँ भूमाका विशेष विवेचन या परिचय नहीं है। आगे चलकर नाना भङ्गियोंमें यह बात प्रकट की गयी है। और यह उदाहरण सूक्ष्मकी ओर जानेकी एक शृङ्खला है। स्पष्टतः यह काफी बादकी विचार-धारा है। प्रारम्भमें किसी एक वस्तुको ही ब्रह्म माना गया है, जैसे आकाशको। कहा गया है कि आकाश नामसे प्रसिद्ध आत्मामें नाम और रूपका निर्वाह है। वही ब्रह्म है, वही अमृत है। बृहदारण्यकमें ओंकारको आकाश मानकर उसीका ब्रह्मरूपमें वर्णन है।

धीरे-धीरे आत्मातक पहुँच हुई। उद्दालक ऋषिने कहा है कि सत् या आत्मा ही सबका मूल है। वही सूक्ष्मता या अणिमाका अन्त है। उन्होंने उदाहरणमें कहा है कि 'वट वृक्षके एक फलके भीतर अनन्त वटवृक्ष हैं। यही अणिमा है, यही सत्य है, यही आत्मा है।'

फिर यह कहा गया कि पृथ्वीमें छिपे धनको लोग नहीं जानते। वैसे ही अनृतसे आच्छादित सत्यका ज्ञान भी लोगोंको नहीं होता। आत्मा हृदयमें है। 'हृदि अयम्' यह निरुक्ति है। यह बात जाननेवाला ही स्वर्गलोक जाता है। लोकोंमें संघर्ष न होने देनेके लिये उन्हें विशेषरूपसे धारण करनेवाले सेतुका नाम आत्मा है; दिन-रात इस सेतुका अतिक्रमण नहीं करते; इसको जरा, मृत्यु, शोक, पाप या पुण्य स्पर्श नहीं करते। इस सेतुको तरकर अन्धपुरुष भी अन्ध नहीं रहता, उपतापी भी अनुपतापी होता है। इसे पारकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धकारपूर्ण रात्रि भी दिन हो जाती है; क्योंकि वह लोक सर्वदा प्रकाशमय है ।

धीरे-धीरे ब्रह्मका स्वरूप विशेष स्पष्ट हुआ । मुद्गलोपनिषद्‌में कहा गया है कि 'ब्रह्म तीन तापोंसे रहित, छः कोषोंसे शून्य, छः ऊर्मियोंसे वर्जित, पञ्चकोशोंसे अतीत, षड्भाव-विकारोंसे रहित, अतः विलक्षण है ।'

यहींपर जनकके यज्ञमें याज्ञवल्क्यजीका संवाद भी स्मरणीय है । इससे हमें यह दिखलाना अभीष्ट है कि ब्रह्म-साक्षात्कारका या ब्रह्मको जाननेका दावा करनेवाले याज्ञवल्क्य कितने असहिष्णु थे । वे ब्रह्मसे परे न कुछ मानते थे, न यह सहन कर सकते थे कि उससे परेकी बात जाननेका किसीको अधिकार है । यह भी एक सम्प्रदाय था और आज भी है । साथ ही गार्गीके प्रश्नसे उस दूसरे सम्प्रदायका ज्ञान होता है, जो ज्ञानमें अतृप्त था, जो ब्रह्मके बादकी स्थिति भी जानना चाहता था, जो ब्रह्मकी भी पुंखानुपुंख परीक्षा करना चाहता था । याज्ञवल्क्य-संवादमें भी स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेका विवरण है ।

राजा जनकने एक हजार गौएँ मँगवायीं और ऋत्रियोंसे कहा कि 'जो ब्रह्मज्ञानी हो, वह इन्हें ले जाय ।' जब किसी ऋत्रिका साहस न हुआ, तब याज्ञवल्क्यने अपने शिष्यसे गौएँ हँकवा दीं । इसपर ऋत्रियोंने उनके ब्रह्मज्ञानकी परीक्षा शुरू की । पहला संवाद अश्वलने किया । उन्होंने यज्ञ-सम्बद्ध बातें पूछीं और याज्ञवल्क्यके उत्तरसे वे संतुष्ट हुए । दूसरा संवाद जरत्कारु गोत्रमें उत्पन्न आर्त्तभागसे हुआ । उन्होंने पूछा कि जिस समय मृत पुरुषकी वाणी अग्निमें लीन हो जाती है, प्राण वायुमें, चक्षु आदित्यमें, मन चन्द्रमामें, श्रोत्र दिशामें, शरीर पृथ्वीमें, हृदयाकाश भूताकाशमें, रोम ओषधियोंमें, केश वनस्पतियोंमें तथा रक्त और वीर्य जलमें स्थापित हो जाते हैं, उस समय यह पुरुष कहाँ रहता है ?'

इसपर याज्ञवल्क्यने कहा कि 'यह प्रश्न जनसमुदायके बीच होने योग्य नहीं है । आओ, हम एकान्तमें विचार करें ।'····विचार होनेपर जरत्कारुगोत्रोत्पन्न आर्त्तभाग भी चुप हो गये ।

इस प्रकार अनेक ऋषियोंसे संवाद हुए । अन्तमें गार्गीने पूछा कि जो द्युलोकसे ऊपर, पृथ्वीसे नीचे तथा द्युलोक और पृथ्वीके मध्यमें है और जो स्वयं द्युलोक और पृथ्वी है तथा जिन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान कहते हैं, वे किसमें ओतप्रोत हैं ?'

याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि 'आकाशमें ।'····इसी प्रकार सब कुछ अन्तमें ब्रह्ममें ओतप्रोत सिद्ध हुआ । गार्गीने पूछा कि 'ब्रह्म किसमें ओतप्रोत है ?' तब याज्ञवल्क्य बोले कि 'यह अतिप्रश्न है । अतिप्रश्न न कर । तेरा सिर कटकर न गिर पड़े ।'····तब गार्गी चुप हो गयी ।

धीरे-धीरे मन और आत्माके लयकी युक्तियाँ सामने आयीं । मन दो प्रकारका माना गया—अशुद्ध तथा शुद्ध । जिसमें कामनाओंके संकल्प उठें, वह अशुद्ध; जिसमें कामनाओंका अभाव हो, वह शुद्ध । विषय-संकल्पसे रहित मन ही मोक्षका कारण है । ब्रह्मबिन्दूपनिषद्‌में कहा गया है कि 'विषय-संकल्परहित मन ही हृदयमें स्थिर होकर उन्मनीभावको प्राप्त होता है, अर्थात् संकल्प-विकल्पसे रहित होता है । यही परमपद है । यही ज्ञान और यही मोक्ष है । उस समय साधक ब्रह्मभावको प्राप्त होता है । उस समय साधक प्रणव और परमात्माकी एकता करे और प्रणवातीत तत्त्वका चिन्तन करे । ऐसी चिन्तन-लब्ध उपलब्धि भाव-स्वरूप होती है, अर्थात् उसके बिना समाधि शून्यरूप होती है । तब साधक सोचे कि यही अवयवहीन, विकल्पशून्य, निरञ्जन, मलरहित ब्रह्म है और वही मैं हूँ । यही पुरुषका ब्रह्मरूप होना है ।'

नारद-परिव्राजकोपनिषद्‌में यही बात प्रकारान्तरसे संक्षेपमें है । ब्रह्माजीने नारदसे कहा कि 'ब्रह्म अपना स्वरूप ही तो है । आत्मा ब्रह्म ही है । इसके सिवा कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। जो यह समझते हैं कि ब्रह्म दूसरा है, मैं अन्य हूँ, वे पशु हैं।'

बृहदारण्यकमें आया है—

**स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति, य एवं वेद।** (४।४।२५)

'यह महान् आत्मा जन्मसे रहित, वृद्धावस्थासे हीन, मृत्यु तथा भयसे भी रहित है। ब्रह्म अभय है, वह निश्चय ही अभय है। जो यह जानता है, वह अवश्य ब्रह्म हो जाता है।'

तात्पर्य यह कि कुछ भृङ्गी-कीट-जैसी बात है। ब्रह्मका चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करते-करते साधक ब्रह्म ही हो जाता है। इसीलिये कहा है—

**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।**

अर्थात् आत्माको देखो, सुनो, मनन करो, ध्यान लगाओ।

छान्दोग्यमें कहा है—

**यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः, तस्मिन्यदन्तः, तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति॥** (८।१।१)

अर्थात् इस ब्रह्मपुर-शरीरके भीतर जो सूक्ष्म, कमल-सदृश स्थान है, उसमें जो सूक्ष्म आकाश है और उसके भीतर जो है, अर्थात् ब्रह्म, उसे ढूँढना चाहिये, उसकी विशेष जानकारी करनी चाहिये।

क्यों? इसलिये कि जगत् दुःख-समूह है। वाराहोपनिषद्में कहा है—

**अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत्।**
**अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सुचक्षुषाम्॥**

अर्थात् अज्ञानीके लिये यह जगत् दुःख और पापमय है और ज्ञानीके लिये आनन्दमय—जैसे अन्धेके लिये सब कुछ अन्धकारमय है और आँखवालोंको प्रकाशमय है।

अतः ज्ञानके द्वारा आनन्दमय होनेके लिये ब्रह्मज्ञान आवश्यक है। ब्रह्मविद्या है क्या? अक्ष्युपनिषद्में कहा गया है कि 'सबको एक अज तथा तत्त्वतः चैतन्य-रूप समझना चाहिये। आत्मा और परमात्माके अतिरिक्त किसी वस्तुका भान न होना ही चित्तक्षय है। अतः योगस्थ होकर कर्म करो।....योगमें प्रवृत्त होनेपर अन्तःकरण धीरे-धीरे वासनाओंसे विरक्त होकर उदार कर्मोंमें संलग्न होता है और प्रसन्नताका अनुभव करता है। वह किसीको उद्वेग नहीं पहुँचाता। यह प्रथम भूमिका है। साधक श्रेष्ठ विद्वानोंका आश्रय लेता है। पद और पदार्थोंके विभागको हृदयंगम करता है। कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करता है। बाह्य आचरणके दोषोंको वह ऐसे त्याग देता है, जैसे सर्प केंचुलको। यह दूसरी भूमिका है।

तीसरी भूमिकामें साधक शास्त्रोंमें बुद्धिको निश्चल करता है, विषयोंमें अनासक्त होता है और दृष्टि निर्मल करता है। तब हृदयमें संतोष और आनन्दका अङ्कुर जमता है और अन्य उदात्त भावोंके लिये स्थान होता है। यहाँ साधककी संकल्पात्मक वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। ये तीन भूमिकाएँ जाग्रत्-स्वरूपा हैं।

चतुर्थ भूमिकामें अज्ञानके क्षीण होनेसे साधकमें समभाव आता है। तब अद्वैतभाव दृढ़ होकर द्वैत-भाव शान्त हो जाता है। इसीलिये साधक लोकको स्वप्नवत् देखने लगता है। पाँचवीं भूमिकामें साधकका चित्त विलीन होकर सत्त्वमात्र बचता है। अतः सांसारिक संकल्पोंका उदय नहीं होता। इससे भेद समाप्त हो जाते हैं और साधक केवल अद्वैत स्थितिमें आ जाता है। अतः वह आनन्दमयी स्थितिमें रहता है। वह अन्तर्मुख हो जाता है और ऐसा देख पड़ता है जैसे थका हुआ कोई सो रहा हो।

छठी भूमिकामें सत्, असत्, अहंकार, अनहंकार कुछ नहीं रह जाता। मननात्मक वृत्ति भी समाप्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। उस समय वह चित्रके दीपक-जैसा निश्चेष्ट रहता है।

सातवीं भूमिका विदेहमुक्ति है। यह भूमिका वाणीसे परे है। यहाँ योगकी पराकाष्ठा है।

ईशावास्योपनिषद्‌में आया है—

**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।**
**तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥**

'हे ईश्वर! आपका सत्यस्वरूप मुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूपी पात्रसे ढका है। मैं आपका दर्शन कर सकूँ, इसके लिये आप उस आवरणको हटा लीजिये।'

उक्त ईशका दर्शन न करके अन्यकी उपासनासे क्या होता है?

**अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।**
**ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः॥**

'जो विनाशशील देव या पितर आदिकी उपासना करते हैं, वे अज्ञानरूप तममें प्रवेश करते हैं। जो अविनाशीमें रत हैं अर्थात् उपासनाके मिथ्याभिमानमें प्रवृत्त हैं, वे और भी घोर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं।'

वह ईश्वर या आत्म-तत्त्व अति दुर्लभ है। कठोपनिषद्‌में आया है—

**श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः**
**शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।**
**आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-**
**ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥**

'जो बहुतोंको सुननेको भी नहीं मिलता, सुनकर भी बहुतेरे जिसे समझ नहीं सकते, उस गूढ़का वर्णन करनेवाला भी दुर्लभ है और उससे सुनकर ग्रहण कर सकनेवाला भी दुर्लभ होता है। तत्त्वज्ञसे शिक्षा-प्राप्त ज्ञाता भी परम दुर्लभ होता है।'

कारण यह है कि—

**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो**
**न मेधया न बहुना श्रुतेन।**
**यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष**
**आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥**

अर्थात् प्रवचन, बुद्धि या सुननेसे परब्रह्म नहीं मिलता। वह जिसे स्वयं वरण करता है, उसीको मिलता है। उसीके सामने ब्रह्म अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट करता है।

अतः इस तत्त्वके जिज्ञासुओंको अपनेको आत्माके वरणके योग्य बनाना चाहिये। यही परम पुरुषार्थ है।

## मैं प्रभुमें, प्रभु मुझमें

**मैं रहता हूँ प्रभुमें ही नित, प्रभुका मुझमें नित्य निवास।**
**प्रभुके सिवा अन्य कोई भी सत्ता नहीं, नहीं अवकाश॥**
**जब जो भी मिलता, उसमें ही दिखता प्रभुका मोहन रूप।**
**भले बना हो वह अति सुन्दर, अथवा हो बीभत्स कुरूप॥**
**सबमें है प्रभुकी गुण-गरिमा, सबमें हैं मंगलमय भाव।**
**सबके द्वारा अपने ही प्रभु करते प्रकट विचित्र विभाव॥**
**कहते प्रभु, खेलो तुम, मेरे-अपने 'विविध स्वाँग-अनुसार।**
**किंतु देखते रहो निरन्तर मुझे, न भूलो किसी प्रकार'॥**
**सदा कराते रहते अनुभव कर अनन्त लीला विस्तार।**
**कभी न सोते, सोने देते जग-प्रपंचमें, प्रभु बेकार॥**
**देख देख मैं प्रभुको, प्रभुकी लीलाको पाता आह्लाद।**
**नित्य नवीन मधुरतम रसका लेता मैं दुर्लभ आस्वाद॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मधुर

भगवान्‌के सखा श्रीउद्धवजीसे राधाने पुनः पूछा—'प्राणनाथने और कुछ कभी मेरे लिये कहा हो तो उसे भी सुनाओ।' उद्धवजी बोले—'महामति राधिके! जब मैं आने लगा तब तुम्हारी स्मृतिमें श्यामसुन्दर अत्यन्त विह्वल हो गये। उन्होंने अश्रुविगलित नेत्रोंसे न जाने कितना कहा—क्या-क्या कहा। मैं आपको कहाँतक सुनाऊँ। आपका स्मरण आते ही श्यामसुन्दरकी विलक्षण स्थिति हो जाती है। वे आपका गुणगान करते हुए अपने प्रेमियोंकी व्याख्या करने लगे और बोले—

मुझसे करके प्रेम चाहता,
जो उसका बदला पाना।
वह भी सुकृति पुण्यजन,
जिसने मुझको फलदाता जाना॥
उससे ऊँचा वह प्रेमी है,
जो निष्काम प्रेम करता।
सेवा करके मुक्ति चाहता,
मायिक जगसे जो डरता॥
उससे भी ऊँचा वह मेरा
प्रेमी शुद्ध हृदय प्यारा।
देते-देते मुझे मधुरतम
वस्तु कभी न थका-हारा॥
उससे भी उच्चस्तरपर वह,
जो सेवा करता दिन-रात।
सेवाका फल सदा चाहता,
सेवाकी बढ़ती अभिजात॥
जो न किसीका दास, किसीको
नहीं बनाता दास कभी।
युग-युग सेवा ही जो करता,
त्याग अन्य व्यवहार सभी॥

'उद्धव! मुझसे प्रेम करके जो उसका कोई बदला चाहता है, वह पुण्यात्मा भी सुकृति ही है; क्योंकि उसने मुझको फल देनेवाला समझा है। उससे भी ऊँचा प्रेमी वह है, जो मायिक जगत्‌से डरा हुआ है और लौकिक-पारलौकिक सभी कामनाओंको छोड़कर मेरी सेवाके द्वारा मुक्ति चाहता है। उससे भी ऊँचा वह विशुद्धान्तःकरणवाला मेरा प्रेमी है, जो मुझको मधुरतम वस्तु देते-देते कभी थकता ही नहीं, हारता ही नहीं (अपनेको देनेवाला मानता है)। उससे ऊँचे स्तरपर वह प्रेमी है, जो दिन-रात (सेवाके लिये ही) सेवा करता है और सेवाका फल भी सदा सेवाकी सुन्दर वृद्धि ही चाहता है, जो (मेरे सिवा) न किसीका दास है और न किसीको दास बनाता है, जो अन्य सारे व्यवहारोंका त्याग करके युग-युग मेरी सेवा ही करता है।

उससे ऊँची प्रेममयी हैं
वे सौभाग्यवती गोपी।
जो निज सुखको भूल सर्वथा,
सबसे बढ़कर हैं ओपी॥
स्नेह-राग-अनुराग-भावकी,
उठती जिनमें अमित तरङ्ग।
जिनका मुझसे छाया सारा
जीवन, सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग॥
केवल यही चाहतीं, मैं बस,
रहूँ देखता उनकी ओर।
बढ़ता रहे नित्य प्रेमार्णव,
रहे कहीं भी ओर न छोर॥

'उससे ऊँची वे सौभाग्यवती प्रेमस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ हैं, जो अपने सुखको सर्वथा भूल गयी हैं और प्रेम (त्यागमय प्रेम-राज्यमें) सबसे बढ़कर शोभा पा रही हैं, जिनके जीवनमें पवित्र स्नेह, राग, अनुराग नया भाव-रूपी प्रेमकी अपरिमित तरङ्गें उठती रहती हैं और जिनका समस्त जीवन और एक-एक अङ्ग-प्रत्यङ्ग मुझसे ही छाया है। वे केवल बस, यही चाहती हैं कि मैं (प्रसन्न मुखसे) उनकी ओर देखता रहूँ—जिससे उनके प्रेमसमुद्रमें बाढ़ आती रहे और उसका कहीं ओर-छोर न रह जाय।

पर राधा तो इन सबकी है
दिव्याधार-भूमि भावन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके स्नेह-सुधाका है शुचि
एक एक कण अति पावन ॥
निरवधि, नित्य नवीन, नित्य
निरुपम, निरुपाधिक नित्य उदार।
नित्यानन्त-अचिन्त्य-अनि-
र्वचनीय अतुल रस-पारावार ॥
राधाप्रेम परम उज्ज्वलतम
विधि-हरि-हर-अविगत-गति रूप।
परमहंस-तापस-योगी-मुनि-
मति-दुर्गम आश्चर्य स्वरूप ॥

"परंतु उद्धव ! श्रीराधा तो उन सभीकी सुन्दर दिव्य आधारभूमि हैं। (राधासे ही गोपाङ्गनाओंका और उनके प्रेमका अस्तित्व है ) वह राधा ऐसी है कि जिसके स्नेहामृतका एक-एक कण पवित्र है और अत्यन्त पवित्र करनेवाला है। राधाका प्रेम-रस-समुद्र सीमारहित है, नित्य नूतन है, नित्य उपमारहित है, नित्य उपाधि-रहित है और नित्य उदार है, वह नित्य अनन्त-अचिन्त्य और अनिर्वचनीय, अतुलनीय रस-सागर है। राधाका प्रेम परम उज्ज्वलतम है। ( सर्वथा विशुद्ध-तम है। ) ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी उस प्रेमकी गतिको नहीं जानते। परमहंस, तपस्वी, योगी और मुनियोंकी ( विशुद्ध ) बुद्धिके लिये भी वह दुर्गम तथा आश्चर्यस्वरूप है।

पर इससे उसका न तनिक भी
परिचय कभी हुआ, होता।
बहता सहज तीव्रगति, मंजुल
मधुर दिव्य यह रस-सोता॥
चौंसठ-कला-चतुर स्वाभाविक,
पर वह मनकी अति भोली।
नहीं जानती दंभ-कपट वह,
नहीं बनावटी कुछ बोली ॥
सहज विनम्र सरल शुचि अंतर,
निश्छल सुधासनी वाणी।
मधुर सुधास्रावी स्वभावसे
आप्यायित सब ही प्राणी ॥
सदा दीखती रहती उसको
निजमें दोषावलि भारी।
समझ न पाती कैसे क्यों
उससे प्रसन्न सब नर-नारी !

"( इतनी उच्चस्तरकी मूर्तिमान् प्रेमस्वरूपा होनेपर भी ) राधाको अपने इस प्रेमका न तो कभी तनिक परिचय प्राप्त हुआ और न कभी होता ही है। यह मधुर मनोहर दिव्य प्रेम-रसका स्रोत तो सहज ही—अनायास ही बड़ी तीव्रगतिसे बहता रहता है। राधा चौंसठ कलाओंमें स्वभावसे ही चतुर है। ( उसे कोई कला सीखनी नहीं पड़ी, तथापि वह मनकी अत्यन्त ही भोली है। दम्भ और कपट क्या होता है, इसका उसे पता ही नहीं है और बनावटी बोली—बनाकर बात करना भी वह नहीं जानती। उसका हृदय सहज ही विनम्र, सरल और पवित्र है एवं उसकी वाणी भी सहज ही छलरहित और मधुर अमृतमयी है। उसमें स्वभावसे सहज ही मधुर अमृत बहता रहता है, जिससे सभी प्राणी आप्यायित रहते हैं। ( यह सब होनेपर भी ) उसको तो अपनेमें सदा भारी-भारी दोषोंकी ही पंक्तियाँ दीखती हैं। वह समझ ही नहीं पाती कि उससे सभी नर-नारी इतने प्रसन्न—संतुष्ट क्यों रहते हैं ?

मेरे प्रति क्यों प्यार, उसे है
पता नहीं कैसे इतना ?
पता नहीं मैं स्वयं खिंचा
रहता क्यों उसके प्रति कितना ? ॥
चकित, किंतु अति सहज प्रेमकी
बनी दिव्य वह पावन मूर्ति ।
करती सदा सहज ही मेरे
मनमें नव-नव रसकी स्फूर्ति ॥
राधा गुण-गण विमल अमोलक
रत्न विलक्षण पारावार ।
जितना गहरा जभी डूबता,
पाता नव-नव रत्न अपार ॥
नहीं पा सका, पा न सकूँगा
कभी गुणगणोंकी मैं थाह ।
बनी रहेगी राधा गुण-
निधिमें डूबे रहनेकी चाह ॥
कैसे मैं क्या क्या गुण गाऊँ,
क्या भेजूँ उसको संदेश ।
जीवन ओतप्रोत सदा है
उसमें सभी काल सब देश ॥

"( इतना ही नहीं ), उसको इसका भी पता नहीं


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि मेरे प्रति उसका इतना प्रेम क्यों है ? और न इस बातका ही पता है कि मैं स्वयं उसके प्रति क्यों कितना ( अधिक ) खिंचा रहता हूँ। ( वह यह सब देखकर ) चकित हुई रहती है, परंतु उद्धव ! राधा सहज ही दिव्य प्रेमसे विनिर्मित सबको पवित्र करनेवाली मूर्ति है, वह मेरे मनमें सदा नये-नये रसकी सहज ही स्फूर्ति करती रहती है। राधाके निर्मल अमूल्य गुण-समूह एक विलक्षण समुद्र हैं। मैं जब उसमें जितनी गहरी डुबकी लगाता हूँ, तब उतने ही नये-नये रत्न प्राप्त करता हूँ। मैं राधाके गुणोंकी थाह न तो पा सका हूँ और न कभी आगे पा ही सकूँगा। राधाके उस गुण-समुद्रमें सदा डूबे रहनेकी ही मेरी चाह बनी रहेगी। ( तब फिर ) मैं कैसे राधाके क्या-क्या गुण गाऊँ और उसे क्या संदेश भेजूँ। मेरा जीवन तो सभी देश, सभी काल उसीमें ओतप्रोत है।

मेरी उस भोलीभाली
प्राणेश्वरिसे यह कहना सत्य।
मधुर तुम्हारी ही स्मृतिमें है
जीवन लगा निरन्तर नित्य॥

"हाँ, उद्धव ! तुम मेरी उस भोली-भाली प्राणेश्वरी राधासे यह सत्य संदेश अवश्य कह देना कि 'राधे ! मेरा जीवन नित्य-निरन्तर तुम्हारी ही मधुर स्मृतिमें संलग्न है।'"

उद्धव भी यह कहते-कहते अश्रुपूर्ण लोचन और गद्गद हो गये और श्रीराधा तो भावावेशमें मधुर मूर्छाको प्राप्त हो गयीं।

# 'स्वारथ साँच'

**[ कहानी ]**

( लेखक—श्री'चक्र' )

'मैं ठहरा स्वार्थी मनुष्य और उसमें भी व्यापारी। मुझे कोई मूर्ख बनाकर ठग ले, इसे मैं सहन नहीं कर सकता।' भगवान् ही जानें कि वे स्वार्थी हैं तो परमार्थी कौन होगा। उनके-जैसा निःस्पृह, सेवापरायण मुझे तो देखनेमें ही नहीं आया।

गोरा वर्ण, लम्बा, दुबला देह। लम्बा ही मुख और सरल भोले नेत्र। शरीरपर एक बगलबंदी, लगभग घुटनोंतककी धोती। जेबमें लौंग-इलायची भरे रहते हैं। स्वयं उनके लिये न लौंगका उपयोग है, न इलायचीका। जो भी परिचित मिलेगा, बड़ी नम्रतासे प्रणाम करेंगे और तब उनका हाथ अपनी जेबमें जायगा। आपका छुटकारा नहीं है उनकी लौंग-इलायची लिये बिना।

सिरके अगले भागमें केश नहीं रहे हैं। जो हैं, श्वेत हो चुके हैं। शरीरपर झुर्रियाँ पड़ चुकी हैं। गलेमें तुलसीकी कण्ठी और हाथमें जपकी झोली लिये यह वृद्ध जहाँ भी मिलेगा, जब भी मिलेगा, नम्रताकी मूर्ति। उन्हें देखकर मुझे स्मरण आ जाता है—

**तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।**
**अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥**

वार्धक्य है ही रोगोंके प्राबल्यकी अवस्था। उनका शरीर भी अनेक व्याधियोंसे ग्रस्त रहता है; किंतु कभी तो अपने रोगकी, अपनी पीड़ाकी चर्चा उन्होंने की हो। तनसे और धनसे भी वे अभावग्रस्त, रोग-पीड़ित जनोंकी सेवामें ही जुटे मिले मुझे। आज इसके यहाँ और कल उसके यहाँ—उनके कहीं भी जानेका एक ही प्रयोजन है—उसकी कोई सेवा करनी होगी।

'कभी इस भले आदमीको क्रोध भी आता है ?' मैंने एक परिचितसे पूछ लिया था हँसीमें।

'वे तो परम संत हैं। उनको क्रोध भला कैसे आ सकता है ?' बड़ी श्रद्धाके साथ ये शब्द कहे गये। किंतु वे साधु-वेशधारी होंगे, इस संदेहमें आप न पड़ें। वे गृहस्थ हैं और गृहस्थवेशमें ही रहते हैं। वैसे अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं एकाकी। पत्नीका परलोकवास बहुत पहले हो चुका और पुत्र कहीं दूरके नगरमें कोई काम करता है।

भजन, सेवा और तीर्थवास——उनके अब इतने ही काम हैं और उनसे कुछ कहिये उनकी प्रशंसामें तो कहेंगे——'मैं स्वार्थी हूँ। बनिया ठहरा। मुझे मूर्ख बनाकर कोई ठग ले, यह मैं सहन नहीं कर सकता।'

'रघुनाथजीकी लीला! बड़े लीलामय हैं वे।' यह एक दूसरा वाक्य है जो उनके मुखसे मैंने कई बार सुना है। जब भी किसीके किसी दोषकी चर्चा आप उनके सम्मुख करेंगे, वे इस वाक्यको दुहरा देंगे और उनके होंठ तथा झोलीके भीतर अँगुलियाँ अधिक शीघ्रतासे चलने लगेंगी।

उन्हें कष्ट होता है, उद्वेग होता है जब उनकी प्रशंसा की जाती है अथवा उनका सम्मान करनेका कोई प्रयत्न करता है। उस समय ऐसा लगता है कि उनके नेत्र भर आये हैं। लेकिन आप उनका तिरस्कार करें तो उनके कानपर जूँ नहीं रेंगती। उन्हें सेवाका कोई काम बता दें तो उनका मुख खिल उठता है।

'बच्चा क्या करता है आजकल?' मैंने एक बार पूछा था उनसे। मुझपर उनका इतना स्नेह है कि मैं उनके शरीर तथा पुत्रका समाचार यदा-कदा पूछ लेता हूँ।

'मूर्खता करता है! बनियेका बेटा होकर मूर्ख निकला।' उनके मुखसे पहली बार झुँझलाहटके-से शब्द सुने थे मैंने। उन्होंने मेरे सम्मुख किसीकी निन्दा की हो, यह पहला अवसर था। अतः मुझे कुतूहल हुआ। उनकी कुटियापर गया था मिलने। जमकर बैठ गया। बात क्या है, यह जान लेना मुझे महत्त्वकी बात लगी।

'क्या रक्खा है। रामजीकी लीला है। वे जिसे जैसा नाच नचायें।' वे सम्हल गये थे और पूछनेपर टाल देना चाहते थे मुझे; किंतु उनमें यह खेद क्यों जागा, मुझे यह जानना ही था।

'वह आजकल करता क्या है?' प्रश्नपर मैंने बल दिया। 'रहता कहाँ है?'

'व्यापार करता है। रुपये इकट्ठे करनेके चक्करमें पड़ा है।' उन्होंने मुझे संकोचपूर्वक थोड़ेमें बता दिया कि लड़का कहाँ रहता है, क्या करता है।

'कोई बुराई तो करता नहीं!' मैंने कहा——'युवक है, उपार्जन करता है और उपार्जन ईमानदारीसे करता है।'

'रघुनाथजी जिससे जो करायें, ठीक ही है!' वे अब अपने चित्तमें सावधान थे। सम्भवतः लड़केकी निन्दा मुखसे निकल गयी इसका भी खेद था उन्हें।

'आप उसे मूर्ख क्यों कहते हैं?' मैंने हठपूर्वक पूछा।

'जो अपना स्वार्थ भी न समझे, वह मूर्ख ही तो है।' उन्होंने आग्रह करनेपर बताया——'क्या बनेगा रुपयोंसे? बैंकमें बहुत धन एकत्र हो गया तो उससे लाभ? इतना धन उसके पास अब है कि वह सादा जीवन व्यतीत करते हुए निश्चिन्त भजन करता रहे।'

लड़केकी पत्नीका भी देहान्त हो चुका है। वह फिर विवाह करेगा या नहीं, मुझे पता नहीं है; किंतु पिताकी इसमें सम्मति नहीं है। उन्होंने उसे साल-दो-साल साथ रक्खा था। वह भी प्रतिदिन सवा लाख नामजप करता था उन दिनों। उसे भी बगलबंदी और घुटनों-तक धोती पहिने, हाथमें जप-झोली लिये, घुटे सिर मैंने देखा है।

त्याग और तपका यह जीवन सबके वशका नहीं हुआ करता। उस युवकसे साधक-जीवन निभा नहीं, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। वह अब व्यवसाय करने लगा है। तनिक सुख-सुविधा, थोड़े अच्छे वस्त्र-भोजनकी उसकी आकाङ्क्षा अस्वाभाविक तो नहीं है।

पिता कहते हैं कि वह मूर्ख हो गया है। वह मूर्ख है तो बुद्धिमान् समाजमें कितने हैं आज? लेकिन आप उनसे कुछ कहना व्यर्थ है। इन्होंने इतना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बता दिया, यही क्रम नहीं है। उनसे विदा लेकर मैं उस दिन चला आया।

× × ×

'आप यह पद-संग्रह कितनेमें ले आये?' मैं उनकी कुटियापर यह सुनकर गया था कि आजकल वे रुग्ण हैं। किंतु वे उलटे मेरे सत्कारमें व्यस्त हो गये थे। एक पुस्तक पड़ी थी आसनके समीप और नयी लगी वह मुझे। मैंने भी उसकी एक प्रति अभी चार-छः दिन पहले खरीदी है।

'आप इस बार ठगे गये।' उन्होंने छपा मूल्य दिया था। यहाँ बहुतसे दूकानदारोंने स्वयं पद-संग्रह छपवाये हैं। पुस्तकपर मूल्य अधिक छपवा रक्खा है। प्रायः ठीक मूल्य पूछनेपर छपे मूल्यसे कममें वे पुस्तक देते हैं।

'मैं कहाँ ठगा गया?' मेरे ठीक मूल्य बतलानेपर वे बोले—'ठगा गया वह बेचारा! रघुनाथजीकी लीला!'

मैं चौंका। सचमुच ठगा कौन गया? जिसे पुस्तकके चार आने मूल्य अधिक देने पड़े वह या जिसने चार आनेमें अपनी ईमानदारी, सत्य, विश्वसनीयता बेच दी वह?

'चार आनेके लिये मैं झिकझिक करता तो ठगा जाता।' उन्होंने दूसरा सूत्र सुनाया—'मेरी शान्ति और समय जाता उस चार आनेमें, जिस समयमें दो-चार भगवन्नाम तो लिया ही जा सकता है।'

'सचमुच आप पक्के व्यापारी हैं!' मैंने उन्हें मस्तक झुकाया तो वे मेरे पैर पकड़ने लगे।

'प्रशंसासे क्या मिल जाता है मनुष्यको? निन्दासे उसका क्या बिगड़ जाता है?' उस दिन वे तनिक खुलकर बोल रहे थे—'वह प्रशंसाके पीछे जब पागल होता है, निन्दासे व्यथित होता है तो अहंकार उसे ठग लेता है। वह केवल अपनेको मूर्ख बनाता है।'

'ओह! सचमुच अहंकार मूर्ख ही तो बनाता है ऐसे सब अवसरोंपर हमें।' मैं सोच रहा था कि जीवनका कितना श्रम और समय इस मूर्खताके पीछे मेरा नष्ट हुआ तथा हो रहा है।

'जीवनकी आवश्यकताएँ अधिक नहीं हैं।' वे कहते जा रहे थे—'पेटकी क्षुधा थोड़ेमें निवृत्त हो जाती है। थोड़ेमें शरीरकी रक्षा हो जाती है। मनुष्यको उसकी जीभ ठगती है। और मूर्खता ठगती है। वस्त्रादिके साज-शृंगारपर—फैशनपर होनेवाला व्यय मूर्खता ही है। आपने कुर्ता पहिना या कोट-कमीज, यह पूरे नगरमें कोई ध्यान नहीं देता। आपका सजना केवल अपने मनके मिथ्याभिमानका संतोष है। मन ठगता है आपको कि लोग क्या कहेंगे!'

मैंने उनसे आज पूछा था कि 'आप अपनेको स्वार्थी क्यों कहते हैं?'

'मैं अपने स्वार्थपर दृष्टि रखता हूँ।' उन्होंने बताया था—'बनियाँ हूँ मैं। कोई मुझे ठग ले, यह मुझे सहन नहीं होता। मेरा मन, मेरा अहंकार ही मुझे ठग सकता है। यह न ठगे तो दूसरा कौन ठगेगा! आप सब तो श्रीरघुनाथजीके स्वरूप हैं। आप तो सदा इस दीनपर अनुग्रह ही करते हैं।'

उनके शब्दोंमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं थी। उनका स्वर, उनके भरे-भरेसे नेत्र कह रहे थे कि ये शब्द उनके हृदयसे निकल रहे हैं।

'पूरा संसार ही तब मूर्ख है!' मैंने उन्हें उलाहना नहीं दिया था। उलाहना देनेकी धृष्टता भी नहीं कर सकता था उस समय। वैसे मैं उनसे परिहास कर लेता हूँ; किंतु उस दिन वातावरण इतना गम्भीर बन गया था, मैं इतना अभिभूत था कि परिहास या व्यंग्यकी कल्पना भी मनका स्पर्श नहीं करती। मैं सोचने लगा था और उस चिन्तनमें ये शब्द अपने-आप ही मुखसे निकल गये थे।

'आश्चर्यकी क्या बात है।' बिना संकुचित हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे स्थिर स्वरमें बोले—'यह संसार ही अज्ञान-चालित है। ज्ञान संसारका निवर्तक है, प्रवर्तक तो है नहीं। रघुनाथजीकी लीला ही ऐसी है।'

'यह दौड़-धूप, यह व्यग्रता-व्यस्तता, यह अशान्तिपूर्ण संघर्ष—सब मूर्खता है!' मैं अपने चित्तमें सोचने लगा था—'सचमुच यदि हम सोचने लगें कि इसका क्या उपयोग? इससे क्या लाभ या क्या हानि? हमारे उद्योगोंमें, हमारे क्षोभोंमें भी कितने सार्थक निकलेंगे?'

'जीवका स्वार्थ बिना सोचे-समझे श्रम करते रहनेमें तो नहीं है?' वे कहने लगे—'पदार्थोंकी राशि वह एकत्र भी कर ले, सबका कोई वास्तविक उपयोग है उसके लिये? उसे सोचना तो चाहिये ही कि उसका सचमुच स्वार्थ किसमें है।'

'तो आप इस अर्थमें स्वार्थी हैं!' मैं हँस पड़ा और वे संकुचित हो गये; किंतु बात तो उनकी ही सच्ची है। सच्चा स्वार्थ तो परमात्मामें ठीक-ठीक लग जानेमें ही जीवका है और यह स्वार्थ उन्होंने साधा है। अपने पुत्रको वे मूर्ख कहें, यह अधिकार है उन्हें।

# सच्ची सहायता भौतिक नहीं आध्यात्मिक है !

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आप समझते हैं रुपया-पैसा, शिफारिश, सेना, मित्र या भौतिक बल मनुष्यकी सहायता करते हैं।

यह बात सही नहीं है। सच्ची सहायताएँ ईश्वरीय होती हैं, भौतिक नहीं। जहाँ इस दुनियाके व्यक्तियोंसे सहायता नहीं मिलती, वहाँ आध्यात्मिक सहायता हमें उबार लेती है। केवल ईश्वर और धर्ममें सच्ची निष्ठा चाहिये।

महाभारतके युद्धसे पूर्वकी बात है। योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्‌की सहायता माँगनेके लिये अर्जुन और दुर्योधन दोनों ही उनकी सेवामें उपस्थित हुए।

श्रीकृष्ण अधिपति थे, उनके पास विपुल सेना थी। युद्धका सब सामान बड़ी भारी संख्यामें था। हर प्रकारके उत्तमोत्तम अचूक हथियार शस्त्रागारमें सुरक्षित थे। इतनी सुसंचालित और विशाल सेना और हर प्रकारके उत्तम हथियारोंकी सहायतासे कोई भी शत्रु बड़ी आसानीसे जीता जा सकता था।

सैन्य-संचालन, रुपया और नाना प्रकारकी भौतिक शक्तियोंमें विश्वास रखनेवाला कौन ऐसा बुद्धिहीन होगा, जो इस सेनाकी ताकतको न लेना चाहेगा। जिसके पास विशाल जन-समूह हो, एक-से-एक बढ़िया अचूक अस्त्र-शस्त्र हों, वह भला कैसे आसानीसे हराया जा सकता है?

दुर्योधन श्रीकृष्णके पास पहले आये थे। बादमें अर्जुन आये। अतः प्रथम चुनाव करनेका अधिकार दुर्योधनको था। अर्जुनकी बारी बादमें आती थी।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा, 'आप दोनों मुझसे सहायता माँगने आये हैं। ठीक है। मैं सहायता दोनों पक्षोंको ही दूँगा। मुझे अपनी सम्पूर्ण ताकतको दो हिस्सोंमें बाँट लेना चाहिये। वह बँटवारा मैं इस प्रकार करता हूँ। सुनिये—

एक ओर मेरी विशाल सेना, तमाम अस्त्र-शस्त्र, रथ, हाथी-घोड़े, यन्त्र इत्यादि सारा युद्धका सामान तथा मेरे सैनिक, सेनासंचालक योद्धा, पलटन सब भौतिक शक्ति रहेगी। मेरे शस्त्रागारमें जो कुछ है वह यह पक्ष ले सकेगा।

दूसरी ओर मैं, केवल मैं ही सहायताके लिये उपस्थित रहूँगा। एक शर्त यह है कि मैं युद्धमें स्वयं आक्रमणके लिये हाथ नहीं उठाऊँगा। लड़नेके लिये कोई हथियार कभी हाथमें नहीं लूँगा। सक्रिय रूपसे स्वयं किसी प्रकार भी युद्ध नहीं करूँगा। किसीको नहीं मारूँगा। मेरी तो केवल विचार और योजनामात्रसे ही आध्यात्मिक सहायता होगी।

अब एक ओर मेरी सारी 'नारायणी' सेना, युद्धकी विपुल सामग्री, अर्थशक्ति है और दूसरी ओर मैं खुद हूँ। आप लोगोंमेंसे जो जिसे चाहे—(भौतिक अथवा आध्यात्मिक सहायता) ले सकता है। पहले दुर्योधन आये थे इसलिये पहले माँगनेका अधिकार दुर्योधनको है।'

दुर्योधन अपने-आपको बुद्धिमें सबसे बढ़कर चतुर समझते थे। वे सोचने लगे—सेनाकी शक्ति ही तो वास्तवमें युद्धमें काम आती है। जिस पक्षसे युद्ध करनेके लिये अधिक संख्यामें व्यक्ति रहेंगे, जिसके पास युद्धकी अधिक सामग्री होगी, अन्ततः वही पक्ष तो विजयी होगा? सैनिकोंकी संख्या और लड़ाईके सामानका ही युद्धमें गुप्त महत्त्व होता है। एक आदमी, और सो भी बिना लड़े और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हथियार लिये, भला इतनी विपुल सेनाको कैसे हरा सकेगा ? कदापि नहीं ! मैं तो अधिक-से-अधिक सेना, सैनिक, युद्ध-सामग्री और आर्थिक सहायता लूँगा।

इस प्रकार तर्क कर वे भगवान् श्रीकृष्णसे बोले, 'प्रभो ! मुझे महाभारत-युद्ध जीतनेके लिये आप अपनी सम्पूर्ण सेना तथा लड़नेकी सामग्री सहायताके रूपमें दे दीजिये।'

भगवान् श्रीकृष्णने समस्त सामग्री दुर्योधनको सहर्ष दे दी। वह भी इस बड़ी भौतिक सहायताकी प्राप्तिमें मन-ही-मन प्रसन्न होता चला गया। फिर इसकी प्रतिक्रिया जाननेके लिये उन्होंने अर्जुनकी ओर देखा।

गाण्डीवधारी अर्जुन बोले—'योगिराज ! यह तो मेरे मनकी ही बात पूर्ण हुई। वास्तवमें मेरा भौतिक शक्तिमें तनिक भी विश्वास नहीं है। मैं तो आपको ही लेना चाहता था। यदि मुझे प्रथम चुनावका अवसर मिलता, तब भी प्रभो ! मैं आपको ही चुनता। आपकी अतुल बुद्धि, महान् आध्यात्मिक शक्तियाँ, सलाह, युद्धसम्बन्धी जानकारी और सदा परछाईंकी तरह मेरे साथ रहना—ये सभी वस्तुएँ आपकी विशाल सेना और विपुल युद्ध-सामग्रीसे बहुत अधिक शक्तिशाली हैं। आप आध्यात्मिक शक्तिके अनन्त भंडार हैं। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यकी सच्ची सहायता भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है। भौतिक शक्ति जल्दी ही समाप्त हो जाती है, किंतु आध्यात्मिक शक्ति अनन्त है, अखण्ड है। वही स्थायी सहायता है।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'अर्जुन ! यह तुमने अक्षरशः सत्य ही कहा है। अविवेकी मनुष्य भ्रमके कारण भौतिक सहायताको महत्त्व देते हैं। अर्थ, सैन्यबल, युद्धसामग्री, शस्त्रबल, शारीरिक ताकतकी सहायतासे मनुष्यको कुछ देरके लिये सामयिक लाभ भले ही प्राप्त हो जाय, परंतु ऐसा व्यक्ति अपने अंदर रहनेवाली आध्यात्मिक शक्तिको क्षीण कर बैठता है, उसका आत्म-विश्वास खो जाता है। इससे अन्तमें उसका विनाश हो जाता है। मैं निःशस्त्र रहकर युद्धमें तुम्हारा रथ हाकूँगा और निरन्तर अपना आध्यात्मिक बल तुम्हें देता रहूँगा। मेरे सामने न तो अपनी कीर्ति दिखानेका प्रलोभन है, न रणमें वीरता या कुशलता दिखानेकी मेरी इच्छा है।'

महाभारतका घमासान युद्ध हुआ, जो अनेक दिन चलता रहा। उसमें बड़े-बड़े योद्धा, असंख्य सेनाएँ, विपुल युद्ध-सामग्री नष्ट हो गयी। देखते-देखते समस्त भौतिक शक्ति नष्ट हो गयी। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक शक्तिसे अर्जुन शक्तिशाली और विजयी हुए। युद्धकालमें ऐसे-ऐसे विकट संकट उपस्थित हुए, जिनमें भगवान्‌की सलाह ही अर्जुनका एकमात्र सहारा बनी; वे भयंकर कठिनाइयोंमेंसे निकल सके और अन्तमें महाभारतकी विजय हुई।

इसका कारण ? भगवान् श्रीकृष्ण युद्धमें अर्जुनका आध्यात्मिक बल बढ़ाते रहे। निरन्तर उन्हें निराशा, मोह और कायरतासे निकालकर नव उत्साह और साहस बढ़ाते रहे। जब-जब अर्जुनके मस्तिष्कमें असंतुलन हुआ, वे मानसिक क्षोभसे उद्विग्न हुए, तब-तब वे उन्हें शान्त, विवेकपूर्ण और ठंडा करते रहे। धैर्य बँधाते रहे। पुनः-पुनः प्रोत्साहन और कर्त्तव्यबुद्धिको सामने रखकर कार्य करनेका उपदेश देते रहे। उन्हें स्वावलम्बनका अमृतपान कराते रहे।

सच्ची सहायता स्वयं मनुष्यकी अन्तरात्मा ही प्रदान किया करती है। वही सदा अर्जुनको उद्बुद्ध करती रही। यदि भगवान् श्रीकृष्ण मार्ग-दर्शनके लिये अर्जुनके साथ न रहते, तो सम्भव था वे कहीं या कभी मार्गच्युत हो ही जाते अथवा मोहवश कुछ गलती कर बैठते। पर आध्यात्मिक शक्ति मनुष्यकी जीवन-नौकाको कर्त्तव्य-पथपर स्थिर रखती है। अर्जुनके बहाने युद्धक्षेत्रमें ही दिया हुआ भगवान् श्रीकृष्णका गीता-ज्ञान आज भी जगत्‌के जिज्ञासुओंकी शान्ति, निर्भयता और कर्तव्यपरायणता बनाये रहता है। संकट और कष्टमें सान्त्वना प्रदान करता है।

अतः आप अपनेको हाड़-मांसका शरीर मत मानिये। अपनेको सत्, चित्, आनन्दस्वरूप आत्मा मानिये।

आप यह नाशवान् शरीर नहीं, अजर अमर अखण्ड आत्मा हैं। सर्वशक्तिसम्पन्न आत्मा हैं। इस नश्वर शरीरके प्रति किसी तरहका मोह मत रखिये। चिन्ता, भय, शोक, दुःख, उत्तेजना भौतिकवादीको ही हो सकते हैं, आत्मवादीको नहीं। वह इन्द्रियोंके वशमें नहीं होता।

भारतीय संस्कृति अध्यात्मवादको ही प्रधानता देती है। आध्यात्मिक शक्तियोंका ही सर्वोपरि महत्त्व मानती है। वास्तवमें अध्यात्मका महत्त्व भी संसारकी महानतम वस्तुओंसे ऊँचा है, उसका लाभ सृष्टिके सब लाभोंसे अधिक है। संसारमें मनुष्यने पशुत्वकी कोटिसे उठकर देवत्वकी ओर जो प्रगति की है, वह आत्माकी अनन्त शक्तियोंके कारण ही है।

'मैं पवित्र अविनाशी और सशक्त आत्मा हूँ। ईश्वरका चमत्कारी दिव्य अंश हूँ। मुझमें सब ईश्वरीय दिव्य गुण और दिव्य शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, जो सृष्टिकर्त्ता ईश्वरमें हैं।'—यह मान्यता भारतीय अध्यात्मवादका आधार है।

भारतीय संस्कृतिकी पुस्तकें, हमारे ऋषि-मुनि, हमारा दृष्टिकोण सदा आपको चौंकाता है और सदा यह याद दिलाता है कि 'रे अविनाशी शक्तिशाली आत्माओ ! तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। महान् शक्तिसम्पन्न आत्मा हो। अपने जीवनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें किसी प्रकारकी अशक्तताका अनुभव नहीं करना है। तुम अनन्त शक्तिशाली हो। तुम्हारी विद्या, बल, बुद्धि, शक्ति, सामर्थ्यका पार नहीं है। जिन साधनों, जिन दिव्य ताकतोंको लेकर तुम पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हो, वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। तुम्हारी शक्तियाँ इन्द्र-वज्रोंसे भी अधिक हैं। सफलता और स्वास्थ्य, आनन्द और प्रसन्नता तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं। उठो, अपने आत्म-स्वरूपको, अपने दिव्य हथियारोंको भली-भाँति पहिचानो और बुद्धिपूर्वक कर्तव्यमार्गमें जुट जाओ। फिर देखो, तुम कैसे पीछे रहते हो। याद रक्खो कि तुम कल्पवृक्ष हो। तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण होनी हैं। तुम पारस हो। तुम जिस वस्तुको स्पर्श करोगे, वही सोना हो जायगी। तुम अमृत हो। तुम्हारी आत्मा सदा अमर बनी रहेगी, तुम सफलता हो।

याद रक्खो, तुम नश्वर शरीरमात्र ही नहीं हो। क्षुद्र जीव नहीं हो, क्षणमात्रमें मर जानेवाले व्यक्ति नहीं हो, वरं आत्मा हो, परम शक्तिशाली आत्मा हो। तुम क्षुद्र वासना या इन्द्रिय-जन्य विकारोंके गुलाम नहीं हो। गंदी आदतें तुम्हें अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकतीं; क्योंकि तुम स्वभाव-से ही परम पवित्र हो। पापमें इतनी शक्ति नहीं कि वे तुमपर शासन कर सकें। तुम्हें अपने आपको दीन-हीन नहीं समझना है। हे महान् पिताके महान् पुत्रो! अपनी महानताको पहचानो। उसे खोजने, समझने और जीवनमें उतारनेके लिये तत्परता-पूर्वक जुट जाओ। तुम सत् हो। चित् हो। तुम आनन्द हो। अपनी वास्तविकताका अनुभव करो और अपनी आध्यात्मिक शक्तियोंको विकसित करो।'

# मेहनतसे शान्ति

( लेखक——श्रीकृष्णवल्लभदासजी 'साहित्याचार्य' 'साहित्यरत्न' )

'दण्डवत् महाराज! दण्डवत् महाराज!' श्रीरघुवीर-दासने दो बार दण्डवत् की; किंतु संतदासजीका ध्यान इस ओर बिल्कुल नहीं खिंचा। समागत संत इस बातको लेकर हैरान थे। आखिर वे परस्पर कानाफूसी करने लगे। लेकिन संतदासजी खेतमें लगातार कुदाल चला रहे थे। उनका शरीर पसीनेसे तर हो रहा था। आगत संतोंने संतदासजीका नाम खूब सुन रक्खा था। 'संतदासजीके द्वारसे कोई भी भूखा नहीं लौटता। कई बार वे खुद भूखे रह जाते हैं, लेकिन अभ्यागत सदा संतुष्ट होकर लौटता है। उनका सारा जीवन सेवामय है। दूर-दूरसे संत यहाँ आया करते हैं। आजसे पाँच वर्ष पहले गिरिनारका यह पर्वत-पाद घनीभूत-जंगली वृक्ष-बेलोंसे भरा था। किंतु आज यहाँ चारों ओर चाँदनी बिछी हुई है। संतने अपने परिश्रमसे जंगलको आबाद कर दिया है। इससे पहले यहाँ खूँखार भील निवास करते थे। यात्रियोंको अकेले-दुकेलेमें लूट लेना उनका काम था। आज बाबा संतदासजीकी कृपासे ये असभ्य भील परम वैष्णव बन गये हैं। संध्या होते ही जंगल-के चारों ओरसे भक्तलोग आने लगते हैं। प्रायः सभी लोग तिलक और कंठी धारण करते हैं। उन लोगोंका आचरण आज देव-तुल्य हो गया है। अब वे लोग दिल खोलकर संतोंका सत्कार करते हैं। झोंपड़ेपर साँझ-सबेरे कीर्तन होता है। इन भीलोंके एकमात्र गुरु श्रीसंतदासजी हैं।' इत्यादि।

'संतजी बौरा गये हैं' गोवर्धनदासजीने कहा। 'बौरा तो तुम गये हो' यमुनादासने प्रतिवाद किया।

'मैं कैसे बौरा गया हूँ?'

'देखते नहीं हो, संतजी काममें लगे हैं।'

'हाँ, यह बात ठीक है। इनका शरीर पसीनेसे भींग गया है?'

गोकुलदासजी जमीनपर चिपिया गाड़ते हुए बोले कि—'भाई! प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं। इन्हें दौलत मिल गयी है। अब संतोंकी क्या जरूरत है।' किंतु गोवर्धन-दासजीने इस बातका सख्त विरोध किया। 'संतजीको मद होना असम्भव है।' गोकुलदासने कहा—

झूठि न होइ देवरिषि बानी।

जरा जोरसे पुकारकर देख लो।' जब यमुनादासजीने संतको जोरोंसे पुकारा तो उनका ध्यान इस ओर खिंचा। किंतु गोकुलदासजीकी बात सत्य रही। संतदासजीने दण्डवत् लेनेसे साफ इन्कार कर दिया और उन्होंने झोंपड़ेकी ओर इशारा किया। संत लोग दंग रह गये। वैशाखका महीना। दोपहरका समय और चिलचिलाती धूप। कहाँ जायँ? चारों ओर दूर-दूरतक जंगल। गोकुलदासने कहा—

'हमलोग मर भले जायँ; किंतु इनके झोंपड़ेपर जाना ठीक नहीं। इन्होंने 'भेख'का अपमान किया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु यमुनादासने इस प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया। उन्होंने कहा—

'आदर निरादर—दोनोंमें हमें समान रहना चाहिये।

'संत सुखी बिचरंत मही।'

आखिर तय यह हुआ कि झोंपड़ेपर चला जाय। ज्यों ही वे लोग पीछे मुड़े कि उन लोगोंने कई भीलोंको दौड़े आते हुए देखा ! मध्यम कद, चौड़ी छाती, हाथमें धनुष और बाण, बिरल मूँछें, कठोरतम भुजदण्ड, सतेज आँखें और गोरा-बदन।

आते ही उन लोगोंने संतोंके चरण-स्पर्श किये। गोवर्धन-दासजी चौंककर दूर खड़े हो गये। यमुनादासजीकी आँखोंमें आँसू बह चले। संतोंकी विचित्र दशा हो गयी। आज संतोंने भगवान् राम और लक्ष्मणका साक्षात् स्वरूप देखा। संत लोग प्रेम-भावसे ओतप्रोत हो गये। आखिर सब झोंपड़ेकी ओर चले।

इस झोंपड़ेको वहाँके लोग मन्दिर भी कहते हैं। यहाँ शान्तिका साम्राज्य है। प्रवञ्चनामय आधुनिक शहरोंसे यह स्थान दूर—सुनसान अरण्यमें है। यहाँ सहज ही समाधि लग जाती है। गोवर्धनदासने कहा—

'भाई, कुछ भी कहो, पर सत्ययुग तो यहींपर है। शहरमें पढ़े-लिखे लोग हमारी हँसी उड़ाते हैं। आज धर्मका बास वहाँ नहीं है। यहाँ है। फिर भी हमारे संत उन्हीं शहरोंमें जाते हैं और वहीं रामायण कहते हैं।'

'जैसे रावणके राज्यमें ऋषि लोग वनमें रहते थे, वैसे ही हमको यहाँ आ जाना चाहिये। गुरुभाई ! दस वर्षतक मैं गुजरातमें रहा; किंतु किसी भगतने कभी भी सीताराम भी नहीं किया। अब जमाना बदल गया है।' अपना आसन उतारते हुए यमुनादासने कहा।

झोंपड़ेके चारों ओर तुलसीके पौधे लगे हैं। बेला और रातरानीकी सुन्दर सुगन्धि फैल रही है। सर्वत्र शान्ति-ही-शान्ति है। संध्या होने चली है। सूर्यनारायण दिनभर आकाशमें भ्रमण करके मानो थककर विश्राम करनेके लिये सागरमें जा रहे थे। सुदूर क्षितिजपर लटकती हुई उनकी वर्तुल स्वर्णिम आकृति पके घड़ेकी तरह लगती थी।

आरती आरम्भ हो गयी। प्रार्थना हुई। सभीने परस्पर दण्डवत्-प्रणाम किया। गोकुलदासके आश्चर्यकी उस समय सीमा नहीं रही, जब उन्होंने संतदासजीको अपने चरणोंपर लोटते हुए पाया। पहले तो उन्होंने समझा, कोई दूसरे संत हैं। किंतु जब उन्होंने महंतजीको पहचाना, तब तो वे अवाक् रह गये। संतदासजीने सभी संतोंका चरण-स्पर्श बारी-बारीसे करना चाहा; किंतु फिर किसीने भी चरण-स्पर्श नहीं करने दिया। दृश्य देखने ही योग्य था। प्रेम-रसका सागर ही उमड़ पड़ा था।

ब्यालूके बाद सत्संगति शुरू हुई। गोवर्धनदासने अपनी भागलपुरी चादर ओढ़ते हुए कहा—'संतजी ! आप हम-जैसे भूलेभटकोंको वचनामृत पिलाइये।' कुछ देर मौन रहकर गोमुखीको सँभालते हुए श्रीसंतदासजीने कहा—"भाई! और बात तो तुमको मालूम ही है; क्योंकि 'रामायण'में संसारकी सारी बातें आ जाती हैं। लेकिन यह मैं अपना अनुभव सुना रहा हूँ कि मेहनत ही एक ऐसी चीज है जो मनुष्यको ऊपर उठाती है। मैं भी इधर-उधर बहुत दिनोंतक घूमता रहा; किंतु शान्ति कहीं नहीं मिली। अपने रामको शान्ति यहींपर आकर मिली। मेहनतका काम करो और फिर जप करो; देखो, ध्यानमें कितना मन लगता है। आपलोगोंको आज बहुत दुःख हुआ होगा। आपलोगोंकी दण्डवत् मैंने नहीं ली। इसका कारण यह है कि 'मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि 'रोज तीन घंटे खेतमें काम करूँगा और इसके बीच किसीसे बाततक न करूँगा।' आपलोग अपराध क्षमा करें।" गोकुल-दासजीकी आँखोंमें आँसू आ गये। उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हुए कहा—'महाराज ! आप-जैसे महान् संतके प्रति मैंने दुर्भावना की। इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ।' संतदास-जीने उन्हें हृदयसे लगा लिया। सभी संतोंने संतदासकी प्रशंसा की। संतदासजीने चलते समय कहा—'मेरा राम एक छोटा-सा दास है। भूल-चूक आपलोग क्षमा करें। रात काफी हो चुकी है। अब आपलोग आराम करें।'

लगभग एक बज गया था। सुदूर जनशून्य महावनमें बाघ तुमुल घोष कर रहा था। आवाज़ प्रतिध्वनित होकर दिगन्तमें पुञ्जीभूत हो रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

[ गताङ्कसे आगे ]

## उपसंहार

उत्तराखण्डके इस अजायबघरमें हमने जिस दरवाजेसे प्रवेश किया था, वह ऋषिकेश था । अजायबघरकी तरह अगणित अजीब-अजीब चीजें हमने उत्तराखण्डमें देखीं । विविध रूपोंमें विविध भावनाओंसे देव-दर्शन किये । प्रकृति-निरीक्षण किया, भाँति-भाँतिके लोगोंसे मिले और विविध भाँतिसे पूजा-अर्चना की, भगवत्-आराधना की । आज फिर उत्तराखण्डके उसी द्वारपर हम लौट आये । अब हम उसी संतरीके साथ थे, जिसकी इजाजतसे इस महान् प्रदेशमें घुसे थे । अतः उत्तराखण्डके द्वारपाल ऋषिकेशके प्रति एक कृतज्ञ भावसे आज हम विदा ले रहे थे ।

ऋषिकेशमें हम एक दिन रहे । गोविन्ददास गीता-भवनके सत्संगमें भाषण देने गये । यद्यपि वे श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे मिलने ही गये थे, परंतु चारों धामोंकी इस यात्राके अनन्तर जयदयालजी उन्हें सत्संगमें भाषण देने न बुलाते, यह एक अस्वाभाविक बात थी । दूसरे दिन हम हरिद्वार आये और इस यात्रा-यज्ञका अवभृथ स्नान हमने हरिकी पैड़ीपर किया ।

ग्यारह जुलाईकी संध्याको हम बसद्वारा दिल्ली पहुँच गये । इस प्रकार अठारह मईसे ग्यारह जुलाईतक सात सप्ताह हमें इस यात्रामें लगे ।

उत्तराखण्डकी हमारी यह यात्रा, जैसा पहले कहा गया है, सात सप्ताहमें समाप्त हुई । यदि जबलपुरसे यात्राका आरम्भ माना जाय तो इस यात्रामें रेल, मोटर और पैदलके तीनों मार्ग आये और यदि दिल्लीसे यात्राका आरम्भ माना जाय तो हम मोटर और पैदल दो प्रकारके मार्गोंद्वारा चले । यथार्थमें यात्राका आरम्भ दिल्लीसे ही हुआ ।

हमारी यह यात्रा प्रधानतया धार्मिक यात्रा थी । अतः हम कहीं एक रात्रि और कहीं तीन रात्रि ठहरे । यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी और केदारनाथमें हम एक-एक रात्रि ठहरे और बदरीनाथ, ऋषिकेश एवं हरिद्वारमें तीन-तीन रात्रि । लौटते हुए हम ऋषिकेशमें फिर एक रात्रि रहे और हरिद्वारमें दो रात्रि । शेष समय यात्रामें चलते ही बीता ।

मोटरद्वारा हमने जो यात्रा की, उसमें इस यात्रामें हमें कोई विशेष आनन्दका अनुभव नहीं हुआ । जिस आनन्दका हम अनुभव प्राप्त कर सके, वह हमें पैदल यात्रामें ही प्राप्त हो सका ।

इस यात्रामें उत्तराखण्डके इन चारों धामोंतक पहुँचनेमें हमें प्रत्येक धामके लिये दस हजार या इससे भी ऊपरकी चढ़ाई चढ़नी पड़ी । केदारनाथकी यात्रामें तो ग्यारह हजार सात सौ पचास फुटतक । हर धामके लिये हम यह चढ़ाई चढ़ते और फिर काफी नीचेतक उतरते । ठंडका अनुभव हमें प्रत्येक धाम पहुँचनेके दो-तीन दिन पूर्वसे धामसे उतरनेके दो-तीन दिन बादतक होता । केदारनाथमें सबसे अधिक ठंडका अनुभव हुआ । वर्षाके कारण यह ठंड और बढ़ गयी थी । परंतु केदारनाथकी ठंडके लिये हमें जितना डरा दिया गया था, वैसी असह्य सर्दीका हमें वहाँ भी कोई अनुभव नहीं हुआ । गोविन्ददासको तो केदारनाथकी सर्दी बहुत मामूली जान पड़ी; क्योंकि उन्होंने बताया कि वे पाँच-छः वर्ष पहले दिसम्बरमें चीनकी राजधानी पीकिंगकी ठंडका अनुभव कर चुके थे । जहाँका तापमान शून्यसे भी पंद्रह डिग्री नीचे था ।

इस यात्रामें हमने शारीरिक दृष्टिसे जितना कष्ट भोगा, उसका इसके पूर्व हमें कभी अनुभव नहीं हुआ था । मनुष्यकी तीन प्रधान आवश्यकताएँ हैं—भोजन, वस्त्र और निवास । भोजनमें हमें गेहूँका खराब आटा, नये चावल, दाल ऐसी जो यहाँके पानीके कारण सीजती नहीं । हाँ, दो चीजें अच्छी मिलती थीं—एक शुद्ध घी और दूसरी आलू । इन पाँच चीजोंके सिवा हमें किसी तरकारी, फल आदि अन्य आवश्यक खाद्य वस्तुओंके दर्शन नहीं हुए । केदारनाथ-मार्गमें एक दो स्थानोंपर तथा बदरीनाथ-मार्गमें जोशीमठमें कुछ हरे फल, सेव, नासपाती आदि अवश्य मिलते हैं, पर वहाँ भी हरी तरकारीके नामपर कुछ नहीं । फिर यात्रा मुकामोंपर कहीं भी धोबी न मिलनेके कारण गरम कपड़ोंके सिवा शेष कपड़े हमें मैले-कुचैले ही पहनने पड़े और गरम कपड़े तो कहीं स्थानोंपर पहने जा सकते थे, जहाँ ठंड थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे स्थानोंपर सात हफ्तेकी यात्रामें शायद हम केवल दो हफ्ते रहे हों । निवासके स्थान कैसे थे, इसका उल्लेख इस पुस्तकके पिछले अध्यायोंमें अनेक स्थलोंपर हुआ है। डाक-बंगलों और केदारनाथ-बदरीनाथकी धर्मशालाओंको छोड़ चट्टियोंकी जिन धर्मशालाओंमें हमें ठहरना पड़ा, उन धर्मशालाओंके मकान सारी आधुनिक सुविधाओंसे रहित थे। स्नानागार और शौचालय तो दूरकी बात है, लघुशंकाके लिये भी एक-एक फर्लांग दूर जाना पड़ता था । कोई मोरी नरदातक नहीं, जहाँ हाथ धोये जा सकें। भाग्यवशात् यदि कोई बीमार हो जाय तो उसे १०४ और १०५ डिगरी बुखारमें भी लघुशंकाके लिये रात्रिको बरसते पानीकी भीषण सर्दीमें ऊबड़-खाबड़ मार्गसे फर्लांगभर चलना पड़े और हाथ धोने या कुल्ला करनेके लिये भी बाहर निकलना पड़े । फिर निवास-स्थानकी इस व्यवस्थामें गंदगीकी पराकाष्ठा, मक्खियोंके दल-के-दल और अनेक स्थलोंपर खटमल, पिस्सू, चीलर, न जाने कितने प्रकारके कीड़े-मकोड़े !

रास्ते अनुमानसे अधिक उतार-चढ़ाववाले । यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीका मार्ग तो अत्यन्त बीहड़, दुर्गम और भयानक है। जहाँतक मार्गोंके चढ़ाव-उतारका प्रश्न है, वह किसीके बूतेकी बात नहीं। वह तो हिमालयकी शोभा है। किंतु जहाँतक मार्गके ऊबड़-खाबड़ और बीहड़ताका प्रश्न है, हल किया जा सकता है और किया जाना चाहिये । केदारनाथ और बदरीनाथके रास्ते चढ़ाव-उतारके होनेपर भी बुरे नहीं हैं।

यात्रियोंकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है । यह सचमुच खेदकी बात है कि यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीके मार्गोंको स्वतन्त्र भारतकी सरकारने अब भी ठीक नहीं कराया है । सौभाग्यसे भारत एक गणराज्य है, वह भी धर्मनिरपेक्ष राज्य। भारतमें विभिन्न मतों, धर्मों और सम्प्रदायोंके लोग रहते हैं। सबके हित-साधनके लिये सबको सम न्याय मिले । सभीके साथ सम-व्यवहार हो, इसके लिये जरूरी था कि राजकीय स्तरपर धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया जाय । किंतु इस राजकीय स्तरपर धर्मनिरपेक्षताका अर्थ धर्मविमुखता कदापि नहीं। यदि ऐसा होता तो हमारी सरकार कुम्भ, ग्रहण, संक्रान्ति आदि अवसरोंपर जो मेलोंका प्रबन्ध करती है, वह क्यों करती । कहा जा सकता है कि इन कुम्भ, सूर्य और चन्द्र-ग्रहण तथा संक्रान्ति आदि पर्वोंके समय सरकार जो प्रबन्ध करती है, वह धार्मिक दृष्टिसे नहीं, वरं यात्रियोंकी सुख-सुविधा, उनके स्वास्थ्य और सुरक्षाकी दृष्टिसे करती है। शासन-व्यवस्था-के कर्तव्यरूपमें हम भी इस तर्कसे सहमत हैं और चाहते भी यही हैं कि हमारी सरकार भले ही धार्मिक सरकार न बने, किंतु एक स्वतन्त्र देशकी सरकारके नाते उसके सुशासन और सुव्यवस्थाके लिये जो उत्तरदायित्व उठाने पड़ते हैं, उसके अनुरूप तो बने । भारतमें हमने जनतन्त्रकी स्थापना की है, यह जनताके हित और उसकी अधिकाधिक सेवाके संकल्पसे प्रेरित होकर ही। फिर हम ही उसके हितोंकी, उसके सुखोंकी, उसके शरीर और स्वास्थ्यकी उपेक्षा करें, उसे जोखिममें डालें, यह हमारी कर्तव्य-मूर्छा ही नहीं, एक संकल्प-विधर्मीपन भी होगा । केदारनाथ और बदरीनाथके रास्ते ठीक हैं, इसका श्रेय स्वतन्त्र भारतकी सरकारको न होकर अंग्रेज सरकारको है। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी मार्गमें एक स्थानसे दूसरे स्थानकी दूरी, कहाँ चढ़ाई आरम्भ होती है, कहाँ उतार, इसकी सूचनाएँ तक नहीं लिखी गयी हैं। इलाजकी भी कोई व्यवस्था नहीं है। इन मार्गोंमें शौचालय और मूत्रालय बनानेके सिवा सरकारने कुछ भी नहीं किया है । अतः हर यात्री सरकारको अनेक प्रकारके शाप देता हुआ यह यात्रा करता है। स्वतन्त्रताके बाद मोटरोंके रास्ते अवश्य कुछ दूरतक बढ़े हैं और तेजीसे आगे बढ़ रहे हैं। इन मोटर-मार्गोंसे जहाँ एक ओर यातायातकी सुविधाएँ बढ़ी हैं, दूसरी ओर यात्राका धार्मिक महत्त्व भी घटा है । हम यह जानते हैं कि जब ऋषिकेशके आगे मोटर-मार्ग नहीं था और लोग बदरीनाथ या केदारनाथ पैदल जाते थे तो उन यात्रियोंकी संख्या कोई बहुत अधिक नहीं होती थी। ज्यों-ज्यों साधन बढ़े, यात्रियोंकी संख्या भी बढ़ती गयी और आज तो प्रतिवर्ष प्रत्येक धामको हजारोंकी संख्यामें देशके विभिन्न भागोंसे लोग यात्रापर आते हैं। स्वाभाविक ही है कि जिस धामको देशकी जितनी अधिक आबादी आयगी, उसका महत्त्व उतना ही अधिक बढ़ेगा। पुराने जमानेमें सुदूर गाँवोंसे दो-दस आदमी इन पुण्यधामोंकी यात्राकर जब लौटते थे, तो अनेक अजीब और चमत्कारिक कथाएँ लोगोंको सुनाते थे और ये इने-गिने दो-दस आदमी ही हजारों ग्रामवासियोंको उत्तराखण्डकी महिमासे अवगत करा देते थे। आज जब इतनी बड़ी संख्यामें लोग यात्रापर आते हैं तो कहना न होगा कि भारतकी कितनी बड़ी आबादी इन यात्रियोंकी यात्राओंसे लाभान्वित होती है और उत्तराखण्डकी हिमालयकी महिमासे परिचित। अतः मोटर-मार्गोंसे मोटरोंके इस यातायातसे निःसंदेह हिमालयके परिचय और उत्तराखण्डके उन तीर्थ-स्थानोंके पुण्य प्रचारकी दिशामें बड़ा काम हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु इसके साथ ही जो एक बड़ी हानि हुई है और हो रही है उसकी भी हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। साधारण बातोंमें मोटर यातायातसे यहाँके निवासियों, मजदूरों आदिको यात्रियोंसे यात्रा-कालमें जो थोड़ी बहुत मजदूरी और व्यवसाय मिल जाता था वह छिन गया है और अब यह पूँजीवाले उन लोगोंका रह गया है जो अपनी लागतके बलपर मोटर स्टैंडोंपर बड़ी-बड़ी दूकानें लगाकर बैठ गये। निम्न दर्जेका मजदूर या छोटा व्यापारी अपनी असमर्थताके कारण जहाँ पहले था, उससे भी नीचे आ गया है। मजदूरोंको अब मजदूरी तलाशने या तो ऋषिकेश उतरना पड़ता है अथवा अन्य मोटर-अड्डोंपर जाना पड़ता है, फिर इस खुदगर्जीके कारण मजदूरोंकी अपनी साख भी गिर गयी है। दूसरी सबसे प्रधान हानि जो मोटर यातायातसे हो रही है, वह है यात्राके आकर्षणमें कमी होना। आस्था और आकर्षण यद्यपि दो अलग-अलग चीजें हैं, किंतु उनका सम्बन्ध अन्योन्य है। बिना आकर्षणके आस्था सम नहीं होती। यह आस्था चाहे व्यक्तिके प्रति हो, किसी वस्तुके प्रति हो या अपनी भावनाओंके किसी देवताके प्रति हो। जबतक हमें उस व्यक्ति, उस वस्तु और उस देवतामें विद्यमान कुछ आकर्षक-तत्त्व दिखायी नहीं देंगे, हमारा उस ओर खिंचाव नहीं हो सकता और बिना मनका खिंचाव हुए हमारे अंदर आस्था प्रकट नहीं हो सकती। फिर यह आस्था भी दो प्रकारकी होती है—एक रस्मी ( व्यावहारिक ), दूसरी आन्तरिक। हमारे यहाँ नर्मदा-तटपर, गंगा-तटपर हर पूर्णिमाको मेले लगते हैं। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण और कुम्भ, अर्द्धकुम्भके समय लोग सैकड़ों-हजारों नहीं, लाखोंकी संख्यामें इन पावन सरिताओंमें पर्व-स्नान करते हैं; यही नहीं, मथुरा, वृन्दावन, काशी, पुरी, द्वारिका, रामेश्वरम् आदि तीर्थोंको प्रतिवर्ष एक बड़ी संख्यामें लोग जाते हैं। किंतु आजके उत्तराखण्डके यात्रियों और इन तीर्थोंके यात्रियोंमें यदि हम भावनाकी दृष्टिसे मिलान करने बैठें तो हमें एक बड़ा अन्तर शायद आकाश-पातालका दिखायी देगा। अध्यात्म-सुखकी प्राप्तिके लिये आधिभौतिक सुखोंसे पिण्ड छुड़ाना या उनका त्याग करना जरूरी होता है और इसके लिये सर्व-प्रथम हमें उस वातावरणसे उस जीवनसे कुछ देरके लिये दूर हटना पड़ता है, जिसमें हम कण्ठतक डूबे हुए हैं। उत्तराखण्डका हर यात्री इस जीवनसे घरसे विदा होते ही मुक्त हो जाता है। यदि इसमें थोड़ी-बहुत कमी रहती भी है तो ऋषिकेशसे तो वह सर्वथा शुद्ध सात्त्विकी हो ही जाता है। पर हमारे अन्य तीर्थोंके, जिनकी यात्रा मोटर रेल या अन्य वाहनोंसे होती है, सम्बन्धमें यह बात नहीं हो पाती। इसका कारण है। यात्री अपने पारिवारिक नागरिक जीवनमें पूर्णतया लिप्त रहते हुए ही ये यात्राएँ करता है। फिर, जहाँ ये तीर्थ हैं, वहाँ भी पूर्णतया नागरिक जीवन रहता है। अतः सुखमें रहकर सुख की और दुःखमें रहकर दुःखकी बड़ाई हम जिस तरह नहीं जान पाते। नागरिक जीवनमें रहते हुए अध्यात्म-सुखकी सच्ची अनुभूति नहीं उठा पाते। फिर ज्यों-ज्यों यात्रीका हिमालयकी निर्मम कायासे सम्पर्क होता है, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता है अपने अंदरकी वासनाएँ माया-मोह पीछे छोड़ता जाता है इन बीहड़ पथों और दुर्गम चढ़ाइयोंसे जब वह प्रकृतिके इस विराट्‌रूपका साक्षात् करता है, अपने इष्ट मनोरथोंको साका‌र देखता है तो सांसारिक माया-मोहके ममत्वकी तो कौन कहे स्वत्वको ही भुला बैठता है। देव-दर्शन, प्रकृति-दर्शनका य‌ दिव्य सुख जो यहाँ मिलता है वह अधिकतर हमारी श्रद्धापू‌र्ण कष्टसाधनाके कारण। अपने अनवरत श्रमके कारण। मोटरों रेलगाड़ियों और अब हवाई जहाजोंसे भी लोग तीर्थ-यात्रा करते हैं। कोई कुछ दिनोंमें, कोई कुछ घंटोंमें अप‌ने मनोरथोंको पा जाते हैं। किंतु इन कुछ दिनों और घं‌टों बाद बिना किसी विशेष कष्ट या असुविधाओंके इन देव-दर्शनोंमें और उत्तराखण्डके इस बीहड़ और विकट चढ़ाईवाले पैदल मार्गसे चलकर हफ्तों बाद प्राप्त होनेवाले दर्शनोंके सुखमें अन्तर है, उसमें जो गहराई है, उसे कोई वक्ता, लेखक कवि नहीं नाप सकता। वह तो इस पथके यात्रीके ही अनुभ‌व की चीज है। यहाँ जैसा सुख, विपुल वनश्रीकी अनुपम शो‌भा और जैसी आत्म-शान्ति मिलती है, पग-पगपर पैदल चल‌ने वाले यात्रीको हिमालयके इस महान् प्रदेशमें उसके द‌र्शन और अनुभव-सुखके आगे सचमुच स्वर्गिक सुख भी फी‌का पड़ जाता है। निर्विवादरूपसे मोटर-यात्रामें यह सुख क्षी‌ण हो जाता है। शरीर-श्रम, कष्ट और यातनाएँ ही आदमी अनुभवकी लम्बी मंजिल तय करती हैं। बिना यह मंजि‌ल तय किये कोई अच्छे-बुरेकी, सुख-दुःखकी, गुण-अवगुण अ‌ग्राह्य-अग्राह्यकी पहचान नहीं कर पाता। यही नहीं, भौति‌क भव-व्याधियोंसे ग्रस्त, भौतिक क्लेशोंसे कसा और यातनाओं डँसा मानव जब जीवनकी विषम और कष्टतर कसौटीपर क‌सा जाता है, तभी वह प्रकृति और परमेश्वरके निकट पहुँच प‌ाता है। सीधे शब्दोंमें असाक्षात्‌का साक्षात्कार वह तभी कर प‌ाता है, जब उसके अदृश्य अन्तःकरणसे एक टीस उठती किसी कष्टके अतिरेकमें वह करुण कण्ठसे आर्तनाद कर उठ‌ता है। कष्टकी यह स्थिति, आत्माका यह जोर जीवनके स‌ादे सादे रास्तेसे नहीं जा पाता। इसके लिये तो विपरीत परि‌स्थि तियाँ, संघर्षमय जीवन और तूफानी मंजिल ही कारगर हो‌ती उदाहरणार्थ कुछ ऐसी बातें हमारे सामने हैं; कड़ी धू‌प मेहनत करनेपर जब शरीर पसीनेसे तरबतर हो जाय, तनको सहलाती शीतल हवा तरल और मधुर मालूम प‌ड़ती है। तृषासे जब हमारा कण्ठ सूख जाय और क्षुधासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकल हो जायँ, तभी भूख और प्यास तथा अन्न और जलकी हमें वास्तवमें पहचान होती है। इसी तरह सहस्रों लट्टुओंसे जगमगाते बिजलीके प्रकाशकी पहचान हम कहाँ कर पाते हैं, यह तो हमें तभी होती है, जब हम किसी निर्जन बीहड़ वनमें रात्रिके अँधेरेमें भटक जायँ और सौभाग्यसे यदि कहीं कोई जुगनू चमक जाय अथवा सौदामिनी दमक जाय तो हमें अँधियारे और उजियालेका भेद तत्क्षण मालूम हो जाता है। यही नहीं, उसी समय अँधियारेके आधिपत्यसे मुक्ति दिलानेवाले प्रकाशकी एक किरणके प्रति हम तत्क्षण कृतज्ञभावसे नतमस्तक हो जाते हैं। इसी तरह नौ मासपर्यन्त अपने उदरमें एक मांसपिण्डको धारण कर कामनाओंके सुखकी प्रतीक्षामें कष्टकी मंजिलपर चल घोर प्रसवपीड़ाके बाद ही नारीको नवल शिशुके दर्शन होते हैं और ममतामयी माता या जननीका सौभाग्य-पद मिल पाता है। अतएव कष्टोंकी इस गाथामें सदा ही छोटे-बड़े सुखोंकी सृष्टि हमें दिखायी दी है और इसीलिये हमें किसी बड़े सुखकी प्राप्तिके लिये सीधे-सादे मार्गसे न चलकर ऊँचे-नीचे आड़े-टेढ़े रास्ते जाना ही श्रेयस्कर होता है। दुष्कर और दुर्गम मार्गसे चलकर सुखप्राप्तिकी आकांक्षा और संतोषका अनुभव ही हमारी सभ्यताका, हमारी संस्कृतिका प्रधान लक्षण है। यही बात हमारे उत्तराखण्डके इन देवस्थानोंके सम्बन्धमें है। हम जानते हैं आधुनिक युग विज्ञानका युग है। यदि इसे हम वैज्ञानिक युग न भी कहें तो विकासका युग तो कहना ही पड़ेगा। आज हम वहाँ खड़े नहीं रह सकते, जहाँ आजसे सौ-दो सौ वर्ष पूर्व खड़े थे। यदि हम ऐसा करें भी तो हमें इससे कुछ हासिल नहीं होना है, उल्टे हमारे साथी हमसे इतने आगे दूर निकल जायँगे कि हम उन्हें देख भी न सकेंगे। ऐसी स्थितिमें हमें जमानेके साथ तो चलना ही पड़ेगा, किंतु जमानेकी इस हवामें बहनेकी अपेक्षा यदि हम अपनी अलग रफ्तार बना सकें तो हमारा पूर्व अस्तित्व भी बना रहेगा और वर्तमानके भी हम पीछे न रहेंगे।

हमारी राय है कि उत्तराखण्डके धामोंको चतुर्दिक् मोटरमार्गोंसे घेरनेकी अपेक्षा कुछ सिद्धान्त बनाये जायँ और इन सिद्धान्तोंके अनुसार यातायातकी सुविधाएँ बढ़ायी जायँ। इन सिद्धान्तोंमें पहला सिद्धान्त तो यह तय किया जाय कि उत्तराखण्डके चारों धामोंके कम-से-कम पचीस-पचीस मील इस रफ्तक मोटर-मार्ग लाकर छोड़ दिये जायँ शेष पचीस मीलकी दूरी यात्रियोंके पैदल मार्गकी रहे। पैदलके इस मार्गको शासन पक्का बनवा दे, किंतु इसकी चौड़ाई इतनी ही रहे, जिसमें कि इसपर केवल पैदल आदमी, साइकिलें, खच्चर आदि ही जा सकें। जीप, मोटर कार आदि नहीं। अन्यथा अधिकारियों और धनिक वर्गके लोगोंकी यात्राएँ जीपों और मोटरकारोंसे ही होंगी। नतीजा यह निकलेगा कि ये तीर्थस्थान न रहकर सैर-सपाटेके स्थान बन जायँगे, जिससे इन तीर्थस्थानोंमें जीपों और मोटरकारोंका जमाव जन-साधारणकी अपेक्षा अधिक होने लगेगा और शासनके लिये यह एक समस्या बन जायगी। जैसा कि हमने बदरीनाथ अध्यायमें संक्षेपसे इन देवस्थानोंमें प्रत्यक्ष या परोक्षमें बढ़ रहे अनाचारोंकी शिकायत की है, उसका मूल कारण बदरीनाथ पुरीको आधुनिकता प्रदान करना है। यदि जैसे साधन और सुविधाएँ बदरीनाथ पुरीके लिये जुटायी गयी हैं और दूसरी जगह भी जुटायी गयी हैं, तो इसमें संदेह नहीं कि वही बातें जो बदरीनाथ पुरीके सम्बन्धमें सुननेको मिलती हैं, अन्य धामोंमें भी हो जायँगी। अतएव इस दृष्टिसे इन देवस्थानोंको सर्वथा पवित्र रखनेके लिये सरकारको कुछ कड़े कदम उठाने चाहिये। मदिरा-सेवन, व्यभिचार और चोर-बाजारी आदि अनैतिक बातोंके लिये तो सरकारको तुरंत सख्त कानून बनाने चाहिये। हमारा विश्वास है कि उत्तर-प्रदेशका शासन और उसके सभी विधायक हमारे इस सुझावपर गौर करेंगे।

दूसरी प्रधान बात है, इस क्षेत्रकी आर्थिक उन्नतिकी। जैसा कि हमने अभी कहा, हम इस यात्रापर प्रधानतया धार्मिक भावनासे ही गये थे; तथापि जबतक आधिभौतिक शरीर है जिसके लिये कहा गया है **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** तबतक मानव किस प्रकार रहता है और क्या-क्या सहता है, इससे भी आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं। अतः आध्यात्मिक प्रेरणासे इन सात सप्ताहोंका जीवन ओत-प्रोत रहनेपर भी हम यहाँकी गरीबीको तथा अपनी सरकारकी अकर्मण्यताको देखकर दुखी हुए बिना न रह सके। यों तो सारा भारत देश ही गरीब है, न लोगोंको भर पेट भोजन मिलता है, न पहननेको पूरे वस्त्र और न रहनेको यथेष्ट आच्छादन। जहाँ प्रकृतिने अटूट धन बरसाया है, वहाँ मानवके कुछ न करनेके कारण गरीबी और उत्कट स्थितिमें है। यहाँ इतना पानी है, जितना अन्यत्र कहीं नहीं, उसका सिंचाईमें कम-से-कम उपयोग होता है। इस सिंचाईसे यहाँ केवल अधिक अन्न ही नहीं उपजाया जा सकता, परंतु फर्लांगों लम्बे-चौड़े फलोंके उद्यान लगाये जा सकते हैं। खनिज पदार्थोंकी खोजकर उन खनिज पदार्थोंको पर्वतराजके पेटसे निकालकर जन-उपयोगमें लाया जा सकता है। जंगली वृक्षों और बाँससे कागजके कारखाने चलाये जा सकते हैं। भेड़ोंकी नस्लोंका सुधार कर उनसे ऊनकी उत्पत्ति बढ़ा ऊनके गृह-उद्योग जारी किये जा सकते हैं। गंगोत्री मार्गके हरसिल नामक गाँवमें हमने ऊनका गृह-उद्योग देखा। यहाँके लोग लोई, कम्बल आदि बनाते हैं। यदि इन्हें शासकीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पर सहयोग और प्रोत्साहन मिले तो ये लोग और अधिक उपयोगी कार्य कर सकते हैं। अन्य स्थानोंपर भी इस उद्योग-को बढ़ाया जा सकता है। काश्मीरमें जिस तरह दस्तकारीका काम अच्छा होता है और विपुल परिमाणमें वहाँके निवासियों-की आजीविकाका साधन काश्मीरके गृह-उद्योग ही हैं, उसी तरह यहाँके निवासियोंको भी इन उद्योगोंकी स्थापना कर स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। जड़ी-बूटियों, वनौषधियोंका जो भंडार यहाँ अज्ञानके आवरणमें विलुप्त पड़ा है, उसकी खोज कर कौन-कौनसी जड़ी-बूटियाँ भूगर्भमें हैं, कन्द, बेलें और लताएँ कौनसे उपयोगमें जा सकती हैं, इसका अनुसंधान और अन्वेषण करा राष्ट्रका स्वास्थ्य-संरक्षण कर उसे स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। यहाँके वृक्षोंसे अनेकोंमें एक गोंद-जैसा लैसदार पदार्थ पाया जाता है, अनेकोंमें तैल-जैसा तरल पदार्थ, इनकी भी खोजकर विविध वस्तुओंके निर्माण और उपयोगमें इन्हें लाया जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि न जाने क्या-क्या यहाँ किया जा सकता है। इस ओर बासुमती चावल बहुतायतसे होता है। आलूकी खेती भी हमने खूब देखी। इस दिशामें भी सिंचाई आदिके साधन बढ़ाकर पैदा-वार बढ़ायी जा सकती है। किंतु, ये कार्य तो दूर रहे, सरकार अभीतक यात्रा-सुविधाएँ भी नहीं जुटा पायी है। (क्रमशः)

# भारतीय साहित्यमें 'आर्य'-सम्बन्धी मान्यता

( लेखक—प्राध्यापक श्रीबद्रीप्रसादजी पंचोली एम्० ए०, साहित्यरत्न )

किसी भी राष्ट्रके लिये उसका इतिहास प्रेरण-स्रोत होता है। इस कथनमें किसी प्रकारकी असंगति नहीं है और साथ ही यह भी सत्य है कि विकृत इतिहास राष्ट्रीय जीवनमें विष घोल दिया करता है। कोई भी आक्रान्ता अपना प्रभाव स्थायी बनाये रखनेके लिये राष्ट्रीय साहित्यमें मिश्रण करना प्रारम्भ करता है और कम-से-कम उन मान्यताओंको समाप्त करनेका तो प्रयत्न अवश्य ही करता है, जिनके आधारपर उस राष्ट्रके लोग गौरवके पदपर आरूढ़ रहते हैं, एक सूत्रमें निबद्ध होते हैं या हो सकते हैं। बौद्धिक युगमें तो इस साधनका और भी अधिक सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है।

विगत शताब्दीमें भारतपर योरोपीय जातियोंका आक्रमण हुआ और उन्होंने उक्त साधनको प्रमुख रूपसे अपनाया। सबसे पहले उन्होंने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि भारतमें ऐतिहासिक-ज्ञानका अभाव था। तदुपरान्त अनुमानोंपर आधारित मनमाना इतिहास प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया। वर्तमान शिक्षाप्रणालीके सभी विशेषज्ञ जानते हैं कि विद्यालयोंमें पढ़ाये जानेवाले इतिहासका भावी जीवनमें कोई उपयोग नहीं है, न हो सकता है। इसलिये वर्तमान ढंगकी इतिहासकी शिक्षा केवल विद्यार्थियोंके मनको विकृत करनेके साधनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कही जा सकती।

१८३५ ई०में लार्ड मैकालेने कहा था कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य ब्रिटिश म्यूजियमके दो ग्रन्थोंके समान भी श्रेष्ठ नहीं है। इसीसे उसने ऐसी योजना बनायी थी कि 'भारतमें ऐसी श्रेणी उत्पन्न की जाय, जो रूप और रंगमें भारतीय हो पर रुचि, सम्मति, विचार और बुद्धिमें पूर्णतः अंग्रेज हो।' ( G. H. I. vol. VI P. III )

अल्बर्ट वेबर और ह्विटलिंगने बताया कि महाभारत और गीतापर ईसाई धर्मका प्रभाव है। ग्रिसवोल्डने लिखा कि वैदिक त्रिदेव-विचार ईसाई धर्मग्रन्थोंकी त्रयी ( Trinity ) के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार भारतीयतापर होते हुए आक्रमणको देखकर किसी-किसी उदार योरोपीयका मन तिल-मिलाया भी। गोल्डस्टूकरने लिखा—'राथ, वेबर, ह्विटलिंग, फूहन आदि विद्वान् किसी रहस्यपूर्ण कारणसे इस बातके लिये दृढ़संकल्प हैं कि जैसे भी सम्भव हो भारतका गौरव नष्ट किया जाय।'

मैक्समूलर, ह्विटने, ब्लूमफील्ड, ओल्डेन बर्ग आदि सभी प्राच्यविद्याविशारदोंने जी खोलकर भारतीय धर्म और दार्शनिक मान्यताओंकी निन्दा की। हाँ, यह ठीक है कि बीच-बीचमें वे कुछ प्रशंसात्मक वाक्य भी अपनी निष्पक्षता सिद्ध करनेके लिये कह गये हैं। विलियम आर्चरने सम्पूर्ण भारतीय साहित्यको 'बर्बरताका स्तूप' कहकर इस प्रवृत्तिको चरम सीमा-तक पहुँचा दिया। उनके पिछलग्गू भारतीयोंने उन्हींकी हाँ-में-हाँ मिलाकर उनकी मान्यताओंको पुष्ट करनेके लिये भारतीय साहित्यसे प्रमाण खोजना प्रारम्भ किया। भारतके कुछ लोगोंने इस आक्रमणका सामना करनेके लिये अपने साहित्यका युगा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुरूप बौद्धिक विवेचन करके उसकी श्रेष्ठता स्थापित की। आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द ऐसे विचारकोंमें सबसे आगे थे, जिन्होंने अपनेको आर्य अथवा श्रेष्ठ कहा, भारतीय साहित्यको आर्यसाहित्य कहा और भारतीय भाषाओंको आर्य भाषाओंके नामसे सम्बोधित करके आर्य ( श्रेष्ठ ) राष्ट्रका विचार हमारे सामने रक्खा। स्वामीजीकी शैली तार्किक होनेसे न केवल आक्रमणका सामना करनेमें ही समक्ष थी वरं प्रत्याक्रमण करनेमें भी अमोघ शस्त्रके समान थी। पाश्चात्त्योंने कल्पना की तथा कल्पित युक्तियाँ गढ़-गढ़कर यह प्रचार किया कि योरोपीय आदिम जाति ही आर्य थी, जो कभी भारतमें जाकर बस गयी। निश्चय ही इसके प्रचारका कारण राजनीतिक रहा है। भारतीयोंमें राष्ट्रप्रेमके प्रति उदासीनता उत्पन्न करना भी इसका एक प्रधान उद्देश्य था।

भारतीय साहित्यमें 'आर्य' शब्दका प्रयोग कहाँ किस अर्थमें हुआ है यह दिखाना ही प्रस्तुत लेखका विषय है। हाँ, इतना सत्य है कि कहीं भी 'आर्य' शब्द किसी जातिके रूपमें व्यवहृत नहीं हुआ है और न कहीं बाहरसे ऐसी जातिके भारतमें आगमनकी बात ही भारतीय साहित्यमें कहीं मिलती है। आर्य-क्रमणकी मान्यता रखनेवाले सभी विद्वानोंने भी इस बातको स्वीकार किया है। आर्योंका निवासस्थान पृथक् रूपसे विवेचनका विषय है। यहाँ केवल आर्य शब्दपर ही विचार किया जा रहा है।

वैदिक संहिताओंमें लगभग ६० बार आर्य शब्द आया है। ऋग्वेदमें ३३ बार इस शब्दका व्यवहार हुआ है—१० बार बहुवचनमें और २३ बार एकवचनमें। बहुवचनमें भी यह ७ बार कर्ताकारकमें पुँल्लिङ्गके रूपमें, १ बार कर्म कारक ( पु० ) में और २ बार कर्ताकारकमें नपुंसकलिङ्गमें व्यवहृत हुआ है। एकवचनमें यह शब्द ४ बार कर्ताकारकमें, ३ बार सम्बन्धकारकमें, ९ बार कर्मकारकमें, १ बार अपादानकारकमें, ७ बार सम्प्रदानकारकमें और १ बार करण कारकमें प्रयुक्त हुआ है। कहीं भी यह शब्द किसी आक्रान्ता जातिकी सूचना नहीं देता।

ऋग्वेदके ( ५ । ३४ । ६ ) इस मन्त्रमें आर्य शब्द इन्द्रका विशेषण है। कहा गया है—'आर्य अर्थात् स्वामी इन्द्र विश्वका दमन करनेवाला सबको डरानेवाला है, वह श्रमिकोंको नियन्त्रित करता है ( **इन्द्रो विश्वस्य दमिता बिभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः** )। यहाँ इन्द्र शब्द राजाका पर्याय मात्र है और आर्य उसका विशेषण। ... आर्य शब्दका अर्थ स्वामी और वैश्य किया है ( ... **स्वामिवैश्ययोः, अर्य एव आर्यः** )। एक अन्य ... ( १० । ३८ । ३ ) में कहा गया है—जो दानशील ... इन्द्र बहुतोंके द्वारा स्तुत होकर हमें कर्म अथवा ... संग्रामके लिये प्रेरणा देता है ( **यो नो दास आर्यो वा पुरु... इन्द्र युधये चिकेतति** )। उल्लेखनीय बात य... यहाँ आर्य और दास दोनों शब्द एक ही अर्थमें ... और इन्द्रके विशेषण हैं। वह स्वामी इन्द्र श्रमिकों... आदर्श बनता है ( **विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः**—ऋ० ... १३८ । ३ )। उसके समस्त श्रेष्ठपुरुष ( आर्य ) ... ( दास ) समान हैं। ( **यस्यायं विश्व आर्यो दासः**—ऋ० ... ५१ । ९ )। उक्त चारों स्थानोंपर आर्य एवं दास ... प्रयोग एक साथ हुआ है। तीन स्थानोंपर आर्य ... स्वामी या श्रेष्ठके अर्थमें इन्द्रका विशेषण है और एक ... पर श्रेष्ठ मनुष्योंके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी ... दास शब्द दो स्थानोंपर श्रमिकवर्गके लिये, एक ... भृत्य या भक्तके लिये तथा एक स्थानपर दानशील ... इन्द्रका विशेषण बनकर प्रयुक्त हुआ है।

ऋग्वेदमें दस्यु या दुष्ट आर्योंसे भिन्न माने गये ... कहा गया है 'हे विद्वान्, वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ... दुष्टोंके लिये शस्त्र-प्रयोग करके शक्तिशाली या ज्ञान... ( **द्युम्नं** ) आर्यको वर्धित करते हो अथवा करो।' ( ... १ । १०३ । ३ )। वह इन्द्र यज्ञ करते हुए अथवा ... करते हुए आर्यकी जीवनसंग्राममें रक्षा करता है ( ... **यजमानं आर्यं प्रावद्**—ऋ० १ । १३० । ८ )। एक ... पर कहा गया—'इन्द्र मनुष्यको उज्ज्वल ज्योति ... करे ( **विद्वत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम्**—ऋ० १० । ४३ । ... यहाँ आर्य शब्द ज्योतिका विशेषण और श्रेष्ठता या उज्ज्व... का प्रतिपादक है। विद्याद्वारा आर्यत्वका वरण करने... की इन्द्र सभी नाशकारी शक्तियोंसे रक्षा करते हैं ( ... **दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्** )। इन्द्र आर्योंको हिंसकोंसे ... अभिवर्द्धित करता है, ( १० । ४९ । ३ ) उनकी ... अधिकता बनाये रखता है। वह कहता है कि मैं दान... आर्यों ( **दासमार्यम्** ) को विशेषतः निर्धारित करता हूँ ... चुनता हूँ ( **विचिन्वन्**—ऋ० १० । ८६ । १९ )। ... हिंसक मनोवृत्तियों ( **तृत्सुभ्यः** ) पर आर्योंकी प्रका... विचारधाराओं या वाणियों ( **गव्या** ) को विजय लाभ क...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है (ऋ० ७ । १८ । ७ ) । वह दास अथवा आर्य दोनोंका साथ-ही-साथ वध करनेमें समर्थ है ( १० । १०२ । ३ ) । शत्रुता करनेवाले दास, वृत्र अथवा आर्योंको शूर सेनापति का राजा ( इन्द्र ) मार देता है ( ६ । ३३ । ३ तथा ६ । ...१० । ६ ) । उनको मारकर सुन्दर दानशील व्यक्तियोंकी इन्द्र और वृत्र दोनों ही रक्षा करते हैं ( ६ । २२ । १० तथा ...८३ । १ ) । इन्द्र आर्योंको पापोंसे निवारित करता है ( ...८ । २४ । २७ ) ।

उक्त सभी स्थानोंपर इन्द्रके साथ आर्य एवं दास शब्द आये हैं। कहीं दास शब्द आर्यका विशेषण है और कहीं ...ध्यासे श्रमिकोंकी सूचना देता है और कहीं केवल दान करनेवाले व्यक्तिका द्योतन करता है। दस्यु, हिंसक, डाकू आदि लोगोंके लिये प्रयुक्त हुआ है। कहीं भी आर्य और दास या दस्यु अलग-अलग जातियोंके रूपमें वर्णित नहीं हैं। इन्द्र राजा, सेनापति अथवा तन्नामादेवके लिये आया है। एक स्थानपर कहा गया है कि 'उन लोगोंको विशेष तौरपर ...हानो जो आर्यरूप धारण किये हुए दस्यु हैं ( वि जानी- ...र्यान् ये च दस्यवः—ऋ० १ । ५१ । ८ ) ।

इन्द्रके अतिरिक्त अन्य देवताओंके सूक्तोंमें भी आर्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। एक मन्त्र ( ऋ० ७ । ३३ । ७ ), जिसके ऋषि और देवता वसिष्ठ-पुत्रगण हैं, में कहा गया है कि अग्नि, वायु और सूर्य संसारको जल प्रदान करते हैं। ये तीनों अग्रणी ज्योति स्वरूप श्रेष्ठ प्रजोत्पादक हैं ( **त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतः तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः** ) यहाँ ऋग्वेदमें केवल एक बार स्त्रीलिङ्गमें प्रजाका विशेषण होकर यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। एकमन्त्रमें अग्निदेवसे प्रार्थना की गयी है कि वे साम्राज्य और पर्वतोंमें उत्पन्न ( खनिज ) सम्पत्तियोंको दानशील ( प्रसिद्ध ) या छिपे हुए अज्ञात ( **वृत्राणि** ) श्रेष्ठ विद्वानोंको प्राप्त करावे ( १० । ६९ । ६ ) । यहाँ वृत्राणि 'आर्याः' का विशेषण विशेषतः द्रष्टव्य है।

पवमान सोमके विशेषणके रूपमें भी 'आर्य' शब्दका प्रयोग मिलता है ( **इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः**—ऋ० ९ । ६३ । ५ ) जिसका तात्पर्य यहाँ पवित्र, श्रेष्ठ या सबका मङ्गल करनेवाला है। अन्यत्र कहा गया है कि ये सोम श्रेष्ठ पुरुषों ( **आर्या** ) के घरोंमें जलधारा ( **ऋतस्य धारया** ) तथा प्रकाशयुक्त विचारोंकी शक्तिके रूपमें ( **वाजं गोमन्तमक्षरन्** ) बरसते हैं ( ऋ० ९ । ६३ । १४ ) । सायणने यहाँ आर्याःका अर्थ 'यजमानाः' किया है। विश्वेदेवोंके सूक्तमें आया कि उन्होंने पृथ्वीपर शोभनदान प्रदान करके उत्तम संकल्पोंकी सृष्टि की है ( **सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि**—ऋ० १० । ६५ । ११ ) यहाँ 'आर्याः' शब्द 'व्रताः'का विशेषण है ( आर्याव्रता-आर्यव्रत=श्रेष्ठ संकल्प, ऐसे संकल्पोंवाले जहाँ रहते हों वह आर्यावर्त । )

मन्यु सूक्तमें आया है 'हम मन्यु ( साहस, यज्ञ अथवा कर्म ) से युक्त होकर दानशील श्रेष्ठपुरुषों ( **दासमार्यम्** ) को संतुष्ट करें ( **साह्याम्**—ऋ० १० । ८३ । १ अथर्ववेद ४ । ३२ । १ ) विष्णुसूक्त ( १ । १५६ । ५ ) में कहा गया है कि तीन स्थानों ( पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक ) में स्थित विष्णु आर्यको संतुष्ट करता है। यहाँ आर्य शब्दके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थकी ओर संकेत है। ऊपर केवल आधुनिक विद्वानों-द्वारा प्रयुक्त भौतिक अर्थकी दृष्टिसे ही विचार किया गया है। अन्य अर्थोंमें तो किसी भी तरह आर्य शब्द किसी जातिकी सूचना देनेवाला नहीं हो सकता।

सामवेदमें तीन बार और यजुर्वेदमें चौदह बार आर्य शब्द आया है, परंतु लगभग वे सभी मन्त्र ऋग्वेदके ही हैं। इसलिये उनपर पुनः विचार करना व्यर्थ होगा। अथर्ववेदमें बारह बार आर्य शब्द व्यवहृत हुआ है।—तीन स्थानोंपर एकवचन कर्ताकारकमें, पाँच स्थानोंपर एकवचन कर्मकारकमें, एक स्थानपर सम्प्रदान कारकमें और एक स्थानपर सम्बोधनकारकमें तथा १-१बार बहुवचनमें नपुंसकलिङ्ग एवं पुँल्लिङ्गमें कर्ताकारकमें।

एक मन्त्रमें आर्य उज्ज्वल या श्रेष्ठ अर्थमें ज्योतिका विशेषण है ( **विदुत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम्**—अथर्ववेद २० । १७ । ४ ) । सायणने इसका अर्थ किया है आर्यम् अर्य वा अरणीयम् अभिगमनीयम् सेवनीयम्—सेवन करने योग्य। स्वामी भी सेवा करने योग्य होता है। एक अन्य मन्त्रमें इन्द्र कहता है कि 'मैं कर्म करनेवाले ( **दासमार्यम्** ) श्रेष्ठ पुरुषको चुनकर उसकी सहायता करता हूँ' ( २० । १२६ । १९ ) । यहाँ 'इन्द्रः इच्चरतः सखा' अर्थात् 'इन्द्र कर्मठ व्यक्तियोंका मित्र है' इस कथनकी पुष्टि होती है। यह मन्त्र ऋग्वेदमें भी आया है।

अथर्ववेदका एक मन्त्र आर्य शब्दपर और अधिक प्रकाश डालता है । वह मन्त्र है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**यदी विशो वृणते दस्म आर्या अग्निं होतारमध धीरजायत।**

अर्थ है जब प्रजाएँ कर्ममात्रके होता ( प्रेरक ) अग्निके गुणोंका वरण करती हैं तब उनमें शक्तिसम्पन्न अथवा सामर्थ्यशील श्रेष्ठ बुद्धि या प्रज्ञाका जन्म होता है।

( अथर्व० १८ । १ । २१ )

इस मन्त्रमें 'आर्या धी' ( श्रेष्ठ बुद्धि ) शब्द द्रष्टव्य है। उदात्त गुणों और प्रकृष्ट बुद्धिके द्वारा ही मनुष्य आर्यत्वका वरण करता है और ऐसे आर्यकी ( **आर्यं वर्णं** ) इन्द्र दस्युओंको मारकर रक्षा करता है ( अथर्व० २० । ११ । ९—**हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्** )। यहाँ, सायणने अर्थ किया है—**आर्याः सर्वैरभिगन्तव्या**—श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न प्रजाएँ। श्रेष्ठ प्रजाका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि यह कोई पृथक् जाति थी।

एक स्थानपर आया है कि 'हे स्वामी! ( आर्य ) तुम्हारी सविताके समान प्रतिष्ठा हो और समस्त प्रजाएँ तुम्हारे दानको स्वीकार करें। ( अथर्व० १९ । ४५ । ४ )। एक श्रेष्ठ सदाचारी व्यक्ति कहता है कि मेरे संकल्पको न कोई दास और न कोई आर्य ही भंग कर सकता है। यहाँ आर्य और दास शब्दोंका अलग-अलग प्रयोग है, परंतु दोनोंका व्रत ( संकल्प ) से सम्बन्ध है। वज्री इन्द्र दास, आर्य एवं वृत्र मनुष्योंको ( कर्मशील, श्रेष्ठ एवं अप्रसिद्ध ) सोमके आनन्दसे युक्त करता है ( २० । ३६ । १० )। सायणने अर्थ किया है—**आर्याणि अरणीयानि श्रेष्ठानि**। अथर्ववेदमें चार वर्णोंमें प्रिय बननेकी कामना की गयी है जहाँ 'आर्य' शब्दका अर्थ वैश्य वर्ण किया गया है। संधिच्छेद करते समय वहाँ आर्यके स्थानपर 'अर्य' भी माना जा सकता है। ( अथर्ववेद-१९ । ३२ । ८; १९ । ६२ । १ ) और दो मन्त्र ऐसे हैं जिनमें 'आर्य' शब्द 'द्विज' ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ) के अर्थमें प्रयुक्त हुआ है ( **शूद्र उतार्यः** ४ । २० । ४; **शूद्रमुतार्यम्** ४ । २० । ८ )। उक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओंमें कहीं भी किसी आक्रान्ता आर्यजाति और किसी आदिवासी दस्यु या दास जातिका वर्णन नहीं है।

ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् और पुराण वैदिक ज्ञानकी ही व्याख्या करते हैं। उनमें भी एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो 'आर्य' नामक किसी जातिविशेषकी सूचना देता हो।

मनुस्मृतिमें पूर्व और पश्चिम समुद्रों तथा हिमालय एवं पारियात्र पर्वतोंके बीचके पृथ्वीखण्डको आर्यावर्त और इसके सभी निवासियोंको आर्य कहा गया है। ( **आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः।** ) निरुक्तकार यास्कने श्रेष्ठ आस्तिक लोगोंको ही आर्य कहा है ( **आर्या ईश्वरपुत्राः** )। पाणिनिने स्वामी वैश्य अर्थ आर्य शब्दका लिखा है और यह भी बताया है कि आर्य शब्द ब्राह्मण वा कुमारके साथ जुड़ता है ( **आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः**—६ । २ । ५८ )। आर्यत्व या आर्यभाव के वरण करनेका उल्लेख हो चुका है। ऐसे लोगोंको पाणिनि ने 'आर्यकृत' ( ४ । १ । ३० ) कहा है। 'जातककालीन भारतीय संस्कृति' नामक ग्रन्थमें श्रीमोहनलाल महतो ने लिखा है कि 'अनार्य' वर्ग या जातिका अस्तित्व जातककालमें नहीं था। ( पृ० २६७ ) आर्य और अनार्य शब्द विशेषण मात्र थे ( वही )।

चाणक्यके समयमें मनुस्मृतिके इस कथनको अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता था कि कोई आर्य सशूद्र दास (पराधीन) नहीं बनाया जा सकता। उस समय स्वतन्त्र नागरिक ही आर्य कहलाते थे। वे कर देकर राज्य-कार्योंमें सम्मति आदि देनेके अधिकारी बनते थे। कुछ आर्थिक दशासे विवश श्रमिक दास कहलाते थे। वे राज्यकी ओर करसे मुक्त थे ( अर्थ ३। ... वा उसकी मध्यकालीन टीकाएँ )। उनसे भी करदाता स्वतन्त्र नागरिक बननेकी अपेक्षा की जाती थी। यदि कोई समर्थ दास आर्य न बने तो उसे १२ पण दण्ड देनेकी व्यवस्था की गयी थी ( **दासमनुरूपेण निष्क्रियेण आर्यमकुर्वतां द्वादशपणदण्डः** )।

पतञ्जलिने कालक वनसे पश्चिममें आदर्श पर्वततक और हिमालय और विन्ध्याचलसे घिरी हुई पृथ्वीको आर्यावर्त कहा है। आदर्श पर्वत एशिया माइनरका अदरस या अरारात ( सिनाई ) पर्वत है। ओर कालक वन हिन्देशिया या हिन्द चीनके जंगल। मनुस्मृतिमें वर्णित पूर्व एवं पश्चिम समुद्र क्रमशः प्रशान्तसागर एवं भूमध्यसागर होंगे। इस विस्तृत भूखण्डमें बसे हुए श्रेष्ठ पुरुष ही आर्य कहे गये। धीरे-धीरे आर्यावर्तकी सीमाएँ छोटी होती गयीं। वशिष्ठस्मृति तक आते-आते तो कुछ लोग गङ्गा और यमुनाके बीचके भागको ही आर्यावर्त कहने लगे। ( वसिष्ठस्मृति १ । १ । १० )।

आर्यशब्दकी परिभाषा की गयी है—

**निवारणार्थमर्त्तीनामर्यते सततं तु यः।**
**आर्तत्राणे समर्थश्च स आर्य इति कथ्यते॥**

विघ्नबाधाओंको निवारण करनेके लिये जो निरन्तर गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शील या प्रयत्नशील रहता है तथा जो दुःखोंसे त्राण करनेमें समर्थ है वह आर्य कहलाता है।'

यह शब्द ऋ-गतौ धातुसे व्युत्पन्न होता है और इसका शाब्दिक अर्थ 'गमन करने योग्य' होता है। श्रेष्ठ गुणोंकी ओर गमन करनेके कारण अथवा आदर्श गुणसम्पन्न होनेके कारण आर्यको शालीन भी कहा जा सकता है। जिसका अर्थ है—**शालासु वसन्ति, शालिभिर्जीवन्ति, सदाचारैः शालन्ते इति।** अपनी इस परिभाषाके कारण ही आर्य कोई यूरोप या मध्य-एशियाकी घुमक्कड़ जाति थी, इस धारणाका खण्डन हो जाता है।

भारतमें वैदिक विचारधाराके अतिरिक्त जैन और बौद्ध विचारधाराएँ भी पनपीं। जैन और बौद्ध दोनों ही सम्प्रदायोंके अनुयायियोंने 'आर्य' शब्दको श्रेष्ठतावाचक मानकर ही ग्रहण किया है। 'आर्य'का पर्याय अर्य शब्द वैश्यवर्णके लिये व्यवहारमें वैदिक कालसे ही आता रहा है। यद्यपि जैनधर्ममें दीक्षित होनेके लिये कोई जातिबन्धन नहीं है, परंतु फिर भी अधिकतर जैन वैश्य ही हैं। पाण्डवपुराणमें शुभचन्द्राचार्यने भारत एवं भारतवासियोंके विषयमें लिखा है—

**धैर्यवर्यार्यखण्डेऽस्मिन्नार्यखण्डे सुमण्डिते।**
**अखण्डाखण्डलाकारैर्जनैर्जीवनदायिभिः ॥**

( १ । ७३ )

अर्थात् इस धीर-वीर श्रेष्ठ लोगोंके सुमण्डित आर्यखण्डने इन्द्रके समान जीवनदायी लोगोंकी एक अखण्ड जाति निवास करती है।

इसी तरह त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरितमें कहा गया है कि आदि-ब्रह्मा भगवान् ऋषभदेवने वेदोंको सर्वप्रथम लिपिबद्ध कराया, बादमें कुछ अनार्य और धूर्तोंने उनमें सम्मिश्रण कर दिया। उक्त दोनों उद्धरणोंसे स्पष्ट होता है कि जैन धर्मावलम्बी भी प्राचीनकालसे ही भारतमें एक ही अखण्ड जातिका निवास मानते थे। इसका नाम आर्य-खण्ड था और उस जातिके लोग श्रेष्ठताके कारण ( धैर्य वा वर्यके कारण ) आर्य कहलाते थे। जैन साध्वियोंके संघको भी आर्यिका-गण कहते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ स्वार्थीलोग यह सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहे हैं कि आर्य तो बाहरसे आये ही, इस बातको पाश्चात्योंने सिद्ध कर दिया और जैन धर्मावलम्बी यहाँ प्राग्वैदिककालसे ही निवास करते थे, वे अनार्य थे। वैदिककालसे ही वैश्योंको 'अर्य' या आर्य कहा जाता था। वे किसी भी तरहसे परिवर्तित आर्य नहीं हैं। भविष्यमें भारतकी राष्ट्रीय अखण्डतापर यह प्रवृत्ति विषैला प्रभाव डाल सकती है। इसलिये विद्वानोंको इसका विरोध करना चाहिये और केवल उक्त कल्पनापर विश्वास करनेवाले एवं अनुसंधान करनेवाले लोगोंको उक्त दो उद्धरण या इसी तरहके अनेक उद्धरण, जो जैन-साहित्यमें भरे पड़े हैं, उनका अध्ययन पहले करना चाहिये। वैदिक-साहित्यपर पाश्चात्योंका प्रहार अधिक हुआ है। उसका मनमाना अर्थ भी किया गया है। जैन-साहित्य इस प्रहारसे बचा है। उससे ऐसे उद्धरण लेकर यदि अनुसंधान किया जाय तो यह राष्ट्रीय जीवनको विकृतिसे बचानेकी ओर सबसे बड़ा प्रयत्न होगा।

बौद्ध-साहित्यके आधारभूत त्रिपिटकोंमें 'आर्य' शब्दका प्रभूत प्रयोग मिलता है। विनयपिटकमें बौद्धज्ञानको 'आर्य ज्ञान' ( १ । ४ ) एवं मध्यममार्गको 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहा गया है। बौद्धोंमें भी भिक्षुणियोंका 'आर्या-संघ' होता है ( विनयपिटक २ । १ )। विनयपिटकके महावग्गस्कन्धकमें कहा गया है कि दो अनार्यसेवित अतियोंको त्यागकर बुद्धने आर्य-सत्य-चतुष्टयको जाना और आर्य अष्टांगिक मार्गका उपदेश दिया ( १ । ५ )। बुद्धके शिष्योंको आर्य शिष्य कहा गया है ( १ । १ । १७ ) जो स्रोत, आपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् होता है। उपोसथस्कन्धकमें आर्य बौद्धभिक्षुको कहा गया है। चर्मस्कन्धक ( ५ । २ । ७ ) में गौतम कहते हैं कि 'आर्य पापमें नहीं रमता।' यह भी कहा गया है कि आर्य-आयतन या वणिक पथमें जहाँ तीर्थिक ( जैन-साधु ) रहते हैं कोई अन्तराय होगा ( ६ । ४ । ७ )। यहाँ जैन लोगोंको वावैश्योंका आर्य कहा गया है।

धम्मपद बौद्ध साहित्यकी गीता है। उसमें एक स्थानपर आता है कि विद्वान् लोग आर्यों अथवा आप्तपुरुषोंके ज्ञानमें रत रहते हैं ( **आर्याणां गोचरे रताः** २ । २ )। अन्यत्र भी

**आर्यं प्रवेदिते धर्मे रमते किल पंडितः।**

धम्मपद ( ६ । ४ ) बौद्ध धर्मको आर्यधर्मसे अभिन्न माना है। एक अन्य स्थानपर धर्मजीवी आर्योंके धर्म और बौद्धशासनको समान बताया है।

**अर्हता शासनं यस्तु आर्याणां धर्मजीविनाम्।**

( धम्मपद १२ । ८ )

आर्यव्रतका ऊपर उल्लेख हुआ है। धम्मपदमें भी 'व्रतमन्तमार्यम्' ( [illegible] । १२ ) का उल्लेख है। बुद्ध कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**स त्वं कुरु द्वीपमात्मनः क्षिप्रं व्यायामे पण्डितो भव ।**
**निधूतमलो हि अनंजनो दिव्यमार्यभूमिमेष्यसि ॥**

( धम्मपद १८ । २ )

यहाँ दिव्य आर्यभूमिसे स्वर्गकी ओर संकेत किया गया है । आर्यभूमिके रूपमें बौद्ध भी भारतको मानते थे । बुद्ध कहते हैं कि केवल प्राणियोंको न मारनेवाला आर्य नहीं है वरं सभी भूतोंके प्रति अहिंसाका भाव रखनेवाला आर्य कहा जाता है । ( **अहिंसा सर्वभूतानामार्य इति उच्यते**—धम्मपद—१९ । १५ ) । उन्होंने यह भी कहा है कि वाणीकी रक्षा करो, मनको संयत करो, शरीरसे अकुशल मत होओ । इन ( अष्टांगिक मार्ग—बौद्ध धर्म ) से कर्मपथका शोधन करके फिर ऋषिप्रवेदित वैदिक धर्मकी आराधना करो ( **आराधयेन्मार्गमृषिप्रवेदितम्**—२० । ९ ) ।

यूनानी राजदूत मेगास्थनीजने लिखा था कि समस्त भारत एक विराट् देश है । इसमें कई जातियोंके लोग बसते हैं । इनमेंसे एक भी आदमी मूलतः विदेशी-वंशोत्पन्न नहीं हैं । स्पष्ट जान पड़ता है कि सभी भारतवासी आदिम अधिवासियोंके वंशधर हैं । इसके अतिरिक्त भारतमें कभी विदेशियोंका उपनिवेश स्थापित नहीं हुआ । ( Mac. Crindle Ancient India, Megasthnese P. 34. )

यदि बाहरसे सचमुच कोई जाति आकर बसती और भारतीय उसका नामोल्लेख करनेमें अपनी हतक समझते अथवा उनकी स्मरणशक्ति कमजोर भी होती तो भी एक विदेशी तो अवश्य ही निष्पक्षभावसे उसका उल्लेख कर सकता था ।

पुराणोंमें विभिन्न जातियोंका उल्लेख है परंतु आर्य नामकी किसी जातिका किसी भी पुराणमें नाम नहीं मिलता । रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृतिके विश्वकोष हैं । उनमें भी ऐसी कोई सूचना नहीं मिलती । वाल्मीकि ऋषिने 'आर्य' शब्दका प्रयोग प्रभूतरूपसे किया है । वे कहते हैं कि सबके प्रति समानताका व्यवहार करनेवाला और सदैव प्रियदर्शन आर्य कहा जाता है ( अवतरणिका ) । एक स्थानपर ( २ । ३ । २५ ) म्लेच्छोंसे भिन्न श्रेष्ठ लोगों ( आर्यों ) का उल्लेख मिलता है ।

रामको वनवासके लिये दशरथ आज्ञा नहीं देते, क्योंकि मनमें चिन्तित हैं कि आर्यलोग मुझे पुत्र बेचनेवाला अनार्य कहेंगे और उसी तरह बदनाम करेंगे जैसे शराबी ब्राह्मणको किया जाता है ( २ । १२ । २८ ) । वे कैकेयीको अनार्या ( २ । १६ । १९ ) और अनार्य बुद्धिवाली ( **अनार्य-मति** २ । १६ । २८; २ । १८ ४४; २ । २७ । १० ) कहते हैं । भरत कई बार माताको आर्या ( २ । २४ । १२; २ । ३३ । १६, २० ) कहते हैं किंतु उसको रामवनगमनके कारण मानकर उन्होंने कहा है—**अनार्यामार्यरूपिणीम्** ( वा० रा० २ । ६० । २६ ) । **आर्यबुद्धि** ( २ । ६८ । २ ) और **आर्यमार्ग** ( २ । ७३ । ६ ) शब्दोंका प्रयोग भी हुआ है । रामका यह गुण है कि अनार्योंसे भी सौहार्द रखते हैं ( ६ । ६ । ११-१५ ) । राम कहते हैं कि—**अनार्यस्त्वार्य-संस्थानः**—यदि आर्य दिखाता हुआ मैं अनार्य बनूँ । ( २ । ६९ । ५ ) । कैकेयीके प्रति कहे गये शब्दों वा रामके उक्त वाक्यसे प्रकट है कि एक व्यक्ति अपने कर्मसे ही आर्य या अनार्य बनता है । वाली वानर था परंतु उसकी पत्नी उसे आर्यपुत्र ( ४ । १५ । ८ ) और आर्य ( ४ । १७ । ३० ) नामसे ही सम्बोधित करती है । मन्दोदरी भी रावणको आर्यपुत्र ( ६ । १६ । ६ ) कहकर ही सम्बोधित करती है । वाल्मीकिने कहा है कि आयु, ज्ञान और ओजमें वृद्ध लोगोंको ही द्विज या आर्य कहा जाता था ( २ । २९ । १३ ) ।

कुन्दमाला नामक नाटक दक्षिणी कवि दिङ्नाग या धीर-नागकी रचना है । कुछ लोग इसे बौद्ध विद्वान् दिङ्नागकी रचना भी मानते हैं । उन्होंने अनेक बार आर्य, आर्या या आर्य-पुत्र शब्दोंका प्रयोग इस नाटकमें किया है । उसमें एक स्थानपर आता है—

**अहं रामस्तवाभूवं त्वं मे कण्वश्च शैशवे ।**
**यूयमार्या वयं चाद्य राजानो वयसा कृताः ॥**

( १ । २ )

कण्वने रामको 'राजा' कहकर आशीर्वाद दिया था और रामने उनको आर्य कहकर प्रणाम किया था । इस बातपर रामने कहा कि शिशु अवस्थामें मैं तुम्हारे लिये राम था और तुम मेरे लिये कण्व । लेकिन आज अवस्थाने तुमको आर्य और मुझे राजा बना दिया है ।

उक्त सारी बातोंके आधारपर हम कह सकते हैं 'आर्य' शब्द कभी भारतीय साहित्यमें जातिवाचक नहीं रहा । यह एक विशेषणमात्र था । श्रेष्ठताका प्रतिपादक । एक ही व्यक्ति अपने कर्मोंसे आर्य वा अनार्य हो सकता था । आयु, ज्ञान या ओजकी गुरुता होना आर्यका लक्षण माना गया था । भारतके सभी भागोंमें और यहाँ प्रचलित होनेवाली सभी विचारधाराओंमें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० देवसहाय त्रिवेदने सत्य ही कहा है कि आर्योंके बाहरसे आनेकी बात किसीके उर्वर मस्तिष्ककी कल्पना मात्र है ( प्राङ्मौर्यविहार )। जब सारा साहित्य इस बातको स्वीकार करता है कि आर्य कोई जाति नहीं थी। यह केवल श्रेष्ठतावाचक विशेषण है और पिता, पति, पत्नी आदिके लिये प्रभूतरूपसे इसका साहित्यमें उल्लेख है, यही नहीं बोलचालमें हम अपने भाईतकको अनाड़ी ( अनार्य ) कह देते हैं तो कोई कारण नहीं ज्ञात होता कि ऐसी कोई जाति स्वीकार करके भारतमें उसके बाहरसे आनेकी कल्पना की जाय। हाँ, ईरान आयरलैंड ( ऐरियन ) यूरोप ( आर्यप ) शब्द वहाँ आर्य होनेकी, या पहुँचनेकी साक्षी देते हैं तो ऐसा कोई कारण भी नहीं है कि श्रेष्ठताको केवल भारतकी ही दायाद्य मानी जाय।

[ लेखकने वैदिक, जैन, बौद्ध आदि धर्मोंके साहित्यसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि 'आर्य' शब्द भारतमें श्रेष्ठतावाचक विशेषणमात्र रहा है। कहीं-कहीं विशेषण विपर्ययके रूपमें 'श्रेष्ठ मनुष्य' के अर्थमें भी प्रयुक्त हुआ है। उत्तरी भारतमें ही नहीं, दक्षिणी भारतमें भी यही परम्परा रही है।—सम्पादक ]

# स्मरण और युद्ध

**[ कहानी ]**

( लेखक—श्रीशशिशेखर नागर एम्० ए० )

'स्मरण और युद्ध असम्भव हैं साथ-साथ।' मनमें विकल्प उठ रहा था। मुझे क्षमा कीजिये मेरी दुर्बलता-पर। मेरा मन शंकालु है और मेरी बुद्धि अस्थिर है; फिर भी मुझे विद्याका अभिमान है। मेरे अकाट्य तर्कके आगे आपकी कोई बात नहीं चलेगी। आप या तो चुप हो जायँगे या उठकर चले जायँगे, लेकिन मैं अपनी इस विजयपर मन-ही-मन गर्व करता हूँ। प्रकटमें चाहे मैं कहूँ कि 'मैं जानता ही क्या हूँ, बालक हूँ' परंतु मनमें कहता हूँ 'मैं सब कुछ जानता हूँ, बालक तो आप हैं।'

'ज्ञान तो व्यक्तिको सुलझाता है और तुम उलझते ही जाते हो।' मेरे मित्रने मुझे समझानेका प्रयत्न किया।

'जिनकी बुद्धि मन्द होती है, वे दूसरोंके बुद्धि-वैभव-को देख नहीं सकते।' मेरा उत्तर कड़वा था। वह चुप हो गया।

मैं फिर विचारोंमें उलझ गया। या तो स्मरण ही होगा या युद्ध। दोनों कैसे हो सकते हैं? जान बचाने-की पड़ी होगी उस समय अर्जुनको या माला फेरनेकी। रणक्षेत्रमें स्मरण! बड़ी अजीब बात है। गङ्गातटपर माला लेकर लोगोंको स्मरण करते मैंने देखा है, यह लड़ाईके मैदानमें भजन करनेका विधान, बड़ी समस्या है।

नवीन विचारोंकी खोजमें कभी-कभी मैं उन मित्रोंके प्रति भी अपनी शंका प्रकट करता हूँ, जिन्हें मैं अपनेसे कम बुद्धिमान् मानता हूँ। शंकाकी जटिलताके कारण जब वे कोई समाधान नहीं कर पाते, तो मुझे अपनी बुद्धिपर फिर गर्व करनेका अवसर मिल जाता है।

'स्मरण और युद्ध एक साथ कैसे होगा?' पास बैठे मित्रसे मैंने पूछा!

'आपको तो ब्रह्मा ही आकर समझायँगे, मुझमें सामर्थ्य नहीं है।' मेरा मित्र बिगड़ बैठा।

मैंने कई टीकाएँ देखीं। संतोष नहीं हुआ। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रत्येक व्यक्तिने शायद अपने संतोषके लिये टीकाएँ लिखी हैं। अगले दिन मैंने अपनी डायरीमें लिख दिया—'स्मरण और युद्ध साथ-साथ असम्भव हैं।'

'क्यों नहीं हो सकता?' मेरा मित्र उत्तर चाहता था।

'क्या दो काम एक साथ तुम कर सकते हो?'

'हम प्रायः करते ही हैं।' सरल भावसे उसने उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम्हारा मतलब यह है कि व्यक्ति समाधि लगाकर गा भी सकता है ।'

वह हँसा । 'सोते जगते सब दिन याम । जपिये राम राम अभिराम' बोलकर मानो उसने किसी गहन बातको सूत्ररूपमें कह दिया हो ।

'क्या सोना-जागना युद्ध करने जैसा है ?' मैंने शंका की ।

'मैं युद्धका अर्थ कर्त्तव्य-कलाप समझता हूँ ।' उसने समाधान किया ।

**'कैसे ?'**

'अर्जुनका युद्ध करना कर्त्तव्य-कर्म था न ? आपका कर्त्तव्य भी आपका युद्ध ही तो है ।'

'आपकी यह बात मान भी लूँ तो एक शंका फिर भी बनी रहती है । दो काम एक साथ नहीं हो सकते । या तो काम कर लीजिये या स्मरण ।'

मेरा मित्र इस प्रश्नके लिये तैयार नहीं था । लेकिन थोड़ी देर सोचकर बोला——

'हो सकते हैं ।'

'कैसे ?'

'आप साइकिल चला सकते हैं और गा भी सकते हैं ।'

'यह तो सम्भव है, लेकिन क्या गणितका दुर्बोध प्रश्न हल करते समय, जब आप एकाग्रतासे उसमें जुटे हों, आप किसी गीतकी रचना कर सकते हैं ।'

'आपको प्रभु सद्बुद्धि दें' कहकर वे चले गये ।

मेरा मस्तिष्क वुडवर्थ, म्यूरहैड, हाब्सके विचारोंसे भरा था । एक समयमें एक ही काम हो सकता है । यह मनोविज्ञानका सिद्धान्त है । यदि स्मरण करते समय कोई काम करना पड़ा तो उसमें विघ्न अवश्य पड़ेगा । लेकिन टाइपिस्ट टाइप भी करता है और बात भी करता है । यह तो अभ्याससे हो सकता है । इसका अर्थ है कि अभ्याससे दो काम एक साथ हो सकते हैं । यह सबके लिये सम्भव नहीं । कुछ व्यक्ति एक ही कामको पूरा जोर लगाकर भी अच्छा नहीं कर पाते, फिर दो कामकी बात ही जाने दो । अपनी कहूँ । कोई ग्रन्थ पढ़ता हूँ तो स्मरण छूट जाता है ।

उस दिन कॉलेजमें गीताके मनोवैज्ञानिक पक्षपर एक विद्वत्तापूर्ण भाषण सुना । उसी आधारपर 'मामनुस्मर युद्धय च' की मनोवैज्ञानिकतापर फिर सोचनेको बाध्य हो गया, परंतु सूत्र नहीं मिल रहा था ।

'या तो माला फेर ले या बातें कर ले' माँने तुरंत ही ताड़ना कर दी थी ।

मालाका बातोंके साथ मेल नहीं बैठता तो जो स्मरण तल्लीनतासे किया जायगा, कर्त्तव्य-कर्म अवश्य छूट जायगा ।

'प्रत्येक कामको मन लगाकर करो'

'माला जपते समय किसीसे मत बोलो ।' माँने व्यवस्था दी !

आज्ञा तो सिरपर रख ली लेकिन समस्या और उलझ गयी ।

'रोटी सेंकते समय किसीसे बातें मत करो' यह उनका बहूको आदेश है ।

'फिर मुखमें राम हाथमें काम' वाली बात कैसे होगी' मैंने माँसे शंका की ।

'तेरेसे तो बहस करा लो, करने-करानेको कुछ नहीं ।'

माँने कोई उत्तर नहीं दिया !

× × ×

उस दिव्य मूर्तिको मैं कभी भूल नहीं सकता। उन्नत ललाट, गौर आकृति, रक्तिमवर्ग नेत्रोंमें मन्द-मन्द मुस्कान, जैसे किसी ध्यानमें तल्लीन-से । एक मुँह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बैठे मेरी ओर देख रहे थे, मानो वे, मेरे मनको पढ़ रहे हों।

'कुछ पूछना है, मित्र !'

'मित्र' शब्द सुनकर मेरा हृदय गद्गद हो गया। भय-संकोच समाप्त हो चुका था।

'युद्ध और स्मरण एक साथ कैसे होगा, महाराज ! मैं बहुत दिनोंसे उलझ गया हूँ।'

'तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है।' कितने उदार थे वे। मेरे दोषको भी उन्होंने गुण समझा। मन-ही-मन मैंने अभिवादन किया।

'होता है। इसमें संदेह नहीं हो सकता।

तुम मेरी चिट्ठी लिखते समय क्या-क्या सोच रहे थे।'

'मैं सब्जीमण्डीसे पटेलनगर चला गया था और अपने मित्रसे खरीदे हुए प्लाटके बारेमें चर्चा कर रहा था।'

'दो काम तुमने एक साथ कैसे किये ?'

'मनकी शेष शक्तिसे।'

'बस। मनकी शेष शक्तिसे तुम स्मरण कर सकते हो।'

'कार्यमें कोई बाधा तो नहीं होगी ?'

'बाधा नहीं सहायता मिलेगी। तुम दबे हुए अनावश्यक संकल्पोंके विघ्नसे मुक्त रहोगे। कार्य सफल होगा !'

'और यह जो सुना जाता है—माला ही जप लो या बातें ही कर लो।'

मैं मन-ही-मन अपनी शंकाओंपर लज्जित था। 'एकाग्रताको लक्ष्यमें रखकर यह बात कही जाती है। प्रायः लोग एक काम करनेके बहाने दूसरा काम बिगाड़ लेते हैं। महाराजका समाधान अतर्क्य था।

एकाग्रता प्राप्त होनेपर भी तो एक समयमें एक ही काम हो सकेगा—स्मरण या काम।

वे पूर्ववत् ही मुस्करा रहे थे। खड़े होकर मेरी पीठ थपथपाकर बोले—

'तुम्हारा चिन्तन बहुत अच्छा है। ऐसे ही करते रहना चाहिये। जिज्ञासाको जगाये रक्खो।'

'क्षमा कीजिये महाराज, मेरी बुद्धि मुझे चैन नहीं लेने देती। मुझे समाधान मिल जाय तो मैं निहाल हो जाऊँ।'

'युद्ध और स्मरणमें कोई अन्तर नहीं है। जीवन और साधनामें अन्तर रहते, न जीवन जीवन है और न साधना साधना ही।' महाराज जाप करने चले गये।

## द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा

नग्न होती द्रौपदी दुःशासनके खींचे चीर<br>
आतुर अधीर टेरी कृष्ण नाम रट के।<br>
ए हो ब्रजराज लाज जाती सभा बीच आज,<br>
ह्वै है ए कलेजा नाथ टूक टूक फट के।<br>
करुणा-पुकार-भूरि भार ना सके सँभार,<br>
राधिकारमन के हिये के तार खटके।<br>
भटके-से आप वैठे सटके बसन माँहि,<br>
पटके अनेक थान लाय-लाय पट के॥

—श्रीगणेशप्रसाद 'मदनेश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शारीरिक रोग और मनोविकार

( लेखक—श्रीकन्हैयालालजी लोढ़ा )

संसारमें जितने भी सुख हैं, उनमें स्वास्थ्यका स्थान सर्वोपरि है। स्वास्थ्यके अभावमें विपुल वैभव, धन-धान्य, भोग-सामग्री आदि सभी भोगोपभोग तथा सुखके साधनोंकी प्राप्ति व्यर्थ है। अस्वस्थ अवस्थामें जीवन नीरस, भारभूत एवं मृत्यु-तुल्य बन जाता है। अस्वस्थताके इस अभिशाप तथा स्वस्थताके वरदानसे सभी जन परिचित हैं तथापि स्वास्थ्यके धनी विरले ही व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं। स्वास्थ्यका जितना ह्रास इस युगमें हुआ है, उतना शायद ही किसी युगमें हुआ हो।

आधुनिक कालमें मानव-समाजमें रोग जितने भयंकर एवं व्यापक रूपमें फैले हैं, उसे देखकर हृदय दहल उठता है। आजके अधिकांश मानव मन्दाग्नि, सिरदर्द, रक्तचाप, अर्श, उन्निन्द्रा, उपदंश, प्रमेह, ज्योतिक्षीणता, निर्बलता, क्षय, कैंसर, हृद्रोग आदि अगणित रोगोंसे ग्रस्त हैं। विविध चिकित्साप्रणालियोंका आश्रय ले, दवाई-पर-दवाई मुँहमें उँडेलकर पेटको दवाखाना बना देने, इंजेक्शन-पर-इंजेक्शन लगवा कर सारे शरीरको चलनीकी तरह छिदवा देनेपर भी रोग मनुष्यका पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की' कहावत चरितार्थ हो रही है और वह पथभ्रष्ट पथिककी भाँति इधर-उधर भटक रहा है!

जैसे नगरमें प्रज्वलित आगको चारों ओरसे घेरकर बुझाया जाय तो वह शीघ्र शान्त हो जाती है, परंतु एक ओरसे तो बुझानेका प्रयास किया जाय और दूसरी ओरसे उसे जलते रहने दिया जाय तो वह आग शान्त न होकर उस नगरको भस्मीभूत कर देती है, इसी प्रकार चिकित्सा करते समय केवल दवाका ही सहारा लिया जाय और अन्य साधनोंकी अवहेलना की जाय तो रोग शान्त नहीं हो सकता। परंतु दुर्भाग्यसे चिकित्सा-क्षेत्रमें आज यही हो रहा है और यही वह कारण है कि आधुनिक चिकित्सापद्धतियोंको रोगनिवारणमें पूर्ण सफलता नहीं मिल रही है।

रोगोंका निदान करते समय आजके चिकित्सकका सारा ध्यान रोगीके शरीरपर ही केन्द्रित रहता है। वह यह भूल जाता है कि रोगोत्पत्ति एवं स्वास्थ्य-प्राप्तिमें अकेले शरीरका ही नहीं, अन्य तत्त्वोंका भी योग है। यही वह भूल है जो चिकित्सकको अपनी सफलताका निश्चयात्मक विश्वास नहीं होने देती। वस्तुतः स्वास्थ्यका सम्बन्ध केवल शरीरसे न होकर मन, बुद्धि, आत्मा आदि जीवनके सम्पूर्ण अङ्गोंसे है। जैसा कि स्वस्थ शब्दके निरुक्त अर्थसे स्पष्ट है।

स्वस्थ शब्द 'स्व' और 'स्थ' इन दो पदोंसे बना है। जिसका व्युत्पत्ति-परक अर्थ होता है, अपनेमें स्थित होना, सम स्थितिमें रहना। चिकित्साशास्त्रके प्रख्यात प्रणेता श्रीचरकने स्वास्थ्यके लक्षण वर्णन करते हुए—

**'प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।'**

—कहकर अन्यान्य बातोंके साथ आत्मा और मनकी प्रसन्नता—निर्मलताको भी स्वास्थ्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। होम्योपैथीके प्रवर्तक सेम्युअल हैनीमैन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ आर्गेननमें 'अनुभूति एवं गतिके रूपमें प्रदर्शित आध्यात्मिक जीवनीशक्तिके विशिष्ट एवं गत्यात्मक परिवर्तन ही रोग है तथा मानव-शरीरमें मन और मस्तिष्ककी ही प्रधानता है, अगर उनको ठीक कर दिया जाय तो अन्यान्य अङ्ग स्वतः ही अच्छे हो जाते हैं।' कहते हुए सभी रोगोंका उद्गम-स्थल मनको बतलाया है। आधुनिक संत श्रीविनोबा भावे स्थितप्रज्ञ-दर्शनमें स्वास्थ्यका विवेचन करते हुए लिखते हैं 'स्वास्थ्यसे अभिप्राय शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकारके आरोग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से है। शारीरिक स्वास्थ्यका अर्थ है धातुसाम्य रहना और मानसिक आरोग्यका अर्थ है चित्तकी समता रहना और मानसिक शान्ति रहना।' तात्पर्य यह है कि स्वास्थ्यका क्षेत्र केवल शरीरतक ही सीमित न होकर मन और आत्मातक व्याप्त है।

देहधारी प्राणीके जीवनका सृजन उसके तन और मन—इन दोनोंकी एकरूपतासे हुआ है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध दूध-पानी-जैसा है। इनमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि मनका प्रभाव तनपर और तनका प्रभाव मनपर पड़े बिना नहीं रहता। यही कारण है कि तन और मनका एकके बिना दूसरेका स्वस्थ रहना असम्भव है।

मनोभावोंसे स्नायु-तन्तु प्रभावित होते हैं और उनमें तनाव उत्पन्न होता है। स्नायु-तन्तुओंके तनावका प्रभाव रक्त-संचार एवं अङ्गोपाङ्गोंपर पड़ता है। मुखमण्डलपर तो यह प्रभाव इतना स्पष्ट व्यक्त होता है कि एक मानस-शास्त्र-वेत्ता किसी मनुष्यकी मुख-मुद्राको देखकर, उसपर मुद्रित मनोवृत्तियोंको इस प्रकार पढ़ लेता है मानो कोई इतिहासवेत्ता इतिहासके पृष्ठोंको पलटकर उसमें वर्णित वृत्तोंको पढ़ने लगा हो। सामान्य-जन भी क्रूर और सात्त्विक व्यक्तिकी पहचान उसकी मुखाकृतिसे ही कर लेते हैं। पशु और बालक भी अपने घातक एवं रक्षकको उसकी आँखोंकी दृष्टिसे ही पहचान लेते हैं। हिंसक प्राणियोंकी आकृतिपर उनकी मानसिक क्रूरता स्पष्ट झलकती है। सदय हृदयवाले प्राणियोंकी आकृतियोंसे सात्त्विकता टपकती है। अतः यह कथन कि शरीर-रचनाका मूलाधार मन है—समीचीन ही है।

तन और मनके इस घनिष्ठ सम्बन्धसे प्रायः सभी धर्मप्रवर्तक एवं तत्त्ववेत्ता भी परिचित थे। इसीलिये उन्होंने अपने प्रणीत ग्रन्थोंमें स्वस्थ रहनेके हेतु संयमी और निष्पाप जीवनयापनपर पूरा जोर दिया है। इस युगके 'महात्मा' गाँधीने भी 'आरोग्य-साधन' ग्रन्थमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि स्वस्थ मनवालेका शरीर स्वस्थ होता है। उनका कथन है कि जिसका मन विकार-रहित होता है, उसका रक्त इतना शुद्ध होता है कि उसपर विषका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसकी सचाईके मीराँ और स्वामी दयानन्द सरस्वती निकट अतीतके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इनके मनोबलका ही प्रताप था कि इनके शरीरको हलाहल विष भी कुछ हानि नहीं पहुँचा सका। मनोविकारोंका शरीरपर पड़नेवाले प्रभावका विवेचन करते हुए अमेरिकन विद्वान् मि० ट्रायन लिखते हैं कि 'क्रोधसे रक्तमें इतना परिवर्तन हो जाता है कि थूक विषरूप हो जाता है, क्रोधरूपी मनोविकारसे शरीरका तापमान बढ़ जाता है। हृदयकी गति तेज हो जाती है और रक्त दूषित हो जाता है। शरीरके पोषकतत्त्व रस आदि धातुएँ विषयुक्त होकर पोषण करनेके बजाय विष फैलाकर रोगोंका बीजारोपण करने लगती हैं। एक बार एक स्त्री क्रोधमें आगबबूला हो रही थी, उसी समय उसने अपने नन्हें शिशुको स्तन-पान कराया। उस शिशुपर उसके विषैले दूधकी ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उसने कुछ ही कालमें अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। इसी प्रकार एक व्यक्तिमें क्रोधका सर्प फुफकार उठा और उसने दूसरे व्यक्तिको काट खाया। फलतः सामनेवाले व्यक्तिपर थूकका ऐसा विषैला प्रभाव पड़ा कि वह कुछ समय पश्चात् ही मर गया।

श्रीजेम्स एलेनका कथन है कि 'निराशासे मन्दाग्नि रोग हो जाता है। उस मन्दाग्निको मिटानेके लिये दी गयी दवाओं और इंजेक्शनोंसे कुछ लाभ नहीं होता, जब कि आशा, उत्साह एवं उल्लासके वायुके प्रथम झोंकेसे ही जठराग्नि प्रज्वलित होने लगती है।'

घृणाके कारण उबकाई ( वमन ) और उदासीनताके कारण जमुहाईका आना तो सामान्य-सी बातें हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक चिन्ता-विषाद आदिसे अपचन, क्षय तथा हिस्टिरिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

वनमें एकाएक शेर सामने आता दिखायी देनेपर कई व्यक्ति खड़े-खड़े ही मल-मूत्र कर देते हैं। पुलिसके भय तथा अपने किसी प्रियजनके अहित होनेके डरसे अनेक व्यक्तियोंको पेचिस हो जाती है। इसका भी कारण भयके प्रभावसे आँतोंका एकदम ढीला पड़ जाना ही है। भयसे कभी-कभी रोमाञ्च हो जाता है और रक्त-प्रवाह रुक जाता है। फलतः मृत्युतक हो जाती है। भूतके मिथ्या भयसे मनुष्य मर जाता है।

मनमें सदा खिंचाव तथा अशान्ति रहनेसे पेटमें अल्सर रोग हो जाता है। कामोद्रेकसे पीड़ित व्यक्ति स्वप्नदोष तथा धातुमेहका शिकार होता है और उन्मत्त-सा व्यवहार करने लगता है। उसका यह उन्माद बढ़ जाता है तो वह मूर्च्छित होकर प्रलाप करने लगता है। मनोविज्ञानसे अनभिज्ञजन उसे भूत या डाकिन लगना कहते हैं। इसकी सर्वोत्तम चिकित्सा भी मनोविश्लेषण या सम्मोहन क्रिया-द्वारा उसकी कामवासनाके मूलमें रहे मोह या भ्रमको दूर करना ही है।

सर्पविष-विशेषज्ञ चिकित्सकोंका कथन है कि निर्विष सर्पसे दंशित लाखों व्यक्ति केवल सर्प-विषके भयसे अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं।

राजसी वृत्तियों अर्थात् भोगोंके अत्यधिक उपभोगसे राजरोग क्षय हो जाता है। अनेक सेनिटोरियमोंमें चिकित्सा करा लेनेपर भी नहीं मिटनेवाला वह राजरोग राजसी वृत्तियोंको त्यागकर सात्त्विक वृत्तियोंको तथा संयमको अपनानेसे मनके शान्त हो जानेपर स्वतः समूल विनष्ट होता देखा गया है। कामनाओं तथा दुर्वासनाओंसे अभिभूत व्यक्ति सिरदर्द, रक्तचाप, क्षय, हृदय-रोग आदि व्याधियोंसे पीड़ित रहता है और जब वासनाओंकी संख्या, वेग तथा भार इतना बढ़ जाता है कि हृदय उसे वहन नहीं कर सकता तो उसे विश्राम करनेको विवश होना पड़ता है। फलतः हृदयकी गति सदैवके लिये रुक जाती है।

यह तो विदित ही है कि घनिष्ठ स्नेहीके निधनसे शोकविह्वलित व्यक्तिको षड्रस भोजन भी नीरस ही लगते हैं।

यदि चित्तमें चिन्ताकी ज्वाला जल रही है तो चाहे कितने ही विटेमन और प्रोटनोंका सेवन किया जाय उनसे रस एवं रक्त नहीं बन सकेगा। यही नहीं, वह चिन्ता शनैः-शनैः शरीरको निर्बल बना चितामें पहुँचा देती है। धन्वन्तरि वैद्य और लुकमान हकीम भी पुनर्जन्म लेकर उसे नहीं बचा सकते। चिन्ताका शरीरपर पड़नेवाले प्रभावका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अत्यधिक चिन्तासे लंकाके एक व्यक्तिके बाल एक ही रातमें श्वेत हो गये थे। मानसिक विकार शारीरिक रोगोत्पत्तिमें दो प्रकारसे कारण बनते हैं— प्रथम तो उनका सीधा प्रभाव पड़ता है जैसा कि ऊपर वर्णन कर आये हैं। दूसरा इन अप्रशस्त एवं कुत्सित भावोंसे कुपथ्य, अनियमितता, दुराचार, दुर्व्यसन, अभक्ष्यभक्षण आदि असंयमपरक प्रवृत्तियोंको जन्म मिलता है। असंयमयुक्त प्रवृत्तियाँ प्राकृतिक नियमोंके उल्लङ्घनके कारण बनकर शरीरको रुग्ण बनाती हैं तथा इन्द्रियोंको उत्तेजित कर मनको आकुल एवं अशान्त रखती हैं, जिससे जीवनीशक्तिका तीव्रतासे ह्रास होता है और ऐसे व्यक्तिके शरीरमें रोग-निवारणकी क्षमता क्षीण होती जाती है, रोग उसे घेरे रहते हैं। रोग असंयमीके पीछे उसी प्रकार लगे रहते हैं जिस प्रकार छाया कायाके। अतः नीरोग रहनेके लिये प्रथम और आवश्यक शर्त है कि जीवनको संयमयुक्त बिताया जाय। यह सर्वथा असम्भव है कि कोई असंयमी जीवन भी बिताये और स्वस्थ भी बना रहे। आजका मानव रोग-निवारणकी शक्ति दवामें मानकर संयमकी उपेक्षा करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसीका परिणाम है कि सम्प्रति मानवसमाज रोगसे आक्रान्त, ग्रस्त एवं संत्रस्त है। मनेन्द्रियका संयम रखनेसे तथा दुर्भोगों एवं अतिभोगोंसे बचकर रहनेसे ही स्वस्थ रहा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

गठिया, क्षय, कैंसर, रक्तचाप, हृदय आदि समस्त भयंकर एवं साधारण रोगोंमेंसे कोई भी रोग ऐसा नहीं है, जिसकी जड़ मनमें न हो और जो असंयम, कुत्सित इच्छाओं, कुचेष्टाओं, दुर्वासनाओंसे पोषित न हुआ हो। इसी प्रकार ऐसा भी कोई रोग नहीं है जो मानसिक निर्मलता एवं संयमके समक्ष ठहर सकता हो तथा जिसके कीटाणु पावन मनस्वी व्यक्तिके तनमें घर कर सकते हों। चोरी, व्यभिचार, विश्वासघात, प्राणघात आदि पापकृत्य करनेवाले व्यक्तिका मन आत्म-ग्लानि, हीनता, भय, आशंका आदि भावोंसे सतत संतप्त, संत्रस्त, अशान्त एवं तनावयुक्त रहता है। उसके अन्तःकरणमें अन्तर्द्वन्द्व तथा विप्लव मचा रहता है। जैसे, जिस राष्ट्रमें गृह-युद्ध एवं विप्लव हो रहा हो, उसका सर्वतोमुखी पतन होता है, इसी प्रकार जिस व्यक्तिके हृदयमें ग्लानि, हीनता, द्वन्द्व आदि भावोंके विप्लवके बवंडर उठ रहे हों, उसका भी सर्वतोमुखी पतन अवश्यम्भावी है। अन्तर्द्वन्द्व एवं हृदयोद्वेलनके कारण उसके स्नायु-तन्तुओंका तनाव बढ़ जाता है और शरीरके कोष तेजीसे टूटने लगते हैं। शरीरकी सृजन-क्रिया शिथिल तथा छीजन-क्रिया सक्रिय हो जाती है। मनमें आकुलता तथा अशान्तिका साम्राज्य छा जाता है। उसकी क्लोरी उष्माँक जीवनीशक्ति अत्यधिक परिमाणमें क्षीण तथा व्यय होने लगती है। परिणामतः शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका तीव्रतासे ह्रास होने लगता है। उसके तन और मनकी दुर्बलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। और यह सर्वमान्य तथ्य है कि शारीरिक निर्बलता रोगोंके पनपने, तथा मानसिक दुर्बलता सभी दुःखोंके अङ्कुरित होनेके लिये उर्वर भूमि है।

अतएव रोग और दुःखोंसे मुक्तिके लिये दुर्भावना तथा दुष्कृत्य-रूप पापके परित्यागके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

महात्मा गान्धीका ( यंग इंडिया २२ सितम्बर १९३६ ई० में प्रकाशित ) यह अनुभव कि 'आत्मा जैसे-जैसे पापोंसे छुटकारा पाती जाती है, वैसे-ही-वैसे उसका शरीर भी नीरोग होता जाता है।' भारतवर्षके लिये नवीन नहीं है। अति प्राचीन कालसे ही ऋषिगण इस तथ्यसे अवगत थे। फलतः उन्होंने धर्मशास्त्रोंमें रोगोत्पत्तिको पापके परिणामरूपमें प्रतिपादित किया है। प्राचीनकालमें इस तथ्यके व्यावहारिक आचरणपर इतना बल दिया जाता था कि उस समय किसी रोगके हो जानेपर रोगी व्यक्तिको वैसे ही लज्जित होना पड़ता था जैसे आज या आजसे कुछ पूर्व सुजाक या उपदंशके रोगीको लज्जित होना पड़ता था। उस समय रुग्णता शब्द अपवित्र विचार, दुर्भाव, पाप तथा असंयमका पर्यायवाची था। धर्माचार्य और आरोग्यशास्त्री आधुनिक सभ्यताके चकाचौंधसे चौंधिया कर चाहे आज इस सिद्धान्तको न देख पाते हों, परंतु देहाती नागरिकोंके अन्तःकरणमें आज भी यह संस्कार घर किये हुए है। वे जब रुग्ण होते हैं तो उनके मुखसे परम्परागत संस्कार-वशात् सहज ही निकल पड़ता है कि 'हे प्रभो! हमने ऐसा क्या पाप किया, जिसके फलस्वरूप हमें यह रोग हुआ।' वे आज भी रोगोत्पत्तिका कारण पाप या कुत्सित वृत्तियोंको मानते हैं। उनकी यह मान्यता भ्रान्ति या अन्धश्रद्धा-जन्य न होकर तथ्यपूर्ण है।

प्रयोजन यह है कि जिसका मन शुद्ध, निर्विकार, नीरोग है, उसके पाचक, स्नायु आदि संस्थान भी नीरोग होते हैं। उसका रक्त इतना शुद्ध तथा सक्षम होता है कि शरीरमें उत्पन्न, विद्यमान एवं प्रवेशमान सभी प्रकारके रोगके कीटाणुओंको परास्त और विध्वंस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देता है । उसे रोगके कीटाणुओंके विनाशके लिये किसी दवा या इंजेक्शनकी आवश्यकता नहीं पड़ती । अतः मानसिक निर्मलतासे बढ़कर न तो कोई शक्ति-प्रदायिनी दवा ही है और न रोग-विनाशक अमोघ ओषधि ही ।

परंतु खेद है कि आजके चिकित्साशास्त्री बाह्य कारणोंसे उत्पन्न शरीरस्थ रोग-कीटाणुओंके विनाशके लिये तो प्रयत्नशील हैं, लेकिन मनोभूमिकामें उत्पन्न काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, अहंकार, हिंसा, वैर, विषयासक्ति, कषाय, स्वार्थपरता, कुटिलता, आवेग, आकुलता, भय, चिन्ता और अतृप्ति आदि विकार या गंदगियोंसे उत्पन्न रोग-कीटाणुओंके विनाशकी ओर उनका किञ्चित् भी ध्यान नहीं है । ये ही वे घुन हैं जो रोगोत्पत्तिमें कारण बनकर देह और दिमागको दुर्बल बनाते हैं और यह किसीसे छिपा नहीं है कि देह और दिमागकी दुर्बलता सब रोगोंका कारण है । अतः सफल चिकित्साके हेतु चिकित्सा-क्षेत्रमें मनोविकारोंको दूर करनेके सिद्धान्तको पुनः प्रतिष्ठापित करना होगा ।

हर्षका विषय है कि आधुनिक विज्ञानकी दो शाखाओं 'मानस-शरीर-विज्ञान' ( साइकोसोमटिज्म ) और परामनोविज्ञानका ध्यान इस ओर गया है और उन्होंने इस तथ्यको स्वीकार किया है । आशा है इनके समुचित विकाससे निकट भविष्यमें ही चिकित्साजगत्में क्रान्ति होकर समीचीन एवं सर्वाङ्गीण चिकित्सा-पद्धतिको स्थान मिलेगा ।

---

# मानवताकी परिधि

## [ कहानी ]

( लेखक—श्रीरूपनारायणजी चतुर्वेदी )

'सुनती हो ? आज भगवान् हमारी कुटियापर स्वयं पधारे हैं ।' अपनी पत्नी सुचेतासे कौस्तुभने कहा ।

'क्या कहा ? मैं आयी ।' पत्नी बोली । आँगनसे गायका दुहना छोड़ सुचेता दौड़ आयी । उन्होंने देखा कि एक सुन्दर बालक उनके कुटी-द्वारपर पड़ा कराह रहा है । बालक अति क्षीणकाय था, पर उसकी आँखोंमें चमक थी । वह बहुत धीरे-धीरे केवल इतना ही बोल सका—'मुझे टी० बी० है । जीवनकी कुछ घड़ियाँ शेष हैं । निर्धन माता-पिता मेरे जीवनसे निराश हो चुके । मरनेके लिये मुझे इस द्वारपर डाल गये हैं ।'

कौस्तुभका कलेजा भर आया । वह बोला—'भगवान्, मेरे बच्चेको कौन मार सकता है ?' फिर सुचेतासे कहने लगा—'तुम जाकर दूध उबालकर ठंडा करो । शहद नागकेशर और दो बूँद दालचीनी डालकर ले आओ । मैं लालको बिछौनेपर लेटाता हूँ ।'

कौस्तुभकी पीपलके नीचे बाँसकी बनी कुटिया बड़ी सुन्दर और स्वच्छ थी । उसमें आगे छान ( छप्पर ) थी और पीछे दो कक्ष थे और पीछे लिपा-पुता आँगन । आँगनमें छोटी गोशाला थी और एक ओर रसोई । बीचमें तुलसीचौरा था और छप्परके आगे थोड़ी दूरपर केले लगे थे । दोनों कक्षोंके बीच द्वार था । एकमें धानके पुआलसे दो बिछौने तैयार किये हुए थे । जिनपर गाढ़ेकी स्वच्छ चादरें बिछी थीं । रस्सीपर एक अँगा टँगा था । कुटियामें तीन चित्र थे, एक प्रार्थना करते हुए भक्तका, दूसरा छौनेको प्यार करते हुए हरिणका और तीसरा सोते हुए एक बालकका । गायका नाम था—श्यामा । वह छोटी-सी गाय बड़ी अच्छी लगती । उसका दूध-सा सफेद बच्चा रोचन था । चमकती आँखें, सतर्क कान, उछलता शरीर और गुच्छेदार पूँछ ।

'वारीश बेटा ! यह घर तेरा है । चल अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिछौनेपर लेट जा'—इतना कहकर कौस्तुभने सँभालकर दोनों हाथोंपर पाँच वर्षके बच्चेको उठा लिया और ले जाकर सुचेताके बिछौनेपर लेटा दिया। हवाका हल्का झोंका आया और पीपलके पत्तोंमेंसे सूरजकी पहली किरण कुटियामें प्रविष्ट हुई। 'बीरन'को अपना नाम 'वारीश' सुनकर हर्ष हुआ। बिछौना बड़ा कोमल था और उसपर लेटकर सच्ची वत्सलताका अनुभव बीरनको हुआ। रुँधे गलेसे कहने लगा—'पिताजी ! मैं यहीं रहूँगा, मुझे मत छोड़ना।'

सुचेता सफेद प्यालेमें दूध ले आयी। वारीशके सिरपर हाथ फेरकर धीरे-धीरे दूध पिलाने लगी। कौस्तुभ एक ओर खड़ा आँसू बहा रहा था। बालकका एक हाथ सुचेताके गलेमें था। दूध पीकर वह सो गया। भक्तके चित्रसे माला खिसककर उसके पास आ पड़ी।

दस वर्ष पहले डॉक्टर कौस्तुभ पूना टी० बी० सेनिटोरियमके सुपरिंटेंडेंट थे, सुचेता रूसी महिला थी और नर्स होकर आयी थी। गुण, स्वभाव और आचरण-की एकताके कारण कौस्तुभ और सुचेतामें स्नेहबन्धन उत्पन्न हुआ और वे कुछ ही कालमें प्रणयसूत्रमें बँध गये। संतानहीन दम्पति जीवमात्रकी सेवा करते, मांस-मदिरासे दूर रहते और अतीव पवित्र जीवन व्यतीत करते। डॉक्टर कौस्तुभ सेनिटोरियमसे इस्तीफा देकर मैसूरमें कुटिया बनाकर रहने लगे थे। केवल असाध्य रोगोंका देशी इलाज करना उनका कर्म था। वे प्राकृतिक चिकित्सकके रूपमें प्रख्यात थे। अपनी कुटियापर रोगी नहीं देखते थे, पर नित्य चार घंटेके लिये मैसूरके सिविल अस्पताल-में काम करने जाते थे। जनता उनके लिये श्रद्धा और भक्तिके भाव रखती थी और परमात्माकी कृपासे उनके इलाजमें कोई रोगी न मरा था। आज तो वारीशको अपने पुत्रके रूपमें उनको जीवनदान देना था। उनके सम्पर्कमें आनेसे ही रोगी आधा अच्छा हो जाता था।

पुत्रवत् परिचर्या और अनुभवगम्य शुश्रूषासे वारीश दो वर्षमें ही पूर्ण स्वस्थ हो गया। इतना ही नहीं, उसके शरीरमें एक ऐसा कवच उत्पन्न हो गया कि छूतकी घातक तथा संक्रामक बीमारियोंके मरीजोंके बीच वह निर्भीक विचरण कर सकता था। इन रोगोंके कीटाणुओं-पर वह विजय पा चुका था और प्रायः डॉक्टर कौस्तुभके साथ वह अस्पतालमें जाता तथा रोगियोंकी परिचर्या करता और उनके रोगोंको समझनेका प्रयास करता।

आज वारीश पिताके साथ अस्पतालमें है। एक अधेड़ स्त्री पूर्ण विक्षिप्तावस्थामें आयी। कपड़े फाड़ती और बाल नोचती थी। कभी खूब हँसती थी, कभी रोती थी और कभी यह कहकर गाती थी—

**'बीर गया जमलोक मेरा दिल बीराना।'**

हठात् वह डॉक्टर कौस्तुभके सामने आयी और उसने वारीशको देखा। वह उससे चिपट गयी 'लाल तू लौट आया। मेरा बीरन, मेरा लाल, देख तो माँका हाल। अब न जाना पूत नहीं मर जाऊँगी।' स्त्री बड़े जोरसे काँपी और काँपकर बेहोश हो गयी।

दो महीनेमें बीरनकी माँ ठीक थी। आज डॉक्टर कौस्तुभ बड़े अनमने हैं। सुचेता तो बौखला गयी थी। कभी बालकके मुँहपर हाथ फेरती, कभी उसके कपड़े सँभालती और कभी चित्रकी हिरनीको देख लेती। उसका वारीश आज बीरन बनकर अपनी असली माँके साथ जा रहा है। बीरन चला गया और सुचेता आँसू बहाती आँखे बंद किये प्रार्थना करती रह गयी!

दो महामानव कौस्तुभ और सुचेता मानवताकी सेवामें तत्पर हैं, पर उनके जीवनका रस चला गया है। जहाँ-तहाँ जब-तब उनके नेत्रोंमें आँसू छलछला आते हैं। अस्पताल दोनों ही जाने लगे हैं और रोगी-रोगीमें उनको वारीशके दर्शन होते हैं। सब कुछ है, पर आत्माका सूनापन वे कैसे मिटायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विश्वकल्याणका मूलाधार—आत्मीयताका विस्तार

( लेखक—श्रीअगरचंदजी नाहटा )

उपनिषद्‌के वर्णनके अनुसार सृष्टिसे पूर्व ब्रह्म अकेला था, तब उसने विचार किया कि मैं एकका अनेक हो जाऊँ—'एकोऽहं बहु स्याम्' । इसलिये मूल तत्त्व एक ही था, एक ही ब्रह्मके अंश संसारके समस्त प्राणी हैं। इसीलिये उनमें संज्ञाएँ, इच्छाएँ, आवश्यकताएँ बहुत कुछ एक-सी ही पायी जाती हैं । स्वतन्त्रता, अमरता, अखण्ड अनन्त सुख सभी चाहते हैं । लौकिक व्यवहारमें आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि सभीमें समान हैं ।

एकताके साथ विश्वके प्राणियोंमें जो अनेकता दिखायी देती है, वह भी सकारण और आवश्यक है; क्योंकि ब्रह्मको विनोद करना था, लीला या क्रीड़ा करनी थी और सभी प्राणी एक-जैसे होनेपर उनमें परस्पर उतना आकर्षण नहीं होता तथा उसके बिना ब्रह्मका संकल्प पूर्ण नहीं होता । प्रत्येक प्राणीकी पहचान या उसके स्वतंन्त्र व्यक्तित्वका अनुभव भेदबुद्धिपर ही आधारित है। सभी प्राणी एक समान ही होते तो उनकी अलग-अलग पहचान होना कठिन था । यह भेदभाव ही मायातत्त्व है और मूलकी एकता या अभेद ही ब्रह्मतत्त्व है । वेदान्तदर्शनका यह मन्तव्य है कि एक ब्रह्म ही सत्य है, और सब जगत् मिथ्या है—'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या।' अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यमें प्रकृति-प्रदत्त अनेक विशेषताएँ हैं । मन, भाषा, बुद्धि आदिकी शक्ति पशु-पक्षि-जगत्‌की अपेक्षा उसे बहुत अधिक मिली है । और इसीके कारण मनुष्योंमें अलगाव या भेदभाव भी अधिक है । प्रकृतिने अरबों-खरबों मानवादि प्राणियोंको उत्पन्न किया और उनकी आकृति, वर्ण, ध्वनि, रुचि, स्वभाव आदि अनेक बातोंमें भिन्नता रक्खी । इसी भिन्नताके कारण हम एक दूसरेको अलग-अलग समझने लगे हैं और मूलगत चैतन्यसत्ताकी एकताको भूल-से गये हैं । उसे फिरसे याद दिलानेके लिये ही वेदान्त, जैन आदि आध्यात्मिक दर्शनोंका उदय हुआ । वेदान्त-ने कहा, 'ब्रह्म एक है' और समस्त प्राणी उसीके सनातन अभिन्न अंश हैं । इसके द्वारा मूलगत एकताकी ओर इस दर्शनने हमारा ध्यान आकर्षित किया । जैन-दर्शनने प्रत्येक आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व माना, पर यह बतलाया कि स्वरूपतः सभी प्राणी एक-जैसे हैं। मूलगत सत्ताकी अपेक्षासे सभी सिद्ध-बुद्ध-परमात्मस्वरूप हैं । राग-द्वेष कर्मबन्धके प्रधान कारण हैं और कर्मोंके कारण ही यह देहादिकी भिन्नता है । कर्मोंके नष्ट हो जानेपर सभी आत्माएँ एक ही सिद्ध-मुक्तकी स्थितिको पा लेती हैं । सिद्ध अवस्थामें उनमें कोई भी भेदभाव नहीं रहता । इसलिये आत्माके मूल स्वभावको पहचान-कर उसीमें स्थिर रहना आत्मधर्म है । आत्माका धर्म या लक्षण चैतन्य है । अनात्म-पौद्गलादि दृश्यमान सभी पदार्थ जड हैं । कर्मोंके कारण जडसे आत्माका सम्बन्ध हो गया है । उस अनात्मभाव ( जडको अपना मानकर उसपर ममत्व करने )को अभेदविज्ञानके द्वारा हटाना है । आत्मस्वरूपकी विस्मृति ही सारे दुःखोंका कारण है और आत्मज्ञान ही मोक्षका । आत्मज्ञान या आध्यात्मिक ज्ञान दोनों एक ही है । 'आत्मज्ञान अध्यात्म भाव समो शिव साधन अन्य न कोई ।'

विश्वके समस्त प्राणी सुखाभिलाषी हैं और जीवित रहना चाहते हैं । कोई भी प्राणी मरना या दुःख पाना नहीं चाहता । जैसे हम सुख चाहते हैं, वैसे ही दूसरे प्राणी भी । अतः किसीको भी किसी प्रकारका कष्ट देना हिंसा है, पाप है और समस्त जीवोंके साथ आत्मौपम्य व्यवहार ही अहिंसा है, धर्म है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ।'

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

( गीता )

मानवमें अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनकी प्रधानता है। विचार और विवेक ही पशुओंसे उसे पृथक् कर देते हैं। समूह तो पशुओंका भी होता है और मनुष्यों-का भी; पशुओंके समूहको 'समज' कहते हैं, पर मानवों-के समूहको 'समाज'। व्यक्ति जब समाजके साथ जुड़ा हुआ है, तब उसे केवल अपने ही स्वार्थ या हितका ध्यान न रखकर अपने साथी—चाहे वे परिवार, जाति या देशके हों—सबका ध्यान रखते हुए जीवन-व्यवहार चलाना होता है। बहुत बार अपने लाभको गौण करके भी दूसरोंको किसी भी तरहका नुकसान न हो, यह ध्यानमें रखते हुए प्रवृत्ति करनी पड़ती है। यदि ऐसा ध्यान नहीं रक्खा जाय तो सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त और छिन्न-भिन्न हो जाय।

मनीषियोंने विश्वके मानवोंको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है। पहली श्रेणीमें वे आते हैं, जो केवल अपने ही मतलबकी बात सोचते और करते हैं। दूसरेका उसमें चाहे नुकसान ही हो, इसकी उन्हें परवाह नहीं होती। दूसरी श्रेणीमें वे आते हैं, जो अपने स्वार्थको तो प्रधानता देते हैं पर साथ ही यह भी ख्याल रखते हैं कि दूसरोंका नुकसान न हो। तीसरी श्रेणीमें वे आते हैं, जो अपना नुकसान करके भी दूसरोंको सुख-शान्ति पहुँचानेमें दत्तचित्त रहते हैं। परोपकारमें, दूसरोंकी सेवामें ही वे सुख और जीवनकी कृतार्थताका अनुभव करते हैं। इन तीन श्रेणियोंवालोंको क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम मानव कहा गया। सभी व्यक्ति चाहते हैं कि हम उत्तमकी श्रेणीमें आयें, लोग हमारी प्रशंसा करें; पर वे उत्तम कहलानेके योग्य कार्य नहीं करते। अतः केवल इच्छा करनेसे ही कोई उत्तम नहीं कहला सकता। प्रत्येक मनुष्यको स्थिरचित्त होकर गम्भीरतासे सोचना चाहिये कि वह किस श्रेणीमें है। यदि निम्न कक्षामें है तो मध्यम और उत्तम श्रेणीमें और मध्यम कक्षामें है तो उत्तम श्रेणीमें आनेका प्रयत्न करना चाहिये। स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ—ये इन तीनों श्रेणियोंके तीन रूप हैं। आज दुनियाँमें स्वार्थका बोलबाला है, अपने तनिक-से लाभके लिये दूसरोंका बड़े-से-बड़ा नुकसान करनेमें लोग नहीं हिचकते। अतः परसेवा और सबमें भगवद्रूपका दर्शन करनेवाले विरले एवं दुर्लभ हैं। वैसे संसारमें अच्छे और बुरे व्यक्ति सब समयमें रहे हैं; पर जिस समय सात्त्विक प्रकृतिवालोंकी अधिकता होती है, उसे सत्ययुग कहा जाता है। जब राजस प्रकृतिवालोंकी अधिकता होती है, उसे त्रेता और द्वापर तथा तामसी प्रकृति एवं प्रवृत्तिवाले व्यक्तियोंकी अधिकतावाले कालको कलियुग कहते हैं। यद्यपि सात्त्विक प्रकृतिवाले व्यक्तियोंकी आज भी नास्ति नहीं है, तथापि वे हैं विरले ही। इसीलिये संत महापुरुषोंने ग्राम-नगरोंमें घूम-घूमकर यह संदेश प्रसारित किया कि स्वार्थको घटाकर परार्थमें प्रवृत्त होओ। परोपकारके समान कोई धर्म नहीं है—'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।'

भारतीय धर्मोंमें अहिंसाको परमधर्म माना गया है—'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसाका अर्थ है प्राणिमात्रके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध जोड़ना। जैसा व्यवहार हम अपने लिये पसंद नहीं करते, वैसा दूसरोंके लिये हम नहीं करें। यही अहिंसक व्यवहारकी कुंजी है—

**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।**

आज हम इस महान् शिक्षाको भूल गये हैं, और प्रति-समय दूसरोंके साथ ऐसा व्यवहार करते रहते हैं, जैसा व्यवहार दूसरे व्यक्ति हमारे प्रति करें तो हम बहुत ही बुरा समझते हैं और कभी नहीं चाहते। भारतीय मनीषियोंने तो यहाँतक कहा है कि यदि अन्य व्यक्ति हमारे प्रति अनुचित व्यवहार करता है, तो भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम उसके साथ उचित और अच्छा व्यवहार ही करें, हम उसकी भूलको स्वयं करके दुहरायें नहीं। हमारी अच्छाईका प्रभाव आगे-पीछे अवश्य पड़नेवाला है, इसका हम विश्वास रखें और अपनी सज्जनताको न खोयें।

व्यक्तियोंका समूह ही समाज है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे परस्पर अनेक प्रकारकी सहायता प्राप्त करता रहता है। एक व्यक्ति जो नहीं कर पाता वह समाज या संगठित व्यक्तियोंका समूह सहजमेंही कर सकता है। दूसरोंकी सहायताके बिना हम जीवित नहीं रह सकते, आगे नहीं बढ़ पाते; इसलिये दूसरोंकी सहायता करना हमारा भी कर्तव्य हो जाता है। हम केवल लेना ही नहीं, देना भी सीखें।

व्यक्तिका जन्म एक परिवारमें होता है। चाहे वह माता-पितातक ही सीमित परिवार हो या भाई, बहिन, काका, बाबा आदिका विशाल कुटुम्ब हो, पारस्परिक सहयोगसे ही सबका जीवन सुखकर होता है। बालक जवान होनेपर जिन-जिन व्यक्तियोंसे उसे जो-जो सहायता मिली है, उसे चाहे भूल जाय, पर यह निश्चित है कि यदि उसे माता-पिता आदि परिवारकी सहायता नहीं मिली होती तो उसका जीवित रहना दूभर हो जाता। वास्तवमें हमारा यह जीवन अनेक व्यक्तियोंकी सेवा-शुश्रूषा, शिक्षा तथा सहायता-सहयोगपर ही निर्भर है। एक परिवारमें रहनेसे एक दूसरेके प्रति सहज ममत्व हो जाता है और एक दूसरेकी सेवा करनेकी भावना और प्रवृत्ति होती है। इस ममत्व या आत्मीयताके कारण ही अपने परिवारके व्यक्तिको शारीरिक, आर्थिक, मानसिक—किसी भी प्रकारका कष्ट आता है तो हम उसे निवारण करनेके लिये बेचैन-से हो उठते हैं। उसके लिये स्वयं कष्ट उठानेको तैयार हो जाते हैं, क्योंकि उस व्यक्तिके साथ हमारा पारिवारिक या आत्मीय सम्बन्ध है। उसके कष्टको हम अपना कष्ट मानते हैं। अपने पास जो भी धन, बल, बुद्धि है, उसका उपयोग करके आत्मीय जनकी सुख-शान्तिमें सहायक होते हैं। पर यह पारिवारिक आत्मीयताका सम्बन्ध है बहुत ही सीमित और संकुचित, इसीलिये महापुरुषोंने कहा है कि आत्मीयताके सम्बन्धको विस्तृत करते चले जाओ। पहले पड़ोसीको, फिर समाज, जाति, गाँववालोंको अपना ही समझकर उनके प्रति भी परिवारके लोगोंकी भाँति व्यवहार करो। क्रमशः देश और राष्ट्रके समस्त प्राणियोंके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध जोड़ते चले जाओ। उनके दुःखको अपना दुःख मानो। कोई भी पराया नहीं है, सभी अपने हैं—इस भावनाके उदित होते ही हिंसा, द्वेष, कलह, ईर्ष्या, संघर्ष आदि अशान्तिके समस्त कारण स्वतः समाप्त हो जायँगे। जो तेरे और मेरेके फंदेमें फँसा हुआ है, उसे महापुरुषोंने हीन कोटिका (लघु) व्यक्ति कहा है; और जो विश्वके साथ मैत्री या प्रेमका सम्बन्ध जोड़ता है, वह महान् यानी महात्मा है—

**अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥**

जिस व्यक्तिको हम अपना मान लेते हैं, उस व्यक्तिको दूसरा कोई कष्ट पहुँचाये तो उसका प्रतीकार करनेके लिये हम मरने-मारनेको तैयार हो जाते हैं; इससे यही तात्पर्य निकलता है कि जिसे हमने आत्मा मान लिया, उसकी रक्षा करना, उसके सुख-दुःखकी चिन्ता करना, दुखी अवस्थामें हर प्रकारका सहयोग देकर उसका दुःख निवारण करना यह हमारा कर्तव्य है। जिन व्यक्तियोंको हमनें पराया मान लिया है, उनके प्रति हमारी वैसी सहानुभूति नहीं होती। इसीसे उनको कष्ट देनेमें भी नहीं हिचकते। अतः समस्त दोषोंका मूल अपनेसे भिन्न दूसरे प्राणियोंको पराया मानना है। यदि हम परायोंको भी अपना मानने लग जायँ तो उनके प्रति भी वैसा ही व्यवहार करेंगे, जैसा अपना माने हुए व्यक्तियों या कुटुम्बी जनोंके साथ करते हैं।

आज व्यक्तिमें स्वार्थ इतना अधिक हो गया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने स्वार्थमें थोड़ी-सी भी कमी आयी कि वह पारिवारिक जनोंको भी पराये मान बैठता है, उनके साथ भी संघर्ष करनेको तुल जाता है—लड़ने-झगड़नेको उतारू हो जाता है; क्योंकि उसका परिवारमें जो आत्मीयभाव था उसका उसने त्याग कर दिया है, अपने व्यक्तियोंको पराया मान लिया है। इसी तरह पराये माने जानेवाले व्यक्तियोंको यदि हम अपना मानते चले जायँ और आत्मीयताको विस्तृत करते चले जायँ तो अवश्य ही उसका परिणाम बहुत ही सुखद होगा—अपने लिये भी और दूसरोंके लिये भी।

भारतीय दर्शनोंमें पूर्वोक्त भावना या आत्मभावनाको प्रधानता दी गयी है। प्राणिमात्रमें भगवान् विराज रहे हैं, मैं भी वही हूँ हम सब एक ही ब्रह्मके अंश हैं, तब फिर दुविधा, अलगाव वा संघर्ष क्यों? हिंसा, द्वेष, कलह—ये सब अज्ञानमूलक हैं। अपने स्वरूपको ठीकसे न जानने और समस्त प्राणियोंमें व्याप्त अपने-ही-जैसे उस चैतन्यमूर्ति ब्रह्मको भूल जानेके कारण ही, जो ब्रह्म मेरेमें भी हैं, तेरेमें भी हैं और सभीमें समानरूपसे व्याप्त हैं। आत्मभावनासे व्यक्ति यह विचार करेगा कि चैतन्यस्वरूप आत्मा जैसी मेरी है, वैसी ही दूसरोंकी है। शारीरिक सम्बन्धोंसे चाहे जगत्‌के प्राणी भिन्न-भिन्न मालूम देते हैं, पर स्वरूपतः सब एक ही हैं। फिर किसको पराया मानें, किससे लड़ें-झगड़ें। दूसरोंकी हिंसा मूलतः अपनी ही हिंसा है। अपने मनमें किंचित् मात्र भी हिंसा या विकारभाव आ गया तो चाहे दूसरेका कुछ भी नुकसान न हो, पर अपने आत्म-गुणोंकी हिंसा तो हो ही गयी। वस्तुतः दूसरोंको मारना ही हिंसा नहीं है, अपने मनमें दुर्भाव पैदा होना ही अपनी हिंसा है। आध्यात्मिक जैनदर्शनने तो इस बातपर खूब जोर दिया है। हिंसा और अहिंसाकी अनेक सूक्ष्म व्याख्याएँ जैनदर्शनमें पायी जाती हैं और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि स्थावर जीवों और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, इन ( चलने-फिरनेवाले ) जीवोंकी रक्षाके लिये खूब सावधानी रखनेका विधान किया गया है।

हमारा आदर्श अहिंसाका होते हुए भी जीवन-व्यवहारमें हिंसा अनिवार्य है। इसलिये दूसरे जीवोंके साथ हमें कैसा व्यवहार करना चाहिये? हिंसाका पाप कम-से-कम कैसे लगे? और उसके लिये हमें अपने जीवनको कैसा बनाना चाहिये? इसका भी बहुत सुन्दर विधान सनातन, जैन, बौद्ध आदि धर्मोंके ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। हिंसाको कम करनेके लिये सबसे अधिक आवश्यकता है संयमकी। इसलिये अहिंसाके विकासके लिये संयम-धर्म अनिवार्य है। संयमका अर्थ है—अपनी इन्द्रियों और मनको काबूमें लाना। आवश्यकताओंको कम करते जाना। शारीरिक, मानसिक, वाचिक—तीनों प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें कमी या संकोच करते रहना ही अहिंसाकी ओर बढ़ना है। हम अज्ञानवश अपनी आवश्यकताओंको बढ़ाते रहते हैं, अनावश्यकताओंको आवश्यकताएँ मान बैठते हैं और इसीलिये संग्रह और उपभोगकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। जिन व्यक्तियोंको जीवन धारण करनेके लिये जिन-जिन वस्तुओंकी जितने परिमाणमें आवश्यकता है, उन्हें उतनी मिल नहीं पातीं; अतः वे दुखी होते हैं, दूसरोंसे ईर्ष्या-द्वेष रखने लगते हैं। वास्तवमें वस्तुओंकी कमी नहीं है। कई व्यक्ति अपनी शक्ति और सत्ताके बल-पर वस्तुओंका अधिक संग्रह कर लेते हैं, आवश्यकता होनेपर भी दूसरोंको नहीं देते। इसीलिये संघर्ष छिड़ते हैं। एक-एक इंच जमीन, धन और स्त्रीके लिये महायुद्ध छिड़ते हैं, लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंका संहार होता है। धन-मालकी बेसुमार बर्बादी होती है। यदि हम बाँट-बाँटकर खाना सीखें, दूसरोंकी आवश्यकताओंका भी ध्यान रखें और अपनी आवश्यकताओंको घटाते जायँ तो ये सारी बर्बादियाँ और युद्ध सहज ही रुक सकते हैं। हम अपनी इन्द्रियोंके गुलाम बने हुए हैं और चञ्चल मनकी लहरोंके पीछे भागते-फिरते हैं। यही असंयम और हिंसाका कारण है, यदि हम अपनी विलासिताके दास न बनें, फैशनके फितूरमें न उलझें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्व्यसनोंमें न पड़ें और संयमके मार्गपर चलें तो स्वयं अपरिमित सुख-शान्तिका अनुभव करेंगे और दूसरोंकी सुखप्राप्तिमें भी सहज सहायक होंगे। इच्छाएँ और तृष्णाएँ तो अनन्त हैं। उनके चक्करमें पड़नेपर तो अशान्ति ही मिलेगी। अहिंसा और शान्तिके लिये तो संयम अनिवार्य है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि हम दूसरोंके साथ कैसा व्यवहार करें। इसके लिये चार भावनाओंका निरूपण किया गया है—मैत्री, कारुण्य, प्रमोद और मध्यस्थ। 'समेषु मैत्री'—जो व्यक्ति हमारे समान स्थितिवाले हैं, उनके साथ मित्रवत्—मैत्री व्यवहार हो; क्योंकि मित्रता समान वय, रुचि और स्वभाववालेके साथ ही हो सकती है। विषमके साथ मैत्री नहीं होती; यदि कोई कर भी ले तो टिकती नहीं। दूसरी भावना है कारुण्यकी। वह दीन और दुखी जनोंके प्रति होती है। किसीको किसी भी प्रकारके कष्टमें देखकर हमारे मनमें जो कम्पन होता है, वही करुणा है। हम उसके दुःख-निवारणके लिये बेचैन-से हो जायँ; जहाँतक उसका दुःख दूर न हो, हमें चैन न पड़े और उसका दुःख दूर करके ही हम शान्तिकी साँस लें। यही 'कारुण्य' भावनाका परिणाम है। तीसरी भावना है 'प्रमोद।' उसके लिये कहा गया है—'गुणिषु प्रमोदम्'। किसी भी व्यक्तिमें अपनेसे अधिक कोई भी अच्छी बात या विशेषता देखकर मनका प्रफुल्लित होना ही प्रमोद है। दूसरोंकी उन्नति देखकर हम हर्षित हों, ईर्ष्या न करें, दूसरोंके गुणोंके विकासमें सहायक हों, बाधक नहीं। यदि इस तरहका हमारा व्यवहार हो और एक दूसरेके उत्कर्षमें सहयोगी बनें तो यह संसार स्वर्ग बन जाय। चौथी भावना है—मध्यस्थ—'माध्यस्थ्यभावो विपरीतवृत्तौ'। अर्थात् जो विपरीत प्रवृत्तिवाले हैं—दुष्ट हैं, हित शिक्षा देनेपर भी जो आक्रोश धारण करते हैं, उपकारी व्यक्तिसे भी जो दुर्व्यवहार करते हैं, ऐसे अधमजनोंके प्रति हमारी उपेक्षा-वृत्ति हो, द्वेष नहीं। हम अपने संतुलनको न खोवें। वह दुष्ट है तो हम दुष्ट क्यों बनें? यदि वह क्रोध करता है तो हम उसके समान क्रोधी क्यों बनें! हमारा तो ऐसे व्यक्तियोंके प्रति कारुण्य-भाव ही हो। कब ये पथभ्रान्त अज्ञानी जीव इन दुष्प्रवृत्तियोंसे हटकर सन्मार्गपर आयेंगे, उनका कैसे उद्धार होगा—यही हमारी चिन्ताका विषय हो। पर उनके प्रति तनिक भी दुर्भाव मनमें न आने पाये। हमारे महापुरुषोंने अपने जीवनमें इन भावनाओंको मूर्तरूप दिया था। हम भी उन्हींकी संतान हैं; अतः हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम समस्त प्राणिमात्रके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध बढ़ाते हुए दूसरोंके दुःख-निवारणमें प्रयत्नशील हों, उनके उत्कर्षमें सहयोग दें। उनकी विपत्तिमें हाथ बटायें, उनके सुखमें बाधक न बनें। उनके दुःखको अपना दुःख मानें। अपने पास जो भी धन, शक्ति, बुद्धि है उसका उपयोग दूसरोंकी सेवाके लिये करें—पातञ्जलयोग-दर्शनमें इसीको मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाकी भावना कहा है। वैसे देखें कोई दूसरा है ही नहीं। वह भी अपना ही बन्धु है। हमने भ्रान्तिवश उसे पराया मान रक्खा है। इस तरहकी पारस्परिक सहयोगकी भावना और प्रवृत्तिसे ही समाज, देश और विश्वका कल्याण हो सकता है। जिनके पास जो वस्तु अधिक है, वे उसे दूसरोंको देनेका मार्ग खुला रक्खें। धनको अपना न मानकर, वह समाजके व्यक्तियोंके द्वारा ही उसे मिला है, इसलिये अपनेको उसका ट्रष्टी मानें। जब जिन्हें जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, यदि वह अपने पास है तो देनेमें संकोच तो हो ही नहीं, वरं उत्साह हो। हम एक दूसरेके पूरक बनें। सबमें भगवान्के दर्शन करें। जनसेवा ही सच्ची प्रभु-सेवा है। एवं सबके कल्याणमें ही अपना कल्याण है। इसे सदा ध्यानमें रक्खें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मृत्युके बाद—एक शास्त्रीय दृष्टि

( लेखक—साहित्य महोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पङ्कज' शास्त्री, एम्० ए०, व्या० सा० न्यायाचार्य, सांख्य-योग-वेदान्ताचार्य )

[ गताङ्कसे आगे ]

वह जीवात्मा सुषुप्तिका अन्त होनेपर जागता है। अथच उसके लय होनेका भी कारण—स्थान वही है। जो जीवात्मा सोता है, वही जागता है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया—ये चारों जीवात्माकी ही अवस्थाएँ हैं। इन चारोंके क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म ही विभु हैं। गोस्वामी तुलसीके शब्दोंमें—

**सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।**
**जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥**

मृत्युकालमें सूक्ष्मशरीरसहित यह जीवात्मा स्थूल-शरीरसे निकल जाता है। उसके बाद स्थूल कायामें उष्णता नहीं रह जाती। इससे सिद्ध होता है कि गरमी सूक्ष्म-शरीरकी रहती है और सूक्ष्मशरीर तेजस्-तत्त्व-प्रधान होता है।

गीता २ के २२ श्लोकसे स्पष्ट हो जाता है कि जीवके कई शरीर होते हैं। प्रसिद्ध श्लोक यह है—

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
**नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-**
**न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥**

'जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्रोंको त्यागकर नये वस्त्रोंको धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीरको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।'

स्थूल, सूक्ष्म ( लिङ्ग ) तथा कारण भेदसे शरीर भी तीन प्रकारके होते हैं। स्थूलशरीर दफना दिया जाता या जला दिया जाता है। फिर भी सूक्ष्म, जिसे लिङ्ग शरीर कहते हैं तथा कारण, जिसे वासनामय शरीर कहते हैं, अवशिष्ट रहते हैं। दूसरे शरीरमें जाते समय तीनों बदल जाते हैं। सांख्य-प्रवचन-भाष्यके तीसरे अध्यायमें कई सूत्र शरीरोत्पत्ति-सम्बन्धके आये हैं।

**तस्माच्छरीरस्य—तस्मात् त्रयोविंशतितत्त्वात् स्थूल-सूक्ष्मशरीरद्वयस्यारम्भः—**

२३ तत्त्वोंसे स्थूल तथा सूक्ष्मशरीरोंकी रचना हुई है।

**त्रयोविंशतितत्त्वेऽवस्थितो हि पुरुषस्तेनैवोपाधिना पूर्वकृतकर्मभोगार्थं देहाद्देहं संसरति।**

२३ तत्त्वोंके शरीरमें स्थित पुरुष अपने पूर्वकृत कर्मोंके फलोपभोगके लिये एक देहसे दूसरीमें जाता है। लिखा है—

**मानसं मनसेवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।**
**वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव तु कायिकम्॥**

स्थूलशरीर—

**मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा।**

स्थूलशरीर माता-पिताके रजोवीर्यद्वारा निर्मित होता है।

**लिङ्ग शरीर—**

**सप्तदशैकलिङ्गम्—**

यह सूक्ष्म शरीर भी आधाराधेयभावसे दो प्रकारका होता है। १७ तत्त्वोंके मिलनेसे लिङ्ग शरीर बनता है। एकादश इन्द्रियाँ, पञ्च-तन्मात्राएँ तथा बुद्धि—अहंकार बुद्धिके ही अन्तर्गत माना गया है। अतः सांख्यानुसार यह लिङ्ग शरीर १७ तत्त्वोंका तथा पुराणोंके अनुसार अहंकारको लेकर १८ का होता है। स्थूलकी भाँति लिङ्ग देहके अवयव नहीं होते। प्राण अन्तःकरणका ही वृत्ति-भेद है। जीवित शरीरमें पञ्च-कोश होते हैं—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय कोश। मृत शरीरमें अन्नमय कोश जला दिया जाता है।

उत्क्रमणके समय योगवासिष्ठके अनुसार यह जीव पुर्यष्टक ( पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि तथा अहंकार ) को साथ लिये चलता है। अर्चिरादि मार्गमें जो अर्चि, अहः, पक्ष, अयन, संवत्सर, वायु और विद्युत् आदि बतलाये गये हैं, वे उन-उन नाम और लोकोंके अभिमानी देवता या मानवाकृति पुरुष हैं। वेदान्त-दर्शनमें इन्हें—'अतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्'—ये अतिवाहिक अर्थात् एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुँचा देनेवाले कहे गये हैं। ब्रह्मविद्याके उपासक पुरुष पहले अर्चिको प्राप्त होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, अर्चिसे दिवसको, दिवससे शुक्लपक्षको, शुक्लपक्षसे उत्तरायणके छः महीनोंको, छः महीनोंसे संवत्सरको, संवत्सरसे सूर्यको, सूर्यसे चन्द्रमाको, चन्द्रमासे विद्युत्को। वहाँसे अमानव पुरुष इनको ब्रह्मके पास पहुँचा देता है।

जब यह पुरुष इस मर्त्यलोकसे ब्रह्मलोकको जाता है, तब वह वायुको प्राप्त होता है। वायु उसके लिये रथ-चक्रके छिद्रकी भाँति रास्ता देता है। उस रास्तेसे वह ऊपर चढ़ता है। फिर वह सूर्यको प्राप्त होता है। सूर्य उसे वहाँ लम्बर नामक बाद्यमें रहनेवाले छिद्रके सदृश राह देता है। उस रास्तेसे ऊपर उठकर वह चन्द्रमाको प्राप्त होता है। चन्द्रमा उसे नगारेके छिद्रके सदृश रास्ता दे देता है। उस रास्तेसे ऊपर उठकर वह शोकरहित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। सूर्य इस लोक तथा परलोकका माध्यम है। सूर्यकी ये रश्मियाँ इस लोकमें और उस सूर्यलोकमें—दोनों जगह गमनागमन करती हैं। वे सूर्यमण्डलसे निकलती हुई शरीरकी नाड़ियोंमें व्याप्त हो रही हैं तथा नाड़ियोंसे निकलती हुई सूर्यमें फैली हुई हैं। लिखा है—

**एता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात् प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः।** ( छान्दोग्योपनिषद् ८।६।२)

उत्क्रमण—

**शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।**
**गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥**
**श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।**
**अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥**
**उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।**
**विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥**
( गीता १५।८-१० )

जिस समय जीवात्मा एकसे अधिक शरीरोंमें संचार करता है, उस समय उसे ऐसा जान पड़ता है कि मैं ही कर्ता और भोक्ता हूँ। जिस समय कोई मनुष्य राजकीय विलासोंसे सम्पन्न किसी स्थानमें निवास करता है, उस समय उसे देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि वह बहुत धनवान् तथा विलासी है। ठीक, इस भाँति जीवात्माकी अहंकर्तावाली भावना बहुत अधिक तीव्र एवं बलवती हो जाती है। जब जीवात्मा शरीरका त्याग करता है, तब वह इन्द्रियोंका सारा साज-सामान भी अपने साथ ही ले जाता है। अस्त होनेवाला सूर्य जिस प्रकार लोगोंके नेत्रोंका प्रकाश भी अपने साथ ले जाता है अथवा वायु जिस प्रकार पुष्प, चन्दन, केसर, कस्तूरी तथा फल-फूलोंका परिमल लूट ले जाती है, ठीक उसी प्रकार शरीरको छोड़कर जानेके समय उसका स्वामी जीवात्मा भी मन तथा श्रोत्रादि छहों इन्द्रियोंको अपने साथ ले जाता है। यहाँ स्मरणीय है कि स्थूल कर्ण, नासिका, नेत्रादि नहीं, बल्कि उनकी सूक्ष्म शक्तियाँ अभिप्रेत हैं। वेदमें कहा है—'कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। चाक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु।' इससे स्पष्ट है कि दोनों कानोंसे श्रोत्र तथा दोनों नेत्रोंसे चक्षु भिन्न वस्तुएँ हैं अर्थात् उनके सूक्ष्म तत्त्व हैं।

जिस प्रकार बुझ जानेपर दीपक अपनी प्रभा अपने साथ ले जाता है, उसी प्रकार इस जीवात्मा तथा शरीरके सम्बन्धमें होता है। यहाँ ईश्वर शब्दसे यह भाव है कि यह जीवात्मा मन-बुद्धिसहित समस्त इन्द्रियोंका स्वामी तथा शासक है। मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंसे युक्त आत्माको ही भोक्ता कहा गया है।

## उत्क्रमणके दो सनातन मार्ग

उत्क्रमणके दो ही शाश्वत तथा सनातन मार्ग हैं—एक उत्तरायण और दूसरा दक्षिणायन। प्रथमको ही अर्चिरादि-मार्ग, सुषुम्णामार्ग, देवयान मार्ग आदि नामोंसे अभिहित किया गया है। दूसरेको धूम-मार्ग, पितृयान तथा दक्षिणायनकी संज्ञा दी गयी है। काल-गणनाकी यह निम्नलिखित प्रक्रिया श्रीमद्भागवतपुराणके ३ स्कन्ध ११ अ० में इस प्रकार चलती है—

दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है। तीन अणुओंके मिलनेसे एक 'त्रसरेणु' कहलाता है, जो खिड़कियों या जालमार्गसे होकर आयी हुई सूर्यकी रश्मियोंके प्रकाशमें आकाशमें उड़ता देखा जाता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्यको जितना काल लगता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं। इससे सौगुना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल 'वेध' कहलाता है और तीन वेधका एक 'लव' होता है। तीन लवको एक निमेष और तीन निमेषको एक 'क्षण' कहते हैं। पाँच क्षणोंकी एक 'काष्ठा' होती है और पंद्रह काष्ठाका एक 'लघु' होता है। पंद्रह लघुओंकी एक नाड़िका ( दण्ड ) होती है और इस प्रकार दो नाड़िकाओंका एक मुहूर्त बनता है और छः या सात नाड़िकाओंका एक 'प्रहर' बनता है। प्रहरको 'याम' भी कहते हैं। यह दिन या रात्रिका चौथा भाग होता है। चार प्रहरका दिन और उतनेकी ही एक रात्रि होती है। पंद्रह दिनका एक पक्ष होता है। कृष्ण तथा शुक्लके भेदसे यह दो प्रकारका होता है। दो पक्षोंका एक 'मास' होता है, जो पितरोंका एक दिन-रात है। दो मासकी एक ऋतु और छः मासका एक 'अयन' होता है। इण् (गतौ) धातुसे निष्पन्न अयनका अर्थ गमन होता है। दक्षिणायन तथा उत्तरायणके भेदसे अयन दो प्रकारका होता है। ये दोनों मिलकर देवताओंका एक दिन-रात होता है। दक्षिणायन देवताओंकी एक रात तथा उत्तरायण एक दिन कहलाता है। इस प्रकार मनुष्यकी परमायु सौ वर्ष कही जाती है। चन्द्रमादि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्र तथा समस्त तारागणके अधिष्ठाता कालरूप भगवान् भास्कर परमाणुसे लेकर संवत्सरपर्यन्त द्वादश राशिरूप भुवनकोशकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं। वेदमें लिखा है—

**द्वे सृती अन्वहं देवानामुत मर्त्यानाम्।**

अर्थात् देवता तथा मनुष्यके ये ही दो सनातन निर्दिष्ट मार्ग हैं।

**शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।**
**एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः॥**
( गीता ८ । २६ )

इस जगत्के ये दो प्रकारके—शुक्ल तथा कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग शाश्वत माने गये हैं। इनमें एकके द्वारा गया हुआ नहीं लौटता तथा दूसरेसे गया हुआ जीव पुनः लौट आता है अर्थात् जन्म-मरणके चक्रमें पड़ जाता है। गीतामें लिखा है—

**नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन।**
**तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥**
( ८ । २७ )

भावार्थ—हे पृथापुत्र अर्जुन! इस प्रकार इन दोनों सनातन मार्गोंको यथावत् जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता। अतः हे अर्जुन! तू सब कालोंमें योगसे युक्त हो मेरी प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो।

यहाँ कालका अर्थ कालाभिमानी देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाला मार्ग है। उत्क्रमणके लिये उत्तरायणका समय ही प्रशंसित है।

श्रीमद्भागवत (१ स्क० ९ अ० २९) में आया है—

**धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः।**
**यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः॥**

अर्थात् भीष्मपितामह इस प्रकार जब धर्मका प्रवचन कर रहे थे कि वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा, जिसे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्परायण योगीलोग चाहा करते हैं।

यदि अर्चिमार्गका अधिकारी रात्रिमें मरेगा तो उसका दिनके अभिमानी देवताके साथ सम्बन्ध दिन होनेपर ही हो सकेगा। इस बीच वह अग्निके अभिमानी देवताके अधिकारमें ही रहेगा। कृष्णपक्षमें मरनेवालेका शुक्ल-पक्षाभिमानी देवताके साथ सम्बन्ध शुक्लपक्ष आनेपर ही होगा। इसके बीचकी अवधिमें वह दिनके अभिमानी देवताके अधिकारमें रहेगा। यदि दक्षिणायनमें मरेगा तो उसका उत्तरायणाभिमानी देवताके साथ सम्बन्ध उत्तरायण आनेपर ही होगा। इसके बीच वह शुक्ल-पक्षाभिमानी देवताके अधिकारमें रहेगा। गीता अ० ८ के २४, २५ में उत्तरायण तथा दक्षिणायनका उल्लेख हुआ है।

**अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।**
**तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥**

जिस मार्गमें ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, दिनका अभिमानी देवता है, शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है और उत्तरायणके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगिजन उपर्युक्त देवगणोंद्वारा क्रमसे ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

साधारणतः यही नियम है कि जिस समय मृत्यु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है, उस समय मनुष्य अपने मनमें जिसका ध्यान या स्मरण करता है, वह वही हो जाता है। जिस प्रकार कोई भयभीत होकर वायुवेगसे भागता हुआ अचानक कूपमें गिर पड़े, उस समय उसके गिरनेसे पहले उसे सँभालनेके लिये आगे कोई वस्तु नहीं रहे तो गिरनेके सिवा और कोई उपाय नहीं रह जाता। इसी प्रकार—'अन्ते मतिः सा गतिः' न्यायेन मृत्यु-कालमें जीवके सामने जो कल्पना आकर पूर्वाभ्यास या संस्कार-बलसे खड़ी हो जाती है, उसी कल्पनाके रूपके साथ मिल जानेके सिवा उस बेचारेके लिये कोई दूसरा उपाय रह नहीं जाता और यह नियम है कि मरते समय जीवको जिसका स्मरण होता है, उसी योनिमें वह जाता है।

गीतोक्त अग्निसे तात्पर्य यह है कि ज्ञानका मूल आधार शरीरगत उष्णता है और प्राणोंके प्रयाणके समय इस शरीरस्थ अग्निके भरपूर बलकी आवश्यकता होती है। उस समय शरीरके भीतर तो अग्निकी ज्योतिका प्रकाश रहना ही चाहिये और बाहर शुक्ल पक्ष, दिवस और उत्तरायणके छः महीनोंमेंसे कोई महीना अवश्य होना चाहिये। इस प्रकार सभी अच्छे योग मिलने चाहिये। ऐसे योगमें ब्रह्मज्ञानी देह-त्याग करते हैं और ब्रह्मस्वरूपमें मिल जाते हैं। इस श्लोकमें उपपादित योगका इतना अधिक माहात्म्य है और यही मोक्ष-धाममें पहुँचनेका सरल मार्ग है। इस मार्गकी पहली सीढ़ी शरीरगत अग्नि, दूसरी सीढ़ी उस अग्निकी ज्योति, तीसरी सीढ़ी दिनका समय, चौथी सीढ़ी शुक्ल पक्ष और इसके बाद पाँचवीं या सबसे ऊपरकी सीढ़ी उत्तरायणके छः महीनोंमेंसे कोई एक महीना है। इसीको अर्चिरादि अर्थात् सूर्यकी किरणोंवाला मार्ग कहते हैं।

गीता-तत्त्व-विवेचनीमें लिखा है—'यहाँ ज्योतिः पद 'अग्नि' का विशेषण है और 'अग्निः' पद अग्नि अभिमानी-देवताका वाचक है। उपनिषदोंमें इसी देवता-को 'अर्चिः' कहा गया है। इसका स्वरूप दिव्य प्रकाशमय है। पृथ्वीके ऊपर समुद्रसहित सब देशोंमें इसका अधिकार है तथा उत्तरायण मार्गमें जानेवाले अधिकारीका दिनके अभिमानी देवतासे सम्बन्ध करा देना इसका काम है। उत्तरायण मार्गसे जानेवाला जो उपासक रात्रिमें शरीर-त्याग करता है, उसे यह रातभर अपने अधिकारमें रखकर दिनके उदय होनेपर दिनके अभिमानी देवताके अधीन कर देता है और जो दिनमें मरता है, उसे तुरंत ही दिनके अधिकारी अभिमानी देवताको सौंप देता है। 'अहः' पद दिनके अभिमानी देवताका वाचक है, इसका स्वरूप अग्नि-अभिमानी देवताकी अपेक्षा बहुत अधिक दिव्य प्रकाश-मय है। जहाँतक पृथ्वीलोककी सीमा है अर्थात् जितनी दूरतक आकाशमें पृथ्वीके वायुमण्डलका सम्बन्ध है, वहाँतक इसका अधिकार है और उत्तरायण मार्गसे जानेवाले उपासकको शुक्ल पक्षके अभिमानी देवतासे सम्बन्ध करा देना ही इसका काम है। अभिप्राय यह है कि उपासक यदि कृष्णपक्षमें मरता है तो तुरंत ही अपनी सीमातक ले जाकर यह उसे शुक्ल-पक्षके अभिमानीके अधीन कर देता है। 'शुक्लः' पद शुक्ल पक्षाभिमानी देवताका वाचक है। इसका स्वरूप दिनके अभिमानी देवतासे भी अधिक दिव्य प्रकाशमय है। भूलोककी सीमासे बाहर अन्तरिक्षलोकमें—जिन लोकों में पंद्रह दिनके दिन और उतने ही समयकी रात्रि होती है, वहाँतक इसका अधिकार है और उत्तरायण मार्गसे जानेवाले अधिकारीको अपनी सीमासे पार करके उत्तरायणके अधिकारी देवताके अधीन कर देना इसका काम है। यह भी पहलेकी भाँति यदि साधक दक्षिणा-यनमें इसके अधिकारमें आता है तो उत्तरायणका समय आनेतक उसे अपने अधिकारमें रखकर और यदि उत्तरायणमें आता है तो तुरंत ही अपनी सीमासे पार करके उत्तरायण-अभिमानी देवताके अधिकारमें सौंप देता है।

जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तर दिशाकी ओर चलते हैं, अर्थात् मकरसे मिथुनराशितककी छमाहीको उत्तरायण कहते हैं। उस उत्तरायण-कालाभिमानी देवताका वाचक यहाँ 'षण्मासा उत्तरायणम्' पद है। इसका स्वरूप शुक्लपक्षाभिमानी देवतासे भी बढ़कर दिव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशमय है। अन्तरिक्षलोकके ऊपर जिन लोकोंमें छः महीनोंके दिन एवं उतने ही समयकी रात्रि होती है, वहाँतक इसका अधिकार है और उत्तरायणमार्गसे परमधामको जानेवाले अधिकारीको अपनी सीमासे पार करके उपनिषदोंमें वर्णित संवत्सरके अभिमानी देवताके पास पहुँचा देना इसका काम है। वहाँसे आगे संवत्सर-का अभिमानी देवता उसे सूर्यलोकमें पहुँचा देता है। वहाँसे क्रमशः आदित्याभिमानी देवताके अधिकारमें पहुँचा देता है। फिर वहाँपर भगवान्के परमधामसे भगवान्के पार्षद उसे परमधाममें ले जाते हैं।

दक्षिणायन—

**धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।**
**तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥**
(८। २५)

मृत्युके समय वायु और कफका प्रकोप होता है, जिससे अन्तःकरणमें अन्धकार भर जाता है। उस समय सभी इन्द्रियाँ लकड़ीकी तरह जड हो जाती हैं, स्मृति भ्रममें पड़ जाती है, मन बहुत ही चञ्चल और क्षुब्ध हो जाता है और प्राण चारों ओरसे दबकर घुटने लगते हैं। शरीरस्थ अग्निका तेज नष्ट हो जाता है और चारों ओर केवल धुआँ-ही-धुआँ फैल जाता है, जिससे शरीर-की जीवन-कलाका अन्त हो जाता है। जिस प्रकार चन्द्रमाके सामने जलसे भरा काला बादल आ जानेपर न तो पूरा अँधेरा ही रहता है और न पूरा-पूरा उजाला ही रहता है, बल्कि कुछ-कुछ धुँधला-सा प्रकाश रहता है, उसी प्रकार उस समय जीवमें एक ऐसी स्तब्धता-सी आ जाती है, जिसमें वह मरा हुआ भी नहीं होता और न होशमें ही रहता है तथा उसका जीवन मरनेके किनारेपर पहुँचकर रुक-सा जाता है। बस, प्राणोंके प्रयाणके समय इसी प्रकारकी दुर्दशा होती है। यह तो हुई शरीरकी अवस्था। अब यदि बाहरकी परिस्थिति भी इस प्रकार प्रतिकूल हो अर्थात् कृष्णपक्ष हो, रातका समय हो और उसपर भी दक्षिणायनके छः महीनोंमेंसे कोई महीना हो अर्थात् जिसके प्राणोंके प्रयाणके समय जन्म-मरणका चक्र प्रचलित रखनेवाले इस प्रकारके लक्षण एक साथ एकत्र हों, भला, उसके कानोंको ब्रह्म-स्वरूपकी प्राप्तिकी बात कैसी सुनायी पड़ सकती है। जिस मनुष्यका देहपात ऐसी दुरवस्थामें होता है, वह यदि बहुत होता है तो चन्द्रलोकतक ही जा सकता है। जन्म-मरणके ग्रामतक पहुँचानेवाला यही कष्टप्रद धूममार्ग है। (हिंदी) ज्ञानेश्वरीसे—

यदि अन्त समयमें जीव अर्चिरादि-मार्ग भूल जाय और धूम्रमार्गमें लग जाय तो फिर संसारके बन्धनमें पड़ जाता है।

यहाँ 'धूमः' पद धूमाभिमानी देवताका अर्थात् अन्धकारके अभिमानी देवताका वाचक है। उसका स्वरूप अन्धकारमय होता है। 'रात्रिः' पद भी रात्रिके अभिमानी देवताका वाचक है। 'कृष्णः' पद कृष्णपक्षाभिमानी देवताका वाचक है और दक्षिणायनम् कर्कसे लेकर धनुराशितककी छमाहीके अभिमानी देवताका वाचक है। ये उपर्युक्त देवता मृत पुरुषको पितृलोकाभिमानी साधकको आकाशाभिमानी देवताके पास और वह आकाशाभिमानी देवता चन्द्रलोकमें पहुँचा देता है। इस प्रकार ब्रह्माके लोकतक सभी आवागमनशील लोक हैं।

## योगमार्गसे उत्क्रमण

श्रीमद्भागवतके स्कन्ध २ अ० २ में श्रीशुकदेव मुनिने सद्योमुक्ति तथा क्रममुक्तिका उपदेश देते हुए योगमार्गसे उत्क्रमण करनेकी प्रक्रिया बतलायी है। ब्रह्मनिष्ठ योगीको इस प्रकार शरीर-त्याग करना चाहिये—

**स्वपार्ष्णिनाऽऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं**
**स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः॥१९॥**
**नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मा-**
**दुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः॥**
**तस्माद् भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत**
**निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः।**
**स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टि-**
**र्निर्भिद्य मूर्धन् विसृजेत् परं गतः॥२१॥**

अर्थात् पहले एड़ीसे अपनी गुदाको दबाकर स्थिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय और तब बिना घबराहटके प्राणवायुको षट्चक्र-भेदनकी रीतिसे ऊपर ले जाय। मनस्वी योगीको चाहिये कि नाभिचक्र मणिपूरकमें स्थित वायुको हृदय-चक्र अनाहतमें, वहाँसे उदानवायुके द्वारा वक्षःस्थलके ऊपर विशुद्ध चक्रमें, फिर उस वायुको धीरे-धीरे तालुमूलमें विशुद्धचक्रके अग्रभागमें चढ़ा दे। तदनन्तर दो आँख, दो कान, दो नासाछिद्रोंको और मुख—इन सातों छिद्रोंको रोककर उस तालुमूलमें स्थित वायुको भौंहोंके बीच आज्ञाचक्रमें ले जाय। यदि किसी लोकमें जानेकी इच्छा न हो तो आधी घड़ीतक उस वायुको वहीं रोककर स्थिर लक्ष्यके साथ उसे सहस्रारमें ले जाकर परमात्मामें स्थित हो जाय। इसके बाद ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके शरीर-इन्द्रियादिको छोड़ दे।

दक्ष-यज्ञमें सतीके देहत्यागके अवसरपर भी इसी प्रणालीका उल्लेख हुआ है। ज्ञानेश्वरीके छठे अध्यायमें संत ज्ञानदेवने भी यौगिक उत्क्रमणके लिये इसी पद्धतिको निर्दिष्ट किया है। योगियोंका शरीर वायुकी भाँति सूक्ष्म होता है। योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णाके द्वारा प्रस्थान करता है। आकाशमार्गसे अग्निलोक जाता, जहाँ उसके बचे-खुचे मल भी जल जाते हैं। इसके ऊपर भगवान्‌के शिशुमार नामक ज्योतिर्मय चक्रपर पहुँचता है। महाप्रयाणके लिये ब्रह्मसूत्र पाद २ अध्याय ४ सूत्र १७ में उल्लिखित हुआ है—

**तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया।**

स्थूलशरीरसे निकलते समय उस जीवात्माका निवास जो हृदय है, उसके अग्रभागमें प्रकाश हो जाता है। उस प्रकाशमें जिसके निकलनेका द्वार प्रकाशित हो गया है, ऐसा वह विद्वान् ब्रह्मविद्याके प्रभावसे तथा उस क्रियाका शेष अङ्ग जो ब्रह्मलोकमें गमन है, उस गमन-विषयके संस्कारकी स्मृतिके योगसे हृदयस्थ परमेश्वरकी कृपासे अनुगृहीत हुआ एक सौ नाड़ियोंसे अधिक जो एक (सुषुम्णा) नाड़ी है, उसके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे निकलता है।

**शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-**
**स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।**
**तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति**
**विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥**

अर्थात् इस जीवात्माके हृदयमें एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उनमेंसे एक मूर्धा ( कपाल ) की ओर निकली हुई है। इसीको सुषुम्णा कहते हैं। इसके द्वारा ऊपर जाकर मनुष्य अमृतभावको प्राप्त होता है। दूसरी नाड़ियाँ मरणकालमें नाना योनियोंमें ले जानेवाली हैं।

यह तो आद्यशंकराचार्यके शारीरकभाष्यानुकूल है और ब्रह्मज्ञानी योगियोंका मार्ग है। भक्तोंके लिये यहाँ क्या गुंजाइश हो सकती है, इसका स्पष्ट संकेत आचार्य रामानुजके श्रीभाष्यद्वारा हुआ है। लिखा है—

**अनया नाडीनां शताधिकया मूर्धन्य नाड्यैव विदुषो गमनम्।···विद्वान् हि परमपुरुषाराधनभूतात्यर्थप्रियविद्यासामर्थ्याद्विद्या शेषभूत तयाऽऽत्मनोऽत्यर्थप्रियगत्यनुस्मरणयोगाच्च प्रसन्नेन हार्देन परमपुरुषेणानुगृहीतो भवति। ततश्च तदोकः—तस्य जीवस्य स्थानं हृदयमग्रज्वलनं भवति। अग्रे ज्वलनं प्रकाशनं यस्य, तदिदमग्रज्वलनम्। परमपुरुषप्रसादात्प्रकाशितद्वारो विद्वान् तां नाडीं विजानातीति तया विदुषो गतिरुपपद्यते।**

भावार्थ यह है कि भक्ति एवं आराधनाद्वारा प्रसन्न नारायण सुषुम्णाके द्वारपर, जहाँसे उत्क्रमण होना चाहिये, मुस्कुराते हुए खड़े हो जाते हैं। वहाँ उनकी मुस्कानसे जो प्रकाश होता है, उसी प्रकाशित द्वारसे भक्तको उस सुषुम्णा नाड़ीकी ठीक-ठीक पहचान हो जाती है और वे उसीसे उत्क्रमित हो जाते हैं। सगुणोपासकके लिये यही रास्ता निकल आता है।

जीवन्मुक्त तथा विदेहमुक्तोंके लिये उत्क्रमणका प्रश्न ही नहीं उठता।

श्रुति कहती है—

**न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति। अत्रैव समवलीयन्ते। ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।** ( बृहदा० ४।४।६)

अर्थात् उसके प्राण उत्क्रान्तिको नहीं प्राप्त होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहींपर लीन हो जाते हैं। यह ब्रह्म हुआ ही ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

महर्षि व्यासके—

**वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च तथा सोऽध्यते तदुपगमादिभ्यः।**

—इन दोनों सूत्रोंके अनुसार तो इस मनुष्यके मरकर एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाते समय वाणी मनमें स्थित होती है, मन प्राणमें, प्राण तेजमें तथा तेज परदेवतामें स्थित होता है। ( छा० उ० ६। ८।६ ) उस समय यह आत्मा नेत्रसे या ब्रह्मरन्ध्रसे अथवा शरीरके अन्य किसी मार्गद्वारा बाहर निकलता है। उसके निकलनेपर उसीके साथ प्राण भी निकलते हैं और प्राणके निकलनेपर सभी इन्द्रियाँ निकलती हैं।

गरुडपुराणके अनुसार ऐसे मनुष्य जिन्हें न तो उत्तरायणका मार्ग मिलता है और जो न दक्षिणायन-मार्गसे चन्द्रलोकतक ही जानेके अधिकारी हैं, उन्हें यमलोकान्तर्गत विविध नरकोंमें जाना पड़ता है। देखिये—

**षडशीति सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः।**

अर्थात् संयमनीपुरीकी सीमा ८६ हजार योजन है।

**अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम्।**
**चत्वारिंशत् तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति॥**

वह प्रेत प्रतिदिन चलता रहता है और एक रात-दिनमें २४७ योजनकी दूरी तय करता है। जीवके उपाधिभूत लिङ्गदेहके द्वारा पुरुष एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है और अपने प्रारब्ध कर्मोंको भोगता हुआ निरन्तर अन्य देहोंकी प्राप्तिके लिये कर्म करता रहता है। भूत, इन्द्रिय और मनका कायरूप स्थूलशरीर इसका भोगाधिष्ठान है। इन दोनोंका परस्पर संगठित होकर कार्य न करना ही प्राणीकी मृत्यु है। श्रीमद्भागवत (३ स्क० अ० ३० ) में लिखा है—

**योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः।**
**त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः॥**

अर्थात् यमलोकका मार्ग निन्यानबे हजार योजन है। इतने लंबे मार्गको दो ही तीन मुहूर्तमें तय करके वह नरकमें तरह-तरहकी यन्त्रणाएँ भोगता है। लिखा है—

**क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः**
**संतप्यमानः पथि तप्तवालुके।**
**कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडित-**
**श्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके॥**

अर्थात् भूख-प्यास उसे बेचैन कर देती है तथा घाम, दावानल और लूओंसे वह पच जाता है। ऐसी अवस्थामें जल और विश्राम-स्थानसे रहित उस तप्त-वालुकामय मार्गमें जब उसे एक पग भी आगे बढ़नेकी ताकत नहीं रह जाती, यमदूत उसकी पीठपर कोड़े बरसाते हैं। तब बड़े कष्टसे उसे चलना ही पड़ता है।

मृत्युके सम्बन्धमें उपनिषदोंमें सर्वप्रथम नचिकेताने ही यमाचार्यसे अपनी शङ्का प्रकट की है। कठोपनिषद्में लिखा है—

**येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-**
**ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।**
**एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं**
**वराणामेष वरस्तृतीयः॥**
( १।१।२० )

अर्थात् मनुष्यके मर जानेपर स्वभावतः यह शङ्का प्रकट होती है कि शरीरपात हो जानेके बाद भी आत्मा रह जाती है—कुछ लोग ऐसा मानते हैं; और कुछ जो, नास्तिक श्रेणीके हैं, यही कहते हैं कि शरीर नष्ट हो जानेपर आत्मा नामकी कोई वस्तु नहीं रह जाती। इस आशङ्काका आचार्य यमने बड़ा निश्चयात्मक तथा निर्णयात्मक उत्तर दिया है। पाठक कठोपनिषद्में पढ़ लेनेका कष्ट करें।

अन्तमें पाठकोंसे मेरा निवेदन है कि इस जीवका अनादिसिद्ध बन्धन और उससे मुक्ति दोनों ही उस जगत्कर्ता परमेश्वरके अधीन हैं। इत्यलम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देश किधर जा रहा है ?

( हनुमानप्रसाद पोद्दारका एक प्रवचन कुछ घटा-बढ़ाकर )

देशमें इस समय जो पतनका प्रवाह बह रहा है, वह अत्यन्त भयानक है। दुःखकी बात तो यह है कि इस पतनको उत्थान माना जा रहा है। सभी क्षेत्रोंमें विपरीत-बुद्धि हो गयी है। इसीसे आज हमलोग भगवान्‌को, धर्मको, त्याग-संयमको, सत्य-सदाचारको, अहिंसा-दयाको और कर्तव्यको भूलकर असुरभावापन्न हो रहे हैं।

## सचाई और ईमानदारीका ह्रास

हमारी ईमानदारीका इतना ह्रास हो गया है कि सभी वर्गोंके लोग धनके लिये चोरी, बेईमानी, छल-कपट, मिलावट, परस्वापहरण, हिंसा आदि करनेमें बुद्धिमानी मानने लगे हैं। ईश्वर-धर्मका कोई भय नहीं, कानूनका बचाव होना चाहिये, और जहाँ कानून मनवानेवाले और माननेवाले समझौता करके भागीदारी कर लेते हैं, वहाँ तो कुछ कहने-सुननेकी बात रह ही नहीं जाती। व्यापारीमें तथा अधिकारीवर्गमें चोरी-घूसखोरी आगकी तरह बढ़ रही है और पैसा हो जानेपर यह नहीं देखा जाता कि पैसा किस साधनसे आया है। किसी तरह भी हो, पैसा आया कि उसे समाजके नेता होनेका, विद्वानोंद्वारा आदर पानेका, अधिकारियोंके द्वारा सम्मान पानेका, समाजमें परम सत्कार तथा उच्चस्थान पानेका अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस 'चोर-पूजा' से समाजका बड़ा ही अहित हो रहा है।

मिलावटका मसला बड़ा भयानक है। घी, आटा, तेल, मसाला आदि खाने-पीनेकी चीजोंमें और देशी-विदेशी दवाइयोंमें मिलावट तथा नकली चीजोंकी भरमार हो ही रही थी। अरारोट, मधु ( शहद ), कपूर, केसर, कस्तूरी, चाय आदि ही नहीं, जिनसे देशी दवाएँ बनती हैं—वे अकलकरा, पीपल, काली मिर्च, अशोकछाल, अर्जुन छाल, शिलाजित, कबाबचीनी, काकड़ासिंगी, कायफल, दशमूल, दालचीनी, पितपापड़ा, ब्राह्मी, बंसलोचन आदि सैकड़ों चीजें भी नकली बिक रही हैं। मर्यादी लोग सैंधव नमक खाते हैं, देशी चीनी खाते हैं, पर उन्हें पता नहीं कि समुद्री नमकके कारखानोंमें जमाकर सेंधा नमक और गुड़के या मीलोंके गंदे शीरेमें मिलकर चीनी मिलाकर देशी चीनी बनायी जाती है और अर्थलोलुपताके कारण यह मिलावटका पाप व्यापारके नामपर यत्र-तत्र बढ़ता जा रहा है। हजारों मिलावट करनेवालोंपर मुकद्दमे चले हैं, पर उनकी संख्या तो अगणित है।

## हिंसाका विस्तार

हिंसाका प्रसार बेहद हो रहा है। मानसिक द्वेष-हिंसाकी तो बात ही नहीं, वह तो बहुत बड़े-बड़े ऊँचेपर उड़नेवाले लोगोंमें भी भर गयी है, बाहरी हिंसाकी भी कम बढ़ती नहीं हो रही है। वैष्णव तथा सदासे निरामिषाहारी घरानोंमें मांसाहार आरम्भ हो गया है। अंडे और शराब तो मामूली बात है।* सरकारी तौरपर करोड़ोंके नये-नये कसाईखाने खोले जा रहे हैं। मछली, मुर्गी, सूअर, अंडोंकी इन्डस्ट्रियाँ खुल रही हैं। हिंसाका यह खुला व्यापार हिंसकोंको सम्मान दिलाकर 'हिंसक-पूजा'को प्रोत्साहन दे रहा है।

---

* अभक्ष्याभक्ष्य खान-पानके साथ ही जूठन खानेकी प्रथा भी बढ़ रही है। डाक्टर लोग रोगीकी नाड़ी देखकर साबुनसे हाथ धोते हैं, कहीं रोगके कीटाणु न आ जायँ। हाथमें कीटाणु आ सकते हैं, पर जूँठनमें—मुँहमें थूकमेंसे कीटाणु नहीं आ सकते। यह कैसा विज्ञान है पता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## हिंदू-स्त्रीकी पवित्रता और सतीत्वका नाश

हिंदू-स्त्रीकी पवित्रता, सतीत्व, पातिव्रत आदि आज दिल्लगीकी चीजें बनती जा रही हैं। हम अन्धे होकर यूरोपका अनुकरण कर रहे हैं; हमारी फैशनपरस्ती, विलासिता, सिनेमा, संस्कृति तथा कलाके नामपर होनेवाले युवतियों और बालिकाओंके अर्धनग्न नाच, स्वतन्त्रताके नामपर आनेवाली उच्छृङ्खलता, सहशिक्षा, युवतीविवाह, गन्दा साहित्य, गन्दे विज्ञापन आदि चीजें आगमें घीकी आहुतिकी भाँति—हमारी नारी-पवित्रताके परम धनको भस्मीभूत करनेवाली असंयम तथा असदाचारकी आगको बढ़ा रही हैं!

सिनेमा देखनेवाले तरुण-तरुणियोंके चरित्र बुरी तरहसे भ्रष्ट हो रहे हैं और जो सिनेमामें अभिनेता-अभिनेत्रीका कार्य करते हैं, उनकी दशा तो विशेष दयनीय है। वे कोई महान् शुकदेव-सदृश स्त्रीपुरुष-भेद-ज्ञानसे रहित परम संयमी नर-नारी तो हैं ही नहीं। वासनाभरे जीवनको लेकर ही प्राय: उस क्षेत्रमें आये हैं। दिन-रात परस्पर अबाध स्पर्शादि होनेसे उनका चरित्र भ्रष्ट होना स्वाभाविक ही है। फिर, उनका समाजमें सम्मान अधिक होनेसे उच्चकुलकी पढ़ी-लिखी लड़कियोंकी तथा उच्चशिक्षित तरुणोंकी भी इच्छा सिनेमामें नटी-नट बननेकी हो जाती है। पैसा, सम्मान और स्वेच्छाचारकी छूट—तीनों ही मिलते हैं। इसप्रकार समाजमें यह 'व्यभिचार-पूजा' बढ़ती जा रही है। हमारी स्त्रियोंमें स्वाभाविक ही उचित लज्जा और शील एक महान् गुण था। अब उसके बदले निर्लज्जता और उच्छृङ्खलताकी असीम वृद्धि हो रही है। उस दिन समाचारपत्रमें मीरजापुरका समाचार छपा था—

'सहशिक्षासे सब प्रकारके सम्बन्धोंमें पूर्णता प्राप्त की हुई आजकलकी कुछ छात्राएँ अपनी शिक्षिकाओंके साथ सिनेमा देखने गयीं। वहाँ कुछ छात्र भी मिल गये। फिर क्या था। वह दृश्य देखनेमें आया कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता××××× ।'

'आगरेके एक कॉलेजमें तो छात्राओंने यहाँतक कह दिया कि हमारे अर्धनग्न नृत्यको यदि छात्रोंको नहीं देखने दिया जायगा तो हम नाचकर ही क्या करेंगी।....'

सतीत्व तो कोई वस्तु ही नहीं रह गया है। कुमारी माताओंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। हमारे सामने आज संयमपूर्ण ऋषि-जीवन आदर्श नहीं है। आदर्श है यूरोपका उच्छृङ्खल असंयमी जीवन। इसीसे विवाह-विच्छेद ( तलाक ) आदिकी वृद्धि हो रही है। उस दिन एक समाचारपत्रमें छपा था कि 'अमेरिकामें विवाहिता स्त्रियोंमेंसे प्रत्येक हजार पीछे ४३को तलाक मिला है तथा प्रत्येक हजार पीछे ३१ पतियोंसे अलग हो गयी हैं।'—इसीकी नकल हमारे यहाँ भी होने जा रही है!

विलायतकी सिनेमा अभिनेत्रियोंके सम्बन्धमें एक अखबारमें छपा है—

'....फिल्मी कलाकारोंकी जिंदगियाँ कितनी घृणित और दु:खद होती हैं, इस बातका लोगोंको पता नहीं है। सच्चे प्रेमको तो उन्होंने तिलाञ्जलि ही दे दी है। ××××मेरी लाइन मेनरो—आज फिल्मी दुनियाँमें प्रसिद्धिके शिखरपर है, वह पति बदलनेकी आदी हो गयी है। × × टीटा हैवर्थ छ: पति बदल चुकी है जैसे पाँवकी जूतियाँ हो। × × ×'

इन फिल्मी अभिनेताओंके करोड़ों पुजारी हैं—और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। इसका क्या परिणाम होगा, सोचनेसे ही हृदय काँप उठता है।

## संयमहीनता और रोगोंकी वृद्धि

संयमका अभाव, खानपानकी अपवित्रता, गन्दी वस्तुओंका सेवन भयानक रूपमें बढ़ रहा है। असंयमी जीवन बीमारियों-का कारखाना होता है। वहाँ नयी नयी बीमारियोंका उत्पादन होता रहता है। शरीरसे पहले मनकी बीमारी होती है, वह पीछे शरीरके रोग-रूपमें प्रकट होती है। मानसिक


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमारीका नाश हुए बिना शारीरिक बीमारी केवल इंजेक्शनों और दवाइयोंसे नहीं मिट सकती । दवा और डॉक्टरोंका अधिक विस्तार जनताके स्वास्थ्यविस्तारमें कारण नहीं बनता, रोगविस्तारमें ही कारण बनता है । अमेरिकामें आज सबसे ज्यादा औषधविज्ञानका प्रसार है । पर वहाँ असंयम बढ़ता जा रहा है और इसके परिणामस्वरूप बीमारियाँ भी उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं । ( 'कल्याण'के गत मार्चके अङ्कमें पृष्ठ ८२२ पर प्रकाशित 'रोगी देश अमेरिका' शीर्षक लेख देखिये । )

अभी हालमें न्यूयार्क—अमेरिकाका एक रूटरका तार पत्रोंमें छपा है, जिसका शीर्षक है—'सभ्यताकी बीमारियाँ' ( Diseases of Civilization ) उसमें शिकागोके लोयोला युनिवर्सिटी मेडिकल स्कूलमें प्रतिरोधक औषध तथा जन-स्वास्थ्यके प्राध्यापक डाक्टर हर्बर रैटनरने बताया है कि सारे संसारमें युनाइटेड स्टेट ( अमेरिका ) ही एक ऐसा देश है जहाँ आवश्यकतासे अधिक औषध-का सेवन किया जाता है, ऑपरेशन होते हैं और इन्जेक्शन लगवाये जाते हैं । प्रो० रैटनरने एक सामान्य अमेरिकीका यह चित्र अपनी एक भेंटमें प्रस्तुत किया, जिसको न्यूयार्कके जन-तन्त्रात्मक संस्थाओंके अध्ययन-केन्द्रने २०-५-६२ को जनताके सामने रक्खा ।

'हमलोग थुलथुल, आवश्यकतासे अधिक भारी और प्रचुर मात्रामें दंत-रोगके शिकार हैं । हमारी उदर-अन्त्र-प्रणाली बिगड़कर फट-फट करनेवाले गैस-इंजनके समान कार्य करती है । हमलोगोंको न नींद आती है और न हमलोग जाग्रत्-अवस्थामें ही ठीक-ठिकानेसे कार्य कर सकते हैं ।

'हमलोग स्नायु-विकारजनित रोगोंसे ग्रस्त रहते हैं । हमलोगोंका रक्त-चाप ( Blood-pressure ) अधिक रहता है । हमारे हृदय और मस्तिष्क पूरी अवधितक कार्य नहीं करते । जीवनके मध्याह्न कालमें ही हमें हृदयके रोगोंके बड़े व्यापक रूपमें दर्शन होने लगते हैं । हमलोगों-की मृत्युके कारणोंमें आत्महत्या एक प्रधान कारण है इस प्रकार हम सभ्यताके रोग-प्राचुर्यसे पीड़ित हैं ।'*

अमेरिकाकी देखादेखी आज अन्ध-परानुकरणपराय[ण] भारतवर्षमें भी संयम-नियम घट रहा है और दवा-इंजेक्शन-का रोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है । अभी हमारी सत्[य]... तपोभूमि ऋषिकेशमें गङ्गातटपर करीब ८ करोड़ रुपये[की] पूँजी लगाकर सोवियट विशेषज्ञोंकी देखरेखमें ऐंटीबायोटि[क] दवा बनानेका एक बृहत् कारखाना स्थापित करने [जा] रही है । इसमें सालमें २६ करोड़ रुपये मूल्यकी ऐंटी-बायोटिक ओषधियाँ तैयार होंगी । भारतवर्षमें रोग [न] बढ़ेंगे और इसलिये इन ओषधियोंकी माँग न बढ़ेगी तो कारखाना चलेगा कैसे ? कारखाना रोगोन्मूलनके लि[ये] तो बन ही नहीं रहा है, बन रहा है उत्पादन बढ़ा-बढ़ा-कर उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक ओषधियाँ बेचकर मुनाफा कमानेके लिये ! अतएव इस प्रकारके कारखानोंकी सफलताके लिये स्वाभाविक ही देशमें रोग-विस्तार आवश्यक होगा । रोगविस्तारका प्रधान कारण असंयमपूर्ण जीवन तो है ही, जिससे शारीरिक रोगोंके मूलकारणभूत मानसिक रोग उत्पन्न होते एवं बढ़ते रहते हैं । दूसरा बड़ा कारण होगा—इन ऐंटीबायोटिक ओषधियोंकी प्रतिक्रिया । स[ह]-शिक्षा, कुसंगति आदि मानसिक रोग तो थे ही, उनके बढ़ानेवाले सिनेमा तथा उच्छृङ्खल सभ्यता थी ही, अब ऐंटी-बायोटिक दवाओंका बड़ा भारी कारखाना भी खुल गया—

> ग्रहग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।
> ताहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार ॥

---

* We are flabby, overweight and have a lot of dental cavities......our gastro-intestinal system operates like a spluttering gas engine. We can't sleep, we can't get going when we are awake.

We have neuroses; we have high blood-pressure. Neither our hearts nor our heads last as long as they should. Coronary disease at the peak of life has hit epidemic proportions. Suicide is one of the leading causes of death. We suffer from a plethora of diseases of Civilization."—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामोपभोग और अर्थप्राप्तिकी इच्छा ही इसमें भी कारण है।

## विलासिताका रोग

विलासिता और फैशनपरस्तीका रोग भी देखा-देखी बढ़ता जा रहा है। जीवनका स्तर ऊँचा करनेके नामपर कीमती फैशनेबल कपड़े, कीमती जूते, साज-सामान-की चीजें, शृंगार-प्रसाधनकी वस्तुएँ, सिनेमादर्शन, रेडियो आदि अनावश्यक वस्तुओंकी आवश्यकता इतनी बढ़ गयी है कि जीवन अत्यन्त खर्चीला हो गया है और उसकी पूर्तिके लिये नाना प्रकारके भ्रष्टाचार किये जाते हैं। शौकीन धनी लोग और उनकी देखादेखी कम आमदनीवाले शौकीन भी पाँच सौसे हजारतककी सिलाईके कोट, स्त्रियाँ हजार-दो हजार रुपयेकी एक-एक साड़ी पहनती हैं। जहाँ गरीब नर-नारी बदन ढकनेके लिये कपड़े नहीं पाते, वहाँ यह अनाचार उच्चस्तरके जीवनके नामपर बढ़ रहा है! एक-एक कोटकी सिलाईमें सैकड़ों मनुष्योंके बदन ढके जा सकते हैं और एक-एक साड़ीकी कीमतमें सैकड़ों बहिनोंकी लज्जा-रक्षा हो सकती है! पर इस ओर ध्यान ही नहीं है। जीवनका स्तर ऊँचा उठना चाहिये (?), चाहे कितने ही अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार करने पड़ें!

## धर्म और भगवान्‌की अवहेलना

धर्म तथा भगवान्‌को तो सर्वथा ढकोसला बताया जाने लगा है। संकट पड़नेपर भले ही भगवान् याद आवें, यों साधारणतया तो अपने कर्म तथा वचनसे भगवान्‌का विरोध ही किया जाता है। इसीसे दैवी सुरक्षाका जो परम लाभ मिलता था, उससे हमलोग वञ्चित हुए चले जा रहे हैं। मानवजीवनका ऋषिप्रोक्त उद्देश्य भगवत्प्राप्ति तो विस्मृत हो ही गया है! यह बहुत ही शोचनीय है। भगवान् सुबुद्धि दें और सबकी रक्षा करें।

---

# अनुनय

( रचयिता—प्रो० श्रीबाँकेविहारीजी झा, एम्० ए०, साहित्याचार्य )

जीवन की भीषण झंझा के झोंकों से उद्भ्रान्त—
विकल आज आ पड़ा शरण में प्रभुवर! स्वामिन्!! कान्त!!!
अधःपतन की सीमा पर मैं पहुँच गया हूँ नाथ!
देखो, अब भी दया करो हे! पकड़ो मेरा हाथ!!
किया मोहवश जाने कितने अघ सस्नेह अपार!
अब तो जी घबराता मालिक! लख भव-पारावार!!
गरज रहीं उत्ताल तरंगें, नाव पड़ी मँझधार,
हे भवाब्धि-कैवर्तक! हा, लो थाम जरा पतवार!!
निशिदिन सुख के अन्वेषण में सदा लगाये ताक,
जीवन की इस मृगतृष्णा में रहा छानता खाक!!
साथी तो थे बहुत, किंतु हा! सभी छोड़कर साथ—
जाने कहाँ गये, एकाकी धुनता हूँ मैं माथ!!
शिथिल हुए सब अङ्गों में पीड़ा का दुर्वह भार!
जीवन की गोधूलि देख प्राणों में हाहाकार!!
निज अनुराग-सुधा-रस शुचिका देकर स्नेहिल दान,
आज मिटा दो मेरी चिर-तृष्णाको हे भगवान!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## मित्रताका निर्वाह

हजारीमल और वसन्तलाल दोनों बचपनके मित्र थे। यह लगभग पंद्रह-बीस वर्ष पहलेकी बात है। दोनों ही बड़े होकर अपने-अपने व्यापारमें लग गये। वसन्तलालको व्यापारमें कुछ सफलता मिली। उसने जितने रुपये कमाये, उसका अपनी स्त्रीको जेवर बनवा दिया। हजारीमलका काम नहीं चला। वह संकटमें रहा। होते-होते उसका काम फेल होनेकी नौबत आ गयी। उसे तेईस हजार रुपयेका देना हो गया। बहुत दुखी था हजारीमल। वसन्तलालको इसका पता लगा। पर उसके पास नगद रुपये नहीं थे। वह अपने कुल रुपयोंको गहनेमें लगा चुका था। व्यापारका काम परायी रकमसे करता था। उसकी साख अच्छी जम गयी थी। उसको अपने दोस्त हजारीमलकी दुरवस्थापर बड़ा दुःख हुआ, उसने मन-ही-मन सोचा—गहना न बनवाया होता तो आज ये रुपये हजारीमलके संकट-निवारणमें काम आते। उसने बहुत डरते-डरते अपनी पत्नीसे सारी बातें कहीं; क्योंकि गहना उसीके पास था। पत्नी बड़ी ही साध्वी निकली। उसने कहा—'आप इतना संकोच क्यों करते हैं? गहना आपने ही तो बनवाया था और आज अपने मित्रकी इज्जत बचानेके लिये आपको ही उसकी जरूरत है। इसमें मुझे पूछनेकी कौन-सी बात है? मित्रकी इज्जत तो हमारी ही इज्जत है। गहनेसे तो केवल मेरे शरीरकी ही शोभा बढ़ी मानी जाती है, पर उनकी इज्जत बचनेमें तो हमारे दोनों परिवारोंकी शोभा है। आप अभी ले जाइये।'

पत्नीकी इन बातोंको सुनकर वसन्तलालकी आँखोंमें स्नेहके आँसू आ गये। उसे पत्नीके इस व्यवहारसे बड़ा ही संतोष तथा प्रसन्नता हुई। उसने गहना लिया, गलाया और बेचकर नगद रुपये कर लिये। हजारीमलके कर्जदारोंकी सूची वह पहले ही ले आया था। उसने अपने एक आदमी-को भेजा और उससे कह दिया कि 'तुम जाकर इन सबको रुपये देकर फाड़खती ले आओ, सबसे यही कहना कि मैं हजारीमलजीका ही आदमी हूँ। उन्होंने रुपये भेजे हैं। कहीं मेरा नाम किसी भी तरह न आ जाय।' ऐसा ही हुआ था। हजारीमलके घाटेका और उनकी कठिनाईका महाजनोंको पता भी नहीं था। इससे किसीको कोई संदेह नहीं हुआ। सबने रुपये ले लिये। फाड़खतीकी रसीदें लिख दीं। रसीदें सब वसन्तलालके पास पहुँच गयीं। वसन्तलाल सदाकी भाँति रातको हजारीमलके घर गया। वहाँ हजारीमल और उसकी स्त्री—दोनों रो रहे थे। छोटा लड़का पास बैठा माँ-बापके मुँहकी ओर निहार रहा था—विचित्र विषादभरी भंगिमासे। वसन्तलालने जाकर बातचीत की, सहानुभूति प्रकट करते हुए समझाया—'भाई! धीरज रक्खो—भगवान्‌को याद करो। उनकी कृपासे बहुत कठिन कार्य भी आसान हो जाया करता है। हजारीमल जानते थे कि वसन्तलालके मनमें वास्तवमें सच्ची सहानुभूति और दुःख है, पर उसके पास नगद रुपये हैं ही नहीं, वह कहाँसे दे। गहना बेचकर वह रुपये दे दे, यह तो हजारीमलके मनमें कल्पना भी नहीं थी। वसन्तलालका उपकार माना। दोनों स्त्री-पुरुष रोकर कहने लगे—'भाई! तुम्हारे पास होता तो तुम दे ही देते। हमारे भाग्यकी बात है। तुम हमारे लिये इतने दुखी होते हो, यह सचमुच हमारे लिये बहुत दुःखद है। हम अपने सच्चे मित्रको दुःख पहुँचानेमें कारण बन रहे हैं।' वसन्तलालकी आँखें भी बरस पड़ीं। पर उसने कुछ नहीं कहा—धीरेसे फाड़खतीकी रसीदोंका लिफाफा हजारीमलके बिछौनेपर तकियेके नीचे रख दिया। वसन्तलालका साहस नहीं हुआ—वह डरा कि कहीं मेरे इस बर्तावसे हजारीमलके मानको ठेस न लग जाय। वह संकुचित न हो जाय—इसलिये उसने मुँहसे कुछ भी न कहकर चुपके-से लिफाफा रख दिया और प्रणाम करके वह चला गया।

पीछेसे जब हजारीमल रोते हुए बिछौनेपर लेटे, तकिया कुछ सरका, तब लिफाफा दिखायी दिया। खोलकर देखा तो रसीदोंको देखकर दंग रह गया। सबेरे महाजनोंसे पता लगनेपर उन लोगोंने कहा कि 'कल आपने रुपये भिजवा दिये थे। हम लोगोंने रसीदें लिख दी थीं।' तब हजारीमलकी समझमें बात आयी। वसन्तलालसे मिलनेपर उसने बड़े संकोचसे स्वीकार किया।

—रामलाल शर्मा

( २ )

## उग्र कर्मका हाथोहाथ दण्ड

कुछ उग्र कर्मोंका फल इसी जन्ममें हाथोहाथ मिल जाता है, इसी तरहकी एक घटनाका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे एक परिचित बन्धु ××××में रहते हैं । उस समय उनके साथ उनकी एक विधवा बहिन और दसवर्षीय भानजा भी रहता था । बहिन विधवा है और बच्चा नादान है, ऐसा समझकर उन्होंने उसे अपने पास रख लिया था । कई वर्षोंसे वे लोग रहते चले आ रहे थे । भाईके कोई संतान न थी, अतः मनकी सारी ममता भानजेके पक्षमें आयी; उन्होंने उसे कभी भी किसी भी वस्तुके अभावकी अनुभूति नहीं होने दी । स्वयं मितव्ययी और कुछ सीमातक कृपण होते हुए भी भानजेके मामलेमें उनकी हथेलीमें छिद्र हो जाया करता था ।

आठ वर्ष पूर्व उन्हें गैसकी भयंकर शिकायत रहने लगी । वैसे तो यह बीमारी उन्हें गत बीस वर्षोंसे थी; किंतु आठ वर्ष पूर्व तो उसने उग्र रूप धारण कर लिया था । ऐसी स्थितिमें उन्होंने बीमारीका जमकर इलाज करनेकी सोची । दुकानको बहिन और भानजेके सुपुर्दकर जिसने जो जगह सुझायी, वहीं जा पहुँचे । इलाजके सिलसिलेमें वे हमारे शहरमें भी पधारे थे । भानजेकी चिट्ठी हर सप्ताह या पंद्रह दिनोंमें अवश्य प्राप्त हो जाती थी । उसमें केवल एक ही प्रकारके शब्द रहते थे—'कुशल है और यही आशा करते हैं । इलाज जमकर करवाना । इधरकी फिकर मत करना, दुकानका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है ।' बस, 'संत हृदय नवनीत समाना ।' जानेकी जल्दी उन्होंने नहीं की । पूरे पाँच माहतक उन्होंने जमकर इलाज करवाया । आखिर लौट गये वे अपने शहरको—सर्वांशमें नहीं तो, अधिकांशमें वे रोग-मुक्त हो चुके थे ।

स्टेशनपर उन्हें भानजा मिला । बड़े प्रेमसे उसने चरण-स्पर्श किया । तत्पश्चात् कुछ कामको निपटाकर शीघ्र ही घर आनेको कहकर चल दिया । ये घर आ गये, किंतु यह क्या, घर तो वीरान हो चुका है । पचास-साठ हजारके मालकी दुकानमें कठिनाईसे पाँच-छः सौका माल बचा था । घर और दुकान पूरी तरह विधवाकी माँग बन चुके थे । भानजा लौटकर नहीं आया । तत्पश्चात् काफी समयतक उसका पता भी न चला । बहिनसे घर-दुकानकी दुर्दशाका कारण पूछा तो उत्तर मिला कि उसने तो स्वयं गत छः माहसे खाट पकड़ रखी है । बाजारमें साख समाप्त हो चुकी थी । घरकी एक अलमारीमें खाली बोतलोंका ढेर लगा पाया । किसी-किसी जगह अभक्ष्य पदार्थके अवशेष भी दीख पड़े । इनका हृदय हाहाकार कर उठा—'माधव ! यह तेरी क्या लीला है ? मैं यह क्या देख रहा हूँ ।' कहकर इन्होंने आँखें मींच लीं । दिल थाम लिया और फफक-फफककर रो पड़े । पास-पड़ोसके लोग आये । ऊपरी सहानुभूति दिखलायी । साथ ही सख्त कार्यवाही करनेका अमूल्य परामर्श भी दे दिया । इनसे अब घरकी दशा देखी नहीं जाती थी, घरका कोना-कोना इन्हें अपनी करुण कहानी कहता-सा प्रतीत होता था । साथ ही उस उद्दण्ड और पापात्मा भानजेको दण्ड दिलवानेका मौन संकेत भी कर रहा था । कण-कण चीत्कार कर रहा था । मौका देखकर बहिन भी एक दिन अपने दूरके श्वशुरगृह ( कलकत्ते ) खिसक गयी । कुछ लोगोंने एक अर्जी लिखी और उन्हें उसपर केवल हस्ताक्षर करनेको कहा । बाकी कार्रवाई करनेका उत्तरदायित्व उन्होंने ओटना स्वीकार किया । अर्जीपर हस्ताक्षर कर दिये गये । लोग पुलिस-स्टेशनकी तरफ रवाना हुए । थाना अभी थोड़ी दूर ही रह गया था कि ये आँधीकी तरह दौड़े आये और अर्जी लेकर शीघ्रतासे वापिस लौट गये । अर्जीके इन्होंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये । बहिन और भानजेको इन्होंने क्षमा कर दिया ।

**किंतु लीलाधर इस क्षमादानको सहन न कर सके । जिस प्राणीको हम किन्हीं कारणोंसे दण्ड देना नहीं चाहते अथवा चाहते हुए भी नहीं दे पाते, उसको दण्ड देनेके लिये स्वयं जगन्नियन्ताको व्यवस्था करनी पड़ती है**

कुछ समय पश्चात् इनको कलकत्तेसे एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें बहिनके लकवा हो जानेके समाचार लिखे थे । कुछ दिनों पश्चात् उसके काल-कवलित हो जानेकी सूचना मिली इन्हें । इनको मर्मान्तक वेदना हुई । अभी इस वेदनाका घाव भरा भी नहीं था कि उधर भानजेके विषपान करनेके समाचार प्राप्त हुए । ××× से चले जानेपर उसकी पीठमें एक छिद्र हो गया था, जिसमेंसे चौबीसों घंटे मवाद-रक्त आदि रिसते रहते थे । पैसा पासमें था नहीं । कुछ रोगके कारण और कुछ आत्मग्लानिवश उसने विषपान कर लिया था । किंतु विधाताके घर अभी उसके लिये ठौर नहीं थी, सो प्राणान्त न हो सका । हाँ, विषके तीक्ष्ण प्रभावसे सारे शरीरपर सफेद-सफेद निशान बन गये थे । बादमें उनसे एक प्रकारका बदबूदार पानी भी बहने लगा । इन्होंने सुना तो कलकत्ते भागे । उसकी दशा देख कलेजा मुँहको आता था । खूब दौड़-धूप की; किंतु अन्ततोगत्वा उसे मौतके मुँहमेंसे न निकाल सके । उधर एक नौकर, जो उनकी दुकानपर था और उस पापकर्ममें सम्मिलित था, बम्बई भाग गया; वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकल ट्रेनमें असावधानीवश अपनी दोनों टाँगें गँवा बैठा। इन्होंने सुना तो पछाड़ खाकर गिर पड़े। बोले—'लीलाधर ! लीला समेटो, बहुत हुआ; अब नहीं देखा-सहा जाता। आखिर सारा दण्ड उनको ही क्यों मिलना चाहिये ? मैं भी तो उसमें भागीदार हूँ। भात बिखेरकर कौओंको न्यौता तो मैंने ही दिया था। मैंने ही कुछ समझदारीसे काम लिया होता तो आज यह काण्ड क्यों देखनेको मिलता। अन्तर्यामी ! बच्चे नादान थे। अज्ञानवश दुष्कर्म कर बैठे।'—कहते हुए वे बच्चेकी तरह फूट-फूटकर रो पड़े। तत्पश्चात् किसीको भेजकर उन्होंने नौकरको अपने पास बुलवाया और अपनी दुकानपर पुनः उसे शरण दी।

आज उस बातको आठ वर्ष होनेको आये। अपने अध्यवसाय और लगनसे इन्होंने पुनः अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। किंतु कभी-कभी उस घटनाके स्मरणसे वे अत्यधिक विचलित हो जाते हैं और तब कह उठते हैं, 'भरी बंदूक नादानोंके हाथमें मैंने पकड़ायी। दण्डका भागी मैं था, किंतु मिला उन्हें। अन्तर्यामी कैसा है यह तुम्हारा न्याय !'

संत भी भला, किसीको दोष देते हैं ?

—गोपालकृष्ण जिंदल

( ३ )

## 'चुरा गया'

कुछ वर्षों पहले जब बम्बईके पश्चिमीय भागमें 'लोकल इलेक्ट्रिक ट्रेन' शुरू हुई थी, उस समयका प्रसङ्ग है। आरम्भमें तो गाड़ियोंकी चीजें सुरक्षित रहीं; परंतु कुछ दिनों बाद—गाड़ियोंके पंखे तथा ट्यूबलाइटोंके स्थानपर नये पोस्टर लगे दिखायी दिये। जहाँ ट्यूबलाइट और पंखे लगे थे, वह जगह खाली थी और वहाँ पोस्टरोंमें 'चुरा गया' ( Stolen )आदि वाक्य विभिन्न भाषाओं और अक्षरोंमें लगे दिखायी देने लगे। जनता आश्चर्यमें थी कि रेलवे 'वाच एण्ड वार्ड' विभागके लिये इतने रुपये खर्च करती है, तब भी 'चुरा गया'—यानी गाड़ियोंमें लगे पंखे और ट्यूबलाइट चोरी हो जाते हैं, यह तो बड़े ताज्जुबकी बात है।

हमारे एक भाई हैं—यहाँ नाम नहीं लिख रहा हूँ—वे एक बड़े बुद्धिमान् और जनताके सेवक हैं। इन्होंने रेलवे-को शिक्षा देनेके लिये एक तिकड़म रचा। रेलके डिब्बेमें जहाँ 'चुरा गया' पोस्टर लगे थे, वहाँसे धीरेसे एक पोस्टर उखाड़ लिया और उसे अपनी कमीजकी जेबपर पिनसे लगा लिया। गाड़ीके दूसरे मुसाफिर इन भाईकी इस कार्यवाहीको आतुर नेत्रोंसे देखते रहे। गाड़ी चर्चगेट स्टेशनपर पहुँची और वे भाई उतरकर गेटसे बाहर निकलने लगे। टिकटकलक्टरने टिकट माँगा तो उन भाईने जेबपर लगे 'चुरा गया' पोस्टर-की तरफ अँगुली कर दी। टिकटकलक्टरने उसे पढ़कर पूछा—'क्या चुरा गया ?' उस भाईने जवाब दिया—'साहेब, पास चुरा गया'। टी० सी० गरम हो गया और उसने भाड़ा चुकानेके लिये कहा। भाईने उत्तर दिया कि आपकी रेलवेमें इतने-इतने लोग ध्यान रखते हैं, तब भी वस्तुएँ चोरी हो जाती हैं और उन वस्तुओंके स्थानपर नयी वस्तुएँ न लगा-कर जनताके सामने 'चुरा गया' यह बोर्ड लगा दिया जाता है; फिर मैं तो अकेला और अनेक उपाधियोंसे घिरा हुआ मनुष्य हूँ। मेरा पास चोरी हो गया, इसलिये मैंने भी यह पोस्टर लगा लिया।

टी० सी० उन भाईको स्टेशनमास्टरके पास ले गया। वहाँ कुछ बोल-चाल हुई और अन्तमें भाईको कोर्टमें पेश करनेका निश्चय किया गया। भाई तो यह चाहते ही थे, वे उत्साहसे कोर्टमें गये। न्यायाधीशके सामने मामला पेश हुआ। रेलवे अधिकारियोंसे पूछ-ताँछके बाद कोर्टने उन भाईकी जबानी ली। उन्होंने इतना ही कहा—"रेलवेके पास इतने-इतने 'वाच एंड वार्ड'के आदमी होनेपर भी वस्तुएँ चोरी हो जाती हैं और उन खाली स्थानोंपर नयी वस्तुओंकी व्यवस्था करनेके बदले 'चुरा गया' ( Stolen ) आदि पोस्टर लगाकर जनताके सामने अपनी कमजोरी रक्खी जाती है। देशका एक बहुत बलवान् अङ्ग भी इतनी कमजोरी दिखाता और ऊपरसे पोस्टरोंका खोखला प्रदर्शन करता है तो क्या इसमें देशका अपमान नहीं है ? मैं तो केवल रेलवेको शिक्षा देनेके लिये ही कोर्टमें हाजिर हुआ हूँ और इसीलिये मैंने अपनी जेबपर रेलवेका ही 'चुरा गया' पोस्टर 'मेरा पास चोरी हो गया'—यह बतानेके लिये लगाया है।"

उन भाईकी दलील न्यायाधीशके गले उतर गयी और कोर्टमें उपस्थित होनेका उनका आन्तरिक सुन्दर उद्देश्य भी कोर्टकी समझमें आ गया। न्यायाधीशने फैसला देते हुए रेलवे अधिकारियोंको बड़ी फटकार बतायी और उन्हें चेतावनी दी कि "आप हमारे देशकी नाक कटानेको तैयार हो गये हैं। आज ही 'चुरा गया' के तमाम पोस्टरोंको उतारकर जहाँ जहाँ जो-जो वस्तुएँ गायब हुई हैं, वहाँ-वहाँ नयी वस्तुएँ लगवायी जायँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिनसे रेलवेके सब डिब्बोंमेंसे 'चुरा गया'के पोस्टर अदृश्य हो गये और उन स्थानोंपर नये-नये फरफराते पंखे और तेज रोशनीवाले ट्यूब लग गये। (अखण्ड आनन्द)

—प्रेमकुमार एन० ठक्कर

( ४ )

## बहूकी बुद्धि

अभी हालकी बात है, उत्तरप्रदेशके ही एक गाँवमें एक गृहस्थके घरमें रातको चोर घुसे। घरमें स्त्रियाँ सो रही थीं। पुरुष कोई नहीं था। चोरोंने गहना-कपड़ा बटोरकर लगभग बीस हजारका माल एक पेटीमें भरा और उसे उठाकर ले जाने लगे। स्त्रियोंमें एक बहू जाग रही थी। उसने सारी बातें देखीं, पर वह पहले कुछ नहीं बोली। जब चोर पेटी ले जाने लगे, दरवाजेतक पहुँचे कि उसने उठकर पानीकी एक बड़ी सुराहीको उठाकर बड़े जोरसे चौकमें पटका। धड़ाकेकी आवाज हुई—चोर डरकर पेटीको वहीं छोड़कर तुरंत भाग गये। बहूकी ठीक समयपर उपजी बुद्धिने बीस हजारका माल बचा दिया।

—सुरेशकुमार

( ५ )

## षोडशनाम मन्त्रजपका चमत्कार

घटना लगभग आठ साल पूर्वकी है, मैं बस्ती जिला जजके न्यायालयका असेसर था। मेरा घर बस्ती कचहरीसे दस मील दूर गाँव (कुरियार) में है। एक दिनकी बात है मुझे एक कतल-केसके सिलसिलेमें जज साहबके न्यायालयमें असेसर (जूरी) की हैसियतसे उपस्थित होना था।

संयोगवश उस दिन सबेरेसे ही घनघोर वर्षा आरम्भ हो गयी। मार्ग कच्चा, किसी वाहनका प्राप्त होना असम्भव और १० बजे कचहरीमें उपस्थित होना अत्यन्त आवश्यक। हवा इतनी तेज और प्रतिकूल कि छातेकी भी सहायता ले सकना असम्भव। कुछ भी समझमें न आता था कि क्या किया जाय। कचहरीमें न पहुँचनेपर ५१) रुपये जुर्माना देना पड़ता। इसके अतिरिक्त जवाबदेही और अयोग्यता, अकर्मण्यता तथा कर्तव्यहीनताका अभियोग अलगसे लग जाता। मनमें विचार उठा कि 'कुछ भी हो' ऐसे तूफान और दुर्दिनमें कदापि न जाऊँ; पर कर्तव्यपालन, बदनामी तथा जुर्मानेका भय! यही विचार करते-करते ९ बज गये। वही स्थिति थी—

हहाँ न सुधि सीता कर पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥

मनमें किसी प्रकार चैन न आता था। वर्षा बढ़नेकी जगह घटनेका नाम न लेती थी। ऐसी स्थितिमें किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर चारपाईपर पड़ गया। बगलमें 'कल्याण'का एक अङ्क खुला पड़ा था। कुछ न सूझनेपर वही उठाकर देखने लगा। दैवयोगसे दृष्टि एक लेखपर पड़ी, जिसमें लिखा था 'किसी भी कार्यमें आरम्भसे लेकर अन्ततक यदि मनसे षोडश नाम मन्त्र 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' का जप चलता रहे तो वह कार्य अवश्य सफल होता है।' पंक्ति पढ़ते ही मनको कुछ सम्बल-सा मिलता प्रतीत हुआ। वर्षा अनवरत चल रही थी। चारपाईसे उठकर खड़ा हो गया। शरीरपर एक कम्बल और उसके ऊपर एक चद्दर डाला और पानी तथा तूफानमें ही चल दिया। पूरी एकतानतासे मन 'हरे राम हरे राम'........'का जप कर रहा था। मनमें कार्य-सिद्धिका आकर्षण भी था और 'कल्याण'के उस लेखकी परीक्षाका भी भाव था। दोनोंके संयोगसे तन्मयता बढ़ती गयी। वर्षाके सरगमपर पाँव सरपट चलने लगे। मन्त्र-जप सस्वर हो रहा था। मार्ग बहुत ही ऊबड़-खाबड़ होते हुए भी उस दिन हर रोजसे सरल मालूम पड़ने लगा। उसी तूफानमें कितनी जल्दी और कब मैं जजसाहबके न्यायालयके सामने पहुँच गया, मुझे पता ही न चला। घड़ी देखा तो बारह बज रहे थे।

न्यायालय-कक्षमें प्रवेश करके देखा, मुकदमेकी कार्यवाही चालू थी। पहुँचकर जजसाहबको नमस्कार किया। उन्होंने मेरी ओर देखते ही, जूरीकी कुर्सियोंकी तरफ नज़र डाली। सभी कुर्सियाँ खाली थीं। मेरे अतिरिक्त और दो असेसर थे, जो कक्षके बाहर ही बैठे ऊँघ रहे थे। ये दोनों असेसर महोदय कई घंटे पूर्व ही वहाँ पहुँच चुके थे, किंतु पुकार न होनेकी वजहसे बाहर ही बैठे ऊँघते रहे।

जजने जब कुर्सियोंको खाली देखा तो तुरंत ही पेशकारसे प्रश्न किया कि 'आज असेसरोंकी पुकार हुई ही नहीं क्या?' और मुझे बैठनेका संकेत किया। बात सचमुच यही थी। मैंने समझ लिया कि 'गई गिरा मति फेरि'के अनुसार ही प्रभु-प्रेरणा-से आज असेसर लोग पुकारे ही नहीं गये। फलतः मैं सबसे पीछे पहुँचनेपर भी सबसे आगे पहुँचा हुआ माना गया और बहुत पहलेसे उपस्थित वे दोनों असेसर मेरे बाद आकर बैठे। मुकदमेकी अबतक हुई सारी कार्यवाही कैंसिल कर दी गयी और सुनवाई फिरसे आरम्भ हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने निश्चय कर लिया कि हो-न-हो अवश्य ही यह प्रभुनामके उसी षोडश नाममन्त्रका चमत्कार है, जिसके कारण यह अप्रत्याशित बात घटित हो गयी। घटनाका स्मरण करके मन बार-बार पुलकित होने लगा। परीक्षाके भावपर ध्यान जानेपर ग्लानि भी हुई; किंतु प्रभुके क्षमाशील स्वभावपर ध्यान जाते ही वह विलीन हो गयी और मन द्विगुण उत्साहसे 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' का जप करने लगा।

'हारेहुँ खेल जितावहिं मोही'के अनुसार यह घटना मेरे जीवनमें घटित हुई और मैं इसे भक्तजनकी भलाईके लिये ही यथा तथा प्रकाशित कर रहा हूँ। ॐ तत्सत्।

—बृजमोहन चौधरी

( ६ )

## आदर्श दयालुता

यह घटना सन् १९५८ की है। बर्नपुर अस्पतालसे एक महिला निकली, जो कि थोड़े दिनों पूर्व रेलसे कटकर घायल हो गयी थी, अस्पतालमें कोई ऐम्बुलेंस नहीं थी, जो उसे घर पहुँचा देती। लाचार होकर वह पैदल जा रही थी, इतनेमें एक साहबकी कार उसके पाससे आकर गुजरी और वहीं ठहर गयी। साहबने उसे कारमें बिठाकर निश्चित स्थान-पर पहुँचा दिया। आश्चर्यकी बात यह कि अबतक कई टैक्सियाँ पार हो चुकी थीं, लेकिन किसीने भी उसकी तरफ देखा नहीं। इधर एक विदेशीको देखिये, जिसने हमारे-जैसे काले-कलूटेकी मदद की। धन्य उसकी सभ्यता तथा संस्कृति।

—शुकदेवप्रसाद

( ७ )

## मृत्युके समय देवदूतोंका आगमन

आजके युगमें मृत्युके समय यमदूत अथवा देवदूत आनेकी बातका शिक्षित लोग मजाक उड़ाया करते हैं। किंतु नीचे एक ऐसी सच्ची घटनाका वर्णन किया जा रहा है, जिसको पढ़कर भौतिकवादी शिक्षित वर्ग भी आश्चर्यान्वित होगा।

यह घटना आजसे १५-२० वर्ष पुरानी है। मेरे पिताजीके लघुभ्राताके श्वशुरके एक निकट सम्बन्धी भगवद्भक्त, कर्मकाण्डी एवं कथावाचक ब्राह्मण थे। वे सात्त्विक प्रकृतिके थे। संस्कृतके वे अच्छे ज्ञाता थे। श्रीमद्भागवतपुराण और महाभारत ग्रन्थोंके वे अच्छे वाचक थे। जब वे वृद्ध हो गये और उनका शरीर दिन-प्रति-दिन क्षीण होने लगा, तब उन्होंने एक दिन घरवालोंको अपनी मृत्युका निश्चित दिन बता दिया। उन्होंने अब अपना इलाज करानेसे भी इन्कार कर दिया। मृत्युके छः-सात दिन पूर्व उनकी तबियत ठीक थी और निकट भविष्यमें मृत्यु होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। किंतु उनके कथनानुसार निश्चित दिन ( एकादशीका दिन था। ) प्रातःकाल चार बजे उनकी तबियत कुछ खराब हुई। एक जगह भूमि धोकर और लीप पोतकर स्वच्छ कर दी गयी एवं शय्यापर उनको लिटा दिया गया। विप्रसमूहद्वारा गीतापाठ एवं भजनादि हो रहा था। नौ बजेके लगभग उन्होंने कहा 'एक घड़ी बाद मेरी मृत्यु हो जायगी; मृत्युके बाद कोई शोक न मनावें। आज तो मेरे लिये शुभ दिन है; क्योंकि श्रीकृष्णमुरारि मुझे बुला रहे हैं।' इस प्रकार बात करते-करते ही वे बोले—'देखो, वह आसमानसे विमान उतर रहा है, जिसपर पीतवर्णकी ध्वजा लगी हुई है। उसपर दो भगवान्के पार्षद ( देवदूत ) पीताम्बरधारी चवँर लिये बैठे हैं।' यह बात सुनकर सबको बड़ा कौतूहल हुआ। विमान तो सिवा उनके और किसीको नहीं दिख रहा था। उपर्युक्त वाक्य कहते ही उनका स्वर्गवास हो गया और सबको एक भीनी-सी अद्भुत सुगन्धका अनुभव हुआ और सबके नेत्र एक क्षणके लिये अज्ञात शक्तिके वशीभूत हो बंद हो गये। नेत्र खोलनेपर सबने देखा कि कुछ क्षणों पूर्वका वातावरण गायब हो चुका है। पण्डितजीका निर्जीव स्थूल शरीर पड़ा है। तदनन्तर लौकिक अन्त्येष्टि क्रियादि की गयी।

यह घटना राजस्थानके भीलवाड़ा जिलेके एक ग्रामकी है।

—श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

( ८ )

## मच्छर, मक्खी, बिच्छू इत्यादि कीड़ोंके विष दूर करनेका उपाय

बिच्छू-जैसे विषैले जानवरके विष दूर करनेका एक अनुभूत उपाय है। आमका ताजा बौर एक सेर लेकर हाथों-पर आध घंटेतक खूब मलना चाहिये। फिर हाथोंको आध घंटे सूखने दिया जाय। इससे हाथोंमें जादू-जैसा असर हो जाता है और यह असर पूरे एक वर्ष रहता है।

जब कभी कोई बिच्छू इत्यादि काट ले तो जिस आदमी-ने हाथोंमें बौर मला हो, वह आदमी जिसको बिच्छूने काटा है उस आदमीको आठ-दस मिनटतक हाथोंसे मले ( जहाँपर काटा है ) निश्चय ही आराम हो जायगा। परंतु इस टोटकेके प्रयोगमें पैसा लेना महापाप है।

—आर० सी० शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# संस्कृति-माला भाग १ से ८ ( कक्षा ३ से १० के लिये )

प्रायः सभी देशहितैषियों तथा शिक्षाविशारदोंने यह स्वीकार किया है कि शिक्षा-संस्थाओंके वर्तमान पाठ्यक्रममें भारतीय संस्कृतिके ज्ञानका समावेश न होनेके कारण आज देशके नवयुवकोंमें अनुशासनहीनता आ गयी है। नैतिक बलका अभाव हो गया है और उच्छृङ्खलता बढ़ गयी है। भारतीय संस्कृतिके अमर सिद्धान्तोंसे परिचित होनेपर ही ये कमियाँ दूर हो सकती हैं। इसलिये बिरला-शिक्षण-संस्थाओंके सम्मान्य कुलपति पद्मश्री पं० श्रीशुकदेवजी पाण्डेने विभिन्न कक्षाओंके विद्यार्थियोंके मानसिक धरातलके अनुरूप प्राचीन भारतीय संस्कृतिका एक पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिये विभिन्न शिक्षाविद् सज्जनोंकी एक उपसमिति श्रीयुत डॉ० कन्हैयालालजी सहल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, अध्यक्ष—हिंदी-संस्कृत-विभाग, बिरला-आर्ट्‌स् कालेज, पिलानी ( राजस्थान ) की अध्यक्षतामें नियुक्त की थी। उसने विभिन्न कक्षाओंके लिये जो पाठ्यक्रम बनाया, उसीके अनुसार ये पुस्तकें तैयार हुई हैं।

## पुस्तकोंका विवरण इस प्रकार है—

**संस्कृति-माला भाग १ ( कक्षा ३ के लिये )**—लेखिका—श्रीमती प्रेमा सरीन एम्० ए०, पृष्ठ-सं० ४८, सुन्दर दोरंगा मुख-पृष्ठ, मूल्य .२० नये पैसे, डाकखर्च अलग। इसमें रामायण, महाभारत, श्रवणकुमार, प्रह्लाद, ध्रुव, सती सावित्रीकी कथाएँ और पालनीय नियम हैं।

**संस्कृति-माला भाग २ ( कक्षा ४ के लिये )**—पृष्ठ-सं० ५६, सुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, मू० . २५ नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें सत्यकाम जाबाल, महाशाल शौनक और अङ्गिरा ऋषि, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी, नचिकेता, इन्द्र-विरोचन, श्रीकृष्ण, भक्त हनुमान्, भीष्मपितामह, युधिष्ठिर और एकलव्यकी कथाएँ तथा पालनीय नियम हैं।

**संस्कृति-माला भाग ३ ( कक्षा ५ के लिये )**—लेखक—पं० श्रीरामकृष्णजी शर्मा, पृष्ठ-संख्या ८८, मूल्य . ३० नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, भगवान् परशुराम, महात्मा कबीर, गुरु नानकदेव आदि १९ पाठ हैं।

**संस्कृति-माला भाग ४ ( कक्षा ६ के लिये )**—पृष्ठ-संख्या १०४, सुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, मूल्य .३५ नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें भक्त सुव्रत, भक्त परीक्षित्, मातृपितृभक्त श्रवणकुमार, चैतन्य महाप्रभु, समर्थ स्वामी रामदास, महामुनि वशिष्ठ, दिलीप, भक्त सूरदास, तानसेन, मीराँ आदि २६ पाठ हैं।

**संस्कृति-माला भाग ५ ( कक्षा ७ के लिये )**—लेखक—पं० श्रीव्रजभूषणलालजी शर्मा, पृष्ठ-संख्या ९६, सुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, मूल्य . ३५ नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें जातक कथाओंका परिचय, चाणक्य, चरक, कालिदास, कर्ण, दमयन्ती, बुद्ध, महावीर, तक्षशिला, नालन्दा आदि १७ पाठ हैं।

**संस्कृति-माला भाग ६ ( कक्षा ८ के लिये )**—पृष्ठ-सं० १००, सुन्दर दोरंगा मुख-पृष्ठ, मू० .३५ नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें दानवीर दानव नमुचि, राजा त्रिविक्रमसेन और भिक्षुक तपोदत्तकी कहानी, धवलमुख और उसके दो मित्र, भरत मुनि, कपिल मुनि, भामती, रामकृष्ण परमहंस आदि १९ पाठ हैं।

**संस्कृति-माला भाग ७ ( कक्षा ९ के लिये )**—ले०—श्रीवसन्तलालजी शर्मा, एम्० ए०, साहित्याचार्य, पृष्ठ-सं० १५२, सुन्दर दोरंगा मुख-पृष्ठ, आठ सादे चित्र, मू० .५५ नये पैसे। डाकखर्च अलग। इसमें ब्रह्मतेजकी विजय, अभिमानका त्याग, महर्षि दध्यङ्ङाथर्वणकी क्षमाशीलता आदि १२ पाठ हैं।

**संस्कृति-माला भाग ८ ( कक्षा १० के लिये )**—पृष्ठ-सं० १३६, सुन्दर दोरंगा मुख-पृष्ठ, दो तिरंगे तथा दो सादे आर्टपेपरपर छपे चित्र, मू० .५५ नये पैसे। डाक-खर्च अलग। इसमें ईशादि तेरह उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, हड़प्पा और मोहेन-जो-दड़ो तथा विक्रमशिलाके पाठ हैं।

ये सभी पुस्तकें साफ सुन्दर अक्षरोंमें छपी हुई हैं। स्कूल-कालेजोंके पाठ्यक्रममें सम्मिलित करने योग्य हैं। विक्रेताओंको नियमानुसार कमीशन तथा अपने निकटस्थ स्टेशनतक नियमानुसार फ्री-डिलेवरी मिलती है। आशा है कि शिक्षा-जगत् इनसे लाभ उठा सकेगा।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दिनोंसे अप्राप्त पुस्तकका नया संस्करण

# मार्क्सवाद और रामराज्य

( लेखक—श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज )

आकार डिमाई आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ८६०, मूल्य ४.००, डाकखर्च १.६०, कुल ५.६० ।

प्रस्तुत ग्रन्थमें पाश्चात्य दार्शनिकों एवं राजनीतिज्ञोंकी जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, उनकी आलोचना तथा उनके साथ भारतके प्राचीन ऋषियोंके मतका तुलनात्मक अध्ययन एवं उनकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन है। साम्यवादके आचार्य मार्क्सके सिद्धान्तके प्रत्येक अङ्गपर बड़ी ही तर्कपूर्ण शैलीसे विचार किया गया है।

इस पुस्तकमें इतनी अधिक सामग्री आ गयी है कि इसे दर्शन और राजनीतिका 'विश्वकोष' कहना भी अनुपयुक्त न होगा।

प्रथम संस्करण छपनेके बाद शीघ्र ही बिक गया था; परंतु अनेक तरहकी कठिनाइयोंके कारण यह दूसरा संस्करण जल्दी न तैयार हो सका। ग्राहकोंका बड़ा आग्रह था। इस बार बौद्ध-दर्शनके बहुतसे नये पृष्ठ जोड़े गये हैं। फिर भी मूल्य पहलेवाला ही रक्खा गया है। इस पुस्तकके प्रथम संस्करणपर अनेकों प्रसिद्ध समाचारपत्रोंने प्रशंसात्मक सम्मतियाँ छापी थीं।

एक नयी पुस्तक

# गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका परिचय और उपदेश

( लेखक—आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, एम्० ए० )

आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या २८०, सुन्दर तिरंगा चित्र, मू० १.००, डाकखर्च .८०, कुल १.८० ।

प्रस्तुत पुस्तक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध एवं गम्भीर विचारशील आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय महोदयके बँगला भाषामें लिखित श्रीमद्भगवद्गीता एवं गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्ण-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेखोंका हिंदी-भाषान्तर है।

आशा है कि गीताप्रेमी पाठकगण इस ज्ञान-गम्भीर और रसमय ग्रन्थसे लाभ उठा सकेंगे।

☞ पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेसे पहले अपने शहरके पुस्तक-विक्रेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इससे आप भारी डाकखर्चसे बच सकेंगे।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

# कल्याणके चालू वर्षका विशेषाङ्क

'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क'का दूसरा संस्करण अभीतक मिलता है—जिन्हें लेना हो, वे कृपापूर्वक वार्षिक मूल्य रु०७.५० मनीआर्डरसे भेजकर ग्राहक बन जायँ अथवा विशेषाङ्कसहित अबतकके प्रकाशित अङ्क वी०पी०द्वारा भेजनेकी आज्ञा प्रदान करें।

यह विशेषाङ्क इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि इसकी एक लाख इक्यावन हजार प्रतियाँ ( दो बारमें ) छप चुकीं। अबतकका कोई विशेषाङ्क इतनी अधिक संख्यामें नहीं छप सका। जबतक यह समाप्त नहीं हो जाता, उसके पहले ही अपने मित्रोंको इसका ग्राहक बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
संस्करण—१,४८,००० ( एक लाख अड़तालीस हजार )

# विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद २०१९, अगस्त १९६२



## चित्र-सूची



वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु०१०.००
( १५ शिलिंग )

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण
भारतमें
विदेशमें
( १० पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ } गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०१९, अगस्त १९६२ { संख्या ८
पूर्ण संख्या ४२९

## अहल्यापर कृपा

भूरि भाग-भाजनु भई ।
रूपरासि अवलोकि बंधु दोउ प्रेम सुरंग रई ॥
कहा कहौं, केहि भाँति सराहौं, नहि करतूति नई ।
विनु कारन करुनाकर रघुवर केहि केहि गति न दई ॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूरति मंगल-मोदमई ।
तुलसी ह्वै बिसोक पति-लोकहि प्रभु-गुन गनत गई ॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी—गीतावली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—भोगोंमें सुख वैसे ही नहीं है जैसे पानीमें घी नहीं है, बालूमें तेल नहीं है, मृगतृष्णाके मैदानमें जल नहीं है और अग्निमें शीतलता नहीं है। अतः जो कोई भी भोगोंसे सुखकी आशा रखता है उसे सदा निराश ही रहना पड़ता है। तथापि मनुष्य मोहमें पड़कर भोगोंमें सुखकी सम्भावना मानकर उनके अर्जन तथा सेवनमें लगा रहता है और फलस्वरूप नित्य नये-नये रूपोंमें दुःखोंसे—तापोंसे जलता रहता है।

याद रक्खो—भोगकी वासना मनुष्यके विवेकका हरण कर लेती है, इसलिये वह अपने भले-बुरे भविष्यको भूलकर किसी भी साधनसे,—चाहे वह सर्वथा निषिद्ध तथा समस्त मङ्गलोंका नाश करनेवाला ही क्यों न हो—इच्छित भोग प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है और इसके परिणामस्वरूप बीचमें ही नयी विपत्तियोंसे घिर जाता है तथा उनसे बचनेके लिये फिर-फिर नये नये कष्टसाध्य कुकृत्य करने लगता है। इससे विपत्तियोंका, पापोंका और तापोंका ताँता कभी टूटता ही नहीं।

याद रक्खो—भोगवासनावाले मनुष्यको कभी कुछ इच्छित भोग मिल जाता है तो उसका लोभ और भी बढ़ जाता है, साथ ही वह सफलताके गर्वमें फूलकर सबका तिरस्कार करने लगता है। लोभ और गर्व—दोनों ही उसको पुनः बुरे-बुरे कर्मोंमें लगाकर पतनकी ओर ले जाते हैं।

याद रक्खो—भोगवासनावाला मनुष्य सदा चिन्ताग्रस्त रहता है। इच्छित भोग प्राप्त न होनेपर तो चिन्ता उसे रहती ही है। प्राप्त होनेपर उसकी चिन्ता और भी बढ़ जाती है; क्योंकि ज्यों-ज्यों उसकी भोगकामना पूरी होती है, त्यों-ही-त्यों वह कामनाकी आग—अग्निमें घीकी आहुति पड़नेपर अग्निके अधिक भड़क उठनेकी तरह—और भी भड़क उठती है, इसीके साथ उसकी चिन्ताकी आग भी बढ़ती है, जिससे उसकी भीतरी जलन और भी बढ़ जाती है। वह खुद उससे सदा जला करता है और अपने समीप रहनेवालोंको भी द्वेष, द्रोह, क्रोध, वैर, हिंसा—जो कामनाके साथ-साथ पनपते और बढ़ते रहते हैं, के द्वारा जलाया करता है।

याद रक्खो—अग्नि जितनी बड़ी होती है, उतनी ही उसकी गरमी दूर-दूरतक जाती है। इसी प्रकार कामनाकी अग्नि जितनी बढ़ी हुई होती है, उतनी ही अधिक वह अपनेको तथा अपने सम्पर्कमें आनेवाले पार्श्ववर्तियोंको जलाती है। इतना ही नहीं, कुछ भी सम्बन्ध न रखनेवालोंको भी कभी-कभी उससे बड़ा संताप मिलता है।

याद रक्खो—यह कामनाकी अग्नि विषयोंकी प्राप्तिसे नहीं बुझती, इसे बुझानेके लिये तो वैराग्यरूपी धूल और भगवत्प्रेमरूपी अजस्र अमृत-जलधारा चाहिये। वह वैराग्य तभी प्राप्त होगा, जब भोगोंमें दुःखोंके दर्शन होंगे। भोग सुखरहित, दुःखालय और दुःखयोनि ही हैं, पर भ्रमवश-मोहवश उनमें सुखकी मान्यता हो रही है और जैसे शराबके नशेमें चूर मनुष्य गन्दे नालेमें पड़ा हुआ भी अपनेको सुखी बतलाता है, वैसे ही उसे भोगोंमें सुखोंकी मिथ्या अनुभूति होती है। शराबीका जैसे वह प्रलाप होता है, वैसे ही उसका भी प्रलाप होता है। इस मोह-मदके नाशके लिये आवश्यक है—भोगोंके नग्नस्वरूपके दर्शन, जो भगवत्कृपासे संतोंकी वाणीद्वारा कराये जाते हैं। भोगोंका यथार्थ स्वरूप दीखनेपर तो उनसे वैराग्य हुए बिना रहेगा ही नहीं। तभी असली सुखस्वरूप भगवान्‌की ओर चित्तकी गति होगी। अतएव संतोंका सङ्ग प्राप्त करनेकी चेष्टा करो।

याद रक्खो—सत्संग न मिलनेपर दूसरा साधन है मोहभंगका—जो सहज ही देर-सबेर प्राप्त होता ही है—वह है भयानक दुःखोंका आक्रमण। भगवान्‌के मङ्गलविधानसे प्रकृति स्वयं यह कार्य करती है। यह होनेपर चेत हो जाता है, आँखें खुल जाती हैं और मनुष्य भगवान्‌की ओर लगनेका प्रयास करता है।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

( मूल अंग्रेजी लेखक—ब्र० जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी )

[ अनुवादक—पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि ]

[ अङ्क ६, पृष्ठ ९६८ से आगे ]

## हमारे दुःखोंका कारण

यह कारणका विवेचन हमारी प्रकृति या स्वरूप तथा उद्देश्यपर प्रकाश डालनेके साथ-साथ हमारे अंदर होनेवाले रोगों एवं उनकी चिकित्साओंपर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है, क्योंकि अद्वैत वेदान्त हमें यह बताता है कि यह संसार स्वयंमें कुछ नहीं है; अपितु जो कुछ हम बनाते हैं, वही संसार है। अतः आत्माका स्वरूप और मनको समझ लेनेके बाद हमारा कर्तव्य यह है कि हम मनको अनुशासित करें, उसके पंखोंको बाँध दें, ताकि वह उड़ने न पाये तथा उसको आत्माके अनुकूल बना दें। कहा भी है—

**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**

'मन ही मनुष्यके बन्धन तथा बन्धनसे मुक्तिका कारण है।' उदाहरणके लिये—एक राजा धनोंमें लोटता हुआ भी अशान्त रह सकता है और एक गरीब धनके न होनेपर भी शान्ति, संतोष और आनन्द पा सकता है। पर इस भिन्नता या असमानताका कारण क्या है? निश्चय ही इसका कारण बाह्य पदार्थ नहीं हो सकते; क्योंकि एक आदमी गरीब होते हुए भी प्रसन्न रहता है। यदि बाह्य पदार्थ ही प्रसन्नताके कारण हों, तो हम यह क्यों देखते हैं कि दूसरा आदमी धनवान् होते हुए भी दुखी है? आजकी मनोवृत्ति अनावश्यक चीजोंको बनाकर निर्यात करना है और इस मनोवृत्तिके लोग कहते हैं कि निर्यात माँगको बढ़ाता है। इस प्रकार वे कृत्रिम रूपसे आवश्यकताको बढ़ावा दे रहे हैं। पर यह ठीक नहीं; क्योंकि जब कोई अपनी इच्छाओंको बढ़ा लेता है, तो उसके साथ वह अपनी प्रसन्नताको भी कम कर लेता है। पर हम अपनी आवश्यकताओंको बढ़ाते जा रहे हैं। फलतः हम अत्यधिक दुखी भी होते चले जा रहे हैं। इस प्रकार जीवन-की आवश्यकताओंके प्रति हमारे मानसिक विचार तथा हमारे जीवनका स्तर ही हमारी इन आपत्तियोंका कारण है। इसी प्रकार, इसका क्या कारण है कि एक आदमी, जो कभी केवल ५०) प्रतिमासपर गुजारा करता था, अब १०००) तथा सेवानिवृत्त ( Retirement ) होनेके बाद ५००) मिलनेपर गुजारा नहीं कर सकता और हमेशा दुखी रहता है। यह इसी कारण है कि उसका मन जीवनके ऊँचे स्तर ( आडम्बरभरे रहस-सहन ) का आदी हो गया और वह हमेशा उस मनुष्यको वैसा ही रहनेके लिये मजबूर किया करता है। हमारी आवश्यकताएँ जितनी ही कम होंगी, उतनी ही अधिक प्रसन्नता हमें मिल सकेगी। यदि हम सादा जीवन और उच्च विचारको अपना लें, तो हम बहुत सुखी हो सकेंगे। जब किसी चीजकी आशा की जाय और वह प्राप्त न हो तो स्वभावतः ही मनमें निराशा पैदा हो जाती है और वह दुःखका कारण होती है। पर यदि हम लाभकी आशा करते हुए हानि भी सहनेको तैयार रहें तो हमें किसी प्रकारका दुःख न हो और न निराशा हो। ये सब उदाहरण हमारे मनःप्रभावके निदर्शक हैं, जो हमारे सुख एवं दुःखके उत्तरदायी हैं।

अथवा, कल्पना कीजिये कि एक आदमी मद्रासमें रहता है और उसका लड़का जो बम्बईमें रहकर ५००) प्रतिमास कमाता है, मर जाता है, पर उसके मरनेका समाचार अभी उसके पिताको नहीं पहुँचा। तबतक उसका पिता अपने पुत्र-के उत्तम स्वास्थ्यके बारेमें सोचता-सोचता बहुत खुश रहता है, पर मृत्युके समाचारके पहुँचते ही दुखी हो जाता है। अथवा यों कल्पना कीजिये कि अखबारमें निकलता है कि अमुक व्यक्ति मर गया, पर यह अखबारकी सूचना गलत हो, वह व्यक्ति जीवित हो, फिर भी उस व्यक्तिका पिता अवश्य दुखी होगा; क्योंकि यह भावना उसके अंदर घर कर चुकी है कि उसका पुत्र मर गया। अतः पिताके सुख या दुःखका कारण पुत्रका जिंदा रहना या मरना नहीं है, अपितु उसकी अपनी ही भावनाएँ हैं।

अथवा यदि कोई आदमी किसी दूसरेको गाली दे, तो उसका मुँह दर्द कर सकता है, पर उस दूसरे आदमीके कान तो ( गालियोंको सुननेके कारण ) कभी भी दर्द नहीं कर सकते, फिर भी वह दुखी हो जाता है। क्यों? इस दशामें उसका दुःख किसी शारीरिक दोषके कारण नहीं है अपितु मानसिक विचार हैं, जो उसका ध्यान उन गालियोंके अर्थोंपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खींच ले जाते हैं। इसी प्रकार जब दो व्यक्ति तुमसे दूर खड़े होकर आपसमें बात कर रहे हों और तुम यद्यपि उनकी बात क्या, उनके एक शब्दको भी न सुन सकनेके कारण यह संदेह अथवा कल्पना कर लेते हो कि वे दोनों तुम्हारे विरुद्ध ही कुछ बात कर रहे हैं और तुम दुखी हो जाते हो। यहाँपर भी तुम्हारे दुःखका कारण उनकी बातें न होकर तुम्हारे अपने ही मनके विचार हैं। वस्तुतः यह तुम्हारा अपना ही दोषपूर्ण मन है, जो तुम्हें कायर और दुखी बनाता है। इसी प्रकार जब एक चोर देखता है कि एक पुलिसका आदमी उसके पीछे-पीछे आ रहा है, ( चाहे उस पुलिसका उस चोरपर संदेह न भी हो ) तो झट इस निष्कर्षपर पहुँच जाता है कि वह उसे गिरफ्तार करने आ रहा है। तब वह या तो उस पुलिसपर ही आक्रमण कर देता है, नहीं तो, भागनेकी कोशिश करता है, जिससे पुलिसके आदमीको संदेह हो जाता है और वह चोरको पकड़ लेता है। यह भी एक उदाहरण दोषयुक्त मनका है जो सबको कायर बनाता है। ये सभी बातें हमारे अपने अंदरसे ही उत्पन्न होती हैं, अतः इन सबके लिये मन ही उत्तरदायी है।

## वास्तविक चिकित्सा

दूसरी तरफ, यदि हम यह जान लें कि आत्माका स्वरूप और उसका लक्ष्य क्या है तो हम अनुभव करेंगे कि दैवी आनन्द हमारे अंदर ही है तथा निदिध्यासनका मार्ग जानकर उस तक पहुँचनेकी कोशिश करें ( जिस प्रकार एक बाण अपने लक्ष्यको वेधकर उसके साथ एक हो जाता है ) तो असीम आनन्द हमें अभी और यहीं प्राप्त हो सकता है। पर यदि हम हमेशा दुःखोंके बारेमें ही सोचा करेंगे तो हम उन्हें ज्यादा अनुभव करेंगे; क्योंकि भ्रमर-कीट-न्यायके अनुसार यह एक प्राकृतिक नियम है कि जिस बातका हम सतत विचार करते रहेंगे, हम उसीको हरदम अनुभव करेंगे और वही हो जायँगे। यह प्रयोगात्मक मनोविज्ञान है, आधुनिक डॉक्टर रोगीके कमरेमें इसीका प्रयोग करते हैं तथा हिप्नोटिज्म और मेस्मरिज्मका रहस्य भी यही है। प्राचीन पौराणिक कथाओंमें हम यह पाते हैं कि हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कुम्भकर्ण और कंस आदिने अपनी मृत्युके समय प्रभुको प्रत्यक्ष देखा। पर इसका कारण क्या है? यही कि वे ( **अपश्यंस्तन्मयं जगत्** ) हमेशा दिन-रात परमात्माका विचार करते थे। यद्यपि उनका यह ध्यान भक्ति या प्रेमके कारण नहीं, अपितु घृणा अथवा डरके कारण ही था, फिर भी उनके मनमें ईश्वरका ध्यान सदा रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंमें प्रभुके दर्शन किये। उन्होंने प्रभुके दर्शन उसी रूपमें किये जिस रूपमें कि वे उसका ध्यान करते थे। भक्त लोग तो उसका ध्यान भगवान्, पिता अथवा गुरुके रूपमें करते हैं और उसका दर्शन भी वे उसी रूपमें करते हैं, पर वे जो उसका ध्यान अपने शत्रुके रूपमें करते हैं, अन्तमें उसी रूपमें अर्थात् वैरीके रूपमें ही प्रभुका दर्शन भी करते हैं।

ग्रीष्मकी दोपहरीके सूर्य-प्रकाशको तुम अपनी आँखें बंद करके इन्कार कर सकते हो। यह कह सकते हो कि धूप या सूर्य-प्रकाश है ही नहीं; पर जब अंदरसे प्रकाश होता है तो उससे आन्तर और बाह्य सभी पदार्थ प्रकाशित हो जाते हैं; क्योंकि उस दशामें मन ही सब कुछ कार्य करता है। अतः अपने मनपर नियन्त्रण करो, उसे लक्ष्यपर लगा दो और तब तुम निश्चयसे उद्देश्यतक पहुँच जाओगे तथा पूर्ण सफलता प्राप्त करोगे।

हमारा सच्चा और वास्तविक उद्देश्य क्या और कहाँ है? जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि परमात्माके साथ एक होना ही उद्देश्य है। वह सर्वव्यापी है, अतः हमारे अंदर भी है। तब हमारा यह शरीर क्या है? यह आत्माका एक बाह्य आच्छादनमात्र है। अतः यदि हम इस तथ्यको जानें ( अपने भ्रमको मिटाकर शरीर, इन्द्रिय तथा मनकी दासतासे मुक्त हों ) तथा आत्माके दैवी स्वभावका साक्षात्कार करें तो सफलता निश्चित है। इस प्रकार हमारा उद्देश्य ऊँचा है, पर उस तक पहुँचनेका मार्ग सरल। इसकी अपेक्षा और ऊँचे उद्देश्य और सरल मार्गकी कल्पना नहीं हो सकती।

## कुछ प्रश्न

यहाँपर यह प्रश्न हो सकता है कि ठीक है, यदि हम परमात्मा हैं अर्थात् सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं तथा यदि मृत्यु, अज्ञानता, दुःख आदि बाह्य कारणोंसे पैदा होनेके कारण उपलक्षणमात्र हैं, तो हम आनन्द-प्राप्तिके लिये प्रयत्न क्यों करें? क्या अज्ञानता और अप्रसन्नता, गरम पानीकी उष्णताके समान, अपने आप क्रमशः कम होते हुए अन्तमें बिल्कुल समाप्त नहीं हो जायँगी? हमारा उत्तर यहाँ यह है, ठीक है, गरम पानी वैसे ही छोड़ दिये जानेपर थोड़े समय बाद अपने आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंडा हो जायगा, पर हमने यह कभी नहीं कहा कि चूल्हे या अग्निपर चढ़े रहनेके बावजूद भी वह ठंडा हो जायगा। उस हालतमें तो वह और ज्यादा ही गरम होगा। इसी प्रकार यदि जीवनमें दुःखदायी तत्त्वोंको प्रोत्साहन मिलता रहेगा, अर्थात् अज्ञान और दुष्कर्मोंका सिलसिला जारी रहेगा, तो कष्ट और दुःख कैसे नष्ट होंगे और अपने स्वरूपभूत लक्षण अर्थात् आनन्दतक कैसे पहुँचा जा सकेगा।

यहाँ यह भी शंका हो सकती है कि जब केवल परमात्मा ही सत्य है और शेष सब मिथ्या है तो हम दो मिथ्याओं अर्थात् पुण्य-पापमें भेद करके प्रथमका पालन तथा दूसरेका नाश क्यों करें? इसका उत्तर संस्कृतके इस सुभाषितमें दिया गया है—

**कण्टकं कण्टकेनैव गरेण च यथा गरम्।**

कल्पना करो कि तुम्हारे पैरमें काँटा गड़ जाय और तुम उसको निकालना चाहो तो तुम उस समय क्या करोगे? उसे कैसे निकालोगे? उस समय तुम उसे एक दूसरे काँटेद्वारा ही निकाल सकोगे, पर क्या उस समय तुम यह कहकर कि दोनों ही काँटे हैं अतः दोनों ही बुरे हैं, हाथके काँटेको फेंक दोगे? ठीक है कि दोनों ही काँटे हैं पर उनमें एक दुःखदायक है और दूसरा दुःख हटाकर सुख देनेवाला है। इसी प्रकार एक डाक्टर भी मनुष्यके शरीरमें रहनेवाले विषको नष्ट करनेके लिये दूसरा विष देता है। हैं दोनों यद्यपि विष ही, पर दोनोंमें भेद है। पहला जीवन-नाशक है, दूसरा जीवन-रक्षक है। उसी प्रकार पाप और पुण्य निस्संदेह मिथ्या हैं, पर प्रथम मिथ्याका वह रूप है, जो दुःखदायी है और दूसरा मिथ्याका वह रूप है जो सुखदायी है। यदि तुम्हें दुःखके प्रति कोई आपत्ति नहीं है, तो तुम्हारे मनमें पापके प्रति भी कोई आपत्ति नहीं होगी, पर यदि तुम सुख चाहते हो, तो तुम्हें पुण्य करना ही होगा और जिस प्रकार पैरमें काँटा निकालनेके बाद दोनों काँटोंको दूर फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार पुण्यका कार्य समाप्त हो जानेपर दोनों (पाप-पुण्य) से परे हो जाना चाहिये। शास्त्रकी आज्ञा है—

**उभे पुण्यपापे विधूय**

अर्थात् पुण्य और पाप दोनोंसे परे हो जाय। अब फिर एक और शङ्का उत्पन्न होती है कि यदि कोई पाप करना बिल्कुल बंद कर दे, अथवा यों कहिये कि बर्तनको चूल्हेपरसे उतार दे तो क्या पानी स्वतः ही ठंडा नहीं हो जायगा? यदि हो जायगा अथवा पाप नहीं करेगा, तो केवल उतना ही कहना कि 'पाप न करो' क्या पर्याप्त नहीं है? फिर ईशसाक्षात्कारके लिये श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा आत्मस्वरूप जानकर उसकी परमात्माके साथ एकताका ज्ञान करना इन सबकी क्या जरूरत है? इसका उत्तर दो तरहसे दिया जा सकता है।

१—यह ठीक है कि आगपरसे पानीको उतार दिये जानेपर वह ठंडा अवश्य हो जायगा; पर वह ठंडा होनेमें कितना समय लेगा, यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर न होकर उसके टेम्परेचरपर निर्भर है। पर यदि तुम बहुत प्यासे हो और देरतक प्रतीक्षा नहीं कर सकते, तुम्हें उसे ठंडा करनेके लिये स्वयं कोशिश करनी पड़ेगी, अर्थात् उसे एक बर्त्तनसे दूसरे बर्त्तनमें डालना पड़ेगा, नहीं तो, उसे बर्फमें रखना पड़ेगा। जिससे कि पानी जल्दी ठंडा हो जाय। उसी प्रकार यहाँ भी, हमने अपने इस जन्ममें तथा पिछले जन्मोंमें बहुत-से पाप किये हैं, इसलिये स्वभावतः ही हमें उनके फल भोगने पड़ेंगे। यदि हम आगे और पाप न करते हुए उतने समयतक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर सकते हैं, जबतक कि सारे पाप स्वयं समाप्त न हो जायँ तो कोई आपत्ति नहीं। पर यह असम्भव ही है। हम शीघ्र-से-शीघ्र इन पापोंसे छुटकारा पाना चाहते हैं। यदि तुम दुःख अथवा कष्टका अनुभव नहीं करते हो, तो उसका इलाज करके दुःखसे छुटकारा पानेके लिये कोई कुछ न कहेगा। पर यदि दुःख हैं और उनका अनुभव भी तुम करते हो तो उससे छूटनेका इलाज भी आवश्यक ही है। अलङ्काररूपसे यदि दर्पणमें तुम्हारा चेहरा भद्दा न दीखता हो तो तुम्हें अपनी आँखें बंद करनेकी कोई जरूरत नहीं है। पर यदि तुम्हारा चेहरा भद्दा दीखता है और तुम उसे देखना नहीं चाहते तो तुम्हें अपनी आँखें बंद करनी ही पड़ेंगी। उसी प्रकार यहाँ भी यदि तुम्हें कोई दुःख नहीं है और तुम सर्वदा स्वर्गीय आनन्दमें रहते हो, तो समझो कि तुमने अपना उद्देश्य प्राप्त कर लिया है और अपनी मंजिलतक पहुँच गये हो, फिर तुम्हें श्रवण आदिकी भी कोई जरूरत नहीं है। पर यदि तुम दुखी हो और उस दुःखसे तुम छूटना चाहते हो तो, जिस प्रकार पानीको शीघ्र ठंडा करनेके लिये बर्फ आदिकी सहायता लेनी पड़ती है, उसी प्रकार तुम्हें श्रवण, मनन आदिकी सहायता लेनी पड़ेगी तथा पापसे छूटकर मोक्षकी ओर बढ़ना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२–गरम पानीके बर्तनके नीचेसे आग हटा देनेसे क्या तात्पर्य सिद्ध होता है ? इसका उत्तर तो यह पता लगानेके बाद ही मिल सकेगा कि उस दशामें अग्नि पदका क्या अर्थ है ? शास्त्रका कथन है—

**अविद्याकामकर्मभिर्जन्म**

—और हमारा अनुभव भी हमें यही बताता है कि तीन पदार्थ हैं जो हमें बन्धनमें डाल देते हैं और हमारे जन्मके लिये जिम्मेदार हैं, जिस जन्ममें हम अपनी आत्माको भूल जाते हैं। वे कारण हैं—( १ ) अपने अनन्त स्वरूपके प्रति अज्ञानता, ( २ ) सांसारिक पदार्थोंकी इच्छाएँ और ( ३ ) वे मूर्खतापूर्ण कर्म जिन्हें हम अपनी इच्छा या वासनापूर्त्तिके लिये करते हैं। अज्ञानताके कारण हमारे अंदर इच्छाएँ पैदा होती हैं, इच्छाओंके कारण हम कर्म करते हैं और उन कर्मोंके फल भोगनेके लिये हमें विभिन्न शरीरोंमें जन्म लेना पड़ता है। तब हम अपने इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा सांसारिक विषयोंके दास बन बैठते हैं। अतः जबतक बन्धनके मूल कारण अज्ञानताको विनष्ट न किया जाय तबतक बन्धन भी विनष्ट नहीं हो सकते। दूसरे शब्दोंमें, वह अग्नि, जिसे हम आत्म-साक्षात्काररूपी पानीके नीचेसे हटाना चाहते हैं, अविद्या है और जबतक श्रवण-मननादिद्वारा अज्ञानरूपी अग्निको हटा नहीं देते, तबतक ठंडा जल प्राप्त नहीं कर सकते। यह इस बातको दिखानेके लिये पर्याप्त है कि श्रवण, मननादि साधनोंकी क्या जरूरत है।

## गतिविधि

जीवात्माके दैवी आनन्दको छोड़कर इस अज्ञान और दुःखकी स्थितिमें पहुँचनेकी तथा फिर अपने स्वरूपकी ओर जानेकी गतिविधियोंका वर्णन वैदान्तिक शास्त्रोंमें बड़ी ही सुरुचिपूर्ण रीतिसे किया गया है। इसका वर्णन सौर मासके बारह महीनोंके नामोंके आधारपर भी किया गया है। उसका संक्षेप इस प्रकार है—

**१–चैत्र**—यह शब्द उस आत्माकी विचित्रताका वर्णन करता है तथा परमात्माके उस संकल्पका परिचायक है, जिसके द्वारा वह ब्रह्म स्वयंको बहुत रूपोंमें प्रकट करता है।

**२–वैशाख**—इसका अर्थ है शाखाओंको फैलाना, अर्थात् ब्रह्म अपने प्रकाशन ( Manifestation ) की शाखाओंका विस्तार करता है।

**३–ज्येष्ठ**—इसका अर्थ है बड़ा। तथा बहुत्वके कारण होनेवाले परिणामोंका द्योतक है। जैसा कि श्रुतिका कथन है—'द्वितीयाद्वै भयं भवति' ( अन्यके होनेसे डर रहता है ) अर्थात् मनुष्योंमें अधिकार, सुविधा, श्रेष्ठता तथा बड़प्पन प्राप्त करनेके लिये झगड़ा होता है।

**४–आषाढ़**—का अर्थ है चारों ओर होनेवाले असह्य दुःख। यह बताता है कि उन झगड़ोंसे किस प्रकार असह्य दुःख पैदा होते हैं। जब मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जाता है, तो वह आश्चर्य करता है कि वह इतना दुखी क्यों है? और वह इस दुःखके कारणको ढूँढ़नेका प्रयास करता है।

**५–श्रावण**—का अर्थ है गुरुसे शिक्षा ग्रहण करना। और वह मनुष्य दुखी होनेपर उससे छुटकारा पानेके लिये पदार्थोंके पीछे छिपे हुए सत्य-तत्त्वको ढूँढ़नेका प्रयास करता है और उसकी शिक्षा लेनेके लिये वह गुरुके पास जाता है।

**६–भाद्रपद**—का अर्थ है आनन्द अथवा प्रसन्नता ( भद्र ) की ( पद ) स्थिति ( अथवा वह ज्ञान, जो हमें इस स्थितितक पहुँचाता है ) और यह उस उद्देश्यकी व्याख्या करता है, जिसको पानेके लिये साधन-प्रयत्न करता है।

**७–आश्विन**—यह शब्द संस्कृत व्याकरण 'अश्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है व्याप्ति और संघात। यह पद यह बताता है कि परमात्मा सब जगह व्याप्त है और हमारे शरीरमें भी है। वह हमें निर्देश करता है कि हम उस सर्वव्यापी तथा शरीरस्थ आत्माका साक्षात्कार करें। तब हमारा शरीर क्या है ? इसका उत्तर अगलेमें है।

**८–कार्तिक**—इस पदका अर्थ है, चमड़ा ( अथवा बाहरी आवरण )। यह पद ऊपरके प्रश्नका उत्तर देता है कि यह शरीर उस अविनाशी आत्माका ( कार्तिक ) बाहरी आवरण है। अगला प्रश्न है, शरीर और आत्माके सम्बन्धमें कि हम इन दोनोंमें किसकी खोज करें। उत्तर है—

**९–मार्गशीर्ष**—अर्थात् जो शीर्षस्थानीय हो, मुख्य हो, उसकी ( मार्ग ) खोज करनी चाहिये। अर्थात् जो सबसे ( शीर्ष ) मुख्य परमात्मा है, उसीकी ( मार्ग ) खोज करनी चाहिये।

अबतक हमने श्रवण और मननपर विचार किया। हमने जो कुछ भी अभीतक सीखा, वह वेदान्तके द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह निश्चित किया गया है। पर यह हमें स्वस्थ बनानेके लिये पर्याप्त नहीं है; क्योंकि कई जन्म-जन्मान्तरों-तककी गयी संसारकी उपासनाकी वासना ( संस्कार ) हमारे जीवनको बदलने नहीं देती। यह वासना, जिसे शरीर-शास्त्रज्ञ संवेदनात्मक प्रतिक्रिया तथा साधारण मनुष्य आदतके नामसे पुकारते हैं, कई तरहके कष्ट देती है। यह वासना केवल उत्तम विचारोंके निरन्तर ध्यानसे ही काबूमें लायी जा सकती है। कभी-कभी हम इन आदतोंके द्वारा बलात् कुमार्गपर ले जाये जाते हैं, उस समय हमें चाहिये कि हम विचारपूर्वक कुमार्गसे पृथक् होकर उत्तम मार्गको अपनायें। उत्तम और नैतिकतापूर्ण आदतें हमें कभी दुःख या कष्ट नहीं देतीं, जब कि अविद्या अथवा कुसंगतिके कारण उत्पन्न होनेवाली बुरी आदतें हमें सदा कष्ट देती हैं। इन बुरी आदतोंको हटानेका एकमात्र मार्ग यही है कि हम बुरी आदतोंको नष्ट करते हुए अच्छी आदतोंको अपनाते जायँ। यही निदिध्यासन है, जिसे दूसरे शब्दोंमें सतत धाराप्रवाह-रूपी ज्ञान भी कह सकते हैं; क्योंकि उच्च विचारोंका निरन्तर ध्यान ही हमारे मस्तिष्क एवं हृदयके हर कोनेमें फैले और चिपटे हुए अज्ञान एवं कुविचारोंको हटानेमें सफल हो सकता है। इस प्रकार ये तीनों स्तर पूर्ण होते हैं—

१-श्रवण—इसके द्वारा हम विद्वानोंके मुखसे ज्ञानकी बातें सुनते हैं।

२-मनन—इसमें हम अपने सारे संदेहों एवं कठिनाइयोंको समाप्त कर देते हैं।

३-निदिध्यासन—इसमें हम अबतक सीखे हुए उच्च विचारोंको अपने जीवनमें ढालते हैं तथा अपने दैनिक जीवनको उन्हीं उच्च विचारोंके अनुरूप मोड़ते हैं। अब—

**१०-पौष**—का अर्थ है ( पुष्-पोषणे ) 'निरन्तर पुष्ट करना'। उच्च विचारोंको अपने अंदर पुष्ट करना। जब कोई इस स्थितिपर पहुँच जाता है, तो और क्या करनेकी जरूरत रह जाती है? पर जबतक वह जीवित है, उसे कोई-न-कोई काम अवश्य करना पड़ेगा, उस स्थितिमें वह क्या करेगा और क्या न करेगा? इसका उत्तर अगला पद देता है—

**११-माघ**—अर्थात् वह ( अब ) पाप ( मा ) नहीं करेगा। जो कोई जीवात्मा और परमात्माकी एकताका साक्षात्कार कर लेता है, वह पाप कभी नहीं कर सकता। वह सदा हानि-लाभ एवं स्वार्थसे परे होकर पुण्य एवं सत्कर्म ही करेगा। और—

**१२-फाल्गुन**—अर्थात् वह कभी नीच काम नहीं करेगा। इस प्रकार अन्तमें हम ऐसी स्थितिमें पहुँचते हैं—

'उभे पुण्यपापे विधूय' जहाँ हम अपने स्वार्थके लिये न कोई पाप ही करते हैं और न पुण्य ही; क्योंकि प्रत्येक काम, जो फलप्राप्तिकी दृष्टिसे किया जायगा, नीच ही होगा और प्रत्येक काम जो निष्कामबुद्धि, कर्तव्यबुद्धि अथवा ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किया जायगा, उत्तम होगा। इस प्रकार जैसे-जैसे हम आध्यात्मिक सीढ़ीपर चढ़ते जायँगे, वैसे-वैसे ऊँची-ऊँची स्थितिपर पहुँचते जायँगे और आखिरी स्थितिपर पहुँचनेके बाद निष्काम कर्मके सिवा और कोई कर्म नहीं रहता। यही कारण है कि बारहवें मास फाल्गुनके बाद चक्र समाप्त हो जाता है और तेरहवें मासकी आवश्यकता नहीं रहती।

( आगामी अंकमें समाप्य )

## महामानव

'मदनेश' वे ही नरलोकमें महान् महा-
कष्ट सह पीड़ितोंके कष्ट हर लेते हैं।
सभ्यतासे, प्रकृत सरसतासे, साधुतासे,
हँसमुख हँस हँस वश कर लेते हैं॥
टलते न टालते निकालते जो मुँहसे हैं,
पालते हैं संतत उसे जो धर लेते हैं।
सर्वस्व देते पर लेते कुछ भी हैं नहीं,
बदलेमें केवल सुयश भर लेते हैं॥

—गणेशप्रसाद 'मदनेश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सेवा

( लेखक—महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज )

सीताराम ! भोजन नहीं, सेवा; सेवा—श्रीभगवान्‌के शरीरकी सेवा ।

**न मेऽस्ति बन्धुर्न च मेऽस्ति शत्रु-**
**र्न भूतवर्गो न जनो मदन्यः ।**
**त्वं चाहमन्यच्च शरीरभेदै-**
**र्विभिन्नमीशस्य हरेः शरीरम् ॥**

( विष्णुरहस्य )

मेरा बन्धु नहीं है, मेरा शत्रु नहीं है, जीवसमूह नहीं है, मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है; तुम, मैं और अन्य जो कुछ भी—सब भगवान् श्रीहरिके विभिन्न शरीर हैं ।

**यान्यमूर्तानि मूर्तानि यान्यत्रान्यत्र वा क्वचित् ।**
**सन्ति वै वस्तुजातानि तानि सर्वाणि तद्वपुः ॥**

( विष्णुपुराण १ । २२ । ८६ )

निराकार या साकार यहाँ वा अन्य कहीं, जो कुछ भी वस्तुसमूह है, सभी श्रीवासुदेवका शरीर है । तुम्हारा देह है भगवान्‌का शरीर और तुम हो उनके अंश ।

**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।**

( गीता १५ । ७ )

इस जगत्‌के जीव मेरे सनातन अंश हैं ।

**अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।**
**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥**

( गीता ७ । ५ )

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार मेरी अपरा प्रकृति है; यह निकृष्ट है । इससे उत्कृष्ट मेरी जीवस्वरूपा परा प्रकृति है । उसने जगत्‌को धारण कर रक्खा है । जीव उसका अंश है, उसकी प्रकृति है ।

श्रीभगवान्‌ने उद्धवसे कहा है—

**एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ।**
**बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः ॥**

( श्रीमद्भा० ११ । ११ । ४ )

हे महामते ! मेरा अंशस्वरूप अद्वितीय यह अ[illegible] जीव अविद्याके द्वारा बन्ध और विद्याके द्वारा मोक्षको प्र[illegible] हुआ करता है ।

अविद्या क्या है ?

**देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ।**

मैं देह हूँ—इस बुद्धिका नाम अविद्या है । [illegible] अविद्याके प्रभावसे ही तुम देहको 'मैं' समझ रहे हो—यह 'अहं' और मम—

**मम माता मम पिता ममेयं गृहिणी गृहम् ।**
**एतदन्यं ममत्वं यत् स मोह इति कीर्तितः ॥**

मेरी माता, मेरा पिता, मेरी यह घरवाली, मेरा [illegible] —इन सबमें और अन्यान्य वस्तुओंमें जो ममत्व है उसीका नाम मोह है । इस अहं-ममने ही संसार[illegible] रचना की है ।

तुम अपने नित्य शुद्ध सनातन ज्योतिर्मय स्वरू[illegible] अविद्यावश भूलकर श्रीभगवान्‌की देहको मैं सम[illegible] अपनेको खो रहे हो । तुम तो उनके हो; सागरमें त[illegible] की तरह, चन्द्रमामें किरणके तुल्य और सूर्यमें र[illegible] सदृश तुम उनके साथ सदा एकीभूत हो, तब भी [illegible] अपनेको भूलकर भगवान्‌की देहको छीनकर इस दे[illegible] मैं कहकर इसकी सुख-स्वच्छन्दताके लिये पागलकी त[illegible] भटक रहे हो । तुम उन्हींको भोजन करवा रहे हो [illegible] वे खा रहे हैं । तुम अविद्याके वश होकर अंडे-मु[illegible] मछली—इन सब जीवोंकी हत्या करके उदर पूर्ण क[illegible] हो । जगत्‌में अहिंसाके समान धर्म और हिंसाके स[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अधर्म नहीं है। एक अविद्याके कारण तुम कौन हो' यह भूल गये हो। फिर अखाद्य-कुखाद्य चीजोंको रसनाके सुखके लिये खा रहे हो। श्रीभगवान् कहते हैं—

**अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।**
**प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥**
( गीता १५ । १४ )

मैं वैश्वानर—जठराग्निरूपसे प्राणियोंके शरीरोंमें प्रवेश करके उनके उद्दीपक प्राण-अपान-वायुके साथ प्राणियोंके खाये हुए—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य—चारों प्रकारके अन्नको पचाता हूँ। अग्निमें यदि उत्तम घृतद्वारा होम किया जाय तो उस होमके धुएँकी सुगन्ध मनुष्यके देह-मनको पवित्र करती है। केवल मनुष्य ही नहीं, उस होम-धूम-गन्धसे स्थावर-जङ्गम सभी पवित्र होते हैं, परंतु यदि उस अग्निमें मुर्गी, मछली, मांस, अंडे, प्याज, लहसुन जलाये जाते हैं तो उसकी दुर्गन्धसे वहाँ टिकना कठिन हो जाता है, शरीर अस्वस्थ होता है, चराचर प्राणिमात्रके देह-मनको वह दुर्गन्ध दूषित कर देती है। इसी प्रकार भगवान् जठराग्नि बनकर देहमें विराजमान रहते हैं, उसमें मांस, मछली, मुर्गी, अंडे, प्याज, लहसुन-की आहुति देनेपर उन्हें उन दुष्ट अपवित्र दुर्गन्धयुक्त रजस्तमोगुण बढ़ानेवाले विषाक्त आहारोंको पचाना पड़ता है, उसीके द्वारा समान वायु समस्त शरीरका पोषण किया करती है, अतएव वह विष सारे शरीरमें फैल जाता है, देहके सारे उपादान विषाक्त हो जाते हैं।

जो द्रव्य खाया जाता है, उसके तीन भाग होते हैं। एक भाग मल-मूत्रके रूपमें बाहर निकल जाता है, एक भाग देह बनता है और एक भाग मन। बकरे आदि पशुका मांस खानेपर इन्द्रियाँ पशुकी इन्द्रियकी तरह असंयत विषयप्रवण और कामाकुल हो जाती हैं। मन भी उन्हींके सुरमें सुर मिला देता है। मनुष्य उन्मत्त हो जाता है और वीर्यक्षयको रोक नहीं सकता। शरीर-की सार धातु है—वीर्य। वीर्य ही आत्मा है। उस

आत्माका हनन न करना अखाद्य भोजन करनेवालोंके लिये प्रायः कठिन हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर भाँति-भाँतिके रोगोंसे ग्रस्त होकर अन्तःसारशून्य और मन विषयोन्मत्त हो जाता है। यथेच्छ राजस-तामस आहारसे मनुष्यत्व नष्ट होता है, जीवनके वास्तविक उद्देश्यकी विस्मृति हो जाती है। तामसी आहार तो सभी तरहसे हानिकर होता है। संयमी पुरुष राजसी आहार करके बलवान् हो सकता है। सांसारिक विषयोंमें उसकी बुद्धिका तीक्ष्ण होना भी असम्भव नहीं है, उसके द्वारा भौतिक सुखैश्वर्य बढ़ानेवाले पदार्थोंका आविष्कार भी हो सकता है; परंतु उसके लिये अध्यात्मका द्वार तो बंद हो जाता है। राजस-तामस भोजन करनेवाला यदि भगवान्का नाम लेता है तो वह भगवत्प्रेमके लिये नहीं लेता। उसमें छिपी कामना रहती है—सांसारिक सुख, धार्मिक प्रसिद्धि और यश प्राप्त करनेकी ही। प्रेमी कभी हिंसा नहीं कर सकता। मनुष्य ईश्वर-दर्शनके लिये आता है, यह बात राजस-तामस भोजन करनेवालेके मनमें भूलसे भी नहीं आती। वह देह नहीं है—आत्मा है—यह समझनेकी उसकी शक्ति नहीं रह जाती।

**वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।**
**भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥**
( श्वेताश्वतरोपनिषद् ५ । ९ )

केशके एक अग्रभागको सौ भागोंमें बाँटकर फिर उस प्रत्येक भागके सौ भाग करनेपर जो एक भाग होता है, जीव उसीके समान अणु परिमाणवाला है, जीव अनन्त हैं।

**देहेन्द्रियमनःप्राणधीभ्योऽन्योऽनन्यसाधनः ।**
**नित्यव्यापी प्रतिक्षेत्र आत्मभिन्नः स्वतः सुखी ॥**
( आत्मसिद्धि—भगवान् यामुनाचार्य )

देह-इन्द्रिय-मन-प्राण-बुद्धि आदिसे अन्य अनन्यसाधन भगवद्दास, नित्यव्यापी प्रतिक्षेत्रमें भिन्न स्वतः सुखी आत्मा है। आत्मा चिद्रूप है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**तदेतत् सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्**
**विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।**
**तथाक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः**
**प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥**

वह यह अक्षर ही परम सत्य है, जैसे सुदीप्त अग्निसे उसीके समरूप सहस्र-सहस्र स्फुलिंग निकलते हैं, हे प्रिय ! वैसे ही पुरुषोत्तम अक्षर ओंकारसे नाना प्रकारके जीव उत्पन्न होते हैं और अन्तमें उसी परम कारणमें ही विलीन हो जाते हैं ।

केवल एकमात्र आहारके दोषसे ही मनुष्य अपनेको खो देता है—भगवान्‌की देहको अपनी देह बताकर उसे छीनकर अखाद्य-कुखाद्यके द्वारा शरीरको पुष्ट करके पशुकी भाँति जगत्‌में रहता है—

**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः,**
**स्मृतिप्रतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥**
( छान्दोग्योपनिषद् ७ । २६ । २ )

आहारशुद्धिसे सत्त्वशुद्धि होती है, सत्त्वशुद्धि होनेपर अचला स्मृति होती है । स्मृति होनेपर ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र—इन तीन ग्रन्थियोंसे छुटकारा मिल जाता है । प्राणात्मा महाकाशमें पहुँच जाता है । इन्द्रियोंके द्वारा जो विषयोंका ग्रहण होता है उसका नाम आहार है । पहले सात्त्विक आहारके द्वारा मन तथा शरीर शुद्ध होकर देहका उपादान बदल जाता है । तब इन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँचों ही विषयोंको श्रीभगवान्‌के रूपमें ग्रहण करने लगती हैं । जब यथेच्छ विषयभोगके कारण रोग, शोक, पाप, ताप, अशान्तिके मारे जीव हाहाकार करने लगता है, तब श्रीभगवान् ही गुरुरूपमें आकर उससे कहते हैं—'अरे, रो मत । तू कितना भी पतित क्यों न हो, तेरे लिये उपाय है । तू भगवान्‌का नाम ले, तुझे भगवान्‌की प्राप्ति हो सकेगी । तुझे आत्मस्वरूपकी उपलब्धिके लिये अलग चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी । नाम लेते हुए सात्त्विक आहार करनेपर जब शरीरका उपादान बदल जायगा, तब उनका संधान मिलेगा, तू उनके रमणीय परम सुन्दर ज्योतिर्मय रूपके दर्शन कर सकेगा, उनकी सुमधुर वंशीका गान सुनकर धन्य होगा ।'

गुरुदेवके आदेशानुसार वह पथभ्रष्ट रोग-शोक-ज्वाला-यन्त्रणासे व्याकुल मनुष्य भगवान्‌का नाम लेकर भगवत्सेवामें जीवन उत्सर्ग कर देता है । वह प्रातःकालसे लेकर शयनके समयतक जो कुछ भी लौकिक-वैदिक कर्म करता है, सब भगवान्‌की सेवाके भावसे करता है । सबेरे उठकर नित्यक्रिया और स्नान, संध्या, पूजा, जप जो कुछ भी करना है—श्रीभगवान्‌की सेवाके भावसे करना आरम्भ कर देता है । रसना निरन्तर नाम-रससे रसिक रहती है । पहले-पहले इसमें आनन्द नहीं आता । ज्यों-ज्यों पापका क्षय होता है, त्यों-ही-त्यों आनन्द बढ़ता रहता है । श्रीभगवान्‌के प्रसाद-अन्नके द्वारा उन्हींके शरीर देहकी सेवा होती है । वह पवित्र प्रसाद-अन्न बनाकर वैश्वानररूपी भगवान्‌के भोग लगाता है । उससे अमृतमय रसरक्त आदि जो कुछ भी बनता है, उसके द्वारा समान वायु समस्त शरीरका पोषण करती है ।

**शरीरपोषणादिकं समानकर्म**—( शाण्डिल्योपनिषद् )

सतत नामकीर्तन और उस पवित्र प्रसादान्नके भोजनसे कुछ दिनोंमें शरीरका उपादान बदल जाता है—शरीर शुद्ध हो जाता है, इसके फलस्वरूप आत्मा जग उठता है, तब अपने-आप ही भीतर कितने प्रकारके मधुमय नाद स्वतः ही उठने लगते हैं । कितनी ज्योति बनकर आत्मा खेल करता है ।

आत्मा तो अन्य कुछ भी नहीं है—आत्मा ही ओंकार है, आत्मा ही प्राण है । अज्ञानसे ही यह आत्मा-ओंकार अधोमुखी रहता है ।

**प्रणवः सर्वदा तिष्ठेत् सर्वजीवेषु भोगतः ।**
**अभिरामस्तु सर्वासु ह्यवस्थासु ह्यधोमुखः ॥**
( योगचूडामणि-उपनिषद् )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रणव रमणीय होनेपर समस्त प्राणियोंमें भोगके समय सभी अवस्थाओंमें अर्थात् जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिमें सदा अधोमुख रहता है।

**ज्ञानिनामूर्ध्वगो भूयादज्ञाने स्यादधोमुखः।**
**एवं हि प्रणवस्तिष्ठेद् यस्तं वेद स वेदवित्॥**
**अनाहतस्वरूपेण ज्ञानिनामूर्ध्वगो भवेत्॥**

ज्ञानी ऊर्ध्वगत होते हैं, अज्ञानसे अधोमुख रहा जाता है; इस प्रकार प्रणव स्थित है। जो उसको जानते हैं, वे ही यथार्थ वेदज्ञ हैं। पापका क्षय होनेपर अज्ञानके नाशसे अनाहतस्वरूपमें प्रणव ज्ञानियोंके लिये ऊर्ध्वगमनकारी होता है। तब प्रणवकी निम्नगतिका अवसान हो जाता है—ज्योतिर्मय प्रणव ऊपर उठता रहता है।

**ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु।**
**प्राणः प्रणव एवायं तस्मात् प्रणव ईरितः॥**
(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता)

ब्रह्मादि स्थावरपर्यन्त सभी प्राणियोंका प्राण प्रणव है। इसीसे उसका नाम प्रणव है। ओंकारमें 'म'कार पाद नाममय है। परानाद ही भगवान् हैं, वे ही सब भूतोंके चेतन हैं, वे ही शब्दब्रह्म हैं।

**चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः।**
(शारद)

सभी प्राणियोंके चैतन्य ही शब्दब्रह्म हैं, वे ही ओंकार हैं, वे ही समष्टिमें आत्मा और व्यष्टिमें जीव हैं।

**गतो वा बीजतामेष प्राणिष्वेव व्यवस्थितः।**
**ब्रह्माण्डं ग्रस्तमेतेन व्याप्तं स्थावरजङ्गमम्॥**
**नादः प्राणाश्च जीवश्च घोषश्चेत्यादि कथ्यते।**
(प्रपञ्चसार)

वह ओंकार ही सबका बीज है—समस्त प्राणियोंके भीतर स्थित है। इसीके द्वारा ब्रह्माण्ड ग्रस्त है; स्थावर-जङ्गम सबको समाच्छन्न करके विराजमान नाद प्राण, जीव, घोष आदि नामोंसे कहा जाता है। शरीर—भगवन्नाम और सात्त्विक आहारके द्वारा शुद्ध होनेपर भीतर निरन्तर बहुत प्रकारके अनन्त नाद ध्वनित होते रहते हैं। क्रमसे मेघ, झरना आदि नाद और विविध ज्योतियोंका आविर्भाव होता है, जिससे—'यह देह आत्मा नहीं है, मैं देहसे अतीत नित्य-शुद्ध-बुद्ध आत्मा हूँ—यह प्रत्यक्ष हो जाता है। मन रात-दिन आनन्दसे भरा रहता है; आत्मज्ञानीके लिये आनन्दके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहता। श्रीभगवान् उसकी इष्टमूर्ति धारण करके दर्शन देते हैं, वर देते हैं। सगुण मन्त्र इष्टके अङ्गमें लय हो जाता है—रह जाता है नादमय ओंकार। वह शान्त अजर अमृत अभय हो जाता है।

**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।**
**समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥**
(गीता १८। ५४)

श्रीभगवान्‌ने कहा है—वह ब्रह्मको प्राप्त प्रसन्नचित्त पुरुष शोक नहीं करता, कुछ भी आकाङ्क्षा नहीं करता। समस्त भूतोंमें समान होकर मेरी पराभक्ति प्राप्त करता है। फिर वे अपने साथ मिला लेते हैं। तब समुद्रमें तरंगमें, सूर्यमें रश्मिमें और चन्द्रमामें किरणमें कोई भेद नहीं रह जाता।

नदी समुद्रमें मिलनेके लिये दौड़ती है, परंतु बालूका बाँध उसके मार्गको रोक देता है। वह नीरव रुदन करने लगती है। उसका क्रन्दन सुनकर समुद्र स्थिर नहीं रह सकता। वह पूर्णिमाके दिन बढ़कर नदीको आत्मसात् कर लेता है—अपनेमें मिला लेता है। हमारे ठाकुरने कहा है—

**जिसके तेरे नामपर झरते दृग अनिवार।**
**पदपंकज-युगपर सदा उसका ही अधिकार॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मधुर

सच्चिदानन्दघन परात्पर प्रभु बालगोपालरूप श्यामसुन्दरको निहत करनेके कंसके सारे प्रयास निष्फल हो गये, तब दुष्ट असुर-मन्त्रियोंकी सम्मतिके अनुसार धनुर्यज्ञका बहाना रचकर कुवलयापीड हाथी और मुष्टिक-चाणूरादि पहलवानोंके द्वारा श्रीकृष्णको निहत करानेकी बुरी नीयतसे श्रीकृष्ण और बलरामको लिवा लानेके लिये कंसने अक्रूरजीको नन्दव्रज भेजा।

अक्रूरजी भक्त थे, वे भगवच्चरण-दर्शनकी विशुद्ध लालसा लेकर नाना प्रकारके मङ्गलमय मनोरथ करते हुए मथुरासे चले और नन्दगोकुलके समीप पहुँचकर श्यामसुन्दरके चरणचिह्नोंको देखते ही रथसे सहसा कूदकर प्रेमभावावेशमें धूलमें लोट गये। उन्हें कैसा और कितना विलक्षण आनन्द मिला, इसे वे ही जानते हैं।

तदनन्तर व्रजमें वे नन्दबाबा-यशोदामैयासे मिले। उन्हें कंसका संदेश सुनाया। श्रीराम तथा श्रीकृष्णको मथुरा भेजनेकी बात पक्की हो गयी। श्रीराम-श्याम मथुरा जा रहे हैं, कब लौटेंगे यह पता नहीं—इस समाचारसे सारा नन्दव्रज व्याकुल हो उठा। विभिन्न भावोंसे स्नेह करनेवाले सभी वर्गोंमें करुणारस फूट पड़ा। चारों ओर हाहाकार मच गया।

वात्सल्यरसपूर्ण यशोदामैया और नन्दबाबा तथा उनके समवयस्क गोप-गोपी और भगवान्‌के बाल-सखाओंकी दशा अत्यन्त करुणोत्पादक हो गयी। प्रेमरसमयी श्रीगोपियोंकी दशाका तो संकेतसे भी वर्णन नहीं किया जा सकता और इनमें राधाकी स्थिति सबसे अधिक गम्भीर थी!

उन्होंने जब सुना कि उनके जीवनधन श्यामसुन्दर दाऊजीको सङ्ग लेकर अक्रूरके साथ मथुरा जा रहे हैं तो उनके सारे मन-तनमें भीषण ज्वाला भड़क उठी। वे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं, मुखपर घोर विषाद छा गया, उनके समस्त परम शोभामय अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो गये। हृदयका सारा रस जल गया। दोनों आँखें सूख गयीं और पलकें पड़नी बंद हो गयीं। जीवनमें घना अंधकार छा गया। (श्रीराधाकी ऐसी दशा सुन-समझकर) उनके प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर उनके समीप उन्हें समझाने आये। कुछ कहना चाहते थे पर बोल ही नहीं सके, राधाकी अत्यन्त आर्त दशा देखकर उनके मनमें भी अपार विषादका उदय हो आया। वे जड पाषाणवत् हो गये, मानो सारी चेतना ही विलुप्त हो गयी हो। दोनों प्रिया-प्रियतम भावी विरहकी भयानक आगसे जलने लगे। उन्हें न संसारकी सुधि रही, न अपने जीवनकी!

जिसमें सुर-मुनियोंकी भी गति नहीं है, ऐसे इस दिव्य प्रेमरसकी महिमा कौन कह सकता है!

मधुपुरी गवन करत जीवनधन।<br>
लै दाउए संग सुफलक-सुत,<br>
सुनि जरि उठी ज्वाल सब मन-तन॥<br>
भई बिकल, छायौ बिषाद मुख,<br>
सिथिल भये सब अंग सु-सोभन।<br>
उर-रस जरयौ, रहे सूखे द्वै<br>
द्रग अपलक, तम ब्यापि गयौ घन॥<br>
लगे आय समुझावन प्रियतम,<br>
पै न सके, प्रगट्यौ, विषाद मन।<br>
बानी रुकी, प्रिया लखि आरत,<br>
थिर तन भयौ, मनो बिनु चेतन॥<br>
भावी बिरहानल प्रिय-प्यारी,<br>
जरन लगे, बिसरे जग-जीवन।<br>
कौन कहै महिमा या रतिकी,<br>
गति न जहाँ पावत सुर-मुनिजन॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करें

( लेखक–डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी० )

आपसे पूछा जाय कि 'क्या आप इस संसार और मानव-जीवनकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं ?' आप पूछेंगे, 'बतलाइये वह क्या है ? हम और सब छोड़-कर उसे अवश्य ही प्राप्त करना चाहेंगे ।'

हमारे पास जो भी धन है । उसे देकर हम संसारकी सबसे अच्छी वस्तु प्राप्त करना चाहेंगे । अपनी छोटी-बड़ी सब सम्पत्ति बेचकर हम विश्वकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु ही पाना चाहेंगे । हम साधारणसे कभी संतुष्ट न होंगे ।

हमारे पास दो हाथोंकी शक्ति है, यदि उनके द्वारा हम उस श्रेष्ठ वस्तुको प्राप्त कर सकते हैं, तो इसमें कोई कमी नहीं रक्खेंगे । अपनी पूरी शारीरिक शक्ति और सामर्थ्य लगाकर उसके लिये प्रयत्न करेंगे ।

हमारे पास क्रियाशील मस्तिष्क है । उसकी सहायतासे यदि हम विश्वकी इस श्रेष्ठतम वस्तुको पा सकते हैं तो क्यों पीछे रहेंगे ।

लेकिन निश्चय जानिये, वह बहुमूल्य वस्तु न धनसे, न शारीरिक शक्तिसे, न किसी बाहरी ताकतसे ही जीती जा सकती है । ईश्वरकी कितनी बड़ी कृपा है कि संसार-की अन्य दुर्लभ वस्तुओं–जैसे जल, वायु इत्यादि–की तरह वह भी हम सबके लिये सर्वसुलभ है । मानवीय पहुँचके भीतर है । केवल उसके लिये सच्ची चाह एवं सतत और निरन्तर अभ्यासमात्रकी ही आवश्यकता है ।

संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु बड़ी दिव्य और अदृश्य है । ईश्वरने हम सभीको वह बहुमूल्य मशीन दी है, जिसके द्वारा यह वस्तु उत्पन्न की जा सकती है ।

अथर्ववेदमें इस महाशक्ति––इस सर्वश्रेष्ठ वस्तुका संकेत इन शब्दोंमें कर दिया गया है ।

**त्वं नो मेधे प्रथमा ।** (अथर्व० ६ । १०८ । १)

## सद्विचार ही संसारमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु है

विचार उत्पन्न करनेका यन्त्र हमारा अपना मस्तिष्क है । हमारा वह मस्तिष्क हमारी रुचि, संगति, मनोवृत्ति, बुद्धि और आचार-विहारके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारके अच्छे-बुरे ( जैसे हम चाहें ) विचार पैदा करता है ।

मस्तिष्कको सही दिशामें चलायें तो अच्छे स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले प्रेरक विचार पैदा होते हैं, किंतु यदि उसीको गलत दिशामें मोड़ दें तो उससे रोग, चिन्ता, उद्वेग और क्रोध इत्यादि मनोविकार उत्पन्न हो जायँगे ।

सद्विचार—आशा, उत्साह, पौरुष, धैर्य, त्याग, प्रेम, आनन्द और उन्नतिके विचार एक महान् उत्पादक शक्ति हैं । जो विचार मनुष्यको नयी-नयी प्रेरणा, नयी दिशा, जिन्दगीकी नयी आशा दे, उसे सही मार्गमें बढ़ायें, वही मानवकी बहुमूल्य सम्पत्ति है ।

विचार-यन्त्र मनुष्यशरीरका सबसे कीमती भाग है । आप पागलखानेमें जाकर देखिये । आपको भारी भरकम, मजबूत, खूबसूरत तरह-तरहके जवान मिलेंगे । उनका तन आपको खूब स्वस्थ दिखायी देगा । वे कुश्ती लड़ें, तो अच्छों-अच्छोंको जमीनपर पटक मारें । पर स्वस्थ तनमें सदा स्वस्थ मन रहेगा ही, यह आवश्यक नहीं । उन पागलोंको बाहरसे देखकर नहीं कहा जा सकता कि वे वास्तवमें पागल हैं या नहीं । पर तीखी दृष्टिसे देखने और कुछ देर साथ रहनेपर आप पायेंगे कि उनका मस्तिष्क ठीक स्वस्थ विचार पैदा नहीं कर रहा है । उनकी रुचि विकृत हो गयी है । वे समाजके लिये खतरनाक सिद्ध हो गये हैं । उनमें कुछ-न-कुछ मानसिक विक्षेप अवश्य है । उनका मानसिक संतुलन गड़बड़ हो गया है । साधन और साध्य, उचित और अनुचित, जरूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बिना जरूरी; कौन कार्य पहले करें, कौन बादमें करें, इसका विवेक; कहाँ जोर डालें, कहाँ कम महत्त्व दें, इन सबमें सही संतुलन न होना ही मानसिक विकृति है। कभी भय, कभी उत्तेजना, कभी लोभ, कभी अहंकार, क्रोध, चिन्ता इत्यादि किसी भी मनोविकारका आधिक्य मनमें एक प्रकारकी गाँठ-सी उत्पन्न कर देता है। यही विचार-यन्त्रका गलत प्रयोग है। मनोविकारोंके उच्छृङ्खल और अनियन्त्रित हो जानेसे ही भाँति-भाँतिके मनके रोग पैदा होते हैं।

मानस रोग असंख्य हैं। बहुरूपी हैं। नाना स्तरके हैं। किसीको उग्र हैं, तो किसीमें कुछ न्यून। कोई निराशामें रो रहा है, कोई काल्पनिक भय देखकर मरा जा रहा है। किसीको अपने मातहतों, परिवारके सदस्यों या देशके नेताओंपर क्रोध आ रहा है। कोई बार-बार अपने शरीरको धो-धोकर आन्तरिक एकत्रित गन्दगीसे पीछा छुड़ाने जा रहा है। किसीकी मानसिक विकृतिने उसमें विशेष प्रकारकी शारीरिक अङ्ग-भंगिमा पैदा कर दी है। कुछ व्यक्ति बार-बार रूमालसे अपना मुँह पोंछते हैं, कुछ गुप्त अङ्गको खुजलाते हैं, नाकमें हाथ डालते हैं; कुछ बनाव-शृंगार टोपीको खास तरीकेसे सजाते हैं, शीशेके आगे घंटों खड़े रहकर अपना रूप निहारते हैं, छैल-छबीले बने रहते हैं, उचक-उचक कर औरतोंको देखते हैं। यह सब मनमें वर्षोंसे इकट्ठे, बचपनसे चले आते कुविचारोंका विष है। ऐसे असंख्य मानस रोगी आपको दैनिक जीवनमें मिल जायँगे। ये विचार-यन्त्र अर्थात् अपने मस्तिष्कके गलत उपयोगके दुष्परिणाम हैं। गन्दे विश्वास, वासनाएँ, चिन्ताएँ अन्तर्मनमें जमकर मानस-रोग उत्पन्न करते हैं।

विचार-यन्त्रको आन्तरिक संघर्षोंके थपेड़ोंसे बचानेकी अतीव आवश्यकता है। मनमें विकार अधिक दिनोंतक ठहराकर हम जीवनभरके लिये मनोरोगोंको न्योता देते हैं। मनका गलत उपयोग आजन्म कष्टोंमें फँसानेवाला होता है।

ऐसे व्यक्ति भाग्यशाली हैं जो विचार-यन्त्रको सही दिशाओंमें चलाकर जीवनको सत् प्रेरणाओं, उत्तम योजनाओं और स्वास्थ्यसे भर लेते हैं तथा किसी प्रकारकी दूषित भ्रान्तियों या अंधविश्वासोंमें नहीं फँसते।

राक्षस कहीं और नहीं, इस दुनियामें ही होते हैं। जो व्यक्ति मानसिक गन्दगीसे भरा हुआ है और उसीको दैनिक जीवनमें उभार रहा है, वह राक्षस ही है—चाहे उसका शरीर मनुष्यका ही क्यों न हो। विचार-यन्त्रको उलटी दिशामें घुमा देनेसे मनुष्यकी भ्रान्तियाँ, गलत मान्यताएँ और अन्तर्मनकी जटिल ग्रन्थियाँ उभर उठती हैं। उसका राक्षसी स्वरूप ऊपर आ जाता है। आज हमारे समाजमें तो अधिकांश व्यक्ति भ्रमित, चिन्तित और उद्विग्न हैं, नाना प्रकारकी मानसिक परेशानियोंसे आक्रान्त रहते हैं, झाड़-फूँक जादू-टोने, जन्तर-मन्तर कराया करते हैं, उससे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि वे अपने मस्तिष्कको राक्षसी दिशामें विकसित कर रहे हैं। जिस यन्त्रसे वे देवत्वको जाग्रत् कर सकते हैं, उसीको गलत दिशामें घुमाकर अपने निन्द्य घृणित स्वरूपको जगा-कर नरकमें पड़े हुए हैं।

सही रूपमें प्रयुक्त मस्तिष्कका फल सद्विचार है। गलत रूपमें प्रयुक्त मस्तिष्कका कुफल विषैले विचार और कुकल्पनाएँ हैं। हमेशा किसी भयको प्रत्यक्ष देखना, अपना तिरस्कार करना, जरा-सी असफलतासे निराश और हतोत्साह हो जाना, झींकना, उत्तेजित हो उठना, छोटी-सी बातपर बिगड़ उठना, भावनामें बहुत अधिक बह जाना, आवेशमें आकर जली-कटी सुनाने लगना विचार-शक्तिका दुरुपयोग है। हर प्रकारसे घातक और त्याज्य है। मनो-विकार प्रत्यक्ष नरक-तुल्य है। कुविचार मनुष्यको जीते-जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरककी अग्निमें ढकेल देते हैं। वह सारे दिन अंदर-ही-अंदर जला करता है। कुविचारी सबको अपना शत्रु मान बैठता है, या अपनेको सबसे कमजोर मानकर दुबका सकुचाया-शर्माया रहता है। अपने लिये पोच विचार रख दुःखमें डूबा रहता है। रोग, शोक, चिन्ता, व्याधि, कटुता, ग्लानि, निर्बलता, शक्तिहीनताके विचार मनुष्यके भारी शत्रु हैं। सही दिशामें चलनेवाला मस्तिष्क मनुष्यका प्रेरक है, गलत दिशामें चलनेवाला सबसे बड़ा शत्रु !

संसारके मनुष्यो ! आपका मस्तिष्क ईश्वरकी बड़ी देन है। वह आपको सही दिशामें उत्पादन-सृजनात्मक भव्य विचार उत्पन्न करनेके लिये दी गयी है। अपने आपको अन्तर्द्वन्द्वों, द्विविधापूर्ण परिस्थितियों, संदेहों तथा व्यर्थके वितर्कोंमें मत डालिये। आपके मस्तिष्कसे स्वस्थ और आशावादी विचार ही उत्पन्न होने चाहिये। प्रत्येक विचारसे आत्मविश्वास पैदा होना चाहिये।

यहाँ हम कुछ विचार-बीज दे रहे हैं। ये विचार-यन्त्रको सही दिशाओंमें घुमानेकी रीतियाँ हैं। जैसे रम्य वाटिकामें हम बीज बोते हैं और भाँति-भाँतिके वृक्ष और पुष्प पैदा होते हैं, वैसे ही इन विचारोंपर मनको दृढ़तापूर्वक एकाग्र करनेसे विचार-यन्त्र उन्हीं दिशाओंमें चलता है। बाइबिलमें लिखा है, 'माँगो और तुम्हें मिलेगा। खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिये खुल जायँगे। तलाश करो और तुम पा लोगे।' ये सब वाक्य हमारे अन्तरमें बैठी हुई उस दैवी शक्तिके सूचक हैं, जिसे अन्तरात्मा कहते हैं और जो हमें सदा ऊँचा उठाती है और आगे बढ़ाती है।

## कुछ दिव्य प्रेरक विचार-बीज

मनमें कहिये, मैं सदा आशा, विश्वास, उत्साह और स्थिरबुद्धि रखता हूँ। मैं अपनी उन्नतिकी आशा, अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियोंके प्रति पूर्ण विश्वास और अपने लक्ष्यके प्रति उत्साहकी पूँजी लेकर जीवनमें प्रविष्ट हुआ हूँ। अपने उद्देश्यमें मेरी बुद्धि पूर्ण-रूपसे स्थिर है।

जिसका अपनी शक्तियोंमें विश्वास होता है, पृथ्वीपर उसके लिये कौन-सी वस्तु साध्य नहीं है? आत्मा ही सब शक्तियों और उच्चतम गुणोंका अपने-आपमें एक उत्पत्ति-स्थल है। मैं अपने आत्माको अपना दिव्यरूप समझता हूँ। मुझमें ईश्वर मेरे आत्माका रूप धारणकर विराजमान हैं। मेरे मन, वचन, कर्मोंके माध्यमसे ईश्वर ही प्रकट हो रहे हैं।

जिसका आत्मामें विश्वास नहीं होता, जो उसकी आज्ञाको नहीं सुनता, उसका चित्त सदा संशयसे उद्भ्रान्त बना रहता है और वह सर्वत्र भ्रान्ति-ही-भ्रान्तिको पाता है। मैं यह जानकर सदा सही दिशामें ही चलता हूँ। स्वस्थ और उत्तम विचार ही मनमें रखता हूँ।

**यस्य तस्मिन्न विश्वासस्तदाज्ञां न शृणोति यः।**
**संशयोद्भ्रान्तचित्तः स भ्रान्तिमेवाधिगच्छति ॥**

—विद्याधरनीतिरत्नम्

अर्थात् थककर भी यदि कोई अपने साहस और उत्साहको न छोड़े, तो दुर्गम अरण्यमें भ्रान्त होकर भी वह अपने मार्गको अवश्यमेव पा जाता है।

मैं कठिन स्थितियोंमें भी अपने साहस और उत्साहको सम्हाले रहता हूँ। अतः मैं अपने सही मार्गपर चलता रहूँगा।

**अनन्ते के वयं क्षुद्रा नैवं चिन्त्यं कदाचन।**
**कणस्य पर्वतस्यापि स्थितिस्तस्मिन् यतः समा ॥**

—विद्याधरनीतिरत्नम्

अर्थात् इस अनन्त ब्रह्माण्डमें हम क्षुद्रोंकी क्या पूछ है—ऐसा मैं कभी नहीं विचारता हूँ। विश्वमें कण और पर्वत दोनोंकी एक समान स्थिति है। इन दोनोंको विकासका समान अवसर मिलता है। मैं चाहे कण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ तो भी विकसित हो सकता हूँ। मुझे कभी भी किसी भी दशामें निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। बूँद-बूँदसे सागर बनता है। इसी नियमके अनुसार शक्तिका कण-कण एकत्रित कर मैं महानताकी ओर बढ़ रहा हूँ।

निर्धन और निर्बल होकर भी मानव सदा ही महान् विभूतियोंसे भरा हुआ है। मानवको देवता बनना चाहिये। महानता प्राप्त करना उसकी अन्तिम गति है। मैंने अपने इस जीवनमें महानताकी सिद्धिको ही अपना लक्ष्य चुना है।

**किं धनं किं बलं लोके का वा राजादिसत्क्रिया।**
**नैतिकं बलमाधेयं यद्धि सर्वार्थसाधकम्॥**

—विद्याधरनीतिरत्नम्

धन क्या, बल क्या अथवा राजाओंसे प्राप्त सत्कार भी कौन-सी विशेषता रखता है। ये कुछ नहीं। मैं सदा-सर्वदा नैतिक बलको ही धारण करता हूँ, जो कि समस्त अर्थोंको सिद्ध करनेवाला है।

**हीनोऽहं हन्त दीनोऽहं व्यामोहं त्यज सत्वरम्।**
**नाकाशो रजसाऽऽक्रान्तश्चिरं म्लानो हि तिष्ठति॥**

—विद्याधरनीतिरत्नम्

मैं हीन हूँ, मैं दीन हूँ—इस व्यामोहको सदाके लिये मैंने त्याग दिया है। आकाश चिरकालतक केवल धूल, मिट्टी और तूफानसे भरा नहीं रह सकता। अन्तमें उसे अवश्य ही स्वच्छता प्राप्त होगी। धूल इत्यादि तो क्षणिक हैं। इसी प्रकार मेरी सारी परेशानियाँ क्षणिक हैं। कलको अवश्य दूर हो जायँगी। वे अल्पकालिक हैं। अब उनका अन्त निकट आ गया है। अब मैं व्यर्थ न घबराता हूँ, न अशान्त ही होता हूँ।

मैं दीन नहीं हूँ। मैं निर्बल नहीं हूँ। मैं किसी भी प्रकारसे हीन या निर्बल नहीं हूँ। मैं तो सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप परम शक्तिशाली आत्मा हूँ। मुझमें असंख्य गुप्त आत्म-शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। आत्मविश्वासकी कुंजीसे मैं उन्हें खोल रहा हूँ।

**प्रसुप्तं नाम यत् किंचिज्ज्योतिस्तेऽन्तर्विराजते।**
**कुरु यत्नेन तद् बुद्धं लोको बुद्धो भविष्यति॥**

—विद्याधरनीतिरत्नम्

जो दिव्य ज्योति मुझमें सुप्त हो रही है, उसको मैं यत्नपूर्वक प्रबुद्ध कर रहा हूँ। उस ज्योतिके प्रबुद्ध होनेपर समस्त संसार ही प्रबुद्ध हो जायगा।

हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सदा इस भावनाको दृढ़ रक्खें कि हम सब स्थानोंमें, सदा सब कुछ करनेमें निश्चितरूपसे पूर्ण समर्थ हैं। इस बातको दृढ़ करनेसे हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित होती हैं। अपनी शक्तियोंके प्रति मनुष्यका जितना दृढ़ विश्वास पकता जाता है, वह ज्यों-ज्यों जीवनकी छोटी सफलताएँ प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों उसमें महानताके गुणोंका विकास होता जाता है।

सद्विचार ( अर्थात् अपनी बुद्धि, प्रतिभा और शक्तियोंके प्रति अखण्ड विश्वास ) ही मनुष्यकी उन्नतिका मूल मन्त्र और संसारकी सर्वश्रेष्ठ कीमती वस्तु है। उसे धारण करनेसे मनुष्य सफलताओंकी ओर स्वतः अग्रसर होने लगता है।

जिसने अपने विचार-यन्त्रको सही दिशामें चलाना सीख लिया है, उसकी उन्नतिमें देर नहीं समझनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अमृतका पुत्र

## [ कहानी ]

( लेखक—श्री'चक्र' )

मृत्यु—हम-आपने मृत्यु नहीं देखी । हमलोगोंने मृतकोंके इक्के-दुक्के शव देखे हो सकते हैं, उनको श्मशान पहुँचानेमें सम्मिलित रहे हों, यह भी सम्भव है; किंतु मृत्युको ताण्डव करते देखा था उसने और उस महाताण्डवने उसे लगभग पागल बना दिया था ।

वह एक युवक ही था तब । युवक तो वह अब भी है; किंतु उसपर—उसके तनसे अधिक मनपर जो बीती है, उसके कारण उसके केश श्वेत हो गये हैं । अब वह एक प्रौढ़ व्यक्ति दिखलायी पड़ता है । यूरोपके द्वितीय महासमरके प्रारम्भसे पूर्व वह विश्वविद्यालयमें विज्ञानका छात्र था । युद्ध प्रारम्भ हुआ और देशके कर्णधारोंने अनिवार्य सैनिक भर्तीका आदेश दिया । पुस्तकोंसे विदा लेकर उसे कंधेपर राइफल उठानी पड़ी । शीघ्र ही एक जहाज उसके-जैसे ही अल्हड़ युवकोंको लेकर इंगलैंडके बन्दरगाहसे चला और उन सबको यूरोपकी मुख्य भूमिपर उतार गया ।

उत्तेजना प्राप्त करनेका एक सहारा था—राष्ट्रीय गान । दिन-रात दौड़-धूप, राइफल-मशीनगनकी तड़तड़ाहट, बारूदकी दुर्गन्ध और ऊपर आकाशमें उड़नेवाले वायुयानोंकी घरघराहट । इन्हीं सबमें जैसे-तैसे कुछ पेटमें भी डालते रहना और रात्रिमें कभी खाईमें, कभी कैम्पमें कुछ समय नेत्र बंद कर लेना । सैनिकके इस युद्धकालीन जीवनको भी यदि जीवन मानना हो—किंतु वे सब इसके अभ्यस्त हो चले थे । उछलते-कूदते, हथियार साफ करते, बन्दूकें भरते या मार्च करते भी खुलकर हँसते, परस्पर हँसी-ठट्ठा करते । समय मिलनेपर पत्र लिखते उनको जिन्हें उनके समाचारकी स्वदेशमें प्रतीक्षा थी ।

एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे शिविरमें वह बदलता रहा । मोर्चेपर जानेको ही आया था, पहुँच गया । शत्रु कहाँ है, किधर है, कुछ पता नहीं । ऊँची-नीची झाड़ियोंसे भरी वनभूमि थी । गोले फटते थे, गोलियोंकी बौछार आती थी और इधरसे भी तोपें, मशीनगनें तथा राइफलें लगातार आग उगल रही थीं ।

उसके एक साथीका बायाँ हाथ बमका एक विस्फोट उड़ा ले गया । दूसरे समीपके सैनिकको कनपटीमें गोली लगी और वह ढेर हो गया । युद्धकालमें यह सब देखनेका अवकाश नहीं होता । वे झाड़ियोंकी ओट लिये बढ़े जा रहे थे । कभी पेटके बल सरकते थे, कभी उठकर दौड़ पड़ते और कुछ दूर जाकर लेट जाते थे ।

एक बार शत्रुको भागना पड़ा । कोई दीखा नहीं भागता; किंतु जब सामनेसे गोले-गोली न आते हों, आगे बराबर बढ़नेको अवकाश मिले । शत्रु भाग ही रहा हो सकता है । शत्रु ?—जिन्हें कभी देखा नहीं, जिनसे कभीका कोई परिचय नहीं, जिन्होंने अपना कुछ बिगाड़ा नहीं, वे अब घोर घृणाके पात्र शत्रु हो गये ! कैसे हो गये ? यह सोचना भी उसके लिये राष्ट्रद्रोह था ।

सहसा शत्रुने 'कुमक' झोंक दी । अपनी ओरके नायकोंमें कुछ मन्त्रणा हुई । एक-दो ट्रक भरकर कुछ दूसरी प्रकारके सैनिक लाये गये । वे लोग दिनभर पता नहीं, पूरे मैदानमें क्या करते रहे । भूमिमें पतली नालियाँ उन्होंने खोदीं, कुछ तार बिछाये और भी कुछ करते रहे; किंतु उसे सब जानने-देखनेकी न आज्ञा थी, न सुविधा और न जिज्ञासा ही । उसे तो गरन राइफल भी एक ओर रखनेकी आज्ञा नहीं थी । गोलियोंका निरन्तर कानोंके पर्दे फाड़ता शब्द तथा बारूदका धुआँ !

रात्रिका अन्धकार आया । खाइयोंमें घुटने-घुटने दलदलमें खड़े रहता था । मच्छरोंने दुर्गति कर रक्खी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी । एक बार निकलकर शत्रुपर टूट पड़नेका आदेश मिलता—वह प्रसन्न ही होता । जीवनकी अपेक्षा मृत्यु अधिक वाञ्छनीय लगने लगी थी उसे ।

शत्रु सम्भवतः उसके लोगोंका पता पा गया था । विपक्षसे आते गोले-गोलियोंकी बौछार बढ़ती गयी । शत्रु-सैनिकोंके शब्द आने लगे । सम्भवतः अगली खाईपर आक्रमण हो गया था । कुछ मिनट गये और शत्रुकी एक टुकड़ी उसकी खाईके समीप आ गयी । अंधाधुंध गोली चलाये जा रहा था वह ।

'पानी ! हैनरी, दो घूँट पानी !' एक क्षीण स्वरने समीपसे उसे पुकारा । उसने झुककर पानीकी बोतल खोली और नीचे देखा । गोली लगनेसे उसका साथी खाईकी कीचड़में गिर पड़ा था और तड़प रहा था ।

सहसा लगा कि पूरी पृथ्वी फट गयी । चीत्कारसे दिशाएँ गूँज उठीं । खाईके बाहरसे लोथड़ोंकी वर्षा उसके सिरपर हुई । पूरी वर्दी गरम चिपचिपे पदार्थसे गीली हो गयी । जिसे वह पानी पिलाने झुका था, वह प्यासकी सीमाके पार जा चुका था । खाईके दूसरे सैनिकोंका उसे स्मरण नहीं । वह राइफल उठाये बाहर निकला और एक ओर दौड़ा ।

अन्धकारमें लाशोंकी ठोकरें, रक्तका कीचड़, कटे-फटे शवोंपर जब पैर पड़ता था.........................
लेकिन रात्रिसे दारुण निकला दिनका प्रकाश । उस प्रकाशमें उसने जो कुछ देखा—मांसका ढेर पड़ा था चारों ओर । जहाँतक दृष्टि जाती थी, पृथ्वीपर रक्त जमा था और उसमें आँतें, लोथें बिछी थीं । राइफलें, मशीनगनें जहाँ-तहाँ पड़ी थीं । कर्णभेदी क्रन्दन अब भी जहाँ-तहाँसे उठ रहा था ।

वह पागल हो गया । जबतक उसके पास कारतूस रहे, वह उन क्रन्दन करते छटपटाते-तड़पते लोगोंको मृत्युकी निर्मम पीड़ासे शान्तिकी निद्रामें सुलाता चला गया । पूरा मैदान पटा पड़ा था । अपने-परायेका भेद कैसा, सबके शरीरोंके चिथड़े थे वहाँ । लेकिन उसके कारतूस समाप्त हो गये । वह राइफलसे ही कईकी कपाल-क्रिया कर लेता; किंतु ठोकर खाकर गिरा और मूर्च्छित हो गया ।

× × ×

हैनरी पागल हो गया था । उसे युद्धभूमिसे पीछे अस्पताल भेजा गया था और वहाँसे इंगलैंड; किंतु वहाँ भी उसे बंदीगृहमें रहना पड़ा । युद्धकालमें उस जैसे अर्धविक्षिप्त ( चिकित्सा उसे पूरा स्वस्थ नहीं कर सकी थी ) को देशमें अटपटी बातें फैलानेके लिये स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जा सकता था । लेकिन महायुद्ध समाप्त होनेके पश्चात् उसे घर लौट जानेकी स्वतन्त्रता मिल गयी ।

'मैं मरना नहीं चाहता । वे सबको मार देंगे! मुझे बचाओ ! मुझे मृत्युसे बचनेका मार्ग बताओ!' हैनरीका यही पागलपन है । उसे लगता है कि राष्ट्रके कर्णधार फिर युद्ध करेंगे और जो बीभत्स दृश्य उसने देखा है, वह नगरोंमें ही उपस्थित होगा । मृत्युसे वह अत्यन्त आतंकित हो गया है । अब अमरत्व उसे कौन दे दे!

'मुझे मृत्युसे बचनेका मार्ग बताओ !' अनेक गिर्जाघरोंमें वह जा चुका है । लार्ड विशप तकसे रोकर पूछ चुका है । कोई उसकी बात नहीं सुनता । पागलकी बात कौन सुने । सुनकर भी कोई क्या कर सकता है । मृत्युसे बचनेका उपाय किसके पास धरा है ।

'मृत्युसे बचनेका उपाय है !' उस दिन उस भारतीय गैरिकधारीने चौंका दिया सबको । वह साधु एक सभामें कुछ कहने खड़ा हुआ था । उसने जैसे ही सम्बोधन किया—'अमृतपुत्रो !' पागल हैनरी दौड़ता मंचपर जा चढ़ा और उसने साधुके हाथ पकड़ लिये । कातरवाणी थी उसकी—'मुझे मृत्युसे बचनेका उपाय बताओ ? तुम्हारे पास वह उपाय है ?'

'तुम्हें भारत चलना पड़ेगा !' साधुने सम्भवतः उस पागलसे पिण्ड छुड़ानेके लिये युक्ति निकाली ।

'मैं कहीं भी चलूँगा ! जो कहो, करूँगा !' हैनरी दृढ़ था और साधुके आदेशपर वह मंचसे नीचे आकर चुपचाप बैठ गया प्रवचन सुनने ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अमृतपुत्रो !' साधुने प्रवचन प्रारम्भ किया—'मृत्युका भय सबको ही है, किंतु प्रमादवश उसे हम भूल जाते हैं। हमें इन महाभागके समान उससे छूटनेकी उत्कण्ठा नहीं है। वह उत्कण्ठा हो तो अमरत्व हमारा स्वत्व है। वह हमारा स्वरूप है।'

हैनरीको इस सबसे कोई प्रयोजन नहीं था। उसे लोग पागल कहते हैं तो वह झगड़ता नहीं। यह भारतीय साधु उसकी पता नहीं क्यों प्रशंसा करता है। इससे भी उसे कोई प्रसन्नता नहीं। वह मृत्युसे छूटना चाहता है। मृत्यु, जिसका ताण्डव वह देख चुका है।

'तुम हो कौन ?' हैनरी साधुके साथ लग गया था। अब वह इस साधुका पीछा छोड़नेको भला कैसे तैयार हो। निवासस्थानपर आकर साधुने हैनरीसे पूछा।

'मैं हैनरी विल्सन' सीधा उत्तर था।

'लेकिन हैनरी विल्सन कौन ?' साधु समझानेके स्वरपर आ गये—'तुम्हारी अंगुली मैं काट दूँ तो कटी अँगुली हैनरी विल्सन रहेगी क्या ?'

'वह केवल हैनरी विल्सनकी अँगुली होगी !'

हैनरी विज्ञानका छात्र रह चुका था। उसे बहुत शीघ्र यह बात समझमें आ गयी कि शरीर हैनरी विल्सन नहीं है। वह तो हैनरी विल्सनका शरीरमात्र है।

'यह शरीर हैनरी विल्सनका नहीं है !' साधुने अब एक नयी बात उठायी। प्रतिभाशाली हैनरी चौंका; किंतु थोड़ी देरमें उसने यह तथ्य भी समझ लिया। रोटी, चावल, मक्खन आदिसे बना शरीर जो बचपनमें कुछ था, अब कुछ है, उसका कैसे हो सकता है। कटे बाल, कटे नख आदिके समान ही तो शरीर है।

'प्लेटमें रक्खा मक्खन मक्खन है और पेटमें जानेपर वह हैनरी विल्सन ?' साधुने पूछा—'फिर तुम जो गंदगी शौचालयमें पेटसे निकाल आते हो, वह भी हैनरी विल्सन है या नहीं ?'

'वाह ! बड़ा मूर्ख निकला मैं !' खुलकर हँसा हैनरी। वह अर्धविक्षिप्त उठकर कूदने लगा।

'जो हैनरी नहीं है, जो हैनरीका नहीं, उसके मरने-जीनेकी चिन्ता हैनरीको क्यों ?' साधु फिर मूल प्रश्नपर आ गये 'वह तो मरेगा ही। उसे मृत्युसे बचाया नहीं जा सकता। बचानेका कोई उपाय हो भी तो मुझे ज्ञात नहीं।'

'मरने दो उसे !' हैनरी उसी प्रसन्नतामें कह गया। लेकिन उसकी प्रसन्नता क्षणिक नहीं थी। सचमुच मृत्युके भयसे वह अपनेको मुक्त पाने लगा था।

'हैनरी विल्सनको मैंने मृत्युसे बचानेका वचन दिया है।' साधुका स्वर स्थिर था—'मैं अपने वचनपर दृढ़ हूँ।'

'आप हैनरीको ही मृत्युसे बचनेका मार्ग बताओ !' स्वस्थ स्वर था हैनरीका।

'हैनरी कभी मरता नहीं ! उसे कोई मार नहीं सकता। वह तो अमृतका पुत्र है !' साधुने कहा।

'अमृतका पुत्र !' हैनरीकी समझमें बात नहीं आयी। इतनी सीधी सरल बात तो नहीं है कि झटपट समझ ली जाय।

'हैनरी कौन ?' कुछ क्षण रुककर स्वयं हैनरीने पूछा। वह अब गम्भीर हो गया था। चिन्तन करने लगा था और आप जानते हैं कि इस प्रकारका चिन्तन उसे अपने पागलपनसे मुक्त कर देनेके लिये पर्याप्त था।

'नहीं, आज मुझे सोचने दीजिये ! मैं फिर आऊँगा आपके समीप !' साधुको हैनरीने रोक दिया बोलनेसे। वह उठ खड़ा हुआ। विदा होते-होते उसने कहा—'आप ठीक कहते थे कि मुझे भारत जाना पड़ेगा। अमरत्वका संदेश जिस भूमिसे उठा, वहीं उसे प्राप्त किया जा सकता है।'

× × ×

हैनरी भारत आया, इतना ही मुझे पता है। वह उन साधुसे भी कदाचित् मिला नहीं। सुनते हैं कि वह उत्तराखण्डकी ओर एक बार साधारण भारतीय साधुके वेशमें देखा गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीगदाधर भट्टकी भक्ति-भावना

( लेखक—श्रीकृ० गोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न )

प्रभु-प्राप्तिके लिये ज्ञान, कर्म और भक्ति—तीनों ही साधन माने गये हैं। किंतु सभी भक्त महानुभावोंकी तरह भट्टजी भी ज्ञान और कर्मको भक्तिके समक्ष गौण मानते हैं, साथ ही दुष्कर भी। रूप, गुण, शील, ज्ञान, सत्कुल, शास्त्रज्ञान आदि भक्तिके पूरक या हृदयकी शुद्धतामें सहायक साधन अवश्य हो सकते हैं, साध्य नहीं। उनके प्रियतम तो प्रेमसे ही प्राप्त हो सकते हैं। यह प्रेम जब प्रगाढ और सत्त्वनिष्ठ होता है, तब वह भक्तिका रूप प्राप्त करता है। ऐसी भक्तिसे प्रभुचरणोंमें प्रीतिकी वृद्धि होती है, उनकी रस-लीलाओंके चिन्तन और अनुगायनसे हृदय और वाणी निर्मल होती है। वे कहते हैं—

**और कहा कहि सकै 'गदाधर' मोहन मधुर बिलासा जू।**
**रसना हियौ सुद्ध करिबे कौ गावत हरिके दासा जू॥**
( प० सं० ४४ )

लीलामय प्रभुकी मधुरा भक्तिसे लौकिक वासनाएँ निवृत्त होती हैं। लीला-दर्शन और अनुचिन्तनसे संसारका ताप-दाप नष्ट होता है। कहते हैं—

**यह सुख जो हिये बसै तौ मिटै भव-दाहु।**
**कहत गदाधर मन कत इत उत जाहु॥**
( प० सं० ४५ )

फिर रसिकोंके लिये तो यह लीला-रस पान करने योग्य ही है—

**लीला ललित 'मुकुंद चंद' की करहु रसिक रस-पान।**
**अबिचल होहु सदा जुग-जुग यह जोरी बलि 'कल्यान'॥**
( प० सं० ४६ )

युगल-स्वरूपकी यह उपासना उनकी साधनाका सर्वस्व है। श्यामा-श्यामके युगल-रूपकी माधुरीपर तो वे—

**निरखि निरखि बलि जाइ 'गदाधर' छबि न बढ़ी कछु थोरे।**
( प० सं० ४७ )

उनका यह न्यौछावर होना जीवनके किसी क्षणकी घटना नहीं; क्योंकि यह आनन्द अनादि, अनन्त, नित्य नवीन है—

**नितप्रति रासबिलास ब्याहबिधि नित सुरतिय सुमननि बरसैया।**
**नित नव-नव आनंद बारिनिधि नित ही गदाधर लेत बलैया।**
( प० सं० ४८ )

कवि रासविलासकी किसी अनुरागवती गोपाङ्गनाके रूपमें ही इस रसानन्दका स्वयं आस्वाद पा रहा है और तद्रूप होकर ही—

**प्रेम पागि उर लागि रही 'गदाधर'**
**प्रभुके पिय अंग-अंग सुखदैनी।**
( प० सं० ५८ )

—के रूपमें आत्मविभोर होकर प्रेमपगे हृदयसे स्वयं भी रस-प्राप्ति कर रहा है और प्रियतमको भी रस-दान करता है। इस रस-क्रीडामें कवि उसी 'गोपी-भाव' की प्राप्ति करता प्रतीत होता है, जिसकी परम परिणति 'राधाभाव', 'राधा-तत्त्व' में है। इसीलिये वह एक अन्तरङ्ग सहचरीके रूपमें स्वयं रस-केलि करता हुआ प्रियतम-प्रियतमाकी रस-खेलाओंकी शोभाका मादन-भाव मोदन-भावसे दर्शन करता है। देखिये एक झलक—

**रीझि देति वृषभानुजा पियके उरज अँकोर।**
**सोभा निरखत 'गदाधर' मुदित उभय कर जोर॥**
( प० सं० ७१ )

माधुर्यभावकी यह उच्च स्थिति है। इन निकुञ्ज-लीलाओंकी अधिकारिणी सहचरियोंके रूपमें हरिलीलाओंमें तो वे सर्वदा मग्न हैं—

**ऐसोई ध्यान सदा हरि कौ किये जो रहै।**
**तौ पै 'गदाधर' याके भागहिं को कहै॥**
( प० सं० ६८ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः भट्टजी-सरीखे महानुभाव कितने भाग्यशाली हैं, जो दिवानिशि लीलानुगायन-चिन्तनमें निरत हैं। यह सुख-सौभाग्य तो देव-दुर्लभ है, जो चिरसामीप्य सहचरी-भावानुरूप व्रज-भक्तोंको प्राप्त है, उसके लिये तो देवाङ्गनाएँ भी लालायित हैं, इतना ही नहीं—

सुरललना फूलनि बरसैं वे ढिंग आवन कौं तरसैं।
रंगु बढ़्यौ अति भारी तन की गति सबनि बिसारी।
गुन गाइ 'गदाधर' जीजै, मनु प्रेम, रंग सौं भीजै।
( प० सं० ७८ )

प्रेम-रंगसे भीगा कविका हृदय उस लोकातीत आत्मानुभूतिको समाधिगत करता है, जिसे अभिव्यक्त करना सहज नहीं कहा है—

कहाँ लगि कहै मत्त भयौ 'गदाधर' बरनै भाव उर कौ।
( प० सं० ८० )

अतः प्रिया-प्रियतमकी परस्पर रसकेलि और मधुर भावों तथा शृङ्गार-चेष्टाओंका ध्यान ही उसके लिये सुलभ है—

परस्पर की चोज मौजनि धरि 'गदाधर' ध्यान।
( प० सं० ८४ )

प्रभुकी अनन्त लीलाएँ हैं, अगणित चरित्र हैं—

कहि न सकै कोउ हरि के अगनित चित्र, चरित्र।
जिहि तिहिं भाँति 'गदाधर' रसना करहु पवित्र॥
( प० सं० ६४ )

इस प्रकार भक्ति-सुरसरिमें कविका जीवन डूबता-उतराता चिन्मय रसनिधिको अन्ततः समुपलब्ध करता है और उसमें एकीभूत होकर तादात्म्यका चिरन्तन सुख प्राप्त करता है।

भट्टजी भक्तिके दोनों रूपोंको ग्रहण करते हैं। जो वैधी वा नवधा और रागानुगा वा प्रेमलक्षणा रतिके नामसे अभिहित है। नवधा भक्तिमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनका समावेश है। श्रवणसे आत्मनिवेदनतककी क्रम-कोटियाँ भक्तिकी उत्तरोत्तर स्थितियाँ हैं। क्रमशः रससिद्धि करता हुआ साधक चरमकोटि आत्मनिवेदनको पहुँचता है। इन नव प्रकारोंको हम तीन वर्गोंमें विभाजित करें, तो श्रवण, कीर्तन, स्मरण; पादसेवन, अर्चन, वन्दन; दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये तीन त्रिकुटियाँ बनती हैं। इन त्रिकुटियोंकी संगति भट्टजीके त्रिविध रूपोंमें ( कीर्त्तनकार, कवि और भक्तके साथ ) क्रमशः बैठायी जा सकती है। क्रमिक विकासकी दृष्टिसे प्रारम्भमें वे भगवल्लीला श्रवण करते-कराते हुए उसका अनुकीर्तन करते हैं। एकान्त क्षणोंमें प्रभु और प्रभुके चरित्रोंका स्मरण भी करते प्रतीत होते हैं। यही उनका 'कीर्तनकार' रूप हो सकता है, जिसमें वात्सल्य-भावनिष्ठ नन्दालयकी लीलाओंका प्राधान्य है। यहाँ वे 'सत्यम्'की कला-साधनामें निरत हैं। साधनाकी यह कोटि जब अधिक गहनताकी ओर अभिमुख होती है, तब वे कुछ और अन्तर्मुख होते-से लगते हैं, यहीं उनका 'कवि' रूप उभरता है। उसमें तादात्म्यकी मात्रा बढ़ जाती है और अन्तस्तलकी भावनाएँ रागानुगा होती हुई शृङ्गार-रसमें निष्ठा पाती हैं। पादसेवन-अर्चन-वन्दनके रूपमें उनकी यह निष्ठा चरितार्थ होती है। यह उनकी साधनाका 'शिवम्' रूप है। जिसमें काव्य और शृंगार दोनोंकी संगीतात्मकता संवलित होकर उन्हें व्रजगोष्ठकी सरस लीलाओंकी ओर प्रवृत्त करती है। उनका यह कविरूप ही चरम अवस्थाको पाता है और 'भक्त'रूपमें अभिव्यक्त होता है। यह उनके जीवनका 'सुन्दरम्' पार्श्व है, जिसे वस्तुतः स-हित या निःश्रेयसकी भावना कह सकते हैं और जिसमें दास्य-सख्य-आत्मनिवेदनकी भक्ति संनिहित है। उनका अनुचरी, सहचरी और एकात्म-दम्पति-भावना इसीका प्रतिरूप है। लोक-वेदसे परे निकुञ्जकी रसलीलाएँ महाभावरूपमें वे इसी स्थितिमें चित्रित करते हैं। नित्य-साहचर्य वा सख्य-भावना ही उनकी इस साधनाके मूलमें है। यह परम माधुर्य, सखी-गोपी-भावकी साधना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार भक्तिकी त्रिकुटियोंके साथ भट्टजीके व्यक्तित्वका कितना विलक्षण सामञ्जस्य है, जिसमें विविध रसों, भावनाओं, उपासनाओं, लीलागायनों, साधनाओं, आराधनाओंका मधुर अन्तर्भाव होता है। इन सबका पर्यवसान भी अन्ततः प्रेमलक्षणा, रागानुगा भक्तिमें होता है, जो उनकी चिर-परमसिद्धि है। यह निरोधरूपा है। वल्लभाचार्यकी साधनामें भक्तिका बीज-भाव शुद्ध पुष्टि है, तो निम्बार्कीय तथा राधावल्लभीय रस-परम्परामें यही सखी—गोपी-भाव है, जिसे महाभाव-रूपमें राधा-तत्त्व कहते हैं और जिसे चैतन्य महाप्रभुने भी अनन्य-राधा-कैंकर्यके रूपमें स्वीकार किया है। भट्टजी इसी भक्ति-परम्पराको लेकर चले हैं। वृषभानुनन्दिनी, उनकी रसलीला उनकी मधुर भक्तिकी सर्वोपरितामें उनकी पूरी निष्ठा है, कहते हैं—

अंग अंग सों प्रेम बरषत सकल सुखकी मूरि।
राधे जू के चरनकी रज गदाधर सिर भूरि॥
(प० सं० २५)

'सकल सुखकी मूरि' चरण-रेणुको पानेके लिये ही तो व्रज-रजका अनुपल सेवन कर रहे हैं।

इन्हीं भक्ति-विधाओंके अनुरूप उनके पोषक अङ्ग—नाम-माहात्म्य, गुरु-महिमा, अनन्य-भाव, सत्संग, कथा आदिका निरूपण भट्टजीने अपने काव्यमें सुन्दर किया है, देखिये—

हरि हरि हरि हरि रटि रसना मम।
पीवति खाति रहति निधरक भई होत कहा तोकों स्रम॥
तैं तौ सुनी कथा नहिं मों से अगनित उधरे महाधम।
ग्यान ध्यान जप तप तीरथ ब्रत जोग जाग बिनु संजम॥
हेम हरन द्विज-द्रोह मान मद अरु पर गुरुदारागम।
नाम प्रताप प्रबल पातक के होत जात सलभा सम॥
इहि कलिकाल कराल ब्याल बिष ज्वाल बिषम मोये हम।
बिनु इहि मंत्र 'गदाधर'के क्यों मिटिहै मोह महातम॥
(प० सं० २३)

हरिके नाम-कथा-श्रवण-कीर्तन और स्मरणसे जीवनके द्वार तथा समग्र संयम-साधनाओंसे रहित होनेपर भी प्रबल पातकोंके निवारण एवं कलिकालकी विषम ज्वालाओंसे मुक्तिका कितना अमोघ मन्त्र बताया है उन्होंने! साथ ही अपनी निस्साधनता, दीनता और आत्म-भर्त्सना भी इससे ज्ञापित है।

पाद-सेवन, अर्चन और वन्दनके रूपमें तो वृन्दावन-योगपीठका रूपक, उनका काव्य-चित्र स्पष्ट ही है, आदि और अन्तकी पंक्तियोंसे ही उनकी भावना परिलक्षित हो रही है।

श्रीगोविंद पदारविंद सीमा सिर नाऊँ।
श्रीवृंदावन-विपिनमौलिवैभव कछु गाऊँ॥
श्रीवृंदावनजोगपीठ गोविंद निवासा।
तहाँ 'श्रीगदाधर' सरन चरनसेवा की आसा॥
(प० सं० ६)

'गुरु-गोविन्द' और उनके नाम-रूप-लीला-धामके प्रति उनकी निष्ठा इन शब्दोंमें प्रकट हो रही है।

दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनके भाव भी कविने अपने काव्यमें जहाँ-तहाँ दरसाये हैं—

श्रीगोविंदपदपल्लव सिर पर विराजमान
कैसे कहि आवै या सुख कौ परिमान।
व्रजनरेस देस बसत कालानल हू न त्रसत
बिलसत मन हुलसत करि लीलामृतपान॥
भीजे नित नयन रहत प्रभुके गुनग्राम कहत
मानत नहिं त्रिविध ताप जानत नहिं आन।
तिनके मुखकमल दरस पावन पदरेनु परस
अधमजन 'गदाधर' से पावै सनमान॥
(प० सं० १३)

कितनी भावावेश और अनन्यताकी स्थिति है। ऐसे प्रभुकी प्रपत्ति, शरणागति कौन नहीं चाहेगा? इसीलिये पुनः-पुनः वे विनय करते हैं—

वितर 'गदाधर' मनु निजदास्यम्, भावय मे श्रुतिभिरुपास्यम्।
(प० सं० १४)

क्यों न करत 'गदाधर'हि निज द्वारकौ परिचार।
(प० सं० १६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार भक्ति-भावनामें जहाँ भक्त प्रभुके प्रति सर्वांगत समर्पित है, वहाँ प्रभु भी उसके सर्वथा अधीन हो जाते हैं। जो अधम प्रभुकी एक बार शरणमें आ जाता है, वे उसे उत्तमोत्तम सिद्धि प्रदान करते हैं—

मुक्तिवधू उत्तम जन लाइक लै अधमनि कौं दीनी जू।
( प० सं० ५० )

बारे ही तैं गोकुल गोपिनि के सूने घर तुम डाटे जू।
बैठि तहाँ निस्संक रंक लौं दधि के भाजन चाटे जू॥

कितनी भारी भक्ति-परवशता है। इसी अन्योन्य-परवशताका ही तो फल है कि भक्त भी—

जूठन जाइ उठाइ 'गदाधर' भाग आपुनौ मान्यौ जू।
( प० सं० ४९ )

भट्टजी प्रभुमें अनन्य आश्रय और आस्था लेकर भक्ति-निष्ठ हैं। हरि ममतापूर्वक उनकी लाज रक्खेंगे, यह उनका दृढ़ विश्वास है—

करिहैं कृष्णनाम सहाइ।
अधमता उर आनि अपनी मरत कत अकुलाइ॥
अधम अगनित उद्धरे तब जात कहत संसार।
कवन उद्यम आपने करि सक्यौ निजु निस्तार॥
नैंकु ही धौं करि भरोसौ बसत जाके गाउँ।
क्यों सु ममता छाँडिहै लै जियत जाकौ नाउँ॥
बिरद बिदित बुलाइ बहु तक हरि न धरिहै लाजु।
तौ 'गदाधर' निगम आगम सब बकत बेकाजु॥
( प० सं० २१ )

इसी विश्वासके बलपर अपनी मोह-स्वार्थमयी वृत्तियोंसे अवगत होते हुए भी वे प्रभुकृपाके लिये आशान्वित हैं। कहते हैं, ये आर्त्त वचन—

मोहि तुम्हारी आसा जिनि करहु निरास।
मनु मेरौ बाँध्यौ मोह-पास। स्वारथ-पर सो धौं कैसौ दास॥
मोहि आपनी करनी कै त्रास। निसि बीतति भरि भरि लेत स्वास॥
रचि रचि कहिए बातैं पचास। मन की मलिनता को कहूँ न नास॥
जो चितवै नैकु श्रीनिवास। 'गदाधर' मिटहि दोष दुख अनायास॥
( प० सं० ५ )

इस प्रकार उनका प्रेम अनन्य है। एकमात्र अपने आराध्यमें ही निष्ठा, उसीको सर्वस्व मानना, उसीकी उपलब्धिका लक्ष्य रखना, अन्य शक्ति-साधनोंका तदङ्गत्वेन उपयोग करते हुए उन्हें ही सब कुछ न मान लेना उनकी अनन्यता है। इष्टप्राप्तिके लिये सभी बाधक तत्त्वोंको छोड़ा जा सकता है *।

---

# विरहिणी

( रचयिता—श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम' एम्० ए०, पी-एच्० डी, डी-लिट्० )

मेरे मानसकी कमनीय किशोरी कामना।
मेरे भोले हृदयकी भव्य भावनी भावना॥
मिलीं एक सूत्रमें आज कामना-भावना।
मधुर स्वाद चखेगी युगल मिलनसे कल्पना॥

× × ×

मेरी विकल विरहिणी वर्षों वर-वंचित रही।
पर मञ्जु मिलनकी टेक सदा संचित रही॥
देखे भुवन-लोक-तनु विपुल-दिशा-विदिशा-मही।
पड़ भँवर जालमें कहाँ-कहाँ बिछुड़ी बही॥
कैसे क्रोध, द्रोह, मद, मोह, लोभ लम्पट मिले।
पाके जिनका मलिन संसर्ग, नियम-संयम हिले॥
जो थी पूत, चढ़े अघ-ओघ, आवरण आविले।
जो थे भाव दीप्त, दब गये, सभी स्वर सोहिले॥
मेरी सती दुखी, रो उठी, विरह, फिर खल खले।
पावे त्राण कहाँसे, अंग-अंग दुखने दले॥
तम इधर, उधर रज, रुद्धमार्ग ऊपर तले।
सत आवे, हो उद्धार, विकट संकट टले॥
जागो, जागो, ओ सद्भाव, काम बाजी बनो।
भागो, भागो, भीर प्रमाद, पाप-पट मत तनो॥
मेरी जाग कल्पना काम-भावकी संगिनी।
यह व्यथित विरहिणी, पुनः परम पति प्रणयिनी॥
पावे प्रेम प्रसाद पवित्र, बने संयोगिनी।
यह पुण्य, अधःसे ऊर्ध्व लोक गति रोहिणी॥

× × ×

यह धर्म, युक्त हों दो वियुक्त जिस कर्मसे।
यह मर्म सुरक्षित, देव-वरणके वर्मसे॥

---

* श्रीगदाधर भट्ट—जीवन झाँकी, काव्यसौन्दर्य और भावविश्लेषणसहित; अप्रकाशित सटीक काव्य-वाणीका एक अंश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# स्वास्थ्य-प्राप्तिके सात्त्विक उपाय

( लेखक—प्रो० श्रीशिवानन्दजी शर्मा, एम्० ए० )

सभी महापुरुष युग-युगान्तरसे सुखी जीवनके लिये शरीर-रक्षा एवं पुष्टिके महत्त्वपर बल डालते रहे हैं। अनेक सद्ग्रन्थ भी शरीरकी उचित संरक्षा करनेका आदेश देते हैं। महाकवि कालिदासने तो इसको धर्मका आद्य साधन ही उद्घोषित किया है। **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** ठीक भी है, शरीर ब्रह्मका निवासस्थान है, आवास है। शरीर मोक्षप्राप्तिका साधन है तथा सुखी जीवनका भी प्रथम साधन है। अतः जो इसे पापका घर बना ले, वह घोर अपराधी है तथा जो इसकी उपेक्षा करके इसे विनष्ट होने दे, वह भी परम निन्दनीय है। इसे साध्य मानकर इसकी सेवा-शुश्रूषामें भी संलग्न रहना अविवेक है।

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥

'धर्म तो ऐहिक एवं पारलौकिक सिद्धिका साधन है।'

**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**

( कणाद )

ऐहिक सिद्धि ही पारलौकिकी सिद्धिकी सीढ़ी है तथा ऐहिक सिद्धिके लिये स्वास्थ्यरक्षा नितान्त आवश्यक है। **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'**—उपनिषद्का प्रसिद्ध वाक्य है।

स्वास्थ्यरक्षाके लिये कुछ बातें विशेष आवश्यक हैं—चित्तशुद्धि ( चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा आदि विकारोंसे मुक्ति ), नियमित एवं संयमित जीवन, उचित भोजन, परिश्रम तथा व्यायाम एवं विश्राम।

चित्तशुद्धिका अर्थ है—चित्तको निर्विकार बना लेना। चित्तके समस्त विकारोंका मूल कारण मोह है। सच तो यह है कि केवल सभी मनोविकार ही नहीं, अपितु प्रायः शारीरिक रोग भी मोहके कारण ही उत्पन्न होते हैं। इस तथ्यके प्रमाण-स्वरूप आधुनिकतम मनोविज्ञान एवं ओषधिविज्ञान स्पष्टरूपसे साक्ष्य कर रहे हैं। लगभग चार शताब्दी पूर्व महान् द्रष्टा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने सूत्ररूपसे यही निश्चय किया था कि 'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।' शारीरिक तथा मानसिक कष्टका उद्गम मोह ही है। प्रायः हम कर्तव्यभावनासे प्रेरित न होकर मोहके कारणसे ही अपना समस्त क्रियाकलाप करते हैं। प्राणियों तथा वस्तुओंके प्रति हमें मोह होता है। राग-द्वेष इसके दो पहलू हैं। वस्तुओंका परिग्रह-संग्रह ही मोहके कारण होता है और परिग्रह ही छोटे झगड़ों और महान् युद्धोंका कारण, अप्रच्छन्न अथवा प्रच्छन्न रूपसे होता है।

किसी अन्य व्यक्तिकी किसी वस्तुके नाश होनेपर हमें कोई दुःख नहीं होता है। जिस व्यक्तिसे जितना सम्बन्ध है, उसीके अनुपातसे हमें उसके दुःखमें दुःख होता है। जब हमारी किसी वस्तुका नाश होता है तब हमें बड़ा दुःख होता है। सैकड़ों कीमती घड़ी रोज टूटती हैं, हमें ध्यान भी नहीं होता। किंतु यदि मेरी घड़ी टूट गयी है तो घोर क्लेश होता है। इसका कारण मोह ही तो है। मुझे अपनी घड़ीके प्रति मोह है। अन्य व्यक्तियोंकी घड़ियोंके प्रति नहीं है। सैकड़ों व्यक्ति नित्यप्रति मृत्युको प्राप्त होते हैं; किंतु मेरे किसी सम्बन्धीकी मृत्यु हो तो मुझे दुःख होता है। इसका कारण मोह है। जितनी मोहकी मात्रा हमारे मनमें किसी व्यक्ति या वस्तुके प्रति होती है, उसके सम्बन्धमें हमें उतना ही दुःख होता है। हमारी इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि हमें मोहके कारण ही विविध वस्तुओंके प्रति आकृष्ट कर देते हैं तथा विशिष्ट वस्तुओंकी सम्प्राप्ति एवं संग्रहके द्वारा हम मिथ्या तुष्टिका अनुभव करते हैं। कहीं चटपटे, गरिष्ठ भोजनसे इन्द्रियोंकी मिथ्या तृप्ति करके हम शरीरको कष्टमें डाल देते हैं, कहीं वस्तुओंके विषयमें मेरा-तेराके झगड़ेसे मनको शोकमें डाल देते हैं तथा बुद्धिको अन्धकारमें डाल देते हैं।

निश्चय ही हमें मोहका त्याग करना चाहिये। मोह-त्यागका अर्थ यह नहीं है कि हम वस्तुओं एवं व्यक्तियोंसे घृणा करें। वस्तुओं एवं मनुष्योंमें कोई दोष नहीं है। मोहरूपी दोष तो अपने मनमें है। मोह-त्यागका अर्थ यह है कि हम वस्तुओंका त्याग नहीं, बल्कि उनकी वासना, उनके प्रति आकर्षणका त्याग करें; संसारका त्याग नहीं, बल्कि सांसारिकताका त्याग करें। संसार तो छोड़ दिया, वस्तुओंका परित्याग भी कर दिया, किंतु मोह अब भी सताता है तो क्या लाभ हुआ? वस्तुओंका उपभोग करें, प्रयोग करें, किंतु आवश्यकतानुसार करें, त्यागभावसे करें।

**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥**

**—त्यागपूर्वक भोग करें।**

मोह सभी **मनोविकारोंका** सेनापति है। यदि मोहको भगा दिया तो इसकी सेना भी भाग उठेगी। कटकमें भगदड़ मच जायेगी। मोह मूल है।

**'छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।'**

—यदि हम कठोर दण्ड भी दे रहे हों, तो भी ईर्ष्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वेष, घृणासे प्रेरित होकर नहीं, बल्कि कर्तव्यभावनासे प्रेरित होकर दें। यह आदर्श स्थिति है। मोह त्यागकर, मनोविकारोंको छोड़कर जितना भी मन पवित्र कर लेंगे, उतना ही सुख प्राप्त कर सकेंगे। मोह-त्यागसे ही संतोषवृत्ति भी स्वयं आ जाती है।

मनको शुद्ध करनेके लिये अनेक उपाय हैं। अपने मनका निरीक्षण करना चाहिये। हम जिस प्रकार दर्पणमें अनेक बार मुखाकृति देखकर उसके दाग-धब्बे मिटाते हैं, उसी प्रकार अन्तर्मुखी दृष्टिके द्वारा अन्तर्वृत्ति-निरीक्षण ( Introspection ) करें और अपने दोषों, विकारोंको पहिचानकर उनको एक-एक करके, चुन-चुनकर निराकरण कर दें। शरीर-स्नानके द्वारा जैसे शरीरको शुद्ध करते हैं, मनको भी वैसे ही शुद्ध करें। सत्य सोचने, कहने एवं करनेका अभ्यास मनकी शुद्धिमें सहायक है।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।

शरीर-शुद्धि होनेपर अथवा स्वच्छ वस्त्र पहिनकर कैसा हर्ष होता है? मनको स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल करनेपर तो अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है। मानसिक स्वच्छता होनेपर अनिर्वचनीय सुखका अनुभव होता है जो कि शरीरको पुष्ट करता है। दिनमें ऐसा एक समय निश्चित कर लें जब हम कार्यव्यस्ततासे मुक्त हों। नित्यप्रति प्रातः, सायं अथवा सोनेसे पूर्व, जब भी सुविधा हो, तब अकेले बैठकर अपने विचारोंको देखें। थोड़ी देरतक अपने साथ भी बैठना सीखें। जब हम अपने ही विचारोंके जुलूसको देखें। एक-एक करके ईर्ष्या, द्वेष, भय, घृणा, चिन्ता, विषाद, यश-लालसा, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि विकारोंको दूर करें। कर्तव्य-निष्ठासे प्रेरित होकर, साहससे परिपूर्ण होकर, इन विकारोंसे ऊपर उठकर कार्य करना सीखें। एक-एक दोषके नाशका उपाय सोचें, प्रभुके सहारेसे उसे प्रयत्न करें और साहस तथा विश्वास रक्खें। नित्यप्रति आत्मचिन्तन, आत्मविश्लेषणद्वारा अपने दोषोंको मनन, विचार तथा प्रयत्नके द्वारा निर्बल कर दें। तभी मनको प्रभुमें एकाग्र कर सकेंगे, किसी भी कार्यमें पूर्ण शक्तिका प्रयोग कर सकेंगे। विकार मन तथा शरीरको निर्बल बनाते हैं, इनसे मुक्त होनेपर शक्ति अबाधित होकर उग्र हो जाती है।

जहाँ आत्मसुधारका संकल्प है, वहाँ आत्मसुधार अवश्य होगा।

अपनी तुलना दूसरे व्यक्तिसे न करके अपने विगत और वर्तमानकी तुलना करें और नित्यप्रति पहलेसे अच्छा होनेका प्रयत्न करें। विकारोंके रहनेपर तो विश्वभरकी सम्पदा, अतुल बल, महान् पद, असीम विद्या पाकर भी सुख नहीं हो सकता।

क्षीणताप्रद मोहादि दोषोंको हटाकर रिक्त मनको पोषक भावोंसे परिपूरित कर देना चाहिये। प्रभुसे प्रेम और जनतारूपी जनार्दनसे प्रेम करना सीखें। इनसे मनको बल मिलेगा। स्वार्थ छोड़कर परमार्थकी ओर बढ़ें, संकीर्णता छोड़कर व्यापकता, उदारता, सहनशीलता सीखें।

अन्तःकरणके शुद्ध होनेपर, अन्तःकरणकी ध्वनि जीवन-पथमें प्रकाशपुञ्ज होकर सहायक होती है। पवित्र अन्तःकरणकी ध्वनिकी उपेक्षा करके विपरीत आचरण करनेसे मन दुर्बल होता है।

शुद्ध, स्वस्थ, सुखी मन सुन्दर स्वास्थ्यका प्रथम रहस्य है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

—मन ही मानवके दुःख-सुखका भी कारण है—

'जितं जगत् केन? मनो हि येन।' जिसने मनपर विजय प्राप्त कर ली, उसने संसारको जीत लिया। मनको सुखी रखनेके लिये पुराने विकारोंका निराकरण, यम-नियमद्वारा नये दोषोंका प्रवेश मनमें न होने देना और सावधान रहकर प्रभु-स्मरण, जनसेवामें रत रहना आवश्यक है। यम-नियमद्वारा मनमें नये दोषोंको बिल्कुल न आने दें। सावधानीसे जीवनको नियमित संयमित रक्खें। उदारचेता होकर प्रभुभक्ति एवं जनसेवाका भाव रक्खें। इससे चित्त प्रसन्न होगा।

प्रसन्नचित्त व्यक्तिके शरीरमें शक्ति, स्फूर्ति, बल, ओज, स्वस्थता होती है। चिन्ता आदि क्षीणता करनेवाले विकारोंको छोड़कर काम करना सीखें।

मन, वचन, कर्मकी एकता होनी चाहिये। अन्यथा मानव दुर्बल बन जाता है। हम भले ही किसी दूसरेको धोखा दे दें किंतु अपने-आपको नहीं दे सकते। मन-वचन-कर्मकी एकता होनेपर मनमें तनाव ( Tension ) भी उत्पन्न नहीं होता है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

ऐसा होनेपर मानव निर्भय हो जाता है। निर्भीकता ही जीवन है। पुण्यकी राहपर रहनेसे मानव सबल, निर्भय रहता है।

जीवित तथा विगत संतों, महापुरुषोंकी जीवनीसे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। स्वाध्याय ( सद्ग्रन्थोंका अनुशीलन ) भी मानवके जीवन-पथको ज्ञानप्रभासे आलोकित करता है। प्रकृतिके सौन्दर्यका संदर्शन, भ्रमण, प्रकृति-सामीप्य भी मानवके मनको उदात्त एवं बलवान बनाता है।

मोह-त्यागके लिये तीन उपायोंका विशेष सहारा मिल सकता है। संसारके तीन महान् धर्मोंमें मोहपर विजय प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेके लिये बताये हुए उपायोंमें साम्य है। हिंदू-धर्ममें व्रत, दान एवं तपका विधान है। इस्लाममें इन्हें रोज़ा, ज़कात, नमाज़ और ईसाई-धर्ममें ( Fasting, Charity and Prayer ) कहते हैं।

व्रत मनको संयमित करनेमें विशेष सहायक होता है। व्रत करनेमें ध्यान रखना चाहिये कि हम केवल स्वादिष्ट भोजन-सामग्रीका ही त्याग न करें बल्कि उसकी इच्छापर भी संयम करें। व्रतके अन्तमें सरल, सात्त्विक भोजन करें।

दान करना भी हमारे मोह एवं धनकी वासनाकी मात्राको कम करता है। दान करनेसे धनके प्रति हमारे मोहपर नियन्त्रण होता है। हमारे धर्ममें दानका विशेष महत्त्व है। सब धन प्रभुका ही है। हमारे पास जो कुछ भी धन है, हम तो उसके ट्रस्टीमात्र हैं। जनता-जनार्दनकी सेवामें धनका उपयोग करना हमारा परम धर्म है। हम ऊँचा बनकर दान न करें, बल्कि कर्तव्य-पूर्तिके भावसे, निरभिमान होकर, अपनी कम-से-कम आवश्यकताओंकी पूर्तिसे बचे हुए शेष धनको सेवा-कार्यमें दे दें। दानमें सेवाभाव अन्तर्निहित होता है। अपनी आवश्यकताओंको कम करते चले जायँ। त्यागपूर्वक भोग करें, जैसा कि ईशावास्य उपनिषद्का उपदेश है। 'त्यागपूर्वक' का एक अर्थ दानपूर्वक भी है। स्वेच्छापूर्वक दान देकर रिक्त होना, कम-से-कम धन अपने उपयोगमें रखना, स्वेच्छागृहीत दैन्य ( Voluntary poverty ) है, जिसकी प्रशंसा गाँधीजी करते थे। यह मानो स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर बढ़ना है।

मोहपर विजय प्राप्त करनेके लिये प्रभुकी प्रार्थना परम विशेष सहायक है। मोह-निशा किसी प्रकार भी भगवत्-कृपाके बिना पार नहीं हो सकती। दुर्बल मानव प्रभुकृपासे ही बलवान् होकर मोह-कटकपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। प्रार्थनाका अर्थ है—( १ ) प्रभुकी शरणागति ग्रहण करके आत्मसमर्पण एवं भक्तिपूर्ण आत्म-निवेदन तथा ( २ ) पूजा ( कीर्तन, जप, तप )। पूजाके तीन रूप हैं—कीर्तन, जप तथा तप। पहिले हरिकीर्तन, फिर मानसिक जप, फिर उसमें तल्लीन हो जाना—यह क्रम है।

'राम राम रट, राम राम जप, राम राम रम, जीहा रे।'

यह तुलसीदासजीका उपदेश है। प्रभुमें लीन होना ही स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर बढ़ना है। लय होनेसे विचारशून्यता आती है। शून्यतामें आकाश उत्पन्न होता है। आकाश ( Vaccum ) होनेपर शक्तिका संचार होता है। उस आकाशमें प्रभुका प्रकाश चमकता है। व्रतसे अधिक दान और दानसे अधिक प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकारसे मानव-जीवनकी सफलता एवं सार्थकता प्राप्त होती है। इस प्रकारसे आत्मकल्याणके द्वारा लोककल्याणकी साधना करें।

भोजन-विधिमें व्रतका अन्तिम स्थान है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों तत्त्वोंपर भोजनविधि आधारित है। पृथ्वी-तत्त्वसे सम्बन्धित अन्न है। पृथ्वीका अंश ठोस अथवा स्थूल अन्नमें अधिक होता है। जल-तत्त्वसे सम्बन्धित दूध, सब्जी, शाक हैं; क्योंकि उनमें अन्नकी अपेक्षा जलका तत्त्व अधिक होता है। सूर्यकी किरणोंसे पकनेवाले फलोंमें अग्नि-तत्त्वकी मात्रा अधिक होती है, इसी आधारपर पालके फलोंमें अधिक शक्ति नहीं होती, चाहे उनका स्वाद अधिक हो। पत्तियों ( पालक, मेथी, सलाद, मूलीकी पत्ती, तुलसी आदि) में वायु-तत्त्व अधिक होता है; क्योंकि वृक्ष, पौधे, अपनी पत्तियोंके द्वारा ही साँस लेते हैं। अन्तमें आकाश-तत्त्व है जो व्रत, उपवासके द्वारा उपलब्ध होता है। व्रतसे उदर खाली होता है और शून्य उत्पन्न होता है। पृथ्वीसे आकाशकी ओर ऊपर उठना चाहिये अथवा यों कहिये कि स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर आगे बढ़ना चाहिये। पृथ्वीकी अपेक्षा जल-तत्त्व, जलकी अपेक्षा अग्नि-तत्त्व, अग्निकी अपेक्षा वायु-तत्त्व और वायुकी अपेक्षा आकाश-तत्त्व अधिक बलप्रद है। रोटी-दालको धीरे-धीरे कम करके शाक, सब्जी, फलका आहार करें। ठोस भोजन कम बार करें और कम मात्रामें लें।

ठोस भोजन ( अन्न )से शरीरको बल ( Strength ) की प्राप्ति हो सकती है; किंतु शक्ति ( Energy ) अधिक नहीं प्राप्त होती है। यह एक प्रचलित भ्रम है कि अधिक खानेसे विशेषतः अधिक अन्न खानेसे अधिक शक्ति उत्पन्न होती है। हाँ, इससे बलका उत्पादन अवश्य होता है। बल तथा शक्तिमें भेद है, बल शक्तिकी अपेक्षा तुच्छ होता है। परम बलशाली व्यक्ति थोड़ी-सी दूर चलकर, जीनेमें चढ़कर थक जाता है। पहलवान लोग अधिक खानेपर जोर डालते हैं। अधिक खानेसे अधिक विजातीय द्रव्य ( Foreign matter ) उत्पन्न होते हैं। जबतक कोई पहलवान व्यायाम करता रहता है, तबतक उसे इसका अनुभव नहीं होता। सर्वविदित है कि पहलवानकी वृद्धावस्था दुःखद होती है; क्योंकि वह तब उतना व्यायाम तथा भोजन नहीं कर पाता।

व्रत करनेसे शरीरमें दुर्बलता नहीं आती, यद्यपि ऐसा भास होता है। व्रतसे स्वच्छता, शुद्धता, शक्ति, संजीवन, स्फूर्ति आते हैं। व्रत-कालमें पाचन-क्रियाके स्थानपर रेचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया अधिक उग्र एवं प्रबल हो जाती है। शरीरसे गन्दा, विजातीय द्रव्य रेचन-क्रियाके द्वारा बाहर आया करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो दुर्बलता बढ़ रही है, किंतु वास्तवमें अवाञ्छित, अनावश्यक, विषैला, हानिप्रद विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे व्रतके द्वारा मल, मूत्र, पसीना आदिके रूपमें शरीरसे निकलकर शरीरको स्वस्थ बनाता है। जो शारीरिक शक्ति पहले भोजनके पाचनमें संलग्न थी, वह व्रतकालमें विजातीय द्रव्यको इकट्ठा करके बाहर प्रक्षिप्त करनेमें व्यस्त हो जाती है। पाचन-क्रियामें अत्यधिक शक्तिका प्रयोग होता है। व्रतकालमें पाचन-क्रिया परिसमाप्त हो जानेपर साधारण रेचन-क्रिया ही शेष रहती है, जिससे शरीरकी मशीनरीको विश्राम भी मिलता है।

रेचनमें उखाड़-पछाड़ होनेके कारण शरीरकी दुर्बलता तथा कष्टका मिथ्या आभास होता है। जिस प्रकारसे कि तालाबके ऊपर एक काईकी परत पड़ जाती है जो कि उसकी बदबू तथा गन्दे स्वरूपको ढके रहती है, किंतु जरा-सा भी उस परतको छेड़ते ही बदबू उठ खड़ी होती है और उसका गन्दा स्वरूप दिखायी पड़ जाता है, उसी प्रकारसे नित्यके जीवनमें तो शरीरमें स्थित गन्दे द्रव्यपर मानो परत पड़ जाती है; किंतु व्रतसे वह परत फटने लगती है और शरीरमें स्थित गंदगी दिखलायी देने लगती है। पर व्रतद्वारा यह धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। जबतक यह विजातीय द्रव्य बाहर न आ जाय तबतक विविध कष्ट अनुभव होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्रतका स्वास्थ्यके लिये उतना ही महत्त्व है, जितना कि भोजनका है। भोजनकी सहायता व्रतद्वारा होती है।

हाँ, व्रतकी भी एक विधि है, जिस प्रकारसे कि भोजनकी एक विधि है। व्रतमें आराम तथा नीबूके पानी, शहद आदिका सहारा लेना आवश्यक है। व्रतकी अवधिका निर्णय भी विशेषज्ञसे पूछकर करना चाहिये। यों कम-से-कम एक सप्ताहमें एक दिन तो बिलकुल निराहार रहकर नीबूके पानी आदिपर अथवा परम सात्त्विक, सरल तथा सूक्ष्म भोजनपर निर्भर रहना चाहिये। हमारे पूर्वजोंने व्रतोंका कितना अधिक माहात्म्य वर्णित किया है।

पञ्च-तत्त्वोंके सिद्धान्तपर आधारित प्राकृतिक चिकित्सामें भी अन्तिम प्रमुख शाखा व्रत ( उपवास ) है। मानवदेह पञ्चतत्त्वोंसे विनिर्मित है। प्रकृतिमें भी मानव-देहकी सम्यक् चिकित्साके लिये पाँचों तत्त्व विद्यमान हैं + पञ्चतत्त्वरचित इस देहकी वास्तविक, नैसर्गिक, स्वाभाविक, चिकित्सा प्रकृतिके पञ्चतत्त्वोंके द्वारा ही सम्भव है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाशसे क्रमशः सम्बन्धित मिट्टीसे चिकित्सा ( Mud treatment etc. ), जलसे चिकित्सा ( Water treatment ), अग्निसे चिकित्सा ( Sunbath treatment, Electric treatment ), वायुसे चिकित्सा ( Airbath, Steambath etc., ), आकाशसे चिकित्सा ( Fasting ) उपवास है। उपवाससे शरीरमें शून्य आकाश ( Vaccum ) उत्पन्न होता है। शून्य ही शक्ति-केन्द्र होता है।

हम दिनमें अनेक बार कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं। लगभग पचीस वर्षतक तो शरीरका निर्माण, विकास ( Building and development ) चलता है। तबतक तो सुन्दर, शक्तिप्रद, गरिष्ठ भोजनकी आवश्यकता है, किंतु तदनन्तर तो केवल रक्षण ( Maintenance ) रह जाता है। जिसके लिये उतने भोजनकी आवश्यकता नहीं रहती, तब थोड़ा खाना ही उपयुक्त रहता है। किंतु प्रायः हम पूर्ववत् ही खाते रहते हैं। यह बुरा है। कुछ परिश्रम करनेके पश्चात् ही हम भोजन करनेके अधिकारी हैं। प्रातः उठते ही चाय पीना, फिर नहा-धोकर प्रातराश ( Breakfast) नाश्ता करना अनधिकार चेष्टा है, जो कि झूठी भूखको तो संतुष्ट करता है किंतु वास्तविक क्षुधाको क्षीण करता है। विशेषतः थोड़ा परिश्रम करनेवाले व्यक्तियोंको तो नाश्ता करना ही नहीं चाहिये। नाश्ता छोड़ देनेपर सफाईकी क्रिया ( रेचन ) बढ़ेगी, जठराग्नि तेज होगी। काम करनेके पश्चात् ही भोजन और फिर विश्राम करना चाहिये और सादे भोजन ( मसाले आदि छोड़कर ) की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। भूखके बिना ही भोजन करना देहके प्रति अत्याचार है, बिना श्रमके भोजन करना अनधिकार चेष्टा है। भोजनके उपरान्त कुछ विश्राम न करना भी शरीरके प्रति क्रूरता है। नियमित समयपर नियमित विधिसे नियमित भोजन करना चाहिये। प्रातः बहुत हल्का भोजन तथा शामको उचित मात्रामें पर्याप्त भोजन करना चाहिये।

प्राणीको परिश्रम करनेपर ही भोजन पानेका अधिकार है। मानसिक परिश्रमके अतिरिक्त दैहिक श्रम करना अत्यन्त आवश्यक है। व्यायाम भी एक प्रकारका दैहिक श्रम है। योगियोंने मांसपेशियों ( Muscles ) के व्यायाम ( दंड,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठक, मुगदर आदि ) की अपेक्षा स्नायुओं ( Nerves ) के व्यायाम ( यौगिक आसन, प्राणायाम आदि ) को अधिक पूर्ण तथा श्रेयस्कर समझा है। पहलवानीसे बल और योगाभ्याससे शक्तिकी वृद्धि होती है। शक्ति ही दीर्घ जीवन तथा स्फूर्ति देती है।

अन्तमें विश्रामका महत्त्व है। विश्राम ही मानवको पुनः बलशाली बना देता है। उचित समयपर पर्याप्त निद्रा प्राप्त करना श्रेष्ठ विश्राम है। देवीभागवतमें तो निद्राको कल्याणदात्री देवी और परमात्माके सदृश सुखदा माना है। 'निद्रां ब्रह्मतुलां·····,'

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

# अपने दोषों और भूलोंका हम सदा ध्यान रक्खें

( लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा )

प्रकृतिकी लीला बड़ी विचित्र है। प्रत्येक व्यक्तिमें कुछ विशेषताएँ होती हैं, तो कुछ कमियाँ भी। सम्पूर्ण गुणोंका आकर तो परमात्माको माना गया है, यद्यपि इस कथनमें भी एक दृष्टिविशेष ही काम कर रही है। अन्य दृष्टिवाले, परमात्मामें भी कमी या दोष बतला सकते हैं। इसी तरह केवल कमियाँ ही कमियाँ हों और विशेषता कुछ भी न हो ऐसा भी व्यक्ति कोई न मिलेगा। विचार करनेपर उन कमियोंके भंडार कहे जानेवाले व्यक्तिमें भी कुछ-न-कुछ विशेषता दिखायी दे देगी। कई बार तो वे कमियाँ भी विशेषताका रूप धारण कर लेती हैं। अतः हमारे सामने यह समस्या उपस्थित होती है कि अपने जीवनको हम कैसे उन्नत बनावें ? चूँकि प्रत्येक प्राणी जिस स्थितिमें वह है, उससे अच्छी उन्नत स्थितिमें होनेका प्रयत्न करता रहता है, पर सफलता थोड़े-से ही व्यक्तियोंको मिल पाती है, अतः इसपर गम्भीर मननकी जरूरत है।

सबसे पहली बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको किसी-न-किसी गुणका इतने अच्छे रूपमें विकास कर लेना चाहिये कि जिससे उसकी दूसरी कमियाँ अप्रधान ( गौण ) हो जायँ—दब जायँ। वास्तवमें किसी एक भी गुण या विशेषताका अच्छे रूपमें विकास किया जा सके तो जीवनमें वह बहुत बड़ी सिद्धि है। उस एक गुणके साथ और भी बहुत-से गुण खिंचे हुए चले आयेंगे। कई गुण जो एक दूसरेसे सम्बन्धित होते हैं, उनका तो उस विशेष गुणके साथ स्वयं विकास हो जाता है। साधारण मात्रामें जो गुण सभी या बहुत-से व्यक्तियोंमें पाये जाते हैं, उनकी प्राप्तिसे तो कोई व्यक्ति यश और लाभ साधारणरूपमें ही पा सकता है। पर उसी गुणका विकास यदि दूसरोंकी अपेक्षा अधिक मात्रामें किया जा सके तो उसे अनेक प्रकारके लाभ, आर्थिक उन्नति और यश आदि अवश्य मिलेंगे।

गुणोंके विकासका एक सीधा एवं सरल उपाय है कि जिन व्यक्तियोंमें उन गुणोंका अधिक विकास हुआ हो, उनमें उनके प्राप्त होनेके कारणोंको हम खोजें, एवं जानें और साथ ही अपनेमें कौन-सी कमियाँ हैं, जिसके कारण हम इच्छित विकास नहीं कर पा रहे हैं, इसपर भी गम्भीरतासे विचार करें। फिर साधक कारणोंको अपनायें और बाधक कारणोंका परित्याग कर दें। अपनी कमीको दूर किये बिना हम उन्नत नहीं हो सकते। कमियाँ अनेक प्रकारकी होती हैं—शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, आत्मिक, बौद्धिक, नैतिक आदि। सबसे पहली कमी है—आत्मविश्वास-का न होना या कम होना। किसी भी कार्यको सम्पन्न करनेके लिये सबसे पहले आत्मविश्वास होना चाहिये कि दूसरे व्यक्ति जब इस तरहसे उन्नति कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता, प्रयत्न करनेपर अवश्य कर सकूँगा। दृढ़ संकल्प किसी भी कार्यकी सिद्धिके लिये अत्यन्त आवश्यक है। सिद्धि पानेके लिये मनोबलको बढ़ाना होगा, बिखरी हुई शक्तियोंको बटोरकर एकत्रित करना होगा।

दूसरी आवश्यकता है सतत अभ्यासकी। किसी भी कार्य-में सफलता प्राप्त करनेके लिये उसके अनुकूल अभ्यासकी आवश्यकता होती ही है। जितना अधिक अभ्यास किया जायगा, कठिन कार्य भी सुगम होता चला जायगा; क्योंकि कोई भी काम नया-नया प्रारम्भ करते समय एक बार कठिन-सा लगता है और बीच-बीचमें कठिनाइयाँ उपस्थित होकर मनोबलको कमजोर बना देती हैं, अभ्यासको आगे बढ़ानेमें विघ्न-बाधाएँ उपस्थित करती हैं। बहुत-से काम केवल दो-चार बार कर लेनेसे ही सफल नहीं हो पाते, उसके लिये दीर्घकालके निरन्तर अभ्यासकी आवश्यकता होती है। यदि हम शारीरिक बल बढ़ाना चाहते हों तो हमें काफी दिनोंतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम या कसरत करनी होगी । व्यायाम करते समय पहले कुछ कष्टका अनुभव भी होगा, पर दृढ़ मनोबलसे उस अभ्यासको चालू रक्खा जायगा तो देर-सबेर उस अभ्यासके अनुरूप सिद्धि या सफलता अवश्य मिलेगी । इसलिये यदि हममें सतत एवं आवश्यक परिमाणमें अभ्यासकी कमी है, तो उस कमीको भी मिटाना आवश्यक हो जाता है ।

यदि हमें संगीतज्ञ बनना है तो बहुत दिनोंतक स्वर-साधना करनी होगी और जबतक कोई विशेषता उस क्षेत्रमें हमें प्राप्त न हो जाय, तबतक उस अभ्यासको जारी रखना होगा; क्योंकि साधारण गाने-बजानेवाले तो 'बहुत' व्यक्ति हैं, उनके स्तरसे भी ऊँचे उठे बिना हम जो अधिक आदर, नाम या धन कमाना चाहते हैं, वह प्राप्त नहीं कर सकते । विशिष्ट अभ्यासका नाम ही साधना है । यदि साधना करते हुए भी सिद्धि नहीं मिल रही है तो कहीं कुछ कमी या त्रुटि अवश्य है और उसे खोजकर उसको दूर करनेका प्रयत्न करना होगा ।

व्यक्तियोंमें कुछ योग्यताएँ और विशेषताएँ तो प्रकृति-प्रदत्त होती हैं और कुछका अर्जन अभ्यासके एवं प्रयत्नके द्वारा करना पड़ता है । यदि प्रकृति-प्रदत्त विशेषताओंका भी हम ठीकसे उपयोग नहीं करेंगे, तो वे भी कुण्ठित हो जायँगी और यदि हम उनको ठीकसे पहचानकर उनका उपयोग या अभ्यास करते रहेंगे तो उनका विकास बहुत अच्छे रूपमें और बहुत शीघ्र हो सकेगा । कुछ शक्तियाँ प्रकृतिसे कम मिली होती हैं, पर यदि हम निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे तो दबी हुई शक्तियाँ प्रकट हो जायँगी । उनके विकासके लिये हमें कुछ विशेष समय एवं श्रम देना आवश्यक होगा । कुछ थोड़ी-सी कमियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनको दूर करना कठिन और असम्भव भी होता है। पर उनकी संख्या बहुत ही नगण्य है। इसलिये हमें हतोत्साह नहीं होना चाहिये । ज्यादा अच्छा यही है कि हमारेमें जो प्रकृति-प्रदत्त शक्ति, योग्यता, प्रतिभा है, उसके द्वारा जिन-जिन कार्योंमें हम अधिक सफल हो सकते हों, उनके लिये विशेष प्रयत्न करें । जिस ओर हमारी रुचि कम हो, उस ओर प्रवृत्त होनेसे अधिक शक्ति लगानी पड़ती है और सफलता कम ही मिलती है । अपनी रुचिके कार्योंमें हम शीघ्र और अधिक सफल हो सकते हैं, यह सभीका अनुभव है।

अधिक सफलता प्राप्त करनेके लिये आवश्यक है, सबसे पहले लक्ष्यको ठीक करना और उसके बाद तदनुकूल साधन-सामग्री-को जुटाना और बाधक कारणोंको हटाना । दूसरे, अनुभवी व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आकर उनसे मार्गप्रदर्शन और अनुभव प्राप्त करना। प्रत्येक व्यक्तिको अपने एक या दो-चार ऐसे अनुभवी शुभचिन्तक विचारशील गुरुजन चुनकर निश्चित कर लेने चाहिये जिससे कठिनाइयोंको हल करनेमें सुविधा हो । जब भी हमारा मार्ग अवरुद्ध हो जाय, हम उन व्यक्तियोंके द्वारा मार्ग एवं साहस लेकर बाधाओंको हटानेमें समर्थ हो सकें । इसलिये प्रत्येक धर्म-सम्प्रदायमें गुरुको बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है और कहा गया है कि गुरुके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता ।

प्रत्येक मनुष्य कहीं-न-कहीं भूल कर बैठता है, पर अपनी भूल कहीं नजर नहीं आती, दूसरोंकी भूल पकड़ने या बतलानेमें व्यक्ति बहुत होशियार होता है, पर अपनी भूलको ठीकसे पकड़ना या अनुभव करना, बहुतसे व्यक्तियोंके लिये कठिन कार्य है। इसलिये जीवनमें आत्मावलोकन या आत्म-निरीक्षणकी भी बड़ी आवश्यकता है । प्रत्येक कार्य करते समय सतर्क या जागरूक रहना आवश्यक होता है; क्योंकि तनिक-सी भूल भी बना-बनाया खेल बिगाड़ देती है। कुछ हितचिन्तक मित्र भी ऐसे होने चाहिये जो अपने साथी-का ध्यान उसकी कमी एवं भूलोंके प्रति आकर्षित करते रहें । बहुत बार हम अपनी भूलको ठीकसे नहीं समझनेके कारण ही असफल होते हैं। दूसरोंको दोष देते हैं, चिढ़ते हैं, कुढ़ते हैं, पर इससे कुछ लाभ नहीं होता, नुकसान ही होता है। कई बार तो ऐसा भी होता है कि दूसरा हमें कोई गलती बताये तो हम उसे अपना विरोधी मान बैठते हैं—उसके कहे हुएकी उपेक्षा करते हैं, उसे कुछ अयोग्य बातें भी कह देते हैं और उससे झगड़ बैठते हैं । पर चाहिये यह कि दूसरा जो हित-बुद्धिसे हमारी भूल बतलाता हो और विचार करनेपर उसका कहना सही हो तो हमें उसका आदर करना चाहिये, उपकार मानना चाहिये । इसलिये अपनी भूल ज्ञात होनेपर बहुत-से व्यक्ति अपना कान स्वयं पकड़ते हैं—अर्थात् भूलको स्वीकार करते हुए मुझसे यह गलती क्यों हुई और भविष्यमें ऐसी गलती न हो, इसके लिये सजग हो जाते हैं ।

गुणोंका विकास करनेके लिये दोषोंको दूर करना आवश्यक है ही; क्योंकि हमारी शक्ति जो दोषोंमें लगी हुई है, वह क्षीण हो रही है । उसे जबतक वहाँसे हटा न लें, गुणोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकासमें वेग न आयगा । इस सम्बन्धमें सबसे पहली बात तो यह है कि हम अपने दोषोंको पहचानें और उनको दोषरूप मानें, अन्यथा हम दोषोंको दूर कर ही कैसे सकेंगे ? बहुत बार हम अपने दोषों या भूलोंको स्वीकार ही नहीं करते और दुराग्रहवश उनका समर्थन कर बैठते हैं । बहुत-से दुर्व्यसन हमारी शक्ति और समयको बरबाद कर देते हैं । फिर भी हम उन्हें छोड़ नहीं पाते । इसमें मनोबल-की कमी तो है ही, पर दूसरा कारण यह भी है कि वे दुर्व्यसन हमारे लिये जितने घातक हैं, उनके उतने घातकपनका हम सही अनुभव नहीं कर पाते । यदि हम उन दुर्व्यसनोंसे मुक्त होना चाहते हों तो दो ही उपाय हैं कि हम सत्संगमें, सत्प्रवृत्तियोंमें अधिक-से-अधिक लगे रहें और दुर्व्यसनों तथा दुर्गुणोंको अपने लिये बहुत घातक मानते हुए उनके प्रति अरुचि पैदा करें, पुनः-पुनः पश्चात्ताप करते हुए दृढ़ मनोबल-से उन्हें दूर हटानेमें पूर्णरूपसे कटिबद्ध हो जायँ ।

कहा जाता है कि भूल करना मनुष्यका स्वभाव है, पर साथ ही यह भी निश्चय रखिये कि भूलोंका संशोधन करते रहना भी उसका परम आवश्यक कर्तव्य है और सावधानी रखनेसे भूल करनेके स्वभावपर बहुत कुछ विजय प्राप्त की जा सकती है । बहुत-सी भूलें तो अज्ञानता और अन्यमनस्कताके कारण होती हैं । अतः अज्ञानताको दूर करनेके लिये सही और सच्चे ज्ञानकी आवश्यकता है तथा अन्यमनस्कताको दूर करनेके लिये एकाग्रता और सावधानीकी आवश्यकता होती हैं । जिस समय हम जो काम करें, मनको उसीमें केन्द्रित रक्खें, अन्य बातोंमें भटकते हुए मनको इधर-उधरसे हटा लें और पूरी सावधानीसे कार्य करनेमें जुट जायँ । पहले एक बार कुछ कठिनाई होगी—मन इधर-उधर भटकेगा, पर अभ्यास और निश्चयके बलपर वे कठिनाइयाँ दूर होकर सही कार्य करना हमारा स्वभाव बन जायगा । क्रमशः भूलें कम होती जायँगी और कार्यमें सफलता बढ़ती जायगी ।

यदि हमें अपनेको आदर्श उन्नत और सफल बनाना है तो हमें ऊपर बतलायी हुई बातोंको सदा ध्यानमें रखना चाहिये। ऐसी और भी अनेक बातें हैं, वे चिन्तन और विवेकसे स्पष्ट हो सकेंगी ।

## विनय

( रचयिता—श्रीबालकिशनजी गर्ग )

ओ अनन्त ! तुम निखिल-नियन्ता ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हो ।  
रघुनन्दन-यदुनन्दन हो, सम्पूर्ण देवि-देवेश्वर हो ॥  
निराकार-साकार, सगुण-निर्गुण भी हो त्रिगुणेश्वर हो ।  
अज-अनादि-अव्यक्त-अगोचर, सर्वेश्वर परमेश्वर हो ॥

अखिलेश्वर ! तुम अविनाशी अजरामर लोकोजागर हो ।  
निर्विकार निर्लिप्त निरंजन भक्त-हृदय नटनागर हो ॥  
दीनबन्धु हो, प्रेम-इन्दु हो, अक्षय करुणासागर हो ।  
अतुलित वैभव-ऋद्धि-सिद्धि-पति, सकल शक्तिके आगर हो ॥

जगाधार ! पंकिल तमसावृत अन्तस्तल उज्ज्वल कर दो ।  
विनय यही, नीरस जीवनको प्रभो ! प्रेम-पूरित कर दो ॥  
विनय स्वरूपका उद्‌बोधन विस्मृत प्राणीको सत्वर दो ।  
भवके भयसे मुक्त करो, सर्वज्ञ विभो ! मंगल वर दो ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

[ गताङ्कसे आगे ]

हालमें ही चीनकी बदनीयतीके कारण हमारी सरकारके कान खड़े हुए हैं और उसने इस क्षेत्रमें कुछ फौजी चौकियाँ जमाने, मोटर-मार्ग बनवाने आदि बातोंकी व्यवस्थाकी घोषणा की है। हमें मालूम हुआ कि सरकार इस ओरके मार्गोंको बनवानेमें अब तेजीसे अग्रसर है और प्रतिमील पचास-पचास हजार रुपये व्यय कर रही है, ठीक भी है। किसी संकटकी स्थितिमें मुकाबलेपर खड़े होनेके लिये श्रम-शक्ति और व्ययको नहीं आँका जाना चाहिये। ऐसे समय हमें तो केवल यह देखना पड़ता है कि हम हाथ-पैरोंसे मजबूत हैं या नहीं, जिस भूमिपर हम खड़े हैं, वह मजबूत है या नहीं। यदि इन दो बातोंको हमने देख लिया तो हमें यह देखनेकी जरूरत नहीं रह जाती कि जिससे हमारा मुकाबला है, उससे हम कमजोर हैं या ताकतवर। इस दृष्टिसे हमारी वर्तमान तैयारी सर्वथा उचित और आवश्यक है। किंतु, इस आकस्मिक स्थितिमें हमें अतीतके अनुभव और भविष्यकी आशङ्काओंको भी नहीं भुलाना है। आज हम अपनी सुरक्षाकी दृष्टिसे जो भी कदम उठावें, उन्हें पूर्ण रीतिसे सोच-समझकर विचारोंकी काफी गहराईतक आकर निश्चित करें। अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि ये सुरक्षात्मक कदम हमारी ही अरक्षाके कारण बन जायँ। हिमालय स्वयं इस देशका एक प्रहरी है, उसे निसर्गने ही यह दायित्व सौंपा है। उसपर पहरा बैठानेकी आवश्यकता, जो स्वयं प्रहरी है, किस रूपमें और कितनी दूरतक है, यह हमें देखना है। आज हम लम्बे-लम्बे और चौड़े-चौड़े मोटर-मार्ग बना दें, पहाड़ोंको उड़ाकर सैनिक जमावके लिये मैदान बना लें तथा उसकी दुर्गमता हर दृष्टिसे कम कर उसपर अपना मैदानों-जैसा आधिपत्य जमा लें, तो क्या यह बात हमारे हितके अनुकूल होगी—यह हमें देखना है। हम विचारकर देखें तो मालूम होगा जब हमारे क्षेत्रमें सड़कें नहीं थीं, हिमालय दुर्गम था। जैसे-जैसे मार्ग बने इसकी दुर्गमता कम हुई और अधिकाधिक संख्यामें लोग जाने-आने लगे। अब जब कि तेजीसे इस क्षेत्रमें सड़कें बन रही हैं, तो निश्चित है इसकी दुर्गमता सर्वथा लुप्त होकर वह सर्वगम्य बन जायगा। इतिहास बताता है, कदाचित् हिमालय अपनी इसी दुर्गमताके ही कारण सुरक्षित रहा। उसका दुर्गम रहना ही देशके लिये श्रेयस्कर है और सुगम होना क्लेशकारक। हाँ, सैनिक महत्त्वकी सड़कें अवश्य बनायी जायँ। वे सड़कें कम हों, गुप्त मार्गों-जैसी अज्ञात हों और इस प्रकार बनायी जायँ कि शत्रुके लिये जरा-सी देरमें बेकार कर दी जा सकें। इस दृष्टिसे हिमालयकी दुर्गमताको यदि हमने कायम रक्खा तो सदाकी तरह वह तो अजेय रहेगा ही, देशका भी एक सजग प्रहरी बना रहेगा।

इसीके साथ हमारी यह भी राय है कि चीनके कारण आपद्धर्मके रूपमें हमने हिमालयपर जो सैनिक पहरा बैठानेकी ठानी है वह उसकी रक्षाके लिये पर्याप्त नहीं है। इतिहास साक्षी है, जैसा कि हमने अभी कहा, हिमालय स्वयं एक प्रहरी रहा है, एक महान् देशका महान् प्रहरी। उसे कौन हटा पाया है। कौन हटायेगा? न आजतक वह आगे बढ़ा है न कभी पीछे हटा। अपने प्राकृतरूपमें पुरातन कालसे भारतका एक प्राकृत प्रहरी बना वह अडिगभावसे आज भी खड़ा है। हमारी ही कतिपय भूलोंने उसे आज विवाद-कैदमें डाल दिया है। अब आवश्यकता इस बातकी है कि जिस हिमालयने हर दृष्टिसे सदा हमारी रक्षा की, उसे हम आँखोंसे ओझल न करें और इस बातका प्रयत्न करें कि भारतका प्रत्येक बच्चा हिमालयके साथ अपने सम्बन्धको समझ ले। यदि सभी उसका वास्तविक परिचय पा सकें, अपनेको उसके अधिक निकट ला सकें तो निःसंदेह वह सदाकी तरह हमारी रक्षा और गौरव-वृद्धि करता रहेगा। हिमालयसे इस देशके निवासियोंका निकट सम्बन्ध कायम करनेके लिये सरकारको अविलम्ब कुछ क्रियात्मक कदम उठाना चाहिये। कुछ बातोंका तो सम्बन्ध केवल यात्रा-विषयक है, जिसमें वे साधन जुटाये जायँ जिनसे उत्तराखण्डकी यह कष्टतर यात्रा कुछ सुगम हो और जन-साधारण अधिक-से-अधिक संख्यामें हिमालयके प्रति आकर्षित हो। यात्रा-विषयक सुविधाओंमें हमने अनेक बातें सुझायी हैं, मार्गोंका अच्छा होना, आधुनिक ढंगसे आवासगृहोंका निर्माण, साफ-सफाईकी व्यवस्था, यात्री-मुकामोंपर पानीकी व्यवस्था, चिकित्सालयोंकी स्थापना, सस्ती और अच्छी खाद्यसामग्रीका प्रबन्ध आदि बातें प्रमुख हैं। इस सम्बन्धमें सुननेमें आया है कि शासन ये सारी व्यवस्थाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुटानेमें तेजीसे अग्रसर हो भी गया है। पर्यटकों या तीर्थ-यात्रियोंके सिवा भी जो प्रधान कार्य उत्तराखण्डके इस बृहद् क्षेत्रमें किये जा सकते हैं, वे हैं—यहाँ छोटे-बड़े गृह-उद्योगोंके निर्माणके। इस सम्बन्धमें हमने कुछ सुझाव अभी दिये भी हैं। इसके अतिरिक्त, हमारी रायमें सरकारको कुछ वैज्ञानिक भू-गर्भशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, अर्थशास्त्री, रसायनशास्त्री, कृषि-विशेषज्ञ आदि ऐसे विद्वानोंकी एक समिति तुरंत नियुक्त करनी चाहिये जो उत्तराखण्डके इस प्रदेशमें यहाँके लोगोंसे और अधिकारियोंसे सम्पर्क स्थापित कर इस बातका पता लगावे कि भारतके आर्थिक विकासके लिये हिमालयका किन-किन दिशाओंमें उपयोग किया जा सकता है। इन विद्वानोंकी रिपोर्ट मिलनेपर सरकारको यदि कुछ मूल्यवान् तथ्य नजर आवें, जिनकी कि पूरी-पूरी सम्भावना है, तो सरकारको इस क्षेत्रमें विभिन्न विषयोंके कुछ अन्वेषण-केन्द्र भी स्थापित करने चाहिये। इस तरह हम देखेंगे कि निकट भविष्यमें ही हिमालय जो आज भारतका सरताज है, वह केवल ताज या मुकुट ही न रहकर उसका देशके जन-जनके हृदयसे सम्बन्ध हो जायगा।

उत्तराखण्डके इस क्षेत्रमें सरकारने अनेक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कार्य किये हैं जिसकी हम सराहना करेंगे और इस सद्भावनाके लिये उसे बधाई देंगे। इन कार्योंमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो हुई, वह है यात्रियोंको हैजेके टीके लगवानेका प्रबन्ध। हमें बताया गया कि जबसे शासनने यात्रियोंको हैजेका टीका लगवाना अनिवार्य किया है तभीसे यहाँसे हैजेकी बीमारी गायब हो गयी है। इसके विपरीत जब यह व्यवस्था नहीं थी या शिथिल थी तो प्रायः प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं हैजेका प्रकोप हो ही जाता था। इसी तरह चारों धामोंमें तथा कुछ प्रधान चट्टियोंपर औषधालयोंका प्रबन्ध, डाकघर आदिकी व्यवस्था तथा बदरीनाथ, केदारनाथ-मार्गमें एक स्थानसे दूसरे स्थानकी दूरी, ऊँचाईकी जानकारी, स्वास्थ्य-रक्षासम्बन्धी हिदायतें आदि अनेक उपयोगी बातें की गयी हैं। केदारनाथ-मार्गमें कुछ स्थानोंपर उन स्थानोंकी समुद्र-सतहसे ऊँचाईकी जो सूचना हमें मिली वह अंग्रेजीमें थी। इन सूचनाओंको यहाँ अंग्रेजीमें पाकर हमें कुछ आश्चर्य हुआ, पर जल्दी ही हमारी समझमें भी आ गया कि ये सूचनाएँ वर्तमान सरकारद्वारा निर्देशित न होकर अंग्रेजी सरकारके जमाने की हैं और इन बारह वर्षोंमें हमारी सरकारने इन्हें हिंदीमें देनेका इसलिये कष्ट नहीं उठाया कि उसकी रायमें कदाचित् इन सूचनाओंका उपयोग विदेशी पर्यटकों या शासन-तन्त्रके सरकारी अधिकारियोंमात्रके लिये है। तीर्थयात्री तो, जिनकी संख्याके आगे ये विदेशी पर्यटक और सरकारी अधिकारी नगण्य हैं, शासनकी दृष्टिमें अनपढ़, अशिक्षित और मूर्ख हैं जो केवल अपनी धर्मान्धता या अन्ध-श्रद्धाके कारण ही ये यात्राएँ करते हैं। उनकी दृष्टिमें ऊँचाई-नीचाईका क्या भेद ? इसकी उन्हें जरूरत भी क्या ? इन अशिक्षित, अनपढ़, ग्रामवासी, गँवारोंके वोटसे चुनी सरकार और उसके कलपुर्जे इन अधिकारियोंकी इस अवज्ञापूर्ण कृतिके प्रति हमें जो क्षोभ और दुःख हुआ, वह हम किन शब्दोंमें व्यक्त करें, समझमें नहीं आता। अंग्रेज भारतीय किसानों, मजदूरोंको भेड़ोंके सदृश समझते थे, उसी प्रकार व्यवहार भी करते थे, जब जहाँ चाहे जहाँ हाँक दें। किंतु, अब हमारी ही सरकार, जिसे हमने ही बनाया है, यदि हमारे साथ वही व्यवहार करे तो यह हमारा ही दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है ? अंग्रेजीकी इन सूचनाओंको हमारे बारह व्यक्तियोंके दलमें केवल गोविन्द-दास, रत्नकुमारी और गोविन्दप्रसादने पढ़ा। अन्य नौ व्यक्ति, जो सभी साक्षर थे, विदेशी भाषाके ज्ञाता न होनेके कारण इन तख्तियोंमें क्या लिखा है, स्वयं न समझ पाये। इसी तरह उन हमारे यात्रियोंको जो पग-पगपर इस निर्जन बीहड़ प्रदेशमें सूचनाएँ प्राप्त करनेके अभिलाषी रहते हैं, जब इन तख्तियोंपर अपरिचित भाषामें कुछ लिखा उन्हें दिखायी देता है तो क्या यह भी सम्भव नहीं, उनके मनमें उल्टा भ्रम और संदेह पैदा हो जाय। अतः अधिकारियोंसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि यदि इन अशिक्षित यात्रियोंकी आप सहायता नहीं कर सकते तो भगवान्‌के लिये उनके मार्गमें समस्याएँ तो खड़ी न कीजिये। यदि हम सरकारसे इस बातके लिये कैफियत लें कि यहाँ एक ओर रेलों, डाकघरोंमें, सरकारी दफ्तरोंमें, सचिवालयोंमें और यहाँतक कि फौजी कार्यालयोंमें जब हिंदीका प्रचलन किया जा रहा है तो उत्तराखण्डके इस क्षेत्रमें, जहाँ कि नब्बे प्रतिशत यात्री अंग्रेजी न जाननेवाले ही होते हैं, यह अंग्रेजीका आडम्बर क्यों ? अंग्रेजी भारतकी मातृभाषा नहीं, दासताकी प्रतीक है। यदि कहा जाय कि अहिंदीभाषी प्रदेशों, विशेषकर दक्षिणसे आनेवाले यात्रियोंके कारण अंग्रेजीका प्रयोग किया गया है तो यह तर्क भी तथ्यपूर्ण नहीं। दक्षिणके भी सभी यात्री अंग्रेजी पढ़े-लिखे नहीं होते। अतः सभीकी सुविधा और सहूलियत की दृष्टिसे उचित तो यही हो कि हिंदीके साथ-साथ अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रादेशिक भाषाओंमें भी ये सूचनाएँ अंकित की जायँ। सूचनापटोंपर अन्य प्रादेशिक भाषाओंके साथ अंग्रेजी भी रखी जा सकती है, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं, पर वह प्रधान बनकर नहीं। पहले हमें अपनी मातृभाषाओंके उन बहुसंख्यक यात्रियोंका ध्यान रखना है जिनके कारण ही ये यात्राएँ चल रही हैं। फिर देशी या विदेशी उन पर्यटकोंका, जिनका काम अंग्रेजीके बिना नहीं चल सकता। हमारा विश्वास है हमारी सरकार और उसके अधिकारियोंका स्वाभिमान जगेगा और अपनी मातृभूमिमें अपनी मातृभाषाओं-पर अंग्रेजीके आधिपत्यका वे स्वयं कारण न बनेंगे।

जैसा पहले कहा गया है, उत्तराखण्डके इन चारों धामोंके मार्ग चार प्रसिद्ध नदियोंके किनारे-किनारे गये हैं। यमुनोत्तरीका मार्ग यमुनाके किनारे-किनारे, गङ्गोत्तरीका मार्ग गङ्गाके किनारे-किनारे, केदारनाथका मार्ग मन्दाकिनीके किनारे-किनारे और बदरीनाथका मार्ग अलकनन्दाके किनारे-किनारे। इन नदियोंके दोनों ओर हिमालयकी उत्तुङ्ग शिखरावली है। समुद्रकी सतहसे पंद्रह हजार और उससे भी ऊँची शिखरावली सदा हिमसे आच्छादित रहती है। शेष श्रृङ्गावलीपर कहीं चीड़, कहीं देवदारके सुन्दर वन हैं, कहीं अन्य प्रकारके तरुओंकी सघन वृक्षावली। कहीं-कहींके शिखर एकदम तरुरहित दिगम्बर हैं। ऐसे शिखरोंमें अनेकोंमें विभिन्न वर्णोंके पाषाण हैं। इन पाषाणोंमें कई अभ्रककी आभासे चमकते हैं। यमुनोत्तरीके मार्गमें चीड़के घने वन हैं, गङ्गोत्तरीके मार्गमें देवदारके। केदारनाथके मार्गमें सघन वृक्षोंकी छाया है और बदरीनाथके मार्गकी श्रृङ्गावली अधिकतर वृक्षोंसे रहित है। चारों मार्गोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी गिरिश्रेणियाँ हैं, चारों मार्गोंकी नदियोंका नीर भी विभिन्न रंगका है। यमुनाका श्याम, गङ्गाका श्वेत, मन्दाकिनीका हरा और अलकनन्दा-का नीला। हिमानियोंके श्रृङ्ग भी अलग-अलग प्रकारके हैं। केदारनाथकी हिमानी श्रृङ्गावली ( जो तेईस हजार फुटके लगभग ऊँची है ) के सदृश महान् हिमानी तो हमने कहीं देखी नहीं। रत्नकुमारीने काश्मीरमें भी नहीं और गोविन्ददास-ने स्विट्जरलैण्डमें भी नहीं। बदरीनाथके चारों ओरकी हिमानीपर बर्फका छिड़काव-सा हुआ है। हम पहाड़ोंपर काफी घूमे हैं, परंतु ऐसा भव्य और मनोहर पर्वतीय प्राकृतिक दृश्य हमने कहीं नहीं देखा। हिमालय कितना सम्पन्न, वैभव-शाली तथा महान् है और वह इसी देशके नहीं, परंतु समस्त संसारके प्रकृति-प्रेमियोंको क्यों आकर्षित करता है, इसका इस यात्रामें हमें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। इसीलिये शायद एक अंग्रेज सर जान स्ट्रेवीने लिखा था—'मैंने अनेक योरपके पार्वत्य प्रदेशोंको देखा, परंतु अपनी महानता, भव्यता तथा सुन्दरतामें योरपका कोई भी पहाड़ हिमालयकी बराबरी नहीं कर सकता।' इस प्राकृतिक शोभाको निरखते-निरखते मनुष्य केवल अपने शारीरिक कष्टोंको भूल जाता है, इतना ही नहीं, जैसा हमने पहले कहा है, अनेक बार अपने-आपको भी विस्मृत कर देता है। इसका भी हमें स्वयं अनुभव हुआ है।

हम केवल प्राकृतिक सौन्दर्य देखने नहीं गये थे। हम तो गये थे धार्मिक भावनाओंसे भरी तीर्थ-यात्राके लिये। अतः हमें देवदर्शन, देवपूजा आदिमें जो आनन्द आता, वह हमें और गद्‌गद कर देता। ये देवमन्दिर कब बने थे, इन्हें किसने बनवाया, इनकी मूर्तियाँ कब प्रतिष्ठित हुईं आदि तर्कपूर्ण विचार भी इन दर्शनों और इस पूजनके समय हमारे मनमें न आते। इन निर्गुण पाषाणनिर्मित मन्दिरोंके निकट पहुँचते ही हमें ऐसा लगता जैसे सगुण साक्षात् भगवत्-चरणोंके समीप हम आ गये हैं। हम यदि नास्तिकों-को छोड़ दें, तो आस्तिकोंके लिये भारतीय धर्ममें निर्गुण और सगुण दोनों ही प्रकारकी भगवत्-उपासनाएँ हैं। भगवान्‌के रूप अनन्त हैं, उनकी प्राप्तिके मार्ग अनन्त। पहले शायद तप, योग और यज्ञ ही भगवत्-प्राप्तिके साधन माने जाते थे। लोग कहते हैं, उस कालमें ये स्थल केवल तपोवन थे। केदारवन और बदरीवन आदि, जहाँ ऋषि-महर्षि और संसार-विरक्त पुरुष तपस्या करते थे। कुछ केदारनाथकी भैरव-झाँपसे कूदकर इसलिये आत्महत्या कर लेते थे कि वे उस आत्महत्याके पश्चात् सीधे स्वर्ग जायँगे। यह निर्गुण उपासना ही उस समय थी। सगुण उपासना नहीं। और मूर्तिपूजा तो हिंदू-धर्ममें बादमें आयी।

कुछ लोग मूर्तिपूजाको एक बड़ा भारी पाखण्ड मानते हैं। उनके विचारमें मूर्तिपूजा हिंदू-धर्मका निरा ढोंगमात्र है। हम यह मानते हैं कि निर्गुण उपासना शायद सगुण उपासनासे पुरानी है और मूर्तिपूजा उस सगुण उपासनाके भी बादकी। परंतु, क्या पुरानी सभी बातें नयीसे श्रेष्ठ हैं? यदि यह मान लिया जाय तब तो फिर इस विश्वासकी ही इतिश्री हो जाती है कि मानव विकास-पथसे उन्नतिकी ओर जा रहा है। हम तो सगुण उपासना और मूर्तिपूजाको निर्गुण उपासनासे श्रेष्ठ इसलिये मानते हैं कि इस पंथने हमारे आध्यात्मिक मार्गको सरल कर दिया है।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदासजीने केवल एक चौपाईमें निर्गुण उपासनासे सगुण उपासनाका श्रेष्ठत्व सिद्ध कर दिया है। रामचरितमानसके किष्किन्धाकाण्डमें शरदृऋतुका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

फूलें कमल सोह सर कैसें। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसें॥

जैसा कि ऊपर कहा गया है पूर्वकालमें मोक्ष-प्राप्ति-के प्रधानतया तीन मार्ग थे—तप, यज्ञ और योग। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें इन्हीं तीनों मार्गोंका अनुसरण होता रहा। द्वापरके अन्तमें और कलियुगके प्रारम्भमें भक्तिका उदय हुआ। श्रीमद्भागवतमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-प्रकरणमें विस्तारमें इस सम्बन्धमें कथा आयी है।

भगवान् श्रीकृष्णने सगुणरूप परमेश्वरको भजनेवाले अपने भक्तोंको योगियोंसे भी श्रेष्ठ माना है। वे कहते हैं—

**मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।**
**श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥**

(गीता १२। २)

सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश अर्थात् परिश्रम विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंमें अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है, अर्थात् जबतक शरीरमें अभिमान रहता है, तबतक शुद्ध सच्चिदानन्दघन, निराकार ब्रह्ममें स्थिति होनी कठिन है। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

**क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।**
**अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥**

इस प्रकार निराकार और निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाके मार्गको—'ग्यान पंथ कृपान कै धारा' तथा—

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥

—कहा गया है।

कदाचित् इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीको भी निर्गुण उपासना नहीं भायी। जैसा कि वे कहते हैं—

निर्गुन मत नहिं मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥

वे आगे कहते हैं—

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निरगुन उपदेसा॥

इस तरह हम देखते हैं, हमारी यह सगुणोपासना और मूर्तिपूजा हमारे धर्ममें कोई पाखण्ड या ढोंग बनकर नहीं आयी, वरं हमारी आध्यात्मिक प्रेरणाका सरल स्रोत बनकर आयी है। यह बात केदारनाथ और बदरीनाथकी ये यात्राएँ और स्पष्ट कर देती हैं। तपोवनोंका, तपस्याका समय अब बीत गया। यदि आज केदारनाथ और बदरीनाथ-के मन्दिर न होते, केदारनाथका शिवलिंग और बदरीविशालकी मूर्ति न होती तो प्रतिवर्ष वहाँ जो हजारों और लाखों यात्री जाते हैं तथा वहाँसे आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त करके आते हैं वे क्या केवल केदारवन और बदरीवनके दर्शनमात्रको जाते! प्राकृतिक दृश्य तो कैलासमें उत्तराखण्डके इन चारों धामोंसे भी श्रेष्ठ बताये जाते हैं। परंतु, कैलासमें इस प्रकारके मन्दिर और मूर्ति न होनेके कारण कितने लोग कैलासकी यात्राको जाते हैं? यदि यह कहा जाय कि कैलासका मार्ग और भी दुर्गम है, इसलिये वहाँ जानेका लोगोंको साहस नहीं होता, तो रत्नकुमारीसे हमें मालूम हुआ कि काश्मीरमें अमरनाथका मार्ग बहुत ही दुर्गम है, इतनेपर भी अमरनाथ-में प्रतिवर्ष राखी-पूर्णिमापर जो मेला लगता है, हजारों यात्री शिवलिंगके दर्शनार्थ इस मेलेमें जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि केदारनाथ या बदरीनाथ अथवा अमरनाथ सहस्रोंकी संख्यामें जो यात्री जाते हैं, वे इन स्थलोंके प्राकृतिक दृश्योंके निरीक्षणके लिये नहीं वरं इन देवस्थानों, मन्दिरों और मूर्तियोंके कारण। यही बात यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरीके सम्बन्धमें भी है। एक निश्चित स्थानसे जहाँ कि हमने यमुनाके दर्शन किये, उसके साकार रूपको देखा, इसी तरह गङ्गोत्तरीमें भागीरथीको, हमने उसकी वहीं उपासना आरम्भ कर दी। इन सरिताओंके वहाँ मन्दिर भी बन गये। प्रतीकरूप मन्दिरोंमें गङ्गा और यमुनाकी मूर्तियाँ भी बैठा दी गयीं। आज हजारों यात्री यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरी जाते हैं। यमुना और गङ्गाके साकार-स्वरूपके दर्शन करते हैं, उनमें स्नान करते हैं, तटपर भजन-पूजन करते हैं और इनके मन्दिरोंमें जाकर यमुना और गङ्गा-मूर्तिका दर्शन-पूजन करते हैं। किंतु, हम देखेंगे तो मालूम होगा कि यात्रियोंका आकर्षण गङ्गा-मन्दिर और यमुना-मन्दिरकी गङ्गामूर्ति और यमुनामूर्तिकी अपेक्षा सम्मुख बहती गङ्गा और यमुना-की निर्मल तेज धाराके प्रति अधिक होता है। इसका कारण है मन्दिरकी गङ्गामूर्तिमें गङ्गा अव्यक्त हैं, इसी तरह यमुना-मूर्तिमें यमुना और निकट ही गङ्गा भी प्रत्यक्ष हैं, और यमुना भी। स्वाभाविक है जो प्रत्यक्ष है, सदेह, सरस है, सजीव है, सद्यः फलदाता है, उसीकी उपासना, उसीकी सेवा और उसीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन सभी करना चाहेंगे। अव्यक्त, अगोचर, निर्जीव और नीरसके निकट कौन जाना चाहता है। जब इष्ट, अभीष्ट या परमेश्वर प्रत्यक्षमें सामने है तो परदेके पीछे परोक्षमें जानेकी जरूरत क्या ? बस, यही बात निर्गुण निराकार ब्रह्म और सगुण साकार ब्रह्मके बीच है। निर्गुण उपासना सगुणोपासनाके लिये है। गङ्गा और यमुनाकी तरह यदि निर्गुण और निराकार ब्रह्मका साक्षात्कार हो सकता, तो मूर्तियोंके समीप जानेकी फिर जरूरत न पड़ती। निर्गुण और निराकारकी साधनाके दुष्कर और दुर्गम पथको हमारी सगुणोपासनाने सहज सुगम और सर्व-सुलभ कर दिया है। इसके द्वारा हमने उस तत्त्व-ब्रह्मका अधिक सामीप्य पाया है जिसकी प्राप्तिके लिये हमारे पूर्वज तत्त्वज्ञानी, योगी, मुनि, तपस्वी उग्र तपश्चर्या और कष्टकर साधनारत होते थे। जैसा कि हमने प्रस्तुत पुस्तकमें भी प्रसंगानुसार यदा-कदा इस सम्बन्धमें संक्षेपसे कुछ चर्चा की है, हमारी सगुणोपासनाने हमें 'सीय राममय सब जग जानी' का महामन्त्र दिया है। हम सृष्टिके कण-कणमें, अणु-अणुमें भगवत्साक्षात्कार करते हैं। अतः हमारी दृष्टिमें फिर निर्गुण और निराकार तथा अव्यक्त और अगोचर ब्रह्मकी कल्पना नहीं रह जाती।

केदारनाथ, बदरीनाथके और यहाँके कुछ मन्दिरोंके सम्बन्धमें कुछ लोगोंने हमसे कहा कि ये मन्दिर पाण्डवोंके बनवाये हुए हैं। कुछने बताया जगद्गुरु शंकराचार्यके। कुछ बोले कि ये गढ़वालके कत्यूरी वंशके शासनकालमें दसवीं और बारहवीं शताब्दीके बीचमें बने हैं। कुछने तो यह भी कहा कि गढ़वालके अठारहवीं शताब्दीके भीषण भूकम्पके बाद इनका निर्माण हुआ है। इन मन्दिरोंकी मूर्तियोंके सम्बन्धमें भी भिन्न-भिन्न बातें कही गयी हैं। खण्डित मूर्तियोंके सम्बन्धमें ( जिनकी संख्या पर्याप्त है ) यह कहा गया है कि सन् १७४१, ४२ में रुहेलोंने इन्हें खण्डित किया है। जो कुछ भी हो, मन्दिर कभीके बने हों, मूर्तियाँ कभी भी स्थापित हुई हों, आज तो ये मन्दिर और मूर्तियाँ ही उत्तराखण्डके यात्रियोंको आध्यात्मिक प्रेरणा देती हैं। अतः हमारी दृष्टिसे केदारवन और बदरीवन तथा उत्तराखण्डके तीर्थ-स्थलोंकी जो महिमा इन वनों, नदियों, कुण्डों आदिके कारण थी, वह इन मन्दिरों और मन्दिरोंकी मूर्तिपूजाके कारण कहीं बढ़ गयी है। अतः सनातनधर्ममें इन मन्दिरों और मूर्तिपूजाका प्रवेश उसे व्यावहारिक रूप देकर उसके विकासका कारण बना है।

फिर यहाँका पंडावर्ग, जिस शुद्धता और सात्त्विकतासे यह पूजा कराता है, वह सोनेमें सुगन्धका मिश्रण कर देती है। हम इस पंडावर्गकी प्रशंसा इस पुस्तकमें प्रसंगानुसार अनेक स्थलोंपर कर चुके हैं और पुस्तकके इस उपसंहारमें भी हम इस वर्गकी भूरि-भूरि प्रशंसा करनेके अपने लोभका संवरण नहीं कर पाते। ये पंडे शुद्ध ब्राह्मण हैं और इनकी पुस्तकों ( बहियों ) से पता चलता है कि इन स्थानोंके ये सैकड़ों वर्षोंसे पूजक रहे हैं। फिर इनकी पुस्तकोंमें न जाने कितना पुराना इतिहास भी भरा पड़ा है जो एक खोजका विषय हो सकता है।

उत्तराखण्डके इस क्षेत्रका इतिहास बहुत पुराना है। प्राग्-ऐतिहासिक कालमें यह भूमि किंनर, किरात और नाग जातियोंके लोगोंकी मानी जाती थी, जिसका वर्णन महाभारतमें भी आया है। वनपर्वके १४० वें अध्यायमें निम्नलिखित श्लोक आया है—

**किराततङ्गणाकीर्णं पुलिन्दशतसंकुलम्।**
**हिमवत्यमरैर्जुष्टं बह्वाश्चर्यसमाकुलम्॥**
**सुबाहुश्चापि तान् दृष्ट्वा पूजया प्रत्यगृह्णतः।**
**विषयान्ते कुलिन्दानामीश्वरप्रीतिपूर्वकम्॥**

( १४० । २६-२७ )

किरातोंका वर्णन महाकवि कालिदासने भी अपने महाकाव्य कुमारसम्भवमें किया है। महाकवि भारविका तो किरातार्जुनीय महाकाव्य है ही।

किंनर, किरात और नाग जातिके बाद यहाँके रहनेवालोंके लिये 'खस' शब्दका उपयोग हुआ है। महाभारतमें युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें जो लोग भेंट लेकर आये थे उनमें 'खसों'का भी उल्लेख है।

**खसा एकासनाल्यर्हाः प्रदरा दीर्घवेणवाः।**

कौरव-पाण्डव-संग्राममें खस लोगोंने सात्यकिके सङ्ग युद्ध किया था जिसका उल्लेख महाभारतमें सभापर्वमें आया है।

इस प्राग्-ऐतिहासिक कालके बाद इस भूमिका ऐतिहासिक काल आता है। जिस समय यहाँ शकों और हूणोंका भी आधिपत्य हुआ था, हर्षवर्धनकी मृत्युके पश्चात् जब हर्षका साम्राज्य तितर-बितर हुआ तो उसके बाद इस भूमिपर लगभग दो शताब्दीतक अर्थात् सन् ६५० से ८५० ईस्वीतक तिब्बती शासन रहा। कत्यूरी वंश इस क्षेत्रका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम ऐतिहासिक शासन है। लेकिन अबतक इस कुलके आरम्भिक नरेशोंके समयका निर्णय नहीं हो सका। कत्यूरी वंशके कुछ ताम्रपत्र भी मिले हैं। इस वंशमें कई प्रतापी राजा हुए। राजकाल बारह सौ ईस्वीतक रहा। बारह सौ ईस्वीमें वह पँवार वंश आया जिसके बावन गढ़ थे। इन्हीं गढ़ोंके कारण इस क्षेत्रका नाम गढ़वाल पड़ा।

पँवार वंशका दौर-दौरा सन् १८०० तक रहा। सन् अठारह सौके बाद इस क्षेत्रपर गोरखा-शासनकाल आता है और इसके बाद यह क्षेत्र अंग्रेजी राज्यमें सम्मिलित हुआ।

टिहरीपर अंग्रेजी राज्यके आधिपत्यमें कुछ राजाओंकी रियासतें भी थीं, उन्हींमें गढ़वालके कुछ हिस्सेपर टिहरीके राजा राज्य करते थे। सन् १९४७ की पंद्रह अगस्तको अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। उसके पश्चात् अन्य रियासतोंके सदृश टिहरी रियासतका भी भारतीय गणराज्यमें विलीनीकरण हो गया। इस प्रकार इस क्षेत्रका प्राचीनकालसे अर्वाचीन समयतकका एक लम्बा इतिहास है जो इस पुस्तकका विषय नहीं।

इस प्राचीन संस्कृतिप्रधान भारत देशमें हिमालय सदा ही सर्वाधिक आकर्षणका केन्द्र रहा है। देशके प्राचीन विद्वानोंने निम्न पाँच भागोंसे युक्त हिमालयका वर्णन किया है—

**खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपालकूर्माचलौ।**
**केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिरः कश्मीरसंज्ञोऽन्तिमः॥**

अर्थात् ( १ ) नेपाल, ( २ ) कूर्माचल, ( ३ ) केदार, ( ४ ) जलंधर और ( ५ ) कश्मीर। इन पाँच खण्डोंमेंसे उत्तराखण्डके चारों धाम वर्तमान गढ़वाल तथा टिहरी जिलोंके अन्तर्गत आते हैं। इसके पूर्व-उत्तरमें तिब्बत है, पश्चिम-उत्तरमें हिमाचल प्रदेश और दक्षिण तथा पूर्वमें उत्तर प्रदेशके देहरादून, बिजनौर, नैनीताल और अल्मोड़ा जिले हैं। गढ़वालका क्षेत्रफल पाँच हजार छः सौ उन्नीस वर्गमील और टिहरीका क्षेत्रफल चार हजार पाँच सौ सोलह वर्गमील है। गढ़वालकी आबादी लगभग पाँच लाख पैंतीस हजार और टिहरीकी लगभग चार लाख है। गढ़वाल लगभग समूचा पार्वत्य प्रदेश है, जिसमें ऋषिकेशकी समुद्र सतहसे ऊँचाई एक हजार फुटसे लेकर नन्दादेवी त्रिशूलकी ऊँचाई पच्चीस हजार छः सौ साठ फुट है। पंद्रह-सोलह हजार फुटके ऊपरकी पर्वतश्रेणियाँ सदा हिमसे आच्छादित रहती हैं। इनमें नन्दादेवी और बदरीनाथ—दो श्रेणियाँ हैं। नन्दादेवी और बदरीनाथ दोनों शृङ्गावलियाँ पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाकी ओर करीब पचीस मीलतक फैली हुई हैं। नन्दादेवी शृङ्गावलीमें नन्दादेवी, नन्दाकोट, त्रिशूल जैसे ऊँचे शिखर हैं। बदरीनाथ शृङ्गावलीमें बदरीनाथ, चौखम्भा और केदारनाथ। ये दो श्रेणियाँ यथार्थमें एक ही श्रेणी हैं। इस श्रेणीको अलकनन्दाने पीपलकोटीके निकट काटकर दो खण्डोंमें विभक्त कर दिया है। ये दोनों खण्ड एक दूसरेसे कुछ ही मीलके अन्तरपर गङ्गाकी धाराकी ओर ढल जाते हैं। इस स्थानको कुछ लोग हिमालय-द्वार और कुछ क्रौंच-द्वार कहते हैं। केदारनाथके पर्वतशिखर सबसे ऊँचे हैं। इनमें दो सबसे ऊँचे शिखरोंका नाम भारतखण्ड और खरचाखण्ड है। भारतखण्डकी ऊँचाई लगभग बाईस हजार आठ सौ फुट और खरचाखण्डकी लगभग इक्कीस हजार सात सौ फुट है। इन्हीं शिखरोंकी तलैयोंमें केदारनाथका मन्दिर है। इन शिखरोंके दक्षिण पूर्वसे मंदाकिनी निकली है। बदरीनाथ पर्वतश्रेणीके सर्वोच्च शिखरका नाम चौखम्भा है जिसकी ऊँचाई लगभग बीस हजार फुट है। चौखम्भाकी हिमानीके अलकापुरी नामक स्थलसे अलकनन्दाका उद्गम है। केदारनाथ और बदरीनाथ यथार्थमें एक दूसरेसे बहुत दूर नहीं है। केवल ढाई कोसका अन्तर है। परंतु नदियोंमें बहाव और पहाड़ोंके कटावसे एक जगहसे दूसरी जगह जानेमें लगभग सौ मीलका रास्ता तय करना पड़ता है। इसीलिये एक कहावत प्रसिद्ध हो गयी है कि—'नौ दिन चले अढ़ाई कोस।' अर्थात् जैसा कि ऊपर कहा है, यद्यपि केदारनाथ और बदरीनाथकी एक दूसरेसे दूरी केवल अढ़ाई कोस है परंतु एक स्थानसे दूसरे स्थान पहुँचनेमें प्रतिदिन यदि दस-ग्यारह मील चला जाय जो यहाँके यात्री प्रायः चला करते हैं तो लगभग सौ मील चलनेके कारण यथार्थमें अढ़ाई कोसकी दूरीकी यात्रामें नौ दिन लग जाते हैं। गङ्गा और यमुनाके उद्गम भी बहुत दूर नहीं। कहते हैं, तुंगनाथसे चारोंके केदारनाथ, बदरीनाथ, यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी चारोंके शिखर दीख पड़ते हैं। इस यात्रामें तुङ्गनाथ न जा सकनेका हमें खेद रहा।

( शेष अगले अङ्कमें )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गुरु और शिष्य

( लेखक—श्रीलालचन्दजी शर्मा बी०ए०, बी०एड् )

## तब और अब

पाश्चात्त्य जगत्की भौतिक उन्नतिके आकर्षक एवं प्रखर प्रकाशकी चकाचौंधसे भारतीयोंके नेत्र चौंधिया रहे हैं। हम जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पाश्चात्त्य रीति-नीतिका अनुकरण करना ही अपना परम कर्तव्य समझने लगे हैं। अन्य क्षेत्रोंके समान शिक्षाक्षेत्रमें भी यह अन्धानुकरण हो रहा है। गुरु और शिष्यके पावन सम्बन्धपर विचार करते ही आजके शिक्षालयोंके अनुशासनविहीन तथा अश्रद्धापूर्ण वातावरणमें भारतकी प्राचीन वाणी 'आचार्य-देवो भव' विलुप्त हो जाती है।

आजके अप-टू-डेट ( Uptodate ) युगमें गुरुमें श्रद्धा रखना मूर्खता मानी जाती है। गुरुकी आज्ञाओंका पालन करना तथा उसकी सेवा करना प्रतिगामिता तथा भोंदूपन है। जबतक समाजमें ऐसी विचारधारा प्रवाहित होती रहेगी और ऐसी धारणाओंको पोषक तत्त्व प्राप्त होते रहेंगे, समाज कभी भी उन्नत नहीं हो सकेगा। तैत्तिरीय उपनिषद्में 'मातृदेवो भव' और 'पितृदेवो भव'के साथ 'आचार्यदेवो भव' कहकर आचार्यको माता और पिताके तुल्य स्थान और महत्त्व दिया गया है। इतना ही नहीं, अनेक स्थानोंपर गुरुकी महिमा ईश्वरसे भी अधिक गायी गयी है और यह महिमा-गायन अनायास नहीं है, गुरुके वास्तविक महत्त्वने कविके मानसको महिमा-गायनके लिये बाध्य कर दिया है। गुरुकुलप्रणालीके अनुसार बाल्यावस्था-में गुरु-गृहका सदस्य बनते ही बालकका शिक्षणकार्य प्रारम्भ हो जाता था। गुरु उसे न केवल अक्षराभ्यास, भाषाबोध, व्याकरणपरिचय, साहित्य-दिग्दर्शन आदि कराता, अपितु यह भी सिखाता था कि सदाचरण, चरित्र, हृदय-पवित्रता, अतिथि-सेवा, स्वजन-स्नेह, भ्रातृ-भावना, परदुःखकातरता और परोपकार किसे कहते हैं। सिखानेकी पद्धति भी उनकी अपनी थी। श्रेष्ठ गुणोंके अनुसार स्वयंके जीवनको ढालकर अपने जीवनमें उन गुणोंको पूरा उतारकर गुरु अपने जीवनसे उन गुणोंकी क्रियात्मक शिक्षा देते थे। उन गुरुजनोंका व्यावहारिक जीवन बालकोंके कोमल मनपर एक गहरी छाप छोड़ देता था। इतना ही नहीं, बालकोंका मन और जीवन उनसे सत्प्रेरणा पाकर स्वतः वैसा ही ढलने और बनने लगता था। श्रेष्ठ गुणोंकी आधारशिलापर निर्मित बालकोंके जीवनके भवनका भला और भव्य होना स्वाभाविक है। गुरुजनोंने सरल बालकोंको सद्गुणी युवकके साथ-साथ श्रेष्ठ पण्डित भी बनाया।

वे गुरुजन गुणपुञ्ज ही नहीं, ज्ञानपुञ्ज भी होते थे। ब्रह्मसूत्रका प्रथम सूत्र—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' जिज्ञासु विद्यार्थीके मनकी ज्ञानपिपासाको प्रकट कर रहा है। विद्यार्थी-में विश्वकी रहस्यमयी गुत्थियोंको सुलझाकर परम सत्यको प्राप्त करनेकी उत्कट चाह थी। जिज्ञासासे पूर्ण तथा ज्ञान-प्राप्तिके योग्य अधिकारीको पाकर गुरु उसे ज्ञानका उपदेश देते थे और वार्तालाप, विवेचन, विश्लेषण, विचार-विनिमय और गम्भीर चिन्तनके द्वारा छात्र उस ज्ञानको उपलब्ध करते थे। ज्ञानी याज्ञवल्क्यके वाक्य **'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'** इसी तथ्यकी आवृत्ति है।

माता-पिता बालकके जीवनके सुन्दर निर्माणके लिये बालकोंको उन्हीं आचार्योंके समीप भेजते थे, जो आचारवान् और गुणवान् होते थे। जिज्ञासुओंका जमघट उन्हीं आचार्योंके पास रहता था जो ज्ञानवान् और बुद्धिमान् होते थे। सरल बालकको सद्गुणी युवक और सद्गुणी युवकसे श्रेष्ठ पण्डित—ऐसे समन्वयपूर्ण व्यक्तिका सतत निर्माण करते हुए गुणवान् एवं ज्ञानवान् आचार्य ही भारतके धर्म, ज्ञान, संस्कृति और सभ्यताकी ज्योतिको अखण्डित रख सके, जो समयके भीषण झंझावातोंमें भी अकम्पित रूपसे प्रकाश विकीर्ण करती रही। ऐसे गुरुजनोंके चरणोंमें मस्तकका नत होना तथा उनके लिये 'आचार्यदेवो भव' कहना स्वाभाविक ही है।

भारतवर्षमें आजके युगमें भी इस आदर्शसे प्रेरित गुरुजन हैं, किंतु संख्यामें बहुत ही कम। इन आदर्श गुरुजनोंकी आज्ञा मानना, सेवा करना, उनमें श्रद्धा रखना कुछके लिये हास-परिहासकी वस्तु है। यह हास-परिहास भी जनसाधारण नहीं, आधुनिक उच्चशिक्षालयोंके अधिकांश विद्वज्जन करते हैं। इनके अनुसार प्राचीन पद्धति या स्थितिकी पुनः प्रतिष्ठा असम्भव है। फिर तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी नकलपर उनके छात्र अपने-आप हास-परिहाससे बढ़कर उपहास करने लगते हैं। इसमें न उन अध्यापकोंका दोष है और न उनके छात्रोंका। आजका युग मास एजूकेशन ( Mass Education ) का है। छात्र तथा अध्यापकका पारस्परिक सम्बन्ध मास कॉनटैक्ट ( Mass Contact ) पर आधारित है। छात्रोंका मास एडमिशन ( Mass Admission ) होता है और अध्यापकोंका मास अपाइंटमेंट ( Mass Appointment ) होता है। बी० ए० की मुहर लगी है अतः विद्यार्थीको एम्० ए० में प्रवेश पानेका अधिकार है और एम्० ए० की डिग्री मिलनेपर पढ़ानेका अधिकार है। पूर्ण ज्ञानकी प्राप्तिके स्थानपर परीक्षोत्तीर्ण होने या करानेकी अधिक चिन्ता है। एक उतना ही पढ़ना चाहता है और दूसरा उतना ही पढ़ाना चाहता है जिससे परीक्षोत्तीर्ण होने या पढ़ानेमें कठिनाई न हो। अध्यापकने नहीं पढ़ाया अथवा उससे नहीं पढ़ा तो भी विद्यार्थीको निश्चिन्तता है। उत्तीर्ण होनेके लिये अनेक शॉर्ट नोट्स ( Short notes ) से बाजार परिपूर्ण है। ज्ञानके लेने या देनेके लिये जिस रीतिसे अध्यापक तथा छात्र एक छतके नीचे बैठते हैं, वह रीति ही दोषपूर्ण है। स्थिति ऐसी है कि यद्यपि अध्यापक अयोग्य हैं, फिर भी उनकी नियुक्ति हो जानेके कारण ज्ञानप्राप्तिके लिये उनके पास ही जाना होगा और यद्यपि विद्यार्थी अनधिकारी हैं, फिर भी उनको प्रवेश मिल जानेके कारण ज्ञान देना ही पड़ेगा। पाश्चात्त्य प्रणालीपर आधारित आधुनिक शिक्षा-संस्थाओंमें ऐसे अवसर अत्यल्प संख्यामें पाये जाते हैं, जब कि अधिकारी छात्रको योग्य अध्यापक और योग्य अध्यापकको अधिकारी छात्र मिले।

सच्चे जिज्ञासु तथा सच्चे ज्ञानीके अभावके अतिरिक्त अधुना अध्ययन-अध्यापनकी प्रेरणा ज्ञानार्जन अथवा ज्ञानाभिवृद्धि नहीं, वणिग्वृत्ति देती है। एकमात्र अर्थ और अर्थप्राप्त्यर्थ अधिकार अथवा एकमात्र कामोपभोग ही सबका लक्ष्य है। इसलिये अध्ययन भी अन्य व्यवसायोंके समान एक व्यवसाय बन गया है तथा आधुनिक अध्ययन येनकेनप्रकारेण उपाधिकी प्राप्तिके बाद राजकीय नौकरी पानेका सरल साधन हो गया है। यह भावना ही समाप्त होती चली जा रही है कि अध्ययन या अध्यापन उदरपूर्ति या भोगप्राप्तिसे कहीं अधिक जीवननिर्माणकी, चारित्रिक उत्थानके द्वारा राष्ट्रोत्थानकी, लोकसंग्रहकी और [illegible] प्राप्तिकी एक साधना है। आधुनिक अध्यापक तथा छात्र जीवनसे—जहाँपर हास और विलासके, मनोविनोद और मनोरञ्जनके अनेक साधन हैं—उस जीवनसे तपश्चर्या, तत्परता तथा संयमकी भावना विलुप्त होती जा रही है। फलस्वरूप विद्यार्थियोंकी अपने अध्यापकोंसे न निकटता है, न उनके प्रति आदर या श्रद्धा है, और न अध्यापकोंके स्वयंका जीवन तप, संयम, त्याग, ज्ञान, गुण आदि दृष्टियोंसे उन्नत हैं जो वे अपने विद्यार्थियोंके आदर और श्रद्धाके पात्र बन सकें।

उच्चस्तरके शिक्षालयोंके शिक्षकों तथा शिक्षार्थियोंके स्नायुओंमें यह विष तो फैल ही रहा है। प्रारम्भिक तथा माध्यमिक विद्यालय भी इससे बच नहीं पाये हैं। उनका भी वातावरण विषाक्त हो चुका है। अधिकांश शिक्षकोंमें न कर्तव्यके प्रति जागरुकता है, न अपने छात्रोंके प्रति निर्मल स्नेह है और न स्वयंके जीवनमें चारित्रिक या नैतिक बल है। स्वयंके दोषको न देखकर अथवा दोषको ढकनेके लिये यह कहा जाता है कि बालकोंमें अनुशासन नहीं है, अपने गुरुजनोंके प्रति आदर नहीं है आदि। अभिभावक माता-पिताके सम्मुख यह प्रश्न नहीं है कि इस योग्य या उस अयोग्य अध्यापकके समीप अपने बालक शिक्षार्थ भेजें अथवा नहीं, अपितु यह है कि अपने ग्राम या नगरके विद्यालयमें भेजे अथवा नहीं, जहाँ घी और कोटोजमका अद्‌भुत मिश्रण है।

अध्यापकका कार्य ही यह है कि सम्पर्कमें आनेवाले अथवा समीपस्थ विद्यार्थीके अज्ञानान्धकारको दूर करके उसे ज्ञानके आलोकसे आलोकित कर दे। पशुत्वसे ऊपर उठाकर मनुष्यत्व ही नहीं, देवत्वकी उपलब्धि करा दे। बालक इतने बड़े मनोवैज्ञानिक होते हैं तथा उनका सरल हृदय इतना गुणग्राही होता है कि अपने गुरुजनोंकी थाह पा लेनेमें उन्हें विलम्ब नहीं लगता। जो अध्यापक सचमुच स्नेह करता है, परिश्रमसे पढ़ाता है, चरित्रसे महान् है, कर्ममें नैतिकतानुमोदित है, ऐसे गुरुजनोंका आदर वे बालक अनायास ही करते हैं। उन अध्यापकोंकी आज्ञाका पालन वे प्रसन्नमनसे करते हैं। ऐसे अध्यापकको द्रव्य या आदर प्रेरणा नहीं देते, अपितु वे कञ्चन और कीर्तिकी कामनासे दूर आदर्शसे प्रेरित होकर अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। यह निश्चित है कि वही देश और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही समाज स्थिर रह सकता और उन्नति कर सकता है जहाँके अध्यापकोंके जीवनमें निर्मित तथा उच्च चरित्रका परम धन है, ज्ञानका मूल्य है, इन्द्रियोंपर संयम है, लक्ष्यके प्रति तत्परता है, अनुभवोंकी राशि है, शिक्षणकी योग्यता है और अपने बालकोंसे पवित्र स्नेह है।

ऐसे योग्य आचार्योंके सम्पर्क या सामीप्यमें आकर बाल और युवक विद्यार्थीमें गुरुसे निकटता, चरित्रका विकास, गुणोंका संग्रह, ज्ञानका संचय, श्रद्धाका उदय और जीवनका उत्थान स्वयं और सहज ही होता है। ऐसे गुणोंसे ही देशका कल्याण सम्भव है। प्रस्तुत लेखका निष्कर्ष यह नहीं है कि गुरु-शिष्य-सम्बन्धके क्षेत्रके अन्तर्गत प्राचीन भारतमें सब कुछ श्रेष्ठ था एवं आधुनिक भारतमें सब कुछ हीन है। किंतु इतना अवश्य है कि श्रेष्ठताकी अधिकता आजकी अपेक्षा तब अधिक थी। साथ ही इस लेखका तात्पर्य यह भी नहीं कि श्रेष्ठताकी प्राप्तिके लिये आधुनिक पद्धतिका पूर्णतया उन्मूलन करके प्राचीन प्रणालीका पूर्णरूपसे पुनः प्रचलन किया जाय। ऐसा करना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। हाँ, शिक्षाके स्तरको उच्च बनानेके लिये अधुना प्रचलित प्रणालीमें प्राचीन श्रेष्ठताकी प्रतिष्ठा करनी आवश्यक है। नियुक्ति-समिति विद्यालयोंमें ईमानदारीके साथ योग्य अध्यापकोंकी नियुक्ति करे और परीक्षणकी विविध पुष्ट विधियोंको अपनाते हुए अध्यापक योग्य विद्यार्थियोंको परीक्षामें उत्तीर्ण करें। जबतक आधुनिक प्रणालीमें प्राचीन काल-जैसी श्रेष्ठताका ( उससे अधिक नहीं तो कम-से-कम उतनी ही मात्रामें ) आविर्भाव नहीं होगा, तबतक राष्ट्रकी, राष्ट्रके नागरिकोंकी उन्नति हो सकेगी, इसमें संदेह है।

---

# इन्द्रियनिग्रहकी समस्या

( लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गुप्त )

इन्द्रियनिग्रहका अर्थ इन्द्रियोंको वशमें रखना है। इन्द्रियों-के दो भेद हैं—अन्तःकरण और बहिःकरण। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त—इनकी संज्ञा अन्तःकरण है। और दस इन्द्रियोंकी संज्ञा बहिःकरण है। अन्तःकरणकी चारों इन्द्रियोंकी कल्पनाभर हम कर सकते हैं, उन्हें देख नहीं सकते। परंतु बहिःकरणकी इन्द्रियोंको ( उनके गोलकों-को ) हम देख भी सकते हैं।

अन्तःकरणकी इन्द्रियोंमें मन सोचता-विचारता है और बुद्धि उसका निर्णय करती है, उसपर अपना आखिरी फैसला देती है। कहते हैं—जैसा मनमें आता है, करता है। मन संशयात्मक ही रहता है, पर बुद्धि उस संशयको दूर कर देती है। चित्त या दिल अनुभव करता है या समझता है। अहंकारको लोग साधारणरूपसे अभिमान समझते हैं, पर शास्त्र उसे स्वार्थपरक इन्द्रिय बताता है।

बहिःकरणकी इन्द्रियोंके दो भाग हैं—एक ज्ञानेन्द्रिय और दूसरा कर्मेन्द्रिय। आँख, कान, नाक, जीभ और खाल-को ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं; क्योंकि आँखसे रंग और रूप, कानों-से शब्द, नाकसे सुगन्ध और दुर्गन्ध, जीभसे रस वा स्वाद और खालसे ठंडे और गरमका ज्ञान होता है। रूप, रस, शब्द, गंध और स्पर्श ज्ञानेन्द्रियोंके गुण हैं। वाणी, हाथ, पैर, जननेन्द्रिय और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके गुण मूर्ख-से-मूर्ख मनुष्य जानता है; इसलिये बतानेका प्रयोजन नहीं है।

इन चौदह इन्द्रियोंको जो अपने वशमें रखता है, वह जितेन्द्रिय कहलाता है। परंतु यह काम बड़ा कठिन है। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि कठिन समझकर यह छोड़ ही दिया जाय। आज-के-आज कोई जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। इसके लिये उसे अभ्यास या साधनाका प्रयोजन होता है। इन्द्रियाँ जंगली जानवर वा नये बैल वा घोड़ेकी तरह बन्धन तुड़ाकर भागना चाहती हैं। जरा-सी लगाम ढीली हुई कि नये घोड़ेकी तरह इन्द्रियाँ मनुष्यको लेकर कहाँ गिरा देंगी, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसलिये लगाम बराबर कड़ी रहनी चाहिये। यही इन्द्रियनिग्रह है। सच तो यह है कि जो इन्द्रियनिग्रह कर लेता है, वह कभी हारता नहीं; क्योंकि मनुष्यको दुर्बल करनेवाली इन्द्रियोंके फेरमें वह नहीं पड़ सकता।

सबसे जबर्दस्त काम जो आदमीको करना चाहिये, वह इन्द्रियनिग्रह ही है। यही मुख्य धर्म है। इसके बाद तो आगेका काम सहज हो जाता है। मनुष्य समाजमें रहता है, जहाँ उसकी इन्द्रियोंको विचलित करने या डिगानेके बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन होते हैं, इसलिये उसे इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेकी बड़ी आवश्यकता होती है; क्योंकि यदि सब लोग इन्द्रियोंको बेलगाम छोड़ दें, तो समाजसे व्यवस्था उठ जाय और सर्वत्र 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'का अटल साम्राज्य हो जाय। इसलिये स्वार्थरक्षाकी दृष्टिसे भी मनुष्यको इन्द्रियनिग्रहका प्रयोजन है।

सम्पत्ति और धनके कारण भाई-भाई और बाप-बेटेमें भी लड़ाई हो जाती है और एक दूसरेकी जानका गाहक हो जाता है। महाभारत और रामायणकी घटनाओंका सम्बन्ध सम्पत्तिके सिवा स्त्रीसे भी है। द्रौपदी और सीताके कारण भी अनेक घटनाएँ हुई हैं। जो हो, मनुष्यमें लोभ बहुत होता है। वह अपनी वस्तु तो किसीको देना नहीं चाहता, पर दूसरेकी लेनेकी बराबर इच्छा करता है, इसलिये लोभ बड़े अनर्थकी जड़ है। मनुष्य दूसरेकी स्त्रीको कुदृष्टिसे भी देखनेमें आगा-पीछा नहीं करता, पर यदि उसकी पत्नीपर कोई कुदृष्टि डालता है, तो वह नहीं सह सकता। इसीलिये विवाहप्रथा चलायी गयी, जिसमें कोई दूसरेकी पत्नीकी ओर आकर्षित न हो। फिर भी मनुष्य नहीं मानता।

इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं और मनुष्यको अन्धा कर देती हैं, इसीलिये मनुस्मृतिमें कहा है कि मनुष्यको जवान माँ, बहन और लड़कीसे भी एकान्तमें बातचीत न करनी चाहिये। कुछ लोग कहेंगे कि लेखकका मन कलुषित था और अपनी ही नाईं वह सबको समझता था, इसलिये उसने ऐसा लिखा है। पर यह उनका भ्रम है। मनुष्यका हृदय कितना दुर्बल होता है, यह बृहस्पति, विश्वामित्र और पराशर-जैसे ऋषि-मुनियोंके आख्यानोंसे स्पष्ट होता है।

हमारी समझसे सदाचारकी जड़ इन्द्रियनिग्रह ही है। इस एक ही साधनासे मनुष्य सदाचारी रह सकता है। इन्द्रियनिग्रहके बिना सदाचारका पालन सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यह सच है कि मनुष्य दण्डके भयसे भी दुराचरणमें प्रवृत्त नहीं होता, पर तभीतक जबतक भय रहता है। परस्त्रीसे छेड़-छाड़ करनेसे पिट जानेका डर सदा बना रहता है। इसके बाद मनुष्यको सदाचारी—कम-से-कम ऊपरी वा दिखाऊ सदाचारी बनानेमें लोकलज्जा भी काम करती है। प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित मनुष्य लोकलज्जा, बदनामी और अपमानके भयसे सदाचारी रह जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संसारमें सभी इस नियमसे चलते हैं, परंतु सच्चे सदाचारी लाखोंमें ही मिलते हैं।

बौद्धमतमें पहले स्त्रियोंका स्थान न था। यहाँतक कि धर्मकार्यमें स्त्रियोंकी सहायता नहीं ली जाती थी। जातकोंसे जाना जाता है कि धार्मिक कार्योंमें स्त्रियाँ इस ढंगसे सहायता देती थीं कि किसीको यह न मालूम हो कि इसमें स्त्रियोंने कुछ दिया है; क्योंकि ऐसा पता लगनेसे ही सहायता अस्वीकृत हो जाती थी। पीछे अपने मुख्य शिष्य आनन्दके कहनेसे बुद्धदेवने स्त्रियोंको भी संघमें लिया, पर साथ ही आनन्दसे कह दिया कि यह धर्म जो बहुत कालतक चलता, अब अल्पकालीन ही होगा। भिक्षुओंके संघ तो थे ही, भिक्षुणियोंके भी संघ बने और इतिहास बतलाता है कि इससे किस प्रकार अनाचार फैला।

चीनमें भिक्षुसम्प्रदाय भारतके ढंगपर नहीं फैला; क्योंकि वहाँ कौटुम्बिक जीवनकी प्रबलता थी। इसलिये स्त्रियोंसे व्यवहारके समय चीनी लोग बड़ी-बूढ़ीसे माताके समान और बराबरवालीसे बहनके सदृश और छोटी स्त्रीसे लड़कीके समान व्यवहार करते हैं। यही भावना प्रत्येक मनुष्यकी होनी चाहिये। हमारे देशमें गुजरातियोंमें बड़ा सुन्दर चलन है और वह सबके लिये अनुकरणीय है। वे पुरुषोंको तो भाई और स्त्रियोंको बहन ( बेन ) कहते हैं। नामोंके साथ भाई और बहन ( व्हेन या बेन ) शब्द जोड़ देते हैं। इससे स्त्रियोंके प्रति हृदयमें आदर और सम्मानकी वृद्धि होकर कुभावना दूर होती है।

नीतिमें कहा है कि दूसरेकी स्त्रीको माता मानो, पर हम कहते हैं कि आप माता, बहन या लड़की कुछ भी न मानें, पर इतना तो अवश्य मानें कि अपनी पत्नी नहीं है, परायी है और इसलिये हमें उसे परायी पत्नीके रूपमें ही देखना चाहिये। बस, स्त्रियोंके विषयमें हमारे अंदर यही भाव आना और इसीको लानेके लिये हम सबको यत्न करना चाहिये। जिस दिन हम इतना कर सकेंगे, उसी दिन हमारे सदाचारका साम्राज्य स्थापित हो जायगा। हमको यह बराबर याद रखना चाहिये कि जिस वस्तुके देखनेसे लोभ बढ़ता है, उसे देखते रहनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है।

अन्तमें भगवान् बुद्धका यह सदुपदेश भी अप्रासंगिक न होगा। बुद्धका कहना है—हम अप्रसन्न हैं; क्योंकि हमारी इच्छाएँ मूर्खतापूर्ण हैं। यदि हम सुखमय जीवन चाहते हैं तो वह अनायास आ जानेवाला नहीं है, वरं सुविचारों, सुशब्दों और सुकर्मोंसे वह बनाया जा सकता है। शिक्षा और साधनासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अपने हृदयको पवित्र कर और नैतिक नियमोंका पालन कर अपने स्वभाव बदल सकते हैं। यदि हम दुःखोंसे छूटना चाहते हैं, तो हमें अपनी इच्छाशक्ति प्रबल करनी चाहिये; क्योंकि मनुष्यके स्वभावमें विचार वा अनुभूतिकी अपेक्षा इच्छा-का स्थान बड़ा है।

संसारमें धर्मके नामपर बहुत मार-काट और युद्ध हुए हैं, पर वास्तवमें वे सब अज्ञानजन्य हैं। जो परलोक और परमेश्वर नहीं मानते, वे भी सच्चरित्रता और नैतिकताको मानते हैं और इसलिये नैतिकताको ही मानवधर्म कहा जाय, तो अनुचित न होगा। मनुष्य और गृहस्थजीवन समाज-शास्त्रके नियमोंपर ही अतिवाहित किया जाता है, जिसका मुख्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार आचरण करनेके लिये स्वतन्त्र है, जबतक वह दूसरेकी स्वतन्त्रतामें बाधा नहीं डालता। इसके अनुसार रुचि-विचित्रताके कारण अनेक धर्म वा पंथ उत्पन्न हुए हैं, जिनपर लोग स्वतन्त्रतापूर्वक चलते हैं।

# हमें अशक्तसे शक्त बनानेवाला हमारा साहित्य

( लेखक--पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा )

आजके वैज्ञानिक कहते हैं—

( क ) निर्बलोंके रहनेके लिये संसारमें कोई स्थान नहीं है।[1]

( ख ) प्रकृति चुन-चुनकर निर्बलोंको समाप्त करती रहती है।[2]

( ग ) योग्यतम प्राणी ही जीवन-संघर्षमें ठहर सकते हैं।[3]

सारांश यह है कि जीवनके लिये शक्ति चाहिये। परंतु यह बात भारतके लिये अभिनव नहीं। भारतीय एक अशिक्षित ग्रामीण भी जानता है कि शक्ति-हीन मनुष्य सदैव मौतके मुँहमें रहता है, वह न जाने कब समाप्त हो जाय।[4] भारतीय ऋषि-मुनि तो आजके लाखों वर्ष पहले इस प्राकृतिक सत्यको समझते थे। उनका अपना एतद्विषयक ऐसा निर्देश-आदेश था—

वीरभोग्या वसुन्धरा।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या ॥[5]

यह भी शास्त्रोक्त सत्य है कि शक्ति विश्वव्यापी तत्त्व है। इसका विश्वके सभी विषयोंके साथ अविभाज्य-सम्बन्ध है। धर्म, संस्कृति, दर्शन और विज्ञान-जैसे महतोमहीयान् विषय भी इसके असंस्पृष्ट नहीं हैं। निम्न-लिखित शास्त्रीय प्रमाण इस तथ्यके प्रतिपादक हैं—

या बिभर्ति जगत्सर्वमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी।
सैव धर्मो हि सुभगे ! नेह कश्चन संशयः ॥[1]

योग्यतावच्छिन्ना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः।[2]
( पातञ्जल सा० )

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ॥[3]

Man is the greatest Radio and is able to connect himself with the higher Force-[4] विज्ञान।

एक अन्यतम बात यह भी कि शक्ति संस्कृत-साहित्यमें परम-तत्त्वके रूपमें निरूपित हुई है। और त्रिदेव तो उसमें भगवतीशक्तिके भिक्षुक-से जान पड़ते हैं—

या मूलप्रकृतिः सूक्ष्मा जगदम्बा सनातनी।
सैव साक्षात् परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च ॥
( दे० भा० )

1. Weak beings have no place in the world.
2. Selection of the nature.
3. Survival of the fittest.

४. एक बार गुड़ने देवताके पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि कीड़े-मकोड़े मुझे खाये जाते हैं। यह सुनकर उन्होंने भी गुड़का चटका भर लिया। यह ग्रामीण ऐतिह्य एतद्विषयक ही तो है।

५. हे मनुष्य ! भाग्यसे पीछा छुड़ाकर शक्तिभर प्रयत्न कर; क्योंकि यह पृथ्वी वीर-भोग्या है एवं इसकी प्रत्येक वस्तु भी।

१. जो ईश्वरेच्छा अलौकिकी शक्ति सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करती है--वही धर्म है।

२. धर्मीकी योग्यता-युक्त शक्ति ही धर्म है। ( पातञ्जल-योग साधना।)

३. प्रकृतिकी शक्तिद्वारा ही जगत्‌के सब कार्य होते हैं। (गीता)

४. मनुष्यमें ऐसी भी सामर्थ्य है कि वह साधनाद्वारा अपना सम्बन्ध भगवान्‌की अलौकिक शक्तिके साथ स्थापित कर सकता है। (अध्यात्मविज्ञान)

५. जो सनातन सूक्ष्म मूल शक्ति है वही परमात्मा है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं माया परमा शक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
तव शक्त्या वयं शक्ताः सृष्टिस्थितिलयादिषु॥[१]
(तन्त्र० सा०)

शक्तिविषयक यह भी लोकायत असंदिग्ध तथ्य है—

रुद्रहीनं विधिहीनं न वदन्ति जनाः किल।
शक्तिहीनं तथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्॥[२]
(दे० भा०)

इस तरह हम देखते हैं हमारा शास्त्रीय साहित्य शक्तिकी झाँकी लेता, उसपर चँवर डुलाता तथा मोर्छल करता प्रतीत होता है, अपितु सृष्टिका सबसे पहला महाग्रन्थ ऋग्वेद शक्ति-प्राण अग्नि शब्दसे ही शुरू होता है।[३] उसका 'वागम्भृणी' सूक्त (१०।१२५) तो शक्ति-महत्त्वका ही अविकल परिचायक है। सम्पूर्ण निगमागम ही शक्ति-महत्त्व-व्याप्य है। विशेषतः देवीभागवतको तो शक्ति-भागवत ही कहना चाहिये; क्योंकि यह विश्व-दुर्लभ शक्तिप्राण महापुराण है।

ऐसी शक्ति-वन परम्परा भारतमें शताब्दियोंतक अविच्छिन्न चलती रही। आज भी काव्योंमें एतत्सम्बन्धी चर्चा पढ़नेको मिलती है। महाकवि भारविकृत किरातार्जुनीय महाकाव्य तो इस दिशामें विलक्षण जान पड़ता है। उसका अर्जुन विप्रवेश-धारी इन्द्रके प्रश्नोंके उत्तरमें गीताके अनार्यजुष्ट, अस्वर्ग्य और अकीर्तिकर शब्दोंको अर्द्धचन्द्र देता दीख पड़ता है। उसके वाक्य प्रशासनोचित शक्ति-प्रदर्शनमें एकान्त सत्य-से प्रतीत होते हैं—

**अनिर्जयेन द्विषतां यस्यामर्षः प्रशाम्यति।**
**पुरुषोक्तिः कथं तस्मिन् ब्रूहि त्वं हि तपोधन॥[४]**
**अजन्मा पुरुषस्तावद् गतासुस्तृणमेव च।**
**यावन्नेषुभिरादत्ते विलुप्तमरिभिर्यशः॥[५]**

ध्वंसेत हृदयं सद्यः पराभूतस्य मे परैः।
यद्यमर्षः प्रतीकारं भुजालम्बं न लम्भयेत्[१]॥

तुलसीके मानसमें लक्ष्मणके शब्द भी न केवल प्रसाद, ओज एवं तेज-प्रधान हैं, प्रत्युत शक्ति-शून्य हृदयको भी शक्त बनानेवाले हैं। धनुष-भंगके प्रसंगमें वे क्षात्र-धर्मके कितने ऊँचे मंचसे बोलते हैं—

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहौं सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौं राउर अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥
तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ पुनि न धरौं धनु हाथ॥[२]

ऐसे शक्ति-प्रधान साहित्यिक वातावरणका ही यह परम्परागत पुण्य-प्रताप है कि आज भी हम आर्योचित सशक्त व्यक्तित्व, सबल नीति और सूक्ष्म प्रशासनके पद्यखण्डोंको भूल नहीं पाये—

**स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः।[३]**
**आत्मोदयः परज्यानिर्नीतिरिति।[४]**
**शस्त्रैः संरक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते।[५]**

हमारे साहित्यकी एक लोकोत्तर बात यह भी है। मुक्ति-प्रधान ब्राह्मण-वर्णके व्यक्तित्व भी क्षात्रबल-विनिन्दक

---

१. त्रिदेव भी भगवती शक्तिकी कृपासे ही जगत्‌का सर्जन-विसर्जन और पालन करते हैं।

२. साधारणतः त्रिदेव-द्रोही समाजमें उतना अधम नहीं समझा जाता, जितना अशक्त—बलहीन मनुष्य।

३. अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्यदेवमृत्विजम्।

४. शत्रुओंका नाश किये बिना ही जिसका क्रोध शान्त हो जाता है उसके लिये यह कैसे कहा जा सकता है कि वह वस्तुतः पुरुष है।

५. मनुष्य जबतक शत्रुद्वारा अपने अपहृत यशका शस्त्रोंद्वारा प्रत्याहरण नहीं करता, तबतक तो वह संसारमें अनुत्पन्न, मृतप्राय एवं तृणसमान ही है।

१. शत्रुद्वारा पराजित मुझ-जैसेकी तो हृद्गति अवश्य ही बंद हो जाती, यदि हे ब्राह्मण! प्रतिकार-प्राण क्रोध मेरी सहायता न करता।

२. एक बार युद्धकालमें वर्षासे तंग आकर नेपोलियनने सेनापतिसे कहा था—तुम युद्धके लिये प्रयाण करो, वर्षाको बंद होना पड़ेगा, सूर्यको निकलना पड़ेगा एवं कीचड़को सूखना होगा। एक बार उसने एक संधिसमितिमें क्रोधावेशमें आकर खड़े होते हुए हाथमें एक चाँदीका प्याला लेकर तोड़ दिया। बस, फिर क्या था सब सहमत हो गये। लक्ष्मण तो शेषावतार थे उनके लिये तो असम्भव कुछ था ही नहीं, अतएव यह गर्वोक्ति नहीं स्वभावोक्ति है।

३. मनुकी संतान दूसरेपर निर्भर नहीं रहती, वह अपनी रक्षा आप करती है।

४. शत्रुकी हानि और अपना लाभ ही राजनीति है।

५. शस्त्रास्त्रद्वारा सुरक्षित देशमें ही शास्त्र-चर्चा प्रवर्तित होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति और तेज एवं बलके प्रतीक हैं। महर्षि वशिष्ठसे पराजित होकर विश्वामित्र कहते हैं—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।

यह भी उल्लेखनीय ऐतिहासिक तथ्य है कि आजसे कुछ ही समय पहले भी हमारे यहाँ शौर्य और क्षमताका वायुमण्डल था, उसीके तो ये अवशिष्ट चिह्न हैं—

१—रण-गङ्गा
२—धारातीर्थ
३—शरणागतधर्म[1]

इतने सप्रमाण विवेचनसे यह सिद्ध हो जाता है कि हमारे पास अब भी शक्ति-प्राण साहित्य है। कमी है केवल सार्वभौम एवं सार्वजनीन योग्यतम नेतृत्वकी। परंतु ऐसा वाञ्छित नेतृत्व भी हमारे साहित्यमें विद्यमान है। वह है भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका लोकोत्तर व्यक्तित्व। देखिये वे कैसे और कितने बल, विश्वास और अधिकारके साथ कर्तव्य-विमूढ अर्जुनसे कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्जुन! तू सब धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, सोच मत कर।[2]

साम्राज्य हस्तगत होनेके बाद भगवान् वासुदेवके सफल एवं अनुभूत नेतृत्वका अभिनन्दन करते हुए हर्षोत्फुल्ल धर्मराजने भी एक बार इस प्रकार कहा था—

या विभूतिरनुभावसम्पदां भूयसी तव यदायतायतिः।
एतदूढगुरुभारभारतं वर्षमद्य मम वर्तते वशे॥

हे गोवर्द्धनधारी! आपकी कृपा-विभूतिका ही यह चमत्कार है कि आज सम्पूर्ण भारतवर्ष मेरे अधिकारमें है। अब हमारा कर्तव्य है कि हम भगवान्के तथाकथित नेतृत्वोचित व्यक्तित्वको ही इष्ट मानकर अपने जीवनको प्रकर्षोन्मुख बनावें तथा भगवान्के आत्म-विश्वासपरक इन वचनोंको भी न भुलावें—

भूतानामस्मि चेतना।
उद्धवश्च भविष्यताम्।
यमः संयमतामहम्।
दण्डो दमयतामस्मि॥
नीतिरस्मि जिगीषताम्[3]।

अन्तमें इतना-सा निवेदन पर्याप्त होगा कि हम भगवती शक्तिकी शास्त्रोचित उपासनामें संलग्न रहें एवं शक्तिको ही बुद्धि-बल उपलक्षणसे ज्ञान-बल, त्राण-बल, धन-बल और दाम-बल समझें एवं विश्व-बल भी। तथा ब्रह्मतेज और क्षात्र-तेज-समन्वित समाज-निर्माणका प्रयत्न करें—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेयं देवा सहाग्निना॥[4] (वेद)

हमें पूर्ण आशा है, आज भी हमारा यह शक्ति-व्याप्य साहित्य हमें अशक्तसे शक्त बना सकता है यदि हम योग्य-विधिसे इसका मनन-निदिध्यासन करते रहें।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥[5] दु० स०

---

१. एक क्षत्रियके लिये युद्ध गङ्गा-स्नान है। तलवारकी धार तीर्थ है तथा शरणागतकी रक्षा करना उसका परम धर्म है।

२. पूर्णावतार योगेश्वर एवं महापुरुष श्रीकृष्णके लिये तो अशक्य कुछ भी नहीं है।

३—उद्धव, चेतना, यम, दण्ड एवं विजय-नीति मेरा ही रूप है।

४—शास्त्रोक्त पुण्य देश वही है जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय विरोध न रखते हुए एक ही उद्देश्यके लिये समानतया प्रयत्न करें।

५—हे जगदम्बा! तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्वकी बीजरूपा परा माया हो। देवि! तुमने इस जगत्को भलीभाँति मोहित कर रक्खा है। अतः तुम्हारी प्रसन्नतासे ही इस पृथ्वीपर जीवको मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भयंकर हिंसा-उद्योग !

## ( बड़े-बड़े वैज्ञानिक कसाईखानोंकी योजना )

एक बार महामना मालवीयजी गोरखपुर पधारे थे। वे जब गोरखपुरमें नदीके उस पार मोटरसे उतरे तब उनका चेहरा बहुत उदास था। पूछनेपर पता लगा कि 'रास्तेमें मोटरसे एक गिलहरी मर गयी, इसका उन्हें बड़ा ही दुःख है और वे प्रायश्चित्त करना चाहते हैं।' महात्मा गाँधीजीकी अहिंसाप्रियता प्रसिद्ध है।

भारतके प्रायः सभी धर्माचार्यों, योगियों, अध्यात्मवादियोंने अहिंसाका प्रतिपादन किया है। अष्टाङ्ग-योगशास्त्रमें तो सबसे पहले साधन यम-नियममें सबसे प्रथम 'अहिंसा'का नाम आया है। ऐसे अहिंसक महापुरुषोंके परम्परागत अहिंसाप्रधान देशमें आज जो घृणित हिंसाका असीम प्रचार हो रहा है, वह सर्वथा अकल्याणकारी तो है ही, देशके लिये पतनका लक्षण, कलङ्करूप और महान् दुःखका हेतु है।

कहाँ तो यह आशा की जा रही थी कि अहिंसाप्रिय महात्माजीके अहिंसात्मक प्रयत्नोंसे प्राप्त अशोक-चक्ररूप अहिंसाध्वजी स्वराज्यमें गोवध तो सर्वथा बंद हो ही जायगा ( ऐसी आशा भी दिलायी गयी थी ), अन्यान्य प्राणियोंकी हत्या करनेवाले कसाईखाने भी बंद हो जायँगे और कहाँ आज गोवधकी संख्यामें वृद्धिके साथ ही ये घोर हिंसा-उद्योगकी घृणित योजनाएँ। कैसा दुर्दैव है।

बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है कि आज भारतकी विकास-योजनाओंमें, शिक्षाके अभ्यासक्रममें, कृषिक्षेत्रमें तथा आहार-समस्यामें—सर्वत्र प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपमें हिंसाको प्रोत्साहन दिया जा रहा है। मछली-उद्योग, मुर्गी-उद्योग, अंडोंका प्रचार, मांसाहारसे लाभका प्रचार इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजनामें मुर्गीपर ३ करोड़, मछलीपर १० करोड़ तथा सूअरपर २६ लाख रुपये खर्च करनेकी योजना थी। पर तीसरी योजनामें मुर्गीपर १० करोड़, मछलीपर ३० करोड़ तथा सूअरपर सवा करोड़ रुपया खर्च किया जायगा!! ( अहिंसा १ जुलाई )।

मांस-बाजार-रिपोर्ट और राष्ट्रसंघकी 'फुड एंड एग्रीकल्चर ऑरगेनिजेशन' और 'वर्ल्ड हेल्थ ऑरगेनिजेशन' की सिफारिशोंके अनुसार भारत-सरकार मांसका उत्पादन बढ़ानेके लिये जोरोंसे प्रयत्नशील है। लाला हरदेवसहायजी लिखते हैं कि कृषि-जाँच-परिषद् तथा गोसंवर्धन-परिषद्के सदस्योंकी जानकारीके लिये एक उच्च सरकारी अधिकारीने जो नोट तैयार किया है, उसके अनुसार ( अबसे लेकर ) सन् १९८१ तक १९,२०,६२,५०० मन गोमांस और १५,४६,५०,००० मन मांसका उत्पादन बढ़ानेकी तजवीज है। ( पता नहीं यह कहाँतक ठीक है, पर यदि सत्य है तो अत्यन्त भयानक तथा घोर पतनस्वरूप है! )

कुछ समय पूर्व एक सरकारी रिपोर्टमें मांसविरोधी संस्कारोंको मिटाकर मांसाहारके प्रति लोगोंकी रुचि बढ़ानेकी चेष्टा करनेकी बात कही गयी थी। इसी प्रकारकी कुचेष्टाओंका फल है—निरामिषभोजी घरोंमें भी अंडोंका खुला आहार और कहीं-कहीं मुर्गी-बकरेके मांसका भी प्रचार। आज गोमांस, गायोंके अन्यान्य अङ्ग, चमड़े आदिका निर्यात बढ़ाया जा रहा है। बंदरोंका निर्यात हो ही रहा है। पिछले दिनों समाचार था कि मेढकोंका निर्यात भी शुरू हो गया है। अर्थशास्त्रियोंके द्वारा 'विदेशी मुद्राकी आवश्यकता' ही इसका कारण बताया जाता है। परंतु इसके साथ ही एक प्रधान छिपा कारण है, जो अब प्रत्यक्ष हो रहा है, और वह है—'हिंसाके प्रति प्रीति तथा हिंसाके प्रचार-प्रसारकी उत्कट आकांक्षा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उस दिन एक सरकारी पत्र ( कृषि-समाचार ) में छपा है कि·····विशेषज्ञका कहना है कि ताजे पकड़े हुए मेढकोंको चूनेके साथ मिला करके जो खाद तैयार की जायगी, वह बहुत बढ़िया किस्मकी खाद होगी । एक खेतकी पैदावार बढ़ानेके लिये १०० मेढक पर्याप्त हैं ।' विदेशोंमें मेढकोंका निर्यात तो हो ही रहा था, अब खादमें जीवित मेढकोंका प्रयोग होगा । बेचारे मेढकोंकी मौत आयी !

इस हिंसा और मांस-प्रचारकी योजनामें अब हिंसाके चार बड़े-बड़े कारखाने ( कसाईखाने ) खोलनेकी योजना बनी है, जिसमें मांस तथा पशुओंके अङ्गोंका लाभप्रद और अर्थ-साधक उत्पादन होगा । इन कसाईखानोंके लिये चार स्थान सोचे गये हैं—मद्रास, दिल्ली, बंबई और कलकत्ता। प्रत्येक कसाईखानेमें शायद दो-दो करोड़ रुपयेकी पूँजी लगायी जायगी । मालूम हुआ है कि मद्रास सरकारने तो अभी इस योजनाको स्वीकार नहीं किया है । दिल्ली म्युनिसिपल कार्पोरेशनने योजना स्वीकार कर ली थी किंतु गुड़गाँवके समीप, जहाँकी जमीन इस कार्यके लिये लेनेकी बात थी, वहाँके हजारों गोभक्त किसानोंके द्वारा सत्याग्रहकी धमकी दी जानेपर एक बार यह कार्य रुक गया है । पर बंबई और कलकत्तेमें अभी नहीं रुक पाया है । बंबईसे १९ मील दूर देवनार नामक स्थानमें १२६ एकड़ जमीनपर इस यान्त्रिक वधालय—कसाई-खानेके निर्माणकी बात है । इसकी योजनाके अनुसार—

( क ) इस कसाईखानेको भारत-सरकार, महाराष्ट्र-सरकार और बंबईकी म्युनिसिपलिटी चलायेगी ।

( ख ) इसके लिये लगभग २०००००० ( दो करोड़ ) रुपयोंका व्यय करदाताओंकी गाढ़ी कमाईसे मिली रकममेंसे किया जायगा ।

( ग ) इस कसाईखानेमें प्रतिदिन ६००० भेड़-बकरे, ३०० गाय-बैल-भैंस और १०० सूअर केवल छः घंटेमें यन्त्रोंके द्वारा काटे जा सकें, ऐसी व्यवस्था की जायगी ।

( घ ) कसाईखानेके साथ ही गौ, बैल, भैंसे तथा अन्यान्य कत्ल किये हुए प्राणियोंके अङ्ग-उपाङ्ग—जैसे जीभ, आँत, खून, हड्डी, चरबी, मांस, खुर आदिके बड़े-बड़े उद्योग विदेशी उद्योगपतियोंके द्वारा चलाये जायँगे ।

बताया जाता है कि इसके लिये लगभग ६४ एकड़ जमीनपर काटे जानेवाले पशुओंका बाजार तथा विश्रामालय रहेगा । इसके बाजारमें एक साथ २४००० भेड़ें-बकरे और १२०० भैंसे-बैल रह सकेंगे । इसी प्रकार विश्रामालयमें भी इतने ही पशु रह सकेंगे ।

इसके निर्माण तथा अन्यान्य सुविधाओंके लिये निम्नलिखित रूपसे खर्चका अनुमान किया गया है—पशु-बाजारके लिये ४००००००) ( चालीस लाख ), कसाईखानेके लिये २५०००००) ( पचीस लाख ) और विदेशी मशीन आदि सामानके तथा निर्माण आदिके लिये १,४६०००००) (एक करोड़ छियालीस लाख रुपये) लगाये जायँगे । इसके चलानेमें वार्षिक खर्च २२५१०००) ( बाईस लाख इक्यावन हजार ) रुपये होंगे और वार्षिक आमदनी होगी ३४९४१००) ( चौंतीस लाख चौरानबे हजार एक सौ रुपये ) । इस हिसाबसे वार्षिक १२४११००) ( बारह लाख इकतालीस हजार एक सौ ) रुपयेका मुनाफा रहेगा !!

मि० वर्नबर्गकी रिपोर्टमें यह सिफारिश की गयी है कि कसाईखानेमें कत्ल किये गये पशुओंके चमड़े, हड्डी, मांस आदि अवशेषोंको मूल्य चुकाकर खरीद लिया जाय और उनसे अन्यान्य उद्योग चलाये जायँ तो विशेष लाभ हो सकता है ।

यह भी विदित हुआ है कि इस कसाईखानेके साथ लगभग ६० एकड़ जमीन कत्ल किये गये पशुओंके जीभ, आँत, लीवर, किडनी, खून, चरबी, हड्डी, चमड़ा, खुर और सींग आदिके उद्योगके लिये रक्खी गयी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ विदेशी उद्योगपतियोंके सहयोग तथा पूँजीसे अलग-अलग कारखाने खोले जायँगे ।

इस प्रकार जब विदेशी उद्योगपतियोंके सहयोग और उनकी पूँजीसे पशुओंके अङ्गोंके कारखाने चलेंगे, तब यह भी निर्विवाद है कि इन कारखानोंके लिये कच्चा माल देनेकी जिम्मेदारी स्वाभाविक ही कसाईखानेपर रहेगी और ज्यों-ज्यों यह माँग बढ़ेगी, त्यों-त्यों अधिक-से-अधिक पशुओंका वध करना भी आवश्यक होगा । इसीलिये शायद अभी एक पाली ( शिफ्ट ) के छः घंटेमें उपर्युक्त संख्यामें पशुवधकी योजना बनायी गयी है । फिर, आवश्यकतानुसार एक पाली ( शिफ्ट ) के बदले दो ( शिफ्ट ) भी चलायी जा सकती है ।

भारतवर्षमें इस प्रकार सरकारी योजनापूर्वक भयानक घोर हिंसामय उद्योग ( Industry ) चलाये जायँगे । यह कल्पना भी किसीने कभी नहीं की होगी; पर दुर्भाग्यवश आज वही चीज आँखोंके सामने आ गयी है !

बंबईके प्रस्तावित इस कसाईखानेके विरुद्ध बंबईकी प्रसिद्ध 'जीवदया-मण्डली' के द्वारा 'देवनार कसाईखाना निषेधक समिति' बन चुकी है और उसके द्वारा सराहनीय कार्य हो रहा है ।

कलकत्तेके बहुत समीप डानकुनी नामक स्थानमें ऐसे ही यान्त्रिक बृहद् कसाईखानेके निर्माणकी योजना है । उसमें भी पर्याप्त पूँजी लगाकर वैसे ही घृणित वधकाण्डरूप उद्योग चलानेकी योजना है । यहाँ भी मारे हुए पशुओंके खून, ग्लैण्ड, आँत आदि अङ्गोंसे एड्रेलिन, इन्सुलिन, पिटिट्रिन, थॉरक्सिन, हारमोन्स आदि दवाइयाँ बनानेकी योजना है ।

संतोषकी बात है कि यहाँके आसपासके अनेक गाँवोंकी प्रायः सभी जनता इस पापमयी योजनाके विरुद्ध है । कलकत्तेमें इस कसाईखानेके निषेधके लिये एक समिति भी बन चुकी है जिसके द्वारा उत्साहपूर्वक कसाईखानेके विरोधमें कार्य हो रहा है । यहाँकी भूमिके सम्बन्धमें हाइकोर्टमें केस भी किया गया है ।

हमारी उन-उन स्थानोंकी—जहाँ ये हिंसामय कसाई उद्योग स्थापित होनेकी बात है, जनतासे, बंबई तथा कलकत्तेके प्रभावशाली धनी-मानियोंसे, नेताओंसे तथा समस्त भारतवासियोंसे यह विनीत प्रार्थना है कि वे इस प्रकारके दुष्कार्योंका घोर विरोध करें, तन-मन-धनसे निषेधक समितियोंकी सहायता करें और ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दें जिससे ऐसी हिंसामयी योजनाओंका सफल होना असम्भव हो जाय ।

अंग्रेजी शासनके समय एक बार मध्यप्रदेशके रतौना नामक स्थानमें तथा पंजाबमें लाहौरके समीप बड़े कसाईखाने खोलनेकी योजनाएँ बनायी गयी थीं, परंतु जनताके घोर विरोधके कारण वे योजनाएँ असफल हो गयी थीं। उस समय हिंसक ब्रिटिश सत्ता थी, पर आज तो अहिंसाके प्रतीक अशोकचक्रका ध्वज उड़ानेवाली हमारी अहिंसाके सिद्धान्तको माननेवाली अपनी सरकार है। अतः हमें अधिक आशावान् होकर कार्य करना चाहिये। भगवान्की कृपा और निर्दोष किंतु बलवान् प्रयत्न होनेपर सफलता प्राप्त होना कोई बड़ी बात नहीं है ।*

---

* इसमें अधिकांश मसाला बम्बईसे प्रकाशित 'जीवदया' नामक गुजराती पत्रसे लिया गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# साधनाकी सिद्धि

( लेखक—श्रीविश्वेश्वरनारायणजी )

बहुत बार ऐसा प्रश्न उठ खड़ा होता है अथवा अनेक व्यक्ति पूछ बैठते हैं कि मैं कितने वर्षोंसे साधनमें लगा हूँ; परंतु मुझे अभीतक कुछ भी सफलता न मिल सकी। तब क्या यह सही है कि साधनाकी ओर जीव लगा रहे और उसे कुछ आध्यात्मिक लाभ सुलभ न हो ? इस तरहका प्रश्न तो सचमुच साधनमार्गमें जुटे हुए विशेष व्यक्तियोंके मनमें एक प्रकार कौतूहल पैदा कर देता है।

वस्तुतः साधन-सम्बन्धी प्रक्रियाकी ओर ध्यान दिया जाय तो इसके रहस्यका भेद खुल जाय । अध्यात्म-सुख-लाभ अथवा इस जीवनको सार्थक बनानेके लिये हमारे शास्त्रकारोंने विभिन्न उपाय बताये हैं। किस प्रकार हम परम सुखके अधिकारी बन सकेंगे । किस प्रकार हमारी मनःस्थिति साधनाकी पृष्ठभूमितक पहुँचनेमें समर्थ हो सकेगी। यदि कुछ गहराईसे इस सम्बन्धमें सोचें तो पता लगेगा कि साधनकी समग्र प्रक्रिया भगवान्‌की मधुर झाँकी कराकर उसी प्रेमालोकके आनन्दमें हमको पहुँचा देनेमें समर्थ है। इसको हम भगवत्प्राप्ति, मोक्ष, निर्वाण कहें, अथवा अपनी भाषामें अपनी रुचिके अनुसार जो भी नवीन-नवीन संज्ञा देते रहें। साधनकी मूलतः सिद्धि भी यही है। इसी सिद्धिके लिये शास्त्रकार अनेकानेक उपाय बताते हैं। उन उपायोंको यथार्थतः कार्यरूपमें न लानेसे ही हमें सिद्धि नहीं प्राप्त होती, अध्यात्म-लाभ नहीं होता। भगवान्‌को बहुत निकट-से-निकट देखनेके लिये महात्मा एक जिज्ञासुसे कहते हैं—

'जीवको उस मधुर आनन्दकी प्राप्तिका उपाय ही नहीं सूझता। यदि थोड़े कालके लिये जीव भी उस उपायका अवलम्बन करके देख ले तो उसे उसका मिठास मालूम हो जायगा ।'

तब जिज्ञासु प्रश्न करता है—'वह कौन-सा उपाय है भगवन् ?'

*महात्माजी कहते हैं*—'वह उपाय तो बहुत ही सहज है; परंतु इस सहज उपायमें लगन तीव्र होनी चाहिये। सर्वप्रथम जीवको अपना मन, जिसका है, उसे सौंप देना चाहिये।'

*जिज्ञासु*—( आश्चर्ययुक्त हो ) 'यह मन किसका है ?'

*इसपर महात्मा बोले*—'यह मन भगवान्‌का है। जिसकी सम्पत्ति हमें धरोहरस्वरूप मिली है, उसे सौंप देनेमें तो अति हर्ष होना चाहिये।'

*जिज्ञासु*—'जब जीव अपना मन भगवान्‌को सौंप देता है—तब बदलेमें जीवको मिलता क्या है ?'

*महात्मा*—'उठते-बैठते, सोते-जागते अथवा हर क्षण अपने प्यारे भगवान्‌का ही सतत स्मरण—याद।' इसी उपाययोगको भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

**तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।**
**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥**

( गीता ८ । ७ )

अर्थात् 'इसलिये ( अर्जुन ! ) तुम सब समय निरन्तर मेरा स्मरण करो और युद्ध करो । यों मुझमें मन-बुद्धि समर्पण किये हुए तुम निस्संदेह मुझको ही प्राप्त करोगे।'

जो निरन्तर भगवच्चिन्तन-स्मरणमें लगे रहते हैं, वे भले ही उदर-निर्वाह हेतु तथा लोकसेवा-हित कार्य-रत पाये जाते हों, परंतु उनका मन तो नित्य-निरन्तर अपने परम प्यारे भगवान्‌के चरणकमलोंमें ही बँधा रहता है।

*जिज्ञासु*—'यह कैसे हो सकता है कि शरीरसे संसार-के अनेकानेक कार्य भी हों और मन भगवान्‌में ही रमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे । एक ही साथ दो कार्योंका होना तर्क तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भी अनहोनी बात मालूम पड़ रही है । तब भला यह कैसे सम्भव है कि शरीरसे सांसारिक कार्य हों और मनमें भगवान्‌की चिन्तन-धारा ही प्रवाहित होती रहे ।'

जिज्ञासुके इस प्रश्नपर महात्माजी कुछ क्षण मौन रहे । फिर अपने गम्भीर चिन्तनके बाद बोले—

'यह सब सम्भव है सिर्फ अभ्याससे । जिस चीजमें हमारा विशेष आकर्षण होगा, प्रेम होगा, उसीका चिन्तन अपने आप प्रति-क्षण होगा । जब हम कोई सांसारिक कार्य करते हैं तब क्या तन और मन उसीमें बँधे रहते हैं ? बीच-बीचमें हम मनको कुछ सोचनेका अवसर अवश्य देते हैं ।'

*जिज्ञासु*—'परंतु किसी भी कार्यमें तन्मय हुए बिना वह कार्य जल्दी सिद्ध भी नहीं होता । यदि मुझे वाणी-की स्वतन्त्रता दें तो मैं यह अवश्य कहूँगा कि बिना किसी कार्यमें तदाकार हुए उस कार्यका सफल होना बिल्कुल ही असम्भव है ।'

*महात्माजी*—'परंतु यह क्यों भूल जाते हो कि भगवच्चिन्तन किसी कार्यमें बाधक न होकर सहायक ही होता है । यह तो सिर्फ मनको एक आदत डालनेका दृढ़ संकल्प कर लेना है कि हर अवस्था तथा हर कार्यके आगे-पीछे भगवन्नाम और स्वरूपका चिन्तन अवश्य करना है । यदि इस तरहका अभ्यास निरन्तर बढ़ता जाय तो सम्भव है, कुछ ही कालमें मन अपना आश्रय अनन्त-सुखके भण्डार भगवान्‌के चरणकमलोंमें स्थिर पायेगा ।'

*जिज्ञासु*—'इसका कोई प्रमाण भी है ?'

*महात्माजी*—'अवश्य । प्रमाण तो अनेकों हैं । महात्मा गांधीका एक लेख छपा था 'हरिजन' नामकी पत्रिकामें । विषय था—अनवरत नाम-साधना । कैसे हम हर हालतमें भगवन्नामका स्मरण रख सकते हैं, उस लेख-को पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है । गांधीजी लिखते हैं—'... यदि भाषण देता हूँ, अनेकानेक व्यक्तियोंसे बातें करता हूँ, चर्खा चलाता हूँ, अथवा कोई भी कार्य करता हूँ, मेरे अंदर नित्य ही हरक्षण राम-नामकी ध्वनि निकलती रहती है ।' उन्होंने उसी लेखमें लिखा था—'आप ... सकते हैं ऐसा करनेमें समर्थ कैसे हैं ?' उत्तरमें लिखा हैं—'सिर्फ अभ्याससे ही इस अनवरत नाम-स्मरणमें समर्थ हो रहा हूँ । आप सब भी ऐसा कर सकते हैं, आवश्यकता है—पूर्ण संकल्पके साथ आदत डालनेकी ...'

अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अनन्यभक्ति का यही साधन भी है । जिसमें न किसी खास समय निकालनेकी आवश्यकता है और न किसी भी आडम्बर की । आवश्यकता है सिर्फ हर हालतमें नाम रटनेकी आदत डालनेकी । प्रारम्भमें भले ही कठिनाइयाँ प्रतीत हों, परंतु बादमें इसमें एक असीम आनन्दकी अनुभूति होती है जो वाणीका विषय नहीं कि उसे व्यक्त किया जा सके । भक्तिकी चरम साधनाकी सिद्धि भी इसीसे होती है । हम कैसे अपने प्यारे प्रभुको हर अवस्थामें स्मरण कर सकते हैं, श्रीआनन्दघनने बड़े ही सुन्दर ढंगसे इसे व्यक्त किया है । वे लिखते हैं—

**उदर भरण के कारणे गउवाँ बन में जाय।**
**चारौ चरे चहुँ दिसि फिरै वाकी सुरत बछरुआ माँय।**
**सात पाँच साहेलियाँ रे हिल-मिल पाणीड़े जाय।**
**ताली लिये खल-खल हँसे, वाकी सुरत गगरुआ माँय।**
**नटवा नाचे चौकमें रे, लोक करे लख शोर।**
**बाँस ग्रही बरते चढ़े, वाको चित न चलै कहुँ ठोर।**
**जुवारी-मन जूआ बसे रे, कामीके मन काम।**
**आनन्दघन प्रभु यूँ कहें, तू ले भगवतको नाम।**

पेट भरनेके लिये गाय वनमें जाती है और चारा चरती चारों दिशाओंमें फिरती है पर उसकी मनकी वृत्ति बछड़ेमें लगी रहती है । सात-पाँच सखियाँ मिलकर जल भरने जाती हैं और ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घड़ोंको सिरपर लिये ताली देती खिलखिलाकर हँसती हैं, बातें करती हैं। पर उनकी मनकी वृत्ति घड़ेमें रहती है। नट चौकमें नाचता है, लोग शोर मचाते हैं, वह बाँस पकड़कर उसपर चढ़ जाता है पर उसका चित्त कहीं दूसरी ओर नहीं जाता, उसीमें लगा रहता है। जैसे जुआरीके मनमें जूआ बसता है और कामीके मनमें काम, वैसे ही आनन्दघन प्रभु कहते हैं कि तू मन लगाकर भगवान्‌का नाम ले।

जिस प्रकार लोभी व्यक्तिको दिन-रात, हर क्षण पैसेकी स्मृति बनी रहती है तथा कामसे जर्जरित व्यक्ति प्रत्येक क्षण स्त्रीका ही स्मरण करता है। इसीके साथ वे लोभी और कामी अपने नियमित कार्योंका सम्पादन भी करते ही हैं, उसी प्रकार हर कार्यके पीछे भगवन्नाम-रूपका चिन्तन करता रहे तो वह अनवरत साधना उच्च कोटिकी ही हो जायगी। इसीलिये तो महात्मा तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसमें प्रार्थना करते हैं—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

इस अनन्य साधनामें, जिसमें न किसी खास समयकी आवश्यकता है और न बाहरी किसी जप-तप-व्रतकी, यदि दृढ़तापूर्वक तैलधारावत् अभ्यास किया जाय तो साधकके हृदयदेशमें भगवान्‌का मधुर स्थान होगा—मिलन होगा। मधुर भावनाकी सिद्धि होगी। भक्त हर क्षण मानससेवा अर्थात् अष्टयाम सेवामें लग जायगा। उसे फिर बाहरी पूजा-अर्चनाकी आवश्यकता ही न रह जायगी। सम्पूर्ण साधनकी सिद्धि भी इसीमें है।

---

# गीतावलीमें भक्ति-तत्त्व

( लेखक—श्रीपरमलालजी गुप्त )

तुलसीका युग पराधीनताका युग था। हिंदूजातिपर प्रहार-पर-प्रहार हो रहे थे। निराशा बढ़ती जा रही थी। ऐसे समय लोगोंकी आँखें स्वभावतः ईश्वर ( पराशक्ति ) की ओर जाती हैं। अतः बाह्य जीवनमें कोई अवलम्ब न पाकर वे किसी अलौकिक शक्तिका आश्रय ढूँढ़ रहे थे। पहले कबीर आदि संतोंने भगवान्‌का निर्गुण, अव्यक्त 'अगोचर रूप' सामने रक्खा। परंतु यह रूप लोगोंकी दृष्टिसे ओझल होनेके कारण वास्तविक उपचार न कर सका। उल्टे अटपटी और रहस्यात्मक उक्तियोंसे जनता गुमराह होने लगी। निर्गुणिये और कर्मकाण्डी अपना महत्व प्रतिपादित करनेके लिये विविध उक्तियोंद्वारा साधारण जनताको भ्रममें डाल रहे थे। कबीर-जैसे भक्तोंने जो रास्ता बताया, वह साधारण जनताकी समझसे बाहर था। सूर और तुलसीदासने इस अभावकी पूर्ति की और लोगोंके सामने भक्तिका सरल एवं सीधा मार्ग रक्खा। उन्होंने अव्यक्तके स्थानपर व्यक्तकी साधना एवं प्रेमका प्रतिपादन किया। आचार्य शुक्लका कथन है—'इस जगत्‌से सर्वथा असम्बद्ध किसी अव्यक्त सत्तासे प्रेम करना मनोविज्ञानके अनुसार सर्वथा असम्भव है।' सूर एवं तुलसीने इस तथ्यको हृदयंगम करके उस अलौकिक एवं अव्यक्त शक्तिको लोकके बीच अवतरित किया। यही रूप प्रेमके लिये सहज हो सकता था। निर्गुणिये संतोंने बाह्य जगत्‌में उसकी सत्ताको सर्वथा अस्वीकार कर दिया था। वे उसकी खोज हृदयमें ही करते थे। कबीरने कहा था—

मोकों कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
न मैं मंदिर न मैं मस्जिद न काबा कैलासमें॥

इसके विरुद्ध गोस्वामीजीने उसकी सत्ता बाहर मानी—

प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी आधारपर उन्होंने अगोचर एवं अव्यक्त ईश्वरको लोकके बीच प्रतिष्ठित कर दिया जो भक्तोंका सहज आलम्बन बन सकता था, जो सदा उनके साथ प्रेम-लीलाएँ कर सकता था, उनका दुःख निवारण करनेमें सहायता कर सकता था। दूसरे शब्दोंमें उनका स्वामी, सखा, पति, पुत्र आदि सम्बन्धद्वारा उनके सबसे निकट आ सकता था। आलम्बनके इस रूपसे भक्तिकी एक नयी लहर दौड़ गयी, इसने समस्त धार्मिक अंधकारके बीच एक विद्युत्-सी चमक पैदा कर दी। आशाके सौरभसे जीवन-वन सुरभित हो उठा।

## भक्तिके अङ्ग एवं रागानुगा भक्ति

नारद एवं शाण्डिल्यके भक्तिसूत्रोंमें भक्तिकी दो अवस्थाएँ बतलायी गयी हैं——१—साधन अथवा गौणी भक्ति और २—साध्य अथवा परा भक्ति। प्रथम अवस्थामें भक्ति एक साधनके रूपमें गृहीत होती है और दूसरी अवस्थामें वह स्वयं साध्य होती है। इस भक्तिके दो भेद किये गये हैं——१ वैधी भक्ति और २ रागानुगा भक्ति। वैधी भक्तिमें भक्तिके विधि-विधानोंके बन्धन होते हैं। भागवतमें वैधी या नवधा भक्तिका इस प्रकार विवेचन हुआ है——

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।**
**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥**

इसमें नाम-माहात्म्य, रूप-माहात्म्य, सेवा-विधि और मानसिक भावकी प्रधानता होती है। रागानुगा भक्तिमें शुद्ध प्रेमका ही महत्त्व है।

गोस्वामीजीकी भक्ति-पद्धतिकी विवेचना करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि सच्चा भक्त भक्ति-शास्त्रकी विधाओंसे नियन्त्रित नहीं होता, जिस प्रकार सच्चा व्यक्ति लक्षण-ग्रन्थोंकी सीमाओंमें आबद्ध नहीं रहता। गोस्वामीजी एक साधकके रूपमें हमारे समक्ष आते हैं, कबीर आदि संतोंकी भाँति ब्रह्मानुभूतिमें सिद्ध भक्तोंकी भाँति नहीं। वे अपनेको मायापाशसे आबद्ध, अज्ञानान्धकारमें भटकनेवाला एक क्षुद्र जीव मानते हैं। आत्मदोषोंकी ऐसी स्पष्ट स्वीकारोक्ति सच्चे साधकोंमें ही हो सकती है। उनकी भक्ति शास्त्रकी रीति-नीतियोंसे अनुशासित नहीं हुई। उसमें उनका हृदय बोल रहा है। भक्तिमें प्रेम ही मुख्य है, शेष सब बाह्य विधि-विधान भक्तको या तो प्रेमकी ओर उन्मुख करनेके लिये हैं या प्रेमकी अभिव्यक्तिमात्र। यद्यपि गोस्वामीजीने वैधी भक्तिके अङ्गों——आरती-नाम-जप आदिका भी उल्लेख किया है तथापि प्रेमको प्रधानता देनेके कारण उनकी भक्ति रागानुगा भक्ति ही कही जायगी। गीतावलीकी रचनाका उद्देश्य इसी रागात्मिका भक्तिका पोषण करना ही है। उसके पदोंमें उनके भीतर छिपा हुआ भक्त अपनी भावधारा उँड़ेल रहा है। प्रेमकी रस-धारामें मग्न भक्त रामकी महिमाका बखान कर रहा है। अतः यह कहना कि तुलसीकी भक्ति वैधी भक्तिकी कोटिमें आती है और सूरकी रागानुगा भक्तिकी कोटिमें, आंशिक सत्यता रखता है। कम-से-कम 'गीतावली'को देखकर तो यह भ्रम न रहना चाहिये। हाँ, सूरकी भक्तिसे यह अवश्य भिन्न है। इसका कारण यह है कि सूरने उसका जीवनसे असम्बद्ध एवं एकान्तिक रूप सामने रक्खा है। तुलसीने उसे लोकसे सम्बद्ध कर दिया है। सूरकी भक्तिमें तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक है।।

श्रीमद्भागवतके अनुसार भक्तिके चार प्रकार हैं——१ तामसी, २ राजसी, ३ सात्त्विकी और ४ निर्गुण। गोस्वामीजीकी भक्ति चौथे प्रकारकी है। इस भक्तिकी साधना करनेवाला भक्त कुछ भी नहीं चाहता। उसकी भक्ति फलकी आकांक्षासे रहित या निष्काम होती है। भक्तिके लिये यही भावना सर्वोत्कृष्ट मानी गयी है जिसमें कामनाका पूर्ण तिरोभाव हो। गीतामें इसे बहुत महत्त्व दिया गया है। गोस्वामीजी भक्तिको छोड़कर अन्य किसी फलकी इच्छा नहीं करते और अवसर आनेपर भक्तिका ही वर माँगते हैं——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भगति-दान तब माँगि लियो।

भक्तके लिये भक्तिका आनन्द ही उसका फल है। गोस्वामीजी एकमात्र भक्तिको ही वरेण्य मानते हैं।

## दास्यभावना

'भक्तिमें प्रेमके अतिरिक्त आलम्बनके महत्त्व और अपने दैन्यका अनुभव परम आवश्यक अङ्ग है।' आचार्य शुक्लका यह कथन दास्यभावनाकी भक्तिके लिये पूर्णतया युक्तियुक्त है, परंतु सभी प्रकारकी भक्तियोंके लिये नहीं। भक्तोंके स्वभावके अनुसार पाँच प्रकारकी भक्तियाँ मानी गयी हैं——१. शान्त, २. दास्य, ३. सख्य, ४. वात्सल्य और ५. मधुरा भक्ति। शान्तभावकी भक्तिमें भक्त मन-इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखकर निरपेक्ष एवं विरक्त होकर शान्त चित्तसे ईश्वरकी आराधना करता है। दास्यभावकी भक्तिमें सेव्य-सेवकका सम्बन्ध रहता है। सेवकमें जितना दैन्य, आत्मसमर्पण पूर्ण होगा और जितनी उसमें सेवाके महत्त्वकी अनुभूति होगी, उतना ही वह सेव्यका सांनिध्य प्राप्त करता जायगा और अन्तमें सेवक-सेव्य एक हो जायँगे। सखाभावकी भक्तिमें भक्तमें दैन्यके स्थानपर बराबरी एवं आत्मीयताका भाव रहता है। सेवक स्वामीसे डरता भी है; परंतु सखा उसका अन्तरंग साथी होकर आनन्द लाभ करता है। सूरदासकी भक्ति इसी प्रकारकी थी। पहले उन्होंने सेव्य-सेवक-भावसे विनयके पद अवश्य कहे हैं; परंतु बादमें वल्लभाचार्यके संसर्गसे उन्होंने श्रीकृष्णके अन्तरंग सखा बनकर उनकी लीलाओं-का बखान किया। उनकी अनुभूति एक गोपकी अनुभूति है। बहुतसे समीक्षक उनकी भक्तिमें वात्सल्य और माधुर्यभाव भी देखते हैं। उनके मतानुसार बाल-लीलामें वात्सल्य और गोपियोंके संयोग-वियोगमें माधुर्य-भाव मौजूद है; परंतु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि सूरने आलम्बनकी क्रीड़ाओंमें आश्रय यशोदा या गोपियोंके साथ हृदयका तादात्म्य नहीं किया। उन-वर्णनोंमें वे उनसे निरपेक्ष परंतु कहीं समीप ही देखे जा सकते हैं।

गोस्वामीजीकी भक्ति दास्यभावकी है। दास्य-भावकी प्रतिष्ठाके, जैसा कि आचार्य शुक्लने कहा है, दो पहलू हैं—— १. आलम्बनका महत्त्व और २. सेवक-का दैन्य या लघुत्व। गोस्वामीजीने स्थान-स्थानपर इनकी उद्भावना की है। 'विनय-पत्रिका'में तो इनका पूर्ण उत्कर्ष मिलता ही है। गीतावलीमें भी यत्र-तत्र इसकी व्यञ्जना है। रामके माहात्म्यका वर्णन करते हुए तुलसी अघाते नहीं हैं। कभी वे अपने आराध्यकी अनन्त रूप-राशिके अनुभवसे प्रेम-पुलकित हो जाते हैं, कभी अनन्त शक्तिकी झलक पाकर विस्मित एवं उत्साहित हो उठते हैं और कभी अनन्त शीलका स्मरण करते-करते भाव-विभोर हो उठते हैं। रामकी दानशीलता, भक्तवत्सलता, पतित-पावनता आदिकी चर्चा स्थल-स्थलपर की गयी है। गीतावलीसे एक उदाहरण लीजिये——

दूसरो न देखतु साहिब सम रामै।
बेदऊ पुरान कबि कोबिद बिरद-रत
जाको जस सुनत गावत गुन ग्रामै॥

महत्त्वकी अनुभूतिके साथ ही अपने लघुत्व या दैन्यकी अनुभूतिका भी पूर्ण विकास गोस्वामीजीमें मिलता है। अपने दोषों, अवगुणों, अज्ञान, माया आदिकी स्वीकारोक्ति मनको निर्मल कर देती है। ऐसा करनेसे एक प्रकारका संतोष भी प्राप्त होता है, जिसे आधा लाभ समझना चाहिये। 'गीतावली' में तुलसीदासजीने स्थान-स्थानपर अपनेको किंकर, चेरो, जूँठन खानेवाला, भिखमंगा, पतित, पापी आदि कहा है——

कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिनु मोल ही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, ऊबरी जूठनि खाउँगो॥

तुलसीकी इस भक्ति-पद्धतिमें बहुत-से समीक्षक लल्लो-चप्पो या चापलूसीकी गन्ध पाते हैं जो निकटताकी नहीं, दूरीकी परिचायक है। इस सम्बन्धमें हमारा मन्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि तुलसीकी लघुत्वकी भावना इस प्रकर्षको पहुँची है कि अन्तमें महत्त्वको उसे अपनाना पड़ता है और लघुत्व महत्त्वमें अन्तर्हित हो जाता है। दूसरे गोस्वामीजीको व्यष्टिकी अपेक्षा समष्टि, व्यक्तिकी अपेक्षा समाजका अधिक ध्यान था। इसलिये उन्होंने सेव्य-सेवक-भावके निष्कण्टक मार्गको अपनाया। समाजके लिये भक्तिका यही रूप उपयोगी था।

## आलम्बनमें शक्ति, शील और सौन्दर्यका समन्वय

गोस्वामीजीने अपने आराध्यमें अनन्त शक्ति, शील और सौन्दर्यका समन्वय किया है। सूरदास अपने आराध्यके सौन्दर्यकी ओर ही अधिक आकर्षित हैं। इसलिये उन्होंने श्रीकृष्णके लोकानुरञ्जनकारी रूपके स्थानपर सौन्दर्यरूपका ही अधिक उद्घाटन किया है। उनकी भक्तिमें सौन्दर्यका उल्लास ही अधिक छलकता है। गोस्वामीजी अपने रामको कर्तव्य-क्षेत्रमें अग्रसर होता हुआ देखते हैं, जिससे लोकका अनुरञ्जन होता है। जहाँ एक ओर सौन्दर्यकी अनन्त राशि जनकपुरके नर-नारियों और ग्रामवधूटियोंका मन विमोहित करती है, वहाँ दूसरी ओर इस महान् शक्तिद्वारा लोकपीड़कोंका विनाश होता है। इसके अतिरिक्त उनके स्वभावमें शीलकी पराकाष्ठा दिखलाकर मानवताके लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया गया है। 'शीलके असामान्य उत्कर्षको प्रेम और भक्तिका आलम्बन स्थिर करके उन्होंने सदाचार और भक्तिको अन्योन्याश्रित करके दिखा दिया।' ( गोस्वामी तुलसीदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ) रामके ये तीनों रूप एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं। जहाँ शक्ति और शील है, वहाँ सौन्दर्य है, जहाँ शक्ति और सौन्दर्य है वहाँ शील है और जहाँ शील और सौन्दर्य है वहाँ शक्ति है। 'गीतावली'से एक उदाहरण लीजिये। कौशिकद्वारा राम-लक्ष्मणका परिचय दिया जा रहा है—

**ये दोऊ दसरथके बारे।**
**नाम राम घनस्याम, लषन लघु, नखसिख अँग उजियारे ॥**
**निज हित लागि माँगि आने मैं धर्मसेतु रखवारे।**
**धीर बीर बिरुदैत बाँकुरे महाबाहु बल भारे ॥**

इस प्रकार उन्होंने रामके रूपमें तीनोंका उ[...] दिखाकर भक्तिके लोकोपयोगी स्वरूपकी अवतारणा की। 'गीतावली'में इन तीनों रूपोंमें सौन्दर्यकी प्रधानता है या यों कहना चाहिये कि शक्ति और शीलका सौन्दर्यमें ही समन्वय किया है। 'गीतावली'के जनकपुरकी नारियों द्वारा रामके सौन्दर्यका वर्णन, वनमार्गमें ग्रामवधूटियों द्वारा रामके सौन्दर्यका वर्णन, बाल-वर्णन, उत्तरकाण्डके संयोग-लीलाओंके वर्णन इसके प्रमाण हैं। इस प्रकारके वर्णनोंमें सूरके माधुर्य भावका प्रभाव दिखायी देता है।

## हृदय और बुद्धिका सामञ्जस्य

भक्ति एक रागात्मिका वृत्ति है जिसका सम्बन्ध हृदयसे है। वह ज्ञानका क्षेत्र नहीं है। सूरने इसीलिये ज्ञानका परिहास किया है। गोस्वामीजीका मार्ग [...] ज्ञानमार्ग नहीं है। उसे वे सुगम भी नहीं मानते। उनके मतानुसार तर्क और सिद्धान्त केवल बुद्धिका वितण्डावाद खड़ा करते हैं, उनसे इस परम सत्ताकी अनुभूति दूर ही रहती है। उसे प्राप्त करनेका सीधा रास्ता प्रेम है—

**जोग न बिराग जाग तप न तीरथ त्याग,**
**एही अनुराग भाग खुले तुलसी के हैं।**

परंतु जहाँ एक ओर वे भक्तिको ज्ञानसे श्रेष्ठ समझते हैं वहाँ दूसरी ओर ज्ञानद्वारा भक्तिकी प्रतिस्थापना उ[...] कोटिकी मानते हैं। ज्ञानसे भक्ति श्रेष्ठ है; परंतु ज्ञान[...] समन्वित भक्ति श्रेष्ठतर है। गोस्वामीजीकी भक्ति[...] विरति एवं विवेकको समुचित स्थान प्राप्त है।

## भक्ति-पद्धतियोंका समन्वय

गोस्वामीजीके समयमें भक्तिकी अनेक पद्धतियाँ प्रचलित थीं। बौद्ध-जैन-शास्त्र, निर्गुण आदि म[...] और शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदाय चल रहे थे। गोस्वामी-जीने सबको अस्वीकृत करके एकमात्र शुद्ध रामभक्तिका जोरदार समर्थन किया और इन सभी सम्प्रदायोंको उन[...] समन्वित कर दिया। देववादका ऐसा समन्वय श[...] ही कहीं अन्यत्र मिले। कबीरने जिस मार्गद्वारा बहुदे[...] वादको हटाकर एकेश्वरवादका नारा बुलंद किया,[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका सही उपचार नहीं था । गोस्वामीजीने रामकी भक्तिमें ही शंकर आदि देवोंकी भक्तिको उचित स्थान देकर सही मार्गका अवलम्बन किया । रामभक्तिके लिये उन्होंने शंकरकी भक्तिको पहले आवश्यक बताया है । विभीषण शंकरकी प्रेरणासे ही रामके समीप जाते हैं—

संकर सिख आसिष पाइकै ।
चले मनहि मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइकै ॥

## लोकमत और साधुमतका समन्वय

गोस्वामीजीकी भक्तिमें व्यक्ति और समाज ( विशिष्ट और सामान्य ) दोनोंके हितोंका सामञ्जस्य है । व्यक्तिके कल्याणके लिये गोस्वामीजी सभी सांसारिक बन्धनोंको त्यागकर एकमात्र रामभक्तिका बन्धन स्वीकार करते हैं । उनके मतानुसार संसारके सब प्रपञ्च त्याग-कर रामकी शरण जानेमें ही व्यक्तिका कल्याण है । यह व्यक्तिका विशिष्ट धर्म है । गोस्वामीजीके काव्यमें स्थान-स्थानपर ऐसे उद्गार मिलते हैं जिनमें एकमात्र रामभक्तिकी सार्थकता स्वीकार की गयी है । दूसरी ओर, गोस्वामीजी समाज या लोकहितकी दृष्टिसे उन सभी बन्धनों, मर्यादाओं, कर्तव्यों एवं सम्बन्धोंको भी स्वीकार करते हैं जो सामाजिक जीवनके उन्नयनमें योग देते हैं । यह व्यक्तिका सामान्य धर्म है । इसी कारण गोस्वामीजीके वाक्यमें कहीं-कहीं विरोधी धारणाएँ पायी जाती हैं । जिस स्थानपर जिस मतकी उन्होंने उपयुक्तता समझी है, वहाँ उसी दृष्टिसे विचार किया है । उनके लोकोपयोगी सामान्य धर्मकी व्याख्या सर्वमान्य है; क्योंकि उससे विशिष्ट धर्ममें कोई अड़चन नहीं होती । इस प्रकार दोनोंका समन्वय भी हो जाता है । सूरकी भक्तिमें इस प्रकारका कोई समन्वय नहीं है । उसका रूप लोक-निरपेक्ष या ऐकान्तिक है ।

## तुलसीकी मौलिकता

गोस्वामीजीकी भक्तिका मुख्य उद्देश्य जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सामञ्जस्य लाना है । उनकी व्यापक दृष्टि भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंमें फैले हुए जीवनके विशाल क्षेत्रतक पहुँची और उससे उपयोगी तत्त्वोंका चयन किया, उन्होंने सामञ्जस्यद्वारा जीवनकी पूर्णताका चित्र तो प्रस्तुत किया ही, साथ ही सब उपयोगी तत्त्वों-को मिलाकर भक्तिका एक ऐसा रसायन तैयार किया जो युग-युगतक मानवताको संजीवनी-शक्ति देनेमें समर्थ है । इसके पूर्व इस प्रकारकी भक्ति-पद्धति और किसी कविमें नहीं पायी जाती । यह एक ऐसा भित्तिचित्र है, जिससे समाजके स्वास्थ्यकी पूर्णतया रक्षा होती है । सूरकी भक्तिमें यह बात नहीं है । गोस्वामीजीके भक्ति-सिद्धान्त आज भी नव-जीवन प्रदान करते हैं । इसीलिये घर-घरमें उनका प्रचार है ।

# विरहातुरा राधाके प्रति एक अन्तरङ्ग सखीके उद्गार

तुम उनकी, वे नित्य तुम्हारे—रहते नित्य तुम्हारे साथ ।
तुम्हें नित्य रखते अपनेसे मिली, श्याम अपनी ही बाथ ॥
'उनसे तुम हो अलग'—करो मत ऐसा कभी भूल संदेह ।
घुलामिला एकत्व सत्य है, भले पृथक् दिखतीं दो देह ॥
देश-कालका, कोई भी, हो सकता कभी नहीं व्यवधान ।
सभी देश-कालोंमें निश्चित नित्य संगका बना विधान ॥
तुम स्वरूपतः और तत्त्वतः दोनों सचमुच नित्य अभिन्न ।
करते तत्सुख-सुखी-परस्पर लीला मधुर बने-से भिन्न ॥
विरह-मिलन है—प्रेममयी इस लीला-सरिताके दो छोर ।
इनमें नित बहती—यह दिव्य सुधा-रसकी धारा सब ओर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हमारे देवालय और आश्रम

( लेखक—श्रीओंकार मलजी सराफ )

हमारे पूर्वजोंने, ऋषियोंने, मुनियोंने, विद्वानोंने ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिसमें मानव-कल्याणका महान् उद्देश्य अन्तर्निहित न था। सारे भारतवर्षमें—देशकी चारों दिशाओंमें—देशके प्रत्येक अञ्चलमें उन्होंने मन्दिरों, आश्रमों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रोंकी स्थापना की। इसमें उनका एक महान् उद्देश्य था—जनकल्याणकारी कार्यक्रमकी प्रेरणा थी। यह बात इतिहास हमें स्पष्ट रूपसे बताता है कि जो-जो विदेशी हमें, हमारे धर्म, हमारी सभ्यता एवं हमारी संस्कृतिको मिटानेके लिये दृढ़ संकल्प लेकर इस पुण्य-भूमिपर आये, उन्होंने हमें मिटानेसे पहिले हमारे इन धार्मिक केन्द्रों—मन्दिरों एवं आश्रमोंको ध्वंस करनेका अधिक-से-अधिक प्रयत्न किया। इसीसे हम यह भलीभाँति समझ सकते हैं कि हमारा हिंदुओंका—प्राण ये धार्मिक केन्द्र ही थे। हमारे जीवनकी संजीवनी शक्ति—हमारी संस्कृतिकी उत्कृष्टता—हमारे धर्मकी उदात्त भावना एवं हमारी सभ्यताकी सम्पूर्ण भित्ति इन मन्दिरों एवं आश्रमोंमें पूर्ण रूपसे समन्वित थी।

मुसल्मान आक्रान्ताओंने हमारे इस रहस्यको समझ लिया था। इसीलिये उन्होंने सारे भारतवर्षमें असंख्य हिंदू मन्दिरों, मूर्तियों, आश्रमों एवं विद्यापीठोंको ध्वंस कर दिया। उनको मिटा दिया। उनके स्थानपर मस्जिदें बनवा दीं, मीनारें खड़ी कर दीं। इसके असंख्य उदाहरण हमारे सामने हैं। इतना करके भी वे हमें सम्पूर्णरूपसे नहीं मिटा सके। इसका कारण क्या था? हमने सन् ७११ से सन् १८५७ तक अर्थात् ११४६ वर्षोंतक लगातार अपने इन मन्दिरों, आश्रमों एवं धार्मिक केन्द्रोंकी रक्षाके लिये अनवरत संघर्ष किया, अपना रक्त इनकी रक्षाके लिये बहाया। एक-एक मन्दिरकी रक्षाके लिये हमारे अनेकों मस्तक निछावर हो गये। असंख्य हिंदुओंने धर्मकी रक्षाके लिये अपने प्राण दिये। हमने अपनी पूर्ण शक्तिके साथ हमारे इन प्राणकेन्द्रोंके मिटानेवालोंका मुकाबला किया। हम मिटकर भी बचे रहे। हमारा पूर्णरूपसे विनाश-साधन नहीं हो सका। हमने अपने प्राण देकर धर्मकी रक्षा की, धर्मने हमें बचाया। हमारे अस्तित्वको मिटने नहीं दिया। कोई भी निर्बल जाति अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिये इतने दीर्घकालतक नहीं लड़ सकती। पर हमारी शक्ति असीम थी, अतः हम लड़ते रह सके ११४६ वर्षोंतक। आश्चर्य तो इस बातका है कि भारतवर्ष स्वाधीन हो जानेपर भी हमारा यह संघर्ष समाप्त नहीं हुआ है। अभी भी हम लड़े ही जा रहे हैं। हमारा यह संघर्ष आज १२५१ वर्षका हो गया है। देखें कब इसका अन्त होता है?

मुसल्मानोंके बाद अंग्रेजोंका आगमन हुआ। उन्होंने भी हमारी इस संजीवनी-शक्तिको हृदयङ्गम किया। पर सन् १८५६ तक हमारे मिटानेके लिये वे कुछ अधिक उद्योग नहीं कर सके। उन्होंने समझ लिया था कि हिंदू-मन्दिरोंको ध्वंस करनेकी चेष्टा करते ही, हमारा टिकना कठिन हो जायगा। यदि हम ऐसा करेंगे तो हमें लगातार हिंदूजातिसे संघर्षमें रत होना पड़ेगा। उन्हें मुसल्मानोंके इतिहाससे शिक्षा ली। उन्होंने हमारे राजनीतिक और अर्थनीतिक संगठन-पर—व्यवस्थापर धावा बोल दिया। पर हमारा धार्मिक संगठन सन् १८५६ तक उन्होंने प्रायः अछूता छोड़ रक्खा। जहाँ सन् १८५६ में उन्होंने इसको तोड़नेका जरा-सा भी प्रयास किया, वहीं हमने अपने मन्दिरों और आश्रमोंके माध्यमसे अपनी संस्कृति और धर्मके सारे भारतवर्षमें ११४६ वर्षके संघर्षके बाद भी बचे हुए अगणित केन्द्रोंसे—एक ऐसी प्रचण्ड शक्तिका संगठन किया, जिसने सन् १८५७ में सारे भारतवर्षमें ब्रिटिश शक्तिके साथ डटकर लोहा लिया। हम यह मानते हैं कि इस स्वाधीनता-संग्राममें मुसल्मानोंने भी हमारा आंशिक रूपमें साथ दिया। पर यथार्थ बात यह थी कि वे अपनी राजनीतिक सत्ताको बनाये रखनेके लिये हमारा साथ दे रहे थे एवं हम अपने धर्मकी—संस्कृतिकी—सभ्यताकी—मातृभूमिकी, 'स्व' की एवं सर्वस्वकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी आहुतियाँ दे रहे थे। सन् १८५७ का युद्ध कितने ही कारणोंसे—हमारी दुर्बलतासे—कमजोरियोंसे, विश्वासघातियोंके कुचक्रोंसे—विफल हो गया। पर इस युद्धने अंग्रेजोंको निम्न दो यथार्थ तत्त्वोंको हृदयंगम करा दिया। वे यथार्थताएँ ये हैं—

( १ ) जबतक हिंदुओंके ये धार्मिक केन्द्र—देवालय और आश्रमादि बने रहेंगे तबतक जब कभी भी इस प्रकारका संगठन पुनः हो सकता है। उनका अस्तित्व खतरेमें पड़ सकता है।

( २ ) यदि हिंदुओंकी धार्मिक व्यवस्थामें किसी प्रकारका भी हस्तक्षेप किया जायगा—तो कभी शान्तिके साथ शासन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संचालन नहीं किया जा सकेगा और बराबर संघर्ष लेते रहना पड़ेगा ।

( २ )

अंग्रेज बुद्धिमान् थे । उन्होंने यथार्थताको समझा । वे हमारे देवालयों और आश्रमोंकी तहमें पहुँचनेका प्रयत्न करने लगे, जिससे कि वे बिना इनमें हस्तक्षेप किये हमारे विनाशके अन्य तरीकोंको अपना सकें ।

वे इस तथ्यको अति शीघ्र समझ गये कि इन देवालयों और मन्दिरोंकी स्थापनाका प्रधान उद्देश्य—देशके जनसाधारणको व्यापकरूपसे शिक्षित करना और देशकी जनताके साथ अपना सतत सम्पर्क कायम रखना है । देशकी जनता, बिना किसी खर्चके इनमें स्थापित पाठशालाओं और चतुष्पाठियोंमें शिक्षा प्राप्त करके स्वधर्ममें दृढ़ हो जाती है । देशमें साक्षरताके प्रचार और निरक्षरताके विनाशके लिये ये मन्दिर और आश्रम प्रमुख केन्द्र हैं । यहाँ शिक्षा-प्राप्तिके लिये किसीको कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता । विद्या यहाँ बिकती नहीं है—दान दी जाती है । विद्या-दान ही इनका प्रधान उद्देश्य है । यह शिक्षापद्धति ही हिंदुओंको स्वधर्मकी रक्षाके लिये प्रेरणा देती है ।

अंग्रेजोंने इस पद्धतिका अध्ययन किया और विवेचन किया । उन्होंने यह अच्छी तरहसे समझ लिया कि जबतक हिंदुओंका यह विद्यादान इन मन्दिरों एवं आश्रमोंमें चलता रहेगा तबतक हिंदुओंके स्वधर्मप्रेम, स्वदेशप्रेम, स्वाभिमान एवं सामर्थ्यपर आघात नहीं किया जा सकेगा । यह तथ्य समझमें आ जानेपर—उन्होंने लार्ड मेकालेको इस प्रकारकी एक योजना बनानेका आदेश दिया कि जिससे देशमें प्रचलित शिक्षा-पद्धतिके बदले ऐसी शिक्षा-पद्धतिका प्रचलन किया जा सके जो हिंदुओंकी भावनाको मिटा सकनेमें समर्थ हो । लार्ड मेकालेद्वारा प्रस्तुत योजनाके आधारपर हमारे मन्दिरों और आश्रमोंके इस विद्यादानके सदाव्रतको मिटानेका कार्यक्रम अंग्रेजोंने शुरू कर दिया । कलकत्ता, बम्बई और मद्रासमें विश्वविद्यालयोंके नामपर हमारे विद्यादानके विनाश-साधनके लिये विनाशकेन्द्र स्थापित कर दिये गये । इन विश्वविद्यालयोंके अन्तर्गत सारे देशमें स्कूलों-कालेजोंका जाल बिछा दिया गया । इन विनाश-केन्द्रोंमें शिक्षा प्राप्त करनेवालोंको क्रमशः व्यापकरूपमें सरकारी नौकरियाँ देनेका आश्वासन देकर इनको मुनीम-निर्माता कारखानोंमें परिवर्तित कर दिया गया । इनमें ईसाई धर्मकी शिक्षा देनेका प्रबन्ध हुआ । हमारे इतिहासको गलतरूपमें छात्रोंके सामने उपस्थित करनेके लिये नये ग्रन्थोंको प्रस्तुत करवाकर नया पाठ्यक्रम प्रचलित किया गया । हमारे बच्चे—कालिदास और भवभूतिके बदले सेक्सपियर और मिल्टनके गीत गाने लगे । कृष्णके बदले उनको क्राइष्ट देनेकी व्यवस्था कर दी गयी । अंग्रेजोंने एक तरफ तो शिक्षाकी यह व्यवस्था प्रचलित की, दूसरी तरफ युरोपसे ईसाई मिशनरियोंको इस देशमें अधिक-से-अधिक बुलाने और उनके द्वारा गिरजाघरोंकी स्थापनाके साथ-साथ मिशनरी स्कूलों, नर्सिंग-होमों एवं अस्पतालोंको स्थापित करके जनसाधारणके मनको अपनी तरफ आकर्षित करनेका उद्योग किया, ११४६ वर्षोंके संघर्षमें हमारा जो ध्वंस नहीं हुआ था, सन् १८५८से लेकर १९०० तकके ४२ वर्षोंमें उससे अधिक ध्वंस-साधन हो गया । इस प्रकार अंग्रेजोंने हमारे देवालयों और आश्रमोंके प्रधान उद्देश्य—'विद्यादान' पर चारों तरफसे आघात करके हमें, हमारी संस्कृति और सभ्यताको मिटानेका उद्योग आरम्भ किया और वे अपने उद्देश्यमें बहुलाभमें सफल हुए । हमने जो इतनी बातें लिखीं—इसीसे यह प्रमाणित होता है कि हमारे देवालयों, आश्रमों, धार्मिक केन्द्रोंकी स्थापनाका प्रधान उद्देश्य 'विद्यादान' था । अब हम इनके अन्य उद्देश्यों-पर भी प्रकाश डालते हैं ।

( ३ )

देवालयोंकी स्थापनाका द्वितीय उद्देश्य हिंदूधर्मके उदात्त सिद्धान्तोंका व्यापकरूपसे प्रचार करना था । प्राचीन समयमें अर्थात् आजके प्रायः ७०, ८० वर्ष पहले तक इनके पुजारी महान् विद्वान्, सेवाभावी, श्रीभगवद्भक्तिपरायण, कष्टसहिष्णु, परिश्रमी एवं चरित्रवान् व्यक्ति ही हुआ करते थे । वे अपने-अपने अञ्चलके जनसाधारणमें धर्मका प्रचार करते थे; धर्मशास्त्रोंकी व्याख्या करते थे; ग्रामीण अञ्चलोंमें पुराणादिका पाठ करते थे, मन्दिरोंमें आनेवालोंके सुख-दुःखके भागीदार होते थे—जनसाधारणके दुःखमें सान्त्वना देते थे—उनके सुखमें सुखी होते थे, मन्दिरोंमें आगत स्त्री-पुरुष और शिशुओंको सदाचार, सत्यनिष्ठ एवं सत्य-व्यवहारका उपदेश देते थे । जनसाधारणके व्यक्तिगत मामलोंको सत्परामर्श द्वारा सुलझानेका काम भी ये पुजारी ही कर देते थे, कारण जनताका इनमें विश्वास था और इनके आचरणपर श्रद्धा थी । हिंदुओंके समस्त धर्म-प्रचारका माध्यम देवालयोंका पुजारी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग ही था। ऐसा एक भी मन्दिर देशमें नहीं था, जहाँ धार्मिक ग्रन्थोंके नित्यपाठकी—श्रीभगवन्नाम-स्मरणकी व्यवस्था न हो। इसके लिये हमारे राजस्थानमें तो दोपहरका समय निर्धारित रहता था जिससे कि आबाल-वृद्ध-वनिता इसमें सरलतासे सम्मिलित हो सकें।

( ४ )

'विद्यादान' और धर्मके प्रचारके लिये इन देवालयों एवं आश्रमोंमें अपना पुस्तकालय भी रहता था। इनमें हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित रहते थे। विद्यार्थीवर्ग अपने गुरुजीसे विद्या सीखता था और आवश्यकतानुसार अपने व्यवहारके लिये इन ग्रन्थोंकी नकलें कर लेता था। विद्यार्थियोंके आवासकी समस्याका भी ये देवालय और आश्रम ही समाधान कर देते थे। 'नालन्दा' के खँडहर आज भी इस सत्यको विश्वके समक्ष घोषित कर रहे हैं।

मन्दिरोंके पुजारियों एवं ब्रह्मचारियोंको आयुर्वेदीय चिकित्साका भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। वे आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार बिना किसी मूल्यके—खर्चके देशकी जड़ी-बूटियोंसे, वनस्पतियोंसे अपने-अपने अञ्चलके जनसाधारणकी चिकित्सा अस्वस्थ होनेपर कर दिया करते थे।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि इन देवालयों और आश्रमोंके द्वारा गृहस्थकी शिक्षा, धर्म-शिक्षा, चिकित्सा एवं अन्यान्य आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाती थी। पंचायतके लिये स्थानका काम भी ये मन्दिर ही देते थे। यहीं लोग समवेत हो जाते थे और सभा और बैठक कर लेते थे।

( ५ )

इन मन्दिरोंके संचालनके लिये बड़ी ही सरल व्यवस्था थी। जन-साधारणकी ओरसे—प्रत्येक गृहस्थके घरसे 'सीधा' (खाद्य-सामग्री) देनेकी नित्य ही व्यवस्था थी। ब्रह्मचारी-वर्ग घर-घर जाकर खाद्य-सामग्री संग्रह कर लेता या गृहस्थ ही मन्दिरोंमें पहुँचा जाते थे। खाद्य-सामग्रीका कोई अभाव नहीं रहता था। इस खाद्य-सामग्रीसे पुजारीवर्ग और ब्रह्मचारियोंका तो भरण-पोषण हो ही जाता था—एवं इसके साथ-साथ आये हुए अतिथियोंको भी श्रीभगवान्‌का प्रसाद प्राप्त हो जाता था। इन देवालयों एवं आश्रमोंमें यह व्यवस्था थी कि कोई भी हिंदू, तीर्थयात्री बिना किसी प्रकारके खर्च और कष्टके भारतव्यापी समस्त तीर्थोंकी यात्रा कर लेता था। उनको न ठहरनेकी चिन्ता होती थी और न भोजनकी, वे मन्दिरोंमें रात काट सकते थे और श्रीभगवान्‌के प्रसादसे अपने पेटकी क्षुधाको निवृत्त कर लेते थे।

हमारे पूर्वजोंद्वारा स्थापित इन देवालयों और आश्रमोंकी स्थापनाके ये ही प्रमुख उद्देश्य थे। हमारे अस्तित्व एवं राष्ट्रीय एकता ( National Integration )के प्राणकेन्द्र ये देवालय और आश्रम ही थे। यहींसे हमें जीवनकी प्रेरणा मिलती थी। कर्तव्य-मार्गका बोध यहींसे होता था। इन्हींके सहारे युग-युगोंसे हिंदूजीवन चलता आता है। इनकी स्थापनाका उद्देश्य देशके जनसाधारणका—देशके अमीर राजन्यवर्ग और गरीबका—सुखी एवं दुखी मानवका 'सर्वोदय' था। हमारे देवालयों और आश्रमोंसे यह ध्वनि अहर्निश प्रतिध्वनित होती रहती थी कि—

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।'

मन्दिरोंमें प्रतिध्वनित इस भावनामें—भगवान्‌से की गयी इस प्रार्थनासे इनकी स्थापनाका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है।*

---

* आज हमारे देवालयोंकी और देवालयोंके द्वारा समाज-रक्षण-पद्धतिकी सर्वाङ्गीण दुर्दशा है। हम स्वयं ही अनेक प्रकारोंसे उनके विनाश-साधनमें लगे हैं। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि देवालयोंके साथ हमारी अमर संस्कृति जुड़ी है। देवालयोंके विनाशमें हमारा तथा हमारी संस्कृतिका विनाश निहित है। प्रसन्नताकी बात है कि कलकत्तेके पुराने जनसेवक सम्मान्य श्रीओंकारमलजी सराफके प्रयत्नसे एक 'देवालय-संरक्षण-समिति' की स्थापना बहुत व्यापक लोकहितकर उद्देश्योंको लेकर हुई है। उस समितिको भारतके प्रसिद्ध विद्वानों, राजपुरुषों तथा अन्यान्य प्रतिष्ठित पुरुषोंका समर्थन प्राप्त है। हम चाहते हैं कि हिंदूमात्र तन-मन-धनसे यथासाध्य इस समितिके पवित्र कार्यमें योगदान करें। इस सम्बन्धमें प्रकाशित साहित्यको प्राप्त करने तथा विशेष बातें जाननेके लिये मन्त्री, श्रीदेवालय-संरक्षण-समिति, १२ चौरिंघी रोड, कलकत्ता १३ के पतेसे पत्रव्यवहार करें। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

## ( १ )

## मूक-सेवा

१

'सयानी लड़की हो गयी, विवाह तो करना ही है, पर वे तो पाँचसे कममें मानते ही नहीं, तुम जानती हो, मेरे पास कुछ भी नहीं है । दो सालकी मेरी बीमारीमें सब स्वाहा हो गया—' यों कहकर पन्नालाल रो पड़ा । पत्नी सीता भी रो पड़ी । लड़की सो गयी थी, उसकी ओर माँने देखा तो रुलायी और भी बढ़ गयी । करुणा-रस मानो मूर्तिमान् हो गया । बाहर किवाड़की आड़में खड़ा कोई देख-सुन रहा था ।

पाँचवें दिन अकस्मात् बर्दवानसे भेजी हुई एक बीमा रजिस्ट्री पन्नालालको मिली, उसमें छः हजारके सौ-सौके नोट थे । भेजनेवालेका कोई पत्र साथ नहीं था । लिफाफेपर भेजनेवालेका नाम-पता था, पर पन्नालालके पता लगानेपर वहाँ उस नामका कोई आदमी नहीं मिला । लड़कीके विवाहके लिये भगवान्ने ही यह सहायता भेजी है, यह समझकर पन्नालालने सानन्द लड़कीका विवाह कर दिया ।

२

'साढ़े ग्यारह हजारकी डिग्री थी । कुर्कीका आर्डर हो चुका, कल-परसों कुर्की आयेगी । नकद पैसा एक भी पास नहीं । कुर्कीमें घरके कपड़े-लत्ते, बर्तन तथा एक छोटा-सा घर कुर्क हो जायगा । बदनामी तो होगी ही, राहके भिखारी हो जायँगे ।' घरवाला बहुत परेशान है, अपनी बदनसीबी और असमर्थतापर रो रहा है ! कोई सहायक नहीं !

दूसरे दिन समाचार मिलता है, कोर्टमें रुपये पूरे भरे गये । कुर्कीका हुक्म रद्द कर दिया गया ।

३

विधवा लड़की है । तीन वर्ष पहले ब्याह हुआ था । घरमें सहायक कोई नहीं, विधवाके माता-पिता मर गये । बहुत बड़े घरानेकी माता-पिताकी एकमात्र लड़की, बड़े सुखसे पली-पुसी । विवाह भी बड़े सम्पन्न घरमें हुआ । पर दोनों ओर ही अकस्मात् भयानक घाटा लगा । सब कुछ जाता रहा । दोनों ही फार्म फेल हो गये । इसी चोटसे माता-पिता और पतिका देहान्त हो गया । लड़की सर्वथा असहाय, असमर्थ । कहाँ जाय, क्या करे । अकस्मात् एक दिन ढाई सौ रुपये मनीआर्डरसे आये । फिर तो कभी कहींसे, कभी कहींसे मनीआर्डरसे रुपये आने लगे, हर महीने । कभी डेढ़ सौ, कभी दो सौ, कभी ढाई सौ । भेजनेवालेके नाम-पते विभिन्न और सभी गलत । भगवान्ने ही यह सहायता की !

ऐसे ही चोरीसे सहायता करनेवाले पवित्र मूक सहायताके लिये सदा प्रस्तुत एक आदमी हैं और उनका यह कार्य सतत चालू है । यहाँ तो नमूनेके तौरपर ये तीन उदाहरण दिये गये हैं ।

—एक जानकार

## ( २ )

## हिंसाका बदला

सुजानगढ़ ( राजस्थान ) से पूर्व छः कोसपर ढोंगरास गाँव है । वहाँके ठाकुर थे किसनसिंह । विवाहको दो वर्ष हुए थे । ठाकुर अपनी ठकुरानीके साथ एक समय ऊँटपर सवार होकर कहीं जा रहे थे । रास्तेमें उदरासर नामक गाँवके बगलसे जाते समय बकरियोंकी टोलीके साथ एक बड़े भारी बकरेको चरते देखा । उसे देखकर ठकुरानी पतिसे बोली—'आपके घर आनेके बाद मैंने कभी पेटभर बकरेका मांस नहीं खाया है । देखिये, यह कैसा मोटा-ताजा बकरा चर रहा है ।'

तीन-चार दिनोंके बाद किसनसिंहने जाकर अकेले चरते बकरेको काँटोंसे दबा दिया और कुछ रात बीतनेपर उसे बोरेमें भरकर वह अपने घर ले आया और मारकर मांस पकाकर सब लोगोंने खा लिया ।

एक सालके बाद ठकुरानीके बच्चा हुआ । वह दिनोंदिन बढ़ने लगा । माता-पिताके आनन्दकी सीमा नहीं रही । तेरह वर्षका होनेपर उसकी सगाई कर दी गयी और चौदहवें वर्षमें विवाह करनेका निश्चय किया गया । विवाहकी तैयारी हो गयी । बान बैठ गया । सगे-सम्बन्धी सब घरमें जमा हो गये । बारातका समय हो गया । बाजे बजने लगे । लड़केको स्नान कराकर विवाहकी पोशाक पहनायी गयी और उसे गणेश-पूजनके लिये बैठाया गया । इसी समय अचानक लड़का बेहोश होकर गिर पड़ा । चारों ओर हल्ला मच गया । होश करानेकी चेष्टा की जाने लगी । लोग हवा करने लगे । किसन-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहने समीप आकर कहा—'बेटा बालसिंह ! तुम्हें चैन है या नहीं, चेत करो, देखो कितने लोग तुम्हारे लिये चिन्तित हो रहे हैं ।'

बालसिंहने होशमें आकर कहा—'पिताजी ! आपकी हमारी इतने ही दिनोंकी माँगत थी । मैं उदरासरके कुँवरदान चारणका छोड़ा हुआ वही बकरा हूँ जिसे आपने काँटोंमें दबा दिया था और ऊँटपर लादकर घर लाकर मार डाला था और मांस पकाकर मिलकर खाया था । मैंने आपसे अपना वही बदला चुका लिया । अब मैं जा रहा हूँ ।'

इतना कहकर वह सदाके लिये सो गया । सब रोते रह गये !

—भूरामल गिनाड़िया

( ३ )

## हलवाईकी ईमानदारी

एक गरीब हलवाईकी ईमानदारीकी जो घटना मुझे बतायी गयी, वह इस प्रकार है ।

'मैं उन दिनों कानपुरके कर्नलगंज मुहल्लेमें रहता था । सर्राफेकी दूकान थी, गहने बनानेका काम करता था । दिनभर दूकानपर काम करता था, फिर शामको सारा माल-असबाब चाँदी-सोना-जेवरात आदि लेकर घर चला जाया करता था । घर दूकानसे थोड़ी ही दूरपर था । दूकानमें सुरक्षाका उचित प्रबन्ध न होनेसे कीमती सामान वहाँ नहीं छोड़ता था । रोजकी भाँति उस शामको भी मैं माल लेकर, जो गोल डब्बोंमें भरा था, घर जा रहा था । उन दिनों शहरमें हिंदू-मुस्लिम दंगे जोरोंपर थे । शहरमें शान्ति बनाये रखनेके लिये फौजकी गश्त होती रहती थी । सूरज डूबनेके बाद पूरे शहरमें कर्फ्यू लग जाता था । उसके बाद कोई बाहर घूमते पकड़े जानेपर गिरफ्तार कर लिया जाता था । मैं दूकान बंद करके ज्यों ही चार कदम आगे बढ़ा था कि गोरे सिपाहियोंकी ललकार सुनायी पड़ी, मुझसे रुकनेके लिये कहा गया । मेरे पास मूल्यवान् सामान था । गोरोंके हाथों पड़कर पता नहीं उसकी क्या दुर्गति हो, क्या पता ये लोग लूट-खसोटकर खा-पी जायँ, जिसकी कि सौ फीसदी सम्भावना थी, मैंने जल्दीसे बढ़कर वह सारा माल सामनेकी एक हलवाईकी दूकानमें फेंक दिया । उस हलवाईने जल्दी-जल्दी जो अपनी दूकान बंद की तो उसकी बहुत-सी मिठाई गिर-कर बर्बाद हो गयी । बादमें गोरे सिपाही मुझे लारीमें बैठाकर कोतवाली ले गये । वहाँ नाम-पता आदि पूँछकर रात भर रखनेके बाद दूसरे दिन सुबह मुझे छोड़ दिया गया ।

मैंने अपने मालके मिलनेकी कोई उम्मीद नहीं रखी थी । उसे भगवान्‌के सहारे छोड़ दिया था । मिलेगा तो अच्छा, न मिलेगा तो भी कोई उपाय नहीं । पर मैं उस हलवाईका बहुत आभारी हूँ कि उसने पूरा-पूरा माल वैसा ही मुझे लौटा दिया । मेरा एक पाईका भी नुकसान नहीं हुआ।' वृद्ध महाशयजीने थोड़ी देर रुकनेके बाद पुनः कहा--

'पता नहीं वह बेचारा कहाँ है और कैसी हालतमें है । वह जहाँ भी हो भगवान् उसका भला करे तथा उसको और उसके बच्चोंको तरक्की दे ।'

खुदाके बंदे, उस ईमानदार हलवाईकी मार्मिक कहानी सुनकर मुझे विस्मयमय हर्ष हुआ और पुराने ऋषि-मुनियोंका उपदेश 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' दूसरोंके धनको मिट्टीके समान समझो' याद आ गया । मेरी आँखें गीली हुए बिना न रह सकीं ।

—सुबोधकुमार द्विवेदी

# दो विचित्र स्वप्न

[ कुछ दिनों पहले पिलखुआके भक्त श्रीरामशरणदासजीने महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजीके सत्संगमें सुने हुए एक प्रसङ्गके आधारपर एक लेख भेजा था । उसमें जिस घटनाका उल्लेख था, उसका सम्बन्ध सम्मान्य श्रीरणवीरजीसे था । श्रीरणवीरजी आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजी महाराज ( गृहस्थाश्रमका नाम—श्रीखुशहालचंदजी ) के सुपुत्र हैं और प्रसिद्ध उर्दू 'दैनिक मिलाप' के स्वामी तथा सम्पादक हैं । अंग्रेजी शासनमें इनको फाँसीकी सजा हुई थी, ये जेलमें रहे थे और फिर निर्दोष छूट गये थे । अतएव उपर्युक्त लेखमें दी गयी घटनाकी ठीक जानकारीके लिये श्रीरणवीरजीसे पूछा गया । उन्होंने उत्तरमें लिखा है—

'पूज्य स्वामीजीने अथवा लेखक महोदयने दो घटनाओंको एक कर दिया है । अपने जेल-जीवनमें मुझे कुछ अजीबसे आध्यात्मिक अनुभव हुए । जैसे—'स्थानका प्रभाव क्या है, अन्न और अन्नके बनानेवालेका उस अन्नके खानेवालेपर क्या प्रभाव पड़ता है, संगका ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव है और मन्त्रका क्या प्रभाव है । यह भी देखा कि मन शुद्ध, स्वच्छ और एकाग्र हो तो उसके लिये भूत, भविष्य, वर्तमान सब एक हो जाते हैं, दूर तथा निकट भी एक हो जाते हैं ।

ये सब तो लंबी बातें हैं । वे दो घटनाएँ जो लेखमें एक कर दी गयी हैं—ये हैं ।'

श्रीरणवीरजीने इतना लिखकर उन दोनों महत्त्वपूर्ण घटनाओंका संक्षेपमें उल्लेख किया है । उनको यहाँ प्रायः उन्हींकी भाषामें अलग-अलग दो शीर्षक देकर प्रकाशित किया जा रहा है । पाठक इनपर विचार करें और लाभ उठावें । —सम्पादक ]

( ४ )

## स्थानका प्रभाव

पहले दिन मैं लाहौरके बोर्स्टल जेलमें पहुँचा तो रातको मैंने बहुत भयानक सपना देखा । एक कच्चा-सा देहाती मकान । उसके छोटे-से द्वारसे मैं भीतर घुसा । खुले आँगनमें पहुँचा । आँगनसे एक कोठरीमें । वहाँ मेरी माताजी अपने बालोंमें कंघी कर रही थीं । मैंने उन्हें बालोंसे पकड़ा । वे चिल्लायीं तो उन्हें घसीटता हुआ मैं बाहर आँगनमें ले आया। और पता नहीं, कहाँसे एक छूरा लेकर बार-बार उनकी छाती-में घोंपने लगा । मेरे सामने वे तड़पीं । मेरे सामने उनका खून बहा । फिर भी मैं रुका नहीं । छूरेके बाद छूरा मारता चला गया ।

और इसी घबराहटमें जागकर देखा—अँधेरी कोठरी है । जेल है । कहीं कुछ नहीं । अपने माता-पितासे मैं प्यार करता हूँ । अपनी पूज्या माँके लिये ऐसी बात मैंने कभी सोची ही नहीं । दुःख हुआ कि ऐसा सपना आया क्यों ? रातभर सो नहीं पाया । सुबह होते ही जेलवालोंसे कहा—'मेरी माताजी-का हाल पूछ दीजिये मेरे घरसे । शायद उनकी तबीयत अच्छी नहीं ।' उन्होंने पूछकर बताया कि 'वे बिल्कुल ठीक हैं ।' लेकिन दूसरी रात फिर वही सपना । फिर मैं सो नहीं पाया । सलाखोंवाले द्वारके पास आकर खड़ा हो गया । तभी गश्त करते हुए एक जेल अफसर उधरसे गुजरे । मुझे देखकर बोले—'तुम सोये नहीं ?' मैंने उन्हें स्वप्नकी बात कही तो वे आश्चर्यसे बोले—'यह कैसे हो सकता है ? तुम कल यहाँ इस कोठरीमें आये हो, परसोंतक यहाँ एक और आदमी था । एक देहाती । उसने ठीक ऐसे ही अपनी माँकी हत्या की थी । ठीक ऐसा ही वह मकान था जैसा तुमने सपनेमें देखा । ठीक ऐसे ही वह बदनसीब माँ तड़पी और चिल्लायी थी । ठीक ऐसे ही वह शैतान उसे छूरेके बाद छूरा मारता गया था । मैंने गवाहोंके बयान सुने हैं । परसों ही उस देहातीको फाँसीकी आज्ञा हुई । उसे सेंट्रल जेलमें भेज दिया गया । लेकिन तुमको यह सपना आया कैसे ?'

तब मैंने समझा कि हमारे शास्त्र जिसको स्थानका प्रभाव कहते हैं, वह क्या है । वह अभागा आदमी मुझसे पहले कई मास इस कोठरीमें रहा । हर समय वह अपने कुकृत्यकी बात सोचता था और उसके विचार, उसकी भावनाएँ, उसकी पापमयी अनुभूति इस कोठरीके कण-कणमें धँसी जाती थी । वह चला गया लेकिन उसकी दूषित, पापपूर्ण भावना अब भी इस कोठरीमें है, उसीके कारण मैं यह सपना देखता हूँ ।

मैंने जेलके अधिकारीसे कहा—'आप कृपा करके मेरी कोठरी बदल दीजिये । मैं यहाँ रहूँगा नहीं । ऐसा न हुआ तो मैं अनशन कर दूँगा ।'

लेकिन अनशनकी नौबत नहीं आयी । दूसरे दिन मेरी कोठरी बदल दी गयी । फिर वह सपना कभी आया नहीं ।*

( ५ )

## भोजन बनानेवालेका भोजन करनेवालेपर प्रभाव

यह घटना लाहौरके सेंट्रल जेलमें हुई । मैं तब फाँसीकी कोठरीमें था । फाँसीका हुक्म हो चुका था । यहीं मैंने पहली बार भगवान्‌की उपलब्धि की । पहली बार सच्चे रूपमें मैं आस्तिक बना । ( वह दूसरी कहानी है, उसे यहाँ नहीं लिखूँगा ) यहीं मैंने पूज्य पिताजीसे उपनिषद् पढ़ना शुरू किया । गायत्री और मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप भी शुरू किया । मन स्वच्छ था, निर्मल और शान्त ।

---

* संगका अद्भुत प्रभाव है । जैसा संग होता है, जीवन उसी रंगमें रँग जाता है । संग केवल मनुष्यका ही नहीं होता । स्थान, भोजन, वस्त्र, चित्र, साहित्य, व्यवसाय, दर्शन, श्रवण, स्पर्श आदि सबका होता है और उसका निश्चित प्रभाव पड़ता है । बुरी चीजोंके संगसे मन बुरा बनकर जीवन बुरा हो जाता है, इसीसे सभी प्रकारके दुःसंगका त्याग करना आवश्यक है ।

बरु भल बास नरक कर ताता ।
दुष्ट संग जनि देहिं बिधाता ॥

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी एक रात गंदे-गंदे सपने आने लगे। हर बार मैं घबराकर उठता। थोड़ा-सा जाप करके सो जाता। फिर वही स्वप्न। वही रोती-चिल्लाती हुई नौजवान-सी लड़की। वही कुकर्म। तंग आकर रातके दो बजे मैंने हाथ-मुहँ धोये। जापके लिये बैठ गया। लेकिन पहलेकी तरह जापमें भी जी नहीं लगा। दूसरे दिन पिताजी आये तो उनसे सारी बात कही। उन्होंने पूछा—'कोई बुरी किताब तो नहीं पढ़ी?'

मैंने कहा—'मेरे पास उपनिषदोंके सिवा कोई किताब है ही नहीं।'

वे बोले—'किसी बुरे आदमीकी बातें तो नहीं सुनी?'

मैंने कहा—'यह फाँसीकी कोठरी है। यहाँ आयेगा कौन?'

वे बोले—'कोई बुरा खाना तो नहीं खाया?'

मैंने कहा—'खाना तो बहुत स्वादु था। एक नया कैदी आया है। उसने बनाया था।'

पिताजीने जेलवालोंसे पूछा तो पता लगा कि यह नया कैदी एक नौजवान लड़कीसे बलात्कार करनेके अपराधमें कैद हुआ है। उसकी सारी कहानी सुनी तो वह ठीक वही थी जो मैंने सपनेमें देखी थी।

प्रकट है कि उसके बाद मैंने उसका बनाया हुआ भोजन नहीं किया, फिर वह सपना भी नहीं आया।

तब समझा कि हमारे शास्त्र भोजन बनानेवालेकी शुद्धता-पर जो इतना जोर देते हैं, सो क्यों देते हैं।*

—रणवीर

---

* भोजन एक पवित्र यज्ञ है, जिसके द्वारा वैश्वानररूपसे अन्तरमें विराजित भगवान्‌की पूजा होती है, वह जीभकी तृप्तिके लिये खाया जानेवाला 'खाना' नहीं है। भोजनका मन तथा शरीर-पर अनिवार्यरूपसे बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त सत्य घटनासे यह सिद्ध होता है—भोजन बनानेवाले व्यक्तिके विचार-परमाणु भी भोजन करनेवालेके मनपर अपना प्रभाव डालते हैं। इसीलिये भोजनकी पवित्रतापर शास्त्रोंने इतना जोर दिया है। भोजनकी पवित्रताके लिये नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं।

( क ) भोजन जिन पदार्थोंसे बना है वे पदार्थ सत्य और न्यायसंगत रीतिसे उपार्जित धनसे खरीदे हुए हों, अन्यायोपार्जित धनसे अन्नकी अशुद्धि होती है और खानेवालेकी बुद्धि बिगड़ती है।

( ख ) भोजन करानेवालेके मनमें प्रेम तथा सद्भाव हो, द्वेष या असद्भाव न हो। इसीलिये श्रीकृष्णने दुर्योधनके यहाँ भोजन नहीं किया था। द्वेष, दुःख और असद्भावयुक्त भोजनसे शरीरमें रोग होते हैं और मानस रोगोंका भी उदय तथा संवर्धन होता है।

( ग ) भोजन बनानेवाला स्नान किया हुआ शुद्ध हो, स्वच्छ कपड़े पहने हो, उसके कोई रोग न हो, वह काम, क्रोध, भय, हिंसा, विषाद आदिकी मानस स्थितिमें न हो। सर्वथा शुद्ध आचार-विचारवाला हो।

( घ ) भोजन बनानेका स्थान गन्दगी भरा न हो, शुद्ध धोया हुआ हो, अहिंसामय हो, एकान्त हो, सम्भव हो तो गोबर तथा शुद्ध मिट्टीसे लिपा-पुता हो।

( ङ ) भोजन-पदार्थ राजस-तामस न हों—अधिक खट्टा, अधिक नमकीन, अधिक कड़वा, अधिक तीखा, अधिक गरम, जलन पैदा करनेवाला और रूखा तथा मनमें रजोगुणीवृत्ति—भोगवासना उत्पन्न करनेवाला भोजन राजस होता है। एवं रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठे, अमेध्य, मनमें पापवृत्ति तथा विकार पैदा करनेवाले—लहसुन-प्याज आदि पदार्थ तामसिक हैं और अण्डे तथा मांस आदि तो घोर तामसिक है। इनसे बुद्धिका सत्त्वनाश तथा विभिन्न मानस तथा शारीरिक रोगोंकी निश्चित उत्पत्ति होती है।

( च ) किसीका जूँठा न हो। जब भोजन बनानेवालेके अन्तरस्थ विचारोंके परमाणुओंका खानेवालेपर असर होता है तब जूँठनका असर तो निश्चय होगा ही। जूँठन खाना अत्यन्त हानिकर है। आजकल जूँठनका विचार प्रायः उठ गया है। व्यक्तिगत ही नहीं, सामूहिक 'बफे पार्टी'में प्रत्यक्ष पशु-आचारवत् जूँठन खायी जाती है। यह बड़ा ही घातक है।

—सम्पादक

---

( ६ )

## एक अद्भुत चमत्कारी कवच ! आप सिद्ध कर देखें!

चौदह-पंद्रह वर्षकी कन्या बुखारसे बड़बड़ा रही है। कई दिनोंसे बुखारकी तेजी ही कम होनेमें नहीं आ रही है। डाक्टरी उपचार चल रहे हैं, किंतु गरमी, सिर-दर्द, पीड़ा और ज्वरका प्रकोप कम नहीं हो रहा है। डाक्टर परेशान और घरवाले उद्विग्न! अब क्या करें।

मेरे चचा डा० बेनीचरण महेन्द्र ( अध्यक्ष विज्ञानविभाग, आगरा कालेज ) उसे देखने गये। लड़कीकी बुरी हालत थी। वह तड़पती हुई विस्फारित नेत्रोंसे आनेवालोंको देखती, ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कह न पाती । सभी बड़े परेशान थे । चचा साहब भी बीमारके समीप आ खड़े हुए । उन्हें देखकर उस कन्यामें कुछ जागृति-सी आयी। वह लड़खड़ाती-सी जबानमें बोली··· स्तोत···स्तोत ।'

'स्तोत' क्या, कोई भी न समझ पाया । हमारे चचाजी यकायक उस लड़कीका अभिप्राय समझे और बोले, 'ले बिटिया, तूने अच्छी याद दिलायी ! अभी स्तोत्रसे तेरा बुखार दूर करता हूँ ।'

कौन-सा स्तोत्र ! कैसा स्तोत्र ! क्या यह भी चिकित्सा-शास्त्रकी कोई नयी खोज है ? हमलोग कुछ भी समझ न पाये ।

उधर चचा साहब, बीमारके पास सिरहाने बैठ गये और उसके ऊपर हाथ फेरते हुए संस्कृतमें कुछ मन्त्र परम श्रद्धा और पूर्ण विश्वासके साथ उच्चारण करने लगे । वे उस मन्त्रके शब्दों, छिपे हुए विचारों और गुप्त संकेतों (Suggestions) में तन्मय हो गये । लगभग दस मिनिटतक बीमारका कमरा मन्त्र-ध्वनिसे मुखरित होता रहा । सारा वातावरण मन्त्रकी आवाजसे गूँजने लगा । कन्या शान्त दिखायी देने लगी, उसकी पीड़ा कम दिखायी दी और धीरे-धीरे जैसे किसी अदृश्य गुप्त शक्तिका प्रभाव उसपर होने लगा । उसे नींद आ गयी । सभी चकित थे । लड़कीकी तड़पन कम हो चुकी थी । फिर बुखार नापा गया, तो सबने आश्चर्यसे देखा कि सचमुच वह कम होकर ९९ पर आ गया था । वह एक हैरतमें डालनेवाला दृश्य था । जहाँ डाक्टरका इन्जेक्शन कुछ काम न कर सका था, वहाँ हमारे चचाजी-का चमत्कारी स्तोत्र काम कर गया था । वह कौन-सा करिश्मा था, सब पूछने लगे ।

सभी उस स्तोत्रकी बातचीत सुनने लगे। हमारे चचाजी-ने बताया, 'मैंने इस अद्भुत स्तोत्रका प्रयोग अनेक संकट-कालीन परिस्थितियोंमें किया है । बिच्छू काटनेसे लेकर ऋणग्रस्तता, नौकरी छूटना, बुखार, तबियत खराब होना, गमी, मुसीबत, विपत्ति, सिर-दर्द, चिन्ता और अन्यान्य संकटकालीन परिस्थितियोंमें काममें लिया है । हर तकलीफमें इस स्तोत्रने अपना चमत्कार दिखाया है । मुझे ही नहीं सैकड़ोंको अद्भुत लाभ पहुँचा है ।'

हमने पूछा, आपको यह किसने सिखाया ?

वे बोले, 'एक बार हम बीमार पड़े थे । बीमारीसे बड़े परेशान थे । मन बड़ा उद्विग्न था । सब प्रकारके उपाय करके हार रहे थे । हमसे मिलने एक मित्र आये तो उन्होंने उन्हीं दिनों आगरेमें आये हुए एक महात्माका नाम बताया और उनसे सलाह लेनेको कहा । महात्माजीको बड़ी कठिनाईसे लाया गया, तो उन्होंने एक स्तोत्रका पाठ किया और देखते-देखते दस मिनिटमें मुझे मानसिक बल मिला । स्तोत्रका अर्थ विस्तारसे समझा और पूर्ण विश्वासके साथ उसे नवरात्रमें सिद्ध किया । अब यह मेरी पेटेन्ट दवाई बन गया है । अनेक व्यक्ति संकटके समय मुझे बुलाकर इसका पाठ कराते हैं और सदैव लाभ उठाते हैं । इसमें अपूर्व शक्ति, साहस और गुण भरे हुए हैं । यह बड़ा गुणकारी है । इसके एक-एक शब्दमें नयी शक्ति उत्पन्न करनेका रहस्य भरा पड़ा है । यह एक चमत्कारी कवच है ।'

मैंने पूछा, 'आप तो विज्ञानके आचार्य हैं । आपको इस स्तोत्रपर कैसे विश्वास हुआ ? धर्म और विज्ञान तो बिल्कुल पृथक् दिशाओंमें चलते हैं ! एक श्रद्धाप्रधान है, तो दूसरा बुद्धिप्रधान ।'

वे बोले, 'आप जानते हैं कि ध्वनिका प्रभाव मनुष्यके शरीर और मनपर पड़ता है । युद्धमें बन्दूक, बम, बारूदके फटाके तथा भीषण ध्वनियोंसे मनुष्यके शरीर और मनमें अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कितनोंहीके मुँह टेढ़े हो जाते हैं, लकवा हो जाता है, नाड़ीसंस्थान कमजोर पड़ जाता है और हृदयके अनेक रोग विकसित हो जाते हैं । तेज आवाजसे वायु-मण्डलमें कम्पन पैदा होते हैं जो वायुके माध्यमसे मनुष्यके मस्तिष्कपर मजबूत प्रभाव डालते हैं। यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है । इससे रोगी और चिन्तित मनमें शान्ति और बल पैदा हो सकता है। जिस स्तोत्रको मैं पढ़ता हूँ, उससे वायुमण्डलमें आरोग्य, बल, शान्ति और रक्षाकी वृद्धि होती है । ये कम्पन बीमारके गुप्त मनमें जाकर रोग-शोक, पीड़ा और परेशानीके विचार दूरकर दिव्य मानसिक बलकी सृष्टि करते हैं । इस आत्मबलसे ही रोग दूर होते हैं । जितनी पुष्टतासे व्यक्ति स्तोत्रका पाठ करता है, उतनी शीघ्रतासे ही क्लेश और परेशानी दूर होकर आनन्द और स्वास्थ्यकी स्थिति आती है । यह मनो-वैज्ञानिक प्रक्रिया ( दवाई ) है ।

## वह स्तोत्र कौन-सा है ?

इस चमत्कारी स्तोत्रका नाम 'रामरक्षास्तोत्र' है । इसके बुध कौशिक ऋषि हैं । इसमें महासती सीता तथा महा-शक्तिकेन्द्र भगवान् श्रीराम इसके देवता हैं । श्रीमान् हनुमान्जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके कीलक हैं। यह अनुष्टुप् छन्दमें लिखा गया है। भगवान् रामकी इतनी प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं कि उनकी सिद्धिसे संसारके सब शारीरिक और मानसिक रोग दूर किये जा सकते हैं। सिद्धिकर्त्ताको बड़े विश्वास और आत्म-श्रद्धासे इसका पुनः-पुनः पाठ करना चाहिये और विशेषरूपसे नवरात्रमें इसको सिद्ध करना चाहिये। रामनवमी भी इसके लिये पवित्र अवसर है।

उत्तम तो यह है कि 'रामरक्षास्तोत्र' का अर्थ समझ लिया जाय; क्योंकि इसके अक्षर-अक्षरमें शक्ति-संचारकी पवित्र भावनाएँ भरी पड़ी हैं।

## लीजिये आप भी सिद्ध कीजिये

नीचे लिखे रामरक्षा स्तोत्रपर ध्यान एकाग्र कीजिये। उच्च स्वरसे और प्रगाढ़ श्रद्धापूर्वक उच्चारण कीजिये। आपमें भगवान् श्रीरामके प्रति जितना अखण्ड विश्वास होगा, उतना ही लाभ होगा। बिना श्रद्धाके कुछ लाभ न मिलेगा।

'रामरक्षा स्तोत्र' एक मनोवैज्ञानिक ओषधि है। इसमें वे सब भव्य विचार भरे पड़े हैं जिनसे मानसिक रोग दूर होते हैं और अलौकिक शक्ति उत्पन्न होती है।

जब आप बेहद घबरा रहे हों, परेशानी मारे डालती हो, जीना न चाहते हों, घोर अशान्ति और घृणामेंसे गुजर रहे हों, जीवन नीरस और दुखी मालूम होता हो, संसार कपटी, निर्दयी और पाखण्डी प्रतीत होता हो तो आप रामरक्षा स्तोत्रका पाठकर सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्तिसे जरूर लाभ उठायें। धन-बल, विद्याबल और बुद्धिबलसे भी अधिक बलवान् यह मन्त्र है। इससे कुसंस्कार दूर होकर शुभ संस्कार जमते हैं और आशाकी किरणें फूट निकलती हैं। हजारों व्यक्ति रामरक्षा-स्तोत्रसे मृत्यु, परेशानी, पागलपन और आत्महत्या-जैसे रोगोंसे बचे हैं। इससे शरीर रोगविहीन होता है, आरोग्यकी वृद्धि होती है, मस्तिष्क तथा ज्ञानतन्तु पुष्ट होते हैं, स्मरणशक्ति तीव्र होती है, रक्तचाप (ब्लडप्रेसर) और हृदय-रोग मूलसे दूर हो जाते हैं। हमारे मानसिक स्वास्थ्य और संतुलन (Mental balance) के लिये इसका प्रतिदिन पाठ किया जाय तो गुणकारी है। प्रत्येकको पूजाके साथ प्रतिदिन इसका अभ्यास करना चाहिये। (अनुष्ठानके लिये रोज ११ पाठ हों तो उत्तम है)

## चमत्कारी रामरक्षा-स्तोत्र

**चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।**
**एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥ १॥**

श्रीरघुनाथजीका चरित्र सौ करोड़ विस्तारवाला है और उसका एक-एक अक्षर भी मनुष्योंके बड़े-से-बड़े पापोंको नाश करनेवाला है।

**ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम्।**
**जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम्॥ २॥**
**सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम्।**
**स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥ ३॥**
**रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम्।**
**शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः॥ ४॥**

जो नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, जटाओंके मुकुटसे सुशोभित, हाथोंमें खड्ग, तूणीर, धनुष और बाण धारण करनेवाले, राक्षसोंके संहारकारी तथा संसारकी रक्षाके लिये अपनी लीलासे ही अवतीर्ण हुए हैं, उन अजन्मा और सर्वव्यापक भगवान् रामकी सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित यादकर प्राज्ञ पुरुष इस सर्वकामप्रदा और पाप-विनाशिनी रामरक्षाका पाठ करे। वे कहें कि राघव मेरे सिरकी और दशरथात्मज मेरे ललाटकी रक्षा करें।

**कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती।**
**घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः॥ ५॥**

कौसल्यानन्दन वे श्रीराम मेरे नेत्रोंकी रक्षा करें। विश्वामित्रप्रिय कानोंको सुरक्षित रक्खें और यज्ञरक्षक श्रीराम नाक तथा सौमित्रिवत्सल मेरे मुखकी सदैव रक्षा करें।

**जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः।**
**स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः॥ ६॥**
**करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित्।**
**मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः॥ ७॥**
**सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः।**
**ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत्॥ ८॥**
**जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दशमुखान्तकः।**
**पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपु॥ ९॥**

मेरी जिह्वाकी विद्यानिधि, कण्ठकी भरतवन्दित, कंधोंकी दिव्यायुध और भुजाओंकी महादेवजीका धनुष तोड़नेवाले वीर राम रक्षा करें। हाथोंकी सीतापति, हृदयकी परशुरामजीको जीतनेवाले राम, मध्यभागकी खर नामके राक्षसका नाश करनेवाले और नाभिकी जाम्बवान्के आश्रय-रूपी राम रक्षा करें। मेरी कमरकी सुग्रीवके स्वामी, सक्थियोंकी हनुमत्प्रभु और ऊरुओंकी राक्षसकुल-विनाशक रघुश्रेष्ठ श्रीराम रक्षा करें। मेरे जानुओंकी सेतुकृत, जंघाओंकी रावणको मारनेवाले, चरणोंकी विभीषणको ऐश्वर्य देनेवाले और वीर श्रीराम मेरे सारे शरीरकी रक्षा करें।

**एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्।**
**स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्॥ १०॥**
**पातालभूतलव्योमचारिणीश्छद्मचारिणः।**
**न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः॥ ११॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् ।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ १२ ॥
जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम् ।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥ १३ ॥

जो पुण्यपुरुष रामबलसे सम्पन्न इस रक्षाका पाठ करता है, वह दीर्घायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनय-सम्पन्न होता है। जो जीव पाताल, पृथ्वी अथवा आकाशमें विचरते हैं और जो छद्मवेशसे घूमते रहते हैं, वे रामनामोंसे सुरक्षित पुरुषको देख भी नहीं सकते। 'राम' 'रामभद्र' 'रामचन्द्र' आदि पवित्र नामोंका स्मरण करनेसे मनुष्य पापोंमें लिप्त नहीं होता है। वह इन नामोंकी शक्तिसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

जो पुरुष जगत्को विजय करनेवाले एकमात्र मन्त्र रामनामसे सुरक्षित इस स्तोत्रको कण्ठमें धारण करता है, अर्थात् जबानी याद कर उपयोगमें लाता है, उसे संसारकी सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत् ।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥१४॥

जो मनुष्य वज्रपञ्जर नामक इस रामकवचका स्मरण करता है, उसकी आज्ञाका कहीं उल्लङ्घन नहीं होता और उसे सर्वत्र जय और मङ्गलकी प्राप्ति होती है।

आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः ।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥१५॥

श्रीशिवजीने रात्रिके समय स्वप्नमें इस रामरक्षाका जिस प्रकार आदेश दिया था, उसी प्रकार प्रातःकाल जागनेपर बुध-कौशिक ऋषिने इसे लिख दिया।

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् ।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः ॥१६॥

जो मानो कल्पवृक्षोंके बगीचे हैं तथा समस्त आपत्तियोंका अन्त करनेवाले हैं, जो तीनों लोकोंमें परम सुन्दर हैं, वे श्रीमान् राम हमारे प्रभु हैं।

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१७॥
फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥१९॥

जो तरुण अवस्थावाले, रूपवान्, सुकुमार, महाबली, कमलके समान विशाल नेत्रवाले, चीरवस्त्र और कृष्णमृगचर्म-धारी, फल-मूल आहार करनेवाले, संयमी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, सम्पूर्ण जीवोंको शरण देनेवाले, समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और राक्षस-कुलका नाश करनेवाले हैं, वे रघुश्रेष्ठ दशरथकुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई हमारी रक्षा करें।

आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम्॥२०॥
सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा ।
गच्छन्मनोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२१॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली ।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः ॥२२॥
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः ।
जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२३॥
इत्येतानि जपेन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः ।
अश्वमेधायुतं पुण्यं स प्राप्नोति न संशयः ॥

जिन्होंने संधान किया हुआ धनुष ले रक्खा है, जो बाण-का स्पर्श कर रहे हैं तथा अक्षय बाणोंसे युक्त तूणीर लिये हुए हैं, वे राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करनेके लिये मार्गमें सदा ही मेरे आगे चलें।

सर्वदा उद्यत, कवचधारी, हाथमें खड्ग लिये, धनुष-बाण धारण किये तथा युवा अवस्थावाले भगवान् राम लक्ष्मणजीके सहित ( आगे-आगे ) चलकर हमारे मनोरथोंकी रक्षा करें।

( भगवान्का कथन है कि ) राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, पूर्ण, कौसल्येय, रघूत्तम, वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुराणपुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् और अप्रमेयपराक्रम—इन नामोंका नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक जप करनेसे मेरा भक्त हजारों अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक फल प्राप्त करता है—इसमें कोई संदेह नहीं।

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥

जो लोग दूर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, पीताम्बरधारी, भगवान् श्रीरामका इन दिव्य नामोंसे स्तवन करते हैं, वे संसारचक्रमें नहीं पड़ते।

उपर्युक्त स्तोत्रके अक्षर-अक्षरमें शक्ति भरी हुई है। पूर्ण विश्वासके साथ जपनेसे चमत्कारी फल प्राप्त होते हैं। आप भी सिद्ध कर देखिये।

—डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, पी-एच्० डी०

( ७ )

## अभिभावककी त्यागभावना

जूनका महीना था। सब हाई स्कूल खुल गये थे। नये सत्रका पहला दिन था। विद्यार्थियोंके अभिभावक

१. पूरे स्तोत्रके लिये पाठकोंको गीताप्रेस, गोरखपुरकी 'स्तोत्र-रत्नावली' पुस्तक पढ़नी चाहिये। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकके बाद एक चले आ रहे थे। जिस अभिभावककी वार्षिक आय १२००) रुपयेसे कम हो, सरकारकी ओरसे उसके बालकोंकी फीस ई० बी० सी० माफ की जाती थी। लगभग सभी अभिभावक इससे लाभ उठा रहे थे। शामतक माफी चाहनेवालोंमें, जो पढ़े-लिखे थे वे माफीके फार्मपर हस्ताक्षर करके और बिना पढ़े-लिखे लोग बायें हाथके अँगूठेकी छाप लगाकर उपकार मानकर चले गये।

मेरे क्लासमें एक सिंधी लड़की नये वर्षसे भर्ती हुई थी। स्कूलका समय पूरा होनेपर मैं हाजिरी रजिस्टर लेकर स्टाफरूममें आकर कुरसीपर बैठ गया। इतनेमें वह सिंधी लड़की स्टाफरूमके दरवाजेपर दिखायी दी। 'कैसे आना हुआ बहिन ?' मैंने सीधा प्रश्न किया। उसने जरा सकुचाते हुए कहा—'साहेब ! मेरे पिताजीने पुछवाया है कि 'मैं यदि एक सप्ताह बाद फीस भरूँ तो कोई आपत्ति है ?' मैंने नकारमें सिर हिलाते हुए कहा—'नहीं, कोई आपत्ति नहीं है, परंतु तुम्हारे पिताजीको कल आते समय स्कूलमें साथ ले आना।' 'अच्छी बात है'—कहकर लड़की चली गयी।

दूसरे दिन एक अधेड़ सद्गृहस्थ मेरी आफिसमें आये, वह लड़की साथ थी। इससे मैंने अनुमान कर लिया कि ये उसके पिता होंगे। आते ही वे दोनों हाथ जोड़कर मुसकराते हुए खड़े हो गये। उनकी पोशाक देखनेसे कल्पना होती थी कि वे कोई अफसर होने चाहिये।

मैंने कहा—'देखिये, सरकारकी ओरसे यह घोषणा की गयी है कि जिस अभिभावककी वार्षिक आय १२००) रुपयेसे कम हो, उसके बच्चोंकी ई० बी० सी० फीस माफ कर दी जाय। आपकी इच्छा बच्चीकी फीस माफ करानेकी हो तो मैं फार्म दूँ।'

मेरा यह स्पष्टीकरण सुनकर, आजतक किसी भी अभिभावकके मुखसे नहीं सुने गये थे, ऐसे वचन उन्होंने कहे—'नहीं जी, मेरा मासिक वेतन दो सौ रुपये है। कुटुम्बके आधे दर्जन सदस्योंका भरण-पोषण इसी आयसे करता हूँ। इधर मेरे लिये सब नया है। अतः पहला वेतन सब घरकी चीजोंके जुटानेमें खर्च हो गया। अब चार दिनोंके बाद वेतन मिलेगा। आपको एतराज न हो तो—' 'नहीं, नहीं, मुझे कोई एतराज नहीं है।' उनके कथनका मर्म समझकर मैंने उनका वाक्य पूरा नहीं होने दिया। 'परंतु बड़े-बड़े जमींदार और सेठ लोग भी अपने बच्चोंकी फीस माफ करवानेके फार्म भर गये हैं।' मैंने कहा।

वे बोले—'ठीक है, वे सरकारकी आँखोंमें धूल झोंकक ठग सकते हैं, लेकिन मैं अपनी आत्माको कैसे धोखा दूँ! इस प्रकार प्राप्त की हुई विद्या व्यर्थ होती है। ईमानदारीका निर्भय जीवन ही सच्चा जीवन है।' मैंने उनकी आँखोंमें ईमानदारीके स्पष्ट दर्शन किये। इतनेमें प्रार्थनाकी घंटी सुनायी दी। वे अभिवादन करते हुए उठ खड़े हुए और उन्होंने मेरे पाससे जानेकी अनुमति चाही। उन्हें जाते देखकर मेरा मन उनके प्रति नमित हो गया। अवर्णनीय आनन्द

—मफतलाल सक्सेना

( ८ )

## गिद्धनीका सतीत्व

जिला सीतापुर त० मिश्रितके अन्तर्गत पवित्र तपोभूमि नैमिषारण्य एवं मिश्रित तीर्थके बीचमें एक गौआपुर नामक ग्राम है। खेतमें फसल कट जानेपर वर्तमान समय मैदान हो गया है। उसी स्थानकी यह सत्य एवं रहस्यपूर्ण घटना है। गत वैशाख पूर्णमासी शनिवार तदनुसार दिनाङ्क १९ मई सन् १९६२ ई० को खेतमें एक मृतक पक्षी गृध्र पड़ा देखा गया, जिसपर मादा पक्षी गिद्धनी उस मृतक-शवको अपने परोंसे ढके बैठी थी। ग्रामके कुछ बच्चोंने उस गिद्धनीको ईंटके ढेलोंसे मारा। पर वह अपनी जगहसे नहीं हटी। तब बच्चे उसे पकड़कर ग्राममें ले आये, परंतु ग्रामके निवासियोंने उसे छुड़वा दिया। वह गिद्धनी वहाँसे छूटकर पुनः मृतक गिद्धके शवके पास पूर्ववत् बैठ गयी। जब तीन-चार दिनोंतक यही क्रम रहा तो ग्रामके मनुष्य जाकर कौतूहलसे चरित्र देखने लगे। उस पक्षिणीका यह नियम था कि यदि कोई उसे छू लेता था तो वह स्नान करके पुनः अपने स्थानपर पूर्ववत् बैठ जाती थी। स्नानके लिये नहर समीपमें थी। उसने खाना और पीना बिल्कुल छोड़ दिया था। परंतु यदि कोई मनुष्य आकर उससे यह कहता कि 'यह गङ्गाजल है' तो वह कुछ विचार कर गङ्गाजलको ग्रहण कर लेती थी। कोई झूठ ही पानीको गङ्गाजल कह देता तो उसे नहीं पीती थी। उस मृतक गिद्धके शवसे दुर्गन्ध भी नहीं आती थी। उसे देखने सभी प्रकारके लोग सरकारी उच्चाधिकारी भी आये। अनेकों प्रकारसे उसकी परीक्षा ली गयी परंतु वह परीक्षामें सफल हुई। इस प्रकार दो सप्ताह व्यतीत होनेपर गत ज्येष्ठ अमावस्या शनिवार दिनाङ्क २ जून सन् ६२ ई० को चार बजे उस पक्षिणीने भी प्राण त्याग दिये। प्रातः ज्येष्ठ प्रतिपदाको सर्वसम्मतिसे चिता बनाकर विधिपूर्वक दोनोंका दाह-संस्कार किया गया।

—ब्रह्मानन्द ठेकेदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

तीन नयी पुस्तकें ! प्रकाशित हो गयीं !!

पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

महाकवि नंददासजीप्रणीत

# भ्रमर-गीत

( टिप्पणी और समभावद्योतक सूक्तियोंसहित )

सम्पादक—पं० श्रीजवाहरलालजी चतुर्वेदी

आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४२०, मूल्य १.५० । डाकखर्च .९७, कुल २.४७ ।

व्रजभाषा-साहित्यके अमर कवि श्रीनंददासजीने इस भ्रमर-गीतमें गुननगरूले नये छंदकी गागरमें सम्पूर्ण भावोंका 'सागर' भर दिया है। यह विरह-विभूषित-काव्य-विषय श्रीनंददासजीकी नवरसमयी मुहावरेदार व्रजभाषाको पाकर सुगठितरूपमें इतना ऊँचा उठा हुआ है कि उसकी समसरि कोई भी कवि नहीं कर सका है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें उद्धृत संस्कृत, हिंदी और उर्दू पदोंकी अकारादिक्रमसे सूची दी गयी है। भ्रमर-गीत ( मूल ) पाठान्तरोंसहित, उसके प्रत्येक पदपर विस्तृत टिप्पणी और सम-भावद्योतक सूक्तियाँ तथा उनपर विशद विवेचन किया गया है। परिशिष्ट ( क ) में श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके भ्रमरगीतके अध्याय ४६ और ४७ का मूल पाठ हिंदी-अर्थसहित, परिशिष्ट ( ख ) में श्रीसूरदासजीकृत भ्रमर-गीत ( पाठान्तर-सहित ) और परिशिष्ट ( ग ) में 'जुक्ति-समूह' नामक श्रीसदाशिवलालकृत संवत् १८८६ वि० में लिखित एक कलात्मक कृति दी गयी है।

भावुक भक्तों और साहित्यिकोंके यह बहुत ही कामकी पुस्तक तैयार हुई है।

# थानेदारीसे इस्तीफा

लेखक—श्रीपारसनाथजी सरस्वती

आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-सं० १६४, मूल्य •६५ ( पैंसठ नये पैसे ) डाकखर्च .७०; कुल १.३५ ।

इसी लेखककी 'एक लोटा पानी' नामक पुस्तकको जनताने इतनी पसंद की कि १०,००० प्रतियोंका संस्करण लगभग तीन महीनोंमें ही प्रायः समाप्त हो गया और उसका नया संस्करण छापना पड़ रहा है। इसे स्कूलोंके पाठ्यक्रमतकमें स्थान मिल गया। उसी ढंगकी यह पुस्तक है। इसमें भक्ति तथा सदाचार सिखानेवाली तेईस चुलबुली कहानियाँ हैं जिनके शीर्षक हैं—( १ ) थानेदारीसे इस्तीफा ( २ ) राम-नामकी महिमा ( ३ ) रामभक्त मुसलमान ( ४ ) भक्त तहसीलदारजी ( ५ ) भगतके बसमें हैं भगवान् ( ६ ) ईश्वरमें विश्वास ( ७ ) मसखरी ( ८ ) भगत मन्सूर ( ९ ) भक्त रहीम ( १० ) भगत धन्ना जाट ( ११ ) भगत हरिवंशजी ( १२ ) प्रत्येक भक्तका महत्त्व पृथक् है ( १३ ) हिंदू-कन्या ( १४ ) माताका आदर्श ( १५ ) भ्राताका आदर्श ( १६ ) भक्त कन्याका आदर्श ( १७ ) बहिनका आदर्श ( १८ ) पतिव्रताकी परीक्षा ( १९ ) वीराङ्गना ( २० ) पतिव्रताकी परीक्षा ( २१ ) सती गुणसुन्दरी देवी ( २२ ) सती जयदेवीजी तथा ( २३ ) प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा-प्रणाली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रजि० सं० ए० १७५

# आदर्श चरितावली भाग ६

## [ आदर्श देशनेता तथा उनकी शिक्षा ]

[ चुने हुए त्यागी, राजनीतिविशारद, देशभक्त नेताओंके सोलह चरित्र शिक्षासहित ]

पृष्ठ-संख्या ६८, आर्टपेपरका सुन्दर दोरंगा टाइटल, मू० .२५ नये पैसे । डाकखर्च रजिस्टर्ड डाकसे .६५ कुल .९० ।

आदर्श चरितावलीके पाँच भागोंके प्रकाशित हो जानेकी सूचना पहले दी जा चुकी है। यह छठा और अन्तिम भाग है । इसमें निम्नलिखित सोलह सज्जनोंके चरित्र उनकी शिक्षाओंसहित दिये गये हैं—

( १ ) दादाभाई नौरोजी ( २ ) सरफीरोजशाह मेहता ( ३ ) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ( ४ ) सर आशुतोष मुखर्जी ( ५ ) लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ( ६ ) गोपालकृष्ण गोखले ( ७ ) महामना पं० मदनमोहन मालवीय ( ८ ) महात्मा गान्धी ( ९ ) विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ( १० ) पं० मोतीलाल नेहरू ( ११ ) लाला लाजपतराय ( १२ ) देशबन्धु चित्तरञ्जनदास ( १३ ) विट्ठलभाई पटेल ( १४ ) सरदार वल्लभभाई पटेल ( १५ ) नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और ( १६ ) डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ।

आदर्श चरितावलीके पहले प्रकाशित पाँच भागोंमें भी प्रत्येक भागमें सोलह-सोलह सज्जनोंके चरित्र उनकी शिक्षाओंसहित दिये गये हैं । मूल्य प्रत्येक भागका .२५ ( पच्चीस नये पैसे ) है। प्रत्येक भागका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

भाग १ में—चुने हुए ऋषि-मुनि-संत-भक्तोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षाओंसहित ।
भाग २—चुने हुए विभिन्न आचार्य, मतप्रवर्तक तथा युगनायकोंके सोलह चरित्र तथा शिक्षा ।
भाग ३—चुने हुए संत-महात्मा-योगी-साधकोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षाओंसहित ।
भाग ४—चुने हुए पैगम्बर, संस्कारक, सुधारक संतोंके सोलह चरित्र शिक्षासहित ।
भाग ५—चुने हुए प्रसिद्ध सम्राट्, राजा, शासक, रानी आदिके सोलहचरित्र शिक्षासहित।

छहों भागोंको एक साथ मँगवानेपर मू० रु० १.५०, डाकखर्च रजिस्टर्ड डाकसे .९४ कुल २.४४।

☞ पुस्तकोंका आर्डर यहाँ भेजनेसे पहले अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये । प्रायः सभी हिंदीके अच्छे पुस्तक-विक्रेतागण गीताप्रेसकी पुस्तकें छपे हुए दामोंपर बेचते हैं । इससे आप भारी डाकखर्चसे बच सकते हैं ।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

# कल्याणका 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क'

## ( दो बारमें एक लाख इक्यावन हजार छप चुका )

ग्राहकोंकी माँग अच्छी है । आप भी अपने इष्ट-मित्रोंको ग्राहक बनाकर इस सुअवसरसे लाभ उठा सकते हैं । बिक जानेपर पिछले विशेषाङ्कोंकी तरह इसका भी पाना दुर्लभ हो सकता है ।

वार्षिक मूल्य पूरे सालभरके अङ्कोंसहित केवल रु० ७.५० । डाकखर्च हमारा ।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

वर्ष ३६
अङ्क ९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
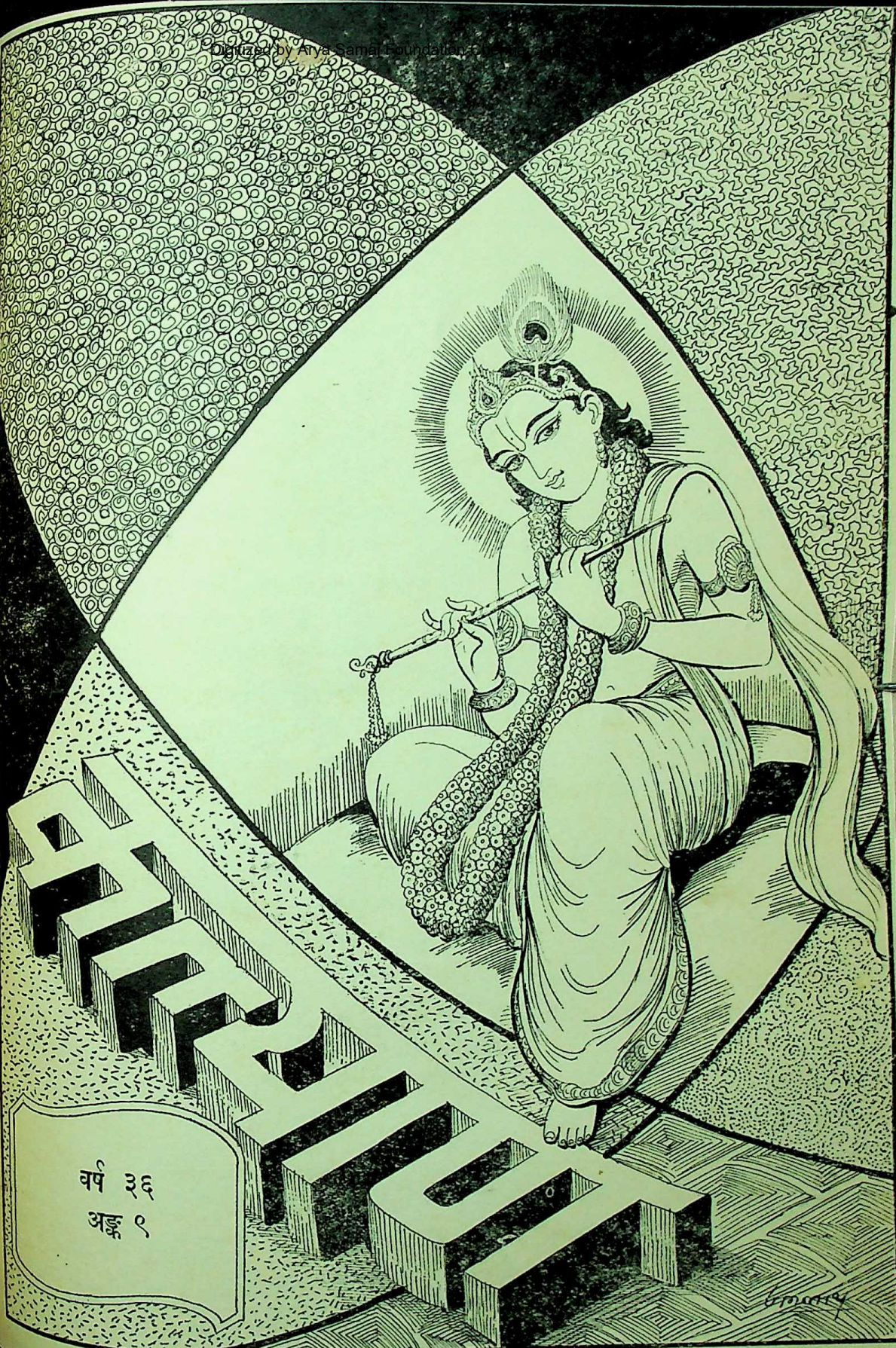
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपीप्रिय राधेश्याम॥

संस्करण—१,४८,००० ( एक लाख अड़तालीस हजार )

# विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन २०१९ सितम्बर १९६२



## चित्र-सूची



वार्षिक मूल्य ( भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु० १०.०० १५ शिलिंग )

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें .४५ विदेशमें .५१ ( १० पैंस )

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## बड़भागी कौआ

आइ खावहु पूप, खेलहु लाल सँग खग-मौर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# कल्याण

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ | गोरखपुर, सौर आश्विन २०१९, सितम्बर १९६२ | संख्या ९
पूर्ण संख्या ४३०

## बड़भागी काग

लालन ! देखु आयौ काग ।
खान पूआ हाथ तेरे मधुर अति बड़भाग ॥
देउँ पूआ ताहि मैया ! देखु जाइ न भाज ।
ढिंग बुलावहु काग, खेलौं तेहि सँग हौं आज ॥
लाल के सुनि बैन जननी रही काग निहोर ।
आइ खावहु पूप, खेलहु लाल सँग खगमौर ॥



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद रक्खो—तुम्हें जो तन-मन-धन, शक्ति-बल, बुद्धि-विवेक, पद-अधिकार मिला है, सब भगवत्सेवाके लिये मिला है। यही उनका सदुपयोग है। बड़ी सावधानीके साथ प्रत्येक वस्तुका सदुपयोग करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है और उस वस्तुकी सार्थकता है। यदि तुम सावधानी नहीं रक्खोगे तो उनका दुरुपयोग होगा; शरीरको सत्कार्योंमें नहीं लगाओगे, वह दुष्कार्योंमें लगेगा; मनसे सच्चिन्तन नहीं करोगे, वह बुरा चिन्तन करेगा; धनको गरीबोंकी सेवामें नहीं लगाओगे, वह विलासमें लगेगा!

याद रक्खो—किसी भी वस्तुका सदुपयोग न करनेपर या तो उसका दुरुपयोग होता है, जो नयी-नयी बुराइयाँ पैदा करता है, जिनसे दुःखोंकी नयी-नयी भूमिकाएँ बनती हैं अथवा वह वस्तु नष्ट हो जाती है।

याद रक्खो—सबसे मूल्यवान् वस्तु हैं—समय और मन। इन दोनोंको निरन्तर सावधानीके साथ निरन्तर भगवत्सेवा, परमार्थ-साधन, ऊँचे उठानेवाले कार्योंमें लगाये रक्खो। न व्यर्थ खोओ, न प्रमाद करो। आलस्य और दीर्घसूत्रतासे समय व्यर्थ जाता है और न करने योग्य कामोंमें लगाने और करनेयोग्य कामोंमें न लगानेसे प्रमाद होता है। इसी प्रकार मनसे भगवच्चिन्तन या शुभचिन्तन न करके जगच्चिन्तन करनेसे उसका व्यर्थ उपयोग होता है और पाप या अशुभ चिन्तनसे प्रमाद होता है। समयके एक-एक क्षणको भगवान्की सेवाके हेतु सत्कार्यमें नियुक्त रक्खो और मनको व्यर्थ चिन्तन और असच्चिन्तनसे बचाकर नित्य निरन्तर शुभ चिन्तन या भगवच्चिन्तनमें लगाये रक्खो—यही समय और मनका सदुपयोग है।

याद रक्खो—जो वस्तु भगवान्की सेवाके निमित्त लगकर सदुपयोगमें आ गयी, वह तुम्हारी हो गयी। जो धन सेवामें लग गया, वह तुम्हारा हो गया; जीवनका जो समय भगवच्चिन्तनमें लग गया, वह तुम्हारा हो गया; तनके द्वारा जितना सत्कार्य बन गया, वह तुम्हारा हो गया। नहीं तो, ये सब चीजें नष्ट होनेवाली हैं। इन्हें बटोरने और साज-सवाँरकर रखनेसे ये नहीं रहतीं, प्रतिपल इनका नाश हो रहा है और अन्तमें ये सर्वथा नष्ट हो जायँगी। जितना इनको तुमने सत्कार्यमें लगा दिया, उतनी इनकी सार्थकता हो गयी।

याद रक्खो—मानव-जीवनका एक-एक क्षण अमूल्य है; क्योंकि भगवान्की स्मृति-सेवामें लगनेपर वह परम दुर्लभ भगवत्प्राप्तिमें हेतु बनता है। गया क्षण फिर लौटकर आता नहीं, अतएव प्रत्येक क्षणको भगवान्की सेवामें ही नियुक्त रक्खो। जरा-सा भी भगवान्की स्मृति-सेवामें अन्तर न पड़े। श्वास-प्रश्वासकी भाँति लगातार भगवान्की स्मृति-सेवा बनती ही रहे। तुम कहीं भी जाओ, तुम्हारे कार्यका बाहरी निर्दोष रूप कुछ भी हो, भगवान्का मधुर स्मरण कभी न भूले और प्रत्येक कार्यके द्वारा तुम सर्वत्र स्थित भगवान्की सेवा ही कर रहे हो—यह निश्चय बना रहे। ऐसा कर पाये तो तुम सदा सर्वत्र भगवान्का साक्षात्कार और दिनभर उनकी पूजाका ही पवित्रतम कार्य करते रहोगे। यही तुम्हारे जीवनका सदुपयोग है।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

( मूल अंग्रेजी लेखक—ब्र० श्रीजगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशङ्कराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी )

[ अनुवादक—पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि ]

[ अङ्क ८, पृष्ठ १०९५ से आगे ]

## शक्ति-सत् और असत् ( मिथ्या )

सत्, चित् और आनन्दकी दैवीशक्ति हमारे अंदर है जिसे हमें प्रत्यक्ष देखना एवं प्राप्त करना है। उसके लिये हमें चतुर्मुखी शक्ति प्राप्त करनी होगी; क्योंकि वेद कहता है—

**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।**

'बलहीन व्यक्ति इस आत्माका साक्षात्कार नहीं कर सकते।' गीतामें अर्जुनको दुर्बल मस्तिष्कवाला देखकर श्रीकृष्ण कहते हैं—

**क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥**
**सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**
**ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥**

'हे अर्जुन! अपने हृदयकी दुर्बलताको दूर कर, उठ और लड़। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयकी चिन्ता न करते हुए युद्ध करता हुआ तू अपने धर्मका पालन कर, तब पाप तुझे छू भी नहीं सकता।' पर हमारी ये सभी शक्तियाँ ( शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक ) अच्छे कामोंमें ही लगायी जानी चाहिये, बुरे कामोंमें नहीं। अपनी मानसिक-शक्तिको स्वयंको अनुशासनमें रखने और दूसरोंकी सहायता करनेमें लगाओ, नहीं तो निश्चय समझो कि तुम शारीरिक-दृष्टिसे बलवान् होते हुए भी निर्बल ही बने रहोगे। गीताका कथन है—

**बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम्।**

'वही शक्ति दैवी होती है, जो काम और पक्षपातसे रहित है।' शेक्सपीयर भी कहता है—

'राक्षस या दैत्यके समान बलशाली होना उत्तम है, पर उस बलको दैत्यकी ही तरह लोगोंको सतानेमें लगाना उत्तम नहीं। अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक शक्तियोंको दूसरोंकी सहायता करनेमें ही लगाओ, उनको सताने एवं दुःख देनेमें नहीं।'

## श्रीकृष्ण और शिशुपाल

इस प्रसंगमें श्रीमाघ कविद्वारा किया हुआ एक वर्णन स्मरण हो आता है, जिसमें शिशुपाल श्रीकृष्णको भद्दी-भद्दी गालियाँ देता है और श्रीकृष्ण उसे चुपचाप सुनते रहते हैं। तब शिशुपालका एक सहायक श्रीकृष्णकी इस चुप्पीपर फब्ती कसता है और कहता है कि श्रीकृष्ण हार गये। उसी समय सात्यकि प्रत्युत्तर देता है 'क्या बात करते हो? देखो, शिशुपालको तो क्रोधने जीतकर अपने शिकंजेमें जकड़ रक्खा है, जब कि श्रीकृष्णने क्रोधको जीत रक्खा है। अर्थात् शिशुपालको यदि क्रोधने जीत रक्खा है, तो श्रीकृष्णने क्रोधको जीत लिया है, इस प्रकार श्रीकृष्ण शिशुपालको जीतनेवालेको भी जीतनेवाले हैं। तब वे इस क्षुद्र प्राणी ( शिशुपाल ) द्वारा कैसे जीते जा सकते हैं?' पर जब कर्तव्यका समय आता है तो हम देखते हैं कि श्रीकृष्णने क्रोधसे नहीं, अपितु अपना कर्तव्य या धर्म समझकर शिशुपालको नष्ट कर दिया। यह है आत्मानुशासित शक्ति, नैतिक, शारीरिक और मानसिक जिसकी हमें आवश्यकता है और जिसे हमें पाना है।

## परिणाम

इस प्रकारकी शक्ति हमें भगवद्भजनसे ही प्राप्त हो सकती है—

**सोऽहंभावेन पूजयेत्।**

( अपनेको परमात्माके साथ एक करते हुए ही परमात्माकी पूजा करनी चाहिये। ) जिसने अपना स्वर परमात्माके स्वरके साथ मिला दिया, उसके बारेमें भागवतका कथन है—

**सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।**
**भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥**

'जो प्रत्येक पदार्थमें अपनेको तथा परमात्माको देखता है तथा जो अपनेमें और परमात्मामें प्रत्येक पदार्थको देखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वही सच्चा और सर्वश्रेष्ठ भक्त है ।' गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।**

'जो सब पदार्थको वासुदेवके रूपमें देखता है, वह महात्मा दुर्लभ है ।' ऐसे महात्माके विषयमें यम अपने दूतोंसे कहते हैं—

**सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः सः एकः ।**
**इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात् ॥**

'जिन्होंने अपने हृदयके अंदर विद्यमान प्रभुपर भक्तिपूर्वक अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया है तथा जो परमात्माके साथ एक हो गये हैं, उन्हें तुम दूरसे ही छोड़कर आगे चले जाओ ( क्योंकि वे मृत्युको जीत चुके होते हैं, तथा उनका न्याय करना तुम्हारे और मेरे अधीन नहीं है ।' यह परम आनन्दकी स्थिति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, उसका विचार अब करते हैं ।

जब हम इस ज्ञानकी स्थितितक पहुँच जाते हैं तथा निष्कामभावसे सब कार्य करते हैं, तब हम कर्त्तव्योंको कर्त्तव्यकी दृष्टिसे करते हैं, न कि फलाकांक्षाकी दृष्टिसे । और उसका परिणाम यह होता है कि पूर्वजन्मके कमाये हुए सारे पाप और दुःख समाप्त हो जाते हैं । तब अविद्या, काम अथवा कर्म इनका कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता और न इनके कारण होनेवाले जन्मका ही कुछ मतलब रह जाता है । अर्थात् जन्म-मरणका चक्र इस मोक्षकी स्थितिपर आकर सर्वथा समाप्त हो जाता है ।

ठीक है, नये कर्म उत्पन्न न भी हों, पर पिछले कर्मोंका क्या होता है ? इसका उत्तर वेदान्तसूत्र देता है—

**तदधिगम उत्तरपूर्वार्धयोरश्लेषविनाशौ ।**

अर्थात् ज्ञानीके पूर्वसंचित कर्म समाप्त अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं और उसके आगामी कर्म निष्काम भावसे किये होनेके कारण उसके जन्मके हेतु नहीं बनते और प्रारब्ध कर्म भी नष्टगत हो जाते हैं । ऐसी स्थितिमें पहुँचे हुए ज्ञानीकी उस मनुष्यसे उपमा दी जा सकती है कि जिसका बैंकमें कुछ न हो तथा कुछ कमाता न हो और जो कुछ पासमें था वह भी खर्च हो गया हो, अर्थात् उसके पास धन न हो । उसी प्रकार ज्ञानीके भी पूर्वसंचित कर्म नष्ट हो जाते हैं, आगामी भी कुछ नहीं रहता तथा प्रारब्ध भी समाप्त हो जाते हैं । संक्षेपमें उसके कोई कर्म शेष नहीं रहते, जो उसे जन्म-मरणके चक्रमें डाल सकें । उसके विषयमें वेदका कथन है—

**अस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये ।**

'उसकी और ब्रह्मकी एकता होनेमें देरीका कारण उसके कर्म हैं । अर्थात् कर्मके समाप्त होते ही वह ब्रह्मसे मिल जाता है ।'

**न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ।**

'उसके प्राण बाहर नहीं निकलते तथा उसे दूसरे जन्ममें नहीं ले जाते; क्योंकि उसके कर्म सर्वथा समाप्त हो गये होते हैं ।' अपितु—

**अत्र ब्रह्म समश्नुते ।**

'वह यहीं ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है, उसके साथ एक हो जाता है ।' एक उदाहरण इसको स्पष्ट कर देगा—कल्पना करो कि एक कैदी, जो जेलसे छूटा नहीं है, एक जेलसे दूसरे जेलको ले जाया जाता है तो उसके साथ सर्वदा एक पुलिसका आदमी रहता है, जो उसे एक जेलसे दूसरे जेलको ले जाता है, पर यदि वह जेलसे सर्वथा मुक्त हो जाय तो कोई पुलिसका आदमी उसके साथ नहीं रहता । इसी तरह कोई जीवात्मा, बन्धनसे मुक्त न होकर, एक शरीरसे दूसरे शरीरमें यदि जाता है, तो कैदीके साथ पुलिसके आदमीकी तरह प्राण इस जीवात्माके साथ सदा रहता है । पर जब वह मुक्त हो जाता है, तो फिर प्राण उसके साथ नहीं रहता, अतएव उसे दूसरा जन्म भी नहीं लेना पड़ता; क्योंकि वह परमात्माके साथ एक हो जाता है ।

यही हमारे महर्षियोंद्वारा बताया हुआ मार्ग है, जिससे होकर हम अपने मूल स्थान परमात्मातक पहुँच सकते हैं । हम आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीके द्वारा इस संसारमें आये थे, पर 'जनिविपरीतक्रम' ( जैसा कि स्वामी सदाशिवेन्द्र सरस्वतीका कथन है ) द्वारा 'कैवल्य' को वापिस पहुँच जाते हैं । इस प्रकार जीवात्माका विकास पूर्णतापर पहुँच जाता है और हम मानवजीवनके उद्देश्यको, जिसमें उचित-अनुचितको विचार कर कार्य करनेकी सुविधा है, प्राप्त कर लेते हैं । दूसरे प्राणियोंका शरीर 'भोग-क्षेत्र' है, जहाँपर कि जीवात्मा पिछले जन्मोंके कर्मोंका फल भोगता है, इस प्रकार प्राचीन कर्मोंके फलको काटता है; पर मानवीय शरीर एक कर्मक्षेत्र है, जिसमें हम केवल पिछले जन्मोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मोंका फल ही नहीं काटते, अपितु ऐसे नये कर्म भी करते हैं, जो मोक्षके दरवाजोंको खोल दे। इसलिये यह मनुष्य-शरीर सबसे उत्तम है। अतएव मानव-शरीरको पानेके बाद हमें चाहिये कि हम अपने अंदर स्थित परमात्मापर ही अपना ध्यान केन्द्रित करें। यदि हम यह कर लें, तो निश्चय ही हम उत्तम मार्गपर चलकर अपने लक्ष्यपर पहुँच जायँगे। यदि कोई यह कहे कि 'दैनिक जीवनके कार्य ही इतने अधिक हैं कि उन्हींको करते-करते सारा समय बीत जाता है, अतः हमें परमात्माकी उपासना करनेके लिये समय ही नहीं मिलता' तो उसका यह कहना एक बहाना मात्र ही है। वेदान्त कभी यह नहीं कहता कि अपने अन्य काम छोड़कर केवल परमात्माके ध्यानमें लग जाओ। इसके विपरीत वह यही कहता है कि अपने दैनिक कार्यको पूरा करते हुए संसारमें रहना सीखो। पर इसके साथ ही इस बातका भी ध्यान रक्खो कि कहीं तुम परमात्माको न भूल जाओ। यही जीवनका सौन्दर्य है। जनकने इसी प्रकारके जीवनको अपनाया था। अपना ध्यान परमात्मापर केन्द्रित करते हुए भी वह राजाके कर्तव्यको नहीं भूला। आत्मैकत्वके दर्शनका यही मार्ग है।

## सांसारिक रङ्गमञ्च

यहाँ फिर एक जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि यह मान लेनेपर भी कि सत्, चित्, आनन्द ही आत्माका वास्तविक लक्षण है और शेष अज्ञान, दुःख आदि उपाधि हैं, जो मायाके द्वारा आत्मापर लाद दिये गये हैं, पर यह कैसे सम्भव है कि एक ज्ञानी दुःखका अनुभव करते हुए भी यह माने कि उसका स्वरूप आनन्दमय ही है। इस प्रश्नका समुचित उत्तर देना आवश्यक है; क्योंकि इसी उत्तरपर **'जीवन्मुक्ति'** का सिद्धान्त आधारित है। विदेह-मुक्ति ( मृत्युके बाद आनन्द-प्राप्ति ) तो सहज अनुमेय है, पर इसी संसारमें दुःखोंके बीचमें रहते हुए आनन्द-प्राप्तिके सिद्धान्तको मानने-के लिये कोई भी सरलतासे तैयार नहीं होगा। इस प्रश्नका उत्तर भगवान् श्रीविद्यारण्य 'पञ्चदशी'में इस प्रकार देते हैं—

**मार्गे गन्त्रोर्द्वयोः श्रान्तौ समायामप्यदूरताम्।**
**जानन् धैर्याद् द्रुतं गच्छत्यन्यस्तिष्ठति दीनधीः॥**

'दो यात्री, जो दोनों ही पूरी तरह थके हुए हैं, यात्रा करते हैं। उनमें एक, जो यह जानता है कि मंजिल करीब ही है, साहस बटोरता है, थकावटको सहन करता है और आगे चल पड़ता है ( घर पहुँचनेके लिये, जहाँपर वह अपनी टाँगें पसारकर आरामकी नींद ले सके ) पर दूसरा, जो अपनी मंजिलको पास नहीं समझता और यही कल्पना करता है कि घर तो अभी बहुत दूर है और उसे अभी बहुत चलना है, शीघ्र ही थक जाता है और आगे बढ़नेसे इन्कार कर देता है।'

इसके और अधिक स्पष्टीकरणके लिये हम एक और उदाहरण देते हैं। कल्पना करो कि तुम एक नाटक देखने जाते हो, जहाँ तुम देखते हो कि भगवती सीताको ( जिनका तुम जगजननीके रूपमें आदर करते हो ) रावण धमका या डरा रहा है। पर तुम उसका आनन्द लेते हो, और रावणका अभिनय तुम्हें पसंद आ गया तो तुम 'फिर एक बार, फिर एक बार' चिल्लाते हो। पर दूसरी तरफ तुम कहीं जाते हुए देखते हो कि तुम्हारे सामने ही ( नाटकमें नहीं, वास्तवमें ) एक गुंडा एक स्त्रीसे छेड़खानी कर रहा है तो तुम गुस्सेमें भरकर उस गुंडेपर टूट पड़ते हो। पर इस भेदका कारण क्या है, कि तुम एक ओर जगन्माता सीताको कष्टमें देखकर भी आनन्द लेते हो और दूसरी तरफ एक अनजान स्त्रीको कष्टमें देखकर गुंडेपर टूट पड़ते हो? इसका कारण है तुम्हारा विचार। दोनों दृश्योंमें तुम समान दृश्य ही देखते-सुनते हो कि एक दुष्ट एक स्त्रीको सता रहा है और वह रो रही है, पर नाटकमें तुम यह विचार करते हो कि सब काल्पनिक है। अतः उसके विषयमें तुम कुछ नहीं कहते, इसके विपरीत आनन्दसे टिकट खरीदकर नाटकका मजा लेते हो। पर दूसरे दृश्यको काल्पनिक न मानकर अर्थात् वास्तविक मानकर गुंडेपर टूट पड़ते हो और अनजान स्त्रीको बचा लेते हो। इसी उदाहरणसे द्वैती और अद्वैतीका भेद समझा जा सकता है। दोनों ( द्वैती और अद्वैती ) अपनी इन्द्रियोंसे समान अनुभव लेते हैं, पर द्वैती ( परमात्मा और संसार दोनोंको सत्य माननेवाला ) संसारसे होनेवाले सुख-दुःखको सत्य या वास्तविक मान लेता है तथा निराशा और दुःखोंका शिकार हो जाता है, जब कि अद्वैती यह समझता है कि सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख-सुख काल्पनिक हैं; वास्तविक नहीं; और ( नाटकमें सीता और रावणके दृश्यके समान ) इनसे प्रभावित न होकर तटस्थ बना रहता है।

## रासलीला

परमात्मा और जीवात्माकी स्थिति तथा उनके कार्यकी रूपरेखाका चित्रण भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाके रूपमें बड़ी ही सुन्दरतासे किया गया है। बेसमझ लोग रासलीलाको गलत समझकर गलत रूपमें ही उसे लोगोंके सामने प्रस्तुत करते हैं, जब कि वास्तवमें वह 'प्रपञ्चात्मक नृत्य'का एक प्रतीक है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस संसारके साथ सर्वदा नृत्य करता रहता है। बाइबिलका 'सोलोमनके गीत' ( The song of solamon ) श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीलाकी छायामात्र हैं। यहाँ हम रासपञ्चाध्यायीके अधिक विस्तारमें नहीं जायँगे। यह रासलीला परमात्मा और प्रपञ्चके सम्बन्धकी रूप-रेखा हमारे सामने प्रस्तुत करती है। भगवान्के नृत्यका वर्णन इस प्रकार है—

**अङ्गनामङ्गनामन्तरा माधवो**
**माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना।**
**इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः**
**संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥**

रासमण्डल भगवान् और जीवात्माओंका एक चक्र है जो संसारको बनाते हैं। इस रासमण्डलमें प्रत्येक गोपीके दोनों ओर तथा चक्रके मध्यमें भी श्रीकृष्ण अपनी बाँसुरी बजाते हुए नृत्य कर रहे हैं। यह हमें यह बताता है कि जीवात्माएँ बहुत हैं और परमात्मा एक। पर वह एक होते हुए भी हमारे चारों ओर विद्यमान है, और यही हमें देखना भी है। अर्थात् गोपियाँ जैसे अपने चारों ओर श्रीकृष्णको देखते हुए उन्हींके ध्यानमें मग्न रहती थीं, उसी प्रकार हम जीवात्माओंको भी चाहिये कि हम अपने चारों ओर परमात्माकी विद्यमानताको अनुभव करते हुए उसके ध्यानमें मग्न रहें। रासलीलाकी कथा आगे चलती है कि गोपियोंका अहंकार बढ़ जाता है तब श्रीकृष्ण जिनके साथ गोपियाँ प्रसन्न होकर नाचती-गाती थीं—

**प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत।**

—अचानक गायब हो जाते हैं। तब गोपियाँ बहुत दुखी हो जाती हैं और उन्हें चारों दिशाओंमें ढूँढना आरम्भ कर देती हैं, पर सिवा अन्धकारके उनके हाथ कुछ भी नहीं आता। तब वे बाह्य प्रपञ्चमें ढूँढनेके स्थानपर अपने अंदर ही ढूँढना शुरू कर देती हैं तथा स्वयंको भी भूलकर श्रीकृष्णके लिये आत्मसमर्पण कर देती हैं। तब वे उस स्थितिपर पहुँचती हैं—

**तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।**

उनका मन भगवान्पर ही केन्द्रित हो जाता है, उनका वार्त्तालाप भगवद्विषयक ही होता है, उनके कर्म भी भगवान्से सम्बन्धित ही होते हैं तथा अपनेपनको भूलकर वे बिल्कुल परमात्ममय हो जाती हैं। तब क्या होता है!

**तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।**

और तब भगवान् यहाँ-वहाँ—सब जगह मुसकराते हुए प्रकट हो जाते हैं तथा पहलेके समान ही स्वर्गीय बाँसुरी बजाना आरम्भ कर देते हैं। इस कथाका तात्पर्य अत्यन्त सरल और स्पष्ट है। जब मनुष्यमें अहंकार पैदा हो जाता है, तब परमात्मा अदृश्य हो जाते हैं और अंधकारके सिवा उस अहंकारीको कुछ भी नहीं दीखता। पर जब वह अहंकारको दूर झटककर परमात्माके प्रति आत्मसमर्पणके साथ एक हो जाता है, तब परमात्मा सर्वत्र दीखने लगते हैं तथा उसके साथ आनन्दका व्यवहार करते हैं। दूसरे शब्दोंमें अहंकारसे रहित होकर 'नर' इस देहमें रहते हुए भी 'नारायण' बन जाता है। फिर एक बार यहाँ हम वही प्रश्न पूछना चाहते हैं कि 'इस परमात्माकी एकतासे बढ़कर और उद्देश्य क्या हो सकता है तथा वेदान्तके द्वारा बताये गये इस मंजिलतक पहुँचनेके मार्गसे और अधिक सरल मार्ग दूसरा कौन-सा हो सकता है?'

## उपसंहार

इस प्रकार हमारे उद्देश्य और उसके मार्गके बारेमें वेदान्तके पवित्र उपदेश हैं। वेदान्तके इन पवित्र उपदेशोंका सार महर्षि वेदव्यासने सूत्रके रूपमें लोगोंको दिया और भगवान् आद्यशंकराचार्यने जिन्होंने २५०० वर्ष पूर्व अज्ञानियोंको ज्ञानका प्रकाश देनेके लिये जन्म लिया था, महर्षि वेदव्यासके ब्रह्मसूत्रोंपर एक अमर भाष्य लिखा। ( समाप्त )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ज्ञान-निश्चय

( लेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज )

ज्ञान-निश्चयके सम्बन्धमें अवधूत श्रीदत्तात्रेय कहते हैं—

**अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ।**
**इति स्यान्निश्चितो मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत् ॥**

**इति निश्चितः स्यात्, मुक्तो भवेत्, अन्यथा बद्ध एव ।**

जिसको परब्रह्म वासुदेव नामसे भी कहा जाता है और जो अविकारी ( जन्मादि छः विकारोंसे रहित ) है, वह परब्रह्म मैं स्वयं ही हूँ । जो पुरुष इस प्रकार दृढ़ निश्चयका अपरोक्ष कर सकता है, वही ( जन्म-मरणके बन्धनसे ) मुक्त होता है; और जो मोक्षके द्वार-स्वरूप मानव-शरीरके मिलनेपर भी विषयासक्ति न छूटनेके कारण ऐसा निश्चय नहीं कर सकता, वह अनादिकालसे ही बन्धनमें पड़ा है और उसका वह बन्धन चालू ही रहता है तथा मनुष्यजन्म व्यर्थ चला जाता है ।

यहाँ जिस निश्चय करनेकी बात कही गयी है, उस निश्चयको किसी तर्कके द्वारा या युक्ति-प्रयुक्तिसे अथवा धक्का मारकर जबरदस्ती बुद्धिपर आरूढ़ करनेके लिये नहीं कहा जाता है। इस प्रकारका निश्चय तो किसी भी प्रकारके साधनाधिकाररहित मनुष्य भी कर सकता है । परंतु ऐसे निश्चयकी कोई भी कीमत नहीं है; क्योंकि बुद्धि किस क्षण जड और अस्थिर स्वभाववाली होकर इस निश्चयसे डिग जायगी, यह नहीं कहा जा सकता । फिर, मृत्युके समय बुद्धि व्याकुल हुए बिना रहती ही नहीं, अतएव उस समय बुद्धि इस निश्चयको छोड़ देगी और इस प्रकार निश्चयके अभावमें जीवको जन्मान्तरमें घसिटना पड़ेगा । इस निश्चयका अपरोक्ष करनेके लिये साधकको विवेकादि साधन-चतुष्टयसे सम्पन्न होना ही चाहिये । साथ ही कर्म और उपासनाके द्वारा चित्तके मल और विक्षेप दोषोंको दूर करना चाहिये ।

मल और विक्षेप—चित्तमें होनेवाली राजसिक और तामसिक दो प्रकारकी मलिनता हैं । इन्हें कषाय भी कहते हैं । तामसिक मलिनतासे मोह, अकर्मण्यता, प्रमाद, आलस्य, जड़ता, भय, निद्रा, संशय, संदेह, अनीश्वरता और विपर्यय-ज्ञानकी कारणरूपा देहात्मबुद्धि उत्पन्न होती है; राजसिक मलिनतासे चिन्ता, शोक, काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, ईर्ष्या, मद, मत्सर, अहंकार आदि चित्तमें विक्षेप करनेवाले दोष उत्पन्न होते हैं । इन दोषोंके वेगसे चित्त अशान्त, दुखी, चञ्चल और व्यग्र रहता है । अतएव इस निश्चयका अपरोक्ष करनेके तथा उसे नित्यके जीवनमें उतारनेके लिये इन दोषोंकी निवृत्ति अनिवार्य है । ये दोष भी रहें और ज्ञानका निश्चय भी रहे—यह दिन और रात्रिको साथ रखनेकी कल्पनाके सदृश है । निष्काम कर्म और उपासनाके द्वारा इन दोषोंकी निवृत्ति करनी ही चाहिये ।

चित्तको उपर्युक्त प्रकारसे अधिकारयुक्त बना लेनेके बाद ही 'मैं ब्रह्म हूँ'—ऐसा निश्चय करनेके लिये विचार किया जा सकता है । इसके लिये प्रथम तो जीवका स्वरूप समझना चाहिये; क्योंकि जबतक शरीर है, फिर चाहे कोई जीवन्मुक्त ज्ञानसम्पन्न मुनि ही हो,—तबतक जीवभावकी सर्वथा निवृत्ति नहीं होती । केवल उसका बाध होता है—अर्थात् 'मैं जन्म-मरण धर्मवाला जीव हूँ' ऐसी जो भ्रान्ति हो गयी थी, उसकी निवृत्ति हो जाती है । आत्मा और अन्तःकरणका सम्बन्ध न रहे तो शरीर जीवित ही नहीं रह सकता और शरीरको तो प्रारब्ध-क्षय न होनेतक जीवित रहना है। अतएव जैसे अविद्याका लेश रहता है, वैसे ही जीवभावका भी लेश रहता है; क्योंकि जीवभावके बिना शरीरका कोई भी व्यवहार नहीं हो सकता । ( परंतु यह प्रारब्ध केवल व्यवहार भरके लिये ही रहता है, वस्तुतः उसकी स्थिति तो तत्त्वतः स्वरूपभूत मुक्तकी ही है । )

चैतन्य सर्वव्यापक-रूप होता है, तब उसे 'ब्रह्म' कहा जाता है; वही जब शरीरविशेषमें प्रकट होता है तब 'आत्मा' या प्रत्यगात्मा कहलाता है और 'आत्मा' जब शरीरके साथ तादात्म्यसम्बन्धवाला हो जाता है, तब उसे 'जीव' कहते हैं ।

जैसे दीपक प्रकाश ही करता है, अन्य कोई क्रिया नहीं करता, वैसे ही चैतन्य साक्षीकी भाँति ही रहता है, वह कोई क्रिया नहीं करता। पर वह चैतन्य निर्मल होनेपर भी देहादिकी भावनासे मलिन-जैसा, निर्विकल्प होनेपर भी सविकल्प-जैसा, अजड होनेपर भी जड-जैसा और व्यापक होनेपर भी परिच्छिन्न-जैसा हो जाता है । इस प्रकार देहके संगके कारण शुद्ध आत्मामें जीवभाव आता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल जैसे तीन रूपोंमें—( १ ) बर्फके रूपमें, ( २ ) भापके रूपमें और ( ३ ) प्रवाही रूपमें, अलग-अलग दीख पड़ता है, तथापि वह जल ही है। ऐसे ही चैतन्य भी तीन रूपोंमें रहता है—( १ ) जगत्‌रूपमें, ( २ ) जीवरूपमें और ब्रह्मरूपमें। ये तीनों ही रूप दिखायी देते हैं भिन्न-भिन्न स्वभाववाले, परंतु हैं एक ही, केवल विवर्तसे भिन्न भासते हैं। रस्सीमें सर्प दीखता है, तब रस्सी जैसे सर्प नहीं हो जाती; ठूँठमें चोर दीखता है, पर ठूँठ चोर नहीं हो जाता, वैसे ही चैतन्य विभिन्न रूपोंमें भासनेपर भी अपने मूल निर्विकल्प, निर्विकार स्वरूपमें ही रहता है। वह अपने स्वरूपको कभी नहीं छोड़ता, इसीसे वह 'अच्युत' कहलाता है।

**संक्षुब्धमक्षुब्धमिति द्विरूपं**
**संवित्स्वरूपं प्रवदन्ति सन्तः।**
( योग० वा० नि० उ० ३४ । ४८ )

संवित्—चैतन्य दो रूपोंमें रहता है—( १ ) संक्षुब्ध विवर्तभावसे—जीव-जगत्‌के अवताररूपमें, ( २ ) अक्षुब्ध—निर्विकल्प, निर्विकार, निरञ्जनस्वरूपमें।

यहाँतक विचार करनेपर हमने यह देखा कि जीवका ब्रह्मके अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है, जिससे जीवका कोई स्वतन्त्र लक्षण निर्धारित किया जा सके। ब्रह्म स्वयं ही बहिर्मुख होकर देहविशेषमें आत्मारूपसे प्रकट होता है और अपनी ही मायासे देहके संगके कारण जीवभावको अङ्गीकार करके जन्म-मरणके चक्रमें भटकनेवाला हो जाता है।

**अनादिमायया सुप्तो बन्धं कल्पितवान् यथा।**
**नित्यमुक्तोऽपि सोपायं मोक्षं कल्पितवांस्तथा॥**

अनादि और अनिर्वचनीय मायाके आवरणके कारण आत्मा स्थूल शरीरके जन्म-मरणको और सूक्ष्म शरीरके आवागमनको अपनेमें मानकर अपनेमें बन्धनकी कल्पना करता है। बन्धनकी कल्पना हुई तब उस बन्धनसे छूटनेके लिये मोक्षकी भी कल्पना करता है और उसके लिये मोक्षके साधनों-की या उपायोंकी कल्पना करता है।

**आत्माऽऽत्ममायया बद्धो बिभर्ति विविधास्तनूः।**

आत्मा अपनी ही मायामें बँधकर विविध शरीर धारण करता है—अर्थात् जन्म-मरणके प्रवाहमें फिरता है। अब ब्रह्मके स्वरूपका विचार करें। ब्रह्म यानी बृहत्—सबसे बड़ा, सबसे विशाल, जिससे विशाल और कुछ हो ही नहीं सकता। वह सर्वव्यापक है, सर्वत्र परिपूर्ण है, सर्वात्मा है, साथ ही सर्वभूताधिवास भी है। वह निर्विकल्प, निर्विकार, निराकार और निरञ्जन है। सत्-चित्-आनन्दरूप भी है। ब्रह्मका स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि मन, वाणी वहाँ पहुँच नहीं सकते, इसलिये उसके स्वरूपका वर्णन भी नहीं हो सकता। जो कुछ भी कहा जाता है, सब संकेतमात्र है। उसकी परा और अपरा शक्तियोंका भी पार नहीं है।

श्रुतिमें एक संकल्प मिलता है—

**यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।**
**मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।**

जो ब्रह्म एक शरीरमें प्रत्यगात्मारूपसे प्रकट होता है वही ब्रह्म सर्वव्यापकरूपसे सर्वत्र फैला हुआ है। इस प्रकार जो तत्त्व सर्वत्र परिपूर्ण है, वही ब्रह्मतत्त्व शरीरविशेषमें प्रकट हो जाता है। जो पुरुष इन दोनोंमें—प्रत्यगात्मा और परमात्मामें अथवा जीवचैतन्य और ब्रह्मचैतन्यमें भेद देखता है, वह परवश हुआ जन्म-मरणके चक्रमें भटकता ही रहता है। उसका भव-भ्रमण मिटता नहीं।

इस सम्बन्धमें गीता कहती है—

**मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।**
( गीता ७ । ७ )

अर्जुन ! मुझसे भिन्न इस विश्वमें और कुछ भी नहीं है।

**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।**
( ९ । ४ )

यह समस्त जगत् मेरे अव्यक्त स्वरूपके द्वारा व्याप्त है।

अर्जुन ! श्रीकृष्णके स्वरूपमें तो मैं तुम्हारा रथ हाँक रहा हूँ—तुम्हारा सारथि हूँ और एक हाथमें घोड़ोंकी लगाम और दूसरेमें चाबुक पकड़े बैठा हूँ। यह बात सत्य है। परंतु दूसरा मेरा ही अव्यक्त-सर्वव्यापक और सूक्ष्म स्वरूप है, जिसके द्वारा यह समस्त, जगत् व्याप रहा है। इसी भावको श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌ने यों व्यक्त किया है—

**मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।**
**अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥**
( ११ । १३ । २४ )

मन, वाणी, आँख तथा अन्यान्य इन्द्रियोंके द्वारा जिस पदार्थका ज्ञान होता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न अन्य कुछ है ही नहीं, बस इतनी सरल बात समझ लो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअष्टावक्र मुनि कहते हैं—

यथैवादर्शमध्यस्थे रूपेऽन्तः परितस्तु सः ।
तथैवास्मिन् शरीरेऽन्तः परितः परमेश्वरः ॥

दर्पणमें जहाँ प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है, वहाँ चारों ओर दर्पणके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, वैसे ही यह शरीर या जगत् दीखता है, वहाँ भी उसके चारों ओर सर्वत्र एक परमेश्वरके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है।

यह कहा गया कि ब्रह्म निर्विकार है, निराकार है और निरञ्जन है, फिर वह सर्वरूप और सर्वाधार भी है, तथापि वह अच्युत भी है—कदापि किसी कालमें या किसी संयोगमें वह अपना स्वरूप नहीं छोड़ता। अब जो यह मानें कि वह अपने स्वरूपका त्याग करता है तो वह निर्विकार कैसे कहला सकता है? ( उसे तो सविकार कहना चाहिये ) और यदि वह किसी भी स्वरूपको धारण करता है तो उसे निराकार कैसे कह सकते हैं और यदि वह उपाधिके गुण-दोषको ग्रहण करता है तो उसे निरञ्जन कैसे कहा जा सकता है?

ब्रह्म किसी भी कालमें अपने स्वरूपका त्याग नहीं करता, इतनेपर भी वह अनेक रूपोंमें दिखायी देता है और विविध रूपोंमें उपासित होता है।

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाऽच्युतः ॥

कहीं एक स्फटिकशिला पड़ी है तो उसके पास लाल, पीले या विविध रंगोंकी जितनी वस्तुएँ रक्खी जायँगी, वह उतने ही विविध रंगोंकी दिखायी देगी। स्फटिक स्वरूपसे श्वेत है, वह अपने स्वरूपका कभी त्याग नहीं करती, इतनेपर भी उपाधिके संयोगसे वह विविध रंगोंवाली दिखायी देती है, वैसे ही ब्रह्म स्वरूपसे तो अच्युत ही है—किसी भी कालमें अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता, तथापि उपासनाके भेदसे वह विविध रूपोंमें उपासित होता है।

इस प्रकार ब्रह्म निजस्वरूपमें रहता हुआ ही सर्वरूप हो जाता है, यह बात स्पष्ट ही है। परंतु अधिकारके बिना मनुष्य ऐसी सरल बातको भी समझ नहीं पाता और गोते खाता रहता है।

एक अल्प शक्तिवाला मनुष्य भी जब अपने स्वरूपका त्याग किये बिना ही दूसरे रूपमें दिखायी दे सकता है, तब सर्वशक्तिमान् ब्रह्म सर्वरूपमें दिखायी दे, इसमें क्या आश्चर्य है?

देखिये, एक नट है। वह कभी राजाका, कभी चपरासीका, कभी ब्राह्मणका तो कभी चाण्डालका यों अनेक वेष धारण करके अभिनय करता है। तथापि किसी भी वेशका अभिनय करते समय उसके अपने नट-स्वरूपका निश्चय जरा भी नहीं छूटता। वह सब प्रकारसे अपने स्वरूपमें अच्युत ही रहता है।

देखिये न, एक गृहस्थ कितने सम्बन्धोंका निर्वाह करता है और कितने अधिक स्वाँग धारण करता है। वह एक ही सज्जन किसीका चाचा है, किसीका मामा है, किसीका पिता है तो किसीका पति है और अपने सम्बन्धानुरूप ही दिनभर व्यवहार करता है, परंतु उसका अपने इस निज स्वरूपका निश्चय कभी नहीं छूटता कि मैं अमुक जातिका, अमुक गोत्रका, अमुक नामवाला और अमुक काम करनेवाला हूँ।

साधारणतः मनुष्य साधनसम्पन्न न होने तथा अनुभवी गुरुका आश्रय न होनेके कारण अवतार-रहस्यको नहीं समझता और न यही समझता है कि ब्रह्मके स्वरूपको जाननेके पश्चात् ब्रह्मकी ( आत्मारूपसे ) एक क्षुद्र देहमें कैसे अहंबुद्धि हो जाती है।

इस कोटिके मनुष्योंके हितार्थ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी योगवासिष्ठमें गुरु वसिष्ठसे पूछा है—

सर्वानुभवरूपस्य तथा सर्वात्मनोऽप्ययम् ।
अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य देहेऽपि किमहंग्रहः ॥

जो सबका अनुभवरूप है तथा भूतमात्रमें सर्वात्मारूपसे विराजित है, उसका इस क्षुद्र देहमें अहंभाव कैसे हो जाता है?

यह प्रश्न अनादिकालीन है और सबको संतोष हो जाय, ऐसा एक ही समाधान भी इसका नहीं हो सकता। जो अकारण ही हो जाता है, उसके कारणको भला कहाँ खोजा जा सकता है? इसलिये प्रत्येक व्यक्ति, अपनेको अनुकूल प्रतीत होता है, ऐसा कोई समाधान प्रसंगके अनुसार गढ़ लेता है और इसमें कुछ बुराई भी नहीं है।

इसमें कोई मायाको इसका कारण बतलाते हैं; पर साथ ही मायाको अनिर्वचनीय कहते हैं। कोई इसे ईश्वरकी माया कहते हैं तो कोई अविद्या। फिर उस अविद्याके भी मूलाविद्या


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तूलाविद्या—ये दो विभाग करते हैं । कोई अज्ञान बतलाते हैं तो कोई स्वरूपका अज्ञान या उसकी विस्मृति कहते हैं। कोई इसे परमेश्वरकी लीला कहते हैं और कोई परमेश्वरकी इच्छा भी बतलाते हैं।

हमें तो श्रीगौड़पादाचार्यका 'ईश्वरस्य स्वभावोऽयं पूर्णकामस्य का स्पृहा ।' अथवा योगवासिष्ठका 'आत्मनो हि स्वभावोऽयं हेतुस्तत्र सुदुर्गमः ।'—अधिक अच्छा लगता है। 'दुर्गम' शब्दका प्रयोग होता तो बहुत अधिक परिश्रमसे पता भी लगाया जा सकता, परंतु यहाँ तो 'सुतरां दुर्गमः' कहा है। अतः यही समझ लेना है कि इसके हेतुकी खोज अनादिकालसे चल रही है, परंतु जिसमें कोई हेतु हो ही नहीं, उसमें हेतु कहाँसे मिल सकता है। चाहे जितने दीर्घकालतक खरगोशके सींगकी खोज की जाय, पर जब वह है ही नहीं—तब कहाँसे मिल सकता है ?

फिर, यहाँ स्वभावका अर्थ भी समझना चाहिये । यहाँ स्वभावका अर्थ दूसरे किसीसे अलग करनेवाले अमुक गुण-धर्म नहीं हैं। यहाँ तो यह अर्थ है कि आत्माका आत्मापन या ईश्वरका ईश्वरपन ही ऐसा है कि वह जिस आधारमें प्रकट होता है, उस आधाररूप ही हो जाता है।

योगवासिष्ठमें अध्यासको एक प्रसंगमें यों समझाया गया है—

**यथा सत्त्वमुपेक्ष्य स्वं शनैर्विप्रो दुरीहया ।**
**अङ्गीकरोति शूद्रत्वं तथा जीवत्वमीश्वरः ॥**

एक विप्र जैसे शूद्रकन्याकी कामना होनेपर अपने विप्रत्वकी उपेक्षा करके शूद्र बन जाता है, वैसे ही शरीरका संग होनेपर ईश्वर जीवभावका अंगीकार कर लेता है—मैं जीव हूँ—ऐसा मानने लगता है।

श्रीमद्भागवतमें यह प्रसंग इस प्रकार समझाया गया है—

**गायतो नृत्यतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् ।**
**एवं बुद्धिगुणान् पश्यन् अनीहोऽप्यनुकार्यते ॥**

किसी संगीत-सम्मेलनमें गान और नृत्य देखते-देखते जैसे दर्शकगण, इच्छा न होनेपर भी डोलने लगते हैं, ताल देते हैं और कोई-कोई गाने भी लगते हैं, वैसे ही आत्मा भी पूर्णकाम होनेपर भी बुद्धिके भोग देखकर उनमें ललचा जाता है और परिणाममें उसके साथ एकरूप हो जाता है। यहाँतक जीवके स्वरूपपर तथा ब्रह्मके स्वरूपपर विचार किया गया। और विशुद्ध आत्मामें जीवभाव कैसे आता है और कैसे अध्यास होता है—इसपर भी विचार किया गया।

अध्यास केवल भ्रान्तिमूलक है। देहके सम्पर्कमें आनेपर निर्विकार आत्माको मिथ्या यानी अकारण तादात्म्य-सम्बन्ध स्वाभाविक ही हो जाता है। जैसे स्फटिकके पास लाल पुष्प रख देनेपर स्फटिक स्वाभाविक ही लाल दीखता है और उस लाल पुष्पके न हटाने तक वह लालिमा—मिथ्या दिखावामात्र होनेपर भी—दूर नहीं होती। ( ऐसी भ्रान्तिको शास्त्रीय भाषामें 'सोपाधिक भ्रम' कहा जाता है। ) इसी प्रकार जबतक आत्मा और लिंगशरीर पास-पास रहते हैं, तबतक स्वाभाविक ही लिंगदेहके धर्म आत्मामें दीखते ही हैं और अध्यास चालू रहता ही है। अर्थात् जीवभावकी निवृत्ति न होनेका अर्थ यह हुआ कि आत्माको ऐसा निश्चय करना चाहिये कि 'मैं इन दोनों देहोंसे भिन्न हूँ।' ऐसा निश्चय होते ही कारणशरीर नष्ट हो जायगा और पश्चात् प्रारब्धका क्षय होते ही स्थूल शरीर यहीं नष्ट हो जायगा और लिंगदेह, कारण शरीरके आधारके अभावमें, स्थूल शरीरको छोड़कर बाहर निकलते ही नष्ट हो जायगा। इस प्रकार तीनों देहोंका नाश हो जानेसे आत्माको अध्यास होनेका कोई कारण ही नहीं रह जायगा। [ आत्माके अध्यास होनेमें कारण है अविद्या ( कारण शरीर ) और अध्यास होता है लिंगदेहमें और उसके द्वारा स्थूल देहमें भी। ]

इस भावको दत्तात्रेय इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

**घटे भिन्ने घटाकाशमाकाशे लीयते यथा।**
**देहाभावे तथा योगी स्वरूपे परमात्मनि ॥**

घड़ा फूट जानेपर जैसे घटाकाश उपाधिके अभावमें महाकाशमें मिल जाता है, वैसे ही तीनों देहोंके नाशसे, उपाधिके अभावमें, योगीका आत्मा परमात्मस्वरूप ही रह जाता है। यहाँ कोई क्रियापद नहीं दिया गया, इसका भाव यह है कि आत्मा स्वरूपतः परमात्मा ही है, देहके संगसे जीवभावको प्राप्त हो गया था, वह पुनः भ्रान्तिके दूर होते ही परमात्मस्वरूप रह गया—इतना ही कहा जाता है। असलमें नया कुछ भी नहीं होता। जो वस्तुतत्त्व है, उसका यथार्थ अनुभव होता है।

इतना समझनेके बाद अब 'मैं दोनों देहोंसे भिन्न हूँ'—ऐसा निश्चय करना बिल्कुल सरल बात है। इसके लिये भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकराचार्यने 'दृग्दृश्य-विवेक' का सरल साधन बतलाया है, उसे करना चाहिये ।

घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा ।
देहद्रष्टा तथा देहो नाहमित्यवधारयेत् ॥

घड़ेको देखनेवाला जिस प्रकार घड़ेसे भिन्न ही—जुदा ही होता है और किसी प्रकारसे भी वह घड़ारूप नहीं होता, उसी प्रकार मेरी देहको देखनेवाला मैं देहसे जुदा ही—भिन्न ही हूँ, किसी प्रकार भी देहरूप नहीं हूँ । इसी प्रकार मैं अपने मनका, अपनी बुद्धिका तथा इन्द्रियोंका द्रष्टा हूँ; अतएव मैं वे सब नहीं हूँ, उनसे अलग ही हूँ ।

अथवा मैं जिसको मेरा कहता हूँ, उससे मैं जैसे भिन्न ही हूँ, वैसे ही मैं देहको भी मेरा कहता हूँ । अतः उससे भी जुदा ही हूँ । इसी प्रकार, 'मेरा मन यह बात नहीं मानता, मेरी बुद्धि इस सम्बन्धमें निश्चय नहीं कर सकती, मेरी इन्द्रियाँ वृद्धावस्थाके कारण शिथिल हो गयी हैं और मेरे प्राण बहुत ही सूक्ष्म चल रहे हैं'—मैं यों कहता हूँ और मानता हूँ, अतएव मैं इन सबसे भिन्न ही हूँ ।

इस प्रकार नित्य भाव और प्रेमसे मनन करते-करते 'मैं दोनों देहोंसे भिन्न हूँ' ऐसा दृढ़ निश्चय हुए बिना नहीं रहेगा । परंतु सिद्धि न मिलनेतक सतत परिश्रम करना चाहिये ।

इस छोटे-से निबन्धमें अपने इस निश्चयपर पहुँचे कि ज्ञाननिश्चयको हृदयंगम करनेके लिये अधिकारकी परम आवश्यकता है, क्योंकि अधिकारके बिना केवल बुद्धि-आरूढ़ रहनेवाले ऐसे निश्चयका कोई मूल्य नहीं है ।

इसके बाद निश्चय करनेके साधनके सम्बन्धमें विचार करते समय पहले जीवके स्वरूपका विचार किया और इस निष्कर्षपर पहुँचे कि ब्रह्मसे भिन्न जीवका कोई स्वतन्त्र स्वरूप ही नहीं है जिससे उसके स्वरूपके लक्षणोंको निर्धारित किया जा सके । इसके पश्चात् ब्रह्मके स्वरूपका विचार किया गया और इस निश्चयपर आये कि जो कुछ भी मन तथा इन्द्रिय-गोचर विश्व दिखायी देता है, वह ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

जीव और ब्रह्म स्वरूपतः एक ही हैं, इतनेपर भी जीव अपनेको ब्रह्मसे पृथक् क्यों मानता है और कैसे जन्म-मरणके चक्रमें घूमता रहता है, इसका समाधान करते समय अध्यास-का विचार करके इस परिणामपर आये कि अध्यासकी निवृत्ति-के द्वारा आत्माको अपने विस्मृत स्वरूपमें प्रतिष्ठित करना—यही मोक्षके लिये उत्तम साधन है । मोक्ष कोई बाहरसे लानेकी वस्तु नहीं है, परंतु जो वस्तुतत्त्व है उसके यथार्थ ज्ञानसे अनुभवमें आनेवाला ही मोक्षका स्वरूप है और इसके सम्बन्ध-का अनुभव ही ज्ञान-निश्चय कहलाता है ।

# अंदर भगवान्‌को भरो

**सुख या दुःख किसी प्राणी, पदार्थ या परिस्थितिमें नहीं हैं । ये हैं मनकी कल्पनामें । जहाँ मनमें अनुकूलता है, वहाँ सुख है और जहाँ प्रतिकूलता है, वहाँ दुःख है । अनुकूलता-प्रतिकूलता इसीलिये है कि मनमें विनाशी अपूर्ण जगत् भरा है । इसीसे सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि उत्पन्न करनेवाली अनुकूल-प्रतिकूल भावनाएँ हुआ करती हैं । मनमें भगवान्‌को भर लें तो जगत् निकल जायगा । उसीके साथ अनुकूल-प्रतिकूल भावनाएँ भी निकल जायँगी । अतएव भगवान्‌को भरनेकी चेष्टा कीजिये । भगवान् ठोस है, जगत् पोला है । ज्यों-ज्यों भगवान् भरेंगे, जगत् अपने-आप ही निकलता चला जायगा और फिर वहाँ जगत् आ नहीं सकेगा । सुख-दुःखादि द्वन्द्व जहाँ नहीं रहेंगे, वहाँ शोक, मोह, भय, विषाद आदिका भी कहीं नाम-निशान नहीं रह जायगा । एक परमानन्द-सुधा-सागर ही लहराता रहेगा ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पराभक्तिके आदर्श श्रीभरतजी

( लेखक—पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज )

श्रीभरतजीका स्वरूप समझनेके लिये प्रथम रामायणकी परमार्थ-व्यवस्था देखनी चाहिये । वह श्रीरामचरितमानस बाल० २४-२५, इन दो दोहोंमें एवं विनय-पत्रिका पद ५८में समझायी गयी है; तथा—

**तासां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका ।**
**ज्ञानशक्तिश्च कौसल्या वेदो दशरथो नृपः ॥**
**क्रियायां कलहो दृष्टो दृष्टा प्रीतिरुपासने ।**
**ज्ञानेनात्मसुखं नित्यं दृष्टं निर्हेतुनिर्मलम् ॥**
( शिवसंहिता १८ । ४६-४७ )

अर्थात् राजा दशरथ वेदस्वरूप और उनकी तीनों शक्तियाँ ( रानियाँ ) वेदकी काण्डत्रय-रूपिणी हैं । उनमें क्रियाशक्ति ( कर्म ) श्रीकैकेयीजी, उपासनाशक्ति श्रीसुमित्राजी और सरस ज्ञान-( पराभक्ति ) रूपिणी श्रीकौसल्याजी हैं । क्रियामें ( सकामता आनेपर ) कलह देखी जाती है, इससे श्रीकैकेयीजीके द्वारा कलह हुआ । उपासनामें प्रीति होती है, इससे श्रीसुमित्राजीमें प्रीतिकी ही व्यवस्थाएँ हैं और सरस ज्ञानमें नित्य आत्मसुख होता है; इससे श्रीकौसल्याजीमें अलौकिक विवेकद्वारा सुखकी व्यवस्थाएँ हैं ।

क्रियाशक्ति श्रीकैकेयीजीकी शुद्ध निष्कामावस्थासे श्रीभरतजीका प्रादुर्भाव हुआ । ये अक्षर ( प्रत्यगात्मा—प्रकृतिवियुक्त शुद्ध जीवात्मा ) स्वरूप हैं, परम विवेकी हैं । उपासनाशक्ति श्रीसुमित्राजीके दो पुत्र हुए । उनके एक श्रीलक्ष्मणजी ब्रह्म श्रीरामजीके उपासक हुए और दूसरे श्रीशत्रुघ्न अक्षर ( श्रीभरतजी ) के उपासक हुए ।

श्रीभरतजीने अपनी माता कैकेयीजीकी सकामतासे माँगे हुए वरदानकी पूर्तिमें चौदह वर्ष श्रीरामजीकी पादुका-पूजा करते हुए उनके लक्ष्यसे उपासनापूर्वक स्वस्वरूप-रक्षा की है । श्रीसुमित्राजीसे उपदिष्ट श्रीलक्ष्मणजीने चौदह वर्ष वनवासी श्रीराम ब्रह्मकी सेवासे स्वस्वरूप-रक्षा की और श्रीशत्रुघ्नजीने अक्षर ( प्रत्यगात्मस्वरूप ) श्रीभरतजीकी उपासना की है । वनवासपूर्तिपर एवं श्रीरामजीके राज्यासीन होनेपर तीनोंको एक समान फलस्वरूप श्रीराम-परिकर होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है; यथा—

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते ।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते ॥
( रामचरितमानस उत्तर० १२ )

'तत्क्रतुर्न्याय'से श्रीभरत आदिकी यही नित्य स्थिति है; यथा—

सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चिता ।
( तैत्ति० २ । १ )

वह ( मुक्तात्मा ) उस विज्ञानस्वरूप ब्रह्मके साथ समस्त भोगोंको भोगता है । गीता ( १२ । १-५ ) में ब्रह्मोपासना और अक्षर ( जीवात्माके प्रकृतिवियुक्त स्वरूप ) की उपासनाओंमें तारतम्य पूछा गया है । वहाँ प्रथम ब्रह्मोपासनाको सुलभ एवं शीघ्र साध्य कहकर अक्षरोपासनाको अत्यन्त कष्टसाध्य कहा गया है—इसका रामानुजभाष्य देखिये । *

उपर्युक्त रीतिसे शुद्ध निष्काम कर्मयोगके अनुष्ठानसे प्रकृतिवियुक्त प्रत्यगात्म-स्वरूपका साक्षात्कार होता है । फिर प्रारब्धभोगकी अवशिष्ट आयुमें जब इसकी प्रकृतिरूपिणी माताके परिणामरूपी शरीरकी अङ्गभूता दस इन्द्रियाँ और मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चौदहोंकी भोग-स्पृहा बाधक होती है, जैसे श्रीकैकेयीजीने सकामावस्थासे अपने पुत्रके लिये चौदह वर्षोंका राज्यभोग चाहा था । तब यह प्रकृतिवियुक्त जीवात्मा श्रीभरतजीकी वृत्तिसे रहकर अपने स्वरूपकी रक्षा करता है ।

यह अपनेको श्रीरामजीका अंशभूत अङ्ग मानकर, अतएव उनके लिये ही अपनी स्थिति मानकर उनके सेवक ( शेष ) रूपमें ही प्रकृतिके भोगोंसे पीठ देकर श्रीरामजीके पद-पीठ ( खड़ाऊँ ) पर अङ्कित उनके चौवीस चरणचिह्नोंके लक्ष्यपर चौवीस तत्त्व ( प्रकृति ) में व्यापक भगवत्स्वरूपके आधारपर अपनी स्थिति रखता है । जैसे ( मुण्डक० ३ । १ । १-२ ) श्रुतियोंमें ईश्वरकी स्वादराहित्य महिमाको देखकर शोकरहित होना कहा गया है ।

---

* 'कल्याण'के 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क' में 'उपासनाका तत्त्व' शीर्षक मेरे लेखमें इन उपासनाओंपर विशेष विचार किया गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभरतजी श्रीरामजीके गुणोंपर मुग्ध हो पराभक्ति-निष्ठासे उनकी भक्ति करते थे; यथा—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात ।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥
(रामचरितमानस उत्तर० १)

इस वृत्तिसे यह प्रत्यगात्म-साधक अवधिरूपी आयु पूरी कर भगवान्‌का नित्य-शेषत्व श्रीभरतजीके समान पाता है। गीता ( १२ । ३–५ ) में जिसे अत्यन्त कष्टसाध्य कहा गया है, वह भी श्रीभरतजीकी पराभक्ति-निष्ठासे सुलभ हो जाता है।

उपासनाशक्तिके पुत्र श्रीशत्रुघ्नजीने परम विवेकी भागवत श्रीभरतजीकी सेवानिष्ठासे वही लाभ और सुलभ रीतिसे प्राप्त किया है।

श्रीभरतजीकी भक्ति-निष्ठा एवं उनके प्रेमामृतसे संसारके साधुओंका हित करनेके लिये कृपासिन्धु श्रीरामजीने ही अपनी लीलासे वैसे संयोग बनाये हैं—

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ॥
( रामचरितमानस अयो० २३८ )

श्रीभरतजी प्रेमके गम्भीर सागर ( क्षीरसमुद्र ) हैं, श्रीराम-विरह मन्दराचल, साधु देवता, प्रेम अमृत और मथनेवाले यहाँ श्रीरघुवीर ही हैं। वहाँ अमृत पीकर देवोंने असुरोंको जीता है। वैसे ही यहाँ भी प्रेमामृतसे साधुलोग आसुरी वृत्ति ( कामादि ) को जीतते हैं। वहाँ देवोंको अमृतकी बड़ी आवश्यकतापर समुद्र मथा गया है, वैसे यहाँ भी साधुओंके लिये इस प्रेम-भक्तिकी बड़ी आवश्यकता है; यथा—

तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु ।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ॥
( रामचरितमानस अयो० २०८ )

यह परम साधु श्रीभरद्वाज महर्षिने कहा है कि हमलोगोंकी श्रीराम-भक्तिरूपी रसकी सिद्धिके लिये ( इस घटनाका ) यह समय ही श्रीगणेश हुआ; अर्थात् हमने श्रीरामभक्ति-रसकी सिद्धिके पाठका श्रीगणेश ( प्रारम्भ ) आज तुमसे किया है। जिसे तुम कलङ्क मान रहे हो, यथार्थमें यह कलङ्क नहीं है; प्रत्युत यह रसायनसिद्धिमें प्रयुक्त होनेवाली कजली ( कलङ्क ) के समान है। पञ्च-रसात्मिका प्रेमलक्षणा रसरूपिणी भक्तिकी इससे सिद्धि होगी। इस चरितसे भक्ति-साधकोंको यह आधार मिलेगा कि इसमें स्वार्थका सर्वथा त्याग रहना चाहिये। भक्तिके बाधक गुरुजनोंकी भी आज्ञा त्यागपर दोष नहीं और स्वामी श्रीरामजीका पूर्ण भरोसा रखना चाहिये। इत्यादि। तुम्हारे प्रेमको देखकर लोग इस राम-प्रेम-पथपर आरूढ़ होंगे। उनकी वह रसात्मिका-भक्ति अवश्य सिद्ध होगी।

यह महर्षि श्रीभरद्वाजजीका आशीर्वादात्मक वचन है, इसके अनुसार श्रीराम-विरहसे क्रमशः श्रीभरतजीके प्रेमामृतके विकास देखिये—

( १ ) गीता ( ४ । ११ ) के अनुसार भगवान् भक्तोंके भावानुसार उनसे वर्तते हैं। श्रीभरतजी केकय देशमें रहते हुए श्रीरामजीमें अगाध प्रेम रखते थे; तदनुसार ही यहाँ श्रीरामजीके भाव कहे गये हैं—

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बंधु सोच दिनराती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती ॥

तथा भक्त भगवान्‌को अर्पण करके ही कोई वस्तु ग्रहण करते हैं, वैसे ही श्रीरामजीने भी बिना श्रीभरतजीके राज्यपद लेना नहीं चाहा—

जनमे एक संग सब भाई।' से 'प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई।' तक
( रामचरितमानस अयो० ७–१० )

( २ ) यहाँ श्रीअवधमें अनर्थ प्रारम्भ होते ही वहाँ श्रीभरतजीको अपशकुन होने लगे थे। फिर समाचार पाकर वे तुरंत आये। यहाँपर कैकेयीजीके द्वारा समाचार जानकर वे अत्यन्त दुखी हुए। इन्होंने श्रीराम-विमुख जानकर उस माताका आजन्मके लिये त्याग कर दिया। यथा—

कैकई जौ लौं जियत रही ।
तौ लौं बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥ १ ॥
............
लोक-बेद-मरजाद, दोष-गुन-गति चित चख न चही ।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही ॥
( गीतावली उत्तर० ३७ )

फिर भरतजीने श्रीकौसल्याजीके समक्ष आकर शपथोंसे अपने हृदयकी शुद्धता प्रकट की, उसपर श्रीकौसल्याजीके भाव देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥
राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यान बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
( रामचरितमानस अयो० १६८–१६९ )

यहाँ माताने श्रीभरतजीके श्रीराम-प्रेमकी बड़ी सराहना की है और इन्हें कैकेयीके पक्षमें कहनेवालोंको कौसल्याजीने शाप दिया है कि वे लोकमें सुख और परलोकमें सुगति न पावें। फिर 'थन पय स्रवहिं···' इससे इन्हें श्रीरामवत् प्रिय मानना प्रकट किया है।

( ३ ) राजा दशरथकी क्रिया हो जानेपर गुरु श्रीवसिष्ठजीने राज-सभामें श्रीभरतजीको बुलाकर समझाया और कहा कि पिताके वचनको सत्य करो, इसका मन्त्रियोंने और माता कौसल्याजीने भी समर्थन किया। तब श्रीभरतजीने श्रीराम-विरहके आधारपर गुरु-वचनको भी अस्वीकार किया और कहा—

गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भएँ बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ॥

फिर श्रीभरतजीने सबसे अनुरोध किया कि आपलोग आज्ञा और आशीर्वाद दें कि मेरी प्रार्थना सुनकर और मुझे अपना भक्त जानकर श्रीरामजी राजधानीपर लौट आवें। श्रीराम-स्नेहरूपी अमृतसे पगे हुए अपने वचनोंसे श्रीभरतजी सभीको अत्यन्त प्रिय हुए, इसपर सभी उनकी प्रशंसा करने लगे—

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेहँ बिकल भए भारी॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥
तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥
जो पाँवरु अपनी जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं॥
सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥
( रामचरितमानस अयो० १८४ )

यहाँ माता, मन्त्री, गुरु वसिष्ठ एवं पुर-नर-नारी आदि सभीने श्रीराम-प्रेमकी मूर्त्ति कहा है और इन्हें माता कैकेयीके पक्षमें माननेवालोंको सभीने शाप दिया है—'सो सठ कोटिक···'। फिर सभीने 'अहि अघ···' इस अर्द्धालीसे सिद्धान्त भी कहा है।

( ४ ) श्रीभरतजीको सेना एवं समाजके साथ आते सुनकर श्रीनिषादराजको इनमें कपटभाव होनेका संदेह हुआ कि ये सेना लेकर इसलिये जा रहे हैं कि सानुज श्रीरामजीको मारकर अकण्टक राज्य करें; अन्यथा इन्होंने साथमें सेना क्यों ली है? ऐसा ही संदेह आगे श्रीलक्ष्मणजीको भी हुआ है, श्रीभरतजीके गूढ़-अभिप्रायभरे चरित्रोंके रहस्य समझने कठिन हैं, श्रीकौसल्याजीने कहा है—

**एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशाम्पते।**
**भ्राता ज्येष्ठो वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते॥**
( वाल्मी० २।६१।१५ )

पंद्रहवें वर्षमें लौटनेपर भी छोटे भाई भरतजीका भोगा हुआ राज्य ज्येष्ठ और गुणोंमें भी श्रेष्ठ श्रीरामजी न भोगेंगे, तिरस्कार कर देंगे। इस विचारसे भी श्रीभरतजी राज्य और सम्पत्तिके स्वामी नहीं हुए कि मेरा उच्छिष्ट राज्य श्रीरामजी कैसे भोगेंगे? पुनः सेना और समाजको साथमें लानेका रहस्य यह है कि जब वर्षके प्रारम्भ मास चैत्रमें सातों द्वीपोंसे आये हुए राजाओंके समक्ष श्रीरामजी वन भेजे गये, इसमें बहुतोंके समक्ष उनका अपमान हुआ है। अतः उनका मनाना भी बहुतोंके समक्ष होना चाहिये और वनमें सेनाके समक्ष उन्हें श्रीगुरुजीके द्वारा अभिषिक्त कराके लाया जाय, तब उनके योग्य हो। इस गुह्य मर्मको सहसा श्रीनिषादराज एवं श्रीलक्ष्मणजीने नहीं समझा।

श्रीराम-प्रेमवश निषादराज श्रीभरतजीसे लड़नेका प्रबन्ध करने लगे। सहसा छींक होनेपर परीक्षार्थ भेंट लेकर सामने आये और दूरसे ही मुनीश्वर वसिष्ठजीको प्रणाम किया, श्रीगुरुजीने श्रीभरतजीको उसका श्रीरामजीमें मित्रभाव कहा। श्रीराम-सखा सुनकर उसे श्रीराम-तुल्य मानकर श्रीभरतजी रथसे उतरकर उससे मिले। इनके सद्भावपर वह विदेह हो गया, एकटक देखता रह गया। फिर उसके साथ श्रीभरतजीने श्रीगङ्गातटपर श्रीरामघाटमें स्नान किया और वर माँगा—

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥
( रामचरितमानस अयो० १९७ )

फिर लोगोंको ठहराकर निषादराजसे पूछा कि कहाँपर श्रीसीताजी, श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजीने रातमें शयन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। उसने शीशमवृक्षके नीचे कुशकी साथरी दिखलायी। वहाँपर इन्होंने श्रीसीताजीके वस्त्रोंसे झड़े हुए दो-चार कनकबिन्दु भी देखे और तीनोंकी सुकुमारताका स्मरणकर बहुत विलाप किया, तब श्रीनिषादराजने समझाया।

(५) शृङ्गवेरपुरसे श्रीरामजी पैदल ही गये, यह समझकर श्रीभरतजी भी पैदल ही चले और तीसरे प्रहर प्रयाग पहुँचकर उन्होंने स्वयं श्रीत्रिवेणीमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको दान-मानसे संतुष्ट किया; तत्पश्चात्—

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलक सरीर भरत कर जोरे॥
सकल कामप्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥
मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जियँ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी॥

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥
(रामचरितमानस अयो० २०४-२०५)

यहाँ तीर्थराज प्रयागसे अत्यन्त आर्त्त होकर श्रीभरतजीने भिक्षा माँगी है। देवोंसे वरदान माँगना और बात है; किंतु भिक्षा माँगना क्षत्रिय-धर्म नहीं है; पर आर्त्त होनेपर वह भी होता है। आर्त्त भिक्षुकको दयालु एवं उदार दाता बहुत कुछ दे देता है। आपको यहाँ अत्यन्त दुर्लभ भक्ति माँगनी है, इसीसे ऐसा कहा है। 'अरथ न धरम न…' मैं चारों फल नहीं चाहता, मुक्ति भी न लेनेपर मेरा जहाँ-कहीं भी जन्म हो, वहाँ-वहाँ मेरी श्रीरामचरणमें प्रीति रहे, बस, अन्य वरदान कुछ नहीं चाहिये। श्रीमद्भागवत (७।१०।४-७) में कहा है—'श्रीनृसिंह भगवान्से भक्त श्रीप्रह्लादजीने कहा है कि जो आपसे वरदान चाहता है, वैभवकी आशा रखता है, वह भृत्य भृत्य ही नहीं; प्रत्युत व्यापारी—वैश्य है और सेवकपर अपने स्वामित्वकी धाक जमानेके लिये वैभव देनेकी इच्छावाला स्वामी भी स्वामी नहीं है। मैं आपका निष्काम भक्त हूँ और आप मेरे निष्काम स्वामी हैं। राजा और उसके सेवकका-सा (अर्थापेक्षी) सम्बन्ध मेरा और आपका कभी न हो। यदि आप मुझे कामपूरक वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यही माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें कोई भी कामना पैदा ही न हो। तथा श्रीमद्भागवत (१०।३९।२) में भी कहा गया है कि लक्ष्मीपति भगवान्के प्रसन्न होनेपर ऐसी कौन वस्तु है जो नहीं प्राप्त हो सकती, तथापि भगवत्परायण लोग उनसे किसी पदार्थकी कामना नहीं करते।

भक्तको श्रीहरिसे कामना क्यों नहीं करनी चाहिये? इसका रहस्य यह है कि भक्ति करके उसके प्रति कुछ भी चाहनेसे वह अभीष्ट वस्तु फलस्वरूपा और भगवान् एवं उनकी भक्ति उसके साधन हो जाते हैं। वह भक्ति एक प्रकार वाणिज्यमें परिणत हो जाती है। जैसे रुपया देकर चावल लिया जाता है, रुपया देनेमें उसका निरादर और चावल लेनेमें उस चावलका आदर होता है, वैसे ही भक्ति करके भक्तिके अतिरिक्त उससे अन्य कुछ भी फल चाहनेमें उस फलका आदर और भक्ति एवं इष्टदेवका भी निरादर होता है, इसीसे भक्तलोग फल-रूपमें मुक्ति भी नहीं लेते।

जब भक्त भगवान्को ही प्राप्त होते हैं और फिर संसारमें नहीं आते, तब मुक्तिका सर्वस्व तो इन्हें स्वतः प्राप्त हो जाता है (गीता ८।१५-१६ तथा ९।२५ देखिये)।

श्रीगोस्वामीजीने अन्यत्र भी इसपर जोर देकर कहा है—

स्वारथ परमारथ रहित सीताराम सनेहु।
तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत पहु॥
परहु नरक फल चारि सिसु मीच डाकिनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को जो फल सो जरि जाउ॥
(दोहावली ९०, ९२)

श्रीभरतजीका भाव उक्त श्रीप्रह्लादजीके समान तो उक्त दोहे मात्रमें आ गया, अब श्रीभरतजी आगे बढ़ते हैं—

'जानहु राम कुटिल करि…'—भाव यह कि उपर्युक्त भक्ति मैं इस अभिप्रायसे नहीं माँगता कि श्रीरामजी इससे मुझपर प्रसन्न हों और लोग मेरी बड़ाई करें; प्रत्युत श्रीरामजी चाहे मुझे कुटिल जानें और लोग भी मुझे 'गुरु-साहिब-द्रोही' कह-कर मेरी निन्दा करें कि इसने स्वामी श्रीरामजीकी एवं गुरु-जनोंकी आज्ञा नहीं मानी; तात्पर्य यह कि सर्वान्तर्यामी स्वामी स्वयं तथा अन्य लोगोंके द्वारा भले ही मुझसे प्रतिकूल रहें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी मेरे एकाङ्गी प्रेमका सदा एकरस निर्वाह हो, आगे दृष्टान्तसे भी इसे ही पुष्ट करते हैं।

'सीताराम चरन रति' ऊपर छन्दानुरोधसे 'राम' मात्र कहा था, यहाँ अपनी युगल उपासनाको स्पष्ट किया है।

'जलद जनम भरि···'—उपर्युक्त बातोंपर संदेह हो सकता है कि तुम प्रेम करोगे तो श्रीरामजी तुम्हें कुटिल कैसे जानेंगे ? इसपर कहते हैं कि चातक मेघसे प्रेम करता है, स्वातीका बूँदभर जल ही चाहता है, पर मेघ उसपर वज्र और पत्थर गिराता है तो भी चातक प्रेम कम नहीं करता, रट लगाये ही रहता है। वैसे ही यहाँ मेघके सुधि बिसारनेकी भाँति श्रीरामजीका मुझे कुटिल जानकर मेरी उपेक्षा करना है और लोगोंका मुझे गुरुद्रोही कहना वज्र गिराना तथा साहिब-द्रोही कहना पत्थर बरसाना है। मेघकी उपेक्षा एवं उसके पवि-पाहन डालनेपर यदि चातक रटन कम कर दे तो वह प्रेमका आदर्श न रहेगा, वैसे मैं भी आदर्श प्रेम ही चाहता हूँ, घटने-वाला नहीं। विनय-पत्रिका पद ६५ में भी ऐसा ही प्रेम दृढ़ किया गया है, देखिये।

चातक तो सदा एकरस रट लगाये रहता है, पर श्रीभरत-जी अपना प्रेमभाव उत्तरोत्तर बढ़ानेके आदर्शपर दृष्टान्त रखते हैं—

'कनकहि बान चढ़इ···'—बान ( वर्ण )=रंग, आभा, दीप्ति, कान्ति। सोना ज्यों-ज्यों अग्निमें तपाया जाता है, त्यों-ही-त्यों उसमें दीप्ति बढ़ती है, वैसे ही प्रियतमके प्रेम-निर्वाहमें भी जितना ही कष्ट सह-सहकर प्रेम-निर्वाह किया जाय, उस प्रेमकी उतनी ही अधिक शोभा है और इसीमें सच्चे प्रेमीकी पहचान होती है। यहाँ अग्निरूप श्रीरामजी और कञ्चनरूप श्रीभरतजी हैं। वे यदि जगत्—शरीरके द्वारा इन्हें तीनों तापोंसे ताप दें, तब भी इनका प्रेम कम नहीं होना चाहिये, यह भाव है।

'भरत बचन सुनि···'—त्रिवेणीके मध्य सरस्वतीजी हैं ही, उन्होंने तीनोंकी ओरसे कहा है।

'तात भरत तुम्ह··'—'सब बिधि साधू' हो, मन, वचन और कर्मसे तथा भीतर-बाहर, सबसे सद्भाववाले हो। 'अनुराग अगाधू' श्रीरामचरणमें तुम्हारा इतना गहरा अनुराग है कि जिसकी थाह ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी, श्रीनिषादराजजी, श्रीलक्ष्मणजी तथा देवगण भी नहीं पा सकते। चरितके द्वारा प्रकट है।

'बादि गलानि करहु···'—श्रीभरतजीको ग्लानि थी—'जानहु राम कुटिल··· लोग कहहु···' यह अभी कहा है। उसका निराकरण करती हुई श्रीत्रिवेणीजी कहती हैं कि तुम कुटिल आदि नहीं हो; प्रत्युत 'सब बिधि साधू' हो, तुम्हारा श्रीरामजीके चरणोंमें अगाध अनुराग है। तुम अपनी ही ओर-की एकाङ्गी प्रीति न समझो; प्रत्युत 'तुम सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं।'

इन रीतियोंसे श्रीत्रिवेणीजीने समझा भर दिया है, इनके आर्त्त होकर भिक्षा माँगनेपर भी भिक्षा नहीं दी, इसलिये कि तुम्हारा श्रीरामचरण-प्रेम इतना अगाध है कि और देनेकी आवश्यकता ही नहीं है। 'भइ मृदु बानि'—त्रिवेणीजीने मृदु वाणीसे ही कहा है। आगे दोहेमें देवोंने 'भरत धन्य···' आदिसे उच्चस्वरसे उसका समर्थन किया है और पुष्प-वर्षा कर अपना अनुमोदन भी प्रकट किया है।

इस प्रकार यहाँ श्रीभरतजीकी आदर्श भक्तिका वर्णन एवं त्रिवेणीजी तथा देवोंके द्वारा उसका समर्थन एवं अनु-मोदन हुआ।

( ६ ) त्रिवेणी-तटसे श्रीभरतजी महर्षि भरद्वाजजीके पास आये। उन्हें 'जानहि तीनि काल निज ग्याना।' ऐसा कहा गया है। अतः उन्होंने उक्त त्रिवेणी-वाक्यको सुन एवं स्वयं भी विचारकर उसका ही उत्तम रीतिसे समर्थन किया है—

सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥
सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरि भाग को तुम्हहि समाना॥
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥
तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥
( रामचरितमानस अयो० २०७-२०८ )

इन वचनोंसे श्रीभरतजीकी भक्तिका वर्णन किया और 'हम सब कहँ उपदेस' एवं 'भा यह समउ गनेस' इन वचनों-से स्वयं इस भक्ति-शिक्षाकी दीक्षा ली है। इनकी भक्तिको आदर्श माना है—इसके शेष भाव ऊपर आ गये हैं।

आदर्श भक्त श्रीभरतजीकी इस समयकी दशाका ध्यान करनेसे इसके आधारपर सबको उस सामर्थ्यकी प्राप्ति होगी, जिससे वैसी भक्ति होती है।

( ७ ) श्रीभरतजीकी भक्तिपर मुग्ध हो महर्षि आगे उनका यश वर्णन करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥
कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू॥
पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ॥
... ... ...
कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम पेम मृग रूपा॥
तात गलानि करहु जियँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ॥

( रामचरितमानस अयो० २०९-२१० )

'नव बिधु बिमल तात···'—ऊपर 'तात तुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि···' यह कहा गया है। उसीकी यहाँ 'अधिक अभेद रूपक' द्वारा व्याख्या करते हैं कि प्राकृत चन्द्रमा तो पुराना और समल है, पर तुम्हारा यशरूपी यह चन्द्रमा नवीन और निर्मल है। 'रघुबर किंकर कुमुद चकोरा'—कुईं स्थावर और चकोर जंगम है, वैसे ही श्रीरामभक्त भी निवृत्तिवाले स्थावर श्रीलोमशजीकी भाँति और प्रवृत्तिवाले जंगम श्रीनारदजीकी भाँति होते हैं, इससे दोनों ही प्रफुल्ल एवं आनन्दित होंगे तथा अवधवासी एवं वनवासी दोनों ही सुखी होंगे।

'उदित सदा···'—वह घटता-बढ़ता है तथा अमावास्या और प्रतिपदाको तो उसका उदय भी नहीं होता, पर यह सदा ही जगत्‌में उदित एवं दिन-दिन दूना होता रहेगा, घटेगा तो कभी भी नहीं।

'कोक तिलोक प्रीति···'—वह चन्द्रमा तो 'कोक सोकप्रद पंकज द्रोही' है, पर इस यशचन्द्रमें तीनों लोक प्रीति करेंगे। 'प्रभु प्रताप रबि···'—उसकी छविका सूर्यद्वारा हरण होता है—'दिन मलीन सकलंक' यह कहा गया है, पर यह यशचन्द्र श्रीराम-प्रतापके साथ चमकता हुआ रहेगा।

'निसि दिन सुखद सदा···' वह नभमें रहता है और यह जगत्‌में ही है, इससे सबको सुलभ है; वह रातमें ही सुखद है और यह सब दिन-रातोंमें सुखद है; वह चन्द्र 'बिरहिन दुखदाई' है, पर यह तो राम-विरहीको अत्यन्त सुखद आश्रय है।

भा सब कें मन मोदु न थोरा।···भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥

( रामचरितमानस अयो० १८५ )

'ग्रसिहि न कैकइ···' उसे राहु ग्रसता है, पर इसे कैकेयीका कर्तव्यरूपी राहु छू भी नहीं सकेगा—'जो पाँवर··· तुम्हहि सुगाइ···' उपर्युक्त शाप-प्रसंग देखिये।

'पूरन राम सुपेम पियूषा'—उसमें कलाओंके घटनेपर अमृत-वर्षोमें न्यूनता भी होती है, पर यह सदा श्रीरामप्रेमसे पूर्ण ही रहता है; यथा—

सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।

( रामचरितमानस अयो० ३२६ )

वह 'सकलंक' है; यथा—'ससि गुरुतियगामी' ( रामचरितमानस अयो० २२८ ) पर यह 'गुरु अवमान दोष नहिं दूषा' है, गुरुजीने आज्ञा दी थी—

'करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥'

पर श्रीभरतजीने इसे राम-प्रेम बाधक मानकर नहीं माना, इस दोषसे श्रीभरतजीका यश दूषित नहीं हुआ; क्योंकि गुरुजी इनकी इस अगाध-भक्ति-निष्ठापर प्रसन्न ही हुए हैं।

'राम भगत अब अमिअ···'—वहाँ देवगण अमृत पीते हैं और यहाँ रामभक्त—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥

( रामचरितमानस अयो० ३२६ )

इस अमृतसे भक्तलोग भवरससे वैराग्य और सीताराम-प्रेम या नित्य अमर पद पाते हैं।

'कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ।'

—वह स्वर्गके देवोंको ही सुलभ है और यह पृथिवीके लोगोंको भी सुलभ है—

'सियराम प्रेमपियूष···कलिकाल तुलसी से सठन्हि···'

उपर्युक्त 'कीरति बिधु तुम्ह कीन्हि अनूपा।'—तुम्हारे इस कीर्तिचन्द्रकी उपमा है ही नहीं, चन्द्रमामें मृगका नित्य निवास है, वैसे ही तुम्हारी इस कीर्तिमें श्रीराम-प्रेमका नित्य निवास है, देश-कालका व्यवधान नहीं है—उपर्युक्त दोहा ३२६ देखिये। चन्द्रमाका मृगाङ्क श्याम दीखता है, वैसे प्रेमका रंग भी श्याम कहा गया है। 'डरहु दरिद्रहि पारसु पाए'—श्रीराम-प्रेम पारस है और कलङ्क दारिद्रय है। दोनों एक साथ नहीं रहते; यथा—'तेहि कि दरिद्र परसमनि जाकें।' ( उत्तर० १११ ) जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा सोना हो जाता है, वैसे


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही श्रीरामप्रेमके सम्बन्धसे कलङ्क स्वर्णभूषणरूप हो गया। तुम्हारे इस प्रेमादर्शसे और लोग भी शोभा पायेंगे। तुम्हारे पास पारस है, पर तुम उसके गुण भूले हुए हो, इससे कलङ्कसे डर रहे हो।

यहाँ महर्षि भरद्वाजजी जौहरी-रूप होकर उस पारसका परिचय दे रहे हैं, जैसे त्रिवेणीजीने समझाया है। उनके वचन स्वतः प्रमाण थे, ये अपने वचनोंमें प्रामाणिकता पुष्ट करते हैं। 'सुनहु भरत हम झूठ न···'—यहाँ झूठ न कहनेमें तीन प्रबल कारण कहते हैं—

( क ) हम उदासीन हैं। अतः हमारा कोई शत्रु-मित्र नहीं है और न किसीसे स्वार्थदृष्टि ही है कि किसीके स्नेह एवं दबावसे झूठ बोलें।

( ख ) हम तपस्वी हैं, अतः तपस्या नष्ट होनेके भयसे भी झूठ नहीं बोल सकते।

( ग ) हम वनमें रहते हैं। अतः कन्द-मूल-फल एवं वल्कल वस्त्रसे निर्वाह हो जाता है, इससे किसीसे व्यवहार करनेका प्रयोजन ही नहीं, तब झूठ-ऐसे पापमें क्यों प्रवृत्त होंगे ? व्यवहारमें पड़नेपर ही युधिष्ठिर-ऐसे धर्मावतारको भी झूठ बोलना पड़ा है।

'सब साधन कर सुफल···'—प्रथम श्रीराम-दर्शनपर इन्होंने कहा है—

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥
( रामचरितमानस अयो० १०७ )

'तेहि फलकर फल···'—फलका फल उस फलका भोग करना ( खाना ) है; अन्यथा वह निष्फल समझा जाता है। जब फलरूप श्रीरामजी प्राप्त हुए, तब उनका उपभोग उनकी प्रेमभक्तिद्वारा ही होता है, वह भक्ति मुझे तुम्हारे दर्शनोंसे प्राप्त हुई, यह ऊपर 'तुम्ह कहँ भरत कलंक यह···' इस दोहेमें कहा गया। अतः फलका आस्वादन करना हमने तुमसे सीखा है। इससे हम एवं प्रयागनिवासी तथा प्रयागतीर्थ भी सुन्दर भाग्यवान् हुए।

( शेष आगे )

# आत्मवत्सर्वभूतेषु

( लेखक—पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र )

आत्मवत्सर्वभूतेषु—सबको अपने-जैसा समझो, यह बात हमारे यहाँ सदासे बार-बार कही गयी है। सबको अपने-जैसा समझो, किसीको कष्ट न दो, सबका उपकार करो, सबसे बन्धुता रक्खो, सबको अपना ही रूप समझो, यह बात वेदोंसे लेकर लोकोक्तियों तकमें व्याप्त है।

अथर्ववेदकी पैप्पलाद शाखाके ये दो उद्धरण हमारे कथनके पोषक हैं—

**ज्यायस्वन्ताश्चित्तिनो मा वि यौष्ट**
**संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।**
**अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत**
**सध्रीचीनान् वः सम्मनसस्कृणोमि॥**

अर्थात् श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदयसे मिलकर एक साथ रहो, कभी अलग न होओ। एक दूसरेको प्रसन्न रखकर, साथ मिलकर भारी बोझ खींच ले चलो, परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्त जनोंसे मिले रहो।

**सहृदयं साम्मनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।**
**अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥**

सबके बीचसे विद्वेषको हटाकर सहृदयता और सम्मनस्कताका प्रचार करता हूँ। जिस प्रकार गौ अपने सद्योजात बछड़ेसे प्रेम करती है, वैसे ही सब परस्पर प्रेम करें।

तुरंत उत्पन्न बछड़ेपर गौका कितना प्रेम होता है, यह अनुभव प्रायः सबको होगा। वह उसे क्षणभर भी आँखकी ओट नहीं होने देना चाहती, उसे छूनेवालेपर टूट पड़ना चाहती है और उससे दूर रहनेपर भी उसका मन उसीमें बँधा होता है।

व्यासदेवने अठारह पुराण लिखनेके बाद कहा—

**अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।**
**परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥**

अर्थात् व्यासकी दो बातें सब पुराणोंकी सार हैं। वे यह कि परोपकारसे पुण्य होता है और पर-पीड़नसे पाप। पर-पीड़न पाप है, यह भावना 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' की ही प्रतिध्वनि है।'

साधारण नीतिमें भी कहा है—

**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।**

'जो अपनेको अच्छा न लगे, वैसा व्यवहार दूसरेके साथ न करो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको अपने-जैसा समझना, यह हमारी संस्कृतिका अङ्ग है। इसकी हमने सदा निष्ठासे आराधना और साधना की है। हम इस साधनामें बहुत आगे बढ़ चुके हैं। दर्शनोंमें हमारा अद्वैतवाद इस साधनाके अतिरिक्त और क्या है? एकको सबमें देखना, सबको एकमें देखना, यह साधना क्या है? इस अद्वैत-भावनासे, लोगोंके कथनानुसार भले ही हममें अनेक दोष आ गये हों, पर कट्टरताका लोप हुआ है, इसे कौन न मानेगा। कट्टरता कम होना भी हमारी संस्कृतिकी विशेषता है और उसका आधार है यही 'आत्मवत्सर्वभूतेषु'। अपढ़ भी इसी भावनासे भरा है कि साधनके मार्ग भले ही अलग हों, न्यारे हों, पर लक्ष्य एक है। सबको वहीं पहुँचना है। और लक्ष्य ही प्राण होनेके कारण उससे किसी भी रूपमें प्रेम करनेवाले, उसतक पहुँचना चाहनेवाले भाई-भाई हैं, यह भावना व्याप्त हुई। इसी बातको पुष्पदन्ताचार्यने महिम्नःस्तोत्र-में बहुत सुंदर ढंगसे यों कहा है—

**रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां**
**नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।**

अर्थात् तुम्हीं वह हो, जहाँ सबको पहुँचना है; चाहे कोई रुचि-वैचित्र्यके कारण सीधे रास्तेसे जाय या टेढ़े रास्तेसे। जैसे जलमात्रको जैसे-तैसे समुद्रमें ही पहुँचना है।

इसी 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' भावनाके कारण हमारा हाथ दूसरेके उपासना-स्थानको ढहानेके लिये कभी नहीं उठता, इसीके कारण हम कापालिक, शैव, शाक्त आदि सभीको अपना समझते हैं। इसीके कारण हम अपने उपास्य देवोंकी संख्या सीमित नहीं रखते—हम कहीं भी चौरा बनाकर, पूर्ण श्रद्धासे किसी भी बाबाकी पूजा शुरू कर सकते हैं।

इसी भावके कारण हममें इतनी अहिंसा और दया है। जब सभी अपने हैं, सभी अपने ही रूप हैं तो द्वेष किससे किया जाय? यह भावना इतनी गहरी है कि हम साम्प्रदायिकताके संस्कारसे प्रभावित होनेपर भी अन्य लोगोंकी तरह क्रूर कभी नहीं होते। हम जो कहीं क्रूरता करते हैं, वह प्रायः अज्ञानमूलक होती है।

फिर, हमारे यहाँ भूत शब्द भी तो बहुत व्यापक है। वह मनुष्यमात्रतक ही सीमित नहीं। इसकी लपेटमें पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष सभी आ जाते हैं और सबको समान समझना ही पाण्डित्य है—

**आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।**

फिर, 'पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः।' पण्डित तत्त्वदर्शी होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सबको समान समझना हमारे यहाँका एकमात्र नहीं, तो एक बहुत बड़ा तत्त्व है।

हमारी इस भूत-दयाका क्रमिक इतिहास हमारे ग्रन्थोंमें है। हमारे यहाँ नित्य करणीय एक 'भूतयज्ञ' है। उसमें मनुष्यके अतिरिक्त सभी जीव-सृष्टि है, जो चार श्रेणियोंमें विभक्त है। उनके नाम हैं—उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज तथा जरायुज। मनुष्य भी जरायुज ही है, पर धर्माधर्मका अधिकार प्राप्त होनेसे वह उक्त सृष्टिसे भिन्न है। हमारे यहाँ विधान है कि हम इस भूत-संघके कल्याणके लिये प्रतिदिन 'भूतयज्ञ' करें, इन भूतोंकी तुष्टिके लिये उनका स्मरण कर कुछ भोजन उत्सर्ग करें। यह भावना ही वृद्धिको प्राप्त हुई और जड पदार्थोंतक पहुँची। चेतन तो दूर, जडको भी हम कष्ट न दें।

इस भावनाके लिये त्याग बहुत आवश्यक है। त्यागके लिये भोगसे विरत होना आवश्यक है। त्याग और भोगके समन्वयके बिना इस भावनाकी पूर्णतातक हम नहीं पहुँच सकते। इसीसे वह विदेह स्थिति प्राप्त हो सकती है, जिसके कारण राजा जनकका नाम ही विदेह हो गया। वे राजा थे, पर भोक्ता नहीं। जैसे ईश्वर अलिप्त होकर सृष्टिका संचालन, नियन्त्रण और रक्षण करता है, वैसे ही जनक भी अपने राज्यका करते थे। यहाँ भोग और त्यागका समन्वय है। तभी संसारमें अलिप्त होकर रहा जा सकेगा। तभी मनुष्य कमल-जैसा हो सकेगा, जो जलमें रहकर भी उससे अलिप्त रहता है।

भोगसे लोभ उत्पन्न होता है। भोगकी तृप्ति भोगसे नहीं होती। अग्नि घीसे तृप्त नहीं होती। वह और बढ़ती है; उसे और भोगकी भूख लगती है। इस ओरके उपकरण जुटानेमें लोभ आ कूदता है। यजुर्वेदमें इस ओर कितना अच्छा संकेत है—

**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥**

अर्थात् इस दृश्य जगत्में जो कुछ है, वह ईशसे ओत-प्रोत है। इस संसारका भोग त्यागभावसे करो। कभी किसी-का धन न छीनो।

इस मन्त्रमें तीनों बातें हैं—अद्वैत भावना भी, त्याग और भोगका समन्वय भी, तथा लोभका वारण भी। धनसे तात्पर्य सिक्के मात्रसे नहीं है, प्रत्युत किसी भी ऐसी वस्तुसे है जिसका लोभ हो सके। जिस वस्तुका लोभ होता है, वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन हो जाती है। अतः किसी भी पदार्थमें लोभ न करना, उसपर अपने प्रभुत्वकी भावना न होने देना, उसे दूसरोंके उपभोगकी वस्तु बनाना, यही निर्लेप है, यही त्याग है और यही सबको आत्मवत् बनानेका साधन है।

किसी वस्तुको अपना मानकर उसके लिये अभिमान करना अहंकार है। अहंकारसे बुद्धिकी निर्मलता नष्ट होती है। गीतामें इसीलिये मोहको बुद्धिनाशका कारण कहा है। अहंकारसे सम्मानकी इच्छा होती है, इससे दूसरेका अनादर करके भी आदर प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। और इस इच्छासे तेजका, तपका क्षय होता है—

**असम्मानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तु तपःक्षयः।**

सम्मानसे तपःक्षय होता है। अतः सबको समान समझना ही इसकी ओषधि है। तब मनुष्य अपना अपमान अपने ही द्वारा समझकर शान्त रहेगा। जब कोई पराया नहीं तो असम्मान किससे ?

पर इस भावनाको उत्पन्न करना सहज नहीं। संसारमें रहते हुए, उसके सब काम करते हुए, उनसे अलिप्त रहना दाल-भातका कौर नहीं। यह एक योग है, जिसे वही साध सकता है, जो उस भावनामें लीन होनेका आग्रही हो, जिसकी आत्मा प्रबल हो, इच्छा-शक्ति बलवान् हो और जो मनको जीत ले। वह कर सकता है जो अपनेको सबके साथ तन्मय कर ले। तभी अलिप्तता उत्पन्न हो सकती है। गीतामें यही बात इस श्लोकमें कही है—

**योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।**
**सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥**

भोगके त्यागसे स्वतः सुख उत्पन्न होता है। कारण, जिन भोगोंमें हम सुख मानते हैं, उनमें वस्तुतः सुख नहीं है। नहीं तो, धनकुबेर लोग क्यों दुखी हों, जो हर प्रकारका भोग प्राप्त कर सकते हैं। सुख तो अपने ही भीतर होता है। वह अपनेमें उठनेवाली वासनाकी शान्तिसे प्रकट होता है।

वासनाओंकी शान्तिसे मनुष्यका व्यक्तित्व फैलता है। अपने अल्पत्वको दूर करना और विशालताको बढ़ाना ही परम सुख है। यह बात वेदमें यों कही है—

**यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति।**

अर्थात् विशालतामें ही सुख है, अल्पतामें नहीं। यहाँ व्यक्तित्वकी, हृदयकी विशालतासे ही तात्पर्य है। हजार एकड़के खेतसे नहीं। पर यह हृदयकी विशालता सबको समान समझनेपर सबको अपना ही रूप समझनेपर आयेगी, यों नहीं। तभी मनुष्य कह सकेगा—

**अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥**

अर्थात् यह मेरा, यह दूसरेका, यह विचार तुच्छ—संकुचित व्यक्तित्ववालोंके होते हैं। उदारचरितों—विशाल व्यक्तित्ववालोंकी दृष्टिमें तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब होता है।

मनुष्यका व्यक्तित्व संकुचित क्यों होता है ? इसलिये कि वह अपनेको एक शरीरमात्र मानता है और उसकी तुष्टि या सुखके साधनोंको परम तत्त्व मानकर उनके संवर्धन, पोषण तथा रक्षणमें ही दत्तचित्त रहता है। 'मैं और मेरा' इस कठघरेमें वह अपनेको बंद कर विशालतासे अपनेको पृथक् कर लेता है। अतः विशालताके अनुभवके लिये इस कठघरेसे बाहर निकल आना, उससे बहुत दूर चला जाना, उसे भूल जाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना न संकोच दूर होगा, न सुख मिलेगा।

इस 'मैं-मेरा' के कठघरेसे निकलकर मनुष्य अपनेको समाजमें पाता है। यह दूसरा कठघरा है। इससे निकल भागनेपर वह राष्ट्रसे चार आँखें करता है। यह तीसरा कठघरा है। इससे भागनेपर वह पृथ्वीकी अनन्तता और उसके तादात्म्यसे पुलकित होता है। तादात्म्यसे आगे बढ़कर उसे एकात्मके दर्शन होंगे, तब 'निज-पर'की शृङ्खलाएँ टूट जायँगी—मनुष्य मुक्त हो जायगा। वह तब सबको आत्मवत् समझ सकेगा। तभी वह समाज, राष्ट्र, देश, विदेश, जाति, वर्ग आदिसे ऊपर उठकर सबमें एकात्मताका अनुभव कर सकेगा।

इसके लिये आवश्यक क्या है ? आवश्यक यह है कि पहले मनुष्य अपने कुटुम्बसे प्रेम करे, फिर पड़ोसियोंसे प्रेम करे। तब मुहल्ले-टोलेसे। फिर नगरसे, उसके पासके ग्रामोंसे, देशसे—इस प्रकार अपने प्रेमकी सीमाका विस्तार करता जाय। प्रेम रबड़के समान होता है। वह बढ़ता चलता है, टूटता नहीं। यह उसका विशिष्ट गुण है। अतः निःशंक होकर उसकी सीमाको बढ़ाते रहना चाहिये।

आचार्य रामचन्द्रजी शुक्लने लिखा है कि 'जो लोग अपने मुहल्ले-टोलेवालोंको नहीं जानते, जो अपने आसपासके पेड़-पौधोंको नहीं पहचानते, जिन्हें अपने देशकी नदियों, पर्वतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु-पक्षियोंसे प्रेम नहीं, जो अपने देशवासियोंको देखकर पुलक नहीं उठते, उनसे दो क्षण बातें नहीं कर सकते, वे देशप्रेमी बनें, अपने देशप्रेमकी दुहाई दें और देशभक्तिके व्याख्यान दें, यह बात समझमें नहीं आती।'

ऐसे ही यह भी कहा जा सकता है कि जिनमें कभी देश-भक्ति न थी, जिन्होंने उसका विस्तार नहीं किया, विदेशोंको अपना न समझा, समस्त पृथ्वीके समस्त दृश्य-प्रपञ्चमें अपनेपनका अनुभव न किया, वे विश्वबन्धुताका डंका कैसे पीटते हैं?

विश्वबन्धुताका सबको अपने-जैसा समझनेका मार्ग तो वही है कुटुम्बसे सीमाका सार्वभौम प्रसार। उसके बिना विश्वबन्धुता क्या और कैसे? किसी देशके आय-व्यय आदिके आँकड़े देखकर उनके आधारपर उस देशसे सहानुभूति प्रकट करना, व्याख्यान देना एक बात है और उसके बीच रहकर, उससे एकात्मताका प्रसार कर, उसके लिये आँसू बहाना या दिलमें रोना दूसरी बात।

हमारी और विदेशी दृष्टिमें बहुत अन्तर है। स्वामी विवेकानन्दजीने एक स्थानपर लिखा है कि 'कोई नयी योजना सामने रखनेपर विदेशी पूछता है कि क्या इससे मेरी आमदनी बढ़ेगी? पर भारतीय पूछता है कि क्या इससे मुझे मोक्ष मिलेगा?'

यह हमारी दृष्टि बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे हमारे जीवन-का लक्ष्य प्रकट होता है। हम सांसारिक पदार्थोंकी ओर लोलुप नहीं, हमारी दृष्टि उनके पार आध्यात्मिक शान्ति या संतोषकी ओर है। तात्पर्य यह कि 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' भावना-के मार्गके हम सहज पथिक हैं और उसकी प्राप्तिके सहज अधिकारी हैं। साथ ही, हम मोक्षको इसलिये नहीं चाहते कि केवल हमारा कल्याण हो। हम तो 'आत्मनो मोक्षार्थं जगतो हिताय च' के समर्थक हैं। जगत्का कल्याण पहले।

वस्तुतः सबको अपने-जैसा माननेकी भावनासे ही जगत्-का कल्याण हो सकता है। राष्ट्र-राष्ट्रका संघर्ष, मालिक-मजदूर-का संघर्ष, छोटे-बड़ेका संघर्ष, लक्ष्मी-सरस्वतीका संघर्ष, गुणसे गुणका द्वेष, अनेक वादोंका जन्म और उनका संघर्ष, संस्कृति-का सतत पतन—इन सबके मिटानेका एकमात्र उपाय यही भावना है। यही भावना यदि सार्वभौम हो जाय तो न हिटलर उत्पन्न होगा, न मुसोलिनी। न मजदूर-संघोंकी जरूरत रहेगी, न पत्रकार-संघोंकी। सबमें इसी उपायसे सहज ही सामञ्जस्य और प्रेम हो सकेगा।

पर, जैसा कि कहा जा चुका है, यह योग है। एक दिनमें, एक क्षणमें यह योग सिद्ध होनेका नहीं। सम्भव है, सैकड़ों वर्ष या अधिक समय लग जाय। पर इसीको लक्ष्य मानकर, सर्वत्र, बाल्यावस्थासे ही इसकी शिक्षाका विधान किया जाय तो संसारमें स्थायी शान्तिकी सम्भावना है। इसी भावनासे आन्तरिक सुख और स्वाधीनताकी सिद्धि सम्भव है। अन्यथा हम प्रतिदिन मनोमालिन्य, द्वेष और हिंसा-प्रतिहिंसाकी ओर अग्रसर होते जायँगे और विनाशके उपकरणोंका आविष्कार करते जायँगे। हमारे मनकी अशान्ति, हमारा संकुचित व्यक्तित्व एक दिन हमें ही खा जायगा।

इस भावनाकी ओर अग्रसर होनेमें देश-कालकी बाधा नहीं है। कुछ व्यक्ति भले ही समान न हों, पर सबकी आवश्यकता समान हो सकती है। गहरी नींद सो जानेपर सब समान हो जाते हैं। ऐसे ही लक्ष्यकी प्राप्तिमें भी सब समान हो सकते हैं। या होते ही हैं। अतः सर्वत्रके मनुष्य, सब देशों और सब जातियोंके मानव, सर्वदा इस भावनाकी ओर अग्रसर होनेका व्रत लेकर इसकी सिद्धिमें लग सकते हैं, इसके साधक हो सकते हैं। इतनेसे ही उनमें बहुत कुछ सौहार्द उत्पन्न हो जायगा।

व्यक्तिके निर्माणसे ही समाजका निर्माण होता है। समाज-के निर्माणसे विश्वका हित हो सकता है और व्यक्तिका निर्माण ही इस साधनामें मुख्य है। इस भावनाकी प्राप्ति सामूहिक रूपसे घंटा-घड़ी बजाकर, शङ्ख फूँककर या व्याख्यान-भाषण देकर नहीं की जा सकती। यह व्यक्तिगत साधनाकी वस्तु है। एक व्यक्तिका प्रभाव बहुतोंपर पड़ा करता है, यदि वह व्यक्ति शुद्ध चित्तसे अपने लक्ष्यकी प्राप्तिका इच्छुक हो। एक व्यक्तिका कितना प्रभाव पड़ सकता है और एक व्यक्ति क्या कर सकता है, यह खोजने दूर नहीं जाना है। शक्तिका एक कण ऐटम बम बन सकता है। शक्तिके उस कणको ढूँढ़ना और उपयोगकी कल्पना तो मानवके वशकी बात है। उससे संहार भी किया जा सकता है, संरक्षण भी। इसीलिये हमारे यहाँ कहा है कि प्रतिक्षण संकल्पको शुद्ध रक्खा जाय। संकल्प अशुद्ध रहेंगे तो प्राप्त शक्ति भी आसुरी ही होगी, वह अहित ही करेगी।

इसलिये बहुत शुद्ध संकल्पसे, इस भावनाकी ओर अग्रसर होना चाहिये। बात यह है कि कर्मका प्रभाव कर्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक ही सीमित नहीं रहता । वह बहुत दूर तक जाता है । कर्मका प्रभाव सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर पड़ता है । एक उदाहरण लीजिये । किसी तालाबके शान्त जलमें एक पत्थर फेंकिये । पत्थर गिरनेपर तरंगें उठेंगी; जो तालाबभरमें फैल जायँगी । उसी प्रकार मन या इन्द्रियोंकी हलचलसे वायुमण्डलमें स्पन्दन होते हैं । ये सूक्ष्मरूपसे वायुमण्डलमें फैलते हैं और ब्रह्माण्ड भरके वायुमण्डलमें संक्रमित होते हैं । तब ये आकाश, तेज, पृथ्वी तथा जलपर अपना प्रभाव डालते हैं । इस प्रकार कर्मका प्रभाव सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर पड़ता है । अतः मनुष्य यदि शुभ संकल्पसे कर्म करेगा तो उसका प्रभाव शुभ पड़ेगा, अशुभसे करेगा तो अशुभ पड़ेगा । इसीलिये शुभकर्म करना ही सर्वथा उचित है ।

कर्मसे ही संस्कार बनते हैं । एक ही कर्म बार-बार करनेसे उसका स्थायी प्रभाव पड़ता है । इसी प्रभावको 'संस्कार' कह सकते हैं । 'रसरी आवत जात ही सिलपर परत निसान' यह दूसरा उदाहरण लीजिये । जिस मिट्टीके बर्तनमें बहुत दिनोंसे घी रक्खा जाता हो, उसे तोड़कर जला देनेपर घीकी सुगंधि आती है, और यही नहीं, बर्तनकी भस्ममेंसे ही घीकी ही सुगंधि आती है । यह उस बर्तनपर घीका संस्कार है । ऐसे ही कर्मका मनुष्यमें संस्कार पड़ता है, जो दूसरे जन्ममें, पहले शरीरके भस्म हो जानेपर भी जाता है । कारण, संस्कार आन्तरिक होता है, वह और दूरतक जाता है । अतः यदि हम सबको समान, अपने-जैसा समझनेकी भावनाका संस्कार डालें तो वह भी एक ही जन्ममें समाप्त नहीं हो जायगा । किसी मनुष्यमें विश्वबन्धुत्व देखिये, अनेक विशिष्ट गुणोंकी अनायास सिद्धि देखिये, तो वह उसी जन्मकी नहीं है, वह न जाने कितने जन्मोंका संस्कार है, जो अब प्रकट हुआ है ।

कहनेका तात्पर्य यह कि मनुष्य सदा सुखकी खोजमें रहता है । वह दुःखसे यथासाध्य दूर रहना चाहता है । उसके सब कर्म, सब संकल्प, इसीके लिये होते हैं । इसी प्रवृत्तिको लक्ष्य करके हमारे शास्त्रों और दर्शनोंने परम सुखकी प्राप्तिके मार्ग बतलाये हैं । वे भिन्न-भिन्न हैं । किसीमें मनन प्रधान है, किसीमें शरीर-कष्टका—तपका योग है, किसीमें दोनों हैं । उसके बाद जो परम सुख प्राप्त होगा, वह प्रायः परलोकसे सम्बद्ध, अतः आधुनिक विश्वास और तर्ककी कसौटीपर पूरा न उतरनेवाला है । इस वर्तमान समयमें नाना जंजालोंमें जकड़े मनुष्यको इतना समय भी नहीं कि वह शास्त्रालोचन करे, किसी एक मार्गको पकड़े और परम सुखके संधानमें दत्तचित्त हो ।

पर, 'आतमवत् सर्वभूतेषु' वाली भावनामें न तो बहुत मनन आवश्यक है, न शरीरको कुछ कष्ट देना है न यज्ञ-अनुष्ठानादिकी तरह यह अर्थ-परवश है । इसमें तो भावना मात्रसे अपने व्यक्तित्वको विशाल करना है । इसके लिये संसारको छोड़कर किसी कंदरामें जाना तो इसके एकदम प्रतिकूल है । यह योग बहुत कम उपकरणोंवाला, संसारके कर्म करते हुए ही करनेके योग्य तथा सबके लिये सरल है। हम यह संकेत कर चुके हैं कि वर्तमान समयकी सभी विपत्तियों तथा अव्यवस्थाओंकी स्थायी शान्ति या शमनकी भी यह महौषध है ।

यह किसी वर्ण या जाति या देशके लोगोंके लिये ही नहीं है । इसकी सिद्धिके सब लोग समानरूपसे अधिकारी हैं। कितने ही अधिक साधक इसके हों, यह सिद्धि उतनी ही शीघ्र होगी तथा फलद होगी । इसके साधनमें विफल होनेसे साधकको किसी प्रकारकी हानिकी आशंका भी नहीं । न मानसिक, न शारीरिक, न आर्थिक ।

अतः ऐसी उत्तम सिद्धिके साधनमें हम सबको निःशङ्क चित्तसे, अविलम्ब लग जाना चाहिये। कालान्तरमें इसके कारण संसारमें स्थायी शान्ति, सुखका साम्राज्य होगा । मानव भी सच्चा सुख प्राप्त कर, भोग और त्यागका समन्वय कर सकेगा । तब न किसीको, किसी राष्ट्रको जीतनेकी आकांक्षा होगी, न किसीको अपना दास बनानेकी प्रवृत्ति, न किसी वस्तुका एकाधिकार प्राप्त करनेकी स्पृहा । यह संसार उस समयके भारत-जैसा हो जायगा, जब न किसी घरमें ताला बंद होता था, न कहीं चोरी होती थी, न किसीमें लोभ था। ऋग्वेदके संज्ञानसूत्रमें कहा है—

**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।**
**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥**

अर्थात् सबकी चेष्टा समान हो, सबके निश्चय समान हों। सबके हृदय एक हों । कहीं विषमता न हो । अन्तःकरणोंकी उदारता भी समान हो । सब लोग साकार समताके समान साथ रहें ।

यह बात 'आतमवत्सर्वभूतेषु' की भावनासे ही हो सकती है । अतः वही हमारा लक्ष्य, ध्येय, प्रेम हो । तभी कल्याण होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कहीं यह कमजोरी आपमें तो नहीं है ?

( लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच० डी० )

शिवजीके दो पुत्र हैं—कार्त्तिकेय या स्वामीकार्तिक और दूसरे श्रीगणेश। ये दोनों पुत्र अपने पिताके समान ही विचित्र और अद्भुत हैं। एकसे दूसरा बढ़-चढ़कर, रूपमें भी और गुणोंमें भी। स्वामीकार्तिककी अनेक आँखें, तो गणेशका हाथी-जैसा सिर और मुखमण्डल। मोटा पेट और चूहेसे प्रेम! दोनों ही विचित्र!

ये दोनों आपसमें एक दूसरेको चिढ़ाते। इसपर पार्वतीजीने क्षुब्ध होकर एक दिन भगवान् शिवसे कहा—

'महाराज! ये दोनों बच्चे आपसमें लड़ते-झगड़ते रहते हैं। कृपा कर इन्हें इस प्रकार समझा दीजिये कि एक दूसरेकी व्यर्थ टीका-टिप्पणी न किया करें। भगवान् शिवजीने दोनों पुत्रोंको बुलाया। भगवान्ने बड़े प्रेमसे सहानुभूतिभरे स्वरमें कहा—'स्वामीकार्तिक! गणेश! तुम दोनों ही भाई-भाई हो। दोनों ही बुद्धिमान् और पूर्ण विवेकी हो; लेकिन तुममें एक बड़ी कमजोरी है।'

'क्या कमजोरी है?' दोनोंने श्रद्धासे पूछा।

शिव बोले, 'संसारकी सृष्टि गुण-दोषमयी है। इस जगत्‌का प्राणीमात्र गुणों एवं दोषोंका पुञ्ज है। किसीमें गुणोंकी अधिकता है तो किसीमें दोषोंकी संख्या बढ़ी हुई है। दृष्टि-दोष यह है कि मनुष्य दूसरेका दोष देखता है, उसके गुण नहीं। दोषदर्शन एक भारी कमजोरी है। जिसकी दोषदर्शनकी दृष्टि होती है, वह विकारी व्यक्ति बड़े महापुरुषोंमें भी कोई-न-कोई दोष ढूँढ़ निकालता है। दूसरी ओर, जिसमें गुणग्राहकता होती है, वह पापीके भी गुण ही देखता है। थोड़े-बहुत गुण-दोष तो सभीमें होते हैं। तुम दोनोंकी जैसी दृष्टि होगी, वह स्वयं जैसा होगा, दूसरेके उसी गुण-अवगुणको महत्त्व देगा। जिसमें स्वयं दोष हैं, वह दूसरेके दोष ही देखेगा। इसके विपरीत जिसमें गुण हैं, वह गुणोंको ही देखेगा। जिसकी नज़र दूसरेके अवगुण खोजनेमें लगी रहती है, वह किसी प्रकारकी उन्नति नहीं कर पाता। उलटे दूसरोंके दुर्गुण उसमें घर कर लेते हैं। अतः तुम दोनोंको दोषदर्शनके सिवा गुणग्राहकताकी दृष्टिको ही महत्त्व देना और अपनाना चाहिये।'

शिवकी विवेकसे भरी हुई मधुर बात सुनकर दोनोंको ज्ञान हो गया। उन दिनसे उन्होंने दूसरोंके दोष गिनने या कमजोरियोंपर खिल्ली उड़ानेकी वृत्ति छोड़ दी। गुणग्राही दृष्टिको विकसित करने लगे।

× × ×

अष्टावक्रका नाम आपने सुना होगा।

काले-कुरूप, आठ जगहसे टेढ़े-मेढ़े। उनका कोई अङ्ग सीधा नहीं। हर प्रकारकी शारीरिक कमजोरी। जब वे सभामें आये तो उनकी इस अजीब शकल और टेढ़े-मेढ़े शरीरको देखकर सब हँस पड़े। सबको उनमें दोष दिखायी पड़े।

अष्टावक्र बोले, 'मुझे यह कहते हुए खेद है कि इस सभामें चमार अधिक हैं। चमार चमड़ेको देखता है। आप मेरे आठ जगहसे टेढ़े-मेढ़े इस काले-कलूटे शरीरको देखकर हँस रहे हैं। आप ही बताइये, इस शरीरको लेनेमें मेरा क्या दोष है? ईश्वरने जैसा मुझे बनाया, वैसा अच्छा-बुरा आपके सामने मौजूद हूँ। मैंने अपने ज्ञान और बुद्धिको अधिक-से अधिक बढ़ाया है। यह स्वाध्याय और अभ्याससे पैदा किया हुआ ज्ञान ही मेरी अर्जित सम्पत्ति है। इसमें आपमें कोई भी शास्त्रार्थमें मेरा मुकाबला न कर सकेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।'

यह कहकर उन्होंने बड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया जिसे सारी सभा मन्त्र-मुग्ध-सी सुनती रही। जैसे-जैसे उन्हें अष्टावक्रजीके गुण मालूम हुए, वैसे-वैसे वे उनसे प्रभावित होते रहे। अन्तमें उनकी विद्वत्ताके भक्त बन गये। यह है गुणोंकी विजय।

× × ×

कूटराजनीतिज्ञ ब्राह्मण चाणक्यकी कहानी आपकी स्मृतिमें उभर रही है। श्रीशिवनारायण द्विवेदीके शब्दोंमें उसको एक बार फिर स्मरण कीजिये—

मगधकी राजधानी पाटलिपुत्रमें आज मृत महाराज महानन्दका श्राद्ध है। राजमहल आगन्तुक ब्राह्मण और अतिथियोंसे भरा हुआ है। देश-देशान्तरोंसे आये हुए विद्वान् ब्राह्मण एक ओर बैठे शास्त्रोंकी चर्चा कर रहे हैं। दूसरी ओर राजाके शूर सामन्त एकत्र होकर विद्वानोंकी बातें सु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। प्रधान मन्त्री राक्षसपर कुलपुरोहितको लानेका भार दिया गया है। राक्षस उसे लेनेके लिये उसके घर गया है।

वह चाणक्यसे मिला जो पाँवमें चुभे कुशाको उखाड़नेमें कमर कसकर लगा हुआ है। कुशा उखाड़कर वह उसकी जड़में छाछ डालकर उसे जला रहा है। ऐसे दृढ़निश्चयी विद्वान् ब्राह्मणको देखकर शकटारने इसीके द्वारा नन्दवंशका नाश करवाना सोचा।

बड़ी नम्रताके साथ वह इस चाणक्यसे मिला और एक पाठशालाका अध्यापक बनाकर उसे पाटलिपुत्रमें ले आया। श्राद्धके मौकेपर शकटारने देखा कि यही भिड़ा देनेका समय है। चाणक्यको अच्छे कपड़े पहनाकर वह सभामें ले आया और पुरोहितके ऊँचे आसनपर बैठाकर स्वयं चला गया।

चाणक्यका रंग काला-स्याह और शकल बहुत भद्दी थी। कुरूपताकी जैसे वह साक्षात् प्रतिमा ही था। मन्त्री राक्षसने आकर ऐसी भद्दी शकलवालेको बैठा देखकर उससे पूछा और शकटारकी कथा उसने राजासे कही।

राजा शकटारपर पहलेसे ही नाराज था। सभामें ऐसी गुस्ताखीकी बात सुनकर आगबबूला हो गया। सभामें आकर राजाने काले-भद्दी शकलवाले चाणक्यको पुरोहितके आसनपरसे चोटी पकड़कर उठाया और लात मारी।

सभामें इस अपमानसे चाणक्यका क्रोध जाग उठा। उसे शकटारके छिपे भावका कुछ भी पता न था। उसने जमीन-पर लात मारकर कहा—

'ओ राजकुलकलङ्क महानन्द! तूने सभाके बीचमें निरपराध ब्राह्मणका अपमान किया है। इसका बदला तुझे मिलेगा।'

इसके बाद सभाकी ओर मुँह करके उसने कहा—'हे सभ्यगण! मैं चाणक्य शर्मा हूँ। महानन्दने आज निरपराध मेरा अपमान किया है। इसका बदला मैं इसे दूँगा। आप सबके सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जबतक नन्दवंशका नाश न कर सकूँगा तबतक मेरी चोटी खुली रहेगी। यह खुली चोटी काला भुजंग बनकर नन्दवंशको खा जायगी।'

यह कहकर चाणक्य सभासे शकटारके घर चला गया। उसकी उग्र वाणी सुनकर सब लोग शंकित हो उठे।

और चाणक्य-जैसे दरिद्र ब्राह्मणकी दृढ़ प्रतिज्ञाके सामने एक राजा तिनकेके समान उड़ गया। काला-कुरूप ब्राह्मण अपनी अद्भुत विद्या, दृढ़ प्रतिज्ञा और शक्तिके कारण इतिहास-का एक महान् पुरुष बना।

इस प्रकारकी शारीरिक त्रुटियोंसे परिपूर्ण अनेक गुणी पुरुषोंके उदाहरण भरे पड़े हैं। यदि मनुष्य उनकी त्रुटियोंको ही देखता रहे, तो क्या लाभ?

× × ×

इन दृष्टान्तोंसे हम एक चिरन्तन सत्यपर पहुँचते हैं, जो किसी प्राचीन संस्कृत कविने इन शब्दोंमें लिखा है—

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।

अर्थात् ब्रह्माजीका स्वभाव सब गुणोंको एक ही स्थानमें एकत्र करनेके विरुद्ध है। वे कहीं किसी गुणकी सृष्टि करते हैं, तो कहीं किसीकी। सबमें गुण-ही-गुण हों या दोष-ही-दोष हों, ऐसी बात नहीं है।

यह हमारा दोष है कि हमें दूसरेमें छिद्र-ही-छिद्र दिखायी देते हैं, दूसरेके गुण नजर नहीं आते।

## दूसरोंके गुण और अपने दुर्गुण देखिये

हमारी यह सबसे बड़ी कमजोरी है कि हम अपनेको बुद्धिमत्तामें सबसे बढ़-चढ़कर समझ लेते हैं। हम सबको अपनी विद्या और बुद्धि बड़ी दीखती है। हम प्रायः समझते हैं कि हम जो सोचते हैं, जो करते हैं या लिखते हैं, वही उचित है। वही सबसे अधिक विवेकपूर्ण है। हम-जैसा ज्ञान-वान्, बुद्धिमान् और विवेकवान् इस संसारमें अन्य कोई नहीं हो सकता। जब माँ सरस्वती बुद्धिका भण्डार वितरित कर रही थी, तो डेढ़ हिस्सेमें हम सब और आधेमें शेष सारा संसार था।

हमारे गुणोंका आर-पार नहीं। हम-जैसा समझदार, बुद्धि-मान और गुणवान् दुनियामें दूसरा कौन है?

अपने प्रति यह अहंकारकी भावना ही बढ़कर मनुष्यके पतन और सांसारिक पतनका कारण बनती है। इस संकुचित भावनाके कारण हमें अपने चरित्रमें गुण-ही-गुण और दूसरोंमें अवगुण-ही-अवगुण दीखते हैं। हमें अपने व्यक्तित्वमें अच्छाइयाँ-ही-अच्छाइयाँ प्रतीत होती हैं और हम दूसरोंमें दोष-ही-दोष पाते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे समाजके हर सदस्य-में दोष-ही-दोष भरे हैं और बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ एकत्रित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## गलत दृष्टिकोण छोड़िये

अपने अंदर गुण और दूसरोंमें दुर्गुण ही देखना एक गलत दृष्टिकोण है। संसारका हर प्राणी एवं पदार्थ तीन गुणोंसे बना हुआ है। यह सारा संसार ही गुण-दोषमय है। प्रत्येक प्राणीमें कुछ बुराइयाँ हैं, तो कुछ अच्छाइयाँ भी हैं। प्रत्येक पेशेमें बाहरसे कुछ त्रुटियाँ और परेशानियाँ दिखायी देती हैं, तो छिपा हुआ कुछ सुख भी है। केवल ईश्वर ही दोषमुक्त हो सकता है।

हम यह मानते हैं कि मानव एक दुर्बल प्राणी है; लेकिन उसकी दुर्बलताके साथ-साथ उसमें कुछ गुण भी छिपे हुए हैं। अनेक दिव्यताएँ भी मौजूद हैं। खेद है कि हमारी दृष्टि दूसरोंकी खराबियोंको छाँटने, उनकी व्यर्थ ही आलोचना करने, उनपर अच्छी-बुरी टीका-टिप्पणी करनेमें ही लगी रहती है। दूसरोंकी कटु आलोचना करने, उनकी बुराइयाँ निकालनेमें हमें एक अजीब स्वाद आता है। इस छिद्रान्वेषणसे हमारे अहंकी तृप्ति होती है। खराबी निकाल-निकालकर हम चुपचाप अपनेमें दूसरोंकी अपेक्षा श्रेष्ठता सिद्ध किया करते हैं।

इस प्रकार हमारा अधिकतर समय दोषदर्शनमें ही व्यतीत होता जाता है। दूसरोंके दोष गिनकर हम पापरूपी पंकमें पड़ते रहते हैं और अप्रत्यक्ष रूपसे उन्हें ही ग्रहण करते रहते हैं। जो जैसा चिन्तन करेगा, वैसा ही विचार उसके गुप्त मनमें पुष्ट होगा। वैसी ही उसकी मनोवृत्ति बनती जायगी। अन्ततः वही अच्छा या बुरा भाव मनकी स्थायी वृत्ति बन जायगी।

## उत्तम तत्त्वोंसे लाभ उठावें या पर-दोष-दर्शनसे दुखी बनें

किसी व्यक्तिके सद्गुणों या उजले पक्षको देखकर लाभ उठाना अथवा अवगुणोंको देखकर पाप और पतनमें फँसना, नीचे गिरना—यह आपके हाथकी बात है। उत्तम तत्त्वों, अच्छे गुणों तथा श्रेष्ठताओंको देखने और उनका चिन्तन करनेसे आपको लाभ होगा। ये दिव्य गुण आपमें भी विकसित होंगे। मनमें स्वस्थ वातावरणका निर्माण होगा।

पर यदि आप दोष-दर्शन करेंगे, तो ये बुराइयाँ बरबस आपके मानसिक जगत्में प्रविष्ट हो जायँगी। मन पापमय और विकारपूर्ण रहेगा। उन बुराइयोंसे मिलकर आपके मनमें सोया हुआ राक्षसत्व जाग उठेगा। इसलिये दूसरोंके दुर्गुणों-की न चर्चा करना और न उनका चिन्तन करना ही ठीक है।

ईश्वर स्वयं चाहता है कि दोष जनताके नेत्रोंसे दूर रहे। जनताकी दृष्टि उसतक न जाय। हमारे शरीरके कुछ अङ्ग कुरूप हैं, दुर्गन्धिमय हैं। समाजका यह नियम है कि वे अङ्ग जनहितकी दृष्टिसे ढके रहें।

इसी प्रकार मनुष्यके चरित्रके अन्धकारमय पक्षोंका ढका रहना ही जनहितकी दृष्टिसे उचित है। गंदगीसे किसे लाभ हो सकता है? ढकी रहनेसे गंदगी स्वयं नष्ट हो जाती है।

एक विचारक लिखते हैं—

'इस गुण-दोषमय संसारमें हम उपयोगी तत्त्वोंको ही ढूँढ़ें। उन्हीं दिव्य गुणोंको प्राप्त करनेका प्रयत्न करें और उन्हीं दिव्य सम्पदाओंके साथ विचरण करें, तो हमारा उत्थान, प्रगति और सच्ची उन्नति हो सकती है। जीवन सुखमय हो सकता है।

बुराइयोंसे भविष्यके लिये शिक्षा ग्रहण करें। अ फलताओंसे सावधान होकर सफलता और सिद्धिकी ओर अग्रसर हों। खतरोंसे सावधान रहें और अपनी दुर्बलताके निवारणका प्रयत्न करके अपनी चतुरताका परिचय दें, तो बुराइयाँ भी हमारे लिये मङ्गलमय हो सकती हैं। चतुर वैद्य वह है जो विषोंका शोधन और मारण करके अमृतोपम ओषधि बना लेता है। इसी प्रकार चतुर मनुष्य वह है जो बुराइयोंसे भी लाभ प्राप्त कर लेता है।'

## गुणग्राहक दृष्टि विकसित कीजिये

दूसरोंके गुणोंको देखकर उन्हें अपने चरित्रमें धारण करनेसे हम लाभ उठा सकते हैं। अतः हमें जीवनमें उन्नतिके लिये गुणग्राहक दृष्टि जाग्रत् करनी चाहिये।

गुणग्राहक हंसकी तरह है, जो दूधका दूध और पानीका पानी कर देता है। एक नीच व्यक्ति गायके थनपर लगी जोंककी तरह है, जो दूधके स्थानपर रक्त ही चूसता है।

गुणग्राहक कमलकी तरह है। कमल कीचड़से सदा ऊपर ही रहता है। कमल गंदगीमें उत्पन्न होता है, पर गुणीजन कमलका सौन्दर्य, रंग, गन्ध ही देखते हैं। क्या हम उसकी गंदगीको देखकर नाक-भौं सिकोड़ते रहेंगे? क्या उसे कीचड़ ही समझेंगे? क्या उसके आस-पासके दुर्गुणोंको ही देखते रहेंगे? नहीं, उसकी त्रुटियाँ निकालना एक अत्याचार होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें तो उसके गुण अर्थात् उसका सौन्दर्य, उसकी सुवास, उसकी मृदुलताको ही ग्रहण करना चाहिये। कमलके पास गंदगी हुआ करे, हमें उससे क्या ? हमें तो उस पुष्पकी उत्तमता ही ग्रहण करनी चाहिये।

गुलाबके चारों ओर काँटे हैं। तनिक-सी दृष्टि चूकी कि काँटा उँगलीमें लगा। उफ्, लहू निकल पड़ा; पीड़ा हुई; मनसे हाय-हाय शब्द निकले। पर इससे क्या ? हमें तो गुलाबकी सुगन्धिमय सौरभ तथा सौन्दर्यको ही देखना चाहिये। उसके गुणोंको ही ग्रहण करना चाहिये।

इस समाजमें हमारे चारों ओर अच्छे-बुरे असंख्य मनुष्य हैं। उनके चरित्रोंमें गुण और श्रेष्ठताएँ भी अनेकानेक हैं। इनमेंसे अनेक गुण आपमें नहीं हैं। आपको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि ये श्रेष्ठ गुण आपमें भी विकसित हों। आप उनके दोषोंके स्थानपर गुण-दर्शन और गुण-चिन्तनकी ही आदत डालें। इस गुणग्राहकताकी अभिवृद्धिसे आप दिव्यता-की ओर ही बढ़ेंगे। महानता प्राप्त करेंगे।

## दुष्टोंका स्वभाव

आप दुष्टोंका स्वभाव पास न फटकने दें। दुष्ट खराबियों-को ही देखा करता है। दुष्टोंका एक लक्षण यह है—

**गुणिनां गुणेषु सत्स्वपि पिशुनजनो दोषमात्रमादत्ते।**
**पुष्पे फले विरागी क्रमेलकः कण्टकौघमिव॥**

अर्थात् जैसे ऊँट फल-फूलोंसे प्रीति न करके केवल काँटों-को खाता है, उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य गुणियोंमें गुणके रहते हुए भी उनके दोष ही देखता है।

**विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।**
**खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥**

अर्थात् दुष्टोंकी विद्या विवाद करनेके लिये, धन अभि-मान करनेके लिये और शक्ति दूसरोंको दुःख और कष्ट पहुँचानेके लिये होती है, परंतु सज्जनोंकी विद्या ज्ञानके लिये, धन दान देनेके लिये और शक्ति दूसरोंकी रक्षा करनेके लिये होती है।

इसके विपरीत सज्जन पुरुष दूसरोंके गुणों और श्रेष्ठताओंको ही देखते हैं। सदा अच्छाइयोंको देख और शुभ चिन्तन-द्वारा दिन-दिन ऊँचे उठते जाते हैं।

साधु स्वभाव यह है—

**मुखेन नोद्गिरत्यूर्ध्वं हृदयेन नयत्यधः।**
**जरयत्यन्तरे साधुर्दोषं विषमिवेश्वरः॥**

साधु पुरुष वह है जो किसीके दोषको मुखपर नहीं लाते। चुपचाप मनमें रख लेते हैं या उपेक्षा कर देते हैं जैसे शिवजीने विषको पचा लिया था। कभी उसे प्रकट नहीं किया। यदि हम किसीकी कोई दुर्बलता या त्रुटि सुनें तो चुप रहना ही उचित है।

## अपने दुर्गुण देखिये और उन्हें दूर कीजिये

ऊपर सिद्ध किया गया है कि पर-दोष-दर्शनसे मनुष्य स्वयं पापी बनता है। लेकिन अपनी खराबियाँ, त्रुटियाँ, कमजोरियाँ और बुराइयाँ मालूम कर उन्हें दूर करनेसे वह उन्नति करता जाता है। हमें चाहिये कि अपने दोषोंके लिये अपनेको सजा दें और भविष्यमें अपनी गलतियोंको फिर कभी न करनेका दृढ़ संकल्प करें।

शास्त्रोंकी आज्ञा है—

**यथा हि निपुणः सम्यक् परदोषेक्षणं प्रति।**
**तथा चेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनात्॥**

अर्थात् जैसे पुरुष पर-दोषोंका निरूपण करनेमें अति कुशल हैं, यदि वैसे ही अपने दोषोंको देखनेमें हों तो ऐसा कौन है, जो संसारमें कठोर बन्धनोंसे मुक्त न हो जाय।

महापुरुष बननेका मार्ग आत्मशुद्धि है। अतः चुन-चुनकर अपने दोषोंको निकाल डालिये। अपने साथ रू-रिआयत कदापि न कीजिये।

**अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः।**
(अथर्ववेद १२।२।२७)

अर्थात् हे साधको! श्रेष्ठ बननेके लिये, अपनी उन्नतिके लिये और आगे बढ़नेके लिये अपने दोषों और दुर्गुणोंका परित्याग करो।

क्या आपके मनमें दुर्बल विचार या वासनासे सनी हुई कुकल्पनाएँ आती हैं ? क्या आप ईर्ष्या, द्वेष और व्यभिचार-में लिप्त हैं ? क्या सारे दिन अपने शरीरका ही शृङ्गार किया करते हैं ? ये या इसी प्रकारके अन्य रोग यदि आपको घेरे हुए हैं, तो तुरंत सावधान हो जाइये। इन्द्रियोंके प्रति बड़े सतर्क और सावधान रहिये। उन्हें पतनकी ओर जानेसे रोकिये। वासनासे मुक्तिका उपाय विषयोंमें दुःख-दोष-दर्शन और शुभ चिन्तन—भगवच्चिन्तन है। इनसे दोष दूर होते हैं और मन हल्का और शान्त रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मधुर

भगवान् श्रीकृष्णका बलरामजीके साथ मथुरा जाना निश्चित हो गया है। दिव्य मधुर रसमय सारा वृन्दावन भावी वियोगके दारुण दावानलसे दग्ध हो रहा है। भगवान् श्रीकृष्णकी अभिन्ना मूर्ति प्रेममयी श्रीराधाकी विचित्र दशा है। वे कभी तो श्रीकृष्णके साथ अपनी नित्य एकताका अनुभव करके दुःख भूल जाती हैं और कभी भावी विरहकी ज्वालासे जल उठती हैं। श्रीकृष्ण उनसे बार-बार मिलकर उन्हें भाँति-भाँतिसे समझाते हैं। इसी राधामाधव-वार्तालापका एक प्रसंग है। एकान्तमें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीकृष्णकी आत्मस्वरूपा राधा बैठी हैं। श्यामसुन्दर उनके पास विराजित होकर उनकी पल-पलमें परिवर्तित होनेवाली भाव-लहरियोंका सतृष्ण निरीक्षण कर रहे हैं—कभी समझाते हैं, कभी स्वयं उन भाव-तरङ्गोंमें तरङ्गित होने लगते हैं। प्रसंग यह है—

> बिषम बिछुड़नेकी बेलामें
> राधा हुई उदास।
> अश्रुधार बह चली दृगोंसे,
> चला दीर्घ निश्वास॥
> बोली करती करुणाक्रन्दन,
> 'मेरे प्राणाधार !।
> निराधार ये प्राण रहेंगे,
> कैसे क्यों निस्सार ?॥'

श्यामसुन्दरके मथुरा पधारनेसे जो विछोह होगा, उसका समय आ गया, वह समय राधाके लिये बड़ा ही विषम है। वे उदास हो रही हैं। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती है और लंबे-लंबे श्वास आने लगते हैं। वे अत्यन्त करुण-भावसे क्रन्दन करती हुई बोलीं—'मेरे प्राणोंके आधार ! तुम्हारे चले जानेपर ये मेरे प्राण निराधार हो जायँगे, फिर ये कैसे बचे रहेंगे—और जीवनका सार जो तुम हो, उसके चले जानेपर रहेंगे भी क्यों ?'

> बदला भाव तुरंत, न जाने
> क्यों, पलभरमें अन्य।
> बोली—'हम दोनों स्वरूपतः
> अविरत नित्य अनन्य॥
> रहे कहीं भी देह,
> छूटता नहीं कभी भी संग।
> नित्य मिले रहते जीवनके
> सकल अंग-प्रत्यंग॥
> हो पाता न कभी हम दोनोंका
> यथार्थ विच्छेद।
> कर सकते न कभी, कैसे भी,
> देश-काल-तन भेद॥
> बने तुम्हारे देह-प्राण-मन
> चरण युगल मम प्राण।
> हुआ तुम्हारे ही प्राणोंसे
> मेरा सब निर्माण॥
> नित्य बसे रहते तुम मुझमें
> सहज मधुर आवास।
> तुममें सहज हो रहा मेरा
> मीठा नित्य निवास॥

दूसरी भाव-तरङ्ग आयी, तुरंत न जाने क्यों भा[व] बदल गया। पलभरमें ही दूसरा भाव आ गया। [वे] बोलीं—'प्यारे श्यामसुन्दर ! हम दोनों तो स्वरूपत[ः] नित्य निरन्तर अनन्य हैं, एक ही हैं। शरीर कहीं भ[ी] रहे, हम दोनोंका संग कभी छूटता ही नहीं। ह[म] दोनोंके जीवनके—( केवल शरीरके नहीं—) समस्[त] अङ्ग-प्रत्यङ्ग ( समस्त भाव-विचार, परिस्थिति, अनुभू[ति] तथा उनके अवान्तर भेद आदि अपनी-अपनी कलाओ[ं] सहित ) नित्य मिले रहते हैं। हम दोनोंका सच्[चे] अर्थमें कभी विच्छेद हो ही नहीं पाता। देश-भेद, काल[-] भेद और शरीर-भेद कभी किसी प्रकार भी हम दोनों[में] भेद उत्पन्न नहीं कर सकते। मेरे प्राण ही तुम्हा[रे] शरीर-मन-प्राण और चरण-युगल बने हुए हैं और मे[रे]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ारा निर्माण तुम्हारे प्राणोंसे हुआ है। ( मैं तुम्हारे ाण हूँ—तुम मेरे प्राण हो। ) तुम नित्य अपने हज मधुर निवासस्थानरूप मुझमें बसे रहते हो ौर मेरा बड़ा मधुर नित्य निवास तुममें हो रहा है। यों कभी तो सर्वथा एकात्मभावकी तरङ्ग आती है और भी दोनों दोनोंमें नित्य सम्मिलित हैं यह भाव-लहरी हराती है।) इतनेमें भाव बदलने लगा—तब वे बोलीं—

'नित्य मिलनमें भी जब आती
कभी बिरहकी बात।
सुनते ही जल उठते सारे
तत्क्षण मेरे गात॥
इतना कहते ही आकुल हो
हुई पुनः बेहाल।
तन-मनमें सर्वत्र जल उठी
ज्वाला कठिन कराल॥
जली लता-सी पड़ी,
उठाकर रखी श्यामने गोद।
कर कमलोंसे लगे केश
सहलाने मधुर समोद॥
वचन-सुधा अति मधुर पिलाकर
तन लौटाया चेत।
हृदय लगाकर बोले
प्रियतम माधव प्रेमनिकेत॥

'प्यारे श्यामसुन्दर ! इस प्रकार हमारा नित्य मिलन ै, पर जब कभी तनिक-सी भी विछोहकी बात आ जाती ै तो उसे सुनते ही उसी क्षण, मेरे सारे अङ्ग जल उठते ैं।' इतना कहते ही व्याकुलता बढ़ गयी, फिर बुरा ाल हो गया। उनके तन और मनमें सर्वत्र ( सर्वाङ्गोंमें ) ड़ी विषम विकराल ज्वाला जल उठी। वे दाझी हुई लकी तरह ( मूर्च्छित होकर ) गिर पड़ीं। श्यामसुन्दरने त्काल उन्हें उठाकर अपनी गोदमें ले लिया और अपने धुर करकमलोंसे वे उनके मधुर केशकलापको प्रसन्नतासे हलाने लगे। फिर अपनी वचन-सुधा-धाराका पान कराया, जिससे उसी समय उनके शरीरमें चेतना लौट आयी। तब उनके प्रियतम प्रेमधाम श्रीमाधव उनको अपने हृदयसे लगाकर कहने लगे—

'प्रिये ! मधुरतम है यह लीला-
रस-वारिधिका रंग।
परम विचित्र तुम्हारे, इसमें
उठती विविध तरंग॥
लीलारसके ही स्वरूप दो—
विप्रलंभ-संभोग।
नहीं वस्तुतः हुआ न होगा,
हममें कभी वियोग॥
दुग्ध-धवलता, अग्नि-दहनता,
ज्यों रवि-रश्मि अभिन्न।
त्यों मैं तुम, तुम मैं; न करो तुम
प्रिये ! तनिक मन खिन्न॥
मथुरा रहूँ, द्वारका, चाहे
हो कोई-सा स्थान।
हम दोनोंके बीच न होगा
कभी रंच व्यवधान॥
एक, बने दो खेल रहे हम
नित्य अनादि अनन्त।
मधुर दिव्य रस-मत्त परस्पर
नित्य निरतिशय रंत॥

प्रिये राधिके ! यह जो कुछ ( मथुरा जाना ) आदि हो रहा है, सब तुम्हारे लीला-रस-समुद्रके परम विचित्र रंग हैं। इस रससुधासागरमें विविध तरङ्गें उठती रहती हैं। तुम्हारे इस लीला-रसके ही दो स्वरूप हैं—वियोग और सम्भोग। वास्तवमें तो हमलोगोंमें न कभी वियोग हुआ है और न कभी होगा ही ! जैसे दूध और धवलता, अग्नि और उसकी दाहकता, सूर्य और उसकी किरण नित्य अभिन्न है, वैसे ही मैं तुम हूँ और तुम मैं हो ( हम दोनों सदा एक ही हैं )। अतएव प्रियतमे ! तुम अपने मनको तनिक भी उदास मत करो। मैं मथुरा रहूँ, द्वारका रहूँ, चाहे किसी भी जगह रहूँ। हम दोनोंके बीचमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी जरा-सा भी पर्दा या पृथक्ता रहेगी ही नहीं। हम सदा एक रहते हुए ही, दो बने हुए खेल रहे हैं। हम और हमारा यह खेल अनादि अनन्त है। इसीसे हम दोनों दिव्य मधुर रसमें मत्त हुए नित्य-निरन्तर एक दूसरेमें अनुरक्त हैं।

राधा हुई प्रसन्न देखकर प्रियतम-वदन प्रसन्न।
तत्सुख-सुखी सदा ही दोनों सहज अभिन्न विभिन्न ॥

( प्रियतम श्यामसुन्दरका मुखकमल यह कहते-कहते खिल उठा।) राधाने जब प्राणप्रियतमका मुख प्रसन्न देखा तो वे भी प्रसन्न हो गयीं। इस प्रकार वे दोनों सदा ही अभिन्न तथा सदा ही भिन्न रहते हुए एक दूसरेके सुखमें सुखी रहते हैं।

परम और चरम त्यागमय इस मधुरतम सत्-चित् आनन्द-भगवत्स्वरूप प्रेमदेवकी जय हो!

---

# आत्मस्वरूपानुसंधान

( लेखक—ब्र० पूज्यपाद श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी शर्मा )

[ अनुवादक और प्रेषक—श्रीसुरेश एम्० भट ]

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरसे पर तथा उनसे विलक्षण स्वभावयुक्त जो आत्मा है, उसका साक्षात्कार करनेके लिये साधकको चाहिये कि वह अपनी चित्तवृत्तिको आत्माके वास्तविक स्वरूपमें संलग्न करता रहे। इसी क्रियाको 'आत्मस्वरूपानुसंधान' कहते हैं।

आत्मस्वरूपका यथार्थ अनुभव प्राप्त करनेके साथ ही अनुष्ठान करने योग्य तीन साधन वेदान्त शास्त्रमें बतलाये गये हैं—आत्मस्वरूपका अनुसंधान, मनोनाश और वासनाक्षय। इन तीन साधनोंमें भी, सत्त्वापत्तिरूप ज्ञानकी चौथी भूमिकाका सम्पादन करनेकी इच्छावाले मुमुक्षुके लिये आत्मस्वरूपका अनुसंधान ही मुख्य साधन है। आत्मस्वरूपानुसंधानके दृढ़ अभ्याससे आत्मस्वरूपका साक्षात्कार होनेपर मुमुक्षु कृतार्थ हो जाता है। आत्मस्वरूपानुसंधानके अभ्यासके साथ-साथ मनोनाश और वासनाक्षयका अभ्यास गौणरीतिसे करना आवश्यक है।

जिस प्रकार दीपकसे ज्वालाएँ निकला करती हैं, उसी प्रकार मन शुभाशुभ वृत्तियोंकी परम्परामें परिणमित होता रहता है। मन इन शुभाशुभ वृत्तियोंकी परम्परामें परिणमित न होकर उनसे निरुद्धरूपमें परिणमित रहे, इसीको मनोनाश कहा जाता है। अर्थात् व्युत्थान संस्कारोंके अभिभव होनेपर निरोध-संस्कारोंका प्रादुर्भाव होना और चित्तका निरुद्ध स्थितिमें रहना—यही मनोनाश है। रजोगुण या तमोगुणसे मनके स्थूलभावकी निवृत्तिको मनोनाश अथवा मनोजय कहते हैं।

नित्यानित्य वस्तुके विवेकसे प्रादुर्भूत शमदमादिरूप शुद्ध वासनाके दृढ़ होनेपर, निमित्त प्राप्त होनेपर भी क्रोधादिकी उत्पत्तिका अभाव होना—वासनाक्षय अर्थात् अशुद्ध वासनाकी निवृत्ति है।

इन्द्रियादिके द्वारा प्रतीत होता हुआ यह नामरूपात्मक सर्वजगत् मृगजलकी भाँति असत्य है—सत्य नहीं है और यह सब ब्रह्म ही है—ऐसे दृढ़ निश्चयको तत्त्वज्ञान कहते हैं। तत्त्वज्ञानके बिना मनोनाश नहीं होता और मनोनाश किये बिना तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होता। अद्वितीय ब्रह्माभिमुख मनोवृत्ति ज्ञानमें हेतुरूप है, इसलिये तत्त्वज्ञान अन्यवृत्तियोंके नाशका साधनरूप है।

वासनाक्षयमें मनोनाशकी और मनोनाशमें वासनाक्षयकी आवश्यकता है; इसी तरह तत्त्वज्ञानमें वासनाक्षयकी और वासनाक्षयमें तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्वज्ञान-सम्पादन करनेके लिये तीन साधन हैं—
दान्त शास्त्रका श्रवण, मनन और निदिध्यासन। मनो-
ाशके लिये मनोवृत्तियोंका निरोधरूप योग है और वासना-
ायके लिये अशुद्ध वासनाओंके विरुद्ध शुद्ध वासनाओंको
त्पन्न करना—साधन है।

वेदान्त शास्त्रका श्रवण और मनन किये बिना
िदिध्यासन अर्थात् आत्मस्वरूपका अनुसंधान नहीं हो
कता। वेदान्तशास्त्रके श्रवण और मननसे, बुद्धिके जो
माणगत—असम्भावना तथा प्रमेयगत असम्भावनारूपी
ोष हैं, वे निवृत्त हो जाते हैं। किंतु आत्मसाक्षात्कारके
भावसे देहादिमें ममत्वकी बुद्धि तथा जगत्में सत्यपनकी
ुद्धि निर्मूल नहीं होती। अतएव ऐसी मनोबुद्धिको निर्मूल
रनेके लिये मुमुक्षुको दीर्घकाल, निरन्तर, आदरपूर्वक
ात्मस्वरूपका अनुसंधान करना चाहिये। अनादरसे
भ्यास करनेपर अभ्यासका परिपाक नहीं होता। इसलिये
ाधकको आदरपूर्वक ही अभ्यास करना चाहिये।

'मैं देहादि नहीं किंतु सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ और यह
ामरूपात्मक जगत् भी सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है'—ऐसा
ढ़ परोक्षज्ञान वेदान्तशास्त्रके मननसे सुसिद्ध होनेपर; आत्म-
ारूपका अपरोक्षज्ञान सम्पादन करनेके लिये मुमुक्षुको
ात:काल तथा सायंकाल श्रद्धा, सावधानी और उत्साह-
र्वक आत्मस्वरूपानुसंधान करना चाहिये। शान्त दिव्य
्रकाशरूप ब्रह्मस्वरूपमें चित्तवृत्तिका लय होनेपर अभेद-
ावका अनुभव करना आत्मस्वरूपानुसंधान है।

आत्मस्वरूपानुसंधान करनेवाले साधकको अपने
ित्तमें अडिग श्रद्धा, अपूर्व उत्साह, दृढ़ता और पूर्ण सावधानी
खनी चाहिये, ताकि आत्मस्वरूपानुसंधान अल्प समयमें
रिपक्व होकर आत्मसाक्षात्कारका हेतुरूप बन सके।

आत्मस्वरूपानुसंधानको दृढ़ करनेके लिये आहारको
ियममें रखना, योग्य ब्रह्मचर्यका सावधानीके साथ पालन
रना, नेत्रादि इन्द्रियोंको वशमें रखना, निष्प्रयोजन वाचन
तथा निरर्थक बातोंके श्रवणका परित्याग करना आदि
नियम उपयोगी हैं। अत: साधकको चाहिये कि वह इन
नियमोंका सावधानीके साथ पालन करे।

जो मुमुक्षु शुद्ध बुद्धिसे मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा
रखता है, उसे देहादिमें ममत्व-बुद्धिका त्याग करके
आत्मामें ममत्व-बुद्धिकी सुदृढ़ स्थापना करनी चाहिये; और
देहसम्बन्धी प्राणिपदार्थोंमें ममत्व-बुद्धिका त्याग करके
आत्मामें ही ममत्व-बुद्धि स्थापित करनी चाहिये। ऐसी
स्थिति हो जानेपर 'व्यवहार किस तरह चलेगा' इस
प्रकारकी शंका करना उचित नहीं है; क्योंकि नटकी
तरह कृत्रिम आस्था रखकर बाह्य व्यवहारका यथायोग्य
निर्वाह किया जा सकता है।

चैतन्य अथवा ब्रह्म दु:खसे अत्यन्त रहित और परमा-
नन्दरूप है। साधकको सभी दृश्य पदार्थोंमें आग्रहपूर्वक
चैतन्य ब्रह्मकी भावना करनी चाहिये। अपनी इन्द्रियोंके
तथा अन्त:करणके बाह्य वेगको हृदयाभिमुख करना मुमुक्षु-
के लिये आवश्यक है। जो मुमुक्षु अपने अन्त:करणकी
वृत्तिको ज्ञानार्जनयुक्त कर लेता है, वह सर्वत्र ब्रह्मतत्त्वका
अनुभव करता है।

परम तत्त्वका अनुसंधान करनेसे ही बुद्धि कृतार्थ होती
है। सर्वव्यापक परमतत्त्वका अनुसंधान करके उसका
साक्षात्कार करनेपर मुमुक्षुकी बुद्धि कृतार्थ होती है; इस-
लिये मुमुक्षुको नित्य उस परम तत्त्वका अनुसंधान करनेमें
प्रयत्नवान् रहना चाहिये।

भक्तिमार्गमें सगुण ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके लिये
जिस तरह सर्वत्र सगुण ब्रह्मका अनुसंधान करना आवश्यक
है, उसी तरह निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके लिये
साधकको सर्वत्र निर्गुण ब्रह्मका अनुसंधान करना चाहिये।
निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका परिपाक होनेपर वह उपासना
ज्ञानरूपमें परिणमित होती है; और ऐसी स्थिति होनेपर
साधकको जीव तथा जगत्के अधिष्ठानरूप ब्रह्मका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार होता है। इस साक्षात्कारके द्वारा प्रारब्धकी समाप्ति होनेपर उस तत्त्वज्ञानी महापुरुषको विदेहकैवल्यकी प्राप्ति होती है।

जो मनुष्य ब्राह्मी स्थिति सम्पादन करके शाश्वत शान्ति प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, उसके लिये आत्मस्वरूपका अनुसंधान करना परम कर्तव्य है। आत्मस्वरूपका अनुसंधान करनेसे मुमुक्षुको प्रत्यगभिन्न ब्रह्मका साक्षात्कार होता है।

आत्मस्वरूपका अनुसंधान करनेवाले मुमुक्षुको अप्रमादी होना चाहिये। विवेक-वैराग्य आदि साधनोंके नाम तथा उनके लक्षणोंको पुस्तकोंमें पढ़कर केवल कण्ठस्थ कर लेनेसे काम नहीं चलता। अपने अन्तःकरणमें तथा इन्द्रियोंमें प्रत्येक साधनका परिपाक करनेके लिये सावधानी, धैर्य और दृढ़ताके साथ प्रयत्न करना आवश्यक है।

जो मनुष्य कृतार्थ होनेकी इच्छा रखता है, उसे अकर्ता, अभोक्ता, असंग, विभु और सच्चिदानन्दरूप आत्माका परम प्रेम और असाधारण एकाग्रतासे अनुसंधान करना चाहिये।

# वास्तविक साधुता

( लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

गम्भीरतापूर्वक विचारते हुए अन्तर्दृष्टिसे देखने तथा शास्त्रपरिशीलनसे यह निश्चय होता है कि विना सच्ची साधुताके वास्तविक स्व-पर-कल्याण सम्भव नहीं। भारतवर्षमें अनेकानेक द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शैव, शाक्त आदि सम्प्रदाय हैं। इनमें परस्परके रीति-रिवाजों—इष्टमन्त्रों, मन्तव्यों तथा पारिभाषिक शब्दोंमें बड़ा मतभेद है। तथापि 'साधु' शब्द इन सभीमें समानरूपसे अभीष्ट तथा आदृत है। इतना ही नहीं, यह गृहस्थोंमें भी व्यवहृत है। गीता ४। १४ में आये 'परित्राणाय साधूनां' के 'साधु' शब्दकी व्याख्यामें प्रायः सभी आचार्योंने सन्मार्गस्थ गृहस्थ-विरक्त सबको 'साधु' माना है। गीतामें यह साधु शब्द चार तथा रामचरितमानसमें पचहत्तर वार आया है। अमरसिंह आदि कोशकारोंने संत, सज्जन, कुलीन आदि कई शब्दोंको भी 'साधु' शब्दका पर्याय माना है। यदि इन्हें भी गिना जाय तो मानसादिमें इस शब्दकी संख्या बहुत बढ़ जायगी। पर मैं यहाँ प्रायः 'साधु' शब्दपर ही विशेषरूपसे विचार करूँगा।

## साधु-महिमा

साधु-महिमाके सम्बन्धमें ये वचन ध्यान देने योग्य हैं—

**साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।**
**मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥**
( श्रीमद्भा० ९। ४। ६८ )

**परित्राणाय साधूनां···सम्भवामि युगे युगे।**
( गीता ४। ८ )[1]

**'साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कर हानी॥'**
**'साधु अवग्या कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥'**
**'साधु ते होइ न कारज हानी।'**
**'ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुखपुंज।'**
**'अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदयँ बसै धन जैसे॥'**

इतनेमें सब बातें आ जाती हैं। बल्कि एक पहली ही बात पर्याप्त है कि भगवान् साधुको छोड़कर और कुछ नहीं जानते। अब बाकी ही क्या रह गया। वस्तुतः

१. गीताका ठीक यही वचन पद्मपुराण उत्तरखण्ड १६९। ७ तथा श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण १। ३८। ११ में भी आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दृष्टिसे एकमात्र साधुका ही भविष्य निर्भय है। अन्य व्यक्तियोंके कर्मफलका कुछ ठिकाना नहीं।

## साधुका लक्षण

पद्मपुराणमें भक्तवर पुण्डरीक श्रीभगवान्‌से साधुकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं—

**येषां वचसि ते नाम हृदि रूपं च सुन्दरम्।**
**कर्णयोश्च गुणारोपस्त एव खलु साधवः॥**
**भवतो भवति स्वान्तं येषां शुश्रूषणे विभो।**
**उत्तमाङ्गे च निर्माल्यं त एव खलु साधवः॥**
**येषां च बुद्धिः शत्रौ च मित्रे च कमलापते।**
**चयापचययोश्चैव त एव खलु साधवः॥**
**येषां विकुरुते चेतो न विकारस्य कारणे।**
**सति लक्ष्मीपते नूनं त एव खलु साधवः॥**

(पद्म० उत्तर० २१९। २६–२९, मोर० तथा वे० प्रे० २१५। २६–२९ आनन्दाश्रम०)

अर्थात् जिनके जीभपर रामनाम, हृदयमें उनका सुन्दर रूप, कानोंमें कथा, मनमें सेवाभाव, सिरपर भगवत्प्रसाद हो, जिनकी बुद्धि लाभ-हानि एवं शत्रु-मित्रमें समान हो, जिनका मन कभी विकृत नहीं होता, वे ही साधु हैं।

इसी ग्रन्थमें अन्यत्र साधुका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

**यथालब्धेऽपि संतुष्टः समचित्तो जितेन्द्रियः।**
**हरिपादाश्रयो लोके विप्रः साधुरनिन्दकः॥**
**निर्वैरः सदयः शान्तो दम्भाहंकारवर्जितः।**
**निरपेक्षो मुनिर्वीतरागः साधुरिहोच्यते॥**
**लोभमोहमदक्रोधकामादिरहितः सुखी।**
**कृष्णाङ्घ्रिशरणः साधुः सहिष्णुः समदर्शनः॥**
**समचित्तो मुनिः प्रीतो गोविन्दचरणाश्रयः।**
**सर्वभूतदयः कार्यो विवेकी साधुरुत्तमः॥**

अर्थात् जो मिल जाय उतनेमें ही संतुष्ट रहनेवाला, समानचित्त, जितेन्द्रिय, अनिन्दक, निर्वैर, दयालु, शान्त, निश्छल, निरपेक्ष, निरहंकार, वीतराग, मननशील, लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध आदि दुर्गुणोंसे रहित, सहिष्णु विवेकी व्यक्ति साधु कहा जाता है। वाल्मीकीय रामायण १। १। १५ में भगवान् रामको नारदजी साधु कहते हैं—

**सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।**

यहाँ सभी टीकाकारोंने 'साधु' शब्दका अर्थ मृदु-मधुर स्वभाववाला किया है। अतः मृदु-मधुर स्वभाव का होना ही संक्षेपमें साधुता है। अग्निपुराणमें साधुका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

**त्यक्तात्मसुखभोगेच्छाः सर्वसत्त्वसुखैषिणः।**
**भवन्ति परदुःखेन साधवो नित्यदुःखिताः॥**
**परदुःखातुरा नित्यं स्वसुखानि महान्त्यपि।**
**नापेक्षन्ते महात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥**
**परार्थमुद्यताः सन्तः सन्तः किं किं न कुर्वते।**
**तादृगप्यम्बुधेर्वारि जलदैस्तत्प्रपीयते॥**
**एक एव सतां मार्गो यदङ्गीकृतपालनम्।**
**दहन्तमकरोत् क्रोडे पावकं यदपाम्पतिः॥**
**आत्मानं पीडयित्वापि साधुः सुखयते परम्।**
**ह्लादयन्नाश्रितान् वृक्षो दुःखं च सहते स्वयम्॥**

अर्थात् साधुजन सब सुख-भोग छोड़कर दूसरेके दुःखको ही दूर करनेमें लगे रहते हैं। दूसरेके दुःखको दूर करनेके लिये अपना भारी-से-भारी सुख भी छोड़ देते हैं। जैसे समुद्रका जल बादल ही पान करते हैं, वैसे साधु पुरुषका तन-मन-धन परोपकारमें ही जाता है। शत्रुको भी वे शरणमें आनेपर पालन करते हैं। जैसे समुद्र अपने हृदयमें बड़वानलको धारण करता है। जैसे वृक्ष स्वयं धूप-गरमी सहता हुआ पथिकोंको आह्लादित करता है, उसी प्रकार साधुपुरुष स्वयं अनेक कष्ट सहकर भी दूसरेके दुःखको दूर करनेमें ही प्रवृत्त रहता है। इन श्लोकोंमें साधुके लिये संत शब्द भी व्यवहृत हुआ है। गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

**भुर्जतरू सम संत कृपाला। परहित सह नित बिपति बिसाला॥**
**जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥
संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥

भर्तृहरि भी यही कहते हैं—

'एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये।'
(नीतिशतक ७५)

महाभारत भी कहता है—

परोपकारैकधियः स्वसुखाय गतस्पृहाः।
जगद्धिताय जीवन्ते साधवस्त्वादृशा भुवि॥
(श्येनकपोतीयम्)

नारदजीसे भगवान् कहते हैं—

षट बिकार जित अनघ अकामा।
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी।
सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना।
धीर धरमगति परम प्रबीना॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ।
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला।
हेतु रहित परहित रतसीला॥
बिषय अलंपट सील गुनाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया।
मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
बिगत काम मम नाम परायन।
सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री।
द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

महाभारतमें सावित्रीद्वारा कहे गये संतके लक्षण इस प्रकार हैं—

न चाफलं सत्पुरुषेण संगतं
ततः सतां संनिवसेत् समागमे।
(वन० २९७। ३०)

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥
...सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते।
(वन० २९७। ३६)

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।
सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति
सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः॥
(वन० २९७। ४७)

अर्थात् संतोंका समागम कभी निष्फल नहीं होता। साधुजन किसीसे द्वेष नहीं करते। (गीता १२।१४)के—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

—आदि वचनोंमें भी यही कहा गया है।) वे सदा कृपा-दान करते हैं। यही उनका सहज धर्म है। संतोंसे कभी भय नहीं होता।

इसी प्रकार नारदपुराणके चौथे अध्यायमें सनत्कुमार-नारद-संवादमें साधुके गुण भी कहे हैं।

वस्तुतः ये सभी गुण बड़े दुर्लभ हैं। पर इनका अध्ययन-अध्यापन आज संसारमें नहीं होता। जब कभी होता था, तब भी इनका संश्रय-संग्रह कठिन था। इसीलिये प्रह्लादने असुरोंको कहा था कि ये सभी महान् गुण तो ईश्वरकी शरणागति तथा ईश्वरद्वारा कृपा करके प्रदान किये जानेसे ही सम्भव हैं—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥
(श्रीमद्भागवत ५। १८। १२)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमार्थ-पत्रावली

( श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र )

## ( १ )

सप्रेम हरिस्मरण । आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ ।

१. वेदान्त-सिद्धान्तानुसार ईश्वर और जीव एक ही हैं ।

२. आत्मा मुक्त जीवका ही स्वरूप है । जबतक मायासे आवृत रहता है, वह जीव कहलाता है । मायाका बन्धन हटनेपर वही शुद्ध आत्मा रह जाता है ।

३. जीव और ईश्वर कभी एक थे, बादमें पृथक् हुए हैं—ऐसी बात नहीं है, सदासे ही पृथक् हैं ।

४. वेदान्त-सिद्धान्तानुसार ईश्वर और जीव जाति तथा स्वरूपसे भी एक हैं । भक्तिके सिद्धान्तसे जातिसे एक हैं, किंतु स्वरूपसे भिन्न-भिन्न हैं ।

५. इस संसारमें पूर्ण सत्य परमात्मा ही हैं ।

६. जिस प्रकार जीव अनादि है, उसी प्रकार कर्म भी अनादि हैं । यदि कर्म अनादि नहीं माने जायँ तो 'जीव' संज्ञा ही नहीं बनती ।

७. जीव और ईश्वरके मिलनकी कोई अवधि निश्चित नहीं की जा सकती ।

८. जीवमें कभी अज्ञान पैदा हुआ हो, ऐसी बात नहीं है । अज्ञान सदासे है । जैसे किसी कन्दरामें लाखों वर्षोंसे अँधेरा है, किंतु प्रकाश होते ही वह क्षणमें ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानरूप प्रकाशसे अज्ञानरूप अन्धकारका नाश हो जाता है । जिस क्षण प्रकाश होता है, उसी क्षण अन्धकार रह नहीं सकता । इसमें अवधिका कोई प्रश्न ही नहीं है । अन्धकार यह नहीं कह सकता कि मेरा यहाँ इतने वर्षोंसे अधिकार है, इतना शीघ्र क्यों चला जाऊँ । बस प्रकाश होनेभरकी देर है कि अन्धकार समाप्त ।

९. आत्मा-जीवात्मा दो नहीं हैं । जब प्राणी मायासे आवृत है, तब वह जीवात्मा या जीव कहा जाता है । जब वही मायासे मुक्त हो जाता है, तब आत्मरूप बन जाता है । मायासे मुक्त जीव ही आत्मा है ।

१०. मुक्तिका आनन्द भोग्य नहीं होता । मुक्त आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप ही होता है । वह आनन्द चेतन होता है, जड नहीं । उसका कोई भोक्ता नहीं होता । आनन्द अलग हो और आत्मा अलग हो, ऐसी बात नहीं है । वह अनिर्वचनीय कहा गया है । भक्तोंकी मुक्तिका आनन्द उनके भगवान्में केन्द्रीभूत रहता है । भक्त अपने प्रभुके दर्शन, भाषण, स्पर्श आदिसे नित्य आनन्दित रहता है । यह आनन्द भी चेतन आनन्द है, जड नहीं है । दोनों ही बातें ठीक हैं । इसका वास्तविक अनुभव तो स्वसंवेद्य है, जो साधनद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है ।

## ( २ )

सादर राम राम । तुमने पूछा कि कभी संसारमें और कभी इधर-उधर मन चला जानेसे नाम-जपमें भूल हो जाती है, इस भूलका सुधार कैसे हो । सो ठीक है । जहाँ कहीं भी मन जाय, वहाँसे उसे बार-बार हटाकर भगवान्के जप-ध्यानमें ही लगाना चाहिये । दुनियामें नाम-जपके बराबर दूसरा कोई भी साधन नहीं है—इस प्रकार समझना चाहिये । जहाँ आसक्ति होती है, वहीं मन जाया करता है । तुम्हारी संसारमें, सांसारिक पदार्थोंमें आसक्ति है, तभी मन संसारकी ओर जाता है । इसलिये संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर और अनित्य समझकर उसके प्रति वैराग्य करना चाहिये और भगवान्में आसक्ति—प्रेम करना चाहिये । तब फिर मन अपने-आप ही संसारकी तरफ न जाकर भगवान्की तरफ ही जायगा । इसलिये नाम-जपके लिये ऊपर लिखे अनुसार साधन करना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन खूब बनता रहे, भगवान्में अनन्य प्रेम हो जाय—इसका उपाय पूछा सो बहुत ठीक है। श्रद्धा-प्रेम होनेसे अनन्य भजन बन सकता है। भगवान्में प्रेम होनेका उपाय पूछा सो ठीक है। जो वस्तु अच्छी समझी जाती है, साधारणतया उसीमें प्रेम हुआ करता है। भगवान्के समान वास्तवमें कोई है ही नहीं—यह बात तत्त्वसे समझ लेनेपर भगवान्में अनन्य प्रेम हो सकता है। भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, लीला, धामकी बातें ही लोगोंसे सुने, पुस्तकोंमें पढ़े और सत्सङ्गमें लोगोंको सुनाये। इस प्रकार अभ्यास करनेसे प्रेम बढ़ सकता है। भगवान्में अनन्य प्रेम हो, इसके लिये भगवान्से करुणभावपूर्वक स्तुति-प्रार्थना करे। गीता और रामायणका अर्थ और भावसहित पाठ करे। भाव नहीं समझमें आये तो बार-बार अर्थ ही पढ़े। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक अभ्यास करनेसे भगवान्में प्रेम बढ़ सकता है।

तुमने लिखा कि भगवान्के भजनके लिये एकान्तमें तो समय मिलता नहीं, गृहकार्य करते समय ही गृह-कार्यकी स्मृति न रहकर भगवान्का चिन्तन किस प्रकार हो, सो ठीक है। इसका उपाय पहलेके पत्रमें लिखा ही था कि गोपियोंकी तरह प्रत्येक कार्य करते समय भगवान्को याद रखना चाहिये। हाथोंसे काम करे और मनसे भगवान्का ही चिन्तन करे। भागवतके दशम स्कन्धके ४४ वें अध्यायके १५ वें श्लोकमें बतलाया है—

**या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-**
**प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।**
**गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो**
**धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥**

'जो गौओंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको पालनेमें झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरमें जल छिड़कते समय, झाड़ू देने आदि कार्यों-को करते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका गान किया करती हैं—इस प्रकार सदा श्रीकृष्णमें ही चित्त लगाये रखनेवाली वे व्रजवासिनी गोपियाँ धन्य हैं!'

इस प्रकार गोपियोंकी भाँति घरका प्रत्येक कार्य करते हुए परम प्रेमास्पद, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सम्पूर्ण गुणोंके समुद्र भगवान्में मनको तन्मय करके सदा उनका चिन्तन करना चाहिये।

( ३ )

सप्रेम राम राम! आपका पत्र मिला। समाचार लिखे सो जाने। आपने लिखा कि 'सम्भव है मेरा जीवन भ्रममय, दम्भाचरणयुक्त, नास्तिकतापूर्ण है' सो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये। जो नास्तिक होता है, वह अपनेको नास्तिक नहीं समझता। आपने लिखा कि शूद्र, पतित, डोम होनेके नाते भगवान् मुझसे कितनी दूरपर हैं, सो अवगत किया। आपको इस प्रकार नहीं समझना चाहिये; क्योंकि गीतामें तो भगवान्ने यहाँतक कह दिया है—

**मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।**
**स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥**
( ९ । ३२ )

'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।'

इसलिये उनके शरण हो रहना चाहिये। फिर उनसे थोड़ी भी दूरी नहीं है। गीता अ० ९ श्लो० २९ में कहा गया है—

**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।**
**ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥**

'मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मुझे अप्रिय है और न प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्यापक हुआ भी अग्नि साधनोंद्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुए भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके ही अन्त:करणमें प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट होते हैं।

फिर अपनेको दूर समझकर उससे वञ्चित तो रहना ही नहीं चाहिये।

आपने लिखा कि 'मुझ-जैसा पतित एकादशी, द्वादशी, अमावास्या, पूर्णिमा आदिके व्रतका अधिकारी हो सकता है क्या? यदि हो सकता है तो विधि लिखिये।' सो ठीक है। उपवास तो कोई भी कर सकता है। विधि इस प्रकार समझना चाहिये। एकादशीका व्रत करनेके लिये दशमीके दिन सायंकाल भोजन नहीं करना चाहिये। फिर एकादशीको बिल्कुल भोजन न करके द्वादशीको थोड़ा भोजन करना चाहिये। यह तो सर्वोत्तम है। ऐसा न हो सके तो एकादशीके दिन फलाहार कर सकते हैं। वह भी दिनमें केवल एक बार। उस दिन अन्न तो खाना ही नहीं चाहिये तथा यम और नियमोंका भी पालन करना चाहिये।

**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।**

( योगदर्शन २। ३० )

"अहिंसा ( किसीकी हिंसा न करना ), सत्य ( यथार्थ भाषण ), अस्तेय ( चोरी न करना ), ब्रह्मचर्य ( सब प्रकारके मैथुनोंका त्याग ) और अपरिग्रह ( सब प्रकारके परिग्रहोंका अभाव )—ये पाँच 'यम' हैं।"

**शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।**

( योगदर्शन २। ३२ )

'शौच ( बाहर-भीतरकी पवित्रता ), संतोष, तप, स्वाध्याय ( सत्-शास्त्रोंका अध्ययन ) और ईश्वर-प्रणिधान ( ईश्वरकी शरण)— ये पाँच 'नियम' हैं।'

इस प्रकार इन पाँचों यमों और पाँचों नियमोंका भी पालन करना चाहिये।

आपने पूछा—'मैं डोम होनेके कारण पापरहित किस प्रकार हो सकता हूँ? तथा मेरा शीघ्र-से-शीघ्र उद्धार हो सके—ऐसा उपाय बताइये' सो बहुत ठीक है। चाहे कितनी भी नीची जातिका, नीचे वर्णका, दुराचारी—कैसा भी क्यों न हो, केवल भगवान्‌के शरण होकर भजन करनेसे वह शीघ्र ही मुक्तिको प्राप्त हो जाता है। गीता अ० ९ श्लोक ३० और ३१ में स्पष्ट लिखा है—

**अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥**

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।**
**कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥**

'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'

जब इस प्रकार भगवान् खुले शब्दोंमें कहते हैं, तब उनके शरण हो जानेमें देर करनी ही क्यों चाहिये!

आपने लिखा—'मेरा जीवन तो अति विचित्र विषयवासनासे युक्त है, मन कभी संयमसे नहीं रह सकता' सो ज्ञात किया। जीवनको विषयोंके विषसे हटाना चाहिये। संसार नाशवान्, क्षणभङ्गुर, दुःखरूप और आदि-अन्तवाला है—यों समझकर विषयोंसे वैराग्य करना चाहिये। इससे विषय-वासना दूर होकर चित्त स्थिर हो सकता है।

आपने लिखा कि 'मैं किस प्रकार अपने लक्ष्यपर पहुँच सकूँगा, मैं सब प्रकारसे शुभ कर्म करनेमें बिल्कुल ही असमर्थ हूँ।' सो जाना। इस प्रकार आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



निराश नहीं होना चाहिये। केवल भगवान्की शरणसे आप अपने लक्ष्यपर पहुँच सकते हैं।

और भी कोई बात आपको पूछनी हो तो निस्संकोच पूछ सकते हैं। आप प्रसन्न एवं स्वस्थ होंगे। हम सब प्रसन्न हैं।

( ४ )

सप्रेम हरिस्मरण। आपका ता० ८–१०–५६ का गुजराती पत्र यथासमय मिल गया था। गुजराती पत्रोंके उत्तरकी यहाँ ठीक व्यवस्था न होनेके कारण उत्तरमें विलम्ब हुआ। भविष्यमें यदि आप हिंदीमें, चाहे वह काम-चलाऊ ही हो, पत्र लिख सकें तो सुविधा रह सकती है। गुजरातीकी अपेक्षा तो अंग्रेजीमें भी सुविधा है; क्योंकि अंग्रेजी जाननेवाले लोग प्रायः सभी जगह मिल जाते हैं।

आपने मेरे लिये जो बड़ाईके शब्द लिखे सो आपके भावकी बात है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरे दिये हुए उत्तरको पढ़कर, मनन करके आपको जो लाभ प्रतीत हुआ तथा आपने अन्य प्रश्न लिखे सो आपके प्रेमकी बात है।

प्रभुके साक्षात्कारके लिये आपने भक्तिमार्गकी आवश्यकता लिखी तथा पूछा कि किस आश्रममें रहकर साधन करना चाहिये, सो ठीक है। भक्तिमार्ग सबसे उत्तम है। भगवत्साक्षात्कारके लिये श्रद्धा-प्रेम प्रधान है। जल्दी-से-जल्दी भगवान्के मिलनेका उपाय पूछा सो श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्की अनन्यभक्तिका साधन करनेसे भगवत्कृपासे भगवान् अतिशीघ्र मिल सकते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५४-५५ का विस्तृत अर्थ गीताप्रेससे प्रकाशित गीताकी तत्त्व-विवेचनी नामकी टीकामें देख सकते हैं। आश्रम-परिवर्तनकी इस कलियुगमें आवश्यकता नहीं है। समय बड़ा विकट है। आप जिस आश्रममें हैं, उसीमें रहते हुए साधन करना ठीक प्रतीत होता है। गृहस्थाश्रम छोड़कर वानप्रस्थ तथा संन्यासके धर्मपालनमें तो बहुत ही कठिनाई है। असली संन्यासीका मिलना अत्यन्त कठिन है। गृहस्थ-धर्मके पालनमें कमी रह जाय तो भी इतनी आपत्ति नहीं है। आश्रम बदलनेमात्रसे मनके संकल्प-विकल्प नहीं मिट जाते। उनके रूपान्तर होकर नये-नये संकल्प आते रहते हैं।

प्रभुकी प्राप्तिके लिये सद्गुरु बनकर मेरा मार्गदर्शन करें, लिखा सो मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। प्रशंसाकी बातें लिखकर मुझे लज्जित नहीं करना चाहिये। गुरु बननेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है। हाँ, आपका यह लिखना बहुत ठीक है कि प्रभु सबके अन्तःकरणमें विराजित हैं। मेरे द्वारा आपको प्रेरणा मिलती है, यह तो आपके विश्वासकी बात है।

ब्रह्मचर्य-पालनके लिये आप जो चेष्टा कर रहे हैं, वह बहुत ठीक है। और भी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। आहार-विहारकी पवित्रताके लिये तथा स्त्रियोंसे बचनेके लिये जो प्रयत्न आप कर रहे हैं, वह बहुत ठीक है।

मनकी चञ्चलता मिटानेके लिये अभ्यास और वैराग्य साधन हैं। गीता अध्याय ६ श्लोक ३५-३६ की तत्त्व-विवेचनी टीकामें विस्तारसे ये साधन बतलाये गये हैं। उनमेंसे आपके लिये जो अनुकूल पड़े, उसे चुनकर तदनुसार साधन करना चाहिये। पातञ्जल-योगदर्शनमें भी प्रथम पादके १२ वें सूत्रमें यह बात कही गयी है कि अभ्यास और वैराग्यसे चित्तकी चञ्चलता दूर हो सकती है तथा मन वशमें भी हो सकता है।

कार्यकी सफलता ईश्वरकी कृपासे ही होती है। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। उनकी कृपा सभीपर है। इस बातका विश्वास करना चाहिये। विश्वास ही प्रधान बात है।

आपको जिस परिस्थितिमें स्वप्न-दोष हुआ, इसे मैं विशेष दोष नहीं मानता। ईश्वरकी कृपासे आप बच गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्के शरण होकर स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे मनुष्य दोषोंसे बच सकता है।

गुरु बननेके लिये लिखा सो परमगुरु परमात्मा हैं। मेरा गुरु बननेका अधिकार नहीं है। मेरी सामर्थ्य भी नहीं है। परमात्माको ही परम गुरु मानकर साधन करना चाहिये। यही मेरी सम्मति है। उनकी कृपासे सब काम हो सकता है। मुझसे जो प्रश्न आप पूछना चाहें, पत्रद्वारा अथवा मौका मिले तो मिलकर पूछ सकते हैं। अपनी सम्मति दी जा सकती है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

( १ ) वासना सर्वथा निर्मूल तो भगवान्की प्राप्ति हो जानेपर होती है। भगवान्की प्राप्ति श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्के शरण होनेपर उनकी दयासे होती है।

( २ ) मनकी अखण्ड शान्ति और सर्वथा शुद्धि भी भगवान्की प्राप्ति होनेपर होती है।

( ३ ) भगवान्में अनन्य प्रेम हो जानेपर उनका विस्मरण नहीं होता।

( ४ ) ब्रह्मचर्य-पालनके बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता—यह आपका लिखना युक्तिसे तो ठीक ही है; पर भगवान्की विशेष दयासे असम्भव भी सम्भव हो सकता है।

( ५ ) भगवत्साक्षात्कार श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्की शरणागतिसे होता है।

( ६ ) गृहस्थाश्रममें न पड़कर ब्रह्मचर्यके पालनके विषयमें पूछा सो आपकी बात ठीक है। आपकी वय कितनी है? यदि आपको कामविकार न होता हो, आप वैराग्यपूर्वक भगवद्भक्तिके आश्रयसे शुद्ध रह सकते हों तो विवाहकी आवश्यकता नहीं है। यदि मन शुद्ध न रह सकता हो और स्त्रीकी तरफ जाता हो तो विवाह कर लेना ठीक है। विवाह करनेके लिये माता-पिताकी सेवा, संतानकी प्राप्ति आदि कारण तो गौण हैं।

भीष्मपितामहकी तरह गृहस्थमें रहकर अविवाहित जीवन बिताते हुए आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन सर्वोत्तम है। गृहस्थाश्रममें ऋतुकालके समय महीनेमें एक बार स्त्री-प्रसङ्ग करनेवाला गृहस्थ भी ब्रह्मचारीके तुल्य है। ऋषिलोग विवाह करके भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वनमें जीवन बिताया करते थे और वैराग्यपूर्वक रहकर गृहस्थधर्मके अनुसार केवल ऋतुकालमें महीनेमें एक बार स्त्री-प्रसङ्ग करते हुए धर्मपालन किया करते थे।

( ७ ) सबमें भगवद्भाव करके दूसरोंकी निष्काम भावसे सेवा करते हुए उनके हितमें रत रहना—यह ऊँचे दर्जेका परमार्थ है।

( ८ ) मन ध्यानके समय इधर-उधर चला जाता है लिखा सो उसे बार-बार खींचकर, ला-लाकर भगवान्में लगाना चाहिये। गीता अध्याय ६, श्लोक २६ का अर्थ गीता-तत्त्व-विवेचनी टीकामें देखकर तदनुसार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नामका जप तथा ध्यान करनेका अभ्यास करना चाहिये। संसार और शरीरसे वैराग्य करना चाहिये।

( ९ ) संसारमें भगवान् और भगवान्के भजनसे बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है—ऐसा दृढ़ विश्वास हो जानेपर निरन्तर भजन-ध्यान बना रह सकता है।

( १० ) नियमपालनमें भूल हो जानेपर अपनेपर शासन करनेके लिये उस दिन एक समयका उपवास करना चाहिये अर्थात् उस दिन दिनभरमें केवल एक बार भोजन करना चाहिये।

( ११ ) भगवान्में श्रद्धा और प्रेमकी प्राप्तिके लिये भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव तथा तत्त्व-रहस्यको समझकर साधन करना चाहिये।

( १२ ) यदि चित्तमें वैराग्य हो, मन-इन्द्रियोंपर नियन्त्रण हो तो विवाह बिना किये भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। विवाह कोई परमात्माकी प्राप्तिमें सहायक वस्तु नहीं है। वैराग्यपूर्वक गृहस्थाश्रममें भी रहकर भगवान्की प्राप्ति की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

**[ गताङ्कसे आगे ]**

नन्दादेवी और बद्रीनाथ दोनों श्रेणियोंसे अनेक नदियाँ निकली हैं—जिनमें भागीरथी, यमुना, अलकनन्दा और मन्दाकिनी प्रमुख हैं। इन नदियोंके अनेक स्थलोंपर संगम हुए हैं। संगमके ये स्थल प्रयाग कहे जाते हैं। देवप्रयागमें सब नदियोंको अपनेमें समाविष्टकर भागीरथी गङ्गानाम धारण कर आगे बढ़ती है। देवप्रयागके आगे प्रयागराजतक फिर कोई संगम नहीं मिलता। फिर प्रयागराजमें यमुनाको भी अपनेमें विलीन कर लेती है और आगे गङ्गासागरमें स्वयं समुद्रमें समाहित हो जाती है।

इन श्रेणियोंमें अनेक झीलें भी हैं, जिनमें दो प्रमुख हैं—एक केदारनाथसे लगभग ढाई मील आगे चोराबाड़ी, जिसका गाँधीजीके भस्म-विसर्जनके बाद अब 'गाँधी-सरोवर' नाम हो गया है और दूसरी बदरीनाथसे सोलह मील पश्चिममें 'सतोपंथ'।

गंधकने यहाँ अनेक तप्तकुण्डोंका निर्माण किया है। हमने यमुनोत्तरीके तप्तकुण्डोंके दर्शन किये, एकमें स्नान भी। यमुनोत्तरीके एक तप्तकुण्डका तापमान लगभग दो सौ डिग्री है। जिसमें चावल और आलू उबल जाते हैं। गङ्गोत्तरीमार्गमें गंगनानीमें, केदारनाथ रास्तेमें गौरीकुण्डमें तथा बदरीनाथमें भी अनेक तप्तकुण्ड हैं। इस क्षेत्रमें अनेक खनिज पदार्थ भी हैं, जिनमें लोहा, ताँबा, सीसा, अभ्रक, गंधक, कोयला, फिटकरी आदि प्रमुख हैं।

नीचेकी भूमिमें गरमी है, ऊँचे स्थलोंमें ठंडक। जितना ऊँचा स्थल होता जाता है, उतनी ही ठंड बढ़ती जाती है। जल भारी है, पाचन दूषित हो जाता है।

ऋतुएँ तीन हैं—ग्रीष्म, वर्षा और शीत। ग्रीष्मको यहाँ रुडीयाखडसो कहते हैं। वर्षाको बस्काल और शीत ऋतुको ह्यूंद। बंबईमें वर्षाकाल आरम्भ होनेके पश्चात् लगभग एक पक्षमें पानी आ जाता है।

जंगल असीम है। इसीलिये गढ़वाल जिलेके सरकारी चार जंगलविभाग ( Forest Division ) किये गये हैं। इस जिलेकी सरकारकी प्रधान आय जंगलसे ही है। टेहरी राज्यके विलयनके पूर्व उसकी वार्षिक आय केवल आठ लाख रुपये थी, जो आगे चलकर सन १९४९में रियासतोंके विलयनके समय लगभग पैंतालीस लाख हुई और अब एक करोड़ वार्षिक है।

वनस्थली जगत्में वृक्षों, लताओं, फूलों और फलोंमें जिनकी प्रधानता है, उनका यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ प्रकरणोंमें प्रसंगानुसार उल्लेख किया जा चुका है।

जहाँतक जंगम जगत्का सम्बन्ध है, वन-पशुओंमें यहाँ शेर, चीता, रीछ, सूअर, लाल और काले मुँहके बंदर और कई तरहके मृग एवं कई प्रकारकी बिल्लियाँ रहती हैं। आठ हजार फुटसे ऊपर कस्तूरीमृग पाया जाता है, जिसकी नाभिसे कस्तूरी निकलती है। गन्ध-मार्जार नामक एक जातिकी बिल्लीकी नाभिसे भी कस्तूरी निकलती है। दस हजार फुटके लगभग ऊँचाईपर सुरागाय पायी जाती है, जो श्वेत और श्याम दोनों रंगकी होती है—कोई-कोई कबरी भी। इन सुरागायोंकी पूँछके चँवर बनते हैं। गङ्गोत्तरीके मार्गमें हमें श्याम सुरागाय मिली। पक्षियोंमें काग, गिद्ध, मोर, कबूतर, तोता, मैना, चकोर, बाज, कठफोड़ा, बुलबुल और कोयल प्रमुख हैं। इन पक्षियोंके वहाँ भिन्न-भिन्न नाम हैं। बुलबुलको मोनाल और कोयलको कोकला और पोकरा कहते हैं। गोरैया भी प्रचुर परिमाणमें पायी जाती है। इस ओर विशेषकर केदारनाथ और बदरीनाथ-मार्गमें हमें अनेक रंगकी चितकबरी बड़ी ही आकर्षक अत्यन्त सुन्दर तितलियाँ मिलीं, जैसी हमने पहले कभी नहीं देखी थीं—किसी अजायबघरमें भी नहीं। इन्हें देख संग्रह करनेकी इच्छा होती है।

जल-जीवोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी मछलियाँ सभी जगह देखनेमें आती हैं।

विषैले जन्तुओंमें सर्प, बड़े-बड़े काले बिच्छू और गिरगिटान पाये जाते हैं। गङ्गोत्तरीके मार्ग और गङ्गोत्तरीके तटपर तो पग-पगपर बड़े-बड़े गिरगिटान दिखायी देते हैं।

गृह-पशुओंमें गाय, बैल, भेड़, बकरी और कुत्ते प्रमुख हैं। कुछ स्थानोंपर भैंसें भी देखीं, पर बहुत कम। इस ओरकी गायें प्रायः काले रंगकी छोटे कदकी होती हैं। प्रधानतया इस पहाड़ी क्षेत्रके निवासियोंके पालतू पशु भेड़-बकरी ही हैं। इन पहाड़ियोंके अधिकांश पथ पगडंडियोंकी तरह अत्यन्त संकीर्ण—ऊबड़-खाबड़ दुर्गम होते हैं, फिर ये पहाड़ोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचाईपर किनारे-किनारे ऐसे बनाये गये हैं जो नीचेके खण्डों या नदियोंकी घाटियोंसे हजारों फुट ऊपर पहाड़ोंपर लटके-से जान पड़ते हैं। जरा-सा भी पैर फिसलनेसे नीचे जीवन-नाशकी सम्भावना हर क्षण बनी रहती है। इन रास्तोंमें बड़े पशु नहीं चल सकते; क्योंकि ये अत्यन्त संकीर्ण और दुर्गम हैं। किंतु भेड़-बकरे आदि पशु जिन्हें पहाड़ोंपर चढ़नेका अभ्यास है, आसानीसे इन दुर्गम मर्गोंको पार कर लेते हैं। इसीलिये उत्तराखण्डके इस दुर्गम मार्गमें सामान ढोनेके लिये वाहनके रूपमें लोग भेड़-बकरोंका ही सहारा लेते हैं। लोग ऊनकी थैलियाँ बनाकर, इन थैलियोंमें सामान भरकर उन्हें भेड़ या बकरेकी पीठपर कस देते हैं। पहाड़ोंपर सामान ढोनेवाले बंजारे सैकड़ों भेड़-बकरोंके काफिले ले-लेकर सामानकी ढुलाईका व्यवसाय करते हैं और इस तरह हिमालयके इस बीहड़ और दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमें आसानीसे ये लोगोंकी रोजमर्राकी चीजें दूर-दूरसे उन्हें लाकर देते हैं तथा देशके नागरिक जीवनसे यहाँके निवासियोंका सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इस यात्रामें हमें भेड़-बकरोंके अगणित काफिले मिले, जिनके कारण अनेक बार हमारा यात्रा-मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता था। कुत्ते बड़े-बड़े बालवाले, कदमें काफी बड़े और तगड़े होते हैं। इन्हें शिकारी कुत्ते कहा जा सकता है। एक बात इन कुत्तोंमें नयी दिखायी दी। मैदानोंके कुत्ते अपनी पूँछको ऊपर उठाकर टेढ़ी रखते हैं, इसीलिये यह कहावत प्रचलित हो गयी है कि 'कुत्तेकी पूँछ बारह वर्ष पोंगलीमें रखे, पर जब निकालो टेढ़ी-की-टेढ़ी'।' यहाँके कुत्ते अपनी पूँछको प्रायः नीचेकी ओर सीधी रखते हैं। यह पूँछ टेढ़ी नहीं होती,' यहाँ सामानसे लदे भेड़-बकरोंके काफिलोंके साथ आगे-पीछे दो-दो तीन-तीन कुत्ते प्रायः हर समय रहते हैं, जिन्हें इन काफिलोंके सचेतक कहा जा सकता है।

मानवोंमें यहाँके निवासी मंगोल हैं, जो प्रधानतया दो जातियोंमें बँटे हुए हैं—एक बीठ और दूसरे डोम। बीठ जातिमें ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रमुख हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें अनेक उपजातियाँ हैं और डोम भी अनेक उपजातियोंमें बँटे हैं। इन्हींमें हरिजन भी हैं।

यहाँके निवासियोंकी भाषा गढ़वाली कही जाती है, जो प्राचीन खसभाषासे निकली है।

अधिकांश लोगोंका धर्म हिंदू-धर्म है। इनमें वैष्णव, शैव और शाक्त—तीनों ही पंथोंको माननेवाले हैं। कुछ जोशी पंथके भी हैं, जो शायद गोरखनाथका पंथ था। मुसलमान, ईसाई, सिख, जैन गिनतीके ही हैं।

यहाँके निवासियोंका रंग गेहुआँ और गोरा है। साँवले और काले व्यक्ति क्वचित् ही देखनेको मिलते हैं। पुरुष सिरपर छोटा दुपट्टा या टोपी, सिरके नीचे शरीरके ऊपरी भागपर कोट और नीचेके भागपर पाजामा पहनते हैं। स्त्रियाँ भी शरीरपर अधिकतर कोट और पाजामा ही पहनती हैं। स्त्री और पुरुष दोनों कमरमें कपड़ेका कमरबंद बाँधते हैं। स्त्रियोंके आभूषणोंमें नाककी नथ सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती है, यह ठुड्डीसे भी नीचेतक लंबी होती है। कानोंमें बालियोंकी भरमार रहती है। नथ प्रायः सोनेकी और बालियाँ प्रायः चाँदीकी होती हैं। गलेमें पचास-पचास तोले तककी चाँदीकी हँसली और रुपयेवाली एक कंठी रहती है। हाथमें चालीस-चालीस तोलेतकके कड़े और पैरोंमें लगभग इसी वजनके पायजेब रहते हैं। परंतु पैरके पायजेब बहुत कम स्त्रियाँ पहनती हैं। प्रायः नंगे पैर ही रहती हैं।

यहाँके अधिकांश लोग शाकाहारी हैं, मांसाहारी बहुत कम। खानेमें छूआछूत काफी है।

रीति-रिवाज विभिन्न जातियों और वर्गोंमें यद्यपि पृथक्-पृथक् हैं, किंतु हैं वही एक शताब्दी पीछेके। खस-राजपूतों और खस-ब्राह्मणोंमें यद्यपि विवाह-संस्था है, पर वही आसुरी पद्धतिवाली। पर्याप्त रुपया कन्याशुल्कके रूपमें देकर विवाह होते हैं और इन विवाहोंमें पाणिग्रहण-संकल्प आदिकी पद्धति काममें नहीं लायी जाती। इसके साथ ही अन्य अनेक बातें जो आजके जमानेमें अनैतिक और अनाचारका रूप ले चुकी हैं, यहाँके लोगोंमें विद्यमान हैं। जैसे बड़े भाईकी विधवाको पत्नी बना उससे संतति उत्पन्न करनेका रिवाज आज भी प्रकटरूपमें इस ओर प्रचलित है। दूसरी ओर ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें मैदानोंकी तरह स्त्रीका पुनर्विवाह वर्जित है। इसीके साथ सवर्ण विवाहका रिवाज भी प्रायः इनमें नहीं है। ब्राह्मण और राजपूत कन्या-शुल्क देकर किसी खस-ब्राह्मण तथा खस-राजपूतकी बेटी घरमें डाल लेते हैं और फिर उसके साथ भोजन-सम्बन्ध भी नहीं रखते।

सुना गया कि पिछली शताब्दीमें यहाँकी खसिया और डोम जातियोंमें राक्षस-विवाह-पद्धति प्रचलित थी। किसी भी सयानी लड़कीका अपहरणकर उससे विवाह कर लिया जाता था और लड़कीके पिताको कन्या-शुल्क देकर उसका नागरिक अधिकार भी प्राप्त कर लिया जाता था। अंग्रेजी शासनकालमें इस कुप्रथापर कुछ रोक लगी, किंतु अभी भी यदा-कदा यह पुरानी पद्धति काममें लायी जाती है। उसके सिवा इस क्षेत्रके कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिस्सोंमें बहु-पति-प्रथा भी प्रचलित है, जिसके अनुसार अनेक भाइयोंकी एक पत्नी होती है ।

इस क्षेत्रके निवासियोंकी आजीविकाके अनेक साधन रहते हुए देशके अन्य भागोंकी तरह यहाँके लोगोंका प्रायः धंधा केवल खेती-किसानी ही है, जो प्रधानतया यहाँके निवासियोंके ही उद्यमका ही परिणाम है । शासनद्वारा अभी-तक औद्योगिक क्षेत्रमें कोई ऐसा कदम नहीं उठाया गया है, जिससे इस क्षेत्रकी जनताका जीवन-स्तर कुछ ऊँचा उठे और इस विपुल सम्पदापूरित प्रदेशसे देशको भी कुछ हासिल हो सके।

आमतौरपर यहाँ फसलें प्रायः दो होती हैं—रबी और खरीफ । रबीमें जौ, गेहूँ और सरसों तथा खरीफमें धान और मँडुवा ( रागी ) की उपज होती है । जैसा कि ऊपर कहा गया है, पहाड़ोंकी तलहटीमें तथा चार-चार, पाँच-पाँच हजार फुटकी ऊँचाईतक उपत्यकाओंके निचले भागोंके सीढ़ीनुमा बने खेतोंमें ही इस ओर सारी खेती होती है । इन खेतोंमें पानी पहुँचानेके लिये पहाड़ोंसे बहते झरनोंको बाँधकर खेतोंमें बहाया जाता है । मैदानोंकी तरह यहाँ भी खेतोंको पानीसे भर उन्हें मचाकर धान रोपा जाता है । धान अप्रैलमें बोया-रोपा जाकर सितम्बरमें काटा जाता है । फिर उसी खेतमें गेहूँ बोकर अप्रैलमें काट लिया जाता है । मँडुआ भी अप्रैलमें बोकर अक्टूबरमें काटा जाता है । पहाड़में मँडुवा ( रागी ) को कोड़ा कहते हैं, जो नीचेका कोदो नहीं है । अनेक खेतोंके आधे भागमें चावल बोये जाते हैं और आधेमें मँडुवा । चावलवाले भागको सठयारा ( साठी चावल ) कहते हैं और मँडुवावाले भागको कोदारा । जाड़ोंमें कोदारा खेत खाली छोड़ दिया जाता है, पर सठियारा नहीं; उसमें गेहूँ बोया जाता है । इस गेहूँवाले भागका नाम बादमें ग्यूंवारा हो जाता है । यही खेत बादमें मँडुवा बोया जानेपर कोदारा बन जाता है । पिछले वर्ष जमीनका जो भाग कोदारा था, वह इस वर्ष सठियारा बन जाता है । चावलकी फसलकी कटाई सबसे पहले ऊपरी भागोंमें होती है। फिर नीचेकी ओर, उसके विपरीत रबीकी फसल पहले निचले भागसे शुरू होकर ऊपरकी ओर तैयार होती है । स्थानकी ऊँचाई-नीचाईके अनुसार ही खेतीकी पैदावारका निश्चय और जिन्स-विभाजन होता है । अधिक ऊँचे स्थानोंमें प्रायः एक ही फसल होती है । जहाँ मई-जूनतक बर्फ पिघलती है, वहाँ दो फसलें काटना सम्भव नहीं होता । हमने अपनी यात्राके दौरान मईके आखीरमें जहाँ इन खेतोंमें धानके हल्के-हल्के हरे पौधोंकी सघन हरियाली देखी, वहीं दूसरी ओर अनेक खेतोंमें खड़ी गेहूँकी फसल भी । इस तरह आबहवा और स्थानकी ऊँचाई-नीचाईके कारण इन खेतोंमें धान्योंका आगे-पीछे बोना-काटना भी चलता रहता है । इस ओर हमने देहरादूनके प्रसिद्ध बासमती चावलकी भरपूर खेती देखी, यह खेती यद्यपि वैयक्तिक स्तरपर ही थी । छोटे-छोटे अगणित खेतोंमें अगणित गिरिवासियोंके प्रयत्न और उनकी प्राप्त्याशा धानके इन नन्हें पौधोंकी कोमल कोपरोंमें प्रतिबिम्बित हो रही थी । क्या ही अच्छा हो, सरकार इस ओर सहकारी खेतीको प्रोत्साहन दे और इस सामूहिक खेतीकी दिशामें यहाँके निवासियोंको अनुप्रेरित करनेके लिये उन्हें उपयुक्त भूमि, जल, बीज, खाद और खेतीके अन्य साधनोंसे सम्पन्न बनाये ।

तरकारियोंमें इस ओर हमें केवल आलूकी पैदावार ही अधिक दीखी । अन्य तरकारियाँ प्रायः नहीं उपजायी जातीं । इसका प्रधान कारण यहाँके लोगोंके जीवन-स्तरका निम्न होना है । कुछ भागोंमें, जहाँसे मैदानी बाजार नजदीक हैं—प्याज, लहसुन, बैगन, भिंडी, तुरई, लौकी आदि तरकारियाँ होती हैं, जो केवल इन बाजारोंमें खपतकी दृष्टिसे ही उपजायी जाती हैं । यदि साग-भाजीकी माँग बढ़े और मैदानी बाजारोंके लिये निर्यातकी कोई व्यवस्था हो सके तो, इसमें संदेह नहीं, हिमालयके इस क्षेत्रमें प्रायः सभी प्रकारकी तरकारियाँ तैयार की जा सकती हैं ।

कृषिके बाद यहाँके लोगोंकी आजीविका प्रधानतया यात्रियोंकी डंडी, कंडी चलाने और उनका सामान आदि ढोनेसे चलती है । डंडी-कंडीपर बैठकर अपने शरीरको अन्य मानवोंसे ढुलवाना विशेषकर इस युगमें कहाँतक उचित है, यह एक विचारणीय प्रश्न है । हाँ, किसी हदतक ऐसे लोग जो अपनी शारीरिक अवस्थामें असमर्थ हैं, कंडी-डंडीपर चढ़ें तो अक्षम्य नहीं; किंतु देखा यह गया है कि शरीर-श्रमसे जी चुरानेकी प्रवृत्तिके कारण प्रायः सभी साधनसम्पन्न व्यक्ति खच्चरों और घोड़ोंकी बनिस्बत आदमीके ऊपर लदकर अपनी धार्मिक यात्राएँ करते हैं; परंतु जबतक इन कंडी-डंडीवालोंकी आजीविकाका कोई दूसरा जरिया नहीं निकलता, आदमीपर आदमीके लदनेकी इस कुप्रथाको भी बंद करवा देनेका परामर्श देते हुए भी हिचकिचाहट होती है । कड़ा परिश्रमी और उद्यमी जीवन तो पुरुषके पौरुषका प्रतीक है । पर जब वह आदमीकी असहाय अवस्थामें होता है, कर्ता उसे बेबस मनसे आपद्धर्मके रूपमें करता है, तब ऐसा प्रशंसित श्रम भी दो रूपोंमें विभक्त हो जाता है—एक प्रशंसाके, दूसरा निन्दाके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ एक ओर श्रमकर्त्ताकी असहाय और विवश स्थितिके प्रति दर्शकके मनमें दया और करुणाकी उत्पत्ति होती है, वहीं दूसरी ओर श्रम लेनेवाले व्यक्ति या समाजके प्रति भी उसके मनमें एक स्वाभाविक रोष और ग्लानि । हमलोगोंने इस यात्रामें श्रमकी महत्ता नहीं, वरं उसकी मर्यादाका अतिक्रमण भी देखा ।

श्रम करते इन मजदूरोंको देख हमें गो० तुलसीदासजीका—

आरत काह न करइ कुकरमू । माँगौं भीख त्यागि निज धरमू ॥

—कथन अनेक बार याद आया । पहाड़ोंके बहादुर कंडी-डंडीवाले तथा सामान ढोनेवाले भारवाहक सिंहकी-सी अपनी छाती तने शरीरसे बड़ा निर्मम परिश्रम लेते हैं । जेठ-वैशाखकी चिलचिलाती धूपमें अपनी पीठपर डेढ़-डेढ़, दो-दो मनका असबाब लदे—वह भी एक सजीव देहधारी मानवका—सीधे पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़ते हैं । स्वयंको तथा अपने भारको शान्ति-सुख पहुँचाना, अपने जीवनको जोखिममें डाल ऊपर लदे अपने सामान, स्वामीकी सुरक्षाका बीड़ा उठाना आदि अनेक बातें जो इन भारवाहकोंको करनी पड़ती हैं, केवल इसलिये कि यात्राकालमें इन्हें अपने इस उद्योगसे इतना हासिल हो जाता है कि ये यात्रियोंको यात्रा करा जब घर लौटें, तब अपने बाल-बच्चोंके मुँहमें कुछ चून डाल सकें । हमने इन भारवाहकोंकी वेष-भूषा, उनकी रहन-सहन और उनका खाना-पीना भी अत्यन्त निकटसे देखा है । बनजारोंकी तरह एक पड़ावसे दूसरे पड़ाव पहुँचनेकी जल्दीमें या कहना चाहिये कि निष्ठुर कर्तव्यकी कड़ीको पूरा करनेके लिये ही मानो इनका जीवन हो, न नहानेपर ध्यान, न खाने-पीनेकी रुचि । और जब इन दो बातोंका ही ध्यान नहीं, तब ठीक कपड़े पहनने और साफ-सफाईसे रहनेकी बात तो कोसों दूर रहती । वास्तवमें ये उस आदर्शके प्रतीक थे, जिसमें कहा गया है—'भोजन जीवनके लिये है, जीवन भोजनके लिये नहीं ।' ये इसीलिये खाते जिसमें इनका जीवन चलता रहे; इसी तरह अन्य बातोंके सम्बन्धमें इनका आम मितव्ययी दृष्टिकोण रहता । रहीम खानखानाने एक जगह पेटकी इस पीड़ाको बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त किया है, वे कहते हैं—

रहिमन पेटे सों कहत क्यों न भए तुम पीठ ।
भूखे मान बिगारहू भरे बिगारहु डीठ ॥

वास्तवमें उदरपूर्तिके इस दुर्लक्ष्यपर पहुँचनेके लिये जीवनकी मंजिलमें आदमीको कैसी-कैसी ऊँची-नीची घाटियाँ और कैसे-कैसे गंदे मैले-कुचैले नदी-नाले पार करने पड़ते हैं ! जीवनकी गति और इस गतिमें मानवगति भी कैसे विचित्र है, कौन निर्णय कर पाया है ? आधुनिक युगके महान् सुधारक और मानवतावादी विश्वबन्धु बापू जब शिमला गये, तब उनके सामने भी इसी प्रकारका धर्म-संकट आ उपस्थित हुआ । बापूके सामने मनुष्योंद्वारा खींचे जानेवाले रिक्शेपर बैठनेका प्रसङ्ग आया । बापू विचारमग्न हो गये कि रिक्शेपर बैठा जाय या नहीं । विवश स्थितिमें वे भी रिक्शेपर यही सोचकर बैठे थे कि जबतक इन रिक्शा-चालकोंके लिये जीविकाका दूसरा प्रबन्ध नहीं होता, तबतक इनके रिक्शोंपर न बैठना इनके प्रति हमारी असहयोगवृत्तिका सूचक होगा और जिसका तात्कालिक परिणाम यही होगा कि हमारी जो उनके प्रति सहानुभूति और सहयोगकी भावना है, वह उनके लिये हमारे इस निर्णयके कारण उल्टी समस्या बन जायगी।

उत्तराखण्डके इस क्षेत्रमें हमें कुछ नये अनुभव हुए। जहाँ एक ओर हम यहाँके निवासियोंकी दरिद्रता, साहसीवृत्ति और कठिन परिश्रम करनेकी प्रवृत्तिसे परिचित हुए, वहीं दूसरी ओर उनकी उत्कट ईमानदारीका भी हमें पग-पगपर परिचय मिला । हमलोग कोलाहलपूर्ण नागरिक जीवनमें रहते हैं, अनेक बार पहाड़ी-प्रदेशों, हिल स्टेशनोंकी भी सैर कर चुके हैं । गोविन्ददास तो प्रायः विश्व-भ्रमण । किंतु अभावमय दरिद्र-जीवनमें भी जिस सदाचारके दर्शन यहाँ हमें हुए, उसकी हम क्या, कोई आशा नहीं रख सकते । जो लोग यह कहते हैं कि चोरी आदि जुर्म गरीबीका परिणाम है, उन्हें उत्तराखण्डके इस अत्यधिक गरीब और अमेरिकाके अत्यधिक अमीर क्षेत्रोंका निरीक्षण करना चाहिये । शायद उत्तराखण्डके इस क्षेत्रसे अधिक गरीब संसारका कोई क्षेत्र न होगा और निर्विवादरूपसे अमेरिकासे अधिक धनवान् संसारका अन्य कोई स्थान नहीं । उत्तराखण्डके गरीबोंमें जुर्म करनेकी न्यूनतम प्रवृत्ति है और अमेरिकाके धनवानोंमें जुर्म करनेकी अधिकतम प्रवृत्ति । दोनों स्थानोंके जुर्म करनेवालोंके आँकड़ोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है । स्पष्ट है, कोई अभिपाप गरीबीका नतीजा न होकर यथार्थमें नैतिकताके अभावपूर्ण जीवनका और उसकी परम्पराके परित्यागका परिणाम है । गरीब-से-गरीब व्यक्ति इस प्रकारके जुर्मोंसे मुक्त रह सकता है और धनवान्-से-धनवान् व्यक्ति इस प्रकारके जुर्मोंसे युक्त । फिर इस प्रकारके निर्जन बियाबान वन-प्रदेशमें यहाँके निवासियोंके आचरणकी यह उच्चता तो उनकी नैतिक दृढ़ताका ही प्रमाण हो सकती है, किसी राजदण्ड या वैधानिक भयका कदापि नहीं । हमें यहाँके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगोंकी ईमानदारीके कुछ व्यक्तिगत अनुभव भी हुए, जिनके आधारपर हम कह सकते हैं कि उत्तराखण्डकी पवित्रताकी परम्परामें यहाँके निवासियोंकी ईमानदारी और नैतिक आचरण काफी दूरतक उत्तरदायी है और इसके लिये हम इस क्षेत्रके इन भूखे-नंगे श्रमिकों और गिरि-गाँववासी कृषकोंको हृदयसे धन्यवाद देते हैं।

प्रस्तुत निबन्ध-मालामें हमने यात्रामार्गोंका विवरण, यात्री-मुकामों ( चट्टियों ) की जानकारी, प्रमुख स्थलोंकी ऊँचाई और औषधालय, डाकघर, तारघर, डाक-बँगलों आदिकी जानकारी परिशिष्टमें दी है।

यात्रासे लौटनेके उपरान्त हमारे अनेक मित्रोंने उत्तराखण्डके प्राकृतिक सौन्दर्य और उसकी महत्ता तथा उसके परोक्ष पक्षोंका परिचय पानेकी दृष्टिसे पत्र लिखे। मित्रोंकी जिज्ञासा और उनके स्नेह-आग्रहसे हमने कुछ लेख लिखे जो हरिद्वार, यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ शीर्षकसे हमारे प्रान्तके दैनिक 'नवभारत', प्रयागकी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती', दिल्लीके मासिक पत्र 'आजकल' तथा बम्बईके प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग'में पृथक्-पृथक् रूपमें प्रकाशित हुए। दो रेडियो वार्त्ताएँ भी हुईं—एक आकाशवाणीके दिल्ली केन्द्रसे, दूसरी भोपालसे। इन लेखों और रेडियो वार्त्ताओंको पाठकों और श्रोताओंने पढ़ा, सुना और अपनी सद्भावना, शुभकामना और प्रशस्तिके पत्र हमें लिख डाले। इन पत्रोंमेंसे कुछको हम परिशिष्टमें उद्धृत कर रहे हैं। हमारा विश्वास है, इन पत्रोंसे भी पाठकोंकी ज्ञानवृद्धि होगी और जनरुचि तथा उत्तराखण्ड—विशेषकर हिमालयके परिचयकी दृष्टिसे भी एक दूसरेको निकट लानेमें ये पत्र सहायक होंगे।

इस महत् यात्रासे लौटनेके बाद १८ मईके पूर्वकी और ११ जुलाईके बादकी हमने अपनी मानसिक स्थितिपर दृष्टिपात किया। निरपेक्ष-दृष्टिसे अपने ही विषयमें जानकारियाँ जुटाना यद्यपि कठिन होता है, तो भी एक साधकके मनसे यह किया भी जा सकता है और हमने किया भी। खुदका निरीक्षण, स्वयंका सिंहावलोकन हम करने बैठे। 'श्मशान-वैराग्य' हमारे यहाँ बहु-प्रचलित संयुक्त शब्द है। क्षणिक आवेशोंके लिये इन शब्दोंका प्रायः प्रयोग होता है। अतः क्षणिक आवेशमें हम भी यहाँ कुछ लिख डालें तो वह सत्य वस्तुस्थितिका दिग्दर्शन नहीं हो सकता। अतः मौनकी महिमाको भङ्ग न करते हुए इस विषयको यहीं छोड़ अन्तमें हम केवल एक ही बात लिखेंगे कि हिमालयपर जाकर इस विराट प्रदेशमें कुछ समय बिताकर मानवको उसके जीवनका परिचय तो मिलता जाता है, वह स्वयंके असाक्षात् रूपको भी देख लेता है। इस शुभ्र-दीप्त ज्योतिमें यहाँ उसे दर्शन होते हैं शिव और शक्तिके, प्रकृति और पुरुषके। यहीं उसे भान होता है अपनी अल्पज्ञताका और पूर्ण पुरुषकी सर्वज्ञताका। प्रकृति कितनी महान् है, उदार है, वरदायिनी है और उसके सम्मुख संघर्षरत मानव-जीवन कितना क्षुद्र और संकीर्ण! उस जीवनकी छोटी-छोटी बातें सृष्टिके इस सर्वश्रेष्ठ प्राणीको कहाँ-से-कहाँ ले जाती हैं, जो ब्रह्म-साक्षात्कारकी क्षमतातक रखता है। मनुष्यको उसका यथार्थ रूप दिखानेके लिये हिमालयके दर्शन तथा उन प्रदेशोंका भ्रमण और रमण शायद एक आवश्यक चीज है। इसीलिये हमारे ऋषि-मुनियों, तत्त्ववेत्ताओं, धर्माचार्यों और संतोंको यह भूमि इतनी प्रिय थी। तपस्वी यहीं तप करते थे, ऋषि-मुनि यहीं रमते थे, साधुओंने यहाँ समाधि लगायी और योगियोंने अलख जगायी। संतोंने यहाँ गाया; सुधारकोंने, धर्मसंस्थापकोंने इसे ही अपना साधनाक्षेत्र बनाया, भगवान् व्यासदेवने यहीं महाभारत और पुराणोंकी रचना की और तत्त्वज्ञानके महान् ग्रन्थ शांकरभाष्यको भी आदिगुरु शंकराचार्यने यहीं लिखा।

ऐसे उत्तराखण्डकी इस गरिमामय महापावन तपोभूमिको, जिसके सम्पर्क-सुखमें हमने सात सप्ताह बेसुध हो बिताये, उसकी गिरि-गुफाओं, पावन सरिताओं, बहते अनन्त झरनों, ऊँचे गिरते जल-प्रपातों, कलरव करते पक्षियों, मृगशावकों, अन्य वनचरों, जलचरों, पावन देवस्थलों, पुण्य सरिता-संगमों, विटपों, लता-गुल्मों, झाड़ी और झुरमुटों, निश्छल-निरभिमानी गिरिग्रामवासियों, देखे-अनदेखे, जाने-अनजाने, परिचित-अपरिचित शैलखण्डों, खाई-खंदकों, उनके निवासी, योगी-यती, वैरागी, साधु-संन्यासी सभी जड-जङ्गम जगत् तथा शीतल-मंद-सुगन्ध युक्त बहते पवनको, जिनका आतिथ्य-सत्कार हमने इन बीते दिनोंमें जाने-अनजाने पाया, आज कृतज्ञभावसे अगणित प्रणाम कर इस निबन्धमालाको समाप्त करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीकृष्णजन्माष्टमी-महोत्सव

## ( भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप और अवतारके हेतु )

[ हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन ]

मञ्जीर-नूपुर-रणन्-नवरत्न-काञ्ची-
श्रीहार-केसरिनखप्रतियन्त्रसङ्घम् ।
दृष्ट्यार्तिहारि-मसिबिन्दु-विराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजा-तट-बालकेलिम् ॥
कुन्द-प्रसून-विशदैर्दशनैश्चतुर्भिः
संदश्य मातुरनिशं कुचचूचुकाग्रम् ।
नन्दस्य वक्त्रमवलोकयतो मुरारे-
र्मन्दस्मितं मम मनीषितमातनोतु ॥
हर्तुं कुम्भे विनिहितकरं स्वादु हैयङ्गवीनं
दृष्ट्वा दामग्रहणचटुलां मातरं जातरोषाम् ।
पायादीषत्प्रचलितपदो नापगच्छन् न तिष्ठन्
मिथ्यागोपः सपदि नयने मीलयन् विश्वगोप्ता ॥
अंसालम्बितवामकुन्तलभरं मन्दोन्नतभ्रूलतं
किंचित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारेक्षणम् ।
आलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्यायेज्जगन्मोहनम् ॥

### स्वयं भगवान्‌का अवतरण

आजका यह दिन परम धन्य है। इसी दिन इसी भारतवर्षमें मथुराके कंस-कारागृहके कृष्ण-तम-घन निभृत कक्षमें घनश्याम श्रीकृष्ण—अनिर्वचनीय-अचिन्त्य-अनन्त-ऐश्वर्य-सौन्दर्य-माधुर्य-परिपूर्ण, अनिर्वचनीय-अचिन्त्य-अनन्य-अनन्त-दिव्य-रस-सुधा-सार-समुद्र, अनिर्वचनीय-अचिन्त्य-अनन्त-सर्वविरुद्ध-गुणधर्माश्रय, सर्वलोक-महेश्वर, सर्वातीत, सर्वमय, नित्य निर्गुण-सगुण, समस्त-अवतार-बीज, अनन्त-अद्भुत-शक्ति-सामर्थ्य-स्रोत, सहज अजन्मा-अविनाशी, सच्चिदानन्द-स्वेच्छा-विग्रह, स्वयं भगवान्‌का महान् मङ्गलमय, महान् महिमामय और महान् मधुरिमामय प्राकट्य हुआ था।

घोर-बल-दर्पित अतिशय अत्याचारी असुररूप दुष्ट राजाओंके तथा अनाचार-दुराचार-परायण प्राणियोंके विषम भारसे आक्रान्त दुःखिनी वसुंधराने गोरूप धारण करके करुण क्रन्दन करते हुए ब्रह्माजीके पास जाकर अपनी दुःखगाथा सुनायी। पृथ्वी देवीने कहा—

'जो भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिसे विहीन हैं और जो श्रीकृष्ण-भक्तोंके निन्दक हैं; जो पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और पोष्य-वर्गका पालन नहीं करते; जो दया-धर्मसे रहित हैं, गुरु और देवोंके निन्दक हैं; जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देनेवाले, विश्वासघातक और स्थाप्यधनका अपहरण करनेवाले हैं; जो कल्याणरूप मन्त्र और एकमात्र मङ्गलजनक हरिनामको बेचते हैं; जो जीवोंकी हिंसा करते हैं और अत्यन्त लोभी हैं; जो मूढ़-लोग पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत, नियम—कुछ भी नहीं करते; जो पापात्मालोग गौ, ब्राह्मण, देवता, वैष्णव, श्रीहरि, हरिकथा तथा हरिभक्तिसे द्वेष करते हैं—ऐसे जो दैत्यगण विविध रूप धारण करके अनवरत अत्याचार-अनाचार-दुराचार कर रहे हैं, उन सबके भीषण भारसे मैं अत्यन्त पीड़ित हूँ।' तब ब्रह्माजीने पृथ्वीको साथ लेकर भगवान् शंकर और अन्यान्य देवताओंको साथ लिया और वे क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ उन्होंने पुरुषसूक्तके द्वारा भगवान्‌का स्तवन किया। इसके कुछ देर बाद ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो गये और उन समाधिगत ब्रह्माजीको क्षीराब्धिशायी भगवान्‌की दैववाणी सुनायी दी। ब्रह्माजीने उसे सुनकर देवताओंसे कहा— 'हमलोगोंकी प्रार्थनाके पूर्व ही भगवान् वसुंधराकी विपत्तिको जान चुके हैं। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर ( ईश्वरेश्वरः ) अपनी कालशक्तिके द्वारा धरणीका भार उतारनेके लिये जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुमलोग भी यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें सहयोग प्रदान करो। भगवान्‌के अंशसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रवदन स्वराट् अनन्तदेव भगवान्‌से पहले ही प्रकट हो जायँगे। भगवती विष्णुमाया भी नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे अवतरित होंगी, वे परम पुरुष साक्षात् भगवान् स्वयं वसुदेवके घरमें प्रकट होंगे। उनकी सेवा-प्रीतिके लिये (अथवा उनकी तथा उनकी प्रियतमा श्रीराधाकी सेवाके लिये) देवाङ्गनाएँ भी वहाँ जन्म धारण करें—

**वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।**
**जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥**
(श्रीमद्भागवत १०।१।२३)

क्षीरोदशायी भगवान्‌की इस दैववाणीसे यही सिद्ध होता है कि अबकी बार साक्षात् परम पुरुष स्वयं भगवान् ही प्रकट होंगे (क्षीराब्धिशायी नहीं)। भगवान्‌के पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, अंशावतार, कलावतार आदि अनेक प्रकारके अवतार होते हैं और सभी पूर्ण होते हैं; पर उनमें लीलाभेदसे शक्तिका प्राकट्य न्यूनाधिक रहता है। किंतु यह अवतार स्वयं भगवान्‌का है। इसमें अन्य सभी अवतारोंके, भगवत्स्वरूपोंके भाव सम्मिलित हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार ब्रह्मा-शंकर आदि समस्त देवता गोलोकमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें जाकर वहाँ श्रीराधा-माधवके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करते हैं और पृथ्वीका भीषण भार हरण करने और मधुर लीला-रसका विस्तार करनेके लिये भगवान्‌से अवतार-ग्रहणकी महत्त्वपूर्ण कातर प्रार्थना करते हैं।

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् द्रवित हो जाते हैं और उन्हें अपनी अनन्त महिमा और भक्तोंकी महानताका परिचय देकर अन्तमें कहते हैं—देवताओ! तुमलोग अभी अपने-अपने घर जाओ, मैं स्वयं पृथ्वीपर अवतीर्ण होऊँगा—तुमलोग भी अंशरूपसे पृथ्वीपर चलना। इसके बाद भगवान् दिव्य गोप-गोपियोंको बुलाकर उनसे मधुर वचन कहते हैं—गोप-गोपीगण! तुम लोग नन्दके व्रजधाममें अवतीर्ण होओ। श्रीराधिके! तुम वृषभानुके घर जाओ। मैं तुमको बालकरूपमें कमलकाननमें ग्रहण करूँगा; राधे! तुम मेरी प्राणाधिका हो, मैं भी तुम्हारा प्राणाधिक हूँ। हम दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं है, हम सदा ही एक हैं।

**त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम्।**
**न किंचिदावयोर्भिन्नमेकाङ्गं सर्वदैव हि॥**
(ब्र० वै० कृष्ण० ६।६७)

इसी बीचमें वहाँ एक दिव्य मणि-रत्नों, पारिजात-कुसुम-मालाओं, श्वेत चामरों तथा विशुद्ध काषाय वस्त्रोंसे विभूषित शत-शत-सूर्य-प्रभाओंके सदृश तेजःपुञ्ज रथ आया। उस रथमें कमनीय श्यामसुन्दर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये पीताम्बरधारी भगवान् नारायण विराजित थे। उनके साथ महादेवी सरस्वती और महालक्ष्मी भी थीं। वे भगवान् नारायण रथसे उतरे और तुरंत श्रीकृष्णके शरीरमें लीन हो गये तथा इस परमाश्चर्यको देखकर सब लोग चकित हो गये—

**गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे।**
**दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं ते सर्वे विस्मयं ययुः॥**

इसके पश्चात् एक दूसरे परम सुन्दर देदीप्यमान रथमें चतुर्भुज, वनमालाविभूषित, अपार प्रभाशाली जगत्पति भगवान् विष्णु पधारे और वे भी रथसे उतरकर भगवान् श्रीराधिकेश्वरके शरीरमें लीन हो गये—

**स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेश्वरविग्रहे॥**

इससे भी यही सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् स्वयं भगवान् हैं और उनके इस स्वरूपमें सबका तथा सबके लीला-कार्योंका एकत्र समावेश है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें आता है कि इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने देवी कमला लक्ष्मीसे मुसकराते हुए कहा कि 'देवि! तुम कुण्डिन नगरमें राजा भीष्मकके घर देवी वैदर्भीके उदरसे अवतरित होओ, मैं वहाँ जाकर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा।' तदनन्तर वहाँ पधारी हुई देवी पार्वतीसे भगवान्‌ने कहा—'तुम महामाया सृष्टि-संहार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारिणी हो। तुम अंशरूपसे व्रजधाममें जाकर यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण होओ। मानवगण नगर-नगरमें भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम्हारे प्रकट होते ही वसुदेव यशोदाके सूतिकागृहमें मुझे रखकर तुम्हें ले जायँगे। फिर कंसको देखते ही पुनः तुम भगवान् शिवके पास चली जाना। मैं पृथ्वीका भार उतारकर अपने धाममें लौट आऊँगा।'

इसके बाद कौन देवता किस नाम-रूपसे कहाँ अवतार लेंगे—विशिष्ट-विशिष्ट देवताओंके लिये भगवान्‌ने इसका निर्देश किया है।

## श्रीकृष्णका दिव्य विग्रह अप्राकृत—भगवत्स्वरूप ही है

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, उनका दिव्य शरीर कर्मजनित प्राकृत या सिद्धिजनित 'निर्माणशरीर' नहीं है। वह प्राकृत शरीरसे सर्वथा विलक्षण हानोपादानरहित दिव्य सच्चिदानन्दमय भगवत्स्वरूप है। इसके प्रचुर प्रमाण श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें ही श्रीकृष्ण और सनत्कुमारके वार्तालापका एक सुन्दर प्रसङ्ग आता है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनेको प्राकृत बतलानेकी चेष्टा की है और सनत्कुमारने उनके प्रश्नोंके उत्तरमें उनकी भगवत्ता सिद्ध की है, उनके शरीरको साक्षात् चिदानन्दमय भगवद्देह बतलाया है और 'वासुदेव' नामका बड़ा ही विलक्षण अर्थ किया है। प्रसङ्ग इस प्रकार है—

एक बार ब्रह्मतेजसे उद्भासित सैकड़ों बड़े-बड़े ऋषि-मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आये थे। फिर उस मुनि-सभामें परम तेजःपुञ्ज सर्वाङ्गसुन्दर पाँच वर्षके नग्न बालकके रूपमें श्रीसनत्कुमारजी पधारे। उन्होंने आकर मुनियोंसे कुशल-प्रश्न करके कहा कि 'श्रीकृष्णसे तो कुशल पूछना व्यर्थ है। ये स्वयं ही समस्त कल्याणके बीज हैं। अथवा इस समय इन परमात्मा श्रीकृष्णका दर्शन ही आपलोगोंके लिये कुशल है; प्रकृतिसे अतीत, निर्गुण, निरीह, सर्वबीज और तेजःस्वरूप ये भगवान् भक्तोंके अनुरोधसे ही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतरित हुए हैं।'

इसपर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'विप्रवर ! जब शरीरधारी मात्रके लिये कुशल-प्रश्न अभीप्सित है, तब फिर मैं ही कुशल-प्रश्नका पात्र क्यों नहीं हूँ ?'

> शरीरधारिणश्चापि कुशलप्रश्नमीप्सितम्।
> तत्कथं कुशलप्रश्नं मयि विप्र ! न विद्यते॥

सनत्कुमारजीने उत्तर दिया—'प्रभो ! शुभ-अशुभ सब प्राकृत शरीरमें ही हुआ करते हैं; जो शरीर नित्य है और सारे कुशलोंका बीज है, उसके लिये कुशल-प्रश्न निरर्थक ही है।'

> शरीरे प्राकृते नाथ संततं च शुभाशुभम्।
> नित्यदेहे क्षेमबीजे शिवप्रश्नमनर्थकम्॥

तब भगवान् बोले—'विप्रवर ! शरीरधारी मात्र ही प्राकृतिक माने जाते हैं, क्योंकि नित्या प्रकृतिके बिना शरीर होता ही नहीं।'

> यो यो विग्रहधारी च स स प्राकृतिकः स्मृतः।
> देहो न विद्यते विप्र तां नित्यां प्रकृतिं विना॥

इसके उत्तरमें सनत्कुमारजीने कहा—'प्रभो ! जो देह रज-वीर्यके द्वारा उत्पन्न होते हैं, वे ही प्राकृतिक माने जाते हैं। आप तो स्वयं सबके आदि हैं, सबके बीज—कारण हैं और प्रकृतिके नाथ हैं, स्वयं भगवान् हैं। आपका देह प्राकृतिक कैसे हो सकता है ! आप वेदवर्णित समस्त अवतारोंके निधान, सबके अविनाशी बीज, नित्य सनातन, स्वयं ज्योतिःस्वरूप परमात्मा परमेश्वर हैं।

> रक्तबिन्दूद्भवा देहास्ते च प्राकृतिकाः स्मृताः।
> कथं प्रकृतिनाथस्य बीजस्य प्राकृतं वपुः॥
> सर्वबीजश्च सर्वादिर्भवांश्च भगवान् स्वयम्।
> सर्वेषामवताराणां निधानं बीजमव्ययम्॥
> कृत्वा वदन्ति वेदाश्च नित्यं नित्यं सनातनम्।
> ज्योतिःस्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम्॥

इसपर श्रीकृष्णने पुनः कहा—'विप्रवर ! इस समय मैं वसुदेवका पुत्र हूँ, अतएव मेरा शरीर रजोवीर्यसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है; फिर मैं प्राकृतिक और कुशल-प्रश्नका पात्र नहीं हूँ !"

साम्प्रतं वासुदेवोऽहं रक्तवीर्याश्रितं वपुः ।
कथं न प्राकृतो विप्र शिवप्रश्नमभीप्सितम् ॥

## 'वासुदेव' शब्दका अर्थ

इसपर अन्तमें सनत्कुमारजी बोले—'नाथ ! ( वासुदेव-शब्दका अर्थ दूसरा है—) वासुका अर्थ है—जिसके लोमकूपोंमें अनन्त विश्व स्थित हैं, वे सर्व-निवास महान् विराट् पुरुष; और उनके जो देव हैं—स्वामी हैं, वे हैं आप स्वयं परमब्रह्म 'वासुदेव' । इसी 'वासुदेव' नामका चारों वेद, पुराण, इतिहास, आख्यान आदि वर्णन करते हैं। आपका शरीर रजवीर्यसे बना है, यह किस वेदमें निरूपित है ? ये सब मुनिगण यहाँ साक्षी हैं, धर्म भी सर्वत्र साक्षी हैं और वेद तथा चन्द्र-सूर्य भी मेरे साक्षी हैं ( आप सच्चिदानन्दमयशरीर हैं ) ।

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु ।
तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतीरितः ॥
वासुदेवेति तन्नाम वेदेषु च चतुःषु च ।
पुराणेष्वितिहासेषु वार्तादिषु च दृश्यते ॥
रक्तवीर्याश्रितो देहः क ते वेदे निरूपितः ।
साक्षिणो मुनयश्चात्र धर्मः सर्वत्र एव च ॥
साक्षिणो मम वेदाश्च रविचन्द्रौ च साम्प्रतम् ॥
( ब्रह्मवैवर्त०, श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड, अ० ८७ )

इन्हीं साक्षात् स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने द्वापर युगके अन्तमें भारतमें अवतीर्ण होकर इस धराको धन्य किया था।

अब इनकी प्राकट्य-लीलाका पवित्र स्मरण करें ।

## श्रीकृष्णका प्राकट्य

मङ्गलमय भाद्रपदके कृष्ण पक्षकी अष्टमी है, मध्य रात्रिका समय है, सब ओर घोर अन्धकारका साम्राज्य है; परंतु अकस्मात् समस्त प्रकृति उल्लाससे भरकर उत्सवमयी बन जाती है, सारी प्रकृति अपने परमाश्रय परमदेवका स्वागत करनेके लिये सज-धजकर समुत्सुक हो उठती है। सब दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, नदियोंका जल निर्मल हो गया, सरोवरोंमें रात्रिको ही कमल खिल उठे, वृक्षोंकी शाखाएँ पुष्प-फलोंसे लद गयीं, साधुओंका मन आनन्दोन्मत्त हो गया, निर्मल मन्द-सुगन्ध मलय-समीर बहने लगा, देवताओंके बाजे स्वयं ही बज उठे, गन्धर्व-किंनर नाचने-गाने लगे और सिद्ध-चारण सब स्तवन करने लगे। क्रूर कंसका कारागार एक विलक्षण ज्योतिसे जगमगा उठा । महामहिम श्रीवसुदेवजीको अनन्त सूर्य-चन्द्रमाओंके सदृश एक प्रचण्ड-शीतल प्रकाश दिखायी दिया और उसमें दीख पड़ा शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मसे सुशोभित, चतुर्भुज, विशालनयन, वक्षःस्थलपर भृगुलता, श्रीवत्स और रत्नहार धारण किये, विविध भूषणोंसे विभूषित, किरीट-मुकुट-कुण्डलधारी, जिसके अङ्ग-अङ्गसे सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्यकी रसमयी त्रिवेणी बह रही है—ऐसा एक चमत्कारपूर्ण अद्भुत बालक ।

वसुदेव-देवकीने स्तुति की, भगवान् श्रीकृष्णने उनको अभय-आश्वासन देकर अपने पूर्व-अवतारोंके सम्बन्धकी तथा वरदानकी बातका स्मरण कराया । तब देवकीने उनसे कहा, मैं कंसके भयसे अधीर हो रही हूँ—'कंसादहमधीरधीः ।' श्रीभगवान्‌ने कहा—'यदि ऐसी बात है तो मुझे तुरंत गोकुलमें पहुँचा दो और यशोदाके गर्भसे प्रकट हुई महामायाको ले आओ ।'

इतना कहकर भगवान् तुरंत शिशुरूप हो गये । भगवान्‌के शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी ऐश्वर्यरूपको देखकर भी वसुदेव-देवकी—भगवान्‌की लीलाशक्तिकी प्रेरणासे वात्सल्य-रसका आविर्भाव होनेपर—डर गये और शिशुको हृदयसे लगाकर ले जानेका विचार करने लगे । पर जायँ कैसे ? हाथोंमें हथकड़ी है, पैरोंमें बेड़ी है, लोहेका मजबूत दरवाजा बंद है, बाहर शस्त्रधारी प्रहरी हैं; इससे वे अत्यन्त विषादग्रस्त होकर मन-ही-मन भगवान्‌के शरणापन्न हो गये । बस, तुरंत हाथोंकी हथकड़ी, पैरोंकी बेड़ी खुल गयी और विशाल लौह-कपाट भी अपने-आप ही खुल गये । यह सब भगवान्‌की अघटन-घटना-पटीयसी माया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिसे हो गया, ऐसा नहीं मानना चाहिये। श्रीकृष्णको हृदयपर रखते ही सारे बन्धन अपने-आप कट जाते हैं। फिर बन्धन-मुक्तिके लिये कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। इसके विपरीत जबतक श्रीकृष्णको हृदयपर नहीं रक्खा जाता, तबतक हजार-लाख प्रयास करनेपर भी बन्धन नहीं खुलता। मायाकी साँकलोंसे हाथ-पैर और गलेसे बँधा हुआ बहिर्मुख जीव कामना-वासनाके बंद दृढ़ लौह-कपाटोंके अंदर संसारके कारागारमें पड़ा रहता है। काम-क्रोधादि शत्रु सदा उस कैदखानेपर पहरा लगाये रहते हैं। अतएव वह जीव किसी प्रकार भी कैदसे नहीं छूट सकता। पर जब वसुदेवजीकी भाँति वह श्रीकृष्णको छातीसे चिपकाकर व्रजकी राहपर चल देता है, तब माया-मोहकी सारी हथकड़ी-बेड़ी खुल जाती हैं, काम-क्रोधादि पहरेदार सो जाते हैं, कामना-वासनाके कपाट खुल जाते हैं—बिना ही प्रयास संसार-बन्धनसे उसे मुक्ति मिल जाती है। भगवान् वसुदेवजीकी गोदमें आकर जगत्‌को इस बातका संकेत कर रहे हैं।

## गोकुलके लिये प्रस्थान

वसुदेवजी कारागारसे निकलकर धीरे-धीरे बाहर सड़कपर आ गये। श्रीकृष्ण अप्राकृत परमानन्दघनविग्रह हैं, अतः उन्हें हृदयपर रखकर चलनेवाले वसुदेवको किसी कष्टका तो अनुभव हुआ ही नहीं, वरं पद-पदपर वे आनन्दसिन्धुमें अवगाहन करने लगे। बहिर्मुख जीव अभिमानका भार उठाकर संसार-पथपर चलता हुआ पद-पदपर दुःख-भोग करता है। इस दुःखसे छूटना हो तो भाग्यवान् वसुदेवकी भाँति श्रीकृष्णको हृदयमें लेकर उनकी लीलाभूमि व्रजकी ओर चल देना चाहिये।

वसुदेवजी इधर-उधर चारों ओर भयभरी दृष्टि डालते हुए धीरे-धीरे चुपचाप व्रजकी ओर बढ़ रहे हैं। इसी समय देवराज इन्द्रके आदेशसे आकाशमें काले-काले बादल उमड़ आये, धीरे-धीरे गरजने लगे, बीच-बीचमें बिजली चमकने लगी और लगातार वर्षा होने लगी। इन्द्रने विचार किया कि 'मूसलधार वर्षा होनेसे मथुरावासी कोई भी घरसे बाहर नहीं निकलेंगे, अतएव वसुदेवजीके जानेका किसीको पता नहीं लगेगा। बीच-बीचमें बिजली-का प्रकाश होते रहनेसे अँधेरेमें वसुदेवको आगे बढ़नेमें भी कोई कष्ट नहीं होगा।' श्रीकृष्णको हृदयमें रखकर अन्धकारमय मार्गमें चल पड़नेपर भी मनुष्य पथभ्रष्ट नहीं हो सकता। इसीलिये बिजली आज बार-बार हँस-हँसकर वसुदेवको पथ बतला रही है। वसुदेवजी चुपचाप परंतु शीघ्रतासे आगे बढ़े जा रहे हैं।

आकाशमें मेघोंके आते ही भगवान् अनन्तदेव श्रीकृष्णकी सेवाका सुअवसर जानकर वहाँ आ गये और अपने हजार फनोंको फैलाकर वसुदेवके सारे अङ्गोंपर छाया किये उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

अनन्तदेव श्रीसंकर्षण श्रीकृष्णका ही दूसरा रूप हैं; परंतु अनादिसिद्ध दास्यभावके कारण वे विभिन्न रूपोंमें सदा श्रीकृष्णकी सेवा ही करते रहते हैं। श्रीकृष्णके स्वरूपानन्दकी अपेक्षा सेवानन्दका ही 'माधुर्य' अधिक है, अतएव स्वयं श्रीकृष्णतक इस आनन्दका आस्वादन करनेके लोभसे दासाभिमानी अपने ही रूपसे अपनी सेवा करते हैं।

**शय्यासनपरीधानपादुकाच्छत्रचामरैः।**
**किं नाभूत्तस्य कृष्णस्य मूर्तिभेदैस्तु मूर्तिषु॥**

—ब्रह्माण्डपुराणके इस वचनके अनुसार संकर्षण श्रीशेषजी शय्या, आसन, वस्त्र, पादुका, छत्र, चँवर आदि नाना मूर्तियाँ धारण करके अखिलरसामृतमूर्ति श्रीगोविन्दकी सेवा किया करते हैं। शेषजी फणोंकी छाया किये चलते हैं, इस बातका वसुदेवजीको पता भी नहीं है।

वसुदेवजी यमुनातटपर पहुँच गये। पर उन्होंने देखा यमुनामें मानो भयानक तूफान आ गया है। बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँची-ऊँची पहाड़-जैसी तरङ्गें उठ रही हैं; सैकड़ों, हजारों बड़े-बड़े भँवर पड़ रहे हैं। वसुदेवजी यमुनाका यह भीषण रूप देखकर चकित और भयभीत हो रहे हैं। सोचते हैं—रात बीत रही है, पार जाकर लौट न सका तो पता नहीं सबेरे कंस जागते ही क्या अनर्थ कर डालेगा। वे यमुनाके तीरपर असीम अनन्त भवसागरसे तुरंत पार कर देनेवाले श्रीहरिको गोदमें लिये हुए ही उस पार पहुँचनेकी चिन्ता कर रहे हैं। यह वात्सल्य-रसकी अनिर्वचनीय महिमा है। फिर भगवान्‌की शैशव-माधुरी भी विलक्षण चमत्कारी वस्तु है। भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकी स्पृहा, ऐश्वर्यज्ञान, तत्त्वानुसंधान—कुछ भी क्यों न हो, दिव्य वात्सल्यरस और शैशव-माधुरी-रसके सुधा-स्रोतमें सब तुरंत बह ही जाते हैं।

वसुदेव श्रीकृष्णको गोदमें लिये यमुनातटपर खड़े व्याकुल चित्तसे चिन्ता कर रहे हैं। उधर यमुनाजी श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शकी कामनासे व्याकुल हैं और धैर्य छोड़कर अस्तव्यस्त तरङ्गोंके द्वारा बढ़ी चली आ रही हैं। यमुनाका ताण्डव-नृत्य हो रहा है और वे उछल-उछलकर अपने परम प्रेमास्पद प्रभुके अरुणचरणोंका स्पर्श पानेके लिये बारंबार मस्तकको ऊँचा उठाये जा रही हैं। वसुदेवने व्याकुल होकर चारों ओर देखा—अगाध जल है और जलराशिके पहाड़-के-पहाड़ उछल रहे हैं। भगवान्‌ने पिता वसुदेवजीकी व्याकुलता देखकर धीरेसे सहसा यमुनाके मस्तकको अपने चरणकमलोंका स्पर्श-सुख प्रदान कर दिया। यमुना निहाल होकर झुकने लगीं, मानो दण्डवत् कर रही हैं। वसुदेवजीने चकित दृष्टिसे देखा—सामनेका जल घट रहा है। वे कुछ और आगे बढ़े, जल और भी कम मिला। श्रीकृष्ण-चरण-स्पर्शकी अपार तृष्णा लिये जो यमुना अपनी उत्ताल तरङ्गभङ्गिमाओंसे ताण्डव नृत्य करती हुई बढ़ी चली जा रही थीं, श्रीकृष्ण-चरणका स्पर्श पाते ही उनकी बाढ़ तुरंत रुक गयी, तरङ्गें क्रमशः थम गयीं, बहावका वेग रुक गया, यमुना निश्चल—निस्तरङ्ग हो गयीं। यमुनाका वह भीषण तूफान वस्तुतः तूफान नहीं था, वह था श्रीकृष्ण-चरण-स्पर्शकी उत्कट लालसासे सहज ही होनेवाला यमुनाका ताण्डवनृत्य। अब वसुदेवजी अनायास ही पार हो गये।

पर किस रास्तेसे जाकर वे तुरंत नन्दघरमें पहुँचें? यमुनाके निर्जन तटपर इस निस्तब्ध निशामें उन्हें कौन मार्ग बताये? वसुदेवजी श्रीकृष्णको गोदमें लिये किसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। उनके पीछेसे यमुनाजी मन-ही-मन मृदु-मृदु कलकल निनादके द्वारा कहने लगीं—'जाओ वसुदेव! याद रक्खो—श्रीकृष्णका भक्त कभी पथ-भ्रष्ट नहीं होता, मार्ग नहीं भूलता; वह जिस ओर चलने लगता है, उसी ओर उसके लिये मार्ग बन जाता है। वसुदेव! तुम्हें मार्ग खोजना नहीं पड़ेगा, मार्ग स्वयं ही तुम्हें खोज लेगा। वह पथ ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शक बनकर तुम्हें नन्दालयमें ले जायगा। तुमने श्रीकृष्णको गोदमें जो ले रक्खा है। फिर चिन्ता क्यों कर रहे हो?'

श्रीवसुदेवजी सीधे नन्दमहलमें पहुँच गये। देखा, सभी सो रहे हैं। वे सहज ही सूतिकागृहमें जा पहुँचे और शिशु श्रीकृष्णको यशोदाके पास सुलाकर यशोदाकी सद्यःप्रसूता कन्याको लेकर मथुरा कारागारमें लौट आये। उनके लौटते ही पूर्ववत् सब कुछ ज्यों-का-त्यों हो गया। यशोदाको यह भी पता नहीं लगा कि उनके पुत्रका जन्म हुआ या कन्याका। शिशुरूप श्रीकृष्णके लीलासे रोनेपर ही यशोदा जागीं, तब उन्हें पता लगा कि उनके नील कमलदलके सदृश श्यामवर्ण पुत्र हुआ है।

**ददृशे च प्रबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम्।**
**नीलोत्पलदलश्यामं ततोऽत्यर्थं मुदं ययौ॥**
(विष्णुपुराण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## श्रीकृष्णका दो रूपोंमें देवकी और यशोदाके गर्भसे प्राकट्य

कुछ व्रजप्रेमी विद्वानोंकी ऐसी मान्यता है कि श्रीभगवान् ऐश्वर्य और माधुर्यके भेदसे 'श्रीवासुदेव' और 'श्रीगोविन्द'—इन दो स्वरूपोंमें एक ही साथ देवकी और यशोदा दोनों माताओंसे आविर्भूत हुए थे। इस सम्बन्धमें हरिवंशकी किसी-किसी प्रतिमें यह एक श्लोक मिलता है—

**गर्भकाले त्वसम्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ।**
**देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा॥**

'असम्पूर्ण गर्भकालके आठवें महीनेमें देवकी और यशोदा दोनोंने ही एक ही समय श्रीकृष्णको प्रकट किया था।' यशोदाजीके श्रीकृष्णके बाद ही योगमाया प्रकट हुई थीं। अतएव कालभेदसे यशोदाके दो बालकोंका—श्रीकृष्ण और योगमायाका प्रकट होना सिद्ध होता है। श्रीदेवकीके श्रीकृष्ण वासुदेवस्वरूप ऐश्वर्यमय शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज थे और श्रीयशोदाके श्रीकृष्ण माधुर्यमय द्विभुज नराकृति परब्रह्म थे। वसुदेवजी जब वासुदेवस्वरूप भगवान्‌को यशोदाके पास लेकर आये, तब वह वासुदेवस्वरूप उसी क्षण श्रीगोविन्दस्वरूपमें लीन हो गया। दोका एक स्वरूप हो गया, ऐश्वर्य माधुर्यके महासमुद्रमें निमग्न हो गया। इसके पश्चात् वसुदेवजी यशोदाकी उस योगमायाकी अंशरूपा कन्याको लेकर मथुराके कारागारमें लौट आये।

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकार्द्धसे भी यह एक समय दो जगह अलग-अलग प्रकट होनेकी बात सिद्ध की जाती है—

**नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।**

'श्रीनन्दजीके आत्मज ( पुत्र ) उत्पन्न होनेपर उन महामनाको परम आह्लाद हुआ।' ये वचन शुकदेवजीके हैं। यदि नन्दजीके श्रीकृष्ण न प्रकट होते तो शुकदेवजी 'आत्मजे उत्पन्ने' पुत्र उत्पन्न हुआ क्यों कहते? 'स्वात्मजं मत्वा'—'नन्दजीने अपना पुत्र मानकर परम आह्लाद प्राप्त किया' ऐसा कह देते। वस्तुतः क्या बात है, पता नहीं। पर सर्वसमर्थ, कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुंसमर्थ भगवान्‌के लिये एक ही साथ दो जगह प्रकट होनेमें कहीं कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है।

जो कुछ भी हो, भगवान्‌की परम मधुरतम शिशुलीलाका दिव्य दुर्लभ आनन्द तो श्रीयशोदा मैया, नन्द बाबा और व्रजवासी ग्वालबालों तथा भाग्यवती व्रजाङ्गनाओंको प्राप्त होता है।

तदनन्तर वे मूर्तिमान् आनन्द-ज्योति श्रीगोविन्द माता यशोदाकी गोदमें शोभा पाने लगे। मानो चिदानन्द-सरोवरमें ऐसे एक नील-कमलका विकास हुआ, जिसकी सुगन्ध अबतक भ्रमरोंको कभी सूँघनेको नहीं मिली थी, जिसकी सुगन्धको पवन कभी भी हरण करके नहीं ले जा पाया था, जिसको कभी कोई तरङ्ग-कण स्पर्श नहीं कर पाया था और जिसको इससे पहले किसीने भी नहीं देखा था। ऐसे अनाघ्रात, अनपहृत, अनुपहत और अदृष्ट नीलकमल-सदृश श्रीकृष्ण हैं। अर्थात् इससे पूर्वके भ्रमररूप भक्तोंने ऐश्वर्यमय नारायण आदि रूपोंका आस्वादन प्राप्त किया था, इनका नहीं; अतएव ये अनाघ्रात हैं। इससे पूर्वके पवनरूप महाकवियोंने श्रीनारायणादि ऐश्वर्यरूपोंका गुणगान किया था, इनका नहीं; अतएव ये अनपहृत हैं। प्राकृत कमल जैसे जलमें उत्पन्न होता है, वैसे यह कमल जलमें यानी प्रपञ्च-जगत्‌में नहीं अवतीर्ण हुआ है। जलमें उत्पन्न कमलको तरङ्गोंके थपेड़े लगते हैं, पर तरङ्गरूप प्रपञ्चान्तर्गत गुण इनको कभी छूतक नहीं गये हैं; इससे ये अनुपहत हैं और ऐश्वर्यमय या ऐश्वर्य-माधुर्य-मिश्रित रूप पहले देखे गये हैं, पर यशोदोत्सङ्गविहारी इन नीलश्यामको अबतक किसीने नहीं देखा है; इसलिये ये अदृष्ट हैं।

इसका दूसरा भाव . यह भी परम सत्य है कि श्रीभगवान्‌का यह मधुरतम स्वरूप ऐसा विलक्षण है कि इसमें क्षण-क्षण नये-नये सौन्दर्य-माधुर्यादि रसोंका, प्रतिक्षण नये-नये लीलाभावोंका विकास-उल्लास होता रहता है। इसलिये प्रेमी भक्त प्रतिक्षण ही इनके प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावको अभूतपूर्व ही अनुभव करते हैं—इनका प्रत्येक भाव नित्य नवीन, सदा अनास्वादित ही दीखता है।

अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरेष्वनुपहतमूर्मीकणभरैः।
अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्दसरसो
यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत्॥

## श्रीकृष्णावतारके प्रयोजन

परात्पर ब्रह्मके इस दिव्य अवतारके प्रधान हेतु बतलाते हुए कहा गया है—

आत्मारामान्मधुरचरितैर्भक्तियोगे विधास्यन्
नानालीलारसरचनयाऽऽनन्दयिष्यन् स्वभक्तान्।
दैत्यानीकैर्भुवमतिभरां वीतभारां करिष्यन्
मूर्तानन्दो व्रजपतिगृहे जातवत् प्रादुरासीत्॥
(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू)

श्रीभगवान्‌के इस प्रकारके अवतार-ग्रहणके तीन प्रधान कारण हैं—(१) अपने मधुर लीलाचरितोंके द्वारा आत्माराम मुनियोंको प्रेमभक्ति-योगमें लगाना, (२) विविध लीलारसोंकी रचनाके द्वारा अपने प्रेमी भक्तोंको आनन्दित करना, उनके विशुद्ध प्रेमरसास्वादनके द्वारा सुखी होकर उन्हें प्रेमरसास्वादन कराकर सुखी करना और (३) दुर्दान्त दैत्योंके भीषण भारसे अत्यन्त दबी हुई पृथ्वीका भार उतारना। इन्हीं तीन मुख्य प्रयोजनोंसे आनन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण व्रजनरेश नन्दबाबाके घरमें जन्म लेनेकी भाँति प्रकट हुए।

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी लीलामें इन तीनों ही प्रयोजनोंको भलीभाँति सुसम्पन्न किया। भगवान्‌ने मधुर व्रजलीलामें वात्सल्य-सख्य-मधुर आदि विभिन्न रसवाले प्रेमीजनोंको दिव्य प्रेमरससुधाका आस्वादन कराया और किया। यहाँ बीच-बीचमें ऐश्वर्यभावका ग्रहण करके दैत्योंके प्राण हरणकर उन्हें मुक्ति प्रदान की। मथुरा और द्वारकाकी लीलामें माधुर्यरसकी अपेक्षा ऐश्वर्यका तथा प्रेमकी अपेक्षा निष्काम कर्म और ज्ञानका परम विशुद्ध अमृत अधिक वितरण किया। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि ज्ञानी अमलात्मा परमहंस महात्माओंको आकर्षित करके अपनी विशुद्ध भक्तिमें नियुक्त किया।

## श्रीकृष्णचरितमें पूर्ण भगवत्ता और पूर्ण मानवताका सम्मेलन

यह तो हुई स्वयं भगवान्‌के तत्त्व, महत्त्व और नित्य रसमाधुरीकी बात। पर यों भगवान् श्रीकृष्णके विलक्षण लीलाचरितमें पूर्णभगवत्ता और पूर्णमानवताका एक ही साथ परमाश्चर्यमय सम्मेलन है। वे पूर्णतम भगवान् हैं और पूर्णतम मानव हैं। उनके चरित्रमें जहाँ एक ओर भगवत्ताका अशेष वैचित्र्यमय लीलाविलास है, दूसरी ओर वैसे ही मानवताका परम और चरम उत्कर्ष है। अनन्त ऐश्वर्यके साथ अनन्त माधुर्य, अप्रतिम अनन्त शौर्य-वीर्यके साथ मुनिमनमोहन नित्यनव निरुपम सौन्दर्य, वज्रवत् न्याय-कठोरताके साथ कुसुमवत् प्रेम-कोमलता, नव-नव-राज्यनिर्माण-कौशलके साथ स्वयं राज्यग्रहणमें सर्वथा उदासीनता, अनवरत कर्मप्रवणताके साथ सहज पूर्ण वैराग्य और उदासीनता, परम राजनीति-निपुणताके साथ पूर्ण आध्यात्मिकता, सम्पूर्ण विषमताके साथ नित्य समता, सर्वपूज्यताके साथ सेवापरायणता—यों अनन्त युगपत् आपातविरोधी भावोंका पूर्ण और सहज समन्वय श्रीकृष्णके जीवनमें प्रत्यक्ष प्रकट है।

## श्रीकृष्ण सब ओरसे पूर्ण हैं

साथ ही जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् न मानकर योगेश्वर, आदर्श महापुरुष, उच्चश्रेणीके निष्काम कर्मयोगी मानते हैं, उनके लिये भी भगवान् श्रीकृष्णने अपने आदर्श जीवनमें जो कुछ दिया है, वह इतना महान्, इतना विशाल, इतना उदार, इतना आदर्श, इतना अनुकरणीय है कि उसकी कहीं तुलना नहीं है। हम उनको प्रत्येक क्षेत्रमें सर्वथा सर्वोच्च आसनपर आसीन पाते हैं। अध्यात्म, धर्म, राजनीति, रण-कौशल, विज्ञान, कला, संगीत, नेतृत्व, सेवा, पारिवारिक जीवन, समाज-सुधार—कहीं भी देखिये, वे सर्वत्र सदा सबके लिये आदर्श, दिव्य आशाका निश्चित संदेश लिये सफलता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशलता और अनुभूतिसे पूर्ण आचार्य-पदपर प्रतिष्ठित हैं और स्वयं पथप्रदर्शक बनकर——स्वयं ही सुदृढ़ नौकाके केवट बनकर सबको सब प्रकारकी असुविधाओं और बन्धनोंके अगाध समुद्रसे सहज पार कर देनेके लिये नित्य प्रस्तुत हैं।

आज हम इस मङ्गलमयी उनकी जन्मतिथिके मङ्गल दिवसपर उनके चरण-शरण होकर अपना जन्म-जीवन सफल और धन्य करें।

बोलो नन्द-यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्णकी जय!

**नव-नीरद-नीलाभ कृष्ण तन परम मनोहर।**
**त्रिभुवनमोहन रूपराशि रमणीय सुभग वर॥**
**कस्तूरी-केसर-चन्दन-द्रव-चर्चित अनुपम।**
**अङ्ग सकल सच्चिन्मय सुषमामय सुन्दरतम॥**
**कीर-चञ्चु-निन्दक निरुपम नासा मणि राजत।**
**कुञ्चित केश-कलाप कृष्ण लख अलिकुल लाजत॥**
**सिर चूड़ा, शिखिपिच्छ, मुकुट मणिमय अत्युज्ज्वल।**
**कर्ण-युगल कमनीय कर्णिका कुण्डल झलमल॥**
**कुटिल भ्रुकुटि, दृग-युगल विशद विकसित अम्बुजसम।**
**रुचिर भङ्गिमा, ललित त्रिभङ्गी, मध्यम वंकिम॥**
**पीत वसन तडिताभ, दशन द्युतिमय, अरुणाधर।**
**मुख प्रसन्न, मुसकान मधुर, मुरलिका मधुर कर॥**
**भक्त-भक्त नित सेवक-भक्तानुग्रह-कातर।**
**प्रेम-रसिक रस-प्रेम-सुधा-आस्वादन-तत्पर॥**
**व्रज-प्रिय व्रज-जन-सखा-स्वामि-सेवक तन-मन-धन।**
**नन्द-यशोदा-तनय बाल-व्रजरमणी-जीवन॥**
**भगवत्ता, सत्ता, ईश्वरता सारी तजकर।**
**व्रज-जन-सुख-हित-हेतु द्विभुज निज-इच्छा-वपुधर॥**
**भाद्र-अष्टमी, कृष्ण पक्ष, बुधवार अनुत्तम।**
**शुभ रोहिणि नक्षत्र, मध्य-रजनी मङ्गलतम॥**
**हुए प्रकट श्रीनन्द-यशोदाके प्रिय सुत बन।**
**निज-स्वरूप वितरण-हित बनकर सबके निजजन॥**

# परमात्मप्रेम और भगवद्भक्ति

( लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी ( डाँगीजी )

सर्वेश्वर-सम्बन्धका ज्ञान होनेके बाद तो परमात्म-प्रेम सहज हो जाता है। प्रेम किया नहीं जाता, वह शुद्ध आत्माका स्वभाव है, जिसके उपलब्ध होते ही सम्पूर्ण अभाव दूर हो जाते हैं। उपलब्धिका अर्थ अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं——नित्य प्राप्तकी स्मृति या अनुभूति है। मन जब अपना वास्तविक अधिष्ठान छोड़कर विषयोंमें प्रवृत्त होता है, तब समझना चाहिये कि उसे स्वभावकी विस्मृति हो गयी है। उसे पुनः अपने घरमें स्थापित करना ही स्वास्थ्य-लाभ करना है। अपने स्वभावसे मनका बाहर जाना ही अस्वस्थ अवस्था है और अपनेमें ठहरे रहना ही स्व-स्थिति है।

आत्मा तो तीन कालमें अशुद्ध नहीं होता; क्योंकि वह 'चेतन अमल सहज सुखरासी' ईश्वरका सनातन अंश है। शरीर कभी शुद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही अशुचिसे हुई है। शुद्ध करना है तो मनको ही। मनको प्रभुकी ओर किया कि वह शुद्ध, और जड वस्तुओंकी ओर घुमाया कि अशुद्ध। नलकी टूँटी इधर घुमायी तो पानी बंद और वाटरवर्क्सकी ओर घुमायी तो पानी प्रारम्भ। अहंकारका स्विच दबाया तो 'लाइट' शुरू और अहंकारको ऊँचा किया कि लाइट बंद। तालेकी चाभी इधर घुमायी तो ताला बंद और उधर घुमायी कि ताला खुला। पानीसे ही कीचड़ हुआ और पानीसे ही साफ हुआ। 'मनके हारे हार है और मनके जीते जीत।' तात्पर्य यह कि परमात्माकी ओर मन घूमा कि वह शुद्ध हो गया और विषयोंकी ओर गया कि अशुद्ध हो गया। अब हम परमात्माकी ओर होनेके लिये परमात्मप्रेमका रहस्य जाननेका कुछ प्रयत्न करें—

ॐकारेश्वर, महाकालेश्वर, रामेश्वर और घुश्मेश्वर आदि सर्वेश्वर महाशिवको कहते हैं—ये सुषुप्ति अवस्थाके अधिष्ठाता होनेसे आनन्दके समुद्र हैं। उपनिषदोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण शरीरके समष्टिरूपको 'ईश्वर' संज्ञा दी गयी है। इसी कारण विवाहके समय महादेव प्रभु कहते हैं हमारे बाप ब्रह्मा, दादा विष्णु और परदादा तो सबके हम ही हैं। इस प्रकार शान्ति और आनन्दमय सर्वेश्वर प्रभुके सम्बन्धको पहचानकर हमें समत्वकी ओर जाना चाहिये; परंतु परमात्मासे प्रेम हुए बिना इस तत्त्वकी उपलब्धि सम्भव नहीं। परमात्माका अर्थ है 'महाब्रह्मा' जिसे शास्त्रोंमें हिरण्यगर्भके नामसे उल्लिखित किया गया है। ये ही स्वप्न अवस्थाके अधिष्ठाता होनेसे सूक्ष्म शरीरके स्वामी हैं। गीतामें भगवान्‌के द्वारा आदेश दिया गया है कि 'परमात्मा' इस नामवाला तत्त्व इस देहमें पर-पुरुषके रूपमें क्रीडा कर रहा है। जिस प्रकार ईश्वर हृदयमें विराजमान होकर सर्वभूतोंको घुमा रहा है, उसी प्रकार परमात्मतत्त्व पर-पुरुषके रूपमें सबकी देहोंमें सुशोभित है। गीतामें 'परमात्मा' और 'ईश्वर' का तो वर्णन आया परंतु भगवान्‌का नहीं; क्योंकि गीता भगवान्‌की कही हुई है—'श्रीभगवानुवाच', न कि 'श्रीपरमात्मा उवाच' या 'ईश्वर उवाच'। ईश्वर और परमात्माका वर्णन तृतीय पुरुषके रूपमें हुआ है। सबमें एक सूत्रात्माको पहचानकर सभी जीवोंसे सहज प्रेम होना ही परमात्मप्रेमका लक्षण है।

'भगवान्' शब्द मुख्यतः श्रीविष्णु, श्रीकृष्ण या वासुदेवके रूपमें पुरुषोत्तमके लिये प्रयुक्त है, जो जाग्रत् अवस्थाके अधिष्ठाता होनेसे स्थूल शरीरके साथ-साथ अखिलविश्व-विराट्के अधिपति हैं—संरक्षक हैं। सम्पूर्ण विश्व-विराट्के संरक्षणका विधान या कानून ही 'श्रीमद्भगवद्गीता' है, जिसने सम्पूर्ण विश्व-विराट्को आकृष्ट कर रक्खा है। सबका आकर्षण करनेवाले ही श्रीकृष्ण हैं। आकाशमें जो सर्वव्यापक श्यामसुन्दरकी झाँकी न हो तो अनन्त ग्रह-उपग्रह परस्पर टकरा जायँ। वे उनके आकर्षणसे ही नियमित होकर नित्य चक्कर लगा रहे हैं। उनकी भक्ति ही की जा सकती है—जानना और प्रेम करना पानी मानना केवल इन्हींके प्रसादसे प्राप्त होता है। अपना पुरुषार्थ भगवद्भक्तिमें नहीं माना जाता। भगवद्भक्तिमें लेना चैन तक नहीं, सब देना-ही-देना है। अन्य पाठशालाओंमें पाठ याद होनेपर छुट्टी हो जाती है, परंतु भगवद्भक्तिकी पाठशालामें जिसे वह पाठ याद हो गया, उसे अनन्तकाल तक छुट्टीकी भी इच्छा नहीं होती। हरिका भक्त मुक्ति इसीलिये नहीं चाहता। ज्ञानमार्गमें मुक्ति ध्येय है और प्रेममार्गमें वह हेय है।

> **मुक्ति कहे गोपल सों, मेरी मुक्ति कराय।**
> **ब्रजरज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय॥**

यदि मुक्तिको अकेले सिद्धलोकमें न रहना हो तो वह वृन्दावनमें जाकर सहज गोपीभावसे प्रभुलीलामें सम्मिलित हो सकती है। वहाँपर वह अपने धर्मसे मुक्त होकर स्थिरता छोड़ती हुई नित्य निकुञ्जमें, नित्य रासमें निमग्न रह सकती है। शर्त है कि इसमें श्रीराधिकाजीकी अनुमति हो; क्योंकि भगवत्प्रेमका निगूढ़ रहस्य, उसका परम मर्म वे ही समझती हैं—केवल एक वे ही। भक्तिको वहीं अनन्य या पुष्ट समझना चाहिये, जहाँ किसी भी प्रकारकी पूजा भी स्वीकार नहीं की जाती। वहाँ तो भक्त—

> **सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥**

सबको प्रणाम करता है और समझता है—

> **मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।**

वह सबको मान देकर आप अमानी रहता है। सम्पूर्ण मान हनन करनेवाले हनुमान् भी भक्तिके आदर्श हैं। सम्पूर्ण राम-परिवारकी रक्षा करनेपर भी वे कहते हैं 'प्रभो! आपकी ही कृपा है।' वे प्रतिष्ठा नहीं लेना चाहते। प्रयागराजमें जैसे सरस्वती गुप्त रहना चाहती है, उसी प्रकार वे भगवद्भक्त सबसे छिपकर रहना चाहते हैं। ब्रह्माजी भी इसीलिये पूजा नहीं चाहते। केवल पुष्करमें ही उन्होंने अपने श्रीविग्रहको प्रकट किया है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यत्र नहीं। भगवद्भक्तोंके चरणचिह्नोंको धारण करके ही भगवान् अपनी छातीको कोमल बनाते हैं। जैसे प्रेममें प्रदर्शन नहीं होता, 'दर्शन' होता है; 'प्रसिद्धि' नहीं होती, 'सिद्धि' होती है; वैसे ही भक्तिमें 'विभक्ति' नहीं होती। पतिकी भक्तिको ही भगवद्भक्तिका सर्वोत्कृष्ट प्रतीक मानना चाहिये। वह पत्नी अपने पतिसे इतनी अधिक लगी हुई होती है कि उसकी तनिक-सी विभक्ति उसे सहन नहीं होती। विभक्ति यानी अलग होना और भक्ति यानी लगन। श्रीमान् वरराजासे लग्न होते ही दरिद्र घरकी लड़की भी श्रीमान् बन जाती है, उसी प्रकार भगवान्में लगते ही हमारी वृत्ति सम्पूर्ण विश्वकी स्वामिनी बन जाती है—यही कारण है कि वह प्रभुके सम्बन्धसे सम्पूर्ण विश्वकी भक्तिमें उल्लसित होती जाती है। प्रतिक्षण वर्द्धमान प्रेमसम्पन्ना भक्ति ही मानव-जीवनका चरम परम लक्ष्य है।

सर्वेश्वर प्रभु सुषुप्ति अवस्थाके स्वामी होनेसे तमोगुणके अनुशासक हैं, इसलिये उनसे नित्य-संयुक्त काली-निद्राद्वारा नित्य-नियमित संयुक्त होकर ही शान्ति मिलती है। इसीलिये उसके प्रतिष्ठाता 'शंकर' हैं—शान्ति करनेवाले। इसी प्रकार हिरण्यगर्भके रूपमें महाब्रह्मा परमात्मा स्वप्न-अवस्थाके स्वामी होनेसे रजोगुणके अधिष्ठाता हैं, इसी कारण स्वप्नमें अनेकानेक संकल्प-विकल्प होते रहते हैं। इहलोककी अधिष्ठात्री जाग्रत् अवस्थाकी मालकिन ही भगवद्भक्ति है, जो विष्णु भगवान् वासुदेव पुरुषोत्तमके उत्तम स्वरूपमें निरन्तर बढ़ती हुई रहती है। इहलोक यानी इन्द्रियोंका लोक और परलोक यानी मनका लोक, उसी प्रकार परमलोक यानी आनन्दका लोक। इन सब लोकोंमें आलोक आत्माका है। जाग्रत् अवस्थामें विष्णुका लक्ष्मीके साथ खेल चलता है। स्वप्नमें सरस्वतीके साथ ब्रह्मदेवका संकल्प-विकल्प चलता है और सुषुप्तिमें शंकरके साथ पार्वती, काली निद्रा या सम्पूर्ण अहंकारका संहार करनेवाली दुर्गाका रमण चलता है। जाग्रत् अवस्थामें भगवान् रुक्मिणी आदि हजारों शक्तियोंके द्वारा अनुशासक हैं; क्योंकि जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियके द्वारा ही आलोक आता है। उनकी इच्छासे ही कभी-कभी राधिकाजी उनके सुखको बढ़ानेके ध्येयसे उनपर भी अनुशासन कर लेती हैं—यही भगवद्भक्तिका रहस्य है, जो हमारे पुरुषार्थोंकी पराकाष्ठा है। परमार्थ है—सर्वेश्वरका सम्बन्ध; परम परमार्थ है—परमात्माका प्रेम और उनका मर्म यथार्थ रूपसे अनुभूतिमें आना ही स्वार्थ, परार्थ, परमार्थ और परम परमार्थसे भी परे भगवान्की अनन्य अव्यभिचारिणी अहैतुकी परात्परा भक्ति है, जो हमारा चरम ध्येय है।

सर्वेश्वर प्रभु महादेवका सम्बन्ध श्यामसुन्दरके समान आकृतिवाली उनकी बहन कालिकासे क्यों हुआ! इसीलिये कि सत्त्वगुण संसारके संहारका कार्य करे अर्थात् समस्त क्रियाओंके अहंकारको अपनेमें समेट ले। इसी कारण रुद्रदेव अहंकारके अधिष्ठाता माने जाते हैं। लाल वर्णके ब्रह्मदेव-स्वरूप परमात्मा तेजःस्वरूप होनेसे उनको कर्पूरगौर शरभावतार शंकर भगवान्की बहन सरस्वती दी गयी है कि रजोगुण शान्त रहे, निर्लिप्त भावसे सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त रहे। श्यामसुन्दर भगवान् विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण पुरुषोत्तमको इसीलिये स्वर्णिम वर्णवाले परमात्मा ब्रह्माकी बहन लक्ष्मी दी गयी है कि वे समुद्रमें सोये ही न रहें, रजोगुणकी सहायता पाकर सत्त्वगुणको हृदयमें रखकर अपनी दृष्टिको भगवान् महादेवके प्रति चढ़ाकर सुदर्शन प्राप्त करें और अपना विवेकपूर्ण कर्म चलाते हुए सृष्टिका संरक्षण करनेमें समर्थ बने रहें। तात्पर्य यही है कि सर्वेश्वर महादेवका सम्बन्ध, परमात्मा ब्रह्माका प्रेम और विष्णुभगवान्की भक्तिकी परम चरम अनुभूति ही मानव-जीवनकी सम्पूर्ण कृतकृत्यता है।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीभगवन्नाम-जप

## हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

( षोडश नामके लगभग ८६½ करोड़ महामन्त्र अर्थात् १३¾ अरबसे अधिक नामका जप )

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम्।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

'मधुरोंमें भी मधुर, मङ्गलोंमें भी मङ्गल और पावनों (पवित्र करनेवालों) में भी पावन केवल हरिनाम ही है। हरिनाम, हरिनाम, केवल हरिनाम ही कलियुगमें गति है। अन्यथा गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है।'

बड़े ही हर्षकी बात है कि 'कल्याण'में प्रकाशित प्रार्थनाके अनुसार भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिकाओंने गतवर्ष बहुत ही उत्साहके साथ नाम-जप स्वयं करके तथा दूसरोंसे करवाकर महान् पुण्यका सम्पादन किया है। उनके इस उत्साहका पता इसीसे चलता है कि पिछले वर्ष जहाँ केवल १२०० स्थानोंसे आयी सूचना दर्ज हुई थी, वहाँ इस वर्ष १३४० स्थानोंकी सूचना दर्ज हुई है और मन्त्र-जप जहाँ गतवर्ष केवल पूरे महामन्त्रका ३४ करोड़ हुआ था, वहाँ इस वर्ष ८६ करोड़से भी अधिक ऊपर हुआ है। इसके लिये हम सभी नाम-प्रेमियोंके हृदयसे आभारी हैं। मन्त्रजपकी इस संख्या-वृद्धिमें किसी अंशमें अष्टग्रहीके संकटका भय भी एक प्रधान कारण हो सकता है। वह विपत्ति भी स्वागतके योग्य है, जो भगवान्‌में लगा दे—भगवान्‌का स्मरण करा दे। इसीलिये कुन्तीदेवीने भगवान् श्रीकृष्णसे विपत्तिका वरदान माँगा था—

विपदः सन्तु नः शश्वत्।

कुछ भी हो, मन्त्र-जप-संख्याकी यह वृद्धि बड़ी ही कल्याणकारिणी है। हमें आशा है कि हमारे पाठक-पाठिका अपने इस वर्द्धमान उत्साहकी उत्तरोत्तर वृद्धि करते जायँगे। 'कल्याण'की प्रार्थनापर इस वर्ष जो जप हुआ, इसके सम्बन्धमें निम्नलिखित निवेदन है—

(१) इस वर्ष भी केवल भारतमें ही नहीं, बाहर विदेशोंमें भी जप हुआ है।

(२) इसमें केवल उपर्युक्त सोलह नामके महामन्त्रकी ही संख्या जोड़ी गयी है। भगवान्‌के अन्यान्य नामोंका भी बहुत जप हुआ है, वह इस संख्यासे पृथक् है।

(३) बहुत-से भाई-बहिनोंने जप अधिक किया है, सूचना कम भेजी है और कुछ नाम-प्रेमियोंने तो केवल जप करनेकी सूचना भर दी है, संख्या लिखी ही नहीं।

(४) कुछ भाई-बहिनोंने केवल जप-संख्या ही नहीं लिखी है, उत्साहवश नाम भी लिखे हैं, यद्यपि हमारे पास लिखित नामोंके प्रकाशनकी उपयुक्त सुविधा नहीं है। इसके लिये क्षमा-प्रार्थना है।

(५) बहुत-से भाई-बहिनोंने आजीवन नाम-जपका नियम लिया है, इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

(६) स्थानोंका नाम दर्ज करनेमें यथासाध्य सावधानी बरती गयी है। इसपर भी भूल होना एवं कुछ स्थानोंके नाम छूट जाना सम्भव है। कुछ नाम रोमन या प्रान्तीय लिपियोंमें लिखे होनेके कारण उनका नागरी रूपान्तर करनेमें भूल रह सकती है, इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

(७) सोलह नामोंके पूरे मन्त्रका जप हुआ है—८६, ५०, ९५, ३०० (छियासी करोड़, पचास लाख, पंचानबे हजार, तीन सौ)। इनकी पूर्ण नाम-संख्या होती है—१३, ८४, १५, २४, ८०० (तेरह अरब, चौरासी करोड़, पंद्रह लाख, चौबीस हजार, आठ सौ)।

## स्थानोंके नाम इस प्रकार हैं—

अंजनासैंगी, अकबरपुर, अक्कलकोट, अगेहरा, अगौस, अचलजामू, अचलपुर, अजमेर, अजैपुर, अठेहा, अतरझोला, अतर्रा, अथरौली, अदलहाट, अनूपपुर, अन्ताना, अन्नामलाईनगर, अबोहर, अमरवाड़ा, अमरावती, अमलनेर, अमलापुरम्, अमात धर्मक्षेत्र, अमीनगर सराय, अमृतसर, अमोदा, अम्बडगट्टी, अम्बारी, अम्बालाछावनी, अरई, अरनी, अररिया, अरसारा, अरुविकरा, अर्जुनापाढ़, अलवंडी, अलवन्दा, अलावलपुर, अलिप्पे, अलीगंज (एटा), अलीगंज (सोरी) अलीगढ़, अलीपुर कैम्प, अलीपुर जीता, अल्मोड़ा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबसेरीखेड़ा, अशोकनगर, अहमदाबाद, अहिल्यापुर, औंतरी, आकोट, अकोला, आगरा छावनी, आगरा शहर, आठगढ़, आदोनी, आनन्दनगर, आनन्दपुर, आनन्दपुरम् ( शिमोगा ), आबगीला, आबगीला सायर, आबूरोड, आमाटोला, आयराखेड़ा, आरमूर, आरम्भा, आरा, आलन्द, आलीमूड, आवया जागीर, आसनसोल, आसी, इगलास, इचलकरंगी, इटारसी, इटौंजा, इन्दौर, इलाहाबाद, ईकरी, ईटहर, ईसागढ़, उगामा, उगारखुर्द, उखापिंड, उजान गंगोली, उजीरे, उज्जैन, उडुपि, उत्तरसंडा, उदईपुर, उदयपुर, उदयपुरा ( सागर ), उन्नाव, उन्हेल, उपाध्याछापर, उमगरा, उमधा, उमरानाला, उमरी, उमल्ला, उरदीन, उलझावन, उलिणा ( हाथीखुर ), ऊँटी, ऊना, ऊमरपुर, एकमा, ५६ ए. पी. ओ., एरंडोल, ऐझी, ऑन्नगर ( भद्रपुरा ), औंढ़ा नागनाथ, औरंगाबाद, कंधार, ककढ़ियाँ, ककवाड़ा, ककिनाडा, कचौरा, कजरा, कटक, कटकी ( रीवाँ ), कटगी ( रामपुर ), कटघरवा, कटहराटाड, कटिहार, कदाणे, कनास, कन्दईपुर, कन्नोद, कपुरदा, कमलापुर, कमासिन, कमासी, करमा, करमाटाँड, करलू, करवड़, करवल मझगाँवा, करसौत, करियत, करुआ, करोम, करौंदी, कर्वी, कलकत्ता, कलमनूरी, कलाली, कवलास, कवेर, काँकरोली, काँकेर, काँठ, कागुपाडु, काठमाण्डू, कातुरली, कादरगंज पदेरा, कादिराबाद, कानपुर, कानशिवणी, कापसी, कामठी, कारंजालाड, कालियास, कालूचक, कावलि, कावीठा, काशीपुर, किछा, किरारी, किशुनगंज (दमोह), किशुनगंज (म० प्र०), किश्तवाड़, किष्ट्रामपल्लि, कुंजरोद, कुँड़ई, कुटला, कुदेन्च, कुण्टाकानम्, कुमादपुर, कुम्भकोणम्, कुम्हरिया खास, कुरनूल बाजार, कुरम, कुलकुलपल्लि, कुलाली, कुवामला, कुसगवाँ अहिरान, कुही, कूचबिहार, कृष्णपाली, केदमा, केन्नेमूर, केशवदासुपालन्, कैकलूर, कैंथरा, कैथा, कैलगढ़ स्टेट, कोकरीकलाँ, कोटगीर, कोचीन, कोटरी, कोटेतरा, कोठड़ी ( उज्जैन ), कोतमा, कोदोभाठा, कोथापल्ली, कोपड़िया, कोपाखेड़ा, कोयमबत्तूर, कोरो राघवपुर, कोल्हापुर, कोसली, कोहरगढ़ी, कौवाहा, खकरिया, खगौल, खजुराहा, खजूरीपंथ, खड़िया, खडेरटीकतपुरा, खड़ेही, खतौला, खतौली, खपरा, खपरापाली, खमरिया, खम्हौती, खरगपुर—अरसारा, खरगपुर भर्राड, खरगापुरमिश्र, खरदाह, खरहाठार, खरिका, खरीकबाजार, खर्साङ्ग, खलपुरा ( बाला ), खामखेड़ा, खारी, खालिसपुर–डुहिया ( अमोलाघाट ), खासपट्टी ( मुसटामपुर ), खीची, खीरीकोठा, खुड़ी, खुदागंज, खुरजा, खुशालपुर, खुसरूपुर,

खूँटलिया, खेरागढ़, खेरैबाबा ( मथुरा ), खैराबाद, खै... खोपली, खौड, खौरी, गंगाखेड़ा, गंगाधार, गंगापुर (राजस्थान), गंगोरा, गंगोह, गगहा, गठपूरा, गडत, गढ़गाँव, गढ़... गढ़वा, गढ़वाड़ा, गढ़ा, गढ़ीपुराहरदा, गभाना, गमनिया... गया, गरचा, गोरीफा, गरौठा, गल्याँङ्ग, गवाखेड़ा, गा... गाजियाबाद, गाडरवारा, गादिया, गाधरा, गारँगा, गिर... गुजरा, गुड़िहारी ( रायपुर ), गुडेबल्लूर, गुना, गुराड़िया... गुरावड़ा, गुलबर्गा, गेंडोली, गेसुपुर, गोंडा, गोंहरा, गो... गोझरिया, गोढवा, गोड़हिया, गोड्डा ( करमाटाँड ), गोपाल... ( पटना ), गोपालपुर (भोपाल), गोरखपुर, गोलभा, गोला... ( बक्सर ), गोविंदगढ़ ( जयपुर ), गोविंदपुर, गोविंदपुर देवी, गोविंदोडीह, गोसाईंगंज ( फैजाबाद ), गोसाईंगंज... गोसी अमनौर, गौरा, ग्वालियर, घनौरा, घाटमपुर, घुटकूनबापारा, घुसुड़ी ( हबड़ा ), घोंटा, घोडा, चकर... तिवारी, चकराता, चकिया, चकुमर, चकौंध, चण्डीगढ़, चतुरैया, चनायनबाँध, चन्दवारा, चन्दा, चन्दौसी, चन्द्रपुर, चम्पानगर, चाँग, चाँदपुर ( बिलारी ), चाँदपुर स्या... चाँदराना, चाईबासा, चालीसगाँव, चावण्डिया, चिटगाँव, चिटगोप्पा, चित्तावद, चित्तेगाँव, चिबरोल, चिरन महादेव, चिलवरिया, चीखलठान, चीपरुपल्लि, चुरबरा, चुरैलि... चेताँ, चेरिया वरियारपुर, चैनपुर, चोकड़ी, चोटगो... चोपड़ा, चौधरी बसन्तपुर, चौपारण, चौरा, चौहट... छतरपुर, छपकहिया, छपरा, छपारा, छिंच, छिछोर... छितीपुर, छिन्दवाड़ा, छिबरामऊ, छौलापुर, जंगीपुर, जंबुसर, जगतपुर अहीर, जगदीश, जगदीशपुर अइहार... जगनेर, जगाधरी, जड़ोल, जनगाँव, जनारा, जनौड़ी, जप... जबलपुर, जमनी पहाड़पुर, जमशेदपुर, जमालीपुर, जमुआँ... शिव, जमुई पण्डित, जम्मू, जम्मूतवी, जयपुर, जयसिंहपुर... दाणी, जयहरी खाल, जरगवाँ, जरार, जरुवाड़ी, जलगाँ... जलाना, जवाहिर, जसो, जागपुर, जादूशाना, जानवी... जानसठ, जामठी, जामनगर, जामागुड़ीहाट, जाल... जालन्धर शहर, जालोर, जावद, जावरा, जावली, जीराबाद, जुमेराती, जुन्हैरा, जुहाबदा, जेतलपुर, जेल्दारा, जै... जैतपुर, जैतहरी, जैतीपुर कुरुआ, जैतोली, जैथारी, जै... जोगीरमपुरी, जोगीराड़ा, जोजोहाटू, जोधपुर, जोरावरडीह, जौनपुर, जौराखेरा, ज्वाली, झज्जर, झड़ोल, झरी, झलोखर, झाँसड़ी, झाँसी, झारसुगुड़ा, झालरापाटण, झिटिया, झिलीमिल, झींझक, झुमरी तिलैया, झूमियाँवाली, टण्डवा, ट...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ौद, टाँकी कदल ( श्रीनगर ), टिकारी, टिंगिरिया, टिपटिपा, टिमरनी, टीकमगढ़, टेंगा ( अफ्रीका ), टेमीखुर्द, टेमर, टेमोरनी, टेहरीबाजार, ठठारी, ठठिया, ठीकहाँ भवानीपुर, ठूण्ड, डँडवा, डकसरीरा, डगावाँ शंकर, डवाहिल रोड, डुगरा, डुब्बा, डुमटहर, डेहली, डोंड़ी, डोम्हा टोला, ढखवा, ढाणकी, ढाबला मोहन, तपकरा, तपोवन बन्धवारण्य, तमलूर, तारापुर, तालडीह, तालि, तिकपुर, तिमरनी, तियरा, तिरवा पुराना ( श्योपुरकलाँ ), तिरुनेलवेली, तिरुवइयारु, तिरुवारूर, तिलकपुर, तिलाठी, तुंदू, तुनिहा, तुरां, तुलसीपुर ग्रांट, तूँगा, तोंडोली, तौरा, त्रिचनापल्ली, त्रिवेन्द्रम्, थाना, थोखा, दतुआर, दनियाल परसौना, दनापुर ( बाबादीन ), दबखेहरा, दबयाना बँगला ( निरसा चट्टी ), दमोह, दरबा, दरिआँवा टोला, दल्की, दशवरहा, दहीगाँव, दामोदरपुर, दारे-ए-सलम ( अफ्रीका ), दारापुर, दारी, दार्जिलिङ्ग, दिग्धी, दिघवटकुटी, दिदवारा, दिलीपनगर, दिल्ली, दुब्बाक, दुभी महिनाथपुर, दुर्गापुर, दुर्गीगुडि ( शिमोगा ), देपालपुर, देउलगाँव साकरसा, देवकलिया, देवकली, देवगाँव, देवबंद, देवरिया, देवलाया, देवली, देहरादून, दोदपुर, दोलाईश्वरम्, दौराला, दौलतपुर, धोरऊ, धनगरहा, धनगाड़ा, धनवाली, धनवाही, धनीगवाँ ( धुंधुची ), धरान ( जुद्धनगर ), धर्मकुंडी, धर्मशाला ( काँगड़ा ), धापेवाडा, धार, धारवाड़, धुनसोर, धुलिया, नंदग्राम, नई आबादी संजीत, नई दिल्ली, नगला उदैया, नगला मुर्ली ( हिम्मतपुर ), नगीना, नजीराबाद, नडियाद, नदबई, नथुवाखान, नन्दनपुर, नन्दाडीह, नबीपुरखेरिया, नयागढ़, नयानगर ( नेपाल ), नयाबाँस, नयासराय, नरखोरिया, नरमण्ड, नखन, नरसाईपल्लि, नरसिंहपुर, नल्लजर्ला, नलिनी, नवधन, नवादा, नवीनगर, नसीराबाद, नागपुर, नागलपुर, नागौद, नागौर, नाड़ीकलाँ, नाड़ीखुर्द, नादनेर, नान्देड़, नान्हकार, नारदीगंज, नारनौल, नारायनपुर, नासिक, निंभागाँव, निओली, निचनौल बनकटी, निमाज ( पाली ), निमियाँ, निम्माकुरु, निरसाचट्टी, निलफामारी, निवादा ( इटावा ), नीमीयान, नेक, नेजगढ़ ( आठगढ़ ), नेपानगर, नेम्मिकुरु, नैकापार, नैनी, नैनीताल, नोखा, नोनार, नोहझील, नोहटा, नोहरं, नौगावाँ, नौरजा, नौराखेरा, न्यू अलीपुर, पंजवारा, पचमढ़ी, पछौहा, पटना, पटियाला, पटौवा, पट्टी सोयतकलाँ, पठखौली, पठानकोट, पड़थाना, पतुरजा, पथ्रोट, पदुमतरा, पद्मनाभपुर, पनहाँस, पन्त्यूड़ी, पन्ना, पपरेंदा, परगी, परतेवा, परली, परली वैजनाथ, परसदा, पलटा, पलसूद, पलायमकोट्टई, परसरामपुर, परसाबाद, पसवाड़ा, पहाड़पुर, पहासू, पहीबाजार, पांडरखलि, पाँवशी, पाटणवाव, पाडली, पाण्डेगाँव, पाण्डेटोला ( लालगढ़ ), पाण्डेपुर, पाथड़ी, पानसेमल, पानागढ़, पार्डी बुजरुग, पालगंज, पाली, पालीखुर्द, पिंडरा बाजार, पिठौरागढ़, पिथौराबाद, पिपरा, पिपरिया ( म० प्र० ), पिपला, पिपलोन, पियरोंकलाँ, पियरों ( सरैया ), पियरौंटा, पिलखुवा, पिलवानखेड़ा, पिलानी, पिसनावल, पिसौई, पीयो, पीपरतराई, पीपरी गहरवार, पीपलरावा, पीपलवाड़ा ( बहनोली ), पीपलू, पीपल्या जोधा, पीरपैंती, पीलीभीत, पुंजापुरा, पुआरखेड़ा फार्म, पुखराया, पुरहिया, पुराना भेसाड़ ( काठमांडू ), पुरी, पुरुलिया, पुवायाँ, पूना, पूरे खरकपाणि उपाध्याय, पूरे भिक्षुकराम, पूरे मंसा शुक्ल, पूरे रामबक्स शुक्ल, पूरे लोकई तिवारी, पूर्व पहाड़वन ( नेपाल ), पुलियूर, पूसद, पृथ्वीपुर, पेटवाड़, पेद्दाम्बे, पेरम्बावूर, पेरवाड़, पैंची, पैकेरापुर ( आठगढ़ ), पैरा, पोलावरम्, प्रतापगढ़ ( अलवर ), फकीर कोंडापुर, फत्तेपुर ( जसोदा ), फतेपुर ( फर्रुखाबाद ), फतेपुर ( फैजाबाद ), फतेपुर ( संथाल परगना), फरसगाँव, फरसाहा गाठे, फरह, फरहदा, फरीदाबाद, फरेंदा शुक्ल, फलोदी, फागी, फिल्लौर, फुलवरिया, फुलौत, फैजपुर, फैजाबाद, ंगीनोबाड़ी, बंडोल, बंधावल, बकानी, बकेवर, बकोरिया, बक्सर, बखरी, बखेड़, बगडिया, बजरंगगढ़, बजरंगपुरा ( देवास ), बजौराह, बटपार, बटराली, बड़गाँव, बड़हिया, बड़ैत, बड़ौत, बड़ौदा, बदायूँ, बघराजी, बनद्वार, बनमनखी, बमकोई, बमनईकलाँ, बमस्यूँ, ( अल्मोड़ा ), बमूलिया, बम्बई, बम्बईफोर्ट, बम्हनी बंजर, बम्हनोदा, बरांजपुर, बर, बरवाहा, बरसोबा, बरहलगंज, बरिगमा ( जगनेर ), बरूँधन, बरुई ( जगनेर ), बरेली, बरौड़ा, बलसार, बलुवा कालियागंज, बसंतपट्टी ( मुजफ्फरपुर ), बसौली, बस्ती, बहराइच, बहादुरगंज, बहेर कुँआ कोट, ब्रजनाथपुर, बाँदीकुई, बाँसाकलाँ, बाँसी, बागपिपरिया, बागलकोट, बादीपुरा ( रामपुरा ), बानमौर, बाबूडीह ( राजधनवार ), बामौरकलाँ, बारगढ़, बारनेस, बाराबंकी, बाराचकिया, बाराबाजार, बारू, बालका, बालाघाट, बाली ( आठगढ़ ), बालूघाट ( चुनार ), बालोतरा, बालोन, बावल,


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिघवाँ, बिछौरा, बिजबार, बिजोलिया, बिझरौली, बिराल, बिर्रा, बिलग्राम, बिलासपुर, बिसलपुर, बीकानेर, बीकोर, बीवापुर, बीघी, बीजाभाट, बुधारा, बुधौली, बुद्धूचक, बुरुडगाँव, बुलन्दशहर, बेंगलूरु, बेंता, बेगना, बेगुसराय, बेनकनहल्ली, बेटमा, बेमेतरा, बेलखरा, बेलगाँव, बेलमंडई, बेलापुर, बेलाप्रसादी ( झलारी ), बेवाइका, बेहटा, बेहटाबुजुर्ग ( पड़री लालपुर ), बेहर कुँआ कोट, बैतूल, बैराजी, बोइदा, बोर्टाबाजार, बोथ, बोधन, बोरधरन, बोलमंडई, बोलिया, बौली, ब्यारा, ब्यावर, भंडारज, भंडावद, भगरतोला, भगवतपुर गाठे, भदेवा, भद्रावती, भटगाँव, भटगाई, भत्तिला, भमकी, भमरहा, भमरा, भमरा गाठे, भरथा, भरथौली, भरपूरा, भरफोड़ी, भराम, भरावदा, भरौली, भल्लूपुरे, भल्हीपुर, भवानी, भवानीपुर बाजार, भागलपुर, भाटपचलाना, भानपुर ( बजाग ), भारकच्छ, भारथू ( मोसिमपुर ), भावनगर, भावलाखेड़ा, भिटोनी, भिन्ड, भिलाई बाजार, भिलावट, भीमड़ास, भीर, भीलवाड़ा, भुरका, भुवनेश्वर ( न्यू कैपिटल ), भुसावल, भूज ( कच्छ ), भेंड़, भेंमलोटन, भेंसा ( सुनारी ), भेदा, भेलसी, भीरिया, भोईपुर, भोजड़े, भोट, भोपाल, मंगलगाँव, मंडला, मंडी डबवाली, मकथल, मगरमुँहा, मटुकपुर, मटियारी, मटूँगा ( बम्बई ), मटुकपुर ( शाहाबाद ), मठिला, मडक्किमाला, मढ़न, मण्डी ( हिमाचल प्रदेश ), मथुरा, मदुरा, मद्रास, मधुवन, मनमोहनगाँव, मनावर, मनासा, मनीमाजरा, मनेर, मरगाओं ( गोआ ), मलणगाँव पैनो, मलिक नगर, मसकनवाँ, मसूली-पट्टम्, मसोधा, मोतीनगर, मस्की, मस्तीचक, महथी, महथी धरमचन्द ( नाड़ी खुर्द ), महमदपुर बदल, महादेव समरिया, महाराजपुर ( मंडला ), महीप विगहा, महुजा, महू बाजार, महेशपुर, महेशपुर कलाँ, महेशाकोल, महोली, माँगरोल, माँदलाखेड़ी, माकलूर, माटे, माण्डल ( अहमदाबाद ) माण्डल ( राजस्थान ), माधोपाली, माधोपुर, माधोपुर गोविन्द, मानपुर, मानपुर नगरिया, माना, मान्धाता ओंकारजी, माय्यिल, मारवाड़ा, मराठवाड़ (मुरुम), मारिकुप्पम् मिड़की, मिनावदा, मियाऊ, मिरचैया, मिरजागंज, मिरौना, मिश्र गंगटी, मीकड़गाँव, मीरजापुर, मीरपुर कुटी, मीरपुर कैण्ट, मुंगरा बादशाहपुर, मुंगावली, मुंगेर, मुंजी, मुंडगाँव, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुरादपुर, मुरेना, मुसहरी बाजार, मूँदी, मूंसी, मेंहदावल, मेखलीगंज, मेड़तारोड, मेरठ छावनी, मेरठ शहर, मेल्लमपुडि, मेहरा, मेहसाणा, मैनपुरी, मैसूर, मोंढ़ा, मोइनाबाद, मोकलवाड़ा (पिपरिया), मोख ( यवतमाल ), मोखा, मोड़क, मोतीपुर, मोतीहारी, मोहन्द्रा, मोहम्मदपुर, मछनाई, मौदह चतुर, मौधिया, यमुनानगर, येवला, रक्सौल, रतनपुर ( आठगढ़ ), रतमाल, रनेबेन्नूर, रवकनी, रमिन्द्र बेहड़, रसूलापुर, रहमतपुर, रहली, रहावली उबारी, राँची, राजकोट, राजगढ़ ( अलवर ), राजनाँदगाँव, राजपुर (चम्पारन), राजम, राजमनी, राजहरा, राजापुर मानपुरा, राजावाली, राउरकेला, रानीखेत ( मवड़ा ), रानीपुर, रानीपुल ( सिक्किम ), रानीबाग, रानीला, रामनगर ( नैनीताल ), रामनगर ( पीपरगाँव ), रामनगर ( मुजफ्फरपुर ), रामनगर ( मेरठ ), रामनगर ( वाराणसी ), रामपुर ( उ० प्र० ), रामपुर अहरौली, रामपुर ( कीलपुर ), रामपुर बेहड़ा, रामपुर ( महासू ), रामपुर ( सिकन्दरपुर ), रामपुर हवीब, रामपुर हाट, रामलखनपुर, राय, रायचूर, रायपुर, रावीनूथला, रावेरखेड़ी, रासरसिकपुर, रिखाड़, रीवा, रुड़की, रुद्रनगर, रुस्तमपुर, रूनीजा, रूपसागर, रूपाखेड़ा, रूपाऊ, रूपाहेड़ा, रेंका, रेवार, रेवाहण, रोहट, रोहाना, रोहिणी, रौजा, लंडेपिंड, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मी, लक्ष्मीपुरम्, लखनऊ, लखनपुर ( इटावा ), लखनपुरा ( सुरगुजा ), लखीमपुर, लतिहार, लत्ता, लत्तीपुर, ललोई, लश्कर, लहरी तिवारी डीह, लहान बाजार ( सप्तरी ), लाखागुढ़ा, लाडपुर, लातेहार, लार, लालावदर, लावनी, लासलगाँव, लाहेसरी, लिपनी, लीलवासा, लुआवद, लुगासी, लुधौसी, लुहारी, लोकेपुर, लोनावला, लोहियाई, वडनगर, वड्हल्लांव ( आजमगढ़ ), वडोदरावाड़ी, वधी सलइया, वनगाँव, वनपर्ती, वनिहाड़ी, वड्क्कन्चेरि, वरकाना, वरदाहा, वरसोभा, वरहट, वरियारपुर, वल्लपल्लम्, वासदेवपुर, वाराणसी, वाल्टेयर, वासो, विजयनगर, विजयवाड़ा, विथैया, विदिशा, विलायतकलाँ, विलारी, विशाखापटनम्, विश्वनाथपुर ( डेढ़गाँव ), विश्वम्भरपुर, विष्णुपुर, विष्णुपुरवृत्त, विसुनपुर, वीछी, वीजापुर, वीरसिंहपुर, वीवापुर, वेंकटापुरम्, वेंपल्लि, वेरावल, वेलेर, वेल्लतूर, वैजापुर ( मराठवाड़ा ), वैकुण्ठ बाजार, वैरिहवा, वैसाडीह, व्यारा, शंकरविद्या, शंखलपुर, शंभुगढ़, शकूरवस्ती, शरफुद्दीनपुर, शर्मिष्ठापुर, शहजादी, शहरना, शहीदगंज, शाजापुर, शामली, शाहनगर, शाहपुर मगरौन, शाहपुरा भिटोनी, शिरपुर ( आकोला ), शिलकोट, शिवगंज ( एरिनपुरा ), शिवपुरी ( म० प्र० ), शिवनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतलगंज ग्रेण्ट, शीराठोन, शेकोली, शेगाँव, शेरकोट, शेरमुक्का, शोलापुर, शोहरतगढ़, श्योपुर बड़ोदा, श्रीक्षेत्र-नागझरी, श्रीगंगानगर, श्रीनगर, श्रीनहर ( पुरी ), श्रीरामपुर ( मुंगेर ), संगम, संगमनेर, संगरिया, संगीला ( श्यामनगर ), सखवा, सखा, सठियाँव, सड़रा ( मदनेश्वर स्थान ), सढ़वारा, सणसोली, सणाथा, सतारा रोड, सतोहा, सत्यनारायण बुझाड़ा, सनकुई, सनावल, सपताचक, सफेरा गुवार, समस्तीपुर, समाना, समी, सम्बलपुर ( देवरिया ), सरई ( सीधी ), सरखेज, सरडीहा, सरवा, सराय भावसिंह, सरिया, सरोनी बाजार, सल्का, सवलपुर कलाँ, सवाई माधोपुर, ससहौल, सहजौरा, सहसन, सहसराम गाठे, सहसराम टोला, सहसराय, सहार, सहारनपुर, सहिभलपुर, साँगली, सांडिया, साइन, साकरिया, सागर ( म० प्र० ), सागर ( शिमोगा ), साङ्गरेडी, सानी उडयार, सानोयनाती, सामोथी, सायर, साँवरा ( मचनपुर ), सावेतवाड़ी, साहनपुर, साहाज बहाल, साहिबाबाद, साहेबगंज, सिंघोलाग्राम, सिंहेश्वर, सिकन्दरपुर, सिकन्दराबाद, सिरजगाँव बंड, सिरसिल्ला, सिलपटी, सिलिगुड़ी, सिवनी, सिवनी पेन्डरा, सिसरेगा, सिहौरा ( सिवनी ), सीकर, सीढ़ल, सीतापुर, सीतामढ़ी, सीधपकला, सीधमुख, सीमलखेड़ी, सीरहा, सीसामऊ, सुगिरा ( हमीरपुर ), सुजानवन, सुन्दरगढ़ ( उड़ीसा ), सुन्दरपुर, सुम्बुक ( सिक्किम ), सुरत, सुलह, सुल्तानपुर ( उ० प्र० ), सुहरमाव, सुही सरैया, सूरजपुर, सेनापतमण्डी ( रोहतक ), सेमराडीह, सेवकरनपुर, सैदपुर ( गाजीपुर ), सैदपुर ( भागलपुर ), सैमरा, सैलवारा, सोंढ़, सोडपुर, सोंदा, सोन, सोनगाँव ( अहमदाबाद ), सोना साँगवी, सोनूपुर ( दरभंगा ), सोयतकलाँ, सोहांस, सौंदला, सौण्डा, स्वामीनारायण छपिया, हंसपुरा ( जगनेर ), हटनी, हथियर, हरकिसुनपुर, हरजीपुर, हरदा, हरदी, हरदी टीकर, हरदोई, हरपालपुर, हरसिंहपुर, हरसौली, हरिद्वार, हरिपुर, हरिहरपुर, हलिया, हवीबपुर, हवेरी, हसनगंज, हसुवा, हस्सन, हाँसी, हाजीपुर, हातनूर, हाथिया, हिण्डौन, हिनौतिया, हिमगिर रोड, हिवरी, हीथया, हीमा, हीरपुर, हैदरगढ़, हैदरनगर, हैदराबाद, होरमा, होशियारपुर।

नाम-जप-विभाग—**'कल्याण' कार्यालय, गोरखपुर**

## पाठ्यक्रमसे राम-कृष्णका बहिष्कार !!

ऐसा समाचार छपा है कि उत्तरप्रदेशके शिक्षा-विभागने सरकारी पाठ्यक्रमकी पुस्तकोंमेंसे उस अंशको निकाल देनेका आदेश दिया है जिनमें 'राम' और 'कृष्ण'का उल्लेख है। इस बातको माननेको जी नहीं चाहता; ऐसा तो मुसल्मानी जमानेमें भी ( एक औरंगजेबको छोड़कर ) नहीं हुआ। राम और कृष्णको सनातनी हिन्दू भगवान् मानते हैं। परंतु भगवान् न माननेवाले भी उन्हें महापुरुष तथा उनके जीवनको परम आदर्श तो मानते ही हैं। भारतके प्राचीन इतिहाससे राम और कृष्णको निकाल दिया जाय तो फिर बचता ही क्या है ? इस प्रकारकी चीजें करोड़ों देशवासियोंके हृदयपर तो भीषण आघात पहुँचाती ही हैं, देशकी प्रगति तथा उत्थानमें भी सर्वथा घोर बाधक हैं। इस मनोवृत्ति और प्रवृत्तिका शीघ्र-से-शीघ्र रुक जाना परमावश्यक है। देशवासी मात्रको इसका घोर विरोध करना चाहिये।

## 'रामरक्षाकवच'की सिद्धिकी विधि

'कल्याण'के गताङ्कमें 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें रामरक्षास्तोत्रके सम्बन्धमें एक घटना छपी है। उस स्तोत्रकी सिद्धिकी विधि जाननेके लिये बहुत-से पत्र आये हैं। अतएव यहाँ उसकी विधि लिखी जाती है।

नवरात्रमें प्रतिदिन नौ दिनोंतक ब्राह्म मुहूर्तमें नित्यकर्म तथा स्नानादिसे मुक्त हो शुद्ध वस्त्र धारणकर कुशाके आसनपर सुखासन लगाकर बैठ जाइये। भगवान् श्रीरामके कल्याणकारी स्वरूपमें ध्यान एकाग्र करके इस महान् फलदायी स्तोत्रका कम-से-कम ग्यारह बार और यदि यह न हो सके तो सात बार नियमित रूपसे प्रतिदिन पाठ कीजिये। आपकी श्रीरामकी शक्तियोंके प्रति जितनी अखण्ड श्रद्धा होगी, उतना ही फल प्राप्त होगा। यद्यपि 'रामरक्षाकवच' कुछ लम्बा है, पर इस संक्षिप्त रूपसे भी काम चल सकता है। पूर्ण शान्ति और विश्वाससे इसका जाप होना चाहिये, यहाँतक कि यह कण्ठस्थ हो जाय।

( डा० ) रामचरण महेन्द्र ( एम्० ए०, पी-एच्० डी० ) नयापुरा, पो० कोटा, राजस्थान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## भागवतसे प्राणरक्षा

सन् १९६१ के जुलाई मासमें हैदराबाद ( आन्ध्र-प्रदेश ) में वहाँ भक्तोंके विशेष आग्रहसे काशीस्थ हथियाराम मठके अध्यक्ष महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी बालकृष्ण यतिजी महाराजकी भागवत-कथा और गीता-प्रवचनसे प्रभावित होकर उन्हींके तत्त्वावधानमें हैदराबादके घांसीबाजारके वस्त्र-व्यापारियोंने हैदराबादमें गतवर्ष सितम्बरमें विश्वकल्याणार्थ 'श्रीविष्णुमहायज्ञ' का आयोजन किया था। उसके आचार्यत्वके लिये मैं काशीसे १० सितम्बर १९६१ को 'काशी-बम्बई एक्सप्रेस' से फर्स्टक्लासमें रवाना हुआ। मैं कहीं भी बाहर जाता हूँ तो मेरे साथ बहुत-सी पुस्तकें होती हैं, जिनके लिये एक स्वतन्त्र बक्स होता है। पुस्तकोंका उपयोग मैं रेलमें भी किया करता हूँ। मेरे डिब्बेमें फर्स्ट क्लासकी एक ही सीट थी। मैं डिब्बेमें एकाकी ही था। बड़ी शान्तिसे ट्रेनमें पुस्तक पढ़ रहा था।

मुझे भलीभाँति स्मरण है कि रात्रिको लगभग बारह बजे जब गाड़ी कटनी स्टेशनसे रवाना हुई, तो उस समय मन्द-मन्द रिमझिम वर्षा हो रही थी, जो ट्रेनकी द्रुत गतिके कारण वायुसे टकराती हुई ट्रेनके झरोखोंमें प्रवेशकर मेरे मस्तिष्क-प्रदेशको विशेषरूपसे स्पर्श करने लगी, जिससे मुझे झपकी आ गयी। डेढ़ बजे जबलपुर स्टेशनपर आवश्यकतासे अधिक मेरे डिब्बेका दरवाजा खटखटाया गया, जिससे मेरी नींद उचट गयी। मेरे डिब्बेके सामने दो कथित सभ्य नवयुवक खड़े थे, जो मेरे डिब्बेमें घुसना चाहते थे। मैंने बार-बार मना किया कि 'इसमें सिर्फ एक ही सीट है, आपलोग दूसरे डिब्बेमें जायँ।' वे बोले—'हमारे पास फर्स्टक्लासकी टिकट है। फर्स्टक्लासके दूसरे डिब्बोंमें ज़मीनमें खड़े होनेतककी भी जगह नहीं है। बहुत जरूरी कार्यसे सिर्फ दो ही स्टेशन जाना है। आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं देंगे। बर्थके नीचे जमीनपर बैठ जायँगे।' मैंने दोनोंकी नम्रतापूर्ण बातें सुन डिब्बेका दरवाजा खोल दिया और वे दोनों नवयुवक डिब्बेमें घुस गये। उनमेंसे एकने एक तौलिया जमीनपर बिछा दिया और उसपर दोनों बैठ गये। उनके पास बिस्तर, बक्स आदि कोई सामान नहीं था। सिर्फ एकके पास चमड़ेका एक छोटा-सा 'बेग' था।

गाड़ी जबलपुरसे चल पड़ी। मैं लाइट बंद करवाकर निश्चिन्त हो अपनी सीटपर लेट गया। सम्भवतः एक घंटा बीता होगा कि उन दोनों नवयुवकोंकी धीमी-धीमी बातोंकी सुरसुराहटसे और बिजलीकी बत्ती जलानेसे मेरी नींद उचट गयी। मैं ज्ञानपूर्वक अचेतन-सा पड़ा बातें सुनने लगा। एक बोला—'लालाजीके बक्समें बहुत वजन है। मालूम होता है, सोने-चाँदीके व्यापारी हैं। बक्समें सोने-चाँदीके सिक्के होंगे, जिन्हें लेकर लालाजी व्यापारार्थ बंबई जा रहे हैं।' दूसरेने कहा—'देखते क्या हो, जल्दीसे बेगमेंसे 'छूरा' निकालकर इनका काम तमाम करो और बक्स लेकर अगले स्टेशनपर उतर भागो।' पहला बोला—'जल्दी मत करो, समझ-बूझकर मारा जाय। एक बार हमलोगोंसे नासमझीके कारण एक आदमीकी हत्या हो गयी थी, किंतु उसके पास कुछ नहीं निकला। इस बार फिर वैसी ही भूल न हो जाय।'

मैं पड़ा-पड़ा यह भयंकर विचार-परामर्श सुन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया और तरह-तरहकी बातें सोचने लगा।

**'यं हि रक्षितुमिच्छति भगवान् तं सद्बुद्ध्या संयोजयति'**

—इस न्यायके अनुसार भगवत्कृपासे मेरी बुद्धि भगवन्नाम-स्मरणकी ओर प्रवृत्त हो गयी और मैं अशरणशरण भगवान् वासुदेव ( श्रीकृष्ण ) का श्रद्धा-भक्तिसे मन-ही-मन स्मरण करने लगा और गीताके **'यो मां पश्यति सर्वत्र॰'** ( ६। ३० ) तथा **'तेषामहं समुद्धर्ता॰'** ( १२। ७ ) और भागवतके **'संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना॰'** ( ४। ९। ६ ), **'स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्॰'** ( ५। १८। ९ ), एवं **'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** ( ८। १०। ५५ ) आदि श्लोक गुनगुनाने लगा।

भगवन्नामसूचक गीता और भागवतके श्लोकोंको बार-बार दोहरानेसे चित्तकी व्याकुलता कुछ कम हुई और मुझमें आत्मबल, ढाढ़स बँधने लगा। मैं बड़ी निष्ठासे मन-ही-मन भवभयहारी भगवान्की गुहार करने लगा। इसी बीच, एक नवयुवकने मेरा अङ्ग स्पर्श करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोरसे आवाज दी—'लालाजी उठिये।' मैं उठ बैठा और मैंने उनसे कहा—'कहिये, क्या बात है ?' वे बोले—'आपका बक्स बहुत वजनी है, क्या सोने-चाँदीके सिक्के बंबई ले जा रहे हैं ? बक्सकी ताली दीजिये, हम खोलकर देखना चाहते हैं।' मैंने कहा—'ताली लेनेसे पूर्व मेरी बातें ध्यानसे सुन लें। पीछे आप चाहेंगे तो मैं स्वयं ही बक्स खोलकर दिखला दूँगा।' एकने कहा—'अजी, ये सीधे ताली नहीं देंगे, वेगसे छूरा निकालकर इनका काम तमाम कर दो, रास्ता साफ हो जायगा।' दूसरेने कहा—'पहले लालाजीकी बात सुन लो, यह हमारे पंजेमें जकड़े हुए हैं। कहाँ भागे जा रहे हैं ?' फिर दोनों बोले—'लालाजी ! आप जो कहना चाहते हैं, कहिये।'

मैंने कहा—'मैं लाला ( सेठ ) नहीं, ब्राह्मण हूँ। और मेरे बक्समें सोने-चाँदीके सिक्के नहीं, बल्कि उनसे भी अधिक मूल्यवान् सिक्के हैं, जो आपके कामके नहीं हैं। मैं बम्बई नहीं, हैदराबाद दक्षिण यज्ञ कराने जा रहा हूँ। आपलोग भ्रमवश मेरी हत्या करके केवल पश्चात्तापके भागी बनेंगे, हाथ कुछ न लगेगा।' मैंने बक्सकी ताली एक नवयुवकके हवाले कर दी। उसने बक्स खोलकर देखा तो उसे सबसे ऊपर गीताप्रेस, गोरखपुरकी मुद्रित सचित्र सजिल्द मोटे अक्षरवाली मूलमात्र छः रुपयेवाली श्रीमद्भागवत और काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालयके पुराण-विभागाध्यक्ष पं० श्रीराममूर्ति शास्त्रीद्वारा रचित सचित्र और सजिल्द दस रुपयेवाली 'श्रीमद्भागवत-कथा ( साप्ताहिक )' की पुस्तक दिखायी दी। पश्चात् उस नवयुवकने बक्सको ऊपरसे नीचेतक टटोलकर देखा, तो उसमें पुस्तकें भरी दिखलायी दीं। लज्जित और संकुचित हो वह अपने साथीसे बोला—'इसमें तो सभी धार्मिक पुस्तकें हैं। निश्चय ही ये पण्डित हैं। इन्हें व्यर्थ परेशान होना पड़ा, अतः क्षमा माँगकर हमें अगले स्टेशनपर उतर जाना चाहिये।' दोनोंने अपनी गलतीके लिये बारंबार क्षमा माँगी। मैंने हँसते हुए कहा—'क्यों भाई ! मेरी बातपर ध्यान दिया या नहीं ? मैंने कहा था कि बक्समें सोने-चाँदीसे भी मूल्यवान् सिक्के हैं। यदि मेरे पास सांसारिक सिक्के होते तो आज मेरी जान खतरेमें थी; किंतु मेरे भागवतरूपी सिक्के देखते ही आपलोगोंके कुत्सित विचार सात्त्विक बन गये।'

दोनों नवयुवक मेरी बातें सुनते रहे। निरुत्तर हो संकोचके साथ बोले—'पण्डितजी ! हमें कुछ उपदेश दीजिये।' मैंने पूछा—'आपलोग किस जातिके हैं ?' उन्होंने कहा—'यवन।' मैंने पूछा—'लोभवश किसीकी जान ही लेना जानते हैं या जिलाना भी ?' उत्तरमें उन्होंने कहा—'जिलानेकी ताकत तो खुदामें ही है, हमलोगोंमें नहीं।' मैंने कहा—'यदि जिला नहीं सकते तो किसीको मारनेका भी अधिकार नहीं है। अतः खुद खुदा बनकर पाप न बटोरिये। किसीका उपकार नहीं कर सकते तो किसीकी हानि भी न किया करें। प्राणिमात्रपर दया और प्रेमभाव रखते हुए सबको अपने-जैसा समझें। लूट-पाट एवं जीवहत्या-जैसे जघन्य पापोंसे दूर रहकर सर्वदा मानवताका आदर करें। यही मेरा उपदेश है।'

दोनों नवयुवक नीची गर्दन किये विनम्र भावसे बोले—'पण्डितजी ! खुदाकी कसम, हमलोग आजसे आपके बतलाये रास्तेपर चलेंगे और जीवनभर लूट-पाट और कतल नहीं करेंगे।' इतनेमें ही 'पिपरिया' स्टेशन आ गया। वे दोनों नवयुवक मुझको हाथ जोड़कर स्टेशनपर उतरकर चले गये।

उनके जानेके बाद देरतक मेरे मनमें तरह-तरहके विचार उठते रहे। अन्तमें इसी निष्कर्षपर पहुँचा—'जो मनुष्य 'वासुदेवः सर्वमिति' ( गीता ७। १९ ) का सिद्धान्त मान भगवान्‌पर पूर्ण भरोसा रखते और सदा उनका स्मरण-चिन्तन करते हैं, उनकी वे सर्वत्र रक्षा करते हैं। मेरे पास भगवत्स्वरूप 'भागवत'की जो पुस्तक थी, वही मेरे लिये हितकर सिद्ध हुई, जिसको देख उन कलि-कलुषित आततायी नवयुवकोंके विचारमें अद्भुत परिवर्तन हो गया, जिससे मेरे प्राणोंकी रक्षा हुई।

क्या अब भी 'कलौ भागवती वार्ता', 'कलौ भागवतं स्मृतम्' की सत्यताके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता है ?

—याज्ञिक-सम्राट् श्रीवेणीराम शर्मा गौड़, वेदाचार्य

( २ )

## मर जाता, तब तो सदाके लिये अमर ही हो जाता

कई वर्षों पहलेकी बात है। भगवती कामाख्यादेवीके दर्शनार्थ मैं गौहाटी ( आसाम ) में अपने गाँवके एक परिचित सज्जनके यहाँ ठहरा हुआ था। एक दिन एक आदमीने आकर मेरे उन परिचित सज्जनसे कहा—'आपको पता तो होगा ही, मेरी दूकान तो उस दुष्टने कुर्क करवा दी।' इसपर मेरे परिचित भाईने उनसे कहा—'रुपये तो आप दे चुके थे न ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा—'जी हाँ, रुपये तो मैंने दे दिये थे, पर उस समय हैंडनोट वापस नहीं लिये थे। विश्वास था ही; सोचा, पीछे ले लेंगे। मेरे सीधेपनका यह नतीजा है कि दस हजार रुपयेकी नालिश करके मेरी दूकानतकको कुर्क करवा दिया गया। मैं कुछ रुपयोंकी आवश्यकता होनेसे आपके पास आया हूँ।' उनकी यह बात सुनकर मेरे परिचित सज्जन मुझसे कहने लगे—"देखिये, पण्डितजी! हमलोग पूरी तरह जानते हैं कि रुपये दे दिये गये हैं। खुद महाजनका एक नौकर ही उस दिन मुझसे कह रहा था कि 'हमारे मालिक बड़े बेईमान हैं, हमलोग क्या करें।' ये बनारसके रहनेवाले बड़े ही सज्जन हैं। इनका नाम श्री·······गुप्त है।" इस प्रकार मुझसे कहकर उनसे कहा—'गुप्तजी! अभी आप जाइये, हम यथाशक्ति अवश्य आपकी मदद करेंगे। इस समय इन पण्डितजीके साथ बाबा उमानाथजीके दर्शन करने जा रहे हैं। आप शामको अवश्य मिलियेगा।' इसपर गुप्तजीने कहा 'चलिये, हम भी चलते हैं।' तदनन्तर हम तीनों श्रीमहादेवजीका नाम लेकर चल पड़े। ब्रह्मपुत्रमें नावपर बड़ी भीड़ थी, मल्लाह डर रहा था। पर महादेवजीके दर्शनार्थ जानेवाले यात्री निडर-से थे।

कुछ देर नावके चलनेपर गुप्तजीने चुपकेसे मेरे कानमें कहा—'पण्डितजी! हाथमें चाँदीका जलपात्र लिये जो दीख रहे हैं, यही मेरे वे महाजन बाबू हैं और पीली साड़ी पहने गोदमें बालक लिये जो देवी बैठी हैं, वे इनकी पत्नी हैं।' महाजन बाबूका शीलस्वभाव जाननेके लिये मैंने उनसे पूछा—'आप क्या नित्य महादेवजीका पूजन करने जाया करते हैं?' उन्होंने गुप्तजीकी ओर देखकर अभिमानसे कहा—'नहीं, यह तो एक मुकदमेमें हमें दस हजारकी डिक्री मिली है, उसीके उपलक्ष्यमें हम सपरिवार बाबाका पूजन करने जा रहे हैं।' मैं चुप रह गया।

ब्रह्मपुत्रकी धारामें यह सुन्दर पहाड़ कितना आनन्द दे रहा है, मैं यह सोच रहा था कि नाव पहाड़के समीप पहुँच गयी। लोग उतरनेके लिये जल्दी करने लगे। संयोगवश महाजन बाबूकी पत्नीका पैर फिसल गया और वे नीचे गिर गयीं। इसी बीच बच्चा उनके हाथसे छूटकर जलमें गिर पड़ा और बीच धारमें वह चला। माता-पिता रोने-चिल्लाने लगे, परंतु किसीसे कुछ करते न बन पड़ा। पर लड़का जिस समय गिरा था, उसी समय उसके साथ ही एक युवक ब्रह्मपुत्रमें कूद गया था। कुछ ही क्षणोंमें कुछ दूर जलमें देखा गया कि एक तरुण अपने एक हाथसे पानी मार रहा है और दूसरे हाथसे ऊपर लड़केको थामे हुए है। वह अत्र-तत्र डूबनेकी स्थितिमें है, परंतु किनारेकी ओर जानेके लिये जीतोड़ कोशिश कर रहा है।

संयोगवश एक मल्लाहकी नजर उसपर पड़ी, वह तुरंत नाव लेकर वहाँ पहुँच गया और लड़केसहित उस युवकको नावपर चढ़ा लिया। इतनेमें कई नाविक और भी पहुँच गये। नाव किनारेपर आ लगी। सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गये। उन दोनोंको बचानेके लिये डाक्टरोंने उपचार शुरू कर दिये। दोनोंके पेटमें जल बहुत कम गया था, अतः उपचार किये जानेपर दोनों ही बहुत शीघ्र स्वस्थ हो गये।

महाजन बाबू और उनकी पत्नी दोनों उस साहसी वीर युवकको बार-बार धन्यवाद दे रहे थे। वह युवक वे गुप्तजी ही थे, जिनपर इन महाजनने झूठा मुकदमा चलाकर डिक्री करवायी थी। महाजनकी पत्नीने अपने पतिसे कहा—'देखिये! ऐसे परोपकारी आदमीका आपने सर्वस्व हरण कर लिया। अब आप डिक्रीके रुपये तो छोड़ ही दीजिये, साथ ही पाँच हजार रुपये पुरस्कारके और दीजिये। इन्होंने अपने प्राण खतरेमें डालकर बच्चेकी जान बचायी है। हमलोग इस परोपकारी युवकसे इतना देकर भी उऋण नहीं हो सकते।'

उनकी यह बात सुनते ही हमारे गुप्तजी उनसे बोले—'देवीजी! मैंने पुरस्कार पानेके लिये यह काम नहीं किया है।' इसके पश्चात् महाजन बाबू तथा उनकी पत्नी दोनों ही रुपये लेनेके लिये गुप्तजीसे बड़ा आग्रह करने लगे, परंतु उन्होंने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया। इसके बाद महाजन बाबू डिक्रीके रुपये छोड़ देनेका विचार लोगोंको सुनाकर अपने घर लौट गये। हम तीनों भी लौटकर अपने स्थानकी ओर चले। रास्तेमें मैंने गुप्तजीसे पूछा—'ऐसे बेईमानके लिये आपने यह काम क्यों किया?' वे बोले—'बेईमान तो वह है, उसका लड़का तो बेईमान नहीं है।' इसपर मैंने कहा—'अगर आप मर जाते?' उन्होंने कहा—'मर जाता तब तो जगत्में यश लेकर सदाके लिये अमर हो जाता। मानव-जन्म सफल हो जाता। मनुष्यका प्रधान धर्म ही है परोपकार करना।'

—पं० रामविलास मिश्र कथावाचक

( ३ )

## व्यापारीकी ईमानदारी

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है। कच्छ माँडवीमें एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारी रहते थे। 'ईमानदारी हमारा मुद्रालेख है' ये शब्द उन्होंने केवल तख्तीपर नहीं खुदवा रक्खे थे वरं उनके हृदयमें अङ्कित थे। माँडवीभरमें उनकी सचाईकी प्रसिद्धि थी। उनके कपड़ेकी दूकान थी। एक बार उन्होंने जहाजी मार्ग-द्वारा जामनगरसे रेशमी साड़ियाँ मँगवायीं। जहाज पहुँच गया, पर रसीद ( बिलटी ) अभी नहीं पहुँची। साड़ियोंके ग्राहक आ जानेके कारण इन्हें साड़ियोंकी जरूरत हो गयी। इन्होंने अपने मुनीमके हाथ कस्टम अफसरपर पत्र लिख दिया। सरकारी अधिकारियोंपर भी इनके सत्य आचरणकी छाप थी, अतः बिना ही रसीदके माल छोड़ दिया गया। उस समय बाहरसे आनेवाले मालपर जकात लगती थी। रेशमी कपड़ेपर जकात ज्यादा थी, सूतीपर कम। इसलिये जकातके पैसे भरते समय मुनीमने पैसे बचानेकी नीयतसे रेशमीके बदले सूती साड़ी लिखवा दी और पैसे भरकर वह साड़ियाँ दूकानपर ले आया। मालिकने जकातके पैसे कम लगे देखकर बात पूछी। मुनीमने कहा—'मैंने पैसे बचानेके लिये सूती साड़ी लिखवा दी थी।' इसको सुनकर मालिक खुश तो हुए ही नहीं, उलटे नाराज होकर बोले कि 'अब आगेसे ऐसी बेईमानी करोगे तो तुमको दूकानसे निकाल दिया जायगा। पैसोंकी अपेक्षा अपनी सचाई तथा इज्जतका मूल्य बहुत अधिक है।' मुनीमने क्षमा माँगी। मालिक जकातकी रसीद लेकर तुरंत जकात-अफसरके पास गये और सारी बातें समझायीं। सूती कपड़ेसे रेशमीकी जकात चौगुनी थी। उन्होंने पूरी जकात भर दी। अफसर इनकी ऐसी ईमानदारी देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और मन-ही-मन कहने लगे—'काश! भारतके सभी व्यापारी ऐसे ही ईमानदार होते तो!' ( अखंड आनंद ) —जैनधर्मी

( ४ )

## पेट-दर्दकी चमत्कारी दवा

करीब आठ साल पहलेकी बात है। मैं माल खरीदनेके लिये मद्रासकी ओर गया हुआ था। सेलममें मेरे पेटमें दर्द हो गया और वह स्थायी-सा बन गया। मैंने जोधपुर लौटकर करीब नौ महीनेतक वैद्यों-डाक्टरोंके इलाज करवाये। पर जरा भी लाभ नहीं हुआ। डाक्टरोंने जलोदरकी बीमारीकी आशङ्का कहकर रोगको खतरनाक बतलाया। पैसेकी तंगी थी, मैंने इलाज छोड़ दिया। तदनन्तर दर्द बहुत बढ़ गया। मैंने सोच लिया अब भगवान्‌के सिवा इस दर्दको दूर करनेवाला और कोई नहीं है। मैंने एक दिन घरमें ऊपर जाकर एक घंटे नाम-जप किया। अन्तमें भगवान्‌से कातर प्रार्थना की। फिर नीचे आनेपर भगवत्प्रेरणासे मेरी इच्छा बाजार जानेकी हुई और मैं बाजारकी ओर चल दिया। मैं दर्दके मारे पेटपर हाथ फेरता जा रहा था। राह चलते एक अनजान व्यक्तिने पूछा—'सेठजी! पेटपर हाथ क्यों फेर रहे हैं?' मैंने नीचे बैठकर उसे सारी घटना सुनायी। वह बोला—'मैं दवाई बता रहा हूँ। सात दिनोंतक सेवन करोगे तो अच्छे हो जाओगे।' मैंने कहा—'मैं पैसेवाली बहुत दवाइयाँ करके हैरान हो गया हूँ।' उसने कहा—'मैं बिना पैसेकी दवा बता रहा हूँ।' मेरे फिर पूछनेपर उसने कहा—'मोठको पीसकर आटा बना लीजिये। फिर उस आटेकी एक मोटी रोटी बनाकर एक तरफसे सेंक लीजिये। रोटीकी कच्ची ओर तिलका तेल चुपड़कर पेटपर बाँधकर सो जाइये। फिर चार बजे उठकर करीब आध पाव गो-मूत्रका सेवन कीजिये। तदनन्तर गेहूँ आधा सेर चक्कीमें पीस लीजिये। यों सात दिनोंतक करनेपर भगवत्कृपासे आप ठीक हो जायँगे।' इतना कहकर वह चल दिया।

मैंने घर आकर पत्नीसे यह बात कही। उनको भरोसा नहीं हुआ, इससे एक दिन और निकल गया। दूसरे दिन मोठ पिसवाकर उसके आटेकी मोटी रोटी बनवायी और एक ओर तिलका तेल चुपड़कर उसे बाँधकर सो गया। चार बजे उठा और घनश्यामजीके मन्दिरके समीप जाकर ताजा गो-मूत्र गिलासमें लेकर पी गया। फिर घर आकर चक्कीमें गेहूँ पीसना चाहा पर कमजोरीके कारण अकेलेसे चक्की चल नहीं पायी। तब पत्नीको साथ बैठाकर पीसा। शामको शौचके बाद चार आने लाभ मालूम हुआ। चार दिनोंमें मेरी सारी बीमारी जाती रही और भगवान्‌की कृपासे फिर अबतक उसका कहीं कोई नाम-निशान भी नहीं है।

—गोपीकिशन बिड़ला, डागा बाजार, सारडाकी गली, जोधपुर

( ५ )

## आदर्श परोपकार और कर्तव्य-पालन

गत मई मासमें गिरीडिहके मकनपुर मुहल्लेमें एक धोबीके मकानमें एकाएक उस समय आग लग गयी, जब वह पेट्रोलसे गरम कपड़े धो रहा था। अग्निने तुरंत प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। गिरीडिह पुलिसके हवलदार श्रीशीघ्रनारायण सिंह अग्निकी ज्वालामें बड़ी दिलेरीके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूद पड़े और घरके अंदरसे एक बालकको आगकी लपटोंमेंसे बाहर निकाल लाये । पुलिस हवलदार और बालक दोनों जलकर घायल हो गये, लेकिन हवलदारकी हिम्मतका उपस्थित जनतापर यह प्रभाव पड़ा कि धोबीकी शेष चीजोंको जलनेसे लोगोंने बचा लिया । घायलोंको चिकित्साके अस्पतालमें भेज दिया गया । —श्रीवल्लभदास बिन्नानी

( ६ )

## संतकी दयालुता

चित्रकूटमें श्रीरामनारायणजी ब्रह्मचारी नामक एक प्रसिद्ध संत हो गये हैं । उनके जीवनकी दो छोटी-छोटी घटनाएँ हैं, जिनसे संत-हृदयका परिचय मिलता है । जिस समयकी घटनाका वर्णन है, संतजी चित्रकूटमें राम-शय्या ( बिहाराग्राम ) के पास कुटी बनाकर रहते थे । बादमें संतजी सिरसावन चले गये थे ।

कुटीमें संतजी और उनका एक ब्रह्मचारी शिष्य, दो व्यक्ति निवास करते थे । चैत्र-वैशाखके दिन थे । संतजीने पानी पीनेके लिये एक छोटी-सी कुइयाँ ( मिट्टीका कच्चा कुआँ ) खोद रक्खा था । फसल कटना आरम्भ हो गया था । बिटाराके कुछ ब्राह्मणोंका खलियान कुटीसे थोड़ी ही दूरपर रहता था । कुछ ब्राह्मण आये और खलियान रखनेकी जगह साफ करने लगे । तत्पश्चात् खलियानकी लिपाई प्रारम्भ हुई । खलियान गोबरसे लीपा गया । सारा पानी आया संतजीकी कुइयाँसे । और पानी लेते समय ब्राह्मणोंने बड़ी असावधानी बरती । फलस्वरूप कुइयाँका सारा पानी गोबरमिश्रित हो गया । पीने योग्य बिल्कुल न रह गया । शिष्य ब्रह्मचारीने संतजीसे ब्राह्मणोंके कारनामे सुनाये । सुनकर संतजीने कहा—'ब्राह्मणोंसे कुछ न कहना, दूसरी कुइयाँ तैयार कर लो ।' और उसी गरमीमें संतजी और उनके ब्रह्मचारी शिष्यने दूसरी कुइयाँ खोदकर तैयार कर ली । कुछ दिनों पश्चात् उस दूसरी कुइयाँमें भी बरोंने अपना छत्ता बना लिया । और पानी भरते समय उड़कर काटने लगीं । ब्रह्मचारी शिष्यने फिर संतजीसे कहा, सुनकर संतजीने कहा—'उनको मत छेड़ना, फिर दूसरी कुइयाँ तैयार कर लेंगे ।' और संतजी तथा उनके ब्रह्मचारी शिष्यने उसी गरमीमें तीसरी कुइयाँ खोदकर तैयार कर डाली ।

संतजी किसीसे कुछ लेते नहीं थे, सबसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक व्यवहार करते थे । एक बार एक धनी सेठ आये और संतजीसे कुछ ग्रहण करनेका आग्रह करने लगे । संतजी अत्यन्त नम्रतापूर्वक यही कहते रहे—'किसी निर्धनको दे दो, भाई ! मेरी तो सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं ।' अन्तमें सेठने भूमिपर लेटकर प्रार्थना की, संतजी भी उसी प्रकार नम्रतापूर्वक भूमिपर लेटकर इन्कार करते रहे । दृश्य दर्शनीय था* । ——शिवगणेश पाण्डेय बी० ए०

# भूल-सुधार

( १ ) 'कल्याण' के गत सातवें अङ्कमें पृष्ठ १०४५ पर 'सच्ची सहायता भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है' शीर्षक लेखके दूसरे कालमकी १६ वीं, १७ वीं पङ्क्तिमें छपा है—'पहले दुर्योधन आये थे, इसलिये पहले माँगनेका अधिकार दुर्योधनको है ।' इसके स्थानपर यों पढ़ना चाहिये—'शास्त्रकी आज्ञा है कि पहले बालकोंको ही उनकी अभीष्ट वस्तु देनी चाहिये, अतः अवस्थामें छोटे होनेके कारण पहले अर्जुन ही अभीष्ट वस्तु पानेके अधिकारी हैं ।' इसीके अनुसार लेखमें आगे भी यही समझना चाहिये कि—'पहले अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णको माँगा है, पीछे दुर्योधनने नारायणी सेना ली है ।'

प्रमादवश भूलसे उल्टा छप गया, इसके लिये क्षमा-प्रार्थना है और कई विद्वान् पाठकोंने भूल सुझायी—इसके लिये उन्हें कृतज्ञतापूर्ण साधुवाद !

( २ ) 'कल्याण' के गत अगस्तके आठवें अङ्कके पृष्ठ ११११८ पर 'विनय' शीर्षक एक कविता छपी है, उसकी ग्यारहवीं पङ्क्तिमें भ्रमवश पहला शब्द 'विनय' छपा है, उसकी जगह 'निज' शब्द पढ़ना चाहिये । इस भूलके लिये लेखक महोदयसे क्षमा-प्रार्थना है ।

सम्पादक—'कल्याण'

* श्रद्धेय ब्रह्मचारीजी सचमुच आदर्श संत थे । किसीसे कुछ लेते नहीं थे । आवश्यक अन्न खेती करके उपजा लेते थे । उसीसे खाने-पीने, अतिथि-सत्कार करने तथा कपड़े-लत्तेका काम चलाते । बड़े ही त्यागी, संयमी और ज्ञानी महात्मा थे ।—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सन् १९६२में अबतक प्रकाशित सत्रह नयी पुस्तकें

१. **भ्रमर-गीत**—ले० व्रजसाहित्यके प्रसिद्ध विद्वान् पं० श्रीजवाहरलालजी चतुर्वेदी, पृ० ४२०, मू० १.५०
२. **आशाकी नयी किरणें**—ले० डा० रामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पृष्ठ-संख्या ३१२, मूल्य .... .... .... .... १.२५
३. **मनुष्यका परम कर्तव्य**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृ० ४१२, मू० .... १.००
४. **गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका परिचय और उपदेश**—ले० आचार्य श्रीअक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय, एम्० ए०, पृ० २८०, मू० .... .... .... .... १.००
५. **अमृतके घूँट**—ले० डा० रामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य १.००
६. **एक लोटा पानी**—ले० श्रीपारसनाथजी सरस्वती, पृ० १८४, मू० .... .७५
७. **थानेदारीसे इस्तीफा**—ले० श्रीपारसनाथजी सरस्वती, पृ० १६४, मू० .... .... .६५
८. **गीता-पञ्चाङ्ग**—( वि० संवत् २०१९ ) पृष्ठ-संख्या ७२, मूल्य .... .... .५०
९. **आदर्श चरितावली भाग १**—ले० श्रीसुदर्शनसिंहजी, ऋषि-मुनि-संत-भक्तोंके १६ चरित्र, मूल्य .२५
१०. ,, ,, **भाग २**— ,, आचार्य, मतप्रवर्तक तथा युगनायकोंके १६ चरित्र .... .२५
११. ,, ,, **भाग ३**— ,, संत-महात्मा-योगी-साधकोंके १६ चरित्र, मू० .... .२५
१२. ,, ,, **भाग ४**— ,, पैगम्बर, संस्कारक संतोंके १६ चरित्र,मूल्य .... .२५
१३. ,, ,, **भाग ५**— ,, सम्राट्, राजा, शासक, रानी आदिके १६ चरित्र .... .२५
१४. ,, ,, **भाग ६**— ,, त्यागी, राजनीतिविशारद, देशभक्त नेताओंके १६ चरित्र, मूल्य .२५
१५. **श्रीनारायणकवच**—( श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६, अ० ८ से ) पृ० १६, .... .०६
१६. **अमोघ शिवकवच**—( श्रीस्कन्दपुराणसे ) पृष्ठ संख्या १६, मू० ... .... .०६
१७. **श्रीशिवचालीसा**—( श्रीशिवाष्टक और आरतीसहित ) पृ० २४ .... .... .०६

* संस्करण समाप्त हो गया है।

## बहुत दिनोंसे अप्राप्य पुस्तकोंके पुनर्मुद्रण

**मानसपीयूष खण्ड २**—स० श्रीअंजनीनन्दनशरणजी, पृ० ८६८, .... .. ९.५०
,, **खण्ड ३**— ,, ,, ,, ९५६, .... .... १०.५०
**पातञ्जलयोगप्रदीप**—ले० श्रीस्वामी ओमानन्दजी तीर्थ, पृ० ६५२, .... .... ६.००
**मार्क्सवाद और रामराज्य**—लेखक श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज, पृष्ठ ८६०, मू० .... ४.००

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग।

पुस्तक-विक्रेताओंको सभी पुस्तकोंपर नियमानुसार कमीशन दी जाती है। ग्राहकोंसे निवेदन है कि [पुस्त]कोंका आर्डर देनेसे पहले अपने पुस्तक-विक्रेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। इससे उनको भारी डाक-[खर्च]की बचत होगी।

## गीताप्रेसकी निजी दूकानें

( १ ) **कलकत्ता**—नं ३०, बाँसतल्ला गली, ( २ ) **वाराणसी**—नीचीबाग, ( ३ ) **पटना**—अशोक राजपथ, (४) **स्वर्गाश्रम**—गीताभवन, (५) **हरिद्वार**—सब्जीमंडी, मोतीबाजार, (६) **कानपुर**—बिरहाना रोड, (७) **दिल्ली**—नई सड़क। इन सभी दूकानोंपर मासिक 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के ग्राहक भी बनाये जाते हैं।

**सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये**

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश, जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपीप्रिय राधेश्याम ॥

संस्करण—१,४८,००० ( एक लाख अड़तालीस हजार )

# विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २०१९, अक्टूबर १९६२



## चित्र-सूची



वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु०१०.००
( १५ शिलिंग )

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
( १० पैसे )

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सपत्नीक चारों भाई, हर-गौरी, हनुमान, भुसुंडि, वाल्मीकि और तुलसीदास

मङ्गलमय ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ } गोरखपुर, सौर कार्तिक २०१९, अक्टूबर १९६२ { संख्या १०
पूर्ण संख्या ४३१

## मङ्गलमय ध्यान

सीता-राम, उर्मिला-लक्ष्मण, माण्डवि-भरत मंगलाधार ।
शुचि श्रुतिकीर्ति-शत्रुहन, गौरी-हर, भुसुंडि, हनुमान उदार ॥
आदि महाकवि बाल्मीकि मुनि तुलसीदास भक्त सुखधाम ।
अष्ट अष्टदल मध्य सुशोभित, केन्द्र राम-सीता अभिराम ॥
मंगलमय इनका जो करता श्रद्धायुत नित पूजन-ध्यान ।
पाकर सीताराम-प्रेम वह बनता परम भक्त मतिमान ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद रक्खो—जबतक तुम्हारा मुख भोगोंकी ओर है, तबतक तुम्हारा एक पग भी आगे चलना भोगोंकी ओर ही होता है, भगवान्‌की ओर नहीं। किसीको उत्तराखण्डमें बद्रीनाथको जाना है, पर उसका मुख है दक्षिणके मद्रासकी ओर, तो वह जबतक अपना मुख मोड़कर उत्तरकी ओर नहीं कर लेगा, तबतक वह बद्रीनाथजीसे विपरीत दिशामें ही चलेगा और अधिक-से-अधिक दूर होता चला जायगा। इसी प्रकार भोगोंकी ओर मुख किये चलनेवाले मनुष्यका जीवन भगवान्‌से दूर-दूर हटता चला जाता है।

याद रक्खो—भोगोंमें सुख है, ऐसी भ्रान्त धारणा और इसके कारण उदय हुई भोगोंमें आसक्ति भगवान्‌की ओर तुमको नहीं मुड़ने देती। तुम मुड़ना चाहते हो, जरा-सा मुँह फिरानेकी चेष्टा करते हो पर वह भोगासक्ति तुम्हारे फिरते मुखको पकड़कर तुरंत भोगोंकी ओर कर देती है, तुम्हारा मुख भगवान्‌की ओर नहीं मुड़ पाता।

याद रक्खो—एकान्तवास, तीर्थनिवास आदि तुम्हारे सहायक अवश्य हैं, परंतु असली चीज तो है—भोगोंमें आत्यन्तिक अनासक्ति, जो भगवान्‌की ओर मुड़नेकी प्रधान साधना है। जब तुम्हारा मुख भगवान्‌की ओर अच्छी तरहसे मुड़ जायगा, तब तुम्हारा प्रत्येक पद-संचार भगवान्‌की ओर होगा और ज्यों-ज्यों तुम भगवान्‌की ओर बढ़ोगे, त्यों-ही-त्यों तुम्हारा उत्साह, तुम्हारी उत्कण्ठा, तुम्हारी आगे बढ़नेकी शक्ति बढ़ती जायगी। भगवान्‌के पथमें सहज ही रहनेवाली दैवी सम्पत्ति, शान्ति, समता, वैराग्य, प्रेम तथा संतजनोंकी सत्संगति तुम्हें मिलती रहेगी। तुम्हारी विलक्षण प्रगति होगी भगवान्‌की ओर। तुम द्वन्द्व-दुःखोंसे छूटकर निराशा, चिन्ता, भय, विषाद, कामना, वासना आदिसे मुक्त होकर परम सुखी हो जाओगे।

याद रक्खो—जबतक तुम भगवान्‌को पीठ दिये भोगोंकी ओर मुख किये चलते रहोगे, तबतक तुम्हें सुख-शान्ति कभी नहीं मिलेगी। जितना-जितना अधिक तुम भोगोंकी ओर अग्रसर होओगे, स्वाभाविक ही भोग-मार्गमें स्थित, भोग-क्षेत्रसे उदित, भोगोंकी सहज परिणामस्वरूप निराशा, भय, विषाद, चिन्ता, राग, द्वेष, वैर, अशान्ति, द्रोह, दम्भ, परिग्रह, हिंसा, कामना, वासना, ममता आदि दुर्गुण-दुर्विचारोंसे घिरे रहकर सदा-सर्वदा दुःख-सागरमें डूबे रहोगे। जहाँ-जहाँ तुम सुखकी आशासे जाओगे, वहीं तुम्हें भयानक दुःखराशिके दर्शन होंगे; क्योंकि वहाँ—भोग-राज्यमें यही वस्तुएँ हैं। भोग-राज्यमें फँसा मनुष्य कितनी ही शान्तिकी, सुखकी, वैराग्यकी, निष्काम भावकी चर्चा करे, वह कभी भी शान्ति-सुखको प्राप्त नहीं हो सकता। अशान्ति-दुःख उसके नित्य संगी बने रहेंगे। अतएव जैसे भी हो, भगवान्‌की ओर मुड़ जाओ। जबरदस्ती ही मुड़ जाओ।

याद रक्खो—मन-बुद्धि भगवान्‌के समापत हो जायँ और वे सदा केवल भगवान्‌में ही लगे रहें—तभी पूर्णतः सुदृढ़रूपसे भगवान्‌की ओर मुख हो जाना समझा जाता है। पर ऐसा न हो, तबतक बार-बार मन-बुद्धिको भगवान्‌के साथ जोड़ते रहो। भगवान्‌के नाम, गुण, रूप, तत्त्वका चिन्तन-मनन-विचार करते रहो। भोगोंसे आत्यन्तिक और आन्तरिक अनासक्ति और भगवान्‌में पूर्ण तथा दृढ़ आत्यन्तिक आन्तरिक आसक्ति ही प्रधान साधन है।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भवबन्धन कैसे कटे ?

( लेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज )

यद्यपि लोके मरणं शरणम् ।
तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ॥

ये श्रीशंकराचार्यके वचन हैं । उनको भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि प्रत्येक मनुष्य जानता है कि आखिर तो जल्दी या देरसे, मरणके शरण जाना होगा ही; फिर भी वह पापाचरणको छोड़कर पुण्याचरणके द्वारा प्रभुकी प्राप्ति क्यों नहीं कर लेता ?

इसके उत्तरमें शास्त्र कहता है—

बीभत्सा विषया जुगुप्सिततमः कायो वयो गत्वरं
प्रायो बन्धुरिहाध्वनीव पथिको योगो वियोगावहः ।
हातव्योऽयमसार एष विरसः संसार इत्यादिकं
सर्वस्यैव हि वाचि चेतसि पुनः कस्यापि पुण्यात्मनः ॥

अर्थात् विषय, स्वभावसे ही बीभत्स—भयंकर हैं, इससे उन्हें छोड़ ही देना चाहिये । यह शरीर मलिनताका धाम है, अतः इसमेंसे भी आसक्तिको हटा लेना चाहिये । आयु क्षण-क्षण क्षीण होती चली जा रही है, अतएव वह अब समाप्त हो जायगी, पता ही नहीं लगता । बन्धु-बान्धवोंका सम्बन्ध धर्मशालामें इकट्ठे हुए यात्रियोंके सदृश क्षणिक और मिथ्या है। जिसका संयोग होता है, उसका वियोग भी अवश्य होता ही है । इस प्रकार सारे संसारके स्वरूपपर विचार करनेपर यही लगता है इसे छोड़ ही देना चाहिये, इसमें कुछ भी सार नहीं है ।

इस प्रकारकी बातोंको सब लोग खूब जानते हैं, वे ऐसा कहते भी देखे जाते हैं, परंतु उनका यह ज्ञान होता है केवल बोलनेभरके लिये या दूसरोंको उपदेश देनेभरके लिये । वह उनके हृदयमें उतरा हुआ नहीं होता । किसी भाग्यशाली ऐसे विरले ही पुरुषके हृदयमें ऐसा ज्ञान स्थिर होता है जो पुण्यकर्मके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध कर चुका है । मलिन अन्तःकरणमें ज्ञान स्थिर नहीं हो सकता ।

जैसे श्रीशंकराचार्यको इस सम्बन्धमें आश्चर्य हुआ वैसे ही एक कविको भी हुआ था और उसने भी यही बात दो सोरठोंमें बहुत ही साफ कही है—

सब ही तजते प्रान, जन्मे जो, पा भोग सब ।
तो भी होय न ज्ञान, दो पगवाले बैलको ॥
जाते यमके द्वार, देखे जाते तरुण शिशु ।
किंतु विवेक-विचार, कोई भी करता नहीं ॥

इन सोरठोंका अर्थ तो सभीकी समझमें आने लायक है । इनपर किसी भाष्यकी आवश्यकता नहीं है । तथापि पहले सोरठेका चौथा चरण 'दो पगवाले बैल' कुछ विचारणीय है ।

शास्त्रोंने जैसे मनुष्यके लिये चार वर्ण और चार आश्रम निश्चित किये हैं, वैसे ही मनुष्यके चार विभाग भी उसके स्वभावके अनुसार बतलाये हैं । वे निम्नलिखित हैं—

( १ ) पामर, ( २ ) विषयी; ( ३ ) मुमुक्षु और ( ४ ) मुक्त । यहाँ 'पामर' मनुष्यको ही दो 'पगवाला बैल' कहा गया है । भर्तृहरिने भी ऐसे मनुष्योंके लिये कहा है—

'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।'

केवल आकृतिभर मनुष्यकी है; वैसे पशुमें और उसके स्वभावमें कुछ भी अन्तर नहीं है। पशुओंका इतना सद्भाग्य है कि ऐसे मानव-पशु घास नहीं खाते; नहीं तो उन बेचारोंको भूखों मरना पड़ता ।

यहाँ इन चारों प्रकारके मनुष्योंके स्वभावको समझ लेना अप्रासंगिक नहीं होगा । 'पामर'का अर्थ हमने देखा कि वह तो मनुष्यके चोलेमें पशु ही है । परंतु यह मानव-पशु है दूसरे पशुओंसे कहीं अधिक भयंकर । मानव-पशुमें बुद्धि है, जो दूसरे पशुओंमें नहीं है, और इसलिये मानव-पशु बुद्धिका दुरुपयोग करके 'दानव' बन सकता है । दूसरे पशु तो अपने सहज स्वभावको ही धारण किये रहते हैं, पर ये मानव-पशु जब कामनाओं अर्थात् भोगवासनाओंके गुलाम हो जाते हैं, तब वे उल्टे मार्गपर चलकर राक्षस, पिशाच या असुर क्या-क्या नहीं बन जाते, यह वाणीसे नहीं बतलाया जा सकता । यहाँ तो केवल भर्तृहरिके सदृश—'ते के न जानीमहे'—( उसको क्या संज्ञा दी जाय, यही समझमें नहीं आता ); यों कहकर ही चुप हो जाना पड़ता है । 'विषयी' वर्गके मनुष्य एकदम पशु-जैसे तो नहीं हैं, पर उनकी विषयभोगोंमें इतनी बड़ी आसक्ति होती है कि उससे वे छूट नहीं सकते और परिणाममें येन केन प्रकारेण विषयभोगोंकी प्राप्ति ही उनके जीवनका ध्येय बन जाता है । विषयी मनुष्योंकी मनोवृत्तिका वर्णन करते हुए श्रीव्यासजी कहते हैं—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

विषयी मनुष्य यह तो समझते हैं कि पुण्यकर्म यानी शुभ आचरणसे सुख होता है और पापकर्म यानी निषिद्ध आचरणसे दुःख होता है । परंतु उनमें इतनी धीरज और दृढ़ता नहीं होती कि वे एक शुभ मार्गमें ही लगे रहें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको तो किसी भी प्रकारसे भोग-सुख चाहिये और वे यदि सदाचरणके द्वारा नहीं मिलते या उनके मिलनेमें विलम्ब होता दीखता है तो तुरंत वे लोग पापमयी प्रवृत्तिमें पड़ जाते हैं। उनको भोग-प्राप्तिके अतिरिक्त कुछ भी नहीं सूझता। अतः धर्माधर्मका विचार उनमें नहीं रहता। अब तीसरा वर्ग (३) है जिज्ञासुका। इस वर्गके मनुष्य दृढ़-निश्चयी होते हैं। इससे चाहे जितना दुःख आ पड़े, वे अपने निश्चित ध्येयसे कभी विचलित नहीं होते। ऐसे मनुष्य अपनी विवेकबुद्धिके द्वारा संसारकी दुःखरूपताको देख चुके होते हैं। अतः वे सांसारिक सुखोंके लिये हाय-तोबा नहीं करते। उनका ध्येय होता है—ईश्वरका दर्शन करके भवबन्धनसे छूट जाना। इसलिये वे अपने मार्गसे नहीं हटते और दृढ़ताके साथ सिद्धि प्राप्त न होनेतक अपने मार्गपर चलते ही रहते हैं। शास्त्रों और दूसरे उपदेशोंकी सार्थकता इस वर्गके मनुष्योंके लिये ही है। चौथा वर्ग (४) है 'मुक्तपुरुषों' का। मुक्त तो मुक्त ही हैं। उनको न कोई इच्छा है और न उनके सामने कोई कर्त्तव्य ही शेष है। ऐसे लोग, जबतक जीते हैं, प्रभुमय जीवन बिताते हैं और वे कुछ भी न करते हों तो भी स्वभावसे ही उनकी स्थितिमात्रसे ही 'लोक-कल्याण' हुआ करता है।

अब फिर मूल विषयपर आते हैं कि मनुष्य खुली आँखें और हाथमें दीपक लिये रहनेपर भी, पापरूपी अन्धकूपमें क्यों पड़ता होगा? कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें अर्जुनके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था। इसलिये उसने भगवान्‌से पूछा कि 'महाराज! आप तो कहते हैं कि मनुष्य मेरी प्रतिकृति ही है और कर्म करनेमें उसको मेरी-जितनी ही स्वतन्त्रता मैंने दे रक्खी है; इसके विपरीत प्रत्यक्षमें तो यह दिखायी देता है कि उसकी अपनी इच्छा न होनेपर भी मानो दूसरा कोई उसे पापाचरणमें ढकेल देता हो, इस प्रकार मनुष्य दुराचारमें ढकल जाता है। जैसे बैलको उसका मालिक जबरदस्ती जुएमें जोत देता है, वैसे ही मनुष्य भी, दुराचार न करनेकी इच्छा होनेपर भी, मानो कैसे किसी दूसरेकी शक्तिसे, अपनी परवशतासे पापमें प्रवृत्त होता दीख पड़ता है। तो महाराज! कृपा करके समझाइये कि ऐसी वह कौन-सी शक्ति है जो मनुष्यको बलात्कारसे पापमें लगा देती है।'

इस उत्तम और लोककल्याणकारी प्रश्नको सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे अर्जुनको विस्तारपूर्वक समझाने लगे कि ऐसा क्यों होता है तथा साथ ही उसका उपाय भी बतलाने लगे।

भगवान्‌ने कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
(गीता ३।३७)

अर्थात् मनुष्यको बलात्कारसे पापमें लगानेवाला अन्य कोई भी नहीं है, वह उसकी अपनी कामना ही है और प्रबल हुई कामना जब पराभवको प्राप्त होती है यानी कामनाके फलीभूत होनेमें जब कोई बाधा आती है तब वह कामना क्रोधका स्वरूप धारण कर लेती है। क्रोध भड़कते ही मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यका भान खो बैठता है। अर्थात् जब मनुष्यमें क्रोध व्याप जाता है, तब उसकी विवेकबुद्धिका काम रुक जाता है। इस बातको हमारे गुरुजी एक दृष्टान्तके द्वारा बहुत सरलतासे समझाया करते थे। वे कहते—पुराने जमानेमें स्याहीकी दवातें आतीं। तीन रंगोंकी स्याहीके तीन-तीन अलग-अलग दवातें एक काठकी चौखटमें बैठायी हुई रहतीं। पर उन तीनों दवातोंपर ढक्कन दो ही होते। इससे एक समय एक ही दवातका मुँह खुला रह सकता। वे ढक्कन इधर-उधर सरकनेवाले होते। इससे यह सुविधा होती कि यदि लाल स्याहीसे लिखना हो तो उसपरसे ढक्कन सरका दिया जाय। शेष दोनों दवातोंका मुख अपने-आप ढक जायगा। केवल लाल स्याहीका ही खुला रहेगा। इससे दूसरे रंगकी स्याहीकी दवातमें कलमके चले जानेका भय नहीं रहेगा। अपनी इच्छा हो तो भी दो दवातोंका मुख एक साथ खुला नहीं रख सकेंगे। इसी प्रकार कामना और विवेकके बीचमें एक ही ढक्कन है। एकका ढक्कन अच्छी तरह खुल जायगा और दूसरेका बिल्कुल बंद हो जायगा। जब कामना अपने साधारण रूपमें होती है, तब तो विवेकका ढक्कन थोड़ा-सा खुला रहता है और इस कारण वैसे किसी प्रसंगपर मनुष्य विवेकका उपयोग करके बच जाता भी दीखता है। पर जब कामना प्रबल हो उठती है, तब तो विवेकका ढक्कन प्रायः बंद हो जाता है। एवं जब कामना अवरोध पाकर क्रोधके रूपमें भड़क उठती है, तब तो विवेकके बंद ढक्कनेपर मानो सील लग जाती है। परिणाम हमारे सामने है।

अतएव भगवान् कहते हैं—मनुष्यको उसकी इच्छा न होनेपर भी पापमें लगानेवाली अपनी कामनाके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। अब कामनाका स्वरूप समझाते हैं। कामना रजोगुणसे ('रजो रागात्मकं विद्धि'—अर्थात् रागरूपी रजोगुणसे—आसक्तिसे) उत्पन्न होती है, इसलिये वह स्वभाव-से ही बलवान् होती है और इसीसे उसको दबानेके लिये बहुत बड़े बलकी आवश्यकता है। फिर, वह कामना बड़ी ही पेटू है। उसका पेट कभी भरता ही नहीं। ज्यों-ज्यों उसे खूराक देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाइये—त्यों-ही-त्यों उसकी भूख बढ़ती ही जायगी । यह बात इस एक श्लोकमें बहुत अच्छी तरह समझायी गयी है—

**यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।**
**एकस्यापि न दुह्यन्ति मनः कामहतस्य ते ॥**

कहते हैं कि इस सारी सृष्टिमें जितने भी धन-धान्य, समृद्धि, पशु आदि और स्त्री-पुत्रादि हैं, वे सभी एक ही साथ एक मनुष्यको मिल जायँ, तो भी यदि किसीका मन कामनाओंसे चोट खाया हुआ यानी भोग-वासनाके वश हुआ होता है तो उसको संतुष्ट नहीं कर सकते। यह हुआ 'महाशन' का अर्थ । अब कामनाका दूसरा विशेषण है—'महापाप्मा' अर्थात् महान् पापी । अतः वह उसके वशमें रहनेवालेको भी अपने ही-जैसा महापापी बना देती है । इतना ही नहीं, इच्छा न होनेपर भी उसको पापके पङ्कमें घुसा देती है । इसके बाद भगवान् कहते हैं कि इस कामनाको तू संसारमें अपना सच्चा शत्रु समझ । कामनाको मनुष्य यदि अपना शत्रु मान ले तो फिर वह जैसे दूसरे शत्रुको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करता है, वैसे ही इस शत्रुको भी वशमें करनेका विचार कर सकता है। परंतु दुःखकी बात तो यही है कि मनुष्य कामनाको शत्रु मानता ही नहीं, वह तो उसे हितैषी—मित्र मानता है और इसीलिये उससे अधिक-से-अधिक दबता जाता है। इसके लिये भगवान्ने कहा है कि इस संसारमें हे अर्जुन ! तेरी यह कामना ही, तेरा बड़े-से-बड़ा वैरी है। जो तुझे संसारमें स्वतन्त्रताके साथ सुखपूर्वक जीना हो तो इस शत्रुको पराजित करके अपने वशमें कर लेना चाहिये ।

इसके पश्चात् कामनाके दूसरे विशेषणोंको समझाते हुए वे कहते हैं जैसे धुएँसे अग्नि ढक जाती है, मैलसे दर्पण ढक जाता है और माताके उदरमें गर्भ जेरसे ढका रहता है, वैसे ही कामनासे यह सम्पूर्ण विश्व ढका हुआ है—उससे मोहित हो रहा है । फिर, इस कामनाका ज्ञानी पुरुषके साथ तो सहज वैर है, अतएव यह उसके ज्ञानको दबा देती है ।

फिर भगवान् कहते हैं कि तुझे यदि कामनासे युद्ध करना हो तो वह कहाँ रहती है और किस प्रकारसे युद्ध करती है, यह जान लेना आवश्यक है। मुख्य रूपसे तो कामनाएँ इन्द्रियोंके द्वारा ही प्रवेश करती हैं और इन्द्रियोंकी सहायतासे पहले वे मनपर विजय प्राप्त करती हैं। फिर मनका सहयोग प्राप्त होनेपर बुद्धिपर आक्रमण करके उसपर भी अपना अधिकार जमा लेती हैं । इस प्रकार उनका व्यूह है। तो यदि तुझे कामनापर चढ़ाई करनी है तो पहले तो इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त कर ले । तुझे यदि यह लगता हो कि इन्द्रियाँ तो पाँच हैं और सभी बड़ी बलवती हैं, अतः उन्हें कैसे जीता जा सकता है तो सुन ! इन्द्रियोंसे मन अधिक बलवान् है, मनसे भी बुद्धि अधिक बलवती है और बुद्धिसे भी पर यानी परम श्रेष्ठ वह आत्मा है, जो बड़ा ही बलवान् है। जैसे सूर्यके सामने दूसरे दीपक आदि कोई प्रकाश नहीं दे सकते, वैसे ही इन्द्रियाँ, मन या बुद्धि आत्माके प्रकाशसे अभिभूत होकर दूर खिसक जाते हैं । अतएव—

**एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।**
**जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥**

अर्थात् बुद्धिसे पर—श्रेष्ठ जो तेरा आत्मा है, उसके बलके द्वारा मन-बुद्धिको संयमित करके हे अर्जुन ! तू कामरूपी अजेय शत्रुका संहार कर डाल । अर्थात् तू अपने आत्मस्वरूपमें स्थिर हो जा । इससे तुझे अनुभव होगा कि मैं तो मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके व्यवहारसे असङ्ग हूँ । उनका व्यवहार उन्हें सुख-दुःख दे सकता है, मुझको नहीं । ऐसा निश्चय होनेपर कामना अपने-आप शान्त हो जायगी ।

अब इस प्रसंगकी तर्कसे जाँच करें । कामना जाग्रत् क्यों होती है ? शरीरको सुख पहुँचानेके लिये । शरीरको सुख किसलिये पहुँचाना है ? जीव भ्रमसे अपनेको शरीररूप मानता है और इसीसे वह शरीरको सुख पहुँचानेके लिये इधर-उधर दौड़ता रहता है, किंतु सुख कहीं भी नहीं मिलता। अतः कामनाका भी कहीं अन्त नहीं आता । इस भ्रमकी निवृत्तिका क्या उपाय है ? तत्त्वज्ञान—अपने स्वरूपका ज्ञान । जीव भ्रमसे अपनेको शरीररूप मानता है, इस भ्रमको छोड़कर वह अपनेको आत्मारूप मानने लगे—इतना ही करना है । 'मैं शरीर हूँ' इसकी जगह यह दृढ़ हो जाय कि 'मैं आत्मा हूँ, अतः स्वभावसे ही सुखरूप हूँ ।' ऐसा होते ही जीवका शरीरको सुख पहुँचानेके लिये भटकना बंद हो जायगा ।

इस निबन्धके प्रारम्भमें यह प्रश्न था कि 'मनुष्य यह समझता है कि इस संसारमें आकर ईश्वरका भजन करनेसे अवश्य मुक्ति मिल जाती है। तो भी वह ऐसा न करके विषयोंकी प्राप्तिके लिये ही दौड़ता रहता है और उसमें धर्माधर्मका भी ध्यान नहीं रखता । ऐसा क्यों होता है ?' इसके उत्तरमें हमने देखा कि जबतक मनुष्य इच्छाके मोह-पाशमें जकड़ा है और वासनाके भँवरमें डुबकियाँ खा रहा है, तबतक उसकी इच्छा होनेपर भी उससे भजन नहीं हो सकेगा । अतएव कल्याणकामी पुरुषको इच्छा मात्रका त्याग करना चाहिये । इच्छाका त्याग होनेपर शुद्ध अन्तःकरणमें ईश्वरका साक्षात्कार होगा और ऐसा होनेपर भवबन्धन कट जायगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके तत्त्वका विवेचन

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग—तीनों ही मुक्तिप्रद हैं। भक्तियोगमें तो भगवान्‌के प्रति अनन्य विशुद्ध दृढ़ प्रेम होना प्रधान है और कर्मयोगमें निष्काम भावकी प्रधानता है; किंतु ज्ञानयोगमें परमात्माके स्वरूपका ज्ञान ही प्रधान है। अतएव ज्ञानयोगके साधकको महापुरुषोंसे तथा शास्त्रोंसे सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यहाँ परमात्माके स्वरूपके सम्बन्धमें कुछ विचार किया जाता है।

परब्रह्म परमात्मा सत् है, चिन्मय है, आनन्दघन है, सम है, अनन्त है और व्यापक है। अब इन छहोंके सम्बन्धमें अलग-अलग विवेचन किया जाता है।

## सत्ता

'सत्' शब्द भावका वाचक है। जो नित्य शाश्वत है, जिसका कभी क्षय नहीं होता है और जिसका कभी किसी प्रकार भी बाध नहीं किया जा सकता, वही सत् है। श्रीभगवान् कहते हैं—

**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**
**उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥**

( गीता २। १६ )

'असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्‌का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है।'

सत् स्वरूपका वर्णन भगवान्‌ने गीताके बारहवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें यों किया है—

**ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।**
**सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥**

'जो पुरुष मन-बुद्धिसे परे, सर्वव्यापी, अकथनीय-स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकी-भावसे ध्यान करते हुए भजते हैं ( वे मुझको ही प्राप्त होते हैं )।'

इससे समझना चाहिये कि परमात्मा अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, अचिन्त्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ, अचल और ध्रुव सत्य है। इन शब्दोंसे जो सत्ता मनुष्यकी समझमें आती है, उसकी अपेक्षा भी उस परब्रह्म परमात्माकी सत्ता अत्यन्त विलक्षण है। वास्तवमें तो ब्रह्मका स्वरूप सत्-असत् दोनोंसे विलक्षण है—

**न सत्तन्नासदुच्यते।** ( गीता १३। १२)

'वह परब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही।'

क्योंकि वह मन, बुद्धि और वाणीका विषय नहीं है। जो मन, बुद्धि और वाणीका विषय होता है वह ज्ञेय होनेके कारण जड है, किंतु परमात्माका स्वरूप केवल चेतन है, वह स्वयं ही अपने-आपको जानता है, दूसरा उसे कोई नहीं जान सकता।

## चेतनता

जो सबको जाननेवाला और सबका प्रकाशक है, वह 'चेतन' कहा जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं—

**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।**
**ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥**

( गीता १३। १७)

'वह परब्रह्म परमात्मा ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोध-स्वरूप जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेके योग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है।'

अतः समझना चाहिये कि परमात्मा ज्योतियोंका भी ज्योति, सबका प्रकाशक और अज्ञानसे अत्यन्त परे है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय—इन तीनोंमें जो ज्ञाता है वही चेतन है। ज्ञान और ज्ञेय दोनों जड हैं। बुद्धि और बुद्धिकी वृत्ति ज्ञान है, उसके द्वारा जाननेमें आनेवाले सभी पदार्थ ज्ञेय हैं और परमात्मा ज्ञाता है; उसीको द्रष्टा, साक्षी, चेतन ( चिन्मय ) कहा गया है। वह परमात्मा सबको जानता है, उसे कोई नहीं जानता। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

**वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।**
**भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥**
( ७ । २६ )

'हे अर्जुन ! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ; परंतु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता।'

वास्तवमें तो वह परमात्मा ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयकी त्रिपुटीसे सर्वथा परे है।

इन सारे शब्दोंसे जो चेतनता समझमें आती है वह सब बुद्धिका विषय है और बुद्धिद्वारा समझमें आनेवाली चेतनता जडमिश्रित है। अतः वह परमात्माकी स्वरूपभूत चेतनता इससे अत्यन्त विलक्षण है।

यदि कोई कहे कि उस चिन्मय परमात्माके स्वरूपको मैंने समझ लिया है तो उसे विचार करना चाहिये कि जो स्वरूप मन-बुद्धिकी समझमें आया है वह तो अल्प और जड है। एवं जिसको समझनेका अभिमान होता है उसको वास्तवमें उसका अनुभव ही नहीं है।

श्रुतिमें बतलाया गया है—

**यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥**
( केन० १ । ५ )

'जिसको कोई भी मनसे ( अन्तःकरणके द्वारा ) नहीं समझ सकता, बल्कि जिससे मन मनुष्यका जाना हुआ हो जाता है—ऐसा कहते हैं, उसको ही तू ब्रह्म जान। मन और बुद्धिके द्वारा जाननेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।'

**यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः।**
**अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥**
( केन० २ । ३ )

'जिसका यह मानना है कि ब्रह्म जाननेमें नहीं आता, उसका तो वह जाना हुआ है और जिसका यह मानना है कि ब्रह्म मेरा जाना हुआ है वह नहीं जानता; क्योंकि जाननेका अभिमान रखनेवालोंके लिये वह ब्रह्मतत्त्व जाना हुआ नहीं है और जिनमें ज्ञातापनका अभिमान नहीं है, उनका वह ब्रह्मतत्त्व जाना हुआ है अर्थात् उनके लिये वह अपरोक्ष है।'

जो परमात्मा सत्—भावरूप है, वही चेतन है। जो चेतन है, वही वास्तवमें है। चेतन और भाव कोई दो पदार्थ नहीं हैं। चेतनताकी सत्ता कायम करनेके लिये ही 'सत्' कहा जाता है। अतः वही चेतन भी है और सत् भी है। तथा सत् और चेतन विशेष्य-विशेषण भी नहीं हैं। वह परमात्मा अनिर्देश्य है, उसका किसी प्रकार भी निर्देश नहीं किया जा सकता। जिसका निर्देश किया जाय, उस ज्ञेय—जाननेमें आनेवाले स्वरूपसे ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप अत्यन्त विलक्षण है। वह न वाणीके द्वारा कहा जा सकता है और न मनके द्वारा मनन किया जा सकता है।

श्रुति कहती है—

**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।**
**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन॥**
( तैत्ति० २ । ४ )

'जहाँसे मनके सहित वाणी आदि इन्द्रियाँ उसे न पाकर लौट जाती हैं, उस ब्रह्मके आनन्दमय स्वरूपको जाननेवाला पुरुष कभी भय नहीं करता।'

## आनन्द

जो निरतिशय परम सुखस्वरूप है, जहाँ दुःखोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त अभाव है, उसे 'आनन्द' कहते हैं। परमात्मा आनन्दमय—आनन्दसे परिपूर्ण है।

**आनन्दमयोऽभ्यासात्।** ( ब्रह्मसूत्र १ । १ । १२ )

'श्रुतिमें 'आनन्द' शब्दका ब्रह्मके लिये बारंबार प्रयोग होनेके कारण यहाँ 'आनन्दमय' शब्द परब्रह्म परमात्माका ही वाचक है।'

'आनन्दमय' शब्दमें 'मयट्' प्रत्यय विकार अर्थका बोधक नहीं है, प्रचुरताका बोधक है। यह आनन्द लौकिक आनन्दका वाचक नहीं है, ब्रह्मका वाचक है। इसलिये परब्रह्म परमात्मा आनन्दमय आनन्दघन है; क्योंकि—

**रसो वै सः। रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति।**

( तैत्ति० उ० २ । ७ )

अर्थात् 'वह आनन्दमय ही रसस्वरूप है, यह जीवात्मा इस रसस्वरूप परमात्माको पाकर आनन्दयुक्त हो जाता है। यदि वह आकाशकी भाँति परिपूर्ण आनन्द-स्वरूप परमात्मा नहीं होता तो कौन जीवित रह सकता, कौन प्राणोंकी क्रिया कर सकता? सचमुच यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता है।' तथा—

**सैषा आनन्दस्य मीमाꣳसा भवति।**

( तै० उ० २ । ८ )

'वह यह आनन्दसम्बन्धी विचार आरम्भ होता है।'

**एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति।**

( तै० उ० २ । ८ )

'इस आनन्दमय आत्माको प्राप्त होता है।'

**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।**

( तै० उ० २ । ९ )

'उस ब्रह्मके आनन्दमय स्वरूपको जाननेवाला महापुरुष किसीसे भी भय नहीं करता।'

**आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।**

( तै० उ० ३ । ६ )

श्रीभृगुऋषिने 'आनन्द ही ब्रह्म है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक जान लिया; क्योंकि सचमुच आनन्दसे ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर आनन्दसे ही जीते हैं तथा प्रयाण करते हुए अन्तमें आनन्दमें ही विलीन हो जाते हैं।'

**विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।** ( बृ० उ० ३ । ९ । २८ )

'ब्रह्म ज्ञानस्वरूप और आनन्दमय है।'—इत्यादि श्रुतियोंमें 'आनन्द' शब्दके लिये बारंबार प्रयोग किया गया है—इस न्यायसे यह 'आनन्दमय' शब्द ब्रह्मका ही वाचक है।

जैसे बर्फ जलघन है—बर्फमें जल ही जल है; किंतु बर्फ और जल दोनों ही जड हैं। इस प्रकारकी जडकी घनताकी ज्यों चेतनकी घनता नहीं है। एवं जैसे शिलामें पत्थर-ही-पत्थर है—ऐसी शिलाकी घनताकी भाँति भी वह नहीं है; क्योंकि शिला जड है और उसमें आकाश तो प्रविष्ट है ही। वायु, अग्नि और जलका भी प्रवेश होता देखा जाता है। किंतु जो आनन्दघन ब्रह्म है, उसमें किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है। वह आनन्दमय परमात्मा अपने-आपसे ही परिपूर्ण है। इसी तत्त्वका यह शान्तिमन्त्र संकेत करता है।

**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥**

( बृह० ५ । १ । १ )

'वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा अपने-आपसे परिपूर्ण है, यह संसार भी उस परमात्मासे परिपूर्ण है; क्योंकि उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मासे ही यह पूर्ण ( संसार ) प्रकट हुआ है। पूर्ण ( संसार ) के पूर्ण ( पूरक परमात्मा ) को स्वीकार करके उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित होनेसे उस साधकके लिये एक पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही अवशेष रह जाता है।'

वह आनन्द अपार है, उसकी कहीं इति नहीं, सीमा नहीं; और शान्ति ही उसका स्वरूप है इसलिये उसको शान्त आनन्द कहते हैं। वह अचल होनेके कारण देश-कालसे चलायमान नहीं होता; क्योंकि वह देश-कालसे रहित है। वह आनन्द भावरूप होनेके कारण नित्य ध्रुव सत्य है। वह स्वयं ही अपने-आपको जानता है, इसलिये उसे बोधस्वरूप या ज्ञानस्वरूप आनन्द कहते हैं। वह आनन्द राजस-तामसकी तो बात ही क्या, सात्त्विक सुखसे भी अत्यन्त परे है। इसलिये उसको परम आनन्द कहते हैं। जितने भी प्रकारके सुख हैं, वे सब उसके आभासमात्र होनेके कारण उसका मुकाबला नहीं कर सकते। उनमेंसे कोई भी उसके समान नहीं। अतः वे सभी सुख अल्प हैं। और वह आनन्द सबसे श्रेष्ठ, महान् और पर होनेके कारण महान् आनन्द है। उसका कभी अन्त नहीं होता, इसलिये वह अनन्त आनन्द है। उसका न चिन्तन किया जा सकता है, न मनन किया जा सकता है, न बुद्धिके द्वारा समझा जा सकता है; अतः उसे अचिन्त्य आनन्द कहते हैं। उस आनन्दका न वर्णन किया जा सकता है और न संकेत किया जा सकता है; इसलिये वह अनिर्देश्य है। जो बात जानने-समझनेमें आती है, वह जड होती है; किंतु वह आनन्द स्वयं चिन्मय है। जो जानने-समझनेमें आनेवाला आनन्द है, वह ज्ञेय होनेसे अल्प और जड है। अतः वह आनन्द उससे अत्यन्त विलक्षण है।

यदि कोई कहे कि उस आनन्दका मैं अनुभव करता हूँ तो उसे विचार करना चाहिये कि जिसका अनुभव किया जाता है, वह तो अल्प और जड है। अतः उस अनुभवमें आनेवाले आनन्दसे वह आनन्द बहुत विलक्षण है।

## समता

परमात्माके स्वरूपकी समता चिन्मय होनेके कारण बहुत ही विलक्षण है। समता तीन प्रकारकी होती है—(१) साधक पुरुषकी समता, (२) सिद्ध पुरुषकी समता और (३) परमात्माके स्वरूपकी समता।

साधकके लिये समताका वर्णन गीतामें इस प्रकार है—

**सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**
**ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥**
(२।३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।'

**योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।**
**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥**
(गीता २।४८)

'हे धनंजय! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्यकर्मोंको कर, समत्व ही योग कहलाता है।'

किंतु सिद्धपुरुषकी समता इससे बहुत विलक्षण है। (देखिये गीता ५।१९; ६।९; १२।१८-१९; १४।२४-२५) साधकके लिये तो 'समे कृत्वा'—'समान समझकर', 'समो भूत्वा'—'सम बुद्धिवाला होकर'—ऐसे आदेशात्मक प्रयोग आये हैं, क्योंकि साधकके अन्तः-करणमें स्थायी समता नहीं होती। किंतु सिद्ध महात्मा पुरुषके अन्तःकरणमें समता स्वाभाविक ही रहती है। पर यह दोनों प्रकारकी ही समता सात्त्विक है, इसलिये जड है और परमात्मा गुणातीत तथा चेतन है; इसलिये परमात्माके स्वरूपकी समता साधक और सिद्धकी समतासे भी अत्यन्त विलक्षण है।

यदि कोई कहे कि परमात्माकी समताकी विलक्षणता-को मैं समझ गया तो उसे यह विचार करना चाहिये कि वह समता समझका विषय नहीं है। बुद्धिके द्वारा


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझमें आनेवाली समता तो अल्प है और ज्ञेय होनेसे जड है । परमात्माके समभावको वस्तुतः परमात्मा ही समझता है । जो सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होता है—जो ब्रह्म ही बन जाता है, वह अपने-आपको समझता ही है; किंतु परमात्मप्राप्त पुरुषकी हृदयस्थ समता भी उत्तम गुण और सात्त्विक भाव ही है । वह भी परमात्माकी समताका ही आभास है । जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब होता है । चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब चन्द्रमासे ही है; किंतु वह चन्द्रमा नहीं है । उसी प्रकार महापुरुषोंके हृदयमें प्रतीत होनेवाली समता समस्वरूप परमात्माकी समताका आभास है । जिसके हृदयमें समता प्रतीत होती है, वह पुरुष परमात्माको प्राप्त हो चुका है, यह उसकी कसौटी है ।

## अनन्तता

संसारमें प्रतीत होनेवाले समस्त पदार्थोंमें आकाशको अनन्त बताया जाता है । इसी कारण परमात्माके निराकार तत्त्वको समझानेके लिये आकाशका उदाहरण दिया जाता है । गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

**यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।**
**तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥**
( ९ । ६ )

'जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा आकाशमें ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प-द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं—ऐसा जान ।'

यहाँ आकाशस्थानीय परमात्मा है और वायुस्थानीय सम्पूर्ण भूत हैं । वायुकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आकाशसे ही होनेके कारण वह सदा ही आकाशमें ही स्थित है । इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लय परमात्माके संकल्पके आधार होनेके कारण सम्पूर्ण भूतसमुदाय सदा परमात्मामें ही स्थित है; क्योंकि जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशके सहित उस स्वप्नद्रष्टा पुरुषके मनके अन्तर्गत है, उसी प्रकार सम्पूर्ण पञ्चभूतोंके सहित आकाश परमात्माके मनके संकल्पके अन्तर्गत है । वह मन महत्तत्त्व यानी परमात्माकी समष्टि बुद्धिके अन्तर्गत है । वह समष्टिबुद्धि मूल प्रकृतिके अन्तर्गत है और मूल-प्रकृति परमात्माके अन्तर्गत है । इसलिये आकाशसे सूक्ष्म पर श्रेष्ठ और अनन्त है महत्तत्त्व ( समष्टिबुद्धि ), समष्टिबुद्धिसे सूक्ष्म पर श्रेष्ठ और अनन्त है मूलप्रकृति तथा मूलप्रकृतिसे भी सूक्ष्म पर श्रेष्ठ और अनन्त है परमात्मा; किंतु परमात्मासे सूक्ष्म, पर, श्रेष्ठ और अनन्त कुछ नहीं है ।

उपरिनिर्दिष्ट सभी पदार्थोंकी अनन्ततासे परमात्माकी अनन्तता अत्यन्त विलक्षण है; क्योंकि परमात्मा चेतन है और प्रकृति तथा उसका कार्य सब अल्प और जड है । श्रुति कहती है—

**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।** ( तैत्ति० २ । १ )

'ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है ।'

## व्यापकता

परमात्माकी व्यापकता भी बहुत विलक्षण है । तिलोंमें तेल और दूधमें घीकी भाँति वह व्यापकता नहीं है । तेल और खली अथवा घी और छाछ—ये अलग-अलग पदार्थ हैं । दोनोंकी समान सत्ता है और दोनों ही जड हैं । किंतु परमात्मा चेतन है और उसकी सत्ताके सिवा अन्य किसीकी सत्ता नहीं है । यदि जड पदार्थोंकी काल्पनिक सत्ता मानी जाय तो परमात्माकी सत्तासे ही उनकी सत्ता है । जैसे वायु, तेज, जल और पृथ्वीमें आकाश व्यापक है और आकाश ही उनका उपादान-कारण है, उससे भी परमात्माकी व्यापकता बहुत विलक्षण है; क्योंकि एक तो आकाश जड है; दूसरे आकाश उनका केवल उपादान-कारण ही है, निमित्त-कारण नहीं है, किंतु ब्रह्म तो अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है । इसलिये अद्वैतसिद्धान्तके अनुसार एक ब्रह्मके सिवा दूसरी वस्तु है ही नहीं । यदि कहें कि संसारकी प्रतीति होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दृश्य जड संसारको ब्रह्मका संकल्प माना गया है अतः वह ब्रह्मका स्वरूप है सो ठीक है। पर इस न्यायसे भी आकाशके विकाररूप जो वायु, तेज, जल, पृथ्वी हैं उन आकाशके कार्योंमें आकाश व्यापक है सो तो ठीक है; किंतु वायु, तेज, जल, पृथ्वीकी और आकाशकी तो समान सत्ता है और ये सभी पदार्थ जड हैं। पर परमात्मा चेतन है, भावरूप है और ये सब पदार्थ अभावरूप हैं। ये सब पदार्थ परमात्माके संकल्पके आधार होनेके कारण परमात्माकी सत्ता इनकी सत्ताके समान नहीं है। इसलिये जड आकाशकी अपेक्षा उस चिन्मय परमात्माकी व्यापकता बहुत ही विलक्षण है। गीतामें बतलाया गया है—

**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।**
**मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥**
(९।४)

'मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं; किंतु वास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।'

यहाँ भगवान्‌ने जो यह कहा है कि मैं सारे जगत्‌में निराकाररूपसे व्यापक हूँ और मैं जगत्‌में व्यापक नहीं भी हूँ—इसका भाव यह है कि जहाँ जगत्‌की प्रतीति होती है वहाँ तो परमात्मा उसमें व्यापक है और वस्तुतः जगत्‌में परमात्मा व्यापक नहीं है, वह अपने आपमें ही स्थित है। जैसे आकाशसे ही बादलोंकी उत्पत्ति होती है, आकाशमें ही बादल स्थित हैं और आकाशमें ही विलीन हो जाते हैं, इसी प्रकार यह जगत् परमात्मासे उत्पन्न होकर परमात्मामें ही स्थित रहता है और परमात्मामें ही विलीन हो जाता है। किंतु विचार करना चाहिये कि बादलोंकी उत्पत्तिके पहले भी आकाश अपने-आपमें ही था और बादलोंके विनष्ट हो जानेपर भी आकाश अपने-आपमें ही है। अतः बादलोंकी प्रतीति होनेके समय भी आकाश अपने-आपमें ही स्थित है—यही सिद्ध होता है। इस सिद्धान्तके अनुसार आकाश बादलोंमें स्थित है भी और नहीं भी है। वास्तवमें तो आकाश अपने-आपमें ही स्थित है। इसी प्रकार परमात्मा वस्तुतः स्वयं अपने-आपमें ही नित्य स्थित है।

यदि कहें कि परमात्माकी व्यापकता भी हमारी समझमें आ गयी तो यह समझना वास्तविक नहीं है; क्योंकि जो बात समझमें आती है वह अल्प होती है और जड होती है; किंतु परमात्मा अनन्त, चिन्मय और अद्वितीय है। इसलिये उसकी भी व्यापकता समझमें आनेवाली व्यापकतासे बहुत ही विलक्षण है।

इसी प्रकार परमात्माकी अव्यक्तता, अचिन्त्यता, अनिर्देश्यता, घनता (प्रचुरता), कूटस्थता, पूर्णता आदिके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। उपर्युक्त प्रकारसे परमात्माके तत्त्वको यथार्थ जान लेनेपर मनुष्य परमात्माको ही प्राप्त हो जाता है। अतएव ज्ञानयोगके साधकोंको उचित है कि वे सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ऊपर बतलाये हुए प्रकारसे उसे समझकर नित्य निरन्तर उसीमें अभिन्नभावसे स्थित रहें।

## परब्रह्मका मधुर नृत्य

जिसकी कहीं न कोई तुलना, जिसका कहीं न कुछ उपमेय।
सर्वरहित जो सदा सर्वमय सर्वातीत सर्वपर श्रेय॥
जिसकी सत्ता चेतनता आनन्दरूपता अमित अनन्त।
निज स्वरूप-महिमामें स्थित जो, जिसमें सबका उद्भव-अन्त॥
वही अचिन्त्यानन्त अनिर्वचनीय दिव्य माधुर्याधार।
नाच रहा व्रज-धूलि-धूसरित प्रेम-सुधा-रस-पारावार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गोपाल श्रीकृष्ण

( लेखक—प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र )

बाल्यकालमें गोपाल श्रीकृष्ण बड़े चञ्चल एवं चतुर थे। इतना ही नहीं, बल्कि उनके स्वभावमें नटखटपन भी था। देवताके निमित्त रक्षित दही-माखन चुराकर स्वयं खा लेना, गोपियोंके घरमें ग्वालबालोंके साथ चुपकेसे प्रवेश करके माखन-चोरी करना, पकड़े जानेपर अपनी निर्दोषताकी सफाई देना, अपने सखाओंपर इल्जाम लगाना, गोपियोंसे छेड़-छाड़ करना—यह सब उनकी नित्यकी लीलाएँ थीं। व्रजवासीगण उनके लीलासहचर थे। व्रजवासी उनके शैशवकी अलौकिक एवं असामान्य घटनाओंको देखकर यह विश्वास करने लगे थे कि श्रीकृष्ण भगवान्‌के अवतार हैं। यही कारण है कि व्रजबालाएँ गोपालके नटखटपनसे चिढ़कर जब माता यशोदाके पास उलाहना देने पहुँचती थीं और यशोदा गोपालको डाँटने लगती थी, उस समय गोपबालाएँ ही मातासे उन्हें क्षमा कर देनेका अनुरोध करती थीं। उस सहज सुन्दर बालककी रूप-माधुरीमें एक ऐसा दुर्निवार आकर्षण था कि कोई उसे प्यार किये बिना रह नहीं सकता था।

बालगोपालके बड़े भाई बलराम उनके नित्यके संगी थे। बलराम देखनेमें सुन्दर एवं बलिष्ठ थे। कृष्ण बलराम-जैसे बलिष्ठ देह न होनेपर भी बुद्धि एवं चातुर्यमें उनसे बढ़े हुए थे। उनकी प्रकृति बड़ी कोमल थी। दोनों भाइयोंमें स्नेह भी अपूर्व था। उस समय वृन्दावन अतिशय शोभामय एवं मनोरम स्थान था। प्रकृतिने अपने सौन्दर्यभंडारके अजस्र दानोंसे उसे सुषमामण्डित किया था। पासमें ही गोवर्धन गिरि था, जो प्रकृतिके विचित्र शोभा-सम्भारसे सज्जित था। विहगकुलका कल-कूजन, कलकलनादिनी यमुना, मृदु मन्द समीर, नाना प्रकारके फल-फूलोंका नैवेद्य लिये हुए तरुवृन्द—ये सब उस बालककी पूजा करनेके लिये मानो आपसमें होड़ करने लगे थे। ऐसा था वह वृन्दावन-धाम, जहाँ कंसके उत्पातोंसे ऊबकर नन्दसहित अन्यान्य गोकुलवासी आकर बस गये थे। बालगोपाल समस्त गोकुलवासियोंके स्नेहभाजन, उनके प्रेमसर्वस्व थे। श्रीकृष्ण जब कुछ बड़े हुए, अन्य ग्वालबालोंको साथ लेकर वृन्दावनके जंगलोंमें गाय चरानेके लिये जाने लगे। वहाँ वे भाँति-भाँतिके क्रीडा-कौतुक करते। दोनोंमें दूध दुहकर स्वयं पीते और अपने साथियोंको पिलाते। नाम लेकर एक-एक गायको पुकारते। गायें अघाकर घास चरतीं और इधर गोपाल सखासहित खेल-कूद, दौड़धूप, हास-परिहास करते और कभी मौजमें आकर मुरलीकी मधुर तान छेड़ते। गोचारणमें श्रीकृष्ण और ग्वालबालोंको नाना प्रकारकी विपदाओंका सामना करना पड़ता। संध्यासमय क्षुधापीड़ित बालकगण गाय-बछड़ोंको लेकर जब घर लौटते, उनकी स्नेहमयी माताएँ आकुल हृदयसे उनकी प्रतीक्षा करती रहतीं। घर पहुँचकर वे अपनी माताओंसे उन सब भयंकर घटनाओंका वर्णन करते, जो वनमें घटित हुई थीं और किस प्रकार श्रीकृष्ण-बलरामकी सहायतासे उनका परित्राण हुआ था। जननी अपने पुत्रको छातीसे लगाकर मन-ही-मन भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती। जननी यशोदा भी अपने गोपालको गायोंको लेकर वन जानेसे मना करती। किंतु प्रातःकाल होते ही जब आनन्दोत्फुल्ल सखागण नन्दके घर पहुँचते, श्रीकृष्ण उनके साथ वन जानेके लिये व्याकुल हो उठते। माँसे अनुनय-विनय करते और माँ राजी हो जातीं।

श्रीकृष्णके प्रति गोपबालकोंका अनन्य प्रेम था। वे कोई मधुर फल या मिष्टान्न श्रीकृष्णको साथ लिये बिना कभी नहीं खाते। श्रीकृष्णको वे अपना अभिन्नहृदय सखा समझकर उनसे विशुद्ध प्रेम करते। उन्हें अपने इस अन्तरङ्ग सखामें अपनी अन्तरात्माका ही प्रतिबिम्ब दिखायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता । श्रीमद्भागवतकारने लिखा है—'यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः' । यही कारण था कि श्रीकृष्णके प्रति उनका अनुराग इतना प्रगाढ़ था । सखाके रूपमें व्रजबालकोंने भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करके उनसे सख्यभावसे प्रेम किया था और श्रीकृष्णने उनके साथ उसी भावसे विविध लीलाएँ की थीं । महाविषधर नाग कालियका दमन और यमुनासे संतान-संततिके साथ उसका अन्यत्र निर्वासन, दावानलसे साथियोंकी रक्षा तथा इसी प्रकारके अन्य अलौकिक कृत्योंद्वारा श्रीकृष्णने यह प्रमाणित कर दिया था कि वे नररूपमें साक्षात् भगवान् हैं और भक्तोंको आनन्द देनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं ।

व्रजवासी प्रतिवर्ष बड़े समारोहके साथ देवराज इन्द्रकी पूजा करते । इन्द्र वृष्टिके देवता थे । उनकी आराधना किये बिना पृथिवी शस्यश्यामला किस प्रकार हो सकती थी । श्रीकृष्णने व्रजवासियोंको इन्द्रकी पूजा न करके गोवर्धनगिरिकी पूजाका उपदेश दिया—'गोवर्धनगिरिकी प्रचुर तृणराशिको चरकर व्रजकी गायें परिपुष्ट होती हैं और व्रजभूमिको समृद्ध बनाती हैं । इसलिये उसकी पूजा होनी चाहिये, न कि इन्द्रकी ।' इससे इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए और व्रजवासियोंको समुचित दण्ड देनेके लिये लगातार सात दिनोंतक प्रबल वारिवर्षण करते रहे । व्रजवासी इन्द्रके कोपसे संत्रस्त होकर श्रीकृष्णके समीप पहुँचे और उनसे अपना दुःख निवेदन किया । उन्होंने सब लोगोंको सान्त्वना देते हुए कहा कि उनके परित्राणके लिये शीघ्र ही उपाय ढूँढ़ निकाला जायगा । साधुजनोंके परित्राणके लिये तो उनका अवतार ही हुआ था । उन्होंने सहज ही गोवर्धनको अपनी उँगलीपर उठा लिया और सब लोगोंको वर्षा और झंझावातसे बचनेके लिये उसके नीचे शरण लेनेको कहा । इस प्रकार उन्होंने सब प्राणियोंकी रक्षा की और अपने बुद्धिकौशलसे इन्द्रको परास्त किया । भगवान्की इस लीलाको देखकर इन्द्र [illegible] हुए और उन्हें अनन्त शक्तिशाली तथा जगदीश्वर समझकर उनसे क्षमा-याचना की ।

श्रीकृष्णकी वयस् उस समय आठ वर्षकी थी । सौन्दर्य एवं लावण्यका एक साथ समावेश उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें हुआ था । सौन्दर्य देवताने अपने ऐश्वर्यभाण्डागारको रिक्त करके उन्हें सुषमामण्डित किया था । कौन ऐसा सहृदय मनुष्य था, जो उस बालकके मनमोहन रूपपर मन-प्राणसे रीझ न जाय ? व्रजवासी तो उनके प्रेममें पागल बनकर सब कुछ उनपर न्योछावर कर चुके थे । उन्होंने अपनी रूपमाधुरीसे, अपने अपार्थिव प्रेमसे गोप-गोपिकाओंके हृदयको जीत लिया था । गोपबालक उन्हें अपना अन्तरङ्ग समझते थे और गोपिकाएँ उन्हें अपना जीवनधन प्रियतम । व्रतके दिनोंमें उपवास रखकर वे देवी-देवतासे वरदान माँगतीं कि श्रीकृष्ण उन्हें पतिरूपमें प्राप्त हों । उनकी मनोकामना पूर्ण हुई और श्रीकृष्ण उन्हें प्रियतम-रूपमें ही प्राप्त हुए । सरल-प्रकृति एवं विशुद्धहृदया गोपबालाओंके अन्तरकी प्रार्थनाको भगवान्ने सुना और उन्हें अपनी लीलासहचरी बनाकर कृतार्थ किया ।

शरत्कालकी ज्योत्स्ना-पुलकित यामिनी । यमुनाका तट । व्रजवल्लभ श्रीकृष्ण वहाँ सघन वृक्ष-लताकुञ्जमें एकाकी बैठे हैं । हाथमें वंशी है । आनन्दमें भरकर उन्होंने वंशीकी मधुर तान छेड़ दी । मधुर वंशीध्वनि चतुर्दिक् मन्द समीरद्वारा फैल गयी । उस संगीतलहरीमें एक अपूर्व उन्मादना थी । चराचर जीव उसे सुनकर स्तब्ध हो गये । यमुना विपरीत दिशामें बहने लगी । आकाशमार्गमें देवताओंके विमान स्थगित हो गये । और व्रजबालाएँ ? वे तो उस विमोहनकारी स्वर-लहरीको सुनते ही अपनी सुध-बुध खो बैठीं । जो जिस अवस्थामें थी, उसी अवस्थामें अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये दौड़ पड़ी । कोई अपनी गोदके शिशुको दूध पिला रही थी, कोई अपने घरके गुरुजनको भोजन परोस रही थी, कोई रसोई बना रही थी, कोई शृङ्गार कर रही थी, कोई पतिसेवामें लगी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं; किंतु उस प्राणोन्मादक संगीतके माधुर्यसे वे आत्म-विस्मृत बन गयीं। उसके आकर्षणको वे रोक न सकीं और माता-पिता, भाई, पति तथा अन्य गुरुजनोंके निषेध एवं तिरस्कारकी उपेक्षा करके अपने आराध्यके दर्शनोंके लिये चल पड़ीं। श्रीकृष्णके समीप जब वे उपस्थित हुईं, उन्होंने सहज ही यह जान लिया कि ये व्रज-सुन्दरियाँ उनके प्रति अनन्य प्रेम तथा मधुर वंशीध्वनिसे आकृष्ट होकर वहाँ उनसे मिलने आयी हैं। फिर भी उन्होंने उनके प्रेमकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने व्रजाङ्गनाओंसे अपने-अपने घर लौट जानेके लिये कहा—इस प्रकार रात्रिमें वहाँ अकेली आनेके लिये उनकी मृदु भर्त्सना की और शास्त्रवचन सुनाकर उन्हें गृहस्थधर्म-पालनका उपदेश दिया। श्रीकृष्णके उपदेशको सुनकर विमुग्ध बालाओंका हृदय विदीर्ण हो गया। वे भावावेगमें आकर रो पड़ीं और श्रीकृष्णसे कहने लगीं—'श्रीकृष्ण! तुम हमारे इष्टदेव हो, आराध्यदेवता एवं अन्तरात्मा हो। तुम्हें अपना जीवन-सर्वस्व जानकर हमने मनःप्राण तुममें ही समर्पित कर दिये हैं। हमारे मनमें अन्य कोई कामना या वासना नहीं है। अपने अपार्थिव प्रेमद्वारा तुमने हमारा चित्त हरण कर लिया है। अबतक हमने तुम्हारा दिव्य साहचर्य लाभ किया है, तुम्हारे प्रति ही हम अहर्निश ध्यानस्थ रही हैं। निष्ठुर बनकर हमें ठुकराओ नहीं। हमपर कृपा करो।'

**'मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसम्'**

गोपियोंके इस एकनिष्ठ प्रेमको देखकर श्रीकृष्ण उनके प्रति प्रसन्न हुए और उनके साथ रासलीला की। प्रेमास्पदा गोपाङ्गनाओंको मानवशरीरधारी भगवान्‌का साक्षात् सांनिध्य प्राप्त हुआ।

श्रीमद्भागवतकी 'रासपञ्चाध्यायी' में लिखा है—

**रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।**
**योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः॥**

'गोपियोंके मण्डलसे मण्डित होकर जितनी गोपसुन्दरियाँ वहाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके श्रीकृष्ण उनके साथ रासलीलामें प्रवृत्त हुए।'

**कृत्वा तावन्तमात्मानं यावती गोपयोषितः।**
**रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया॥**

'रासमण्डलमें जितनी गोपियाँ नृत्य करती थीं, भगवान्‌ने उतनी ही संख्यामें रूप धारण करके उन ललनाओंमेंसे प्रत्येकके साथ विहार किया।'

जो अच्युत, आत्माराम, अकाम, निष्काम एवं आप्तकाम थे, उन्होंने 'योगमाया' का आश्रय ग्रहण करके रमणकी इच्छा की—

**भगवानपि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः।**
**वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥**

मल्लिकाकी सुरभिसे आमोदित शारदीया पूर्णिमाकी रात्रिमें भगवान्‌ने अपनी योगमाया मुरलीपर मधुर गान किया—

**'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।'**

और उस संगीतको सुनकर श्रीकृष्णापहृतचित्ता गोपियाँ उस ओर चल पड़ीं। इस रासलीलाके सम्बन्धमें शुकदेवजीकी उक्ति है—

**उक्तं पुरस्तादेतत् ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः।**
**द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः॥**
**कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।**
**नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥**

'शिशुपालने भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष करके जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की, यह मैं पहले ही कह आया हूँ। उन हृषीकेशको गोपियोंने कामभावसे भज करके यदि उनका सायुज्य प्राप्त किया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! काम, क्रोध, मद, स्नेह, ऐक्य, सौहार्द—इनमें एकको भी जो भगवान् हरिको सम्पूर्ण रूपसे अर्पित कर देते हैं, वे अवश्य ही उनमें तल्लीन हो जाते हैं।'

श्रीकृष्णकी यह रासलीला भागवती लीला है। यह एक आध्यात्मिक रूपक है। साधारण जनोंके लिये इसके तत्त्वकी यथार्थ उपलब्धि करना असाध्य है। जो प्रेममार्ग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साहसिक पथिक ( Adventurous souls ) हैं, जो प्रकृत 'रसिक' हैं, जिनका 'श्रीहरिस्मरणे सरसं मनः' है—ऐसे जन ही रासविहारीकी इस रासलीलाका रसास्वादन करके अपनी मन-बुद्धिको विशुद्ध बना सकते हैं। यह 'कामगन्धहीन प्रेम' है। इसमें कामका अणुमात्र भी लेश नहीं है। आठ वर्षकी अवस्थामें बालक श्रीकृष्णकी यह लीला सर्वथा अलौकिक एवं प्रेमोत्सव Carnival of Love है। यह आत्मा-परमात्माके मिलनकी रहस्यानुभूतिका आत्यन्तिक सुख—Ecstasy of mystical sensation है। गोपाङ्गनाएँ श्रद्धा-भक्तिकी प्रतिमूर्ति थीं। श्रीकृष्ण उनके आराध्य देवता थे। श्रीकृष्णने उन बालाओंमें सर्वानुस्यूत आत्माका दर्शन किया था। गोपियोंका प्रेम भी उनके प्रति विशुद्ध था। इसलिये इस भागवती लीलाको देहबुद्धिद्वारा हृदयंगम नहीं किया जा सकता।

# हमारे वितरण

( लेखक—पं० श्रीरूपनारायणजी चतुर्वेदी )

भारतकी अनोखी परम्पराओंकी संक्षिप्त झाँकी करा देना ही इस लेखका लक्ष्य है। भारतीय मानव-जीवन कितना वैराग्यमय, साधनासम्पन्न और व्यवस्था-परिपूर्ण था—इस-पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। क्या राजा और क्या साधारणजन, सबका लक्ष्य आत्मरति था। दूसरोंकी सेवा किये बिना वे अपनेको वह अन्न-ग्रहण करनेका अधिकारी नहीं मानते थे। निर्लेपभाव यह था कि माता सबेरे बालकको दूध पिलाकर कहीं भी खेतके सहारे पड़ा छोड़ देती थी—प्रकृतिकी गोदमें, और स्वयं तन्मय होकर खेत-खलिहान या झोंपड़ेमें काम करने लग जाती थी। धूल-धूप, आतप-वर्षा और खुली हवामें पलकर बालक बड़ा होता था और भला-भोला नागरिक बनता था।

कहनेकी बात तो यह थी कि वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ऊँचे वर्णके और शूद्र नीचे वर्णके समझे जाते थे; पर लोकसेवक तो प्रत्येक वर्ग ही था। ब्राह्मणकी तो अपनी आवश्यकताएँ ही सबसे कम थीं। जीवनभर विद्या और ज्ञानका अर्जन तथा दान ही उसका धर्म था और लोकाचरणको यह वर्ग दिशा देता था, मानव-मनकी उलझनोंको सुलझाता था और सबके आनन्द एवं मङ्गलकी व्यवस्था करता था। इस बातपर आगे और प्रकाश डाला जायगा। क्षत्रिय था—राजपुत्रवर्गमेंसे। जहाँ उसका काम हुकूमत करना था, वहाँ जनताके धन और जनकी सुरक्षा करना भी उसका धर्म था। बल-विक्रम, शक्ति, शौर्य, उदारता और मानवोचित व्यवहार तथा शस्त्र-संचालन-नैपुण्य उसके सहज गुण थे। वैश्य खेती करता, पशुपालन करता और व्यापार-व्यवस्था करता था। उसका धर्म था चारों वर्णोंकी उदर-पूर्ति और धर्माचरण-संयुत लेन-देन। शूद्रवर्ग तो था ही सबका सेवक, पर सेवा भी एक धर्माचरण था और सेवा करनेकी भी अपनी गतिविधि थी।

हममें किसीके विनाशकी भावना नहीं थी, उत्पादन और निर्माणके भाव थे। लोकरक्षण हमारा सहज गुण था। जंगल तैयार होते थे, बाग लगाये जाते थे, सड़कोंके किनारे वृक्षारोपण होता था और खेतमें लगे वृक्ष भी काटे नहीं जाते थे। मुख्य-मुख्य वृक्ष, जिनमें तैलांश अधिक था, छाया-प्रदानकी सामर्थ्य थी और जो दीर्घजीवी थे, उनको देवताओंकी श्रेणीमें रखकर जल दिया जाता था—जैसे वट, पीपल, नीम, आम, बेल, आँवला इत्यादि। तुलसीमें ओषधिके गुण हैं, उसमें जल दिया जाता था। सरिताओंपर घाट और पुल बनाये जाते थे, उनको गहरे करनेकी व्यवस्था चलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती थी और तटपर शुद्धिके विचारसे आश्रम, क्षेत्र और उद्यान प्रस्तुत किये जाते थे। पर्वतोंपर मन्दिर बनते थे, जलाशय ढूँढ़े जाते थे और सड़कें बनायी जाती थीं गिरि-आश्रमोंतक पहुँचनेके लिये। यहीं तक नहीं, वातावरणके परिष्कारकी क्रियाएँ भी चलती रहती थीं। कहीं सुमधुर गायन होते थे, कहीं वेदमन्त्रोच्चारण होते थे और कहीं भजन-कीर्तन होते थे। अनेकानेक हवनोंद्वारा निर्मित सात्त्विक घन सुधाधारा बरसाते थे। मधुर भाषण और प्रेमाचरणका बोलबाला था। सत्य और सद्व्यवहार जीवनका महत्त्व-क्रम था।

हम मानव एक प्रकारसे जड-चेतनके संरक्षक और परिपालक थे। आखेट, मृगया होते थे—वास्तवमें हिंसक जन्तुओंपर मानवकी विजय घोषित करनेके लिये। वैसे राजाके यहाँ बड़े-बड़े लखपेड़े बाग तैयार होते थे। उद्यान, वाटिकाएँ और अमराइयाँ तैयार होती थीं। लाखों-करोड़ों गौएँ दानके लिये सुरक्षित रहती थीं। गाय-बैल, हाथी-घोड़े, ऊँट-खच्चर, कुत्ते, भैंसे, मेढ़े इत्यादि पाले जाते थे; और तोता-मैना, बाज-बुलबुल, मुर्गे-मछली इत्यादि भी रहते थे। बटेर, तीतर, मोर, चकोर, सारस, कबूतर आदि भी पलते थे। कुछका प्रयोग सेवामें, सामग्री ढोनेमें होता था। कुत्ते और बाज शिकारमें काम देते थे। इस रूपमें बहुसंख्यक पशु-पक्षियोंका पालन राजा करता था। प्रजाद्वारा भी कुत्ते, बिल्ली, चूहे, खरगोश, मछली, कछुआ, गधा, खच्चर, घोड़ा, गाय, बैल, भैंस, बकरी, लालमुनियाँ, तीतर, बटेर इत्यादि पाले जाते थे। फिर बड़े-बड़े अजायबघरोंमें अजगर, मगर, हिरन, नीलगाय, गैंडा, सुअर, शेर, चीता, भालू, वनमानुस और भाँति-भाँतिके पक्षी रक्खे जाते थे। कहीं चिड़ियोंको जल पिलानेकी व्यवस्था थी, कहीं कबूतरोंको जुवार डालनेका नित्यनियम था, कहीं चींटियोंको आटा और शक्कर डाली जाती थी, कहीं मछलियोंको राम-नामकी गोलियाँ खिलायी जाती थीं, कहीं गायको लोई और गोग्रास खिलाया जाता था और कहीं कुत्ते और कौओंको बचा कौर और जूठन डाली जाती थी। और कहीं चीलोंको बड़े डाले जाते थे। इस प्रकार अनेकानेक पशु-पक्षियोंका पालन होता रहता था।

राजाके यहाँ सदाव्रत बँटता था, यज्ञ और भोज होते थे, अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवा होती थी, गरीबोंको धन, अन्न और वस्त्र दिये जाते थे और विशेष अवसरोंपर विशेषदान ( तुलादान इत्यादि ) होते थे। राजकोषसे नित्य ही कुछ धन संस्थाओंपर, स्नातकोंपर, पुजारियोंपर, देशके विविध निर्माणकार्योंपर और कन्याविवाहपर व्यय होता था। जाड़ोंमें कपड़े बाँटे जाते थे, अकालके समय अन्न बाँटा जाता था और गुजारेके लिये जमीनें दी जाती थीं। राजा अकेले कभी भोजन नहीं करता था। जनताको उद्योगधंधे दिलानेके लिये नहरों, सड़कों, कुओं, तालाबों, इमारतों, पुलों, घाटों, क्षेत्रों इत्यादिका निरन्तर निर्माण होता रहता था। वाणिज्य-व्यवसाय होता था, यातायात चलता रहता था और नये उपनिवेश बसाये जाते थे और यह सोचा जाता था कि कहाँ किसको कितनी संख्यामें बसाना है। भूमिके किसी भागपर अत्यधिक भार नहीं डाला जाता था। वैसे राजधानियों और व्यावसायिक केन्द्रोंकी छटा निराली थी। जनताको काममें लगाये रखनेका एक और साधन था। मेले, पर्व, उत्सव तो होते ही थे, तीर्थ-यात्राएँ और देशाटन भी बहुत होते थे। उन स्थान-विशेषोंकी व्यवस्थाका काम, सड़कोंकी मरम्मत, धर्मशालाओंका प्रबन्ध, सुरक्षा-साधन-सामग्री और मन्दिरों आदिका जीर्णोद्धार—ये काम पर्याप्त थे। राजाके चाकर, फौज, सिपाही, दर्बारी तो थे ही, पहलवानों, पण्डितों, गायकों, कवियों और कलाकारोंका पालन भी होता रहता था।

देखना यह है कि एक ठौरपर अधिक भार न होने पाय, इसके लिये जनताके सहयोगका क्या प्रकार था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्यता यह थी कि संतानकी आवश्यकता है केवल वंश चलानेके लिये, पितरोंको पिण्ड-जल देनेके लिये और लोक-रक्षणके लिये। इसलिये सद्‌गृहस्थ अधिक संततिके लिये लालायित न था। आश्रम-व्यवस्थाके अनुसार चार वर्षतक तो बालक माता-पिताके संरक्षणमें रहता था। तदनन्तर गुरुकुल भेज दिया जाता था, जहाँ उसकी शिक्षा-दीक्षाका भार आचार्योंपर रहता था। घर रहते हुए बालक कम भोजन करता था, छोटे वस्त्र पहनता था और उसकी आवश्यकताएँ स्वल्प थीं। इसके माता-पिता प्रायः लोकसेवामें ही निरत रहते थे और स्वेच्छासे बालक प्रकृतिकी गोदमें पलता-खेलता था और शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य लाभ करता था। आश्रममें भी बालककी आवश्यकताएँ सीमित तथा सूक्ष्म थीं। वह लँगोटी और कौपीन धारण करता, एक समय भिक्षाटन करता और स्वाध्याय तथा गुरु-सेवामें लगा रहता था। परिपक्व और पूर्ण युवा होकर पचीस वर्षकी अवस्थामें जब वह गुरुकुलसे आता था, तब महात्माओंका तेज उसके मुखपर विराजता था और शास्त्रमें पारंगत एवं लोक-रक्षक होकर चलता था। तब उसका विवाह होता था। इस रूपमें बाल-विवाह नहीं होते थे। हर कुटुम्बसे कम-से-कम एक आदमीको राज-काज करना पड़ता था या फौजमें जाना पड़ता था। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' समझकर उसे इहलोक और परलोकका ध्यान रखना होता, माता-पिता और कुटुम्बियोंकी सेवा करनी पड़ती, दान और अतिथि-सत्कार करना होता और धर्म-यात्राओंके लिये धन-संचय करना पड़ता था। यह सब करते-करते ही गृहस्थाश्रम समाप्त हो जाता था और स्त्रीको साथ ले वह तीर्थाटनको निकल पड़ता था।

वैसे उस युगमें धनका प्रयोग इतना न था, जितना आज है। आदान-प्रदानकी व्यवस्था दूसरी थी। यात्राएँ बहुत होती थीं, पर बहुधा पैदल या घोड़ोंपर ही होती थीं। घोड़ों, ऊँटों, खच्चरों या बैलोंपर भी सामान लदकर चलता था या बैलगाड़ियोंपर। पर बैलगाड़ियाँ थोड़ी थीं और मार्ग भी कम थे। एक वस्तुके बदले दूसरी प्राप्त होती थी और अनाजके बदलेमें तो प्रायः सारी ही वस्तुएँ उपलब्ध थीं। गङ्गा-स्नानके पर्व होते थे, जहाँ एक-दो महीने मेले पड़े रहते थे, ज्ञानचर्चा और प्रवचन होते थे। संयमित जीवन चलता था और वृत्ति सात्त्विकी हो जाती थी। फिर देशके एक भागसे दूसरे भागकी यात्राएँ होती थीं और व्यापार-व्यवसाय होते थे। दूरी इन यात्राओंमें कभी बाधक नहीं होती थी। मनुष्य पुरुषार्थी और घुमक्कड़ था। इस रूपसे उसे देश और समाजका ज्ञान होता था और सर्वत्र संस्कृतिकी एकता स्थापित रहती थी। एक ओर जहाँ सहसंसर्ग होता था, वहाँ दूसरी ओर संगृहीत वस्तुओंका वितरण। धर्म, प्रथाओं, ज्ञान और लोकाचारका आदान-प्रदान और ऐक्य, उत्साह तथा आनन्दका वर्धन होता था। मनुष्यमें साहस और आत्मनिर्भरताके भाव उदित होते थे। वह अपना ज्ञान देता था और दूसरोंका लेता था। ऐसी यात्राएँ प्रायः दलोंमें होती थीं, जिसमें स्त्री-पुरुष सम्मिलित रहते थे और लोकनृत्यों तथा लोकगीतोंकी परम्परा चलती रहती थी।

पुरुषमें सहज वैराग्यकी भावना समाहित थी। लोकरक्षणार्थ उसके लिये कुछ भी अदेय नहीं था। यदि वह समर्थ था और धनपति था तो बहुधा क्षेत्रविशेषमें धर्मशाला, अनाथाश्रम, मठ, घाट, देवालय, पुस्तकालय, पाठशाला, गोशाला इत्यादि स्वाभाविक ही बनवा देता था। राजा कभी-कभी महात्माओंकी सिद्ध वाणी सफल करनेके लिये राजकोष लुटा देता था। पर उसके खजानेमें कमी नहीं आती थी। रोगीकी परिचर्या और जड़ी-बूटियोंका प्रयोग तो घरकी स्त्रियाँ और एक सामान्य पथिक भी जानता था। व्यापारमें सर्वत्र धर्मखाते और धर्मगोले खुले हुए थे और व्यापारका क्रम था 'भूल-चूक लेना-देना।' बही-खातोंमें झूठ लिखना---सफेदपर काला लिखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गो-हत्याके समान माना जाता था। इस प्रकारसे सहज ही जन, मन, धनका आदान चलता रहता था। वर्षमें एक बार तो सभी अपना घर छोड़ देते थे और गङ्गावास या तीर्थाटन करते थे और अपना अनुभव, ज्ञान और अर्जन वितरित कर डालते थे। 'यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है। कुछ भी साथ नहीं जायगा। भगवान् ही सब कुछ है। आत्मा अमर है।' यह सहज सबकी मान्यता थी।

# ईश्वर एक और अनन्त है

एक जलती उदबत्तीको ध्यानपूर्वक देखनेसे भाव होता है कि हमारे जीवनको भी सत्कर्मोंमें रत रह सुरभि सलाकाके समान सांनिध्य सुवासितकर शान्त हो जाना है। एक बात निश्चित है—

पल-पल उड़तो जीवनकी धूल।

प्रारम्भमें एक नदी अपने संकीर्ण तटोंमें कितने वेगसे बहती है, प्रवाहमें चट्टानें भी नहीं ठहरतीं। और फिर वही नदी अपनेको उन प्रिय तटोंसे कितनी दूर पाती है, धार शिथिल हो जाती है और फिर अन्तमें सहसा वह महासिन्धुमें लीन हो जाती है। 'सहसा खो जाती महासिन्धुको पाकर।' पर इसकी चिन्ता क्यों और कैसे? जब यह अन्त निर्विवाद है—

धराको प्रमाण यही तुलसी,<br>
जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।

फिर भी अनुभवजनित प्रज्ञाके इस निर्देशनको भुलाकर हम नित्यके व्यवहार-जगत्‌में सब प्रकारके क्षुद्र अहंकी परिधिमें ही भटकते रहते हैं। विराट् चेतनके महान् संकेतोंको नहीं लख पाते। अतीतकी आत्मकथामें ही खोये रहते हैं। भविष्यके आह्वानको सुन नहीं पाते। शिलालेख तो स्वयमेव बन जाते हैं, पर हमारी दृष्टि तो निर्माण-शिखरके कलशपर ही अर्जुनकी तरह रहनी चाहिये। कलश क्या अभीतक नहीं थे या निर्माण किसी युगमें नहीं हुआ? पर फिर भी हमारी अपनी एक विशेषता है, इस महाराष्ट्रमें अपनी एक इकाई है।

दूर क्षितिजके पार जाते अंशुमालीको टिमटिमाते एक क्षुद्र मिट्टीके दीपकने आश्वासन दिया, 'महातेज! तुम भारमुक्त होकर नियतिकी निर्धारित बेलातक विलयकी परिधिके पार जाओ, मैं भरसक तुम्हारे उत्तरदायित्वका निर्वाह करूँगा और उसी क्षण पृथ्वीमें एक कोनेसे तम निष्कासित हो गया। प्रकाश फैलानेके इस महत्-कार्यमें दीपकको वह क्षण विस्मृत हो गया। पर रात्रिकी गहन नीरवतामें किसी निर्दय झकोरेने उस दीपकका महातेजके उत्तराधिकारी होनेका मान छीन लिया! भावका ही नहीं, मानवद्वारा रचित प्रयासोंका भी तो यही अन्त होता है और फिर अपनी विवशतासे जूझता मानव पहाड़ोंके शिखरतक पहुँचता है। कस्तूरी-मृग-सा, अपनेको ही भ्रमित करनेवाली नयन-मरीचिकाके पीछे निरन्तर दौड़ता रहता है, अपनी ही शंकाका समाधान चाहता है। क्या वह समाधान पा लेता है! क्या वह अपने लक्ष्योंको प्राप्त कर लेता है? एक दिन सहसा महानिर्वाणका वह पल आ धमकता है, जब उसे लगता है, कुछ समय मुझे और मिलता तो अच्छा था, पर किससे माँगता है वह अधिक समय! किसीके सामने वह अपनी पराजय मान समर्पित हो जाता है एक व्यथा लिये। काश! मैं इस शक्तिके सम्मुख समय रहते ही समर्पण करता।

कहीं ऐसा होता तो मैं भी त्रेताके त्राणदायककी यह वाणी सुन लेता—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अचल करहुँ तनु राखहु प्राना ।'

क्या उसने जीवन और मृत्युकी संधिवेलामें स्थितके दोनों तटों ( मरणके पूर्व और मरणोत्तर ) से नहीं पुकारा 'यह सत्य मानो भक्त मेरा होता है नहीं' । क्या उसने युग-युगमें अर्जुनके माध्यमसे यह आश्वासन नहीं दिया ?—

**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥**

यदि मैं तुमतक भौतिक चेतनताको लिये न पहुँच पाऊँगा तो मेरी इस आराधनाको निरखनेवाले निराश हो जायँगे । केवल एक इसी भावसे मैं यदा-कदा विह्वल हो उठता हूँ । तुम्हें निष्ठुर निर्मोही ठहराने लगता हूँ । पर सबसे अपनी प्रतीति तो तुम्हें ही रखना है । मैं कबतक तुम्हारे विद्यमान होनेके प्रमाण एकत्रित करता रहूँगा ।

अन्धकारके उस क्षणमें जब स्वयं महाकालने सतीकी पार्थिव संज्ञाको काँधेपर लिये चारों दिशाओंको भयभीत किया था, तब तुम ही नभ-वाणी बन अकस्मात् उतर आये थे और महारुद्रने तब इसी भूमण्डलके किसी शैल शिखरपर जाकर समाधि ली थी ।

उसी समाधिसे महाप्रभु जागो, देखो, हमने तुम्हारी पूजाके लिये कितने कमलपुष्प संगृहीत किये हैं, बहुजन-हिताय बहुजनसुखायकी भावनासे प्रेरित होकर तुम्हारे द्वारपर भावनाओंका तोरण सजाया है । यदि तुम न आओगे तो अपने साथियोंको यह कहकर लौटा देंगे—

'दीप शिखा यदि जल न सके
तो तुम अधीर न होना ।'

पर ज्योतिके सनातन स्रोत ! क्या तुम हमपर अपनी सत्कृपाकी वर्षा न करोगे ? मैं अपने विकल मनको कैसे समझाऊँगा, जब वह पूछेगा—'वे पुष्प कहाँ गये ? क्या हमारे आँसुओंसे तुम्हारा अभिषेक नहीं हुआ ? चित्रकूट तो आज भी भरतके विश्वाससे प्रतिध्वनित है,

आपन जानि न त्यागिहैं
मोहि रघुबीर-भरोस ।

—अज्ञात

---

# असली धनसम्पत्ति

**प्रेम-भजन ही असली धन है, दैवी सम्पद् ही सम्पत्ति ।**
**विषयवासना ही दरिद्रता, प्रभु-पद-विस्मृति घोर विपत्ति ॥**
**ऊँचा पद अधिकार उच्च अति, प्रभु-पद-सेवाका अधिकार ।**
**जगका पद-अधिकार बनाता दुर्मद जो, अपवित्र विकार ॥**
**शुचिता-सुन्दरता-विनम्रता-सत्य-अहिंसा-दैन्य-अमान ।**
**अशुचि-असुन्दरता अति—अविनय-मिथ्या-हिंसा-मद-अभिमान ॥**
**वही सफल जीवन, जो पाता पावन प्रभु-पद-पंकज-प्रेम ।**
**असफल वह जो भोग जगत्के पाता मिथ्या योगक्षेम ॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीराधा-नाम-रूप-महिमा और राधा-प्रेमका स्वरूप

[ श्रीराधाष्टमी-महोत्सव संवत् २०१९ ) पर गीतावाटिका, गोरखपुरमें हनुमानप्रसाद पोद्दारके भाषण ]

( दिनका प्रवचन )

पूर्णानुरागरससमूर्तितडिल्लताभं
ज्योतिः परं भगवतो रतिमद्रहस्यम् ।
यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानुगेहे
तत्किंकरीभवितुमेव ममाभिलाषः ॥

प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं शृङ्गारलीलाकला-
वैचित्रीपरमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता ।
ईशानी च शची महासुखतनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा
श्रीवृन्दावननाथपट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ॥

बंदौं राधा-पद-कमल अमल सकल सुखधाम ।
जिन के परसन हित रहत लालाइत नित स्याम ॥
जयति स्याम-स्वामिनि परम निरमल रस की खान ।
जिन पद बलि बलि जात नित माधव प्रेम-निधान ॥

आज श्रीराधाजन्माष्टमी है। आजके ही मङ्गलमय दिवस साक्षात् सच्चिदानन्दरसविग्रहा, आनन्दांशघनीभूता, आनन्दचिन्मय-रसप्रतिभाविता, मन्मथ-मन्मथ-मन्मथा, परमानन्द-परमानन्ददायिनी, रसिकेन्द्र-शिरोमणि-रसप्रदायिनी, रसिकेन्द्रेश्वरी, साक्षात् ह्लादिनी श्रीराधिकाजीका वृषभानुपुरमें मङ्गलमय प्राकट्य हुआ था। परम और चरम त्यागका, सर्वसमर्पणमय उज्ज्वलतम प्रेमका, स्व-सुखवाञ्छा-विरहित प्रियतम-सुखेच्छामय स्वभावका और अहंकी चिन्ता, मङ्गलकामना ही नहीं, अहंकी स्मृतिसे भी शून्य प्रियतम-स्मृतिमय जीवनका कैसा स्वरूप होता है—श्रीराधाने अपने प्रत्यक्ष जीवनसे इसका एक नित्यचेतन क्रियाशील मूर्तिमान् उदाहरण उपस्थित करके जगत्के इतिहासमें एक अभूतपूर्व दान किया है। इस महान दानका मङ्गलमूल आजका ही मङ्गलमय दिन है। इसलिये यह दिन धन्य है। यह भारतवर्ष धन्य है और इसके निवासी हमलोग भी धन्य हैं, जो आज श्रीराधाके प्राकट्य-महोत्सवके उपलक्ष्यमें उनका मङ्गलमय स्मरण कर रहे हैं। वे श्रीराधाजी क्या हैं, इसका वास्तविक उत्तर तो वे स्वयं या उनके अभिन्नस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण ही दे सकते हैं। हमलोग तो शास्त्रों, महात्माओं, संतों, साधकों और इस रससागरमें अवगाहन करनेवाले अनुभवी प्रेमीजनोंके वचनोंके आधारपर ही श्रीराधारानीका किंचित्-सा स्मरण करके धन्य हो जाते हैं।

श्रीराधारानीके प्रसिद्ध सोलह नाम पुराणोंमें आते हैं। यहाँ हम उन नामोंका जयघोष करें तथा उनका अर्थ समझनेका किंचित् प्रयास करें।

जय जय 'राधा', 'रासेश्वरि', जय 'रासवासिनी', जय जय जय।
'रसिकेश्वरी', जयति जय 'कृष्णप्राणाधिका' नित्य जय जय॥
'कृष्णस्वरूपिणि', 'कृष्णप्रिया' जय 'परमानन्दरूपिणी' जय।
'कृष्ण-वाम-अँग-सम्भूता' जय 'कृष्णा', 'वृन्दा' जय जय जय॥
'वृन्दावनी' जयति जय 'वृन्दावनविनोदिनी' जय जय जय।
'चन्द्रावति' 'शतचन्द्रनिभ-मुखी' 'चन्द्रकान्ता' जय जय जय॥

श्रीराधाजीके राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णा, परमानन्दरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रप्रभानना—ये सोलह नाम प्रसिद्ध हैं। इन्हें साररूप मानते हैं।

वे सम्पूर्णरूपसे सहज ही कृतकृत्य हैं, सिद्ध हैं; इससे उनका नाम 'राधा' है। अथवा 'रा' का अर्थ है देना और 'धा' का अर्थ है—निर्वाण। अतः वे मोक्ष—निर्वाण देनेवाली हैं, इससे राधा कहलाती हैं। वे रासेश्वर श्यामसुन्दरकी अर्धाङ्गिनी हैं अथवा रासकी सारी लीला उन्हींके मधुरतम ऐश्वर्यका प्रकाश है; इसलिये वे 'रासेश्वरी' कहलाती हैं। नित्य रासमें उनका नित्य-निवास है, अतएव उनको 'रासवासिनी' कहते हैं। वे समस्त रसिक देवियोंकी सर्वश्रेष्ठ स्वामिनी हैं; अथवा रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण उनको अपनी स्वामिनी मानते हैं, इसलिये वे 'रसिकेश्वरी' कहलाती हैं। सर्वलोकमहेश्वर, सर्वमय और सर्वातीत परमात्मा श्रीकृष्णको वे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इसलिये उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' कहा जाता है। वे श्रीकृष्णकी परम वल्लभा हैं या श्रीकृष्ण उन्हें सदा परम प्रिय हैं, अतएव उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहते हैं। वे स्वरूपतः—तत्त्वतः श्रीकृष्णसे सर्वथा अभिन्न हैं, समग्ररूपसे श्रीकृष्णके समान हैं एवं लीलासे ही वे श्रीकृष्णका यथार्थ स्वरूप धारण करनेमें भी समर्थ हैं; इसलिये वे 'कृष्णस्वरूपिणी' कहलाती हैं। वे परम सती एक समय श्रीकृष्णके वाम अर्धाङ्गसे प्रकट हुई थीं, इसलिये उनको 'कृष्णवामाङ्गसम्भूता' कहते हैं। भगवत्स्वरूपा परमानन्दकी राशि ही उन परम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतीशिरोमणिके रूपमें मूर्तिमती हुई हैं, अथवा जो भगवान्‌की अभिन्न परम-आनन्दस्वरूपा आह्लादिनी शक्ति हैं; इसीसे उनका एक नाम 'परमानन्दरूपिणी' प्रसिद्ध है। 'कृष्' धातु मोक्षवाचक है, 'न' उत्कृष्टका द्योतक है और 'आ' देनेवालीका बोधक है; इस प्रकार वे श्रेष्ठ मोक्ष प्रदान करती हैं अथवा वे श्रीकृष्णकी ही तत्त्वतः नित्य अभिन्न परंतु लीलासे भिन्नस्वरूपा हैं। अतः उनको 'कृष्णा' कहते हैं। 'वृन्द' शब्द सखियोंके समुदायका वाचक है और 'अ' सत्ताका बोधक है। सखीवृन्द उनका है—वे सखीवृन्दकी स्वामिनी हैं, इसलिये 'वृन्दा' कहलाती हैं। वृन्दावन उनकी मधुर लीलास्थली है, विहारभूमि है; इससे उन्हें 'वृन्दावनी' कहा जाता है। वृन्दावनमें उनका विनोद ( मनोरञ्जन ) होता है, अथवा उनके कारण समस्त वृन्दावनको आमोद प्राप्त होता है, इसीलिये वे 'वृन्दावनविनोदिनी' कहलाती हैं। उनकी नखावली चन्द्रमाओंकी पंक्तिके समान सुशोभित है अथवा उनका मुख पूर्णचन्द्रके सदृश है, इससे उनको 'चन्द्रावती' कहते हैं। उनके दिव्य शरीरपर अनन्त चन्द्रमाओंकी-सी कान्ति सदा-सर्वदा जगमगाती रहती है, इसीलिये वे 'चन्द्रकान्ता' कही जाती हैं और उनके मुखपर नित्य-निरन्तर सैकड़ों चन्द्रमाओंकी ज्योत्स्ना झलमल करती रहती है, इसीसे उनका नाम है 'शतचन्द्रनिभानना'।

भगवान् श्रीकृष्णकी प्राणाधिका, उनके परमानन्दकी प्रत्यक्ष मूर्ति राधाके इन नामोंकी इस संक्षिप्त व्याख्यासे हमें राधाके महत्त्वका कुछ परिचय प्राप्त होता है। राधा वास्तवमें कोई एक मानवी नारीविशेष नहीं हैं। ये भगवान्‌की साक्षात् अभिन्ना शक्ति हैं। इनके सङ्गसे ही भगवान्‌में सर्वशक्तिमत्ताका प्रकाश होता है। भगवान् श्रीकृष्णने एक जगह कहा है—

राधा बिना अशोभन नित मैं रहता केवल कोरा कृष्ण।
राधा-सङ्ग सुशोभित होकर बन जाता हूँ मैं 'श्रीकृष्ण'॥
राधा बिना बना रहता मैं क्रियाहीन निश्चल निःशक्त।
राधा सङ्ग बनाता मुझको सक्रिय सचल अपरिमित शक्त॥
राधा मेरी परम आत्मा जीवन-प्राण नित्य आधार।
राधासे मैं प्रेम प्राप्त कर करता जन-जनमें विस्तार॥
मैं राधा हूँ, राधा मैं है, राधा-माधव नित्य अभिन्न।
एक, सदा ही बने सरस दो करते लीला ललित विभिन्न॥

राधाके बिना मैं नित्य ही श्रीशोभाहीन केवल निरा कृष्ण रहता हूँ पर राधाका सङ्ग मिलते ही सुशोभित होकर 'श्री'-सहित कृष्ण—श्रीकृष्ण बन जाता हूँ। राधाके बिना मैं क्रियाहीन, निश्चल और शक्तिशून्य रहता हूँ; पर राधाका सङ्ग मिलते ही वह मुझे क्रियाशील ( लीलापरायण लीला-विग्रह ), परम चञ्चल और अपरिमित शक्तिशाली बना देता है। राधा मेरी परम आत्मा है; मेरा जीवन है, मेरी प्राणभूता हैं। राधासे ही प्रेम प्राप्त करके मैं उस प्रेमका अपने प्रेमी जनोंमें प्रसार-विस्तार करता हूँ। वास्तवमें मैं ही राधा हूँ और राधा ही मैं है। हम राधा-माधव दोनों सदा अभिन्न हैं। हम सदा एक ही सदा दो बने हुए रसमयी विभिन्न प्रकारकी ललित लीला किया करते हैं।

इतना ही नहीं, राधा मुझे इतनी अधिक प्रिय है कि—

राधासे भी लगता मुझको अधिक मधुर प्रिय राधा नाम।
राधा शब्द कान पड़ते ही खिल उठती हिय-कली तमाम॥
मूल्य नित्य निश्चित है मेरा प्रेम-प्रपूरित राधा नाम।
चाहे जो खरीद ले, ऐसा, मुझे सुनाकर राधा नाम॥
नारायण, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, वाणी मेरे रूप।
प्राण समान सभी प्रिय मेरे, सबका मुझमें भाव अनूप॥
पर राधा प्राणाधिक मेरी अतिशय प्रिय प्रियजन-सिरमौर।
राधा सा कोई न कहीं है मेरा प्राणाधिक प्रिय और॥
अन्य सभी ये देव-देवियाँ बसते हैं नित मेरे पास।
प्रिया राधिकाका है मेरे वक्षःस्थलपर नित्य निवास॥

—उन राधासे भी उनका 'राधा' नाम मुझे अधिक मधुर और प्यारा लगता है। 'राधा' शब्द कानमें पड़ते ही मेरे हृदयकी सम्पूर्ण कलियाँ खिल उठती हैं। प्रेमसे परिपूरित 'राधा' नाम मेरा नित्य निश्चित—सदा बँधा-बधाया मूल्य है। कोई भी ऐसा प्रेमपरिपूर्ण राधा सुनाकर मुझे खरीद ले सकता है। नारायण, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती—सब मेरे ही रूप हैं। ये सभी मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं और इन सबका भी मुझमें बड़ा अनुपम भाव है; परंतु राधा तो मेरी प्राणोंसे भी अतिशय अधिक प्यारी है। वह समस्त प्रिय प्रेमीजनोंकी मुकुटमणि है। राधाके सदृश प्राणाधिक प्रिय दूसरा कहीं कोई भी नहीं है। ये अन्यान्य सभी देव-देवियाँ नित्य मेरे समीप रहते हैं, पर मेरी प्रियतमा राधिका तो सदा-सर्वदा मेरे वक्षःस्थलपर ही निवास करती है।

इस 'राधा' नामका अर्थ और महत्त्व बतलाते हुए शास्त्र कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम् ।
आकाराद् गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत् ॥
धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम् ।
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यन्ति न संशयः ॥

राधा नामके पहले अक्षर 'र' का उच्चारण करते ही करोड़ों जन्मोंके संचित पाप और शुभ-अशुभ कर्मोंके भोग नष्ट हो जाते हैं। आकार ( ा ) के उच्चारणसे गर्भवास ( जन्म ), मृत्यु और रोग आदि छूट जाते हैं। 'ध' के उच्चारणसे आयुकी वृद्धि होती है और आकारके उच्चारणसे जीव भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार 'राधा' नामके श्रवण, स्मरण और उच्चारणसे कर्मभोग, गर्भवास और भव-बन्धनादि एक ही साथ नष्ट हो जाते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं।

रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे ।
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्ध्योघमीश्वरम् ।
धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च ॥
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः समम् ।
आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरे यथा ॥
योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम् ।
श्रुत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालं च किल्बिषम् ॥
रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संशयः ।

'राधा' नामके राकारके उच्चारणसे मनुष्य श्रीकृष्ण-चरणकमलमें निश्चला भक्ति और भगवान्‌के दासत्वको प्राप्त करके समस्त इच्छित पदार्थ, सदानन्द और समस्त सिद्धियोंकी खान ईश्वरकी प्राप्ति करता है। तथा धकारका उच्चारण उसे सार्ष्टि, सारूप्य, भगवान्‌के स्वरूपका तत्त्वज्ञान और समानकाल उनके साथ रहनेकी स्थिति प्रदान करता है। आकार उच्चारित होनेपर शिवके समान औढर-दानीपन, तेजोराशि, योगशक्ति, योगमें मति और सर्वकालमें श्रीहरिकी स्मृति प्राप्त होती है। इस प्रकार राधा नामके श्रवण, उच्चारण, स्मरण और संयोगसे मोहजाल तथा पापराशिका नाश हो जाता है और रोग-शोक मृत्यु यथा यमराज उसके भयसे काँपने लगते हैं।

'रा' शब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः ।
'धा' शब्दोच्चारणात् पश्चाद्धावत्येव ससम्भ्रमः ॥

'रा' शब्दका उच्चारण करनेपर उसे सुनते ही माधव हर्षसे फूल जाते हैं और 'धा' शब्दका उच्चारण करनेपर बड़े सत्कारके साथ उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगते हैं।

'रा' शब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।
'धा' शब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥
'रा' इत्यदानवचनो 'धा' च निर्वाणवाचकः ।
यतोऽवाप्नोति मुक्तिं च सा च राधा प्रकीर्तिता ॥

'रा' शब्दके उच्चारणसे भक्त परम दुर्लभ मुक्ति-पदको प्राप्त करता है और 'धा' शब्दके उच्चारणसे निश्चय ही वह दौड़कर श्रीहरिके धाममें पहुँच जाता है।

'रा' का अर्थ है 'पाना' और 'धा' का अर्थ है निर्वाण मोक्ष। भक्तजन उनसे निर्वाण मुक्ति प्राप्त करता है, इसलिये उन्हें 'राधा' कहा गया है।

आज इन महामहिमामयी राधाजीका प्राकट्य-महोत्सव है। अतः हम राधिकाजीके महत्त्वपर कुछ विचार करके उसे जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करेंगे या करनेका व्रत लेंगे, तभी हमारा यह महोत्सव यथार्थतः सफल होगा। तभी इसका असली लाभ प्राप्त करके हम धन्य हो सकेंगे। इस गोपी-प्रेम या राधा-प्रेममें त्यागकी पराकाष्ठा है। इसीलिये यह प्रेम शिव-नारदादिके द्वारा वाञ्छित, महातपस्वी मुनि महानुभावोंके द्वारा अभीप्सित—यहाँतक कि महान् तपस्याके द्वारा ब्रह्म-विधातकके लिये भी प्राप्तव्य है। विषयासक्त पामरोंकी—जो निषिद्ध भोगोंके उपार्जन-सेवनमें लगे रहते हैं—तो बात ही नहीं है, सकाम वैधकर्मी इह-परके भोगोंकी वाञ्छा करते हैं। योगी चित्तवृत्तिके निरोधके द्वारा परमात्म-ज्योतिका दर्शन करना चाहते हैं, ज्ञानी अहंको बन्धनसे मुक्त करके मोक्ष-सुख पाना चाहते हैं और निष्कामकर्मी अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा ज्ञान प्राप्त करना या नैष्कर्म्य-सिद्धिके द्वारा आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं। इन सभीमें एक स्वार्थ है, अहंके मङ्गलकी एक वासना है—चाहे वह कितनी ही ऊँची हो, कितनी ही दुर्लभ और महान् हो परंतु इस परम प्रेमके साधकोंको तो आरम्भसे ही स्व-सुखवासनाके त्यागका पाठ पढ़ना पड़ता है। अहंकी विस्मृतिकी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। इसका प्रारम्भ होता है 'तत्सुखसुखित्व'की पवित्र भावनासे। भगवान्‌को परम प्रियतम मानकर उनको सुख पहुँचानेवाली त्यागमयी रसमयी कल्पनासे। श्रीराधारानी और उनकी संगिनी गोपाङ्गनाएँ इस रसमय, त्यागमय प्रेमकी परम आदर्श हैं। इस आदर्शको सामने रखकर हम जितना ही स्वार्थ-त्याग करेंगे, जितना ही 'पर'को 'स्व' मानकर प्रेमभरे हृदयसे उसके लिये त्याग करेंगे, उतना ही इस मार्गमें आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ सकेंगे । होते-होते जब भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारे एकमात्र 'स्व' रह जायँगे, तब उनका सुख ही हमारा 'परम स्वार्थ' बन जायगा, तब हमारा प्रत्येक विचार और प्रत्येक कर्म 'भगवत्सुखार्थ' ही होगा । यही गोपीभाव है ।

इस गोपीभावकी जहाँ पराकाष्ठा है और वह पराकाष्ठा भी जहाँ ससीम बनी हुई नित्य असीम अनन्तकी ओर प्रवाहित हो रही है, वह है—श्रीराधाभाव । इस महाभावकी मूर्तिमान् प्रत्यक्ष प्रतिमा ही हैं श्रीराधाजी ।

ये श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं । इनके साथ रमण करनेके कारण ही रहस्यके जाननेवाले मर्मज्ञ विद्वान् श्रीकृष्णको 'आत्माराम' कहते हैं—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥

स्वरूपतः श्रीराधा-माधव सदा एक होनेपर भी वे परस्पर एक दूसरेकी आराधना करते हैं ।

राधा भजति श्रीकृष्णं स च तां च परस्परम् ।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च ॥

राधा श्रीकृष्णकी आराधना करती है और श्रीकृष्ण राधाकी । वे दोनों परस्पर आराध्य-आराधक हैं । संत कहते हैं कि उनमें सभी दृष्टियोंसे पूर्ण समता है ।

'नारदपाञ्चरात्र'में राधाके सम्बन्धमें कहा गया है—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा ॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या राधारूपा च सा मुने ।

जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं, वैसे ही श्रीराधा भी ब्रह्मस्वरूपा, मायाके लेपसे रहित तथा प्रकृतिसे परे हैं । श्रीकृष्णके प्राणोंकी जो अधिष्ठातृदेवी हैं, वे ही श्रीराधा हैं ।

यही बात देवीभागवतमें कही गयी है—

कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः ।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ॥

श्रीराधा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी हैं । इसलिये परमात्मा श्रीकृष्ण उनके अधीन हैं । वे रासेश्वरी सदा उनके समीप रहती हैं । वे न रहें तो श्रीकृष्ण टिकें ही नहीं ।

इतनेपर राधा कभी न तो अपनेको उनके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी मानती हैं और न वे उनके द्वारा आराध्या ही मानती हैं । वे सदा ही विनम्र हृदयसे प्रार्थना करती रहती हैं—

त्वत्पादाब्जे मन्मनोऽलिः सततं भ्रमतु प्रभो ।
पातु भक्तिरसं पद्मे मधुपश्च यथा मधु ॥
मदीयप्राणनाथस्त्वं भव जन्मनि जन्मनि ।
त्वदीयचरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम् ॥
तव स्मृतौ गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् ।
भवेन्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषितम् ॥

(ब्र० कृ० २७ । २३०—२३२)

'प्रभो ! तुम्हारे चरण-सरोजमें मेरा मनरूपी भ्रमर निरन्तर भ्रमण करता रहे और जैसे वह मधुप कमलका मधुपान करता है वैसे ही यह प्रेमरस पान करता रहे । जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरे प्राणनाथ होओ और मुझे अपने पदपङ्कजमें सुदुर्लभ प्रेम-भक्ति प्रदान करो । प्रभो ! मेरे मनकी यही एकमात्र चाह है कि मेरा चित्त स्वप्न और जागरण—सभी अवस्थाओंमें दिन-रात केवल तुम्हारी ही स्मृति और गुणोंमें डूबा रहे ।'

श्रीराधाजीकी इस प्रार्थनाका अनुसरण करते हुए हम भी श्रीराधिकाजीसे ऐसी ही प्रार्थना करें ।

स्यामस्वामिनी राधिके करौ कृपा कौ दान ।
सुनत रहे मुरली मधुर मधुमय बानी कान ॥
पद-पंकज-मकरन्द नित पियत रहैं दृग-भृंग ।
करत रहैं सेवा परम सतत सकल सुचि अंग ॥
रसना नित पाती रहै दुर्लभ भुक्त प्रसाद ।
बानी नित लेती रहै नाम-गुननि-रस-स्वाद ॥
लगौ रहै मन अनवरत तुम में आठौं जाम ।
अन्य स्मृति सब लोप हों सुमिरत छबि अभिराम ॥
बढ़त रहै नित पलहि-पल दिव्य तुम्हारौ प्रेम ।
सम होवैं सब द्वंद पुनि, बिसरैं जोग-च्छेम ॥
चित्त नित्य चिंतन करै तव लीला रस-सार ।
चाखै नित नव बिमल रस पल पल, सबहिं बिसार ॥
बुद्धि सदा बिलसत रहै मुख-सरदिंदु-बिलास ।
नव नव छबि की छबि निरखि बाढ़ै अमित हुलास ॥
मुक्ति-मुक्तिकी सुधि मिटै, उछलैं प्रेम-तरंग ।
राधा-माधव सरस सुधि करै तुरत भव-भंग ॥
बोलो वृषभानुकुमारी श्रीराधारानीकी जय जय जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

( रात्रिका प्रवचन )

कामं तूलिकया करेण हरिणा यालक्तकैरङ्किता
नानाकेलिविदग्धगोपरमणीवृन्दे तथा वन्दिता ।
या संगुप्ततया तथोपनिषदां हृद्येव विद्योतते
सा राधाचरणद्वयी मम गतिर्लास्यैकलीलामयी ॥
कालिन्दीतटकुञ्जमन्दिरगतो योगीन्द्रवद्यत्पद-
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहिता
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा ॥

रसिक स्याम की जो सदा रसमय जीवनमूरि ।
तिन पदपंकज की सतत बंदौं पावन धूरि ॥
जयति निकुञ्जबिहारिनी हरनि स्याम-संताप ।
जिनकी तन छाया तुरत हरत मदन-मन-दाप ॥

परम भक्त-चूड़ामणि और भक्तिके प्रसिद्ध आचार्य देवर्षि नारदजीने श्रीव्रजाङ्गनाओंकी परम प्रेमरूपा भक्तिका स्वरूप बतलाया है—'तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलता' अर्थात् उसमें अखिल आचारता सहज ही समर्पित हो जाती है, अपने पास कुछ भी नहीं रह जाता। सभी दृष्टियोंसे और सभी प्रकारसे परम अकिंचनताका उदय हो जाता है। तब परम प्रियतम श्रीकृष्णकी मधुर मनोहर दिव्य सुधामयी सुख-स्मृति-रूपी मुनि-जन-दुर्लभ एकमात्र परम धनकी प्राप्ति होती है और इस भुक्ति-मुक्तिकी सहज विस्मृतिसे समन्वित प्रियतम-स्मृतिमें कभी कहीं यदि क्षणमात्रके लिये भी रुकावट-सी आती है तो 'परम व्याकुलता' उत्पन्न हो जाती है। जिसकी ऐसी स्वाभाविक स्थिति है, वह है—व्रजगोपी ( यथा व्रजगोपिकानाम् )। इस गोपीभावकी परम मधुर, परम विशद समुज्ज्वल सुधाधारा जिस मूल स्रोतसे प्रवाहित होती है और प्रत्येक धाराका प्रत्येक सुधाकण जिस नित्यप्रवाही सुधा-रसार्णव-का एक सीकर होता है तथा प्रत्येक सुधाकणका अन्तमें जिस प्रेम-सुधा-समुद्रमें पर्यवसान होता है, वह इस परम प्रेमका मूल उत्स और इस प्रेमका अनन्त अगाध नित्यप्रवाही समुद्र है—श्रीराधाजी। यही राधाका स्वरूप है। इस त्यागमय परमप्रेमके सांकेतिक स्वरूपको कण्ठस्थ करनेयोग्य इन पंक्तियोंमें पढ़िये-सुनिये—

देह-प्राण-मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ, इनके स्वाभाविक सब कर्म ।
अभिलाषा, आसक्ति, कामना, आशा-तृष्णाके सब मर्म ॥
माया, मोह, अहंता, ममता एव उनके सब आचार ।
इह-परके, परमार्थ-स्वार्थके ऊँचे नीचे सब व्यापार ॥
धन, जन, जीवन, स्वजन, सुयश, सत्कीर्ति परम आदर सम्मान ।
सुगति, सिद्धि, सम्पत्ति, सफलता, प्रज्ञा अमल, विवेक महान ॥
देहधर्म, परिवार-धर्म सब लोकधर्म वैदिक सब धर्म ।
सर्वधर्म, धर्मी, धर्मात्मा, धर्मशरीर, धर्मका वर्म ।
देह कुटुम्ब स्वर्ग-सुख अनुपम अतुल मुक्ति-सुख ब्रह्मानन्द ।
सभी समर्पण हुए सहज ही, रहा न कुछ भी उत्तम-मन्द ॥
जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीया, द्रष्टा-दर्शन-दृश्य त्रिकार ।
भूत-भविष्यत्-वर्तमान सब हुए समर्पित निरहंकार ॥
रही न रंचक स्मृति अर्पणकी, रहा कहीं न तनिक अभिमान ।
करता पतन उच्चस्तरसे जो, हरते जिसे स्वयं भगवान ॥
सर्वत्याग शुचितम होता यों—जहाँ एक प्रियतम-सुख हेतु ।
होता उदय प्रेम-रवि उज्ज्वल, मरता काम-राहु तम-केतु ॥
होता दैन्य प्रकट पावन तब, बढ़ता प्रियतम-सुखका चाव ।
स्मरण 'अनन्य', 'सुखी तत्सुख' से—यही मधुरतम गोपीभाव ॥
परम रत्न इस शुचि अमूल्य रतिकी जो विमल विलक्षण खान ।
नित्य अगाध सहज ही प्रतिपल वर्धमान जो अमित अमान ।
स्नेह-मान-प्रणयादि अष्टविध रतिका जो सर्वोच्च सुरूप ।
महाभाव-रूपा वे राधा सहज कृष्ण-कर्षिणी अनूप ॥

शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और उनके सभी स्वाभाविक कर्म; अभिलाषा, आसक्ति, कामना, आशा और तृष्णाका सम्पूर्ण रहस्य; माया, मोह, अहंता, ममता और उनकी प्रेरणासे होनेवाले सब आचरण; इस लोकके और परलोकके, परमार्थ और स्वार्थके ऊँचे-नीचे सारे व्यवहार-व्यापार; धन, जन, जीवन, स्वजन, सुन्दर यश, सात्त्विक कीर्ति और श्रेष्ठ आदर-सम्मान; शुभ गति, सिद्धि, लौकिक और दैविक सम्पत्ति, सफलता, निर्मल बुद्धि और महान् विवेक; देहके धर्म, परिवारके धर्म, सारे लोक-धर्म, सारे वेद-धर्म, अन्य धर्ममात्र, उनके धर्मी, धर्मके आत्मा, धर्मजीवन और धर्मका कवच; शरीरके, कुटुम्बके और स्वर्गके अनुपम सुख, अतुलित मुक्ति-सुख, और ब्रह्मानन्द—ये सब कुछ सहज ही समर्पित हो गये। कुछ भी उत्तम-मन्द नहीं बच रहा है। यहाँतक कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति और तुरीय—ये चारों अवस्थाएँ तथा भूत-भविष्य-वर्तमान—ये तीनों काल भी बिना किसी अहंकारके समर्पित हो गये। फिर इस सर्व-समर्पणकी स्मृति भी समर्पित हो गयी, वह भी जरा-सी भी नहीं बची और न कहीं अर्पण या त्यागका तनिक-सा वह अभिमान ही बचा, जो उच्चस्तरसे गिरा देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और स्वयं भगवान् जिसका हरण—नाश करते हैं—'अभिमानद्वेषित्वात्'। यों जब एकमात्र प्रियतमके सुखके लिये पवित्रतम सर्वत्याग हो जाता है, तब समुज्ज्वल प्रेम-सूर्यका उदय होता है और काम-तमरूप राहु-केतु मर जाते हैं। तदनन्तर सबको पवित्र कर देनेवाला एक विलक्षण दैन्य प्रकट होता है और उसीके साथ प्रियतमको सुख देनेका चाव आत्यन्तिक रूपसे बढ़ जाता है। यह अनन्य-स्मरण और प्रियतमके सुखसे सुखी होना ही मधुरतम गोपीभाव है। इस मधुरतम परम पवित्र श्रेष्ठ अमूल्य प्रेम-रत्नकी जो निर्मल और विलक्षण खान है; जो नित्य अगाध प्रेम सहज ही पल-पलमें अपरिमित रूपसे बढ़ता रहता है; प्रीति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—इस आठ प्रकारके प्रेमका जो सर्वोच्च सुन्दर रूप—महाभाव है, उसीका प्रत्यक्ष मूर्तिमान् रूप—सहज ही श्रीकृष्णको आकर्षित करनेवाली महाभावरूपा अनुपमेय श्रीराधा हैं।

ये परम प्रेममयी श्रीराधा सर्वत्यागमयी और नित्य श्रीकृष्ण-स्वरूपा, श्रीकृष्णात्मस्वरूपा और श्रीकृष्ण-चित्ताकर्षिणी हैं। इतना होते हुए भी इनकी सहज-स्वभाव चेष्टा नित्य-निरन्तर श्रीकृष्ण-सुखके लिये हुआ करती है। ये दिन-रात समुद्रको आत्मदान देती रहनेवाली सुरसरिके सदृश अनादिकालसे अनन्तकाल प्रियतम श्रीकृष्णको सुख देती ही रहती हैं। यों उनकी नित्य सर्वसुखदायिनी होनेपर भी ये यही अनुभव करती हैं कि मैं सदा-सर्वदा प्रियतम श्रीकृष्णसे लेती ही रहती हूँ !

इस दिव्य त्यागमय परम प्रेममें तीन बातें अनिवार्य होती हैं और ये तीनों ही परम प्रेमके परमोच्च स्तरमें परिणत महाभावमें सहज समुदित दैन्यके दर्शन कराती हैं—

(१) निरन्तर देते रहनेपर भी अपने लिये निरन्तर लेते रहनेका अनुभव करना।

(२) देने योग्य वस्तुमात्रका अपनेमें सदा ही अभाव देखना।

(३) सेवा करनेकी किंचित् भी योग्यताका अपनेमें न दीखना और सदा ही संकुचित मनसे प्रत्येक सेवामें सेव्य प्रियतम श्रीकृष्णके ही असाधारण सौशील्य, औदार्य एवं स्नेह-परवशताके दर्शन करते हुए सर्वसमर्पण हो जानेपर भी सदा समर्पण करते ही रहना।

परम महिमामय इस दैन्यके ये तीनों स्वरूप श्रीराधामें पूर्णरूपमें प्रकट होनेपर भी इनकी अधिकता, उज्ज्वलता, पवित्रता, सुगन्ध और सरसता सदा-सर्वदा उत्तरोत्तर असीमकी ओर बढ़ती ही जा रही है। जैसे श्रीकृष्णका सौन्दर्य-माधुर्य नित्य-नवीन वर्द्धनशील है; जैसे पवित्र प्रेमका स्वरूप नित्य-निरन्तर प्रतिपल बढ़नेवाला होनेसे नित्य-नवीन है, वैसे ही श्रीराधा और उनकी कायव्यूहरूपा श्रीगोपाङ्गनाओंके परम पवित्र रसमय महाभावका यह दैन्य भी नित्य नव सरसता, नित्य नव लावण्य, नित्य नव मधुरता, नित्य नव समर्पणरूपता और नित्य नव प्रियतम-सुखेच्छाके रूपमें बढ़ा चला जा रहा है। वस्तुतः इस परम प्रेममें प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके सुखकी सहज स्पृहा और स्वसुख-वासना मात्रके त्यागकी स्थिति स्वाभाविक हो जाती है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। अतएव किसी भी विचारमें, चेष्टामें, क्रियामें भोग-मोक्षकी इच्छाके उदयका सर्वथा अभाव रहता है।

उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णके भेजे हुए व्रजमें जाते हैं। वे सबसे मिलते हैं, सबको समझाते हैं। अन्तमें भाग्यवती प्रेमस्वरूपा श्रीगोपाङ्गनाओंसे और श्यामसुन्दरकी अभिन्नरूपा और उनकी प्राणाधिका श्रीराधिकासे एकान्तमें मिलते हैं। पहले समझानेकी चेष्टा करते हैं, फिर उनकी प्रेमकी महान उच्च स्थितिको देखकर हतप्रभ हो जाते हैं। उद्धवजीके अपने ज्ञानका अभिमान दूर हो जाता है, वे उनसे प्रेमशिक्षा ग्रहण करते हैं और अन्तमें उन गोविन्द-प्रेमरूपिणी गोपरमणियोंके निवास-स्थान वृन्दावनमें कोई लता-गुल्म-ओषधि बनकर भी उनकी चरणधूलि प्राप्त करनेकी महती अभिलाषा करते हैं—

> **आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां**
> **वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।**
> **या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा**
> **भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥**
>
> (श्रीमद्भागवत १०। ४७। ६१)

'अहो ! मैं इस वृन्दावनमें कोई झाड़ी, बेल अथवा ओषधि—जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ। ऐसा बन जाऊँगा तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणरज निरन्तर मिलती रहेगी। उस चरणरजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। इन गोपियोंकी बड़ी महिमा है; इन्होंने उन प्रेममय भगवान्, जिनको



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुतियाँ—वेद, उपनिषद् सदा खोजते ही रहते हैं परंतु पाते नहीं, उन भगवान्‌की पदवीको, तन्मयताको, उनके परम प्रेमको पा लिया है और इसके लिये इन्होंने दुस्त्यज स्वजन-सम्बन्धी और लोक-वेदकी मर्यादा—आर्यमार्गका भी परित्याग कर दिया।'

फिर उद्धवजी जब वहाँसे चलने लगते हैं, तब श्रीराधाजी विकल हो जाती हैं। वे कहने लगती हैं—

उद्धव ! राधा-सी अभागिनी दुःखभागिनी पापिनि कौन ?
जिसको छोड़, मधुपुरी जाकर माधव मधुर हो गये मौन !
ऐसी प्रियवियोगिनी तरुणी मेरे सिवा न कोई और।
प्रिय-विछोहमें शून्य दीखते जिसको सभी काल, सब ठौर॥
पल-पलमें बढ़ता जाता है दारुण-से-दारुण उर-दाह।
सूखे कण्ठ-तालु सब जिसके, निकल न पाती मुखसे आह॥
प्रियतमके वियोगकी ज्वालामें कैसा भीषण उत्ताप।
कर न सकेगा उसका कोई, कभी कल्पनासे भी माप॥
मेरे मनकी विषम वेदना रहती मनमें ही अव्यक्त।
भाषा नहीं पहुँच पाती है, शब्द नहीं कर पाते व्यक्त॥
कैसे किसे सुनाऊँ उद्धव ! मैं अपने मनकी यह बात।
कौन बोध देकर कर सकता, शीतल मेरे जलते गात॥
दुखी न होओ देख मुझे तुम जाओ उद्धव ! हरिके पास।
झुलसा दें न कहीं ये मेरे तुम्हें घोर संतापी श्वास॥

'उद्धव ! इस राधाके सदृश अभागिनी, दुःखभागिनी तथा पापिनी भला और कौन होगी ? जिसको छोड़कर उसके बड़े मीठे माधव मधुपुरी चले गये और वहाँ जाकर कहना-सुनना ही बंद कर दिया ! प्रियतमका ऐसा वियोग सहनेवाली तरुणी मेरे सिवा और कोई नहीं है ! मुझे उन प्रियतमके विछोहमें आज सभी देश और सभी काल सूने दिखायी दे रहे हैं। पल-पलमें मेरे हृदयका दाह भीषण-से-भीषण रूपमें बढ़ा चला जा रहा है। इस तापसे मेरे कण्ठ-तालू भी ऐसे सूख गये कि मुँहसे आह भी नहीं निकल पा रही है। प्रियतमके वियोगकी ज्वालामें कैसा भयानक ताप होता है, इसका परिमाण कोई कभी कल्पनासे भी नहीं कर सकेगा। मेरे मनकी भीषण वेदना मेरे मनमें ही अप्रकट रह जाती है, न वहाँतक कोई भाषा पहुँचती है और न कोई शब्द ही उसे व्यक्त कर पाते हैं। मैं अपने मनकी बात उद्धव ! किसे सुनाऊँ और कैसे सुनाऊँ ? (और जब कोई मेरे हृदयकी बातको जानता ही नहीं,) तब मुझे प्रबोध देकर कौन मेरे जलते-भुनते अङ्गोंको शीतल कर सकता है ? उद्धव ! तुम मेरा दुःख देखकर दुखी न होओ, (मेरा अपहरण करके चले जानेवाले) उन हरिके पास चले जाओ; यहाँ ठहरे तो, कहीं मेरे ये घोर आग उगलनेवाले श्वास तुम्हें झुलस न दें !'

यों कहते-कहते राधाजी अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं और मूर्छित होकर जमीनपर ढुलक पड़ती हैं। उद्धवजीके द्वारा समयोचित उपचार किये जानेपर कुछ समयके बाद श्रीराधाजीकी चेतना लौटती है। तदनन्तर श्रीराधाके दुःखसे अत्यन्त दुखी, उनके तापसे संतप्त सहज-सुहृद् उद्धव क्षोभ प्रकट करते हुए कहने लगते हैं—'महिमामयी राधा ! मैं अबतक जानता था, हमारे श्यामसुन्दर सदय-सहृदय हैं और प्रियजन-सुखद हैं। पर आज इन सब गोपाङ्गनाओंकी और तुम्हारी उनके वियोगमें ऐसी दारुण दीन दशा देखकर मैं यह निश्चितरूपसे अनुभव करने लगा हूँ कि वे सचमुच बड़े ही निष्ठुर-निर्दय हैं। राधे ! तुम उन कपटी, निर्मोही बन्धुका स्मरण करके क्यों इतनी दुखी हो रही हो········।'

श्रीराधाको उद्धवके इन सहानुभूतिपूर्ण वचनोंमें भी प्रियतमकी निन्दा सुनना सहन नहीं हुआ और वे उन्हें रोककर बीचमें ही बोल उठीं—'उद्धव ! ऐसा मत कहो। वे मेरे प्राणनाथ कदापि निष्ठुर-निर्दय नहीं हैं। वे बड़े ही सदय-सहृदय हैं। मैं जानती हूँ, उनका हृदय अत्यन्त कोमल है। अब भी वे मेरी स्मृतिसे, पता नहीं, कितने कैसे व्याकुल हो रहे होंगे। वे बिना ही रूप-गुण देखे सदा मुझपर मुग्ध रहते हैं। यह तो मैं ही अभागिनी हूँ। उद्धव ! मैं उन प्राणनाथ प्रियतमको कैसे भूल जाऊँ ? उनकी मधुर-मधुर स्मृति ही तो मेरा जीवन है—मेरा अस्तित्व है। इस राधाके रूपमें केवल उनकी स्मृति ही तो बची है। क्षणभर-की भी उनकी विस्मृतिका अर्थ है—राधाका मरण, राधाके अस्तित्वका अभाव !

बिसारूँ कैसे स्याम सुजान ?
एकमात्र स्मृति ही है आत्मा, स्मृति ही जीवन-प्रान॥
एक मधुर अनन्य स्मृति प्रिय की नित्य अखंड बनी मन।
प्रानि, पदार्थ, परिस्थिति, सब कौ सहजहि भयो बिसर्जन॥
नित नव सुंदरता, नव माधुरि, नित नव रूप बिकास।
नित नव प्रीति, नित्य नव गौरव, नित नव रासबिलास॥
नित नव नेह, भाव नित नूतन, रातदिवस मन राजत।
नित नव संगम की मधुर स्मृति हिय महँ नित्य बिराजत॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

गुन-गरिमा, महिमा, सुहाग-सुख, रस-बर्षा मुसुकान।
आतुर मान-मनावनि, बोलनि सुधा-मधुर रसखान॥
चरनकमल, मुखमंडल, मधुमय रूप केस सिंगार।
बिकट भ्रुकुटि, दृग नलिन बिसद, पग नूपुर की झनकार॥
स्रवनमात्र मन होत प्रहरषित, परस प्रफुल्लित देह।
स्मृतिमें होत सुस्निग्ध आतमा, उपजत नित नव नेह॥
कोटि-कोटि सत मन्मथ जिनके पटतर आत लजावत।
ब्रह्मा, सिव, सनकादि गुननि कौ जिनके पार न पावत॥
एक बार सपनेहुँ जिन्ह कीन्हे रूपरासि के दरसन।
अग-जग बिसरि, कियौ तिन अपनौ सरबस बिबस समरपन॥
जिनके मधुर मनोहर मंजुल गुन स्वर-लहरी अतुलित।
पाहन काठ करत द्रवमय जल, मृत तरु करत सुमुकुलित॥
वायु-सूर्य की गति स्तंभित कर, अचल करत सब चेतन।
तिन कौं प्रियतम रूप पाइ पुनि कैसे सुधि बिसरै मन॥
मेरे प्राननाथ वे प्रियतम मधुर मधुर जीवनधन।
रातदिनाँ वे रहत हृदय में बिलगत नहिं एकहु छिन॥
ऊधौ! तिन में मैं, वे मो में, नहीं भेद कौ लेस।
प्रियतम के ढिंग जाउ सिदौसी मेटौ मन कौ क्लेस॥

'मैं उन सुजान श्यामसुन्दरको कैसे भूल जाऊँ? एकमात्र उनकी वह स्मृति ही मेरी आत्मा है, वह स्मृति ही मेरा जीवन-प्राण है। प्रियतमकी एक अनन्य अखण्ड स्मृति नित्य-निरन्तर मनमें बनी रहती है, उनके अतिरिक्त अन्य सभी प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिका मनसे विसर्जन हो गया है। उनका वह नित्य नूतन सौन्दर्य, नित्य नव माधुर्य, नित्य नया-नया रूपका विकास, नित्य नया प्रेम, नित्य नूतन प्रेमका गौरव, नित्य नूतन स्नेह और नित्य नवीन भाव—रात-दिन मेरे मनमें स्मृतिरूपसे सुशोभित हैं। उनके नित्य नवीन संगमकी मधुर स्मृति मेरे हृदयमें नित्य-निरन्तर विराजित रहती है। उनकी वह गुण-गरिमा, महिमा, उनके द्वारा मिला हुआ सौभाग्य-सुख, उनकी वह रस-बरसाती मधुर मुसुकान, मेरे मान करनेपर आतुर होकर मनानेकी मधुर चेष्टा, उनकी सुधामधुर रसकी खान वाणी, उनके वे अरुण चरणकमल, उनका मनोहर मुखमण्डल, मधुमय रूप और उनका वह केशोंका रूप-श्रृङ्गार, वे बाँकी भौंहें, विशाल कमलदल-लोचन एवं पैरोंके नूपुरोंकी झनकार सदा ही स्मरण रहती है। कहीं उनकी ये बातें जरा-सी सुननेको मिल जाती हैं तो मन हर्षसे पूर्ण हो जाता है। शरीर स्पर्शमात्रसे प्रफुल्लित हो जाता है। स्मृतिसे आत्मा ही सुस्निग्ध हो जाता है एवं नित्य-नूतन स्नेहका उदय होता है। सैकड़ों करोड़-करोड़ कामदेव जिनकी तुलनामें आते लजाते हैं; ब्रह्मा, शिव और सनकादि जिनके गुणोंका पार नहीं पाते—एक बार स्वप्नमें भी जिनको उस रूपराशिकी झाँकी दीख गयी, वही सारे अग-जगको भूलकर विवश होकर अपना सर्वस्व समर्पण करनेको बाध्य हो गया। जिनके मधुर मनोहर सुन्दर गुण तथा जिनकी स्वरलहरी ऐसी अतुलित है कि जो कठोर पाषाण और काष्ठको भी द्रवमय जल बनाकर बहा देती है, मरे हुए वृक्षोंको हरे-भरे करके भलीभाँति मुकुलित कर देती है, वायु तथा सूर्यकी चाल रोक देती है और समस्त चल चेतनोंको अचल कर देती है, ऐसे उनको मैंने प्रियतमके रूपमें प्राप्त किया। अब भला, मेरा मन उन्हें कैसे भूल जाय? वे मेरे प्राणनाथ हैं, मेरे प्रियतम हैं, मेरे मधुरसे भी मधुर जीवन-धन हैं, वे रात-दिन मेरे हृदयमें निवास करते हैं, कभी एक क्षणके लिये भी अलग नहीं होते ( सदा साथ ही रहते हैं )। उद्धव! मैं उनमें हूँ और वे मुझमें हैं। हम दोनोंमें लेशमात्र भी भेद नहीं है। तुम तुरंत उन प्रियतमके पास पहुँचकर उनके मनके क्लेशको दूर करो।'

इतना कहते ही भाव बदला। वियोगकी विषम वेदना पुनः जाग्रत् हो गयी और वे मूर्छित होकर पुनः गिर पड़ीं। प्रयास करनेपर जब उन्हें चेत हुआ, तब वे रोती हुई बोलीं—

**गच्छ वत्स मधुपुरीं सर्वं बोधय माधवम्।**
**यथा पश्यामि गोविन्दं प्रयत्नेन तथा कुरु॥**
**निष्फलं मे गतं जन्म गच्छ मिथ्यादुराशया।**
**आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्॥**

'वत्स उद्धव! तुम मथुरा जाओ और माधवको सब बातें समझाकर जिसमें हमलोग उनके दर्शन कर सकें ऐसा प्रयत्न करो। तुम तुरंत चले जाओ! हमारा जीवन तो मिथ्या दुराशामें निष्फल ही चला गया। आशा ही परम दुःख है और निराशा ही परम सुख है।' राधिकाजी यों कहकर फिर रोने लगीं। उद्धवजीने उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम करके प्रस्थान किया।

उद्धवजीके जाते ही राधिकाजी पुनः मूर्छित हो जाती हैं तब गोपियाँ उन्हें उठाकर सजल कमलपत्रोंकी शय्यापर सुला देती हैं। पर राधाके स्पर्शमात्रसे ही वह शय्या जलकर भस्म हो जाती है। ( तत्स्पर्शमात्राच्छयनं भस्मीभूतं बभूव ह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर उन विरहज्वर-कातरा श्रीराधाजीको वे पुनः दूसरे स्निग्ध स्थानमें स्निग्ध चन्दन् लगे वस्त्रोंपर सुलाती हैं, पर वह सुगन्धि-चन्दनोदक भी तत्काल सूख जाता है। ( सहसा शुष्कतां प्राप्तं सुगन्धिचन्दनोदकम्। ) फिर, वे अपने प्राण-प्रियतमकी मधुर चर्चा करनेवाले उद्धवके चले जानेसे अत्यन्त दुःखित होकर सहसा बोल उठती हैं—

**हाहोद्धवोद्धव हरिं शीघ्रं गत्वा वदेति च।**
**समानय हरिं शीघ्रं यत्प्राणेश्वरमित्यपि॥**

'हा उद्धव ! हा उद्धव ! तुम तुरंत जाकर मेरी यह यातना मेरे प्राणेश्वर हरिको सुनाओ और उन्हें शीघ्र यहाँ लेकर आओ।'

कितनी मार्मिक पीड़ा है—राधाके प्राणोंमें !

उद्धवजी श्रीगोपियोंकी दशा देखकर बड़े ही दुखी हुए। वे अत्यन्त क्षुब्ध मनसे मथुरा लौटे। श्रीकृष्णके प्रति उन्हें बड़ा रोष आ रहा था। भक्त कवि श्रीनन्ददासजी लिखते हैं—

× × × × ×
× × × × ×

लखि निरदयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन।
पुनि ब्रजबनिता-प्रेम की बोलत रस भरे बैन॥
सुनौ नँद लाडिले॥
करुनामई रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी।
तब ही लौं कहौ लाख, जबहि लौं बँध रही मूँठी॥
मैं जान्यौं ब्रज जाइ कै निरदय तुम्हरौं रूप,
जो तुमको अवलंबही, तिन्ह कौं मेलौ कूप,
कौन सौ धरम यह ?

श्यामसुन्दरकी निर्दयता देखकर उद्धवके दोनों नेत्रोंमें क्रोध छा गया। फिर व्रजाङ्गनाओंके प्रेमको स्मरण करके वे रस-भरे वचन बोले—'नन्दलाल ! सुनो, तुम्हारी सारी करुणामयी रसिकता—प्रेमकी बातें झूठी हैं। तभीतक लाख कह लो, जबतक मुट्ठी बँधी है। अब तो व्रजमें जाकर मैंने तुम्हारे निर्दय रूपको जान लिया है। जो तुम्हारा अवलम्ब रखते हैं, उनको तुम कुएँमें ढकेल देते हो ! यह तुम्हारा कौन-सा धर्म है ?'

फिर राधाकी दीन-दशाका करुण चित्र सामने आते ही उद्धवजी अपनेको मर्यादामें नहीं रख सके और प्रणयकोपसे भरकर वे श्रीकृष्णसे कहने लगे—

तुम सम निठुर दूजौ कौन ?
राधिका-सी प्रेम-पुतरी रुदित छाँड़ी भौन॥
बिँधि गयौ नहिं हियौ तेहि छिन कुटिल बज्र कठोर।
बीच-धारा नाव तजि दी, लै गये नहिं छोर॥
देखि आयौ, मलिन धूमिल स्वरन-तन कृस छीन।
बिकल तड़पत दीन दिन-निसि जलरहित जिमि मीन॥
तजे भूषन सकल सुबसन अंगराग सिंगार।
सिथिल बेनी सुमन बिखरे केस रूखे झार॥
बोध नहिं कछु रात-दिन कौ, नहीं जल-थल-ग्यान।
आतम-पर, मानव-अमानव की न कछु पहचान॥
हा दयित ! हा हृदैबल्लभ ! हाय प्रानाधार !
अश्रुधारा बहत अबिरत, करत करुन पुकार॥
बिरह-ज्वाला जरत मन, तन दहत दारुन पीर।
जरी परसत कुसुम-सज्या साँस-अनल-समीर॥
रसरहित उर भयौ, सूख्यौ तप्त आँसू-स्रोत।
रुकत पुनि पुनि प्रान पुनि छिन पुनर्जीवन होत॥
सकल सुख कारन कहावौ, जगत-जीवन नाम।
प्रान अबलनि के हरत, यह कहा तुम्हरौ काम ?॥
धाइ पहुँचौ बेगि माधव ! करौ जीवन दान।
मिलि अबाधित, बिरह-पीड़ा हरौ सपदि महान॥
भई कोउ न राधिका-सी, है न आगैं होय।
प्रेममूरति भजै तुम कौं लोक-बेदहिं खोय॥

'श्रीकृष्ण ! तुम-जैसा निष्ठुर दूसरा कौन होगा, जो राधा-सरीखी प्रेमपुतलीको घरमें रोती हुई छोड़ आये ! तुम्हारा वज्रके समान कुटिल कठोर हृदय उसी क्षण बिँध क्यों न गया ? जो तुम मँझधारमें ही नौका छोड़ आये, किनारेतक नहीं ले गये ! मैं स्वयं देखकर आ रहा हूँ राधाकी दीन-दशा ! उसका स्वर्ण-सा शरीर मैला, धुवाँसा, अत्यन्त कृश और क्षीण हो गया है। वह रात-दिन जलसे निकाली मछलीकी तरह अत्यन्त दीन और व्याकुल होकर तड़पती रहती है ( पर मछलीकी तरह उसके प्राण नहीं निकलते )। उसने सम्पूर्ण सुन्दर वस्त्र, आभूषण, अङ्गराग और शृङ्गारका त्याग कर दिया है, उसके सिरकी वेणी ढीली हो रही है, फूल इधर-उधर बिखर रहे हैं और सिरके बाल सब रूखे हो रहे हैं। उसे न रात-दिनका पता है, न जल-स्थलका ज्ञान है; न वह अपना-पराया जानती है और न उसे मनुष्य-अमनुष्य—( पशु-पक्षी ) की ही पहचान रह गयी है ! वह अविराम आँसुओंकी धारा बहाती हुई 'हा प्यारे !' 'हा हृदयवल्लभ !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हाय मेरे प्राणाधार' कहती हुई करुण पुकार करती रहती है !

'तुम्हारे विरहकी ज्वालासे उसका मन जल रहा है, शरीर भयानक पीड़ासे दहकता रहता है। पुष्पोंकी शय्या उसका स्पर्श होते ही जल गयी। श्वाससे पावकमय पवन निकलता रहता है। अब तो अंदरकी इस अग्निसे उसका हृदय सूखकर इतना रसरहित हो गया है कि उसके उन तप्त आँसुओंका स्रोत भी सूख गया है। क्षण-क्षणमें बार-बार उसके प्राण रुक जाते हैं, वह निष्प्राण हो जाती है, फिर दूसरे क्षण वह पुनः जी उठती है। तुमको तो सब लोग सबको सब प्रकारके सुख देनेवाला कहते हैं और तुम जगत्के जीवन कहलाते हो; फिर यह तुम्हारा कैसा काम है कि तुम अबलाओंके प्राण हरण कर रहे हो? (इस प्रकार—स्त्री-हत्या तो ज्ञानशून्य चोर-डाकू भी नहीं करना चाहते—'स्त्रीहत्यां नैव वाञ्छन्ति ज्ञानहीनाश्च दस्यवः') अरे माधव! तुम तुरंत दौड़कर वहाँ जाओ और राधाको जीवन-दान करो। उससे निर्बाध मिलकर तुरंत उसकी महान् विरह-यन्त्रणाको दूर करो। देखो! राधिका-सरीखी प्रेमकी प्रतिमा न तो कोई पहले हुई है, न अब है और न भविष्यमें होगी ही, जो सारे लोक-वेदको खोकर केवल तुम्हारा सेवन करती है।'

इसपर श्रीकृष्ण उद्धवको समझाकर यह बता देते हैं कि हममें तथा राधा और गोपाङ्गनाओंमें कोई भेद नहीं है। अस्तु!

इन बातोंसे पता लगता है कि राधाके हृदयमें कितनी भयानक वियोग-वेदना है और प्रियतम भगवान्के मिलनेपर उनको कितना सुख हो सकता है; पर निर्मल दिव्य प्रेमकी मूर्ति श्रीराधा श्रीश्यामसुन्दरके सुखको ही अपना स्वभाव बनाये हुए हैं। इससे वे मथुरा तो जातीं ही नहीं, पर श्यामसुन्दरके समीप रहनेसे भी, उन्हें कोई कष्ट न हो जाय, इस कल्पनासे काँप उठती हैं और उनसे दूर—बहुत दूर भाग जाना चाहती हैं। एक संतने श्रीराधाके इस भावपर कहा है—

> वह देश दूर है, आज जहाँ मेरे प्राणाधिक हैं प्रियतम।
> उससे विपरीत दिशामें ही मैं भाग चलूँ अब तो प्रियतम॥
> है तापमान इन श्वासोंका प्रतिपल बढ़ता जाता प्रियतम।
> उनकी गरमी न लगे जिससे, उस नील कलेवरको प्रियतम॥

'मेरे प्राणाधिक श्यामसुन्दर आज जहाँ हैं, वह देश यहाँसे दूर है; परंतु अब तो मैं उसकी विपरीत दिशामें और भी दूर भाग जाना चाहती हूँ; क्योंकि मेरे इन श्वासोंका तापमान प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा है, कहीं इनकी गरमी वहाँतक पहुँचकर उस नीलवदनको न लग जाय।'

> अलिकुल गुन गुन करता था क्यों मेरे पीछे वे थे प्रियतम।
> वे चले गये, अतएव देह यह सड़ी-गली अब है प्रियतम॥
> यह गन्धवाह, इसलिये यहाँ निश्चय कपूय होगा प्रियतम।
> मैं चलूँ और भी दूर, न उनके पास गन्ध पहुँचे प्रियतम॥

'मैं चलती थी, तब गुनगुनाता हुआ (श्यामसुन्दरके गुण गाता हुआ) भ्रमरसमुदाय मेरे पीछे-पीछे चलता था, क्योंकि वे साथ थे; यह उनकी अङ्ग-सुगन्धका प्रभाव था। अब वे चले गये, इससे अब यह सड़ी-गली (दुर्गन्धभरी) देह रह गयी है। अतएव यहाँकी हवा अब निश्चय ही दुर्गन्ध और अपवित्रतासे भर जायगी, मैं और भी दूर निकल चलूँ, जिससे यह अपवित्र दुर्गन्ध उनके पासतक न पहुँचे।'

> मैं नहीं मरूँगी कभी, सत्य यह है त्रिकाल, फिर भी प्रियतम।
> यह तन तो सदा जलेगा ही, काली उन लपटोंसे प्रियतम॥
> फैलेगी धूमराशि नभमें, मैं इतनी दूर चलूँ प्रियतम।
> धूआँ लगकर पंकिल न बनें वे दृग सरोज-दल-से प्रियतम॥

'यह त्रिकाल सत्य है कि मैं कभी नहीं मरूँगी; पर यह मेरा शरीर तो उन काली लपटोंसे सदा जलता ही रहेगा। इससे आकाशमें धूएँके गोट-के-गोट फैल जायँगे। अतः मैं इतनी दूर चली जाऊँ कि जिससे धुआँ लगकर मेरे प्रियतमके वे कमलदलसदृश नेत्र कहीं पंकिल न बन जायँ।'

इस प्रकार प्रियतमके सुखकी स्मृति और स्व-सुखका सहज विसर्जन राधाका स्वभाव है। इसीका सहज-स्वभाव अनुकरण श्रीव्रजबालाएँ करती हैं और स्वसुख-त्याग तथा विशुद्ध अनुरागके द्वारा वे प्रियतम श्रीकृष्णके परम प्रेमकी पात्री बनकर धन्य होती हैं।

इस परम भगवत्प्रेमकी साधनाका आरम्भ होता है—भगवान्के प्रति अनन्य रागकी पवित्र भावनासे। भगवान्में राग आरम्भ होते ही सहज स्वाभाविक भोग-वैराग्य, प्रपञ्चकी विस्मृति, मन-इन्द्रियोंकी भोगोंसे उपरति, स्वसुख-वासनाका त्याग और 'अहं'की विस्मृति होने लगती है। प्रापञ्चिक भोगासक्ति तो सहज वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकारमयी रात्रि। सूर्यको प्रयास करके रात्रिका नाश नहीं करना पड़ता, सूर्योदयके प्रकाशका आभास होते ही रात्रिका अन्धकार भागने लगता है। इसी प्रकार हृदयमें इस पवित्र प्रेमका बीज वपन होते ही भोगवासना नष्ट होने लगती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है। याद रखना चाहिये—भगवत्प्रेम और भोगासक्ति कभी एक साथ नहीं रह सकते।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं रबि रजनी इक ठाम॥

अतएव इस प्रेमसाधनामें भोगासक्तिका त्याग अनिवार्य है। इसीसे इस भक्तिके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच रसोंमें शान्त प्रथम है। शान्त रसका अभिप्राय है—इन्द्रिय-मनका भोग-जगत्से विमुख होकर केवल भगवान्‌की सेवामें लग जाना। वेदान्तके 'साधन-चतुष्टय'में विवेक-वैराग्यके पश्चात् मनका संयम, इन्द्रियोंका दमन, द्वन्द्व-सहिष्णुता, भोगोंसे उपरति, अटल श्रद्धा और समाधान—संदेहरहित स्थिति—यह षट् सम्पत्ति प्राप्त होती है। लगभग ऐसी ही स्थिति भक्तिके शान्तरसमें होती है। उस षट् सम्पत्तिकी प्राप्तिसे वहाँ मोक्षकी प्रबल इच्छाका उदय होता है और यहाँ भगवत्सेवा—भगवान्‌के दासत्वकी प्रबल आकाङ्क्षा उत्पन्न हो जाती है। इसीसे इसके बाद ही 'दास्य रति'का उद्भव होता है। दास्य रतिका भक्त इन्द्रिय-मनका गुलाम नहीं रहता। वह सबकी दासतासे अपनेको मुक्त करके एकमात्र अपने स्वामी भगवान्‌का दासत्व स्वीकार करता है। वह न किसीका दास रहता है, न किसीको दास बनाता है। यही रस क्रमशः प्रगाढ़ तथा उत्कृष्टतर होता हुआ मधुर-रतिमें परिणत हो जाता है। इस मधुर भावमें भी यह श्रीलक्ष्मीजी, रुक्मिणीजी आदिके लीला-चरित्रसे आगे बढ़कर गोपीभावमें परिणत हो जाता है, जहाँ भोग-मोक्षकी स्पृहाका सहज त्याग, अहंकी पूर्ण विस्मृति, **स्व**-सुखकी कल्पनाका सर्वथा और सर्वदा अभाव और नित्य-निरन्तर प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी मधुर सुख-स्मृति ही जाग्रत् रहती है। यह अमर्याद और अबाध समर्पण नित्यसिद्धा गोपाङ्गनाओंमें स्वरूपसे ही रहता है और साधनसिद्धा गोपाङ्गनाएँ पूर्ण त्यागमयी और रसमयी साधनाके द्वारा इस स्तरतक पहुँचकर सिद्धावस्थाको प्राप्त करती हैं।

उपर्युक्त दास्यरतिमें इसीलिये जगत्‌के बन्धनसे मुक्ति और भगवत्सेवामें नित्य-नियुक्ति हो जाती है। वह भक्त इस सेवाको छोड़कर, दिये जानेपर भी मुक्ति नहीं लेता। भगवान् कपिल कहते हैं—

**सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।**
**दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥**

'सर्वैश्वर्यमय भगवान्‌के समान लोकमें निवास, भगवान्‌के ऐश्वर्यके समान ऐश्वर्यकी प्राप्ति, भगवान्‌के समीप रहनेका अधिकार, भगवान्‌के समान रूपाकृतिकी प्राप्ति और भगवान्‌से एकत्व—ये पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ दी जानेपर भी मेरे प्रेमी जन मेरी सेवाको छोड़कर इन्हें स्वीकार नहीं करते।'

ऐसे ये भगवान्‌के सेवक केवल भगवच्चरणारविन्दमें प्रेम ही चाहते हैं। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई॥

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन॥

'भगवत्प्रेमको छोड़कर मैं न सद्गति चाहता हूँ, न सन्मति, न लौकिकी या दैवी सम्पत्ति, न ऋद्धि-सिद्धि और न बहुत बड़ी बड़ाई चाहता हूँ। यही चाहता हूँ कि भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दमें मेरा अहैतुक अनुराग दिन-प्रतिदिन अधिक-से-अधिक बढ़ता रहे।' प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता है, उसका अन्त नहीं आता। इसीसे श्रीगोसाईंजी प्रेमकी प्राप्ति नहीं, वरं उत्तरोत्तर प्रेमकी वृद्धि चाहते हैं। वे कहते हैं—'मैं अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टयको भी नहीं चाहता। चाहने की बात तो अलग रही, मेरी न अर्थमें रुचि है न धर्ममें, न काममें और न मोक्षमें ही रुचि है। मैं दूसरा कुछ नहीं, केवल यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म-जन्ममें मेरी रति भगवान् श्रीरामके चरण-कमलमें ही बनी रहे।'

भक्तवर प्रह्लादजी भी जन्मबन्धनसे छूटनेकी इच्छा न रखकर कहते हैं—

**नाथ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।**
**तेषु तेष्वचलाभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥**

'नाथ! हजारों-हजारों योनियोंमें मैं जिस जिसमें जाऊँ, उस-उसमें हे अच्युत! तुम्हारी अचला भक्ति सदा बनी रहे।'

प्रेमावतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभु कहते हैं—

**न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।**
**मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥**

धन-जन-कविता सुंदरी चहौं न मैं जगदीस।
बनी रहै प्रति जन्ममें भक्ति अहैतुकि ईस॥

इस परम प्रेमारूपा भक्तिमें, जिसके साधनको 'प्रेमसाधन' नाम दिया जाता है, भगवान् अपने 'निज प्रियतम' होते हैं। वे प्रेमीका हृदय होते हैं और प्रेमी उनका। भक्त और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं और वे भक्तोंमें । 'मयि ते तेषु चाप्यहम् ।' यह प्रेमकी साधना अनन्य टेकसे ही आरम्भ होती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने इस विषयमें अनन्य-टेकी तथा प्रेम-विवेकी चातकका बड़ा ही सुन्दर उदाहरण देते हुए कहा है—

जौं घन बरषै समय सिर, जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥

( चातक केवल एक मेघसे ही स्वातीकी बूँद चाहता है, न दूसरेकी ओर ताकता है न दूसरा जल ही स्पर्श करता है। इस चातकके टेकका वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं—) चाहे तुम ठीक समयपर बरसो, चाहे जीवनभर कभी न बरसो; परंतु इस चित्त-चातकको तो केवल तुम्हारी ही आशा है।

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रंग॥

अपने प्यारे मेघका नाम रटते-रटते चातककी जीभ लट गयी और प्यासके मारे सारे अङ्ग सूख गये, तो भी चातकके प्रेमका रंग तो नित्य नवीन और सुन्दर ही होता जाता है।

बरसि परुष पाहन पयद पंख करो टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिऐ चतुर चातकहि चूक॥

समयपर मेघ बरसा तो है ही नहीं, उलटे कठोर पत्थर—ओले बरसाकर उसने चातककी पाँखोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, इतनेपर भी उस प्रेम-टेकी चतुर चातकके प्रेमपणमें कभी चूक नहीं पड़ती।

पवि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि॥

मेघ बिजली गिराकर; ओले बरसाकर, बिजली चमकाकर, कड़क-कड़ककर, वर्षाकी झड़ी लगाकर और तूफानके झकोरे देकर चातकपर चाहे जितना बड़ा भारी रोष प्रकट करे; पर चातकको प्रियतमका दोष देखकर क्रोध नहीं आता। उसे दोष दीखता ही नहीं; वरं इसमें भी वह अपने प्रति मेघका अनुराग देखकर उसपर रीझ जाता है।

उष्न काल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुची अन-जल सींचे रूख॥

गरमियोंके दिन थे, चातक शरीरसे थका था, रास्तेमें जा रहा था, शरीर जल रहा था; ( इतनेमें कुछ वृक्ष दिखायी दिये, दूसरे पक्षियोंने कहा, इनपर जरा विश्राम कर लो ) परंतु अनन्य-प्रेमी चातकको यह बात अच्छी नहीं लगी; क्योंकि वे वृक्ष दूसरे जलसे सींचे हुए थे।

बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच॥

एक चातक उड़ा जा रहा था, किसी बहेलियेने उसे ( बाण ) मार दिया; वह नीचे पुण्यसलिला गङ्गाजीमें गिर पड़ा, परंतु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी चातकने चोंचको उलटकर ऊपरकी ओर कर लिया। चातकके प्रेमरूपी वस्त्रपर मरते दमतक भी खोंच नहीं लगी। ( वह जरा भी कहींसे नहीं फटा। )

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख॥

चातक प्रेमी है। अतएव उसके चित्तमें प्रियतम मेघका दोष कभी आता ही नहीं; क्योंकि वह प्रेमका अगाध समुद्र है, वहाँ माप-तौल नहीं है।

प्रेम देना जानता है, लेना नहीं। प्रेमका बदला चाहना तो वास्तवमें प्रेम है ही नहीं, वह तो लेन-देनका व्यापार है। इसीसे कहा गया है—

भोग-मोक्ष-इच्छा-पिशाचिनी जबतक करती मनमें बास।
तबतक पावन दिव्य प्रेमका कभी न होता तनिक विकास॥

अतएव इस पथपर आना चाहनेवाले व्यक्तिको पहले ही यह निश्चय कर लेना चाहिये कि विषय-भोगके साथ भगवत्प्रेमका कदापि मेल नहीं है। 'भोग-सुख भी रहे और भगवान्का प्रेम भी मिल जाय' यह तो वैसी ही मूर्खतापूर्ण बात है कि 'रात्रि भी रहे और सूर्यका उदय भी हो जाय अथवा किसीका मरना भी बंद न हो और वह अमर भी हो जाय।' इसलिये इस प्रेममार्गके पथिकको अहंके सुखकी—मोक्षतककी इच्छाका तथा अहंकी स्मृतिका भी त्याग करनेकी तैयारी करके ही इस मार्गपर पैर रखना चाहिये। जो अपने सर्वस्वको स्वाहा करके उसके भस्मावशेषपर आनन्दमत्त होकर नाच सकता है, वही सर्वत्यागी इस पावन प्रेमपथका पवित्र पथिक बन सकता है। कबीरजीने कहा है—

कबिरा खड़ा बजारमें लिये लुकाटी हाथ।
जो घर फूँकै आपना चलै हमारे साथ॥

सुतरां गोपी-प्रेमके आधारपर भगवत्-रस-प्रवाहमें बहनेके लिये सर्वत्यागका आदर्श सामने रखकर साधनामें प्रवृत्त होना चाहिये। किसी सर्वत्यागी ऐसे गोपीरूप रसमय प्रेमीजनको ही अपना पथप्रदर्शक बनाकर आगे बढ़ना चाहिये और सदा यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते रहना चाहिये कि भगवत्प्रीति तथा भोगोंसे उपरति, भगवान्‌की आत्यन्तिक अखण्ड स्मृति तथा जगत्-प्रपञ्चकी विस्मृति और उत्तरोत्तर भगवत्सेवामें प्रवृत्ति तथा स्व-सुख-वासनाकी निवृत्ति होती जा रही है या नहीं। यही कसौटी है इस परम पवित्र परम प्रेमके साधनकी। अस्तु!

श्रीराधा-माधव दोनों नित्य अभिन्न होते हुए नित्य लीलापरायण हैं। उनमें एक दूसरेको सुखी बनानेकी यह प्रेमलीला सदा चलती रहती है और प्रेममूर्ति श्रीगोपाङ्गनाएँ अपनेको भूलकर श्रीराधा-माधवकी सुख-सामग्रीके संग्रहमें ही लगी रहती हैं। गोपीका स्वभाव या स्वरूप है श्रीराधा-माधवको सुखी करना और राधाका स्वभाव-स्वरूप है श्रीकृष्णको सुखी करना। सर्वत्र त्याग-ही-त्याग है। इसीसे यह लीला सर्वश्रेष्ठ तथा परमोच्च सिद्धिके क्षेत्रकी है। इसमें लौकिकता देखना या लौकिक समझकर इसका अनुकरण करना सर्वथा अनुचित और हानिप्रद है। न तो इनकी लीलामें कभी कोई संदेह करना चाहिये और न लीलाका अनुकरण ही। समर्पणकी साधना चलनी चाहिये, किसी त्यागमयी गोपीको आदर्श मानकर संयम और त्यागके प्रशस्त पवित्र पथसे।

श्रीराधा और श्रीकृष्णकी पवित्रतम दिव्य लीलामें जो कलुषित कामकी कल्पना होती है, उसका प्रधान कारण हमारी कामकलुष दृष्टि है और श्रीराधा-कृष्णमें अस्थि-मांसमय जड शरीरधारी मानव-बुद्धि है। पर यदि हम उन्हें साधारण मनुष्य मानते हैं, तब तो श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीकृष्ण केवल ग्यारह वर्षकी अवस्थातक ही नन्दालयमें थे और कई वर्ष पूर्वसे ही व्रजाङ्गनाओंकी मधुर लीला चल रही थी। अतः इस लीलाका समय श्रीकृष्णकी सात-आठ वर्षकी अवस्थासे आरम्भ हो जाता है। पर इतनी छोटी अवस्थामें कामका प्रादुर्भाव और कामचेष्टा सर्वथा असम्भव है। अतएव यह कामक्रीड़ा कदापि नहीं थी। परंतु वास्तवमें श्रीराधा-माधव तो प्राकृतिक शरीरधारी थे ही नहीं। अतएव उनमें कलुषित कामकी कल्पना एक महान् अपराध है और वह हमारा घोर पतन करनेवाला है।

इसी प्रकार लोग बार-बार राधा-कृष्णके विवाहकी बात पूछते हैं। इसमें भी उनके स्वरूपका अज्ञान ही कारण है। जो नित्य एक हैं, जिनमें कभी भेदकी कल्पना नहीं है और जो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, उनमें परस्पर विवाह होने-न-होनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तथापि कुछ महानुभाव उनका विवाह भी देखते हैं और ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार वनमें श्रीब्रह्माजीके द्वारा एकान्त काननमें उनके विवाह करा जानेका वर्णन मिलता है। श्रीराधाजीके रायाण गोपके साथ विवाहकी बात भी आती है। उसमें श्रीदामाका शाप कारण था; परंतु वह विवाह स्वयं राधाजीके साथ नहीं, किंतु छायाके साथ हुआ था—ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वहाँ लिखा है—

'राधाजी अयोनिजा थीं। माताके पेटसे नहीं पैदा हुई थीं। माताने योगमायाकी प्रेरणासे वायुको ही जन्म दिया, परंतु वहाँ स्वेच्छासे राधा प्रकट हो गयीं। बारह वर्ष बीतनेपर उन्हें यौवनमें प्रवेश करती देख माता-पिताने रायाण गोपके साथ उनका सम्बन्ध निश्चित किया। उस समय श्रीराधा घरमें छायाको स्थापित करके स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। उस छायाके साथ उक्त रायाणका विवाह हुआ। वास्तवमें श्रीराधाका विवाह तो हुआ था पुण्यमय वृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ। जगत्स्रष्टा विधाताने विधिपूर्वक उसे सम्पन्न करवाया था।'

**अयोनिसम्भवा देवी वायुगर्भा कलावती।**
**सुषाव मायया वायुं सा तत्राविर्बभूव ह॥**
**अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्।**
**सार्धं रायाणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः॥**
**छायां संस्थाप्य तद्गेहे सान्तर्धानं चकार ह।**
**बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह॥**
**कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने।**
**विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः॥**

(ब्र० वै० पुराण)

यह राधाकी छाया कौन थी—इसका भी स्पष्टीकरण उसी पुराणमें है। केदार राजाकी कन्या वृन्दाके तप करनेपर भगवान्‌ने उसको यह वर दिया था कि 'इस तपस्याके फलस्वरूप तुम मुझे प्राप्त करोगी। फिर व्रजमें असली राधाकी जब वृषभानुकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होंगी, तब तुम उनकी छायाके रूपमें उत्पन्न होओगी। विवाहके समय रायाण छायारूपिणी तुम्हींसे विवाह करेगा और वह वास्तविक राधा तुमको रायाणके हाथोंमें अर्पण करके स्वयं अन्तर्धान हो जायगी। गोकुलवासी मूढ लोग रायाणपत्नी तुम्हींको राधा माने रहेंगे। उस समय असली राधा तो मेरे पास निकुञ्जमें रहा करेगी और छायारूपिणी तुम रायाणकी स्त्री होकर जीवनयापन करोगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा··················वृषभानुसुता यदा ।
सा एव वास्तवी राधा त्वं च च्छायास्वरूपिणी ॥
विवाहकाले रायाणस्त्वां च च्छायां ग्रहीष्यति ।
त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा सान्तर्धाना भविष्यति ॥
राधां कृत्वा च तां मूढा विज्ञास्यन्ति च गोकुले ।
× × × ×
स्वयं राधा मम क्रोडे छाया रायाणकामिनी ॥

अतः यह सिद्ध है कि यह छाया भी वास्तवमें राधाकी नहीं है। यह भी केदारकन्या वृन्दाका अवतार है।

इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि वास्तवी राधाका किसी अन्य गोपसे विवाह हुआ था। पर इस विषयमें विवाद करना व्यर्थ है। यहाँ तो उन राधाका प्रसङ्ग है जो भगवान् श्रीकृष्णकी न परकीया है, न स्वकीया है, परंतु श्रीकृष्णकी ही भाँति अचिन्त्य-अनिर्वचनीय रूप उनकी नित्य अभिन्नरूपा हैं, सर्वेश्वरी मूल प्रकृति हैं, समस्त देवीस्वरूपिणी हैं, जगज्जननी हैं, श्रीकृष्णकी परम आराधिका हैं, श्रीकृष्णकी परमाराध्या हैं और उनकी साक्षात् आत्मा ही हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं—

यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने ।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः ॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा ।
भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथाऽऽवयोः ॥
मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना ।

'जैसे दूध और उसकी धवलतामें, अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिमें, भूमि और गन्धमें तथा जल और उसकी शीतलतामें कोई भेद नहीं है, वैसे ही तुममें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे धवलता और दूध अभिन्न हैं, दाहिका शक्ति और अग्नि अभिन्न हैं, भूमि और गन्ध तथा जल और शीतलता अभिन्न हैं, वैसे ही हम दोनों भी एक हैं। हममें कोई भेद नहीं है। मेरे बिना तुम निर्जीव हो ( मैं ही तुम्हारा जीवन हूँ ) और तुम्हारे बिना मैं अप्रकट हूँ।'

परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम् ।
सर्वाद्यं सर्वपूज्यं च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥
स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।
तस्य प्राणाधिका राधा बहुसौभाग्यसंयुता ।
महाविष्णोः प्रसूः सा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥

( ब्र० [illegible] )

श्रीकृष्ण सबसे प्रधान, परमेश्वर, सबके आदिकारण, सर्वपूज्य, निरीह और प्रकृतिसे परे विराजमान हैं। उनका रूप स्वेच्छामय और नित्य है। वे भक्तानुग्रह-मूर्ति हैं। श्रीराधा उनको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, वे परम सौभाग्यशालिनी हैं। वे ही महाविष्णुकी जननी ईश्वरी मूल-प्रकृति हैं।

श्रीराधिकाजी स्वयं यशोदाजीसे कहती हैं—

'रा'शब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु ।
विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्रीमातृवाचकः ॥
धात्री माताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः ॥

( ब्र० कृ० १११ । ७५-५८ )

'रा' शब्दका अर्थ है—जिनके एक-एक लोमकूपमें सम्पूर्ण विश्व भरे हैं, वे महाविष्णु तथा ( उनके अंदर निवास करनेवाले ) विश्वके प्राणी और सम्पूर्ण विश्व। एवं 'धा' शब्द धात्री तथा माताका वाचक है। अतएव मैं ही महाविष्णु, विश्वके सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त विश्वकी धात्री माता ईश्वरी मूलप्रकृति हूँ।

त्वं च लक्ष्मीः शिवा धात्री सावित्री च पृथक्पृथक् ।
गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा ॥

( ब्रह्मवैवर्तपुराण )

तुम अलग-अलग लक्ष्मी, दुर्गा, धात्री और सावित्री हो; गोलोकमें स्वयं राधा हो और रासमें सदा रासेश्वरी हो।

राधा देवी जगत्कर्त्री जगत्पालनतत्परा ।
जगल्लयविधात्री च सर्वेशी सर्वसूतिका ॥

( बृहन्नारदीय-पुराण )

श्रीराधादेवी जगत्की रचना करनेवाली, उसके पालनमें तत्पर रहनेवाली और ( प्रलयके समय ) संहार करनेवाली है तथा सम्पूर्ण जगत्की प्रसविनी—जननी है।

कृष्णेन आराध्यत इति राधा, कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका ।

( राधोपनिषद् )

श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं, इसलिये ये राधा हैं और ये सदा श्रीकृष्णकी समाराधना करती हैं, इसलिये 'राधिका' कहलाती हैं।

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।

( स्कन्दपुराण )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा निश्चय ही श्रीराधिका हैं।

**येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं** द्विधाभूत्। देहो यथा छायया शोभमानः × × × ×।

( राधिकातापनीयोपनिषद् )

ये—श्रीराधिकाजी और रससिन्धु श्रीकृष्णका देह एक है। केवल लीलाके लिये ही ये दो स्वरूपोंमें प्रकट हैं, जैसे शरीर अपनी छायासे सुशोभित हो।

हमारा यह महान् पुण्य है और हम सब श्रीराधाजीके बड़े ही कृपा-भाजन हैं, जो उनका इस प्रकार स्मरण कर रहे हैं।

अन्तमें आज इस श्रीराधाके प्राकट्य-महोत्सवके दिन हम उनसे प्रार्थना करें—

किसोरी ! तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुंजनि के कोनें स्याम-राधिका गाऊँ॥
या रज सिव-सनकादिक लोचन, सो रज सीस चढ़ाऊँ।
'ब्यास' स्वामिनी की छबि निरखत बिमल बिमल जस गाऊँ॥

## प्रार्थना

जिन श्रीराधाके करैं नित श्रीहरि गुन गान।
जिनके रस-लोभी रहैं नित रसमय रसखान॥
प्रेम भरे हिय सौं करैं स्रवन मनन नित ध्यान।
सुनत नाम 'राधा' तुरत भूलैं तन कौ भान॥
करैं नित्य दृग-अलि मधुर मुखपंकज-मधु पान।
प्रमुदित पुलकित रहैं लखि अधर मधुर मुसुकान॥
जो आतमा हरि की परम, जो नित जीवन-प्रान।
बिसरि अपुनपौ रहैं नित जिनके बस भगवान॥
सहज दयामयि राधिका सो करि कृपा महान।
करत रहैं मों अधम कौं सदा चरन-रज दान॥

'बोलो परम प्रेमकी मूर्तिमान् सच्चिन्मयी प्रतिमा श्रीराधाकी जय जय !!'

---

# पराभक्तिके आदर्श श्रीभरतजी

( लेखक—पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज )

**[ गताङ्क पृष्ठ ११७० से आगे ]**

( ८ ) फिर श्रीभरद्वाजजीने 'बिधि बिसमयदायक बिभव' से समाजसमेत श्रीभरतजीका आतिथ्य किया। उसमें श्रीभरतजीके त्यागकी महिमा सबके दृष्टिपथमें प्रकट हुई। वे बिना पदत्राणके ग्रीष्मऋतुमें वनमार्गमें चलते थे।

भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥ किएँ जाहिं छाया जलद… …'

आदिसे इनकी आदर्श पराभक्तिसे आधिदैविक तापोंकी शान्ति कही गयी है। मार्गमें नाना प्रकारसे श्रीभरतजीकी प्रेम-दशाएँ प्रकट होती जाती हैं; यथा—

जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत पेमु मनहुँ चहु पासा॥
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥

( रा० च० मानस अयो० २२० )

'उमगत पेम… …'—नदीकी उमंगसे तटस्थ स्थल डूबते हैं, वैसे श्रीभरतजीके 'राम' पदप्रेमसे उच्चरित होनेसे पासके लोग भी प्रेम-मग्न होकर 'राम, राम' कहने लगते हैं।

'द्रवहिं बचन सुनि… …'—वज्र और पत्थरके समान हृदयवाले वनवासी भी पिघल जाते हैं, तब अवधके पुरजनों का प्रेम कैसे कहा जा सकता है ?

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥

( रा० च० मानस अयो० २२५ )

उस समय श्रीभरतजीका जैसा प्रेम हुआ, उसे शेषजी भी वैसा नहीं कह सकते और कविको तो वह कथन ऐसा अगम है, जैसे 'मैं, मोर' इस अविद्यात्मक भावके मलिन हृदयवाले मनुष्योंमें ब्रह्मसुखकी प्राप्ति अगम है।

( ९ ) वहाँ श्रीजानकीजीने स्वप्न देखा, तत्पश्चात् ही श्रीभरतजीके ससैन्य आनेकी सूचना मिली। श्रीरामजीने श्रीभरत-महिमाका वर्णन करनेके लिये प्रेरणा करके मानो श्रीलक्ष्मणजीके क्रोधावेशके कथनद्वारा पूर्व-पक्ष कराया [ श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीके नित्य-परिकर हैं। अतः वे लीलाके अनुरोधसे श्रीसीताजीके प्रतिबिम्ब रखनेका मर्म उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जनाया, वैसे यहाँ प्रथम श्रीभरत-प्रेमका रहस्य नहीं जनाया ।] और फिर उस आधारपर कहने लगे—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥
भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥ २३१ ॥
तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥
( रा० च० मानस अयो० )

'बिधि प्रपंच महँ.........कबहुँ कि काँजी.........'

श्रीलक्ष्मणजीने कहा था—

भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ ॥'

उसका निराकरण करते हुए कहते हैं कि चाहे जगत्-भरकी उत्पत्ति, पालन और संहारके कुल अधिकार अकेले श्रीभरतजीको ही मिल जायँ, तब भी इनमें राज्यमद नहीं हो सकता, जैसे काँजीकी छोटी बूँदसे क्षीरसमुद्र नहीं फट सकता। श्रीभरतजीका हृदय क्षीरसमुद्रके समान अगाध और शुद्ध सात्त्विक ( दूधके समान ) कहा गया है । क्षीरसागरमें श्रीलक्ष्मीनारायण रहते हैं, वैसे 'भरत हृदय सियराम निवासू।' है, क्षीरसमुद्रके मथनेसे अमृत प्रकट हुआ है, वैसे यहाँ 'प्रेम अमिअ मंदर बिरह......।' यह कहा गया है। सागर मर्यादामें रहता है, वैसे इनका धर्म मर्यादामें ही रहता है—इस भावसे श्रीलक्ष्मणजीके वचन—'चले धरम मरजाद मिटाई' इसका निराकरण हुआ 'कबहुँ कि काँजी...मसक फूँक...'!— यहाँ 'क्षीरसिंधु', 'तरुन तरनि', 'गगन', 'घटजोनी', 'छोनी' और 'मेरु'—ये छहों क्रमशः श्रीभरतजीकी उपमाएँ हैं; 'काँजी सीकरनि', 'तिमिर', 'मेघ', 'गोपद जल', 'उद्वेग' और 'मसक फूँक' ये छहों राज्यमदकी हैं; क्योंकि श्रीलक्ष्मण-जीने श्रीभरतजीमें राज्यमदके लिये छः ही उपमाएँ दी थीं—शशि, नहुष, वेन, सहसबाहु, इन्द्र और त्रिशंकु। मद-राहित्य-कथनका उपक्रम—'भरतहि होइ न राजमदु' से हुआ है और यहाँ 'होइ न नृपमदु भरतहि भाई।' इसपर उपसंहार किया गया है।

यहाँ 'तरुन तरनि' में अग्नि-तत्त्व; 'छोनी' में पृथिवी, शेष 'गगन', 'गोपद जल' और 'फूँक' ( श्वास-पवन ) में तीन तत्त्व स्पष्ट हैं। ये पाँचों तत्त्व सृष्टिके मूल हैं। ये यदि मर्यादा छोड़ दें तो सृष्टि ही न रह जाय। ये पाँचों चाहे अपनी-अपनी मर्यादा छोड़ दें, पर श्रीभरतजी धर्म-मर्यादा नहीं छोड़ सकते।

श्रीलक्ष्मणजीने कहा था—'जग बौराइ राज पद पाएँ।' उस वचनको रखते हुए भी श्रीरामजीने भरतजीको 'बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।' कहकर इन्हें विधि-प्रपञ्चसे भिन्न अप्राकृत सिद्ध किया।

'लखन तुम्हार सपथ...सुचि सुबंधु...'—यहाँ लक्ष्मणजीके वचन—'कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी।...' इसका खण्डन शपथपूर्वक किया है।

आगे श्रीभरतजीके लोकोत्तर विवेककी प्रशंसा करते हैं—'सगुनु खीरु अवगुन जलु...'—यहाँ 'सगुन' यह पद 'सुगुन'के अर्थमें है। और 'मिलइ' पदका अर्थ 'मिला हुआ ही' यह है; यथा—

कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना ॥

से—

जड़ चेतन गुन दोष मय.....संत हंस गुन गहहिं पय...... ॥
( रा० च० मानस बाल० ६ )

तक—

विधाताकी सृष्टिमें गुण ( सत् ) और अवगुण ( असत् ) मिले ही रहते हैं, पर सूर्यवंशरूपी तालाबमें जन्म लेकर श्रीभरतरूपी हंसने उन गुणों और दोषोंका पृथक्करण कर दिया। सद्गुणोंका ग्रहण कर असद्गुणोंका त्याग करके जगत्के समक्ष विवेकका स्वरूप प्रकट कर दिया। अपने इस विवेकपरक यशसे जगत्में प्रकाश फैला दिया। दूध और जल मिले हुएमेंसे हंस दूधमात्र पी लेता है, जल त्याग देता है; वैसे ही श्रीभरतजी-के आचरणमें आये हुए सभी चरित सद्गुण हैं और त्यागे हुए असद्गुण हैं।

सद्गुणरूपमें श्रीभरतजीने श्रीरामचरणस्नेह ही ग्रहण कर रक्खा है—

(क) मातु सचिव गुर पुर नर नारी। ... ... ... ... ... ... ॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही ॥
( रा० च० मानस अयो० १८४ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु ॥
सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना ........................
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ॥
( राम० च० मानस० अयो० २०७-२०८ )

—श्रीभरद्वाजजी—

(ग) परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥
( रा० च० मानस अयो० २८९ )

श्रीजनकजी—

यही श्रीभरतजीके लोकोत्तर परम विवेकका तात्पर्य है और यही सद्गुण है ।

'प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ।'

श्रीरामजी श्रीभरतजीके गुण-शील और स्वभावका वर्णन करते हुए प्रेमसमुद्रमें निमग्न हो गये; क्योंकि श्रीभरतजी भी तो राम-प्रेमके समुद्र हैं—

'भरत सुप्रेम पयोधि' ( रामचरितमानस अयो० २१० )

गीता ४ । ११ के अनुसार श्रीरामजीका बर्ताव भक्त-भावानुसार होता ही है । श्रीरामजीके इस भरत-महिमा-कथनका वहींपर देवोंने अनुमोदन भी किया है—

जौं न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कवि कुल अगम भरत गुन गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥

( १० ) श्रीभरतजीने ग्लानि प्रकट करते हुए कहा था—

'मोर अभाग उदधि अवगाहू ।'
'बिनु समुझें निज अघ परिपाकू ।'
( रामचरितमानस अयो० २६१ )

इसपर श्रीरामजी कहते हैं—

तीनि काल तिभुअन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥
मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

तीनों लोकों और तीनों कालोंमें सभी पुण्यश्लोक तुमसे नीचे हैं । नल आदि पुण्यश्लोक हैं; यथा—

**'पुण्यश्लोकस्य धीमतः ।'** ( महा० वन० ७६।१ )

श्रीकैकेयीजीपर दोषारोपण तो लोकदृष्टिसे बहुतोंने किया है, किसी-किसीने श्रीभरतजीका सम्मत भी कह डाला है। उन सबके प्रायश्चित्तके लिये श्रीभरतजीके नामके महात्म्य आशीर्वादात्मक वचन कहा है—

'मिटिहहिं पाप प्रपंच सब......' ।

( ११ ) रामचरितमानस अयो० २५३-२५७ श्रीभरत और श्रीवशिष्ठजीकी गोष्ठीमें जब गुरु वशिष्ठजीने कहा कि ( प्रतिज्ञापूर्तिके लिये ) तुम दोनों भाई वन जाओ, तब श्रीसीतारामजी फेरे जा सकते हैं । उसपर श्रीभरतजी कृतकृत्य हो गये और इसकी सिद्धिके लिये बहुत भाँतिसे सस्नेह वचनोंसे निहोरा करने लगे । तब मुनि वशिष्ठजी सभाके साथ विदेह हो गये । उन्हें उस समय श्रीभरतजीके श्रीराम-स्नेहकी महामहिमा अगाध जलराशि समुद्रके समान देख पड़ी—

भरत महा महिमा जलरासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥
गा चह पार जतन हियँ हेरा । पावति नाव न बोहितु बेरा ॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई । सरसी सीपि कि सिंधु समाई ॥

श्रीवशिष्ठजीकी बुद्धि श्रीभरत-महामहिमा-समुद्रके पार जानेमें अबला-सी रह गयी । उसे जहाज, नाव एवं बेड़ाके समान उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कोई साधन नहीं मिल रहे हैं । पुरुष हो तो कुछ तैरनेका भी पुरुषार्थ करे, पर यह तो अबला-सी खड़ी ही रह गयी है । तैरकर थोड़ी दूर, बेड़ासे कुछ और दूर, नावसे उससे भी और दूर जा सकते हैं । हाँ, जहाज हो तो पार जानेकी आशा की जा सकती, पर यहाँ तो कुछ नहीं मिल रहे हैं; तात्पर्य यह कि श्रीवशिष्ठजीकी मति श्रीभरत-महामहिमा-समुद्रमें तनिक भी प्रवेश नहीं कर सकती ।

श्रीब्रह्माजीके मानस पुत्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीकी यह दशा है।

( १२ ) अब रुद्रावतार और श्रीरामजीके नित्य-परिकर श्रीहनुमान्‌जीकी ओर भी देखिये । गीतावली लंका० पद ८-१४ में यह चरित है । मेघनादकी अमोघ शक्तिसे श्रीलक्ष्मणजीके मूर्च्छित होनेपर श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामजीकी आज्ञासे ओषधि लाने गये । ओषधिका पहाड़ ही लेकर आते समय वे श्री-अवधके पास आनेपर श्रीभरतजीके बिना फरके बाणसे मूर्छित हुए । तब श्रीभरतजीकी ही भक्ति-परक प्रतिज्ञापर चैतन्य हो गये ।

वहाँपर वे श्रीभरतजीकी महामहिमा देखकर आश्चर्य-चकित हुए; यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देखि बंधु सनेह, अंब सुभाउ, लखन कुठाय।
तपत तुलसी तरनि त्रासक, येहि नये तिहुँ ताय ॥१४॥'

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीहनुमान्‌जीने भाई श्रीभरतजी एवं श्रीशत्रुघ्नजीके श्रीराम-स्नेह देखे, श्रीकौसल्या और श्रीसुमित्रा माताके स्वभाव देखे और फिर श्रीलक्ष्मणजी-के कुठाँव ( मर्माहत ) पर भी चित्त ले गये। तब सूर्यको भी भय देनेवाले श्रीहनुमान्‌जी इन नवीन तीनों तापोंसे संतप्त होने लगे।

जैसे श्रीकृष्ण भगवान्‌ने श्रीउद्धवजीको व्रज भेजकर गोपियोंसे प्रेम-भक्तिकी शिक्षा दिलवायी है, वैसे ही श्रीरामजीने प्रिय-भक्त श्रीहनुमान्‌जीको प्रेरणा कर श्रीभरत आदिसे प्रेम-भक्तिकी शिक्षा दिलवायी है। श्रीहनुमान्‌जी इन सबके प्रेम और स्वभावके समक्ष अपनेको अत्यन्त अल्प मानकर संतप्त हो रहे हैं कि 'हाय ! मुझमें तो अभीतक कुछ भी प्रेम नहीं है और न ऐसा सरस स्वभाव ही प्राप्त है। अतः यह अलभ्य लाभ छोड़ा नहीं जाता, पर करूँ क्या ? परिस्थिति विवश कर रही है कि वहाँ श्रीलक्ष्मणजीकी मर्माहत दशा है और उससे स्वामी रो रहे हैं। दैहिक आदि तीनों ताप तो पुराने हो गये। अतः लोगोंको उनका सहना अभ्यस्त है, पर ये तीनों नये ताप हैं—बंधु सनेह, अंब सुभाउ, लखन कुठाय। अतः असह्य हैं। सूर्यका ग्रहण करनेमें ये संतप्त नहीं हुए, प्रत्युत सूर्य ही डर गये थे, पर इन नये तीनों तापोंपर ये संतप्त हो रहे हैं कि इन श्रीभरत आदिकी अपेक्षा मुझमें प्रेम अल्पांशमें भी नहीं है।

फिर श्रीहनुमान्‌जीने परिस्थिति कह देरी होनेकी शंका कही, इसपर श्रीभरतजीने अपने तीरपर ही इन्हें भेजनेको कहा। तब श्रीहनुमान्‌के हृदयमें गूढ़ गर्व उत्पन्न हुआ, पर जब पहाड़समेत इन्हें श्रीभरतजीने तीरपर चढ़ा लिया, तब तीरसे उतरकर इन्होंने उनका यश कहना चाहा, पर अपार समझ मौन रह गये—

'तीरसे उतरि जस कह्यो चहै गुन गननि जयो है।
धन्य भरत ! धन्य भरत ! करत भयो मगन, मौन रह्यो, मन अनुराग रयो है॥
यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अचयो है।
तुलसिदास रघुबीर बंधु महिमा को सिंधु तरि को कवि पार गयो है॥'

श्रीभरतजीके बाणपरसे उतरकर श्रीहनुमान्‌जीने श्रीभरतजी ( की भक्तिमहिमा ) का यश कहना चाहा, पर श्रीभरतजीके गुणोंने इनको जीत लिया ( ये यश नहीं कह पाये )। श्रीहनुमान्‌जी 'धन्य भरत ! धन्य भरत !' ऐसा बखान करते हुए प्रेममें निमग्न हो गये, मौन रह गये, इनका मन अनुरागमें रँग गया। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि इस प्राकृत समुद्रको तो ( राजा प्रियव्रतने एवं सगरके पुत्रोंने ) खोदा है, ( दैत्यों और देवोंने ) मथा है, ( श्री-हनुमान्‌जीने ) लाँघा है, ( श्रीरामकृपासे नल-नील आदिने ) बाँधा है और ( श्रीअगस्त्यजीने ) पी लिया है; परंतु रघुकुलके वीर श्रीरामजीके भाई श्रीभरतजीकी महिमाके समुद्रको तरकर कौन कवि पार पाया है ? ( अर्थात् कोई नहीं )।

'यह जलनिधि खन्यो······' श्रीमद्भा० ५। १। ३१ में लिखा है कि राजा प्रियव्रतने अपने ज्योतिर्मय रथपर चढ़कर सूर्यके साथ पृथिवीकी सात परिक्रमाएँ की हैं। रथके पहियोंसे खोदकर जो सात लीकें बन गयीं, वे ही सात समुद्र हुए और उनके बीच-बीचकी भूमिके सातों द्वीप हुए। उनमेंसे एक सागरको सगरके पुत्रोंने खोदकर बढ़ाया भी है।

खोदे जानेपर, मथे जानेपर, लाँघे जानेपर, बाँधे जानेपर और पिये जानेपर प्राकृत सागरकी मर्यादा सीमित ही सिद्ध है, परिमित ही है, उसमें अपरिमित भाव कहाँ ? इन पाँच प्रकारोंसे जिस सीमित सागरकी इतनी दुर्दशाएँ हो चुकी हैं; उसे श्रीरघुवीरके बन्धु श्रीभरतजीकी अपरिमित महिमा समुद्रके समान कैसे कहा जा सकता है ? जिसका आजतक किसी कविने पार नहीं पाया। यथा—

'अगम सनेह भरत रघुबरको। जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को ॥'
( रामचरितमानस अयो० २४१ )

'महिमा तासु कहइ किमि तुलसी।'से—
'भरत सुभाउ न सुगम निगमहू।' तक
( रामचरितमानस अयो० ३०३ )

'भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥'
( रामचरितमानस अयो० २८९ )

ऊपर ( ११ ), ( १२ ) में समष्टि महासागरको श्रीभरत-महामहिमासे उपमित कर इसे अत्यन्त श्रेष्ठ और अपरिमित कहा गया। ऊपर उस सागरके सात व्यष्टिभेद भी कहे गये। उन सातोंकी अपार महिमासे श्रीभरत भक्तिकी महामहिमाके व्यष्टि सात-सात गुणोंसे भी उपमित कर इनकी अपरिमित महिमा आगेके तीन प्रसङ्गोंसे दिखायी जाती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

( १३ )

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥
( रा० च० मानस अयो० २८३ )

यहाँ श्रीकौसल्याजीने श्रीराम-शपथ करके कहा है कि श्रीभरतजीका शील, गुण, विनम्र स्वभाव, बड़ाई ( की महिमा ), भाईपना, भक्ति, भरोसा और भलापन, ( इन सातोंको ) कहते हुए श्रीसरस्वतीजीकी भी बुद्धि हिचकिचाती है ( अशक्त हो जाती है ), क्या ( कभी ) सीपसे सागर उलीचे जा सकते हैं ? अर्थात् सीपीसे सागर उलीचे जानेकी भाँति शारदासे कहा जाना असम्भव है।

सागर प्रधान सात हैं और वे अगाध हैं, वैसे ही यहाँ-पर कहे हुए श्रीभरतजीके सातों गुण भी परम गम्भीर समुद्रवत् हैं और अनन्त भावके हैं। जब शारदासे इनका कहा जाना असम्भव है, तब कोई और कवि क्या कहेगा ? अतः मैं ( कौसल्या ) भी छोड़े देती हूँ। शारदा सबकी वाणीपर रहती हैं। अतः यहाँपर इसके साथ सभी वक्ता असमर्थतामें आ गये।

( १४ ) श्रीजनकजीने रानी सुनयनाजीसे कहा है—

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भवबंध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि॥२८८॥

अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥
( रा० च० मानस अयो० )

हे सुमुखी! हे सुलोचनी! सावधान होकर सुनो, श्रीभरतजीकी कथा भवबन्धनरूपी आवागमन छुड़ानेवाली है। धर्मनीति, राजनीति और वेदान्तशास्त्रमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरी प्रवृत्ति है; अर्थात् इन तीनोंमें मैं बहुत कुछ कह-सुन सकता हूँ। वही मेरी बुद्धि श्रीभरतजीकी महिमा कहेगी तो क्या ? वह तो छल-बल करके भी उस महिमाकी छाया-तकको नहीं छू पाती। ब्रह्मा, गणेश, शेष, शिव, शारदा, कवि, कोविद, पण्डित ( एवं और भी ) जो बुद्धिमें प्रवीण हैं। ( इन नवोंको ) श्रीभरतजीके चरित, कीर्ति, करनी, धर्म-शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य ( ये सातों ) सब किसीको समझने और सुननेमें सुख देनेवाले हैं। उनके गुणोंकी सीमा नहीं है, वे उपमारहित पुरुष हैं। श्रीभरतजीको श्रीभरतजीके ही समान जानो, क्या सुमेरु पहाड़को सेर ( पत्थरका छोटा बटखरा )के समान कहा जा सकता है ? ( अतः ) कविगणोंकी बुद्धि सकुचा गयी। हे परमसुन्दरी! सभीके लिये ( श्रीभरत-जीके चरित आदि सातोंका ) वर्णन करना वैसे ही अगम है, जैसे जलरहित भूमिपर मछलीका चलना। हे रानी! सुनो, श्रीभरतजीकी अपरिमित महिमाको श्रीरामजी जानते हैं, पर वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

'धरम राजनय ……'—इन तीनों शास्त्रोंके आचार्य श्रीजनकजीकी मति भी श्रीभरत-महिमाकी छायातकका स्पर्श नहीं कर पाती। श्रीजनकजी श्रीभरत-महिमाको अपनी बुद्धि तक ही सीमित नहीं रखते; और-और बड़े-बड़े वक्ताओंको भी आगे गिनाते हैं—

'बिधि गनपति ……'—इनमें ब्रह्माजी वेदवक्ता, सब-की बुद्धिके देवता और सभीकी शुभाशुभ गतिके ज्ञाता हैं। शिवजी सर्वज्ञ, ईश्वर तथा व्याकरणप्रवर्त्तक हैं, ऐसे ही शेष, गणेश और शारदा, कवि ( शुक्राचार्य आदि ), कोविद ( बृहस्पति आदि ) एवं और-और पण्डित तथा बुद्धिमान् जो-जो परम श्रेष्ठ वक्ता हैं, इनमें नौ वक्ताओंका वर्णन किया गया है। नौ अङ्कोंकी सीमा है। इससे इसमें संसारके सभी वक्ताओंको भी ले लिया गया है।

'भरत चरित कीरति……'

—यहाँ भी सात गुण कहे गये। अतः इन्हें ऊपर कौसल्याजीके प्रसंगकी भाँति सातों समुद्रोंके समान जनाया गया है कि श्रीभरतजी इन चरित आदि प्रत्येकके अगाध समुद्र हैं।

'समुझत सुनत सुखद……'

—समझनेपर प्रतीति होती है, तब प्रीतिपूर्वक सुना जाता है और फिर उससे सुख प्राप्त होता है। फिर गङ्गाजीके समान पवित्र इस चरितसे हृदय शुद्ध होता है। हृदय शुद्ध होनेपर अधिक श्रद्धापूर्वक सुनते हुए यह अमृतवत् स्वादिष्ट लगता है; यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।'

(रा० च० मानस अयो० ३२६)

'राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ।'

(रा० च० मानस अयो० २०९)

'निरवधि गुन निरुपम पुरुषु······'

उपर्युक्त सातों गुणोंकी अगाध सागररूपताको यहाँ स्पष्ट किया गया है कि भरतजीके प्रत्येक गुण निस्सीम हैं। पुनः 'निरुपम पुरुष'को भी साथ ही 'भरत भरत सम' कहकर स्पष्ट किया है।

'अगम सबहि बरनत'—श्रीभरत-महिमा सभीके लिये यों अवर्ण्य है, जैसे मछली सूखी भूमिपर नहीं चल सकती; क्योंकि कविलोग विषय (वारि) सम्बन्धी गुणोंको ही वैषयिक उपमाओंके द्वारा कह पाते हैं। श्रीभरतजीके दिव्य गुण विषयसे नीरस हैं; इससे कवियोंके द्वारा अवर्ण्य हैं।

'भरत अमित महिमा······जानहिं राम······।'

—श्रीरामजीने कहा भी है—

'तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें··········।'

(रा० च० मानस अयो० २६४)

तथा—

कबिकुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥

(उपर्युक्त) पर सर्वज्ञ श्रीरामजी श्रीभरतजीकी अमित महिमाको अमित जानते हुए परिमित शब्दोंमें कहकर उसे सीमित करनेकी व्यर्थ चेष्टा क्यों करें!

(१५) श्रीगोस्वामीजीने स्वयं भी कहा है—

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥

(रामचरितमानस अयो० ३२५)

श्रीभरतजीकी रहनि, समझनि, करतूत, भक्ति, वैराग्य, निर्मल गुण और निर्मल विभूतिका वर्णन करनेमें समस्त उत्तम कवि सकुचाते हैं। शेषजी, गणेशजी और सरस्वतीजीको भी गम्य नहीं है (तब दूसरे कैसे कहें?)। ऊपर (१३ में) श्रीकौसल्याजीने शीलसे प्रारम्भकर सात गुणोंको सप्त समुद्रोंके समान अगाध एवं अवर्ण्य कहा, वैसे ही (१४ में) श्रीजनकजीने भी चरितकी प्रधानतामें सात ही गुणोंको सप्त समुद्रवत् कहा। उसी प्रकार यहाँ श्रीगोस्वामीजी 'रहनि' की प्रधानतामें सात ही गुण कहते हैं, रहनिका वर्णन इससे ऊपर 'राम मातु गुरु पद सिर नाई।' से प्रारम्भ कर काण्डके अन्ततक तीन दोहोंमें है; क्योंकि श्रीगोस्वामीजी श्रीभरतजीकी रहनिपर ही मुग्ध हैं—

'मोहिं भावति कहि आवत नहिं भरत जू की रहनि।''

(गीतावली, अयो० ८१)

—यह पूरा पद देखने योग्य है।

इन्होंने भी सात ही गुण कहकर इन्हें सप्त समुद्रवत् ही माना है और उपर्युक्त जनक-प्रसंगमें कहे हुए नवों कवियोंको ही यहाँ 'सकल सुकबि' से कहकर इन सातोंको सभी कवियोंसे अवर्ण्य कहा है।

(१६) श्रीभरतचरित-वर्णनके अन्तमें श्रीगोस्वामीजी श्रीभरतजीकी आदर्श भक्तिसे सभीको लाभ उठानेका संकेत करते हैं—

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महा मोह निसि दलन दिनेसू॥
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥

छं०–सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

सो०–भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीयराम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥३२६॥

श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामकैङ्कर्य-निष्ठासे नवधा भक्तिका आदर्श स्थापित किया है। श्रीशत्रुघ्नजीने परम विवेकी प्रत्यगात्मस्वरूप श्रीभरतजीकी सेवामें रह उनसे श्रीरामगुण श्रवण-मनन करते हुए प्रेम-लक्षण भक्तिपुरस्सर भागवत-निष्ठा दिखायी है और भरतजीने सबसे ऊँची पराभक्तिका आदर्श रक्खा है। उसीके लक्षण कुछ ऊपर (५) त्रिवेणी तटपर प्रकट हुए हैं। यहाँ उनके आचरणोंका वर्णन कर उनका आचार्यत्व कहते हैं—

'परम पुनीत भरत आचरनू।······'—स्वार्थरूपी अपावनतासे रहित परमार्थमय और परम पवित्र आचरण **हैं,** वे सुननेमें मधुर, उज्ज्वल और मुद-मङ्गलकारक हैं। **आगे** क्रमशः लाभदायक गुणोंसे 'दुख दाह दारिद···' आदितकमें कहे हुए दूषणोंका इससे हरण होना कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कलिकाल तुलसीसे सठन्हि हठि······'—श्रीभरतजीने जहाँ-तहाँ श्रीरामस्वभाव-सौष्ठवका वर्णन किया है—

ठाउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
... ... ... ...
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
(रामचरितमानस अयो० २९९)

यह सुन-समझकर भारी-भारी शठ भी श्रीरामशरण हो कृतार्थ होते हैं। कलियुगमें शरणागति ही उपाय रह गयी है। वह महाविश्वासपूर्वक ही होती है। श्रीभरतजीके इन आचरणोंसे विश्वास होनेपर वह हरि-शरणागति होती है। इसीसे श्रीतुलसीदासजी शरण होकर श्रीराम-सम्मुख हो कृतार्थ हुए। यह वर्तमानकालका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अतः सभीको इससे लाभ उठाना चाहिये। इसकी प्रक्रिया अन्तके वाक्यसे कहते हैं—

'भरत चरित करि नेम···'—साधन एकमात्र यही है कि नियमसे और आदरपूर्वक श्रीभरत-चरित सुने। मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनना, आदरपूर्वक सुनना है। तब श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम अवश्य होगा और संसारके विषयरसोंसे वैराग्य भी अवश्य ही होगा। 'अवसि होइ' यह 'दीपदेहली' है। अतः दोनों वाक्योंके साथ है।

सभी युगोंमें एवं विशेषकर इस कलिकालमें, यही सर्वश्रेष्ठ कल्याणका उपाय है। अतः इससे सभीको लाभ उठाना चाहिये।*

# श्रीरामचरितमानसमें आगम-तत्त्व

(लेखक—डॉक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी०लिट्०)

(१)

कविवर तुलसीदासजीने बालकाण्डके मङ्गलाचरणमें लिखा है कि जिस राम-कथाको वे अपने अन्तःकरणकी सुख-प्राप्तिके लिये भाषाबद्ध कर रहे थे वह—

**'नानापुराणनिगमागमसम्मतम्'**

—थी। पुराणोंकी कथाएँ मानसके अन्तर्गत पायी जाती हैं। निगमके वाक्य मानसमें भरे पड़े हैं और निगमके आधारस्वरूप—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना—

—की कीर्ति-कथा ही मानसकी कथा है। जिस राम-नामसे गुंजायमान होकर श्रीरामचरितमानस सुमधुर बन गया और जन-मन-प्रिय हुआ, जो राम-नाम भक्तोंके लिये श्रवणामृत है, उस राम-नामको कविवर तुलसीदासजीने—

'बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो'

कहकर सम्बोधित किया। और आगे वे कहते हैं—

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥

इस प्रकार निगम अर्थात् वेदमें जो विषय प्रतिपादित है वही विषय श्रीरामचरितमानसका है। जो वेदका प्राण है वही श्रीरामचरितमानसका प्राण है।

यहाँतक तो स्पष्ट है। अब प्रश्न यह उठता है कि **'नानापुराणनिगमागमसम्मतं'** में 'आगमसम्मत' वे कौन-सी बातें हैं जिनको कविवर तुलसीदासजीने मानसमें स्थान दिया। यह जाननेके लिये संक्षेपमें आगमतत्त्वका निरूपण आवश्यक है।

आगमको मन्त्र-शास्त्र, तन्त्र-शास्त्र और शक्तिमार्गके नामोंसे लोग जानते हैं। आगममें मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र तथा न्यासकी विशेषताएँ हैं। मन्त्रोंमें मन्त्र-बीजकी विशेषता है। प्रत्येक देवी तथा देवताके मन्त्रका एक मन्त्र-बीज होता है। बिना बीजके मन्त्र निर्जीव समझा जाता है, निष्प्राण होता है। यन्त्रमें रेखाओं और बिन्दुओंद्वारा अव्यक्तको व्यक्त करनेका प्रयास होता है। यन्त्रमें निर्गुणके निर्गुणत्व तथा निराकारके निराकारत्वकी रक्षा करते हुए, सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति

* श्रीभरत-भक्ति-निष्ठाके उद्धृत प्रसंगोंके भावोंके दिग्दर्शनमात्र इस लेखमें कराये गये हैं। विस्तारभयसे भावोंके प्रमाण आदि नहीं लिखे गये। पाठक, इन प्रसंगोंकी टीकाओंमें देखें। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रलयका क्रम समझने तथा परात्पर सत्यकी कल्पना करनेमें सुखद, वैज्ञानिक और संतोषप्रद सहायता मिलती है। तन्त्रसे लोग भूत, पिशाच, श्मशान, मारण, मोहन, उच्चाटनादिका केवलमात्र सम्बन्ध समझते हैं। यह भूल है। तन्त्रका तत्त्वज्ञान आजकलके कारणवादी और विज्ञान-प्रधान बुद्धिमानों ( Rational and scientific intellectuals ) के लिये जैसे सुगम और सूक्ष्माति-सूक्ष्म ढंगसे परम सत्यके दर्शन करा सकता है, सम्भवतः और कोई तत्त्वज्ञान नहीं करा सकता। इसीलिये आगम-शास्त्रको कलियुगके लिये विशेष प्रकारसे उपयुक्त कहा गया है। तन्त्र पञ्च-देवताओंके अलग-अलग हैं। शिव-तन्त्र, शक्ति-तन्त्र, गणेश-तन्त्र इत्यादि यद्यपि तन्त्रको अधिकतर लोग शक्ति-तन्त्रके अर्थमें लेते हैं।

शक्ति-तन्त्रका मूल सिद्धान्त श्रीदुर्गासप्तशतीके इस मन्त्रसे स्पष्ट हो जायगा—

**एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।**

( १०।५ )

'मैं अकेली हूँ, इस संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन है?'

श्रीदेव्यथर्वशीर्षके निम्नलिखित मन्त्र इसको कुछ विस्तारसे इस प्रकार समझाते हैं—

**साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च॥**

**अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्मा-ब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्॥**

**वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमन-जाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् चाहम्॥**

( २, ३, ४ )

वह बोलीं—मैं ब्रह्मस्वरूपा हूँ। मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है।

मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ। अवश्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ। पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह सारा दृश्य जगत् मैं ही हूँ। वेद और अवेद मैं ही हूँ। विद्या और अविद्या भी मैं हूँ। अजा और अनजा भी मैं हूँ। नीचे-ऊपर, तिरछे, इधर-उधर भी मैं ही हूँ।

इस भावको श्रीदुर्गासप्तशतीके ये मन्त्र और भी स्पष्ट करते हैं—

**सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।**
**परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी॥**
**यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मके।**
**तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥**

तुम सौम्य और सौम्यतर हो। इतना ही नहीं जितने भी सौम्य तथा सुन्दर पदार्थ हैं उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम ही हो। कहीं भी सत्-असत्‌रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं उन सबकी शक्ति तुम ही हो, अतएव तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है!

यही एका, अद्वितीया, आद्या इस प्रकारसे स्तुत्य है।

**त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।**
**त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्॥**
**त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।**

हे देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो। देवि! तुम्हीं इस विश्वको धारण करती हो, तुम्हीं इस जगत्‌की सृष्टि करती हो, तुम्हीं इसका पालन करती हो और सदा तुम्हीं इसका अन्त करती हो।

'जननी परा' होनेके नाते देवताओंने इनकी स्तुति करते हुए कहा—

**देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद**
**प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।**
**प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं**
**त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥**

हे शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवी! हमारे ऊपर प्रसन्न हो। हे सम्पूर्ण जगत्‌की माता! तुम हमपर प्रसन्न हो। हे विश्वेश्वरी! तुम विश्वकी रक्षा करो। हे देवी! तुम्हीं चराचर जगत्‌की ईश्वरी हो।

( २ )

कविवर तुलसीदासजीने इस मुख्य आगम-तत्त्वको श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसंगोंमें स्थान दिया है। जब स्वायम्भुव मनु और शतरूपाने तप किया और आकाशवाणी हुई कि वे वर माँगें तो उनकी प्रार्थनापर—

**सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू । बिधि हरि हर बंदित पद रेनू ॥** ... **कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलमणि भक्तवत्सल प्रभुने अकेले दर्शन नहीं दिये। उनके साथ—

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

कृपानिधान प्रभुने श्रीमुखसे तपस्वी दम्पतिको यह विश्वास दिलाया—

इच्छामय नर बेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे॥
.............................................॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोइ अवतरिहि मोरि यह माया॥

इसके बाद जब पृथ्वीकी दयनीय दशा देखकर देवताओंने उसके कष्ट-हरणके लिये स्तुति की तब करुणानिधानने गगन-गिराद्वारा विश्वास दिया—

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परमसक्ति समेत अवतरिहउँ॥

इस प्रकार श्रीरामचरितमानसमें महारानी श्रीसीताजीका आदिशक्ति-रूप स्पष्ट है। इसी आशयसे बालकाण्डके मङ्गलाचरणमें कविवर तुलसीदासजी कहते हैं—

**उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।**
**सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥**

अनन्त स्नेहमयी माँ दुर्गाके 'दुर्गतिनाशिनी' वाले गुणको कविवरने 'क्लेशहारिणीम्' कहकर महारानी श्रीसीताजीके अन्य गुणोंके साथ समावेश कर दिया। कारणरहित कृपालु प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी पराशक्ति 'सर्वश्रेयस्करीं'के सिवा और हो ही क्या सकती हैं! करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके परात्पर कारण होनेकी स्मृति मानसमें स्थान-स्थानपर कविवर तुलसीदासजी कराते हैं। जैसे—

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥
पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥
अथवा—
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
अथवा—
तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

इसी प्रकार महारानी श्रीसीताजीका जगदम्बाका रूप कविवरने हमारे सामने स्थान-स्थानपर उपस्थित किया है। जैसे—

सिख हमारि सुनु परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥
अथवा—
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥
अथवा—
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाव जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥
अथवा—
नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा॥
अथवा—
सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥*

( ३ )

आगम-मतका एक सिद्धान्त यह है कि शक्ति सर्वोपरि है। बिना शक्तिके शक्तिमान् नहींके बराबर है। प्रभा-विहीन भास्कर सूर्य नहीं हो सकता। बिना चाँदनीके चन्द्रमा राकेश कैसा ? शक्ति-शून्य शिव शव हो जाते हैं। परंतु शक्तिमान्में शक्ति इस प्रकार निहित है, ऐसी अभिन्न अवस्थामें है कि शक्तिमान्को देखकर भी शक्तिका ध्यान नहीं आता। भगवान् सूर्यको जब हम प्रणाम करते हैं तब उनके तेज, उनके जीवनप्रद प्रकाश, उनके सुखद तापको हम सधन्यवाद नमस्कार करते हैं। अमृतमय पूर्णेन्दुके सौन्दर्यपर हम मुग्ध हो उठते हैं। जब मन्द-मन्द शीतल पवन बहता है हम उसके स्पर्श-आनन्दमें मग्न हो जाते हैं। शीतकालमें ज्वलन्त अग्निके कष्टहरण-तापसे हम सुखी हो जाते हैं। परंतु सूर्य या चन्द्रमा या पवन या अग्निके गुणोंका साक्षात्कार करते हुए भी हमारा ध्यान उस गुप्त शक्तिकी ओर नहीं जाता जो इनके तेज, प्रकाश, गति और तापकी आदिस्रोत हैं और उनके अस्तित्वकी परात्पर कारण हैं। सामान्य जीवनमें भी हम यही देखते हैं कि शक्ति सब कुछका कारण होते हुए भी अप्रकट रहती है। हम कहते हैं कि अमुक मित्रके घरमें विचित्र शान्ति हमें मिलती है, अमुकके घरमें कमालकी सफाई है, अमुकके यहाँ हमने अद्भुत आतिथ्य-सत्कार पाया। परंतु विचार करके देखें तो पता चलेगा कि इन महानुभावोंके घरोंकी शान्ति-

* अथवा—
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥
जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफाई और अतिथि-सेवाका परम कारण वे देवियाँ हैं जो इनके घरोंकी गृहस्वामिनियाँ हैं। लज्जास्वरूपा शक्ति (या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता) प्राथमिक होनेपर भी गौण ही रहती हैं और उस शक्तिमान्‌के प्राथमिकताका स्थान प्राप्त करवाती हैं जिस शक्तिमान्‌का अस्तित्व ही अनन्त-स्नेहस्वरूपा शक्तिके बिना असम्भव है।

शक्तिका यह गोपनीय अज्ञात अस्तित्व व्यष्टि एवं समष्टि जीवनका अद्भुत सत्य है। कविवर तुलसीदासजीने इस सिद्धान्तको श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रकारसे स्थान दिया। उदाहरणार्थ जब करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी—

जनक सुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद ॥

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥

तब जिस मायासीताको महारानी श्रीजानकीजी अपने स्थानपर रख गयी थीं उनमें वह गुण नहीं था जो महारानी-जीमें था, उदाहरणस्वरूप जब राजा दशरथ अयोध्यासे बरात लेकर जनकपुर आये, तब—

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥

अथवा जब भरतलाल करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी-को लानेकी इच्छासे चित्रकूटमें सपरिवार जाकर रहे—

पुर नर नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥

तब—

सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥

इस प्रकार यद्यपि मायासीतामें महारानी श्रीजानकीजी-का शील, रूप और विनीत व्यवहार था, परंतु महारानीजी-वाली महिमा उनमें नहीं थी जो केवल पराशक्तिमें ही होती है। तो जब महारानी श्रीजानकीजी पावकमें निवास करने चली गयीं तब उन ज्ञानी भक्तोंको कैसे संतोष हुआ जो केवल महारानी श्रीजानकीजीकी दर्शन-लालसासे नित्य पञ्चवटीमें आया करते थे, जिनकी आराध्य एकमात्र केवल मातु जानकी थीं, जो केवल माता जानकीके नाते ही सब जगके नाते मानते थे? कविवर तुलसीदासजीने बड़े अनुपम ढंगसे इसका समाधान किया है। रामतापिन्युपनिषद्‌में स्पष्ट कहा है कि महारानी

श्रीसीताजी करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आह्लादिनी शक्ति हैं। आह्लादिनी शक्ति आनन्दस्वरूपा होती है। बिना महारानी श्रीजानकीजीके करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आनन्दमय नहीं हो सकते। आनन्द मुखकी कान्तिसे प्रकट होता है; क्योंकि आनन्द और मुख-छविसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब आनन्द नहीं रहता तब कान्तिरहित होकर मुख अपनी सुन्दरता खो बैठता है। जैसे—

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा।

या—

भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई।

कान्ति सौन्दर्यका एक अङ्ग है। चन्द्रमामें कान्ति होती है, मुक्तामें कान्ति होती है, मूँगेमें, हीरे आदि मणियोंमें कान्ति होती है, स्वर्णमें कान्ति होती है; यौवनमें कान्ति होती है; रूपमें, तपमें, सद्विचारमें, सुखमें, आनन्दमें कान्तिका साम्राज्य है। सबके सौन्दर्यकी आत्मा कान्ति है। यह कान्ति शक्ति-स्वरूपा है। श्रीदुर्गासप्तशतीका एक मन्त्र है—

**या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।**
**नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥**

कविवर तुलसीदासजीने मानसके अयोध्याकाण्ड मङ्गलाचरणमें जिस 'मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य'की स्तुति है वास्तवमें वह श्रीरघुनन्दनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीसीता-की सूक्ष्मरूपसे स्तुति है जो कान्तिस्वरूप होकर करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके मुख-कमलकी शोभाको निर्विकार बनाये रहीं। और मुखाम्बुजश्रीके सूक्ष्मरूपमें वे प्र[भु]से अभिन्न बनी रहीं। कविवरने इस 'मुखाम्बुजश्री' 'न मम्ले वनवासदुःखतः' कहकर इस सत्यकी ओर सं[केत] किया कि 'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा' के पश्चात् माता श्रीमहारानी जानकीजीके भक्त चाहते वे भक्तवत्[सल] श्रीमहारानीजीके दर्शन करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी[के] अचल, अनन्त, निर्विकार 'मुखाम्बुजश्री'को देखकर [कर] सकते थे। महारानी श्रीजानकीजी प्रभु श्रीरामचन्द्रज[ीकी] 'मुखाम्बुजश्री' ही नहीं हैं, वे उनकी अनिर्वचनीय श[क्ति] हैं, वे उनकी अनन्त कोमलता हैं, वे उनकी अकथ उदा[रता] हैं, वे उनकी कारणरहित दया हैं, वे उनकी कृपा हैं।

जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती।

वे उनकी सुन्दरता हैं—

सुंदरता कहुँ सुंदर करई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सुन्दरता जिसे देखकर वैर-भरे राक्षस अपना क्रोध भूल गये—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृप बालक नर भूषन॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥

ऐसी अनुपम सुन्दरता जो करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी विरह-लीलामें भी अचल बनी रही और जिसे देखकर राक्षसराजका भाई—

रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी।

जिस सुन्दरताको देखनेके लिये—

प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥
मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥

और जिस छबिको देखकर चतुरानन—

प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात॥

अतएव अयोध्याकाण्डके इस मङ्गलाचरणमें—

**प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।**
**मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥**

—कविवर तुलसीदासजीने करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी 'सर्वश्रेयस्करीं रामवल्लभाम्' श्रीसीता महारानीजीकी ओर संकेत किया है जो करुणानिधान प्रभुकी आह्लादिनी शक्तिके नाते सच्चिदानन्दके आनन्दमय होनेकी कारणरूपा हैं, जो कान्तिरूपेण संस्थित होकर प्रभु रघुनन्दनकी अनादि, अनन्त मुखाम्बुजश्रीद्वारा करुणानिधान छविसमुद्रकी अकथ, अगोचर बुद्धिपर रूपमाधुरी बन गयीं। जानकीहरणकी लीलाके समयमें यह गुह्यातिगुह्य तत्त्व वे ही समझ सके जिनपर महारानी श्रीजानकी माताकी विशेष कृपा थी, जो माताके अनन्य भक्त थे, जिनके लिये महारानी श्रीमाता जानकीजीको छोड़कर—

'आन भरोस न देवक'

क्योंकि यह परम रहस्य है और यह वही समझ सके हैं जिनपर अनन्त स्नेहमयी माता श्रीजानकीजीकी कृपा हुई—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।

( ४ )

जिस सूक्ष्म विधिसे कविवर तुलसीदासजीने मानसपात्रोंके चित्रणमें शक्तिके विश्वेश्वरी तथा अनन्तवीर्या होनेका प्रमाण दिया है, वैसे ही सूक्ष्म ढंगसे मानसकी कथावस्तुकी गतिका संचालन करनेमें शक्तिका अनुपम रीतिसे उन्होंने वैचित्र्य दिखलाया है। यदि हम राम-कथाके प्रवाहपर विचार करें तो ऐसा लगेगा जैसे यह कहानी थोड़ी-थोड़ी देर बाद रुक-सी जाती है और तब कोई ऐसी घटना हो जाती है जिससे कथाका प्रवाह गतिको पुनः प्राप्त होता है। उदाहरणस्वरूप दशरथ-पुत्र-जन्मके उपरान्त यदि विश्वामित्र मुनि अनुजसहित करुणानिधानको जनकपुर न ले जाते या राम-सीता-विवाह न होता तो राम-कहानी अधूरी रह जाती। विवाहके बाद यदि राजरसभंग न होता या इतना होनेपर भी सीता-हरण न होता तब भी कथा अपूर्ण रहती। जैसे वनवासके १३ वर्ष कटे वैसे ही चौदहवाँ वर्ष भी कट सकता था। सीताहरणके पश्चात् यदि वानर सीता-खोजमें सफल न होते तब भी राम-रावण-युद्ध न होता और रामायण न बनती। इस प्रकार राम-कथामें कुछ ऐसे विराम आते हैं जहाँ विशिष्ट घटना ही कथाको आगे प्रवाहित करती है। ये विराम-स्थल इस प्रकार हैं—

( क ) श्रीसीता-स्वयंवर
( ख ) राजरस-भङ्ग
( ग ) सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा
( घ ) माया सीता कर हरना
( ङ ) सुग्रीव मिताई

और ( च ) कपिन्ह बहोरि मिला संपाती

( क ) सीता-स्वयंवर अथवा श्रीरघुवीर-विवाह-प्रसंग—

जब—

समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

—तब यदि दोनों भाई पुष्पवाटिकासे पुष्प लाकर गुरु विश्वामित्रके पास लौट आते तो राम-सीता-विवाह होना संदिग्ध था। राम-सीता-विवाह धनुष-भङ्गपर निर्भर था।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥
टूटत ही धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

धनुषभङ्गके सम्बन्धमें यह बात स्मरणीय है कि 'दोउ भाई'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनकपुर उन राजाओंकी तरह नहीं गये थे जिनके लिये राजा जनकने कहा—

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥

करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी—

कुअँरि मनोहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय।

—पानेकी इच्छासे जनकपुर नहीं आये थे। वे तो 'मुनिवरके साथा' उस 'चरित एक'को देखने चले आये। जिसको देखनेकी मुनि विश्वामित्रने इच्छा प्रकट की थी।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥

कविवर तुलसीदासजी कहीं भी करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका जनकपुरमें आगमन स्वतन्त्र रीतिसे नहीं सूचित करते हैं। मानसमें यह नहीं लिखा है कि—

राम लषन दोउ भाई आए।

बल्कि लिखा है—

बिस्वामित्र महामुनि आए।

महामुनि विश्वामित्र 'मुनिबृंद समेता' जनकपुर आये थे और महामुनिकी इस मण्डलीके अङ्ग 'दोउ भाई' थे। इन दोनों भाइयोंका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। इसलिये यदि आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दन धनुष बिना तोड़े ही जनकपुरसे अयोध्या लौट आते तो कोई उनकी ओर उँगली न उठाता; क्योंकि 'दोउ भाई' स्वयंवरमें वरणकी इच्छासे नहीं गये थे। वे तो मुनि विश्वामित्रके अनुगामी, उनके सेवक बनकर गये थे। लषनलालने भी रोष प्रकट किया था। वह इस बातपर नहीं था कि राजा जनकने कहा—

कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

—बल्कि इस बातपर उनको क्रोध आया कि रघुकुलमणिके विद्यमान रहते राजा जनकने कह दिया—

बीर बिहीन मही मैं जानी।

और एक बार फिर ऐसी ही बात कही—

जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई।

इसलिये बिना श्रीकिशोरीजीसे विवाह किये आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दन स्वयंवरका 'चरित एक' देखकर यदि लौट आते तो राम-कथाका प्रवाह आगे न बढ़ता। राम-कहानी यहीं समाप्त हो जाती। राम-कथाकी गतिको संचालन श्रीराम-सीता-विवाहसे मिला और राम-सीता-विवाह केवल धनुषभङ्गपर निर्भर करता था। इसके लिये—

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेह मय बानी॥
उठहु राम भंजहु भव चापा।

परंतु महामुनि विश्वामित्र ऐसी आज्ञा न देते यदि पुष्पवाटिकासे फूल लेकर लौटनेपर—

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई॥

और जो श्रीकिशोरीजीसे मधुर मिलन पुष्पवाटिकामें हुआ था, उसका पूरा विवरण आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दन मुनिवरसे एकदम स्पष्ट न कह देते। कविवर तुलसीदासजी कहते हैं—

राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

यह 'सबु' बड़ा मार्मिक शब्द है। 'सबु' का अर्थ यह है कि आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दनने गुरु विश्वामित्रसे यह सब कहा कि कैसे—

संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥

श्रीकिशोरीजीके 'कंकन किंकिनि नूपुर'की ध्वनि उन्होंने सुनी, कैसे उनको ऐसा लगा—

मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥

कैसे—

सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।

और कैसे उन्होंने—

देखि सीय सोभा सुखु पावा।

कैसे श्रीकिशोरीजीकी 'त्रिलोकि अलौकिक सोभा'

सहज पुनीत मोर मन छोभा।

और कैसे उसी समय श्रीरघुनन्दनके 'सुभग अंग' फड़कने लगे। यह 'सबु' सरल स्वभावसे करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने गुरु कौशिकसे कहा। तब—

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं।

और पूजामें ध्यानावस्थित होकर उनको यह सब पता चल गया कि श्रीकिशोरीजीकी यह दशा हुई थी कि—

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हि हूँ परिहरीं निमेषे॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

और तब श्रीकिशोरीजी—

गईं भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥

और उसके बाद—

.................। बोली गौरि हरष हियँ भरेऊ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा॥

पूजा करते समय ध्यानमें ये सब बातें जान लेनेपर पूजा समाप्त करनेके बाद महामुनि विश्वामित्रने—

.................। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे॥

आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दनके मुखसे उनके पक्षका 'सबु' सुनकर और ध्यानद्वारा श्रीकिशोरीजीके पक्षकी सब बात जानकर महामुनि कौशिकने विचारा कि जो 'महेस मुखचंद चकोरी'ने आशीर्वाद श्रीकिशोरीजीको दिया था वही ठीक था, इसीलिये मुनिवरने भी वैसा ही आशीर्वाद दिया—

सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे।

क्योंकि विश्वामित्र मुनि समझ गये कि इसीमें 'इन्ह कहँ अति कल्यान' है।

श्रीराम-सीता-विवाह धनुषभङ्गपर निर्भर था, धनुषभङ्ग गुरु विश्वामित्रकी इस आज्ञापर—'उठहु राम भंजहु भव चापा' यह आज्ञा श्रीरघुनन्दन और श्रीकिशोरीजीके पुष्पवाटिकामें मधुर मिलनपर। परंतु यह मधुर मिलन किसके द्वारा हुआ, इसका कारण कौन था? क्योंकि यह भी सम्भव था कि अनुजसहित आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दन उस 'परम रम्य आराम' में जाकर गुरुकी आयसुके अनुसार दल-फूल लेकर लौट आते और श्रीकिशोरीजी जिनको 'गिरिजा पूजन जननि पठाई' वे भी गौरी-पूजन करके राजमहल लौट जातीं और इन दोनोंकी भेंट न होती। न श्रीरघुनन्दनको पता था कि उस समय श्रीकिशोरीजी पुष्पवाटिकामें हैं और न श्रीकिशोरीजीको ही इसका ज्ञान था कि 'प्रेम बिबस सेवक सुखदाता' वे फूल तोड़ रहे हैं। इन दोनोंके मिलनेका कारण एक सखी थी—एक स्त्री थी—

एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

और उसकी बात जब श्रीकिशोरीजीने सुनी तब—

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई।

इस प्रकार एक सखी—एक स्त्री उस पुष्पवाटिका-मिलनका आदिकारण हुई, जिस मिलनके फलस्वरूप श्रीराम-सीताका परस्पर प्रेम हुआ और अन्तमें उनका विवाह हुआ। श्रीराम-सीता-विवाह एक सामान्य राजकुमार और राजकुमारीका विवाह नहीं था। श्रीकिशोरीजी राक्षसराज रावणके आकर्षणकी कारणरूपा थीं और जबतक इन श्रीकिशोरीजीका श्रीरघुनन्दनसे प्रेम-सूत्र-बन्धन न होता तबतक राम-रावण-संघर्ष असम्भव था और राम-कथा-रामायण न बन पाती।

(शेष आगे)

## आत्मा परमात्मासे—

क्यों नहीं वापस बुलाते हो?
कौन-सा है काम लेना अभी मुझसे और,
जो नहीं वापस बुलाते हो?
खल रहा है अब मुझे निष्प्राण अभिनय, देव!
खल रहा है अब मुझे निष्क्रिय अनिश्चय, देव!
दो मुझे क्रियमाण पथ, गतिशील दृढ़ पग और,
यदि नहीं वापस बुलाते हो।
जो नहीं वापस बुलाते हो॥

—बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कहते हैं सारी अवनतिका मूल धर्म है!!

( लेखक—आचार्य श्रीनरदेवशास्त्री, वेदतीर्थ )

प्र०—कहते हैं सारी अवनतिका मूल धर्म है ।

उ०—यों कहनेवाले पागल हैं ।

प्र०—क्यों ?

उ०—धर्मके कारण ही मनुष्यका, राष्ट्रका, देशका, समाजका पतन होता है । ऐसा कहनेवाले लोग पागल ही तो हैं ।

प्र०—क्यों ?

उ०—इसलिये कि उनको धर्मके सच्चे स्वरूपका ज्ञान नहीं है । उनको भारतवर्षके धार्मिक इतिहासका पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है । यदि उनको ज्ञान होता तो वे कदापि ऐसा नहीं कहते ।

प्र०—अजी, आप यह क्या कह रहे हैं ? क्या 'धर्म'के कारण ही भारत अधोगतिको प्राप्त नहीं हुआ था ? क्या 'धर्म'के कारण ही भारत दुर्बल नहीं हुआ था ? और क्या 'धर्म'के कारण ही भारत निकम्मा नहीं बन बैठा था ?

उ०—मेरे भाई ! तुम सर्वथा अज्ञानमें हो जो ऐसा कहते हो ।

प्र०—फिर क्या कहें ?

उ०—यह कहो कि भारतवासी 'धर्म'को 'स्वधर्म'को छोड़ बैठे थे इसीलिये वे गिर गये थे, कमजोर हो गये थे और निकम्मे बन बैठे थे ।

प्र०—आपका 'धर्म' किस कामका ?

उ०—क्यों ?

लोग धर्मके मर्मको नहीं समझते ।

प्र०—क्या मर्म है धर्मका !

उ०—धर्म तो मनुष्यको देवता बना देता है । मनुष्यके पशुत्वको नष्ट कर डालता है और उसके भीतरी देवत्वको जाग्रत् करता है । 'धर्म' मानवी जीवनका पूर्ण विकास करनेमें समर्थ है । ऐसा 'धर्म' देशको कैसे गिरायेगा ? जरा सोचो, समझो तो धर्मको । धर्म बाह्य रूढियोंका नाम नहीं । सच्चा 'धर्म' तो आत्म-विकासमें, आत्मोन्नतिमें है ।

पूर्णत्वकी प्राप्ति ही 'धर्म'का अन्तिम लक्ष्य है । इस प्रकार धर्मनिष्ठ जीवन राष्ट्र, देश या समाजके विकासके लिये कभी प्रतिकूल नहीं हो सकता । समाजके व्यक्ति जितना अधिक धर्मका पालन करेंगे, उतना ही अधिक राष्ट्रका विकास निश्चितरूपमें होगा । तुमने कई जीवन बना रक्खे हैं—राष्ट्रिय जीवन, धार्मिक जीवन इत्यादि । धार्मिक जीवन कभी राष्ट्र-विरोधी हो ही नहीं सकता । धार्मिक जीवन तो राष्ट्रिय जीवनका सदा पूरक ही रहता है और रहेगा ।

धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्य चिरन्तन स्वरूपका होता है । जो देश, राष्ट्र इस चिरन्तन मूल्यको समझते हैं और आचरण करते हैं वे चिरजीवी बनते हैं ।

प्र०—न जाने आप क्या कह रहे हैं ?

उ०—अरे प्राचीन इजिप्त, रोम, ग्रीस, खाल्डिया, असेरिया आदि राष्ट्र कालकी अनन्त उदरदरीमें विलीन हो गये क्यों ?

प्र०—आप ही बतलाइये ।

उ०—इसीलिये कि उन्होंने चिरन्तन मूल्यके तत्त्वोंको छोड़ दिया था और इसीलिये चारित्र्यरूप पीठकी हड्डी और रीढ़की हड्डी टूट गयी थी । फिर वह सीधे कबतक खड़े हो सकते थे ?

देखो, व्यापारमें, राज-काजमें, अर्थ-प्राप्तिमें यदि उच्च मूल्यका चरित्र न हो तो वह व्यापार, वह राजकाज, वह अर्थ सब नष्ट ही समझिये । अधर्मके कारण कुछ कालतक उन्नति भले ही प्रतीत हो, पतन तो अवश्यम्भावी है । इतिहास इस बातका साक्षी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०—इतिहास जो कुछ कहे, धर्मशास्त्र क्या कहता है ?

उ०—

**अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।**
**ततः सपत्नान् जयति समूलं च निकृन्तति॥**
( मनु० )

मनुष्य, समाज, देश, राष्ट्र अधर्मके आश्रयसे पहिले-पहिले सिर उठाते दिखायी देते हैं और उस दशामें उनको सर्वत्र हरा-हरा ही दिखलायी पड़ता है और उसी अधर्मके जोरपर वे अपने शत्रुओंको परास्त कर देते हैं। पर अन्तमें क्या परिणाम होता है सो जानते हो ?

प्र०—नहीं !

उ०—अन्तमें वे जड़सहित उखड़ जाते हैं—इसलिये तात्कालिक मूल्यवाले तत्त्वोंको छोड़कर चिरन्तन मूल्यवाले 'धर्म' को समझो। यह कल्पना कि धर्मके कारण या अध्यात्ममें लगे रहनेके कारण भारत गिरा, भारत मरा—सर्वथा थोथी कल्पना है।

प्र०—यदि भारतका ऐसा ऊँचा धर्म था तो भारत क्यों गिरा अथवा क्यों मरा ?

उ०—( १ ) पाश्चात्त्य सभ्यताके प्रभावके कारण, ( २ ) भारतने अपनी आध्यात्मिक सम्पदा खो दी, इस कारण। यह हमारा बड़ा भारी अज्ञान है कि हम भारतके पतनका कारण 'धर्म' समझते हैं। पतन और धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं। पतनके कारण कुछ और हैं एवं आप उनको जोड़ रहे हैं धर्मके साथ।

## भारतके इतिहासमें

भारतके उत्कर्षके जो कालखण्ड हैं उनमें भी देशमें धर्मप्रेम था ही। हम यह कह सकते हैं कि जिस समय लोगोंने धर्मका यथार्थ स्वरूप समझा और उसपर प्रेम किया, उस कालखण्डमें भारतने उन्नति की। चरम सीमापर और रहा। और जब-जब 'अधर्म' का आश्रय लिया तब-तब वह अधःपतनकी ओर बढ़ा।

## उपनिषद्-काल

क्या उपनिषद्-कालमें भारतमें समृद्ध राज्य नहीं थे।

प्र०—थे, नहीं कौन कहता है ?

उ०—विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य इत्यादि सम्राटोंके समयमें साहित्य, कला, वस्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र आदिकी क्या कम उन्नति थी ?

प्र०—कौन कहता है उन्नति नहीं थी !

उ०—प्रसिद्ध इतिहासकारने निम्नलिखित प्रश्नोंका मुँहतोड़ उत्तर दिया है।

प्र०—कौन-कौनसे प्रश्नोंका ?

( १ ) साधारणतया भारतीयोंको 'परलोकवादी' और 'ऐहिक उन्नति' की उपेक्षा करनेवाले कहा जाता है।

**पर**

भारतीय केवल 'परलोकवादी' रहकर 'ऐहिक उन्नति' की उपेक्षा करते रहे हैं क्या ? वे लौकिक 'अभ्युदय' को तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते रहे हैं क्या ?

## इतिहासकार सरकार

इसका उत्तर यों देते हैं—'हिंदुओंने, सर्वातीत निरपेक्ष आत्मतत्त्वको सदा ऊँचा स्थान दिया है यह सत्य है। परंतु जिस जगत्में वे रहते थे उस जगत्को वे कभी नहीं भूले, कभी नहीं भूले। यह कहना भी नितान्त भ्रान्तियुक्त है। वे सदा 'जग' को उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते रहे। इसके विपरीत हिंदुओंके सांस्कृतिक इतिहासको देखनेसे स्पष्टरूपमें पता चलता है कि भारतीयोंने जिसको जड कहते हैं उसी वस्तुमेंसे, जिसको भौतिक कहते हैं उसी भौतिकमेंसे, जिसको ऐहिक कहते हैं उसी ऐहिकमेंसे 'आत्मतत्त्व' को विकसित करनेका प्रयत्न किया है।'

## जिन भारतीयोंने

उपनिषद्, वेदान्त, गीता-जैसे ग्रन्थोंकी रचना की, वे ऋषि, मुनि महात्मा दुर्बल थे, निकम्मे थे ऐसा तो आप कह ही नहीं सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भारतीयोंने

अध्यात्मके साथ अभ्युदयकी ओर सदैव ध्यान रक्खा था—

## किंतु

ऐहिक तत्त्वोंमेंसे भी वे आत्मविकास करनेका, साधनेका भरसक प्रयत्न करते रहे।

## इसीलिये

उनके साहित्य, संगीत, शिल्पकला, चित्रकला आदिमें परमात्माकी महिमाका वर्णन मिलता है। परमात्मदर्शन होता है।

उत्तर—और सुनो।

प्रश्न—अपने ही गीत गाओ और क्या। यह नहीं सोचते कि भारतवर्ष इतना ऊँचा था तो इतना गिरा क्यों?

उत्तर—कह तो दिया कि जबसे उन्होंने ऊँचे तत्त्वोंको, मूल्यवान् तत्त्वोंको छोड़ा, तभीसे वे गिरने लगे।

प्रश्न—इन ऊँचे तत्त्वोंका धर्मसे क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—धर्म ही तो इन ऊँचे तत्त्वोंकी ओर ले जानेवाला है। और भी सुनो—

प्रश्न—क्या सुनें?

उत्तर—जरा धैर्यपूर्वक सुनो तो सही।

प्रश्न—अच्छा सुनाइये।

उत्तर—

## जब

धर्मके आधारपर गुरुकुल-पद्धतिकी शिक्षा-दीक्षा-पद्धति प्रचलित थी, तब उस पद्धतिका भारतीयोंके सर्वाङ्गपर विकास पड़ता था जिन्होंने उस पद्धतिकी शिक्षा प्राप्त की।

## उन्होंने

ऐसे आदर्श राज्य स्थापित किये जिनमें उत्तरोत्तर धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक प्रगति-ही-प्रगति होती गयी। जिनमें बड़ी-बड़ी व्यापारिक, औद्योगिक योजनाओंद्वारा भारतकी आर्थिक दशाका सर्वतोमुखी विकास हुआ और वे सफल हुए।

## जिन लोगोंने

भारतीय पद्धतिकी शिक्षा-दीक्षा ली, वे केवल भारतमें ही नहीं रहे, अपितु देश-देशान्तरोंमें गये, वहाँ अपनी बस्तियाँ अथवा उपनिवेश स्थापित किये तथा भारतीय धर्म और संस्कृतिका प्रचार-प्रसार किया—

## उसके

चिह्न अबतक यत्र-तत्र सर्वत्र मिलते हैं और संसारको मुग्ध कर रहे हैं।

## धर्मशिक्षाके

कारण ही हमारे पूर्वजोंने इतना बड़ा संसारव्यापी कार्य किया। इसलिये उस धर्मको हम निरुपयोगी समझकर उसकी अवहेलना करने लगें तो फिर हम-जैसा मूर्ख और कौन होगा?

## इतिहासकार श्रीसरकार कहते हैं—

इसी धार्मिक (गुरुकुल-पद्धतिकी) शिक्षा-दीक्षाके कारण ही वसिष्ठ-विश्वामित्रसे लेकर रामकृष्ण पर्यन्तके बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उत्पन्न हुए.........

इसीसे पाणिनि-पतञ्जलि आदि मुनि बने.........

इसी शिक्षणका फल मैत्रेयी-गार्गी आदि हैं। इसी धार्मिक शिक्षाके कारण चन्द्रगुप्त मौर्यसे लेकर छत्रपति शिवाजी, रणजीतसिंह-जैसे बड़े-बड़े सम्राट्, छत्रपति राजे-महाराजे उत्पन्न हुए।

## जिस धर्मकी

शिक्षाने विभिन्न कालखण्डोंमें नाना प्रकारके प्रश्नोंकी गुत्थियोंको सुलझाया और भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृतिका प्रवाह अक्षुण्ण बनाये रक्खा, वह धर्म अथवा उस समयकी शिक्षा-दीक्षा संकुचित है, वह शिक्षा-दीक्षा निष्क्रिय बनानेवाली है, वह धर्म और वह संस्कृति रखने योग्य नहीं है।

ऐसे कोई कहे, माने तो उसको हम क्या कहें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भारतकी प्रगति

देखनी हो तो मोहेन-जोदड़ो और हड़प्पाके शिलालेख देखो, मोहेन-जोदड़ो और हड़प्पाके उत्खननसे निकली हुई सभ्यता-संस्कृतिके अवशेष—

## सजीव होकर

बोल रहे हैं।

## उन अवशेषोंको

देखकर हमारे पुरातन पूर्वजोंकी उन्नतिका प्राणवाक्य याद आ जाता है—

**'चरैवेति, चरैवेति'**

आगे बढ़ो, आगे बढ़ो।

## इस वैदिक घोषणा

से आर्योंमें प्राणसंचार होता रहता था। तभी हमारे पूर्वज इतना काम कर गये।

## वे घरमें ही

नहीं बैठे रहे, अपितु कहाँ-कहाँ गये—

देखो,

चम्पा गये, स्याम गये, इंडोनेशिया गये, तिब्बत गये, चीन गये, बाली गये, सुमात्रा गये। पुराण कहते हैं मिश्रमें भी गये। महाभारत कहता है पाताल देशमें भी गये और तब जब आर्योंकी सभ्यता, संस्कृति और धर्मका बोलबाला रहा—

## पहिले

भारतमें इतनी बड़ी ऐहिक उन्नति रही और इसीलिये उसी उन्नति या अभ्युदयका नाम ले-लेकर आज भी हम अपना सिर ऊँचा किये हुए हैं।

## इसलिये

यह कथन कि हमारे पूर्वज केवल परलोककी ही सोचते थे, ऐहिक उन्नतिकी ओर उनका कोई ध्यान नहीं था—यह कथन पराकाष्ठाके अज्ञानका द्योतक है

## जिस धर्मसे

ऐहिक और पारलौकिक क्रियात्मक कार्योंमें सदैव शक्ति और स्फूर्ति मिलती रही हो, वह धर्म निकम्मा, उसके माननेवाले निकम्मे—ऐसा यदि कोई कहता है तो वह कहनेवाला पुरुष ही विवेकशून्य है, यों कहे बिना हम नहीं रहेंगे।

## हम इतना अवश्य मानेंगे कि

कुछ भोली-भाली कल्पनाएँ, कुछ मिथ्याचार हमारे पतनके कारण हुए। पर इन धर्मविरुद्ध मिथ्याचार और कल्पनाओंको मूलभूत धर्मतत्त्व समझकर असली धर्मकी अवहेलना करना क्या उचित होगा ?

## धर्म तो

हमारी मातृभूमिका प्राण रहा है और रहेगा। हमारे राजकारण अर्थात् राजधर्म, समाजकारण अर्थात् समाजधर्म, शिक्षा-दीक्षा सब धर्मके आधारपर चली हैं।

## इसलिये

धर्म शब्दका मर्म समझो। धर्म तो शाश्वत वस्तु है, जो सदा बना रहा है और बना रहेगा।

## धर्म नाम है

आध्यात्मिकताके आधारपर बना हुआ जीवनशास्त्र।

## धर्म नाम है

सच्चे मनुष्य बनानेवाला शास्त्र।

## धर्म

रूढ़ियोंका नाम नहीं, थोथी कल्पनाओंका नाम नहीं, मिथ्याचार अथवा मिथ्यापरम्पराओंकी कल्पनाओंका नाम नहीं—

## धर्म है

**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।** ( वैशेषिक )

जिससे यह लोक और परलोक दोनों सधें।*

* ये उद्धरण 'जीवनविकास नामपुर'के हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# 'गोषु पाप्मा न विद्यते'

[ कहानी ]

( लेखक—श्री 'चक्र' )

'कृष्णा चरने ही नहीं जा रही है ! उसे पशुओंके साथ दूर ले जानेको कहिये !' मैं बात पूरी करूँ, इससे पहले दौड़ती-कूदती कृष्णा भड़भड़ाकर मेरी कोठरीमें घुस आयी। उसने जल्दी-जल्दी मुझे सिर, भुजा, पेट, पैरके समीप कई बार सूँघा और फिर शान्त खड़ी हो गयी।

कृष्णा आश्रमकी गाय है। बड़े प्रयत्नसे ढूँढ़कर लायी गयी है। उसके खुर, थन, जिह्वादि सब कृष्ण-वर्ण हैं। पूरे लक्षण हैं उसमें कृष्णा गौके। मैं भोजन करके उठता हूँ तो हाथ धोकर उसे दो रोटी देता हूँ। वह दूर भी चरती हो तो मेरे पुकारनेपर हिरनकी भाँति छलाँग लगाती आती है।

मुझे इधर कलसे ज्वर आने लगा है। साधारण मलेरिया है; किंतु चारपाई पकड़नेको तो उसने मुझे विवश कर ही दिया है। परंतु इस गायसे किसने कह दिया कि मैं रोगशय्यापर हूँ ? कल प्रातः चरवाहेने उसे खोला तो सीधे दौड़ती मेरी कोठरीमें घुस आयी। तबसे आज अबतक उसे जैसे चारा-पानी रुचता नहीं है। चरवाहा बार-बार हाँक ले जाता है। बड़ी कठिनाईसे मेरे बार-बार पुचकारनेपर जाती है और पाँच-दस मिनटमें फिर दौड़ती हुंकार करती कोठरीमें आ खड़ी होती है। मुझे बार-बार सूँघती है और नेत्रोंसे अश्रु गिराती है। इसे चरने तो जाना ही चाहिये।

चरवाहा कृष्णाको फिर हाँक ले गया है और मुझे पड़े-पड़े स्मरण आ रहा है कि बचपनमें घरपर आठ-दस गायें थीं—हृष्ट-पुष्ट सुन्दर गायें। छोटे चाचा ही उन्हें चराते और उनकी सेवा करते थे। गायोंमें ही जैसे उनके प्राण बसते थे। एक बार किसी बातपर क्रोधमें आकर पिताजीने छोटे चाचाको एक थप्पड़ मार दिया। थप्पड़ लगा और तीन-चार गायोंने झटके देकर अपने रस्से तोड़ डाले। छोटे चाचा बड़े दृढ़ शरीरके और फुर्तीले थे। उन्होंने पिताजीको बिजलीकी तेजीसे भुजाओंमें उठा लिया और भूसा रखनेवाली कोठरीमें डालकर बाहरसे द्वार बंद कर दिया। गायोंको बड़ी कठिनाईसे वे फिर बाँध पाये। कोठरी खोलकर उन्होंने पिताजीसे कहा था—'भैया ! इनके सामने मुझे मत मारना ! ये पशु तो कुछ समझते नहीं। आज अनर्थ होते-होते बच गया।'

'इतनी कृतज्ञता गायमें होती है !' मैं अधिक सोच सकता तब, जब कृष्णा फिर न आ खड़ी होती। वह फिर आ गयी है। मुझे सूँघने लगी है। मैं उसके मुखपर हाथ फेरकर उसे समझानेकी चेष्टामें हूँ—'मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं ठीक हूँ। तुम चरने जाओ। तुम्हारा पेट गड्ढा बन गया है। तुम कलसे भूखी हो।' काश, वह मेरी बात समझती होती।

'किंतु गाय कुछ पानेकी भी कहाँ प्रतीक्षा करती है ? वह तो केवल स्नेह देखती है !' कृष्णाको फिर चरवाहा ले गया है और मैं फिर सोचने लगा हूँ। रोगी मनुष्य खाटपर पड़े-पड़े दूसरा क्या करेगा। मैं सोच रहा हूँ उन दिनोंकी बात जब एक बड़े नगरके समीप रहता था, नगरसे बाहर एक मन्दिरके घेरेमें। प्रतिदिन नौ बजेके लगभग वहाँसे चलकर नगरमें आता कार्यालयमें, और सायंकाल लौट जाता। एक मुसल्मान घोसी अपनी गायें प्रातः चराने लाया करता था उधर। एक दिन मैंने समीप चरती एक बड़ी बछड़ीको पुचकार लिया। दो क्षण उसपर हाथ फेर दिये। दो गायें और पास आ खड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई । उनकी गर्दन भी सहलाई । बस, उनसे जान-पहचान हो गयी । वे दूर भी चरती होती थीं और मैं नगर जानेके लिये निकलता था तो देखते ही दौड़ी आती थीं । मुसल्मान घोसी युवक कहता था—'ये मेरे पास भी इस तरह दौड़कर नहीं आतीं ।'

वहाँ बन्दर बहुत थे । प्रायः सब लाल मुँहके ही थे । एक दिन एक मोटा लाल मुखका बन्दर मुझे डरानेको झपटा; किंतु उसे एक बछड़ीने दौड़ा ही तो लिया । दूरतक दौड़कर जब वह पेड़पर चढ़ गया, तब भी वह उस पेड़के नीचे खड़ी रही क्रोधमें भरी । उसके सामने यह बन्दर मुझे काटने दौड़ता है, यह बात बछड़ीसे सहन नहीं हुई थी । मैं भला क्या देता हूँ इन सबको । मेरे पास देनेको वहाँ धरा भी क्या था । भोजन तो मैं नगरमें करके जाया करता था । किंतु गायको पदार्थकी उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी स्नेहकी है । यह सर्वदेवमयी—देवता और भगवान् केवल भावके भूखे होते हैं । गायके सम्बन्धमें भी यही बात कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है ।

× × × ×

'आप तनिक दूर ही रहिये ! बहुत दुष्ट है यह बैल !' मुझे चेतावनी दी गयी । जिनकी गायका यह बछड़ा है, वे तंग आ चुके थे । नाथमें दो लम्बी रस्सियाँ बँधी थीं । दो व्यक्ति उन रस्सियोंको दोनों ओरसे पकड़कर तब उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर करते थे । बाँसमें लटकाकर दूरसे उसे घास डाली जाती थी । अब वह बैल गाँव भेज देनेको मेरे पास आया था । ऊँचा, असाधारण बलिष्ठ और क्रोधी बैल ।

'गोजाति निर्दोष होती है । लगता है कि इसे बहुत तंग किया गया है !' मेरे मनने कहा । बच्चे प्रायः छोटे बछड़ोंको छेड़-छेड़कर उन्हें मारना सिखा देते हैं । इस बैलके साथ भी यही हुआ था । मैंने थोड़ी हरी घास हाथमें ली और बैलकी ओर वह मुट्ठी बढ़ा दी । बैलने फुंकार की; किंतु घास वह खाने लगा । दूसरी मुट्ठी मैंने कुछ निकट जाकर दी । फुंकार ढीली पड़ गयी । उसी शाम मैं उसके पास खड़ा उसपर हाथ फेरने लगा था और वह मुझे सूँघ रहा था । एक सप्ताहमें उसकी नाथमें रस्सी बाँधना अनावश्यक हो गया । कोई बच्चा उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर निःशंक बाँध सकता था ।

'कृष्णा !' उस दिन यह अपनी कृष्णा ही बिफर गयी थी । गर्मियोंमें इस ओर पशु बाँधे नहीं जाते । कृष्णा भी कई महीने बँधी नहीं थी । रात्रिमें दूसरे पशुओंके साथ गोशालामें बंद कर दी जाती थी । वर्षाके प्रारम्भमें खेतमें पशु बाँधनेकी बात हुई । दूसरे पशु बँध गये किसी प्रकार; किंतु कृष्णाको जब बहुत दौड़ाया—तंग किया गया तो वह बिफर उठी । अन्तमें मुझे पुकारा गया । मैंने जाकर तनिक रूखे स्वरमें डाँटा—'कृष्णा ! तुम यह क्या करने लगी हो ? तुम माता होकर मारने दौड़ती हो ! छिः !' गायने जैसे मेरी बात समझ ली । वह मेरे पास आकर चुपचाप खड़ी हो गयी । उस रात वह बाँधी नहीं गयी; किंतु पूरी रात मेरे तख्तेके समीप बैठी रही ।

गाय हो या बैल गोजाति मानधनी है । देवता सम्मानप्रिय होते हैं ही । कोई-कोई पशु अत्यधिक भावुक होता है । आप उसको छेड़ेंगे, उसके प्रति असम्मान दिखायेंगे तो उसमें क्रोध आयेगा । इस प्रकार वह सबसे सशंक, सबको मारनेवाला बन जायगा । किंतु उसमें हिंसाकी वृत्ति नहीं है । वह स्वभावसे निष्पाप है । अपराध उसे स्पर्श नहीं करते ।

यह गाय दूध भरपूर देती है; किंतु इससे सावधान भी बहुत रहना पड़ता है ! एक अच्छे गोसेवकके यहाँ जब मैं गया तो उन्होंने अपनी एक गाय दिखलाते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाया—'इतना क्रोधी पशु मुझे कभी नहीं मिला है।'

'माँ! बात क्या है? तुम मारोगी मुझे?' वे गायोंसे प्रेम करते हैं। उनपर भी कोई गाय मारने झपटती है, यह बात मुझे अटपटी लगी। मैं उस गायके पास ही चला गया। मारना ही हो तो वह मुझे पूरी चोट पहुँचावे, जिससे उसमें पश्चात्ताप तो जागे। किंतु गायने सिर हिलानेके स्थानपर मेरा हाथ चाटना प्रारम्भ कर दिया।

'आपपर यह प्रसन्न है!' वे समीप आने लगे तो गाय सचमुच उन्हें मारने झपटी। बात प्रकट हो गयी, दुहते समय पैर बाँधकर उसे बहुत तंग किया जाता था। अपना अपराध जब वे समझ गये, गोमाताको सानुकूल होनेमें कितने दिन लगने थे। केवल एक समय दूध नहीं मिला। दूसरे समय गायने स्वयं पैरमें रस्सी लगा लेने दी। दूध थनमें रहनेसे उसे भी तो कष्ट हो रहा था।

× × ×

गायके सबसे बड़े प्रभावका पता तो मुझे नहीं है; क्योंकि उसके अपार प्रभावका अनुमान कर पाना ही सम्भव नहीं। वह कामधेनु है—श्रद्धा-सेवित होनेपर प्रत्येक गाय कामधेनु है। किंतु मुझे गायने एक अद्भुत महिमा जाननेका अवसर अवश्य एक बार दिया है।

एक वृद्ध महात्माके दर्शन करने गया था। अब वे कहाँ हैं—है भी उनका शरीर या नहीं, पता नहीं। उनके पास और भी कुछ लोग बैठे थे। मैं भी प्रणाम करके बैठ गया। इतनेमें एक रोगीको लेकर दो-तीन व्यक्ति आये। रोगी स्त्री थी, युवती थी और अत्यन्त पीड़ामें थी। उसके पूरे शरीरमें भयंकर ऐंठन थी। हाथ, पैर, सिर सब अकड़े जाते थे। चीखती थी, छटपटाती थी। उसका क्रन्दन किसीका भी हृदय हिला देता।

'सब कर्मका भोग है!' महात्माने शान्त स्वरमें कहा—'अपने पापकर्मका फल अपने ही सिर तो आयेगा। किंतु इसकी पीड़ा बहुत घट जायगी, यदि किसी निष्पापकी चरणरज इसके शरीरमें लगा दी जाय!'

उस व्यक्तिने, जो स्त्रीके साथ आया था, महात्माजीकी ही चरणरज उठायी तो वे बोले—'नारायण! इस धूलिमें क्या धरा है। यह तो पापोंका पुतला है। वेश देखकर भ्रममें पड़नेसे कोई लाभ तुम्हें नहीं होगा।'

स्वार्थ अन्धा होता है। उस व्यक्तिने वह चरणरज उस स्त्रीको लगायी; किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। अब वहाँ बैठे सभी लोगोंने महात्माजीसे ही पूछा—'निष्पाप पुरुष कहाँ मिलेगा?'

'निष्पाप मनुष्य या निष्पाप प्राणी?' मैंने पूछ लिया; क्योंकि महात्माजी भी निष्पाप मनुष्यका पता जानते होंगे, ऐसा कोई संकेत उन्होंने नहीं दिया।

'निष्पाप प्राणी हो तो भी ठीक है; किंतु महात्माजीने कहा—'नारायण, मनुष्य ही निष्पाप नहीं होगा तो पशु-पक्षी कहाँसे निष्पाप होंगे, वे तो कर्मयोनिमें हैं ही पापभोगके लिये।

'अपने पाप वे भोगते हैं। किंतु उनमें एक प्राणीका शरीर शास्त्र निष्पाप तथा परम पवित्र कहता है!' मैं उठ खड़ा हुआ था—'यह गाय सर्वथा निष्पाप है।'

पासमें एक बूढ़ी गाय चर रही थी। उसके खुरोंके चिह्नकी धूलि मैं उठा लाया और गायकी महिमा उसी समय मुझे देखनेको मिली। उस स्त्रीका चिल्लाना-रोना धूलि लगाते ही बंद हो गया। महात्माजी उठकर उस बूढ़ी गायको भूमिमें पड़कर दण्डवत्-प्रणिपात कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# लोक-जीवनमें देवालयोंका महत्त्व

( लेखक—श्रीओंकारमलजी सराफ )

देवालय पारस्परिक सद्भावनाके केन्द्र हैं। सद्भावनाका लोक-जीवनमें कितना महत्त्व है, यह किसीसे भी छिपा नहीं है। आजके लोक-जीवनपर दृष्टिपात करनेसे साधारणतः विक्षिप्तता, व्यामोह, अनाचरण, दुर्भावना, परस्पर वैमनस्य तथा आध्यात्मिक भ्रमकी ही प्रधानता ज्ञात होती है। इन्हीं दुर्वृत्तियोंसे समाजमें विकृति, प्रवृत्ति और तामसी अर्थात् आसुरी प्रभावोंकी पराकाष्ठा है और चारों ओर सांस्कृतिक अवनतिके ध्वंसावशेष दिखायी पड़ते हैं। इस प्रकार आजका लोक-जीवन प्रायः अस्त-व्यस्त-सा दीख पड़ता है। इस अस्त-व्यस्तताका मूल कारण है भौतिकवादी मूढ़ता। मूढ़ता या अज्ञान विवेकशून्य होता है। विवेक ( Intelligentia ) किसी प्रमाणपत्र या भौतिक समृद्धिमें नहीं होता। बिना विवेकके सद्भावना उत्पन्न हो नहीं सकती; क्योंकि मूढ़ता व्यामोहका कारण है और व्यामोह विक्षिप्तता ही मानसिक और आध्यात्मिक विकृति है।

फिर प्रश्न उठता है, इस मूढ़ताकी आसुरी प्रकृतिको कैसे हटाया जाय और उसके स्थानपर विवेककी स्थापना कैसे की जाय, जिससे समाजमें सौमनस्य, सदाचार और सांस्कृतिक उन्नयन उत्पन्न हो। इसके पहले कि इसके कारण और उपाय बतलाये जायँ, यह आवश्यक है कि प्रवृत्ति और निवृत्तिका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। प्रवृत्ति आसक्तिका ही दूसरा नाम है। आसक्ति ही आसुरी-वृत्ति है; क्योंकि इसमें व्यामोहके कारण विवेक-शून्यता होती है। निवृत्तिका साफ शब्दोंमें यही अर्थ है कि प्रवृत्ति अर्थात् आसक्तिका परित्याग। निवृत्तिको ही भगवान्‌ने गीतामें निष्काम कर्मयोग अर्थात् फलासंग-शून्य कर्मकी संज्ञा दी है। कर्मसे फलासक्तिका चिपकना ही प्रवृत्ति है और अनासक्ति निवृत्ति। ज्ञानमें उत्तरोत्तर ह्राससे निवृत्ति जो कि जन-साधारणकी भावना थी कि साधुओं, योगियों और यतियोंका कार्य मानी जाने लगी और सारा समाज तेजीसे प्रवृत्तिकी ओर मुड़ा। प्रवृत्ति महत्त्वाकाङ्क्षी होती है और सारे संसारपर एकाधिपत्यका स्वप्न देखती है। फलस्वरूप एक-दूसरे आपसमें प्रतिद्वन्द्वी बनकर स्पर्द्धा करते हैं और दुर्वृत्तियाँ अर्थात् असुरत्वकी सृष्टि होती है। निवृत्ति विवेकजन्य है, जिसमें उत्साह, आत्मबल, संयम, त्याग और सद्भावनाके भाव हैं। इसीका दूसरा नाम देवत्व भी है।

तो लोक-जीवनमें निवृत्तिकी जितनी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता विवेककी है जो उसका आधार है। निवृत्ति, देवत्व, मनुष्यता, आत्म-ज्ञान और सद्वृत्ति एक ही भावके शब्द हैं, केवल भावनाके अनुसार उनका स्वरूप बदलता है।

देवालयोंका लोक-जीवनमें महत्त्व बतलानेके पहले उसकी एक रूप-रेखा प्रस्तुत कर देना आवश्यक है। देवालय केवल इसलिये पूज्य या संरक्षण योग्य नहीं है कि उनमें मूर्ति है और पूजा होती है। देवालयका अर्थ ही है वह स्थान 'जहाँ देवता वास करता है।' अश्रद्धालु लोग यह पूछ बैठते हैं कि पाषाणमें परमेश्वर कैसे हैं! इसके उत्तरमें हम महात्मा गांधीके शब्दोंमें यह कह सकते हैं कि 'मनुष्यकी श्रद्धाने उनका निर्माण किया है और उसने उन्हें जो माना है, वही वे हैं। वे मनुष्यकी किसी तरह महाशक्तितक पहुँचनेकी आकाङ्क्षाके परिणाम हैं।' ( हरिजन १८।३।१९३३ )। गङ्गा-स्नान भले ही औषधिसिक्त जल-सेवनका उपचार हो, किंतु प्रायः शत-प्रतिशत लोग गङ्गा-स्नान वैज्ञानिक या आयुर्वेदिक लाभके लिये नहीं करते; बल्कि वे भावनाकी शुद्धि करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं; क्योंकि उन्हें गङ्गामें विश्वास है। विश्वासके बिना भावनाका अस्तित्व नहीं है। भावनाका गहन रूप ही श्रद्धा है, जिसका आधार विश्वास है और परिणाम आत्मानन्द। उसी प्रकार पाषाण-पूजन मनुष्यकी उस श्रद्धाका प्रतीक है, जो उसे संस्कारसे मिली है। वह जड़में भी परमात्मा अर्थात् आत्मानन्दका दर्शन करता है। यह हुई देवालयोंकी भावनात्मक विशेषता, किंतु प्रत्यक्ष-रूपसे लोक-कल्याणका पथ देवालयोंद्वारा प्रशस्त किया जाता था। सबसे पहले वहाँ गार्हस्थ्य-जीवनकी सबलताके लिये विवेकपूर्ण उपदेश दिये जाते थे। भावनाकी शुद्धता और अखिल मानव-समाजमें परमात्म-भावका विश्वास देवालयोंसे मिलता था। शिक्षा और सद्भावना देवालय देते थे। जीवन-दिशाका देवालय संकेत करते थे। न्याय, दया, क्षमा, चरित्र और मैत्रीका पाठ देवालय पढ़ाते थे। रोगियोंकी चिकित्साके लिये देवालयोंमें व्यवस्था थी। साधारण अर्थमें देवालय मनुष्यकी मानसिक, कायिक और वाचिक समृद्धिके संवाहक और प्रवर्तक थे। शिक्षालय, चिकित्सालय, न्यायालय तथा अन्य लोकोपयोगी आलयोंका एकत्रीकरण ही देवालय था, जिसका आचार्य बहुमुखी प्रतिभाका अत्यन्त ही विशाल व्यक्तित्व होता था। लोक-जीवनके सुख-दुःखका उत्तरदायित्व देवालयोंपर था। देवालय संस्कृतिके प्राण-केन्द्र थे, जहाँ मनुष्यको संस्कार मिलता था।

इन सभी कार्योंको देखते हुए मानना पड़ता है कि देवालयोंका लोक-जीवनमें इतना महत्त्व है, जितना महत्त्व देशके औद्योगीकरण और आधुनिकीकरणका है। कुछ भौतिकवादी तार्किक यहाँ प्रश्न उपस्थित कर सकते हैं, यदि उपर्युक्त मिसाल ही देवालयोंके महत्त्व हैं तब आज उनका कोई महत्त्व नहीं रह गया; क्योंकि आज बड़े-बड़े विश्वविद्यालय, अस्पताल और न्यायालय बन गये हैं। विज्ञानने मनुष्यको इतना विस्तृत कर दिया है कि वह सांस्कृतिक झमेलेमें पड़कर अब संकीर्ण नहीं बन सकेगा। उनका तर्क सही हो सकता है; किंतु एकाङ्गीरूपसे। माना कि बड़े-बड़े विद्यालय हैं; किंतु कितने प्रतिशत स्नातकोंमें वह विवेक है जो समाजके लिये आवश्यक है? माना कि बड़े-बड़े अस्पताल हैं; किंतु देशके कितने प्रतिशत लोग नीरोग हैं? माना कि बड़े-बड़े न्यायालय हैं किंतु कितने प्रतिशत लोग उनमें न्याय पाते हैं? उत्तरमें शून्य हाथ आयेगा।

किंतु देवालयोंके विद्यालय स्नातक नहीं पैदा करते थे, सफल और सबल समाजकी इकाई पैदा करते थे। देवालयोंके स्नातक प्रशासक बनकर जनताकी सेवा करते थे। भ्रष्टाचार और अनैतिकताको व्यक्तिगत स्वार्थके लिये प्रोत्साहित नहीं करते थे। देवालयोंके औषधालय रोगी-को रोगमुक्त ही नहीं करते थे, बल्कि रोगकी उत्पत्तिके ही वे समूल विनाशका उपाय सोचते थे। आज प्रति पाँच हजार व्यक्तिसे अधिक संख्यापर एक डाक्टर होता होगा, वह भी प्रमाण-पत्रवाला। किंतु देवालय सबको चिकित्सक बनाते हैं, जो अपने शरीरकी रोज ही चिकित्सा करता है। देवालयोंके न्यायालयमें न्यायके लिये बड़ी-बड़ी कानूनी पोथियाँ नहीं थीं, बल्कि विचारपति अपराधका मूल खोजता था और ऐसे दण्डकी व्यवस्था करता था जिससे अपराधके मूलका ही उन्मूलन हो।

इस प्रकार देवालयोंका लोकजीवनमें महत्त्व विशेष मालूम पड़ता है। आजके जीवनके लिये तो यह अत्यन्त ही आवश्यक हो गया है। जब हर तरफ फूट-ही-फूट है। चाहे वह समाज हो या व्यक्ति हो, राज्य हो या सरकार हो; क्योंकि अब आँखें राजनीतिकी हो गयी हैं और दृष्टियाँ भौतिकवादकी। प्रत्येक मनुष्य काञ्चनके मापदण्डसे मापा जाता है। जीवनके हर क्षणपर राज-नीतिका बोलबाला है। पार्लियामेंटसे लेकर पति-पत्नीके छोटे परिवारतकमें राजनीति और कूटनीति है, जिससे फूट बढ़ती है और समाज रसातलकी ओर जा रहा है। हमें फूट मिटाकर काञ्चनके बदले मनुष्यका मापदण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक और सेवा रखना होगा तथा सह-अस्तित्व और एकताके लिये राजनीतिक प्रभावका परित्यागकर मानवताकी दृष्टि भरनी होगी जो देवालयोंके माध्यमसे ही हो सकेगा । इसमें अन्यथा या अन्य विकल्पके लिये स्थान रिक्त नहीं है । आजके इस विचार-वैषम्यके युगमें लोकजीवनमें जितना महत्त्व देवालयोंका है, उतना किसीका नहीं ।

आज भारतीय समाजमें अभियान प्रारम्भ हैं । सभी सुखके लिये दौड़ पड़े हैं; किंतु उन्हें वह नहीं मिलता । आज ऐसा ही एक दल क्रान्तिकी आवाज देता आ रहा है और लगता है कि निकट भविष्यमें ही एक महान् रक्तहीन क्रान्ति होनेवाली है जो चुपचाप समाजका स्वरूप बदल देगी । यह क्रान्ति प्रकाश अर्थात् सत्यकी होगी । जिसका संघर्ष असत् और अन्धकारसे होगा । सौजन्य स्थापित होगा और दुर्जनता पराजित होगी । इसकी बुनियाद भारतकी सांस्कृतिक परम्परामें पड़ी है । भगवान् बुद्ध, महावीर, कबीर, तुलसी, नानक, दयानन्द आदिने जिसे अंकुरित किया है और आधुनिक युगमें गांधीने उसका प्रयोग किया । आज भी भारतके कुछ संत इसका प्रयोग कर रहे हैं । विनोबाके पदाचारसे जो धूल उड़ रही है जिसकी परिणति देवालयके अरक्षित द्वारसे हो रही है ।

देवालय धर्मप्राण-संस्कृतिके केन्द्र हैं और लोक-जीवन धर्म-सापेक्ष हैं । धर्म स्वयं ही एक क्रान्ति है जिसकी गति सर्वदा प्रकाशकी ओर है, आनन्द जिसका लक्ष्य है और सर्वतोमुखी उन्नयन तथा मुक्ति जिसकी गतिविधियाँ। क्रान्ति वही है जो सर्वदा वेगवती संचालन क्रिया हो, जिसका लक्ष्य हो प्रतिपल नवीनताका प्रवर्तन । आज इसी महत्त्वको ध्यानमें रखकर देवालय-संरक्षणकी आवश्यकता ज्ञात हुई है जिससे समाजकी बहुमुखी उन्नति और समृद्धि हो ।

---

## स्वप्न-समीक्षा

आज भी, मेरे आराध्य ! मैंने एक सपना देखा है ।

उस सपनेमें बहुत-सी और बातोंके अतिरिक्त तुम्हारे दरबार-जैसा समाज भी था, तुम्हारे आकार-जैसा रूप भी था ।

उसमें तुम्हारी भावना भी थी, तुम्हारी याद भी थी—उसमें तुम्हारा ही अनुमान था ।

ऐसे सपनोंकी मैंने अबतक बहुत कदर की है और उन्हें तुम्हारा दर्शन ही समझा है । मैंने उन्हें अपने सुन्दर, अदेखे संसारकी झाँकी समझा है ।

लेकिन वह बहुत कुछ क्या मेरे हृदयकी भावुकताकी ही रचना न थी ? उसी भावुकताकी भूमिपर मैंने तुम्हारी पूजाके लिये बहुत-से भवन बनाये थे । उनमें कभी-कभी तुमने, लेकिन अधिकांश मेरी भावुकताने ही दीपक जलाये थे ।

उन सपनोंको मैं आज सम्मानकी दृष्टिसे देखता हूँ। उनकी दुनियामें पहुँचकर तुम्हारी याद, तुम्हारा अनुमान अब भी मेरे कल्याणके साधन बनते हैं ।

लेकिन यह बहुत कुछ मेरे हृदयकी भावुकताकी ही रचना है ।

मुझे तो, मेरे पूज्य ! अब वही सपनोंकी दुनिया शरण दे सकेगी, जिसकी रचना तुम स्वयं करोगे और जिसमें मेरी भावनाओं और रूप-कल्पनाओंका हाथ न होगा ।

वैसे तो, आज भी मेरे आराध्य ! मैंने एक सपना देखा है ।

[ एक तरुण साधककी डायरीसे ]
२-७-४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥**

**राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार । तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार ॥**
**साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥**
**जपहिं नाम जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥**
**राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल । जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥**

आजके इस आधि-व्याधि, रोग-शोक, द्रोह-द्वेष, स्पर्धा-कलह, वैर-हिंसा, वैषम्य-दारिद्र्य, तमसाच्छन्न बुद्धि-अहंकार, दुर्विचार-दुर्गुण तथा दुष्क्रिया आदि उपद्रवोंसे पीड़ित; अकाल, अवर्षा, अतिवर्षा, अग्निदाह, भूकम्प, महामारी आदि दैवी प्रकोपोंसे पूर्ण; अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, असदाचार, व्यभिचार और स्वेच्छाचार तथा भगवद्विमुखतारूप दुर्भाग्यसे संयुक्त अशान्तिपूर्ण युगमें विश्व-प्राणीको इन सभी उपद्रवों, प्रकोपों तथा दुर्भाग्यसे मुक्तकर सर्वाङ्गीण सुखी बनानेके लिये तथा मानव-जीवनके चरम तथा परम लक्ष्य मोक्ष या परम प्रेमास्पद भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति करानेके लिये एकमात्र 'भगवन्नाम' ही परम साधन है । सभी श्रेणियोंके, सभी जातियोंके सभी नर-नारी मङ्गलमय भगवन्नामका जप कर सकते हैं । कुछ समय पहले अष्टग्रही योग था, उस समय विशेष कुछ नहीं हुआ, इससे लोगोंने भाँति-भाँतिसे उपहास किया । परंतु अब उसका फल सामने आने लगा है, चारों ओर अशान्तिके बादल छाये हैं, युद्धकी घटाएँ घुमड़ी आ रही हैं, आये दिन भयानक बाढ़, भूकम्प और दुर्घटनाओंके कारण धन-जनका भयंकर विनाश होनेके समाचार मिल रहे हैं । मनुष्य भगवान्‌को भूलकर राक्षस हुआ जा रहा है । इन सारी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विपत्तियोंके निवारणके लिये भगवन्नाम ही परम साधन है । इसीलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे प्रतिवर्षकी भाँति प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक स्वयं प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक नाम-जप करें तथा प्रेमपूर्वक प्रेरणा करके दूसरोंसे करायें । यही परम हित है । गत वर्षकी भाँति इस वर्ष भी—

**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥**

—इस उपर्युक्त १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रके २० ( बीस ) करोड़ जपके लिये ही प्रार्थना की जाती है । नियमादि इस प्रकार हैं—

**१–यह श्रीभगवन्नाम-जप जपकर्ताके, धर्मके, विश्वके—सबके परम कल्याणकी भावनासे ही किया-कराया जाता है ।**

**२–इस वर्ष इस जपका समय कार्तिक शुक्ला १५ ( ११ नवम्बर १९६२ ) से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ला १५ ( ८ अप्रैल १९६३ ) तक रहेगा । जप इस समयके बीच किसी भी तिथिसे करना आरम्भ किया जा सकता है, पर इस प्रार्थनाके अनुसार उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ला १५ सं० २०२० को समझनी चाहिये । पाँच महीनेका समय है । उसके आगे भी जप किया जाय, तब तो बहुत ही उत्तम है । करना चाहिये ही ।**

**३–सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध-युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४-एक व्यक्तिको प्रतिदिन 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' इस मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार ( एक माला ) जप तो अवश्य करना चाहिये। अधिक कितना भी किया जा सकता है।

५-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे, अंगुलियोंपर अथवा किसी अन्य प्रकारसे रक्खी जा सकती है।

६-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए—सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

७-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो स्वस्थ होनेपर या उस कार्यकी समाप्तिपर प्रतिदिनके नियमसे अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

८-घरमें सौरी-सूतकके समय भी जप किया जा सकता है।

९-स्त्रियाँ रजोदर्शनके चार दिनोंमें भी जप कर सकती हैं, किंतु इन दिनोंमें उन्हें तुलसीकी माला हाथमें लेकर जप नहीं करना चाहिये। संख्याकी गिनती किसी काठकी मालापर या किसी और प्रकारसे रख लेनी चाहिये।

१०-इस जप-यज्ञमें भाग लेनेवाले भाई-बहिन ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके मन्त्रके अतिरिक्त अपने किसी इष्ट-मन्त्र, गुरु-मन्त्र आदिका भी जप कर सकते हैं। पर उस जपकी सूचना हमें देनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें सूचना केवल ऊपर दिये हुए मन्त्र-जपकी ही दें।

११-सूचना भेजनेवाले लोग जपकी संख्याकी सूचना भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि भेजनेकी भी आवश्यकता नहीं है। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

१२-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणके रूपमें यदि कोई 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ ( १०८ ) होती है, जिनमेंसे भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० ( एक सौ ) मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिनसे जो बहिन-भाई मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमा तकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

१३-सूचना प्रथम तो मन्त्र-जप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र-पूर्णिमातक जितना जप करनेका संकल्प किया गया हो, उसका उल्लेख रहे तथा दूसरी बार चैत्र-पूर्णिमाके बाद, जिसमें जप प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र-पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या हो।

१४-जप करनेवाले सज्जनोंको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव कम हो जायगा। स्मरण रहे—ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक बनते हैं।

१५-सूचना संस्कृत, हिंदी, मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी अथवा उर्दूमें भेजी जा सकती है।

१६-सूचना भेजनेका पता—'नाम-जप-विभाग,' 'कल्याण'-कार्यालय, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

प्रार्थी—चिम्मनलाल गोस्वामी

सम्पादक-'कल्याण' गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वेदना

( लेखक—श्रीदानविहारीलालजी शर्मा 'शरण' )

अन्तस्तलकी लुप्त एवं मूक वेदनाको हम तुमतक कैसे प्रकट करें, मोहन ! तुम सर्वान्तर्यामी होते हुए भी क्या उसे अनुभव नहीं कर रहे हो, प्यारे ! सृष्टिके आदिसे अन्ततक व्यापक इस उत्पीड़नको क्या तुम अब भी उसी पुरानी अपनी सहज मुस्कानसे देखकर चैनकी मादक वंशी बजाते रहोगे, वंशीधर !

× × × ×

तुम्हें क्या ज्ञात नहीं कि अब हम अपना अपनत्व तक भी तो लुटा बैठे हैं, निष्ठुर ! अपने सभी स्वजनोंसे तिरस्कृत, सांसारिक असहनीय यातनाओंसे दिनोंदिन प्रपीड़ित और अपनी इस स्वाभाविक वेदनासे दग्ध हम कबतक संतोष कर तुम्हारी मधुरिमामय, शीतलतामय एवं चिर-शान्तिमय सान्त्वनाकी बाट जोहते रहेंगे, व्रजगोपकुमार !

× × × ×

और अधिक विलम्ब होनेसे, तुम जानते ही हो कि अपनी कैसी दशा होगी ? व्रज-गोपिकाओंकी विरह-वेदनाको क्या इतनी शीघ्र भूल गये, व्रजनाथ ! अपनी इस नितान्त असहनीय एवं दयनीय वेदनाकी जटिल परिस्थितिमें क्रूरतासे जकड़नेवाले गोपकुमार ! हम अब किन शब्दोंमें अपनी इस हार्दिक 'वेदना' को व्यक्त करें ? तुम्हीं बताओ न जीवन-धन !

# श्रीराधा-महिमा

याऽऽविष्करोति करुणाकुलकातरत्व-
मक्ष्णोः कटाक्षकलया प्रणतेषु नित्यम् ।
प्रीतिं परां प्रियतमस्य दधात्यबाधां
राधामुदारहृदयां सदयां नुमस्ताम् ॥

( १ )

होती जिनकी ही करुणाके वरुणालयसे
प्राप्त रत्नराशि हरिभक्तिकी अबाधा है ।
साधा है असाध्यको जिन्होंने समाराधनासे
प्रीति-रज्जुओंसे नित्य मुक्तको भी बाँधा है ॥
श्यामरससिन्धुको समोद भरनेके हेतु—
नेहकी नई जो सुरसरित् अगाधा हैं ।
आत्माराम हरि रमते हैं, अविराम जहाँ
आतमा वही ये परमातमाकी राधा हैं ॥

( २ )

मोदानन्द चाहे तो यशोदानन्द चाहे क्यों न—
अघ हरनेको अघ-हरन-चरन तू,
कीर्ति, तनयादि तज कीर्तितनयाके भजे—
पदकंज क्यों रे पामर ! न आमरन तू ।
नन्दके अलिन्द या कलिन्दनन्दिनीके तट—
नीके नटनागरकी चट ले सरन तू,
आधि-व्याधि कारण उपाधिके निवारणको
राधिकारमन रट साधिकार मन ! तू ॥

राधाष्टमीपर ] —पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री 'राम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पढ़ो, समझो और करो

## ( १ )

## पिउनसे मैनेजर

अबसे प्रायः ३२ वर्ष पूर्वकी बात है । मैं कलकत्तेके प्रसिद्ध काली-मन्दिरमें बैठा हुआ था । कुछ देरके बाद दो आदमी आये । एकके हाथमें एक पुस्तक और एकके हाथमें पूजाकी सामग्री थी । पुस्तकवाला आदमी भीतर मन्दिरमें जाकर पाठमें संलग्न हो गया और सामानवाला मेरे समीप आकर बैठ गया । मैंने पूछा 'आपके साथ आनेवाले कौन हैं?' उस आदमीने कहा—'इस समय इसी शहरमें एक धानकी मिलमें मैनेजर हैं ।' मैंने पूछा—'इस समयका क्या अर्थ है, इससे पहले क्या थे ?' इसपर उसने कहा कि 'इससे पहले ये इसी धान-मिलमें पिउन थे ।' पुनः विशेषरूपसे इस विषयको जाननेकी मेरी इच्छा देखकर उस आदमीने मुझसे जो कुछ कहा, मैं वही लिख रहा हूँ ।

'मैनेजर साहब मुजफ्फरपुर जिलेके रहनेवाले हैं । इनका नाम है—'××× मिश्र ।' मिश्रजी इसी मिलमें उन्नीस रुपये मासिक वेतनपर पिउनका काम करते थे । आजसे आठ वर्ष पहलेकी बात है । मिश्रजी छुट्टी लेकर अपने घर जा रहे थे । रेलके जिस डिब्बेमें मिश्रजी बैठे थे, उसी डिब्बेमें इनके समीप ही एक 'सेठजी' भी बैठे थे । देवघर स्टेशनपर सेठजी गाड़ीसे उतर गये और एक लाल रंगका गजिया छोड़ गये । मिश्रजीने सेठजीको पुकारा किंतु विशेष भीड़ होनेके कारण सेठजी सुन न सके । कोई अन्य व्यक्ति दखल न देने लगे, इसलिये मिश्रजीने उस गजियेको लेकर तुरंत छिपा दिया । कुछ देरके बाद घबराये हुए सेठजी उस डिब्बेमें आकर पूछने लगे—'भाइयो ! आपलोगोंने एक गजिया देखा है क्या ?' यह सुनकर मिश्रजीने सेठजीसे कहा कि 'गजिया किस रंगका है और उसमें क्या चीज है ?' सेठजीने बताया कि 'गजिया लाल रंगका है और उसमें दस हजारके नोट हैं, नौ हजारके सौ-सौ रुपयेके और एक हजार दस-दस रुपयेके हैं ।' विश्वास हो जानेपर मिश्रजीने सेठजीके हाथमें गजिया देकर कहा कि 'अपने नोट गिन लीजिये । हमने तो आपको पुकारा था किंतु आपने सुना नहीं, हम इसी उधेड़-बुनमें थे कि क्या करें, तबतक आप आ ही गये ।' फिर सेठजीने नोट गिने । नोट ज्यों-के-त्यों पूरे थे । तदनन्तर सेठजीने पाँच सौ रुपये मिश्रजीको पुरस्कार देना चाहा किंतु मिश्रजीने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि 'सेठजी ! ये रुपये आपके थे, हमने आपको दे दिये, इसमें पुरस्कारकी कौन-सी बात है । हम न देते तो बेईमान थे, किसीकी चीज उसे दे देना तो मानवता-मात्र है । इसमें बड़ाई क्या है ?' अन्तमें सेठजीने मिश्रजीका पूरा पता जानना चाहा किंतु मिश्रजीने केवल इतना ही बताया कि 'मैं मुजफ्फरपुर जिलेका रहनेवाला एक गरीब ब्राह्मण हूँ । एक धानकी मिलमें पिउनका काम करता हूँ । इससे विशेष परिचय देनेसे लाचार हूँ ।' तदुपरान्त मिश्रजीको धन्यवाद देकर सेठजी चले गये । और मिश्रजी भी अपने घर चले गये ।

अब हम इसके दो वर्षकी बात कह रहे हैं—मिश्रजी सचाईके साथ मिलमें काम कर रहे थे । ये ईमानदार, सच्चे, सहृदय, बड़े बुद्धिमान्, पढ़े-लिखे तथा कार्य-निपुण थे, भाग्यवश ही पिउनकी छोटी नौकरी कर रहे थे । किंतु छोटेसे लेकर बड़ेतक सभी कर्मचारी इनसे कुछ नाराज रहा करते थे । इसका प्रधान कारण यह था कि इनके रहते उन लोगोंके मनमें सदैव खटका बना रहता था । वे मनमानी नहीं कर पाते थे । एक दिन एक प्रधान कर्मचारीने दो-चार कर्मचारियोंके साथ मिलकर मिलकी केस-बक्सका ताला तोड़ दिया । उसमेंसे पाँच हजार रुपयेके नोट निकाल लिये और मिश्रजीका नाम लगा दिया । प्रधान कर्मचारीने अपने मेलके कुछ लोगोंसे यह कहला भी दिया कि 'इन्हें इस घरसे काँखमें कुछ दबाये निकलते, घबराते जाते हुए हमलोगोंने देखा है ।' अब मिश्रजीको बचनेके लिये कोई भी उपाय न रहा ।

मिलमालिकने मिश्रजीसे कहा कि 'मिश्रजी ! आप तुरंत रुपये दे दीजिये अन्यथा आपपर पुलिससम्बन्धी कार्रवाई की जायगी ।' संयोगवश इसके दूसरे दिन उपर्युक्त उन्हीं सेठका (जिनकी देवघर स्टेशनपर मिश्रजीसे भेंट हुई थी) एक कर्मचारी कार्यवश उसी मिलमें गया था, उसने सारी बातें सुनीं और लौटकर पाँच हजार रुपयेके गायब होने तथा······'मिश्र पिउनपर चोरीका अभियोग लगनेकी बात सेठजीको सुनायी । समाचार सुनते ही सेठजी अवाक् रह गये और सोचने लगे कि 'कहीं वह अपूर्व त्यागी ब्राह्मण ही तो नहीं है । वह मिलमें पिउनका काम ही तो करता था । आजकल ऐसे सच्चे व्यक्तियोंको लोग अपना काम निकालनेके लिये द्वेषवश स्वार्थ-वश फँसाया करते हैं । खैर, जो हो देख ही क्यों न लें ।' यों सोचकर सेठजी दस हजार रुपयेके नोट अपने पास लेकर तुरंत उस धानकी मिलमें पहुँच गये और पता लगाकर मिश्रजीसे भेंटकर सारा हाल जान लिया । सेठजी कर्मचारियोंके षड्यन्त्रकी बात सुनकर बड़े दुखी हुए और तुरंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलमालिकसे भेंट करने चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मिलमालिकसे पूछा कि 'आपकी समझमें······मिश्र चोर हैं क्या ?' इसपर मिलमालिकने कहा कि 'इसमें क्या संदेह है, वह अवश्य चोर है। उसे रुपये ले जाते लोगोंने देखा है। उसे समझाया जा रहा है। रुपये न देनेपर हम उसे अवश्य जेल भिजवा देंगे।' इस प्रकार रूखा उत्तर सुनकर सेठजीने पाँच हजारके नोट देते हुए कहा कि 'लीजिये आपके पाँच हजार रुपये। अब तो वह छूट सकता है न ?' मिलमालिकने रुपये लेकर पूछा 'किंतु आप ये रुपये क्यों दे रहे हैं ?' 'मेरे यहाँ उसके रुपये जमा थे और मैं यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि वह चोर कदापि नहीं है। वरं ऐसा सच्चा आदमी संसारमें मिलना दुर्लभ है। आपमें अच्छे-बुरेकी पहचान करनेकी शक्ति नहीं है।' सेठजीने कहा। मिलमालिक और कुछ बातें करनेकी बाट देखते ही रह गये और सेठजी तुरंत वहाँसे उठकर मिश्रजीके पास चले आये। मिश्रजी इस विषयमें कहीं विशेषरूपसे पूछ-ताछ न करें, इस अभिप्रायसे आते ही कहा कि 'आप तुरंत मेरे साथ चलिये, अब किसी प्रकारका झंझट नहीं है।'

सेठजी मिश्रजीसे यह कह ही रहे थे कि बाजारमें शोरगुल होने लगा 'चोर पकड़ा गया ! चोर पकड़ा गया ?' इस प्रकारका शोरगुल सुनकर सेठजीने बाहर जाकर लोगोंसे पूछा, तब उन्होंने बताया कि 'नाम लगाया गया बेचारे मिश्रजीका और पकड़े गये हैं अमुक प्रधान कर्मचारीजी।' सेठजीके द्वारा पुनः विशेषरूपसे पूछे जानेपर उन लोगोंने कहा कि 'प्रधान कर्मचारीजी अपनी स्त्रीकी बीमारीका तार घरसे मँगाकर एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। स्टेशनपर लोगोंकी नजर बचाकर वे बार-बार रुपयोंको देख रहे थे। मिलमें चोरी होनेका हाल पुलिसको मालूम था। अतः एक सिपाही-के मनमें शक हुआ। प्रधान कर्मचारीजी गिरफ्तार किये गये और उनके पास मिलकी मुहर लगे हुए नोट भी पाये गये हैं।'

इन सब बातोंको सुनकर सेठजी मिश्रजीको साथ लिये जो अपने घर जा रहे थे सो घर न जाकर मिलमालिकसे मिलनेके लिये चले गये। सेठजीको देखते ही मिलमालिकने बड़ी नम्रतासे कहा कि 'सेठजी ! आपका कहना सत्य है, सचमुच मुझमें आदमी पहचाननेकी शक्ति नहीं है। आप अपने रुपये ले लीजिये।' साथ ही मिश्रजीसे कहा, 'मिश्रजी ! आप मेरा अपराध क्षमा करें।' इसपर मिश्रजीने कहा कि 'आप इस बातके लिये निश्चिन्त रहें। मेरे मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है।' इसके बाद सेठजीने कहा कि 'ये रुपये आप मिश्रजीको ही दे दीजिये। मेरे जिम्मे तो अभी इस देवरूप मानवके पाँच हजार रुपये और हैं।' मिल-मालिकने रुपये मिश्रजीको देना चाहा, सेठजीने भी बार-बार अनुरोध किया। परंतु मिश्रजीने सर्वथा अस्वीकार कर दिया। तब सेठजीको ही रुपये वापस लेने पड़े।

मिल-मालिकने सेठजीकी इतनी सहानुभूति, दयालुता और प्रीति मिश्रजीके प्रति देखकर इसका कारण जानना चाहा। तब सेठजीने देवघर स्टेशनकी ( दस हजार रुपयेको भूल जाने और मिश्रजीके द्वारा उन्हें लौटानेकी ) बीती बातोंको सुनाकर मिल-मालिकके साथ ही वहाँ उपस्थित जन-समुदाय-को आश्चर्यचकित कर दिया। इन सब बातोंको सुनकर मिल-मालिकके मनमें मिश्रजीके प्रति अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। उन्होंने सेठजीके सामने ही मिश्रजीसे कहा—'मिश्रजी ! हम अपने घोर अपराधोंके लिये बार-बार आपसे क्षमा चाहते हैं। आपके प्रति हमने बड़ा अन्याय किया है, आप क्षमा कीजिये। साथ ही आपसे एक बात और कहना चाहते हैं। आप उस बातको अवश्य स्वीकार करें। कहना यह है कि दूसरे कारोबार विशेषरूपसे बढ़ जानेके कारण हम आजकल बहुत व्यग्र रहा करते हैं। अतः हम आपको इस मिलका मैनेजर बनाना चाहते हैं। हमारे विचारसे आपके साथ किये गये अन्यायका यह एक प्रायश्चित्त भी है। यहाँ सब काम प्रायः हिंदीमें ही होते हैं, किंतु हमने सुना है कि आप काम चलाने लायक अंग्रेजी भी जानते हैं।' इसपर अपनी असमर्थता दिखाते हुए मिश्रजीने कहा कि 'यह बात तो ठीक है कि मैं कुछ-कुछ अंग्रेजी अवश्य जानता हूँ किंतु इतने बड़े कामके मैनेजर बननेकी योग्यता तो मुझमें नहीं है।'

यह सुनकर मिल-मालिकने सेठजीसे कहा कि 'सेठजी ! मैं जान गया हूँ इनमें सारी योग्यता है। आप इन्हें समझा दें। यदि मिश्रजी मेरे यहाँ यह काम नहीं करेंगे तो मेरे मनमें असह्य दुःख होगा।' तदनन्तर सेठजीके बहुत कुछ समझाने-बुझानेपर मिश्रजी मैनेजरीका काम करनेके लिये राजी हो गये। फिर बोले कि 'खैर, आपसे मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ। आपका आदेश पालन करनेके बाद मैं आपसे यह पहली याचना कर रहा हूँ, आशा है आप अवश्य स्वीकार करेंगे।' मिश्रजीकी बात सुनते ही मिल-मालिकने कहा—'बोलिये।' स्वीकृति मिल जानेपर मिश्रजीने कहा कि—'प्रधान कर्मचारीको आप जेल मत भेजिये और उनका काम भी मत छुड़ाइये। मैं उनकी जिम्मेवारी लेता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ।' मिश्रजीकी बात सुनते ही सभी उपस्थित लोग धन्य-धन्य कहने लगे और गद्गद होकर मिल-मालिकने कहा कि "मिश्रजी ! तुम सचमुच देवता हो। खानमें पड़े बहुमूल्य हीरेको खानका 'मालिक' नहीं किंतु जौहरी ही पहचानता है। उसी प्रकार मिलमें पड़े हुए तुम्हारे-जैसे रत्नको हमने आजतक नहीं पहचाना। संयोगवश इन श्रीमान् सेठजीने रत्नकी पहचान बताकर आज हमको कृतकृत्य कर दिया।"

पुनः उस पूजाकी सामग्री लानेवालोंने मुझसे कहा कि 'देखिये, पण्डितजी सचाईका कैसा फल है कि हमारे मिश्रजी साधारण पिउनसे मिल-मैनेजर हो गये। मुहल्लेके लोग इनपर इतना विश्वास रखते हैं कि देखकर आपको आश्चर्य होगा।' इन सब बातोंको सुनकर मैंने कहा कि 'भाई ! ऐसे सच्चे आदमीकी सत्कार-सेवा करनेके लिये संसारके सभी लोगोंको तैयार रहना ही चाहिये। इसमें आश्चर्य क्या है।'

—पं० रामविलास मिश्र, कथावाचक

( २ )

## 'ऋण चुका रहा हूँ'

वर्षोंसे हम उन्हें एक ही तरहका जीवन यापन करते देख रहे हैं। प्रोफेसर होनेपर भी उनमें किसी प्रकारका आडम्बर नहीं दिखायी देता। उच्च कक्षाकी अनेकों उपाधियोंके साथ असाधारण विद्वान् होनेपर भी उनके जीवनमें अद्भुत सादगी थी। धीमी चालसे चलते इन प्रौढ़ पुरुषको कोई नया आदमी देखे तो इन्हें बहुत थोड़ी आयवाला, बड़े कुटुम्बका पोषण करनेवाला, रात-दिन अदालतमें लिखने-पढ़नेका काम करनेवाला क्लर्क ही समझे। इनके बाहरी रूपको देखनेवाला इनकी आन्तरिक शक्तिसे बिल्कुल अपरिचित ही रहता। इनके स्वभावकी विशेषताओंको गहराईसे देखनेवाला सहज ही आकर्षित होकर इनका अपना बन जाता।

ये स्वेच्छासे ही अविवाहित थे। इनका सारा समय अपने प्रिय विषयके अभ्यासमें ही बीतता। इनके एकाकी जीवनका रहस्य पाना सम्भव नहीं था, इनके सम्पर्कमें आनेवाले सभी लोग इतना अवश्य देख सकते कि इनके जीवनमें मिथ्या भौतिक वैभवविलासका जरा भी स्पर्श नहीं था।

इनके निकटवर्तियोंके मनमें यह प्रश्न तो उठा करता कि इनकी आमदनी अच्छी होनेपर भी ये इस प्रकारका जीवन क्यों बिता रहे हैं। परंतु इनके आन्तरिक जीवनकी झाँकी करनेकी किसको फुरसत थी।

बार-बार पूछे जानेपर किसी धन्य घड़ीमें इनके मुखसे इनके भूतपूर्व जीवन-सम्बन्धी कुछ उद्गार निकल पड़ते। इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवनकी दो-एक बातें बतायी थीं। इन्होंने कहा था कि इनके विद्यार्थी-जीवनमें इनके कुटुम्बकी स्थिति बहुत ही तंग थी। यहाँतक कि इनकी पढ़ाईमें भी अड़चन पड़नेकी परिस्थिति आ गयी थी। इन्हें जब मैट्रिककी परीक्षामें बैठना था, उस समय इनकी जेब बिल्कुल खाली थी। ऐसी विपत्तिके समय इनके बड़े भाईने इनको कहींसे पाँच रुपये उधार लाकर दिये थे और कठिन मजदूरी करके ब्याजसमेत उस ऋणको चुकाया था। भाईके इस प्रेमको ये जीवनभर नहीं भूल सके। भाईकी संतानोंकी उन्नतिके लिये ही इन्होंने यह वेष धारण किया था। अपनी आमदनीका अधिकांश ये उनको देते रहे। अपनी अधिकांश आवश्यकताओं-को घटाकर ये अपने कर्तव्यपालनमें अटल रहे। इनके सम्पर्कमें आनेवाले एकाध पुरुषको ही इस बातका पता लगा था। इन्होंने कहा था—'भावस्निग्ध हृदयसे दी हुई इस मूल्य-वान् सहायताका ऋण अभी पूरा चुकाया नहीं गया है—चुका रहा हूँ।' भ्रातृप्रेमका यह उदाहरण सचमुच ही बड़ा प्रेरणादायक है।

—मनुभाई देसाई

( ३ )

## विद्यालयकी मित्रता

हरदयालकी पत्नीका देहान्त हो गया। घरमें दो छोटे बच्चे। दो-तीन सालतक पत्नीकी टी० बी० की बीमारीमें हरदयालके पास जो कुछ था, सब खर्च हो गया, कुछ ऋण भी हो गया। सेवा करनेवाला दूसरा कोई न होनेके कारण हरदयालको घर रहना पड़ता, इससे उसकी नौकरी भी छूट गयी। गरीबी ही उसकी स्त्रीकी टी० बी० का भी प्रधान कारण था। किसी तरह पिताने बी० ए० तक पढ़ाया था। माता पहले मर गयी थी। पाँच साल हुए, पिता भी चल बसे थे। पत्नीके चले जानेपर तो वह अब सर्वथा निराश-सा हो गया था। इधर चिन्ता-कष्टके मारे उसका अपना स्वास्थ्य भी बिगड़ रहा था। नौकरी कहीं लग नहीं रही थी। घरमें कुछ भी रहा नहीं। कैसे बच्चोंको पाले, क्या करे।

एक दिन वह घरसे निकलकर कहीं नौकरीकी तलाशमें जा रहा था। एक लोहेके व्यापारीके यहाँ कुछ आदमियोंकी आवश्यकताका विज्ञापन निकला था, किसीने उसे बताया तो वह वहाँ पहुँचा। अंदर जाकर वह वहाँके क्लर्कसे मिला। दरखास्त लिखी और उस फर्मके मालिकके पास भेज दी। हरदयाल बाहर बैठा रहा। इसी बीच मालिकने उसे अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास भीतर बुलाया। वह गया; फर्मके मालिकका नाम था—राजाराम। हरदयाल उनके कमरेमें जाकर खड़ा हो गया। राजाराम उसकी ओर बड़े ध्यानसे देखने लगे। फिर सहसा उठकर हरदयालके गले लगकर मिलने लगे। हरदयाल तो हक्का-बक्का-सा रह गया। राजारामने हरदयालका हाथ पकड़कर कुर्सीपर अपने पास बैठा लिया और कहा—'भैया हरदयाल! तुम मुझे भूल गये क्या? हमलोग हाई स्कूलमें साथ पढ़ते थे। तुम मुझसे बहुत प्यार करते थे। एक दिन मेरी पेंसिल खो गयी थी; मुझे जरूरी सवाल लिखने थे। मेरा उदास चेहरा देखकर तुमने अपनी पेंसिल मुझे दे दी थी। फिर तो तुम सदा ही मुझपर बड़ा प्रेम करते थे। हाई स्कूल छोड़नेके बाद मैं अपने पिताजीके पास कलकत्ते चला गया था। वहीं मैंने बी० ए० किया। फिर यहाँ लौटनेपर मुझे भयानक चेचक निकली; उसीसे मेरा चेहरा बदल गया। इसीसे तुम मुझे नहीं पहचान सके। मैंने कलकत्तेसे लौटकर यह नया व्यापार किया और भगवान्‌की दयासे आज तुम मुझे मिल गये। मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि मैं तुम्हें क्या बतलाऊँ।' यों कहकर हरदयालकी ओर बड़े स्नेहसे राजाराम देखने लगे। उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये।

फिर पूछनेपर हरदयालने अपनी सारी हालत बतायी। राजाराम उनकी दुःखद स्थितिकी बात सुनकर रोने लगे और बोले—भाई हरदयाल! तुम यहाँ रहो और इस कामको सँभालो। मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ। आजसे तुम्हीं इस फार्मके मालिक हो।' बहुत आग्रह करके राजारामने बच्चोंसहित हरदयालको अपने घर बुला लिया। फार्ममें उनका आधा हिस्सा कर दिया और ठीक अपने ही समान रहन-सहनसे उनको रखने लगे। हरदयाल ईमानदार तथा कार्य-निपुण थे ही। दिनके चक्करसे कष्ट उठा रहे थे। उनकी रेख-देखमें व्यापार और भी चमक उठा। राजारामने उनको ठीक बड़े भाईकी तरह बड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी स्कूलकी मित्रता तथा पेंसिलकी बात याद करके उनकी सेवा की। धन्यं!

—गिरजादत्त शर्मा

(४)

## ईमानदार और निर्लोभी

अभी कुछ ही दिनों पहलेकी बात है। मैं स्थानीय स्टेट बैंकमें एक सरकारी बिलके रुपयेका भुगतान लेने गया। कामकी जल्दीमें या अन्यमनस्कताके कारण मैं भूलसे कम रुपये लेकर चला आया। दूकानपर भी मैंने रुपये नहीं गिने, वैसे ही रख दिये। परंतु शामके समय मेरी दूकानपर बैंकका पोद्दार आया और बोला कि 'बैंकका हिसाब देते समय मेरे पास रुपये अधिक हुए और जाँच करनेपर पता लगा कि आपको रुपये कम दिये गये। अतः वे बाकीके रुपये देने आया हूँ—ये रुपये लीजिये।' मैं उसकी बात सुनकर दंग रह गया उसकी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठाको देखकर। इस बिगड़े जमानेमें, जबकि अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित पदाधिकारी दूसरेका धन हड़प करनेमें संकोच नहीं करते; न्यायसे हो या अन्यायसे—धन बटोरनेमें ही सब लग रहे हैं—एक मामूली हैसियतके कर्मचारीकी यह ईमानदारी वास्तवमें प्रशंसनीय है। विशेषकर ऐसी अवस्थामें जबकि वह इन रुपयोंको अपने आप रख सकता था। भगवान् करें हमारे देशके सब भाई इसी तरह ईमानदार और निर्लोभी हों। भुगतानके रुपये— ४५५६,१ न० पै० थे।

—सागरचन्द अग्रवाल

(५)

## हृदय-परिवर्तन

शास्त्री शंकरलाल माहेश्वरके जीवनका यह प्रसंग है।

शास्त्रीजी अपनी जवान उम्रमें एक दिन घरमें पूजा-पाठ कर रहे थे। उस समय कोई आटा माँगनेवाला ब्राह्मण आया। 'नारायण प्रसन्न' शब्द सुनकर शास्त्रीजीने सोचा कि घरमें कोई होगा नहीं, बेचारे ब्राह्मणको बाट देखनी पड़ेगी, वे पूजा छोड़कर उठे और बरामदेकी ओर गये तो उन्हें दिखायी दिया एक बूढ़ा ब्राह्मण नीचे माँजकर उलटी रक्खी हुई थाली-कटोरी लेकर, उन्हें आटेकी झोलीमें डालकर जल्दी-जल्दी बाहर निकल रहा है। शास्त्रीजीने पुकारा। वह ब्राह्मण और भी जोरसे चलने लगा। तब शास्त्रीजीने बाहर निकलकर उसे वापस बुलाया। वह लौट आया। शास्त्रीजीने कहा—'मैं पूजामें था, इससे आपको बाट देखनी पड़ी, क्षमा करें और कुछ ठहरें तो मैं सीधा दे दूँ।' यों कहकर वे ब्राह्मणको बरामदेके झूलेमें बैठाकर स्वयं सीधा लाने जाने लगे। पर उनको रोककर ब्राह्मणने कहा—'शास्त्रीजी! मैं तो तुम्हारा अपराधी हूँ, मुझे सीधा नहीं चाहिये। मैं तो नीचे रक्खी हुई तुम्हारी थाली-कटोरी लेकर चल दिया था।' इतना कहकर उसने थाली-कटोरी निकालकर रख दी। शास्त्रीजीने कहा—'यह मैं जानता हूँ, पर आप मेरे अपराधी हैं यह दुःख न करें। कोई भी मनुष्य पहले अपने प्रति अपराध करता है, इसके बाद ही वह दूसरेके प्रति कर सकता है। अपरिग्रह ब्राह्मणका जीवन-व्रत है। इतनेपर भी इस उम्रमें आपने इस प्रकार वर्तन लिये, इससे आपकी स्थितिको मैंने समझ लिया और अब आपको सीधा देना ही मेरा धर्म है। आप मेरे लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेद न कीजिये। अपने धर्मको सँभालिये।' यों कहकर शास्त्रीजीने उन्हीं थाली-कटोरीमें सीधा भर दिया। इतना ही नहीं घीसे भरा हुआ एक लोटा रखकर कहा—'थाली, कटोरी और लोटा—ये तीनों बर्तन साथ ही होने चाहिये। अतएव अब आप इन तीनों बर्तनोंके साथ सीधा स्वीकार कीजिये।'

वृद्ध ब्राह्मण ढीले पड़ गये और शास्त्रीजीने इस प्रकार सीधा स्वीकार कराया, तभीसे वे वृद्ध इन तरुण शास्त्रीके शिष्य बन गये। उनका जीवन ही बदल गया। इसके बाद वे दिनभरमें एक बार भोजन करते। सातसे अधिक घरोंमें आटा माँगने नहीं जाते और किसीके भी दरवाजेपर ग्यारह बार गायत्री जपमें जितना समय लगता, उससे अधिक नहीं ठहरते। कोई अपंग या अन्धा मिल जाता तो उसे पहुँचा आते। किसीपर ज्यादा बोझा देखते तो उसका कुछ बोझ स्वयं उठाकर उसके घर पहुँचा आते। शास्त्रीजी अपने यहाँ नित्य वेदान्तकी कथा सुनाते तो वे नियमितरूपसे एकाग्रताके साथ उसे सुनते। बीमार होते तो भी आते। उनकी अन्तिम बीमारीके समय जब वे तीन-चार दिन नहीं आ सके थे, तब शास्त्रीजी रोज उनके यहाँ जाकर उस दिनका कथा-प्रसंग सुना आते। ( अखण्ड आनन्द )　—मुकुन्दराय, वि० पाराशर्य

( ६ )

## विश्वासके साथ मन्त्र-जापका फल

कबीर सब जग निरधना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जानिये जाके राम नाम धन होय॥

मैं किसी बड़े संकटमें फँस गया। मनमें बहुत क्लेश रहने लगा। जब कोई उपाय नहीं दिखायी दिया तब अपने इष्टदेवके नामका जाप करते हुए मैंने—

**कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।**
**प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥**

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

इस मन्त्र और चौपाईका जाप शुरू कर दिया। कुछ ही दिनोंमें मेरा संकट दूर हो गया और मनको बहुत ही शान्ति मिली। यह मन्त्र श्रीमद्भागवतका है। जब जरासंधने दस हजार राजाओंको कैदमें डाल दिया, तब उन राजाओंको दुखी देखकर श्रीनारदजीको बड़ी दया आयी। श्रीनारदजीने जेलमें जाकर उन राजाओंको यह मन्त्र बताया। उन्होंने श्रद्धा और प्रेमसे इसका जाप किया। फलतः भगवान् श्रीकृष्णने जाकर जरासंधको मरवाया और उन राजाओंके क्लेशको दूर किया। मैंने सोचा, मैं भी इस मन्त्रका जाप करूँ, भगवान् मेरे क्लेशको भी दूर करेंगे। साथ-ही-साथ यह सुन्दरकाण्डकी चौपाई भी याद आ गयी। जब रावणने श्रीसीताजीको अशोकवाटिकामें कैद करके दुख दिया, वहाँ तक कह दिया—

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

तब श्रीसीताजीने श्रीहनुमान्‌जीसे इतना ही कहा था—

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

भगवान्‌ने रावणको मारकर श्रीसीताजीका संकट दूर कर दिया। मुझे इस मन्त्र और चौपाईमें पूरा विश्वास हो गया। विश्वासके सहित जपनेसे मेरा संकट तो दूर हो ही गया पर मनको जो शान्ति मिली, बस मैं ही जानता हूँ।

एक दिन मैं सोचने लगा चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेसे ज्यादा और क्या संकट होगा। गर्भवास और मृत्युके समय महान् कष्ट होता है।

**को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव।**

स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने बड़ा रोग बार-बार जन्म लेना ही बताया है। साथ-ही-साथ उसकी दवा भी बता दी। ( परमात्माके स्वरूपका मनन )। मेरा मन तो यह कहता है कि यह मन्त्र और वह चौपाई मुझे चौरासीके चक्करसे भी बचा देगी। मैं तो अब नियमसे अपने प्रभुके नामका जाप करते हुए इस मन्त्र और चौपाईका भी जाप करता हूँ।

मुझे 'कल्याण'से बहुत ही सहायता मिली है। इसलिये कल्याणके पाठकोंसे मैं यह निवेदन करता हूँ कि अपने इष्टदेवके नामका जाप तथा ध्यान करते हुए जितना उचित समझें—

**कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।**
**प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥**

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

इस मन्त्र और चौपाईका भी विश्वासपूर्वक जाप प्रतिदिन कर लिया करें। कुछ ही दिनोंके बाद देखिये इसका चमत्कार।

—आसाराम व्यास

×　　×　　×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# 'कल्याण' के आजीवन ग्राहक बनिये

प्रतिवर्ष 'कल्याण' का मूल्य भेजनेकी बात समयपर स्मरण न रहनेसे बहुतसे प्रेमी ग्राहक-ग्राहिकाओंको कठिनता होती है और समयपर रुपये न पहुँचनेके कारण वी० पी० द्वारा 'कल्याण' बहुत देरसे मिलनेपर उन्हें क्षोभ होता है । ग्राहकोंको इस असुविधासे बचानेके लिये हमारे ट्रस्टीगणने यह निश्चय किया है कि जो ग्राहक रु० १०० ) ( एक सौ रुपये ) एक ही साथ भेज देंगे वे 'कल्याण' के 'आजीवन ग्राहक' बना लिये जायँगे। अर्थात् **एक साथ एक सौ रुपये देकर आजीवन ग्राहक बननेवाले सज्जन या देवी जबतक स्वयं जीवित रहेंगे और जबतक 'कल्याण' का प्रकाशन होता रहेगा, तबतक उनको प्रतिमास नियमित रूपसे ठीक समयपर 'कल्याण' भेजा जाता रहेगा। ( ग्राहक बननेवाले व्यक्तिका देहावसान हो जानेपर उनके उत्तराधिकारीको 'कल्याण' नहीं मिलेगा अथवा किसी कारणविशेषसे 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जायगा तो संस्थापर उन आजीवन ग्राहकका कोई हक शेष नहीं रहेगा। )**

ऐसे आजीवन ग्राहक 'कल्याण'की विशाल ग्राहक-संख्याकी दृष्टिसे बहुत ही कम, एक परिमित संख्यामें ही बनाये जायँगे ।

**अतएव 'आजीवन ग्राहक' बनना चाहनेवाले सज्जनों और देवियोंको तुरंत रु० १०० ) ( एक सौ रुपये ) मनीआर्डर या डाकबीमाद्वारा या बैंक-ड्राफ्टसे भेजकर अपना नाम शीघ्र दर्ज करा लेना चाहिये। निर्धारित संख्या पूरी हो जानेपर और ग्राहक नहीं बनाये जा सकेंगे ।**

**'कल्याण' के प्रेमी महानुभाव स्वयं आजीवन ग्राहक बनें और चेष्टा करके आजीवन ग्राहक बननेके लिये अपने इष्ट-मित्रोंको प्रेरणा करें एवं रुपये भिजवानेमें शीघ्रता करें।**

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पो० गीताप्रेस, गोरखपुर**

*दो नयी पुस्तकें !* *प्रकाशित हो गयीं !!*

## गीता-दैनन्दिनी सन् १९६३ ई०

**आकार २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ ४१६, बाइंडिंग क्लाथकी जिल्द, मूल्य .६२ नये पैसे। डाकखर्च .७५ अलग।**
**(इस बार .७५ नये पैसे मूल्यवाली गोरखपुरी कपड़ेकी सजिल्द पुस्तकें बनवानेकी व्यवस्था नहीं है।)**

इसमें सदाकी तरह हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और भारतीय शक-संवत्की तिथियोंसहित पूरे वर्षमें दैनिक क्रमसे सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता, तिथि, वार, घड़ी और नक्षत्रका संक्षिप्त पत्रक, अंग्रेजी तारीखोंका वार्षिक कैलेंडर, प्रभुसे विनती, ईश्वर-प्रार्थनासे आत्मोन्नति, अपने स्वाभाविक गुणोंको जाग्रत् कीजिये, संतोष कीजिये, ज्ञान-प्राप्तिके साधन, भगवत्स्मरणका प्रभाव, रघुपति भगति बिना सुख नाहीं, आनन्दमें निमग्न रहिये, नित्यसुखी कौन हैं, कुछ जानने योग्य बातें, जैसे—रेलभाड़ा, रेलके कुछ आवश्यक नियम, डाक, तार, इन्कमटैक्स, सुपरटैक्स, मृत्यु-कर, पुराने-नये पैसे तथा मेट्रिक माप-तौल आदिकी परिवर्तनसारणी, दैनिक वेतन तथा मकान-भाड़ेका नकशा, अनुभूत घरेलू दवाओंके प्रयोग, स्वास्थ्य-रक्षाके सप्तसूत्र, आरती आदि भी दिये गये हैं ।

☞ गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है । यहाँ आर्डर देनेके पहले अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेतासे माँगिये । इससे आपका समय तथा पैसे बच सकते हैं ।

## भारतमें आर्य बाहरसे नहीं आये

लेखक—श्रीनीरजाकांत चौधरी ( देवशर्मा )

**आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ संख्या ३६, मूल्य .१५ नये पैसे ( डाकखर्च रजिस्ट्रीसे .६० नये पैसे)।**

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क

# 'संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क'

( १ ) वर्षोंसे हमारे कृपालु तथा प्रेमी महानुभाव जिस रसपूर्ण श्रीकृष्णलीला-कथासे पूर्ण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क प्रकाशित करनेका अनुरोध कर रहे थे, वही इस वार प्रकाशित होने जा रहा है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा श्रीराधिकाजीका अमृतोपम लीलावर्णन तो है ही, दिव्यलोकोंका, कर्म और कर्मफलोंका, ज्ञान-विज्ञानका, भगवान् शंकर और गणेशके चरित्रोंका, दुर्लभ स्तोत्रों, कवचों और मन्त्रोंका बड़ा विशद विवेचन है। अतएव वैष्णव-भक्तोंके ही नहीं, यह पुराणाङ्क सभीके लिये परमोपयोगी और संग्रह करने योग्य है। इसके सभी प्रसंग उपदेशप्रद, मनोरञ्जक, मधुर, मनोहर तथा सर्वदुःखहर होंगे। इस अङ्कमें बहुत-से भावपूर्ण बहुरंगे, इकरंगे और रेखाचित्र रहेंगे, जिनसे अङ्क और भी सुन्दर तथा आकर्षक होगा।

( २ ) इस वर्ष महँगी तथा खर्च और भी बढ़ा है, अतः मूल्य बढ़ानेके प्रस्ताव भी आये, परंतु मूल्य न बढ़ाकर वही ७.५० ही रक्खा गया है। पृष्ठ-संख्या भी वही ७०० के लगभग होगी। इस अङ्ककी बहुत अधिक माँग होनेकी संभावना है। अतएव पुराने ग्राहकोंको तुरंत ७.५० ( सात रुपये पचास नये पैसे ) मनीआर्डरद्वारा भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये। नये ग्राहकोंको भी अभीसे रुपये भेजकर अपना नाम दर्ज करा लेना चाहिये, अङ्क शीघ्र समाप्त हो जायगा और दूसरा संस्करण न छपेगा तो प्राप्त होना संभव नहीं होगा।

( ३ ) रुपये भेजते समय मनीआर्डरके कूपनमें पुराने ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या लिखनेकी कृपा अवश्य करें और नाम, पता, ग्राम, मुहल्लेका नाम, डाकघर, जिला, प्रदेश—सब बहुत साफ-साफ बड़े अक्षरोंमें लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' लिखना कृपया न भूलें। रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भेजें। मनीआर्डर फार्म अगले अङ्कमें भेजा जा सकता है। केवल विशेषाङ्कका मूल्य भी ७.५० है, अतः पूरे वर्षका ही ग्राहक बनना उचित है।

( ४ ) जिन पुराने ग्राहक महोदयोंको किसी कारणवश अगले वर्ष ग्राहक न रहना हो वे कृपया एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे डाकखर्चकी हानि न उठानी पड़े।

( ५ ) गीताप्रेसका 'पुस्तक-विभाग' तथा 'कल्याणकल्पतरु-विभाग' कल्याण-विभागसे पृथक् हैं। अतः पुस्तकोंके तथा 'कल्पतरु'के लिये उन-उनके व्यवस्थापकोंके नाम अलग पत्र-व्यवहार करना चाहिये और रुपये भी अलग-अलग उन्हींके नामसे भेजने चाहिये।

( ६ ) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत देरसे दिये जानेकी संभावना है। यों सजिल्दका मूल्य ८.७५ ( आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे ) है।

( ७ ) इस अङ्कमें लेख प्रायः नहीं जायँगे। इस अङ्ककी सामग्री भी कहीं बढ़ गयी तो अगले अङ्कोंमें देनी पड़ेगी। अतएव कोई महानुभाव लेख, कविता आदि कृपया न भेजें।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर ) उ० प्र०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संस्करण—१,४८,००० ( एक लाख अड़तालीस हजार )

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विषय-सूची





## चित्र-सूची




वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
( १५ शिलिंग )


जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जयजय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥


साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
( १० पैंस )


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar


सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## रामकी प्रतीक्षामें कौसल्या

कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग ! फुरि बाता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ | गोरखपुर, सौर पौष २०१९, दिसम्बर १९६२ | संख्या १२ पूर्ण संख्या ४३३

## कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग ! फुरि बाता

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग ! फुरि बाता ॥
दूध-भातकी दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय-सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ, पाय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥

—गीतावली



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद रक्खो—संसारके बड़े-से-बड़े भोग-सुखोंकी अपेक्षा परमात्मसुख अत्यन्त विलक्षण और अनुपम है। संसारके किसी भी सुखके लिये परमात्मसुखकी साधनामें जरा भी बाधा कभी मत आने दो। किसी भी हालतमें परमात्मसाधनामें शिथिलता मत आने दो। यह भी मत देखो कि लोग क्या कह रहे हैं और क्या कर रहे हैं। तुम्हारी अपनी साधनाका कार्य सच्चा निर्दोष होना चाहिये।

याद रक्खो—अपने निर्दोष साधनको या सत्कार्यको भय, संकोच, लोकविरोध आदि कारणोंसे जो छोड़ देता है, वह पतित हो जाता है। भगवान्‌के सामने—अपने आत्माके सामने तुम्हारा कार्य निर्दोष और सत् होना चाहिये, फिर चाहे कोई कुछ भी कहे, उसकी परवा नहीं करनी चाहिये और अटल अचल भावसे श्रद्धा-विश्वासके साथ उस सत्कार्यमें लगे रहना चाहिये।

याद रक्खो—तुम्हारे साधनमें विघ्न आ सकते हैं, प्रबल प्रतिकूलता आ सकती है, विकट विपत्ति आ सकती है, पर उससे घबराओ मत। शुद्ध मनसे भगवान्‌पर विश्वास करके अपनी साधनामें जुटे रहो और भगवान्‌से प्रार्थना करो कि वे अपनी कृपासे सब विघ्नोंको दूर कर दें। भगवान् जरूर दूर कर देंगे। उनकी घोषणा है, मुझमें चित्त लगानेवाले पुरुषको मेरी कृपा सारे विघ्नबाधाओंसे पार लँघाकर आगे ले जाती है।

याद रक्खो—कभी-कभी जगत्‌की अनुकूलता, लोगोंके द्वारा मिलनेवाला मान, प्रतिष्ठा-प्रशंसा आदि भी साधनामें बहुत बड़े विघ्नका काम करती हैं। वे वास्तविक परमार्थसाधनासे हटाकर अपने नाम-रूपकी पूजा-प्रतिष्ठाकी साधनामें लगा देती हैं। वह फिर, भगवान्‌की प्रसन्नताकी जगह लोकरञ्जनमें लगाकर अपनेको लोकानुकूल निषिद्ध आचरणोंमें लगा देता है और पतित हो जाता है। इसी प्रकार श्रद्धालु लोगोंके द्वारा शरीर-सुख—इन्द्रिय-भोगोंकी प्राप्ति भी साधनाका बड़ा विघ्न है। इन्द्रियसुखकी प्रवृत्ति बहुत ही शीघ्र परमार्थ-साधनाका विनाश करती है। इसलिये न तो दुःख, विपत्ति, प्रतिकूलता, निन्दासे डरो और न मान-प्रतिष्ठा, पूजा, भोग-सुख आदिमें फँसो। इन दोनों प्रकारके विघ्नोंसे दूर रहकर नित्य-निरन्तर परम निष्ठाके साथ निर्दोष परमार्थ-साधनमें लगे रहो।

याद रक्खो—साधनामें कहीं बाहरका दिखावा न आ जाय। साधनाका बाहरी दिखावा सर्वथा नकली चीज है। अंदरसे साधनामें लगे रहो। हृदयको सदा काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, वैर, दम्भ, दर्प आदि सारे दोषोंसे शून्य करके परम उज्ज्वल और पवित्र रक्खो। बाहरसे लोग तुम्हें साधक न बतावें तो उसमें तुम्हारा परम लाभ है, तुम्हारा साधन-धन उत्तरोत्तर बढ़ता रहेगा। और बाहरसे यदि लोग तुम्हारी निन्दा करें तब तो तुम अपनेको विशेष भाग्यवान् और भगवान्‌का कृपापात्र समझो; क्योंकि ऐसा होनेपर तुम्हारी निर्दोषता बढ़ेगी, उज्ज्वलता बढ़ेगी और संसारमेंसे आसक्ति दूर होगी। मन कहीं फँसेगा नहीं।

याद रक्खो—साधनामें सदा श्रद्धा-विश्वास, सावधानी, संलग्नता तथा क्रियाशीलता बनी रहनी चाहिये। अश्रद्धा, प्रमाद, आलस्य और अकर्मण्यता कर्तव्यविमुख बना देती है। निरन्तर उत्साह, उल्लास, विश्वासके साथ साधनामें लगे रहो।

याद रक्खो—साधनामें कभी उकताओ मत, ऊबो मत, धैर्यके साथ लगे रहो। बस, लगे रहो। विश्वास करो, तुम अवश्य-अवश्य सफल होओगे। यदि कुछ देर हो रही है तो वह इसीलिये हो रही है कि तुम अपने प्रियतम प्रभुसे अबाध मिलनेके लिये समस्त दोषोंसे रहित होकर उनके योग्य बनाये जा रहे हो, सजाये जा रहे हो परम प्रियतमसे मिलनके लिये।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चीनपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेके लिये आध्यात्मिक साधन भी किये जायँ

सबका हित चाहनेवाले, सबसे प्रेम करनेवाले, सबके मित्र तथा अहिंसाके पोषक भारतवर्षपर पड़ोसी चीन-का विश्वासघातपूर्ण बर्बर आक्रमण बड़ी ही अशोभनीय और शोचनीय दुर्घटना है। भगवान्के विधानानुसार हानि-लाभ तो हुआ करता है, पर इस प्रकारका दुर्व्यवहार बड़ा ही दुःखद है और इसका पूरा प्रतीकार न होनेपर यह भविष्यमें ऐसी भीषण बर्बरताको और भी बढ़ानेवाला हो सकता है। अतएव चीनके इस अधम आचरणका फल उसे ऐसा मिलना चाहिये, जिससे भविष्यमें इस तरहकी कुचेष्टा करनेके लिये उसमें साहस, वृत्ति और शक्ति ही न रह जाय। अवश्य ही आत्माकी दृष्टिसे चीन भी विराट्पुरुषका ही एक अङ्ग है और आत्माके नाते वह भी अपना ही स्वरूप है। उसकी भी मङ्गलाकाङ्क्षा ही हमारे मनमें होनी चाहिये, और है भी; परंतु जैसे अपने ही शरीरमें कुरोग हो जानेपर बहुत कड़वी दवा दी जाती है और किसी अङ्गके अंदर मवाद हो जानेपर उसे कटवाना पड़ता है, उसी प्रकार दूषित विषभरे अङ्ग इस चीन-दानवको भी उसके भलेके लिये ही कड़वी दवा देना और आवश्यक होनेपर उसका सफल आपरेशन करना नितान्त उचित और अत्यावश्यक है। यह बड़े हर्षकी बात है कि भारतवर्ष-की सरकार तथा जनता सब एकमत होकर तन-मन-धनसे बड़ी वीरता तथा उदारताके साथ घरमें घुसकर आक्रमण करनेवाले इस विश्वासघाती आततायीको पूर्णतया परास्त करने और उचित दण्ड देनेके प्रयत्नमें लग रही है। यह अमङ्गलमें महामङ्गलका उदय हो रहा है कि आज देशभरमें सभी क्षेत्रोंके, सभी सम्प्रदायोंके, सभी मतवादोंके नर-नारी सारी भेदभावनाको भूलकर इस महान् कार्यमें एक साथ जुट गये हैं। समस्त देशवासियोंसे हमारा यह निवेदन है कि जबतक हम आततायीको पूरा हटा न दें और उसके कुकर्मका फल उसे न चखा दें, तबतक सावधानी और उदारताके साथ, जिसके पास जो कुछ हो, ईश्वर-सेवाके भावसे समर्पण करके अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये। हमारा प्रत्येक कर्म भगवदर्पित-बुद्धिसे हो। आशा, ममता और काम-ज्वर-का परित्याग करके आज हम रणाङ्गणमें रणरूप पूजाके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करें।

याद रखना चाहिये, भारत लड़ने नहीं गया था, न जाना चाहता था। उसपर तो अन्यायपूर्ण आक्रमण करके इस चीन आततायीने वीरताके साथ लड़ना उसका कर्तव्य बना दिया है। इस समय अमेरिका, ब्रिटेन आदि जो-जो देश हमारी सहायता दे रहे हैं और सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, उन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं।

युद्ध-सम्बन्धी जहाँ जितनी जैसी आवश्यकता है, व्यक्तिगत स्वार्थोंको तथा परस्पर दोष देखना—कहना एवं आलोचना करना छोड़कर उसकी पूर्तिके लिये यथासाध्य तन-मन-धनसे सबको प्रयत्न करना ही चाहिये; परंतु साथ ही भारत-जैसे धर्मप्रधान देशको आध्यात्मिक साधनोंके द्वारा भी पूर्ण सफलताके लिये प्रयत्न करना चाहिये, जिससे पवित्र भारतकी पुण्यभूमि और हमारे पवित्र हिमालयकी ओर कुदृष्टिसे देखनेवाले चीनके सारे मनोरथ ध्वंस हो जायँ और हमारे कैलास तथा मानसरोवरसे सम्बन्धित तिब्बत भी ईश्वर-विरोधी धर्मनाशक चीनके चंगुलसे मुक्त हो सके।

नेपाल और भारत तो सर्वथा एकात्मक हैं। भारत नेपाल है और नेपाल भारत है। नेपाल वस्तुतः भारतवर्ष और हिंदूजाति तथा हिंदूधर्मके लिये एक बड़े ही गौरवकी वस्तु है; क्योंकि विश्वभरमें वही एकमात्र सनातनधर्मी हिंदू-राज्य है। भारत-सरकार यद्यपि अपनेको धर्मनिरपेक्ष (सेक्युलर) कहती है, पर भारत-राष्ट्र तो है सनातन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदू-धर्मप्रधान देश ही। भारत और नेपालका एक धर्म है, एक ईश्वर है और एक शास्त्र है। भगवान् श्रीपशुपतिनाथ और श्रीमुक्तिनाथके दर्शनार्थ लाखों भारतीय हिंदू नेपाल जाते हैं और नेपाल-राज्य उदारतापूर्वक उन्हें सब प्रकारकी सुविधा देता है, तथा लाखों नेपाली हिंदू अपने पवित्र तीर्थों और धामोंके दर्शनार्थ अपने घरकी तरह ही भारतमें आते हैं। वस्तुतः नेपालसे भारत धर्मतः सर्वथा अविभाज्य है। अतएव हमें पूर्ण आशा करनी चाहिये कि इस संकटकालमें, जब कि सनातनधर्म-प्रधान भारतपर धर्म तथा ईश्वरका विरोधी चीन आक्रमण कर रहा है तब, धर्मरक्षक नेपाल अवश्य ही भारतकी यथोचित यथाशक्ति सहायता करेगा। धर्मरक्षण तो नेपालका स्वभाव रहा है।

मैं अपने धर्मरक्षक नेपाल-नरेश माननीय श्रीमहेन्द्र महाराजसे सादर निवेदन करता हूँ कि इस संकटके समय वे भारतकी पीठ ठोंककर सनातनधर्मके चिर वीररक्षक और सफल प्रहरीका महान् कार्य सम्पादन कर भगवत्सेवा करें।

गत अष्टग्रही योगके समय देशभरमें एकबार आध्यात्मिक साधनोंकी जो सार्वत्रिक लहर आयी थी, वह परम मङ्गलमयी थी। कोई चाहे न मानें, पर उसके फलस्वरूप उस समय जगत्‌का बहुत बड़ा संकट एक बार टल गया था। यह बात उस समय भी कही गयी थी और यह प्रार्थना की गयी थी कि 'विश्व-शान्तिके लिये होनेवाले अनुष्ठानोंका फल होगा ही ( और वह हुआ भी )। पर यह आराधन-अनुष्ठान तथा सदाचारका सेवन तो सदा ही चालू रखना चाहिये। अभी तो अष्टग्रहीका परिणाम भी अगले दो-तीन वर्षोंतक प्रकट होता रहेगा। अगले वर्ष क्षयमास आदि भी अनिष्टकारक बताये गये हैं। अतः हमारी जन-साधारणसे प्रार्थना है कि भगवदाराधनमें सब लोग लगे ही रहें।' ( देखिये 'कल्याण' वर्ष ३६ संख्या २ पृष्ठ ७४९ )

पर उस तिथिपर विशेष कुछ उत्पात नहीं हुए ( हमारी समझसे तो आध्यात्मिक साधनोंके फलस्वरूप ही वह संकट टला )। इससे बड़े-बड़े लोगोंने भी आध्यात्मिक अनुष्ठानोंकी हँसी उड़ायी, उनपर आक्षेप किये और पवित्र भगवन्नाम-कीर्तनतककी निन्दा की। हमारा तो यह विश्वास है कि उस समय आध्यात्मिक दैवीसाधनोंसे जैसा सत्ययुगका-सा वातावरण बन गया था, वह चलता रहता तो उसके कुछ ही दिनोंके बाद विश्वभरमें आरम्भ होनेवाले देश-देशमें भयानक बाढ़, भूकम्प, पर्वतपात, वायुयान-रेल-दुर्घटना आदि भीषण उत्पात न होते या बहुत ही कम होते और चीनासुरका भारतपर आक्रमण, विश्व-युद्धकी सम्भावना आदि भी सम्भवतः टल जाते। अब भी मेरी विनीत प्रार्थना है कि इस भयानक संकटकालमें हम सर्वशक्तिमान् भगवान्‌का आश्रय लेकर आध्यात्मिक साधनोंमें जुट जायँ। अष्टग्रहीके तथा क्षयमासादिके एवं कुग्रहोंके बहुत ही भीषण नर-संहारक और समृद्धिनाशक परिणाम दो-ढाई वर्षोंतक और हो सकते हैं। अतएव वैदिक यज्ञ; भगवान् रुद्र, दुर्गा, गणेश और नारायण आदिकी उपासनामें सबको लग जाना चाहिये। चण्डी-पाठ, महामृत्युञ्जयके जाप, 'कल्याण'में प्रकाशित शिव-कवच और नारायण-कवच आदिके पाठ और गायत्री-जप-पुरश्चरण आदि करने-कराने चाहिये। और कुछ न हो तो जन-जनको 'हरिः शरणम्', 'नमः शिवाय', 'गं गणपतये नमः', 'दुर्गायै नमः', 'नमो नारायणाय' आदि मन्त्रोंका अपने-अपने विश्वासके अनुसार जप तथा श्रीरामचरितमानस और वाल्मीकीय रामायणके पाठ करने-कराने चाहिये। कम-से-कम सभी लोग सर्वविघ्नविनाशक और सर्वकल्याणप्रद भगवन्नामका जप-कीर्तन तो अवश्य ही करें।

करोड़ों कण्ठोंसे निकलनेवाली 'हरिनाम'की पवित्र और तुमुल ध्वनिसे आकाश और दिशाएँ गूँजती रहें। सारा वातावरण नाम-ध्वनिसे भर जाय।

जैन, बौद्ध, सिख आदि महानुभाव भी अपने-अपने सिद्धान्तानुसार भगवान्‌की प्रार्थना करें।

साथ ही अपने-अपने धर्म, सम्प्रदाय और मतके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार ईसाई, मुसलमान, पारसी सभी भगवान्‌से प्रार्थना करें, जिससे धर्मप्राण भारतकी पूर्ण विजय हो। अधर्मका नाश हो, जगत्‌के राष्ट्रनायकोंको सद्बुद्धि प्राप्त हो, जिससे विश्वका भीषण संकट टले और समस्त विश्वमें शान्ति तथा प्रेमका विस्तार हो।

इसीके साथ भारत-सरकारसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि वह सम्पूर्ण भारतमें कानूनके द्वारा तुरंत गोवध बंद करवा दे। इससे करोड़ों हिंदुओंका तथा गोमाताका आशीर्वाद प्राप्त होगा और परिणाममें बहुत अधिक लाभ होगा।

साथ ही, यह भी ध्यान रहे कि हम अधर्म या आसुरभावका आश्रय कभी न लें। आजके जगत्‌का अध्यात्मविरोधी जड तथा अधर्ममूलक आसुरी विचार तथा आचरण ही विनाशका कारण है। अतएव हम जो कुछ करें, भगवान्‌की सेवाकी भावनासे धर्मावलम्बनपूर्वक करें।

प्रार्थना और नामके सम्बन्धमें महात्मा गाँधीके निम्नलिखित शब्दोंको पढ़िये।

'............निराधारका आधार भगवान् है। अगर आप उससे सहायताकी प्रार्थना करना चाहते हैं तो आप अपने सच्चे रूपमें उसके पास जायें, किसी तरहका संकोच या दुराव-छिपाव न रखकर उसकी शरण लें और इस बातकी आशङ्का न रखें कि आप-जैसे अधम और पतितको वह कैसे सहायता दे सकता है—कैसे उबार सकता है। जिसने अपनी शरणमें आये लाखों-करोड़ोंकी सहायता की, वह क्या आपको असहाय छोड़ देगा? वह किसी तरहका पक्षपात और भेद-भाव नहीं रखता। आप देखेंगे कि वह आपकी हर एक प्रार्थना सुनता है। अधमसे अधमकी भी प्रार्थना भगवान् सुनेगा। यह बात अवश्य मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ।'

'मैं बिना किसी हिचकिचाहटके यह कह सकता हूँ कि लाखों आदमियोंद्वारा सच्चे दिलसे एक ताल और लयके साथ गायी जानेवाली 'राम-धुन'की ताकत फौजी ताकतके दिखावेसे बिल्कुल अलग और कई गुना बढ़ी-चढ़ी है। दिलसे भगवान्‌का नाम लेनेसे आजकी बरबादीकी जगह टिकाऊ शान्ति और आनन्द पैदा होगा।'*

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

# सदा प्रसन्न रहिये

( लेखक—स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी )

यदि आपके पास अपनी प्रसन्नताके लिये कोई साधन नहीं है तो आप चिन्ता मत कीजिये। दूसरोंके सुखमें ही आप अपना सुख मान लीजिये और उसी सुखमें प्रसन्न रहा कीजिये। यह सदा प्रसन्न रहनेके लिये सर्वोत्तम साधन है, पर है अभ्यास-साध्य।

मान लीजिये कि आपके पास धन नहीं है जिससे आप न तो सुखी होते हैं और न आप प्रसन्न ही हैं। ऐसी दशामें अपने आसपास चारों ओर देखिये। कोई-न-कोई धनवान् दृष्टिगोचर हो ही जायगा। बस, उस धनवान्‌को देखकर आप प्रसन्नतासे फूल जाइये और ईश्वरको धन्यवाद दीजिये कि आपके पड़ोसीको उसने धन देकर सुखी किया है।

जो दूसरोंके दुःखको देखकर दुखी एवं करुणार्द्र हो जाता है, उसको अपना दुःख कभी दुखी नहीं करता और जो दूसरोंके सुखको देखकर सुखी होता है वह सदा प्रसन्न रहता है—इसमें कोई संदेह नहीं। यह एक संतका अनुभव है जो मुझे प्राप्त हुआ है और सबके अपनानेकी वस्तु है।

* बड़े हर्षकी बात है कि देशमें स्थान-स्थानपर यज्ञ, जप, पाठ, प्रार्थना, नाम-कीर्तन आदि आरम्भ हो गये हैं। समस्त देशवासी खास करके, धर्म तथा ईश्वरमें विश्वास करनेवाले 'कल्याण'के पाठक इस ओर विशेष ध्यान दें, यह विनीत प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चीन-दमनकी साधना और सिद्धि

एक ब्रह्म है व्यापक सबमें सभी ब्रह्मका है विस्तार।
विश्व-चराचरका है केवल सच्चिन्मय वह ही आधार॥
शत्रु-मित्र, पर-बन्धु न कोई, नहीं कहीं भी कुछ भी अन्य।
एक सर्वगत लीलामयकी लीला ही चल रही अनन्य॥
लीलामें विभिन्न रस होते, अभिनय होते विविध विचित्र।
रङ्गमञ्चपर समुद खेलते बनकर अभिनेता अरि-मित्र॥
इसी तरह है आज खेलना चीन-शत्रुसे हमको खेल।
उसे भगाना है भारतकी भव्य भूमिसे बाहर ठेल॥
कर विश्वासघात वह आया दस्यु भयानकका धर वेश।
उसके इस दुःसाहस दुष्टवृत्तिका है कर देना शेष॥
दाँत न खट्टे करने हैं, करना है विषदन्तोंको भंग।
जिससे हो जायें विषवर्जित निर्मल उसके सारे अंग॥
हो उत्पन्न सुबुद्धि, जगे फिर उसके उरमें पश्चात्ताप।
धर्म-ईशको माने, छोड़े नास्तिकताका सारा पाप॥
अतः लगाकर तन-मन-धन सब, लेकर प्रभुका ही आश्रय।
रखकर साथ धर्म-ईश्वरको जूझें हम रणमें निर्भय॥
सब कर्मोंका करें निरन्तर हम केवल प्रभुमें संन्यास।
करें युद्ध, तज आशा-ममता, करके कामज्वरका नाश॥
ईश-प्रार्थना देवाराधन हो रखकर श्रद्धा-विश्वास।
पूर्ण विजय हो भारतकी, हो पापबुद्धिका सहज विनाश॥
बल-विज्ञानयुक्त देशोंके प्रमुखोंमें उपजे सद्बुद्धि।
सबमें हो सद्भाव, सभीमें हो हितयुक्त प्रेमकी वृद्धि॥
सभी सभीको सुख पहुँचावें, सबका सभी करें सम्मान।
सबके ही शुचितम कर्मोंसे सदा सुपूजित हों भगवान॥
हरिसेवामय शुद्ध कर्म यह जीवन सफल करे निष्काम।
मानवताका मिले परम फल निर्मल सच्चिन्मय परधाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ईश्वर-वाणी

कलम हाथमें लेकर बैठा लिखनेको युगवाणी,
जनकविके कानोंमें गूँजी तब यह ईश्वर-वाणी—

सुनो सुनो हे देशबन्धुओ ! मैं सबका आत्मा हूँ;
तुम मुझमें हो, मैं तुममें हूँ, मैं खुद परमात्मा हूँ।
मैं ही सबका आदि-मध्य हूँ तथा अन्त मैं सबका ;
मैं हूँ अक्षय काल व धारणकर्ता मैं हूँ सबका।
मैं हूँ सब जीवोंका जीवन, मुझसे सब कुछ होता ;
मेरे बिना जगत्में कुछ भी चर या अचर न होता।
मेरे रूप हजारों लाखों हैं व करोड़ तरहके ;
उनकी आकृति तरह-तरहकी, रँग भी तरह-तरहके।
रूप नित्य नव घटनाओंका करता हूँ मैं धारण ;
भारतकी सीमापर मैं ही आज बन गया हूँ रण।
भारतकी जनतामें मैं ही ऐक्य-रूपमें जागा ;
वीरभाव यह मैं ही हूँ जो जन-जनमें है जागा।
बढ़े हुए चीनी दुष्टोंका क्षय करने हूँ आया ;
युद्ध रूपमें आज हिंदको जय देने हूँ आया।
भारतीय सेनामें रहकर मैं रिपुको खाऊँगा ;
जयका श्रेय हिंदके वीरोंको मैं दिलवाऊँगा।
असुर मरेंगे निश्चय ही ये, इन्हें मरा ही जानो ;
ओ अजेय भारतके वीरो ! अपनी जय पहचानो।
तुम निमित्त हो, करनेवाला मैं हूँ सबका आत्मा ;
विजय तुम्हारी होगी, कहता हूँ मैं खुद परमात्मा।

कविद्वारा यह ईश्वर-वाणी पहुँचेगी जन-जनमें ;
विजय सत्यकी होगी यह विश्वास भरेगी मनमें।

—मधुसूदन वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दृष्टि-शिक्षा

( लेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज )

विचारशील मनुष्यके मनमें बहुत बार ऐसा विचार आता है कि यह कार्यकारणरूप सुख-दुःखमय संसार अनादिकालसे चला आता है, इसका भला क्या कारण होगा ? ऐसा विचार तो बहुतोंको आता है; परंतु इसका पता लगानेमें प्रवृत्त तो कोई विरला ही होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें संसार-वृक्षका वर्णन किया है और उसका मूल भी बतलाया है। इतना ही नहीं, उस मूलको काट डालनेवाले शस्त्रका भी वर्णन किया है। परंतु वहाँ विशेष अर्थ-गाम्भीर्य होनेके कारण साधारण मनुष्यके लिये उसे समझना कठिन हो जाता है।

पातञ्जल-योगदर्शनमें इस चीजको इस तरहसे रक्खा गया है, जिसमें सर्वसाधारण मनुष्य भी समझ सके। अतः उसीको देखना है। इस प्रसङ्गमें भगवान् पतञ्जलि कहते हैं—

**द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।** ( २। १७ )

द्रष्टा—आत्माका दृश्य—इस शरीरके साथ जो संयोग हो गया है अर्थात् जो तादात्म्य-सम्बन्ध हो गया है, वही संसाररूपी दुःखका कारण है और उसीके कारण—यह जन्म-मरणका प्रवाह चालू रहता है।

'संयोग हो गया है'—इसका अर्थ इतना ही है कि परस्पर-विरोधी स्वभाववाले पदार्थोंके स्वभावका एक दूसरेमें आरोपण, आत्माके धर्मकी अनात्मा शरीरमें कल्पना। आत्मा परम पवित्र है, उसके बदले शरीरको—जो अपवित्रताका धाम है—पवित्र मानना। आत्मा अविनाशी है, उसके बदले क्षणभङ्गुर शरीरको अविनाशी मानना। आत्मा स्वभावसे ही सुखरूप है, उसके बदले दुःखरूप शरीरको सुखी करने—उसे सुखरूप बनानेका जीवनभर प्रयत्न करना। और आत्मा चेतन-स्वरूप है, उसके बदले जड शरीरको चेतनरूप जानना। इत्यादि-इत्यादि।

इसी प्रकार शरीरके धर्मका आत्मामें आरोप किया जाता है। जैसे, शरीरके दुबले होनेपर आत्माका अपनेको दुबला कहना, शरीरके वृद्ध होनेपर आत्माका अपनेको वृद्ध कहना, शरीरके जन्मको आत्माका अपना जन्म मानना और शरीरकी मृत्युसे आत्माका अपनेको मरनेवाला मानना।

**'मानकर मृत्यु आत्माकी मृत्यु पाता है अज्ञानी।'**

इस प्रकार आत्मा और शरीर दोनों बिल्कुल विलक्षण हैं और विरुद्धधर्मवाले हैं, परंतु ईश्वरकी मायासे दोनों एकरूप हो जाते हैं और इसी कारण संसारचक्र चालू रहता है।

इस संयोगको दूर करनेके लिये मनुष्यको अपनी दृष्टि ठीक करनी चाहिये। आत्माके धर्मोंको देखने-जाननेके लिये दिव्यदृष्टि या ज्ञानदृष्टि रखनी चाहिये। और शरीर तथा उसके धर्मोंको समझनेके लिये व्यावहारिक दृष्टि रखनी चाहिये; क्योंकि—शरीर तथा संसार व्यावहारिक सत्तावाले हैं और आत्माकी सत्ता पारमार्थिक है।

पारमार्थिक और व्यावहारिक दृष्टिको अलग-अलग रखनेकी आवश्यकता है। जब एक दृष्टिसे विचार करते हों, तब दूसरी दृष्टिसे उसपर विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि दोनों दृष्टियोंकी भूमिकाएँ अलग-अलग हैं। इन दोनों दृष्टियोंमें जब संकरता हो जाती है—दोनों एक साथ मिलकर देखने लगती हैं, तब यथार्थ बोध नहीं होता। इतना ही नहीं, उलटी समझ ( विपर्यय-बुद्धि ) हो जाती है। इन दोनों दृष्टियोंको अलग-अलग रखनेकी जरूरत है, इसी बातको बतानेके लिये मानो मनुष्यको सृष्टिकर्त्ताने दो आँखें दी हैं। भाव यह कि जब पारमार्थिक दृष्टिसे विचार करते हों, तब व्यावहारिक आँख बंद कर लेनी चाहिये। इसी प्रकार जब व्यावहारिक दृष्टिसे देखते हों तब पारमार्थिक आँख बंद रखनी चाहिये। इसी तत्त्वके प्रतीकरूपमें स्थूल शरीरमें दो आँखें हैं।

इसे समझनेके लिये उदाहरण लें। चार-पाँच आदमी बैठकर परस्पर बातचीत कर रहे हैं। इनमेंसे एक आदमीको ज्वर आता था। इसपर एक दूसरे भाई, जो वैद्यक विद्याके जानकार हैं, कहते हैं—'भाई! कुटकी-चिरायता रातको भिगोकर सबेरे पीना शुरू कर दो तो तुम्हारा ज्वर चला जायगा।' इसी बीच एक दूसरे भाई बोल उठते हैं कि 'इतनी माथापच्चीकी क्या आवश्यकता है, आखिर तो सब ब्रह्मरूप ही है न ? अतएव कुटकी-चिरायता भी ब्रह्मरूप ही है और यह धूलकी चिमटी भी ब्रह्मरूप ही है, इसलिये ज्वर तो धूलकी चिमटीसे ही उतर जायगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब यहाँ दृष्टिकी संकरता हो जानेसे यथार्थ ज्ञान तो होता ही नहीं; बल्कि ज्ञानका उल्टा अर्थ हो जाता है। कुटकी-चिरायते आदिसे ज्वर उतरनेकी बात व्यावहारिक दृष्टिकी है और 'सब ब्रह्मरूप है'—यह बात पारमार्थिक दृष्टिकी है; अतएव हम जिस भूमिकापर बात कर रहे हों, उसी दृष्टिसे बात होनी चाहिये। वहाँ दृष्टिभेद होनेपर परिणाम बहुत हानिकारक होता है।

इसी विषयको समझाते हुए उद्धवजीसे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

**शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ।**

**........................................................**

**धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमपि चानघ ।**

(श्रीमद्भागवत ११ । २१ । ३-४)

वस्तुओंके समान होनेपर भी शुद्धि-अशुद्धिका विधान किया जाता है, जिसके द्वारा धर्मसम्पादन कर सके, समाजका व्यवहार ठीक कर सके और जीवनयात्राका निर्वाह हो सके।

तत्त्वदृष्टिसे समस्त पदार्थ ब्रह्मरूप या भगवत्-रूप ही हैं, परंतु व्यवहारकालमें उनको पृथक्-पृथक् समझना चाहिये। सोनेके सब गहने सोना ही है; परंतु उनके नाम-रूपके अनुसार कंठी गलेमें पहनी जाती है और कड़े हाथोंमें।

इसका यह कारण है कि प्रत्येक पदार्थके धर्म अलग-अलग हैं। धर्मसे अभिप्राय है—स्वभाव या गुण। अतएव व्यवहारकालमें तो जहाँ जो पदार्थ चाहिये, वहाँ दूसरे पदार्थसे काम नहीं चलता। फिर गुण अलग-अलग होनेके कारण उनका उपयोग भी पृथक्-पृथक् रीतिसे होना चाहिये। कारण, जीवनयात्रा या जीवननिर्वाहके लिये ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्धमें ध्यान न रखनेसे शरीरका नाश हो जाता है।

इससे उलटा दृष्टान्त लीजिये। एक भाई वेदान्त समझाते हुए कहते हैं—ब्रह्मसे ही उत्पन्न होनेके कारण यह जो कुछ भी जाग्रदादि प्रपञ्च दिखायी देता है, सब ब्रह्मरूप ही है। 'यह जो कुछ दिखायी देता है, सब ब्रह्मरूप ही हो तो फिर नीम कड़वा क्यों लगता है और चीनी मीठी क्यों लगती है? एक ही ब्रह्म एक जगह कड़वा और दूसरी जगह मीठा हो तो ब्रह्ममें विषमता आ जाती है, अतएव आपकी यह बात ठीक नहीं है।' ऐसी शंका की गयी।

अब देखिये। यहाँ भी दृष्टिकी संकरतासे ही यथार्थ बोध नहीं होता। बल्कि विपरीत बोध होता है। अर्थात् अन्यथा ज्ञान होता है। सब ब्रह्मरूप ही है, यह निरूपण आध्यात्मिक भूमिकाका विषय है और नीमके कड़वे लगने तथा चीनीके मीठे लगनेकी बात व्यावहारिक भूमिकाकी है। अतएव जहाँ आध्यात्मिक या पारमार्थिक दृष्टिसे बात होती हो, वहाँ व्यावहारिक उदाहरण कामके नहीं होते। उनसे तो दृष्टिमें संकरता आ जाती है, जिससे विपरीत ज्ञान होता है। यथार्थ ज्ञान नहीं होता।

ये तो लौकिक साधारण दृष्टान्त हुए, अब एक स्मृतिका दृष्टान्त लीजिये। गीतामें भगवान कहते हैं—

**विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।**
**शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥**

विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, चाण्डाल, गौ, हाथी और कुत्ता—इन सबमें ज्ञानी पुरुष समानदृष्टिसे देखते हैं।

'समदर्शिनः' शब्द बतलाता है कि यह प्रसङ्ग पारमार्थिक दृष्टिका है। अभिप्राय यह कि जिस पुरुषने तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसकी दृष्टिमें शारीरिक भिन्नता प्रकृतिका कार्य होनेके कारण मिथ्या है। इसलिये वह सभी प्राणियोंमें एक ही आत्माको देखता है। इन पाँचों प्राणियोंके शरीर, स्वभाव, उपयोग सभी अलग-अलग हैं। कभी एक हो ही नहीं सकते। परंतु इन सभीमें चेतन सत्ता तो एक आत्माकी ही है। यों समझकर ज्ञानी पुरुष पारमार्थिक दृष्टिसे इन सबको आत्मारूप देखता है; परंतु व्यावहारिक दृष्टिसे तो शरीरके व्यवहारकालमें उस ज्ञानीको दूधकी आवश्यकता होगी तो वह गौका ही लेगा, कुतियाका नहीं। सवारी करनी होगी तो हाथीपर की जायगी, कुत्ते या गायपर नहीं। खेतकी रखवालीका काम होगा तो कुत्ता ही करेगा, हाथी या गाय नहीं। इसीलिये प्रस्तुत श्लोकमें 'समदर्शिनः' शब्दका व्यवहार किया गया है, 'समवर्तिनः' का नहीं है। समान देखना है, समान व्यवहार नहीं करना है। अतएव गीता कहती है कि ज्ञानीको भी, तत्त्वज्ञान होनेके बाद भी, दोनों दृष्टियोंको भिन्न-भिन्न रखना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि ज्ञानीके भी शरीर है, शरीर है तबतक शरीरका व्यवहार भी है और शरीरका व्यवहार है तबतक संसार भी है। इसलिये उसको भी व्यवहारकालमें व्यावहारिक दृष्टिसे ही अपने सारे व्यवहार यथायोग्य शास्त्र-मर्यादाके अनुसार ही करने चाहिये। दृष्टिमें संकरता न आने देनी चाहिये। दृष्टि संकर हो जायगी तो महान अनर्थ उपस्थित हो जायगा


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मन-बुद्धि ज्ञानीको भी एक बार पापकी ओर ढकेल ही देगी।

एक बात यहाँ समझ लेनी है। व्यावहारिक जगत् प्रकृतिका कार्य है। इसलिये वहाँ तो विषमता रहेगी ही; क्योंकि प्रकृतिकी विषमतासे ही संसारकी रचना है। प्रकृतिकी साम्यावस्था होनेपर सृष्टि कायम नहीं रह सकती। प्रकृतिके तीनों गुण—सत्त्व, रज और तम जब साम्यावस्थामें थे, तब कुछ भी नहीं था। सब कुछ अव्यक्त था। परंतु परमात्माकी दृष्टि पड़ते ही गुणोंमें क्षोभ हो गया और इस विषमताके आते ही सृष्टिकी रचना हो गयी। अतएव सृष्टिमें तो विषमताका होना अनिवार्य ही है; क्योंकि विषमता ही इसका स्वभाव है। इसलिये ज्ञान-दृष्टिसे सब कुछको अपना आत्मारूप ही देखनेवाले ज्ञानीको भी शास्त्र-प्रमाणके अनुसार व्यवहार यथायोग्य ही करना चाहिये।

श्रीरामकृष्ण परमहंस इस बातपर बहुत ही जोर देते और दोनों दृष्टियोंको अलग-अलग रखनेके लिये खास तौरपर समझाते। वे कहते कि ज्ञानदृष्टि या पारमार्थिक दृष्टिसे तो चोर, अग्नि, सर्प और सिंह परमेश्वररूप ही हैं; क्योंकि भिन्न-भिन्न शरीरोंमें एक ही परमेश्वर विराजित हैं और सबका नियमन करते हैं। परंतु व्यवहारकालमें यदि उनको परमेश्वर मानकर मिलेंगे तो शरीरका नाश हो जायगा। विशेष समझाते हुए कहते कि चोर नारायणरूप ही है, पर वह ज्ञान-दृष्टिसे। व्यवहारकालमें उससे मित्राचारी न करके दूरसे ही नमस्कार किया जाता है, नहीं तो वह हमारा नाश कर देगा। इसी प्रकार अग्नि भी नारायणका ही स्वरूप है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है; परंतु उसके साथ व्यवहार तो गरमी प्राप्त हो, इतना ही करना है। परमेश्वरका रूप समझकर भेंटने जायँगे तो जलना पड़ेगा। ऐसे ही सर्प-सिंहादि प्राणी भी ज्ञान-दृष्टिसे नारायणरूप ही हैं, पर व्यवहारकालमें तो उनसे अपनेको बचाकर ही रखना पड़ता है।

एक और भी शास्त्रका विनोदपूर्ण परंतु जोरदार दृष्टान्त है, उसे भी समझ लें। एक थे गुरुजी। वे पाठशालामें अमुक विद्यार्थियोंको वेदान्त समझा रहे थे। उसमें एक प्रसङ्ग आया कि जो-जो भी दृष्टिसे दिखायी दे, उस-उसको मिथ्या समझना। यह बात है ज्ञान-दृष्टिकी, इसे व्यवहारमें लागू करनेपर तो अनर्थ हो जायगा। दो-चार दिनोंके बाद एक दिन ऐसा हुआ कि एक हाथी पागल होकर बाजारमें दौड़ता जा रहा था। गुरुजी उस समय बाजारमें थे, उनको इसका पता लगते ही वे बचावके लिये स्थान खोजते दौड़ने लगे। उनके एक शिष्यने गुरुजीको दौड़ते देखकर स्वयं अपने सुरक्षित स्थानसे ही कहा—'गुरो ! गजो मिथ्या'—'गुरुजी ! व्यर्थ किस लिये दौड़ रहे हैं, हाथी तो मिथ्या है। यह आपने ही तो पढ़ाया था।' गुरुजीने भागते हुए ही उत्तर दिया—'भाई ! पलायनमपि मिथ्या।' मैं जो दौड़ रहा हूँ, यह भी मिथ्या ही है।' यहाँ भी दृष्टिकी संकरता है, इसीसे शिष्यका ज्ञान यथार्थ न होकर विपरीत है। 'हाथी मिथ्या है'—यह पारमार्थिक दृष्टिकी बात है; परंतु व्यवहार-कालमें तो हाथी सत्य है, हाथी पागल हो गया है—यह भी सत्य है तथा उससे अपनेको बचाना भी उतना ही सत्य है और इसलिये आवश्यक भी है। गुरुजीने उत्तर दिया कि जिस दृष्टिसे हाथी मिथ्या है, उस दृष्टिसे मेरा दौड़ना भी मिथ्या ही है। अभिप्राय यह कि जैसे ज्ञानदृष्टिमें हाथी मिथ्या है, वैसे ही दौड़नेकी क्रिया भी मिथ्या है और व्यवहार-कालमें हाथी सत्य है, अतः दौड़ना भी सत्य है। गुरुका ज्ञान संशय-विपर्ययरहित था; अतः उनकी दृष्टिमें भेद नहीं था और शिष्यका ज्ञान केवल बात करने भरका ही था, इसीलिये उसने दोनों दृष्टियोंको सेल मेल कर दिया था।

अब इस निबन्धके प्रारम्भमें आपने जो कहा था कि द्रष्टा और दृश्यके धर्मोंका तादात्म्य-संयोग हो गया है, इसीसे सर्ग-विसर्गका चक्कर चलता रहता है। जन्म-मरणका चक्र अनादिकालसे चलता आ रहा है। यह संयोग दूर होगा, तभी इस चक्रका अन्त होगा। इस संयोगको दूर करना हो तो ज्ञानदृष्टिसे द्रष्टा आत्माके धर्मोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और फिर उन धर्मोंका दृश्य संसारमें कभी आरोप नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टिसे शरीरके जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि आदि धर्मोंको समझकर 'ये धर्म आत्माके नहीं हैं'—यह निश्चय कर लेना चाहिये और उनको आत्मामें आरोपित नहीं करना चाहिये।

श्रीशंकराचार्यने एक छोटेसे वाक्यमें यह बात बहुत ही अच्छी तरह कही है—

**'देहेऽहंमतिरुज्झ्यताम्।'**

अर्थात् तुमने जो देहमें आत्मबुद्धि कर ली है, इसे छोड़ दो और फिर आत्माके धर्मोंको जानकर 'मैं आत्मा हूँ'—ऐसा निश्चय करके अपने आत्मस्वरूपमें स्थिर हो जाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# युक्त आहार-विहारसे परमात्माकी प्राप्ति

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

श्रीभगवान्‌ने कहा है—

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**
**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥**

( गीता ६ । १७ )

'दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।'

भाव यह कि आहार-विहार, कर्म, सोना और जागना शास्त्रसे प्रतिकूल न हो और उतनी मात्रामें हो जितना जिसकी प्रकृति, रुचि और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपयुक्त और आवश्यक हो। ऐसा करनेवालेका परमात्म-प्राप्तिका साधनरूप योग सिद्ध ( सफल ) हो जाता है।

इस श्लोकमें 'युक्त' शब्द तीन जगह ही आया है; किंतु एक साथ कहे हुए स्वप्न और अवबोधको पृथक्-पृथक् करके श्लोकमें कही हुई चार बातोंके अनुसार अपने समयका चार भाग कर लेना चाहिये। चौबीस घंटेका दिन-रातका समय है, उसके चार भाग करनेसे प्रत्येक भाग छः घंटेका होता है। अतएव मनुष्यको उचित है कि छः घंटे तो आहार-विहारमें बितावे, छः घंटे जीविकोपार्जनके कार्योंमें, छः घंटे शयन करनेमें और छः घंटे जागने ( सचेत होने ) में—परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें लगावे। यों तो छः घंटे सोनेके सिवा, अठारह घंटे मनुष्य जागता ही रहता है; किंतु यहाँ 'अवबोध' शब्दसे यह व्यक्त किया गया है कि कम-से-कम छः घंटे तो साधनमें विशेषरूपसे लगावे और हर समय चौबीसों घंटे साधनके लिये सचेत रहे—यानी अपनी रुचि और विश्वासके अनुसार साकार या निराकार अपने इष्टदेव परमात्माके स्वरूपका चिन्तन तो भेद या अभेद-बुद्धिसे निरन्तर चौबीसों घंटे करते ही रहना चाहिये। शयनकालमें भी उसको याद रखते हुए ही शयन करना चाहिये।

यदि वर्तमान समयमें गृहस्थाश्रमी मनुष्यका छः घंटे जीविकोपार्जनका न्याययुक्त कार्य करनेसे जीवन-निर्वाह न हो तो आहार-विहारके समयमेंसे दो घंटे निकालकर जीविकोपार्जनके कार्यमें आठ घंटे लगाने चाहिये। तथा अपनी सुविधाके अनुसार आहार-विहार और जीविकाके समयमें घंटा-दो-घंटा न्यूनाधिक भी की जा सकती है; किंतु शयनमें छः घंटे और परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें छः घंटे अवश्य ही लगाने चाहिये। यदि पाँच घंटे सोनेसे काम चल सके तो उसमेंसे एक घंटा निकालकर साधन सात घंटे करना चाहिये। नीचे अनुमानतः एक प्रकारका समय-विभाग करके बतलाया जाता है। इसमें अपनी सुविधाके अनुसार आगे-पीछे भी कर सकते हैं।

रात्रिमें दस बजे शयन करके चार बजे उठना। इसमें शीत और ग्रीष्मकालके अनुसार एक घंटा आगे-पीछे भी किया जा सकता है। रात्रिमें शयनके समय उन सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहको जो हर समय चलता रहता है—स्वप्नवत्, नाशवान्, क्षणभङ्गुर या दुःखरूप और व्यर्थ समझकर हटा दे अर्थात् संकल्परहित हो जाय और भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यके संकल्पोंका प्रवाह श्रद्धा-प्रेमपूर्वक बहाते हुए शयन करे। अथवा सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके निर्गुण-निराकार स्वरूपके तत्त्व-रहस्यको समझकर वैराग्यपूर्वक भेद या अभेदरूपसे निरन्तर चिन्तन करते हुए शयन करे।

प्रातः चारसे पाँच बजेतक शौच-स्नान आदि क्रियाओंसे निवृत्त होना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचसे आठ बजेतक योगासन करके अपने विश्वास, रुचि, स्वभाव और अधिकारके अनुसार संध्या, गायत्री-जप, नामजप, तप, ध्यान, भक्ति-ज्ञान-योगविषयक शास्त्रोंका स्वाध्याय, स्तुति-प्रार्थना श्रद्धा-प्रेम और निष्काम-भावसे करना ।

आठसे बारहतक निरन्तर भगवान्‌को याद रखते हुए अपने अधिकारके अनुसार अध्ययन, याजन, प्रजापालन, कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, सेवा आदि जीविकोपार्जनके न्याययुक्त कार्य निष्कामभावसे करना ।

बारहसे एक बजेतक शरीरनिर्वाह और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये भोजन-विश्राम आदि करना ।

एकसे पाँच बजेतक निरन्तर भगवान्‌को याद रखते हुए निष्काम-भावसे अपने अधिकारानुसार जीविकोपार्जनके कार्य करना ।

सायं पाँचसे छः बजेतक शौच-स्नान आदि करना ।

छः से नौ बजेतक अपने विश्वास, रुचि, स्वभाव और अधिकारके अनुसार वैराग्यपूर्वक श्रद्धा, प्रेम और निष्काम भावसे भक्ति, ज्ञान या योगका साधन करना ।

रात्रिमें नौसे दस बजेतक भोजन, वार्तालाप, परामर्श आदि करना ।

उपर्युक्त कार्यक्रममें मनुष्य आगे-पीछे या कम-ज्यादा अपनी सुविधाके अनुसार उलट-फेर कर सकता है ।

ब्रह्मचारीको जीविकोपार्जनका कार्य न होनेके कारण उन आठ घंटोंमें भिक्षाटन, व्यायाम, श्रद्धा-भक्तिसे गुरु-सेवापूर्वक विद्याभ्यास करना चाहिये । तथा वानप्रस्थीको उन आठ घंटोंमें श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, मन और इन्द्रियोंके संयम तथा वैराग्यपूर्वक यज्ञ, स्वाध्याय, तपश्चर्या आदि करने चाहिये । किंतु संन्यासीको तो शौच, स्नान, भिक्षा और शयन आदिमें अधिक-से- अधिक दस घंटे लगाकर शेष चौदह घंटे निष्कामभावसे जप, तप, संयम, स्वाध्याय, स्तुति-प्रार्थना, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग, सदाचार, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि साधनोंमें ही लगाने चाहिये ।

इस प्रकार युक्त आहार-विहारादि करनेपर परमात्मा-की प्राप्तिके साधनरूप योगकी सिद्धि निश्चय ही शीघ्र हो जाती है किंतु इस प्रकार न किये जानेपर योगकी सिद्धि सम्भव नहीं । भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—

**नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।**
**न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥**
( गीता ६ । १६ )

हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खानेवालेका, न बिल्कुल न खानेवालेका, न बहुत शयन करनेके स्वभाववालेका और न सदा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है ।

भोजन अधिक करनेपर हजम न होनेके कारण रस कम बनता है । अनेक प्रकारकी बीमारियाँ हो जाती हैं, निद्रा और आलस्य अधिक आता है तथा साधनमें विक्षेप हो जाता है । बहुत दिनोंतक बिल्कुल भोजन न करनेपर क्षुधाके कारण निद्रा कम आती है, संकल्प-विकल्प अधिक होते हैं, जिससे साधनमें विक्षेप हो जाता है और बिल्कुल भोजन किये बिना शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता । इसी प्रकार अधिक सोनेसे निद्रा और आलस्य बढ़ जाते हैं, स्वभाव आलसी हो जाता है तथा साधनमें रुचि नहीं होती । सोनेमें मनुष्यको अधिक स्वप्न ही आते हैं, इसलिये यहाँ 'स्वप्न' शब्द दिया है किंतु सुषुप्ति ( गाढ़निद्रा ) को उसके अन्तर्गत ही समझना चाहिये । बिल्कुल न सोकर जागरण करनेसे सांसारिक संकल्प-विकल्प अधिक होते हैं और चिन्ता, विक्षेप, आलस्य आनेसे परमात्माकी प्राप्तिके भक्ति, ज्ञान, योग आदि साधनोंमें अनेक विघ्न आ जाते हैं । इस कारण उसके योगसाधनकी ही सिद्धि नहीं होती, फिर परमात्माकी प्राप्ति हो ही कैसे सकती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके सिवा योगके साधनमें और भी बहुत-से विघ्न आते रहते हैं। जैसे कञ्चन, कामिनी, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, संसार और संसारके भोगोंमें ममता और आसक्ति, देहमें अहंता, ममता और आसक्तिके कारण ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनी और भोगोंकी इच्छा तथा काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सरता, राग-द्वेष, अज्ञान, संशय-भ्रम, दम्भ, कठोरता, नास्तिकता, परदोषदर्शन आदि अनेक दुर्गुण तथा मादक वस्तुओंका सेवन, थियेटर-सिनेमा आदि देखना, चौपड़-ताश, शतरंज, खेल-तमाशा, सट्टा-फाटका एवं शरीर, मन और इन्द्रियों-की चञ्चलता आदि अनेक दुर्व्यसन ( बुरी आदत ) और झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, मद्य-मांसका सेवन, बेईमानी, दगाबाजी, प्रमाद आदि अनेक दुराचार एवं चोर, डाकू, बीमारी और मृत्यु आदिसे तथा अनुकूलके विनाश और प्रतिकूलकी प्राप्तिसे दुःख, चिन्ता, शोक, भय आदिका होना। इसी तरह और भी अनेक प्रकारके विघ्न साधनमें आया करते हैं। इन विघ्नोंके आनेपर मनुष्यको न तो घबराना चाहिये और न इनके निवारणको कठिन मानकर निराश ही होना चाहिये। बहुत-से दुर्गुण-दुराचार-दुर्व्यसनरूप विघ्न तो मनुष्यके अपने बनाये हुए हैं, उनका तो विवेकविचारपूर्वक हठसे सर्वथा त्याग करना चाहिये तथा चिन्ता, भय-शोक और काम-क्रोध-लोभ-मोहादि दुर्गुणरूप विघ्नोंमेंसे कितने ही तो मूर्खताके कारण हैं और कितने ही स्वभावदोषके कारण हैं। इन सभीको भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सद्गुण-सदाचारके सेवनसे दूर करना चाहिये।

( १ ) भगवान्‌के शरण होकर करुणाभावसे भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना करना, भगवान्‌को अपना परम हितैषी मानकर उनमें अनन्य प्रेम करना तथा भगवान्‌के गुण और प्रभावको समझकर उनके नाम और स्वरूपका निष्कामभावसे श्रद्धाप्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना—इस प्रकारके तीव्र अभ्याससे भगवत्कृपासे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। महर्षि श्रीपतञ्जलिजीने कहा है—

**तस्य वाचकः प्रणवः ।** ( योगदर्शन १ । २७ )

'उस ईश्वरका वाचक ( नाम ) प्रणव ( ॐकार ) है।'

**तज्जपस्तदर्थभावनम् ।** ( योगदर्शन १ । २८ )

'उस ॐकारका जप और उसके अर्थस्वरूप परमेश्वर-का चिन्तन करना चाहिये।'

**ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।** ( योगदर्शन १ । २९ )

'उक्त साधनसे विघ्नोंका अभाव और परमात्माके स्वरूपका ज्ञान भी हो जाता है।'

( २ ) विवेकपूर्वक विचारके द्वारा संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर, स्वप्नवत् अभावरूप समझकर संकल्परहित हो जाना एवं एक सच्चिदानन्दघन निर्गुण निराकार ब्रह्मको नित्य भावरूप समझकर उसीका नित्य-निरन्तर चिन्तन करना—इस प्रकारके तीव्र अभ्याससे सारे विघ्नोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

( ३ ) इस संसारको नाशवान् या दुःखरूप समझ-कर तीव्र वैराग्य करना। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

**जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥**
**असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।**
( १३ । ८ का उत्तरार्ध, ९ का पूर्वार्ध )

'जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करना एवं पुत्र, स्त्री, घर, धन आदिमें आसक्ति और ममताका न होना।'

**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।**
**आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥**
( गीता ५ । २२ )

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।'

श्रीपतञ्जलिजी कहते हैं—

**परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःख-मेव सर्वं विवेकिनः ।** ( योगदर्शन २ । १५ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परिणाम-दुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख—ऐसे तीन प्रकारके दुःख सबमें विद्यमान रहनेके कारण और तीनों गुणोंकी वृत्तियोंमें परस्पर विरोध होनेके कारण विवेकीके लिये सब-के-सब कर्मफल दुःखरूप ही हैं।'

**दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।** ( योगदर्शन १ । १५ )

'देखे और सुने हुए विषयोंमें सर्वथा तृष्णारहित चित्तकी जो वशीकार नामक अवस्था है वह वैराग्य है।'

**तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ।**
( योगदर्शन १ । १६ )

'पुरुषके ज्ञानसे जो प्रकृतिके गुणोंमें तृष्णाका सर्वथा अभाव हो जाना है—वह 'परवैराग्य' है।

उपर्युक्त श्लोकों और सूत्रोंके अर्थ और भावको विवेकपूर्वक समझनेसे संसारसे तीव्र वैराग्य तथा परम उपरति हो जाती है। भगवान्‌ने कहा है—

**अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-**
**मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।**
( गीता १५ । ३ )

'इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर—इससे उपरत होकर ( उस परमात्माकी खोज करनी चाहिये )।'

यह नियम है कि विषयोंका चिन्तन होनेसे ही उनमें आसक्ति होती है और आसक्तिके कारण ही चित्तवृत्तियाँ संसारकी ओर जाती हैं। जब मनुष्य संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंको नाशवान्, क्षणभङ्गुर, दुःखरूप समझ लेता है तब उसे स्वतः ही वैराग्य हो जाता है। वैराग्य होनेपर चित्तवृत्तियाँ अपने-आप ही संसारके पदार्थोंसे सर्वथा हट जाती हैं और संसारके पदार्थसे चित्तवृत्तियोंका हटना ही परम उपरति है। इस वैराग्यपूर्वक उपरतिसे सारे विघ्नोंका नाश अपने-आप ही हो जाता है। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वैराग्यके द्वारा संसारका बाध करके परमात्माका ध्यान करे। इस प्रकारके साधनसे उसमें सम्पूर्ण गुण अपने-आप ही आ जाते हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् कहते हैं—

**निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा**
**अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।**
**द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-**
**र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥**
( गीता १५ । ५ )

'जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं, वे सुखदुःखनामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपदको प्राप्त होते हैं।'

( ४ ) सद्गुण-सदाचारके पालनसे भी दुर्गुण-दुराचाररूप विघ्नोंका नाश हो जाता है। जैसे सत्य भाषणसे मिथ्या भाषणकी निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्मचर्य-पालनसे व्यभिचार नहीं रह सकता। सेवा-दयाका भाव होनेपर हिंसा नहीं हो सकती और सबमें निष्काम प्रेम होनेपर किसीसे द्वेष नहीं हो सकता। इसी प्रकार अन्य सब विषयोंमें समझ लेना चाहिये। महर्षि पतञ्जलिजी कहते हैं—

**वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।**
( योगदर्शन २ । ३३ )

'जब वितर्क ( यम-नियमोंके विरोधी हिंसादि भाव ) यम-नियमके पालनमें बाधा पहुँचायें तब उनके प्रतिपक्षी विचारोंका बारंबार चिन्तन करना चाहिये।'

**वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।** ( योगदर्शन २ । ३४ )

'( यम-नियमोंके विरोधी ) हिंसादि भाव वितर्क कहलाते हैं। वे तीन प्रकारके होते हैं—स्वयं किये हुए, दूसरोंसे करवाये हुए और अनुमोदन किये हुए। इनके कारण लोभ, क्रोध और मोह हैं। इनमें भी कोई छोटा, कोई मध्यम और कोई बहुत बड़ा होता है। ये दुःख और अज्ञानरूप अनन्त फल देनेवाले हैं। इस प्रकार विचार करना ही प्रतिपक्षकी भावना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

**मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।**

( योगदर्शन १ । ३३ )

'सुखी मनुष्योंमें मित्रताकी, दुखी मनुष्योंमें दयाकी, पुण्यात्मा पुरुषोंमें प्रसन्नताकी और पापियोंमें उपेक्षाकी भावना करनेसे चित्तके मल, विक्षेप, आवरण आदि दोषोंका नाश होकर चित्त शुद्ध हो जाता है ।'

चित्तकी चञ्चलतारूप विक्षेपके नाशके लिये शास्त्रोंमें बहुत-से उपाय बताये गये हैं । श्रीवसिष्ठजी भगवान् रामके प्रति कहते हैं—

**अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च ।**
**वासनासम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ॥**
**एतास्ताः युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल ।**

( योगवा० उप० ९२ । ३५, ३६ का पूर्वार्ध )

'अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति, साधु-संगति, वासनाका सर्वथा परित्याग और प्राणस्पन्दनका निरोध—ये ही युक्तियाँ चित्तपर विजय पानेके लिये निश्चितरूपसे दृढ़ उपाय हैं ।

अभिप्राय यह है कि सत्-शास्त्रोंके स्वाध्याय और महापुरुषोंके संगसे चित्तके विक्षेपोंका नाश होकर साधकका मन स्वाधीन और स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार वासनाओंके त्याग और प्राणायामसे भी हो जाता है ।

अभ्यास और वैराग्यसे चित्तका वशमें होना भगवान्ने गीतामें भी बतलाया है—

**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।**
**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥**

( गीता ६ । ३५ )

'हे महाबाहो ! निस्संदेह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है, परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है ।

वैराग्यके विषयमें ऊपर बताया ही जा चुका है । अभ्यासके अनेकों प्रकार शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं । कुछ नीचे लिखे जाते हैं ।

( १ ) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँसे हटाकर मनको बार-बार परमात्मामें ही लगाना । ( गीता ६।२६ )

( २ ) जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ परमात्माको देखना ।

( ३ ) वाणी, श्वास, नाड़ी, कण्ठ और मन आदिमेंसे किसीके भी द्वारा अपने इष्टदेवके नामका श्रद्धा और प्रेमके साथ निष्कामभावसे निरन्तर जप करना ।

( ४ ) मनकी चञ्चलताका नाश होकर वह भगवान्में ही लग जाय—इसके लिये हृदयके सच्चे करुणाभावसे बार-बार भगवान्से प्रार्थना करना ।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारके अभ्यासके भेद हैं । अभ्याससे भी चित्त वशमें हो सकता है । चित्तनिरोधके लिये भी अभ्यास और वैराग्य ही प्रधान हैं ।

महर्षि श्रीपतञ्जलिजी कहते हैं—

**अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।**

( योगदर्शन १ । १२ )

'उन चित्तवृत्तियोंका निरोध अभ्यास और वैराग्यसे होता है ।'

**तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ।** ( योगदर्शन १ । १३ )

उन दोनोंमेंसे चित्तकी स्थिरताके लिये जो प्रयत्न करना है वह अभ्यास है ।

**स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ।**

( योगदर्शन १ । १४ )

'परंतु वह अभ्यास बहुत कालतक निरन्तर (लगातार) और आदरपूर्वक साङ्गोपाङ्ग सेवन किया जानेपर दृढ़ अवस्थावाला होता है ।'

अतएव मनुष्यको उचित है कि अपनी रुचि और विश्वासके अनुसार भक्ति, ज्ञान, योग, वैराग्य, सत्सङ्ग और स्वाध्याय आदि साधनोंका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे तत्परताके साथ प्राणपर्यन्त अभ्यास करे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मधुर

मधुर-प्रेम साम्राज्यमें विप्रलम्भ-रस परम मधुर उन्माद भावसे उच्छ्वसित है। प्रिय वियोगकी अनुभूति तन्मयताका एक बड़ा ही सुन्दर रूप है। श्रीराधाजी इस समय प्रियतम श्यामसुन्दरके वियोग-रसनिधिमें निमग्न हैं; अत: उनके तन-मनकी क्या दशा है—

**सूखकर काँटा हुआ तन**
**था बिकल बेहाल मन।**
**बाल बिखरे शुष्क थे**
**मुरझा हुआ था विधु-वदन॥**
**मुख निकलती आह थी,**
**थीं आँख आँसूसे भरी।**
**वसन अस्तव्यस्त थे,**
**थी दुख-लता पूरी हरी॥**

'शरीर सूखकर काँटा हो गया था, मन व्याकुल और व्यथित था, सिरके बाल सूखे और बिखरे हुए थे, चन्द्रमुख मुरझाया हुआ था, मुखसे वेदना-भरी आह निकल रही थी, आँखें आँसुओंसे भरी थीं और शरीरके कपड़े अस्त-व्यस्त थे। इस प्रकार उनके दु:खकी बेल पूर्णरूपसे लहलहा रही थी।'

वियोगदु:खिनी श्रीराधाको घेरे उनकी सखियाँ बैठी थीं और वे भाँति-भाँतिसे उन्हें आश्वासन दे रही थीं।

**सखी समझाने लगी,**
**तुम हो रही क्यों हो विकल?**
**भूल जाओ उसे अब**
**क्यों रट रही प्रत्येक पल?**

एक सखीने समझाते हुए कहा—'राधा! (जब वह नहीं आना चाहता तब) तुम उसके लिये इतनी व्याकुल क्यों हो रही हो? अब उसे भुला दो। क्यों प्रतिपल उसे रट रही हो?'

इसके उत्तरमें श्रीराधाजी बोलीं—

**भूल जाना चाहती हूँ,**
**भूल पर, सकती नहीं।**
**ज्यों हटाना चाहती मन,**
**दौड़कर जाता वहीं॥**
**नहीं लेना चाहती मैं**
**उस निठुरका नाम भी।**
**जीभ पर, रटती सदा,**
**नहिं मानती मेरी कभी॥**
**रोकती हूँ कानको,**
**पर वे न मेरी मानते।**
**प्रियवचन मुरली-सुधा ही**
**सिर्फ पीना जानते॥**
**बंद करती हूँ निगोड़ी**
**नासिकाको मैं सदा।**
**श्याम-अंग-सुगंधको,**
**पर, नहीं तजती वह कदा॥**

'सखी! मैं स्वयं भूल जाना चाहती हूँ, परंतु भूल सकती नहीं। मैं ज्यों-ज्यों मनको हटाना चाहती हूँ त्यों-ही-त्यों वह दौड़कर वहीं चला जाता है। मैं तो उस निष्ठुरका नाम भी नहीं लेना चाहती, परंतु जीभ मेरी बात कभी मानती ही नहीं, वह तो सदा उसका नाम रटती ही रहती है। मैं कानोंको भी रोकती हूँ पर वे भी मेरी नहीं मानते। (मानें कैसे?) वे तो केवल प्रियतमके वचनामृत और मुरलीकी स्वर-सुधाका पान करना ही जानते हैं। मैं सदा ही इस निगोड़ी नासिकाको बंद रखना चाहती हूँ, पर इसको श्यामसुन्दरकी अङ्ग-सुगन्धका ऐसा चसका लग गया है कि यह कभी उसे छोड़ती ही नहीं। यों मेरे मन-इन्द्रिय बरबस श्यामसुन्दरमें लगे रहते हैं, तब मैं निरुपाय क्या करूँ? (यही वास्तवमें प्रेम-भजनका स्वरूप है। मन-इन्द्रियोंको भजनमें लगाना नहीं पड़ता, वे हटाये ही नहीं हटते।) इतना कहते-कहते राधाजी और भी व्याकुल होकर बोलीं—

**कब चरणरज सिर चढ़ाकर**
**धन्य हूँगी मैं भ्रमर।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कब करूँगी नेत्र शीतल
　　निर्निमिष मुख देखकर ॥
कब लगाऊँगी अगर-
　　मृगमद-चुआ-चन्दन शरीर ।
कब चढ़ाऊँगी सुमन
　　सुरभित चरण, होकर अधीर ॥
फट रहा है हृदय मेरा
　　जल रही ज्वाला अमित ।
कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ?
　　पाऊँ कहाँ प्रियतम अजित ?॥

'सखी ! मैं प्रियतम श्यामसुन्दरकी चरण-रज सिर चढ़ाकर कब सदाके लिये धन्य होऊँगी ? कब मैं निर्निमेष नेत्रोंसे उनका मुखकमल देखकर जलते हुए नेत्रोंको शीतल करूँगी ? अगर-चन्दन-कस्तूरी-चोआ प्रियतमके शरीरपर कब लगाऊँगी और कब मैं सुगन्धित पुष्पोंको—अधीर होकर उनके श्रीचरणोंपर चढ़ाऊँगी ? हाय ! सखी ! मेरा हृदय फट रहा है, उसमें अपरिमित ज्वाला जल रही है । मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ? उन अजेय प्रियतमको कहाँ प्राप्त करूँ ?' इसी समय संयोग-( मिलन ) रसका उदय हुआ । और—

आ गये नटवर अचानक
　　लिये मुरली मधुर कर ।
वितरते आनन्द, छायी
　　मुसकराहट मृदु अधर ॥
देखते ही मिट गये
　　संताप तन-मनके सकल ।
सुख-सुधोदधि उमड़ आया
　　हो गया जीवन सफल ॥
ली तुरंत मधुर हृदयमें
　　मिली खोई निधि ललाम ।
सह न पायी तनिक-सा
　　अवकाश, भूली निरख श्याम ॥
हुई विस्मृति सकल
　　जगकी, 'मैं' तथा 'मेरा' गये ।
एक लीलामय मधुर
　　रस-रसिक रसनिधि रह गये ॥

अकस्मात् हाथमें मधुर मुरली लिये आनन्दवितरण करते हुए नटवर ( लीलामय नृत्यकुशल ) श्यामसुन्दर आ गये । उनके मृदु अधरोंपर मुस्कान छायी हुई थी । उन्हें देखते ही श्रीराधाके तन-मनके सारे संताप मिट गये । सुख-सुधाका समुद्र उमड़ पड़ा और जीवन सफल हो गया । श्रीराधाजीने अपनी खोयी हुई परम सुन्दर अमूल्य निधिको पाकर तुरंत ही उसे अपने मधुर हृदयमें छिपा लिया । वे श्यामसुन्दरको निरखते ही इतना भूल गयीं कि तनिक-सा अवकाश भी सहन नहीं कर सकीं । सारे जगत्‌की विस्मृति हो गयी । 'मैं' और 'मेरा'—दोनों चले गये । रह गये केवल एक लीलामय मधुर रस-रसिक रसनिधि श्रीश्यामसुन्दर !

'जय जय' !

## गोपियोंका ब्रह्मवाद

( उद्धवके प्रति )

सत-चित-आनँद-अमृत को महानद है,
　　मंजुल अतुल जोति-पुंज को बिलास है,
तम-तोम-तापी, पर ब्योम बीच ब्यापी और—
　　जग-अपलापी सब ही के सदा पास है ।
सीतल करत नित हीतल उपासिन के,
　　पीतल करत सुवरन अनायास है,
ऊधो ! चाहि चाहि जाहि अनिस अराधा करौ—
　　ब्रह्म वह राधा-नख-चंद को प्रकास है ।

—पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री 'राम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीरामनामाराधन-रहस्य

( लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज )

श्रीगोस्वामी तुलसीजीने बचपनसे ही श्रीरामनामाराधन किया है, इसीसे उन्हें सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है; यह उन्होंने बार-बार शपथपूर्वक कहा है—

संकर साखि जो राखि कहउँ कछु तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो रामनामहि ते तुलसिहि समुझि परो ॥'

( विनय-पत्रिका २२६ )

रामकी सपथ सरबस मेरे राम नाम ।
कामधेनु कामतरु मो से छीन-छाम को ॥

( कवितावली उत्तर० १७८ )

इस निष्ठाका आपने आजन्म निर्वाह किया है। यह बात श्रीरामजीके नित्यधामकी भरी सभामें स्वीकृत की गयी है। यथा—

कलिकालहुँ नाथ नाम सो प्रतीति-प्रीति एक किंकरकी निबही है ।
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है··· बिहँसि राम कह्यो सत्य है··· ॥

( विनय-पत्रिका २७९ )

श्रीराम-नाम-निष्ठासे प्रकाश पाकर ही आपने रामचरितमानस एवं विनय-पत्रिका आदि द्वादश ग्रन्थोंका प्रणयन किया है; यथा—

राम-नामको प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी सो जग मनियत महामुनी सो ॥

( कवितावली उत्तर० ७२ )

जानहिं सिय रघुनाथ भरतको सील-सनेह महा है ।
कै तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम-नेम निबहा है ॥

( गीतावली अयो० ६४ )

इन प्रमाणोंसे श्रीगोस्वामीजीने नाम-निष्ठासे नाम-रहस्य जानकर एवं स्वयं अनुभव करके जो लिखा है, वह सभीके लिये परम हितकर है। अतएव अवश्य अनुकरण करने योग्य है। अतः उन्हींके वचनोंके विवरण लिखता हूँ—

राम-राम रमु, राम-राम जपु, राम-राम रटु जीहा ।
राम नाम नव नेह मेहको, मन ! हठि होहि पपीहा ॥
सब साधन फल कूप सरित सर सागर सलिल निरासा ।
राम-नाम रति स्वाति सुधा सुभ-सीकर [illegible] ॥
गरज तरज पाषान परुष पबि, प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक-अधिक अनुराग उमँग उर, पर परिमिति पहिचानै ॥
राम नाम गति, रामनाम मति, राम-नाम अनुरागी ।
ह्वै गये, हैं, जे होहिंगे, तेइ त्रिभुवन गनियत बड़भागी ॥
एक अंग मग अगम गवन करि बिलमु न छन-छन छाहैं ।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहैं ॥

( विनय-पत्रिका ६५ )

ऐ जीभ ! तू सदा 'राम, राम' ( इस नाम ) में रमण किया कर, 'राम, राम' ( इस नाम ) का जप किया कर और इसी 'राम, राम' को रटा कर तथा हे मन ! तू भी इस श्रीराम-नामके स्नेहरूपी नित्य नवीन मेघके प्रति हठपूर्वक चातक बन जा। जैसे चातक कुआँ, नदी, तालाब और समुद्र आदिके जलकी आशा न करके केवल स्वाती नक्षत्रके जलकी एक बूँदके लिये प्रेमपूर्वक प्यासा रहता है, ऐसे ही तू भी अन्य सारे साधनों एवं उनके फलोंकी आशा छोड़कर केवल श्रीरामनामके स्नेहरूपी स्वातीके जलकी एक बूँदके लिये ही प्रीति कर। चातकपर मेघ गरजता है, घोर शब्द करके डाँटता है, निष्ठुर होकर पत्थर ( ओले ) बरसाता है और फिर वज्र ( बिजली ) भी गिराता है; मेघके इस प्रकारके कठिन-कठिन बर्तावोंपर चातक हृदयमें यही जानता है कि स्वामी मेघ मेरे प्रेमकी परीक्षा कर रहे हैं; इससे उसके हृदयमें अधिक-अधिक अनुरागके उमंगकी वृद्धि होती है। इसपर मेघ विचारता है कि मैं ज्यों-ज्यों इसकी कड़ी-से-कड़ी परीक्षा लेता हूँ, त्यों-त्यों इसके अनुरागकी उमंग अधिक-अधिक होती जाती है, ( इस प्रकार परीक्षा करके ) तब वह मेघ चातकके प्रेमकी पराकाष्ठाको पहचान लेता है। ( तब अन्तमें उसे स्वातीकी बूँद मिलती ही है। ) इसी प्रकार ( श्रीरामजीकी ओरसे तेरे दुष्कर्मोंके अनुसार भाँति-भाँतिके संकट आकर तुझे इस निष्ठामें बाधक हों, पर ) तू श्रीराम-नामकी ही शरण ग्रहण कर, श्रीरामनाममें ही बुद्धि लगा और श्रीराम-नाममें ही अनुराग कर। इस प्रकारके श्रीरामनामके अनुरागी जितने भक्त हो गये हैं, जितने हैं और जितने अभी आगे होंगे; तीनों लोकोंमें उन्हींको भाग्यवान् समझना चाहिये। ( श्रीरामनामके [illegible] ) इस दुर्गम एकाङ्गी मार्गमें गमन करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू अब भाँति-भाँतिके वृक्षोंकी छाया-(के समान भाँति-भाँतिके सांसारिक क्षणिक सुखों) में क्षण-क्षण, ठहर-ठहरकर विलम्ब न कर। हे तुलसीदास! तेरा अपना हित तो अपनी ओरसे श्रीरामनाममें निष्कपट प्रेमका निर्वाह करनेमें ही होगा।

विशेष—'राम राम रमु……'—यहाँ 'रमु, जपु, रटु' तीन प्रकारकी जापककी अवस्थाओंके अनुसार कहे गये हैं; यथा—

> **चातकानां चकोराणां मयूराणां तथा शुभम्।**
> **लक्षणं दोषनिर्मुक्तं धार्यं श्रीरामनामतत्परैः॥**
>
> (सुदर्शनसंहिता)

अर्थात् मोरकी-सी मधुर वाणीसे कीर्त्तन करे, चकोरकी भाँति प्रेमपूर्वक ध्यान लगावे और पपीहेके समान सदा एकरस नियमका निर्वाह करे—श्रीरामनामके जापकोंको ऐसे शुद्ध लक्षण धारण करने चाहिये।

आराधन-क्रम इस प्रकार है कि प्रथम चातकके समान नवधा भक्ति करते हुए नामका वैखरी वाणीसे रटन करना चाहिये। आगे दो चरणोंमें चातकवृत्ति कुछ कही गयी है। श्रीरामनाम-रटनसे पापोंका नाश होगा, तब चकोरके समान पवित्र प्रेम श्रीरामजीमें होनेसे मध्यमावाणीसे प्रेमलक्षणाभक्तिके साथ जप होने लगेगा। प्रेमका बाधक पाप है और उस पापका नाशक धर्ममय राम नाम है—

> एकहि एक सिखावत जपत न आप।
> तुलसी राम प्रेम कर बाधक पाप॥
>
> (बरवै रामा० ६४)

> पावन प्रेम राम चरन जनम लाभ परम।
> राम नाम लेत होत सुलभ सकल धरम॥
>
> (विनय-पत्रिका १३१)

> जथा भूमि सब बीजमय, नखत-निवास अकास।
> राम नाम सब धरम मय, जानत तुलसीदास॥
>
> (दोहावली २९)

जैसे भूमिमें बीज पहले देखनेमें नहीं आते, वैसे राम-नामके अर्थोंमें सभी धर्मोंके बीज हैं, सहसा देखनेमें नहीं आते। पर रटनरूपी वृष्टिसे सब लहलहा उठते हैं और फिर उनके फलरूप वैराग्य-विवेक आदि गुण हृदयाकाशमें नक्षत्रोंके समान सुशोभित हो उठते हैं—गीता ७।२१-२२ की रीतिसे नाम-कल्पतरुसे सब प्राप्त होते हैं। वैराग्यसे चित्त शुद्ध होनेपर विवेकसे अंशी प्रभुमें प्रेम होता है।

फिर शुद्ध प्रेमपूर्वक जप होनेपर पश्यन्ती वाणीके द्वारा मोरके अनुरागकी भाँति 'जपमें पराभक्तिकी दशामें जपमें निमग्नतापर रमण होता है।

इस प्रकार यहाँ तीनों भक्तियोंके साथ नामाराधनके लक्ष्यपर 'रटु, जपु, रमु' ये कहे गये हैं। जप या रटनमें वाणी और मनका योग रहता है। कर्मसे नवधा आदि भक्तियाँ भी करनी चाहिये। मनसे मन्त्रार्थका मनन करते हुए मध्यमा वाणीसे जप होता है; यथा—

> **मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः।**
> **फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः॥**
>
> (रामपूर्वतापनीय १।२१)

अर्थात् मन्त्र वाचक है। रामजी वाच्य हैं। दोनोंका योग होनेपर जप फलीभूत होता है।

'राम नाम नव नेह मेह को……'

चातकके समान हठपूर्वक प्रेम-नियमका निर्वाह तीनों भक्तियोंमें चाहिये; इसलिये प्रथम तीनोंकी आराधनवृत्ति कहकर तब उनके साथ मनको चातक होना कहा है। चातककी स्नेहवृत्ति—

> 'जौ घन बरसै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
> तुलसी या चित चातकहि, तऊ तिहारी आस॥
> चातक तुलसी के मते, स्वातिहु पिअइ न पानि।
> प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी कानि॥
>
> (दोहावली २७८-२७९)

इसमें प्रथम दोहेमें 'अनैराश्य' गुण कहा गया है। स्वामीकी उदासीनतापर भी नित्य नया प्रेम बढ़ाते रहना चाहिये। यथा—

> जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ।
> जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
> चातक रटनि घटे घटि जाई।
> बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई॥
>
> (रामचरितमानस अयो० २०५)

दूसरे दोहेमें दिखाया कि चातक यदि स्वातीका जल पी लेगा तो उसकी प्यास कुछ क्षणोंके लिये कम जायगी, पर प्रेमरूपी प्यासका तो बढ़ना ही अच्छा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः प्रेम-मार्गमें स्वामीसे कभी कुछ भी पानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। यथा—

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह ।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह ॥
( रामचरितमानस अयो० १३१ )

'सब साधन फल कूप…' ।

साधन—कर्म, ज्ञान, उपासना—ये काण्डत्रय प्रधान-प्रधान हैं, इनमें प्रत्येकके बहुत भेद हैं। उपासनामें नाम-जप जहाँ साथ है, वहाँ तो नामाराधन ही है। इन सब साधनोंके फल तो नामाराधनमें स्वतः जापकको प्राप्त होते रहते हैं, वह इनकी इच्छा क्यों करे ? यथा—

भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम नाम-आधीन साधन अनेकं
तेन तप्तं, हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं ।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिसमनवद्यमवलोक्य कालं ॥
( विनय-पत्रिका ४६ )

इससे नामजापक इन साधनों एवं इनके फलोंको उसी भाँति नहीं चाहता जिस भाँति चातक कूप, सरित आदिके जलोंको। चातक स्वातीके एक बूँद जलपर भी संतोष कर लेता है, पर अन्य जलोंकी राशि भी नहीं चाहता। वैसे अन्य साधनोंसे चाहे कितने भी अधिक फल क्यों न देखे-सुने जायँ, पर नाम-जापकको उनकी ओर नहीं ताकना चाहिये। यहाँ अनन्यता कही गयी।

'गरज तरज पाषान परुष…'

—अपने प्रिय स्वामीके अपने प्रति प्रतिकूल बर्तावोंपर भी जापकके हृदयमें दोष-दृष्टि नहीं होनी चाहिये, प्रत्युत उनमें गुणकी ही भावना रहनी चाहिये; यथा—

चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की, ताते नाप न जोष ॥
बरषि परुष पाहन पयद, पंख करहु टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिये, चतुर चातकहि चूक ॥
उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ॥
पबि पाहन दामिनि गरज, झरि झकोर खरि खीझि ।
रोष न प्रीतम दोष लखि, तुलसी रागहि रीझि ॥
( दोहावली २८१–२८४ )

इस चरणके भाव इन उद्धृत दोहोंसे स्पष्ट हो गये हैं।

प्रेमी भक्तोंको अपने इष्टके द्वारा होनेवाले भारी-भारी कष्टोंपर भी उनका परीक्षा लेना ही समझना चाहिये कि स्वामी इस भाँति मेरी निष्ठा दृढ़कर मुझे बड़ाई देना चाहते हैं। अतः मुझे इसमें खरा उतरना चाहिये। चातक इन गुणोंमें आदर्श है।

इसपर एक कथा है—श्रीरामानुजाचार्यके एक संत मित्र थे। उन्होंने एक दिन श्रीआचार्यचरणसे पूछा कि 'सच्चे संतके लक्षण कहिये'। श्रीरामानुजाचार्यने सोचा कि यदि मैं कह दूँ कि 'जैसे आप हैं, ऐसे ही सच्चे संत होते हैं'— तो ये प्रशंसामात्र मानेंगे। इससे उन्होंने इन्हें अपने एक मित्रके यहाँ भेजा कि वे आपके इस प्रश्नका अच्छा उत्तर देंगे। वहाँ जानेपर इनका बहुत सम्मान होने लगा। पर ये नित्य अपना प्रश्न ही पूछते थे। फिर धीरे-धीरे अपमान भी बहुत हुआ। पर ये एकरस रहे और वैसे ही प्रेमसे नित्य प्रश्नोत्तर ही चाहते रहे। अन्तमें उन्होंने यही उत्तर दिया—'**त्वद्बद्बकवल्लवणवत्**' अर्थात् आपके समान, बगुलाके समान और लवणके समान ही सच्चे संत होते हैं। जैसे बगुला शरीरसे कहीं चलता है, पर उसका ध्यान अपने आहार मछलीपर ही रहता है। वैसे ही आपने अपने प्रश्नपर ही ध्यान एकरस रक्खा है, शरीरके मानापमानपर नहीं। लवण गल जानेपर भी अपना खार-स्वभाव नहीं छोड़ता, वैसे ही अपने अत्यन्त अपमानित होनेपर भी आपने वास्तविक लक्ष्यपर ही एकरस प्रेम रक्खा है। मेरे कुकृत्योंको शरीर-सम्बन्धी मानकर ध्यान नहीं दिया, यही संत-लक्षण है। भक्तोंके जो भी सुख-दुःख आते हैं, वे कर्मानुसार हैं और उनका सम्बन्ध शरीरसे ही है। जीवात्मा तो ईश्वरका अंश होनेसे उसका नित्य सेवक है। अतएव ईश्वर-प्रेमपर ही इसका लक्ष्य रहना चाहिये। दुःखोंपर यदि निष्ठा कम हुई तो यही परीक्षामें असफल होना है।

जैसे गोपियाँ भगवान्‌के प्रेम-विरहमें व्याकुल होती थीं और उधरसे श्रीकृष्णने ( भक्त उद्धवको प्रेम-शिक्षा दिलानेके लिये ) जो संदेश भेजा था, वह जलेमें नमक छिड़कनेके समान था, पर गोपियोंने उसपर यही निर्णय दिया है—

सखि सरोष प्रिय दोष बिचारत प्रेम पीन पन छीजै।
खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनौ पसीजै॥
ऊधो परम हितू, हित सिखवत, परमिति पहुँचि पतीजै।
तुलसिदास अपराध आपनो नंदलाल बिनु जीजै॥
( कृष्णगीतावली ४५ )

'राम नाम गति'—श्रीरामनामको ही एकमात्र आश्रय समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसीपर निर्भर रहना, रामनामको गति मानना है; यथा—

राम नाम ही सों जोग-छेम नेम प्रेम पन।
सुधा सों भरोसो यह दूसरो जहरु ॥
राम ! नाम को प्रताप जानियत नीके आप।
मो को गति दूसरी न बिधि निरमई ॥

( विनय-पत्रिका २५०। २५२ )

'राम नाम मति'—बुद्धिसे श्रीरामनाममें सब सम्बन्ध मान लुभाया रहना; यथा—

राम नाम मातु-पितु स्वामि समरथ, हितु,
आस राम नाम की भरोसो राम नाम को।
प्रेम राम नाम ही सों, नेम राम नाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को ॥
स्वारथ सकल परमारथ को राम नाम,
राम नाम हीन तुलसी न काहू काम को।
राम की सपथ, सरबस मेरे राम नाम,
कामधेनु-कामतरु मो से छीन-छाम को ॥

( कवितावली उत्तर० १७८ )

'रामनाम अनुरागी'—प्रेमकी गाढ़ स्मृति अनुराग कहाती है। जैसे कोई रंगीन परदा आँखके समक्ष रहनेपर उससे बाहरकी वस्तुएँ उसी रंगकी देख पड़ती हैं; वैसे ही राम-नाममें अनुराग रहनेपर सर्वत्र रामनामका ही प्रभाव देख पड़ता है; यथा—

करम उपासन ज्ञान बेद मत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो ॥

( विनय-पत्रिका २२६ )

इस पूरे पदमें रामनाममें भरोसा कह उसीके कल्पतरु स्वभावसे अपनेमें काण्डत्रयकी सिद्धि दिखायी गयी है कि मुझे तो इसीसे कर्म, उपासना और ज्ञानकी सिद्धियाँ हो गयीं। इससे मैंने अन्य उपायोंकी ओरसे आँख मूँद ली है। जैसे श्रावणका अंधा सब दिन हरियाली ही देखता है, वैसे ही मुझे रामनाममें ही सारी हरियाली दीख रही है। इसी पदमें आगेके तीन चरणोंमें तीनोंकी सिद्ध दशाएँ भी अपनेमें कही है।

'है गये, हैं; जे होहिंगे'···—जो मन और अहंकारसे रामनामको गति मानते, बुद्धिसे रामनामहीमें सम्बन्ध विचारते और चित्तसे रामनाम-अनुरागी हैं, वे ही अन्तः-करणचतुष्टयसे रामनाम-नैष्ठिक ही तीनों लोकों और तीनों कालोंमें बड़े भाग्यवान् हैं; अतएव—

'एक अंग मग अगम'···'—एकाङ्गी प्रीतिका मार्ग अगम है। चातक, मीन, मृग, सर्प, पतङ्ग और कमल आदि अपनी ओरसे प्रीति निबाहते हैं, प्रीतमके प्रतिकूल बर्तावोंपर भी दृष्टि नहीं देते। निष्ठुरके साथ प्रीति करना अगम मार्ग है। एकाङ्गी प्रीतिका वर्णन; यथा—

ऐसे हौं हुँ जानति भृंग।
नाहिं नैं काहू लह्यो सुख प्रीति करि इक अंग ॥
ऊधो। प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुखदीन।···
निठुरता अरु नेहकी गति कठिन परति कही न।
दास तुलसी सोच नित निज नेह जानि मलीन ॥

( कृष्णगीतावली ५४-५५ )

—इन पूरे पदोंको देखिये।

इसी प्रकार जापकको नाममें अपनी ओरसे प्रीतिपूर्वक दृढ़ नियम रखना चाहिये। चाहे भजनसे कुछ लाभ प्रतीत हो और चाहे नहीं, निष्काम भावसे भजन करते रहना चाहिये।

'बिलमु न छन-छन छाँहँ'—नाम-जप करते समय बहुत-से सांसारिक सुख ऐसे भी प्रारब्धानुसार आ जाते हैं; उनमें आसक्त होकर उनके प्रलोभनमें जितना समय व्यर्थ जाता है, वह नाम-जपमें विघ्न होता है, यही क्षण-क्षण छायामें बैठना है। ऐसे ही कहीं-कहीं ऋद्धि-सिद्धियोंकी बाधाएँ आ जाती हैं। उनमें आसक्त होना भी क्षणिक सुखमें आसक्त होकर नामाराधन-मार्गमें विघ्न है। 'तुलसी हित अपनो'···'अपना हित अपनी ही ओरसे निष्कपट ( स्वार्थ-वासनारहित ) नियम निबाहनेमें है। यथा—

एक अंग जो सनेहता, निसिदिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै, ओहि अहार ओ देह ॥

( दोहावली ३१२ )

चातकका रात-दिन ( नित्य ) का जो स्नेह है, वही एकाङ्गी स्नेहवृत्ति है। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि इस वृत्तिमें जिससे जिसका प्रेम लग जाता है, वही उसका आहार है और वही उसका शरीर है; अर्थात् वह उसीकी स्मृतिसे जीता रहता है और उसीके शरीरमें तन्मय रहता है।

इस एकाङ्गी प्रेममें यह जाननेकी आकाङ्क्षा रहती है कि इसका शरीर-निर्वाह कैसे होता है। उसपर कहा गया है कि इष्टदेव ही आहार रहता है, यह उसीकी स्मृतिमें खाने-पीनेपर भी ध्यान न देकर उसीके नाम-रूपमें आनन्द मानता हुआ सुखी रहता है। उसकी सत्य निष्ठापर सर्वान्तर्यामी परमात्मा उसके इष्ट-रूपसे आहार भी देता ही है—यह 'ओहि अहार'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भाव है और जो जिसमें श्रद्धावान् होता है, वह उसीमें तन्मय हो जानेसे वही रूप हो जाता है; यथा—

**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।**

( गीता १७ । ३ )

यही 'ओ देह'का भाव है । इसी पूर्ण निष्ठासे जापक कृतार्थ होता है । इसीमें इसका हित है; किंतु इसमें एक परमावश्यक बात साथ ही कहते हैं—'निरुपधि नेम निबाहे'—प्रेम-मार्गमें स्वार्थ ही कपट ( छल ) है; यथा—

सहज सनेह स्वामि सेवकाई । स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥

( रामचरितमानस अयो० ३०० )

अर्थात् स्वाभाविक स्नेहसे स्वामीकी सेवामें चार फल-तकका स्वार्थ नहीं चाहिये । इसका निर्वाह होनेपर स्वामीकी ओरसे अवश्य इसका कल्याण होता है, जैसे चातकके प्रसङ्गमें भी कहा गया है—'चातक अद्वितीय अनन्य याचक है और मेघ अद्वितीय दाता है । चातककी माँगपर मेघ पृथिवीरूपी पात्र ( के सर-सरिता आदि ) को चार महीने वर्षा करके पूर्ण भर देता है । फिर भी चातक अन्तमें स्वातीका एक घूँट पानी पीता है, वह भी अपने स्नेही मेघका प्रण जोगाने ( रखने ) के लिये—दोहावली २८४,३०७ अन्यथा भक्त कुछ भी भक्तिसे अन्य पदार्थ नहीं चाहते । इस प्रकार निष्काम जापककी शुद्ध निष्ठापर भगवान् गीता ७ । २१-२२ के प्रतिज्ञानुसार इसका हित करते हैं । नैष्ठिक भक्त भगवान्को ही प्राप्त होते हैं और फिर वे संसारमें नहीं आते—गीता ७ । २३ तथा ८ । १५-१६ देखिये ।

भगवद्धाममें यह भक्त नित्य परिकर ( सेवक ) होकर ब्रह्मके साथ दिव्य सुख पाता रहता है—

**सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ।**

( तैत्ति० २ । १ )

वह ( मुक्तात्मा ) विज्ञानस्वरूप ब्रह्मके साथ सब भोगोंका अनुभव करता है ।

# मनुका आदर्श शासनविधान

( लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

शास्त्रोंमें मनुको परमात्मरूप तथा पूर्ण सर्वज्ञ कहा गया है—

**एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।**
**इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥**

( मनुस्मृति १२ । १२३ )

**यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।**
**स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥**

( योगियाज्ञवल्क्यस्मृति १२ । २०, मनुस्मृति २ । ७ )

वेद भी मनुके उपदेशोंको मानव-जातिके लिये 'परम भेषज' कहते हैं—

**मनुर्वै यत् किंचिदवदत् तद् भेषजं भेषजतायाः**
( तै० सं० २ । २ । १० । २, काठक० ११ । ५, ताण्ड्य० २३ । १६ । ६, मैत्रायणी० २ । १ । ५ )

ऋग्वेद १ । ८० । १६ तथा १ । ४५ । १ आदिमें इन्हें देव-मनुष्यादि समस्त प्रजावर्गका पिता कहा गया है । मनुष्य-वाची मनुज, मानव, मानुष, माणव आदि जितने भी शब्द हैं, उनका मूल यह 'मनु' शब्द ही है ।[1] अंग्रेजीके मैन ( Man ) ह्यूमन ( Human ), जर्मनभाषाके Mann, फ्रेंचके ह्यूमें Man, लैटिनके Mas आदि सभी शब्दोंका आधार भी यही है । अतः मनुष्य-जातिमात्रको ही इनका उपदेश जानकर अपनी मनुष्यता सफल करनी चाहिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुका ज्ञान दिव्य, सर्वथा ठीक तथा सर्वथा कल्याणकारी है । जिस अनागत, अतीत या अतीन्द्रिय व्यवहित, विप्रकृष्ट तत्त्वका मनुने वर्णन किया है, वह मनुष्यके सामने आती है, इसमें कोई संदेह नहीं । इसीलिये भगवान् राम[2]-कृष्ण तथा याज्ञवल्क्यादि प्रायः साठ स्मृतिकार ऋषिगण, वाल्मीकि, व्यास, शुकदेव, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, शबरस्वामी, कुमारिलभट्ट आदि सभी दार्शनिक

१—मनोर्जातवञ्यतौ षुक् च ( ४ । १ । १६१ )

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः ।
नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः ॥

२—वाल्मी० रामायण, किष्किन्धाकाण्डमें भगवान् रामने नामोल्लेखपूर्वक मनुस्मृतिके ८ । ३१६, ३१८ इन दो श्लोकोंका हवाला दिया है । श्लोक इस प्रकार हैं—श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्र्यवत्सलौ ।' आदि ( किष्कि० १८ । ३०—३२ ) ।

३—गीता १६ । २३-२४; १७ । ५; १० । ६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य, साधु-संत महात्मा इन्हें परम प्रमाण मानते हुए समादृत करते हैं।[४] महाभारतमें मनुस्मृतिके बहुत-से श्लोक नामोल्लेखपूर्वक आये हैं। अग्निपुराणका १६२ वाँ अध्याय मनुस्मृतिका सारांश है तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणके तीसरे भागमें एवं भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें प्रायः मनुस्मृतिका बहुत बड़ा लम्बा अंश ज्यों-का-त्यों प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण तथा अन्यान्य पुराणोंमें भी इसका उल्लेख है। वामनपुराण १२। ४८ का कथन है कि मनुस्मृति सबमें प्रधान है—

**मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैव तिथीषु दर्शो विबुधेषु वासवः।**

बहुत लोगोंको यह भ्रम रहा कि मनुस्मृतिसे पहले कोई 'मानवधर्मसूत्र' भी था। पर यह निरा भ्रम ही है, क्योंकि उसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें **'मानवं चेमं श्लोकमुदाहरन्ति'** कहकर २।४।१ तथा २।१६।१ में मनुस्मृतिके ही श्लोकोंको उपन्यस्त किया गया है। इसी तरह उसके १।६।१५ में भी 'उदाहरन्ति' कहकर मनुस्मृति ८।३१।७ को उद्धृत किया गया है। इसी तरह 'वसिष्ठधर्मसूत्र'में कई स्थल हैं। केवल तीसरे अध्यायमें ही **'मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति'** कहकर एक साथ ही १३ श्लोक दिये गये हैं, जो आज भी मनुस्मृतिमें क्रमशः २।१६८ (वशि० ३।३); १२।१३–१५ (वशिष्ठ ३।६—८) आदि संख्याओंपर हैं। निरुक्त (३।४।१), विष्णुधर्मसूत्र, गौतम, बौधायनधर्मसूत्रोंमें भी इस प्रकारका उल्लेख है। महा० अनु० १९।६ में मनुको 'मानवगृह्य-सूत्रकार' रूपमें स्मरण किया है, धर्मसूत्रकारके रूपमें नहीं। या सूत्र-शब्द उनको मनुके अनुष्टुप् श्लोक ही दृष्ट हैं।

## मनुस्मृतिका प्रचार-प्रसार

किसी समय मनुस्मृतिका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार था।[५] जावा, सुमात्रा, चीन, जापान, फिलिपाइन, मलाया, स्याम, कम्बोडिया, चम्पा, इण्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया, ईरान, बेबीलन, सीरिया, पैलेस्टाइन, रोम आदिमें मनुस्मृतिके प्रचलित रहनेके प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। कम्बोडियाके आइनकोसीके शिलालेखमें मनुस्मृतिका २।१३६ वाँ श्लोक खुदा हुआ है। इण्डोनेशियामें एक 'कुटरमानव' ग्रन्थ है। डच विद्वान् जोंकर (Jonker) ने इसका मनुस्मृतिके साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हुए एक पुस्तक लिखकर इसकी मनुस्मृति-मूलकता सिद्ध की है। फ्रांसीसी विद्वान् रेनेगेनोने अपनी कई पुस्तकोंमें मनुस्मृतिकी व्यापकता दिखलायी है। ये फ्रांसीसी होते हुए भी मनुसे प्रभावित होकर सनातनी हिंदू हो गये थे। इनका अब एक छोटा-मोटा फ्रांसीसी सम्प्रदाय ही चल गया है। तदनुसार बहुत-से फ्रेंच विद्वानोंकी हिंदूधर्ममें निष्ठा हो गयी है। जर्मन विद्वान् नित्शे तथा थियॉसफी सम्प्रदायकी संस्थापिका मैडेम ब्लैवेटस्की भी मनुसे प्रभावित थे। बाली द्वीपमें मनुस्मृति अब भी एक समादृत ग्रन्थ है।

## मनुस्मृतिकी टीकाएँ

सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ होनेके कारण मनुस्मृतिकी टीकाओंकी संख्याकी सीमा नहीं है। इसपर असहाय, उदयन, उदयकर्ण, उपाध्याय, धरणीधर, कृष्णनाथ, भागुरि, भारुचि, यज्वा, रामचन्द्र, रुचिदत्त, देवस्वामी, भर्तृयज्ञ आदिकी प्राचीन टीकाएँ थीं। १४ वीं शताब्दीके मनुवृत्तिटीकाकार कुल्लूकभट्टने मेधातिथि, धरणीधर, गोविन्दराज आदिकी टीकाएँ देखी थीं और अपनी टीकाके अन्तमें इनका उल्लेख किया है। Royal Asiatic Society Bengal से प्रकाशित मनुटीकासंग्रहमें मेधातिथि, गोविन्दराज, राघवानन्द, नारायणसर्वज्ञ, नन्दन तथा एक किसी अज्ञात टीकाका अंश संगृहीत है। मण्डलीकके संस्करणमें कुल्लूकभट्ट-सहित प्रायः पूर्वोक्त ५ टीकाएँ सम्पूर्णतः प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त कुल्लूकभट्टने ९ वें अध्यायमें भोजदेवके विवरणका भी उल्लेख किया है। श्रीभट्टोजि दीक्षित १५ वीं शताब्दीमें थे। इन्होंने अपने 'चतुर्विंशतिमत' संग्रहमें कुल्लूकका उल्लेख किया है, अतः इनका समय १४ वीं शताब्दी है। इन्होंने गोविन्दराज, धरणीधर आदिका उल्लेख किया है। अतः ये १२-१३ वीं शताब्दीके रहे होंगे। मेधातिथि ९ वीं शतीसे पूर्वके हैं। नारायण सर्वज्ञका समय १६ वीं शती है। इसके अतिरिक्त मणिराम दीक्षितकी एक सुखबोधिनी टीकाका भी पता लगता है। इनमेंसे कुछ तो हस्तलिखितरूपमें केवल संग्रहालयोंमें ही उपलब्ध हैं।[७] इस तरह इन महामहिम विद्वानोंके ज्ञानसे

---

४–तन्त्रवार्तिक (कुमारिल), वेदान्तसूत्र-शांकरभाष्य, रामानुज-श्रीभाष्य आदिमें बार-बार मनुस्मृतिके प्रशंसायुक्त सादर उद्धरण दिये गये हैं।

५. The Unknown Life of Jesus Christ (Lutovies)

६. इनका उल्लेख विवादरत्नाकरमें किया गया है।

७. Proceedings and Transactions of All-India Oriental Conferance. XII session, p. 352.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम वञ्चित हो रहे हैं। खेद है आज बलात् अपने नाम-ख्यापनके लिये अपनी पुस्तकोंके प्रकाशनके लिये लोग बेतरह जुट पड़े हैं। बहुत-से लोग तो बड़े भयानक पतनोन्मुख साहित्यका निर्माण कर रहे हैं। यह केवल देश एवं जनताका दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है। विचारवान् समर्थ प्रकाशकोंको इधर ध्यान देना चाहिये।

## मनुस्मृति किसकी रचना ?

मनु १४ हुए हैं। मनुस्मृतिको कोई वैवस्वत मनुकी तो कोई किसी मनुकी रचना बतलाते हैं ( द्रष्टव्य 'सिद्धान्त' वर्ष १५ । १; 'कल्याण' वर्ष २१ अङ्क १२ )। पर वास्तवमें मनुस्मृति आद्य मनु स्वायम्भुवकी ही रची हुई है। इसके निम्नलिखित प्रमाण हैं—

१. स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ।
( मनुस्मृति १ । १०२ )

२. स्वायम्भुवस्यास्य मनोः । ( मनुस्मृ० १ । ६१ )

३. अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः ।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥
( निरुक्त० ३ । १ । ४ )

मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् । ( मनुस्मृति ६ । ५४; ८ । १२४; ८ । १५८; महाभारत १ । ७३ । ९; शान्तिपर्व ३६।५; १३९ । १०३ )

४. यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधाञ् शुभान् ।
... ... ... ।
एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ॥
( भागवत ३ । २२ । ३८-३९ )

५. मनुस्मृति तथा भागवतके सभी टीकाकार भी इसीका समर्थन करते हैं।

६—याज्ञवल्क्यस्मृतिकी 'बालक्रीडा' व्याख्याके रचयिता श्रीविश्वरूप याज्ञ०स्मृ० २ । ७३-७४, ८३, ८५ पर स्वायम्भुव-मनु कहकर मनुस्मृतिके ८ । ६८, ७०-७१, १०५-६, ३८० श्लोकोंको उद्धृत करते हैं। महाभारत, आदिपर्व ७३ । ८-९ में मनुस्मृतिके ( ३ । २१ )—

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः ॥

—इस श्लोकको उद्धृतकर कहा गया है—

तेषां धर्मान् यथापूर्वं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।

नारदीय मनुसंहिता भी [illegible]

आधारित है। किसी अन्य मनुद्वारा ग्रंथप्रणयनकी बात नहीं मिलती।

## मनुस्मृतिरचयिता या स्मृतिसर्ता ?

कुछ लोग स्मृति-शब्द देखकर मनुको 'स्मृतिसर्ता' कहना चाहते हैं; पर यह ठीक नहीं। मीमांसादर्शनके 'स्मृति-अधिकरण' तथा वेदापौरुषेयत्व-अधिकरणपर इसका विचार चला है। वेद अपौरुषेय होनेसे ब्रह्मा आदिद्वारा स्मृत कहे जाते हैं—

न कश्चिद् वेदकर्ता स्याद् वेदस्मर्ता स्वयम्भुवः ।
( पराशरस्मृति १ । १६ )

ब्रह्मा आदि उनके स्मर्ता हैं, कर्ता या रचयिता नहीं—

स्वयम्भूरेव भगवान् वेदो गीतः स्वयम्भुवा ।
शिवाद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मर्तारोऽस्य न कारकाः ॥

'उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्' ( मीमांसादर्शन १ । १ । २९ )

—आदिमें यह स्पष्ट है। भट्ट कुमारिल भी कहते हैं—

न पुनः स्वातन्त्र्येण कश्चिदपि प्रथमोऽध्येता वेदानामादि यः कर्ता स्यात् । तस्मात्कर्तृस्मरणाभावादपौरुषेया वेदा इति भावः ॥

( उसीका तन्त्रवार्तिक )

न चेयं विप्रतिपत्तिर्बहुरूपा परम्परया वेदकर्तारि मन्वादिवत्स्मर्यमाणे कथंचिदवकल्पते। न हि मानवे, भारते, शाक्यग्रन्थे वा कर्मविशेषं प्रति कश्चिद्विवदते ॥
( मीमांसाभूमिका पृष्ठ १८ )

शबरस्वामीने अपने मीमांसाभाष्योंमें तथा भट्ट सोमेश्वरने तन्त्रवार्तिककी न्यायसुधा-व्याख्यामें इसे विस्तारसे स्पष्ट किया है।

स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ।
( मनु० १ । १०२ )

'इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ' ( मनु० १ । ५८ )

तथा प्रायः सभी स्मृतियों एवं निबन्धग्रन्थोंमें आये 'स्मृतिकार' शब्द भी इसीके समर्थक हैं।

अम्बालासे प्रकाशित आङ्गिरसस्मृतिके १२९ पृष्ठपर स्मृतिकी परिभाषा यों दी है—

भूतस्य भाविनो ज्ञानं स्मृतिरित्युच्यते बुधैः ।
शब्दसूत्रनिबद्धं तत्स्मृतिशास्त्रं प्रचक्षते ॥

कुमारिल भट्टकी परिभाषा है—

पूर्वविज्ञानविषयं विज्ञानं स्मृतिरुच्यते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर, शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्यादि कोष 'वेदार्थ-स्मरणान्निर्मितो ग्रन्थः स्मृतिः' कहते हैं। इसलिये मनुस्मृतिके प्रणेता, निर्माता, कर्ता या रचयिता कहे जाते हैं, न कि वेदवत् स्मर्ता।

## मनुकी जीवनी

श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, महाभारतादिमें इनकी बड़ी ही प्रशंसा है। मनुओंमें ये सर्वाधिक भगवद्भक्त थे। तुलसीदासजीने पद्मपुराणके आधारपर इनकी अद्भुत पवित्रता और भक्तिमत्ताका बालकाण्डमें वर्णन किया है। ये ही पुनः दशरथ होते हैं। पाठकोंको—

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ॥
दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ॥

—से आरम्भकर इनके भगवद्दर्शनतकका चरित्र वहीं देखकर मनको तृप्त करना चाहिये। भागवतके अनुसार इनके कारण भगवान्‌के कपिल, यज्ञपुरुष ( १ । ३ । १२; ८ । १ । १८ ) आदि कई अवतार हुए। पद्मपुराण, मानसादिके अनुसार रामावतार भी इनके ही कारण हुआ। इसीसे इनकी विशेषता परिलक्षित होती है।

## मनुस्मृतिकी विशेषता

मनुस्मृतिकी महत्ता तथा विशेषता इसके श्लोकोंके बीसों स्थलोंपर मिलनेसे ज्ञात होती है। अनेक पुराणों तथा स्मृतियोंमें इसका लंबा अंश है। विष्णुधर्म, भविष्यादि पुराणोंमें प्रायः पूरी मनुस्मृति ही गृहीत है। इसका २ । ९४ संख्याका श्लोक है—

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।'

—इसे पराशरजीने विष्णुपुराणके ४ । १० । २३; शुकदेवजीने भागवतके ९ । १९ । १४ तथा व्यासजीने महाभारत १ । ७५ । ५०, पद्मपुराण सृ० १९ । २६५ के स्थलपर लिखा है। किमधिकं यह एक लिंगपुराणमें ही ८ । २५, ६७ । १७ तथा ८६ । २४ इन तीन स्थलोंपर प्राप्त होता है। तुलसीदासजी भी—

'बुझ न काम अगिनि तुलसी कहुँ बिषय भोग बहु घी ते।'
( विनयपत्रिका )

—आदि पदोंमें इसका अनुवाद करते हैं। मनुका ६।७२-'प्राणायामैर्दहेद्दोषान्' आदि श्लोक भी अनन्तनागोपनिषत् ८।

भागवत ३ । २८ । ११, विष्णुधर्मो० पुराण २ । १२१ । ४०, वायुपुराण १० । ९३ आदि अनेक स्थलोंपर मिलता है।

इसी प्रकार—

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥[8]
( मनुस्मृति २ । १६३ )

यह श्लोक भविष्यपुराण १ । ४ । १५०, महाभारत शान्तिपर्व २९९ । २८; २२९ । २१-२३ तथा विष्णुधर्म० ३ । २४३ आदिमें कई जगह प्राप्त होता है। इसी प्रकार मनुका ८ । ३१७—

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥

—यह श्लोक आपस्तम्बधर्मसूत्र १ । ६ । १५, वसिष्ठधर्म-सूत्र १९ । २९, गृहरत्नकारिका ३५०, स्कन्दपुराण कुमारिका-खण्ड ३३ । १३, कृत्यकल्पतरु पृ० २७३, वीरमित्रोदय आह्निकप्रकाश ५०९ आदि अनेक स्थलोंपर गृहीत है। इनका ४ । २४०—

'एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।'

यह श्लोक भागवत १० । ४९ । २१, महाभारत अनुशासनपर्व १११ । ११, ब्रह्मपुराण २१७ । ४, गरुड-पुराण २ । २२ आदि अनेक स्थलोंपर गृहीत है। इस प्रकारके प्रायः मनुके सभी श्लोक हैं।

सर्वप्रामाण्यभूत मनुजी इतिहास-पुराणोंको परम प्रमाण मानते हैं और उन्हें बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। ( ३ । २३२ ) । ये वशिष्ठ ( ८ । १४९ ), गौतम, अत्रि आदि ऋषियोंके मतका आदर करते हैं ( ३ । १६ ) । स्मरण रखना चाहिये कि ये ऋषि ब्रह्माकी मानस सृष्टिमें इनसे पहले प्रकट हो चुके थे ( भागवत ) । कई स्थलोंपर इन्होंने वेदाङ्ग-ज्यौतिष, व्याकरण आदि तथा आरण्यक ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। ( २ । १४१, ३ । १८५, ४ । ८७, ४ । १२३ आदि ) । इनके मतसे धर्म ही रक्षक तथा पापीके लिये भक्षक है। अतः धर्मका कभी परित्याग न करना चाहिये ( ८ । १५ ) । जो आदमी जिस मन, कर्म, वचन आदि साधनसे शुभाशुभ कर्म करता है,

८. अपमानित प्राणी सुखसे सोता-जागता है, पर अपमान करनेवालेका नाश हो जाता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे उसी साधनसे उसके परिणाम भी भुगतने पड़ते हैं। वह इनसे बच नहीं सकता—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।
वाचा वाचाकृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्॥
( मनु० १२। ८ )

## शासनविधानकी दिव्यता

मनुजी आदिराजा थे¹। इसलिये राज्यकी स्थितिसे पूर्ण परिचित थे। उनके मतसे चोर-डाकू तथा वर्णसांकर्यसे प्रजाको बचाना ही राजनीतिका सार है। खेद है आज इधर किसीका ध्यान नहीं है। इस समय ऐसे उपद्रवोंकी मानो सीमा-सी हो गयी है; पर इधरसे लापरवाह शासकके लिये मनुजीका निर्णय इस प्रकार है—

परमं यत्नमातिष्ठेत् स्तेनानां निग्रहे नृपः।……
योऽरक्षन् बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः।
प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत्॥
अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम्।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम्॥
अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम्।
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम्॥
( मनु० ८। ३०१, ३०८-३१० )

अशासंस्तस्करान् यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते॥
( मनु० ९। २५४ )

मनु, नारद, गौतम, वशिष्ठ आदि प्राचीन सभी स्मृतिकार एक स्वरसे कहते हैं कि यदि किसी राजाके राज्यमें चोरी होती है तो उस प्रजाको राजाको अपने कोषसे उतना धन तत्काल दे देना चाहिये। चोरका पता लगाकर दण्ड देना आदि कार्य उसके पीछेका है। अन्यथा उसके राज्यत्वका कोई अर्थ नहीं। उसे कर देनेकी कोई आवश्यकता नहीं—

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम्।
( मनु० ८। ४० )

स्तेनेष्वलभ्यमानेषु राजा दद्यात् स्वकाद् धनात्।
उपेक्षमाणो ह्येनस्वी धर्मादर्थाच्च हीयते॥
( नारद० १४। २६ )

जिस प्रकार सम्भव हो उसे चोर, पारदारिक, साहसिक, कटुवादी तथा उच्छृङ्खलको अपने राज्यमें नहीं रहने देना चाहिये। ( मनु० ८। ३८६, विष्णु० ५। १९४ )

मनुने प्रायः २०० श्लोक चौर्यनिषेधपर लिखे हैं।

अनेक राजाओंने मनुके इस आदेशको चमत्कृत ढंगसे पालन किया। प्राचीनबर्हिके राज्यमें चोर-डाकुओंका निशान न था।

चोरा न सन्ति नहि सन्ति दस्यवः
प्राचीनबर्हिर्जीवति ह्योग्रदण्डः।
( भागवत ४। ४ )

श्रीराम, कृष्ण, युधिष्ठिरादिके राज्यमें भी ऐसी ही बात थी। कार्तवीर्यकल्पके प्रसङ्गमें नारदपुराण आदिमें आता है कि दत्तात्रेयके आशीर्वादसे सहस्रार्जुनके राज्यमें कोई भी यदि किसीकी वस्तु चुराना चाहता था तो कार्तवीर्य ( सहस्रार्जुन ) हजार हाथोंमें धनुष-बाण लिये वहीं दिखलायी पड़ता था।

कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान्।
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही॥
यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः।
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते पुनः॥
( पद्मपुराण सृ० १२। १३८-९ )

यः सुदर्शनचक्रस्यावतारः पृथिवीतले।
दत्तात्रेयं समाराध्य लब्धवांस्तेज उत्तमम्॥
तस्य क्षितीश्वरेन्द्रस्य स्मरणादेव नारद।
शत्रूञ्जयति संग्रामे नष्टं प्राप्नोति सत्वरम्॥
( नारदपुराण ७५। ३-४ )

तभी भारतीय निर्द्वन्द्व रहते और रातमें भी दरवाजा खुले सोते थे। मनु भौतिक नहीं, अध्यात्मवादी थे जो परम सत्यवाद है। उन्होंने ईश्वरको जानना आवश्यक बतलाया है—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥
( १२। १२२ )

मनुने ब्राह्मणोंकी बड़ी प्रशंसा की है। उनके शब्द हैं—

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥
सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम्।

---

१. कालिदास तो वर्णाश्रमपालनको ही मनुस्मृतिका सारतत्त्व मानते हैं—

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।
( रघुवंश १४ )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ।
स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
आनृशंस्याद् ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥
( मनु० १ । ९८—१०१ )

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ।
ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥
यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥[१०]
( ९ । ३१३--१४ )

ऐसी ब्राह्मणोंकी प्रशंसा अन्यत्र किसी शास्त्रमें मिलना कठिन है। ( महाभारत, अनुशासनपर्व १५१ । १६ आदिमें ये ही वचन अलबत्ते दुहरा दिये गये हैं। ) यह उनकी ब्राह्मणभक्तिका परिचायक है। मनुने त्याग, दान, क्षमा, ज्ञानार्जन, स्वधर्मपालनपर बहुत जोर दिया है।

मनुस्मृतिके बादकी सभी स्मृतियोंने मनुका ही अनुसरण किया है। स्मृतितत्त्व, दानसागर, निर्णयसिन्धु, स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि, वीरमित्रोदय आदिके भी ये ही प्राण हैं। इधर कुछ पाश्चात्यशिक्षा-दीक्षाप्राप्त लोगोंने भी मनुस्मृतिपर अनुसंधान-कार्य किया है; पर उन्होंने न तो ठीकसे मनुको समझा है, न अन्य भारतीय साहित्यको। एक सज्जन लिखते हैं कि 'ईशोपनिषद्' ईसामसीहके नामपर रचित है। जो हो, इस समय मानवसमाजको मनुको ठीकसे समझकर उनके अनुसरणकी आवश्यकता है। अन्यथा वह अणुबम, भ्रष्टाचार, अनाचारादि भयानक विनाशके कगारेपर खड़ा है। भगवान् ही बचायें इस विभीषिकासे।

# तपश्चर्या

( लेखक—डॉ० मुंशीरामजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्० )

हमारे पूर्वजोंकी साधना दीक्षासे प्रारम्भ हुई है। दीक्षाके लिये तपश्चर्या अनिवार्य है। इसके अभावमें दीक्षित व्यक्ति अपनी साधनाके गन्तव्यको प्राप्त नहीं कर पाता। तप भी बाहरसे अंदरतक जाता है। साधक सर्वप्रथम शरीरको तपश्चर्याकी भट्ठीमें डालता है। व्रत और उपवास करके वह शरीरपर नियन्त्रण प्राप्त करता है।

**यो अग्निं तन्वोदमे देवं मर्तः सपर्यति।**

ऋग्वेदकी इस ऋचाके अनुसार जो साधक शारीरिक दमनद्वारा उस अमरदेवकी पूजा करता है, उसीके पास दीप्तिमान् वसु निवास करते हैं। उसका ऐश्वर्य चमक उठता है, उसका धन और वासक शक्तियाँ प्रदीप्त हो उठती हैं।

**पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते**
**प्रभुर्गात्राणिपर्येषि विश्वतः।**
**अतप्ततनूर्नतदामोऽश्नुतेश्शृतास**
**इत वहन्तः तत्समाशत् ॥**

इस ऋचामें प्रभुके पावन स्वरूपका वर्णन है। प्रभुकी पवित्र करनेवाली लहरें चतुर्दिक् परिव्याप्त हैं, साथ ही वे एक-एक व्यक्तिको भी सब ओरसे आच्छादित करके पवित्र कर रही हैं, परंतु जिसने अपने शरीरको नहीं तपाया, जो आम अर्थात् कच्चे घड़ेके समान है, वह प्रभुके इस पावित्र्यकारक प्रवाहसे वञ्चित हो जाता है। पके हुए व्यक्ति ही उसे प्राप्त कर पाते हैं।

शरीरके अंदर मनस्तत्त्व मानवताका मूलकेन्द्र है। इस मनको भी तपकी ओर प्रवृत्त करना होता है।

**अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।**
**अग्निमीधे विवस्वभिः।**

मनके द्वारा जब ज्ञानाग्नि प्रज्वलित की जाती है,

१०. धर्ममूर्ति ब्राह्मण जन्मते ही सारी पृथ्वी एवं प्राणियोंका स्वामी हो जाता है; क्योंकि उसे धर्मरूपी खजानेकी रक्षा करनी है। इस विश्वका सब कुछ ब्राह्मणका ही है। वह जो खाता, देता तथा जहाँ रहता है, सब उसका अपना ही है। अन्य प्राणी उसीके जिलाये जीते, खिलाये खा रहे है। जिन ब्राह्मणोंने अग्निको सर्वभक्षी, समुद्रको अपेय, चन्द्रमाको क्षयरोगी पुनः रोगमुक्त किया, उन्हें कभी भी रुष्ट न करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रवण और मननके द्वारा जब ज्ञानका संग्रह और आत्मीयकरण होता है, तभी मानव धीको प्राप्त करता है। धी बुद्धिका वह स्तर है जो ज्ञान और कर्म दोनोंका समन्वय करता है। जब मेरे ज्ञानके अनुकूल मेरे कर्मका प्रवाह चल पड़ता है, तब मैं मानसिक तपकी सिद्धिरूप धीको प्राप्त करता हूँ। इस स्तरमें प्रवेश किये बिना बुद्धिके अन्य आन्तरिक स्तर नहीं खुल पाते। मेधा जिसे 'धारणावती बुद्धि' कहा जाता है, इसीके उपरान्तकी अवस्था है। कभी-कभी मेरा सुना हुआ, मनन किया हुआ मेरे अंदर जाकर भी बाहर निकल जाता है, ठहर नहीं पाता। उसे स्थिर रूप तभी प्राप्त होता है जब मेधाका जागरण हो। वेदने मेधाको ब्रह्मण्वती, ब्रह्मजूत तथा ऋषिस्तुत कहा है। ज्ञानमें विचरण करनेवाले तथा ब्रह्मकी ओर प्रयाण करनेवाले इस मेधाको पी जाते हैं। पिया हुआ जल जैसे अंदर पहुँचकर अङ्ग-अङ्गमें बस जाता है, इसी प्रकार मेधा उनके आन्तरिक अङ्गोंका एक अङ्ग बन जाती है।

मेधाके उपरान्त प्रज्ञा आती है जो स्वयं प्रकाश है। जिस तपस्वीको प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है, वह धन्य है। वह निखिल ऋषि और देवोंका मूर्धन्य है। यह प्रज्ञा उस घोर तपश्चर्यासे प्राप्त होती है, जिसे चैतन्याग्नि कहा गया है।

**ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन्। तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान् स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः।**

प्रज्ञामें प्रतिष्ठित, चैतन्यकी अग्निपर आरूढ़ याजक नाककी पीठपर बैठकर द्यौ लोककी ओर उड़ता है। उसके सामने स्वःकी ओर जानेवाला मार्ग ज्योतिर्मयरूपमें प्रकाशित हो उठता है। यही तो देवयान है और यह प्रज्ञाधनी सुकृतियोंको ही उपलब्ध हो पाता है। इस साधनापथमें तपश्चर्या करते हुए साधकको बीचके और भी अनेक पड़ाव अनुभूत होते हैं, पर वह इन पड़ावोंकी मोहकतासे मुग्ध होकर वहीं विश्राम नहीं करने लगता। बीचका विश्राम उस अन्तिम विश्रामके लिये कभी-कभी बड़ा दुःखद सिद्ध होता है, अतः साधकको अनवरत इस पथपर अग्रसर रहना चाहिये क्योंकि—

**इच्छन्ति देवा सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः।**

ऐतरेय ब्राह्मणकारके शब्दोंमें—'**चरैवेति चरैवेति**' यही मन्त्र साधकको अपनी अन्तिम विश्रामभूमि तक पहुँचाता है।

तपश्चर्याके ये तीन स्तर एक ओर तीन लोकोंसे सम्बन्ध रखते हैं, तो दूसरी ओर तीन धामोंसे। लोक बाह्य निवासकी भूमि है, धाम साधना-विकासके स्तरको सूचित करता है। वेद लोक तथा धाम दोनोंका उल्लेख करता है। विकास और विकासके योग्य वातावरण दोनोंका वैसे भी पारस्परिक, अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। तपश्चर्या दोनोंके मूलमें है। साधक इसीके बलपर ऊँचा उठता है। तपश्चर्या उसे निर्मल करती जाती है और एक दिन ऐसा भी आता है, जब वह समस्त मलोंसे, आवरणोंसे पृथक् होकर अपने शुभ्र, शुक्र, भ्राजमान एवं शुद्ध स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है। स्पिनोजा इसे 'स्वाधीन अवस्था' कहता है। काण्ट इसे 'आदर्श अवस्था'का नाम देता है। हमारे ऋषि इसे 'अमर आत्मस्वरूप' कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भजन-ध्यानका स्वरूप और लक्ष्य

( लेखक—श्रीजयकान्तजी झा )

भजन शब्द 'भज सेवायाम्' धातुसे बना है। सेवा-का अर्थ किसीके दुःखको कम करने या उसे सुख पहुँचानेसे है। सुख शारीरिक अथवा मानसिक दोनों प्रकारका होता है। किसी भूखेको भोजन कराकर हम उसकी शारीरिक सेवा कर सकते हैं अथवा किसी चिन्तातुर व्यक्तिको आश्वासन देकर हम उसकी मानसिक सेवा कर सकते हैं। हम जिस व्यक्तिकी सेवा करते हैं, उसे सुख और संतोष होता है तथा उसके सुख और संतोष-का प्रभाव हमारी आत्मापर अवश्य पड़ता है। जब हमारे द्वारा किसी व्यक्तिको सुख पहुँचता है अथवा उसे शान्ति एवं संतोषकी प्राप्ति होती है तब हमारे हृदयमें उस व्यक्तिके आनन्दको देखकर प्रसन्नताका स्रोत उमड़ पड़ता है, यह सर्वविदित है। अतएव भजनका प्रारम्भिक स्वरूप है—सेवा। सेवा-कार्य सुननेमें जितना सहज है, करनेमें उतना ही कठिन भी है। श्रीरामचरितमानसमें श्रीभरतजीने कहा है—'सब तें सेवक धरम कठोरा'—सब धर्मोंमें सेवा कठोर धर्म है। एक सतीकी कथा है—वह अपने पतिके मस्तकको अपनी गोदमें रक्खे हुए उनकी सेवामें तल्लीन थी। पतिदेव निद्रित अवस्थामें थे। इतनेमें उसका नन्हा शिशु जागा और पासमें जलती हुई अग्निकी ओर जाने लगा। सती अपने पतिकी निद्रा भङ्ग होनेकी आशंकासे उस बच्चेको नहीं पकड़ सकी और बच्चेकी रक्षाके लिये मन-ही-मन अग्निदेवसे प्रार्थना करने लगी कि 'हे अग्निदेव! पति-सेवापरायण होनेसे मैं अपने नन्हे शिशुको नहीं रोक पा रही हूँ। अतएव आप उसकी रक्षा करें।' स्त्रीके इतना कहते ही अग्निदेव चन्दनके समान शीतल हो गये और बच्चा बाल-बाल बच गया। इस घटनाके भीतर मानस-शास्त्रका एक गम्भीर विज्ञान छिपा है; वह है सतीकी तन्मयता और उसकी एक विशेष शक्तिका विकास।

हमारी आत्मा अनन्त शक्तियोंका भण्डार है। न जाने किस समय हमारी किस शक्तिका विकास हो जायगा। पर किसी भी शक्तिका विकास 'तन्मयता' अर्थात् मनकी वृत्तियोंके एकाग्र या निरोध होनेपर ही होता है। किसी भी कार्यको सुचारु रूपसे सम्पन्न करनेके लिये 'संयम' या 'तप' नितान्त आवश्यक है। मनःसंयम, शरीरसंयम अथवा किसी प्रकारका संयम क्यों न हो, सभीमें मानसिक वृत्तियोंका निरोध मुख्य है। भजनपर बैठते ही हम मनका, वाणीका और शरीर-का संयम या तप करते हैं और इस प्रकार अपनी आत्माकी सेवामें तत्पर हो जाते हैं। उस समय सम्पूर्ण मानसिक उत्पात शिथिल होने लगते हैं और अपने कृत्यों ( विशेषकर दुष्कृत्यों ) पर विचार होने लगता है और अपने दुष्कर्मोंपर हमें पश्चात्ताप होने लगता है। हम एक ऐसी शक्तिके ध्यानद्वारा अपने वातावरणको शुद्ध एवं शान्त बनाना चाहते हैं, जिसे हमने अपना इष्ट मान लिया है और यही इष्ट हमारा ईश्वर है। सप्तर्षि पार्वतीजी-को तपस्यामें लीन देखकर पूछते हैं—'क्या उस अमङ्गल वेश नग्न शिवका वरण करनेके लिये ही तुम तपस्या कर रही हो? हम वैकुण्ठाधिपति सौन्दर्यशाली विष्णु भगवान्से तुम्हारा विवाह करा देंगे।' इसपर पार्वतीजी कहती हैं—

> महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
> जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥
> अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥

यही है अविचल प्रेम और भक्ति, और इसीको प्राप्त करना है भजनका उद्देश्य। चाहे किसी देवतामें, किसी यक्षमें, किसी मनुष्यमें अथवा किसी चेतन या अचेतन स्थावर-जंगममें, जिसे भी हम अपने श्रद्धा-विश्वासके द्वारा अपना ध्येय बना लें, हमें भजनकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। हम अपने उपास्यदेवके साथ तदाकार हो जायँ, यही भजनकी सिद्धि है। जैसी भावना वैसी प्राप्ति, इसमें ऊँच-नीचका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। 'यो मां पश्यति सर्वत्र' के अनुसार वह विश्व-शक्ति सब जगह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भगवान् अपने एक अंशसे विश्वकी सारी विभूतियोंमें व्याप्त हैं। अथवा उनके एक अंशमें सारा विश्व स्थित है। जिसका जो ध्येय है, उसके लिये वही उसकी विभूति है और विश्वेश्वर भगवान् तदनुसार उसे सिद्धि देते हैं एवं उसीमें उसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ एक सती साध्वी पतिधर्मपरायणा स्त्रीका पति यदि दुराचारी है तो पतिको भले ही अपने दुष्कर्मोंके कारण नरकमें जाना पड़े; किंतु उसकी पतिव्रता स्त्रीको अपने दुराचारी पतिमें अटूट श्रद्धा एवं प्रेम होनेके कारण निश्चय ही सद्गतिकी प्राप्ति होगी।

जब हम भगवान्‌का ध्यान करते हैं, तब जहाँतक हमारे मनकी गति हो सकती है, जहाँतक हमारी कल्पना जा सकती है, हम एक नित्य सच्चिदानन्दघन, सत्य, शिव, सुन्दरके ध्यानमें निमग्न हो जाते हैं। हमारा ध्यान जब खूब जम जाता है, तब सामनेका कोई भी उपास्य—प्रतीक उस समय गौण हो जाता है और मुख्य हो जाते हैं हम ही हम। हमें शरीरका, मनका, अपनी वस्तुस्थितिका भान तक नहीं होता; एक अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है और हम आत्मतृप्त हो जाते हैं। भगवान् सर्वभूतमय हैं। जीवोंपर उनकी अपार करुणा है। हममें उनको जाननेकी शक्ति नहीं है, फिर भी हम अशक्तोंपर उनकी ऐसी दया है कि हम जैसे चाहें वैसे उन्हें ध्यावें, वे मिल ही जाते हैं। भगवान् तो भावके वश हैं। जिसे जो मार्ग भाया, उसीके अनुरूप उसने अपने इष्टका ध्यान किया और उसीमें उसको अपने भगवान् मिले। आत्मा अपने ध्येयमें एकाकार होकर परमात्मस्वरूप हो जाता है। यह अवस्था कथनातीत है। संसारके सारे क्लेश, चिन्ता और दुःखोंका अवसान हो जाता है।

यही है भजन-ध्यानका स्वरूप और लक्ष्य।

---

# आशा—उचित-अनुचित

**[ कहानी ]**

( लेखक—श्री'चक्र' )

'नम्बर सात ताला-जंगला सब ठीक है!' बड़े ऊँचे स्वरमें पुकारा पीले कपड़ेवाले नम्बरदारने। दूसरे बैरकोंसे भी इसी प्रकारकी पुकारें लगभग उसी समय उठीं।

यह कारागारका तृतीय श्रेणीका बैरेक नम्बर सात है। संध्याकालीन भोजन हो चुकनेपर बंदी अपने फट्टे ( मूँजकी रस्सीसे बनी चटाइयाँ ), कम्बल, कपड़े लपेटे, तसला-कटोरी लिये दो पंक्तियोंमें बैठ गये थे। उनकी गिनती की गयी और फिर भरभराकर वे बैरकमें घुस गये।

घुटनेसे नीचेतकका जाँघिया और बिना बाँहके कुर्त्ते। जाँघिया और कुर्त्ते दोनोंपर किन्हींके लाल मोटी धारी हैं, किन्हींके नीली धारी। लाल धारी बतलाती है कि बंदी पहली बार कारागार आया है और नीली धारी कहती है कि वह इससे पहले भी आ चुका है। किन्हीं-किन्हींने सिरपर लाल दुपलिया टोपियाँ भी लगा रक्खी हैं।

बीचमें डेढ़-दो हाथकी दूरी छोड़कर चबूतरे बने हैं सीमेंटके पंक्तिबद्ध। बंदियोंने अपने फट्टे चबूतरोंपर डाल दिये हैं। लोहेके तसलोंमें पानी कुछ ले आये हैं दौड़कर, कुछ ड्रमके पास भीड़ लगाये खड़े हैं। कुछके पास मिट्टीकी हँड़िया भी है पानी रखनेको। जिनकी फूट चुकी हैं, इस ग्रीष्ममें उन्हें अपने तसलेके पानीसे रात्रिको प्यास बुझानी है, यदि कोई अन्य मित्र अपनी हँड़ियाका पानी देनेकी उदारता न दिखलावे। कारागार-अधिकारी दुबारा हँड़िया देनेसे रहे।

'सब अपने-अपने चबूतरेपर जल्दी बैठो!' नम्बरदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिल्लाया और उसने हाथका डंडा हिलाया। जैसे भेड़ोंको हाँकता हो, ऐसी ही चेष्टा—'जल्दी करो, गिनती करनी है।'

दो-चार मिनट उपेक्षा चल सकती है इस नम्बरदारकी। फिर वह गालीपर उतर आयेगा और कुछ कहो तो सबेरे 'पेशी' कर देगा जेलरके सामने। पानी गिनतीके बाद भी लिया जा सकता है। एक बार सब बैठ गये चबूतरोंपर—शान्त हो गये। अपने ही चबूतरेपर बैठे हों—आवश्यक नहीं था। एक चबूतरेपर दो व्यक्ति न हों, यह नम्बरदारने कहा; किंतु इसपर बल नहीं दिया उसने। अपनी गिनती पूरी करके उसे 'ताला-जंगला ठीक है' की घोषणा करनेकी जल्दी थी इस समय।

'कल मुझे छुटकारा मिल जायगा!' एक दुबले, गोरे रंगके अँधेड़ व्यक्ति कह रहे थे—'मेरा भाई अवश्य मेरी जमानत कल कर देगा। कल न्यायालयमें मुझे जाना है।'

ये विचाराधीन बंदी हैं। अपनी सफेद कमीजमें रहते हैं और पाजामा भी इनका घरका ही है। दाढ़ी-मूँछके बाल बुरी तरह बढ़ गये हैं। यहाँ नाई हैं सही; किंतु विचाराधीन बंदीको उनकी सुविधा प्राप्त नहीं होती। तृतीय श्रेणीका बंदी दाढ़ी बनानेका अपना सामान साथ रख नहीं सकता।

'यह तो साक्षात् नरक है! मच्छरोंके मारे सब बेचैन हैं। सबके हाथकी चट्पट् गूँज रही है। बैरेकमें ही एक कोनेपर इन साठ बंदियोंके मल-मूत्र-त्यागका स्थान है। उसकी दुर्गन्धि भरी है सब कहीं। जो थोड़े गिने-चुने चबूतरे खिड़कियोंके पास हैं—उनपर नम्बरदारके कृपापात्र या सशक्त लोग हैं। शेष इस दमघोटू वातावरणमें घुट रहे हैं। पसीना, मच्छर, दुर्गन्धि—ठीक तो कहते हैं वे कि यह नरक है।

'मुझे निरपराध फँसाया गया है!' सच-झूठकी राम जाने। यहाँ या तो लोग डींग हाँकते हैं या अपनेको निर्दोष बतलाते हैं; किंतु इनके-जैसा सीधा, चार बजे सुबहसे ही भजनमें लगनेवाला—कुछ भी हो, ये कल यहाँसे मुक्त हो जायँ तो उत्तम।

'सब लोग अपने-अपने चबूतरेपर जाओ!' नम्बरदारने डंडा उठाया। अबतक लोग दो-दो चार-चार एकत्र बैठकर बातचीत कर रहे थे। थोड़ी देर उपेक्षा चली; किंतु नम्बरदारको कबतक टाला जा सकता है। वह घूम-घूमकर पुकार रहा है—'बातचीत एकदम बंद! सब सो जाओ!'

बातचीत बंद हो जायगी; किंतु यह गरमी, ये मच्छर, बत्तीके कारण उड़ते ये कीड़े-पतंगे और यह दुर्गन्धि—निद्रा क्या अपने वशमें है?

× × ×

'मेरी जमानत नहीं हुई।' वही वातावरण, वही सायंकालके बादका समय, वही बैरेक। दूसरे दिन वे बहुत दुखी थे। न्यायालयसे लौटकर आये तबसे लगता था कि जैसे टूट चुके हैं। 'भाईने सीधे देखातक नहीं। वह मुख चुराकर चला गया!' आँसू गिर रहे थे नेत्रोंसे।

'संसारमें किसीसे भी आशा करना दुःख ही देता है!' बैरेकमें एक पण्डितजी हैं। सब उन्हें इसी नामसे पुकारते हैं। वे कारागार क्यों आये, पता नहीं; किंतु बड़े सज्जन और अद्भुत शान्त पुरुष। वे आ गये हैं इन्हें दुखी देखकर। समीप बैठ गये हैं और सान्त्वना देने लगे हैं।

'सब स्वार्थके साथी हैं। विपत्तिमें कोई साथ देनेवाला नहीं!' दुःख सान्त्वना पाकर पहले उबलता तो है ही।

'संसारके लोगोंसे आशा करना अनुचित है। यह आशा ही दुःखकी जड़ है।' पण्डितजीने स्नेहभरे स्वरमें कहा—'किंतु दुखी और निराश होनेकी तो कोई बात नहीं है। एक है, जिसपर पूरा भरोसा किया जा सकता है। जिससे लगी आशाको वह कभी विफल नहीं करता। कोई दुखी उसीकी ओर देखे तो वह सहायता न करे ऐसा कभी नहीं हुआ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोई नहीं है। मेरा कोई परिचित, कोई सम्बन्धी ऐसा नहीं जो अब मेरी सहायता करे।' उनकी घिग्घी बँध गयी।

'अच्छा है। संसारमें जिसका सहायक कोई नहीं है, श्यामसुन्दर उसका अपना है।' पण्डितजीकी वाणी गम्भीर हुई—'संसारसे आशा अनुचित है और उस दयामयसे आशा—उचित आशा एकमात्र यही है। आपने देख लिया कि लोगोंसे आशा करके क्या होता है। अब उसे पुकारकर देखिये!'

'वह सुनेगा मेरी?' संदेहके स्वर उठे—'आप स्वयं भी तो इसी घिनौने कारागारमें हैं।'

'मुझे यह अच्छा लगता है। उसने मेरे लिये कोई मङ्गल देखा होगा इस जीवनमें!' पण्डितजी बोले—'सब खटपटसे छूट गया। एकान्त है यहाँ। भजन-चिन्तन ठीक बनता है। उसे जो अच्छा लगे—मैं उसमें कोई कष्ट देखता नहीं अपने लिये; किंतु आप दुखी हैं, आर्त हैं। उसे पुकारिये। आर्तकी सच्ची पुकार उस दयाधामके यहाँसे कभी विफल नहीं लौटी।'

पण्डितजी जाकर सो गये अपने आसनपर; किंतु वे सज्जन पूरी रात बैठे रहे। उनकी हिचकी और आँसू रुकनेका नाम नहीं लेते थे।

घटना लगभग यहीं समाप्त हो जाती है केवल इतना और बता देना है कि दूसरे दिन पण्डितजी दोपहरसे पहले ही कारागारसे बाहर हो गये। न्यायालयने उसी दिन उन्हें दोषमुक्त घोषित कर दिया और दौड़-धूपकर पण्डितजीने उन सज्जनको भी स्वयं जमानत देकर संध्यासे पूर्व ही कारागारसे बाहर कर लिया।

---

# मेरी कामना

( लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि' )

आज मुझमें भी एक कामना जाग उठी है, मेरे प्रभु! पूर्ण करो न उसे मेरे सहज पूर्णत्व-प्रदाता!

कामनाका नाम सुनते ही मुझपर यह भ्रुकुटि-शर-संधान क्यों मेरे दुष्ट-दलन?

इस जगत्में सर्वथा कामनाशून्य कौन है? कोई भी तो नहीं। फिर मेरा ही क्या दोष, मेरे समदर्शी!

क्या कुपित हो रहे हो तुम इस बातसे कि तुम 'कामेश्वर'का चरण-किंकर होकर भी मैं कामनाके चंगुलमें क्यों कैसे फँस गया? तो नाथ! यह तो तुम्हारे—एकमात्र तुम्हारे ही सोचने-विचारनेकी चीज है। तुम सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् हो। मैं ठहरा अल्पज्ञ!.........अल्पशक्ति। समझे?

कुछ भी हो, जब कामना जाग उठी है तो उसे शान्त करना ही होगा मेरे शान्तिस्वरूप। कोरे भ्रुकुटि-शर-संधानसे कुछ न होगा। काम तो कामके ढंगसे ही चलेगा। घबराओ नहीं मेरे सदा-सर्वदा समाधिस्थ बाबा! माँ अन्नपूर्णाके भाण्डारमें कोई कमी नहीं आ जायेगी एक टुकड़ा मेरे आगे डालनेसे।

सोच क्या रहे हो? तुम तो औढरदानी हो, आशुतोष हो, समदर्शी हो, सुर-असुर, नर-किंनर, यक्ष-गन्धर्व, पशु-पक्षी, कीट-पतंग—और भी एक सिरेसे सबके सिरपर तुम्हारी दया-मयाका हाथ बराबर है। सच, तुम्हारे अनुग्रहके वरद हस्तसे कोई भी तो शून्य नहीं। फिर मेरे ही सम्बन्धमें यह सोच-विचार, आगा-पीछा और पशोपेश क्यों? व्यर्थके बपलेमें पड़नेसे लाभ? अपने नामोंकी लाज तो रखनी ही होगी मेरे सर्वस्व।

और फिर सौ बातोंकी एक बात—मैं चाहता ही क्या हूँ? मुझे न तो धन-दौलत, राज्यपाट, यश-वैभवकी कामना है, न सुत-दारा, इष्ट-मित्र और कुटुम्ब-कबीलेकी ही इच्छा। विविध प्रकारके संख्यातीत भोगोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालसा भी मैं नहीं रखता । और तो और, मुक्तिकी अभिलाषाको भी दूरसे ही नमस्कार करना मैंने सीख लिया है । मेरी आकाङ्क्षा तो नामभरकी आकाङ्क्षा है, कुछ हो भी ।

पूछ रहे हो ?—'क्या ? आखिर कुछ कह भी तो ! गर्वोल्लसित हूँ मैं अपने सौभाग्यपर । तुम्हारी कृपा-कोर तो हुई मेरी ओर । लो, सुनो—

इस सुखाभासित जगत्में जहाँतक दृष्टि—सम्यक् दृष्टि जाती है, एकमात्र दु:ख-ही-दु:ख दिखायी देता है । सभी तो एक सिरेसे दु:खसागरमें डूब रहे हैं । यह देख-देखकर मेरा हृदय भरा आता है मेरे दु:ख-भञ्जन प्रभो ! और मैं चाहता हूँ, मेरे करुणामय ! कि जितना भी दु:ख इस जगत्में हो, सब सिमटकर, धुआँ बन-कर मुझपर छा जाय; और फिर मुझपर बरसे तीखे-से-तीखे तीरोंकी बौछार होकर । मुझे—और सबको छोड़कर—अच्छी तरह बेध-छेदकर अपने मनकी निकाल ले ।

और बिंधा-छिदा मैं तब""""यह क्या कह रहे हो मुझे बीचमें ही रोककर कि 'इतना सारा दुनियाभरका दु:ख क्या तू सहन कर पायेगा ?' कैसी निराधार बात कर रहे हो मेरे धराधार-जगदाधार ! तुम्हें शोभा नहीं देता यह । क्या तुम्हारा नहीं हूँ मैं ? और तुम्हारे लिये कौन कठिन काम है यह ! हाँ तो मैं कह रहा था कि बिंधा-छिदा मैं इन आँखों सबके सुखसे प्रफुल्लित मुखड़े देखकर संतोषकी साँस लूँ ।

हो सकता है—दु:खाक्रमण मेरे नेत्रोंको ज्योति-विहीन कर दे । तब भी कोई हर्ज नहीं, कानोंसे उनके हर्षोल्लासमय स्वर सुनकर ही मैं संतुष्ट हो जाऊँगा ।

और यदि कान भी जवाब दे जायँ तो भी कोई बात नहीं । उनकी सुखमय श्वाससे सुरभित समीर ही अपने स्पर्श एवं गन्धद्वारा मुझे मेरी सफलताका संवाद दे देगा ।

और मान लो—सभी इन्द्रियाँ नाकारा होकर रह जायँ तो भी कोई हानि नहीं । मन कल्पनाद्वारा ही सबकी दु:खोंसे मुक्तिके सुखका अनुभव कर रस-मग्न हो जायेगा । तुम्हारा अमोघ अनुग्रह असफल कैसे हो सकता है ?

क्या कह रहे हो मुसकराकर—'और जो मन भी अमन होकर रह जाय ? तब ?' तब क्या ? तब स्वयं स्वयंके अनुभव-सा स्वयं साक्षी होगा सबका लोप करके । दु:ख-सुख कामना-अकामना ही कहाँ रहेगी तब ? यही तो मेरी अचाही चाह है—मेरी सात परदोंके भीतरकी चाह मेरे प्रभु । पूरी करो तो मेरे अहैतुक दयालु ! मेरे शम्भु ! क्यों, न करोगे ?

## उद्बोधन !

जहाँ अविराम सीताराम-गुण गाया नहीं जाता ।
चपल मन संयमित, सुस्थिर वहाँ पाया नहीं जाता ॥
सदा ताजा रहे सियराम पावन नाम रसनापर,
उतर जाता है, जबतक पाठ दुहराया नहीं जाता ॥
पड़ेगा भोगना परिणाम हमको अपने पापोंका,
कहीं मजदूरसे यह बोझ उठवाया नहीं जाता ॥
जहाँ इंसान हरदम वासनामें लिप्त रहता है,
वहाँ इंसानियतका लेश भी पाया नहीं जाता ॥

उसे इंसान कहनेमें मुझे तो शर्म आती है,
जहाँ दिलमें दया, ईश्वरका भय पाया नहीं जाता ॥

गरीबीमें मुझे दी आपने संतोषकी दौलत,
तुम्हारे सामने भी हाथ फैलाया नहीं जाता ॥

जो औरोंकी मुसीबत देखकर बेकल नहीं होता,
वह कुछ भी हो, मगर इंसान कहलाया नहीं जाता ॥

—केदारनाथ 'बेकल' एम्० ए०, एल्०-टी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिंदुओंके नाम तथा उनके पवित्र अर्थ

## ( बालक-बालिकाओंके नाम इस प्रकार चुनिये )

( लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी० )

हिंदू ऋषि-मुनि तथा विचारकोंको स्वरविज्ञानका गहरा ज्ञान, अनुभव तथा पहुँच थी। उन्होंने एक-एक स्वर, एक-एक शब्द, एक-एक नाममें छिपी हुई गुप्त नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और उच्च शक्तियोंकी खोज की थी और जन-साधारणमें ऐसे शब्दों तथा नामोंका प्रचार किया था, जिनसे समाजकी परोक्षरूपमें उन्नति होती रहे। नागरिकोंको देशकी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति, धर्म, नीति और इतिहासका ज्ञान रहे और वे अपने नररत्नोंको भूलें नहीं। देशका अतीत सदा उनके मानस-नेत्रोंके सामने रहे और वे धार्मिक महा-पुरुषोंको सदा स्मरण करते रहें। हमारे यहाँके नामोंकी पद्धति स्वर-विज्ञानके नियमोंपर खड़ी हुई है। हमारे अधिकांश नामोंका गुप्त अर्थ है और कुछ नाम तो ऐसे महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके उच्चारणमात्रसे मनमें पवित्र भावों और उच्च आदर्शोंका संचार होता है तथा सात्त्विक वातावरणकी सृष्टि होती है। सम्भव है, कोई ऐसा व्यक्ति हो जो जान-बूझकर परमात्मा या देवी-देवताओंके नामोंका उच्चारण और कीर्तन न करे, लेकिन हिंदू-नामकरणपद्धति इस ढंगसे रक्खी गयी है कि अनजानेमें ही किसी-न-किसी देवता या महापुरुषका नाम घरभरमें फैलता रहे।

## हमारे यहाँके कुछ नाम

हिंदुओंके सबसे बड़े देवता भगवान् श्रीरामचन्द्र और योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हुए हैं। 'राम' और 'कृष्ण' उनके संक्षिप्त रूप हैं। 'राम' और 'कृष्ण'का कीर्तन करनेसे इन दोनों महान् देवताओंके अद्भुत कार्य, उत्कृष्टतम चरित्र, गुण, रूप, स्वभाव, शक्ति और आदर्श मनुष्यके मन तथा आसपासके वातावरणमें फैलते हैं। उच्च स्वरसे 'राम-राम' या 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करनेसे वातावरण नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियोंसे भर जाता है। मनुष्यकी तो क्या, आसपासके विकार और पाप क्षय हो जाते हैं। जो व्यक्ति इस कीर्तनको सुनता है, उसमें भी देवत्वके सद्गुणोंका संचार हो उठता है। सर्वत्र पवित्रताकी लहरें फैल जाती हैं।

लेकिन कुछ ऐसे सांसारिक व्यक्ति हैं जो भगवान्‌का भजन-कीर्तन नित्य नियमित रूपसे नहीं करते; व्यापार, घर-गृहस्थ, परिवार या सांसारिक कार्योंमें फँसे रहते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके लिये यह जरूरी था कि उनसे भगवान्‌के किसी नामको बरबस उच्चारण कराया जाय और बार-बार उच्चारण कराकर उनकी मुक्तिका द्वार खोला जाय। इसलिये बड़ी संख्यामें ऐसे नाम बनाये गये जिनके प्रारम्भ या अन्तमें 'राम' या 'कृष्ण' शब्दोंका प्रयोग हो। बच्चोंका नाम तो मनुष्य दिनमें दस-बीस बार पुकारता ही है। बस, बच्चोंके नाम पुकारनेसे भगवान्‌का नाम भी मुँहसे निकलता रहता है और इस प्रकार मनुष्यके वातावरणकी शुद्धि होती रहती है। जिस बालकका नाम किसी देवी-देवतापर है, वह भी धीरे-धीरे उन्हींके गुप्त गुण और आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। उसे सदा अपनी श्रेष्ठताका ज्ञान रहता है।

भगवान् श्रीरामकी पुण्य स्मृतिको सजग करनेके लिये हमारे पूर्वजोंने ऐसे अनेक नाम बनाये हैं जिनके प्रारम्भ या अन्तमें 'राम' शब्दका प्रयोग हुआ है, जैसे—रामचन्द्र, श्रीराम, सियाराम, रामकुमार, रामलाल, राममोहन, राम-दयाल, रामलखन, रामप्रसाद, रामनरेश, रामचरन, रामसिंह, रामप्रकाश, रामकिशन, रामप्रतापसिंह, जैराम, राजाराम, सन्तराम, बलीराम, हरीराम, परशुराम, रामउजागर, राम-दास, रामनारायण, रामनयन, रामलला, रामविलास, राम-शरन, रामकिशोर, रामगोपाल, रामकृष्ण, रामखेलावन, रामगोविन्द, रामजीदास, रामजीलाल, रामजीवनसिंह, राम-जीशरण, रामदत्त, रामदहिन, रामधन, रामदुलारे, रामदीन, रामधर, रामधारीसिंह, रामनन्दन, रामनाथ, रामपदार्थ, रामपाल, रामपरीक्षा, रामप्रीति, रामबली, रामहित, राममूर्ति, रामसेवक, रामबालक, राममनोहर, रामलोचनशरण, रामवृक्ष इत्यादि।

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पुण्यस्मृति तथा गुण बनाये रखनेके लिये अनेक नाम बनाये गये, जिनके शुरू या अन्तमें 'कृष्ण' शब्दका इस प्रकार उपयोग हुआ—श्रीकृष्ण, किशन, रामकृष्ण, कृष्णगोपाल, कृष्णलाल, कृष्णचन्द्र, कृष्ण-सहाय, कृष्णस्वरूप, कृष्णदास, कृष्णविहारी, कृष्णमूर्ति, कृष्णदयाल, कृष्णमोहन, हरीकृष्ण, कन्हैया, कन्हैयालाल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधाकृष्ण, जयकिशन, राधेश्याम, श्रीकृष्णराय, श्यामदत्त, श्यामधारी, श्यामू, श्यामनारायण, श्यामबहादुर सिंह, श्याम-मनोहर, श्याममोहन, श्यामलाल, श्यामवदन, श्यामविहारी, श्यामसुन्दर, श्यामकान्त, मनमोहन, गोपीकृष्ण, गोपाल, मुरलीधर, वंशीधर।

'हरि' और 'नारायण' भी ईश्वरके नाम हैं। 'हरि' और 'नारायण' शब्दको लेकर कुछ नाम बनाये गये,—जैसे हरिदास, हरिदेव, हरदेवसहाय, हरदेवी, हरिनामदास, हरि-नारायण, हरिवंशसहाय, हरिशरण, हरिकृष्ण, हरिदत्त, हरि-द्वारीलाल, हरिशंकर, हरिशरण, हरिश्चन्द्र, हरिसेवक, हरिहर-निवास, हरिहर, हरिराव, हरीश, हरेकृष्ण, नारायण, नारायणस्वरूप, जगन्नारायण इत्यादि।

'श्री' शब्दसे विष्णुकी पत्नी लक्ष्मीका बोध होता है। इसीका अर्थ कमला और सरस्वती भी है। यह कमलका भी प्रतीक है। इससे धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है, धन-दौलत और कीर्ति मिलती है। इसमें कान्ति और चमकका भी भाव है। अतः 'श्री' शब्दका प्रयोग कर हिंदुओंने अनेक *नाम* प्रचारित किये हैं, जैसे श्रीकंठ (महादेव), श्रीकान्त (विष्णु), श्रीकृष्ण, श्रीदास (सुदामाका नाम), श्रीधर (विष्णु), श्रीनिवास (विष्णु और वैकुण्ठ), श्रीपति (विष्णु-नारायण, हरि), श्रीमन्त, श्रीरंग (विष्णु), श्रीरमण (विष्णु), श्रीवत्स (विष्णु), श्रीलाल, श्रीनाथ, श्रीनाथसिंह, श्रीधर, श्रीनारायण, श्रीप्रकाश, श्रीमन्नारायण, श्रीमोहन, श्रीराम, श्रीहरि, श्रुतिप्रकाश इत्यादि।

'शिव' महादेव शंकरका पवित्र नाम है। वह परम मङ्गलकारी एवं कल्याणकारी है। 'शिव' शब्दसे जलका भी बोध होता है और जल जीवनका मतलब रखता है। जहाँ जल है, वहाँ जीवन है। बिना जल जीवन नहीं। इसी-लिये शिवजीकी जटाओंसे गङ्गाजल बहनेका विधान रक्खा गया है। शिवका एक अर्थ 'मोक्ष' भी है। शिव सृष्टिका संहार करनेवाले और पौराणिक त्रिमूर्तिके अन्तिम देवता हैं। अतः अनेक नाम 'शिव' या 'शंकर' शब्दोंको लेकर बनाये गये थे। जैसे—शिवनन्दन, शिवस्वरूप, शिवप्रसाद, शिवाजी, शिवशंकर, शंकरलाल, शंभुलाल, शंकराचार्य, शिवशंकर-प्रसाद, शंकरस्वामी, शिवबालक, शिवरत्न, शिवसहाय, शिवमूर्ति, शिवसेवक, शिवपूजनसहाय, शिवनारायण, शिव-प्रताप, शिवनाथ, शिवदानसिंह, शिवकुमार, शिवचन्द्र, शिवदत्त, शिवचरण, महेश, महेशचन्द्र।

'ब्रह्म' ब्रह्मके तीन सगुण रूपोंमेंसे सृष्टिकी रचना करने-वाला हितकारीरूप है। यह विधाताका सूचक है। पितामह है। अतः 'ब्रह्म' शब्दको लेकर अनेक हिंदू नाम प्रचलित हुए—जैसे ब्रह्मानन्द, ब्रह्मसहाय, ब्रह्मदत्त।

'विष्णु' हिंदुओंके एक प्रधान देवता हैं जो सृष्टिका भरण-पोषण और पालन करनेवाले हैं तथा ब्रह्मका एक विशेषरूप माने जाते हैं। इस 'विष्णु' शब्दको लेकर अनेक नाम बने हैं, जो हमें संसारमें समाज-सेवाकी याद दिलाते हैं। कुछ नाम देखिये—विष्णुप्रसाद, विष्णुदयाल, विष्णुहरि, विसुनस्वरूप, विष्णुस्वरूप, विष्णुगुप्त, विष्णुचन्द्र, विष्णुशरण, विष्णुराम, विष्णुदत्त, विष्णुप्रभाकर इत्यादि।

'हनुमान्' बल, पराक्रम, वीरता, ब्रह्मचर्य, आज्ञा-कारिताके लिये प्रसिद्ध हैं। मनुष्य जब भय या संकटमें होता है, तो अतुलबल-स्वामी वीर महाबली हनुमान्‌का स्मरण करता है। इस नामके स्मरणसे मनमें शक्ति और साहस पैदा होता है। खोया हुआ आत्मविश्वास जाग्रत् होता है। मनुष्य अपना मानसिक संतुलन प्राप्तकर नवीन उत्साहसे कर्तव्य-पथपर आगे बढ़ता है। अतः महाबली हनुमान्‌को लेकर नाम बने हैं, जैसे—हनुमानप्रसाद, हनुमानदास, हनिवन्त, हनुमान्, महावीर, महावीरप्रसाद, पवनकुमार।

'जानकी' जनककी पुत्री, महापतिव्रता सीताजीके पावन चरित्रकी यादगारमें अनेक नाम चले हैं। यह बालिकाओंका नाम होता है, पर पुरुषोंके नाममें भी इसका प्रयोग किया गया है, जैसे—जानकीनन्दन, जानकीनाथ, जानकीलाल, जानकीजीवन, जानकीशरण, जानकीवल्लभ, जानकीप्रसाद, सीताराम, सीताशरण, सीतापति आदि।

'राधा' को लेकर कुछ नाम बने, जैसे—राधेलाल, राधा-रमण, राधाकृष्ण, राधावल्लभ, राधाशंकर, राधामोहन, राधिकादास, राधागोविन्द आदि।

लक्ष्मीके प्रति जनसाधारणकी बड़ी रुचि और श्रद्धा रही है। वे विष्णुकी पत्नी और धनकी देवी हैं। सांसारिक सुख और समृद्धि देनेवाली हैं। धन-दौलत उन्हींकी कृपासे मिलती है। शोभा और सौन्दर्यपर भी उनका अधिकार है। इसलिये बहुत-से हिंदू अपनी कन्याओंका नाम लक्ष्मी ही रखते हैं। पुरुषोंके नामोंमें भी 'लक्ष्मी' जीके पवित्र शब्दका प्रयोग हुआ है। इससे जनसाधारणका रुपये-पैसेके प्रति मोह प्रकट होता है। 'लक्ष्मी' से सम्बन्धित कुछ नाम देखिये, जैसे—'लक्ष्मी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत, लक्ष्मीधर, लक्ष्मीलाल, लक्ष्मीनिवास, लक्ष्मीशंकर, लक्ष्मी-नारायण, लक्ष्मीनिधि, लक्ष्मीकान्त, लखमीचन्द्र, लक्ष्मीप्रसाद, लक्ष्मीसागर, लक्ष्मीनाथ, लक्ष्मीदत्त ।

'ईश्वर' शब्दको लेकर ईश्वरीप्रसाद, ईश्वरचन्द्र, जगदीश्वर, इत्यादि नाम चले । यह भी महादेवका एक नाम है ।

इन्द्र हमारे एक प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं, जिनका स्थान अन्तरिक्ष है और जल बरसाते हैं । देवताओंके राजा कहे गये हैं । ये ऐश्वर्य और विभूतिके प्रतीक हैं । श्रेष्ठ हैं । बड़े हैं । अतः 'इन्द्र' शब्द और उसी अर्थको लेकर कुछ नाम प्रचलित हुए, जैसे—नरेन्द्र, महेन्द्र, इन्द्रजीत, इन्द्रदत्त, इन्द्रदेव, इन्द्रनाथ, इन्द्रनारायण, इन्द्रकुमार इत्यादि ।

'गणेश' हमारे ऋद्धि-सिद्धि देनेवाले प्रधान देवता हैं । उनकी कृपासे मनुष्यको लक्ष्यकी सिद्धि होती है और मार्गकी सब बाधाएँ क्षणमात्रमें दूर हो जाती हैं । हम जिस कार्यको कठिन समझते हैं, गणेशका नाम लेकर करते हैं और वह सदा पूर्ण होता है । अतः गणेशका स्मरणमात्र ही बाधा दूर करनेवाला है । कन्याओंका नाम प्रायः गणेशी रक्खा जाता है । 'गणेश' शब्दसे ये नाम प्रचलित हुए हैं—गणेश, गणपति, गजाधर, गणपतिचन्द्र, गणपतिसिंह, गणेशदत्त, गणेशप्रसाद, गणेशीलाल ।

गङ्गाजीके प्रति हिंदूमात्रके हृदयमें अगाध श्रद्धा है । उनमें स्नान करनेसे तीनों ताप दूर होते हैं । भारतीय मनीषियोंने इसे कल्याणकारिणी, कलिमलहारिणी, पतितपावनी तथा मोक्षदायिनी आदि सद्विशेषणोंसे विभूषित किया है । गङ्गाजीके अवतरणकालसे आजतक समस्त महात्माओंने उनकी महिमाका गान किया है । गङ्गा, गीता, गायत्री, गणेश हमारे यहाँके प्रेरणास्रोत हैं । अतः 'गङ्गा' शब्दको लेकर काफी नाम बने हैं जैसे—गंगाप्रसाद, गंगाधर, गंगा-नन्द, गंगापति, गंगाविष्णु, गंगाशरण इत्यादि ।

इसी प्रकार यमुना भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंसे सम्बद्ध है । 'यमुना' शब्दका भी इसी प्रकार प्रयोग किया गया है, जैसे—यमुनाप्रसाद, जमनाप्रसाद, जमनादास ।

चन्द्रमाको हम पूजते हैं । 'चन्द्र' आनन्ददायक और हर प्रकार मङ्गलकारी है । उपवासके बाद चन्द्रमाके दर्शन कर भोजनग्रहणका विधान है । अतः 'चन्द्र' शब्दको लेकर कुछ नाम बने हैं, जैसे—चन्द्रमौलि ( शिव ), चन्द्रलेखा, चन्द्रभूषण ( महादेव ), चन्द्रभाल ( शिव ), चन्द्रधर ( शिव ), चन्द्रचूड़ ( शिव ), चन्द्रगुप्त, चन्द्रमणि, चन्द्रशेखर ( शिव ), चन्द्रकिशोर, चन्द्रकान्त, चन्द्रदेव, चन्द्रप्रकाश, चन्द्रप्रभा, चन्द्रवली, चन्द्रमणि, चन्द्रभानु, चन्द्रमनोहर, चन्द्रमाराय, चन्दालाल, चन्द्रराज, चन्द्रसिंह, रामचन्द्र, चन्द्रावती, चन्द्रिकाप्रसाद, जैचन्दलाल, चन्दूलाल ।

'जगदीश' परमेश्वरका नाम है । इस शब्दसे विष्णु तथा जगन्नाथका बोध भी होता है । अतः 'जगदीश' नाम कल्याणकारी है । इसीसे हमारे यहाँ अनेक नाम चलाये गये । जैसे—जगदीश्वर, जगन्नाथ, जगदीशचन्द्र, जगदीश-नारायण, जगदीशप्रसाद, जगदीशसहाय, जगदीशसिंह, जगनलाल, जगनसिंह ।

'जय' शब्द विष्णुके एक पार्षदका नाम है । इससे 'लाभ' और 'विजय' का बोध होता है । जय लगानेवाला नाम संसारमें सर्वत्र विजयी होता है, शत्रुओंको हराता है । अतः 'जय' का प्रयोग अनेक हिंदू-नामोंमें किया गया है, जैसे—जयपाल ( विष्णु ), जयमंगल, जयकान्त, जयकिशोर, जयगोपाल, जयचन्द्र, जयदेव, जयदेवप्रसाद, जयनाथ, जयनारायण, जयराम, जयभगवान इत्यादि ।

'दिनेश' दिनके अधिपति हैं । इनसे सर्वत्र प्रकाश फैलता है । दिनेश ज्ञानका प्रतीक है । इसलिये हमारे यहाँ 'दिनेश' को लेकर भी कई नाम बने, जैसे—दिनेशचन्द्र, दिनेशदत्त, दिनेशनन्दन, दिनेशनारायण, दिनकर इत्यादि।

'देव'का अर्थ है देवता अर्थात् वह मनुष्य जो देवताओं-जैसे सद्गुण अपने चरित्रमें रखता है । देवता वह है जो समाजको अधिक-से-अधिक देता है और कम-से-कम लेता है । वह उच्चत्तम देवगुणोंसे विभूषित होता है । उसका जीवन ही समाजके लिये है । अतः हमारे यहाँ 'देव' शब्द लगाकर पवित्रताका बोध कराया गया । जैसे—देवदत्त, देवराज, देवनारायण, देवनाथ, देवव्रत, देवकृष्ण, हरदेव, रामदेव, कृष्णदेव, लक्ष्मणदेव, देवर्षि । इसी प्रकार 'देवी' शब्द भी प्रयुक्त हुआ, जैसे—देवीदत्त, देवीदयाल, देवीदास, देवीदीन, देवीप्रसाद, देवीरत्न, देवीलाल, देवीशरण, देवीसहाय । स्त्रियोंके नामोंके अन्तमें 'देवी' शब्द पवित्रताका द्योतक है । अधिकांश स्त्रियोंके नामोंके साथ हमारे यहाँ देवी जोड़ दिया जाता है । कुछ स्त्रियोंके नाम इस प्रकार हैं । जैसे—द्रौपदीदेवी, सावित्रीदेवी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिदेवी, महादेवी, सुमित्रादेवी, लक्ष्मीदेवी, दुर्गादेवी, कौशल्यादेवी, रमादेवी, गायत्रीदेवी, चित्रादेवी, मृदुलादेवी, सीतादेवी, राधादेवी, जानकीदेवी, लखमीदेवी, सरस्वतीदेवी, अनुसूयादेवी, नारायणीदेवी, विष्णुदेवी, रामदेवी, गिरिजादेवी, पार्वतीदेवी इत्यादि ।

'धर्म' शब्दका प्रयोग बच्चेकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ दृढ़ करनेके लिये अनेक स्थानोंपर किया गया है, जैसे—धर्मपाल, धर्मप्रियलाल, धर्मलाल, धर्मवीर, धर्मसिंह, धर्मेन्द्र, धर्मदत्त इत्यादि ।

'नन्द' आनन्द और हर्षका सूचक है । परमेश्वरका एक नाम है । विष्णुका नाम है । साथ ही नन्द गोकुलके गोपोंके मुखिया थे, जिनके यहाँ श्रीकृष्णको उनके जन्मके समय वसुदेवजी जाकर रख आये थे । अतः नन्दका भी काफी प्रयोग हुआ है, जैसे—नन्दकिशोर, नन्दकुमार, नन्ददुलारे, नन्दलाल, नन्दनन्दन ( श्रीकृष्ण ), हरिनन्दन, सुमित्रानन्दन, पार्वतीनन्दन; नन्दन, नन्दिनी, नन्दा ( दुर्गा, गौरीका नाम ); नन्दीश्वर ( शिव ) इत्यादि ।

इसी प्रकार हमारे समाजमें असंख्य पवित्र नाम हैं जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे हमारे धर्म, संस्कृति, वेद, पुराण, पवित्र तीर्थ, नदी, ऋतुसे संयुक्त है । जिस बच्चेमें हम-जैसे गुणोंका विकास करना चाहते हैं, वैसे गुणोंका बोध करानेवाला नाम ही चुनना चाहिये । हमारे यहाँ नारियोंके भी असंख्य पवित्र नाम हैं जो देवियों, पतिव्रताओं, विदुषियों या वीराङ्गनाओंके नामोंपर हैं । अपने बालक-बालिकाको उच्चतम, श्रेष्ठतम और पवित्रतम धार्मिक नामसे ही सम्बोधित कीजिये । इससे आप, वह बालक, परिवार, नगर, देश सभीका कल्याण होगा । प्राचीन गौरवमयी संस्कृतिकी यादगार तरोताजा बनाये रखनेके लिये ये नाम महत्त्वपूर्ण हैं ।

नामका चुनाव बहुत सूझ-बूझसे कीजिये ।*

# प्रत्येक अहिंसाप्रेमीका कर्तव्य

## ( मांसाहारके बढ़ते हुए प्रचारको रोकना )

( लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा )

भारतीय संस्कृतिमें अहिंसाको बहुत ही महत्त्व दिया गया है । क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणीकी रक्षाका प्रयत्न करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है । जब-जब पशु-बलि और मांसाहारका प्रचार बढ़ा तो कई महापुरुषोंने उसका जोरोंसे विरोध करके जनतामें अहिंसाका व्यापक प्रचार किया । यह ठीक है कि शरीरको टिकानेके लिये आहारकी आवश्यकता है, पर इसका यह मतलब नहीं कि हम जो भी चाहें, खाते रहें । प्रकृतिने ऐसी अनेक वनस्पतियोंका सृजन किया है और मानवने भी धान्यादिका उत्पादन करके अपनी खाद्य-समस्याका भलीभाँति समाधान कर लिया है । उन सब खाद्य वस्तुओंसे हमारा जीवन अच्छी तरह चल सकता है । शरीरके टिकानेके लिये जिन पोषक तत्त्वोंकी आवश्यकता है, वे सभी तत्त्व विविध प्रकारके शाकाहारमें मिल जाते हैं और स्वाद तथा जायकेमें भी कमी न आये, इसलिये उन

* हमारे पूर्वजोंकी यह बुद्धिमानी तथा भगवन्निष्ठा थी कि वे नामकरणमें प्रायः ऐसे ही नाम रखते तथा घरमें, पत्रव्यवहारमें, परस्पर मिलनेमें भी ऐसे शब्दोंका उच्चारण करते जिनसे भगवान्का सम्बन्ध होता । पत्रोंमें सबसे ऊपर ॐ, श्रीहरि, श्रीरामजी आदि लिखते । पत्रोंमें अमुकसे अमुककी जयरामजीकी, रामराम, जयगोपाल, जयमाताजी बंचना; मिलनेपर जयठाकुरजी, जयरामजी, जयश्रीकृष्ण, जयशंकर, जयमाताजी आदि कहते । भीख माँगनेवाले नारायण, हरि, जयशंकर, जयदुर्गे पुकारते, मरनेपर शवयात्रामें रामनाम सत्य है, हरिहरि आदि उच्चारण करते । नहाते समय भगवान्का नाम, सोते समय भगवान्का नाम, उठते ही भगवान्का नाम, जम्हाई लेते भगवान्का नाम—इस प्रकार प्रथाके रूपमें ही दिनमें कई बार सहज ही भगवान्के मङ्गलमय नामोंका उच्चारण हो जाता । अजामिलने बच्चेका नाम 'नारायण' रक्खा था और अन्तसमयमें 'नारायण' नामका उच्चारण करके वह पवित्र हो गया । यह हमारी पवित्र संस्कृतिका ही एक अङ्ग था । अब कलात्मक नाम रक्खे जाते हैं । पढ़े-लिखे लोगोंके पत्रव्यवहार आदिमें तो कहीं भूलकर भी भगवन्नामका सम्पर्क नहीं आ पाता । यह वास्तवमें बहुत बड़ी हानि है । इस ओर ध्यान दिया जाय तो अच्छा है । —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाद्य-पदार्थोंको अनेक रूपोंमें तैयार करनेकी विधियाँ प्रचलित हुईं।

आहारका प्रभाव मनुष्यके विचारोंपर भी पड़ता है। इसलिये हमारे यहाँ आहारको तीन भागोंमें विभाजित कर दिया गया—तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। और मनुष्यकी वृत्तियोंको भी इन्हीं तीन नामोंसे विभाजित करके बतला दिया गया। सात्त्विक वृत्तिके इच्छुक मनुष्योंको तामसिक और राजसिक आहार नहीं करनेकी सलाह दी गयी है। मांसाहार तामसिक है। इसमें पशु-पक्षी आदि निरीह और मूक प्राणियोंकी प्रत्यक्ष हिंसा होती है। इसलिये मांसाहारका निषेध किया गया और शाकाहारके अधिकाधिक प्रचारका प्रयत्न किया गया। महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थोंमें मांसाहारके निषेधसम्बन्धी प्रचुर उल्लेख पाये जाते हैं।

यह सही है कि भारतमें शाकाहारी और मांसाहारी दोनों तरहके लोग निवास करते हैं। जहाँ-जहाँ अहिंसाके प्रचारकोंका प्रभाव बढ़ा, उन प्रदेशोंमें शाकाहारका ही अधिक प्रचार है। राजस्थान, गुजरात इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। बंगाल, आसाम, पंजाब आदिमें भी जैन एवं वैष्णव-धर्मके अनुयायी तो शाकाहारी ही मिलेंगे। जब पशु-पक्षीकी हिंसाके बिना भी हम अच्छी तरह अपनी जीवन-रक्षा कर सकते हैं अर्थात् शाकाहारी खाद्योंकी कोई कमी नहीं है और यदि कहीं कमी है भी तो उसकी पूर्ति थोड़ेसे प्रयत्नसे हो सकती है; तब मांस, मछली, अंडे आदिके भक्षणका प्रचार भारत-सरकार करे, जो गांधीजीका अनुयायी अपनेको बतलाती है, तो बहुत ही आश्चर्य और दुःख होता है। वर्तमानमें राष्ट्रिय एवं प्रादेशिक सरकार बड़े-बड़े कसाईखाने खोलने जा रही है और मछली तथा अंडेकी उत्पादनवृद्धिके लिये लाखों रुपये खर्च कर रही है। हजारों बंदरों और पशु-पक्षियों आदिको मारनेके लिये विदेशोंमें भेजा जा रहा है। मानव-जीवनके लिये बहुत ही उपयोगी गाय-बैल-जैसे जानवरोंकी हत्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है तो प्रत्येक अहिंसा-प्रेमीके दिलमें एक गहरा आघात लगता है कि अपनी ही सरकार जनताकी बात नहीं सुनती; उसके लाख विरोध करनेपर भी हिंसा-प्रचार एवं वृद्धिसे विरत नहीं होती तो इसे जनतान्त्रिक सरकार कैसे कह सकते हैं? गो-वध न होनेके लिये कई वर्षोंसे और काफी प्रयत्न हुआ, पर खेद है कोई अच्छा परिणाम नहीं आया। और अभी जो देवनार आदिमें बहुत बड़े यान्त्रिक कसाईखाने करोड़ों रुपयेके खर्चसे सरकार बना रही है, उसका भी काफी विरोध किया जा रहा है; पर सरकार टस-से-मस नहीं हो रही है। इस स्थितिमें समस्त अहिंसाप्रेमियोंको सङ्गठित होकर कोई ठोस प्रयत्न शीघ्र और अवश्य करना चाहिये। सरकारका कहना है कि भारतमें मांसाहारियोंकी संख्या भी बहुत बड़ी है और उनको ध्यानमें रखते हुए हमें यह सब करना पड़ता है। इसलिये सबसे पहला काम हमारा यही होना चाहिये कि मांसाहारके बढ़ते प्रचारको रोकें और शाकाहारका जोरोंसे प्रचार करें। गायकी नस्लको सुधारकर दूधका उत्पादन बढ़ायें। मांसाहारियोंको समझा-बुझाकर शाकाहारी पदार्थ ही खानेका अनुरोध करें।

शाकाहारके सम्बन्धमें एक विचारकने लिखा है कि 'शाकाहारके मानी क्या है? 'प्राणिमात्रके जीवनके प्रति मनुष्यकी श्रद्धा और आदर।' मानव-हृदयके विकासकी यह एक सीढ़ी है। हमारे अंदर कितनी मनुष्यता है अथवा उसकी कमी है, इसकी सीधी पहचान यही है कि दूसरोंके दुःखसे हम कितने प्रभावित और द्रवित होते हैं। हिंसा और हत्याको मनुष्य स्वभावतः बुरा मानता है। किसीको दुःख देना उसे स्वभावसे अच्छा नहीं लगता। इसलिये मांसाहार करनेवाले व्यक्ति भी, यदि पशु-पक्षियोंको मारते समय जो करुण क्रन्दन वे करते हैं, उस दृश्यको आँखोंसे देखें तो अवश्य उनके हृदयमें करुणाका संचार होगा और वे भविष्यमें मांसाहार न करनेकी ओर प्रवृत्त होंगे। कई बार तो कसाई भी पशु-पक्षियोंकी घबराहट और क्रन्दनसे प्रभावित होकर थोड़ी देरके लिये उनपर छुरा चलानेमें हिचक जाते हैं। हमें मानव-हृदयमें रही हुई करुणावृत्तिको प्रकटित करनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये। साधु-महात्मा तो तुरंत अहिंसा-प्रचारमें जुट जायँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मानवताकी आधार-पीठ--आस्तिकता

( लेखक--श्रीसुनहरीलालजी शर्मा, बी० ए०, साहित्यरत्न )

मनुष्यजीवन सार्थक और सफल कब हो सकता है, यह एक चिरन्तन विचार है। जीवनकी सफलताके लिये कुछ निश्चित आचरण करना पड़ता है। उन शास्त्रदर्शित आचरणोंको ही हम धर्माचरण कहते हैं। संसारमें मनुष्य सदा सफलताका ही इच्छुक है। घनघोर परिश्रमके पश्चात् वह विजयश्रीको आँखोंसे निरखना चाहता है, परंतु संसार बड़ा विचित्र है। उद्योगके साथ भाग्यका भी इतना प्रभाव रहता है कि सब उद्योग धूलमें मिल जाता है, सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। बड़े-से-बड़ा सहायक भी असफलताके गर्तमें गिरनेसे नहीं बचा सकता। मानव है—परतन्त्रताका एक परिदृश्यमान बंडल। वह शरीरसे रोगोंका शिकार है और मनसे सदा परिवर्तनशील जगत्के चिन्तनमें व्यस्त अर्थात् वह उभयरूपसे परतन्त्र है। शरीर और मनसे परतन्त्र उसके अंदर वही एक चैतन्यकी एक चिनगारी जलती है। वह स्वयं चैतन्यका एक अधिष्ठान है। परंतु वह इसकी खबर नहीं रखता।

हम अपने-आपको आस्तिक मानते हैं। भगवान्का अस्तित्व तथा उसकी सत्ता माननेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है और नास्तिक तो दालमें नमककी भाँति हैं। परंतु वह आस्तिकता जो धर्मकी जननी, धर्मकी आत्मा है बहुत ही दुर्लभ वस्तु है। वह भगवत्-कृपासे, भगवत्प्रसादसे ही मिलती है। दयामय भगवान् जब स्वयं जीवके हृदयके नेत्र खोल देते हैं और जब श्रद्धा तथा विश्वासकी आँखोंसे अपने हृदयस्थ एकमात्र सर्वेश्वरको हम देख लेते हैं, तभी हमारे जीवनमें वास्तविक आस्तिकताका प्रादुर्भाव होता है। भगवान्की सत्ता मनवानेसे कोई नहीं मानता। तर्क, युक्ति आदि साधन भगवान्की सत्ताको प्रमाणित करनेमें निरन्तर असमर्थ रहे हैं और रहेंगे।

भगवान् हैं—इतना मान लेनामात्र ही पूर्ण आस्तिकता नहीं है। हाँ, प्रारम्भिक दशामें आस्तिकताका श्रीगणेश यहींसे होता है। भगवान्की सत्ताको स्वीकार करना आस्तिकताका क-ख-ग है। यहाँसे उसका प्रारम्भ है। क्रमशः सामीप्य या सांनिध्यका बोध होने लगता है। वास्तवमें आस्तिकता वह अनुभूति है जिसमें अदृश्य शक्ति बिल्कुल समीप दीखती है। आस्तिकता ईश्वरके सांनिध्यकी अनुभूति है। वह इस बातकी अनुभूति है कि ईश्वर हमारे अति निकट और सदा साथ हैं। आस्तिकता जगत्को हरिमें और हरिको जगत्में ओतप्रोत देखती है और यह अनुभव करती है कि हरिके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है, सब प्रभुमय ही है। यथा—

**'ईशावास्यमिदं सर्वं' 'वासुदेवः सर्वमिति'।**

अथवा—

'सीय-राममय सब जग जानी'

इस 'है' कि अनुभूति तभी हो पाती है, जब मनुष्य जगत्के कोलाहलसे दूर, एकान्तमें, बाह्य जगत्से आँखें बंदकर अन्तरस्थ ईश्वरको एवं अन्तर्जगत्को अपने अन्तरके नेत्रोंसे निरखने लगता है। यह ललक ही सच्ची साधनाको जाग्रत् रखती है और भगवान्के द्वारतक पहुँचा देती है। आस्तिकताके इस अनुपम प्रकाशमें तर्क-युक्तियाँ सब विलीन हो जाती हैं। तर्क श्रद्धामें और युक्ति तथा बुद्धि भक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है।

एक प्रमाण विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

भरण, पोषण, उत्पादन तथा गर्भसे बहिर्गमन—इन सब कार्योंमें यदि भगवान्का वरद हस्त रक्षकका काम नहीं कर रहा है तो कौन कर रहा है? क्या आप इसे प्रकृति या निसर्ग कहकर टाल देंगे? वास्तवमें अन्धी प्रकृति कर ही क्या सकती है, जबतक राह दिखानेके लिये कोई चेतन न हो। मृत पिताके पैरके टेढ़े होनेकी आशङ्का भी किसीको न थी, परंतु पुत्रके टेढ़े-मेढ़े विकृत पैरने पिताके दोषका उद्घाटन कर दिया। पिताकी खल्वाटता पुत्रके माथेपर झलकती है। इस अचूक और अखण्ड नियमके भीतर भी नियन्ताकी असीम सत्ताका पता चलता है। जहाँ भी देखिये—नियन्ताकी सूचना मिले बिना नहीं रहती। परम सत्य परमात्माके अस्तित्वकी सूचना सर्वत्र मिलती है।

इस प्रकार आवरणसे निरावरणकी ओर, स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर, ठोससे तरलकी ओर चलती हुई साधना एक ओर जहाँ मार्गके श्रम और तपका बोध करती है, वहीं उसे इसी श्रम और तपसे आगे बढ़ चलनेकी सुखमयी प्रेरणा प्राप्त होती है। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती है, उधरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंढी बयारकी आर्द्रता और स्निग्ध सुगन्धकी मधुरता उसके अन्तस्तलको भिगोने लगती है।

शिशु चलना सीख रहा है। माँ दूर खड़ी चुटकियाँ बजा रही है। माँकी ओर देखता हुआ बाँह फैलाये, गिरता-पड़ता बालक माँको छूना चाहता है। माँ जानती है कि यह अभी अबोध और सुकुमार है, वह उसे श्रमित करना नहीं चाहती। उसे गिरता देखकर उसका हृदय कटने लगता है; परंतु उसे बच्चेको चलना सिखाना है। बच्चा जितना ही आगे बढ़ता है, माँ जरा-सी पीछे खिसक जाती है, पर उसे गिरता देखकर, थकता देखकर उसे दौड़कर झट गोदीमें छिपा लेती है। माँकी गोद पाते ही बच्चेका सारा श्रम दूर हो जाता है। बच्चेके शरीरकी चोट माँके हृदयकी चोट है। परंतु चलना कैसे आयेगा। नन्हे, नन्हे सुकुमार पैरोंमें बल कैसे आयेगा। अतः माँ फिर चलना सिखाती है।

आस्तिक जीवनकी ठीक यही गतिविधि है। आरम्भमें वह एक परोक्ष सत्ताको भयभीत हृदयसे स्वीकार करता है। परंतु वही सत्ता उसे इस भयसे मुक्त कर पिताके प्रेमका आस्वादन कराने लगती है। परंतु इस प्रेममें भी ऐश्वर्य-की मात्रा रहती है।

माताकी प्रेरणा और संकेतसे उसीकी अक्षय शक्तिके द्वारा यह सब कुछ हो रहा है। यह तो है ही, परंतु साथ ही यह सब कुछ माताके प्यार और करुणासे अनुप्राणित है। एक परमाणुसे लेकर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तक सबमें माताका प्यार झलक रहा है। इसलिये वहाँ कुछ भी अशिव और अशुभ नहीं हो सकता। प्रलय और संहारके गर्भमें नवीन सृष्टिका सृजन संनिहित है। अन्धकारके हृदयमें प्रकाश खेल रहा है। आस्तिक दृष्टि ही परिवर्तित हो जाती है। वह मृत्युमें जीवनकी, दुःखमें सुखकी, अन्धकारमें प्रकाशकी कल्पना नहीं करता। प्रत्युत उसके सामने मृत्यु, दुःख और अन्धकार आते ही नहीं। उसकी दृष्टिमें इनकी सत्ताका बोध हो जाता है। अतएव उसे अंदर-बाहर सर्वत्र ही **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** की झाँकी होती है। इस झाँकीका समय क्षण-दो-क्षण, घंटे-दो-घंटे, मास-दो मास सालोंकी सीमा बाँध कर नहीं आता; यह तो जब प्राप्त होती है तब जन्म-मरणकी संगिनी बन जाती है। सब कुछ छूट जाता है परंतु यह नहीं छूटती। जिसने सच्चे हृदयसे एक बार भी आस्तिकताका दर्शन किया, वह सदाके लिये उसका और वह सदाके लिये उसकी हो जाती है। वह तो पुकारकर कहता है—

जल थलमें अरु खड्ग खंभमें जहँ देखो तहँ राम हि राम॥

वह सदाके लिये निर्भय, निर्द्वन्द्व तथा निश्चिन्त हो जाता है। उसका यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि जन्म और मृत्यु प्रभुकी दो भुजाएँ हैं, जिनके प्रगाढ़ आलिङ्गनमें हम बधे हुए हैं।

आँखवालेके लिये मिट्टीका एक कण, दूबकी नन्हीं-सी पत्तीपर टिकी हुई ओसकी बूँदें, फूलकी एक पँखड़ी भगवान्‌की सत्ताकी अनुभूति, उसकी असीम करुणा और प्रीतिके रसास्वादनके लिये आमन्त्रण दे रही है। जो देखना ही नहीं जानते, उनके लिये अनन्त आकाश, अथाह समुद्र, असंख्य नक्षत्र, महामहिम हिमालय, पतितपावनी माँ गङ्गासे भी कोई प्रेरणा, कोई उद्बोधन, कोई सूझ नहीं मिल सकती।

हमको भगवान् इन आँखोंसे चाहे न दिखायी दें, पर यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि वे सदा-सर्वदा हमारे पास निवास करते हैं। कभी भी हमको छोड़कर अलग नहीं होते। पर हमारा पूरा निश्चय न होनेसे हम भूले हुए हैं। इसीसे अशान्तिका अनुभव करते हैं। हीरोंका हार अपने गलेमें ही है। वह कपड़ोंसे ढका है। इसी बातको भूल जानेसे मनुष्य उसे बाहर ढूँढ़ता है और न मिलनेपर दुखी होता है। जब याद आ गया, कपड़ा उठाकर देख लिया कि हार मिल गया। इसी प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं। भगवान्‌की कृपाका, उनके अस्तित्वका अटल विश्वास बना रहे—ऐसी उत्तम चाह होनी चाहिये।

यह कभी मत समझो कि भगवान्‌के घरमें, भगवान्‌के हृदयमें हमारे लिये स्थान नहीं है। हमको वे अपने हृदयमें ही रखते हैं और सदा वे हमारे हृदयमें ही रहते हैं। पर सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते। इसमें भी उनका मङ्गलमय रहस्य ही है। अतएव सदा सब प्रकारसे उनका मङ्गलमय स्मरण करते रहिये, इसीमें हमारा कल्याण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आधुनिक विज्ञानकी अपूर्णता

( लेखक—श्रीगोपालजी गुप्त )

## ( भावानुवाद )

अंग्रेजी पढ़ा-लिखा आधुनिक कोई भी व्यक्ति जबतक किसी बातको विज्ञानका समर्थन नहीं पाता, उसकी सत्यताको स्वीकृत नहीं करता और जिस किसी कार्यमें वैज्ञानिक आधार दिखायी नहीं देता, उसे लोक-भ्रमकी संज्ञा देता है। इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें पाये जानेवाले अनेक आचार-विचार, कार्य-व्यापार एवं विविध परम्पराओंको अशास्त्रीय लोक-भ्रम प्रमाणितकर उस-उस समयकी उपज कह देता है और 'आज उनकी आवश्यकता नहीं है' कहकर उनके विच्छेदपर तुल जाता है। धन-मान-प्रचारके साधन एवं शासनसत्ता भी आज ऐसे ही सुशिक्षित वर्गके हाथमें आ गयी है और उनकी सहायतासे भारतीय संस्कृतिके विभिन्न आविष्कार नष्ट करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। यदि कोई व्यक्ति उदारमतवादी है तो 'परिस्थितिके प्रभावसे वे आचार स्वयमेव विलुप्त हो जायँगे'—इस दृष्टिसे वह उनके प्रति उपेक्षाका भाव प्रकट करता है। पुराने विधि-निषेध तो अब लुप्त-से हो गये हैं। भारतीय संस्कृतिप्रणीत इन विधि-निषेधोंमें कुछ शास्त्रीयता होगी, इसपर उसका विश्वास ही नहीं होता। परंतु अब स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके बाद बदली हुई परिस्थिति और जागतिक वैचारिक अव्यवस्थाके कारण सुशिक्षित-वर्गमें राष्ट्रीय अस्मिता सजग हो रही है और भारतीय संस्कृतिके अध्ययनकी ओर उसकी कुछ दृष्टि जा रही है। यह शुभ लक्षण है।

आधुनिक विज्ञानके चमत्कारोंको देख उससे प्रभावित होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। उसकी कसौटीपर खरी उतरी हुई बातोंको भी अपनाना अनुचित नहीं है। परंतु विज्ञानकी कसौटीपर किसी भी बातकी जाँच करनेमें एक बहुत बड़ी भूल हो रही है जो इन पढ़े-लिखोंके ध्यानमें नहीं आती। विज्ञान शब्दसे प्रायः आधुनिक भौतिक विज्ञानका ही बोध होता है। इस भौतिक विज्ञानकी सीमा वह नहीं जानता। बस, यही उसकी सबसे बड़ी भूल है। उसे समझना चाहिये कि आधुनिक भौतिक विज्ञान अभी पूर्णतया विकसित नहीं हुआ है। जिन बातोंका स्पष्टीकरण इस भौतिक विज्ञानके द्वारा आज नहीं किया जा सकता, सम्भव है कल उसका विकास होनेपर स्पष्टीकरण उपलब्ध हो सकेगा। यह बात आधुनिक सुशिक्षित वर्गके ध्यानमें ही नहीं आती। यह वह अच्छी तरह जानता है कि विज्ञानके नित्य-नये चरण ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों ज्ञानका क्षेत्र भी संवर्धित होता जा रहा है। एक उदाहरणसे यह बात सुस्पष्ट हो जायगी। भारतीय तत्त्वज्ञानका एक महान् सिद्धान्त यह है कि दुनिया जैसी दीखती है वैसी नहीं है। वह एक प्रतीयमान वस्तु है, कोरा भ्रम-जाल है। रज्जु-सर्पका दृष्टान्त सभीको ज्ञात ही है। अब इस सिद्धान्तका समर्थन आधुनिक भौतिक विज्ञान भी करने लगा है। आधुनिक पदार्थविज्ञानके अनुसार निखिल विश्वका मूल कारण विद्युत्कण माना गया है। सर्वत्र गतिशील विद्युत्कणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसे स्वर्णसे बनी हुई समस्त चीजोंमें स्वर्णके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उन विद्युत्कणोंके कारण ही मनुष्यको विविध नामरूपात्मक जगत्का भान होता है। इस प्रकार आधुनिक पदार्थ-विज्ञान उस पुरातन सिद्धान्तका ही अनुमोदन कर रहा है। तथापि दोनोंकी ही मान्यताओंमें विशेषतः विश्वके मूल कारणके स्वरूपके विषयमें महदन्तर है। भारतीय मान्यताके अनुसार जो मूल कारण ब्रह्म कहा गया है, वह विद्युत्कणसे अनन्तगुना सूक्ष्मातिसूक्ष्म ही नहीं, उनसे अनिर्वचनीय भी है। कबीरके शब्दोंमें 'पुहुप बास ते पातला ऐसा तत्त्व अनूप' है। आधुनिक वैज्ञानिकोंके अब यह ध्यानमें आ रहा है कि जिस अवकाशमें ये विद्युत्कण भ्रमण करते हैं, वह अवकाश भी विद्युत्कणकी अपेक्षा कई गुना सूक्ष्म है, एक वस्तुतत्त्व मात्र ही है। परंतु उसका ज्ञान प्राप्त करा देनेमें समर्थ अतिसूक्ष्म प्रयोगसाधन मात्र आज वैज्ञानिकोंके पास उपलब्ध नहीं है। साधनोंकी सूक्ष्मता यदि वे बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं तो उस सूक्ष्मतम कारणका ज्ञान हो सकता है। तात्पर्य यह कि आधुनिक विज्ञानकी प्रगतिके लिये अभी भी बहुत कुछ गुंजाइश है।

आधुनिक सुशिक्षितोंकी यह भी एक बहुत बड़ी भूल है कि वे इस विज्ञानके प्रयोग-क्षेत्रमें आनेवाली बातोंके अतिरिक्त और सबको भ्रमात्मक मानते हैं। परंतु वैज्ञानिकों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ध्यानमें यह बात आ चुकी है कि अखिल ब्रह्माण्डका अल्पांश ही आधुनिक विज्ञानके प्रायोगिक कक्षमें आता है अर्थात् जो शेषांश इस कक्षसे परे है, उसमें सत्यांश कम है; कहनेका भी अब कोई औचित्य नहीं रहा है। भारतीय संस्कृतिमें जो अनेक साधन अथवा धार्मिक आचार बतलाये गये हैं, उनका मूल तत्त्व यह है कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्थूल-सूक्ष्म-सूक्ष्मतर आदि सप्त स्तर हैं। इन्हींको सप्तलोक भी कहते हैं और इन सप्तलोकोंमें रहनेवाले जीवोंका पारस्परिक सम्बन्ध भी होता है। हमारी इन्द्रियोंको प्रतीत होनेवाली सृष्टि स्थूल स्तरके अन्तर्गत आती है। इसीको भूः कहते हैं। भुवःलोक, स्वःलोक अर्थात् स्वर्गलोक उससे भी सूक्ष्मतर सृष्टिके स्तरके अन्तर्गत आते हैं। जिस प्रकार विद्युत्कण-पुञ्ज इस कागजमें व्याप्त होनेपर भी इससे भिन्न हैं, इसी तरह स्वर्गलोक आदि भी इस भूःलोकमें व्याप्त होकर भी उससे भिन्न हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिसे यह कहना कि स्वर्गलोक आदि अस्तित्वमें ही नहीं है; क्योंकि उनका अस्तित्व आजकी वैज्ञानिक कसौटीपर सिद्ध नहीं, होता सर्वथा भ्रमपूर्ण है; क्योंकि हम यह पहले ही बता चुके हैं कि विज्ञानके कक्षमें न आनेवाली बात भी सत्य हो सकती है। विज्ञानका रहस्य है—प्रायोगिक अनुभव करनेमें। प्रायोगिक अनुभव उस-उस प्रयोग-योग्य साधनोंपर ही निर्भर होते हैं; अतः स्वर्गलोक-जैसी सूक्ष्म सृष्टिका अनुभव करा देनेवाले सूक्ष्म साधन यदि आधुनिक विज्ञानके पास उपलब्ध नहीं हैं तो उसका अनुभव उसे कैसे प्राप्त हो सकता है ? किसी भी घटनाका अनुभव यदि विज्ञानकी सहायतासे प्राप्त न होता हो तो उसके कारण उस घटनाका अभाव कहना कदापि तर्कसंगत नहीं है; क्योंकि विज्ञानका अपूर्ण विकास या योग्य साधनोंका अभाव भी कारण हो सकता है। दूसरी बात यह भी है कि किसी भी सत्यताका अनुभव आधुनिक वैज्ञानिक-पद्धति एवं उसके साधनोंसे ही प्राप्त नहीं होता, अन्यान्य और भी साधनोंसे प्राप्त हो सकता है। तभी पाश्चात्त्य वैज्ञानिक प्रो० जे० ए० थाम्पसन्‌ने अपनी Introduction to Science नामक पुस्तकके १०७ पृष्ठपर लिखा है कि वैज्ञानिक वर्णन और धार्मिक अनुभवमें विरोध बतलाना गलत है—( It is a false antithesis to contrast Scientific descriptions and religious interpretations. )

आधुनिक वैज्ञानिक-पद्धतिकी उपयोगिता मर्यादित ही है। कुछ विशिष्ट प्रकारकी घटनाओंका ही अनुभव करानेकी पात्रता उसमें है। अन्य प्रकारकी घटनाएँ इस विज्ञानकी प्रयोग-पद्धतिकी सीमाके सर्वथा बाहरकी बातें हैं। उनका अनुभव पानेके लिये उनके अनुरूप विभिन्न प्रयोग-पद्धतिका अवलम्बन करना पड़ेगा। विज्ञानके विकासके इतिहाससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ज्यों-ज्यों नयी-नयी पद्धतिका या साधनका आविष्कार हुआ है, त्यों-त्यों सृष्टिकी नवातिनव बातोंका भी ज्ञान होता गया है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्रकी सहायतासे सूक्ष्म कोट-सृष्टिका एक विश्व ही नजर आया तो दूरदर्शक यन्त्रकी सहायतासे नक्षत्रोंका विश्व ज्ञात हुआ। निष्कर्ष यह कि आधुनिक वैज्ञानिक-पद्धति मर्यादित स्वरूपकी है और इस बातको न समझना ही आधुनिक सुशिक्षित-वर्गकी विवेक-शून्यता है।

आधुनिक विज्ञानकी यह मर्यादा मानवी विज्ञानके आधारपर समझमें आ सकती है। आधुनिक विज्ञानका उसकी कक्षाके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाला ज्ञान मानवी इन्द्रियोंके द्वारा ही प्राप्त होता है। विभिन्न यान्त्रिक साधन उस-उस इन्द्रियकी शक्ति बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं। तथापि इन्द्रियोंकी शक्ति सीमित ही होती है। इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण न होनेवाली किंतु मनुष्यके अनुभवमें आनेवाली सुख-दुःख-प्रेम-सौन्दर्य आदिकी घटनाएँ मिथ्या नहीं कही जा सकतीं। उनका अनुभव मनुष्य मनके द्वारा करता है; क्योंकि मनकी शक्ति इन्द्रियोंकी शक्तिकी अपेक्षा अधिक एवं सूक्ष्म है। परंतु यह मन इन्द्रियोंसे संलग्न रहनेवाला ज्ञात-मन ( Conscious mind ) है। अन्तर्मन या अज्ञात मन ( Unconscious mind ) की शक्ति उससे भी अधिक है। दूरश्रवण, दूरदर्शन आदि कार्य भी वह कर सकता है। इसका अनुभव वैज्ञानिकोंको भी आजकल होने लगा है। भारतीय धारणाके अनुसार मनकी शक्ति निस्सीम है; परंतु वह सामान्य मनुष्यमें सुप्तावस्थामें रहती है। यदि इस मनःशक्तिका विकास आधुनिक विज्ञान कर सका तो उसे अज्ञात विश्व भी अनुभूत हो सकेगा और इस विश्वकी शक्ति एवं साधनोंका उपयोग करके मनुष्य अपनी सामर्थ्य भी बढ़ा पायेगा। भारत इसका प्रयोग कर चुका है। योगशास्त्रका प्रणयन इसका प्रमाण है। सृष्टिका यह अंश आधुनिक विज्ञानको पूर्णतया अज्ञात है। योगशास्त्रके द्वारा ज्ञात होनेवाली सूक्ष्म या अतीन्द्रिय सृष्टिके आचार-नैसर्गिक नियमोंपर ही वैदिक धर्म एवं संस्कृतिके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारोंकी निर्मिति हुई है। इसी कारण यह आधुनिक मर्यादित विज्ञान यदि इन आचार-विचारोंपर कुछ भी प्रकाश डालता है तो यह उसकी अनधिकार चेष्टा समझी जायगी।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान कई बातोंमें आज भी अपूर्ण है। प्रयोग-सामर्थ्यकी मर्यादा होती है। यह बात अब आजके वैज्ञानिक भी सौभाग्यसे समझने लगे हैं। इतना ही नहीं, सूक्ष्मतम साधनोंके अभावमें विज्ञानकी अगली प्रगति अब कुण्ठित-सी भी हो गयी है। इसी कारण पाश्चात्त्य मनीषियों एवं वैज्ञानिकोंका ध्यान भारतीय योगशास्त्रकी ओर आकृष्ट हो रहा है। ऐसी परिस्थितिमें भारतीय संस्कृतिके आचार-विचारोंको आधुनिक विज्ञान एवं तज्जन्य यान्त्रिक सभ्यताकी कसौटीपर कसकर उनकी सत्यासत्यता या इष्टानिष्टता निश्चित करना मर्कट-चेष्टासे क्या कुछ कम घातक है?

# राजा बीरबलकी चेतावनी

(लेखक—श्रीगोवर्धनलालजी पुरोहित, एम्० ए०, बी०एड्०)

राजा बीरबल ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी हिंदी काव्यजगत्‌के लिये नये-से ही हैं। इन्होंने 'ब्रह्म' कवि के नामसे अपनी रचनाएँ व्रज-भाषामें लिखीं। वल्लभसम्प्रदायी छीत स्वामी इनके गुरु थे। अकबर भी राजाके वैष्णवधर्मसे पूरी तरह प्रभावित थे।

सम्राट् अकबरके समय राजा बीरबल उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच गये थे। राज्यमें ऊँचे-से-ऊँचा पद उन्होंने प्राप्त किया। परंतु राजा बीरबल सर्वाधिक सांसारिक वैभवमें फँसे नहीं और हरिभजनकी ओर निरन्तर उन्मुख रहे। यही कारण है कि इनके अधिकांश छन्दोंमें भक्ति और वैराग्यका संनिवेश है। उनके द्वारा विरचित निम्नलिखित सवैये मानवको एक चेतावनीके रूपमें हैं—

'सत हरि भजन जगत सब सपना।'

(१)

पेटमें पौढ़ि के पोढ़े महीपर, पालन-पौढ़ि के बाल कहाये।
आयी जबै तरुनाई तिया सँग, सेज पै पौढ़ि के रंग मचाये॥
छीरसमुद्रके पोढ़नहार को, 'ब्रह्म' कबौं चित ते नहिं ध्याये।
पौढ़त पौढ़त पौढ़त ही सों, चिता पर पौढ़नके दिन आये॥

(२)

गर्भ चढ़े पुनि सूप चढ़े, पलना पै चढ़े चढ़े गोद धना के।
हाथी चढ़े फिर अश्व चढ़े, रथ माँहि चढ़े चढ़े जोग धना के॥
बैरी औ मित्रके चित्त चढ़े, कवि 'ब्रह्म' भनै दिन बीते पनाके।
ईस कृपालुको जान्यौ नहीं, अब काँधे चले चढ़ि चार जना के॥

(३)

खायबो सोयबो बारहि बार, चमार के चामहु तें जल पीबो।
दाम के काम को लीबो दिवान सों काहु को लै करि काहु कौं दीबो॥
'ब्रह्म' भने जगदीसु न जान्यौ सु ऐसहिं भाँति बिना सुख जीबो।
भोर ते साँझ लों, साँझ ते भोर लों, काल्हि कियो सोई आजहुँ कीबो॥

(४)

जब दाँत न थे तब दूध दियो, अब दाँत भये कहा अन्न न दैहै।
जीव बसे जल में औ थल में, तिनकी सुधि लेइ सो तेरहु लैहै॥
जान को देत, अजान को देत, जहान को देत सो तोहूँ कूँ दैहै।
काहे को सोच करै मन मूरख, सोच करै कछु हाथ न ऐहै॥

(५)

पेट पर्‌यौ परि सूप पर्‌यो, पलना परिपाल कबै परिहै।
काम जर्‌यौ अरु क्रोध जर्‌यो, मद लोभ जर्‌यो तनहू जरि है॥
मूओ हुतो मरिबे को ही आयो है 'ब्रह्म' भनै बहुरो मरिहै।
करुनामय सो कर जोरे नहीं, ततो कीनी कहा ते कहा करि है॥

(६)

जो हित ज्यान्यौ नहीं जगदीस, कह्यौ चहे तोरी नहीं जम जेलहि।
'ब्रह्म' भने मनि दूरके क्रूर तू घूरि क्यारिन वार सकेलहि॥
दूसरो पेड़ो न ह्वै है न आहि, रे पेंडे को पाइ पहारन पेलहि।
खेलत खेलत खेलहिगो अब खेल सुखेल जु खेल न खेलहि॥

(७)

पेट ते आयो तु पेट को धावत, हार्‌यो न हेरत घामरु छाँहीं।
पेट दियो जिहिं पेट भरे सोई, 'ब्रह्म' भनै तिहि और न जाहीं॥
पेट पर्‌यौ सिख देतहि देत, पापिठ पेटहि पेट समाहीं।
पेट के काज फिरै दिव राति, सु पेटहु से परमेसुर नाहीं॥

(८)

काम कबूतर तामस तीतर, ग्यान गुलेलन मार गिराये।
पाखँडके पर दूर किये, अरु मोह की अस्थि निकासि ढराये॥
संयम काटि मसालो विचार को, साधु समाज ते ताहिहि लाये।
'ब्रह्म' हुतासन सेकि के बावरे, वैष्णव होत कबाब के खाये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देवालयोंका सर्वेक्षण, संगठन और संरक्षण

( लेखक—श्रीओंकारमलजी सराफ )

आज देवालयों, आश्रमों, मठों, गुरुद्वारों, विहारों, चैत्यों, उपासनागृहों, उपाश्रयों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रोंकी जो परिस्थिति जमींदारी-उन्मूलन, देशी राज्योंके विलयन एवं नाना प्रकारके कानूनोंके कारण हो गयी है, उनका सिंहावलोकन राष्ट्रीय आवश्यकता हो गयी है। यदि हम इसी समय सचेत होकर यह नहीं कर लेते हैं तो 'भविष्यमें क्या होगा' यह कहना कठिन है।

इसके लिये हमारी प्राथमिक आवश्यकता यह है कि सारे देशमें, सारे विश्वमें स्थापित हम अपने धार्मिक प्रतिष्ठानोंका सर्वेक्षण करें। उनकी आवश्यकताओं और व्यवस्थाओंकी जानकारी प्राप्त करें। देशके प्रत्येक राज्यमें—राज्यके प्रत्येक जिलेमें इनका विवरण प्रस्तुत करनेका उद्योग करें। इनके वर्तमान संचालकों, पुजारियों एवं व्यवस्थापकोंसे अपना सम्पर्क स्थापित करें। इसके लिये 'देवालय-संरक्षण-समिति कलकत्ता'ने एक कार्यक्रम देशके धार्मिक जनसाधारणके लिये प्रस्तुत किया है, वह इस प्रकार है—

## सर्वेक्षणका कार्यक्रम

(१) देशके प्रत्येक प्रान्तमें, राज्यमें सर्वेक्षण-कार्यके लिये ऐसे कर्मठ व्यक्तियोंकी टोलियाँ बनाना जो सर्वत्र पैदल भ्रमण करके प्रत्येक राज्यान्तर्गत प्रत्येक जिलेमें निम्न कार्योंको सफलतापूर्वक कर सकें।

(क) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रका विवरण प्रस्तुत करना।

(ख) प्राचीन और ऐतिहासिक धार्मिक स्थानके चित्र लेना।

(ग) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रकी आवश्यकताओं, क्षमताओंकी जानकारी प्राप्त करना।

(घ) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रके साधनोंको हृदयङ्गम करना।

(च) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रसे समितिका सम्पर्क स्थापित करना।

(छ) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रके संचालक या संचालकोंको समितिके साथ अपना सम्पर्क स्थापित करने एवं संगठनकार्यके लिये अग्रसर होनेके लिये उन्मुख करना।

(ज) प्रत्येक पंचायतके क्षेत्रमें समितिकी शाखाएँ स्थापित करना।

(२) प्रत्येक राज्यका सर्वेक्षण करके उसके विवरणोंको पुस्तकाकारमें सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये प्रकाशित करना।

(३) प्रत्येक राज्यके प्रत्येक जिलेमें धार्मिक केन्द्रोंके संचालकोंका जिला-सम्मेलन आयोजित करना और जिलेके धार्मिक केन्द्रोंकी आवश्यकताओं और साधनोंको समझकर उनको सहयोग देना, परामर्श देना—आवश्यकता पड़नेपर व्यवस्था करना।

(४) प्रत्येक राज्यके प्रत्येक जिलेमें जिला समितियोंके तत्त्वावधानमें धार्मिक केन्द्रोंके माध्यमसे जनसम्पर्क बढ़ानेके लिये, धर्मप्रचारके लिये, विभिन्न जन-कल्याणकारी कार्योंको प्रारम्भ करना, उनमें सरकारी सहयोग प्राप्त करना तथा जनसाधारणका सर्वतोमुखी सहयोग प्राप्त करना।

धार्मिक संगठनको सुदृढ़ और व्यापक बनानेके लिये यही प्राथमिक कार्यक्रम है। सारे देशमें पैदल भ्रमण करनेवाली ये टोलियाँ धार्मिक जागरणके लिये देशको तैयार करेंगी।

धार्मिक केन्द्रोंके संगठन और विकासके इच्छुक सज्जनों, विभिन्न धार्मिक एवं सार्वजनिक संस्थाओं, धार्मिक विचारसे काम करनेकी इच्छा रखनेवाले समस्त बन्धुओंसे यह निवेदन है कि वे देशके प्रत्येक राज्यमें, प्रत्येक जिलेमें, प्रत्येक गाँवमें, प्रत्येक पंचायती हल्केमें समितिके इस प्राथमिक कार्यक्रमको सफल बनाकर आगेके कार्यकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करें।

मेरा यह विश्वास है कि इस कार्यक्रमकी आवश्यकताका सभी बुद्धिमान् व्यक्ति अनुभव करेंगे। देशमें इस प्रकारका सर्वेक्षण अभीतक नहीं हुआ है। आजके इस धर्मविरोधी वातावरणमें—सरकारके धर्मविरोधी कार्योंको दृष्टिमें रखते हुए इस प्रकारके सर्वेक्षणकी आवश्यकता अत्यधिक बढ़ गयी है। इस सर्वेक्षणसे हमारे धार्मिक इतिहासपर, धार्मिक मान्यताओंपर, धार्मिक दृष्टिकोणपर अत्यधिक प्रकाश पड़ेगा।

इस कार्यक्रमके अनुसार सारे देशमें कार्य प्रारम्भ करना ही धार्मिक जगत्में जागृतिका शङ्ख फूँकना है।

मेरी चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुसे यह प्रार्थना है कि वह वे हिंदू जातिको वह सामर्थ्य प्रदान करें, जिससे कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वधर्मकी, स्वदेशकी, धर्मके इन केन्द्रोंकी रक्षा करनेमें सक्षम हो।

## धार्मिक संगठनका कार्यक्रम

सारे देशमें, प्रत्येक राज्यमें, प्रत्येक जिलेमें, प्रत्येक शहरमें, प्रत्येक पंचायती क्षेत्रमें, 'देवालय-संरक्षण-समिति' की स्थापना स्वतन्त्र रूपसे करें। इसमें प्रत्येक धार्मिक केन्द्रको, मन्दिर, मठ, आश्रम, चैत्य, उपाश्रय, विहार, गुरुद्वारों, उपासनागृहों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रोंको एवं उनके संचालकों, भक्तों और अनुयायियोंको सम्मिलित करें।

ग्रामसमितियोंसे प्रतिनिधि लेकर जिलासमितियोंका संगठन करना चाहिये। संगठन-कार्य ग्रामोंसे ही आरम्भ होना चाहिये। जिला-समितियोंके प्रतिनिधियोंसे राज्य-समितिका निर्माण करना चाहिये। इसी प्रकार देशके प्रत्येक राज्यमें 'देवालय-संरक्षण-समिति' की स्थापना होनी चाहिये।

सभी धर्म-प्राण हिंदुओंको अधिक-से-अधिक संख्यामें समितिका सदस्य बनाना चाहिये। प्रत्येक हलकेमें समितिके लिये काम करनेवालोंको, धार्मिक प्रवृत्तिके लोगोंको, राजनीतिसे दूर रहनेवालोंको इस धार्मिक और सांस्कृतिक संगठनमें सम्मिलित करनेका प्रयास करना चाहिये। गाँव-गाँवमें पैदल चलकर प्रत्येक वयस्क हिंदू स्त्री-पुरुषको समितिके उद्देश्य समझाकर समितिमें सम्मिलित होनेकी प्रेरणा देनी चाहिये। समितिकी डोरमें एक-एक देवालय, आश्रम, चैत्य, विहार, उपाश्रय, गुरुद्वारेको मालाके मनियोंकी भाँति पिरोया जाना चाहिये। प्रत्येक धर्मसेवकको समितिके उद्देश्योंके प्रचारार्थ अपने व्यस्त समयसे कुछ समय निकालकर अपने-अपने अञ्चलमें इस संगठनको मजबूत बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

सारे देशमें समितियोंका संगठन करनेके लिये साहित्यकी जो आवश्यकता हो, सर्वेक्षण फार्मोंकी जरूरत हो, उसे **'देवालय-संरक्षणसमिति १२, चौरंगी रोड, कलकत्ता १३'** के पतेसे पत्र लिखकर मँगा लेना चाहिये।

## संरक्षणका कार्यक्रम

आज हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम अपनी प्राचीन परम्पराको पुनः वर्तमान परिस्थितियोंका विवेचन करते हुए प्रारम्भ करें।

हमारी इस प्राचीन परम्पराको पुनः प्रचलित करनेका सारा उत्तरदायित्व हमारे धर्मके धर्मरक्षकों, आचार्यों, महन्तों, मठाधीशों, पुजारियों, उपाध्यायों, साधुओं, संन्यासियों, विरक्तों और धर्मवेत्ता विद्वानोंको ग्रहण करना होगा। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि हमारे धार्मिक प्रतिष्ठान जबतक स्वधर्मकी रक्षाके लिये अग्रसर नहीं होंगे, तबतक कोई भी कार्य नहीं किया जा सकेगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारे धार्मिक प्रतिष्ठान निम्न कार्यक्रमको अपनावें।

१–अपने-अपने अञ्चलकी शिक्षाका भार, निरक्षरताके कलंकको अपनी पवित्र धरतीसे दूर करनेका भार ये धार्मिक प्रतिष्ठान सँभालें। इनका अपना पाठ्यक्रम होगा। विश्वविद्यालयोंके साथ इनका कोई सम्पर्क नहीं होना चाहिये। इनके द्वारा निम्नप्रकारसे शिक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिये।

(१) संस्कृत, हिंदी एवं आञ्चलिक भाषाका ज्ञान कराना।

(२) धर्मके मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंको प्रत्येक छात्रको समझाना।

(३) छात्रोंको जीविकोपार्जनके लिये कुटीर-शिल्पोंकी शिक्षा देना।

इस कार्यके लिये अपनी आमदनीसे वे खर्च करनेका मार्ग अपनावें। जनसाधारणसे, अपने अञ्चलकी जनतासे सहायता लें। सरकारको इस विषयमें विवश करें कि वह इसके लिये जो धनराशि निकाली गयी है, उसमेंसे उनको सहायता दें। हमारा यह दृढ़ संकल्प होना चाहिये कि हम अपने अञ्चलसे निरक्षरताको हटा देंगे। अञ्चलवासी जनसाधारणको स्वावलम्बी बना देंगे। जब हम अपने अञ्चलकी जनताको समुन्नत बनानेमें लग जायँगे तो हमारी अभिवृद्धि भी जनताका कर्तव्य हो जायगा।

२–शिक्षाके साथ आयुर्वेदकी शिक्षा अनिवार्यरूपसे दी जानी चाहिये, जिससे कि किसी भी अञ्चलमें वैद्यका अभाव न रह सके।

३–अपने-अपने अञ्चलमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि सुबह-शाम ग्रामका प्रत्येक निवासी स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका, मन्दिरोंमें आयोजित प्रार्थनामें, आरतीमें सम्मिलित होकर भगवान्का प्रसाद ग्रहण करें।

४–प्रत्येक धार्मिक केन्द्रको अपने तत्त्वावधानमें गायें पालनी चाहिये, जिनका दूध भगवान्को भोग लगाकर ग्रामके शिशुओंको मन्दिरमें बिठलाकर पिला देना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५-**ग्रामसे कोई भी पशु** बाहर न जाने पायें, इसकी निगरानी रखनी चाहिये।

६-प्रत्येक धार्मिक केन्द्रको अपने यहाँ कम-से-कम दो छात्र सदाके लिये ऐसे रखने चाहिये जो संस्कृतके स्नातक बनें, आसपासके अञ्चलोंमें धर्मका प्रचार करें और मन्दिरकी व्यवस्थामें सहयोग दें।

ऐसा अनुमान करना अस्वाभाविक नहीं होगा कि देशमें कम-से-कम दस लाख या उससे ऊपर ही धार्मिक केन्द्र होंगे। यदि हम संरक्षणके इस कार्यक्रमको अपना लेते हैं तो २० लाख कार्यकर्ताओंको सदाके लिये देशके सर्वतोमुखी विकास कार्योंको धार्मिक केन्द्रोंके माध्यमसे अग्रसर करनेके लिये तैयार कर लेते हैं।

सर्वेक्षण, संगठन और संरक्षणका यही कार्यक्रम है जिसे देशके समस्त धार्मिक केन्द्रोंको अपनाना चाहिये। इससे सारे देशमें धार्मिक संगठनका वातावरण प्रस्तुत होगा, स्वधर्म और स्वदेशकी रक्षाकी प्रेरणा मिलेगी, धार्मिक केन्द्रोंमें फैली हुई अव्यवस्था दूर होगी और सारे देशमें एक नया जागरण आयेगा।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि धार्मिक केन्द्रोंके संचालक, व्यवस्थापक, सेवक, पुजारी, महन्त आदि सभी इस कार्यक्रमको अपना कर **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'** के आदर्शको मूर्त रूप देंगे।

---

# गोरक्षण और गोसंवर्धनकी भी उपेक्षा क्यों ?

( लेखक—गो० लाला हरदेवसहायजी )

**गोरक्षण और गोसंवर्धनके लिये दो बातें आवश्यक हैं—** गोवध-निषेधके अतिरिक्त चारे-दाने तथा आवश्यक साँडोंकी व्यवस्था। उचित था, जो गोचरभूमियाँ पड़ी हुई थीं, उन्हें सुरक्षित रखकर उन्नत किया जाता, पर दिन-दिन गोचर-भूमियोंको तोड़ा जा रहा है। पंजाबमें तो किसानोंको नोटिस देकर गोचरभूमिको फालतू बतलाकर सरकारने अधिकार कर लिया है।

दाने-खलीका निर्यात सन् १९५२-५३ में दस लाख रुपयेका था जो बढ़ाकर सन् १९५९-६० में १६ करोड़ रुपयेका कर दिया गया है। साँडोंकी तैयारीपर ध्यान ही नहीं दिया जाता। आवश्यकताका एक चौथाई साँड भी देशमें नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९५१ में दूधका उत्पादन ५२ करोड़ मन था, जो सन् १९५६ में घटकर ४७ करोड़ मन रह गया। वार्षिक दूधका उत्पादन कम होता जा रहा है। खेतीके लिये आवश्यक बैल नहीं। आज देशमें डेढ़ करोड़ बैलोंकी कमी है। बैलोंका मूल्य दिन-प्रति-दिन चढ़ता जा रहा है। यदि यही स्थिति रही तो न दूध मिलेगा और न खेतीके लिये आवश्यक बैल ही!

किसानको अधिक परिश्रम करनेके कारण पौष्टिक भोजन चाहिये, इसीलिये गाँवमें दूधका बेचना बुरा समझा जाता था। आज सरकार किसानकी उपेक्षा करके शहरोंमें दूध पहुँचानेपर लाखों रुपये खर्च कर रही है। शहरवाले तथा पैसेवालोंको अधिक माखन, क्रीम तथा दुग्ध-चूर्ण मिल सके इसके लिये बड़े-बड़े कारखाने तीसरी योजनामें खोलनेकी तजबीज की गयी है।

गुजरात, राजस्थान तथा हरियाना ( पंजाब ) का किसान प्रायः मछली, अंडा और मांस नहीं खाता। दूध और दूधकी बनी चीजोंपर ही उसकी शारीरिक शक्ति निर्भर है। यदि गाँववालोंके लिये आवश्यक दूध और बैलोंकी व्यवस्था नहीं की गयी तो खेतीका उत्पादन दिन-प्रति-दिन कम होता जायगा। किसानके भारतीय सेनामें अधिक संख्यामें भरती होनेके कारण किसानपर ही देशकी सुरक्षाका भार निर्भर है। यदि सरकारने गोरक्षण और गोसंवर्धनपर पूरा ध्यान नहीं दिया तो राष्ट्रीय-स्वास्थ्यको बड़ा नुकसान पहुँचेगा और आर्थिक ढाँचा टूट जायगा।

जैसा कि स्वामी दयानन्दजी सरस्वतीने कहा था कि 'गौ आदि पशुओंके नाश होनेसे राजा और प्रजाका विनाश होता है। गौकी उपेक्षा करनेसे न शासक बचेगा और न प्रजा ही सुखी रहेगी।' गाय बोलती नहीं, गायका वोट या मत नहीं, इसलिये आजके राजनीतिक वायुमण्डलमें उसका कोई स्थान नहीं!

उचित होगा कि हमारी सरकार, सरकारके उच्चाधिकारी तथा अन्य सब पक्षके माननीय सदस्य गोरक्षण और गोसंवर्धनपर ध्यान देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायोंके खाद्य गुँवार तथा राजस्थान और गुजरातसे गायोंकी निकासीके बाबत हमने पंजाब, राजस्थान और गुजरातके लोकसभा एवं राज्यसभाके सदस्योंको एक पत्र भेजा है, उसकी नकल नीचे दी जा रही है। पाठक भी इसपर विचार करके कुछ उपाय सोचें—

"मान्यवर महोदय !

हरियाना ( पंजाब ), राजस्थान और गुजरातके गोवंशकी शक्ति, स्वास्थ्य तथा दुग्धोत्पादन बहुत कुछ गुँवारपर निर्भर है, हल तथा गाड़ी चलनेवाले बैलोंको गुँवार देना अनिवार्य है।

कुछ वर्षोंसे भिवानीमें गुँवारका पौष्टिक भाग निकालकर अमेरिका भेजनेके लिये 'गम एंड गुवार फैक्टरी' जारी की गयी। बम्बई तथा अहमदाबादमें भी दो छोटी फैक्टरियाँ हैं। भिवानीके कारखानेका गुवार-गमका उत्पादन बढ़ानेके लिये 'दी हिन्दुस्तान गम कैमिकल लिमिटेड' कारखानेके नामसे इस उद्योगको चलानेका निश्चय किया गया है।

६ अप्रैल १९६२ को केन्द्रिय सरकारकी 'गोसंवर्धन-परिषद्' ने श्रीढेबरभाईकी अध्यक्षतामें पशुधनके लिये गुँवार-गमका तैयार करना हानिकारक बतलाते हुए सरकारका ध्यान इसके उत्पादनको निरुत्साहित करनेकी ओर दिलाया है। प्रस्तावकी एक कापी आपकी सेवामें साथ भेजी जा रही है।

कृपया आप वाणिज्य तथा उद्योगमन्त्री महोदयका ध्यान गोसंवर्धन कौंसिलके इस प्रस्तावको शीघ्र कार्यरूपमें परिणत करनेकी ओर दिलाकर कृतार्थ करें। एक दूसरी आवश्यक बातकी ओर आपका ध्यान दिलाना बहुत आवश्यक समझता हूँ। आशा है आप इन दोनों बातोंपर पूरा ध्यान देंगे।

( १ ) पंजाबसे प्रति वर्ष ५० हजार अच्छी दुधार और नौजवान गायें कलकत्ता और अन्य बड़े शहरोंको ले जाकर बर्बाद की जा रही हैं। उनके बछड़े कलकत्ता पहुँचते ही और गायें दूध सूखते ही कसाईकी छुरीके नीचे चली जाती हैं ! जिसके कारण आज पंजाबमें दूध-घीकी कमी तो होती ही जा रही है, अच्छी गायोंकी कमीके कारण अच्छे बैलोंकी कीमत इतनी बढ़ गयी है कि गरीब किसान खरीद नहीं सकता। इस निकासीपर रोक लगनी बहुत ही आवश्यक है।

( २ ) सन् १९५५ तक जिस राजस्थानसे एक भी बछड़ीकी निकासी नहीं होती थी। आज प्रतिवर्ष लाखोंकी संख्यामें गाय, बैल और विशेषतः छोटी-छोटी बछड़ियाँ कतलके लिये उत्तरप्रदेश, बम्बई, पंजाब तथा पाकिस्तानको ले जायी जाती हैं।

( ३ ) गुजरातसे भी इसी तरह गोवंश बम्बई प्रदेशके बड़े कसाईखानोंको ले जाकर मारा जाता है।

गायोंकी निकासीको रुकवानेकी कोशिश करें। यदि राज्य-सरकारें इसमें कुछ रुकावट समझें तो संविधानकी धारा ३०३ और ३०४ के अनुसार राष्ट्रपतिजीसे स्वीकृति ले लें।

कृपया इन दोनों बातोंके सम्बन्धमें अपने विचार पत्रोत्तर-से कृतार्थ करें।"

# तुम्हीं तत्त्वज्ञ, तुम्हीं पर-तत्त्व

छीनकर सहज सभी संसार, कर दिया मुझे अवस्तु असार।
पकड़ पाता न, हुआ लाचार, प्रकृतिका रहा न एक विकार ॥
रहे तुम केवल एक अनन्य, दृश्य-द्रष्टा न रह गया अन्य।
बोध यह नहीं किसीका जन्य, तुम्हीं अपनेसे अपने धन्य ॥
इन्द्रियाँ रहीं न इन्द्रिय-भोग, मिट गया सभी अविद्या-रोग।
समक्ष पाते न मर्म वे लोग, देखते प्रकृतिज जो संयोग ॥
हो गये भोग भोक्ता एक, मुक्ति-बन्धनका मिटा विवेक।
हो गये एक तमाम अनेक, कौन अब रक्खे किसकी टेक ॥
रहा कुछ भी न मान-अपमान, हो गया जीवन-मरण समान।
मित्र-अरिका न रहा कुछ ज्ञान, भेदका रहा न नाम-निशान ॥
कर रहे मधुमय नित्य विहार, आप अपनेमें ही अविकार।
स्वयं बन निराकार-सकार, रहित-इच्छा इच्छा-अनुसार ॥
शून्यसंकल्प समाधि-विभोर, नहीं संध्या-विभावरी-भोर।
कहीं भी कोई ओर न छोर, बने रहते जडवत् सब ओर ॥
कभी करते मधुमय आलाप, हरण कर लेते सब संताप।
न कोई तौल न कोई माप, नित्य स्वच्छन्द आपमें आप ॥
तुम्हारे ये समाधि-व्युत्थान, सृष्टि सुंदर, भयकर अवसान।
तुम्हारे सभी रूप निर्मान, निरतिशय निरुपम नित्य समान ॥
कभी करते अनुभव बन भिन्न, कभी दिखलाते भाव विभिन्न।
पर न पल होने देते खिन्न, कभी होते न स्वयं विच्छिन्न ॥
रहा अब कहीं न अहं ममत्व, तुम्हारा छाया सहज समत्व।
तुम्हीं बस हो 'मैं' तुम्हीं ममत्व, तुम्हीं तत्त्वज्ञ, तुम्हीं पर-तत्त्व ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सुन्दर सीख

परमारथ पथके पथिक थकित न हो पल एक। 'शरन' कुसंग कुपंथ तजि चलियो सहित विवेक॥
नवल कमलके फूल तुल जीवनको इतिहास। अलिकुल संकुल कुल विपुल पावै काल विनास॥
अधिक बिघ्न थोरो समय प्रियतमको घर दूर। मारग बोधक गुरु नहीं 'शरन' पाव किमि पूर॥
परेसान इंसान हैं परेसानकी सान। परेसान बिनु पिस 'शरन' जैसे पिसे पिसान॥
कृष्न 'शरन' बिन होयगो सूकर कूकर कूर। बिनु आदर दर दर फिरै कादर पाव न पूर॥
भू के भूखे भूखते भगवत भगती भूल। देख्यो सुन्यो न बिस्वमें बिना मूल फल फूल॥
इहि भौतिक संसारमें इक रस मिलन न होय। देख्यो सुन्यो न हो सकै कोटि जतन कर कोय॥
जुवती बन जौबन सुमन बिषय बासना बास। मन मधुकर मँड़रात नित फँस्यो आस दुख-पास॥
पंकज मधुके मधुप तुम करत कटेरी पान। कंटक जाल बिसालमें उरझि उरझि मरि जान॥
ऐसो जग संयोग नहिं जामैं हो न बियोग। सुख ऐसो नहिं हो सकै जामें दुःख न रोग॥
आनेमें हम एक हैं जानेमें हम एक। बिनु जाने जग-जालमें मनमाने जु अनेक॥
मैं जु करी बकरी मरी निकरी सगरी आँत। तव ताड़ित भइ दंड तें करती तू तू ताँत॥
निन्दक हिंसक कपट कटु कूट असत्य उचार। कलि कृतघ्न कामी कृपन 'शरन' न हो भव पार॥
चुगली उगली जा दिनाँ गल तें गरल महान। जुगनू अमित न हो सकैं कबहूँ सूर्य समान॥
तेज पुंज रबि ससि 'शरन' चुगली कारन आज। पर्ब पर्बपर पावहीं देखो दुःख समाज॥
नहीं बुराई राइ भर करो सुनो तुम कान। 'शरन' नैन निरखो नहीं होती हानि महान॥
चुगली उगली मंथरा केकयि कीन्ही कान। प्रजा राम सिय दुख भयो दसरथ त्यागे प्रान॥
नेक बनो नेकी करो नेकी नीक कहाय। बिनु नेकी नेंकहु नहीं कोई 'शरन' सहाय॥
प्रेम परसपर पूत पुनि संघ शक्ति सम्मान। कृष्न 'शरन' समसीलता उभय लोक कल्यान॥
तन नित सेवामें निरत, बचन निरत हरिनाम। मन नित प्रभुके ही 'शरन' लहै सुलभ हरिधाम॥

—श्रीरंगीलीशरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मायिक मुहूर्त

[ श्रीअरविन्दलिखित अँगरेजी कहानी 'फैण्टम आवर'का हिंदी अनुवाद ]

( अनुवादक—वशिष्ठ )

स्टर्ज मेनार्द अँगीठीके पाससे उठा और अंधेरी देते धुरमई, पीले कोहरेपर नजर डाली जो अपने विस्तारके गहरे परतोंमें लन्दनको लपेटे था। अपने हाथमें वह एक पुरानी पुस्तक लिये हुए था जिसे वह पढ़ रहा था; उसकी अँगुली अब भी पृष्ठपर थी और उसका मन, जो पूर्ण संतोषके साथ न सही, लेखककी कल्पनाओंके भावके प्रति प्रेरित था। यदि इन कल्पनाओंने उसके अनूठे भावको संतुष्ट किया तो उन्होंने उसकी विवेक-बुद्धिको उकताया भी। उक्त पुस्तकमें समय और स्वभावमें मध्यवर्ती एक पुराने रहस्यवादी गुह्यवेत्ता विद्वान्ने अध्यात्मविद्या-सम्बन्धी कल्पनाओंका विवेचन किया था, जिन्हें आधुनिक जगत्ने वोट देनेके डेरे एवं साहुकार पेठतक दौड़-धूप करनेके लिये बहुत दूर फेंक दिया है, जो बाह्य और प्रत्यक्षमें ज्ञानसे पारंगत है तथा जो आन्तर गुह्य जगत्की सीमाओंपर एक निश्चित अज्ञताके रूपमें अपने आधिपत्यको विस्तार देनेकी चेष्टा करता है। एक ऐसे युगके कठोर एवं नियत साधनोंके प्रतिकूल अनेक सूक्ष्मताएँ घटित हुईं; ग्रन्थकारका कथन था—केवल 'गुह्य'; क्योंकि हम एक कुंजीको अस्वीकार कर देते हैं जो प्रत्येकके अपने हाथमें है।

'रहस्योंका लेखक, भ्रान्त कल्पनाओंका व्यवसायी' स्टर्ज विचारने लगा, 'यहाँ बुने हुए इस भारभूत प्रतिरोधी जालेके पक्षमें कोई केवल न्यूनतम तथ्य पावे तो! किंतु जिस अनिश्चयतामें ये विचार विचरनेको संतुष्ट थे, उसकी अपेक्षा कोहरा कम स्थूल है।'

असामान्य किंतु विलक्षण चर्चाके एक वृत्तान्तमें जर्मन रहस्यवादी गुह्यवेत्ताने प्रतिपादन किया था कि दीप्ति, स्फुरणाके मूल कारणने एक अविराम सक्रियतासे विचारकी गतियोंपर मनोयोग दिया था, जो अपने रूपमें एक विशुद्ध, विपांडु या धुँधले प्रकाशकी आभास हैं। लेखकका कथन था कि मस्तिष्कके क्षिप्र व्यापारके गाढ़ क्षणोंमें अपने मस्तकों, प्रायः अपने चतुर्दिग्वर्ती समस्त परिसरको बैंजनी क्षण-प्रभाओंसे जगमगाते एक-एक भासुर वातावरणद्वारा आक्रान्त द्रष्टाओंके लिये एक साधारण अनुभूति थी। तब ही जब स्टर्ज इन अतिशयोक्तियोंपर आश्चर्य कर रहा था, उसकी स्मृतिमें स्फुरणा हुई कि वह स्वयं अपने बचपनमें ठीक ऐसी ही बैंजनी आभाएँ अपने मस्तकके पास देखा करता था और तबतक अपनी बालेश लहरोंको उनसे बहलाता रहा जबतक प्रौढ़तर वर्ष विस्मय, अविश्वास और इस आश्चर्यका द्रुत ह्रास न ले आये।

'क्या तब वहाँ जर्मनकी लहरियोंके लिये अनुभूतिका कुछ औचित्य था? ऐसी प्रवृत्तिद्वारा व्यर्थ ही उसने प्रतिरोधकी चेष्टा की। खिड़कीके बाहर कोहरेपर स्टर्जने अपनी नजर गड़ा दी और प्रतीक्षा करता रहा। जब वह अपने मस्तकमें एक विचित्र हरकत, नेत्रके प्रति अपनी क्षमताओंकी संकुलतासे जानकार हुआ, उसी क्षण कोहरेमें आये एक दृश्य बैंजनी स्फुरणाओंका तथा एक बढ़ती उत्तेजना उसके स्नायुमण्डलमें, जिसे उसका जिज्ञासु, विलक्षणतः, शान्त मन निरख रहा था। विचित्र आभास, अद्भुत ध्वनि, अतीत एवं आगामी अनुभूतिका एक सम्पूर्ण जगत्, किसी ऐसे अन्तराय-प्रतिकूल चढ़कर जो सम्पर्कका विरोध करता था, निश्चय ही उसपर उमड़ रहा था। चकित और अनुरक्त, किंतु अन्यथा क्षुब्ध नहीं, उसकी तर्क-बुद्धिने, जो घटित हो रहा था, उसका कुछ ब्यौरा पानेकी चेष्टा की। प्रयासको सहायता देना बेहतर समझ स्टर्जने जो देखा था उसके पुनरावर्तन या खण्डनके लिये कोहरेपर फिर दृष्टि गड़ा दी। अब और बैंजर्न स्फुरणाएँ नहीं थीं, किंतु निश्चय ही बाहर धूसरवर्ण कोहरे कुछ संकेत कर रहा, निरूपित, अभिव्यक्त हो रहा था। य उज्ज्वल हो गया, यह गोल हो गया, यह स्पष्ट हो गया! क्य यह मोहरा था या कुण्डल? अनुभूतिकी एक भग्नाश विरक्ति अपने सम्मुख एक घड़ीके अतिरिक्त और कुछ विचित्र न देखा। वह मुस्कराया और उस सुनिर्दिष्ट दृष्टिगत घड़ीसे कारनस पर रखी अपनी वास्तविक, रहस्यरहित, कामचलाऊ सहचरी की तुलना करनेको मुड़ा। उसका शरीर विस्मयके एव निर्घातसे तन गया। वस्तुतः वहाँ घड़ी थी—कोविदार-मुखी स्वर्णाक्षरी, वक्तकी कानूनगो, टोंकी बाके नवीस जो मध्य एक प्रचलित 'ब्रह्माकाल' पर सहज संतुलित और पंखोंवाल दो [illegible] किनारेपर; उसने लक्ष्य किया कि घड़ीकी सूइर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारह और पाँचपर जुट रही हैं और शीघ्र ही घंटा बजनेवाला है, किंतु इसके पार्श्वमें क्या थी यह छायामयी एवं अपरिचित सहचरी; सुप्रतिष्ठित, सुस्पष्ट, असलकी नकल, कोविदार-मुखी भी किंतु रजत-अक्षरोंवाली, दृढ़तया आधारित, पर सहज संतुलित नहीं, आठके घंटेकी ओर उसी सामीप्यसे संकेत करती हुई जैसा कि वास्तविक घड़ी पाँचके घंटेकी ओर ! उसने लक्ष्य किया कि इस टाइमपीसका चारका अंक साधारण रोमन संख्यामें अक्षरांकित नहीं था, किंतु चार लम्बाकार समानान्तर रेखाओंमें; तत्पश्चात् आभास लुप्त हो गया ।

एक चाक्षुष व्यामोह, इन्द्रजाल ! सम्भवतः एक मित्रकी बैठकमें किसी परिचित टाइमपीसका मनोभव प्रतिबिम्ब गाढ़तया दृग्गोचर हुआ । वस्तुतः, क्या यह परिचितसे कुछ अधिक नहीं था ? निश्चय ही, इसे वह जानता था,—इसे देखा था, स्पष्टतः, दृढ़तः—वह कोविदार-मुखी, वह रजताक्षरी, वह दृढ़ विभूषित आधार, वह चारके अङ्कतक ! किंतु कहाँ थी यह, कब थी यह ? उसकी स्मृतिमें किसी अद्भुत अन्तरायने भूले, खोये विस्तार, वृत्तान्तोंके लिये व्यर्थ भटकते उसके मनको भौंचक्का कर दिया ।

सहसा घड़ीने, उसकी अपनी घड़ीने पाँच बजाये, उसने यन्त्रवत् परिचित ध्वनियाँ गिनीं; तीव्र, स्पष्ट, एक धातुमयी प्रतिध्वनिसे समन्वित । और तब, कानके अपने विषयसे हटनेके पूर्व, बजने लगी दूसरी घड़ी, तीव्र नहीं; स्पष्ट नहीं, धातुमयी भी नहीं किंतु एक कोमल, सुरीले घंटनादमें और अन्तमें एक संगीतमय झनझनाहट । और घंटोंकी संख्या थी आठ ।

स्टर्ज मेजके सहारे बैठ गया और उसने सहसा अपनी पुस्तक खोली । यदि यह एक मतिविभ्रम था, तो यह सावधानीसे व्यवस्थित और सुअनुष्ठित एक मतिविभ्रम, इन्द्रजाल था । क्या कोई सुषुप्तिजनक छल इसके मस्तिष्कके साथ खेल रहा है ? क्या वह अपने आपको सुषुप्तिजनक ( हिप्नॉटिक ) अवस्थामें डाल रहा है ? उसकी दृष्टि पन्नेपर पड़ी पर मध्यवर्ती लैटिन नहीं देखी, किंतु प्राचीन ग्रीक, यद्यपि होमरकालीन छप्पय नहीं । अति सुस्पष्ट था अक्षरन्यास, अति सुबोध आकूत ।

'क्योंकि अनश्वर देवता सदैव पृथ्वीपर घूमते हैं और नश्वरोंके गृहोंके प्रति अनाशंकित आते हैं; किंतु विरल है वह नेत्र जो उन्हें देख पाता और विरलतर है वह मन जो देवताके अभिनय, आकार-गोपनको पहचान सकता है ।

फिर हिप्नॉटिजम । स्टर्ज जानता था कि पुराने रहस्यवादी गुह्यवेत्ताके निद्राके धुँधुले मौलिक अध्ययन, तत्त्वमें सूक्ष्म, किंतु व्यञ्जनामें विषम, कठोर, अतिक्रान्त, दीर्घसूत्री, आकाररहित, आरम्भसे अन्ततक गूढ़ लैटिनमें प्रतिरुद्ध तथा कहीं भी ग्रीकमें स्फुटित नहीं और न कहीं काव्यमें । फिर भी वहाँ छप्पयसे कुछ अधिक था, वह पढ़ने लगा ।

'और मनुज भी सूर्य-प्रकाशमें छद्म छिपे जीते रहते हैं और तू कभी भी उनके जन्मसे उनकी मृत्युतक उस दृ... उस छद्मवेशको उठा हुआ नहीं देखेगा । नहीं, तू स्वयं, हे पिलोप ! क्या एक बार भी तूने अपने अंदर देवताको देखा है ?'

तहाँ षट्पदी-चरण ( छप्पय ) समाप्त हुआ और अगले क्षण अपने नैसर्गिक अक्षरोंसहित भौतिक पन्ना प्रकट हुआ। किंतु मधुर, सुरीले स्पष्ट फिर एक बार उसके श्रवणमें झनझना उठे छायात्मक मायिक घंटेके टनाद । और फि... घंटोंकी संख्या थी वही आठ ।

स्टर्ज मेनार्ड उठा और किसी अधिक निश्चित चिह्नकी प्रतीक्षा की । कारण अब उसने अनुमान किया कि कोई असाधारण मनोगत अवस्था, कोई न भूलने योग्य अनुभूति उसपर उतर रही थी । उसकी प्रत्याशाको धोखा नहीं हुआ । फिर एक बार घंटनाद बज उठे, किंतु इस बार उसे प्रतीत हुआ मानो उस पूर्णतः परिचित सुरीले माधुर्यके आवरणके नीचे एक स्त्रीकी वाणी स्टर्जके प्रति सानुराग पुकार रही थी । किंतु वे दो मायिक ध्वनियाँ इस आंग्ल भूमि और जन्मकी स्मृतियाँ थीं या यह घटना किसी अतीत अस्तित्वमेंसे थी, जिसे उसने धारण किया और फिर त्याग दिया था । ऐसे एक आकार किसी उग्र मुहूर्तकी, घंटेकी याद करनेके लिये एक ऐसे नामको जिसे उसने प्रत्युत्तर दिया था और भूल गया था, स्मरण करनेके लिये, आग्रह और अर्चना करते हुए आमन्त्रित करके उन ध्वनियोंने उसे चुनौती दी । जो कुछ भी यह था, यह उसके समीप था, इसने प्रबलतः उसकी हृत्तन्त्रियोंका स्पर्श किया और तत्पश्चात् तत्क्षण आठवें घंटेका अनुसरण करते वहाँ आया, मानो बहुत दूरसे आवाजका एक अचूक स्फोटन, एक आधुनिक रिवाल्वरकी आवाज ।

स्टर्ज मेनार्ड अग्निका ( अँगीठी ) के पाससे हट गया और कमरेसे निकल आया । वह सीढ़ियोंसे उतरा, अपना टोप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ओवरकोट पहना और घरके द्वारकी ओर चल पड़ा। उसके सामने कोई स्पष्ट विचार नहीं था कि वह कहाँ जायगा या उसे क्या करना चाहिये, किंतु यह जो कुछ भी हो, इसे करना होगा। तब उसे याद आया कि वह अपना रिवाल्वर भूल आया है, जो उसके वस्त्राधानके दराजमें रक्खा था। वह ऊपर गया, शस्त्र-संनद्ध हुआ, उसमें कारतूस भरे, उसे अपनी दाहिनी जेबमें रक्खा, जाँच कर ली कि जेबमें चटकनी खोलनेकी दो अर्गला कुंजी हैं, पुनः सीढ़ियोंसे नीचे उतरा और लन्दनके आर्द्र, गलघोट, अभेद्य, गाढ़तम कोहरेमें निकल पड़ा।

वह एक ऐसे जगत्‌में विचरने लगा, स्मृतिके अतिरिक्त जिसका कहीं कोई अस्तित्व प्रतीत नहीं होता था। वहाँ यातायातका कोई वेग नहीं था। केवल कोई प्रासंगिक गाड़ीवाला भर्रायी आवाजमें अनुवेला अपने वाहनकी सावधान प्रगतिकी घोषणा करता था। स्टर्ज अपने आगे या चारों ओर कुछ नहीं देख सका,—जबतक वह प्रत्यूहके समीप नहीं पहुँच गया और जहाँ एक लैम्प-खम्बेने धुँधलेपनसे उसपर जगमगाने, मुस्करानेको जोर मारा या दूसरे किनारेपर दीवारके एक छायात्मक, प्रेततुल्य खण्डने उसके कोटकी बाँह न झाड़ दी। किंतु वह अपने पैरोंके नीचेकी पगडंडीसे निश्चिन्त था, एवं उसने अनुभव किया कि वह घूमने या मुड़नेमें भूल नहीं कर सकता। उसकी इन्द्रियों तथा स्मृतिकी अपेक्षा एक ध्रुवतर पथ-प्रदर्शक उसे ले चला।

स्टर्जने सड़क पार की, हाइड पार्कके फाटकमें घुसा, कुहाबद्ध, तिरोहित खुले स्थानके प्रयाणकी एक निश्चित एवं सीधी रेखामें पार किया, मार्बल आर्चसे गुजरा और आक्सफोर्ड स्ट्रीटमें प्रथम बार झिझका। दो महिलाएँ उसे प्रिय थीं। उनमेंसे किसी एककी भी मृत्यु उसके आधे अस्तित्व-को सूना कर सकती थी। किसके पास उसे जाना चाहिये? तब उसके मन या मनमें किसीने उसके लिये निर्णय किया। ये कल्पनाएँ निस्सार थीं। अपनी बहन इमोजनके पास जानेका उसे कोई प्रयोजन नहीं। अपने चचाके सुनियुक्त, सुरक्षित, सुखद गृहमें, सरल निरपेक्ष तथा निर्दोषतया सुन्दर वस्तुओंसे भरपूर अपने जीवनकी प्रसन्न पारीमें इमोजनपर कौन सम्भव अरिष्ट घटित हो सकता था? किंतु रैनी! रैनी भिन्न थी, उसकी अवस्था भिन्न! स्टर्जने अपने रास्तेका एक परिचित दिशामें अनुसरण किया। ज्यों ही वह चला, उसकी स्मृतिमें यह

स्फुरणा हुई कि रैनीने उसे आज आनेको मना किया था। रैनीके अतीत जीवनकी कोई सजीव स्मृति थी जो उसके पास आनेको थी, कोई जिसकी वह स्टर्जसे भेंट कराना नहीं चाहती थी, रैनीने अपनी सामान्य सरल निरपेक्षतासे कहा था; 'तुम मत आना'। स्टर्जने कोई शंका नहीं की थी। जबसे उसकी रैनीसे पहली जान पहचान हुई थी, उसने कभी आशंका नहीं की थी और रैनी ब्यूरीगार्डका अतीत एक दैन्य था, उस मनुष्यके लिये भी जिसके प्रति रैनीने सब कुछ समर्पित कर दिया था। अपूर्व वृत्तान्तों, महान् संकटोंके लिये उस दैन्यमें स्थान था। स्टर्जको याद आया कि रैनीका प्रास्थानिक परिरम्भ अपने विभव, उद्रेक और गरिमामें प्रायशः आकर्षक था, उसकी वाणी किसी अनिरूपित, अव्यक्त आवेगसे प्रकम्पशील। अपने अनुरागसे व्याकुल होनेके कारण रैनीके आलिङ्गनपर निरूपण किये विना ही स्टर्ज रैनीकी अँकवारकी इस गरिमा एवं उद्रेकसे जानकार था। उसके मनके जिस किसी भागने यह लक्षित किया था, उसने उद्रेकके सम्भव कारणको सामान्यकी सीमाओंमें अटका दिया था, जैसा कि मनुष्य करने, असाधारणसे अनजान बने रहनेकी वृत्तिमें रहते हैं जबतक कि वह 'असाधारण' उन्हें लपक नहीं देता और चौंका नहीं देता।

स्टर्ज उस चौकव मकानपर पहुँचा जहाँ रैनी रहती थी, अपनी जेबवाली अर्गला-कुंजीसे द्वार खोला, कोट और टोपसे अपनेको हल्का किया और अपने पैरोंको बैठककी ओर आदेश दे दिया। उन्नीस या बीस वर्षीया एक लड़की, शान्त पर विवर्ण, खुले द्वार-पथको सम्मुखीन किये उठी। कुर्सीपर उसके हाथका सग्राह, उसके शरीरमें दृढ़, व्यग्र और उद्यत प्रवृत्ति एक बृहत् भाव और एक गाढ़ प्रत्याशाके सूचक थे। किंतु उसका मुख रक्तवर्ण हो गया, हाथ और अङ्ग ढीले पड़ गये, ज्यों ही उसने अपने अभ्यागतको देखा। रैनी ब्यूरीगार्ड दक्षिणकी एक फ्रेंच महिला थी। शरीर-सम्पन्नतामें, शिराल चैतन्य प्राणमें, अपनी वाणी और उत्साहमें समृद्ध। उसके अत्युत्तम पूर्ण अङ्ग, उसकी प्रसन्न चारु गति, उसके अरुण अधरोंकी चञ्चलता, उसके सस्मित श्याम सलोने नेत्र जीवनसे, उत्कर्षसे, प्रमोदसे, प्रेमसे विपुल और बहुल माँगें रखते थे। किंतु नेत्रोंकी अजेयतः प्रसन्न ज्योतिमें मँडराती और उनकी सहज व्यञ्जनाको विकृत करती हुई उस क्षण वहाँ एक शोकप्रद निराशाकी छाया थी। एक अतीत,—और एक वर्तमानके लिये निर्व्याज यह एक नारी थी। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी प्रकृति, यदि इसका भाग्य नहीं, एक भविष्यकी माँग करती थी ।

'स्टर्ज !' रैनीने द्वारकी ओर एक कदम बढ़ाया । स्टर्ज अँगीठीकी ओर चला और उसने रैनीका हाथ पकड़ लिया ।

'यहाँ आनेतक मैं तुम्हारे निषेधको भूला रहा । कोहरा छाया हुआ था; तथा लौट जाना निरानन्द था और तुम यहाँ मौजूद थीं !'

'तुम्हें भूलना नहीं चाहिये था !' रैनीने कहा, किंतु वह मुस्करायी, स्टर्जके आगमनसे संतुष्ट, सुप्रसन्न । तत्पश्चात् दुर्बोध छायाने उन सस्मित नेत्रोंको फिर दबोच लिया । 'और तुम्हें लौट जाना चाहिये । नहीं, अभी नहीं । पाव घंटेमें । तुम चौथाई घंटे ठहर सकते हो ।'

रैनीने घड़ीपर नजर डाली थी, स्टर्जके नेत्रोंने रैनीके आँखोंका अनुसरण किया था । उसने देखी एक कोविदार-मुखी टाइमपीस, रजताक्षरी, दृढ़तः आधारित चारके अङ्कको समानान्तर रेखाओंमें व्यक्त करती हुई; और वह उन विचित्र धोखोंपर मुस्कराया जो उसकी स्मृतिने उसके साथ किये थे । इस समय छः बजकर पाँच मिनट हो गये थे ।

'मैं इमोजनके घर जाऊँगा,' स्टर्जने खूब विचारपूर्वक कहा । रैनीने स्टर्जपर नजर डाली, घड़ीपर नजर डाली, पश्चात् स्टर्जकी ओर झुकती हुई वह भावुकतः पुकार उठी, 'और तुम आठ बजे आओगे और मेरे साथ भोजन करोगे । रशेल दोनोंके लिये दो थालियाँ लगा देगी ।' फिर पीछे हट गयी, मानो अपने निमन्त्रणपर पछताती हुई ।

आठ बजे ! हाँ, वह रैनीके साथ भोजन करेगा—अपना काम कर चुकनेके पश्चात् । व्यवस्था ऐसी ही प्रतीत होती थी,—रैनीकी नहीं, किंतु किसकी ? दैवकी शायद, अन्तर्वासी या बहिर्वर्ती देवताकी । कुछ देरतक वे बैठे बातें करते रहे, पर स्टर्जको यह लगा कि उनका वार्तालाप रूपरेखामें कभी भी ऐसा सामान्य विषय या भावावेशसे इतना स्पन्दशील नहीं था । छः बजकर बीस मिनटपर वह उठा, विदाई ली और कोहरेकी ओर चल पड़ा; किंतु रैनी द्वारतक उसके साथ आयी, ओवरकोट पहननेमें स्टर्जकी सहायता की किंतु कोट पहनाते हुए वह स्पष्टतः काँपती रही । स्टर्जके जानेसे पूर्व रैनीने उसका आलिङ्गन एवं चुम्बन किया, उत्सुकतः नहीं, किंतु एक दृढ़ स्थिरतासे और मानो किसी नियतिपूर्ण निर्णयसे जो उस क्षण रैनीके हृदयमें निरूपित किया गया था, और जिसे इसने अपने प्यारमें प्रकट किया था ।

'आठ बजे मैं लौट आऊँगा'—स्टर्जने शान्ततः कहा । उसने रैनीकी अँकवार स्वीकार की थी, किंतु उसके आलिङ्गन-का प्रत्युत्तर नहीं दिया था ।

आठ बजे ! हाँ, और पहले ! किंतु उसने वह सब रैनीसे नहीं कहा । वह कोहरेसे होकर अपने चचाके घरकी ओर झूमता चला, एक हल्के, स्वच्छ और निरपेक्ष मनसे, किंतु अपने हृदयमें एक गाढ़ शान्ततासहित । वह यथा-स्थान पहुँचा, एक अतीव कुलीन अधिवासमें और एक गम्भीरवदन द्वारपालद्वारा आमन्त्रित हुआ । सर 'जान' घरसे बाहर गये हुए थे, किंतु कुमारी इमोजन मेनार्द घरपर थी । अगला घंटा स्टर्जने पर्याप्त सुख-शान्तिसे अनायास बिताया; कारण, अपनी बहनके प्रात्याहिक आकर्षक, आपसी वार्तालापमें, राजनीति एवं शिष्टतः उपन्यस्त आक्षेपके एक भावसे विपर्यस्त जीवनके तलपर, प्रमोदों एवं नाटकघरों, पुस्तकों, संगीत, चित्रकलापर निष्कारण चर्चा करते, उसके हृदयने भी क्रमशः अपना तनाव खो दिया और वह साधारण अवस्थामें फिर फिसल गया । अन्तर्वासीको बहिर्वर्तीमें भूलकर अगला एक ंटा और कहीं अधिक । यह इमोजन मेनार्द थी जो उठी और बोली, 'स्टर्ज ! आठ बजनेमें दस मिनट । मुझे भोजन बनाना है, क्या निश्चय ही तुम भोजन नहीं करोगे ?'

स्टर्ज मेनार्दने घड़ीपर नजर डाली और उसका हृदय बैठ गया । उसने अपनी बहनसे जल्दी बिदा ली, सीढ़ियोंसे नीचे उतरा, अपना कोट और टोप लपका और ओवरकोट चलते-चलते पहनता कोहरेमें निकल पड़ा । उसने रिवाल्वर और अर्गला—कुंजियोंको सँभाल लिया, फिर लगायी दौड़ । उसे बड़ा भय यह था कि वह जल्दबाजीमें कहीं मुड़ना भूल न जाये और घंटा बजनेके बाद पहुँचे । किंतु चूकना कठिन था, उस आध मीलके खुले स्थानको ! और दैव ! क्या वह केवल भविष्यवाणीका एक आत्मा था ! क्या उसने रक्षा करनेके लिये साक्षात् नहीं किया था !

वह रैनीके चौककी ओर मुड़ा और, ज्योंही उसने घरकी ओर डग भरे और सीढ़ियोंपर चढ़ा, उसका उद्वेग मिट गया तथा समनाडी-स्पन्द एवं अक्षुब्ध धमनीसे वह बैठकके द्वारकी ओर मुड़ा । उसने टोप एक ओर डाल दिया किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटसे छुटकारा नहीं लिया। उसका हाथ जेबमें था और रिवाल्वरका कुन्दा हाथमें।

द्वार खुला हुआ था और असामान्य अवस्था रूप, जापानी जवनिकासे ढका हुआ। वह जवनिकाके सिरेपर ठिठका और कमरेमें दृष्टि डाली जो अतीव निःशब्द था, किंतु सूना नहीं—कारण अँगीठीके सामने बिछे नमदेके दोनों किनारोंपर खड़े थे रैनी ब्यूरीगार्ड और एक मनुष्य स्टर्जके लिये अज्ञात—वह रैनीकी ओर देख रहा था मानो उसके कथनकी प्रतीक्षा करता हो; रैनी शान्त, विवर्ण, पीली, मौनमें दृढ़, निज नेत्रोंमें अपने अतीतके भारी भारसहित। आगन्तुककी पीठ स्टर्जकी ओर आधी घूमी हुई थी और उसकी मुखाकृतिका केवल एक भाग दृग्गोचर था किंतु आंग्ल देशवासी स्टर्जने ज्यों ही आगन्तुकपर दृष्टि डाली वह घृणासे काँप उठा। क्या यही है जो मुझे करना है! स्टर्जने रिवाल्वर निकाल लिया और घोड़ेपर अपनी अँगुली रख दी। पश्चात् उसने घड़ीपर दृष्टि डाली,—घंटा बजनेमें चार मिनट शेष थे; और फिर आगन्तुकपर दृष्टि डाली,—उसके हाथमें भी रिवाल्वर था और उसकी अँगुली भी घोड़ेपर टिकी थी। स्टर्ज मेनार्ड मुस्कराया।

पश्चात् उस मनुष्यकी आवाज सुनायी दी, 'तब यह होना है, इदाली!' आगन्तुकने एक क्षीण, विकट, शोकप्रद अभियोगमें कहा। 'तुमने निर्णय कर लिया। कोई द्वेषभाव मत रक्खो। तुम जानती हो यह रोका नहीं जा सकता। तुम्हें मरना है।'

स्टर्जको स्मरण हो आया कि इदाली रैनीका दूसरा नाम था; किंतु रैनीने इस नामका प्रयोग करनेसे उसे सदैव निषेध किया था। क्षीण वाणी चालू रही, इस बार अपनी शोकप्रदतामें विचित्र उत्तेजनाकी एक व्याख्यासहित।

'और- यह सब तुम मुझपर डालती हो! इससे क्या सरोकार कि मैंने तुम्हें कैसे पाया, तत्पश्चात् मैंने क्या किया! एक प्रेमीके लिये सब कुछ अनुमत है। और मैं तुम्हें चाहता था इदाली! प्रेमके साथ खिलवाड़ करना संकटमय है। इसे अब तुम जान गयीं।'

स्टर्जने उस मनुष्यपर दृष्टि डाली। रैनीके लिये कोई संकट नहीं था, किंतु महान् संकट इस कठोर, क्षीण-वाणी, गुप्तघातीके लिये, इस मनुष्यके लिये जिससे स्टर्ज अपने शरीरकी प्रत्येक मांसपेशीसे, अपने मस्तिष्कके प्रत्येक घटकसे घृणा करता था। स्टर्जको लगा कि उसका प्रत्येक अङ्ग नरहत्याके उत्साहसे, वध करनेके जित्वर भावसे प्रवृद्ध एवं स्पन्दित हो गया है। बाहर कोहरा था, कैसा कोहरा! कि वह सरलतया शवको ठिकाने लगा सकता था। वस्तुतः यह एक अच्छी व्यवस्था थी। कभी-कभी भगवान् कार्योंको बड़ी कुशलतासे करता है। तथैव स्टर्ज अपनी कल्पनाकी रौद्रतापर अंदर-ही-अंदर हँसा। तथापि किसी प्रकार उसे इसपर विश्वास था। भगवान्का कार्य, उसका अपना नहीं। तथापि उसका भी पूर्व-निर्दिष्ट—कबसे? किंतु नियतिबद्ध वाणी जारी थी—'इदाली! फिर भी मैं तुम्हें एक मौका देता हूँ,—हमेशा, सदैव एक अवसर। मेरे साथ चलोगी? तुम मेरे प्रति बेवफ़ा रहीं, अपने शरीरसे बेवफ़ा, अपने हृदयसे बेवफ़ा! किंतु मैं क्षमा कर दूँगा। मैंने तुम्हारे भाग आनेको क्षमा कर दिया, मैं यह भी क्षमा कर दूँगा इदाली! मेरे साथ चलो। और यदि नहीं—रैनी इदाली मार्वीरेन! आठ बजनेवाले हैं और जब घंट बज चुकेगा, मैं रिवाल्वर दाग दूँगा। यह भगवान् है जो तुम्हें मेरे हाथसे शूट करेगा, न्यायका देवता, प्रेमका देवता, इन दोको तुमने व्यथित किया है। चलोगी?'

रैनीने निषेधात्मक अपना सिर हिला दिया। एक प्राणान्तक पीलापन उस मनुष्यपर छा गया। 'तब निर्णय समाप्त,'—वह चिल्लाया, 'तुमने निश्चय कर लिया। तुम्हें मरना होगा।' आगन्तुकने रैनीपर पिस्तौलका निशाना साधा और उसकी अँगुली घोड़ेपर जुट गयी। स्टर्ज अचल रहा। घंटा बजनेसे पूर्व कुछ घटित नहीं हो सकता था। निर्दिष्ट मुहूर्त वही था और नियतिको कोई भी एक पल नहीं टाल सकता था। आगन्तुक कहने लगा—'घंटा बजनेतक ऐसा मत कहो! तबतक समय है। जब मैं तुम्हें शूट करूँगा, रशेल ऊपर दौड़ आयेगी और मैं उसे भी शूट कर दूँगा, मैंने द्वार खुला छोड़ दिया है कि वह आवाज सुन ले। इंगलैंडमें कौन दूसरा जानता है कि मैं जिंदा हूँ? मैं बाहर निकल जाऊँगा—ओह, जब तुम दोनों मर चुकोगी, उससे पहले नहीं। वहाँ कोहरा है, कोई प्राणी बाहर नहीं और मैं खूब खामोशीसे चला जाऊँगा। कोई देखेगा नहीं, कोई सुनेगा नहीं। भगवान्ने अपने कोहरेसे दुनियाको अंधा और बहरा कर दिया है। तुम देखती हो यह 'वह' ही है अन्यथा यह मेरे लिये इस प्रकार पूर्णतया व्यवस्थित न हुआ होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोर रौद्रतया स्टर्ज मेनार्द मुस्कराया। जो एक दूसरेसे घृणा करते थे, वे मनुष्य, ऐसा प्रतीत हुआ अनुगुण अन्तःकरणवाले थे। शायद यही कारण था वे टकराये। अच्छा, यदि यह भगवान् था, तो वह शोकमय कलाकार भी और नाटकीय व्याजोक्तिका काव्यमय निष्पादन जानता था! सब कुछ इस आदमीने गिन लिया या अपनी करतूतके लिये व्यवस्थित कर लिया था और उसकी क्षमता उसके अपने हत्यारेके लिये सहायक हो गयी थी या होगी! तब स्टर्जको चेतना हुई कि यह सब पहले घटित हो चुका था। किंतु यहाँ नहीं, इस आंग्ल परिसरस्थ अधिवासमें नहीं! शाद्वलका एक विशाल धब्बा घड़ीको धुँधलाता-छुपाता उसके नेत्रोंके समक्ष आया। तत्पश्चात् यह उसपर छा गया—हरी घास, हरे वृक्ष, हरकाई ढकी चट्टानें, एक हरा समुद्र और शाद्वलपर एक मनुष्य अधोमुख, पीठमें छुरेसे घायल, उसके ऊपर उसका घातक, कृपाण आर्द्र-रक्तरंजित। एक तरी तरंगोंपर डोलती थी; घातकके पलायनके लिये वह विन्यस्त की गयी थी और इसमें बँधी पड़ी थी एक नारी। स्टर्ज उन विचित्र चेहरोंको खूब जानता था और उसे याद आया कि वह कैसे शाद्वलपर मुर्दा पड़ा रहा था। मध्यदेशीय, भूवेष्टित वृक्षोंकी हरकाईसे दिखायी देती नियति-पूर्ण आधुनिक कोविदार-मुखी टाइमपीस सहित इस बैठकखानेमें यह सब फिर देखना आश्चर्य था! किंतु इस बार बिल्कुल भिन्न रूपमें यह समाप्त होने जा रहा था।

तब रैनीकी वाणी गूँज उठी; उदासीन, दृढ़, तीव्र, लोहेकी झंकार-तुल्य। 'मैं नहीं जाऊँगी,' इतना मात्र उसने कहा। और घंटा बज उठा। एक बार बजा, दूसरी बार बजा, चार बार। और तब रैनीने अपने नेत्र उठाये तथा स्टर्ज मेनार्दको जवनिकाके किनारेसे आगे चलते देखा। स्टर्ज एक अच्छा निशानची था और उसके निशाना चूकने तथा रैनीको मारनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। किंतु उसे शंका-सम्भावना दूर करनी थी!

रैनीने अपनी गाढ़तामें एक अद्भुत आत्म संयम बटोर लिया था और यह अब भंग नहीं हुआ। रैनी न हिली और न एक शब्द उच्चारण किया। किंतु इसके नेत्रोंमें एक आभा आयी, तीव्र निज प्रार्थनामें, निज सूचना, सुझावमें कराल! कारण यह जीवनके लिये एक प्रकार थी, हनन करनेको एक आदेश।

नियति-बद्ध मनुष्य घड़ीको देख रहा था, रैनीको नहीं, पीठ पीछेसे होनेवाले किसी सम्भव संकटकी ओर और भी कम। ज्यों ही आठवीं सुरीली झनझनाहट समाप्त हुई, उसने ऊपर देखा और स्टर्जने क्षुद्र, दृढ़, क्रूर नेत्र एक श्वापदके नेत्रोंके समान चमकते देखे। उस मनुष्यने अपनी अँगुली घोड़े-पर दबायी।

'घंटा बज चुका', । वह मनुष्य चिल्लाया, और ज्यों ही वह बोला स्टर्ज मेनार्दने पिस्तोल दाग दी। कमरा आवाजसे गूँज उठा, धुएँसे भर गया। जब धुआँ साफ हो गया, आगन्तुक नमदेपर प्रणत पड़ा दिखायी दिया, उसका सिर रैनीके चरणोंपर पड़ा था, जिसे उस आगन्तुकने वध्य निर्णीत किया था।

रास्तेकी सीढ़ियोंपर दौड़नेकी आवाज आयी और नौकरानी रशेलने अंदर प्रवेश किया—जैसा कि वहाँ पहले उस आगन्तुकने अग्रनिरूपण किया था। जब वह आयी, वह काँप रही थी, किंतु उसने उस मनुष्यको नमदेपर देखा, ठिठकी, अपनेको व्यवस्थित किया और मुस्करायी। 'हमें तुरंत कोहरेमें इसे बाहर ले जाना चाहिये,' फ्रेंचमें मात्र उसने इतना कहा। समकालिक प्रवृत्तिमें दोनों, रशेल और स्टर्ज, शवके समीप पहुँचे। तब रैनी, उत्तेजित आवेगमें आकर, स्टर्जकी ओर दौड़ी और उसके कंधोंपर अपना हाथ रखकर मानो उसे कमरेसे बाहर धकेलनेकी उसने चेष्टा की।

'मैं उसकी देखभाल कर लूँगी!' रैनी गिड़गिड़ायी, 'तुम जाओ'। स्टर्ज रैनीकी ओर मुस्कराता हुआ मुड़ा। 'तुम्हें तुरंत चले जाना चाहिये,' रैनीने दोहराया, 'मेरी खातिर इस घरमें मत रहो। रशेलके अतिरिक्त दूसरोंने भी पिस्तौलकी आवाज सुनी होगी।'

किंतु स्टर्जने उसकी कलाई पकड़ी, अँगीठीके पाससे उसे हटा ले गया और एक कुर्सीपर बैठा दिया।

'हम समय गँवा रहे हैं,' रशेलने फिर कहा।

'रशेल! समय खोना बेहतर है,' स्टर्जने उत्तर दिया, 'हम भाग्यको दस मिनट देंगे। तथैव नौकरानीने सिर हिलाकर अनुमोदन किया और शवके पास पहुँचकर अपने गमछेसे जख्मको यथाविधि दबाने लगी। स्टर्ज और रैनी निःशब्दतया प्रतीक्षा करते रहे, यदि किसीने पिस्तौलकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज सुन ली हो और वह उनपर आ टूटे तो उसको विवरण देनेके लिये स्टर्ज अपने मनमें बयान व्यवस्थित करता रहा । किंतु मौन और कोहरा घरके चारों ओर अड़ा था ।

उन्होंने शवको उठा लिया । 'यदि कोई देख ले, तो हम कहेंगे कि हम एक पियक्कड़को घर ले जा रहे हैं,' स्टर्जने कहा । 'इसे सावधानीसे ले चलो; लहूकी कोई बूँद जमीनपर न गिरे ।' अतएव उस 'आंग्ल' कोहरेमें वे उस मनुष्यको बाहर ले गये जो विदेशसे जीवित आया था और उसे आमरास्तेपर लेटा दिया उस मकान और उस चौकसे बहुत दूर, जहाँ वह समाप्त हुआ था । जब वे कमरेपर वापस आये, रशेलने लहू-सना नमदा और गमछा ले लिया जो इस कृत्यके, जो किया जा चुका था, मात्र साक्षी थे ।

'मैं इन्हें नष्ट दर दूँगी,' नौकरानीने कहा, 'और रैनीके कमरेसे दूसरा नमदा ले आऊँगी । और तब,' पहलेकी तरह वह सामान्यतः बोली, 'स्टर्ज और रैनी भोजन करेंगे ।'

रैनी थरथराई और स्टर्जकी ओर देखा । 'जबतक लाशका पता लगे,' स्टर्ज बोला, मैं यहाँ रहूँगा । आजसे हम दोनों सदाके लिये और सुदृढ़तया बँध गये इदाली ! और जैसे ही स्टर्जने अनभ्यस्त नामपर धीरेसे जोर दिया, उसके नेत्रोंमें एक आभा दिखायी पड़ी, जिसका विरोध करनेका साहस रैनी नहीं कर सकी ।

उस रात्रि, जब रैनी अपने कमरेमें चली गयी, अन्दिकाके पास बैठे स्टर्जने स्मरण किया कि उसने रैनीसे वह विचित्र वृत्तान्त नहीं कहा था जो आज एक शोकप्रद अवस्था लाया था और दूसरीको रोक दिया था । जब वह रैनीके कमरेमें गया, वह उसके पास आयी और आवेशमें उससे चिपट गयी ।

'अहो, स्टर्ज स्टर्ज !' रैनी पुकार उठी । 'सोचो यदि अकस्मात् तुम न आ गये होते, तो तुमसे, भगवान्के सुन्दर संसारसे छीनी जाकर, अब मैं मुर्दा होती ।'

अकस्मात् ! अकस्मात् नामकी कोई वस्तु इस सृष्टिमें नहीं है—स्टर्जने विचार किया । तब किसने दी थी उसे वह रहस्यमयी चेतावनी ? किसने उसके हाथमें रिवाल्वर थमा दी थी ? या किसने उसे हत्या-कार्यपर भेजा था ? ठीक समयपर किसने इमोजनको वार्तालापसे उठा दिया था ! बैठकखानेमें किसने पिस्तौल दाग दी थी ? अन्तर्वासी भगवान्ने ? बहिर्वर्ती भगवान्ने ? प्राच्योंने मनुष्यमें भगवान्की चर्चा की है, अवश्य यह वही है । और तत्पश्चात् लौट आये उसकी स्मृतिमें वे भीषण भाव, घृणा, जो उसमें उबल उठी थी, आवेग और हत्याका आह्लाद, उल्लासका वह गीत जिसे उसके रक्तने अब भी उसकी धमनियोंमें गुनगुनाया; क्योंकि एक मनुष्य जो जीवित रहा था, मृत था और जीवनके प्रति पुनः नहीं लौट सकता था । रैनीके नेत्रोंका आदेश भी उसने याद किया । मनुष्यमें भगवान् ? तब क्या भगवान मनुष्यमें एक हत्यारा है ? उसमें ? और रैनीमें ?

'ऐसा सोचना अति ही बारीकीसे खोज करना है,' उसने परिणाम निकाला, 'किंतु अवश्य ही बड़ी विचित्रतासे उसने अपना जगत् बनाया है ।'

तत्पश्चात् स्टर्जने रैनीसे जर्मन-गुह्यवेत्ताके सम्बन्धमें तथा मायिक घंटेकी झंकारके सम्बन्धमें कहा जो दोनोंकी नियतियोंके उस शोकप्रद क्षणमें उसे रैनीके पास ले आयी थी । और जब उसने अन्तर्वासी देवताकी चर्चा की, पुरुषकी अपेक्षा नारी बेहतर समझी ।

## साँसोंकी कीमत

( रचयिता—प्रा० श्रीरामेश्वरदयालुजी दुबे एम्० ए० )

साँस किराया दे रहता तू, यह मकान कब तेरा ?
जड़ें जमाकर बैठा फिर क्यों, डाल अहंका डेरा ?
चुकी साँस तो मधुर बाँसुरी बाँसमात्र रह जाती ।
गायक बिना, गीतकी लहरी समा शून्यमें जाती ॥
आती-जाती साँसोंपर भी कब सत्ता है तेरी ?
कञ्चन काया धूल चूमती लगती कब है देरी ?

एक पात्रकी लिये भूमिका विश्व-मञ्चपर आया ।
अभिनयतक तेरी सीमा है सूत्रधारकी माया ॥
हँसे हर्षमें, रो पीड़ामें उसमें कैसी व्रीडा ?
बस, इतना मत भूल कि यह है एक कौतुकी क्रीडा ॥
खेल खेल, पर गाफिल मत बन, तुझे दूर है जाना ।
कर वसूल कीमत साँसोंकी, पड़े नहीं पछताना ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हृदय और जीवन

( लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी गुप्त, एम्० ए०, एल्० टी० )

यह अक्षरशः सत्य है कि जिसका मन या हृदय जैसा होता है, वैसा ही उसका जीवन होता है। वास्तवमें विचार साँचा है और जीवन गीली मिट्टी। हम जैसे विचारोंमें डूबे रहते हैं, हमारा जीवन उसी साँचेमें ढल जाता है। जिस प्रकार बीजसे वृक्ष, वृक्षसे फूल और फूलसे फल होता है, उसी प्रकार हृदयके विचाररूपी वृक्षमें कार्यरूपी फल लगते हैं। जैसे कोई निर्झर किसी छिपे सोतेसे निकल पड़ता है, वैसे ही मनुष्यका जीवन हृदयके गुप्त स्थानोंसे प्रकट होता है; क्योंकि हृदयजनित विचार अन्तमें शब्द, कार्य और मनोरथोंके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। मनुष्यके गुण, कर्म और स्वभाव—सबकी उत्पत्ति हृदयसे ही है। भविष्यमें वह जैसा कुछ होगा, जो कुछ करेगा—सबका जन्म-स्थान हृदय ही होगा। सुख और दुःख, हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, प्रेम और घृणा, ज्ञान और अज्ञान—सबका वास-स्थान हृदय ही है। ये सब मानसिक अवस्थाएँ हैं। शरीर, परिस्थितियाँ, संसार हमारे हृदयके विचारोंके आधारपर बनते हैं। उनका रूप हमारे विश्वासके अनुरूप होता है। मनुष्य अपने हृदयका रक्षक, मनका पहरेदार तथा जीवन-कोटका अकेला संतरी है—चाहे वह अपने इस कार्यमें सावधान रहे अथवा असावधान। वह ध्यानपूर्वक यत्नके साथ अपने चित्तकी देख-रेख कर सकता है तथा उसे शुद्ध बना सकता है अथवा स्वयं अपनेको बुरे विचारोंमें लिप्तकर अपना जीवन कलुषित कर सकता है। पहला ज्ञान और आनन्दका मार्ग होगा और दूसरा अज्ञान तथा कष्टका।

अतः यह बात यदि ठीक समझमें आ जाय कि जीवनकी उत्पत्ति पूर्णरूपसे हृदयसे होती है तो मनुष्य अपना जीवन आनन्दमय बनाकर सच्चा ज्ञान और शान्ति तथा अन्तमें मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर सकता है; क्योंकि वह उन्हीं विचारों तथा कार्यरूपी पगडंडियोंपर दृढ़तासे चलना पसंद करेगा जो सब प्रकारसे उत्तम हैं। वह सदैव इस बातके लिये प्रयत्नशील रहेगा कि अपने मनको वशमें रक्खे और इच्छानुसार सुमार्गपर ले जाय।

मनुष्य विचारशील प्राणी है और मनकी समस्त शक्तियाँ ( भ्रमात्मक तथा सत्यात्मक ) रखता है। उसकी अभिरुचि असीम है। वह अनुभवद्वारा सीखता है और निज अनुभवको घटा-बढ़ा सकता है। वह किसी बातसे बाध्य नहीं है; किंतु उसने स्वयं अपनेको बहुत-सी बातोंसे बाँध रक्खा है। जिस प्रकार वह अपनेको बाँध सकता है, उसी प्रकार वह अपनेको जब चाहे छुड़ा भी सकता है। वह अपने इच्छानुसार कलंकित या निर्दोष, निम्न या उच्च, अज्ञ या विज्ञ बन सकता है। वह बार-बारके अभ्याससे नयी आदतें ग्रहण कर सकता है और फिर उन्हें निज प्रयत्नसे छोड़ भी सकता है। वह अपनेको भ्रममें डाल सकता है, यहाँतक कि सत्यताका लेशमात्र भी शेष न रहे और वह एक-एक करके उन भ्रमोंको निर्मूल कर सकता है और पुनः सत्यताको पूर्णरूपसे प्राप्त कर सकता है। उसकी सम्भावनाएँ अपरिमित हैं। उसे पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह अपने मनका पूर्ण राजा है।

आन्तरिक विचार चरित्र और जीवनको बनाते हैं, अर्थात् विचारोंहीपर चरित्र और जीवन अवलम्बित है और मनुष्य उनमें निज विचारशक्ति और प्रयत्नद्वारा संशोधन और परिवर्तन कर सकता है। आदतकी बेड़ी, क्लीवता एवं पापके बन्धन स्वनिर्मित होते हैं और अपने ही द्वारा ये नष्ट किये जा सकते हैं। वे मनके सिवा और कहीं नहीं होते, मन ही उनका निवास-स्थान है और यद्यपि प्रत्यक्षमें उनका सम्बन्ध बाह्य पदार्थोंसे है, तथापि वस्तुतः ऐसा नहीं है। बहिरङ्ग अन्तरङ्गके सदृश होता है और अन्तरङ्गमें ही उसे जीवन-रस मिलता है। उदाहरणार्थ—लालच किसी बाह्य पदार्थसे पैदा नहीं होता; किंतु उस पदार्थके प्राप्त करनेकी मानसिक चाहसे उत्पन्न होता है। ऐसे ही दुःख और शोककी उत्पत्ति बाह्य वस्तुओं और जीवनघटनाओंसे नहीं होती, परंतु उन वस्तुओं और घटनाओंकी ओर मनकी प्रवृत्तिका निग्रह न करनेके कारण होती है। वह मन जो पवित्रताद्वारा शिक्षित और ज्ञानद्वारा दृढ़ होता है, उन लालसाओं और इच्छाओंको जिनका दुःखसे अटूट साथ है—अपनेसे दूर रखता है और इसीलिये वह ज्ञान और शान्ति प्राप्त कर लेता है।

दूसरोंको बुरा समझकर उन्हें घृणित दृष्टिसे देखनेसे और बाह्य दशाओंको अनिष्टकर मानकर उन्हें बुरा बतानेसे संसारका क्लेश और व्याकुलता बढ़ती ही है, घटती नहीं। बहिरङ्ग अन्तरङ्गकी केवल प्रतिच्छाया और प्रभाव है और जब हृदय पुनीत तथा शुद्ध होता है, तब सभी बाहरी बातें शुद्ध हो जाती हैं। समस्त उन्नति और जागृतिका क्रम भीतरसे बाहरकी ओर होता है और समस्त क्षय और मृत्युका बाहरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भीतरकी ओर—यह सर्वव्यापक नियम है। समस्त वृद्धि और विकास अंदरसे होते हैं। समस्त संयोजन और वियोजनका अंदरसे ही होना उचित है। अतः हम इस निष्कर्षपर पहुँचे कि मनुष्यके जीवनका स्रोत उसका हृदय, उसका मन है। उसने अपना मन अपने ही विचारों और कार्योंसे तैयार किया है। उसे नवीन विचारोंद्वारा पुनः बदलनेका उसे अधिकार है। परंतु यह कैसे हो सकता है—इसपर अब हम विचार करेंगे।

हम देखते हैं कि जब कोई भाव चित्तमें ठहर जाता है और वह बार-बार दुहराया जाता है, तो एक नयी आदत बन जाती है। उदासीनता तथा आनन्द; क्रोध तथा शान्ति, लोभ तथा उदारता—वस्तुतः समस्त मानसिक वृत्तियाँ—अपनी रुचिसे ग्रहण की हुई आदतें हैं। जो विचार मनमें निरन्तर दुहराया जाता है, अन्तमें वह दृढ़ आदतका रूप धारण कर लेता है, और ये ही आदतें जीवनके स्रोत हैं—जीवनकी उत्पत्ति इन्हींसे है। आरम्भमें जिस विचारको ग्रहण करना और उसपर स्थिर रहना बड़ा कठिन होता है, अन्तमें वही विचार मनमें निरन्तर घूमनेसे प्राकृतिक तथा स्वाभाविक वृत्ति बन जाता है और चरित्रका सहज अङ्ग हो जाता है। परंतु अपनी आदतों और वृत्तियोंको बनाने और बदलनेकी मनमें जो शक्ति है, वही मनुष्यको इन्द्रियोंके वशसे मुक्तकर पूर्ण स्वतन्त्रताका पथ दिखलाती है; क्योंकि जैसे मनुष्यमें बुरी लत पकड़नेकी क्षमता है, वैसे ही अच्छे लक्षण सीखनेकी भी है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्यके लिये भलाई करनेकी अपेक्षा बुराई करना सहज होता है। यह मत सर्वमान्य है। लोग इसे एक स्वयंसिद्ध बात समझते हैं। परंतु मनमें अच्छे विचार लाने और अच्छे काम करनेके लिये अभ्यास और निरन्तर उद्योग करनेपर अन्तमें एक समय वह आता है, जब अच्छे विचार और कार्य करना स्वाभाविक और सरल हो जाता है और बुरे कार्य करना कठिन और सर्वथा दुस्तर।

जैसे कारीगर जिस अभ्याससे कुछ दिनोंमें अपने व्यवसायमें दक्ष हो जाता है, वैसे ही मनुष्य भी निज अभ्याससे सुजनतामें प्रवीण बन सकता है। यह कार्य कुछ कठिन नहीं है। केवल उसे अपने विचारोंको शुद्ध और उत्तम बनानेकी आवश्यकता है। लोगोंके लिये पाप करना सरल और स्वाभाविक है; क्योंकि उन्होंने किसी बुरे कामको बार-बार करके ज्ञानहीन विचारोंकी आदत डाल ली है। सहस्रों मनुष्योंके लिये क्रोध और अधीरता स्वाभाविक और सरल है; क्योंकि वे ऐसे विचारोंको और कार्योंको मनमें बार-बार स्थान देते हैं और प्रत्येक बार दुहरानेसे यह आदत और अधिक दृढ़ तथा स्थायी हो जाती है। इसी प्रकार शान्ति और धैर्य-गुण भी स्वाभाविक बनाये जा सकते हैं। प्रथम शान्ति तथा धैर्ययुक्त विचार मनमें लाने और फिर उसे निरन्तर मनमें घुमानेसे और उसीमें प्रवृत्त हो जानेसे वैसा ही स्वभाव हो जाता है। इस प्रकार शान्त रहने और धैर्य धरनेकी आदत पड़ जायगी और क्रोध तथा अधीरता सदाके लिये विदा हो जायँगी। इस तरह सभी खोटे विचार मनसे निकाले जा सकते हैं; अशुभ कर्मसे छुटकारा मिल सकता है और पापपर विजय प्राप्त हो सकती है।

अतः यह बात भलीभाँति प्रकट हो गयी कि जीवनमें मन ही सब कुछ है और वह उन आदतोंका समूह है, जिन्हें मनुष्य धीरे-धीरे यत्नपूर्वक अपने इच्छानुसार ग्रहण करता तथा सुधार सकता है और जिनपर वह अपना पूर्ण प्रभाव और अधिकार जमा सकता है। ये बातें ज्यों ही मनुष्यके चित्तमें बैठ गयीं कि मानो उसे स्वतन्त्रताके द्वारकी कुंजी मिल गयी।

परंतु जीवनकी विपदाओंसे ( जो कि मानसिक विकार हैं ) छुटकारा पानेके लिये भीतरसे क्रमशः उन्नतिकी आवश्यकता है। यह कार्य कुछ ऐसा तो है ही नहीं, जो बाहरसे सहसा कर लिया जाय। प्रतिघंटे और प्रतिदिन मनमें निर्दोष, शुद्ध और श्रेष्ठ विचार लानेकी और उन अवस्थाओंमें, जिनमें भूल और क्षोभकी सम्भावना हो; यथार्थ और शान्तियुक्त भाव धारण करनेकी आदत डालनी चाहिये। जिस प्रकार धीर शिल्पकार पत्थरके एक-एक टुकड़ेको बड़े अध्यवसायके साथ काट-छाँटकर ठीक करता है, उसी प्रकार उस मनुष्यको जो निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करना चाहता है—अपने मनके अनगढ़ विचारोंको ठीक करना चाहिये, जबतक कि वह अपने पवित्र आदर्शको सिद्ध न कर ले।

इस प्रकार श्रेष्ठ मनोरथ रखते हुए मनुष्यको सबसे निम्न और सरल सीढ़ियोंसे आरम्भ करना और क्रमशः उच्च और कठिन श्रेणियोंपर चढ़ना आवश्यक है। इस प्रकार क्रमशः वृद्धि, विकास और उन्नतिका यह नियम जीवनके प्रत्येक विभाग और प्रत्येक मानवी घटनापर घटता है और जहाँपर इसका उल्लङ्घन होता है, वहाँ पूरी असफलता होती है। विद्या प्राप्त करनेमें, कोई व्यापार सीखनेमें अथवा कोई व्यवसाय करनेमें सभी लोग इस नियमको अङ्गीकार करते और पूर्णरूपसे इसको [illegible] करते हैं। उसी प्रकार सत्यकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्ञासा, जीवनके यथार्थ आचरण और ज्ञानपर चलनेमें भी इस नियमका पालन अनिवार्य है। प्रथम इसके कि गूढ़ बातें जानी जा सकें, घरेलू तथा साधारण सामाजिक गुणोंकी छोटी बातोंमें पूर्ण प्रवीणता प्राप्त कर लेना और उन्हें समझ लेना चाहिये। परंतु संसारकी साधारण-से-साधारण बातोंमें भी अभ्यास ज्ञानका अगुआ है और आत्मिक बातोंमें तथा उच्चतर जीवन व्यतीत करनेमें तो यह नियम अक्षरशः सत्य ठहरता है। धर्माचरण करनेहीसे धर्मकी पहचान आ सकती है और धर्मके अनुष्ठानोंमें प्रवीणता प्राप्त कर लेनेहीसे सत्यका ज्ञान हो सकता है और वही सच्चा ज्ञान भी है, जिसमें जीवन मनसा-वाचा-कर्मणा उच्चतर बनाया जा सके। अस्तु, प्रतिदिन और प्रतिघंटे भलाईका अभ्यास करनेहीसे आरम्भमें सरल फिर उनसे कठिन बातोंपर सत्यका ज्ञान हो सकता है। जैसे बालक अपने निरन्तरके अभ्यास और उद्योगसे समस्त असफलताओं और कठिनाइयोंको पार करता हुआ अपने पाठोंको धैर्य और साहसपूर्वक याद करता है, वैसे ही सत्यका जिज्ञासु, विघ्नोंसे न डरता हुआ और कठिनाइयोंसे दृढ़ बनता हुआ अपने कार्यमें भलीभाँति लगता है और ज्यों-ज्यों वह पुण्य उपार्जन करता जाता है, त्यों-त्यों उसका मन सत्यके ज्ञानसे उद्भासित होता जाता है। यह वह ज्ञान है, जिसमें वह सुरक्षित रहकर विश्राम कर सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि वह व्यक्ति जिसे अपने मनको ठीक करने और अपने हृदयको, उस हृदयको जो कि जीवनमें समस्त आचार, व्यवहारका स्रोत तथा भाण्डार है—पवित्र बनानेकी अभिलाषा है। किस प्रकार जीवनके अज्ञान और विकारोंको नष्ट करके ज्ञानरूपी बल संचित करके अपना जीवन पवित्र और उच्चतर बनाये। इस सम्बन्धमें प्रारम्भमें शारीरिक संयम और वाणी-संयमकी अत्यन्त आवश्यकता है। शारीरिक संयमकी दो श्रेणियाँ हैं। प्रथम है—आलस्यका त्याग और द्वितीय है विषयभोगका परित्याग अथवा जितेन्द्रियता। वाणी-संयमकी भी पाँच श्रेणियाँ हैं—अपवाद, गप्प तथा व्यर्थ वार्तालाप, कठोर-वचन, भ्रामक वाणी तथा दोषग्राही भाषणका परित्याग। इस प्रकार धीरे-धीरे संयमद्वारा जब शरीर और जिह्वा भलीभाँति वशमें हो जाते हैं तो विचार शब्द और कार्यको उच्च बनाना सरल हो जाता है; क्योंकि ऐसी दशामें स्वार्थपूर्ण बातें और अयोग्य विचार जिह्वापर नहीं आते और न वे कार्यरूपमें परिणत होते हैं; क्योंकि वाणी निर्दोष, पवित्र, नम्र, [illegible] और उद्देश्यपूर्ण हो जाती है और जो शब्द कहा जाता है, वह खरा और सत्य होता है।

अतः जिस व्यक्तिको पूर्ण रूपसे उच्चतर जीवनके प्राप्त करनेका अभीष्ट हो उसे चाहिये कि वह हृदयकी समस्त बुरी वृत्तियोंको त्याग दे और अच्छी वृत्तियोंका निरन्तर अभ्यास करता रहे। यदि उसे कष्ट, शङ्का अथवा दुःख हो तो उसे चाहिये कि वह अपने आन्तरिक जीवनमें उसका कारण ढूँढे और उसका त्याग करे। उसे चाहिये कि सदा ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और मनन करे; क्योंकि इस समयसे बढ़कर और कोई पवित्र समय नहीं है। यही समय है जब कि प्रकृतिका कोना-कोना पवित्रतासे भरा रहता है, पत्ते-पत्तेसे आरोग्यवर्द्धक हवा निकलती रहती है। इस शुद्ध वायुसे मनुष्यके मस्तिष्कका विकास होता है, आलस्य दूर भागता है और हृदयमें सदाचारके उत्तम विचार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सद्भावनाओंके साथ प्रत्येक दिन शरीर और जिह्वाको वशमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये तथा मनको ऐसा स्थिर करना चाहिये जिसमें भूल-चूक और निर्बलतासे बच सके। उसे विचारशील और दृढ़प्रकृति होकर तत्परता और उद्योगके साथ अपने हृदयकी इस प्रकार रक्षा करनी चाहिये और अपना मन ऐसा पवित्र बनाना चाहिये कि वह प्रतिदिन कम बुराई और अधिक भलाई करे। सदा श्रेष्ठ मनुष्योंके सत्सङ्गमें रहना, श्रेष्ठ पुस्तकें पढ़ना, श्रेष्ठ बातें सोचना, श्रेष्ठ घटनाएँ देखना, श्रेष्ठ कार्य करना, दूसरोंमें जो श्रेष्ठताएँ हैं, उनकी कद्र करना और उन्हें अपनाना तथा श्रेष्ठतामें ही श्रद्धा रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पहलेसे सतर्क रहे बिना आजकलकी रंगीन दुनियाके प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त करना कठिन है। अतएव शान्त स्थानमें मनको सज्जित और प्रस्तुत करके तथा यथार्थ ही देखने, जानने और समझनेकी उसमें आदत डालनी चाहिये; क्योंकि सम्यक् ज्ञानके सम्मुख पाप और लोभ नहीं ठहरते।

अतः उच्चतर जीवन प्राप्त करनेका इच्छुक व्यक्ति यदि उपर्युक्त साधनोंको बरते तो निश्चय ही वह दिनोंदिन अधिक बलवान्, शिष्ट और बुद्धिमान् बनता जायगा। उसके सुखकी वृद्धि होगी और सत्यताका प्रकाश उसके अन्तःकरणमें दिनों-दिन दूना होकर सारी कालिमा दूर कर देगा। उसका पथ विस्तृत तथा परिष्कृत हो जायगा और जीवन सुनियमित, [illegible], सुखद, शान्तिप्रद, आनन्दमय और मनोहर होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



( १ )

## रामरक्षास्तोत्र

'कल्याण' वर्ष ३६के अङ्क ८ एवं ९ में 'रामरक्षास्तोत्र' के विषयमें बहुत कुछ प्रकाशित हो चुका है। इसी विषयमें आजसे ढाई वर्ष पहलेकी एक सत्य घटना नीचे प्रस्तुत है—

मेरे छोटे बच्चेको ( जब कि उसकी आयु केवल एक ही वर्षकी थी ) एक दिन ठीक बारह बजे रात्रिमें अचानक बड़े जोरसे चीत्कार करते सुनकर हम सब घरवाले जाग पड़े; और देखा तो बच्चा इस ढंगसे काँपता और इधर-उधर देखता हुआ रो रहा था, मानो उसे बहुत भय लग रहा था। उसी दशामें पूरी रात बीत गयी और सुबह नौ बजते-बजते बच्चेको तेज बुखार और फिट ( खिंचाव ) जैसे पुराने मिरगीके रोगीको आया करती है, आने लगी। उस दिन, दिनभर काफी उपचार ( डाक्टर, वैद्य, झाड़ा-टोना आदि-आदि ) होते रहे; परंतु कोई भी लाभ नहीं हुआ, बल्कि बच्चेकी दशा इतनी बिगड़ गयी कि उसका रोम-रोम काँपने लगा था और पहले जहाँ उसे एक-एक घंटेसे फिट आती थी, अब बीस-बीस मिनटसे आनी शुरू हो गयी। उसी दिन दो बजे रात्रिकी गाड़ीसे चाचाजीके यहाँ पुत्रीकी शादीके लिये बारात आनेवाली थी। घरवालोंकी चिन्ताका कोई पार नहीं था; और मेरे तो आँसू रोकनेपर भी नहीं रुक पा रहे थे। बल्कि शादीकी साज-सजावट और सम्पूर्ण तैयारियाँ देख-देखकर और भी अधिक जी जल रहा था। रातको बारात आ गयी। होनेवाला काम तो समयपर होता ही है—सुखमें हो या दुःखमें। दूसरे दिन सबेरे सभी बाराती आते हैं और बच्चेकी दशा देखकर चुपचाप बिना कुछ कहे चले जाते हैं ( अर्थात् बच्चेके जीवनकी अब कोई आशा शेष नहीं रह गयी थी और विवाहके शुभ अवसरपर यह अशुभ········ )।

तीसरे दिन भी जब बच्चेका दुःख मरकर भी नहीं छूट सका, तब दुखी हृदयसे मैंने एकान्तमें प्रभुसे कहा—'हे नाथ! अब तो इस छोटे-से जीवका दुःख देखा नहीं जाता। मैं नहीं चाहता कि यह रोगमुक्त होकर जीवित रहे; जैसे भी हो दीनबन्धु! अब इसका दुःख दूर कर दो। इसे इस घोर दुःखसे छुटकारा दे दो।'

दोपहरके दो बजे माताजीकी इच्छा हुई कि स्थानीय रामद्वारामें वयोवृद्ध संतजीके पास जाकर बच्चेकी कुशलकी कामना की जाय और उनसे ( जैसा कि वे पहले कई बार भी करते सुने गये हैं ) रामरक्षास्तोत्रसे अभिमन्त्रित जल लाकर बच्चेको दिया जाय और शेष सभी उपचार बंद कर दिये जायँ। मुझे यह बात बिल्कुल पसंद नहीं आयी। परंतु माताजीके अधिक कहनेपर जाना ही पड़ा। वैसे तो संतजी मेरे परिचित थे, परंतु अधिक सम्पर्क तबतक नहीं था। मैं प्रणाम करके चुपचाप बैठ गया। पासमें एक दो सज्जन और भी बैठे थे। एकाएक वास्तविक मनोकामना कहनेकी इच्छा नहीं हुई। कुछ सत्संगविषयक बातें होनेके पश्चात् संतने स्वतः ही पूछा—'क्यों? आज उदास कैसे हो?' उत्तरमें मैंने सभी बातें सत्य-सत्य निवेदन कर दीं। संत बड़े त्यागमूर्ति थे; कृपा करके कहने लगे—'तीन दिन हुए आकर कुछ कहा भी नहीं।' और उठकर एक छोटा-सा पात्र जलसे भरकर लाये तथा मेरे सामने ही बैठकर उस पात्रके जलमें अँगुली डालकर घुमाते रहे और मुँहसे धीरे-धीरे मीठे और प्रेमभरे स्वरसे रामरक्षास्तोत्रका पाठ करते रहे। करीब आठ-दस मिनटके बाद मुझे वह जल देकर बोले—'जब भी बच्चेको जल पिलानेकी आवश्यकता हो, साधारण जलके स्थानपर यह जल पिलाते रहना और कल आकर फिर मिलना, रामकृपासे सब ठीक होगा।'

मैं चुपचाप वह पात्र लेकर घर आ गया और आज्ञानुसार वह जल बच्चेको पिलाने लगा। महानुभाव! कहना न होगा चौथे दिन सबेरेतक हालत सुधरते-सुधरते बच्चा माँके स्तनपानकी चाहना करने लगा। सभी घरवाले बड़े आनन्दित थे। मैं सबेरे ही संतजीके पास गया और सब हाल सुनाया तो वे कहने लगे—'भाई! रामकृपासे क्या-क्या नहीं हो जाता।'

यह बिल्कुल सत्य घटना है जो कि मेरे हृदयमें 'रामरक्षास्तोत्र'का महत्त्व लिये बैठी हुई है और जीवनभर रहेगी। आज बच्चा साढ़े तीन वर्षका है और रामकृपासे अभीतक तो उसे वैसी कोई भी शिकायत फिर नहीं हुई है। शेष रामकृपा।

—मोहनलाल कण्ट्राक्टर

( २ )

## मानवताके दो छोर

मोती पटेल संस्कारी तथा भक्तिभावमें रँगा रहता। उसने लोगोंको प्रेमसे समझाकर गाँवमें शराब, माँस और चोरीको बंद करवा दिया था। मोती पटेलका लड़का राबसंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवान हो गया था। मोती पटेलकी केवल यही एक कामना थी कि पुत्रका विवाह खूब धूम-धामसे किया जाय।

परंतु मनुष्यका सोचा हुआ क्या होता है। लड़कीके पिताने अपनी सुविधाके अनुसार जेठके पिछले पखवाड़ेका पक्का मुहूर्त निकलवाकर पुरोहितजीको भेज दिया। पुरोहित महाराजको आया देखकर मोतीने उनका आदर-सत्कार किया, भोजनकी व्यवस्था करायी। मोती पटेलको बगलके गाँवके धरमशी सेठपर पूरा विश्वास था और पीढ़ियोंसे दोनों कुटुम्बों-का परस्पर व्यवहार भी चला आता था। इससे मोती पटेलने विवाहका मुहूर्त स्वीकार कर लिया। अवसर देखकर पुरोहित महाराजने मोती पटेलसे कहा—

'पटेल! तुम्हारे सम्बन्धीजीकी यह स्थिति तो नहीं थी कि इस साल विवाह किया जाय, परंतु तुम्हारी वृद्धावस्था देखकर उन्होंने सोचा कि इसी साल विवाह हो जाय तो तुम भी लड़केके विवाहका लाभ उठा लो। इसीसे तुम्हारे सम्बन्धीने, जितने भी हो सकें, रुपये मेरे साथ भेज देनेके लिये कहलवाया है।

मोती पटेल तो यह बात सुनते ही ठंढा हो गया, परंतु कलेजा कड़ा करके उसने कहा—'बगलके गाँवमें साहूकारके पास जाता हूँ।' सेठपर मोतीका पक्का विश्वास था, इसीसे वह अपने खेत तथा घरकी सारी उपज बिना मोल-तोल किये सेठके यहाँ पहुँचा देता और वहाँसे जरूरी माल-सामान ले आया करता।

मोती पटेल धरमशी सेठके पास गया। सेठने मोती पटेलके आनेका कारण नहीं पूछा और बातों-ही-बातोंमें कहा—

'पटेल! मैंने तुमसे पहले भी कहा था कि अभीतक तो गत वर्षके बाकी निकलते पाँच सौ रुपये बिना ब्याज तुम्हारे नाम खड़े हैं। उसके बाद तुम जो घीका डिब्बा दे गये थे, उसके बदलेमें चाय, चीनी, गुड़, बिनौले आदि ले गये थे, उनके भी रुपये बाकी ही हैं।'

पटेलने सेठकी बातकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा—'सेठ! तुम्हारे पैसे दूध दुहे देने हैं। परंतु सेठ, इस बच्चेके विवाहका मङ्गलकाम तो तुम्हींको सँभालना है। अभी तो मुझे केवल दो सौ रुपये ही चाहिये।'

रुपयेका नाम सुनते ही सेठ चमक उठे। अन्तमें हाँ-ना करते-करते रुपये देना सेठने स्वीकार किया। परंतु बड़ी चालाकीसे सेठने कहा—'मैं भी आजकल ज्यादा नगद रुपये घरमें नहीं रखता। अतः दूसरेसे उधार लाकर दूँगा।' यों कहकर सेठने बहीमें खाता डालकर पटेलकी सही भी करवा ली और जरूरी सामानके लिये गाड़ी भेजनेके लिये कहकर दो सौ रुपये दे दिये। शेष पाँच सौ रुपये बारातके पहले दिन देनेका वादा किया। पटेलने हर्षभरे मनसे घर लौटकर दो सौ रुपये पुरोहित महाराजको गिना दिये। अन्तमें रायसंगकी बारात चढ़नेका दिन आया। अमुक जगह मिलनेका संकेत करके बारातको रवाना कर दिया और मोती पटेल दो-एक मुस्तैद आदमियोंको साथ लेकर धरमशी सेठके पास रुपये लाने गया। सेठने लाचारी प्रकट करते हुए कहा—'क्या करूँ पटेल! मैंने तो अपने विनोदको रुपये लानेके लिये भेजा था, पर आजकल फसल कमजोर हो जानेके कारण विनोदको खाली हाथ लौटना पड़ा।'

यह सुनते ही बेचारे पटेलके तो होश-हवाश ही हवा हो गये।

फिर, साथ आये हुए लोगोंको संग लेकर मोती पटेल, जहाँ बारातकी बैलगाड़ियोंके साथ मिलनेका निश्चय किया था, उस ओर चल दिया। परंतु उन लोगोंके वहाँ पहुँचनेके कुछ ही देर पहले बारातकी गाड़ियाँ आनन्दके गीत गाती हुई आगे चली गयी थीं। बगलमें पशु चरानेवाले एक गँड़रियेने यह बात बतायी और अपने सहज स्वभाववश चिलम पीकर आगे जानेको कहा। इन लोगोंने उसकी बात मान ली।

गँड़रियेने पटेलको उदास देखकर मानवसुलभ जिज्ञासासे पूछा—'क्यों बापजी! शरीर कुछ गड़बड़ है क्या?' ऐसे सहानुभूतिके शब्द सुनकर मोती पटेल रो पड़ा और भगवानसे मौत माँगने लगा। बार-बार पूछने-ताछनेपर जब गँड़रियेको सब बातोंका पता लगा तब वह कहने लगा—'चिन्ता मत करो, कितने रुपये चाहिये?'

पहले तो यह बात माननेमें ही नहीं आयी। जान न पहचान, न कोई जात-बिरादरीका सम्बन्ध; इसपर भी इस मालदारने कितनी ममता और प्रेम दिखलाया। मोती पटेल तो अपनी पगड़ी उस गँड़रियेके चरणोंमें रखने लगा। यह देखकर गँड़रिया एकदम उठ खड़ा हुआ और पटेलसे बोला—'मैंने अपनी लड़की रुड़कीके गौनेके लिये रुपये इकट्ठे कर रखे हैं। मैं तो गौना कुछ दिन बाद करूँगा, तब भी चलेगा। परंतु तुम्हारे तो अब हाथकी बात ही जो नहीं रही है। तुम्हारा काम तो होगा ही बापजी! मैं तुमको नगद तीन सौ रुपयेतक दे सकूँगा। ज्यादा चाहिये तो यह चाँदीकी करधनी निकाल दूँ। सहज ही इसके पचास रुपये तो मिल ही जायेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अनजान गँड़ेरियेकी यह बात सुनकर मोती पटेल गद्गद हो गया और उसे प्रेमसे गले लगाकर बोला—'आजसे तू मेरा भाई है। पर मैं तेरे रुपये तभी लूँगा जब तू मेरे साथ बारातमें चलना स्वीकार करेगा'।

बड़ी कठिनतासे और बहुत आनाकानी करनेके बाद उसने मोती पटेलके साथ बारातमें जाना मंजूर किया। उसने अपने ढोरोंकी व्यवस्था की और बारातकी गाड़ियोंसे जा मिलनेके लिये सब हर्षभरे हृदयसे दौड़ते हुए चल दिये। रायसंगका विवाह धूम-धामसे करके सब अपने गाँव लौट आये।

शामला गँडरियेने जब मोती पटेलसे जानेकी इजाजत माँगी, तब मोती पटेलने सारे गाँवके लोगोंको इकट्ठा करके शामलाकी प्रशंसा की और उसीकी सहायतासे वह अपने लड़केका विवाह धूमधामसे कर सका था, यह बताया। और कहा कि 'यह शामला तो अब मेरा भाई है और मेरी जमीनमें ठीक आधी जमीन मैं इसे देना चाहता हूँ।'

सोनेके टुकड़े-जैसी जमीन देनेकी पटेलकी उदारताके लिये गाँवके लोग कुछ कहते, इसके पहले ही पटेलका लड़का रायसंग बोल उठा—'देखो, शामला बापू! अब तुम्हें कहीं जाना नहीं है। हम तुम्हें खेती करना सिखा देंगे।'

अन्तमें इन लोगोंके प्रेमवश शामलाने इधर-उधर भटकनेका विचार छोड़कर जमीन लेना स्वीकार कर लिया। आज मोती पटेल और शामला गँडेरिया जीवित नहीं हैं, पर उनके लड़के मा-जाये भाईकी तरह प्रेमसे रहते हैं। 'अखण्ड आनन्द' —मनुभाई रजपूत

( २ )

## सरदारजीकी पवित्र मानवता

मैं छिंदवाड़ा ( म० प्र० ) का निवासी हूँ। यहाँ अपने माता-पिता और भाइयोंके साथ रहता हूँ। मुझे केवल इस घटनाका वर्णन करना है, इसलिये ज्यादा परिचय नहीं दे रहा हूँ।

मैं अपने दो छोटे भाइयोंको प्रायः साइकलपर घुमाने ले जाया करता हूँ। सदाकी तरह आज भी उन्हें घुमाने ले गया। दोनोंमेंसे बड़ेका नाम है राघव और छोटेका है ललित। छोटा बहुत ही चञ्चल वृत्तिका है। राघवको मैंने पीछे बैठाया और ललितको आगे डंडेपर। दो-तीन मील जानेके बाद उन्होंने लौटनेकी इच्छा प्रकट की। मैं वापस हो लिया। दोनोंने अपनी-अपनी जगह बदल ली। छोटा भाई पीछे बैठ गया और बड़ा आ गया डंडेपर। यह जगह क्यों बदली गयी थी? केवल विधाताके विधानको पूर्ण करनेके लिये ही। साइकल पहाड़ी सड़ककी लंबी ढालपर दौड़ रही थी। शामके सातका समय था। अचानक सामने एक ट्रक आ गयी। उसकी बत्तीसे मेरी आँखें चौंधिया गयीं। सड़कके बगलमें काफी नीचे जंगल था। इसी समय डंडेपर बैठे हुए राघवका पैर अगले पहियेमें फँस गया। साइकल झटकेसे खड़ी हुई और फिसल गयी। मैंने उन दोनोंके हाथ पकड़ लिये थे; अतः हम तीनों तो सड़कपर ही गिरे; किंतु साइकल उस घने जंगलमें गिर गयी। रातके अँधेरेमें कुछ भी नजर नहीं आता था। ट्रक रुकी नहीं, वह तेजीसे चली गयी। कई और लोग भी निकल गये; परंतु किसीने राघवकी आवाजको नहीं सुना।

कुछ समय पश्चात् वहाँसे एक सरदारजी गुजरे, जो शहरकी ओर जा रहे थे। वे हमारे पास रुके। उन्होंने राघवको रोते देखकर उसका कारण पूछा। मैंने उन्हें सारी घटना सुना दी, परंतु राघवके लगी चोटके विषयमें कुछ भी नहीं कह सका; क्योंकि उसके रोनेका मैंने यही अर्थ लगाया था कि वह डर गया होगा। मैंने कल्पना भी न की थी कि राघवको इतनी गहरी चोट लगी होगी। सरदारजीने उसकी रोनेकी आवाज सुनकर ही यह अंदाज लगा लिया कि इसे गहरी चोट लगी है। उन्होंने जैसे ही उसके पैरपर टार्चकी रोशनी की, वैसे ही वह दृश्य देखकर मेरी आँखोंपर अन्धकार छा गया और मेरा सिर चकराने लगा। उसके पैरसे एकदम खून निकलता ही जा रहा था। जैसे-तैसे मैंने अपने आपको सँभाला। सरदारजीने कहा—

'क्यों भाई रूमाल है?'

मैंने कहा—'नहीं।'

रूमाल उनके पास भी नहीं था। उन्होंने बिना कुछ कहे ही अँधेरेमें ही उसके पैरमें एक लम्बी-सी पट्टी बाँध दी। फिर उन्होंने कहा—'तुम इसे जल्दी ही अस्पताल ले जाओ।' मैंने कहा—'साइकल तो नीचे खड्डेमें गिर गयी।'

उन्होंने अपनी साइकल मुझे दे दी। और कहा—'तुम इसे अकेले ही लेकर अस्पताल जाओ। छोटे ( ललित )को मैं लेकर आता हूँ। मैंने जल्दी और घबराहटमें ललितको उनके पास ही छोड़ दिया और राघवको लेकर मैं अस्पताल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचा । उसे पट्टी बाँधी गयी और मैंने जब वहाँ कुछ लोगोंको यह घटना सुना दी। तब उन्होंने कहा—'तुमने यह बहुत बड़ी गलती की; लड़केको अकेले छोड़कर। वह कोई लड़कोंको गायब करनेवाला है और इस बच्चेको भी अवश्य गायब कर देगा।'

मेरा मन भी सशङ्कित हो उठा। मैं सोचने लगा—'सरदारजीने इसीलिये मुझे साइकल दी है कि मैं जल्दी-से-जल्दी उनके रास्तेसे दूर हट सकूँ।'

परंतु जब मैं घर पहुँचा, तब मुझे अपने ऊपर, अपने बुरे विचारोंपर बहुत ही लज्जाका अनुभव हुआ; क्योंकि ललित तो घरमें सुखकी नींद सो रहा था। जब उनकी बाँधी हुई पट्टीको मैंने ध्यानसे देखा, तब मालूम हुआ वह उनकी पगड़ीसे फाड़ी हुई पट्टी थी। दूसरे दिन, सवेरे जब मैंने बाहरका दरवाजा खोला, तब साइकलको भी सुरक्षित रक्खी पाया। इस आदर्श मानवताका ऐसे कलियुगमें दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरी आँखोंसे आनन्दाश्रु बह चले।

जल्दी-जल्दीमें मैं उनका नाम नहीं पूछ सका था और बहुत ढूँढ़नेके पश्चात् भी उन्हें न पा सका। मैंने उनकी साइकल तो उनके दोस्त आये थे, उनको दे दी। वे स्वयं नहीं आये।

इस घटनाको सुनानेका तात्पर्य यही है कि आज भी मनुष्यमें दूसरेके स्वार्थको अपना स्वार्थ समझनेकी इतनी पवित्र मानवता कुछ लोगोंमें अब भी पूर्णरूपसे जाग्रत् है और ये अनजान सरदारजी ऐसी मानवताके प्रतीक हैं। यदि वे एक बार फिर मिल जायँ! —श्रीअशोक दूबे, छिंदवाड़ा

(४)

## ईमानदारी और सद्व्यवहारका बदला

वृजमोहन तथा मदनलाल हिस्सेदारीमें व्यापार करते थे। दोनोंमें बहुत प्रेम था। वृजमोहन व्यापारी स्वभावके बहुत अच्छे पुरुष थे, पर ये बड़े सावधान। अपना एक पैसा छोड़ते नहीं और दूसरेका एक अधेला भी लेना चाहते नहीं। काम-काज भी अधिक वही देखते। मदनलालके प्रति उनकी बड़ी प्रीति थी। मदनलाल काम-काजमें कम समय लगाकर अधिक समय देशके काममें लगाते। तब भी वृजमोहनजी उन्हें कभी कुछ कहते नहीं, वरं उनका विशेष आदर करते। एक बार बाजारमें किसी कारणवश बड़ी गड़बड़ी आ गयी। कई अच्छे-अच्छे फर्म फेल हो गये। वृजमोहन-मदनलालको भी इस व्यापारिक संकटमें काफी तकलीफ सहनी पड़ी। उनके लाखों रुपये दूसरे व्यापारियोंमें अटक गये। इनमें एक व्यापारी ऐसे थे, जो पहले बहुत सम्पन्न थे, पर अकस्मात् उनको बहुत बड़ा नुकसान हो गया था। इनमें वृजमोहन-मदनलालकी बहुत रकम बाकी थी। ये उसे दे नहीं पाये। वृजमोहनजीको यह संदेह था कि इन्होंने रुपये छिपा रक्खे हैं और इनकी नीयत बिगड़ गयी है, इसलिये ये नहीं दे रहे हैं। पर बात वास्तवमें ऐसी नहीं थी। उनके पास कुछ भी नहीं बचा था। वे अपने घरकी स्त्रियोंका सारा गहना भी दे चुके थे। इस बातका मदनलालको पूरा पता लग गया था। मदनलालने वृजमोहन-को सब बातें बतायीं भी; पर उनको जो सूचना मिली थी, उसपर उन्हें अधिक विश्वास था और उस सूचनाके अनुसार उक्त व्यापारीके यहाँ बहुत-सा जेवर था। अतः वृजमोहनने कोर्टमें नालिश कर दी। उक्त व्यापारी सच्चे थे, अतः वे कोर्टमें हाजिर नहीं हुए। कोई झूठा जवाब नहीं दिया। उनपर एक तरफा डिक्री हो गयी। वृजमोहनजीने चुपके-चुपके डिक्री जारी करवाकर उक्त व्यापारीके घरपर कुर्की भेजनेकी व्यवस्था की।

इसका पता मदनलालको लगा, तब मदनलालने फिर पता लगाया। वे उस व्यापारीसे मिले। उसने सच्ची बात बतायी कि उसके घरमें अपना जेवर बिल्कुल नहीं है। करीब एक लाख रुपयेका उनकी एक विवाहिता लड़कीका जेवर है—जो उसके ससुरालवालोंमें परस्पर घरू झगड़ा हो जानेके कारण उनके यहाँ रक्खा हुआ है। पता लगाने पर यह बात सत्य निकली। तब मदनलालने आकर फिर वृजमोहनजीसे कहा कि 'जेवर उनका नहीं है। आप कुर्की न भेजें। यदि आप कुर्की भेजेंगे तो मैं पहले ही उनको सूचना दे दूँगा कि वे अपनी लड़कीका गहना घरसे हटा दें।' वृजमोहनजीको कुछ क्षोभ तो हुआ, पर वे मान गये। कोर्ट आदमी भेजा, पर तबतक कुर्की जा चुकी थी। यह समाचार मिलते ही मदनलालने उक्त व्यापारीको फोन कर दिया कि आपके यहाँ हमारी कुर्की आनेवाली है। जेवर हटा दो। विश्वास हो तो मेरे पास भेज दो।' कुर्कीवालोंके पहुँचनेसे पहले ही सारा जेवर मदनलालके पास आ गया। कुर्कीवालोंको कुछ भी नहीं मिला। वे खाली हाथ लौट गये। तबतक कोर्टसे कुर्कीका आर्डर भी वापस करा दिया गया। उक्त व्यापारीका गहना उनकी लड़कीको सौंप दिया गया।

श्रीवृजमोहन और मदनलालके इस व्यवहारका उक्त व्यापारीपर बड़ा असर हुआ। वह रातको आया और उसने अपनी सारी हालत सच-सच बतलाकर बड़ी कृतज्ञता प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की और देशकी जमीन तथा मकानके पट्टे देनेको कहा। बृजमोहन और मदनलाल दोनोंने कहा कि 'हम आपके बाप-दादेके बनाये हुए और आपके परिवारके रहनेके मकानको नहीं लेना चाहते। जब रुपये हाथमें हों तब दे दीजियेगा।'

उनको उक्त व्यापारीकी सचाई तथा ईमानदारीपर विश्वास हो गया और उसकी वर्तमान स्थितिको देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ—कुछ ही महीनों पहले जो बड़ा सम्पन्न था, वह आज कितना विपन्न है! उन बृजमोहन-मदनलालने उसे कारोबार करनेके लिये एक बड़ी रकम उधार (मनमें सहायता समझकर ही) दी। उसका कारोबार चला और कहना नहीं होगा कि तीन ही वर्षके अंदर उसका सारा ऋण चुक गया। इतना ही नहीं, बृजमोहन-मदनलालको उसने ब्याजसमेत उनका नया-पुराना ऋण तो चुकाया ही, साथ ही अपने व्यापारमें रुपये लगानेके नाते उनका अमुक हिस्सा उन्हें उस समय बिना बताये रख दिया था, उस हिस्सेके भी लगभग साठ हजार रुपये उनके अनेक मना करनेपर भी उनको दिये। यों भगवान्ने ईमानदारी-सचाई और सद्व्यवहार-उपकारका विलक्षण बदला दिया। —हजारीमल गुप्त

( ५ )

## तुम्हारा बच्चा क्या मेरा बच्चा नहीं?

इसका नाम था अमराजी। रस्सीके सहारे आँखपर चढ़ाया हुआ चश्मा, बुढ़ापेकी प्रतीक-जैसी सारे शरीरपर पड़ी हुई झुर्रियाँ। बड़ी मुश्किलसे चल पाता था; पर पता नहीं, कोई ऐसा उत्साह इसके हृदयमें बहता रहता था, जिससे वह मुसकराता हुआ डाक बाँटा करता।

अमराजीके चार वर्षका बच्चा था। इसकी माँ तो इसे छोटी ही उम्रमें छोड़कर बड़े घर चली गयी थी। यह नन्हा-सा बच्चा सारे मुहल्लोंमें हरेकको अपनी तोतली भाषासे मोहित किये लेता था। जब अमराजी डाक लेकर आता, तब यह बच्चा बीच रास्तेमें राह देखता बैठा रहता।

अमराजीका यह प्यारा बच्चा बीमारीमें फँस गया। दो-तीन दिन तो अमराजीने ईश्वरके भरोसे निकाल दिये, पर जब बीमारी बढ़ी, तब उसने गाँवके डाक्टरको बुलाया। बच्चेको देखकर डाक्टरने कहा—'भाई! तुम्हारे बच्चेको मियादी बुखार है और यदि इसको जल्दी न रोका गया तो बच्चेका जीवन जोखिममें पड़ जाना सम्भव है।'

डाक्टरको फीस देते समय अमराजीके हाथ काँप रहे थे। डाक्टरके जानेके बाद अमराजी घबरा गया। दवाकी फेहरिस्त देखकर तो अमराजीके मुँहसे चीख निकल पड़ी—पैसे कहाँसे लगाऊँगा! मेरे-जैसे डाकियेको पैसे देगा भी कौन? पर मुझ बूढ़ेकी लकड़ी-जैसे इस बच्चेकी दवा भी तो करनी है।

अड़ोसी-पड़ोसियोंको बच्चेकी सँभाल देकर अमराजी दो-तीन मील डाक लेने जाता, पर वह जल्दी ही लौट आता। एक दिन इसके हाथमें चालीस रुपयेका एक मनीआर्डर एक विधवा बुढ़ियाके नाम आया। बुढ़िया भी गरीब थी। यह भी इन रुपयोंकी कबसे बाट देख रही थी। इधर अमराजीके मनमें आया कि 'इन रुपयोंसे मैं दवा ले आऊँ तो मेरा बच्चा बच जाय। बुढ़ियाको क्या पता लगेगा?' पर जीवनमें जिसने कभी पाप नहीं किया, उस अमराजीका मन पीछे पड़ रहा था—हरामके पैसे उसे नहीं पचेंगे। विधवा बुढ़ियाकी हाय उसके आधारको चबा जायगी।

उस दिन रातको उसे नींद नहीं आयी। आखिर सत्यकी जय हुई। दूसरे दिन सबेरे ही अमराजी बुढ़ियाके पास गया—'लो माँ—तुम्हारा मनीआर्डर है चालीस रुपयेका।' डाकियेकी आवाज सुनते ही बुढ़िया रसोईमेंसे निकलकर आँखें मसलती बाहर निकली।

'अरे भैया! यह मनीआर्डर इतनी देरसे कैसे आया! मेरे लड़केकी तो एक सप्ताह पहले ही चिट्ठी आयी थी कि "मैं चालीस रुपयेका मनीआर्डर भेज रहा हूँ, मिलनेपर पहुँच लिखना।"' बुढ़ियाने देर होनेका कारण पूछा।

और अमराजीकी आँखोंसे दो आँसू निकलकर ढुलक पड़े। बुढ़ियाने तुरंत ऊपरकी ओर देखा—'अरे तुम तो जैसे रो रहे हो, ऐसा लगता है। तुम अपने मनकी इस बेचैनीका कुछ कारण बताओ तो पता लगे।'

अमराजीने आपबीती सब सुनायी और दोनों अँगुलियोंसे अपने आँसू पोंछ लिये।—'मुझे पता होता तो तुम्हें यहाँतक आने ही न देती। क्या तुम्हारा बच्चा मेरा बच्चा नहीं है? जाओ, ये रुपये ले जाओ और बच्चेकी अच्छी तरह दवा कराओ। तुमको प्रभु जब दे तो लौटा देना।' बुढ़ियाने कहा।

अमराजी तो इतना दब गया था कि उसके मुखसे आभारका भी एक अक्षर नहीं निकल पाया। और बुढ़िया, मानो उसने कोई सुकृत्य किया हो, इस भावसे डाकियेकी तरफ देखती रह गयी।—अखण्ड आनन्द

—बाबूभाई रेवाशंकर पंड्या

( ६ )

## दुष्कृत्यका हाथोंहाथ फल

गत ११ जुलाई १९६२ को मैं बम्बई-मद्रास मेलसे जा रहा था। कुर्डूवाडी स्टेशनसे पंढरपुर जानेके लिये छोटी रेलवे-लाइन है। प्रतिवर्ष आषाढ़ी एकादशीपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंढरपुरमें भगवान् श्रीकृष्ण—जिन्हें वहाँ श्रीपण्ढरीनाथ कहते हैं—का मेला लगता है। कुर्डूवाडीके समीप रहनेवाले कुछ भक्त यात्री रेलवे लाइनके बगलसे जानेवाले छोटे-से पैदल मार्गसे जा रहे थे। मेरे डिब्बेमें तीन फौजी युवक थे। इनमेंसे एक डिब्बेका दरवाजा खोले खड़ा था और बगलके पैदल रास्तेसे जानेवाले यात्रियोंको पैर बाहर निकाल-निकालकर मार रहा था और यों बेचारे निरीह यात्रियोंको लात मार-मारकर हँस रहा था। हमलोगोंने उसे बहुत समझाया कि 'ये सब बेचारे पंढरपुरकी यात्राको जा रहे हैं, निर्दोष हैं, इन्हें लात मारना ठीक नहीं है। तुम इन निरपराध नर-नारियोंको क्यों ठोकर मार रहे हो?' पर उसने किसीकी बात नहीं सुनी। एक किसान-स्त्री सिरपर टोकरी और टोकरीमें बच्चेको लिये उसी रास्तेसे जा रही थी। इसने देखते ही उसको भी लातसे मार दिया। लात लगते ही वह बेचारी गिर पड़ी और उसीके साथ टोकरी तथा टोकरीका बच्चा भी नीचे गिर पड़े। यह प्रसङ्ग हमने आँखों देखा, हमें बड़ा दुःख हुआ।

गाड़ी बड़ी तेजीसे जा रही थी। थोड़ी ही देरमें इंजिनमें पानी भरनेवाली सूँड़का खंभा आ गया। युवक पैर बाहर निकाले हुए था। उसके पैरपर खंभेकी अकस्मात् बड़े जोरकी चोट लगी और वह नीचे रेलवे लाइनपर गिर पड़ा। गिरते ही उसकी टाँगके दो टुकड़े हो गये। यह भयानक दृश्य भी हमने देखा। हमें बड़ा दुःख हुआ!

वह समझानेपर मान गया होता तो यह दुर्घटना क्यों होती! हमें साथ ही यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पापकर्मका फल कुछ ही क्षणोंमें कैसे मिल गया। मनुष्य यह सब देखकर भी कुछ नहीं सीखता, यही दुःखकी बात है।

—दत्ता दिगम्बर कुलकर्णी

# प्रार्थनाके लिये सबसे प्रार्थना

अत्याचारी और विश्वासघातपूर्ण नीच आक्रमण करनेवाले चीनपर शीघ्र-से-शीघ्र पूर्ण विजय प्राप्त करने तथा सम्पूर्ण विश्व-जगत्में नित्य पूर्ण सुख-शान्तिके विस्तारके लिये सभी धर्मोंके प्रत्येक भारतीय नर-नारी प्रतिदिन थोड़ी-सी देर अलग बैठकर परम विश्वासके साथ नीचे लिखे भावकी प्रार्थना करें। मेरी इस विनीत प्रार्थनापर ध्यान देकर प्रार्थना करनेपर निस्संदेह लाभ-ही-लाभ होगा।

सबके प्रभु! सर्वान्तर्यामी! सर्वशक्ति! हे सर्वाधार।
सुनो हमारी सत्य प्रार्थना, करो कृपा अनवरत अपार॥
दो हम भारतके निवासियोंको प्रभु! यह मङ्गल-वरदान।
भौतिक, आध्यात्मिक बलके हम हों विशुद्ध पूरे बलवान॥
कभी चिरन्तन धर्म न छोड़ें—'शूरवीरता, साहस, प्रेम।
वैरशून्यता, राग-शून्यता, सर्वभूतहित, सर्व-क्षेम'॥
पूजें अपना रक्तदान कर रणमें, हम रणसे भगवान।
तन-मन-धन सबका ही कर दें सोत्साह पूरा बलिदान॥
शौर्य-शक्ति-बल-धर्म-त्यागका सुन्दर शुभ रक्खें आदर्श।
मिट जाये अन्यायी अत्याचारीका आसुर-उत्कर्ष॥
हो आसुर-दुर्मति, दुःसाहस, दुष्ट-प्रकृतिका पूरा नाश।
पूर्ण विजय पायें हम, छाये सभी ओर सात्विक उल्लास॥
चाहें कभी किसीका रञ्चक भी न बुरा हम किसी प्रकार।
सर्वोदय हो, सभी सुखी हों, प्रेम-धर्मका हो विस्तार॥
प्राणिमात्र सब सुखी शान्त हों, मिटें सभीके सारे खेद।
भेदरूप इस अखिल विश्वमें देखें एक अखण्ड अभेद॥

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

# कल्याण

[ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र ]

वर्ष ३६

संवत् २०१८–२०१९ वि०

सन् १९६२ ई०

की

# निबन्ध, कविता

तथा

# चित्र-सूची

सम्पादक–हनुमानप्रसाद पोद्दार ] * [ प्रकाशक–मोतीलाल ज़ालान

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

वार्षिक मूल्य ७.५० ( सात रुपये पचास नये पैसे )
विदेशोंके लिये १०.०० [ १५ शिलिंग ]
प्रतिसंख्या .४५ ( पैंतालीस नये पैसे )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निबन्ध-सूची



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110313



**संकलित पद्य**



## चित्र-सूची

**रंगीन**



**इकरंगे चित्र**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

E15011

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## चीनपर पूर्ण विजय प्राप्त करने और उसको भारतकी पवित्र भूमिसे शीघ्र निकालनेके लिये

# तन-मन-धनसे सरकारकी सहायता कीजिये

१—घरका खर्च घटाइये। बड़े भोज आदि बंद कीजिये। विवाह-शादीमें आडम्बर मत कीजिये। सादगीसे कम-से-कम खर्चमें विवाह कीजिये और पैसे बचाकर 'सुरक्षा-कोष'में दीजिये। स्त्री-पुरुष सभी विलास-सामग्रियोंका उपयोग न करके वह पैसे सुरक्षा-कोषमें दीजिये।

२—भारतीय वीर सैनिकोंके लिये कपड़े, ऊनी कम्बल, स्वेटर, योग्य खाद्य-सामग्री आदि दीजिये। रणमें घायल वीर जवानोंके लिये दवा, खाद्य-सामग्री, आरामकी चीजें, अच्छी-अच्छी पुस्तकें दीजिये। घायल वीरोंकी सेवा कीजिये। फर्स्ट एड तथा घायल-सेवाकी शिक्षा प्राप्त कीजिये।

३—यथासाध्य शारीरिक श्रम दीजिये। लोगोंमें उत्साह भरिये और भारतकी विजयका निश्चय दिलाइये।

४—घर-घरमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये। भगवन्नामका जप कीजिये।

५—मानसमें विश्वास हो तो—

"रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥"

—इस सम्पुटके साथ श्रीरामचरितमानसका पारायण-अनुष्ठान कीजिये। स्थान-स्थानपर यथासाध्य नाम-संकीर्तन, विघ्नहारी भगवान् गणेशके तथा भगवती दुर्गाके पाठ-जप-अनुष्ठान। 'सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि। एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥' इस सम्पुटके साथ चण्डीपाठ, भगवती बगलामुखीके अनुष्ठान तथा महामृत्युञ्जयके जप स्वयं कीजिये और करवाइये।

---

## 'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बनिये

एक साथ एक सौ रुपये देकर 'कल्याण' के आजीवन ग्राहक बनानेकी योजना चालू है। लोग ग्राहक बन रहे हैं। शीघ्र रुपये भेजकर आप भी ग्राहक बनिये। सजिल्दका मूल्य १२५.०० है।

'कल्याण'के सभी प्रेमी पाठक-पाठिकाओं तथा ग्राहकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे ध्यान रखकर स्वयं आजीवन ग्राहक बनें और विशेष चेष्टा करके अन्यान्य अधिक-से-अधिक सज्जनोंको, अपने सम्बन्धियों तथा इष्ट-मित्रोंको आजीवन ग्राहक बनावें। ऐसा करके वे 'कल्याण' की तथा उन सज्जनोंकी बड़ी सेवा करेंगे।

किसी सज्जनने पूछा था कि 'वे क्या अपनी ओरसे रुपये देकर कई अन्य सज्जनोंको या संस्थाओंको आजीवन ग्राहक बना सकते हैं?' इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि 'अवश्य बना सकते हैं'। ऐसे उदार सज्जन शीघ्र रुपये भेजकर अधिक-से-अधिक ग्राहकोंके नाम-पते लिखनेकी कृपा करें।

**व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

# श्रीगीता-जयन्ती-महोत्सव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् । तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥**
**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥**

'रणमें मरनेपर स्वर्गकी प्राप्ति होगी और जीतनेपर पृथ्वीकी; अतएव अर्जुन ! युद्धका निश्चय करके खड़े हो जाओ। सब समय मेरा ( भगवान्‌का ) स्मरण करते हुए युद्ध करो, मन-बुद्धि मेरे ( भगवान्‌के ) अर्पण रखो, फिर निःसंदेह मेरी ( भगवान्‌की ) प्राप्ति होगी।'

चीनने विश्वासघातपूर्वक बर्बरतापूर्ण आक्रमण कर दिया है। विश्वभरमें महान् युद्धकी आशङ्का हो रही है। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं। भारतके सामने तो बहुत बड़ा प्रश्न है। इस समय भारतको धनुर्धर अर्जुनकी और योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी आवश्यकता है; तभी श्री, विजय, विभूति, ध्रुवा नीतिकी निश्चित प्राप्ति होगी। इस आवश्यकताकी पूर्ति एकमात्र भगवद्गीतासे ही हो सकती है। वही हमें प्रकाश और बल देकर भगवत्सेवाके भावसे धर्म-युद्धमें प्रवृत्त तथा पूर्ण विजय प्राप्त करा सकती है। एवं इसी साधनसे मानव-जीवनके परम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त करा सकती है।

मार्गशीर्ष शुक्ला ११, शुक्रवार दिनांक ७ दिसम्बर सन् १९६२ ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व-दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीताप्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद और उनसे दिव्य शक्ति प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य करने चाहिये—

**( १ ) गीता-ग्रन्थका पूजन।**

**( २ ) गीताके महान् वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासका पूजन।**

**( ३ ) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण।**

**( ४ ) गीतातत्त्वको समझने-समझानेके लिये, गीता-प्रचारके लिये, समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्यपरायण बनानेकी महान् शिक्षाके परमपुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनानेके लिये सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन, भगवन्नाम-संकीर्तन आदि।**

**( ५ ) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीतापाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण।**

**( ६ ) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीताकथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन।**

**( ७ ) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा।**

**( ८ ) सम्मान्य लेखक और कवि महोदय, गीतासम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीताप्रचार करें।**

## विक्रम-संवत् २०२० का गीता-पञ्चाङ्ग ( सन् १९६३-६४ )

गत वर्षकी तरह ही प्रचलित दैनिक लग्नसारिणीसहित छपा है। अधिकांश जा चुका है। बहुत थोड़ा बचा है। मूल्य .५० ( पचास नये पैसे ) डाक-व्यय रजिस्ट्री-खर्चसहित .७०, कुल १.२०। पुस्तक-विक्रेताओंसे लेनेपर डाकखर्चकी बचत हो सकती है। विक्रेताओंको १००० प्रतियाँ एक साथ लेनेपर रु० ४५० ( चार सौ पचास ) कमीशन; विशेष कमीशन तथा सवारीगाड़ीका रेलभाड़ा—नियमानुसार मिलेगा।

## गीता-दैनन्दिनी सन् १९६३ ई० ( तीसरा संस्करण, मू० .६२ नये पैसे, डाकखर्च अलग )

एक लाख प्रतियोंके दो संस्करण बिक गये। ग्राहकोंके विशेष आग्रहके कारण विशेषाङ्ककी छपाईके काममें असुविधा होते हुए भी १५,००० प्रतियोंका तीसरा संस्करण छापा गया है जिसके भी अति शीघ्र समाप्त हो जानेकी आशा है। जिन्हें लेना हो वे अपने निकटवर्ती पुस्तक-विक्रेतासे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। यहाँसे मँगवानेपर डाकखर्च अलग लगेगा।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110313

रजि० सं० ए० १७५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## 'कल्याण'के सभी सम्मान्य ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा उनसे प्रार्थना

(१) यह 'कल्याण'के छत्तीसवें वर्षका अन्तिम बारहवाँ अङ्क है। इसके बाद सैंतीसवें वर्षका प्रथम अङ्क 'संक्षिप्त-ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क' प्रकाशित होगा। उसमें भगवान् श्रीकृष्णके अत्यन्त मधुर तथा महत्त्वपूर्ण दिव्य लीला-चरित्रोंका, भगवान् शंकर और गणेशके चरित्रका, महान् देवियोंके प्राकट्य तथा उनकी लीलाओं-का, बहुत-से सिद्ध कवच, स्तोत्र, अनुष्ठानादिका तथा ज्ञान, भक्ति एवं मोक्षके स्वरूपका बड़ा ही सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। रंगीन और सादे बहुत-से सुन्दर चित्र होंगे। पृष्ठ लगभग सात सौ होंगे।

(२) इस अङ्ककी बहुत माँग हो सकती है। अतएव ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजकर तुरंत ग्राहक बन जाइये। रुपये भेजते समय पुराने ग्राहक महाशय कृपया मनीआर्डरके कूपनमें अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। नाम, पता, ग्राम या मुहल्लेका नाम, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि बड़े-बड़े साफ अक्षरोंमें लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' अवश्य लिखनेकी कृपा करें।

(३) 'ग्राहक-संख्या' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जाना सम्भव है। इससे विशेषाङ्क नये नम्बरोंसे चला जायगा और पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा अङ्क दुबारा जायगा। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। ऐसा करके आप अपने 'कल्याण'-कार्यालयको व्यर्थकी हानिसे बचायँगे।

(४) सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा ग्राहिका देवियोंसे निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे उनके 'कल्याण'के प्रचार-प्रसारमें बड़ी सहायता मिलेगी और वे एक महान् पुण्यके भागी होंगे।

(५) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ ही 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(६) किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो विशेषाङ्क और उसके बाद जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले 'विशेषाङ्क'का मूल्य ही ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) है।

(७) गीताप्रेसका 'पुस्तक-विभाग' 'कल्याण'-विभागसे पृथक् है। इसलिये 'कल्याण'के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये रुपये कृपया न भेजें और पुस्तकोंके लिये आर्डर भी 'मैनेजर गीताप्रेस'के नामसे अलग भेजें।

(८) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें बड़ी कठिनता है और बहुत देरसे दिये जा... सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) है।

(९) इस अङ्कमें शायद ही बाहरसे लेख, कविता जा सकें। अतः कोई महानुभाव लेख आदि कृपया न भेजें। जिन्होंने भेजे हों, वे सज्जन न छपनेपर कृपया क्षमा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)